हरिवंश

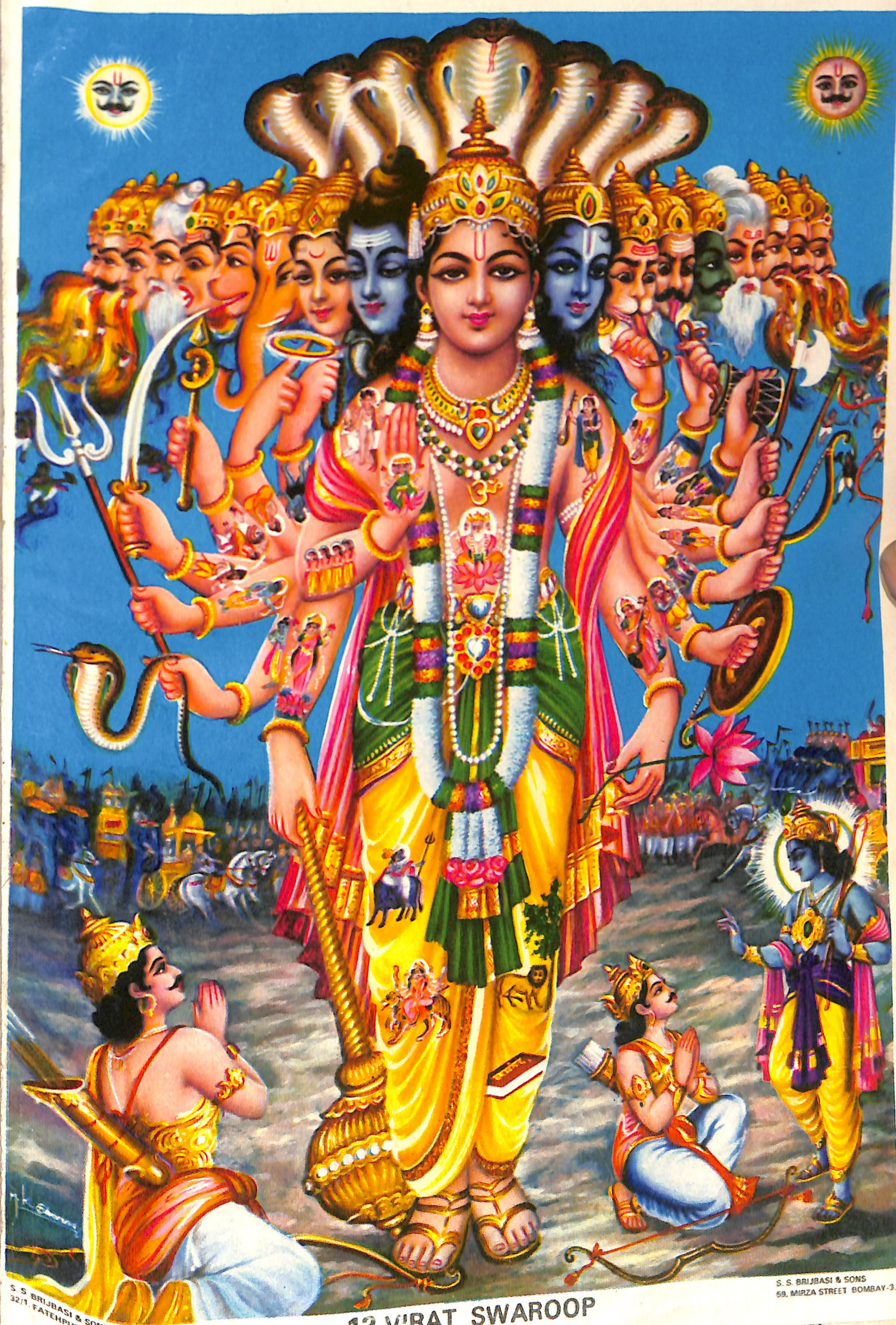
महापुराण

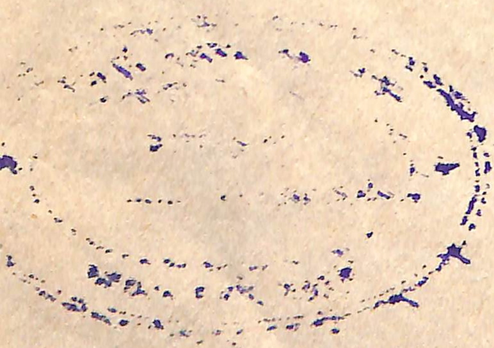
भाषा



सावित्री ठाकुर प्रकाशन
रथयात्रा, वाराणसी - २२१००१




S. S BRIJBASI & SONS
32/1. FATEHPURI DELHI-6.
12 V!RAT SWAROOP
S. S. BRIJBASI & SONS
59, MIRZA STREET BOMBAY-3.



अथ

हरिवंश महा पुराण

(भाषा)

श्लोकानुवाद संख्या सहित

हरिवंश-माहात्म्य, हरिवंश श्रवण-विधान, सन्तानगोपाल-मन्त्र-अनुष्ठान-विधान, पुत्रोत्पत्ति-विधान, काक-वन्ध्या, वन्ध्या, गर्भस्राव तथा केवल कन्या ही उत्पन्न होना आदि दोषों के शमन-उपाय, गोव्रत तथा नवाह यज्ञादि सहित।

अनुवादक—

पं० रामविहारी मिश्र व्याकरण शास्त्री

•

प्रकाशक-

सावित्री ठाकुर प्रकाशन

रथयात्रा, वाराणसी।



फोन नं० ३६०६८८ मूल्य : २८०/-

प्रकाशक-
सावित्री ठाकुर प्रकाशन
रथयात्रा, वाराणसी।
फोन नं० ३६०६८८

•

सन् : १९९६

•

मुद्रक-
सावित्री प्रिंटिंग प्रेस
वाराणसी।

फोटो कम्पोज़िंग : कॉम्प सक्सेस, ७१ चन्द्रिका कालोनी, सिगरा, वाराणसी। ✆ : ३६१४९६

हरिवंश स्थित अध्यायों के कथाओं की अनुक्रमणिका

✿ अथ हरिवंश माहात्म्य ✿

इति हरविंश माहात्म्य।

✿संतानगोपालमन्त्रानुष्ठान विधि✿

इति सन्तानगोपालमन्त्रानुष्ठान विधि।

✿ अथ हरिवंश पर्वः ✿

इति हरिवंश पर्व।

✿ अथ विष्णु पर्वः ✿

अथोत्तरार्धम्

इति विष्णु पर्व।

✿ अथ भविष्यपर्वः ✿

इति हरिवंशस्थिताध्याय विषयानुक्रमणिका

हरिवंश कथा तथा संतान गोपाल के अनुष्ठान की सामग्री

) २५ रोरी
२) केशर
चन्दन सफेद १ मुट्ठा
धुपबत्ती ४ पैकेट
दीपबत्ती
) २५ अबीर
) २० बुक्का
पान ५०
सोपारी ऽ।।
ऋतुफल
कलश तामे का १ बढ़ा मय ढकने के
) २५ सर्वौषधी
गरी का गोला ५
नारियल जलदार ३
व्यास के बैठने के लिए
गद्दा १ मसनद १
चन्दवा १
चौकी २ बड़ी
पुस्तक रखने के लिए
छोटी चौकी १
पीढ़ा १
) २५ सिन्दूर
१) कपूर
वरण की सामग्री
धोती ५
दुपट्टा ५
आसन ५
लोटा गिलास ५
माला ५

जप माली ५
व्यास को अंगूठी सोने की १
सफेद वस्त्र १५ गज
गौ दूध १ किलो
गोदधि १ किलो
गोघृत २५० ग्राम
मधु
गोमूत्र २५० ग्राम
पंचरत्न ५ पुड़िया
सप्तधान्य ५ किलो
मिट्टी का कलश ५
कृष्ण की प्रतिमा सुवर्ण की १
लक्ष्मी की प्रतिमा सुवर्ण की १
सुवर्ण कलश १
पीताम्बर २
आभूषण
पुस्तक का बेठन १
कम्बल १
आज्यस्थाली १
थाली १
बहगुना बड़ा १
करछुल १
सड़सी १
चावल २० किलो
शक्कर २० किलो
धोती ५ पूजन के लिए
अंगोछा ५ पूजन के लिए
रंग पीला
रंग लाल
रंग हरा

रंग काला
घी) ५० पैसा
तिल काला) २५ पैसा
चावल १० किलो
गुड़ १० किलो
पंचमेवा १ किलो
उर्दी १ किलो
आम्र पल्लव
केले का खंभा ४
तोरण
मिट्टी का कसोरा ५०
पत्तल १०
नारियल सूखा १
सवत्सा गौ १
गोशृंग २
गोखुर ४
गोपृष्ठ १
गोदोहन पात्र १
गौ को वस्त्र ५
वरण द्रव्य १
व्यास जी को पूर्ण वस्त्रादि आभूषण
छायादान के लिए पात्र
आचार्य्यादि का पूजन और दक्षिणा
भूयसो दक्षिणा
ब्राह्मण भोजन
सपत्नीक यजमान को वस्त्रोपवस्त्र
यज्ञोपवित ५ जोड़ा

हरिवंश महापुराण का माहात्म्य

अथ प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

नरों में उत्तम नररूपनारायण को नमस्कार कर तथा देवी सरस्वती को नमस्कार कर जय शब्द का उच्चारण करें। महर्षि पराशर के पुत्र व्यासजी के कमल मुख से निकली हुई अमृत के समान वाणी को कान रूप मुख से सारा संसार पान करता है। अज्ञान से अन्धे बने मनुष्यों के नेत्रों को ज्ञानाञ्जन रूप शलाका ज्योति से ज्ञान प्रदान करने वाले गुरु को नमस्कार है। जिसने विश्वव्यापक ब्रह्म पद को दिखा दिया उस गुरु को नमस्कार है। जनमेजयजी बोले-हे भगवन्! आपने महाभारत सुनने की विधि कह दी अब हरिवंश सुनने की विधि कहिये। वैशम्पायनजी बोले-शब्द ही सनातन ब्रह्म है, हरिवंश ब्रह्मा, विष्णु और महेश का स्वरूप है। शब्द में ही ब्रह्म रहता है अतः शब्दों का ज्ञान करने से ब्रह्म का ज्ञान होता है, हरिवंश को सुनने से इन सबका ज्ञान हो जाता है। शरीर, मन तथा वाणी तीनों से उत्पन्न हुए पाप हरिवंश के सुनने से वैसे ही विनष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्य से अन्धकार। जो फल पुराणों के सुनने से होता है वही फल हरिवंश को भी सुनने से होता है। इस हरिवंश को जम्बू द्वीप में सुन कर सभी स्त्री-पुरुष वैष्णव पद को प्राप्त कर सकते हैं परन्तु इस कलियुग में सुनने वाला ही दुर्लभ है।।१-१०।।

इस युग में ऐसे ही मनुष्य होंगे सत्य कह रहा हूँ। फिर भी पुत्र की कामना करने वाली स्त्रियों को हरिवंश सुनना चाहिये। बालघाती और मृतवत्स पुरुषों को विधि से हरिवंश सुनना चाहिये। जो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और गुरु की ओर मुँह करके मूत्र अथवा वीर्य को निकालता है उसके वीर्य में पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रहती है। जो फूले-फले वृक्ष-लतादि को काट देती है, जो बालकों का वध करती है, जो माता-पिता की सेवा से अलग रहती है, जो स्त्री के गर्भों को गिराती है, जो गर्भ गिराने के उपायों को बतलाती है, इन पाँच दोषों वाली तथा जो मासिक नहीं होती, जिसका लड़का मर जाता हो,

जिसका अपने पापों से गर्भ गिर जाता हो तो इन दोषों को दूर करने के लिये यह हरिवंश महापुराण चुनौती देता है कि तुम लोग हमारा श्रवण करो। मैं इन सभी दोषों को दूर कर दूँगा। सन्तानोत्पादक कीटाणुओं से रहित वीर्य वाला मनुष्य सुवर्ण और घी आदि पद दान के साथ यदि दस बार हरिवंश का श्रवण कर ले तो उसके वीर्य में सन्तानोत्पादक कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। जिस स्त्री का मासिक ठीक नहीं होता है उसे भी इसी प्रकार दस बार श्रवण करना चाहिये। जिसके बच्चे मरते हों उसे सात बार, जिसके गर्भ गिरते हों उसे पाँच बार, काकबन्ध्या हो (जिसे एक सन्तान हो), बन्ध्या हो (जिसे कोई सन्तान न हो) उसको तीन बार, जिसे केवल कन्या होती हो उसे एक बार सुनने से पुत्र की प्राप्ति होती है। जीवन पर्यन्त सदा सुनने से सम्पूर्ण दोष-पाप विनष्ट हो जाते हैं।।११-२०।।

पुनः दूसरे जन्म के लिये दुःख नहीं भोगना पड़ता है। अर्थ के सहित सुनना उत्तम है, केवल मूल-मूल सुनना मध्यम है। यदि मूल का शुद्ध-शुद्ध पाठ हो तो उत्तम के समान है। नौ दिन में हरिवंश का पाठ समाप्त करना उत्तम है। इक्कीस दिन में पाठ समाप्त करना मध्यम है। एकतिस दिन में पाठ समाप्त करना निकृष्ट है। जो सुख से साध्य हो करना चाहिये; वैसे तो कलियुग में बहुत दिनों में पाठ पूरा किया जा सकता है परन्तु उसमें विघ्न उपस्थित हो जाने की सम्भावना रहती है। इसलिये व्यासजी ने नौ दिन के अथवा इक्कीस दिन के ही परायण की घोषणा की है तथा एकतिस दिन के पाठ-यज्ञ को बन्ध्या दोष विनाशक कहा है। स्त्री-पुरुष दोनों को गोव्रत करके पारण (भोजन) करना चाहिये। (यह गो-व्रत एक मास का होता है इसलिये इसको शुभ-मास-व्रत भी कहते हैं।) इस हरिवंश सुनने के आरम्भ में इस गो-व्रत (मास-व्रत) को करने की विधि कह रहा हूँ। यह एक महीना में पूरा होता है। चतुर्थी तिथि को प्रातःकाल बिना अन्न-जल के गो-व्रत करने का संकल्प करें और सूर्यास्त पर्यन्त बछड़ा के साथ जब तक गौ चर कर घर पर न आ जाय तब तक बिना अन्न-जल के व्रत रहें। गौ के आ जाने पर बछड़ा सहित गौ की पूजा करें। जव नामक अन्न से बने आहार गौ को खिलावें। (जैसे यव खड़ा अथवा उसकी दरिया बना कर स्वाद के लिये गुड़ भी मिला

कर दिया जा सकता है) अधिक गौ को हानि न करे इसलिये भूसे का संयोग कर यवान्न के संयोग से उसका पेट भरना चाहिये और अपने भी जव से निर्मित भोज्य पदार्थ बना कर भोजन करना चाहिये। (ध्यान रहे जव सन्तानोत्पादक अन्न है जो बन्ध्यात्व को दूर करता है; इसलिये सन्तान रहित स्त्री-पुरुष दोनों को जव का भोजन ऐसे भी दोनों समय प्रयोग करना चाहिये। जव देवान्न है इसका गुण वर्णन से परे है।) गौ बछड़े वाली और प्रथम बार ब्याई हो तो अतिउत्तम है। (जिनके यहाँ चरागाह न हो तो वे वैसे ही सूर्यास्त के समय पूजा कर लिया करें। जो खेत-जमीन वाले हों उन्हें तो खेत में जव उगा कर दिन में चराना चाहिये और सायंकाल घर लाकर पूजन करना चाहिये। यह व्रत एक मास अर्थात् तीस दिन में पूरा करना चाहिये। हे राजन्! इस प्रकार स्त्री-पुरुष दोनों एक मास तक व्रत करें तो अवश्य पुत्र की प्राप्ति होगी।।२१-३०।।



अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

वैशम्पायनजी बोले–मैं तुमसे अब नवाह सुनने की विधि कह रहा हूँ। इस विधि को अनेक सहायकों के साथ करनी चाहिये। पहले किसी ज्योतिषी से हरिवंश सुनने की मुहूर्त पूछ लें फिर विवाह की भाँति सम्पूर्ण सामग्रियों को इकट्ठी कर लें। श्रावण, आश्विन (क्वार), कार्तिक, अगहन, माघ तथा फाल्गुन इन मासों में हरिवंश सुनने से श्रोता को इच्छित फल प्राप्त होता है। उद्योगी व्यक्तियों से हीं पूर्ण सहायता हो सकती है ध्यान रहे, यदि अपना सम्पर्की विदेश गया हो तो उसे कथा का निमन्त्रण देना चाहिये। उसमें लिखना चाहिये कि मेरे यहाँ नौ दिन तक हरिवंश का नवाह यज्ञ होगा अतः इस यज्ञ-सत्संग में सकुटुम्ब सम्मिलित होकर मुझे अनुगृहीत करें। इसके आलावे जो विरक्त (त्यागी), वैष्णव तथा कीर्तन करने में जो उत्साही हों उन्हें भी निमन्त्रण देकर सादर बुलवाना चाहिये। सभी आगन्तुक सज्जनों के वास-स्थान का प्रबन्ध करना चाहिये। कथा सुनने का स्थान कोई तीर्थ, उपवन अथवा बृहद् भवन हो तो अच्छा है। कुछ लम्बे-चौड़े स्थान पर कथा होनी चाहिये। कथा

भूमि को साफ करा कर गोबर से लिपवा देना चाहिये। अपनी गृह-सामग्रियों को सीमित स्थान में सुरक्षित कर कथा के स्थान पर केले के खम्भों से मण्डप बनवा देना चाहिये। उस मण्डप को फल-पुष्पों, बन्दनवारों, चँदोवा आदि से विभूषित कर ध्वज-पताकाओं से भी सज्जित करना चाहिये।।१-१०।।

उस मण्डप के अगल-बगल सात ऊपर और सात नीचे के लोकों की कल्पना कर यथास्थान उनमें विरक्तों (साधुओं और कीर्तनकारों) और ब्राह्मणों को बैठने की व्यवस्था करनी चाहिये। प्रथम साधु-सज्जनों, ब्राह्मणों को बैठने की व्यवस्था कर कथावाचक के लिये दिव्य आसन की व्यवस्था करनी चाहिये। कथावाचक को उत्तर मुँह तथा श्रोता को पूर्व मुख बैठना चाहिये। वेद-वेदाङ्ग के तत्त्वज्ञ वक्ता के उपदेश से शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है, अन्य सामान्यजनों से समर्थित केवल नीति के पण्डित गुरुओं के उपदेश से किस प्रकार की सिद्धि होगी विचारणीय है। जो अनेक धर्मों में भ्रान्त हैं, वाचाल हैं, पाखण्ड से भरे हैं, केवल मुँह से धर्मशास्त्र कहने वाले हैं वे पण्डित भी हों तो उनका त्याग है। वक्ता की सहायता के लिये किसी अन्य सहायक वक्ता को भी नियुक्त करें। पण्डित वह है जो उठे हुए सन्देहों का निवारण कर दे। जिस दिन श्रोता वक्ता के लिये चन्द्रमा-तारा अनुकूल हों उस दिन वक्ता भी सूर्योदय के पहले छौर कर्मादि कर स्नान-ध्यान कर निवृत्त हो जाय।।११-२०।।

इसके बाद पवित्रतापूर्वक मण्डप में स्वस्ति वाचन कर अपने सामने सर्वतोभद्र मण्डप को स्थापित कर शक्ति के अनुसार श्रोता से पूजन करावें। कथा में विघ्न न हो। इसके पश्चात् पुत्र सहित लक्ष्मी (रुक्मिणी) और श्रीकृष्ण का स्थापन पूजन करे। निर्विघ्न कथा समाप्त होने के लिए गणेशादि देवताओं का पूजन कर कथा का संकल्प करे। कथा की निर्विघ्न समाप्ति के लिये इष्ट देवता, कुल देवता, ग्राम देवता, वास्तु देवता सहित तैंतीस कोटि देवताओं का यथा साध्य पूजन-वन्दन कर प्रधान संकल्प करे अथवा पहले ॐ अपवित्रः से पवित्र हो प्राणायाम-आचमन कर पश्चात् संकल्प करे और उसी संकल्प के आखिर में इतना और जोड़ दें कि इस हरिवंश नवाह यज्ञ को निर्विघ्न समाप्त करने के लिए गणेशाम्बिका, नवग्रहादि सम्पूर्ण देवताओं का पूजन करूँगा

आदि। संकल्प में देश काल का नाम लेकर इतना और जोड़ देवें कि मैं अमुक गोत्र-प्रवर वाला अमुक नाम का शर्मा, वर्मा, गुप्त, दास जन्म-जन्म में पाप संचय के द्वारा उपस्थित हुई सन्तान-बाधा को नाश कर सन्तानोत्पत्ति के लिये और उत्पन्न हुई सन्तान (पुत्र) को सौ वर्षों तक सकुशल जीवित रहने के लिए तथा उससे अपनी आत्मा को सुख-सन्तोष एवं पितृ-ऋण से उऋण होने के लिए, शरीर शुद्धिपूर्वक चन्द्रादि लोकों का अतिक्रमण कर विष्णु-भक्ति के द्वारा विष्णु स्वरूपता प्राप्त कर विष्णु लोक निवास के लिये व्यास स्वरूपक विज्ञ ब्राह्मण के द्वारा महापुराणों की कथाओं से युक्त हरिवंश अर्थात् हरि (श्रीकृष्ण) की वंश परम्परा का तथा उनसे सम्बन्धित अन्य वंशावलियों का भी श्रवण करूँगा। इसके पहले कलश स्थापनपूर्वक गणेशादि देवताओं का निर्विघ्नता के लिये पूजन-वन्दन करूँगा। देवता पूजन के पश्चात् कथा कहने वाले व्यास का पूजन कर हाथ में कुश-पैंती, अक्षत, सोपाड़ी, पुष्प, दक्षिणा, धोती, दुपट्टा, चौबन्दी, पगड़ी, सुवर्ण की अंगूठी एवं कुण्डल तथा १६ पल सुवर्ण ले संकल्प कर वरण करें और कहें कि इस व्रत से आप मुझे शिक्षा दें और आशीर्वाद प्रदान करें कि मैं ज्ञान प्राप्त कर इस लोक अथवा परलोक में बाधाओं से रहित हो जाऊँ। ऐसा कह कर व्यासजी के हाथ में नारा बाँध देवें और वक्ता श्रोता के हाथ में रक्षा सूत्र बाँध देवें। इसके बाद पुष्पादि से हरिवंश महापुराण की विधिवत् पूजा करें तथा व्यासजी को और पुराण को नमस्कार करें तथा प्रार्थना करें कि हे भगवन्! आप हमारे लिये व्यासजी के रूप में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश हैं क्योंकि आप देवता स्वरूप शास्त्रों के ज्ञाता हैं।।२१-३०।।

इसी भाँति प्रतिदिन व्यास और पुराण की पूजा कर एकाग्रचित्त हो कुशासन पर बैठ हरिवंश महापुराण को सुनें। कथावाचक जो भी जिस भी रूप का क्यों न हो वह आदरणीय है, पूजनीय है। पुराण बाँचने वाले की निन्दा न करें क्योंकि उनके मुख से उच्चारित ज्ञान-प्रकाशक शब्द श्रोता का कल्याण कर उसकी मनोकामनाओं को पूर्ण कर देता है। सुकर्म के इच्छुक सुख के लिये व्यासजी कैसे भी हों परन्तु उनका आदर करें। पुराण बाँचने वाले की निन्दा न करें, उसकी वाणी को सुनें जो कामधेनु के समान है।

जन्मजात गुरु, गुण को सिखलाने वाले गुरु तथा विद्या देने वाले सभी गुरुओं से पुराण का ज्ञाता गुरु श्रेष्ठ है। अनेक बार जन्म लेकर भी आप सदा सुखी रहें ऐसा पुण्यमय सुखद विचार पुराणवेत्ता से ही प्राप्त होता है। अतः पुराणवेत्ता परम श्रेष्ठ है फिर भी विचार से पवित्र, शान्त, पाखण्ड रहित सज्जन तथा सुज्ञ पुराणवेत्ता कथावाचक होना चाहिये। पुराणज्ञ जब कथा कहने बैठे तो उस समय वह किसी मानव को नमस्कार न करे जब तक कथा-प्रसंग समाप्त न हो जाय। विजय की इच्छा वाले धूर्त, दुष्कर्मी तथा कुटिल को कथा न सुनावें। अपवित्र स्थान पर तथा जहाँ दूषित मनुष्यों का जमघट हो, नीचों का आवास हो, कुत्ते भी अधिक हों वहाँ पुण्यप्रद कथा न कहें। सज्जनों से भरे प्रदेश-ग्राम में, देवमन्दिर में, पुण्य नदी-नद के किनारे अथवा किसी पवित्र स्थान पर कथा कहें। उक्त प्रकार की व्यवस्था से व्यवस्थित कथा को सुनने से लोक-परलोक दोनों में सुखप्रद पुण्य के साथ मनुष्य पुत्र को प्राप्त कर लेता है। यह हरिवंश महापुराण महापापों को नष्ट कर पुत्र प्रदान करता है। इसलिये ऐसे पाप-नाशक हरिवंश महापुराण को अवश्य सुनना चाहिये।।३१-४२।।



अथ तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

वैशम्पायनजी बोले–पण्डितों ने जप के बाद हरिवंश सुनना कहा है। अतः नित्य कर्म, सन्ध्यादि, पितृ-तर्पण कर शरीर शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। पश्चात् मण्डप में ऊँचे आसन पर भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति को पुत्र सहित लक्ष्मी के साथ स्थापित कर पूजन करना चाहिये (लक्ष्मी = रुक्मिणी पुत्र = प्रद्युम्न)। फिर प्रदक्षिणा, नमस्कार, पूजान्त में स्तुति करना चाहिये कि हे करुणानिधे ! इस संसार सागर में कर्मग्राह से ग्रसित मुझ दीन का उद्धार कर दें, पश्चात् हरिवंश का षोडशोपचार से पूजन करें और श्रीफल लें प्रसन्न मन से स्तुति करें कि हे नाथ ! यह आयोजन पुत्र-प्राप्ति के लिये मैंने किया है अतः प्रार्थना है कि आप मेरी मनोकामना को पूर्ण कर दें, हम आपके

दास हैं। फिर वस्त्राभूषणों के द्वारा आचार्य की भी पूजा कर स्तुति करें कि आप शास्त्र पुराणवेत्ता हैं अतः इस कथा-प्रसंग से हमारे अज्ञान को दूर करें। इस प्रकार आरंभ कर हरिवंश का नवाह समाप्त करें।।१-१०।।

नवाह-यज्ञ में विघ्न न पड़े तथा भगवान् विष्णु प्रसन्न हों इसके लिये सदाचारी ब्राह्मणों का पूजन-वरण कर आसन दें यथास्थान स्थित कर गणेश-पूजन द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय), सन्तानगोपाल-मन्त्र, महारुद्र जप तथा पार्थिव-पूजन के लिए निवेदन करें। पश्चात् हरिकीर्तन करने वाले वैष्णवों का पूजन-वरण कर यथास्थान बैठा कीर्तन के लिये निवेदन कर श्रोता अपने आसन पर बैठ जायँ। जो सभी ओर से चित्त को हटा कर कथा के शब्द-ज्ञानों की ओर ध्यान कर कथा सुनता है उसे सभी फल प्राप्त हो जाते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पवित्र मन से इस हरिवंश महापुराण को सुनते हैं तो उत्तम फल प्राप्त करते हैं। श्रद्धा सभी धर्मों की भाँति हितकारिणी है। श्रद्धा से ही इस लोक तथा परलोक में सिद्धि प्राप्त होती है। श्रद्धा से पत्थर (शिला) भी फलदायिनी बन जाती है। मूर्ख व्यक्ति श्रद्धा-भक्ति से पूजित होने पर गुरु की तरह ज्ञान देने वाला बन जाता है। श्रद्धापूर्वक स्तुति करने से स्तुति करने वाले को देवता फल देते हैं। श्रद्धा से पूजित देवता नीच को भी वरदान देते हैं। श्रद्धा से रहित पूजन-यज्ञादि सभी निष्फल हो जाते हैं, जैसे बिना पुष्प के वृक्ष। सभी जगह सन्देह करने वाला, अति चंचल, परमार्थ से रहित तथा श्रद्धा से रहित केवल स्तुति मात्र करने से मुक्त नहीं होता है; मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषधि तथा गुरु में जिसकी जैसी भावना होती है उसे सिद्धि भी वैसी ही मिलती है। यह संसार भावमय (श्रद्धामय) है। यहाँ भाव से पुण्य और भाव न करने से पाप की प्राप्ति होती है। भावहीन को कुछ नहीं प्राप्त होता है, इसलिये हे राजन्! सदा श्रद्धा-भक्ति से धार्मिक कार्य करें। सूर्योदय से आरम्भ कर साढ़े तीन पहर तक धीरे-धीरे स्वर में कथा बाँचें, मध्याह्न (दोपहर) में दो घड़ी विश्राम करें, उस समय कीर्तन वाले व्यक्ति कीर्तन करें। इस प्रकार विधान से कथा सुनने पर सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं।।११-२५।।



अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

वैशम्पायनजी कहते हैं कि नवाह व्रत करने वालों के नियमों को सुनें। केवल एक बार भोजन करना एवं भूमि पर सोना चाहिये। जब तक ग्रन्थ का पाठ समाप्त न हो जाय तब तक स्त्री-पुरुष दोनों ब्रह्मचर्य व्रत का भी पालन करते रहें। मल-मूत्र का त्याग नियमतः हो, अतः लघु तथा पौष्टिक आहार, जैसे दूध अथवा खीर का भोजन करना चाहिये। शक्ति रहने पर नौ दिन का उपवास व्रत कर कथा सुनें अथवा केवल दूध अथवा केवल जल पीकर कथा सुनें, जो सुख साध्य हो कथा में विघ्न न उपस्थित हो उस भाँति से कथा सुनें इन सभी प्रकारों से बल्कि एक बार भोजन कर लेना उत्तम समझ में आता है। कोई ऐसा आचरण न करे कि जिससे हँसी हो और कथा में विघ्न पड़ जाय, अपने को संयमित रख कर कथा सुने। प्रतिदिन प्रातः स्नान से शुद्ध हो स्त्री-पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा कर तब कथा सुने। आचार्य का फल, पुष्प और नैवेद्य आदि से पूजन करे। सायंकाल शौचादि कर्म से शुद्ध हो गुरु को सन्तुष्ट करे पश्चात् भोजन के बाद विश्राम करे।।१-११।।

व्रतकर्ता को चाहिये कि पत्तल में भोजन करे। कथा-प्रारम्भ से नौ दिन पर्यन्त दाल, मधु, तैल, गरिष्ठ पदार्थ, भाव से दूषित, लहसुन, प्याज, भंटा, जला हुआ अन्न, मसूर, अखाद्य पदार्थ जैसे खेसारी वगैरह तथा हींग, मूली, गाजर, नालिकामूल, कोंहड़ा न खाय और काम, क्रोध, लोभ, मद तथा छल का त्याग कर दे। पाखण्ड, मोह तथा द्वेष को त्याग दे। वेद, वैष्णव, विप्र, गुरु, गोव्रत करने वाले, स्त्री, राजा और बड़े लोगों की निन्दा न करे न सुने जो ब्राह्मणों के द्वेषी हों, वेद-निन्दक हों, उन्हें त्याग दे। सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय, उदारता तथा श्रद्धा-भक्ति से युक्त हो। अन्य सांसारिक प्रपंचों से अपनी आत्मा को पृथक कर व्रती अपने मन को एकाग्र कर ले।।१२-२०।।

जो ऊँचे आसन पर बैठ कर कथा सुनते हैं वे अक्षय नरकों को भोग कर अन्त में कौआ होते हैं। जो वीर-आसन से बैठ कर अथवा चारपाई पर बैठ कर कथा सुनता है वह अर्जुन नामक वृक्ष होता है। कथावाचक गुरु को और पुराण को नमस्कार किये बिना जो कथा सुनता है वह विष का वृक्ष होता

है, सोकर कथा सुनने वाला अजगर होता है। जो मूढ़ व्यास के समान ऊँचे आसन पर बैठ कर कथा सुनता है वह गुरुपत्नी के संगम के समान पाप को प्राप्त कर नरक को जाता है।।२१-३०।।

जो पुराण अथवा कथावाचक की निन्दा करता है वह सौ जन्मों तक शूद्र होता है। कथा के समय जो वाद-विवाद करता है वह गर्दभ का जन्म लेकर गिरगिट की योनि में जाता है। जो पुण्य देने वाली कथा को नहीं सुनते हैं वे नरक भोग कर बगुला तथा सूकर की योनि पाते हैं। जो कथा में विघ्न उपस्थित करते हैं वे करोड़ों वर्षों तक नरक भोग कर ग्राम-सूकर होते हैं। इसलिये कथा के बीच में कोई दूसरी वार्ता न करे और न लड़कों को खेलावे। स्त्री से भी भाषण न करे जिससे कथा में विघ्न उत्पन्न हो जाय। कथा में विघ्न डालने से ब्रह्महत्या के समान पातक होता है। कथा के बीच में स्त्री-पुरुष कोई दूसरी बात न करे, बात करने से नरक मिलता है। हे मानद ! इस विषय का एक बहुत पुराना इतिहास सुना रहा हूँ जिसे सुनने के बाद कथा के बीच कोई बात न करे। जनपद नामक देश में कोई ब्राह्मण सम्पूर्ण शास्त्र-वेदों का ज्ञाता तथा सदाचारी रहता था।।३१-४०।।

वह ब्राह्मण गंगा-स्नान देव-पूजन के पश्चात् प्रतिदिन कथा सुना करता था। उसकी स्त्री दुष्टा तथा असत्यवादिनी थी। पाप करने के लिए उसने धन इकट्ठा कर लिया था। वह एकान्त में अपने स्वयं दही, दूध, शक्कर, घी और मक्खन आदि खाती थी और पति के लिये रूखा-सूखा भोजन कराती थी। उसमें प्रायः सभी दुर्गुण उपस्थित थे। इसके अलावे अतिथियों से वैर तथा धर्म का नाश आदि करना दुर्गुण उसमें भी था। उसका पति सौम्य-सज्जन और पूजनीय था। जब उसका पति कथा सुनने लगता तो वह वहीं जाकर उसकी निन्दा करने लगती थी। वह कहती थी कि तुम अपने तो व्यासजी के कहने के अनुसार संन्यासी बन कर यहाँ कथा सुन रहे हो और वहाँ घर पर बच्चे भूखे होकर भोजन माँग रहे हैं। मैं उद्योग से हीन अकेली कहाँ से लाकर भोजन दूँ, क्या उपाय करूँ।।४१-५०।।

घर में न अन्न है, न वस्त्र है, कहाँ जाऊँ और क्या करूँ? दुरात्मा ब्रह्मा ने ऐसे मूर्ख, आलसी, निष्ठुर तथा प्रेमहीन केवल कथा सुनने वाले पति को

मेरे भाग्य में पहले से लिख दिया है। इस संसार में मैं ही केवल एक ऐसी दुर्भागिनी हूँ कि जो ऐसे दरिद्र के घर आ गयी कि जहाँ आज तक पेट भर भोजन भी न मिल सका। इस लोक में वे ही स्त्रियाँ धन्य हैं जिनके पति उद्योग करने वाले, धन-धान्य से भरे-पूरे हैं। जो स्त्रियों का कहना करते, घर में रहते, स्त्री को सन्तोष देते और बच्चों का पालन करते हैं। और जो पौष्टिक भोजन से स्वयं अपने पुष्ट रह कर स्त्री की आज्ञा का पालन करते हैं और बुद्धिमानी से उद्योग-धन्धा भी करते हैं। यह मेरा मूर्ख पति घर की उपेक्षा करता है, आज घर में तेल, नमक, लकड़ी, साग और अनाज का एक दाना नहीं है, हम क्या करें, मेरा पति ऐसा है। सन्मार्ग पर चलने वाले सज्जन पति को घर में सम्पूर्ण पदार्थ भरा रहने पर भी झूठ बोल कर निन्दित किया करती थी।।५१-६०।।

वह कर्कशा स्त्री इसी प्रकार की वार्ता से नित्य कथा में विघ्न उपस्थित करती हुई कुछ काल के बाद दिवंगत हो गई। यमदूत उसे बाँध कर यमराज के पास ले गये और उनकी आज्ञा से उसे नरक में डाल दिये। नरक भोगने के बाद वह पूर्व पाप के कारण घोर जंगल में राक्षसी हुई। इसलिये स्त्री हो अथवा पुरुष हो कोई भी विष्णु की कथा में विघ्न न उपस्थित करे। १-मिट्टी चालने वाले, २-भैंस, ३-हंस, ४-बगुला, ५-बिल्ली, ६-कौआ, ७-कंक पक्षी, ८-जोंक, ९-सछिद्र घड़ा, १०-जलसिन्धु, ११-शिला के समान, १२-सरौता के समान, १३-पूर्ण घट के समान, १४-ज्ञानी वास्तविक श्रोता। ये चौदह प्रकार के कुश्रोता और सुश्रोता मिलाकर होते हैं। दरिद्र, रोगी, पापी, सन्तानहीन तथा मोक्ष की कामना करने वाले को अवश्य कथा सुननी चाहिये। जो स्त्री मासिकधर्म न होती हो, एक बार सन्तान होकर न होता हो, बन्ध्या, जिनके बच्चे मर जाते हों, गर्भ गिर जाता हो, ऐसे दोषों वाली स्त्रियों को प्रयत्नपूर्वक कथा सुननी चाहिये। हे राजन्! इस कथा के सुनने से सुन्दर पुत्र की प्राप्ति होती है, ऐसा व्यासजी का वचन है।।६१-६८।।



अथ पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

इस प्रकार फलेच्छुक को व्रत कर उद्यापन करना चाहिये किन्तु जो गरीब हैं उनके लिये उद्यापन का आग्रह नहीं है और जो निष्काम हैं उन्हें तो केवल कथा ही सुननी चाहिये। इस नवाह यज्ञ की समाप्ति पर वक्ता और पुस्तक की पूजा करनी चाहिये। श्रोताओं को प्रसाद और तुलसीदल तथा माला देनी चाहिये, मृदंग बजा कर कीर्तन करना चाहिये। जय शब्द, नमः शब्द तथा शंख का शब्द करना चाहिये और ब्राह्मणों को, याचकों को धन देना चाहिये। कथा समाप्त हो जाने पर विष्णु और लक्ष्मी की मूर्ति को ब्राह्मण के लिये दान कर देना चाहिये। नवाह यज्ञ की समाप्ति पर कथावाचक को रेशमी-ऊनी वस्त्र देना चाहिये। शुभ दिन में पुराण को समाप्त कर रेशमी वस्त्र से पुराण को लपेट कर स्वयं शुद्ध वस्त्र धारण कर सुवर्ण आदि द्रव्य दक्षिणा के साथ देना चाहिये और पूजन-नमस्कार करना चाहिये।।१-११।।

इस प्रकार कथा सुनने पर कोटि कल्प पर्यन्त तक ब्रह्मपद प्राप्त होता है, जो पौराणिक को आसन, कम्बल, मृगचर्म, कपड़ा, चौकी, पीढ़ा आदि देता है वह सभी सुखों को भोग कर अन्त में स्वर्गलोक प्राप्त करता है। कथा सुनने वाला ब्रह्मादि लोक में जाकर शुभ लोकों में जाता है; जो पुराण को नवीन वस्त्र से आच्छादित कर दान करता है वह जन्म-जन्मान्तर में ज्ञानी होता है। पातकी और उपपातकी क्यों न हो पुराण को सुनने मात्र से परमपद पा लेते हैं। जो हरिवंश को लिख कर वाचक के लिये देता है वह भूमिदान, राजसूय यज्ञ तथा अश्वमेध यज्ञ के समान फल को पाता है अतः हरिवंश का आरम्भ बुद्धिमान् को करना चाहिये। पूर्व तीन जन्मों के जितने पातक हैं वे हरिवंश के स्पर्श करने, श्रवण करने तथा विष्णु का दर्शन करने से नष्ट हो जाते हैं।।१२-२०।।

हे भारत ! व्यासजी ने वेद-पुराण और स्मृतियों के अर्थों को इस हरिवंश में पहले से ही भर दिया है। इसलिये वेद-पुराण और स्मृतियों की निन्दा करने वाले को हरिवंश न सुनावे। प्रसन्नता से कथा सुन कर कथावाचक का पूजन करना चाहिये। कथावाचक को यथासाध्य सभी सामग्री देनी चाहिये, यहाँ तक कि उसे हाथी, घोड़ा, मणि एवं रेशमी वस्त्रादि

भी देना चाहिये। पीतल, ताँबा के बने जलपात्र भी देना चाहिये। हे भारत ! सुहाग की कामना से कथावाचक की स्त्री को भी अच्छे वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर व्यासजी का ध्यान करना चाहिये।।२१-३०।।

कथावाचक के प्रसन्न होने से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। वंश की इच्छा वालों को हरिवंश सुनने में कृपणता न करनी चाहिये। वाचक के सन्तुष्ट होने से देवताओं की प्रसन्नता से कार्य सफल हो जाता है। हे जनमेजय! इस कथा से सभी पितर अक्षय लोक को प्राप्त हो जाते हैं और मनुष्य तीनों ऋणों से उऋण हो जाता है। हरिवंश के प्रारम्भ और समाप्ति के समय वाचक की प्रसन्नता से पापरहित होकर श्रोता अपनी कामना को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार विधि-विधान से हरिवंश सुनने पर श्रोता सन्तान को प्राप्त कर लेता है साथ ही स्वास्थ्य, धन, आयु और सौभाग्य भी प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है।।३१-३८।।



अथ षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

जनमेजयजी बोले–हरिवंश का प्रारम्भ कैसे करना चाहिये? पूजन की विधि क्या है? और इसे समाप्त कैसे करना चाहिये और सम्पूर्ण फल की प्राप्ति कैसे हो ये सब सम्यक् प्रकार से कहें। वैशम्पायनजी बोले–हे राजन्! वन्ध्या जिस विधि से पुत्र प्राप्त करती है उस विधि को कहता हूँ सुनिये। वैशाख, माघ, कार्तिक अथवा अन्य श्रावण, अगहन, वैशाख शुभ मास में शुक्ल पक्ष में पूर्णा (५, १०, १५) जया (२, ७, १२) तिथियों में। गुरु, शुक्र, चन्द्र एवं बुध इन शुभ दिनों में। श्रवण, हस्त, पुष्य, मूल, पुनर्वसु, धनिष्ठा, मृगशिरा, रेवती एवं अश्विनी आदि शुभ नक्षत्रों में। सौभाग्य आदि शुभ योगों में। भद्रा करण को छोड़ कर अन्य शुभ करणों में तथा जिस दिन श्रोता और वक्ता के लिए चन्द्रतारा अनुकूल हों, बली हों उस दिन दोपहर के पहले अथवा दोपहर में आरम्भ करना चाहिये। प्रथम गणेशजी की पूजा कर कलश का पूजन करे पश्चात् चन्दन, अगर, कपूर, कुंकुं का लेपन कर कमल, चम्पा और जाती के सुगन्धित पुष्पों, तुलसी तथा बेल के नये पत्ते, धूप, दीप,

नारियल, केला आदि फल, पान, अक्षत, चामर, घण्टी, घण्टा के साथ प्रतिदिन व्यास और पुराण आदि का पूजन करता रहे जब तक कथा समाप्त न हो जाय।।१-१०।।

लत्तादि दोष से रहित शुभ दिन में पुराण का दान करे, कथा आरम्भ करने के समय जैसे पूजन करे वैसे ही विसर्जन के समय भी पूजन करना चाहिये, समाप्ति के समय सभी सामग्रियों के साथ पुराण और व्यास का पूजन कर गाने-बजाने का आयोजन कर बड़ा उत्सव मनावे। पुराण पूजन के समय का दान कह रहा हूँ। पुराण पूजन के समय उत्तम दान १८००, इसके अभाव में १२००, इसके अभाव में ६०० दान करना चाहिये, ये उत्तम, मध्यम तथा अधम तीन प्रकार के दान हैं। पश्चात् सपत्नीक व्यासजी का नये वस्त्र आदि से कामना सिद्धि के लिये पूजन करे। आचार्य को वस्त्र, कुण्डल, मुकुट अथवा पगड़ी आदि से सुशोभित कर गर्भिणी अथवा बछड़ा सहित गौ का दान करे, सवारी के लिये घोड़ा आदि, सेवा के लिये दास-दासी, आसन, मृगचर्म, व्याघ्रचर्म, धूप, दीप आदि के पात्र, शय्या और उसके उपकरण (तोसक, तकिया, चँदोवा आदि), वस्त्र तथा मिठाई के साथ थाली आदि सभी बर्तन और पीढ़ा, जल रखने को घट (गगरा) आदि के साथ एक वर्ष भोजन के लिये अन्न, घी, तेल तथा नमक आदि व्यासासन पर बैठे ब्राह्मण को देवे।।११-२१।।

इस प्रकार सभी पदार्थों का दान कर व्यास की परिक्रमा कर आशीर्वाद लेवे। पश्चात् रुद्राभिषेक करने वाले ब्राह्मण को वस्त्र, अँगूठी आदि से भूषित कर नवीन कम्बल, ताम्रपात्र और दक्षिणा देवे। अन्य ब्राह्मणों को भी इसी प्रकार वस्त्रादि से पूजित करें। इसके बाद प्रत्येक श्लोक से हवन अथवा दशांश हवन, खीर, मधु, तिल, जव तथा चावल से करे। अथवा गायत्री के मन्त्र से हवन करे पुराण से तन्मय होकर उत्तम हवन कराना है, यदि हवन में असमर्थ हों तो सुवर्ण का दान करें। यज्ञादि में अनेक कमियाँ रह जाती हैं उनकी सम्पूर्णता के लिये विष्णु सहस्रनाम का पाठ करें। इसके पाठ से सभी कार्य सफल हो जाते हैं। पश्चात् २४ सपत्नीक ब्राह्मणों को भोजन करावें।।२२-३०।।

भोजन के बाद गन्ध, माला, वस्त्र और दक्षिणा से सन्तुष्ट करें। फिर सपत्नीक कथावाचक को भोजनादि दक्षिणा से सन्तुष्ट करें। ब्राह्मणों के सन्तुष्ट होने से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। सुन्दर अक्षरों में लिखे हरिवंश महापुराण को दक्षिणा सहित देने से प्राणी भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण फल देने वाले हरिवंश महापुराण का नवाह कर जो दान करता है उसकी स्त्री एक मास में ही गर्भ धारण कर लेती है। हे राजन् ! जो इस प्रकार विधि-विधान से तथा दान-मान से देवता, ब्राह्मण तथा पुराण का पूजन करता है उसकी स्त्री गर्भिणी हो जाती है। जो मैने तीन प्रकार की दक्षिणा तथा पूजनादि कहा है इसको विधानपूर्वक करने से स्त्री सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र को प्राप्त कर लेती है ऐसा ही व्यासजी का वचन है।।३१-४१।।

विप्र के धन को हरण करने वाली स्त्री निःसन्तान होती है, इस दोष की शान्ति के लिये इस कथा के साथ महारुद्र का जप आदि भी कराना चाहिये। राजा परीक्षित ने पुराण सुन कर निश्चित किया कि अहंकार और कृपणता को त्याग हरिवंश पुराण को सुन व्यासजी का आशीर्वाद ले स्त्री के साथ आनंद करें। इस प्रकार के अनुष्ठान से पुत्र प्रतिबन्धक पाप नष्ट हो जाने से पुण्य रूप पुत्र की प्राप्ति होती है। इस पुरातन हरिवंश पुराण को सुन कर मनुष्य अपने दस पीढ़ी आगे और दस पीढ़ी पीछे के पितरों का उद्धार कर देता है। हे नरश्रेष्ठ! मैंने हरिवंश श्रवण का सम्पूर्ण विधान कह दिया, निःपुत्री-पुत्र को, निर्धन-धन को पाता है तथा नरमेध-अश्वमेध यज्ञ के फल को पाता है। ब्रह्मघाती, गर्भघाती, गोत्रघाती, सुरापी तथा गुरु-स्त्रीगामी इस पुराण को सुन कर पवित्र हो जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का अद्भुत चरित्र लोक में दुर्लभ है, इसके सुनने से अद्भुत फल की प्राप्ति होती है।।४२-५३।।

इति श्री पद्मपुराणोक्त हरिवंश महापुराण माहात्म्ये पण्डित रामबिहारी मिश्र कृत भाषानुवादे

श्रवणविधौ दान-विधान-कथनं नाम षष्ठोऽध्याय:।।६।।

।।इति हरिवंश महापुराण माहात्म्यं सम्पूर्णम्।।

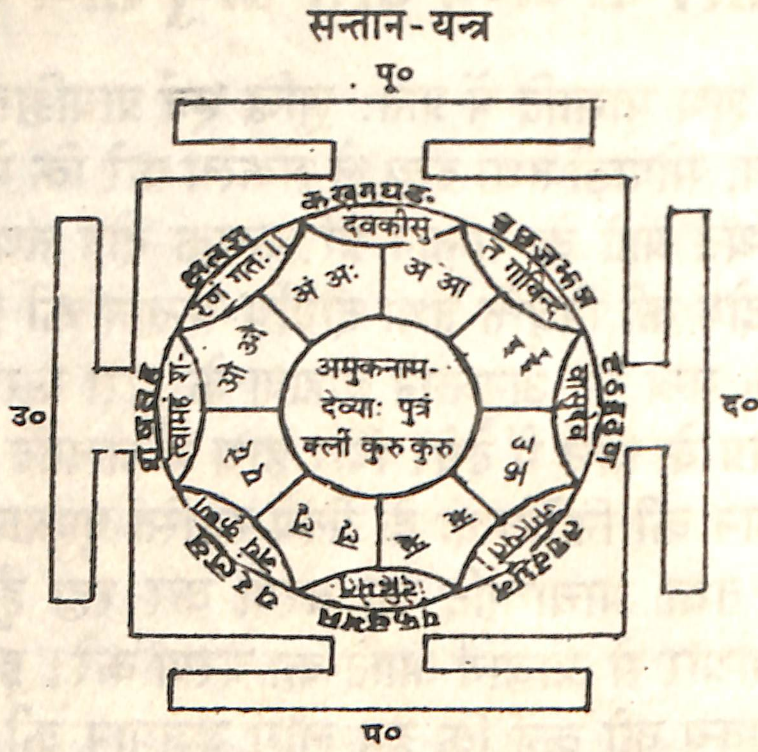


सन्तानगोपाल के मन्त्र द्वारा अनुष्ठान की विधि

पूर्व में कहे शुभ मासादि में प्रातः शुद्धि एवं प्रायश्चित के पश्चात् हाथ में कुश, अक्षत, जल, सोपाड़ी तथा द्रव्य ले संकल्प करे कि मेरी जन्मकुण्डली में अनिष्ट स्थान-स्थित ग्रहों के सन्तान प्रतिबन्धक दोष तथा पूर्व जन्मार्जित सन्तान प्रतिबन्धक दोष की निवृत्ति तथा दीर्घायु सन्तान की प्राप्ति के लिये मैं श्री सन्तानगोपाल के मन्त्र का अनुष्ठान ब्राह्मण के द्वारा कराऊँगा। ऐसा कह कर जल, अक्षत विप्र के हाथ में देवे। फिर हाथ में जलादि ले दूसरा संकल्प करे कि इस अनुष्ठान की निर्विघ्नता के लिये स्वस्ति पुण्याह वाचन, मातृका पूजन, नान्दी श्राद्ध तथा आचार्यादि का वरण कर रहा हूँ। यहाँ ग्रहशान्ति नामक पुस्तक के आधार से आचार्य आदि का वरण करे। इसके बाद आचार्य आदि भी प्रतिज्ञा वाक्य को कहें कि हम लोग यजमान की अभिष्ट सिद्धि के लिये धार्मिक कार्य, कथा, जपादि करेंगे। विप्र हाथ में जल ले सन्तानगोपाल मन्त्र का विनियोग करें कि सन्तानगोपाल मन्त्र के नारद ऋषि, अनुष्टुप छन्द, श्रीकृष्ण देवता, क्लीं बीज, नमः शक्ति है, पुत्रोत्पत्ति के लिये हम इसका प्रयोग करते हैं ऐसा कह कर जल छोड़ दे। इसके बाद न्यास करे-देवकीसुत गोविन्द हृदयाय नमः, वासुदेव जगत्पते शिरसे मे स्वाहा, देहि मे तनयं कृष्ण शिखायै वषट्, त्वामहं शरणं गतः कचवाय हुम्। ॐ नमः अस्त्राय फट्। इसके बाद बालरूप भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करे कि शंख, चक्र, गदा और पद्म (कमल) चारों हाथों में लिये देवकी के सौरी घर में श्याम वर्ण बालक रूप भगवान् श्रीकृष्ण गोद में शयन कर रहे हैं फिर उन्हें हाथ जोड़ नमस्कार करे। पश्चात् जप आरम्भ करे। एक लाख मन्त्र जपने का विधान है किन्तु कलियुग में चार लाख करने से सिद्धि मिलती है। मूल मन्त्र के जप के लिये आठ अथवा चार ब्राह्मण होने चाहिये, इसके अलावे वन्ध्या दोष की निवृत्ति के लिए एक ब्राह्मण को पार्थिव पूजन प्रतिदिन करना चाहिये; कुछ ब्राह्मणों को शतचण्डी पाठ करना चाहिये, कुछ को नवग्रह का जप तथा कुछ को रुद्राभिषेक करना चाहिये और व्यास को हरिवंश का पाठ सुनाना चाहिये।

सन्तानगोपाल का मूल मन्त्र-ॐ क्लीं देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः।। जप करने वाले ब्राह्मण को

सन्तान-यन्त्र



एक और संकल्प करना चाहिये कि अमुक नामक यजमान की धर्मपत्नी में शुभ सन्तान की प्राप्ति के लिये मैं सन्तानगोपाल के मूल मन्त्र का इतनी संख्या में जप करूँगा। इसके बाद न्यास करे—देवकीसुत गोविन्द अंगुष्ठाभ्यां नमः। वासुदेव जगत्पते तर्जनीभ्यां नमः। देहि मे तनयं कृष्ण मध्यमाभ्यां नमः। त्वामहं शरणं गतः अनामिकाभ्यां नमः। ॐ क्लीं देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते कनिष्ठिकाभ्यां नमः। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः करतल करपृष्ठाभ्यां नमः। इसी तरह हृदयादि न्यास कर पूर्वोक्त ध्यान कर जप आरम्भ करे। जप की समाप्ति होने पर दशांश हवन, तर्पण तथा ब्राह्मण भोजन का विधान है। हवन के पश्चात् पुत्रप्राप्ति के लिये स्त्री-पुरुष सन्तान-यन्त्र की पूजन करें अथवा धारण करें। पूजन करना हो तो यन्त्र को सुवर्ण अथवा ताम्रपत्र पर बनवा लेवे और पूर्णाहुति के दिन षोडशोपचार से ब्राह्मणों द्वारा उच्चारित मन्त्रों से पूजन करा पूजा स्थान में स्थापित कर प्रतिदिन पूजन किया करे। ऐसा न हो सके तो अष्टगन्ध से भोजपत्र पर यन्त्र बनवा कर सुवर्ण अथवा ताँबे की ताबीज में बन्द कर गले-बाहु आदि में धारण कर ले। केवल पुरुष ही धारण कर ले अथवा स्त्री-पुरुष दोनों धारण कर लें। यन्त्रधारण और पूजन दोनों करें तो और अच्छा है।

❖✳❖

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

अथ

श्री हरिवंश महापुराण भाषा

अथ प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

व्यासजी तथा नारायण एवं नरों में उत्तम नर तथा देवी सरस्वती को नमस्कार कर पश्चात् जय शब्द का उच्चारण करे। श्री वेदव्यास के ओष्ठ रूपी दोने से निकले हुए उपमारहित पुण्यवर्द्धक, पापनाशक एवं कल्याणदायक महाभारत को बाँचते हुए जो मनुष्य सुनता है, उसे पुष्कर तीर्थ के जल में स्नान करने से क्या? अर्थात् महाभारत का सुनना उससे भी अधिक पुण्यदायक है। जिस व्यासजी के मुखारविन्द से चुए हुए अमृत को संसार पीता है, ऐसे सत्यवती के हृदय को आनन्द देने वाले पराशर के पुत्र श्री व्यासजी की जय हो। जो पुरुष सुवर्ण द्वारा मढ़ी हुई सींगों वाली सौ गौवों का दान वैदिक एवं बहुश्रुत ब्राह्मण के लिये देता है और जो पुरुष पुण्यमयी महाभारत की कथा सुनता है, इन दोनों का पुण्य फल समान ही है। सौ अश्वमेध यज्ञ का जो पुण्य है तथा चार सहस्र शतक्रतु यज्ञ का जो पुण्य है ऐसे अनन्य पुण्य हरिवंश के दान से होता है, महर्षि व्यास ने ऐसा कहा है। जो फल वाजपेय तथा राजसूय यज्ञ से देखा गया और जो फल हाथी एवं रथ के दान से देखा गया है वही फल हरिवंश के दान से प्राप्त होता है। इसमें व्यासजी का वचन प्रमाण है तथा महर्षि वाल्मीकिजी ने भी यह कहा है। जो महातपस्वी पुरुष विधि सहित हरिवंश को लिखता है वह हरि के चरणार्विन्द को वैसे ही प्राप्त कर लेता है जैसे पुष्प रस का लोभी भ्रमर कमल को प्राप्त कर लेता है। जो ब्रह्मा के भी आदि कहलाते हैं (व्यासो नारायणो हरिः) तथा छठें आदि कहलाते हैं, जो अक्षय कीर्ति से युक्त तथा नारायण के अंश से उत्पन्न एक पुत्र (शुकदेवजी) वाले वेद के भण्डार व्यासजी का स्मरण करता हूँ।।१-८।।

आदि पुरुष ईशान पुरुहुत पुरुष्टुत सत्य ॐ रूप एकाक्षर व्यक्त तथा अव्यक्त भी, सनातन असत् सदसत् विश्वरूप सदसत् से परे संसार के सृष्टिकर्ता पुराण अविनाशी मंगलमय मंगलस्वरूप विद्वानों से वर्णित निष्पाप एवं परम पवित्र विष्णु हृषिकेश जो चराचर के गुरु हरि हैं उनको नमस्कार करके नैमिषारण्य के कुलपति महामुनि शौनकजी ने सर्वशास्त्र कुशल धर्मात्मा सूत के पुत्र से पूछे। शौनकजी बोले-हे सूतपुत्र ! आपने भरत वंशी राजाओं का सुन्दर एवं बृहती कथा कही तथा देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, दैत्य, सिद्ध एवं गुह्यकों की कथा एवं अति अद्‌भुत कर्म तथा पराक्रमों एवं उनके धर्म निश्चयों को भी कहा, साथ ही उनके अग्नि आदि द्वारा बिना वीर्य सम्बन्ध के उनके जन्म की विचित्र कथा कही और आपने अपनी मधुर वाणी द्वारा पुराणों का भी वर्णन किया जो मन तथा कानों को सुख देने वाला मुझे अमृत के समान सुखदायक है। हे लोमहर्षण के पुत्र, आपने कुरु वंश की उत्पत्ति का वर्णन किया पर वृष्णि तथा अन्धक वंश का वर्णन नहीं किया, अतः इनका भी वर्णन करें। सूत पुत्र बोले-जनमेजय के पूछने पर धर्मज्ञ व्यास के शिष्य ने जिस प्रकार वर्णन किया उसी प्रकार वृष्णि वंश का मैं आदि से वर्णन करता हूँ।।१-१०।।

भरत वंशियों के सम्पूर्ण इतिहास को सुनकर महाबुद्धिमान् जनमेजयजी वैशम्पायनजी से बोले। जनमेजय बोले-वेद का विस्तार है जिसमें ऐसी तथा अन्यान्य अर्थों वाली महाभारत की कथा मैंने आपसे विस्तारपूर्वक सुनी उसमें आपने वृष्णि एवं अन्धक वंश के महारथियों का नाम, कर्म तथा शूरता सहित वर्णन किया। हे द्विजोत्तम ! उनके पुरुषार्थों का कहीं-कहीं संक्षेप से कहीं-कहीं विस्तार से वर्णन किया। परन्तु इस पुरातन इतिहास को सुनने से मुझे तृप्ति नहीं हुई। वृष्णि एवं पाण्डव एक ही कुल के माने जाते हैं। हे तपोधन आप वंशावली के वर्णन में कुशल हैं तथा प्रत्यक्षदर्शी भी हैं। अतः वृष्णि वंश का विस्तार से वर्णन कीजिये। हे महामुने ! प्रजापति से आरम्भ कर जिन-जिन कुलों में जो-जो उत्पन्न हुए उन्हें जानने की मेरी इच्छा है अतः आप क्रमशः उन कुलों का वर्णन कीजिये। सूत पुत्र बोले-जनमेजय के

सत्कारपूर्वक पूछने पर महातपस्वी वैशम्पायनजी क्रमशः वंशों का वर्णन करने लगे। वैशम्पायनजी बोले—हे राजन्! पुण्य प्रदान करने वाली, पाप को हरण करने वाली, बहुत अर्थों से युक्त एवं वेद से सम्मत इस दिव्य कथा को सुनो। जो व्यक्ति इस कथा को धारण करते, श्रवण करते हैं वे अपने वंश को धारण कर स्वर्गलोक चले जाते हैं।।११-२०।।

संसार के सृष्टि का अव्यक्त कारण जो नित्य सदसदात्मक प्रधान पुरुष है उसी से विश्व का निर्माण हुआ है इसलिए विश्व एवं ब्रह्म दोनों एक ही है अर्थात् अभिन्न हैं। हे राजन्! तुम उसी ईश्वर (ब्रह्म) को सब भूतों की सृष्टि करने वाला ब्रह्मा समझो जो नारायण के उपासक हैं। महत् से अहंकार और अहंकार से आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी आदि सूक्ष्म पंच भूतों की उत्पत्ति हुई तथा इनसे पंच स्थूल भूतों से भूतों के भेद जरायुज आदि की उत्पत्ति हुई। यह जो सृष्टि का क्रम है वह अनादि काल से चला आता है। वेद के अनुसार अपनी बुद्धि से पूर्व पुरुषों के वंशों की शाखा-प्रशाखाओं का वर्णन करता हूँ आप सुनिये, जो कि कीर्ति को बढ़ाने वाला है। अचल कीर्ति एवं पुण्य कर्म वाले उन सब महापुरुषों का वर्णन धन, यश एवं आयु को बढ़ानेवाला तथा शत्रु को नष्ट कर स्वर्ग प्रदान करने वाला है। अतः आपके द्वारा धारण करने योग्य, आप पवित्रात्मा को भी पवित्र करने वाला वृष्णि वंश से प्रारम्भ कर भूतों की उत्पत्ति का सुन्दर आख्यान वर्णन करता हूँ। पंच भूतों की रचना के बाद अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि की इच्छा से स्वयं उत्पन्न होने वाले भगवान् ने पहले जल को उत्पन्न कर उसमें वीर्य का प्रतिपादन किया। अप् = जल को नार कहते हैं तथा जल को नरसूनु भी कहते हैं यही जल उन पंचभूतमय ईश्वर का निवास स्थान था इसलिये वे नारायण कहलाते हैं। वीर्य सम्पादित तत्त्व सुवर्णमय अण्ड हो गया तथा उसी जल में विश्राम करने लगा उसी में ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुए ऐसा मैंने सुना है। हिरण्यगर्भ ब्रह्मा उस अण्ड रूप गर्भ में एक वर्ष रह कर अण्डे का दो खण्ड कर एक से पृथ्वी तथा दूसरे से स्वर्ग की रचना की।।२१-३०।।

और उन दोनों खण्डों के बीच ब्रह्मा ने आकाश, पृथ्वी, सूर्य एवं दशों दिशाओं की रचना की। तत्पश्चात् उस पृथ्वी पर काल, मन, वाणी, काम,

क्रोध, लोभ और मोह की रचना की फिर पूर्व (पहले) की तरह सृष्टि करने की इच्छा से प्रजापतियों की उत्पत्ति के लिए सप्तर्षियों-मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु तथा महान तेजस्वी वसिष्ठ की रचना की। वे सातों ही ब्रह्मा के मन से उत्पन्न ब्राह्मण थे, ऐसा पुराणों में निश्चय है, तत्पश्चात् क्रोध से रुद्र की रचना की पश्चात् पूर्वजों के भी पूर्वज सनत्कुमार आदि सप्त पुरुषों को उत्पन्न किया। हे भारत ! ये ही सातों और रुद्र प्रजा की सृष्टि करने लगे। स्कन्द और सनत्कुमार सृष्ट्यात्मक तेज धारण किये थे। ये सातों ही देवांशों को धारण करने वाले दिव्य महावंश क्रिया एवं प्रजा वाले महर्षियों द्वारा अलंकृत हुए फिर विद्युत, वज्र, मेघ, इन्द्र धनुष और औषधियों की पश्चात् यज्ञ की सिद्धि के लिए ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद का निर्माण किया। फिर मुख से देवताओं को तथा वक्षस्थल से पितरों को उत्पन्न किया। उपस्थेन्द्रिय से मनुष्यों को तथा जघन से असुरों को उत्पन्न किया फिर साध्य और देवताओं को उत्पन्न किया, ऐसा हमने सुना है।।३१-४०।।

फिर छोटे-बड़े अनेक प्रकार के जीव उनके शरीर से उत्पन्न हुए। इतने पर भी जब सृष्टि न बढ़ सकी तो अपने शरीर का दो भाग कर एक से पुरुष तथा दूसरे से स्त्री का रूप धारण किया। फिर उस स्त्री से अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि की। अपने स्वयं तेज से पृथ्वी और स्वर्ग में व्याप्त होकर समस्त सृष्टि की रचना ब्रह्मा ने की। पश्चात् भगवान विष्णु ने ब्रह्मा द्वारा विराज की सृष्टि की तथा विराज ने आदि पुरुष को उत्पन्न किया वही आदि पुरुष मनु कहलाते हैं और मनु के द्वारा सृष्टि (सर्ग) को मन्वन्तर कहते हैं। अब मन्वन्तर की व्याख्या करते हैं-एक मनु से प्रारंभ दूसरे मनु पर्यन्त काल को मन्वन्तर कहते हैं। विष्णु ने ब्रह्मा द्वारा विराज की रचना की तथा विराज ने आदि पुरुष मनु की रचना की यहाँ तक कि सृष्टि नारायण की है इसमें की सब प्रजायें अयोनिज हैं।।४१-४५।। इस आदि सर्ग को जान कर मनुष्य आयुष्मान्, कीर्तिमान, प्रजावान् तथा शास्त्रज्ञ हो धन्य होंगे और मनचाही गति को प्राप्त होंगे।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरिवंशे हरि पर्वणि प्रथमोऽध्यायः।।१।।



अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

वैशम्पायनजी बोले–इस प्रकार अयोनिज सृष्टि के बाद आपव नामक प्रजापति ने अयोनिजा शतरूपा नामक स्त्री को पत्नी रूप में ग्रहण किया। आपव की महिमा से मनु शतरूपा स्वर्ग में व्याप्त होकर रहने लगे तथा शतरूपा अनेक रूप धारण करने वाली हुई। फिर शतरूपा ने दश सहस्त्र वर्ष पर्यन्त अत्यन्त कठिन तपस्या कर उद्दीप्त तपस्या वाले अपने पति के पास गई। हे तात ! उस पुरुष को स्वायंभुव मनु कहते हैं और उनके एकहत्तर युगों के काल का एक मन्वन्तर कहलाता है। वैराज नामक पुरुष द्वारा शतरूपा ने वीर नामक पुरुष को उत्पन्न किया तथा वीर से काम्या ने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। प्रजापति कर्दम की पुत्री काम्या थी, इस काम्या के चार पुत्र हुए जिनके नाम सम्राट्, विराट्, कुक्षि एवं प्रभु हैं। इसने प्रियव्रत नामक पति से इन पुत्रों को उत्पन्न किया था तथा प्रजापति अत्रि ने उत्तानपाद को पुत्र रूप से ग्रहण किया और उत्तानपाद से सुनृता ने चार पुत्र उत्पन्न किये। सौभाग्यवती सुनृता धर्म की कन्या थी। यह अश्वमेध यज्ञ द्वारा उत्पन्न हुई थी। आगे चलकर यही ध्रुव की माता हुई। उत्तानपाद ने इस सुनृता से ध्रुव, कीर्तिमान्, शिव एवं अयस्पति इन चार पुत्रों को उत्पन्न किया। हे भारत ! इसी ध्रुव ने दिव्य तीन सहस्त्र वर्ष (देवताओं के वर्ष से) विष्णु की तपस्या की ।।१-१०।।

तब प्रजापति ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर सप्तर्षियों के भी ऊपर उपमा रहित अचल स्थान दिया। इस ध्रुव के इस बड़े ऐश्वर्य तथा महिमा को देखकर देवता तथा राक्षसों के आचार्य शुक्राचार्य ने यह श्लोक कहा। अहो! इसकी तपस्या का कैसा प्रभाव है इसके बल और पराक्रम एवं शास्त्रज्ञता को धन्य है कि सप्तर्षियों ने भी इसको अपने ऊपर स्थान दिया। शम्भु नामक स्त्री से ध्रुव ने शिलष्टि तथा भव्य नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। शिलष्टि ने सुच्छामा नाम की स्त्री से रिपु, रिपुञ्जय, पुण्य, वृकल तथा वृकतेज नाम वाले पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया। रिपु ने बृहती नामक स्त्री से पूर्ण तेज वाले चाक्षुष नामक पुत्र को उत्पन्न

किया। चाक्षुष ने बीरण की कन्या पुष्करणी से मनु को उत्पन्न किया। मनु ने महात्मा अरण्य नामक प्रजापति की कन्या नड्वला से महाबली दश पुत्रों को उत्पन्न किया। ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, कवि, अग्निष्टुत, अतिरात्र तथा सुद्युम्न ये नौ एवं दसवें अभिमन्यु ये नड्वला के पुत्र हैं। ऊरु ने अग्नि की पुत्री से महाप्रभा वाले अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा एवं गय नाम के छः पुत्रों को उत्पन्न किया। अङ्ग ने सुनीथा नामक स्त्री से बेन नामक एक ही पुत्र पुत्र को उत्पन्न किया, देवताओं से द्रोह करने के कारण मुनियों ने बेन पर बड़ा क्रोध किया।।११-२०।।

ऋषियों ने पुत्र के लिए बेन का दाहिना हाथ मथा इस प्रकार मन्थन करने पर उससे पृथु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। उस पृथु को देखकर मुनियों ने कहा कि इससे प्रजा बड़ी प्रसन्न रहेगी तथा यह बड़ा ही तेजस्वी एवं यशस्वी होगा। क्षत्रियों का पूर्वज वह बेन का पुत्र पृथु कवच, धनुष और खड्ग धारण कर अपने तेज से शत्रुओं को जलाता हुआ पृथ्वी का पालन करने लगा। वह पृथ्वीपति राजा पृथु राजसूय यज्ञ में अभिषिक्त होने वाले राजाओं में प्रथम था और उसी के द्वारा सूत तथा मागध जातियों की उत्पत्ति हुई (पृथु द्वारा किये गये यज्ञ की अग्नि से सूत, मागध उत्पन्न हुए)। हे राजन् ! प्रजा को वृत्ति (जीविका) देने की इच्छा से राजा पृथु ने धान्यमयी पृथ्वी से धान्य रूप दुग्ध को दूहा। वह राजा पृथु देवता, ऋषि, पितर, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष, लता एवं पर्वतों को साथ रखकर इस पृथ्वी को दूहा। पृथ्वी ने भी इस प्रकार दूहे जाने पर उनके पात्रों के योग्य उनकी इच्छा के अनुसार दुग्ध (उनके योग्य अन्नादि) दिया इससे वे अपने को जीवित समझते थे। राजा पृथु को दो पुत्र हुए जिनके नाम अन्तर्द्धि और पालित थे। अन्तर्द्धि ने शिखण्डिनी नाम की स्त्री से हविर्धान नामक पुत्र उत्पन्न किया। हविर्धान ने अग्नि की पुत्री धिषणा से प्राचीनबर्हि, शुक्ल, गय, कृष्ण, व्रज एवं अजिन नाम के छः पुत्रों को उत्पन्न किया। भगवान् प्राचीनबर्हि अपने पिता हविर्धान से भी बड़े हुए। हे महाराज! उन्होंने प्रजा को बहुत बढ़ाया।।२१-३०।।

हे जनमेजय ! उनके ही राज्यकाल से कुश पूर्व की ओर अग्रभाग

करके रखे जाते हैं। पृथ्वी पर सब जगह ऐसा ही नियम वर्ता जाता है इसलिये वे प्राचीनबर्हि भगवान् कहलाते हैं। उन प्राचीनबर्हि भगवान् ने बहुत बड़ी तपस्या करने के बाद समुद्र की कन्या सवर्णा से पाणि-ग्रहण किया था। वह समुद्र-पुत्री सवर्णा ने प्राचीनबर्हि द्वारा दस पुत्रों को उत्पन्न किया था उन सभी पुत्रों का प्रचेता नाम हुआ तथा वे सभी धनुर्वेद-पारंगत थे। समुद्र में शयन करने वाले वे सभी पुत्र एक ही तरह धर्म का आचरण करने वाले हुए दस हजार वर्ष कठिन तप किये। जिस समय ये प्रचेता तप कर रहे थे तो उस समय प्रजाओं का रक्षक कोई नहीं था, इस कारण वृक्षों ने उत्पन्न होकर आकाश को घेर लिया इससे प्रजा नष्ट होने लगी। आकाश वृक्षों से घिर जाने के कारण पवन नहीं चल सकता था अतः प्रजा दस हजार वर्ष चेष्टा से रहित हो गई। अपने ज्ञान की दृष्टि से जब प्रचेताओं ने जाना कि प्रजा निश्चेष्ट हो गई है तो क्रोधित हो अपने मुख से वायु एवं अग्नि को प्रकट किया। वायु ने अपने वेग से वृक्षों को उखाड़ फेंका पश्चात् वे पेड़ सूख गये फिर तो अग्नि ने उनको भस्म करना प्रारम्भ कर दिया अतः वृक्षों को त्रास होने लगा। इस तरह नष्ट होकर जब थोड़े वृक्ष रह गये तो वृक्षों के राजा सोम प्रचेताओं के समीप जाकर बोले। कि हे प्राचीनबर्हि के समर्थ पुत्र प्रचेताओं, आप लोग क्रोध को त्याग दो। आप लोगों ने पृथ्वी को वृक्षों से शून्य कर दिया अतः वायु एवं अग्नि को शान्त करें।।३१-४०।।

और वृक्षों की यह रत्नस्वरूपा कन्या वरवर्णिनी है, इसे भविष्य का ज्ञान कर मैंने इसे गर्भ में धारण किया था। यह मारिषा नाम की वृक्षों द्वारा निर्मित कन्या तुम्हारी पत्नी हो तथा हे महाभागो! यह सोम के वंश को बढ़ानेवाली हो। हमारे तथा तुम्हारे तपस्या के आधे-आधे भाग से दक्ष प्रजापति नाम का पुत्र उत्पन्न होगा। और तुम्हारे तप के तेज से भस्म हुई प्रजा को अग्नि की भाँति तेजस्वी होकर बढ़ावेगा। तब सोम के इस प्रकार के वचनों से प्रचेताओं ने अपने क्रोध को शान्त कर विवाह विधि के अनुसार मारिषा से विवाह किया। हे भारत! फिर प्रचेताओं ने मारिषा में मानस गर्भ स्थापित किया। पश्चात् सोम एवं प्रचेताओं के तप के आधे-आधे भाग से दक्ष

प्रजापति की उत्पत्ति हुई। फिर तो दक्ष प्रजापति ने सोम के वंश को बढ़ाने के लिये चर-अचर दो तथा चार पैरों वाली प्रजाओं को उत्पन्न किया पश्चात् इन प्रजाओं को देखकर उन्होंने मन से स्त्रियों की रचना की। उन कन्याओं में से दस धर्म को एवं तेरह कश्यप को दे दीं शेष नक्षत्र संज्ञक कन्याओं को राजा सोम को दे दीं। उन कन्याओं से देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, गौ, नाग, खग आदि अनेक प्रकार की जातियाँ उत्पन्न हुईं। हे राजेन्द्र! इस प्रकार मैथुन (स्त्री-पुरुष संसर्ग) से प्रजा उत्पन्न होने लगी। इससे पहले की सृष्टि मन से, संकल्प से तथा दर्श एवं स्पर्श से हुई है।।४१-५०।।

जनमेजयजी बोले–आपने पहले दक्ष प्रजापति की उत्पत्ति कही फिर देव, दानव, गन्धर्व, सर्प और राक्षसों की उत्पत्ति कही। दक्ष की उत्पत्ति ब्रह्मा के दाहिने अँगूठे से तथा दक्ष की पत्नी की उत्पत्ति ब्रह्मा के बायें अँगूठे से हुई ऐसा आपने पहले कहकर फिर प्रचेताओं से दक्ष की उत्पत्ति कही यह मुझे संशय है कि सोम के दौहित्र (दुहिताः कन्या के पुत्र दक्ष) कैसे सोम के श्वसुर बन गये? अतः इसे आप दूर करें। वैशम्पायनजी बोले–हे राजन! प्राणियों कि; उत्पत्ति तथा निरोध दो प्रकारों से सृष्टि होती है और ये दोनों प्रकार नित्य (स्वाभाविक) हैं। पशु आदि योनियों में सगोत्र तथा सपिण्ड का कोई विचार नहीं है और मनुष्यों में सपिण्ड, सगोत्र में वैवाहिक सम्बन्ध नहीं होता। इस प्रकार पशुओं में स्वाभाविक उत्पत्ति का नियम है तथा मनुष्यों में निरोधोत्पत्ति का नियम है और देवताओं में सगोत्र सपिण्ड का नियम अनित्य है। इस नियम के उल्लंघन में विश्व की सृष्टि के कारण कोई दोष नहीं है अतः देवताओं के विषय में ऋषि, मुनि एवं पण्डितों को मोह नहीं करना चाहिए (प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यधावत् इत्यादि श्रुतिदर्शनात्)। प्रत्येक कल्प में दक्षादि राजाओं की उत्पत्ति हुई है। जिस तरह कल्पों में भेद है उसी प्रकार दक्षादि की उत्पत्तियों में भी भेद है; ब्रह्मा के अँगूठे से उत्पन्न दूसरे कल्प के दक्ष प्रजापति हैं तथा प्रचेताओं से दूसरे दक्ष हैं ऐसा आप समझें और पहले अवस्था से बड़े-छोटे नहीं माने जाते थे बल्कि तपस्या तथा प्रभाव से बड़े माने जाते थे। इस दक्ष प्रजापति की सृष्टि को चर-अचर सहित जो पुरुष जानेगा वह पुत्रवान्

होगा तथा संसार की विपत्तियों को पार कर स्वर्गलोक में आनन्द करेगा।।५१-५७।।

इति श्री महाभारतेऽखिलेषु हरिवंश पर्वणि प्रजासर्गे दक्षोत्पत्ति कथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।



अथ तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

जनमेजयजी बोले–हे वैशम्पायनजी! देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प तथा राक्षसों की उत्पत्ति विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। वैशम्पायनजी बोले–हे राजन! प्रजा की सृष्टि करो। इस प्रकार आज्ञा पाकर दक्ष ने जिस प्रकार प्राणियों की रचना की उसे सुनिये। पहले दक्ष ने ऋषि, देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच, पशु, पक्षी एवं सर्पों की मानसिक सृष्टि की। परन्तु बुद्धिमान् महादेवजी के (पूर्व वैर के कारण) अनिष्ट चिन्तन (दक्ष की मानसिक सृष्टि न बढ़े) के कारण जब प्रजा की अभिवृद्धि न हुई तब दक्ष प्रजापति ने मैथुन धर्म के द्वारा अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से प्रजापति वीरण की कन्या आसिक्नी से विवाह किया, जो कि लोगों को धारण करनेवाली तथा सुन्दर तपस्या से युक्त तथा महती थी। दक्ष प्रजापति ने असिक्नी में पाँच हजार पुत्रों को उत्पन्न किया। प्रजा को बढ़ानेवाले इन महाभागों को देखकर प्रिय संवादी देवर्षि नारद उनके नाश तथा अपने शाप के लिए बोले। जिस नारद को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया उसी नारद को कश्यप मुनि ने दक्ष की पुत्री से उत्पन्न किया। पहले नारद ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न किये गये फिर पश्चात् देवर्षि सत्तम कश्यपजी पुनः ब्रह्मा की तरह वीरण की कन्या असिक्नी में नारदजी को उत्पन्न किये।।१-१०।।

उन नारदजी ने दक्ष के हर्यश्व नामक पुत्रों को देहाभिमानी होने के कारण नष्ट कर डाला। जब अमित पराक्रमी दक्ष नारद को नष्ट करने के लिए उद्यत हुए तब ब्रह्मा ने महर्षियों को आगे कर याचना की। पश्चात् दक्ष ने ब्रह्मा के साथ अभिसन्धि की अर्थात् जैसे आपके पुत्र सप्तर्षि हैं वैसे आपके ही पुत्र

नारद भी कहलायें अतः मैं अपनी कन्या को देता हूँ इससे आप नारद को उत्पन्न करें ऐसा कहकर दक्ष ने ब्रह्मा के लिए अपनी कन्या दे दी। उसी कन्या से दक्ष के शाप के भय से ब्रह्मा द्वारा नारदजी उत्पन्न हुए। जनमेजयजी बोले–हे वैशम्पायनजी! नारदजी ने किस प्रकार दक्ष प्रजापतियों के पुत्रों का विनाश किया? यह विस्तार से मुझे सुनने की इच्छा है। वैशम्पायनजी बोले–राजन्! जब दक्ष पुत्र हर्यश्व प्रजा की वृद्धि की इच्छा से आये तो नारदजी हर्यश्वों से बोले–हे दक्ष के पुत्रो! तुमको भुव के प्रमाण का ज्ञान नहीं है अर्थात् भू = प्रपंच, के साधक प्रमाण = जिसके बल से प्रपंच की सिद्धि होती है = संसार की उत्पत्ति होती है उससे चिदात्मा, ऊपर-नीचे सब जगह व्याप्त ईश्वर का ज्ञान नहीं है। दूसरा अर्थ यह कि तुम लोगों को पृथ्वी के प्रमाण का ज्ञान नहीं है कि यह पृथ्वी कितनी लम्बी-चौड़ी किस आकार प्रकार की है और इसके ऊपर-नीचे क्या है। तो तुम लोग किस प्रकार सृष्टि करोगे? तुम लोगों को सृष्टि करने का अधिकार नहीं है। नारद के इन वचनों को सुनकर वे दक्ष के पुत्र प्रमाण को देखने की इच्छा से इधर-उधर चले गये। आत्मदर्शन के लिए विभिन्न दिशाओं में चले गये और समाधि के बल से भोजनादि से परे होकर शुद्ध ब्रह्म को प्राप्त होकर पराभव एकत्व को प्राप्त होकर आज तक वे वैसे ही नहीं लौटे जैसे समुद्र से नदियाँ वापिस नहीं लौटतीं। हर्यश्वों (दक्ष पुत्रों) के नष्ट हो जाने पर दक्ष ने फिर वीरण की कन्या असिक्नी से एक हजार पुत्रों को उत्पन्न किया जिन सबका नाम शबलाश्व पड़ा।।११-२०।।

जब शबलाश्व प्रजा की सृष्टि की इच्छा से चले तो फिर नारदजी ने पूर्वोक्त वचनों को कह सृष्टि करने से वारण किया। ये शबलाश्व नारद के वचनों को सुनकर आपस में कहने लगे कि महामुनि ठीक कह रहे हैं, हम लोगों को भी अपने भाइयों के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये इसमें जरा भी संशय नहीं। हम लोग पृथ्वी के प्रमाण का ज्ञान कर अर्थात् भू-प्रपंच के साधक प्रमाण अर्थात् संसार के कारण स्वरूप उस चिदात्मा (ईश्वर) का ज्ञानकर स्वस्थ तथा एकाग्र मन हो पूर्व के क्रमानुसार सृष्टि करेंगे। ऐसा विचार वे दक्ष पुत्र शबलाश्व भी हर्यश्वों की भाँति इधर-उधर चले गये और

आज तक वैसे ही नहीं लौटे जैसे समुद्र से नदियाँ नहीं लौटतीं। तब शबलाश्वों के भी नष्ट हो जाने पर दक्ष क्रोधित हो बोले कि नारद नष्ट होकर पुनः गर्भ में वास करे। हे राजन्! तब से भाई को ढूँढ़ने के लिये जानेवाले भाई नष्ट हो जाते हैं अतः विद्वानों को ऐसा कार्य न करना चाहिए। दक्ष ने अपने पुत्र शबलाश्वों को नष्ट हुआ जानकर वीरणी से फिर साठ कन्यायें उत्पन्न किया ऐसा हमने सुना है। उनमें से कुछ को कश्यप ऋषि ने ग्रहण किया, कुछ को कौरव्य, कुछ को अन्य महर्षियों ने ग्रहण किया। दक्ष ने दस कन्यायें धर्म को दीं तेरह कश्यप को, सत्ताइस सोम को, चार अरिष्टनेमि को, दो भृगु पुत्र को, दो आंगिरस को तथा दो कृशाश्व को दीं अब उनके नाम सुनो।।२१-३०।।

अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या तथा विश्वा ये धर्म की पत्नी थीं। अब इनके पुत्रों के नाम सुनो। विश्वा से विश्वदेव, साध्या से साध्य, मरुत्वती से मरुत्वान, वसु से वसु, भानु से भानु, मुहूर्ता से मुहूर्तज, लम्बा से घोष, यामी से नागवीथि, अरुन्धती से पृथ्वी के सब विषय, संकल्पा से सर्वात्मा तथा संकल्प उत्पन्न हुए। दक्ष ने जो कन्यायें राजा सोम को दीं वे नक्षत्र संज्ञक अश्विनी, भरणी इत्यादिक ज्योतिष शास्त्र प्रसिद्ध कन्यायें हैं। अब मैं तेजस्वी विख्यात आठ वसु देवता जो कहे गये हैं उनके नाम तथा उनके वंश-विस्तार का वर्णन करता हूँ। आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, नल, प्रत्यूष तथा प्रभास ये आठ वसुओं के नाम हैं। आपके पुत्र वैतण्ड्य, श्रम, शान्त और मुनि हैं। ध्रुव के पुत्र लोक को वश में रखनेवाले भगवान् काल हुए। सोम के पुत्र भगवान् वर्च्चा हैं जिनके पूजन से पुरुष तेजस्वी होता है। धर के पुत्र हुत, हव्यवह हैं। धर की दूसरी स्त्री मनोहरा से शिशिर, प्राण तथा रमण हुए।।३१-४०।।

अनिल की पत्नी शिवा से मनोजव तथा अविज्ञातगति दो पुत्र उत्पन्न हुए। अग्नि के शोभायुक्त कुमार और शरस्तम्ब पुत्र हुए तथा इनके छोटे भाई शाख, विशाख तथा नैगमेय हुए। कृत्तिका के पुत्र होने से कार्त्तिकेय नाम पड़ा। अग्नि ने अपने तेज के पाद (चौथाई अंश) से स्कन्ध और सनत्कुमार को उत्पन्न किया। प्रत्यूष के नय ऋष्टि नामक पुत्र तथा देवल नाम की कन्या

हुई तथा देवल के दो पुत्र हुए दोनों ही बड़े क्षमाशील तथा तपस्वी हुए। बृहस्पति की बहिन ब्रह्मचारिणी स्त्रियों में श्रेष्ठ स्त्रत्री हुई, योग सिद्ध एवं असक्त हो इसने सम्पूर्ण जगत में विचरण किया। आठवें वसु प्रभास की यह ब्रह्मचारिणी पत्नी थी तथा इससे प्रजापति विश्वकर्मा की उत्पत्ति हुई। ये हजारों प्रकार की कलाओं के तथा सब प्रकार के आभूषणों के निर्माणकर्ता और देवताओं के बढ़ई हुए। देवताओं के सभी विमानों की रचना इन्होंने ही की, इनके शिल्प कला के द्वारा मनुष्यों की भी जीविका चलती है। दक्ष द्वारा कश्यप को दी गयी तेरह कन्याओं में सुरभि के सन्तानों का वर्णन करता हूँ। तप से प्रभावित शंकरजी के प्रसाद से सुरभि नाम की स्त्री ने कश्यप ऋषि से ग्यारह रुद्रों की उत्पत्ति की। हे भारत! जिनके नाम अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा, रुद्र, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु तथा कदर्पी हैं। त्वष्टा के पुत्र महा यशस्वी श्रीमान् विश्वरूप हुए। मृगव्याध, सर्प और कपाली ये तीन भुवन के रुद्र कहलाते हैं।।४१-५२।।

हे भारत श्रेष्ठ! महापराक्रमी इन रुद्रों की संख्या एक सौ है, ऐसा पुराणों में वर्णित है कि जिससे यह सारा चराचर संसार व्याप्त है। हे भरत शार्दूल! अब कश्यप की पत्नियों के नाम सुनो–अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खशा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू तथा मुनि ये ही तेरह कन्यायें दक्ष द्वारा कश्यप को दी गई थीं। हे राजन्! अब उनके पुत्रों के नाम सुनो। चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त काल में तुषित नाम के बारह देव जो देवताओं में श्रेष्ठ थे, उन्होंने सबके हित के लिए आपस में कहा कि शीघ्र आओ हम अदिति में प्रवेश कर वैवस्वत मन्वन्तर में अदिति से उत्पन्न होंगे इससे हम लोगों का अत्यन्त कल्याण होगा। वैशम्पायनजी बोले–उन बारहों देवताओं ने चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त समय में ऐसा कहकर दक्ष की कन्या से कश्यप द्वारा उत्पन्न हुए ये ही बारह सूर्य हैं जिनके नाम विष्णु, इन्द्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वा, सविता, मित्र, वरुण, अंश तथा भग हैं ये ही अति तेजस्वी बारह सूर्य कहे गये हैं।।५३-६१।।

पहले चाक्षुष मन्वन्तर में जो तुषित नाम के बारह देवता थे वे ही

वैवस्वत मन्वन्तर में बारह सूर्य हुए। सत्ताइस सुव्रता पत्नियाँ जो सोम की कही गई हैं उनसे अति तेजस्वी सन्तानें हुईं। प्रजापति एवं विद्वान् अरिष्टनेमि की चार स्त्रियों से सोलह पुत्र हुए जो विद्युत के समान अति तेजस्वी थे। राजर्षि कृशश्व के दो पुत्र महर्षियों द्वारा सम्मानित प्रत्यङ्गिरसिज तथा दैवप्रहरण उत्पन्न हुए। चार युग अर्थात् एक कल्प (चार युग का एक कल्प होता है) बीत जाने पर जब दूसरा कल्प आता है तो ये तैंतीस देवता कामज अर्थात् मैथुनी सृष्टि द्वारा एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। इन कामजों की उत्पत्ति तथा निरोध वेदों में भी वर्णित है। जिस प्रकार आकाश में सूर्य नियमपूर्वक नित्य उदय और अस्त होता है उसी प्रकार ये देवता भी प्रत्येक कल्प के पहले युग में उत्पन्न होते हैं। कश्यप मुनि द्वारा दिति से हिरण्यकशिपु तथा बली हिरण्याक्ष उत्पन्न हुए ऐसा हमने सुना है और सिंहिका नाम की एक पुत्री भी उत्पन्न हुई जिसका विवाह विप्रचित्ति से हुआ तथा उससे सैंहिकेय नामक पुत्र हुआ।।६२-७०।।

हे महाबाहो! उसके अगणित पुत्र-पौत्र हुए, अब हिरण्यकशिपु की सन्तानों की उत्पत्ति सुनो। हिरण्यकशिपु के चार पुत्र हुए जिनके नाम अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद और संह्लाद हैं। ह्लाद का पुत्र ह्लद, संह्लाद के पुत्र सुन्द एवं निसुन्द हुए। अनुह्लाद के पुत्र आयु और शिवि हुए। प्रह्लाद के पुत्र विरोचन और विरोचन के पुत्र बलि हुए। हे राजन्! बलि के सौ पुत्र बाण, धृतराष्ट्र, इन्द्रतापन, कुम्भनाद, गर्दभाक्ष, कुक्षि आदि हुए। बाण महाबलवान् तथा शंकरजी का भक्त हुआ। बाणासुर ने शंकर को प्रसन्न कर यह वर प्राप्त किया था कि हम आपके समीप रहकर आनन्द करें। हे राजन्! बाणासुर की लोहिती नामक स्त्री से इन्द्रदमन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसके लाखों की संख्या में असुर गण थे। हिरण्याक्ष को बड़े ही विद्वान् पाँच पुत्र हुए जिनके नाम काल- नाभ, महानाभ, भूतसंतापन, शकुनि एवं झर्झर हैं। दनु को महाबलवान् एवं पराक्रमी सैकड़ों पुत्र हुए वे तपस्वी थे उनमें प्रधानों के नाम सुनो।।७१-८०।।

द्विमूर्धा, शकुनि, विभु, शंकुशिरा, शंकुकर्ण, विराध, गवेष्ठी, दुन्दुभि, अयोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मरिचि, भगवान् इरा, वृक,

विक्षोभण, केतु, केतुवीर्य, शतहृद, इन्द्रजित, सत्यजित, वज्रनाभ, परीक्रमशाली कालनाभ, महाबाहु, एकचक्र, महाबल, तारक, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महासुर, स्वर्भानु, वृषपर्वा, तुहुण्ड, सूक्ष्म, आर्तचन्द्र, उपनाम, महागिरि, असिलोमा, केशी, शठ, बालक, मद, गगन, मूर्धा, महासुर, कुम्भनात, प्रमद, मय, कुपथ, हयग्रीव, वैसृप, सविरूपाक्ष, सुपथ, हर, अहर, हिरण्यकशिपु, शतमायु, शम्बर, शरभ, शलभ, वीर्यवान, विप्रचित्ति इन सबों में विप्रचित्ति सबसे प्रधान था। हे राजन्! इनके असंख्य पुत्र-पौत्रों की गिनती कठिन है। स्वर्भानु को प्रभा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। पुलोमा को उपदानवी, हयशिरा और वृषपर्वा ये तीन सन्तानें हुईं, इसमें वृषपर्वा को शर्मिष्ठा नाम की कन्या उत्पन्न हुई।।८१-९०।।

वैश्वानर को पुलोमा और कालिका नाम की दो पुत्रियाँ हुईं। इनका विवाह मरिचि से हुआ था। महातपस्वी मरिचि ने चौदह सौ पुत्रों को उत्पन्न किया जो दानवों को बड़े ही आनन्ददायक हुए तथा ये हिरण्यपुर निवासी हुए। इनमें पौलोम और कालिकेय को ब्रह्माजी ने वर देकर देवताओं से अजेय कर दिया पश्चात् उनको सव्यसाची अर्जुन ने संग्राम में मार गिराया। प्रभा से नहुष नाम का पुत्र एवं शची से सृंजय नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ और शर्मिष्ठा से पुरु नामका पुत्र हुआ। उपदानवी से दुष्यन्त नाम का पुत्र हुआ। प्रियचित्ति द्वारा सिंहिका से महाबली तथा विकट दानवों की उत्पत्ति हुई। दैत्यों तथा दानवों के सम्पर्क से अनेक पराक्रमी महाभटों की उत्पत्ति हुई, जिनमें तेरह प्रमुख हैं। बलशाली व्यंश, शल्य, महाभट, वातापि, नमुचि, इल्वल, खसृम, आंजिक, नरक, कालनाभ, शुक, पोतरण तथा बलवान् वज्रनाभ।।९१-१००।।

इनमें राहु सबसे विख्यात है तथा सूर्य को कष्ट देनेवाला है। सुन्द द्वारा ताटका से मरिचि नाम का पुत्र हुआ और शिवमाण एवं बली, सुर, कल्प भी उत्पन्न हुए। ये दनुवंश की परम्परा को बढ़ाने वाले दानवों में श्रेष्ठ थे। इनके सैकड़ों-हजारों पुत्र-पौत्रादिक हुए। संह्लाद दैत्य के वंश में सुन्दर तपस्वी उदार निवात कवच हुए। उनके तीन करोड़ पुत्र दुर्दमनीय उत्पन्न हुए जो महाबली अर्जुन द्वारा मार डाले गये। इनमें छः पुत्रियाँ थीं जिनके नाम ताम्रा,

काकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी और शुचि हैं। काकी ने कौओं को उत्पन्न किया और उलुकी ने उल्लुओं को उत्पन्न किया तथा श्येनी ने श्येनों (बाजों) को उत्पन्न किया। भासी ने भास पक्षी एवं गिद्ध व गिद्धिनियों को उत्पन्न किया। हे परन्तप! शुचि से सम्पूर्ण जलचर उत्पन्न हुए और सुग्रीवी से अश्व, ऊँट एवं गर्दभादिकों की उत्पत्ति हुई, यह ताम्रा वंश कहलाता है। विनता से अरुण और गरुड़ दो पुत्र हुए। गरुड़ निज कर्मों द्वारा पक्षियों में सबसे बड़े हुए। आकाश में विचरण करनेवाले थे। अमित तेजस्वी तथा अनेक शिरों वाले सुरसा से हजारों पुत्र उत्पन्न हुए।।१०१-११०।।

और सुपर्ण के वश रहनेवाले थे। अमित तेजस्वी एवं बली अनेक मस्तकवाले हजारों नाग (सर्प जाति) कद्रू से उत्पन्न किये गये। उनमें प्रधानों के नाम सुनो-शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, शंख, कर्कोटक, धनंजय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदंष्ट्र, दुर्मुख, सुमुख, शंख, शंखपाल, कपिल, वामन, नहुष, शंखरोमा तथा मणि आदि हैं। इनके पुत्र-पौत्रों को गरुड़ ने मार दिये। उन सब सर्पों की सन्तानों में से क्रोधवश नामक चौदह सहस्र सर्पों का एक गण शेष रह गया जो कि वायु का भक्षण कर जीवित है। स्थल से उत्पन्न पक्षी आदि और जल से उत्पन्न मत्स्यादिक जीव पृथ्वी के पुत्र कहलाते हैं। गौ और भैंसों को सुरभि ने उत्पन्न किया। इरा ने वृक्ष, लता, वल्ली और सम्पूर्ण तृण जातियों (सब प्रकार की घासों) को उत्पन्न किया और खशा ने यक्ष, राक्षस, मुनि तथा अप्सराओं को उत्पन्न किया। अरिष्टा ने अत्यन्त तेजस्वी महाबलवान् गन्धर्वों को उत्पन्न किया। ये स्थावर-जंगम जीव कश्यप की सन्तानें कही गयी हैं। इनके पुत्र-पौत्र सैकड़ों-हजारों हैं। यह स्वरोचिष मन्वन्तर की सृष्टि कही गई है।।१११-१२०।।

यह प्रजाओं की सृष्टि वैवस्वत मन्वन्तर में वरुण द्वारा विस्तारित यज्ञ में आहुति प्रदान करते हुए ब्रह्मा के समक्ष कहा गया है। पहले जिन सप्तर्षियों की मानसिक सृष्टि द्वारा उत्पत्ति हुई थी उन सप्तर्षियों को ब्रह्मा ने अपना पुत्र माना। हे भारत! इसके पश्चात् देवता और दानवों में विरोध हो गया तथा देवताओं

द्वारा दानवों का नाश होने लगा तब दिति ने अपने पुत्रों को नष्ट होते देख कश्यप को अपनी सेवा से प्रसन्न किया। सम्यक् प्रकार से दिति द्वारा आराधित कश्यप प्रसन्न हो दिति से कहे कि वर माँगो तब दिति ने वर माँगा कि इन्द्र के वध के लिये समर्थ हमें अमित तेजस्वी पुत्र दीजिये। ऐसा सुन महातपस्वी कश्यप ने वर दे दिया। वर देकर मरिचि पुत्र कश्यप ने स्थिर चित्त होकर कहा कि यदि इस प्रकार गर्भ धारण करोगी तो वैसा ही इससे पुत्र उत्पन्न होगा। यदि तुम पवित्रता में तत्पर हो व्रत पूर्वक सौ वर्ष तक गर्भ धारण किये रहोगी तो इससे इन्द्र को मारने वाला पुत्र उत्पन्न होगा। हे राजन्! इस प्रकार से वह तपस्विनी दिति ने पवित्र होकर गर्भ धारण किया। अमित पराक्रमी देवताओं को जलाते हुए कश्यप ने दिति में गर्भ धारण कराकर चले गये। अपने तेज को एकत्र कर देवताओं द्वारा अवध्य एवं कठिन गर्भ धारण करा कर प्रशंसित तपस्वी कश्यप तपस्या के लिये पर्वत पर चले गये।।१-१३०।।

पश्चात् इन्द्र दिति के दोषों को ढूँढ़ने में तत्पर हुए और सौ वर्ष के पहले ही अच्युत (इन्द्र) ने दिति के दोष को देखा कि बिना पैर धोये ही दिति शयन करने के लिये चली गई फिर तो इन्द्र दिति की कुक्षि (कोख) में प्रवेश कर दिति को शयन कराये पश्चात् (सो जाने पर) इन्द्र ने अपने वज्र द्वारा उस गर्भ के सात खण्ड कर दिये फिर वह वज्र द्वारा खण्डित होने पर गर्भ रुदन करने लगा। तुम मत रोओ ऐसा इन्द्र ने बार-बार समझाया पर वह न माना और सात गर्भ के रूप में परिणित हो गया तब शत्रुकर्षण इन्द्र रुष्ट होकर उन एक-एक के फिर वज्र द्वारा सात-सात खण्ड कर दिये तब उन्चास हो गये फिर हे भरतर्षभ! ये ही उन्चासों वायु देवता हुए।। इन्द्र जिस प्रकार कहे उसी प्रकार ये उन्चास मरुत हुए और ये इन्द्र की सहायता करने वाले हुए। हे जनमेजय! ये सभी प्राणी बढ़ कर देव गणों को सुशोभित करने लगे। फिर भगवान् विष्णु ने प्रत्येक दल में एक-एक प्रजापति बनाये और पृथु को राजा बनाये फिर क्रमशः अनेक राजाओं ने राज्य किया। वे हरि, पुराण, पुरुष, वीर, श्रीकृष्ण, जिष्णु (विष्णु), प्रजापति, मेघ तथा सूर्य हैं। उन्हीं का निर्माण किया हुआ यह दृष्टिगोचर संसार है। इन प्राणियों की सृष्टि को सम्यक् प्रकार

जानने वाले तथा मरुतों के जन्म की कथा को पढ़ने सुनने वाले पुरुष को आवृत्ति (जन्म-मरण) का भय नहीं होता फिर परलोक का भय कैसा।।१३१-१४०।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरिवंशे हरि पर्वणि तृतीयोऽध्याय:।।३।।



अथ चतुर्थोऽध्याय:।।४।।

वैशम्पायनजी बोले–मनुष्यों में वेनु के पुत्र पृथु को ब्रह्मा ने राजा बनाया पश्चात् क्रम से वे राज्य देने लगे। द्विज (ब्राह्मण) लता, नक्षत्र, ग्रह, यज्ञ, तप के राज्य में सोम (चन्द्रमा) को राज्याभिषिक्त किया, बारह सूर्यों में विष्णु नामक सूर्य को राजा बनाया, अष्ट वसुओं में अग्नि नामक वसु को राजा बनाया, प्रजापतियों में दक्ष प्रजापतियों को राजा बनाया, उन्चास मरुतों में वासव नामक मरुत को राजा बनाया, दैत्य और दानवों में अमित पराक्रमी प्रह्लाद को राजा बनाया। पितरों के राज्य में सूर्यपुत्र यम को राजा बनाया, षोडश, मातृका, व्रत, मन्त्र, गौ, यक्ष, राक्षस, पार्थिव (पृथ्वी से उत्पन्न), साध्य तथा रुद्रों में वृषभध्वज नारायण (शंकर) को राजा बनाया। दानवों में विप्रचित्ति को राजा बनाने का आदेश दिया तथा भूत-पिशाचों का राजा शूलपाणि भगवान् शिव को बनाया। पर्वतों में हिमालय को तथा नदियों में सागर को राजा बनाया एवं गन्ध वाले पदार्थ, मरुत, बिना शरीर वाले भूत, शब्द तथा आकाश का राजा वायु को बनाया। गन्धर्वों में चित्ररथ को, नागों में वासुकि को, सर्पों में तक्षक को राजा बनाया।।१-१०।।

हाथियों में ऐरावत को, अश्वों में उच्चै:श्रवा को एवं पक्षियों में गरुड़ को राजा बनाने का आदेश दिया। जङ्गली गृगों (जीवों = जानवरों) में सिंह को, गौवों में साँड़ को और वनस्पतियों में पीपल को राजा बनाने का आदेश दिया। सागर, नदी, वर्षा और आदित्यों का राजा मेघ को बनाया। फण वाले सर्पों का राजा शेष नाग को, बिना विष वाले सर्पों का राजा तक्षक को बनाया। गन्धर्व तथा अप्सराओं का राजा कामदेव को बनाया तथ ऋतु, मास,

दिन, दोनों पक्ष, मुहूर्त, तिथि, पर्व, काल-काष्ठ के प्रमाण की गति, दोनों अयन, गणित और योगों का अधिपति सम्वत्सर को किया। इस प्रकार राज्यों का विभाग कर ब्रह्मा ने पृथक-पृथक पदार्थों के राजा पृथक्-पृथक् बनाये। पश्चात् दिशाओं में दिग्पालों को नियुक्त किया। पूर्व दिशा में प्रजापति विराज के पुत्र सुधन्वा को, दक्षिण दिशा में प्रजापति कर्दम के पुत्र शङ्खपद को, पश्चिम दिशा में रजस के पुत्र केतुमान को तथा उत्तर दिशा में प्रजापति पर्यन्य के पुत्र दुर्जेय हिरण्यरोमा को दिग्पाल के पद पर अभिषिक्त किया। आज भी पर्वतों सहित सात द्वीपों वाली पृथ्वी पृथक्-पृथक् प्रदेश के रूप में धर्मपूर्वक अभिरक्षित है। हे राजन्! वेद विधि से किये गये राजसूय यज्ञ में इन राजाओं द्वारा पृथु, राजाओं के भी राजा बनाये गये।।११-२३।।

इसके बाद चाक्षुष मन्वन्तर बीत जाने पर ब्रह्मा ने वैवस्वत मनु को राज्य दे दिया, अब मैं उन वैवस्वत मनु के विस्तार का वर्णन करूँगा। वैशम्पायनजी के ऐसा कहने पर जनमेजयजी बोले–हे वैशम्पायनजी! पहले पृथु के जन्म को विस्तार पूर्वक कहिये, फिर राजा पृथु द्वारा जिस प्रकार पृथ्वी दूही गई थी तथा जिस प्रकार पितरों, देवताओं, ऋषियों, दैत्यों, नागों, यक्षों, वृक्षों, पर्वतों, पिशाचों, गन्धर्वों, ब्राह्मण श्रेष्ठों और महाबली राक्षसों द्वारा पृथ्वी दूही गई थी वह कहिये और हे वैशम्पायनजी! उनके पात्र विशेषों को भी कहिये तथा बछड़ों और दुग्ध विशेष एवं दूहने वालों को क्रम से कहिए और क्रोधित महर्षियों द्वारा जिस कारण से राजा बेनु की भुजा मथी गई वह कारण भी कहिए।।२४-३०।।

वैशम्पायनजी बोले–मैं बेनु के पुत्र पृथु का विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ। हे जनमेजयजी! आप एकाग्र मन हो प्रयत्न पूर्वक सुनिये। यह कथा क्षुद्र मन वाले, कुशिष्य, व्रत नहीं करने वाले, कृतघ्नी और अहित करने वाले से नहीं कहनी चाहिए। यह कथा स्वर्ग, यश, आयुष्य तथा धर्म देने वाली और वेद सम्मत है एवं यह रहस्यमय वर्णन ऋषियों द्वारा किया गया है, इसलिए हे राजन्! इसे यथा तथ्य (उसी प्रकार) सुनिये। जो ब्राह्मणों को नमस्कार कर इस बेनु के पुत्र पृथु का विस्तारपूर्वक वर्णन सुनता है वह सब पापों से छूट

जाता है। वह यह न सोचे कि हमने पाप ही किया है पुण्य नहीं किया। क्योंकि यह कथा सब पापों को मिटा देने वाली है।।३१-३४।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टिकायां हरिवंशे हरि पर्वणि चतुर्थोऽध्याय: ।।४।।



अथ पंचमोऽध्याय: ।।५।।

वैशम्पायनजी बोले–पहले अत्रि के समान धर्मरक्षक, अत्रि वंश में अङ्ग नामक प्रजापति उत्पन्न हुए। उस अङ्ग के पुत्र राजा बेनु हुए, प्रजापति मृत्यु की पुत्री सुनीथा से उत्पन्न होने के कारण बेनु धर्म में अधिक कुशल न हुआ। वह नाना दोष से दूषित होने के कारण काल का पुत्र अपने क्षात्रधर्म (प्रजा पालनादि) धर्म से विमुख काम के वशीभूत हो लोभ में स्थित हो गया और वेद के धर्म का उल्लंघन कर अधर्म में तत्पर हो गया तथा स्वयं अपने द्वारा कल्पित धर्मरहित धर्म की मर्यादा स्थापित किया। उसके राज्य-शासन काल में प्रजा स्वाध्याय तथा वषट्कार से रहित हो गई इसी कारण से अर्थात् स्वाध्याय एवं वषट्कार से रहित यज्ञ होने से देवता सोम रस का पान नहीं करते थे और देवताओं को उद्देश करके दिये गये हवन (हव्य) को भी देवता नहीं ग्रहण करते थे। उस प्रजापति बेन का विनाश काल उपस्थित होने पर यज्ञ नहीं करना चाहिए, हवन नहीं करना चाहिए, इस प्रकार की उसने प्रतिज्ञा की। हे जनमेजयजी! मैं ही पूजा करने योग्य हूँ, मैं ही यज्ञ पूर्ण करने वाला हूँ, मैं ही यज्ञ रूप हूँ, हमारे लिए ही यज्ञ करना चाहिए तथा हमारे लिए ही हवन करना चाहिए इस प्रकार राजा बेनु का अधर्मपूर्ण विचार हो गया। अतिक्रमण कर दिया है धर्म की मर्यादा को जिसने ऐसे अधर्मी राजा बेनु के पास जाकर मरिचि आदि प्रमुख महर्षि कहने लगे कि हम लोग बहुत वर्षों में पूरी होने वाली दीक्षा लेते हैं अत: हे बेनु! तुम अधर्म मत करो यह सनातन धर्म नहीं है। तुम प्रजापति के कुल में उत्पन्न हुए हो, तुमने यह प्रण किया था कि मैं प्रजा का पालन करूँगा।।१-१०।।

महर्षियों के ऐसा कहने पर अर्थ का अनर्थ समझने वाला दुर्बुद्धि बेनु

हँस कर कहा। बेनु बोला-मैं किसकी बात सुनूँ, कौन धर्म का रचयिता है, मेरे समान शास्त्रज्ञ, पराक्रमी, तपस्वी तथा सत्य बोलने वाला इस पृथ्वी पर दूसरा कौन है। सब प्राणियों के उत्पत्तिकर्त्ता तथा विशेषरूप से धर्म के निर्माणकर्त्ता हमको आप अज्ञानी मूर्खों ने नहीं जाना। यदि मैं इच्छा करूँ तो इस पृथ्वी को जला दूँ या जल में डुबो दूँ, मैं चाहूँ तो आकाश और पृथ्वी रूँध दूँ इसमें तनिक सन्देह की बात नहीं है। मोह और गर्व से अवलिप्त (आच्छादित) बेनु को जब सनातन धर्म के मार्ग पर न ला सके तो महर्षि क्रुद्ध हो गये और वे महात्मा तेजस्वी महाबली बेनु को पकड़ कर उसकी दाहिनी जाँघ का मन्थन करने लगे। जाँघ को मथने पर उसमें से एक नाटा और काला पुरुष उत्पन्न हुआ। हे जनमेजयजी! वह भयभीत हो हाथ जोड़कर खड़ा हो गया तब उसको अति भय से विह्वल देख महर्षि अत्रि ने कहा बैठो। हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ जनमेजयजी! यही निषाद वंश को उत्पन्न करने वाला हुआ, इसने बेनु के पाप से जायमान धीवरों की उत्पत्ति की और जो विन्ध्य पर्वत पर या आस-पास रहने वाले तुषार और तुम्बर जाति के लोग हैं और जो अन्य अधर्म में रुचि रखने वाले हैं उन्हें बेनु से उत्पन्न समझो।।११-२०।।

तत्पश्चात् पुनः उन महात्माओं ने बेनु की भुजा का अरणी की तरह मन्थन किया तो उसमें से अपने शरीर के तेज से देदीप्यमान साक्षात् जलते हुए अग्नि की तरह तेज वाले महाराज पृथु उत्पन्न हुए। वे महायशस्वी पृथु कवच तथा धनुष धारण किये थे। वे आदि में होने वाले महाश्रेष्ठ आजगव नाम के धनुष तथा दिव्य बाणों एवं अपनी रक्षा के लिए महातेजस्वी कवच धारण किये हुए प्रजा की रक्षा के लिए स्थित हुए। पृथु के उत्पन्न होने पर सब प्राणी बड़े ही प्रसन्न हो पृथु का दर्शन करने आये और बेनु स्वर्ग को चला गया। हे पुरुष व्याघ्र! महात्मा एवं सत्पुत्र के उत्पन्न होने से वह बेनु पुन्नाम नरक से रहित हो गया। उस महाराज पृथु का राज्याभिषेक करने के लिए समुद्र, नदी जलरत्न लेकर उपस्थित हुए। पितामह ब्रह्मा आंगिरसों के साथ आये, स्थावर एवं जंगम सभी प्राणी आये और महातेजस्वी प्रजापालक बेनुपुत्र महाराज पृथु का अभिषेक करने लगे। इस प्रकार धर्मशास्त्रज्ञाताओं के द्वारा महातेजस्वी

पृथु अभिषिक्त हुए तथा राजाओं में पहला राजा प्रतापी बेनुपुत्र पृथु माने गये। पिता बेनु के द्वारा पीड़ित प्रजाओं की पीड़ा को दूर कर राजा पृथु ने प्रजा को सुखी किया, प्रजा से प्रेम करने के कारण पृथु का 'राजा' ऐसा नाम पड़ा अर्थात् राजा के पूर्ण कर्तव्यों से युक्त सचमुच वह पृथु राजा समझा गया।।२१-३०।।

महाराज पृथु इतने प्रतापी हुए कि जब वे समुद्र के जल पर चलते थे तो समुद्र का जल स्तम्भित हो जाता तथा पर्वत उनका मार्ग छोड़कर हट जाते थे एतस्मात् राजा पृथु का कभी ध्वज भंग न हुआ। बिना जोती गई भी पृथ्वी केवल अन्न की चिन्ता करने ही पर अन्न उत्पन्न करती थी। गौयें कामधेनु की भाँति सब प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करती थीं। इसी समय पितामह द्वारा किये गये यज्ञ में सोम के अभिषव के समय (सोम नाम की लता से रस निकालने के समय) महाबुद्धिमान् सूतजी उत्पन्न हुए और उसी यज्ञ में बुद्धिमान मागध भी उत्पन्न हुए पश्चात् देवर्षियों ने पृथु की स्तुति के लिये सूत और मागध को बुलाया और कहा कि तुम दोनों इस राजा के कर्मों के अनुसार इसकी स्तुति करो। यह सुन उन सूत-मागधों ने ऋषियों से कहा कि हम लोग अपने कर्मों के द्वारा अर्थात् औरों से पूछ कर जानकारी प्राप्त करके देवताओं तथा ऋषियों की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न करते हैं परन्तु इस राजा पृथु के कर्म, लक्षण एवं यश हमें नहीं ज्ञात हैं अतः इस तेजस्वी राजा की किस प्रकार स्तुति करें। तब ऋषियों ने भविष्य में होनेवाले कर्मों के द्वारा स्तुति करने के लिए कहा, जिन कर्मों को महाबली पृथु ने बाद में किया। फिर भविष्य में होनेवाले कर्मों को ऋषि बताने लगे कि यह राजा सत्यवक्ता, दानशील, सत्यप्रतिज्ञ, लक्ष्मीयुक्त, विजयी, क्षमाशील, पराक्रमी, शासन का निरीक्षण करनेवाला, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयालु, प्रियभाषी, मान्य और आये हुए व्यक्तियों का सम्मान करने वाला, यज्ञ करने वाला, ब्रह्म की उपासना करने वाला, सत्यसंगर (धर्मयुद्ध) करने वाला है।।३१-४०।।

क्षमा करने वाला शान्त, अपने व्यवहार स्थित में रहने वाला है। ये

जनमेजयजी! इस प्रकार के गुण श्रवण कर स्तुति की तथा उसी समय से इस संसार में सूत-मागध बन्दियों द्वारा आशीर्वाद शब्दों में पृथु के गुण प्रयुक्त किये जाने लगे (कि हे राजन्! आप पृथु के समान यशस्वी प्रतापी हों इत्यादि अन्य राजाओं के लिये कहे जाने लगे)। उन सूत और मागध की स्तुति से प्रसन्न राजा पृथु ने सूत के लिए अनूप देश तथा मागध के लिए मगध देश दे दिया। यह देख परम प्रसन्न महर्षियों ने प्रजा से कहा कि यह राजा तुम लोगों को वृत्ति (जीविका) देने वाला होगा। तब महर्षियों के ऐसे वचनों को सुनकर राजा पृथु से आग्रह किया कि हम लोगों की जीविका का विधान (प्रबन्ध) करिये। इस प्रकार प्रजा द्वारा प्रेरित महाबली पृथु ने प्रजा के हितार्थ धनुष-बाण ग्रहण कर पृथ्वी को पीड़ित करने लगे तो पृथ्वी बेनुपुत्र पृथु के भय से गोरूप धारण कर भागने लगी और पृथु उस भागती हुई पृथ्वी का पीछा करने लगे। भागती हुई पृथ्वी राजा पृथु के भय से अनेक लोकों में होती हुई ब्रह्म लोकादि लोकों में चली गई तो भी इनको धनुष-बाण धारण किये हुए देखा। जब उसे कहीं भी शरण न मिली तो वह जलते हुए तीखे बाणों से युक्त, अति तेजस्वी, महायोगी महात्मा देवताओं द्वारा भी अजेय बेनु पुत्र की ही शरण में गई और तीनों लोकों से सदा पूजित पृथ्वी हाथ जोड़कर बोली। पृथ्वी बेनुपुत्र पृथु से कहने लगी कि तुमको स्त्री-वध रूप अधर्म करना योग्य नहीं है और फिर मुझ पृथ्वी के बिना हे राजन्! तुम प्रजा का पालन भी किस प्रकार करोगे क्योंकि ये लोक मुझमें स्थित हैं और मैं जगत् को धारण करती हूँ तो मेरे नष्ट हो जाने से तेरी सारी प्रजा नष्ट हो जायगी ऐसा समझो।।४१-५१।।

इसलिये यदि कल्याण चाहते हो तो मुझे मत मारो और प्रजा के पालन-पोषण के लिए मेरे वचनों को सुनो। उपाय से किये जाने वाले सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं अतः हे राजन्! उपाय को देखो (सोचो) जिससे तुम प्रजा का पोषण करोगे। मेरा वध कर देने पर तो तुम प्रजा का पोषण किसी प्रकार नहीं कर सकते, अतः अपने क्रोध को शान्त करो मैं भी तुम्हारे अनुकूल होकर तुम्हारे प्रजा-पालन रूप कार्य में सहायता करूँगी। हे पृथ्वीपाल! तिर्यक योनि (पशु-पक्षियों की योनि) में भी प्राप्त स्त्री का वध नहीं करना चाहिये ऐसा

धर्मवेत्ताओं का कहना है, इसलिए आप राजा होकर धर्म का त्याग न करें। इस प्रकार अनेक प्रकार के वचनों को सुनकर उदार चित्त वाले महात्मा पृथु क्रोध का त्याग कर पृथ्वी से बोले।।५२-५६।।

इति श्री महाभारतेऽखिलेषु हरिवंशे हरि पर्वणि पृथूपाख्याने पञ्चमोऽध्याय।।५।।



अथ षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

पृथु बोले-जो एक व्यक्ति के लिए अनेक का वध करता हो चाहे वह अपने लिये करता हो या दूसरे के लिए करता हो, उसको पातक होता है। यदि एक अशुभकारी का वध करने पर बहुत सुखपूर्वक बढ़ें तो उसका वध करने में हे भद्रे! पातक-उपपातक कुछ भी नहीं होता। यदि दुष्ट आचरण करने वाले एक का वध करने से अनेक का क्षेम (कुशल) हो तो वह वध पुण्य प्रदान करने वाला होता है। सो हे वसुन्धरे! मैं तुमको प्रजा के लिए मारता हूँ, यदि तुम मेरे जगत् हितकारी वचनों को न मानोगी और मेरे शासन विधान से पराङ्मुख (विपरीत) होओगी तो, आज मैं तुमको बाणों से मारकर अपने शरीर को बढ़ा कर प्रजा को उसी पर धारण करूँगा। इसलिए हे धर्म को धरण करने वालों में श्रेष्ठ धरे! प्रजा को अन्नादि प्रदान कर जिलाओ क्योंकि तुम सब प्रजाओं का पोषण करने में समर्थ हो। हे पृथ्वी! यदि तुम मेरी पुत्री हो जाओ तो मैं यह भयंकर बाण जो तेरे वध के लिए प्रस्तुत है, इसे रख लूँगा। पृथ्वी बोली-हे वीर! मैं तुम्हारे सब वचनों को स्वीकार करती हूँ, इसमें तनिक भी संशय नहीं है, उपाय से किय जाने वाले सभी कार्य सिद्ध होते हैं। अब उन उपायों को देखो (सुनो) कि जिन उपायों से प्रजा का पोषण करोगे, तुम मुझे वत्स (बछिया) की तरह देखो (पोसो) जिससे मैं स्वयं वत्स (बछड़ा) वाली होकर दूध दूँगी। पहले तुम मुझे समतल करो कि जिससे मेरा दूध सर्वत्र फैल सके (सब जगह धान्य की उत्पत्ति हो सके)।।१-१०।।

वैशम्पायनजी बोले-फिर तो बेनुपुत्र पृथु ने अपने धनुष की कोटि से पृथ्वी की रक्षा के लिए सैकड़ों-हजारों पर्वतों को पृथ्वी के अन्यान्य भागों में

ऊपर उठाया जिससे पर्वत बढ़ गये (बड़े हो गये) पश्चात् पृथु ने पृथ्वी को सम किया क्योंकि मन्वन्तर के बीतने पर पृथ्वी विषम (ऊँची-नीची) थी। चाक्षुष मन्वन्तर में यह पृथ्वी स्वभावतः विषम थी। इसलिए पहली सृष्टि में विषमता के कारण ही ग्राम और नगरों का विभाजन न हो सका था और न अन्न ही उत्पन्न होता था न गोरक्षा ही होती थी न खेती होती थी न व्यापार होता था न सत्य-झूठ, लोभ-मत्सर था। वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर बेनुपुत्र पृथु के राज्य से यह सब होने लगा। हे राजन्! जहाँ-जहाँ पृथ्वी का भाग सम हुआ वहाँ-वहाँ प्रजा को बसना अच्छा लगा। पृथु के शासन काल के पहले प्रजा को आहार, फल-मूलादि बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता था ऐसा हमने सुना है। उस पृथु ने स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बना और पृथ्वी को गौ बनाकर अपने हाथ से दूहा अर्थात् इस मन्वन्तर में पृथु के प्रताप से सब प्रकार के अन्नादिकों की उत्पत्ति होने लगी तब से आज तक उन्हीं अन्नों के द्वारा प्रजा बढ़ती चली आ रही है। ऋषियों ने भी वसुन्धरा को दूहा ऐसा मैंने सुना है, ऋषियों के दोहन काल में सोम बछड़ा बने थे और अङ्गिरापुत्र बृहस्पति दोहन करने वाले थे तथा वेद उनके पात्र थे तथा तप एवं निरन्तर ब्रह्म रूप दुग्ध था।।११-२१।।

फिर देवताओं ने भी इन्द्र को आगे कर पृथ्वी को स्वर्ण के पात्र में दूहा था ऐसा सुनते हैं। उस समय इन्द्र बछड़ा तथा सूर्य दोग्धा (दूहने वाले) थे और ऊर्जस्कर (अमृत अथवा यज्ञीय हवि) रूप दूध था जिससे देवता जीवित हैं। पुनः पराक्रमी पितरों ने भी इस वसुन्धरा को चाँदी के पात्र में स्वधा (पित्रान्न) रूप दूध को दूहा उस समय प्रतापी यम बछड़ा थे एवं लोकों को नष्ट करने वाले काल दोग्धा थे और नागों ने भी तक्षक नाग को बछड़ा बनाकर अलाबु (तुम्बी पात्र) में विष रूप दुग्ध को दूहा था। हे राजन्! दूहने वाले सर्पों में श्रेष्ठ और पराक्रमी धृतराष्ट्र थे। बृहद् शरीर वाले तीक्ष्ण विष युक्त सर्प उसी विष का आहार एवं व्यवहार करते हैं और वही उनका आश्रय एवं बल है। पुनः असुरों ने भी इस पृथ्वी को लोहे के पात्र में शत्रुओं को नष्ट करने वाली माया रूप दुग्ध को दूहा था ऐसा सुनते हैं। उनमें प्रह्लाद का पुत्र विरोचन बछड़ा तथा दो शिरवाला महाबली मधु दोग्धा बना था।।२२-३०।।

वे बुद्धिमान असुर उसी माया द्वारा व्यवहार कर जीवित हैं और उनको उसी का बल है। पुनः इस वसुन्धरा को यक्षों ने भी आम-पात्र (कच्चे पात्र) में अक्षय (न विनाश होने वाला) अन्तर्धान रूप दूग्ध को दुहा था। उस समय पुण्यशाली यक्षों ने वैश्रवण को बछड़ा और मणिवर के पिता रजतनाभ को दोग्धा किया। यक्षों के महातपस्वी एवं महातेजस्वी छोटे भाई के तीन शिर हैं वे यक्ष उसी अन्तर्धान रूप (अप्रकट रूप) कला से दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जीवित हैं। हे नर श्रेष्ठ! पुनः राक्षस तथा पिशाचों ने भी इस वसुन्धरा को मुर्दे की खोपड़ी लेकर अपनी सन्तानों को तृप्त करने के लिए दूहा था। हे कुरुद्वह! उनका रजतनाभ दोग्धा एवं सुमाली बछड़ा और रुधिर क्षीर था देवता की उपमा वाले (देववत् प्रजा में पूजे जाने वाले) यक्ष, राक्षस, पिशाच एवं भूतों के समूह उसी रुधिर से अपनी जीविका चलाते हैं। हे नर श्रेष्ठ! पुनः गन्धर्व और अप्सराओं ने भी कमल के पात्र में चित्ररथ को बछड़ा बनाकर पवित्र गन्ध रूप दुग्ध को दूहा था। हे भरत सत्तम! उनके सूर्य के समान तेजस्वी महाबली गन्धर्वराज सुरुचि दोग्धा थे। हे राजन्! पुनः पर्वतों ने भी इस वसुन्धरा से अनेक प्रकार की औषधियों तथा रत्नों को दूहा था।।३१-४०।।

हिमालय पर्वत बछड़ा एवं महागिरि मेरु दोग्धा तथा शिला का पात्र था। उसी से पर्वत बड़े हुए। हे राजन्! लताओं ने भी पृथ्वी को पलाश पत्र के पात्र (दाने) को लेकर जल जाने पर कट जाने पर भी फैलना रूप दूध को दूहा था। फूला हुआ साल (साखू) दोग्धा एवं पीपल बछड़ा हुआ। यह पवित्र वसुन्धरा माता के समान अपनी गोद में धारण कर पालने वाली तथा अपनी ही गोद में विनाश भी करने वाली है। यह पृथ्वी जगत् के चराचर प्राणियों की उत्पत्ति का स्थान और सबों को अपने में स्थित करने वाली एवं सब प्राणियों की इच्छाओं को पूरी करने में कामधेनु की भाँति तथा सर्व प्रकार के धान्यों को उपजाने वाली है। पहले यह पृथ्वी समुद्र पर्यन्त थी और मधु-कैटभ से व्याप्त थी इसीलिये ब्रह्मवादी लोग मेदिनी देवी ऐसा कहते हैं। हे भारत! इसके पश्चात् जब बेनपुत्र राजा पृथु हुए तो उन्होंने इस मेदिनी का दोहन किया तब से पृथ्वी कही जाने लगी, पृथु ने इस पृथ्वी का विभाजन किया और

संशोधन किया तथा संशोधन कर खेती के योग्य कर धान्यों (अन्नों) की खानि बना दिया तथा पुर, ग्राम और नगरों से युक्त कर राजधानी स्थापित किया इस प्रकार प्रतापी तथा प्रभावों से युक्त राजा पृथु था। अतः प्राणियों द्वारा वह नमस्कार करने योग्य पूजा करने योग्य है और वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा भी वह नमस्करणीय एवं आदरणीय है। पृथ्वी प्राप्त करने की इच्छा से महाभाग राजाओं द्वारा भी नमस्कार करने योग्य है क्योंकि पृथु ही सनातन राजा एवं ब्रह्मस्वरूप है। विजय की इच्छा से पराक्रमी योद्धाओं द्वारा भी यह योद्धाओं में प्रथम राजा पृथु नमस्कार करने योग्य है।।४१-५०।।

यों योद्धा रण को जाते समय राजा पृथु का नाम लेकर जाता है तो वह वीर घोर संग्राम करके भी विजय प्राप्त कर कीर्तिमान होता है और व्यापार करने वाले धनिक वैश्यों द्वारा भी यह महायशस्वी प्राणियों का वृत्ति दाता पृथु नमस्कार करने योग्य है तथा कल्याण को चाहने वाले पवित्र शूद्रों द्वारा भी वह नमस्करणीय है। मैंने वत्स विशेषों एवं दोग्धाओं का और क्षीर तथा पात्रों का वर्णन किया अब आगे क्या वर्णन करूँ जो इस पृथु के चरित्र को आदि से अन्त तक नित्य श्रवण करता है। वह पुत्र-पौत्र से युक्त हो इस पृथ्वी पर दीर्घ काल तक आनन्द करता है।।५१-५५।।

इति श्री महाभारतेऽखिलेषु हरिवंशे हरि पर्वणि षष्ठोऽध्यायः।।६।।



अथ सप्तमोऽध्यायः।।७।।

जनमेजयजी बोले–हे तपोधन वैशम्पायनजी! सभी मन्वन्तरों का तथा उनके अन्दर होने वाली सृष्टि एवं विसृष्टि (प्रलय) का विस्तार से वर्णन कीजिये। कितने मनु होते हैं एक मन्वन्तर का कितना काल (समय) होता है यह यथोचित सुनना चाहता हूँ। वैशम्पायनजी बोले–हे कौरव्य! विस्तार से वर्णन तो सैकड़ों वर्ष में भी मैं नहीं कर सकता अतः आप मन्वन्तरों का वर्णन संक्षेप से ही सुनें। स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष,

वैवस्वत, सावर्णि, भौत्य एवं रौच्य ये मनु हैं इस समय वैवस्वत मनु हैं अर्थात् वैवस्वत मनु का मन्वन्तर काल चल रहा है और चार मेरु सावर्णि मनु हैं, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, मेरुसावर्णि, तथा दक्षसावर्णि ये पर्वत पर तपस्या करके सिद्धि को प्राप्त हुए हैं अतः इन्हें मेरु सावर्णि मनु कहा जाता है। जो मनु बीत गये, जो वर्तमान हैं और जो भविष्य में होने वाले हैं उन मनुओं का मैंने जैसा सुना था वैसा वर्णन किया। अब उनके पुत्र जो देवतागण और ऋषि हुए हैं उनका वर्णन करूँगा। स्वायंभुव मन्वन्तर में मरीचि, अत्रि, भगवान् अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य तथा वसिष्ठ ये सात ऋषि ब्रह्मा के मानस पुत्र हुए हैं। जो उत्तर दिशा में बसने वाले थे और ऊपर यामा नाम के शान्त देवता भी स्वायंभुव मन्वन्तर में हुए जो उत्तर दिशा में रहते थे। और अग्निध्र, अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन तथा पुत्र नाम के दस महाबली पुत्र स्वायंभुव मनु के हैं। हे राजन्! यह प्रथम मन्वन्तर आप से कहा।।१-११।।

हे तात्! वायु ने स्वारोचिष मन्वन्तर में वसिष्ठ के महाबली सात पुत्रों को सप्तर्षि बतलाया है जिनके नाम और्व, स्तम्ब, काश्यप, प्राण, बृहस्पति, दत्त एवं निश्च्यवन हैं। ये ही स्वरोचिष मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं तथा तुषित नाम के देवता कहे गये हैं। हविर्ध्र, सुकृति, ज्योति, आप, मूर्ति, अयस्मय, प्रथित, नभस्य, नभ तथा उर्ज ये दस पुत्र महात्मा स्वारोचिष मनु के हुए ये मनु के पुत्र महाबली एवं पराक्रमी तथा पृथ्वी का पालन करने वाले थे। हे राजन्! यह मैंने आपसे दूसरा मन्वन्तर कहा अब तीसरा कह रहा हूँ इसे समझिये। जो वसिष्ठ के सात पुत्र थे वे वसिष्ठ नाम से विख्यात हुए थे पहले ब्रह्मा के अति तेजस्वी ऊर्ज नामक पुत्र थे। ये उत्तम मनु के सप्तर्षि हैं ऐसा आप समझें, अब उत्तम मनु के सुन्दर पुत्रों के नाम सुनें। इष, ऊर्ज, तनूज, मधु, माधव, शुचि, शुक्र, सह, नभस्य और नभ ये दस पुत्र उत्तम मनु के हैं। उत्तम मनु के भानु देवता हैं यह मैंने तीसरा मन्वन्तर कहा अब मैं चौथा मन्वन्तर कहता हूँ सुनिये।।२१-२०।।

चौथे तामस मनु के काव्य, पृथु, अग्नि, जन्यु, धाता, कपीवान तथा अकपीवान ये अन्य सप्तर्षि हैं। हे तात्! इनके पुत्र-पौत्रों का वर्णन पुराणों में

है, तामस मन्वन्तर में देवतागण सत्य नाम से विख्यात हैं। अब तामस मनु के पुत्रों के नाम कहता हूँ द्युति, तपस्य, सुतपा, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, अकल्माष, तन्वी, धन्वी तथा परंतप ये महाबली दस पुत्र तामस मनु के हैं। हे महाराज! रैवत मनु के वायु द्वारा कहे गये वेदबाहु, यदुध्र, मुनि, वेदगिरा, हिरण्यरोमा, पर्ज्जन्य, सोम पुत्र उर्ध्वबाहु तथा अत्रिपुत्र सत्यनेत्र ये दूसरे सप्तर्षि हैं। रैवत मन्वन्तर के रजोगुण प्रकृति से शून्य पारिल्पव तथा रैभ्य नामक देवता कहे गये हैं। उनके पुत्रों के नाम सुनो धृतिमान्, अव्यय, युक्त, तत्वदर्शी, निरुत्सुक, अरण्य, प्रकाश, निर्मोह, सत्यवाक् और कवि ये दस पुत्र रैवत मनु के हैं यह पाँचवें मनु का मन्वन्तर कहा। हे नराधिप! अब छठाँ मन्वन्तर कहता हूँ सुनो। भृगु, नभ, विवस्वान, सुधामा, विरजा, अतिनामा तथा सहिष्णु, ये चाक्षुष मनु के सप्तर्षि हैं अब देवताओं को सुनो।।२१-३१।।

आद्य, प्रभूत, ऋभव, पृथग्भाव तथा लेखा नाम के पाँच देवतागण थे ये महात्मा अङ्गिरा ऋषि के महातेजस्वी पुत्र नड्वला से उत्पन्न हुए थे और ऊरु आदि दस पुत्र चाक्षुष मनु के हुए थे यह छठाँ मन्वन्तर का वर्णन हुआ और इस सातवें वैवस्वत मन्वन्तर के अत्रि, वसिष्ठ, भगवान् कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और भगवान् ऋचीक के पुत्र जमदग्नि ये सप्तर्षि हैं। ये इस समय स्वर्ग में रह रहे हैं। साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, मरुत, वसु, आदित्य तथा आश्विन (अश्विनी कुमार) ये वैवस्वत मन्वन्तर के देवता वैवस्वत कहलाते हैं और इस चल रहे वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र हैं। हे भारत! इन कहे गये ऋषियों के पुत्र-पौत्र तथा राजा के पुत्र-पौत्र इसी पृथ्वी पर सब दिशाओं में वर्तमान हैं। पहले कहे सप्तसप्तक अर्थात् उन्चास मरुत देवता सब मन्वन्तरों में लोकों की व्यवस्था के लिए तथा लोकों की रक्षा के लिये होते हैं और मन्वन्तरों के बीत जाने पर चार सप्तक अर्थात् अट्ठाइस मरुतगण अपना कार्य पूरा कर ब्रह्मलोक को चले जाते हैं।।३१-४०।।

उनके स्थान की पूर्ति अपनी तपस्या से दूसरे मरुत करते हैं, जो मन्वन्तर बीत गये हैं और जो भविष्य में आते हैं सब मन्वन्तरों में इसी प्रकार का क्रम रहता है। यह मैंने सात बीते और एक आने वाले मन्वन्तर को इस

तरह आठ मन्वन्तरों को कहा अब और बाकी जो आने वाले छह मन्वन्तर हैं उसे सुनो। जो पाँच सावर्णि मनु हैं उन्हें सुनो। एक उसमें वैवस्वत मनु हैं और चार प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र मेरु सावर्णि मनु हैं। ये प्रजापति दक्ष की पुत्री प्रिया के पुत्र हैं ये मेरु पर्वत पर तप करने से महातेजस्वी मेरु सावर्णि कहलाये। ये प्रजापति रुचि के पुत्र होने से रौच्य तथा रुचि द्वारा देवीभूति से उत्पन्न होने के कारण भौत्य कहलाते हैं। सावर्णिक मनु के आने पर स्वर्ग में रहने वाले सात ऋषियों के नाम सुनो। राम, व्यास, अत्रि पुत्र दीप्तिमान्, भरद्वाज गोत्री द्रोण के पुत्र महातेजस्वी अश्वत्थामा, गौतम के आत्मज (गौतम गोत्री) शरद्वान् गौतम, कौशिक, गालव तथा कश्यप गोत्री रुस ये सात ऋषि भविष्य में होने वाले आठवें सावर्णि मनु के सप्तर्षि हैं ये ब्रह्मा के समान धन्य (मान्य) हैं। ये सप्तर्षि जन्म तपस्या मंत्र और व्याकरण से शुद्ध ब्रह्म लोक में रहने वाले निर्मल कहे गये हैं।।४१-५०।।

ये भूत तथा भविष्यकाल की बातें जानने वाले तपस्या से प्रसिद्ध, आपस में विचार करने वाले हैं। मंत्र व्याकरण तथा ऐश्वर्य में प्रसिद्ध इनकी निष्ठा तथा नाम-गोत्र को ब्राह्मण जान कर प्रसन्न होते हैं। ये सातों ऋषि सात गुणों से प्रसिद्ध दीर्घायुष, मंत्र द्रष्टा, ईश्वर, दूरदर्शी तथा अपनी बुद्धि से प्रत्यक्ष धर्म को देखने वाले एवं गोत्रों के प्रवर्तक हैं सत्य तथा धर्म में रत ये महाभाग सप्तर्षि प्रत्येक युगों में उत्पन्न होकर आश्रम तथा वर्ण धर्मों को चलाते हैं। ये वेद मंत्रों के द्रष्टा तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के कर्ता धर्म के शिथिल हो जाने पर ये अपने ही गोत्र में पुनः पुनः उत्पन्न होकर अधर्म को मिटा धर्म की स्थापना करते हैं। ये दूसरों को वर देने वाले हैं इनके काल वय (अवस्था) और ऋषि होने की निश्चित अवधि नहीं बतलाई जा सकती है। यह सप्तर्षियों के उद्देश्य से व्याख्यान किया। हे सत्तम! अब सावर्णी मनु के होने वाले पुत्रों के नाम सुनो वरीयान, अवरीयान, संमत, धृतिमान्, वसु, चौष्णु, सचिष्णु, अधृष्णु, वाज तथा सुमति ये दस पुत्र सावर्णी मनु के हैं। हे राजन्! अब सावर्णी मनु के मुनियों को कहता हूँ पुलस्त्य गोत्री मेधातिथि, कश्यप गोत्री वसु, तेजयुक्त भार्गव, कान्तिमान् अङ्गिरा, वसिष्ठ गोत्री सावन, अत्रि गोत्री हव्यवाहन तथा पुलह पुत्र सत्य ये सात मुनि तथा तीन देवतागण भविष्य मन्वन्तर के हैं।।५१-६२।।

ये दक्ष पुत्री से प्रजापति रोहित के पुत्र हैं। प्रथम सावर्णी मनु के धृष्टकेतु, पंचहोत्र, निराकृति, पृथु, श्रवा, भूरिधाम (भूरिद्युम्न), ऋची, कोष्टहत और गय ये नव पुत्र हैं। दसवें मनु अर्थात् द्वितीय दक्षसावर्णी मनु के पुलह गोत्री हविष्मान्, भृगुवंशी सुकृति, अत्रि गोत्री आयोमूर्ति, वसिष्ठ गोत्री अष्टम, पुलस्त्य गोत्री प्रमिति, कश्यप गोत्री नभोग तथा अङ्गिरस गोत्री नभ के पुत्र सत्य ये सप्तर्षि होंगे और देवता के दो गण अग्न्यादि भूमादि मंत्र प्रतिपादित होंगे एवं मनुक, सुत, निकुषंज, वीर्यवान्, शतनीक, निरामित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न तथा सुवर्चा ये दस पुत्र मनु के होंगे। दसवें मनु के बाद अर्थात् तीसरे रुद्र सावर्णी मनु के ऋषियों को कहता हूँ सुनो। कश्यप गोत्री हविष्मान्, भृगुवंशी हविष्मान्य, अत्रि गोत्री तरुण, वसिष्ठ गोत्री अनघ,अङ्गिरस गोत्री उदधिष्ण्य, पुलस्त्य गोत्री निश्चर तथा अग्नि के समान तेजस्वी पुलह ये सप्तर्षि होंगे।।६३-७१।।

और देवताओं के तीन गण ब्रह्मा के पुत्र होंगे तथा संवर्त्तक, सुशर्मा, देवानीक, पुरुद्वह, क्षेमधन्वा, दृढायु, आदर्श पाण्डक तथा मनु ये नव पुत्र रुद्र सावर्णी मनु के होंगे। बारहवें मनु अर्थात् चौथे सावर्णी मनु के ऋषियों को सुनो वसिष्ठ पुत्र द्युति, अत्रि गोत्री सुतपा, अङ्गिरस गोत्री तपोमूर्ति, कश्यप गोत्री तपस्वी, पुलस्त्य गोत्री तपोशन, पुलह गोत्री तपोरवि तथा भृगुवंशी धृति ये सप्तर्षि होंगे तथा ब्रह्मा के मानस पुत्र पाँच देवतागण होंगे। तेरहवें अर्थात् मेरुसावर्णी मनु के अङ्गिरा गोत्री धृतिमान्, पुलस्त्य गोत्री हव्य, पुलहवंशी तत्त्वदर्शी, भृगुवंशी निरुत्सुक, अत्रि गोत्री निष्प्रकम्प, कश्यप गोत्री निर्मोह तथा वसिष्ठ गोत्री सुतपा ये सप्तर्षि होंगे और तीन देवतागण ब्रह्मा द्वारा कहे गये हैं।।७२-८०।।

अब तेरहवें मनु रुचि के पुत्रों के नाम सुनो चित्रसेन, विचित्र, नय, धर्मभृत, धृत, सुनेत्र, क्षत्रवृद्धि, सुतपा, निर्भय तथ दृढ़ ये दस पुत्र रौच्य संज्ञक तेरहवें मनु के पुत्र हैं। चौदहवें भौत्य संज्ञक दक्षसावर्णी मनु के भार्गव, अतिवाहु, अङ्गिरा गोत्री सुचि, आत्रेय, युक्त, वसिष्ठ गोत्री शुक्र, पुलह गोत्री अजित ये अन्तिम सप्तर्षि होंगे। प्रातःकाल उठ कर इनका स्मरण करने से

सुख की वृद्धि होती है तथा यश प्राप्त होता है एवं मनुष्य आयुष्मान् होता है। उस मन्वन्तर में पाँच देवताओं के गण होंगे। तरङ्ग भीरु, तरस्वान्, उग्र, अभिमानी, प्रवीण, जिष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी तथा सबल ये दस पुत्र इस मनु के होंगे त्भौय मनु का मन्वन्तर काल समाप्त होने पर कल्प समाप्त हो जायगा। मैंने पूर्वोक्त नामों से मनुओं का वर्णन किया। हे तात! इन मनुओं द्वारा आसमुद्रान्त पृथ्वी नगरों-पुरों-ग्रामों सहित रक्षित होती है अर्थात् अपनी तपस्या से प्रजाओं को उत्पन्न कर हजारों युगों तक पालते हैं तथा काल समाप्त होने पर इनका संहार भी करते हैं यही नीत्य का (बराबर का) क्रम है।।८१-९०।।

इति महाभारतेऽखिलेषु हरिवंशे हरिपर्वणि सप्तमोऽध्याय ।।७।।



अथ अष्टमोऽध्याय: ।।८।।

जनमेजयजी बोले-हे महामते! अब मन्वन्तरों के युगों की संख्या तथा ब्रह्मा के दिन का प्रमाण कहिए। वैशम्पायनजी बोले-हे अरिंदम! मनुष्यों के दिन तथा रात्रि का विभाजन सूर्य करते हैं। इन दिन-रात्रियों की गणना की माप (नाप) संख्या सुनो। पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा (पलक गिरने के समय को निमेष कहते हैं) तथा तीस काष्ठा की एक कला और तीस कला का एक मुहूर्त तथा तीस मुहूर्तों का एक दिन-रात विद्वानों ने कहा है। इन रात्रि-दिनों में ही चन्द्रमा एवं सूर्य की गति भी होती है। दिन-रात्रि के विषय में यही सब शास्त्रों में निश्चय है। पन्द्रह दिन-रात्रियों का एक पक्ष होता है और कृष्ण एवं शुक्ल के भेद से पक्ष दो होते हैं तथा दो पक्षों का एक मास होता है, दो मासों का एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन, दो अयनों का एक वर्ष होता है। दक्षिणायन एवं उत्तरायण भेद दो अयन होते हैं संख्या तत्त्वविदों ने ऐसा कहा है। इस प्रकार दो पक्षों का जो एक मास है वह पितरों का एक दिन कहलाता है ऐसा समय के जानकारों ने निश्चय किया है। कृष्ण पक्ष पितरों का दिन तथा शुक्ल पक्ष पितरों की रात्रि कहलाती है इसीलिए कृष्ण पक्ष में (पितरों के दिन

में) ही श्राद्ध करने का विधान है (जो ब्रह्मा का दिन है वही कल्प कहलाता है। हजार युगों की जिसकी रात्रि पण्डित लोग कहते हैं। जब ब्रह्मा का दिन अर्थात् एक कल्प समाप्त हो जाता है तो ब्रह्मा की रात्रि एक हजार युगों की होती है इसी ब्रह्मा की रात्रि में वन तथा पर्वतों सहित पृथ्वी जल में निमग्न (डूब) जाती है फिर हजार युग बीत जाता है तब ब्रह्मा की रात्रि समाप्त हो जाती है)। मनुष्यों का जो एक सम्वत्सर होता है वही देवताओं का एक दिन-रात कहलाता है। उत्तरायण देवताओं का दिन तथा दक्षिणायन देवताओं की रात्रि है ऐसा विद्वानों ने कहा है। देवताओं के दस वर्ष का एक दिन-रात मनु का होता है और ऐसे दस दिन-रात्रियों का एक पक्ष मनु का होता है।।१-१०।।

और दस पक्षों का एक मास तथा बारह मासों का एक ऋतु होता है ऐसा तत्त्वदर्शियों ने कहा है। तीन ऋतुओं का एक अयन और दो अयनों का एक सम्पवत्सर मनु का होता है। ऐसे चार हजार वर्षों का एक सत्ययुग होता है तथा चार वर्षों का सन्ध्या काल तथा चार वर्षों का ही सन्ध्यांश होता है। तीन हजार वर्षों का त्रेता युग होता है और तीन-तीन सौ वर्षों का सन्ध्या तथा सन्ध्यांश काल होता है। दो हजार वर्षों का द्वापर होता है तथा दो-दो सौ वर्षों का सन्ध्या-सन्ध्यांश होता है। एक हजार वर्ष का कलियुग होता है तथा एक-एक सौ वर्ष का संध्या-संध्यांश होता है ऐसा विद्वानों ने कहा है। यह जो दिव्य बारह हजार वर्ष युग की संख्या कही गई इस प्रकार दिव्य बारह हजार वर्षों का एक युग समझो। कृत-त्रेता-द्वापर-कलि ये चारों मिलकर चतुर्युगी हुआ। इसी चतुर्युगी का एक युग कहलाता है। ऐसे एकहत्तर युगों (चतुर्युगों) का एक मन्वन्तर गणितज्ञों ने कहा है। इस मन्वन्तर काल का भी दो अयन होता है दक्षिणायन तथा उत्तरायण । पहले अयन के समाप्त होने पर मनु ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं फिर दूसरे मनु दूसरे अयन में आकर कल्प की समाप्ति तक रहते हैं। हे राजेन्द्र! दस हजार मन्वन्तरों के बीत जाने पर ब्रह्मा का एक वर्ष होता है।।११-२०।।

ब्रह्मा का जो दिन कहा है वही कल्प कहलाता है तथा पण्डितों ने एक

हजार युगों के काल की रात्रि कही है। जब ब्रह्मा का दिन समाप्त हो जाता है तब वन-पर्वतों सहित यह पृथ्वी जल में निमग्न हो जाती है अर्थात् प्रलय हो जाता है और जब एक हजार युग का काल बीत जाता है तब फिर ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होता है इसी दिवस की समाप्ति पर्यन्त को एक कल्प कहते हैं; यह एकहत्तर युगों का कृत-त्रेता सहित जो वर्णन किया वही मन्वन्तर कहलाता है, मैंने कीर्तिवर्द्धक चौदह मनुओं का वर्णन किया। सब वेदों और पुराणों में इनका वर्णन है। ये प्रजाओं के स्वामी हैं तथा इनका कीर्तन धन्य है। मन्वन्तर के बीतने पर संहार (प्रलय) होता है तथा प्रलय के बाद फिर सृष्टि होती है मन्वन्तरों का वर्णन तो सैकड़ों वर्षों में भी मैं नहीं कर सकता। हे भारत! मन्वन्तर के बीच में कभी-कभी प्रजाओं का संहार तथा उनकी पुनः सृष्टि होती है ऐसा सुना जाता है। उस समय देवता एवं महर्षिगण अपनी तपस्या, ब्रह्मचर्य, वेदपाठ तथा संयम के बल पर स्थूलभूत शरीर से विद्यमान रह जाते हैं और हजार युग पूर्ण होने पर कल्प समाप्त हो जाता है फिर सब प्राणी सूर्य के तेज से जल जाते हैं फिर ब्रह्मा को आगे कर सूर्य सहित सब देवता उस अच्युत क्षेत्रज्ञ अजन्मादेव योगेश्वर योगरूप व्यापक हरि में विलीन हो जाते हैं।।२१-३०।।

जो कल्पान्त में सब प्राणियों को उत्पन्न करने वाला अव्यक्त निरन्तर विद्यमान देव है उसी से यह सारा संसार उत्पन्न होता है। जब यह सारा जगत् जल में निमग्न हो जाता है तो रात्रि हो जाती है तब नारायण ब्रह्मा के हजारों वर्षों तक सोते हैं जिसमें निद्रायोग को प्राप्त होकर ब्रह्मा शयन करते हैं उसे रात्रि कहते हैं। वह रात्रि हजार युगों की होती है जब लोक पितामह ब्रह्मा जागते हैं तो पुनः सृष्टि की रचना का मन में विचार करते हैं। वह सर्जन विचार पूर्व कल्प की ही तरह होता है। उसमें देवताओं में कोई परिवर्तन नहीं होता है। विपर्यय (भेद) केवल यही है कि वे देवता दिखाई नहीं पड़ते सो अब दिखाई देने लगे, हे भरत सत्तम! सूर्य की किरणों द्वारा जो जीव भस्मीभूत हुए थे वे तथा देवता, ऋषि, गन्धर्व, पिशाच, सर्प तथा राक्षस ये पुनः उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार ऋतुओं का समागम होने पर उनके नाना प्रकार के चिह्न दिखलाई

पड़ने लगते हैं उसी प्रकार ब्रह्मा की रात्रि समाप्त होने पर अनेक प्रकार के जीव दिखाई देने लगते हैं। प्रजापति ब्रह्मा योगनिद्रा से निकल कर मनुष्य देवता तथा ऋषियों का पुनः निर्माण करने लग जाते हैं। जो अपने स्वभाव धर्मों को छोड़ कर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, हे भरत सत्तम! वे पुनः होने वाले युग में नहीं उत्पन्न होते। समय की संख्या के विभाजन में कुशल ईश्वर व्यापक भगवान् सहस्त्र युगों का दिन तथा रात्रि बनाकर इसी क्रम योग से प्राणियों की सृष्टि एवं संहार बार-बार किया करते हैं। जो प्रकट-अप्रकट रूप महादेव नारायण, प्रभु हरि हैं उनके अंश वर्तमान वैवस्वत मनु की सृष्टि का वृष्णिवंश के प्रसंग से प्राचीन वर्णन करूँगा। जिस वृष्णिवंश में प्रभु महात्मा हरि ने सबकी रक्षा तथा असुरों का विनाश करने के लिए अवतार धारण किया था।।३१-४५।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायाँ हरिवंशे हरि पर्वणि अष्टमोऽध्याय: ।।८।।



अथ नवमोऽध्याय: ।।९।।

वैशम्पायनजी बोले-हे अरिन्दम! कश्यप द्वारा दाक्षायणी से (दक्ष-पुत्री दिति से) विवस्वान उत्पन्न हुए। उस विवस्वान की स्त्री त्वष्टा की पुत्री संज्ञा देवी हुई तथा वह तीनों लोक में सुरेणु इस नाम से विख्यात हुई। वह भगवान् मार्त्तण्ड की भार्या थी। रूप-यौवन से सम्पन्न संज्ञा नाम की स्त्री बड़ी तपस्विनी थी पर अत्यन्त उष्ण होने के कारण पति के रूप से असन्तुष्ट थी। आदित्य के मण्डल में रहने से उसके शरीर में जलन होता अर्थात् सूर्य के तेज को न सह सकने से उसे अच्छा नहीं लगता था। (एक बार बुध अदिति के घर पर भिक्षा माँगने के लिये गये तो गर्भ के भार से श्रमित अदिति को भिक्षा देने में विलम्ब हो गया इससे क्रुद्ध होकर बुध ने शाप दे दिया कि यह तुम्हारा गर्भ मर जाय यह सुनकर अदिति ने व्याकुल हो कश्यपजी से कहा। कश्यपजी स्त्री के स्नेह से बुध के शाप का निवारण करते हुए बोले इस गर्भ रूप अण्डे में बालक

जीवित है। पर अदिति को अज्ञान वश ऐसा जान पड़ा कि मेरा अण्ड (गर्भ) मर गया है पश्चात् इसी गर्भ से भगवान् आदित्य उत्पन्न हुए अतः शापित मृत अण्ड से उत्पन्न होने के कारण इनका मार्त्तण्ड नाम पड़ा।) कश्यप ने प्रेम वश कहा कि यह मरा नहीं है अण्डे के भीतर बालक जीवित है। पर अज्ञान वश अदिति ने समझा कि मर गया है इसलिए मार्त्तण्ड कहा जाता है। हे तात! कश्यपात्मज विवस्वान में (सूर्य में) कश्यप के माहात्म्य से अधिक तेज है जिससे वह तीनों लोकों को तपाते हैं। हे कौरव्य! तपने वालों में श्रेष्ठ आदित्य ने संज्ञा में तीन सन्तानें की जिसमें एक कन्या और दो प्रजापति थे पहले प्रजापति श्राद्धदेव मनुको उत्पन्न किये पश्चात् यम तथा यमुना को एक साथ ही उत्पन्न किया। संज्ञा सूर्य का दुःसह तेज न सह सकने के कारण अपनी माया से अपने ही समान एक दूसरा रूप प्रकट किया जिसका नाम छाया था। हे राजन्! उस मायामयी संज्ञा से उत्पन्न हुई छाया हाथ जोड़ नम्रता पूर्वक बोली कि, हे सुन्दर हास्य युक्ते! हमको क्या करना है सो कहो, हे वरवर्णिनि! मैं तुम्हारी आज्ञा में खड़ी हूँ मुझे आज्ञा दो।।१-११।।

संज्ञा ने कहा मैं अपने पिता के घर जा रही हूँ और तुम मेरे इस भवन में निश्छल होकर वास करो, तेरा कल्याण होगा। ये मेरे दो लड़के हैं तथा एक सुमध्यमा कन्या है इसकी रक्षा करना तथा इस भेद को भगवान् सूर्य सेन कहना। छाया बोली–हे देवि! तुम सुखपूर्वक जाओ, जब तक कोई क्लेश नहीं पकड़ेगा और जब तक कोई शाप नहीं देगा तब तक इस भेद को मैं नहीं कहूँगी। वैशम्पायनजी बोले–संज्ञा अपनी सवर्णा को आदेश देकर और उससे यह भेद न कहूँगी ऐसा स्वीकार करा कर अपन पिता त्वष्टा के घर वह तपस्विनी लज्जित होती हुई चली गई। पिता ने संज्ञा को अपने घर आई देख कर कोसा तथा पति के पास जाने को बार-बार कहा। तब पिता द्वारा तिरस्कृत वह अनिन्दिता अपने रूप को छिपा घोड़ी बन कर उत्तर कुरुओं के पास जा घास चरने लगी। यह जो दूसरी थी इसको संज्ञा समझ कर इसमें सूर्य ने अपने समान पुत्र उत्पन्न किया। पहले भाई त्राद्धदेव मनु के समान ही होने से इस पुत्र का सावर्ण नाम पड़ा और वह मनु हुए इसलिए सावर्णी मनु उन्हें कहते हैं और जो दूसरा पुत्र हुआ उसे शनैश्चर समझो।।११-२०।।

पृथ्वी की अंश रेणु से उत्पन्न वह पार्थिवी अपने पुत्रों से अधिक प्रेम करती थी वैसा संज्ञा के पुत्रों से प्रेम नहीं करती थी। श्राद्धदेव इस बात को सहन कर लिये पर यम से सहन न हुआ वे बाल स्वभाव से, भावी के बलवान् होने से क्रोध युक्त हो वैवस्वत यम ने संज्ञा को डाँटा। तो अत्यन्त दुखित सावर्ण की माता ने क्रोधित हो यम को शाप दे दिया कि तुम्हारा पैर गिर जाय। संज्ञा के वचनों से दुःखी तथा कठिन शाप के भय से यम ने हाथ जोड़ पिता से सभी बातें कह दीं और कहा कि इस शाप को हटाइये, माता को तो बातें कह दीं और कहा कि इस शाप को हटाइये, माता को तो चाहिए कि सभी पुत्रों पर बराबर स्नेह करे। सो यह हम लोगों को छोड़कर छोटे को विभूषित करना चाहती है यह देख मैंने इसके ऊपर केवल पैर उठाया पर इसके शरीर पर नहीं मारा। यदि यह बाल स्वभाव या अज्ञानवश गलती हो गई हो तो इसे क्षमा करने योग्य है क्षमा करें। यह सुन संज्ञा ने कहा कि मैं तुम्हारे द्वारा पूजनीया होती हुई भी लङ्घित (तिरस्कृत) हुई। इसलिए यह चरण अवश्य गिरेगा इसमें संशय नहीं है। यह सुन यम ने कहा कि सन्तान कुसन्तान हो सकती है पर माता कुमाता नहीं होती, अर्थात् इसके विपरीत मैं देख रहा हूँ। हे तपने वालों में श्रेष्ठ तथा लोकों के ईश! अब तो मैं माता द्वारा शापित हो गया हूँ अतः चाहता हूँ कि आपके प्रसाद से मेरा चरण न गिरता। विवस्वान् बोले–हे पुत्र! इसमें कोई बड़ा कारण ज्ञात होता है तभी तुम्हारे जैसा सत्यवादी धर्मज्ञ में क्रोध प्रवेश किया।।२१-३०।।

तेरी माता के वचनों को अन्यथा करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। हे महाप्राज्ञ! जब तेरे पैर का मांस कीड़े लेकर पृथ्वी तल पर चले जायेंगे तब तुम्हें सुख प्राप्त होगा और तेरी माता के कहे वचन भी सत्य होंगे। इस प्रकार तुम शाप के परिहार से रक्षित होओगे। आदित्य ने संज्ञा से कई बार कहा कि तुम पुत्रों पर कम व अधिक प्रेम क्यों करती हो ऐसा न करो पर वह चुप रही सूर्य से कुछ न कही हे कुरुनन्दन! तब आदित्य ने अपने को सुस्थिर कर योग द्वारा तथ्य को (सत्य को) देखा तो उसके विनाश के लिए शाप देने को उद्यत हुए। तथा उसके बालों को पकड़ लिये तब तो अपने वचनों के अनुसार उसने भेद

की सब बातें विवस्वान् से कह दीं। विवस्वान् इन भेद की बातों को सुन क्रोधित हो त्वष्टा के पास गये, त्वष्टा ने इनकी यथोचित पूजा की तथा क्रोध से दग्ध करने की इच्छा वाले सूर्य को सान्त्वना दिया, समझाया। त्वष्टा बोले–तुम्हारा यह अति तेज से युक्त रूप शोभा नहीं देता इसी कारण अर्थात् तुम्हारे इस तेज को न सह सकने के कारण संज्ञा वन में घास चर रही है। नित तपस्या में रत शुभचारिणी घोड़ी का रूप धारण करने वाली अपनी भार्या को आप आज देखेंगे कि जो पत्तों का भक्षण करने वाली दुबली-पतली दीन ब्रह्मचारिणी, हाथी के सुण्ड से उखाड़े हुए कमलिनी की भाँति व्याकुल है हे गोपते! वह प्रशंसनीया संज्ञा योग-बल से घोड़ी बन गयी है।।३१-४०।।

हे अरिदम! यदि मेरा यह कहना आपको सत्य तथा अनुकूल ज्ञात होता हो तो कहिये मैं आपके रूप को सुन्दर बना दूँ। पहले विवस्वान् का रूप ऊपर को उठा हुआ टेढ़ा था, ऐसे रूप से युक्त होने के कारण इनका नाम विभावसु पड़ा था फिर तो त्वष्टा की इस बात को मान कर प्रजापति आदित्य ने सुन्दर रूप बनाने को कह दिया। हे भारत! तब त्वष्टा मार्तण्ड के समीप जा उनको भ्रमि (शान) पर रख कर छील दिये। ज्ञान के द्वारा उग्र तेज संहरण (छील) कर देने पर उनका शुभ रूप देखने में सुन्दर से भी सुन्दर ज्ञात होने लगा। कीरणों के स्वामी आदित्य का मुँह शान पर घिसने से रक्त वर्ण का हो गया तथा मुँह से जो राग निकला उससे बारह आदित्य उत्पन्न हो गये। उनके नाम धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान, पूषा, पर्यन्त, त्वष्टा तथा बारहवाँ जघन्य कर्म से (घर्षण रूप कर्म से) शुभ कर्म वाले विष्णु पुष्प, मुकुटादि अलंकारों से सुशोभित और अपने ही शरीर से उत्पन्न बारह आदित्यों को देख भगवान् सूर्य नारायण हर्षित हो गये। इस प्रकार त्वष्टा ने रूप बदल कर उनकी सेवा की तथा कहा कि हे देव! अब आप उत्तर कुरु अपनी भार्या के पास जाइये जहाँ की वह घोड़ी का रूप धारण कर उत्तर कुरु के बन में घास चर रही है ऐसा सुन कर वे अपनी भार्या के (घोड़ी रूप के) अनुरूप अपने योग बल द्वारा घोड़े का रूप धारण कर लिये।।४१-५०।।

पश्चात् उन्होंने तेज के कारण व नियम के कारण सब प्राणियों से अधृष्य (अदम्य) अपनी स्त्री को घोड़ी के रूप में देखा। हे राजन्! अश्व रूप

वाले भगवान् सूर्य घोड़ी रूप से निर्भय चरती हुई उस अपनी स्त्री संज्ञा के पास पहुँच उसके मुँह में मुँह मिलाये तो पर पुरुष की शंका से वह मैथुन के प्रतिकूल चेष्टा करती हुई सूर्य के वीर्य को नाक में गिरा दिया। पश्चात् उसके नासत्य और दस्र अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति हुई जो श्रेष्ठ औषधियों के जानकार थे। हे भारत! ये अष्टम प्रजापति मार्तण्ड के पुत्र घोड़ी रूप संज्ञा में उत्पन्न हुए पश्चात् सूर्य ने अपने सुन्दर रूप को दिखाया तो हे जन्मेजय! वह अपने भर्ता को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। उधर यम अपनी माता के शाप के कारण अत्यन्त दुखी थे। इसलिए धार्मिक विचार से धर्मराज की भाँति प्रजा का पालन कर प्रजा को प्रसन्न किया तो इस पुनीत कार्य के कारण महा तेजस्वी यम ने पितरों का आधिपत्य तथा लोकपाल की उपाधि प्राप्त की तथा तपोधन यमराज प्रजापति सावर्ण मनु हुए। वे इस समय मेरु पर्वत पर घोर तप कर रहे हैं। आने वाले भविष्य काल में अर्थात् सावर्ण मन्वन्तर में मनु होंगे।।५१-६०।।

और इनके भाई शनैश्चर ग्रह की उपाधि प्राप्त किये तथा नासत्य और दस्र ये स्वर्ग के वैद्य हुए। इनकी सेवा से घोड़ों को शान्ति मिली त्वष्टा ने उस छीले हुए सूर्य के तेज से विष्णु का चक्र बनाया। वह चक्र दानवों का अन्त करने की इच्छा से युद्ध में अप्रतिहत अस्त्र बना। जो यम की छोटी बहन थी वह यशस्वीनी इस लोक में नदियों में श्रेष्ठ यमुना नदी हुई। मनु को मनु तथा सावर्ण भी कहते हैं। द्वितीय पुत्र सावर्ण के भ्राता शनैश्चर सब लोकों में पूजित ग्रह हुए। जो मनुष्य इन देवताओं की जन्म-कथा को सुनेगा, अवधारण करेगा वह सब आपत्तियों से छूट कर महान् यश प्राप्त करेगा।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरिवंशे हरि पर्वणि नवमोऽध्यायः ।।९।।



अथ दशमोऽध्यायः ।।१०।।

वैशम्पायनजी बोले- वैवस्वत् मनु को उनके ही समान नव पुत्र थे। हे भरतर्षभ! जिनके क्रमशः नाम इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्णु, शर्याति नरिष्यन्तु, प्रांशु, सातवें नाभारिष्ट, करूष तथा पृषध्र हैं ये ही नव पुत्र हुए। हे भारत! जब कि पुत्र उत्पन्न नहीं हुए थे तब प्रजापति मनु पुत्र की कामना से रिष्टि नामक

यज्ञ किया। हे भरत सत्तम! उस यज्ञ में मुनि ने मित्रावरुण की आहुति दी, तो आहुतियों के देने पर देव, गन्धर्व, मनुष्य तथा तपोधन मुनि लोग परम सन्तुष्ट हुए और बोले कि अहो! इसका तप बल और शास्त्र का ज्ञान अद्भुत है। उस यज्ञ में दिव्य वस्त्राभूषणों से विभूषित एवं दिव्य कवच को धारण की हुई इला नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई ऐसा सुना जाता है। दण्डधारी राजा मनु ने उस इला से कहा कि हे भद्रे! तू मेरे पीछे-पीछे आओ, तब इला ने पुत्र की कामना वाले राजा मनु से धर्म युक्त यह वचन कहा। इला बोली–हे बोलने वालों में श्रेष्ठ! मैं मित्रावरुण के अंश से उत्पन्न हुई हूँ इससे मैं उनके (मित्रावरुण के) पास जाती हूँ जिससे धर्म मेरा वध न कर सके। इस प्रकार मनु से कह कर वह वरारोहा इला मित्रावरुण के समीप जा हाथ जोड़ कर बोली।।१-१०।।

मैं आपके अंश से उत्पन्न हुई हूँ आप लोगों का कौन सा कार्य हमको करना है। मनु ने हमसे कहा कि हमारे पीछे-पीछे आओ इस प्रकार कहती हुई धर्म परायणा साध्वी इला से मित्रावरुण बोले–कि जो कुछ मनु ने कहा हो उसको सुनो। हे वरवर्णिनी! हम लोग तुम्हारे इस धर्म, नम्रता, दम तथा सत्य से प्रसन्न हैं तुम मित्रावरुण की कन्या की ख्याति से प्रसिद्ध होओगी तथा मनु वंश को धारण करने वाली पुत्र होओगी। हे शोभने! तब तुम सुद्युम्न इस नाम से तीनों लोकों में विख्यात् होगी तथा तुम धर्मशील, जगत् प्रिय और मनु के वंश को बढ़ाने वाली होगी। इस प्रकार मित्रावरुण के वचनों को सुन कर इला पिता मनु के पास जाने लगी तो बुध ने बीच में ही मैथुन के लिये बुला लिया। हे राजन्! सोम पुत्र बुध ने उसमें (इला में) पुरूरवा को उत्पन्न किया। पुत्र हो जाने पर वह इला पुत्र होकर सुद्युम्न इस नाम से विख्यात हुई। हे भारत! इस सुद्युम्न के गय, उत्कल और विनताश्व ये परम धार्मिक तीन पुत्र हुए। हे राजन् ! उत्कल ने उत्कला नाम की तथा विनताश्व ने पश्चिमा नाम की तथा हे भरत श्रेष्ठ! गय ने गया नाम की पुरी बसाई। हे अरिंदम! मनु के सूर्य में प्रवेश करने पर अर्थात् इक्ष्वाकु आदि नव तथा दसवें सुद्युम्न इन पुत्रों को उत्पन्न कर अपना राज्याधिकार त्याग देने पर इन दसों पुत्रों ने पृथ्वी का दस भागों में विभाजन कर राज्य करने लगे।।११-२०।।

यह बन, खानों तथा यूप सहित पृथ्वी जिसकी है उस मनु के पुत्र इक्ष्वाकु ने मध्य देश का राज्य प्राप्त किया। सुद्युम्न पहले कन्या रूप धारण करने से इस गुण को (मध्य देश के राज्य शासन योग्यता को) नहीं प्राप्त हुए। वसिष्ठ के अनुग्रह से (अनुरोध से) मध्य देश के समीप महात्मा सुद्युम्न ने प्रयाग का एक देश राज्य के रूप में प्राप्त किया। हे कुरुद्वह! महायशस्वी सुद्युम्न राज्य पाकर पुरुरवा को दे दिये। सुद्युम्न राज्य प्राप्त करने के बाद प्रयाग में राज्य किये थे। उत्कल के लोक विख्यात तीन पुत्र हुए उनके नाम धृष्टक, अम्बरीष तथा दण्ड हैं दण्ड ने दण्डकारण्य का निर्माण किया जो कि लोक में विख्यात तथा तापसों के लिये परम उत्तम स्थान है। जिस दण्डक वन में प्रवेश करने मात्र से मनुष्य पापों से छूट जाता है। हे भारत! सुद्युम्न ऐल को उत्पन्न कर स्वर्ग को चला गया। हे महाराज! स्त्री तथा पुरुष दोनों के लक्षणों युक्त वह मनु का पुत्र था जो पहले इला कन्या के रूप में था, पश्चात् सुद्युम्न पुत्र का रूप धारण कर लिया था। नरिष्यन्त के पुत्र शक हुए तथा हे सत्तम! नाभाग के पुत्र राजाओं में श्रेष्ठ अम्बरीष हुए। और धृष्णु के रण में बली धार्ष्टक हुए जो क्षत्रिय थे तथा करूष के कारूष नाम के महा पराक्रमी हजारों क्षत्रियगण उत्पन्न हुए जो युद्ध में बड़े दुर्मद (मतवाले) थे। नाभागारिष्ट के जो क्षत्रिय पुत्र उत्पन्न हुए वैश्य धर्म वाले हो गये।।२१-३०।।

प्रांशु को एक पुत्र हुआ जो शर्याति इस नाम से विख्यात था नरिष्यन्त के पुत्र दण्डधर राजा दम हुए और शर्याति को दो सन्तानें थीं जिसमें एक पुत्र आनर्त नाम का तथा एक कन्या सुकन्या नाम की थी जो च्यवन ऋषि की पत्नी हुई और आनर्त के महातेजस्वी रेव नामक पुत्र हुआ। और इसने आनर्त देश में राज्य किया तथा इसकी राजधानी द्वारिका थी। रेव के पुत्र रैवत हुए जिसमें परम धार्मिक बड़े का नाम ककुद्मी था। सौ पुत्रों में ज्येष्ठ ककुद्मी कुशस्थली (द्वारिका) का राज्य प्राप्त किया और राज्य पाने के बाद वह ब्रह्म लोक को चला गया और गन्धर्वों की गीत सुनने लगा। हे प्रभो! उसे गाना सुनते-सुनते बहुत युग बीत गया पर इसे एक मुहूर्त के समान ज्ञात हुआ तथा यह युवा का युवा ही बना रहा पश्चात् वह यादवों से घिरी अपनी पुरी द्वारवती (द्वारिका) में

आया। उस समय द्वारवतीपुरी में अनेक द्वार बन गये थे तथा वह पुरी वासुदेव आदि अनेक भोजवंशी, वृष्णिवंशी तथा अन्धकवंशी महा पुरुषों से रक्षित थी। हे अरिंदम! रैवत इस प्रकार की व्यवस्था जानकर अपनी कन्या रेवती को बलदेव के लिए देकर आप मेरु पर्वत पर तप करने चला गया। तब बलदेव रेवती के साथ सुखपूर्वक रमण करने लगे।।३१-३८।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरिवंशे हरिपर्वणि दशमोऽध्यायः ।।१०।।



अथ एकादशोऽध्यायः।।११।।

जनमेजयजी बोले–हे द्विजोत्तम! बहुत युग का समय बीत जाने पर भी रेव के पुत्र रैवत ककुद्मी तथा उनकी पुत्री रेवती क्यों जरा (वृद्धत्व) को नहीं प्राप्त हुई। और शर्याति प्रपौत्र रैवत के मेरु पर्वत पर चले जाने के बाद कैसे सन्तान उत्पन्न हुई जो कि आज भी इस पृथ्वी पर देखी जाती है यह सुनने की मेरी इच्छा है। वैशम्पायनजी बोले–हे अनघ! ब्रह्म लोक में क्षुधा, पिपासा, बुढ़ापा, मृत्यु तथा ऋतुचक्र (सूर्य के अभाव से गर्मी-बरसात-जाड़ा आदि नहीं होता।) रेव पुत्र ककुद्मी के ब्रह्म लोक चले जाने पर द्वारका राक्षसों द्वारा नष्ट कर दी गई। हे राजेन्द्र! ककुद्मी के सौ भाई थे वे धार्मिक तथा महात्मा थे वे राक्षसों के मारने-पीटने से इधर उधर अनेक दिशाओं में चले गये। हे विशाम्पते! वे ही भागे हुए जो सौ भाई थे उन्हीं के वंशज क्षत्रिय राक्षसों के भय से भयभीत हो जहाँ-तहाँ बस गये, उन्हीं क्षत्रियों की सन्तानें आज शर्याति-गोत्र से प्रसिद्ध हैं। हे भरत श्रेष्ठ कुरुन्दन! वे धार्मिक क्षत्रिय सब दिशाओं में भागकर पर्वतों की गुफाओं में छिपकर रहने लगे। नाभागारिष्ट के दो पुत्र वैश्या में उत्पन्न होने से वैश्य माने गये जो कि ब्राह्मणता को (उपशान्ति को) प्राप्त हुए और करुष से कारुष संज्ञक रणमदमत्त क्षत्रिय उत्पन्न हुए। प्रांशु को एक पुत्र प्रजापति नाम वाला उत्पन्न हुआ ऐसा मैंने सुना है। हे जनमेजयजी! पृषध्र ने गुरु की गौ की हत्या कर दी इसलिये गुरु के शाप से वह शूद्रता को

प्राप्त हो गया। इस प्रकार हे भरतवर्षभ! मैंने मनु के नव पुत्रों का वर्णन किया।।१-११।।

मनु के छींकने पर इक्ष्वाकु की उत्पत्ति हुई, उसके सौ पुत्र हुए जो ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा देने वाले थे। उनमें विकुक्षि सबसे बड़ा था तथा विशाल कुक्षि होने से वह अप्रतिभट योद्धा हुआ जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी न था, वह अयोध्या का राजा हुआ। हे राजन्! उसके शकुनि प्रमुख पचास उत्तम पुत्र उत्तरापथ (उत्तर प्रदेश) की रक्षा करते थे तथा उत्तरापथ देश में रहते भी थे। हे विशाम्पते! शशाद प्रमुख अड़तालीस पुत्र दक्षिण दिशा। (दक्षिण प्रदेश) की रक्षा करते थे। इक्ष्वाकु पुत्र विकुक्षि ने अपने पुत्र शशाद को आज्ञा दी कि हे महाबल! अष्टका श्राद्ध के लिये मृगों को मारकर उसका मांस लाओ। श्राद्ध कर्म की समाग्री मांस लाने की आज्ञा देने पर भी शशाद शश (खरगोश) के मांस का भक्षण करने के पश्चात् मृगया (शिकार) को गया और शिकार कर श्राद्ध कर्म समाप्ति के पहले मांस लेकर आया। पर वशिष्ठजी ने उस मांस को उच्छिष्ट बतला दिया अर्थात् यह कह दिया कि शशाद के पहले मांस भक्षण कर लेने से यह मांस श्राद्ध के योग्य नहीं रह गया, यह सुनकर इक्ष्वाकु ने उस मांस का परित्याग कर दिया। हे तात! इक्ष्वाकु के मर जाने पर शशाद अयोध्या का राज्य प्राप्त किया। शशाद का पुत्र महाबलवान ककुत्स्थ हुआ। इसने आडीबक नाम के देवासुर-युद्ध में इन्द्र के वृषभ रूप धारण करने पर वृषभ के कन्धे पर चढ़कर असुरों को जीता था। देवासुर युद्ध में इन्द्र के द्वारा यह ककुत्स्थ स्मरण किया गया था। इस ककुत्स्थ के पुत्र अनेना हुए तथा अनेना के पुत्र पृथु कहे जाते हैं।।११-२०।।

और पृथु के पुत्र विष्टाराश्व इनके आर्द्र, आर्द्र के युवनाश्व, युवनाश्व के श्राव पुत्र हुए। श्राव श्रावस्त नाम से राजगद्दी पर बैठा तथा इसने श्रावस्थी नाम की नगरी बसाई, इस श्रावस्त का पुत्र महायशस्वी बृहदश्व हुआ और बृहदश्व के परमधार्मिक पुत्र कुवलाश्व हुए। इन्होंने धुन्धु नामक राक्षस का वध किया तब से धुन्धुमार नाम से प्रसिद्ध हुए। जनमेजयजी बोले–हे ब्रह्मन्! मैं धुन्धु-वध का वृत्तान्त विस्तार से सुनना चाहता हूँ जिस कारण कुवलाश्व धुन्धुमार

कहलाये। वैशम्पायनजी बोले–हे राजन्! कुवलाश्व के सौ पुत्र थे जो धनुषधारियों में बड़े श्रेष्ठ थे तथा सब विद्याओं में पारंगत, बलवान् एवं दुर्जेय थे। सब के सब यज्ञ करनेवाले, बहुत दक्षिणा देने वाले धार्मिक थे। राजा बृहदश्व वृद्ध होने के कारण अपने पुत्र कवलाश्व को राजगद्दी दे दिये। इस प्रकार पुत्र के अधिकार में राज्यलक्ष्मी दे राजा जब बन को जाने लगे तब विप्रर्षि उत्तङ्क उस बन जाते हुए राजा बृहदश्व को रोकने लगे। हे राजन्! विघ्न से मेरी तपस्या खण्डित हो रही है, मैं निर्विघ्न तप करने में समर्थ नहीं हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिए आप रक्षा करने योग्य हैं। आप जैसे महात्मा के ही द्वारा यह पृथ्वी रक्षा करने योग्य है, जब आप ही रक्षा करेंगे तो यह पृथ्वी निरुविग्न (शान्त) होगी। आप ऐसे आपत्तिग्रस्त काल में बन जाने योग्य नहीं हैं। इस समय तो प्रजा के पालन (रक्षण) में ही महान् धर्म दिखाई पड़ता है वैसा बन जाने में धर्म नहीं दीख पड़ता अतः आपकी बुद्धि इस प्रकार की न होनी चाहिए।।२१-३०।।

हे राजेन्द्र! इस प्रकार का धर्म कहीं नहीं दिखाई पड़ता है कि जो धर्म प्रजा पालन में है, पहले के राजर्षियों ने यही बात कही है इसलिए आपको प्रजा की रक्षा करनी चाहिए आप रक्षा करने के योग्य हैं। हमारे आश्रम के समीप जन समूह से रहित बालुका का पूर्ण समुद्र है उस मरुस्थल मैदान के भूमि के अन्दर बालुका से ढका हुआ मधु राक्षस का पुत्र धुन्धु नामक महान् असुर रहता है वह लोकों के विनाश के लिये कठिन तपस्या में लीन होकर सो रहा है जो कि महाबली बड़ा भारी शरीर वाला देवताओं से भी अवध्य है। एक सम्वत्सर (एक वर्ष) बीत जाने पर जब वह अपना श्वास (सांस) छोड़ता है तो बन पर्वतों सहित पृथ्वी काँपने लगती है और उसके श्वास के वायु से बड़े जोरों की आँधी उठती है जो कि सूर्य को ढक देती है और सप्ताहों तक पृथ्वी में कम्पन होता रहता है। उस समय चिनगारियों तथा अङ्गारों के सहित अति कठिन (विषाक्त) धूम निकलने लगता है, इस कारण से मैं अपने उस आश्रम में तपस्या करता हुआ नहीं रह सकता हूँ। इसलिए लोक हित की दष्टि से आप उस बृहद शरीर वाले असुर का वध कीजिये। उसके मारे जाने पर ही यह

लोक सुखी होगा। हे पृथ्वीपते! तुम्हीं एक उसके वध में समर्थ हो, हे अनघ! पहले युग में विष्णु ने तुमको ऐसा ही वर दिया है। कि तुम महाबली भयंकर महान् असुर को मारोगे उस वरदान के प्रभाव से तुम्हारे में विष्णु का तेज प्रविष्ट हो जायेगा क्योंकि वह महातेजस्वी धुन्धु अल्प तेज वाले पुरुष से सैकड़ों वर्ष में भी नहीं मारा जा सकता है। उसका बल बहुत महान् है तथा देवताओं द्वारा भी दुर्जेय है।।३१-४०।।

उत्तङ्क ऋषि द्वारा इस प्रकार समझाये जाने पर उस राजर्षि महात्मा बृहदश्व ने अपने पुत्र कुवलाश्व को धुन्धु के वध के लिये आज्ञा दे दिया। बृहदश्व बोले–हे भगवन्! हमने तो शस्त्र का त्याग कर दिया परन्तु यह हमारा पुत्र हे द्विज श्रेष्ठ! अवश्य ही धुन्धु को मार कर धुन्धुमार इस नाम से विख्यात होगा इसमें संशय नहीं है। ऐसा कह कर राजर्षि बृहदश्व ने अपने पुत्र कुवलाश्व को धुन्धु के वध के लिये आदेश देकर संकल्पित व्रती राजा तप करने के लिए पर्वत पर चले गये। हे राजन्! इसके पश्चात् कुवलाश्व अपने सवों पुत्रों एवं उत्तंक ऋषि के सहित धुन्धु को मारने के लिये चल पड़ा। जिस समय कुवलाश्व चलन लगा उस समय भगवान् विष्णु का तेज उत्तंक की लोक-हित की कामना से प्रेरित हो उसमें प्रविष्ट हो गया। दुर्जेय कुवलाश्व के युद्ध प्रस्थान के समय आकाश में बड़ा भारी शब्द हुआ कि यह श्रीमान् (राज-पुत्र) अवध्य कुवलश्व आज धुन्धुमार होगा। हे भरतर्षभ! उस समय देवताओं ने उसके ऊपर दिव्य मालाओं की वर्षा की तथा देव दुन्दुभियाँ बजने लगीं। वह विजय करने वालों में श्रेष्ठ बलवान् अपने पुत्रों के साथ उस अक्षय बालुकार्णव समुद्र को खोदेने लगा। हे कौरव्य! वह नारायण के तेज को प्राप्त कर महातेजस्वी तथा बल से युक्त हो गया था। उसके पुत्रों द्वारा खोदने पर बालू के अन्दर छिपा हुआ पश्चिम दिशा को आवृत्त कर सोता हुआ धुन्धुमार मिला।।४१-५०।।

वह इन लोगों को देख क्रोधित हो अपने मुख की अग्नि से लोकों को उथल-पुथल करता हुआ राजा के तीन कम सौ अर्थात् सत्तानबे पुत्रों को भस्म कर दिया पश्चात् जिस प्रकार जल राशि की लहरों से युक्त समुद्र पौर्णिम चन्द्र के उदित होने पर बढ़ने लगता है उसी प्रकार वह अपने शरीर के जल के वेग

से भढ़ने लगा। हे कौरव्य! तब महातेजस्वी धुन्धुमार राजा ने उस महाबली धुन्धु के समीप जाकर उसके जलमय वेग को योग की शक्ति से पी लिया और उसी जल से अग्नि को शान्त कर दिया। फिर तो कृतकर्मा वह राजा अपने बल से उस जल रूपी विशाल शरीर वाले राक्षस को मार कर उत्तंक ऋषि को दिखा दिया। तब उत्तंक ने उस महात्मा राजा को वर प्रदान किया कि-तुम्हें अक्षय धन हो, शत्रुओं से तुम कभी पराजित न होओ, तुम्हारी धर्मनिष्ठा बनी रहे तथा सदा स्वर्ग में वास करो और जो तेरे सत्तानबे पुत्र राक्षस द्वारा भस्मीभूत किये गये हैं वे स्वर्ग के अक्षय लोक में निवास करें।।५१-५७।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरिवंशे हरि पर्वणि एकादशोऽध्यायः ।।११।।



अथ द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

वैशम्पायनजी बोले-हे जनमेजय! कुवलाश्व के शेष तीनों पुत्रों में दृढाश्व सबसे बड़ा चन्द्राश्व तथा कपिलाश्व छोटे थे। धुन्धुमार के पुत्र दृढाश्व तथा दृढाश्व के हर्यश्व, हर्यश्व के क्षत्रधर्म से युक्त निकुम्भ पुत्र हुए। हे राजन्! निकुम्भ के रण-कुशल संहताश्व उनके दो पुत्र अकृसाश्व तथा कृशाश्व हुए। और संहताश्व की पुत्री हैमवती हुई तथा हैमवती की दृषद्वतीथी यह हैमवती तीनों लोकों में विख्यात हुई इसके प्रसेनजित नाम का पुत्र हुआ। प्रसेनजित की पतिव्रता स्त्री गौरी नाम की थी जो पति के शाप से बाहूदा नाम की नदी हो गयी। प्रसेनजित के पुत्र महापराक्रमी राजा युवनाश्व हुए और युवनाश्व के पुत्र त्रिलोक विजयी मानधाता हुए। और शशविन्दु की पुत्री चैत्ररथी मानधाता की पत्नी थीं वह साध्वी विन्दुमती उस समय पृथ्वी भर में स्वरूपवती थीं। वह पतिव्रता अपने दस हजार भाइयों में सबसे जेठी (बड़ी) थीं। उसने (मान्धाता(ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया। धर्मज्ञ पुरुकुत्स तथा धार्मिक मुचुकुन्द को। पुरुकुत्स के पुत्र त्रदस्यु नामक राजा हुए। त्रदस्यु ने नर्मदा की स्त्री से संभूत नामक पुत्र पुत्पन्न किया संभूत के पुत्र राजा सुधन्वा हुए।।१-१०।।

सुधन्वा के पुत्र शत्रुओं को नाश करने वाले त्रिधन्वा हुए, राजा त्रिधन्वा के पुत्र विद्वान् त्रय्यारुण हुए। उसका पुत्र महाबली कुमार सत्यव्रत हुआ वह दुर्बुद्धि विवाह के मन्त्रों में विघ्न डालने लगा अर्थात् प्रतिबन्ध लगा दिया। वह बाल्य स्वभाव वाला काम मोहित हो हर्ष से दूसरे की विवाहिता स्त्री का बल पूर्वक अपहरण कर लिया था। काम के वशिभूत हो अपने पुर में रहने वाले किसी कन्या का भी अपहरण कर लिया था। इस अधर्म की कील से (कलंक से) राजा त्रय्यारुण ने क्रोध से उसे अपंध्वस (विलोमज = दूसरे से उत्पन्न) ऐसा बार बार कहते हुए निकाल दिया, तब वह अपने पिता से बोला कि आप के द्वारा त्यागा गया मैं कहाँ जाकर रहूँ। पिता ने कहा कि तुम जाकर चाण्डालों के साथ रहो (बसो) हम तुम्हारे जैसे कुल कलंकी पुत्र से अब पुत्रवान नहीं होना चाहते। पिता के द्वारा ऐसा कहा गया वह नगर से निकल गया और उसको भगवान् वशिष्ठ ऋषि ने रोका नहीं। हे तात! वह पिता से त्यागा गया सत्यव्रत चाण्डालों के घर के समीप जाकर रहने लगा और उसके पिता भजन करने के लिये बन को चले गये। सत्यव्रत के अधर्म के कारण उसके राज्य में इन्द्र ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं की। विश्वामित्र ने उसी देश में अपनी स्त्री को धरोहर के रूप में रख कर सागरानूप नामक स्थान पर घोर तप करने लगे।।१६-२०।।

तब उनकी स्त्री भोजन का कष्ट देख कर अपने औरस मध्यम पुत्र को गले में बाँध कर सौ गौ की कीमत पर शेष कुटुम्ब के पोषण के लिए बेचने लगी। उस महर्षिपुत्र मध्यम को गले में बँध कर बिकता हुआ देख धर्मात्मा राजपुत्र ने छुड़ा दिया। महाबाहु सत्यव्रत विश्वामित्र को प्रसन्न करने के लिये तथा उनका कृपा पात्र बनने के लिए उनके कुटुम्ब का भरण-पोषण करने लगा। वह सुमध्यम् गले में बँधने के कारण गालव नामक महान् तपस्वी मुनि हुए । हे तात! इस प्रकार कुशवंशी गालव मुनि को उस वीर ने छुड़ाया।।२१-२४।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरिवंशे हरि पर्वणि द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।



अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

वैशम्पायनजी बोले-वह सत्यव्रत दया से, विश्वामित्र में भक्ति होने से तथा वसिष्ठजी की शिष्यता तोड़ दूँगा इस प्रतिज्ञा से अर्थात् इन तीन कारणों से विश्वमित्र के कुटुम्ब का पालन-पोषण करने लगा। वह बन में चरने वाले मृगों, शूकरों तथा महिषों को मारकर उनके मांस को विश्वामित्र के आश्रम के समीप वृक्ष में बाँध दिया करता था। पिता के बन चले जाने पर पिता के आज्ञानुसार बारहवर्ष के लिए उपांशु व्रत (जिसका नियम किसी को ज्ञात न हो) की दीक्षा लेकर व्रत में स्थित रहने लगा। और अयोध्या नगर तथा उनके राष्ट एवं अन्तःपुर की पुरोहित और उपाध्याय (अध्यापक) होने के कारण वसिष्ठजी रक्षा करने लगे। सत्यव्रत बाल स्वभाव से और भावी घटनाओं के कारण वसिष्ठ जी के ऊपर क्रोध धारण करने लगा। क्रोध करन का कारण यह था कि जब उसके पिता उसे निकालने लगे तो वसिष्ठजी ने उसके पिता को निकालने से मना नहीं किया था। पाणि-ग्रहण मंत्र के सातवें पद के समाप्त होने पर ही पाणि-ग्रहण समाप्त होता है अतः परदारापहारी ही नहीं अपितु कन्याका हरण करने वाला भी है अतः उपांशु व्रत बारह वर्षों में समाप्त हो जाने पर ही इसका राज्याभिषेक करूँगा इस गूढ़ आशय वाले उपांशु व्रत को सत्यव्रत न समझ सका। प्रत्युत उलटा यह समझ बैठा की धर्म को जानते हुए वसिष्ठजी ने हमारी रक्षा नहीं की इसलिए सत्यव्रत वसिष्ठ जी के ऊपर मन में क्रोध रखने लगा। भगवान् वसष्ठि उसे गुण की बुद्धि से वैसा किया था अर्थात् पाप के प्रायश्चित रूपी व्रत करने के बाद इसकी आत्मा शुद्ध होकर राज्योपयोगी गुणों को धारण कर सकेगी इस गूढ़ व्रत वाले आशय को सत्यव्रत न समझ सका। उसके ऊपर पिता के असन्तुष्ट होने के कारण इन्द्र ने बारह वर्ष तक वर्षा नहीं की।।१-१०।।

वह इस समय कठिन व्रत की दीक्षा को धारण कर व्रत करेगा। तो इसके कुल का उद्धार हो जायेगा। इस कारण वसिष्ठजी ने पिता द्वारा त्यागे गये सत्यव्रत को त्यागने से नहीं रोका था वसिष्ठजी चाहते थे कि जब यह व्रत द्वारा शुद्ध हो जाय तब इसका राज्याभिषेक करूँ इस प्रकार की मुनि की

संमति थी। हे राजन्! वह बली सत्यव्रत दीक्षा धारण कर बारह वर्षों तक उपांशु व्रत में स्थित रह कर महान् व्रत किया। वह नृपात्मज सत्यव्रत मांस के नहीं रहने पर वसिष्ठजी के सम्पूर्ण कामनाओं को पूरी करने वाली तथा दूध देने वाली गौ को देखा। हे जनमेजय! क्रोध, मोह तथा श्रम से क्षुधित (भूखा हुआ) वह दस धर्मों वाला भावी राजा सत्यव्रत उस गौ को मार डाला (मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, श्रान्त, क्रुद्ध, बुभुक्षित, त्वरमाण, भीरु, लुब्ध तथा कामी)। उस गौ के मांस को स्वयं खाया और विश्वामित्र के पुत्रों को भी खिलाया। वसिष्ठजी जब आश्रम पर आये और इस घटना को सुने तो बड़े ही क्रोधित हो सत्यव्रत से यह वचन बोले। वसिष्ठजी बोले–हे क्रूर! तुम्हारे शंकु (उद्दण्डता रूप दोष) को नष्ट कर डालूँगा फिर तो तेरे चाहने पर भी ऐसी उद्दण्डता तुझसे न हो सकेगी। विवाहिता स्त्री तथा कन्या का अपहरण कर पिता को असन्तुष्ट करना और गुरु की दुधारू गौ का वध करना तथा जिस मांस का भक्षण नहीं करना चाहिए ऐसे मांस का भक्षण करना ये तीन तुम्हारे वेद विरुद्ध कार्य हैं। वैशम्पायनजी बोले–इन्हीं तीनों पाप के अमिट शकुओं (स्तम्भों) को देख कर महातपस्वी वसिष्ठजी ने उसका नाम त्रिशंकु रखा तब से यह त्रिशंकु नाम से विख्यात हुआ। अनावृष्टि होने के कारण अकाल पड़ जाने के समय विश्वामित्र के कुटुम्ब का भरण पोषण करने के बाद विश्वामित्र तपस्यानुष्ठान पूर्ण कर आये तो स्वकुटुम्ब-भरण रूप समाचार को सुन प्रसन्न हो त्रिशंकु को वर देने को उद्यत हुए।।११-२०।।

वर माँगो ऐसा कहने पर त्रिशंकु ने वर माँगा कि मैं इसी शरीर को धारण कर (जीतेजी) स्वर्ग जाऊँ। बारह वर्ष की अनावृष्टि समाप्त हो जाने पर विश्वामित्र ने पिता के राज्य पर उसका राज्याभिष्क कर उससे यज्ञ कराया। और देवताओं तथा वसिष्ठ के देखते-देखते उसको स्वर्ग भेज दिया। उसकी सत्यरथा नाम की स्त्री थी जो कि कैकय वंश की कन्या थी, उसने अकल्पष (पाप रहित) हरिश्चन्द्र को उत्पन्न किया। वही त्रिशंकु पुत्र राजा हरिश्चन्द्र राजसूय यज्ञ को करने वाला सम्राट (चक्रवर्ती राजा) हुआ। हरिश्चन्द्र के पुत्र महाबली रोहित हुए जिन्होंन राजधानी बनाने के लिये रोहितपुर नामक नगर

बसाया था। वह राजर्षि राज्य करके तथा प्रजा का पालन कर इस संसार को असार समझ कर रोहितपुर ब्राह्मणों को दान कर दिया। रोहित के पुत्र हरित हुए हरित के चञ्चु, चञ्चु के विजय और सुदेव दो पुत्र हुए। विजय ने सब क्षत्रियों को जीत लिया था इसलिए वह विजय सचमुच विजय नाम से प्रसिद्ध हुआ। विजय के पुत्र धर्म तथा अर्थ को जानने वाले रुरुक हुए। रुरुक के वृक, वृक के बाहु पुत्र हुए। राजा बाहु उस धर्म के युग में कोई उतने धार्मिक नहीं थे इस कारण हैहयवंशी ताल जङ्घा क्षत्रियों ने शक, यवन, कम्बोज, पारद तथा पह्लवों को साथ लेकर उस राजा बाहु को गद्दी से उतार दिया।।२१-३१।।

फिर वह बाहु अपनी रानी को लेकर बन में भृगु वंशी और्व के आश्रम पर चला गया तब वहाँ विष से लिपटे हुए बाहु के पुत्र सगर हुए जिसकी और्व ने रक्षा की गर (विष) के साथ उत्पन्न होने से उसका नाम सगर हुआ। पश्चात् सगर ने भृगु वंशी और्व से युद्ध विद्या की शिक्षा प्राप्त कर तथा आग्नेयास्त्र लेकर तालजङ्घा हैहयों को मार कर पृथ्वी को जीत लिया। और वह अच्युत (पूर्ण शक्ति वाला) धर्म का ज्ञाता सगर शक पह्लव तथा पारदादिकों को क्षत्रियधर्म से च्युत कर दिया अर्थात् तुम लोग क्षत्रियों के धर्म को (शस्त्रास्त्रों को) नहीं धारण कर सकते ऐसी अनिवार्य आज्ञा प्रदान किया।।३१-३४।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरिवंशे हरि पर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।



अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

जनमेजयजी बोले–हे तपोधन वैशम्पायन! क्यों गर (विष) के साथ सगर उत्पन्न हुए और किसलिये शकादिक क्षत्रियों को कुलोचित्त धर्म से भ्रष्ट कर दिया यह सब हमसे विस्तार पूर्वक कहिये। वैशम्पायन जी बोले–हे विशाम्पते! राजा बाहु के व्यसनी हो जाने पर अर्थात् आखेट पर स्त्री-गमन तथा द्यूत (जुआ) आदि में रत होने से शकादिकों के साथ हैहयवंशी तालजङ्घों ने बाहु के राज्य का अपहरण कर लिया। यवन, पारद, कम्बोज, पह्लव तथ

खस इन पाँचों ने भी मिलकर हैहयों के राज्य सिद्धि के लिये बाहु पर आक्रमण किया था। हरण हो गया है राज्य जिसका ऐसा वह राजा बाहु वन को चला गया तथा उसकी पत्नी भी उसके पीछे-पीछे बन में गई राजा बाहु दुखी होकर बन में ही अपने प्राणों को छोड़ दिया। उसकी पत्नी यदु वंश की कन्या थी और उस समय वह गर्भवती थी फिर भी उसके पीछे गई उसकी सौत ने उसे पहले ही विष दे दिया था। वह अपने पति की चित्ता बना कर पति के पास चिता पर सती होने के लिये चढ़ी यह दृश्य देखकर भृगु वंशी और्व मुनि ने उसको सती होने से यह कह कर रोक दिया कि तुम गर्भवती हो अतः तुम सती होने के योग्य नहीं हो। फिर तो और्व मुनि के आश्रम में उसी गर्भ से गर (विष) सहित महाबाहु सगर नाम के राजा उत्पन्न हुए। और्व मुनि ने उस बच्चे का जात कर्म संस्कारादि किये पश्चात् उसे वेद तथा शास्त्रों को पढ़ाया एवं युद्ध करना सिखाया और देवताओं से भी दुःसह आग्नेयास्त्र दिया। फिर तो वह सगर अस्त्र तथा बल से युक्त हो गया।।१-१०।।

और क्रोध में भरकर हैहयों का संहार कर दिया कि जैसे कुपित रुद्र पशुओं का संहार करे और इस संसार में विशाल कीर्ति प्राप्त कर कीर्ति वालों में सबसे श्रेष्ठ हो गया। पश्चात् वह शक, यवन, कम्बोज, तथा पह्लवों का निःशेष (लोप) करने पर कटिबद्ध हो गया। और उन लोगों का वध करने लगा तब वे महात्मा सगर के द्वारा वध्यमान (ताड़ित) हो वसिष्ठ मुनि की शरण में गये। तब महातेजस्वी वसिष्ठ ने शरण में आये हुए की रक्षा करनी चाहिए ऐसा विचार कर उन्हें अभय दाने दे सगर को रोक दिया। पश्चात् सगर ने अपनी प्रतिज्ञा और गुरु के वाक्य को विचार उनको क्षत्रिय वेष से अन्य दूसरे वेष में कर उनके क्षत्रिय धर्म को नष्ट कर दिया। शकों का आधा शिर मुड़वा कर छोड़ दिया। यवनों का सब शिर मुड़वा दिया तथा काम्बोजों का भी सब शिर मुड़वा दिया और पारदों को केश सहित छोड़ दिया एवं पह्लवों को दाढ़ी रखवा कर छोड़ दिया तथा उस महात्मा ने अध्ययन और यजन से उनको अलग कर दिया। हे विशाम्पते! शक, यवन, कम्बोज, कोलि, सर्प, महिष, दार्द्य, चोल तथ केरल ये सब क्षत्रिय थे, वसिष्ठ के वचन से महात्मा सगर ने हे राजन्! उनको क्षत्रिय धर्म से अलग कर दिया।।११-१९।।

वह धर्म-विजयी राजा सगर खस, पार, चौल, मद्र, किष्किन्धक, कौन्तल, बङ्ग, साल्व तथा कोंकण आदि अन्यानय देशों की वसुन्धरा को जीतकर और अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा लेकर यज्ञ के लिये घोड़ा छोड़ा। जब घोड़ा घुमाया जा रहा था तब पूर्व और दक्षिण दिशा के कोंण में समुद्र के किनारे से इन्द्र ने घोड़े को चुराकर पृथ्वी में छिपा दिया तो राजा सगर ने अपने पुत्रों से वहाँ की पृथ्वी खुदवायी। उस खुदी हुई पृथ्वी के अन्दर महासमुद्र में आदि पुरुष देव कृष्ण प्रजापति विष्णु को कपिल मुनि के रूप में सोते हुए देखा। फिर वे योगनिद्रा के भंग होने पर उठकर आँखें खोले तो उनकी नेत्रों की प्रज्वलित ज्योति से चार को छोड़ बाकी सब पुत्र जलकर भस्मीभूत हो गये। बर्हकेतु, सुकेतु धर्मरथ वंश को बढ़ाने वाला वीर राजा पञ्चजन ये ही चार पुत्र बच गये। पश्चात् इनको भगवान् हरि नारायण ने वर दिया कि यह इक्ष्वाकु का वंश अक्षय हो तथा अमित कीर्ति प्राप्त हो और यह समुद्र सागर का पुत्र कहलाये आप लोगों को स्वर्ग में आवास प्राप्त हो और चक्षुतेज से मरे पुत्रों को अक्षय लोक में निवास करने के लिये कहा। पश्चात् समुद्र ने अर्घ्य लेकर राजा की वन्दना किया। राजा सगर के इस कर्म से समुद्र सागर इस नाम से विख्यात हुआ। फिर अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा समुद्र से प्राप्त हुआ। राजा सगर ने सौ अश्वमेध यज्ञ किया था और उनके साठ हजार पुत्र थे ऐसा सुना जाता है।।२०-३०।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरिवंशे हरि पर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।



अथ पंचदशोऽध्यायः ।।१५।।

जनमेजयजी बोले-हे द्विज! सगर के साठ हजार पराक्रमी पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुए। वैशम्पायनजी बोले-कि हे राजन्! राजा सगर की दो रानियाँ थीं जिन्होंने तप के द्वारा अपने पापों को नष्ट कर दिया। जेठी रानी राजा विदर्भ की पुत्री केशिनी नाम की थी। और सगर की छोटी पत्नी परम धार्मिक अरिष्टनेमी की पुत्री थी जो कि उस समय पृथ्वी में सुन्दरता में एक

थी। हे राजन्! और्व मुनि ने दोनों को वरदान दिया था। और्व ने कहा कि एक स्त्री साठ हजार पुत्रों को माँग ले। और एक स्त्री वंशधर एक पुत्र को माग ले। ऐसा सुन उनमें से एक ने लोभवश शूरवीर साठ हजार पुत्रों को माँगा। दूसरी ने वंशधर एक ही पुत्र को माँगा। रानी केशिनी के सगर द्वारा असमञ्जस एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ। जो पञ्चजन नाम से राज्यशासन किया। तथा महाबली हुआ। और जो दूसरी रानी ईलिनी थी उसने बीजों (गर्भो) से भरी हुई एक तुम्बी को उत्पन्न किया यह बात प्रसिद्ध है। उसी में तिल के समान साठ हजार गर्भ थे। समय प्राप्त कर यथाक्रम से बढ़ने लगे। पिता उन्हें घृत के घड़ों में डाल और क्रम में एक-एक दासी प्रत्येक के संरक्षण के लिये लगा दिया। पश्चात् दस महीना बीत जाने पर यथा समय क्रम से सगर की प्रीति को बढ़ानेवाले कुमार उत्पन्न होने लगे।।१-१०।।

हे पृथ्वीपते! इस प्रकार तुम्बी के मध्य से साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। नारायण के तेज से युक्त उन महात्माओं (राजकुमारों) का भाई जो असमंजस नाम का राजपुत्र था वह पञ्चजन नाम से राजगद्दी पर बैठा। राजा पञ्चजन के पुत्र अंशुमान हुए जो खट्वाङ्ग नाम से भी विख्यात थे। जो स्वर्ग से यहाँ आकर मुहूर्त मात्र का जीवन प्राप्त कर बुद्धि के सूक्ष्म विचारों से सत्य का (ब्रह्मका) अन्वेषण कर तीनों लोकों को (ब्रह्म मयं खलु इदं जगत्) सब ब्रह्ममय है ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया। अंशुमान पुत्र दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए जो गंगा को लाये वे महाभाग कीर्तिमान् तथा इन्द्र के समान पराक्रमी थे। उन्होंने गंगाजी को समुद्र पर्यन्त लाकर पुत्री के समान उनका आदर किया इसीलिये वंश परम्परा के ज्ञाताओं ने गंगाजी को भागीरथी कहा है और अब भी कहते हैं। भगीरथ के पुत्र राजा श्रुत इस नाम से विख्यात हुए और श्रुत के पुत्र परम धार्मिक नाभाग हुए। नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए जो राजा सिन्धु द्वीप के पिता थे और सिन्धु द्वीप के अयुताजित नाम के महाबली पुत्र हुए। अयुताजित के महायशस्वी ऋतपर्ण पुत्र थे। (ऋतुपर्ण गलत नाम है) जो राजा नल के मित्र तथा महाबली थे जिनको द्यूत (जुआ) विद्या का वास्तविक ज्ञान था। ऋतपर्ण के राजा आर्तपर्णि पुत्र हुए तथा आर्तपर्णि के राजा सुदास पुत्र हुए जो इन्द्र के मित्र थे।।११-२०।।

सुदास के राजा सौदास पुत्र थे जो कल्माषपाद तथा मित्रसह नाम से भी प्रसिद्ध थे। कल्माषपाद के पुत्र सर्वकर्मा और इन्हीं सर्वकर्मा के पुत्र दादा अनरण्यदेव थे (जिनकी मुठभेड़ राक्षसराज रावण से हुई थी) हे पार्थिवर्षभ! अनरण्यदेव के पुत्र निघ्न और निघ्न के अनमित्र तथा रघु थे जो उच्च कोटि के राजा थे। अनमित्र के दुलिदुह नामक पुत्र हुआ और दुलिदुह के पुत्र राजा दिलीप थे जो श्रीरामचन्द्रजी के प्रपितामह हैं। राजा दिलीप के पुत्र महाबाहु रघु हुए, वे महाबली अयोध्या के महाराजा (चक्रवर्ती सम्राट्) हुए। रघु के अज और अज के दशरथ, दशरथ के महायशस्वी धर्मात्मा राम पुत्र हुए। राम के कुश नाम विख्यात पुत्र हुए। कुश के अतिथि और अतिथि के निषध और निषध के नल पुत्र हुए तथा नल के नभ, नभ के पुण्डरीक के क्षेमधन्वा। क्षेमधन्वा के प्रतापी देवानीक देवानीक के अहिनगु अहिनगु के राजा सुधन्वा नामक विख्यात पुत्र हुआ और सुधन्वा के राजा अनल ।।२१-३०।।

अनल के उक्थ, उक्थ के वज्रनाभ वज्रनाभ के शंख पुत्र हुए जो कि बड़े विद्वान् थे और व्युषिताश्व इस नाम से विख्यात थे। इनके पुत्र पुष्य थे जो कि विद्वान थे, इनके पुत्र अर्थसिद्ध थे। अर्थसिद्ध के पुत्र सुदर्शन, सुदर्शन के अग्निवर्ण, अग्निवर्ण के शीघ्र, शीघ्र के मरु पुत्र हुए। मरु योगी होकर कपाल द्वीप में स्थित हैं। मरु के पुत्र विश्वविख्यात राजा बृहद्बल हुए। हे भरतर्षभ! पुराण में दो नलों का वर्णन आता है। एक वीरसेन के पुत्र नल थे और दूसरे नल इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए थे। हे राजन्! मैंने इक्ष्वाकु वंश के प्रधान-प्रधान पुरुषों का वर्णन किया है। ये विवस्वान् (सूर्य) वंश के राजा बड़े तपस्वी थे। जो पुरुष विवस्वान् (सूर्य) वंश की इस सृष्टि को तथा प्रजा को पुष्ट करने वाला श्राद्धदेव (आदित्य) के आख्यान को पढ़ता है वह पुत्रवान्, आयुष्मान्, रोगरहित तथा पापों से रहित होकर सूर्य लोक की सायुज्य मुक्ति को पाता है।।३१-३८।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायाँ हरिवंशे हरि पर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।



अथ षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

जनमेजयजी बोले-हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! आदित्य विवस्वान् श्राद्धदेव इस नाम को कैसे प्राप्त हुए इसे मैं सुनना चाहता हूँ तथा श्राद्ध की श्रेष्ठ विधि (प्रकार) भी सुनना चाहता हूँ। और पितरों की पहले सृष्टि जिस प्रकार हुई एवं ये पितर कौन ह, मैंने ब्राह्मणों के द्वारा सुना है कि स्वर्ग में रहने वाले पितर देवताओं के भी देवता हैं। ऐसा वेद के भी ज्ञाता इसी बात को कहते हैं, तो यथार्थ सत्य क्या है मैं जानना चाहता हूँ। जो उनके गुण हैं, जो उनका परम बल है और जिस प्रकार हमारे किये गये श्राद्ध से वे प्रसन्न होते हैं। और वे प्रसन्न होकर जिस प्रकार हमारा कल्याण करते हैं यह सब पितरों का उत्तम कार्यक्रम जानना चाहता हूँ। वैशम्पायनजी बोले-हे राजन्! हम पितरों की उत्तम सृष्टि का वर्णन करेंगे और जिस प्रकार हम लोगों द्वारा किया हुआ श्राद्ध उनको प्रसन्न करता है तथा वे प्रसन्न होकर जिस प्रकार हम लोगों का कल्याम करते हैं इन सभी बातों को कहूँगा। जिस प्रकार तुम हमसे यह प्रश्न पूछ रहे हो इसी प्रकार भीष्म पितामह के पूछने पर भीष्म के लिए मार्कण्डेयजी ने कहा था और भीष्म के शरशय्यारूढ़ होने पर धर्मराज के पूछने पर भीष्म ने जो कहा है। ठीक उसी प्रकार उदाहरण सहित मैं आपसे कहूँगा और मार्कण्डेय ऋषि के पूछने पर सनत्कुमार ने भी पितरों की सृष्टि का वर्णन किया है। युधिष्ठिर जी बोले-पुष्टि (कल्याण) को चाहने वाला मनुष्य किस प्रकार कल्याण प्राप्त कर सकता है और किस कार्य के करने से मनुष्य को सोचना (पश्चात्ताप) नहीं होता है वह मैं सुनना चाहता हूँ। भीष्मजी बोले-सम्पूर्ण कामनाओं के लिए श्राद्ध के द्वारा जो पितरों को तृप्त करता है और पितरों की प्रसन्नता के लिए तत्पर रहकर प्रयत्न से श्राद्ध करता है तो ऐसा श्राद्धी (श्राद्ध करने वाला) इस लोक तथा परलोक दोनों लोकों में आनन्द से हर्षित होता है।।१-१०।।

ये युधिष्ठिर! पितर श्राद्ध से प्रसन्न होकर धर्म चाहने वाले को धर्म तथा पुत्र चाहने वाले को पुत्र एवं पुष्टि (कल्याण) चाहने वाले को कल्याण प्रदान

करते हैं। युधिष्ठिरजी बोले–हे पितामह! किसी के पितर तो स्वर्ग में रहते हैं और किसी के पितर नरक में रहते हैं, क्योंकि यह बात निश्चित है कि प्राणियों को कर्म के अनुसार फल भोगना पड़ता है। धार्मिक पुरुष फल (कल्याण) की कामना से सदा पिता, पितामह तथा प्रतितामहादिकों को उद्देश्य कर इन तीनों पिण्डों (कोटियों में) श्राद्ध करते हैं तो वह किया हुआ श्राद्ध पितरों को किस प्रकार प्राप्त होता है। तथा जो पितर नरक में स्थित हैं वे मनुष्यों को फल प्रदान करने में कैसे समर्थ होते हैं, कि फल देने वाले कोई दूसरे पितर होते हैं, क्योंकि मैने ऐसा सुना है कि पितर देवताओं के भी देवता हैं इसलिए देवता भी स्वर्ग में पितरों की पूजा करते हैं, तो इन पितरों में किनकी हम लोग पूजा करें यह सब हम विस्तार से सुनना चाहते हैं। हे अमित बुद्धिमान्, जिस प्रकार पितरों का श्राद्ध मुक्ति प्रदान करने वाला हो वह कथा के रूप में आप कहिये। भीष्मजी बोले–हे अरिंदम! जैसा कि हमने सुना है वैसा आपसे पितरों का आख्यान वर्णन करूँगा। जो अन्य दूसरे पितर हैं, जिनकी हम लोग पूजा करते हैं उनके विषय में हमारे लोकान्तर गत (दिवंगत) पिता ने हमसे बतलाया था। श्राद्ध के समय जब मैं अपने पिता को पिण्ड प्रदान करने को उद्यत हुआ तो मेरे पिताजी का हाथ भूमि का भेदन कर निकल आया और वह हाथ हमसे पिण्ड माँगने लगा। वह मेरे पिता का हाथ अन्यान्य आभूषणों से तथा केयूर (बाजूबन्द) से युक्त लाल-लाल अँगुलियों वाला जैसा कि मैंने पहले देखा था ठीक वैसा ही था।।११-२०।।

कल्प (बौधायनादि गृह्य सूत्रों) में इस प्रकार की विधि नहीं देखी गई ऐसा विचार कर मैंने पिण्डों को कुशों के ऊपर रख दिया। तब प्रसन्न हो मेरे पिता मधुर वाणी से बोले–हे भरतश्रेष्ठ अनघ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। हे पुत्र! तुम्हारे जैसे धर्मज्ञ पण्डित सत्पुत्र से मैं पुत्रवान् होकर इस लोक तथा परलोक में भी कृतार्थ हो गया। हे दृढ़व्रत! मैं तुम्हारी धार्मिक जिज्ञासा (धर्मशास्त्र की जानकारी) की परीक्षा किया हूँ तथा लोक की धर्म में अचल निष्ठा हो इसलिये भी हे अनघ! ऐसा किया हूँ। धर्म की रक्षा करने वाले राजा को धर्म का चौथा अंश प्राप्त होता है तथा धर्म की रक्षा न करने वाले मूर्ख राजा को

पाप का चौथा अंश प्राप्त होता है। (जैसे राजा का यह कर्तव्य होता है कि वह धर्म प्रमाण करे यही धर्मशास्त्रों का सिद्धान्त है) क्योंकि धर्माचरण के विषय में राजा जिस बात को प्रमाणित करता है उसी बात का अनुकरण कर प्रजा सदा चलती है। (तो वैसा ही) तुमने वेद के सनातन धर्म वाले शास्त्रों को प्रमाणित किया है इससे हमारी प्रसन्नता तुलना से रहित हो गई है अर्थात मैं अत्यधिक प्रसन्न हूँ। इसलिये मैं तुम्हारी प्रीति से प्रसन्न हो तुमको तीनों लोकों में दुर्लभ वर दे रहा हूँ इसको ग्रहण करो। जब तक तुम जीने की इच्छा करोगे तबतक तुम्हारी मृत्यु न होगी। तुम्हारी आज्ञा को प्राप्त कर ही मृत्यु होगी अर्थात् तुम्हारी इच्छा मृत्यु होगी। और अब तुम कहो कौन सा अभीष्ट वर तुमको दूँ। हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे मन में जो हो वह कहो।।२१-३०।।

तब पिताजी के ऐसा कहने पर मैं हाथ जोड़ नमस्कार कर पिताजी से बोला–कि हमारे ऊपर आपके प्रसन्न होने पर ही मैं कृतकृत्य हो गया। हे महातेजस्विन्! यदि मैं आपकी कृपा के योग्य हो गया हूँ तो मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ उसका उत्तर आप स्वयं दें। तो वे धर्मात्मा मुझसे बोले कि हे भीष्म! क्या पूछना चाहते हो पूछो, हे भारत! जो तुम पूछोगे उन सब संशयों को मैं दूर कर दूगा। तब पुण्यलोक गये हुए तथा अन्तर्हित (छिपे हुए) रूप से खड़े हुए उन पिता से मैं कौतूहलपूर्वक पूछा। भीष्म बोले–मैं सुनता हूँ कि पितर लोग देवताओं के भी देवता हैं तो पितर देवता तथा अन्य जो पितर हैं इसमें किसकी पूजा हम लोगों को करनी चाहिए। और हम लोगों के द्वारा किये गये श्राद्ध से परलोकगत पितर किस प्रकार सन्तुष्ट होते हैं तथा किस प्रकार श्राद्ध का फल देते हैं। देवता, मनुष्य, दानव, यक्ष, उरग, गन्धर्व, किन्नर तथा महासर्प किसकी पूजा करते हैं। यदि पितर अपने कर्मों की गति से नरक में हैं तो देवता कैसे उनकी पूजा करते हैं, यदि शुभ कर्मों के फल से वे पितर स्वर्ग में हैं तो हमारे जैसे अल्प पुण्य वालों का श्राद्ध कैसे उनको प्राप्त होता है, इन दोनों प्रकारों में श्राद्ध की वैयर्थापत्ति ज्ञात होती है। इस विषय में हमको बहुत बड़ा सन्देह है तथा बड़ा ही कौतूहल है अतः हे धर्मज्ञ! आप सर्वज्ञ हैं ऐसा मेरा मत है इसलिए हमारे इस संशय को दूर कीजिए। इस प्रकार से भीष्म

के वचनों को सुनकर उनके पिताजी बोले। शन्तनु बोले–हे निष्पाप भारत! जो तुमने पूछा है उसको संक्षेप से कहता हूँ कि जिस प्रकार पितर उत्पन्न हुए हैं और जिस प्रकार वे फल देते हैं। पितरों के श्राद्ध में जे सब कारण है उसे सावधान होकर सुनो। जो स्वर्ग में पितर हैं वे आदिदेव ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। उन्हीं की पूजा देवता सहित असुर, मनुष्य, यक्ष सहित गन्धर्व तथा किन्नर सहित महासर्प एवं सम्पूर्ण लोक करते हैं।।३१-४१।।

ब्रह्मा का उन लोगों के लिये यह आज्ञा है कि इन लोगों के किये श्राद्ध से तृप्त होकर इन लोगों को इनकी कामनाओं को पूर्ण कर तृप्त करो। हे महाभाग! जब तुम मुख्य कल्पसूत्रों से श्राद्ध कर उनका पूजन करोगे तो वे सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले पितर तुम्हारा कल्याण करेंगे। हे भारत! जब तुम नाम गोत्र उच्चारण कर उनकी आराधना कर तृप्त करोगे तो वे स्वर्गस्थ पितर हम लोगों को तृप्त करेंगे। हे भारत! शेष सभी बातों को मार्कण्डेयजी तुमसे कहेंगे। यह पितृभक्त तथा आत्मज्ञानी हैं। आज यह हमारे ऊपर कृपा करने के लिये इस श्राद्ध में उपस्थित हुए हैं, तुम पुछो ऐसा कहकर वे मेरे पिता (महाराज शन्तनु) अन्तर्ध्यान हो गये।।४२-४६।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरिवंशे हरि पर्वणि षोडशोऽध्यायः।।१६।।



अथ सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

भीष्मजी बोले–तब मैं पिता के कथनानुसार मार्कण्डेयजी से सावधान चित्त हो वही प्रश्न पूछा कि जो अपने पिता जी से पहले पूछा था। तब वे महातपस्वी धर्मात्मा मार्कण्डेय मुनि हमसे बोले कि हे निष्पाप भीष्म! मैं विस्तार से सभी बातों को कहूँगा तुम एक चित्त होकर सुनो। मैंने पितरों के ही प्रसाद से दीर्घायु (लम्बी अवस्था) प्राप्त की है तथा पितरों की भक्ति से ही लोक में महान् यश प्राप्त किया है। मैं एक समय युग पर्यन्त अनके हजार वर्षों तक मेरु पर्वत के ऊपर चढ़ कर कठिन तप करता रहा। तो एक बार उत्तर दिशा की ओर से दिशाओं को प्रकाशित करने वाले बड़े भारी विमान को पर्वत के ऊपर

आते हुए देखा। (विमान जब मेरे समीप पहुँचा) तो विमन स्थित पर्यङ्क (पलंग शय्या) के ऊपर सूर्य के समान अति दीप्त तेज वाले अग्नि के समान अंगुष्ठ के बराबर सोते हुए पुरुष को देखा फिर तो मैंने उन विभु को शिर से प्रमाण कर। पाद्य तथा अर्घ के द्वारा उन विमानस्थ महापुरुष का पूजन किया पश्चात् उन दुर्धर्ष से पूछा कि हे विभो! मेरी तपस्या के सामर्थ्य से यहाँ प्रकट हुए गुणात्मक मायामय शरीर वाले आपको हम कैसे जानें। हमको तो ऐसा ज्ञात होता है कि आप देवताओं के भी देवता हैं। तब वे धर्मात्मा हमसे हँसकर बोले कि हे अनघ! तुमने अच्छी तरह तप नहीं किया कि हमको पहचानो।।१-१०।।

पश्चात् क्षण मात्र में ही उन्होंने अंगुष्ठ मात्र शरीर को अन्तर्हित कर दूसरा महापुरुष लक्षण वाला शरीर धारण कर लिया, इस प्रकार शरीर वाले महापुरुष को मैं पहले कभी नहीं देखा था। सनत्कुमारजी बोले–हमको तुम विभु ब्रह्मा का मानस पुत्र पूर्वज जानो जो कि इस समय तपस्या के बल से उत्पन्न हुआ नारायण के लक्षणों वाला शरीर धारण किया हूँ। जिसको तुमने सनत्कुमार इस नाम से देवताओं के वर्णन में पहले सुन चुके हो। हे भृगुवंशी! वही सनत्कुमार मैं हूँ तेरा कल्याण हो, कहो कौन सा तुम्हारा अभीष्ट कार्य करूँ। जो ब्रह्मा के अन्य मानस पुत्र हैं वे मेरे छोटे भाई हैं वे सब मिलकर सात भाई हैं उनके वंश प्रतिष्ठित हैं। क्रतु, वसिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, अत्रि, अङ्गिरा तथा बुद्धिमान् मरीचि ये देवता तथा गन्धर्वों से सेवित एवं पूजित होकर तीनों लोकों को धारण करते हैं हे महामुने! और मैं प्रजा धर्म (सृष्टि उत्पादन) तथा काम (सब प्रकार की इच्छा) को त्याग कर आत्मा में (परमात्मा में) आत्मा को लगाकर संन्यासी हो गया हूँ। मैं जिस प्रकार बालक रूप उत्पन्न हुआ था उसी प्रकार कुमार अब भी हूँ अर्थात् सनत् (निरन्तर) कुमार (बाल्य स्वभाव के कारण राग द्वेष से रहित) हूँ अतः सनत्कुमार इस नाम से प्रतिष्ठित (विख्यात) हूँ। तुमने हमारे दर्शन की अभिलाषा से तपस्या की है इसलिए मैं तुम्हारे समीप तुम्हें दर्शन देने आया हूँ कहो तुम्हें कौन सा अभीष्ट वर प्रदान करूँ। हे भारत! सनत्कुमारजी के ऐसा कहने पर मैं उनसे बोला–

भगवान् सनत्कुमारजी के इस प्रकार प्रसन्न होकर आज्ञा देने पर। हे अनघ! मैने पितरों की सृष्टि तथ श्राद्ध का फल रूप उसी पुराने प्रश्न को पूछा।।११-२०।।

तो उन देवेश्वर ने हमारे संशय को दूर कर दिया तथा बहुत काल तक आरम्भ की जाने वाली कथा के अन्त में उन्होंने हमसे कहा कि 'रमे' अर्थात् तुम्हारे प्रश्न से सन्तुष्ट मैं यथोचित उत्तरों के द्वारा तुम्हें सन्तुष्ट करूँगा हे विप्रर्षे! तुम ध्यान से यथा तथ्य (सत्य) बातों को सुनो। हे भृगुवंशी! ब्रह्मा ने पहले देवताओं की इसलिए रचना की कि हमारी ये सब पूजा करेंगे ऐसा हुआ नहीं वे फल की इच्छा वाले देवता अपनी ही आत्मा की पूजा करने लगे। ऐसा देख ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि हे मूर्खो! तुम्हारा देवत्व नष्ट हो जाय। फिर तो उन देवताओं का देवत्व नष्ट हो जाने से वे कुछ भी न समझ सके (मोह में पड़ गये) पश्चात् लोक भी उनके आचरणों का अनुकरण कर मोह में पड़ गया। फिर वे अभिशापित देवता लोकों के ऊपर कृपा करने के लिए ब्रह्मा से याचना (प्रार्थना) करने लगे तब ब्रह्मा ने उन देवताओं से यह कहा कि। आप लोगों ने व्यभिचार किया है अर्थात् पूज्यों की पूजा न कर अपनी पूजा की है इसलिये अब आप लोग प्रायश्चित करें और अपने पुत्रों से उस प्रायश्चित्त का प्रकार पूछें तब आप लोगों को ज्ञान होगा। फिर वे देवता आर्त (दुखी) होकर अपने पुत्रों से प्रायश्चित का प्रकार पूछने लगे, तब वे ध्यान के द्वारा समझकर प्रायश्चितों को कहने लगे कि धर्मशास्त्र वेत्ताओं ने वाणी, मन, कर्म तथा नेत्रों से भी प्रायश्चित करने को बतलाते हैं अर्थात् वाणी और मन द्वारा किये कर्म का प्रायश्चित्त स्तोत्रों से तथा भक्ति श्रद्धायुक्त हो ध्यान करने से होता है। नेत्र द्वारा कर्म का नमस्कारादि द्वारा प्रायश्चिति किया जाता है। हे देवता! इस ज्ञान को प्राप्त अर्थात् हे देवताओं! आप प्रायश्चित के तत्त्व को (मर्मको) जानने वाले होओगे। हे पुत्रों! तुम ब्रह्माजी के पास जाओ। इस प्रकार पुत्रों ने देवताओं को पुत्र कह कर जब सम्बोधित किया। तब वे पुत्र इस सम्बोधन रूप वाक्य से निन्दित तथा ब्रह्मा अभिशापित देवता पितामह ब्रह्मा के पास अपने संशय को दूर करने के लिये गये। तो ब्रह्मा ने उन ब्रह्मवादी देवताओं से कहा कि–जो तुम लोगों को उन्होंने (पुत्रों ने) पुत्र कहा वह उचित ही कहा इसमें कोई अनुचित नहीं है।।२१-३०।।

तुम लोग उनके शरीरों की रचना करने वाले देवता होने से उनके पितर हुए और वे तुम लोगों को ज्ञान देने के कारण तुम्हारे पितर हुए। इस प्रकार आपस में तुम दोनों ही एक दूसरे के पितर हुए इसमें संशय की कोई बात नहीं है। हे देवताओं! जो देवता हैं वे पितर और जो पितर हैं वे देवता हुए ऐसा समझो। फिर वे देवता पुत्रों के समीप आकर पुत्रों से बोले कि ब्रह्मा ने हम लोगों का सन्देह दूर कर दिया कि परस्पर तुम दोनों ही अन्योन्याश्रयी हो (एक दूसरे से सम्बन्धित हो) आप लोग हम लोगों के पितर हैं अतः आपने ठीक ही पुत्र ऐसा सम्बोधन किया है। तो हे धर्मज्ञों! कहो कौन सा आप लोगों को अभीष्ट वर प्रदान किया जाय। जो आप लोगों ने हम लोगों को हे पुत्रों! ऐसा कहकर पुकारा है सो ठीक ही है कोई विपरीत नहीं है इसलिए आप लोग हम लोगों के पितर हैं इसमें संशय नहीं है। राक्षस, दानव तथा नाग जो भी श्राद्ध द्वारा पितरों का पूजन कर जिस कार्य को करेंगे उसका फल प्राप्त करेंगे। श्राद्ध के द्वारा स्वयं प्रसन्न (सन्तुष्ट) लौकिक पितर तथा आप लोग (दिव्य पितर) सन्तुष्ट (तृप्त) होकर अधिदेवता सोम (चन्द्रमा) को सदा तृप्त (सन्तुष्ट) करेंगे। इस प्रकार परम्परागत श्राद्ध के द्वारा सन्तुष्ट सोम बन पर्वत स्थावर जंगम से युक्त लोकों को सन्तुष्ट करेंगे। जो मनुष्य पुष्टि (कल्याण) के लिए श्राद्ध करेंगे तो पितर उनको सन्तान आदि प्रदान कर सदा कल्याण करेंगे। जो श्राद्ध में नाम गोत्रों का उच्चारण कर पिता-पितामह-प्रपितामह जो कि सर्वव्यापक हैं उनको क्रमशः तीन पिण्डदान प्रदान करेंगे तो वे पितर तृप्त होकर श्राद्धकर्ता का कल्याण कर उनकी वृद्धि करेंगे।।३१-४०।।

इस प्रकार की परमेष्ठी ब्रह्मा ने आज्ञा दी है । हम लोग आपस में एक दूसरे के देवता एवं पितर हैं यह पितामह ब्रह्मा की बात सत्य हो। सनत्कुमारजी बोले—इस प्रकार जो देवता हैं वे ही पितर हैं और जो पितर हैं वे ही देवता हैं अर्थात् परस्पर एक दूसरे के देवता तथा पितर दोनों संज्ञा से युक्त हुए ।।४१-४२।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरिवंशे हरि पर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।



अथ अष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

मार्कण्डेयजी बोले-तेजस्वी देवताओं के भी देवता भगवान् सनत्कुमार के इस प्रकार कहने पर मैं पुनः श्राद्ध तथा पितर सम्बन्धी सम्पूर्ण सन्देहों को उन अरिंदम देवश्रेष्ठ अविनाशी देव भगवान् सनत्कुमार से पूछा। हे गांगेय भीष्म! जैसे उन्होंने मुझे उत्तर दिया वह सब सुनो। कितने पितरों के गण हैं तथा किस-किस लोक में निवास करते हैं तथा देवताओं में श्रेष्ठ देवता कितने हैं और वे कहाँ रहते हैं जो कि सोम को बढ़ाने वाले हैं। सनत्कुमारजी बोले-हे पूजन कर्त्ताओं में श्रेष्ठ! पूजित पितरों के सात कण हैं। जिसमें चार तो शरीर धारण करने वाले तथा तीन बिना शरीर वाले हैं। (सुकाल, अङ्गिरस, सुस्वधा तथा सोमप ये मूर्तिमान् हैं) अर्थात् अपने कर्म से शरीर धारण करने वाले हैं और (वैराज, अग्निष्वात्ता तथा बर्हिषद ये अमूर्त्त आकाश से भी बड़े परमाणु के अन्दर भी प्रवेश कर जाने की सामर्थ्य वाले हैं) हे तपोधन! अब उनके लोकों को, उनके विशेष सृष्टि को तथा प्रभाव एवं उनकी महानता का विस्तार करता हूँ सुनो। जो पितरों के परमश्रेष्ठ धर्ममूर्ति धारण करने वाले तीन गण हैं उनके लोक तथा नाम को सुनो। हे द्विजश्रेष्ठ! इनका सनातन लोक है जहाँ वे मनमय शरीर वाले पितृगण प्रजापति विराज के मानस पुत्र रहते है। वे प्रजापति विराज के पुत्र होने से वैराज कहलाते हैं जिनकी पूजा देवता लोग शास्त्रीय विधान से करते हैं। ये योग से विभ्रष्ट हो अर्थात् निर्गुण ब्रह्म को न प्राप्त कर सगुण ब्रह्म की उपासना करने वाले सनातन लोक को प्राप्त करके भी ब्रह्मवादी हजार युगों के बाद (एक कल्प के बाद दूसरे कल्प में) पुनः उत्पन्न होते हैं। तब वे पहले जन्म के योग के संस्कार से दूसरे जन्म में उक्त सांख्य योग को प्राप्त कर वे सिद्ध योगियों की गति आवागमन से रहित हो जाते हैं।।१-१०।।

ये दिव्य पितर योगियों के योग को बढ़ाने वाले तथा सोम को अपने यौगिक शक्ति से तृप्त करने वाले हैं। इसलिए योगियों को अवश्य श्राद्ध

करना चाहिए अर्थात् श्राद्ध करने से सालोक्यता प्राप्त कर उपरोक्त क्रम से योगी लोग मुक्त हो जायेंगे। यह सोमप सोम की वृद्धि करने वालों का प्रथम सर्ग है। इनकी मानसिक पुत्री का नाम मेन है जो हिमालय की धर्मपत्नी कहलाती हैं। हिमालय के पुत्र मैनाक हुए। मैनाक के पुत्र श्रीमान् क्रौञ्च हैं, जो पर्वतों में श्रेष्ठ विशाल पर्वत के रूप में नाना प्रकार के रत्नों से युक्त हैं। शैलराज हिमालय ने मैना से तीन कन्याओं को उत्पन्न किया। पहली अपर्णा, दूसरी एकपर्णा तीसरी एकपाटला है। इन्होंने देवता तथा दानवों से भी दुःसाध्य कठिन तपस्या कर स्थावर जंगम सहित लोकों को संतापित कर दिया। एक पत्ते का आहार करने से एक पर्णा तथा एक पाटल (गुलाब) का पुष्प खाकर तप करने से एकपाटला एवं पत्ते का आहार भी त्याग कर तप करने से अपर्णा इस नाम से विख्यात हैं। जब अपर्णा ने पत्र का आहार भी त्याग दिया तो मातृस्नेह से माता ने अपर्णा को ऐसा कठिन तप करने से 'उ मा' ऐसा कहकर रोगा: उ यह शब्द सम्बोधन है। उ (हे अपर्णे!) मा अर्थात ऐसा कठिन निराहारी तप मत करो तुम्हें कष्ट होता है इसलिए मुझे भी कष्ट होता है। तो 'उ मा' ऐसा कहकर माता के निषेध करने से उस कठिन तपचारिणी का नाम उमा पड़ गया तथा वह सुन्दरी उमा नाम से तीनों लोकों में विख्यात हो गयी। हे भार्गव! इन्हीं नामों से योग करने वाली ये त्रिकुमारी इस संसार में स्थित हैं।।११-२०।।

तप करने वाली मूर्ति तीनों ही योग बल से युक्ता तथा सभी ब्रह्मवादिनी हैं एवं जिस प्रकार सनत्कुमारादि उर्ध्वरिता हैं उसी प्रकार ये उर्ध्वरिता हैं। इनमें वरवर्णिनी उमा सबसे श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ है तथा योग बल से युक्त ये महादेव की धर्मपत्नी हुईं। और हे महा ब्रह्मन! एकपर्णा बुद्धिमान् योगाचार्य असितदेवल से विवाही गयी। तथा एकपाटला का विवाह जैगीषव्य के साथ हुआ। ये दोनों एकपर्णा तथा एकपाटला भी महाभाग्यवती योगचार्यों की धर्मपत्नी हुईं। पितरों का दूसरा नाम अग्निष्वाता इस नाम से विख्यात है। इनकी मानसी कन्या का नाम अच्छोदा है और अच्छोदा नदी के रूप में है। उस अच्छोदा नदी

से एक अच्छोद नाम सर (तालाब) भी उत्पन्न हुआ। उस अच्छोदा ने कभी पितरों को पहले नहीं देखा था। वह अमूर्त बिना शरीर वाले पितरों को भी अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर न पहचान सकी कि ये ही हमारे पिता हैं। उस दुःख से अर्थात पिता की खोज करने वाली पिता के देखने पर भी भ्रमवश ठीक निर्णय न कर सकने से वह वरवर्णिनी दुःखी हो गई तथा अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले वसु को देखकर उन्हें अपना पिता समझ गई। वे अमावसु नाम वाले आयु के यशस्वी पुत्र अद्रिका नामक अप्सरा के साथ विमान में बैठे थे।।२१-३०।।

वह मन की इच्छा के अनुकूल रूप धारण करने वाली दूसरे को पिता समझ प्रार्थना रूप व्यभिचार से (अपने पिता का अतिक्रमण करने से) योग भ्रष्ट हो आकाश से गिरने लगी। जब वह स्वर्ग से च्युत होने (गिरने) लगी तो उसने त्रसरेणु के बराबर तीन विमानों को देखा जिसके अन्दर अपने पितरों को भी देखा। जो कि अप्रकट अग्नि में छिपे अग्नि (दाहकता शक्ति) के समान थे, उन्हें देख नीचे मुख किये गिरती हुई उसने कहा कि हमारी रक्षा करो। यह सुन पितरों ने कहा कि तुम मत डरो, ऐसा सुन वह आकाश में खड़ी हो गई तथा दीन वाणी द्वारा पितरों को प्रसन्न करने लगी। तब पितरों ने कहा–हे मन्दहास्ये! व्यतिक्रम रूप अपने दोष के कारण तुम ऐश्वर्य से भ्रष्ट हुइ हो। स्वर्ग में देवता जिस दैवत शरीर से जो कर्म करते हैं, उसी देवता रूप शरीर से उस कर्म का फल भी देवता भोगते हैं। देवत्व (तैजस शरीर) प्राप्त करने पर देवता लोग तुरन्त संकल्प मात्र से कर्मों का फल प्राप्त कर लेते हैं पर मनुष्य अपने किये कुकर्मों का फल मरने के बाद दूसरा शरीर धारण करने पर प्राप्त करता है। इस नियमानुसार हे तप पुत्रि! तुम इस व्यतिक्रम के फल को भोगोगी। इस प्रकार पितरों के कहने पर वह अपने पितरों को पुनः प्रार्थना द्वारा प्रसन्न किया तब वे कृपा कर ध्यान के द्वारा उसके कल्याण के लिए सोचने लगे। तो भावी घटना अवश्य घटेगी यह समझ कर उससे कहने लगे कि–तुम इस राजा वसु की कन्या होओगी। जब यह महात्मा वसु मनुष्य योनि में उत्पन्न होगा तो तुम इसकी कन्या होकर पुनः अपने दुर्लभ लोक को प्राप्त करोगी।।३१-४०।।

तुम मनुष्य योनि में प्राप्त होकर पराशर ऋषि से एक पुत्र उत्पन्न करोगी जो ब्रह्मर्षि होगा तथा एक वेद को चार भागों में विभक्त करेगा। इसके बाद महाराज शन्तनु की स्त्री होकर विचित्रवीर्य तथा चित्राङ्गद इन कीर्ति बढ़ाने वाले दो पुत्रों को उत्पन्न कर अपने लोक को चली आओगी। पितरों के व्यतिक्रम के कारण इस कुत्सित जन्म को प्राप्त करोगी। पहली बार तुम इस राजा से अद्रिका नाम स्त्री में कन्या होगी फिर अट्ठाईसवें द्वापर में मत्स्य (मछली) की योनि से उत्पन्न होगी। इस प्रकार पितरों के कहने के बाद राजा वसु की पुत्री होकर फिर मत्स्य योनि से उत्पन्न हुई और दाशेयी (सत्यवती) कहलायी। अब पितरों के तीसरे बर्हिषद गण का वर्णन करते हैं। आकाश में जो विभ्राट् (सूर्य) लोक है जहाँ बर्हिषद नामक पितरों का गण रहता है वे सुन्दर दर्शनीय मूर्ति वाले स्वर्ग में विख्यात हैं। यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग, सर्प तथा सुपर्णादि अमित तेजस्वी उनकी पूजा करते हैं। ये महात्मा पुलस्त्य प्रजापति के पुत्र हैं तथा महात्मा, महाभाग, तेजस्वी एवं तपस्वी हैं। इनकी मानसी कन्या का नाम पीवरी है, जो द्वापर के आने पर वह धर्म धारण करने वालों में श्रेष्ठ योगा (स्वयं योगिनी) होगी जो योगी की पत्नी होकर योगी पुत्रों की माता भी कहलायेगी। हे द्विजश्रेष्ठ! उस द्वापर के युग में पराशर के कुल में व्यासजी से अरणी में उत्पन्न निर्धूम अग्नि की तरह महातपस्वी एवं महायोगी शुकदेवजी उत्पन्न होंगे।।४१-५१।।

वे शुकदेवजी उस पितृ कन्या से सम्बन्ध कर चार योगाचार्य कृष्ण, गौर, प्रभु तथा शम्भु ये चार पुत्रों एवं कृत्वी नाम की एक कन्या को उत्पन्न करेंगे। कृत्वी ब्रह्मदत्त की माता तथा राजा अणुमह की पटरानी होगी। महाबुद्धिमान् शुकदेवजी महाव्रती इन योगाचार्यों को उत्पन्न करने के बाद अपने पिता व्यासजी से धर्म को सुनकर महायोगी होकर आवागमन से रहित गति अर्थात् उद्वेग रहित अव्यय शाश्वत ब्रह्म पद को प्राप्त हो जायेंगे। हे मुने! बिना मूर्ति वाले पितरों के तीन गणों का वर्णन समाप्त हुआ, ये केवल धर्म

मूर्ति वाले पितर हैं इनकी कथा का सम्बन्ध वृष्णि तथा अन्धक कुल से है जहाँ इनकी वंश परम्परा जन्मी है। (ये तीन पितर देव पूज्य हैं। अब मनुष्यपूज्य जो चार पितरों के गण हैं उनमें पहला गण सुकाल नामक है अब उनका वर्णन करते हैं) सुकाल नामक पितरों के गण प्रजापति वसिष्ठ के पितर हैं ये बराबर स्वर्गलोक में निवास करते हैं, ज्योति से चमकने वालों में भी ये अपने तेज से चमकने वाले हैं तथा सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले इन पितरों की ब्राह्मण लोग पूजा करते है। इनकी मानसी कन्या का नाम 'गौ' स्वर्ग लोक में प्रसिद्ध है। हे भीष्म! वह तुम्हारे ही कुल में ब्याही गई थी। वह शुक की प्रिय पटरानी थी और वह साध्यों की कीर्ति को बढ़ाने वाली एक श्रृंगा नाम से विख्यात थी। मूर्तिमान् पितरों का दूसरा गण आंगिरस नामक है जो अंगिरा के पुत्र हैं पहले साध्यों के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए तथा अब मरिचिगर्भ लोकों (सूर्य किरणों से प्रकाशित लोकों = चन्द्रादि लोकों) में आश्रय लेकर रहते हैं। विजय की इच्छा रूप फल वाले क्षत्रिय गण जिनकी पूजा करते हैं। इनकी मानसी कन्या का नाम यशोदा है।।५२-६०।।

वह विश्वमहत की पत्नी तथा वृद्धशर्मा की पुत्रवधू (पतोह) और राजर्षि महात्मा दिलीप की माता है। उस दिलीप के यज्ञ में महर्षियों ने प्रसन्न होकर गाथा गान किया था, उस प्राचीन काल देवयुग (सत्ययुग) के अश्वमेध यज्ञ में अग्नि का जन्म तथा शाण्डिल्य गोत्र की उत्पत्ति जो एकाग्र चित्त होकर सुना और सत्यवाक् महात्मा दिलीप को यज्ञ करते देखा है उन लोगों ने स्वर्ग को जीत लिया है। प्रजापति कर्दम का सुस्वधा नामक पितरों का तीसरा गण है। सुस्वधा नामक पितर पुलह के पुत्र महात्मा ब्राह्मणश्रेष्ठ हैं। ये लोग स्वर्ग लोक में निवास करते हैं तथा ये स्वेच्छया गमन करने वाले आकाश में विचरण करते हैं । इनकी पूजा धन रूप फल की इच्छा वाले वैश्य करते हैं। इनकी मानसी कन्या का नाम विरजा है जो ययाति की माता तथा नहुष की पटरानी थी। हे भीष्म मैंने पितरों के तीन गणों का वर्णन किया अब चौथे गण को कहता हूँ सुनो। चौथा सोमप नामक पितरों का गण है ये स्वधा में कवि से

उत्पन्न कवि के पुत्र कहलाते हैं इनकी पूजा हिरण्य गर्भ (अग्नि) के पुत्र शूद्र करते हैं। आकाश में मानस लोक है उसमें ये लोग रहते हैं, उनकी मानसी कन्या का नाम नर्मदा है जो नदियों में श्रेष्ठ नदी है। जो दक्षिण की ओर होकर बहती है तथा मनुष्यों को पवित्र करती है यह पुरुकुत्स की पत्नी तथा त्रसद्दस्यु की माता है। प्रत्येक युगों में धर्म के नष्ट होने पर पितरों की पूजा के लिये प्रजापति मनु ने श्राद्धों को चलाया।।६१-७०।।

हे द्विजसत्तम! यह पितरों की आदि सृष्टि से भी पहले इनकी उत्पत्ति हुई है श्राद्धों को प्रचलति करने से इनको लोग श्राद्धदेव कहते हैं। श्राद्धदेव (यम) को वेदों ने पितरों का अधिपति कहा है। इन पितरों के लिये चाँदी का या चाँदी मिश्रित पात्र होता है स्वधा कह कर पुरोधा को दिया हुआ श्राद्ध पितरों को प्रसन्न करता है। तथा अग्नि में सोम, अग्नि, वैवस्वत तथा यम का आप्यायन करके अर्थात सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमो यमायाङ्गिरसे स्वधा नमः ऐसा कह कर पुरोधा के लिये तीन आहुतियों का हवन करके पुनः अग्नि में उद्‌गायन कर, अग्नि के अभाव में जल में उद्‌गायन कर जो पितरों को प्रसन्न करता है, तो पितर भी प्रसन्न होकर श्राद्ध कर्ता को बहुत पुत्र एवं पुष्टि (कल्याण) को देते हैं। सनत्कुमारजी कहते हैं कि हे मुने! स्वर्ग, आरोग्य तथा अन्य और भी अभीष्ट वस्तु है उसको भी प्रसन्न पितर देते हैं, देव कार्य से पितर अधिक श्रेष्ठ हैं। देवताओं के भी जो पितर हैं जिनका की आप्यायन हमने पहले बताया है वे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं कारण कि उनके भीतर क्रोध की मात्रा किंचत् भी नहीं है इसलिए लोकों को (श्राद्ध कर्त्ताओं को) प्रसन्न करने वाला उनसे बढ़ कर कोई नहीं है। हे भार्गव! इन पितरों का प्रसाद (प्रसन्नता) स्थिर रहने वाला है इसलिये तुम पितरों को प्रणाम करो क्योंकि तुम पितरों के भक्त हो तथा विशेष रूप से मेरे भी भक्त हो। हे अनघ! तुम्हारा कल्याण करूँगा। मैं तुम्हें विज्ञान सहित दिव्य चक्षु दे रहा हूँ जिससे तुम स्वयं मेरी इन कही बातों को प्रत्यक्ष रूप में देखोगे। हे मार्कण्डेय! प्रमाद रहित (भ्रम रहित) हो श्राद्ध के फल रूप गति को देखो। यह दिव्य चक्षु

मैं तुम्हें इसलिये दे रहा हूँ कि तुम्हारे जैसा सिद्ध योगी भी इन चर्म चक्षुओं से उन दिव्य पितरों की परम गति (श्रेष्ठ कार्यक्रम) को नहीं देख सकता है। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे भीष्म! वे देवेश सनत्कुमार ऐसा कह देवताओं को भी दुर्लभ विज्ञान सहित दिव्य चक्षु देकर मुझे अपने साथ ले आग्नि की भाँति प्रकाशित अपने लोक में चले गये। हे कुरुश्रेष्ठ! उन देव सनत्कुमार की कृपा से जो-जो मैने दुर्जेय घटनायें देखीं वे पृथ्वी के मनुष्यों के दुर्लभ हैं।।७१-८२।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरिवंशे हरि पर्वणि अष्टादशोऽध्याय:।।१८।।



अथ एकोनविंशोऽध्याय: ।।१९।।

मार्कण्डेयजी बोले–हे तात! पहले युग में भरद्वाज के पुत्र जो ब्राह्मण थे वे योग धर्म को प्राप्त कर कुछ अपने दुष्कर्मों के कारण योग पथ से भ्रष्ट हो गये। योग धर्म का अतिक्रमण करने से वे पतित हो विशाल मानसरोवर के उस पार चेतन शक्ति से रहित होकर गिर पड़े । वे जल में डूबे हुए की तरह मोह में निमग्न हो मोहित हो उसी योग प्राप्ति के लिये चिन्ता करने लगे परन्तु योग को न प्राप्त कर सके और मर गये। हे नरर्षभ! पश्चात् योग विभ्रष्ट देवताओं में दीर्घ काल तक रह कर कुरुक्षेत्र में कौशिक ऋषि के पुत्र हुए। अब ये पितृ कर्म (श्राद्ध) करने के लिये जीव हिंसा करेंगे। पश्चात् इस हिंसा के पाप से भ्रष्ट हो कुत्सित जातियों में उत्पन्न होंगे। पर पितरों की कृपा से पहले की प्रत्येक बातों का निन्दित जातियों में जन्म लेने आदि का स्मरण होता रहेगा। पूर्व का स्मरण होने से वे समाहित चित्त हो धर्माचरण करने वाले होंगे तथा अपने कर्मों के बल से पुन: ब्राह्मणत्व को प्राप्त होंगे। उसके बाद अपने पहले ब्राह्मणत्व जन्म के योग को प्राप्त करेंगे पश्चात् योग द्वारा सिद्धि प्राप्त कर शास्वत ब्रह्म पद को प्राप्त होंगे। इसी प्रकार तुम्हारी भी बुद्धि बार-बार

धर्माचरण करने वाली होगी तब ऐसी श्रेष्ठ बुद्धि को प्राप्त कर तुम योग को प्राप्त करोगे। क्योंकि अल्प बुद्धि वालों को योग प्राप्त होना दुर्लभ है। यदि अल्प बुद्धि वाले योग को प्राप्त हो भी गये तो वे व्यभिचारों के कारण तथा कटु भाषाणादि तामसी स्वभावों से योग-भ्रष्ट हो जाते हैं और अधर्म का आचरण करने लग जाते हैं तथा गुरुओं से द्रोह करने लगते हैं।।१-१०।।

जो अयाच्य वस्तु की याचना नहीं करते हैं तथा शरणागतों की रक्षा करते हैं तथा कृपणों का अपमान नहीं करते हैं और धन के मद से उन्मत्त नहीं होते हैं। और युक्त आहार-विहार कर समुचित शास्त्रानुकूल अपने कर्मों को करते हुए ध्यान एवं अध्ययन से युक्त हो नष्ट हुई वस्तु को फिर नहीं ढूँढते। और वे भोग में रत नही रहते और मांस तथा मधु का भक्षण भी नहीं करते और न नित्य कामासक्त ही रहते हैं, विप्रों का सेवन करते हैं। और वे अनार्यों की कथा में (ग्राम्य गोष्ठी में) संसक्त नहीं रहते, अपनी प्रतिष्ठा के इच्छुक भी नहीं होते, आलस्य तथा घमंड से रहित हो आत्म चिन्तन में लगे रहते हैं। इस प्रकार के उपरोक्त नियमों के अनुसार वर्ताव करने वाले शान्त चित्त तथा क्रोध रहित एवं मान अंहकार से वर्जित हो योग को प्राप्त करते हैं। योग इस पृथ्वी पर बड़ा ही दुर्लभ है। जो कल्याण के पात्र हैं वे बड़े ही यतव्रत (योग शास्त्रानुकूल आचरण करनेवाले) होते हैं। हे तात! इसी प्रकार वे ब्राह्मण पुत्र पतित होकर भी पुनः ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए । वे पतित होने पर अपने प्रमादकृत आत्म दोष का बराबर स्मरण करते थे, ध्यान एवं अध्ययन परायण हो शान्ति के मार्ग में स्थित थे। हे भृगुवंशी धर्मज्ञ! योग धर्म से बढ़ कर कोई विशेष श्रेष्ठ धर्म नहीं है, अतः तुम उसी योग धर्म का आचरण करो। अल्प आहार कर जितेन्द्रिय हो आत्म चिन्तन में तत्पर रहकर तथा श्राद्ध कर्म का प्रयत्न करते हुए तुम कुछ काल के व्यतीत होने पर योग धर्म को प्राप्त कर लोगे। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे भीष्म! इस प्रकार मुझसे कहकर वे देव सनत्कुमारजी वहीं अन्तर्ध्यान हो गये, वह अट्ठारह वर्षों का समय मुझे एक दिन के समान ज्ञात हुआ। उन देवता के चरणों की उपासना करते अट्ठारह व

बीत गया पर उनके प्रसाद से मुझे किंचित् मात्र भी ग्लानि न हुई और न मुझे क्षुधा-पिपासा (भूख-प्यास) ज्ञात हुई न समय का ज्ञान हुआ, हे अनघ बाद में शिष्य के द्वारा मुझे काल का ज्ञान हुआ।।११-२२।।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरिवंशे हरि पर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।



अथ विंशोऽध्यायः ।।२०।।

मार्कण्डेयजी बोले–उन देव सनत्कुमारजी के अन्तर्हित हो जाने पर मेरे सविज्ञान दिव्य चक्षु लुप्त हो गये तब मैं उनके वचनों से हे आपगेय! (भीष्म!) उन भरद्वाज के पुत्रों को दूसरे जन्म में कौशिक पुत्र रूप धारियों को मैंने जाकर कुरुक्षेत्र में देखा जिनका की वर्णन सनत्कुमारजी ने किया था। उन सातों पुत्रों में जो सातवाँ पितृवर्ती नामक पुत्र था वह अपने शील एवं कर्मों से सातवें जन्म में ब्रह्मदत्त नाम का राजा हुआ। शुकदेवजी की कन्या कृत्वी ने ब्रह्मदत्त को काम्पिल्य नामक उत्तम नगर में राजा अणुह की पटरानी बन कर जन्म दिया था। भीष्मजी बोले–हे राजन् ! महातपस्वी मार्कण्डेयजी ने जिस प्रकार हमसे ब्रह्मदत्त के वंश का वर्णन किया था उसी प्रकार आप से मैं वर्णन करता हूँ आप उसको सुनें। युधिष्ठिर ने कहा कि हे पितामह! अणुह किसाका पुत्र था और वह किस समय में हुआ था कि जिसका पुत्र धर्मधारियों में श्रेष्ठ एवं महायशस्वी ब्रह्मदत्त हुआ। ब्रह्मदत्त का कैसा पराक्रम था और क्यों भरद्वाज का सातवाँ ही पुत्र राजा हुआ। और लोक प्रतिष्ठित योगात्मा भगवान् शुकदेवजी अल्प वीर्य वाले मनुष्य को अपनी कन्या नहीं दे सकते थे तो इस अणुह राजा को कैसे अपनी कीर्तिमती कन्या कृत्वी को दिये। हे महातेजस्विन्! यह सब मुझे विस्तार से सुनने की इच्छा है, ब्रह्मदत्त के चरित्र को आप वर्णन करने में समर्थ हैं। जिस प्रकार संसार में वर्तमान ब्राह्मणों का मार्कण्डेयजी ने वर्णन किया है वह सब आप हमसे कहिये।।१-१०।

भीष्मजी बोले–हे राजन्! हमने सुना है कि मेरे पितामह राजर्षि प्रतीप के समय में वह राजा ब्रह्मदत्त हुआ था। महाभाग ब्रह्मदत्त योगी था वह सब भूतों के तत्वों का जानकार था और सब प्राणियों के हित में तत्पर रहने वाला था। उसके मित्र योगाचार्य महायशस्वी गालव ऋषि थे। जिन गालव ने अपनी तपस्या के बल से शिक्षा (वेदाङ्ग) को उत्पन्न कर चलाया है। ब्रह्मदत्त का मंत्री महान् योगात्मा कण्डरीक था। वे सातो भरद्वाज के पुत्र भिन्न-भिन्न सात जातियों में अपने विभिन्न कर्मों के अनुसार जन्म ग्रहण किये थे, पर सातो आपस में मित्रता रखते थे। जिस प्रकार कि महातपस्वी मार्कण्डेयजी ने कहा था। हे राजन्! अब मैं पुरवासियों में पुरवासी महात्मा ब्रह्मदत्त के वंश का वर्णन करता हूँ सुनो। बृहत्क्षत्र के पुत्र धार्मिक सुहोत्र हुए, सुहोत्र के हस्ती नाम के पुत्र हुए। उसी ने अपने नाम पर इस उत्तम नगर हस्तिनापुर का निर्माण किया था हस्ती के परम धार्मिक तीन पुत्र हुए। अजमीढ, द्विमीढ तथा पुरुमीढ। अजमीढ के धूमिनी नामक स्त्री से बृहदीषु नामक पुत्र हुआ वह भी राजा था और बृहदीषु के पुत्र महायशस्वी बृहद्धनु हुए जो कि वृहद्धर्मा नाम से विख्यात हुए वे परम धार्मिक थे, उनके पुत्र सत्यजित हुए, सत्यजित् के विश्वाजित्, विश्वाजित् के सेनजित् हुए ये पृथ्वीपति थे। इनके लोक विख्यात चार पुत्र रुचिर, श्वेत केतु, महिम्नार तथा वत्स् हुए। राजा सेनजित अवन्तिका पुरी में राज्य करता था जिसके रुचिरादि परिवत्सक (पुत्र) हैं।।११-२१।।

रुचिर के पुत्र महायशस्वी पृथुसेन हुए इनके पुत्र पार हुए और पार के नीप पुत्र हुए हे तात! नीप के एक सौ पुत्र हुए जो महाबलवान्, महारथी, शूर एवं बाहुबलशाली तथा ये सभी राजे नीप कहलाते थे। उनमें नीप वंश की कीर्ति को बढ़ाने वाला समर नाम का राजा हुआ जिसने काम्पिल्य नगर में अपनी राजधानी कायम की वह समर युद्ध में बराबर सचेष्ट रहता था। समर के तीन परम धार्मिक पर, पार तथा सदश्व पुत्र थे। पर के पृथु नामक पुत्र हुए पृथु के सुकृति के कारण सुकृत नाम का पुत्र हुआ और सुकृत को सर्वगुण सम्पन्न विभ्राज नामक पुत्र हुआ इसी विभ्राज के पुत्र अणुह नामक राजा हुए

जो शुकदेवजी के जामाता (दामाद) तथा कृत्वि के पति हुए। और अणुह के पुत्र योगात्मा ब्रह्मदत्त हुए। इनके परम तपस्वी विष्वकसेन पुत्र थे। जो विभ्राज थे वे अपने स्वकृत कर्मों के कारण ब्रह्मदत्त के श्रेष्ठ पुत्र होकर उत्पन्न हुए इनका नाम सर्वसेन विख्यात था। इन सर्वसेन की आँखों को पूजनीया नाम की पक्षी ने फोड़ दिया था, वह पूजनीया पक्षी (विचित्र गौरेया) ब्रह्मदत्त के राजभवन में बहुत दिनों से रहती थी।।२१-३०।।

ब्रह्मदत्त का जो अपर पुत्र जिसका नाम विष्वकसेन था वह महाबली एवं महापराक्रमी हुआ। विष्वकसेन को दण्डसेन नाम का पुत्र हुआ जो राजा था इसके भल्लाट नामक पुत्र हुआ जिसको कर्ण ने मार डाला। हे युधिष्ठिर! दण्डसेन का पुत्र जो भल्लाट था वह शूर-वीर तथा कुल की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाला था पर भल्लाट का पुत्र दुर्बुद्धि था। उन श्रेष्ठ राजाओं की वंश परम्परा में जो दुर्बुद्धि नीपों के वंश को विनाश करने वाला हुआ। उसका नाम उग्रायुध था उसने जिस प्रयोजन के लिये नीपों का विनाश कर दिया वह प्रयोजन हमसे सम्बन्ध रखता है। घमण्ड प्रिय घमण्डी मदोन्मत्त बराबर अन्याय के मार्ग का अनुसरण करने वाले उग्रायुध को हमने ही युद्ध में मार डाला। युधिष्टिरजी बोले–हे तात! यह उग्रायुध किसका पुत्र और किस वंश में उत्पन्न हुआ था और आपने क्यों उसे मारा यह सब मुझसे बतलाइये। भीष्मजी बोले–हे धर्मराज! अजमीढ का (अन्य स्त्री से) पुत्र विद्वान् राजा यवीनर था उसका पुत्र धृतिमान् हुआ, धृतिमान् के सत्यधृति, सत्यधृति के दृढ़नेमि, दृढ़नेमि के राजा सुधर्मा नाम के पुत्र हुए। इनके पुत्र अपने समय में इस पृथ्वी पर चक्रवर्ती राजा हुए, यह प्रजाओं के लिए ईश्वर की तरह थे। इस एकछत्र वाले राजा का नाम सार्वभौम था। इसकी विशाल वंश परम्परा में पौरवनन्दन 'महान' नाम का राजा हुआ और महान् के पुत्र का नाम राजा रुक्मरथ कहा गया है।।३१-४०।।

रुक्मरथ के पुत्र सुपार्श्व नाम के राजा हुए, सुपार्श्व के धार्मिक तनय का नाम सुमति था। सुमति के बलवान् एवं धर्मात्मा पुत्र का नाम सन्नति था,

सन्नति के कृत नाम का पुत्र हुआ, यह कोशल देश वासी महात्मा हिरण्यनाभ का शिष्य था । इसी ने साम संहिता को चौबिस भागों में विभक्त किया है। वे चौबिस भाग प्राच्य साम कहलाते हैं तथा उनके पढ़ने वाले (गान करने वाले) को कार्ति कहते हैं। सो इसी राजा कृत का पुत्र उग्रायुध हुआ जिसने पांचाल देश पर चढ़ाई कर महा तेजस्वी पांचालाधिति महाराज पृषत को मार डाला था। यह पृषत राजा द्रुपद के पितामह थे। उग्रायुध के महायशस्वी पुत्र का नाम क्षेम्य था, क्षेम्य के सुवीर, सुवीर के राजा नृपंजय, नृपंजय के बहुरथ पुत्र हुए ये सब पौरव कहलाते हैं। जिस समय उग्रायुध राजा हुआ उस समय उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। महाराज नीप का वध करने वाला उग्रायुध का बलवान् चक्र बढ़ने लगा, नीपों का तथा और भी अन्य राजाओं का वध कर वह उग्रायुध घमण्ड से पूर्ण हो गया। जिस समय मेरे पिताजी मरे थे उस समय मैं मन्त्रियों से घिरा हुआ पृथ्वी पर सोता रहा। इस हालत में उसने पापमयी वार्ता को दूतों के द्वरा मुझे श्रवण कराया। हे राजेन्द्र! उग्रायुध ने मेरे पास दूत भेजकर कहलवाया था कि हे कुरुश्रेष्ठ भीष्म! अब तुम अपनी यशस्विनी माता स्त्रियों में रत्न के समान गन्धकाली को हमारी भार्या बनने के लिये दे दो।।४१-५०।।

यदि तुम ऐसा कर दोगे तो पृथ्वी पर स्त्री रत्नों का भागी मैं तुम्हारी इच्छा के अनुकूल तुम्हें धन तथा बड़ा राज्य दे दूँगा। हे भारत! इस समय हमारे अग्नि के समान जलते हुए सुदुर्जय तेजस्वी चक्र को केवल देखने मात्र से शत्रु समरांगण छोड़ कर भाग जाते हैं। यदि तुम अपने राष्ट्र तथा अपने प्राणों एवं अपने कुशल को शान्तिपूर्वक सुरक्षित रखना चाहते हो तो हमारे शासन (आज्ञा) के अनुकूल हो जाओ अन्यथा तुम्हें शान्ति नहीं प्राप्त हो सकेगी। जब मैं भूमिगत कुशासन पर सोता था तब उग्रायुध ने दूतों से अग्नि शिखा (ज्वाला) की तरह इन वचनों को कहलवाया था। तब मैं दुर्बुद्धि उग्रायुध के सुत्सित विचारों को समझ कर अपने सभी सेनापतियों को संग्राम करने के लिए आज्ञा प्रदान कर दिया। विचित्रवीर्य उस समय लड़के थे और मेरे ही

आश्रय में रहते थे अतः इन्हें युद्ध के लिए अयोग्य समझ कर मैं स्वयं क्रोधाग्नि से भरा हुआ युद्ध करने के लिए उद्यत हो गया। पर मन्त्रशास्त्र के तत्त्वज्ञ सम्मति प्रदान करने में चतुर मन्त्री और ऋत्विग् (पुरोहित) एवं वेद कल्प के ज्ञाता श्रेष्ठ पुरुष तथा मेरी अर्थसिद्धि को देखने वाले श्रेष्ठ मित्र मुझे युद्ध करने से रोकने लगे। हे निष्पाप! इन मेरे हितैषी शास्त्रज्ञ मन्त्रियों ने युद्ध न करने का युक्तियुक्त उचित कारण भी बतलाया। मन्त्रियों ने कहा–इस समय इस पापात्मा उग्रायुध का चक्र चल रहा है (बोलबाला है) और आप अशौच (पितृ-मरणाशौच) में हैं अतः उच्छृङ्खल प्रवृत्ति वाले उग्रायुध के साथ बिना कुछ समझाये बुझाये पहले ही युद्ध करना कभी उचित नहीं होगा। पहले हम लोग जब तक साम, दाम तथा भेद नीतियों का आश्रय ले उसे समझते बुझाते हैं तब तक आप भी शुद्ध हो जाते हैं तत्पश्चात् देवताओं को नमस्कार, स्वस्त्ययन हवनादि करा अग्नि तथा ब्राह्मणों का पूजन कर उनसे आज्ञा ले विजय के लिये चलेंगे।।५१-६१।।

बड़े-बूढ़े लोगों का कहना है कि जब अशौच लगा हो तब अस्त्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिये और न संग्राम भूमि में प्रवेश करना चाहिए। तो शुद्ध होकर साम, दाम तथा भेद के द्वारा पहले उसे वश में करें जब इन तीन नीतियों से भी वश में नहीं आता है तब उस पर चढ़ाई कर जैसे इन्द्र ने शम्बरासुर को मारा था उसी प्रकार आप भी उग्रायुध को मार डालिये। हे राजन्! विषम समय आने पर बुद्धिमानों का वचन तथा विशेष कर बड़े-बूढ़ों के वचनों को अवश्य सुनना चाहिए इसलिए मैं ऐसा सुन कर युद्ध करने से रुक गया। हे कुरुश्रेष्ठ! तत्पश्चात् शास्त्रविज्ञ पुरुषों ने उपायान्तर से शान्ति करने के लिये कर्म आरम्भ कर दिया। जब वे चतुर मन्त्री सामादि उपायों से उस दुर्बुद्धि को अनुकूल न बना सके तो। हे तात! पर स्त्री गमन की अभिलाषा करने से अधर्म में निरत उग्रायुध का चलता हुआ पराक्रम चक्र तुरत बन्द हो गया। तब मैंने समझा कि अपने निन्दित कर्मों से वह हत हो गया क्योंकि पहले वह सज्जनों के द्वारा निन्दा का पात्र बन गया, जो सज्जनों से निन्दित है वह मरे के समान है। मैंने

उसके चक्र का बन्द होना (उसकी आज्ञा का भंग होना) नहीं जाना। मैं शुद्ध हो ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन करा धनुष-बाण ले रथ पर चढ़ कर पुर से बाहर निकल कर शत्र से युद्ध करने लगा तब हमारा और उसका सामना होने पर शारीरिक एवं अस्त्र बल से तीन दिन तक देवासुर संग्राम की तरह युद्ध होता रहा।।६२-७०।।

हे अरिन्दम! तत्पश्चात् वह मेरे द्वारा प्रहार किये अस्त्र के तेज से रण के बीच गिर मेरे सामने ही जल कर प्राणों का विसर्जन कर दिया। महाराज नीप के मर जाने पर जब राजा उग्रायुध भी मेरे द्वारा मार डाला गया तब नीप के पुत्र पृषत काम्पिल्य नगर (पश्चिमी पंजाब) में गये। तब मेरे सम्मति से द्रुपद के पिता महातेजस्वी पृषत ने अपने पिता के आहिच्छत्र राज्य पर अधिकार कर लिया। इसके बाद अर्जुन ने शीघ्र ही द्रुपद को संग्राम में जीत कर दक्षिण, पंजाब सहित आहिच्छत्र के राज्य को द्रोणाचार्य के लिये दे दिया। तब जीतने वालों में श्रेष्ठ गुरु द्रोण ने दोनों राज्य दक्षिण पंजाब तथा आहिच्छत्र (उत्तर पंजाब) महाराज द्रुपद को ही दे दिया यह आप को ज्ञात ही है। यह मैंने द्रुपद ब्रह्मदत्त के वंश का एवं महाराज नीप तथा उग्रायुध के वंश का विस्तार पूर्वक वर्णन किया। युधिष्ठिरजी बोले-हे गांगेय! ब्रह्मदत्त के ज्येष्ठ पुत्र को पूजनीया पक्षी ने किस कारण से अन्धा कर दिया। हे विभो! जब कि वह पूजनीया बहुत दिनों से उन्हीं के घर में रहती थी फिर भी उन महात्मा राजा ब्रह्मदत्त का अप्रिय कार्य कैसे कर दिया। पूजनीया ने तो योगात्मा ब्रह्मदत्त के साथ मित्रता स्थापित की थी फिर भी अमित्र का कार्य क्यों किया मेरे इस संशय को यथातथ्य सब कारणों को कह कर दूर कीजिये। भीष्मजी बोले-हे महाराज युधिष्ठिर! ब्रह्मदत्त के भवन में पहले जैसे घटना घटी वह सब वृत्तान्त सुनिये।।७१-८०।।

कोई पक्षी ब्रह्मदत्त की मित्र थी जिसका की पक्ष सफेद, शिर लाल तथा पेट कुछ सफेद श्यामता लिये हुए था। वह ब्रह्मदत्त की घनिष्ट मित्र हो गयी थी। हे नरोत्तम! उसका घोसला ब्रह्मदत्त के घर में था। वह दिन में बराबर

राजा के उत्तम घर से निकल कर समुद्र के किनारे तथा छोटे जलाशयों एवं तालाबों में घूम कर चरा करती थी। और नदी, पर्वत, कुञ्ज, वन, उपवनों तथा कमल पुष्प से युक्त तालाबों में तथा कुमुद कमल के परागों से सुगन्धित वायु में घूमा करती थी और हंस कारण्डव, सारस आदि पक्षियों के झुण्डों में मिल कर चरती थी। उन पक्षियों में चर कर रात्रि के समय काम्पिल्य नगर मैं बुद्धिमान ब्रह्मदत्त के राजभवन में आ जाती थी। तब उसके देश-विदेश घूमने में जो आश्चर्यजनक घटना दिखाई पड़ती थी वह आकर राजा से सदा कहा करती थी। विविद देशों में चर कर रात्रि में आ समाचार कहा करती इस प्रकार रहते जब उसे कुछ दिन बिता तो हे कौरव! ब्रह्मदत्त को सर्वसेन नाम का पुत्र हुआ और उसी समय पूजनीया ने भी अण्डा दिया। वह अण्डा अपने समय से फूटा और उस फुटे अण्डे से एक मांस निकला जो हाथ, पैर तथा मुख से युक्त था।।८१-९०।।

हे पृथ्वीपते! उसका मुख बभ्रु (भूरा) और चक्षु से हीन था पर कुछ काल के बाद उसका मुख चक्षुष्मान् हुआ (आँखें खुली) तथा पक्ष (पाँव) भी जम आये। वह पूजनीया राजा के पुत्र और अपने पुत्र के ऊपर समान प्रेम करती थी तथा प्रतिदिन वह सायंकाल अपनी चोंच में दो अमृत का सा स्वाद वाला फल लाकर एक अपने पुत्र को तथा एक राजपुत्र को दिया करती थी। तब ब्रह्मदत्त का तथा पूजनीया का पुत्र दोनों बच्चे बड़े प्रसन्न मन से फल भक्षण करते थे। इस प्रकार नित्य फल खाते-खाते दोनों बच्चे कुछ-कुछ बड़े होने लगे। जब पूजनीया दिन में चरने के लिये चली जाती थी तो पक्षी के बच्चे से ब्रह्मदत्त के पुत्र को उसकी धाई सदा खेलाया करती थी। एक दिन वह खेलता हुआ राज-पुत्र पूजनीय के बनाये घोसले से उसके बच्चे को खींच कर उसकी गर्दन जोर से अपनी मुट्ठी में पकड़ ली फिर तो पूजनीय के बच्चे ने अपना प्राण विसर्जन कर दिया। तब अपने ही पुत्र द्वारा मार डाले गये पूजनीया के बच्चे को मुँह बाये देख राजा ने कठिनाई से लड़के की मुट्ठी छुड़ायी तथा उसको हिलाने-डुलाने लगा पर किसी प्रकार वह बच्चा आँखें न खोला, इस

घटना को देख कर राजा बड़ा दुःखित हुआ। और आँखों में आँसू भर कर धाई को डाँटने लगा तथा मृत पक्षी के बच्चे के लिये शोक करने लगा।।९१-१००।।

उसी समय वह बन में विचरण करने वाली पूजनीया दो फलों को लेकर ब्रह्मदत्त के भवन में आई। वह राजा के भवन में आकर अपने पुत्र को पंचभूत से रहित (मरा हुआ) देखा तब बच्चे को पुनः देख मूर्छित हो गई जब कुछ समय के बाद चैतन्य हुई तो हे राजन्! वह तपस्विनी विलाप करने लगी। पूजनीया कहने लगी–हे पुत्र! आकर कूँ-चूँ करने पर आज तू अपनी तोतली वाणी (चीं-कूँ चीं-कूँ) के द्वारा हजारों प्रकार से प्रेम करता मेरे पास नहीं आता है। भूख पीड़ित मुँह फैलाय हुए पीली-पीली चोचों और लाल-लाल तलुओं से फल खाने के लिये आज मेरे पास क्यों नहीं आता है। मैं भी अपनी पाँखों से तुम्हें लपेट कर नहीं कूँजूँगी अर्थात् नहीं खेलाऊँगी। आज तुमको क्या हो गया है कि चीं-चीं कूँ चीं ऐसी तुम्हारी मधुर वाणी नहीं सुनती हूँ। हमारे मन मे इस प्रकार का मनोरथ था कि मुँह फैलाकर तथा अपनी पाँखों को फड़-फड़ा कर हमारे आगे जल की याचना करते हुए अपने पुत्र को कब देखूँगी। वह मेरा मनोरथ आज तुम्हारे मर जाने से भंग हो गया। इस प्रकार बहुस सा विलाप कर वह पूजनीया राजा से बोली। हे राजन्! तुम मूर्द्धाभिषिक्त हो (सम्राट् हो) और सनातन धर्म को भी जानते हो तो भी तुमने धाई और अपने पुत्र के द्वारा मेरे बच्चे को घोसले से खिंचवा कर क्यों मरवा डाला? मेरे इस बात का उत्तर दो क्या तुमने इस आङ्गिरसी श्रुति को नहीं सुना है।।१-१०।।

कि शरण में आये हुए की, भूख से पीड़ित हुए की, शत्रु से घेरे जाते हुए की तथा जो अपने घर में बहुत दिनों से रहता हो उसकी सदा रक्षा करनी चाहिए। जो मनुष्य इस धर्म का पालन नहीं करता है तो वह कुम्भी पाक नरक में जाता है इसमें सन्देह नहीं। फिर इसके द्वारा दिये गये हवि को कैसे देवता

ग्रहण करते हैं? और कैसे इनके पितर स्वधा कह कर दिये गये पिण्ड को ग्रहण करते हैं? अर्थात् नहीं ग्रहण करते। हे महाराज! इस प्रकार कह कर दश धर्म को प्राप्त अर्थात् क्रोधित हो शोक से दुखी वह पूजनीया राजा के लड़के की आँखों को फोड़ दिया। वह अपने दोनों हाथों से राज-पुत्र के दोनों आँखों को फोड़ उसे अन्धा बना कर आकाश में उड़ गयी। तत्पश्चात् राजा अपने पुत्र को अन्धा हुआ देख कर भी पूजनीया से बोले-हे कल्याणि! तुमने यह अच्छा ही किया अब तू अपना बदला चुका शोक से रहित हो गई। तुम्हारा शोक दूर हो गया होगा अतः लौट आ अब हमारी तुम्हारी अविनाशी मित्रता होगी। लौट आ मेरे ही नगर में रहो और आनन्द करो। हे सखि! पुत्र की पीड़ा से उत्पन्न परम कोप तुम्हारे ऊपर मैंने नहीं किया है क्योंकि तू मेरी सखि (मित्र) है अतः तुम्हारा कल्याण हो जो तुम्हें करना चाहिए वही तुमने किया है। पूजनीया बोली-मैं अपनी आत्मा की ही तरह तुम्हारे भी पुत्र-प्रेम को जानती हूँ अतः हे राजशार्दूल! तुम्हारे घर में तुम्हारे पुत्र को नेत्र विहीन कर देने से मैं अपराधिनी हो गई हूँ इसलिये अब मै तुमसे कुछ नहीं चाहती। अतः शुक्राचार्य के द्वारा कही गई नीति को तुम मुझसे सुनो- कुमित्र को, कुदेश को, कुराजा को, कुत्सित हृदय वाले को, कुपुत्र तथा कुर्भाया को दूर से ही त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि कुमित्र में अपने कल्याण का भाव नहीं रहता, कुभार्या में रति का सुख नहीं प्राप्त होता, कुपुत्र से पिण्ड नहीं प्राप्त होता, कुराजा से सत्य (न्याय) नहीं प्राप्त होता।।११-२०।।

कुत्सित हृदय वाले की बात का विश्वास नहीं तथा कुदेश में जीविका चलना कठिन हो जाता है कुराजा से तो सर्वदा भय बना रहता है और कुपुत्र से तो दुख ही दुख प्राप्त होता रहता है। जो अपकार करने वाले में विश्वास करता है वह नराधम है। अनाथ दुर्बल की तरह वह बहुत दिनों तक नहीं जीता। विश्वास करने पर भी जिसने विश्वास का भेदन कर दिया है उसका कभी फिर विश्वास न करे और जो विश्वासी हो उसमें भी अति विश्वास न करें

क्योंकि विश्वास से जो भय उत्पन्न होता है वह मूल को भी काट डालता है। जो राज सेवकों में (पुलिसों में) विश्वास करता है तथा जो वर्ण शंकरों (दोगलों में) विश्वास करता है वह मूढ़ मनुष्य बहुत दिनों तक सुख से नहीं जीता है। हे नृप! वह राजसेवकों के विश्वास से उन्नति करके भी उसी प्रकार नष्ट कर दिया जाता है कि जैसे चींटियाँ पंख जमने पर ऊपर को उड़ कर भूमि पर गिर जाती हैं और उन्हें पक्षी खा कर नष्ट कर देते हैं ऐसा शुक्राचार्य ने कहा है। अपनी शरीर की रक्षा करता हुआ बुद्धिमान् पुरुष अपने कोमल स्वभाव से शत्रुओं का नाश कर डालते हैं, जैसे लता कोमल होकर बड़े वृक्ष को नष्ट कर देती है। कोमल स्वभाव से शत्रु का प्रेमी बन कर तथा अपने को शत्रु के सामने कृश (कुछ, दुर्बल जता कर) धीरे-धीरे बुद्धिमान् पुरुष एक दिन शत्रु का नाश कर देते हैं, जैसे कि बल्मीक (देंवका) कोमल तथा कृश होता हुआ एवं पेड़ की जड़ में गीला करता हुआ उसकी जड़ को खाकर एक दिन विशाल वृक्ष को नष्ट कर देता है। मूनियों के सामने इन्द्र ने नमुचि से द्रोह न करने की प्रतिज्ञा की पर कुछ काल के बाद इन्द्र ने वज्र से नमुचि को मार ही डाला। मनुष्य अपने शत्रु को शयनावस्था में, मत्त (नशा) अवस्था में, प्रमत्त (पागल) अवस्था में भी विष, अग्नि एवं शस्त्र से तरह-तरह का जाल फैला मार ही डालते हैं। हे नृप! इस उपमा को सुनकर मनुष्य पुनः वैर के भय से अपने शत्रु को समूल नष्ट कर देते है कुछ शेष नहीं छोड़ते।।२१-३०।।

हे भूमि के पालन करने वाले! शत्रु तथा ऋण और अग्नि के शेष रह जाने पर फिर से एकत्र होकर पुनः बढ़ने लग जाते हैं, अतः इनके शेष को भी नष्ट कर देना चाहिए। शत्रु प्रेम कर हँसता, बोलता, एक आसन पर बैठता तथा एक साथ भोजन करता हुआ भी उसके वैर का स्मरण करता रहता है। सम्बन्ध करके भी शत्रु का विश्वास न करे, क्योंकि जामाता होने पर भी इन्द्र ने पुलोमा को मार ही डाला। अपने मन में बैर रख कर जो पुरुष प्रेम से बोलता है उससे कदापि सम्बन्ध न करे क्योंकि वह प्रिय बोलता हुआ व्याधा की तरह मृग के पास उसे जाल में फाँसने आता है। शत्रु के बढ़ने पर (बलवान्) होने

पर शत्रु के आस-पास न बसे क्योंकि वह बलवान् शत्रु नदी के किनारे स्थित वृक्ष की भाँति अपने वेग से उसे उखाड़ फेंकेगा। शत्रु यदि अपनी उन्नति भी करावे तो उस उन्नति को प्राप्त कर अपने को समुन्नत न समझे क्योंकि शत्रु के द्वारा उन्नति प्राप्त करके भी वह पंख वाले चींटे की तरह नष्ट हो जायेगा। हे पृथ्वीपते! यह शुक्राचार्य द्वारा गाई गाथा (कही नीति) पण्डितों द्वारा अपनी आत्म रक्षा करते हुए हृदय में धारण करने योग्य है। मैने तुम्हारे पुत्र को अन्धा बना कर अति कठिन अपराध कर दिया है, अर्थात् तुम मेरे शत्रु बन चुके हो इसलिये शौक नीत्यानुसार मैं तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं करूँगी। इस प्रकार कह कर वह आकाश में उड़ने वाली चिड़िया भग गई। यह पहले का हुआ पूजनीया के साथ ब्रह्मदत्त का वृत्तान्त मैंने आपसे कहा, हे महामते युधिष्ठिर! जो श्राद्ध के विषय में पूछते हो। तो उसके सम्बन्ध में पुरातन इतिहास बतलाऊँगा जो कि पूछने पर मार्कण्डेयजी के लिये सनत्कुमारजी ने कहा है। हे भारत! सात जातियों में उत्पन्न होने पर भी जो श्राद्ध का उद्देश्य कर पुण्य का निश्चय है उसको आप सुनो। और गलव के सहित कण्डरीक का तथा ब्रह्मचारी योगियों में तीसरे ब्रह्मदत्त का चरित्र सुनो।

इति पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां हरि पर्वणि विशोऽध्यायः ।।२०।।



अथ एकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

मार्कण्डेयजी बोले-कि श्राद्ध करने में लोकप्रतिष्ठा अर्थात् विद्या, धन, पुत्र, पशु आदि अनेक प्रकार से कुल का कल्याण है तथा श्राद्ध करने पर भोग भी प्राप्त होता है, अतः श्राद्ध के उत्तम फल को तुम्हें बतलाता हूँ। हे भारत! ब्रह्मदत्त ने सात जातियों में जन्म लेकर भी जो श्राद्ध का फल प्राप्त किया उसको जानने से बुद्धि धीरे-धीरे ज्ञान प्राप्त कर लेती है। हे महामते !

ब्राह्मणों ने गौ का वध कर भी श्राद्ध करने पर धर्म का जो फल प्राप्त किया उसे सुनो। सनत्कुमारजी के कहने पर मैंने स्यवं धर्मधारी पितृव्रती अर्थात् श्राद्ध करने वाले सातो ब्राह्मणों को कुरुक्षेत्र में देखा। जिनका कि वर्णन पहले सनत्कुमारजी ने किया उन सातो वाग्दुष्ट, क्रोधन, हिंस्र पिशुन, कवि, खसृम तथा पितृवर्ती को मैंने दिव्य चक्षु से भी देखा था। इनके नाम इनके कर्मों के अनुसार ही हैं। हे भारत! वे सातो कौशिक पुत्र गार्ग्य के शिष्य हुए और सब पितरों के श्राद्ध में रत तथा व्रत को धारण करने वाले हुए। (ये उदासीन व्रतधारी ब्रह्मचर्य-पालन एवं वेदों का अध्ययन करने के लिए गुरु गार्ग्य के आश्रम में वास करते थे) एक समय गुरु की आज्ञा से चोरों से चुराई गई बछड़े वाली कपिला एवं दुधार गौ को छीन कर ला रहे थे। हे भारत! मार्ग में क्षुधा से पीड़ित बाल्यस्वभाव की मूर्खतावश गाय को मार कर खा जाने की कुबुद्धि उत्पन्न हुई। तब कवि और खसृम ने गुरु की गौ का वध न करने की उन लोगों से प्रार्थना की पर वे उनकी प्रार्थना के द्वारा गो-वध से न रुक सके। उनमें प्रतिदिन श्राद्ध करने वाला जो पितृवर्ती था वह क्रोध से धर्म में युक्त (ताम धर्म से युक्त) हो अपने भाइयों से बोला।।१-१०।।

कि यदि इस गौ को मारना ही है तो पितरों का उद्देश कर श्राद्ध के लिये सब लोग मिल कर इस साध्वी गौ को मारें। ऐसा करने से इस गौ को भी धर्म प्राप्त होगा और हम लोगों को भी गोवध का अधर्म नहीं होगा। हे भारत! इस बात को मान कर सबों ने गौ को स्नान करा कर पितरों के लिये गो-वध की कल्पना कर उस गौ को मार कर खा गये। और गौ को खाकर गुरु से जाकर निवेदन किये कि गौ को तो सिंह ने मार डाला यह बछड़ा बचा है सो लीजिए। सरल स्वभाव वाले गुरु ने बछड़े को ले लिया इस प्रकार अन्याय द्वारा गुरु की वञ्चना कर समय आने पर (आयु क्षीण हो जाने पर) वे ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हो गये। वे गुरु को ठकने रूप अनार्य कर्म तथा क्रूरता से गौ की हिंसा करने वाले सातो सहोदर भाई व्याधा होकर जन्मे। वे बलवान् और मनस्वी व्याधा के पुत्र हुए उन्होंने गौ का प्रोक्षण कर धर्म से

पितरों का पूजन किया था। इसलिए व्याध योनि में भी अपने पूर्व जन्म-कृत कर्मों का स्मरण होता रहा वे धर्म विचक्षण दशार्ण देश में व्याधा हुए। वे सब अपने कर्म में रत लोभ तथा असत्य से रहित उतना ही भोजन करते कि जितने से प्राण रह सके। शेष समय में वे अपने कृत कर्मों का चिन्तन करते थे और उनके नाम ये थे। निर्वैर, निवृत्ति, शान्त, निर्मन्यु, कृति, वैधस तथा मातृवर्ती ये व्याधा परम धार्मिक थे।।११-२०।।

वे गर्भिणी, बाल एवं मैथुनाशक्त रहित हिंसा धर्म में रहते हुए माता-पिता कालधर्म से युक्त हो गये (मर गये) तब वे अपने धनुषों का त्याग कर बन में प्राणों का विसर्जन कर दिये। फिर वे माता-पिता के पूजन रूप शुभ कर्म से रम्य कालञ्जर गिरि पर मृग हुए और पूर्व जन्म हिंसा में रत रहने से भयभीत हो उद्विग्न रहते थे और उनके उन्मुख, नित्य वित्रस्त, साब्धकर्ण, विलोचन, पण्डित, घस्मर तथा नादी ये कर्मों के अनुसार नाम थे। जाति स्मरण का ज्ञान होने से वे इस जन्म में भी उसी योग की प्राप्ति के लिये चिन्तन किया करते थे और शान्त, कलह रहित तथा लोभ रहित हो बन में विचरण करते थे। वे बन में विचरण, धर्म सहित शुभ कर्मों को करने वाले योग धर्म को प्राप्त हो विहार करने लगे। वे अशुभ वर्जित शुभ कर्मों के द्वारा उत्तरोत्तर शुभतर योनि में प्राप्त होते हुए चक्रवाक्र की योनि में उत्पन्न हुए। हे नृप उनको बन में आहार उपलब्ध था, तो भी वे जल भी न पीवेंगे इस प्रकार निर्जल तप करने के लिए मरुस्थल (जल वजित) देश में जाकर उन तपस्वियों ने तप कर अपने प्राणों का विसर्जन कर दिया, मरुस्थल में तप की साधना के लिये जाते समय के मृगों के पद चिह्न आज भी कालञ्जर पर्वत पर दिखाई पड़ते हैं। मरने के पश्चात वे रमणीक देश स्थित जल द्वीप (नदी के रेत) में सहचारी (मैथुन) धर्म का त्याग कर वे सातो ही जल पक्षी ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए मुनि हुए।२१-३०।।

वे लोभ, मोह, कलह तथा परिग्रह से रहित शान्त एवं निर्भीक शकुन्त

पक्षी के नाम से विख्यात हुए। वहाँ भी धर्माचारी सभी पक्षी निराहार व्रत रह कर नदी के किनारे अपने प्राणों का विसर्जन कर दिये। उसके बाद अपनी जाति का स्मरण करने वाले सातो ही एक साथ प्रेम से रहने वाले मानसरोवर में कमलों पर विचरण करने वाले सहोदर हंस हुए। वे ब्राह्मण की योनि में मोह से वशीभूत हो गुरु को ठगे थे इसलिए तिर्यग् (पक्षी) की योनि में उत्पन्न हो संसार में भटकने लगे। पर पितरों के लिये (श्राद्ध के लिये) केवल कह कर गौ का वध कर खा गये थे अतः पित्र्यर्थ वचन रूप पुण्य से उनको उत्तरोत्तर जाति स्मरण का ज्ञान उत्पन्न होता गया। सुमना, शुचिवाक, शुद्ध, पंचम, छिद्रदर्शन, सुनेत्र तथा स्वतंत्र ये उन हंसों के नाम हैं। सातवें जन्म में चोथा पंचम नाम वाला पाञ्चिक नाम का राजा तथा छठवाँ सुनेत्र नाम वाला कण्डरीक राजमंत्री होंगे और सातवाँ स्वतंत्र नाम वाला ब्रह्मदत्त नाम का राजा होगा। उनके तप से और सातो जातियों में धर्मकृत्य कर्म करने से तथा योग की प्राप्ति करने से पूर्व जन्म में किये कर्मों का स्मरण तथा अतः इन शुभ कर्मों से। और पहले ब्राह्मण जाति में उत्पन्न हो गुरुकुल में एक सात वेद का अध्ययन जो किया था इससे उनकी बुद्धि उसी प्रकार की थी संसार में भटकने पर भी बुद्धि भ्रष्ट न हुई। वे हंस पक्षी सभी ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मवादी हो योग धर्म का पालन करते हुए मानसरोवर में विचरने लगे।।३१-४०।।

उन सचारी हंसों के इस प्रकार योग धर्म का आचरण करते समय एक बार नीपों का राजा विभ्राज पौरवों से युक्त अपने प्रभाव से (सेनादी से) समन्वित, शरीर की कान्ति से चमकता हुआ वह श्रीमान् अपने अन्तःपुर के साथ बिहार करने के लिए बन में गया। तो स्वतन्त्र नाम का सातवाँ पक्षी राजा को इस प्रकार सदल-बल शोभा से युक्त देख कर इच्छा करने लगा कि जो भी कुछ मेरा सुकृत हो तप हो, नियम हो, उसके बदले में हम इसी प्रकार राजा हो जायँ क्योंकि उपवास तथा निष्फल तप से मेरा मन खिन्न हो गया है।।४१-४४।।



अथ द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

मार्कण्डेयज़ी बोले-कि स्वतंत्र नामक हंस के सहचारी दो चकवाकों ने उससे कहा कि जब तुम राजा होओगे तो हम दोनों तुम्हारे प्रिय हितैषी मंत्री होंगे। स्वतंत्र ने कहा कि अच्छा है तुम लोग मंत्री होना ऐसा कहने के पश्चात् स्वतंत्र की बुद्धि अयोगात्मिका हो गई इस प्रकार से उन लोगों ने जब निश्चय किया तो शुचिवाक् द्वितीय हंस ने स्वतंत्र नामक सातवें हंस से कहा कि योग धर्म का परित्याग कर तू काम प्रधान कर्म को चाहता है (वर माँगता है) इसलिये हमारे शाप रूप वचन को सुनो। तुम काम्पील्य (पंजाब) देश में राजा होओगे और ये तुम्हारे दोनों मित्र मंत्री होंगे इसमें शंसय नहीं है इस प्रकार से शाप देकर जो शेष चार थे वे उन तीनों से बोलना छोड़ दिये, शाप का कारण यह था कि योग धर्म से भ्रष्ट होकर इन तीनों ने राज्य की इच्छा की थी। तब शाप पाकर वे पक्षी योग भ्रष्ट होने से मूर्छित हो गये पश्चात् वे तीनों सहचारी उन चारों से विनम्र वाणी में योग की याचना करने लगे। तो उनकी बात सुन प्रसन्न होकर सुमना नामक हंस बोला कि यह आप लोगों का शाप अन्त में नष्ट हो जायगा इसमें संशय नहीं है। यहाँ से च्युत होकर आप लोग मनुष्य योनि को प्राप्त कर योग को प्राप्त करेंगे। यह स्वतंत्र नामक हंस सब प्राणियों की भाषा को समझने वाला होगा, क्योंकि इसके उपदेश से हम लोगों ने पितरों की प्रसन्नता प्राप्त ही है। खाने के लिए गौ का वध करते समय इसके कहने से हम लोगों ने गौ का प्रोक्षण कर धर्म से पितरों के श्राद्ध के लिये गो-वध की कल्पना कर गो-वध करके भी योग की साधना करने वाले ज्ञान को प्राप्त किया था इस वाक्य से सम्बन्ध रखने वाले दो श्लोकों को दूसरे पुरुष से सुन कर आप लोग पुनः योग को प्राप्त करेंगे।।१-११।।



अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

मार्कण्डेयजी बोले—वे योग धर्म में तत्पर सातो मानसरोवर में विचरने वाले पद्मगर्भ, अरविन्दाक्ष, क्षीरगर्भ, सुलोचन, उरबिन्दु सुबिन्दु तथा हेमगर्भ ने केवल वायु तथा जल का भक्षण कर अपने शरीरों को सुखा डाला था। उसी समय राजा अपने अन्तःपुर (रानियों) के साथ नन्दन बन में इन्द्र की तरह तेज से जाज्वल्यमान हो बन में पैदल घूम रहा था। तो उस राजा ने योग धर्म का आचरण करने वाले उन पक्षियों को देखा तो बाह्य लक्षणों से समझा कि ये पक्षी होकर योग साधन कर रहे हैं और मैं मनुष्य होकर योग साधन न कर भोग का साधन कर रहा हूँ इसलिए मुझे धिक्कार है इस प्रकार खिन्नता को प्राप्त होता हुआ राजा अपने पुर को गया। उस राजा का अणुह नामक परम धार्मिक पुत्र था वह अणु (सूक्ष्म) धर्म में प्रेम रखने से अणु इस पदवी को प्राप्त किया था। इस अणुह को शुकदेवजी ने प्रतिष्ठित शुभ लक्षणों से युक्त तथा सत्य-शील आदि गुणों से युक्त एवं योग धर्म का सदा पालन करने वाली अपनी कन्या कृत्वी को दिया। हे भीष्म! सनत्कुमारजी ने पहले हमसे इसी कृत्वी को उद्देश कर कहा था कि बर्हिषद पितरों की मानसी कन्या पीवरी है यह शोभना मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करेगी। तथा सत्य एवं धर्म धारण करने वालों में श्रेष्ठ और आत्मचिन्तन के द्वारा दुर्गम बातों को जानने वाली तथा स्वयं योगिनी और योगी की पत्नी एवं योगी की माता भी होगी। जैसा कि तुमसे मैंने पितृकल्प में पहले कहा है। राजा विभ्राज्य प्रसन्नात्मा हो पुर के प्रतिष्ठित पुरुषों को आमन्त्रित कर, अपने पुत्र अणुह को राज्यसिंहासन पर स्थापित कर वह नरेश्वर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन करा तपस्या करने के लिए उसी तालाब पर चला गया जहाँ कि निराहार व्रत करने वाले वायु भक्षी सहचारी हंस तप करते थे और सब कामनाओं का परित्याग कर उस मानसरोवर के तट पर तपस्या करने लगा।।१-११।।

हे भारत! उस राजा का यह संकल्प था कि इन हंसों में से किसी एक का पुत्र बनकर मैं योग का साधन करूँ क्योंकि योगि का पुत्र योगिवान् ही होगा। इस प्रकार की संकल्प प्रतिज्ञा कर महान् तप से युक्त हो वह महातपस्वी विभ्राज सूर्य की तरह तेज से पूर्ण हो चमकने लगा। उसके द्वारा तेज से प्रकाशित होने से उस बन का नाम वैभ्राज हो गया और उस मानसरोवर (तालाब) का भी वैभ्राज नाम प्रसिद्ध हुआ। हे राजन! जहाँ योग धर्मावलम्बी चारो हंसों ने अपने प्राणों का विसर्जन किया था। वे सातो पाप रहित महात्मा मर कर काम्पिल्य नगर में ब्रह्मदत्त आदि होकर जन्मे। ज्ञान, ध्यान तथा तप से पवित्र वेद-वेदाङ्ग के पारगामी चार तो पूर्व जन्म को स्मरण करने वाले हुए और तीन व्यामोहित चित्त वाले हुए। राजा अणुह ने स्वतंत्र नामक सातवें को महायशश्वी ब्रह्मदत्त के रूप में उत्पन्न किया जिस प्रकार कि ज्ञान, ध्यान तथा तप से पवित्र वेद-वेदाङ्ग पारंगत उस स्वतन्त्र ने पक्षी योनि में संकल्प (राजा होने) की चिन्तना की थी। पूर्व जन्म में एक साथ रहने वाले छिद्रदर्शी, सुनेत्र, बाभ्रव्य तथा वत्स ये श्रोत्रिय (ब्राह्मण) के कुल में उत्पन्न हुए और राजा ब्रह्मदत्त के सहायक मंत्री हुए। पाञ्चिक (पञ्चम) पाञ्चाल नामक तथा खसृम कण्डरी कनाम से उत्पन्न हुए।।११-२०।।

पाञ्चाल ऋग् वेदी हुआ आचार्य का काम करने वाला पुरोहित हुआ, काण्डरीक छन्दों का गायन करने वाला दो वेदों का ज्ञाता विशेष रूप से यजुर्वेदी हुआ। और राजा अणुह का पुत्र ब्रह्मदत्त सब प्राणियों की भाषा का ज्ञाता हुआ इसकी पाञ्चाल तथा कण्डरीक के साथ मित्रता हो गयी। वे ग्राम्य धर्म में रत और काम के वशवर्ती एवं पूर्व जन्म में श्राद्ध करने से धर्म काम तथा अर्थ को जानने वाले हुए। राजा अणुह ने पाप रहित ब्रह्मदत्त का राज्य पर अभिषेक कर योगत्मा हो परमगति को प्राप्त हुआ। ब्रह्मदत्त की भार्या (पत्नी) असित देवल की पुत्री हुई वह तेजस्वीनी सन्नति इस नाम से विख्यात है। ब्रह्मभाव को प्राप्त समाहित बुद्धि वाली योगधर्मिणी उस उत्तम कन्या को ब्रह्मदत्त ने देवल ऋषि से प्राप्त की थी। हे भारत! पाचवाँ पाञ्चिक छठवाँ

कण्डरीक सातवाँ ब्रह्मदत्त हुआ। और शेष सहचारी पक्षी जो थे वे काम्पिल्य नगर में दरिद्र ब्राह्मण के घर सहोदर भाई होकर उत्पन्न हुए। धृतिमान्, सुमना, विद्वान् तथा तत्वदर्शी नाम वाले वेदाध्ययन से सम्पन्न ये चारो छिद्रदर्शी (दोष के ज्ञाता धर्मशास्त्री) हुए। पूर्व जन्म का ज्ञान होने से योग में निरत हो वे लोग प्रस्थान करने का विचार कर घर से जब चलने लगे।।२१-३०।।

तब उनके पिता ने उन लोगों को बुलाकर कहा हे तात! हमको छोड़ कर आप लोगों का जाना अधर्म है। दरिद्रता को न दूर कर पुत्र के लिए विहित गया श्राद्धादि को किये बिना मेरी सेवा से रहित हो कैसे आप लोग जा रहे हैं। तब वे ब्राह्मण पिता से बोले कि हम लोग एक विधान बतलाते हैं उसी से आपकी जीविका चलेगी। पाप रहित ब्रह्मदत्त के समीप जाकर आप मंत्रियों सहित राजा को ये दो श्लोक सुनाइये। तो इन दोनों श्लोकों को सुन कर राजा प्रसन्न आत्मा हो आपके लिए अनेक ग्राम और भोग्य सामग्री एवं आपकी इच्छानुसार धन देगा; अतः हे तात! आप उसके पास जाओ। इस प्रकार कह कर वे ब्राह्मण पिता का पूजन कर योग धर्म को प्राप्त हो मुक्ति को प्राप्त हो गये।।३१-३६।।



अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

मार्कण्डेयजी बोले–राजा विभ्राज ब्रह्मदत्त का पुत्र होकर उत्पन्न हुआ तथा उसका नाम विष्वकसेन हुआ वह योगात्मा तथा तपस्वी हुआ। एक बार ब्रह्मदत्त अपनी स्त्री के साथ प्रसन्न आत्मा हो वन में शची के साथ इन्द्र की तरह रमण कर रहा था। उसी समय राजा चींटे के शब्द को सुना वह चींटा काम के वशीभूत हो कामिनी (चींटी) से रति की प्रार्थना कर रहा था और चींटी उस पर अत्यन्त कुपित हो रही थी। वह सूक्ष्म (नन्ही सी) चींटी काम की याचना की जाने पर क्रुद्ध हो रही है यह देख ब्रह्मदत्त बड़े जोर से हँस पड़ा

तब वह सन्नति (राजा की रानी) लज्जित हो दुःखी हो गई और उस वरवर्णिनी ने बहुत समय तक अन्न-जल का परित्याग कर दिया। तो राजा ब्रह्मदत्त उसे प्रसन्न करने लगा तब वह पवित्रहास्या राजा से बोली कि हे राजन्! आपने मेरी हँसी की है इसलिए अब मैं जीवित रहना नहीं चाहती तो राजा ने अपने हँसने का सब कारण बतलाया पर उसे विश्वास नहीं हुआ और वह कुपित हो बोली कि चींटी की बात मनुष्य समझे ऐसा नहीं हो सकता। हे राजन्! देवता के वरदान के बिना या पूर्व जन्मकृत तप के बिना या प्राणियों की भाषा समझने वाली विद्या के बिना भला कौन ऐसा मनुष्य है जो चींटी की बोली को समझ ले यदि आप के अन्दर ऐसा प्रभाव है कि आप सब प्राणियों की भाषा जानते हैं। तो मैं जिस प्रकार विश्वास कर सकूँ उस प्रकार मुझे विश्वास दिलाइये, हे राजन्! यदि आप मुझे अपनी सर्वभाषाज्ञता का परिचय नहीं देंगे तो मैं शपथ करके कहती हूँ कि अपने प्राणों को त्याग दूँगी।।१-१०।।

इस प्रकार पटरानी के कठोर वचन को सुनकर आपत्तिग्रस्त हो राजा भगवान् विष्णु की शरण में चला गया। वह महायशस्वी छः दिन-रात निराहार रह कर समाहितचित्त हो भक्ति के द्वारा सर्व भूतों के ईश नारायण दुःख हरण करने वाले शरण्य हरि को प्रसन्न किया। फिर राजा ने सब कुछ करने में समर्थ नारायण को स्वप्न में देखा, तब प्राणियों पर दया करने वाले भगवान् राजा से बोले हे ब्रह्मदत्त! तुम प्रातःकाल कल्याण को प्राप्त होओगे, इस प्रकार कह कर भगवान् अन्तर्हित हो गये। जो चारों योगियों का पिता ब्राह्मण महात्मा था वह पुत्रों से दोनों श्लोकों को कण्ठस्थ कर कृतकृत्य हो गया और वह श्लोक सुनाने के लिए मंत्रियों सहित अच्युत राजा को ढूढने लगा पर राजा कहीं दिखाई नहीं पड़ा तब दूसरे दिन। राजा नारायण से वर प्राप्त कर सरोवर में स्नान कर स्वर्णमय रथ पर चढ़ कर पुरी में प्रवेश करने लगा। रथ के घोड़ों की बागडोर ब्राह्मण श्रेष्ठ कण्डरीक पकड़े हुए था और बाभ्रव्य (पांचाल) चँवर डुला रहा था। इसी बीच में वह ब्राह्मण राजा को दोनों मंत्रियों को दोनों श्लोक सुनाया कि जो सहोदर सात भाई होकर दशार्ण देश

में व्याध योनि में उत्पन्न हुए थे फिर जो कालञ्जर पर्वत पर मृगा होकर उत्पन्न हुए थे उसके बाद शरद्वीप में जो चक्रवाक (चकवा) होकर उत्पन्न हुए थे उसके बाद मानसरोवर में जो हंस होकर उत्पन्न हुए थे।।११-२०।।

उन सातो में हम लोग चार कुरुक्षेत्र में वेदपारंगत ब्राह्मण हो दीर्घ अध्वान (मुक्ति के मार्ग) को चल दिये और आप लोग कामना के वशवर्ती हो क्यों दुःख प्राप्त कर रहे हो। हे भारत! इन दोनों श्लोकों को सुनने से राजा ब्रह्मदत्त तथा पांचाल और कण्डरीक ये तीनों मोह को प्राप्त हो विस्मित हो गये। कण्डरीक के हाथ से बागडोर और चाबुक गिर पड़ा तथा पांचाल के हाथ से चँवर गिर पड़ा यह देख कर अनिष्ट की आशंका से नगरवासी एवं राजा के सुहृद दुःखी हो गये। तब क्षण मात्र राजा मंत्रियों सहित रथ में मूर्छित होने के पश्चात चेतना शक्ति प्राप्त होने पर राजभवन को चला गया। पश्चात उस मानसरोवर की घटना का स्मरण कर योग को प्राप्त हो उस ब्राह्मण को बहुत धन तथा भोग की सामग्रियों को दिया। और अपने पुत्र अरिन्दम विष्वकसेन का राज्य पर अभिषेक कर स्त्री के सहित वन में चला गया। योग के उत्पन्न होने से वन में गये हुए राजा से देवल की पुत्री धीर बुद्धि सन्नति बोली कि मैं जानती थी कि आप चींटी के शब्द को समझने वाले हैं तो भी मैंने क्रोध को दिखा कर काम में आसक्त हुए आप को (पूर्व जन्म का स्मरण दिलाने के लिए) प्रेरित किया था। आपका जो अन्तर्हित (पूर्वजन्मोपार्जित) योग था उस का मैंने स्मरण दिलाया अब हम लोग यहाँ इच्छानुकूल इष्ट गति (परम गति) को प्राप्त होंगे। वह राजा मंत्री की बात सुन बड़ा प्रसन्न हुआ और योग को प्राप्त हो सुदुर्लभ परम गति को पा गया ।।२१-३०।।

(यह सन्नति नाम की रानी वही गुरु की दुधार गौ है जिसको कौशिक के पुत्रों ने पितरों के लिये प्रोक्षण कर मारा था) धर्मात्मा कण्डरीक भी योग निष्ठ हो योग की गति प्राप्त होने पर अर्थात योग रूप कर्म से विशुद्ध हो परब्रह्म में लीन हो गया। पाञ्चाल्य भी वेद में क्रम का निर्णय शि

(व्याकरण) शास्त्र की रचना कर योगाचार्य (पट्) पद पर अभिषिक्त हो महातपस्वी अधिक यश प्राप्त किया। मार्कण्डेयजी कहे लोकों को प्रकाशित इस श्राद्ध महात्मा को मैंने अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा था, अतः सत्ताइस तुम भी इसको धारण कर श्राद्ध करो पश्चात् तुम भी कल्याण से मुक्त हो जाओगे। जो पुरुष उन सातो योग धर्मावलम्बियों के उत्तम चरित्र को धारण करेंगे वे तिर्यग् योनि में कभी भी नहीं जायेंगे। हे भारत! महान् अर्थ को देने वाला तथा महा गति प्रदान करने वाला इस उपाख्यान को सुन कर योग धर्म सदा के लिए हृदय में स्थित हो जाता है। और हृदय में योग के अवस्थित हो जाने से कभी न कभी वह शान्ति को प्राप्त कर लेता है इसके बाद वह इस पृथ्वी में दुर्लभ योग गति को प्राप्त हो जाता है। वैशम्पायनजी बोले कि-श्राद्ध को फल का उद्देश्य कर सोम का आप्यायन (तृप्ति के लिये कर्म) करने के लिए बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी ने पहले कहा था। क्योंकि भगवान् सोमदेव लोक का परम आप्यायन (प्रसन्नकर्ता) हैं। वृष्णि वंश के प्रसंग से सोम वंश को भी सुन लो।



अथ पंचविंशोऽध्यायः ।।२५।।

वैशम्पायनजी बोले-हे राजन! ब्रह्मा सृष्टि करने की इच्छा करते हुए अपने मानसिक संकल्प से सोम के पिता भगवान् अत्रि ऋषि को उत्पन्न किये। तब प्रजा की सृष्टि में अपने पुत्र सहित अत्रि स्थित हो वह सब प्रणियों का कर्म, मन तथा वाणी से कल्याण करने लगे। हमने ऐसा सुना है कि पहले सब प्रणियों में हिंसा रहित हो प्रशंसित व्रती महातेजस्वी धर्मात्मा अत्रि ने बाहुओं को ऊपर उठा अनुत्तर (मौन) नामक तप देवताओं के वर्ष से तीन हजार वर्ष तक किया। हे भारत! उन ऊर्ध्व रेता तपस्वी की आँखे खुली रहने से एकटक आकाश की ओर देखने वाले महाबली अत्रि का शरीर चन्द्रमा की भाँति

में व्याध योनि में उत्पन्न हुए थे भावितात्मा (तेज से रञ्जित शरीर के नेत्रों से हुए थे उसके बाद शरीर) ऊपर चढ़ने लगा। वह कैसे ऊपर चढ़ा उसका प्रकार बाद मानसके उनकी आँखों का तेज जल बन कर दसों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ बहने लगा। उस जल को गर्भ विधि के अनुसार दिशाओं की दस देवियों ने धारण किया परन्तु वे धारण करने में समर्थ न हुईं। वह तेज से युक्त गर्भ सहसा लोकों को प्रकाशित करता हुआ नीचे भूमि पर गिर पड़ा और वह औषधि आदि के द्वारा सबको सुख देने वाला शीवांशु (चन्द्रमा) बन गया। तब चन्द्रमा को गिरा देख लोक पितामह ब्रह्मा ने लोक की हित कामना से उन्हें रथ पर चढ़ा लिया।।१-१०।।

हमने सुना है कि वह रथ वेद रूप लकड़ियों से निर्मित आकाशादि स्वरूप धर्मात्मा एवं सत्य को (ब्रह्म को) संग्रह (ग्रहण) करने वाला था जिसमें सफेद एक हजार घोड़े जुते थे। उन परम आत्मा अत्रिपुत्र के गिरने पर ब्रह्मा के मानसिक सातों पुत्र सोम की स्तुति करने लगे। इसी प्रकार आंगिरस गोत्री भृगु के पुत्र ऋग वेद एवं यजुर्वेद के अनेक मंत्रों से तथा अथर्ववेद की आंगिरस श्रुतियों से स्तुति करने लगे। स्तुति करने पर चन्द्रमा का तेज और भी बढ़ गया वे प्रसन्न होते हुए तीनों लोकों को प्रकाशित करने लगे। ब्रह्मा ने सोम वाले मुख्य रथ से सागरान्त वसुन्धरा की इक्कीस बार प्रदक्षिणा की। परिक्रमा करते समय चन्द्रमा से जो तेज भूमि पर टपका वह औषधि रूप में उत्पन्न होकर लोकों के लिये हितकारी हुआ। हे जगतिपते! वे औषधियाँ तीनों लोकों तथा चार प्रकार की प्रजाओं का कल्याण करती हैं इस प्रकार चन्द्रमा जगत् का पालन् करने वाले हुए। स्तुति तथा अपने लोकोपकार रूप कर्म से प्राप्त तेज वाले चन्द्रमा ने एक हजार वर्ष तक तप किया। अपने कर्म से विख्यात चन्द्रमा जगत् को धारण करने वाली सुवर्णमयी लक्ष्मियों के निधि (कोष) हुए। हे जनमेजयजी! इसके पश्चात् ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्मा ने सोम को बीजों, औषधियों तथा ब्राह्मणों को राजा बना दिया।।११-२०।।

हे महाराज! राजाओं के भी राजा (सम्राट्) पद पर अभिषिक्त हो प्रकाश करने वालों में श्रेष्ठ चन्द्रमा अपने प्रकाश से तीनों लोकों को प्रकाशित करने लगे। प्रचेता के पुत्र दक्ष प्रजापति ने महा व्रत करने वाली अपनी सत्ताइस कन्याओं को चन्द्रमा के लिये दे दी जो नक्षत्रों के नाम से विदित हैं। तब बहुत बड़े राज्य को प्राप्त कर पितृ-पति सोम ने हजार तथा लक्ष गौवों की दक्षिणा वाला राजसूय नामक यज्ञ किया। इस यज्ञ में भगवान् अत्रि होता और भगवान् भृगु अध्वर्यु तथा हिरण्य गर्भ (अङ्गिरा) उद्गाता एवं वसिष्ठ ब्रह्मा बने थे। सनत्कुमार आदि ब्रह्मर्षियों के साथ स्वयं नारायण सदस्य (उपद्रष्टा) थे। हे भारत! मैंने सुना है कि उस यज्ञ में सोम ने मुख्य ब्रह्मर्षियों को तथा उपद्रष्टा लोगों को दक्षिणा में तीनों लोक दे दिया था। तब से सिनि (खण्ड पर्व की पूर्व अमावस्या) कुहू (उत्तर अमावस्या) द्युति (पूर्व पौर्णमासी) पुष्टि (उत्तर पौर्णमासी) प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी ये नव देवियाँ सोम की सेवा करने लगीं। सब देवता एवं ऋषियों से पूजित सोम अवभृय (यज्ञान्त) स्नान कर ब्राह्मणों का राजा चन्द्रमा दशों दिशाओं को अपनी कीर्णों से प्रकाशित करने लगे। चन्द्रमा की बुद्धि मुनियों से सत्कृत एवं दुष्प्राप्य ऐश्वर्य को प्राप्त कर ऐश्वर्य के मद से विचलित हो गई और अन्याय से आहत (भ्रष्ट हो गई) तब वह शीघ्र ही अङ्गिरा के पुत्रों को अपमानित कर बृहस्पति की यशस्वीनी भार्या तारा का अपहरण कर लिया।।२१-३०।।

और वह देवताओं एवं महर्षियों के समझाने पर भी तारा को वापिस न किया तब सोम से युद्ध करने के लिए बृहस्पति उद्यत हो गये। तब असुरत्व को प्राप्त के पार्ष्णि (शस्त्र) को दैत्य गुरु शुक्र ने पकड़ लिया और बृहस्पति के पार्ष्णि को अङ्गिरा के शिष्य रूद्र ने पकड़ लिया। बृहस्पति के पिता अङ्गिरा के शिष्य होने के कारण भगवान् रुद्र (शिव) अपने आजगव धनुष को धारण कर बृहस्पति के पार्ष्णि को पकड़े थे। और उन महात्मा रुद्र ने दैत्यों के विनाश के उद्देश्य से ब्रह्म शिर नामक श्रेष्ठ अस्त्र को चलाया था जिसने दैत्यों के यश

को नष्ट कर दिया था। वहाँ पर देवता तथा दानवों का लोक विनाशकारी महान् संग्राम हुआ था जो तारा के लिये होने से तारकामय इस नाम से विख्यात है। वृहस्पति के पक्ष में जो शिष्ट देवता बचे थे वे तथा दारापहर्ता चन्द्रमा के पक्ष में जो दोष युक्त तुषित नाम वाले देवता थे वे आदिदेव सनातन ब्रह्मा की शरण में गये। तब शुक्र तथा श्रेष्ठ शंकर रुद्र को युद्ध करने से निवारण कर स्वयं ब्रह्मा ने वृहस्पति के लिये तारा को दे दिया। तब तारा को गर्भवती देखकर बृहस्पति ने कहा कि तुम्हें हमारी योनि में अन्य से गर्भ धारण करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है (अतः तू मेरे घर से चली जा) तब उसने घर बाहर सीकों को बिछा कर अग्नि के समान चमकते हुए दस्युहन्त कुमार को उत्पन्न किया। भगवान् दस्युहन्त उत्पन्न होने पर ही अपने तेज से देवताओं के तेज को तिरस्कृत करने लगे तब तो देवता संशय में पड़कर तारा से कहने लगे।।३१-४०।।

कि सत्य-सत्य बतलाओ की यह पुत्र किसका है अर्थात् चन्द्रमा का है अथवा बृहस्पति का है? इस प्रकार देवताओं के पूछे जाने पर तारा सच या झूठ कुछ भी नहीं कही। तब तो कुमार दस्युहन्त तारा को शाप देने के लिये उद्यत हुए तो ब्रह्मा ने कुमार को रोक कर तारा से इसका संशय पूछा। हे तारे इसमें जो सत्य हो वह बताओ कि पुत्र किसका है? तारा ने हाथ जोड़ कर वर देने में समर्थ ब्रह्मा से कहा कि यह पुत्र चन्द्रमा का है तब सोम और प्रजापति ब्रह्मा ने महात्मा कुमार दस्युहन्त के शिर को सूँघ कर बुद्धिमान पुत्र का नाम बुध रख दिया, बुध आकाश में उदित होकर उत्पात की सूचना देता है। वैराज मनु की पुत्री इला बुध से सम्बन्ध कर पुरूरवा को उत्पन्न किया। जिससे उर्वशी में सात महात्मा पुत्र उत्पन्न हुए। चन्द्रमा उद्धता करने से हठात राजयक्ष्मा रोग से ग्रसित हो गये। जब यक्ष्मा से ग्रसित चन्द्रमा का मण्डल क्षीण होने लगा तब वह अपने पिता अत्रि की शरण में गये। तब महातपस्वी मुनि ने चिकित्सा द्वारा रोग का शमन कर दिया तब राजयक्ष्मा से मुक्त चन्द्रमा अपने तेज से सब प्रकाशित होने लगे। हे महाराज! इस प्रकार मैंने कीर्ति को बढ़ाने वाले से

के जन्म को कहा, अब सोम वंश का वर्णन करता हूँ सुनिये। धन, आरोग्य, आयु, पुण्य तथा संकल्प के साधन को बढ़ाने वाले सोम के जन्म को सुनकर मनुष्य पापों से छूट जाता है।।४१-५१।।



अथ षड्विंशोऽध्याय: ।।२६।।

वैशम्पायनजी बोले–हे महाराज! बुध के विद्वान् पुत्र पुरूरवा हुए जो तेजस्वी, दानशील, यज्ञ करने वाले तथा बहुत दक्षिणा देने वाले हुए। वह ब्रह्मवादी, पराक्रमी, संग्राम में शत्रुओं से दुर्जय, अग्निहोत्री तथा यज्ञ सम्राट् सत्यवादी, पुण्यकर्त्ता, काम भावना के अनुकूल मैथुन में रत रहने वाला पुरूरवा तीनों लोकों में उपमा रहित यश प्राप्त किया। उस ब्रह्मवादी, शान्त, धर्मज्ञ एवं सत्यवादी राजा को यशस्वीनी अप्सरा उर्वशी ने मान का परित्याग कर वरण कर लिया था। राजा पुरूरवा ने पन्द्रह वर्ष तक चैत्ररथ बन में, पाँच वर्ष गंगा के किनारे, छः वर्ष अलकापुरी में, सात वर्ष विशालापुरी मे, आठ वर्ष नन्दन वन में, दस वर्ष उत्तर कुरु देश में फिर आठ वर्ष गन्ध मादन पर्वत के ऊपर अपने मनोरथ रूपी कल्पद्रुम उर्वशी को प्राप्त कर देवताओं द्वारा इन आचरित मुख्य वनों में उर्वशी के साथ परम प्रसन्न होकर रमण किया। महर्षियों द्वारा स्तुत पुण्यतम देश प्रयाग में इस राजा ने राज्य किया था। उस राजा के देव-पुत्र की तरह सात पुत्र उर्वशी से उत्पन्न हुए जो स्वर्ग में रहने वाले बुद्धिमान् आयु, अमावसु, विश्वायु, धर्मात्मा श्रुतायु, दृढ़ायु, वनायु तथा शतायु इस नाम से प्रसिद्ध थे।।१-११।।

जनमेजयजी बोले–हे विद्वन्! उर्वशी गन्धर्व कन्या होकर देवताओं को छोड़ मनुष्य राजा पुरूरवा का कैसे वरण कर लिया यह हमसे कहिये। वैशम्पायनजी बोले–ब्रह्मा के शाप से मनुष्य का वरण किया था और वह

वरारोहा पुरुरवा से प्रतिज्ञा करा कर तब राजा के अङ्कगत हुई थी। वह शाप से अपनी मुक्ति पाने के लिये यह प्रण कराया था कि जब मैं काम की इच्छा करूँ तभी आप मैथुन करें तथा आपको मैं कभी नग्न अवस्था में न देखूँ। और हे राजन्! दो भेंड़े मेरे पंलग के पास सदा बँधे रहेंगे और मैं दिन में एक समय केवल थोड़ा सा घी का आहार करके रहूँगी। हे राजन्! जब तक इस प्रतिज्ञा का समुचित रूप पालन होगा तभी तक मैं आप के पास रहूँगी यही हमारी प्रतिज्ञा है। उसके इन्हीं सब प्रतिज्ञा रूप बातों का राजा सम्यक प्रकार से पालन करता रहा इस प्रकार मृत्युलोक में पुरूरवा और उर्वशी को रहते। जब उनसठ वर्ष व्यतीत हुए तब राजा में आसक्त उर्वशी के इस प्रकार रहने से गन्धर्वों को चिन्ता उत्पन्न हुई। गन्धर्व बोले–कि स्वर्ग की भूषण (शृंगार) वीरांगना उर्वशी जिस प्रकार स्वर्ग में आ सके उस उपाय को सोचिये तो वहाँ विश्वावसु नामक गन्धर्व जो बोलने वालों में श्रेष्ट था वह कहा कि पहले राजा और उर्वशी में जो प्रतिज्ञा हुई है मैंने सुना है।।१२-२०।।

जब राजा प्रतिज्ञा का उल्लंघन कर देगा तो उर्वशी राजा का त्याग कर देगी और राजा जिस प्रकार प्रतिज्ञा का उल्लंघन करेगा वह उपाय भी मुझे अच्छी तरह ज्ञात है। तो इस आप लोगों की कार्य सिद्धि के लिये मैं सहायकों के साथ जा रहा हूँ, ऐसा कह कर वह यशस्वी विश्वावसु प्रयाग को चला गया। और रात्रि में वहाँ पहुँच कर एक भेड़ें का हरण कर लिया। उन भेड़ों से वह उर्वशी माता की तरह प्रेम करती थी। शाप का अन्त करने वाले गन्धर्वों का आगमन समझ कर वह यशस्विनी राजा से बोली कि हे राजन्! हमारे एक पुत्र का किसी ने अपहरण कर लिया। उस समय राजा नग्न अवस्था में था, उसके कहने पर भी इसलिये नहीं उठा की यह जब मुझे नग्न देख लेगी तो प्रतिज्ञा भंग हो जायेगी। तब तक गन्धर्वों ने दूसरे भेंड़े को भी चुरा लिया, तब दूसरे भेंड़े के भी हरण होने पर पुरूरवा से उर्वशी ने करुण स्वर में यह कहा हे प्रभो! आपके रहते हमारा पुत्र अनाथ स्त्री के पुत्र की तरह अपहरण कर लिया गया फिर तो ऐसा सुन कर राजा उस नग्न अवस्था में ही

दौड़ पड़ा। भेंड़ों के पद-चिह्नों के पीछे आता देख कर दिया जिससे कि वह राजभवन सम्यक् प्रकार से एक हो उठा। उस प्रकाश में राजा को नग्न देख कर वह कामरूपिणी अन्तर्धान हो गयी। इधर राजा गन्धर्वों से त्यागे हुए भेंड़ों को देख तथा उन्हें लेकर जब राजभवन में आया तो वहाँ उर्वशी को न देख दुखित हो विलाप करने लगा। और सम्पूर्ण पृथ्वी पर उसे ढूँढ़ने लगा, जब इधर-उधर ढूँढ़ता हुआ कुरुक्षेत्र आया तो महाबली राजा ने प्लक्षतीर्थ में स्थित हैमवती नामक पुष्करिणी (तलैया) में पाँच अप्सरा सखियों के साथ स्नान एवं क्रीड़ा उस सुन्दर अप्सरा को देखा। उसको जलक्रीड़ा करते देखकर राजा दुःखी होकर विलाप करने लगा। उर्वशी ने भी राजा को सन्निकट में देख कर अपनी सखियों से यह कह कर दिखाया कि यह वही राजा है जिनके साथ मैं रही थी। हे नराधिप! पुनः उर्वशी राजा के साथ चली जायेगी इस शंका से सब सखियाँ उद्विग्न हो गईं और कहने लगीं कि तुम मन से राजा के पास रहकर अपने दिये गये कठिन वचनों का पालन करो इस प्रकार आपस में कहने लगीं तब उर्वशी ने राजा पुरूरवा से कहा कि हे प्रभो! इस समय मैं तुमसे गर्भिणी हूँ। हे नृपते! एक वर्ष में कुमार उत्पन्न होगा इमसें संशय नहीं है, इसके बाद एक रात आप हमारे साथ रहियेगा। यह सुन प्रसन्न हो महायशस्वी राजा अपने पुर को चला गया, एक वर्ष व्यतीत होने पर उर्वशी पुनः राजा के पास आई। तब महायशस्वी राजा एक रात उसके साथ रहा, उर्वशी ने राजा से कहा कि गन्धर्व आपके ऊपर प्रसन्न हो वर देने को उद्यत हैं। तो हे महाराज! आप उन लोगों से यही लीजिये कि मैं भी आप लोगों के समान हो जाऊँ अर्थात् गन्धर्व होकर आपके साथ रहूँ।।३१-४०।।

ऐसा ही वर मागूँगा कह कर राजा ने वर माँगा गन्धर्वों ने तथास्तु (ऐसा ही हो) कह कर थाली में अग्नि भर कर दे दिया और कहा हे नराधिप! इस अग्नि से यज्ञ करने के बाद तुम हम लोगों के लोक को प्राप्त होओगे, तब राजा अग्नि को ले कुमारों के सहित नगर के लिये चल दिया। तो अग्नि और

कुमारों के साथ पुर में प्रवेश न करना चाहिए यह सोच अग्नि को वन में रख कर पुत्रों के साथ घर आया पश्चात् अग्नि लेने पुर के बाहर वहाँ गया जहाँ अग्नि रखा था पर अग्नि को न देख उस स्थान पर एक पीपल का वृक्ष देखा। तब शमी से उत्पन्न पीपल को देख राजा विस्मित हो अग्नि के अदर्शन होने का वृत्तान्त गन्धर्वों से कहा राजा से इस बात को सुन कर गन्धर्वों ने यह आदेश दिया कि पीपल के काष्ठ की अरणी बना कर अग्नि प्रकट करो तब अश्वत्थ की अरणी बना कर यथाविधि मथ कर अग्नि को राजा ने उत्पन्न किया और उस अग्नि को भी मथ कर तीन भागों में कर यज्ञ किया तब अनेक यज्ञों को कर राजा गन्धर्वों के लोक को चला गया। उस राजा ने गन्धर्वों से वर प्राप्त कर त्रेताऽग्नि को चला गया। उस राजा ने गन्धर्वों से वर प्राप्त कर त्रेताऽग्नि को (पूर्व कथिन अग्नि को) उत्पन्न किया था, पहले एक अग्नि था राजा ने उसे तीन भागों में विभाजित किया। इस प्रकार प्रभाव वाला वह राजाओं में बली राजा पुरूरवा हुआ जिसने महर्षियों द्वारा स्तुत्य पुण्यदेश गंगा के तट पर स्थित प्रयाग में राज्य किया था।



अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।

वैशम्पायनजी बोले-पुरूरवा के पुत्र बुद्धिमान् आयु, अमावसु, धर्मात्मा विश्वायु, श्रुतायु, दृढायु, वनायु, तथा शतायु सातो उर्वशी से स्वर्ग में उत्पन्न हुए थे और देवता के पुत्रों जैसे थे। अमावसु के पुत्र भीम और नग्नजित हुए श्रीमान् भीम के पुत्र कांचनप्रभ हुए जो राजा थे, कांचनप्रभ के विद्वान् एवं महाबली सुहोत्र नामक पुत्र हुए, सुहोत्र द्वारा केशिनी के गर्भ से जन्हु हुए जिन्होंने अन्न दान दिये जाने वाले सर्वमेध नामक यज्ञ को किया था। जिस राजा जन्हु के पास गंगाजी उसको अपना पति स्वीकार करने के लोभ से गयी थीं पर उसने ऐसा नहीं चाहा तब गंगा ने उसकी सभा को जल से डुबो दिया

हे भरत सत्तम! तब गंगा के द्वारा जल में निमग्न अपनी सभा को देख राजा क्रुद्ध हो गंगा से बोला। हे गंगे! मैं तेरे जल को पीकर तेरे इस यत्न को विफल कर दूँगा जिससे कि तुम अपने पाप का फल प्राप्त कर लेगी। ऐसा कहकर राजर्षि जन्हु गंगा को पीने लगा। ऐसा देख महर्षियों ने उस महाभाग गंगा की निन्दा कर जन्हु की पुत्री मनवा कर गंगा का जान्हवी नाम रख दिया। क्या पुत्री मनवाने से गंगा का पूर्व संकल्प समाप्त हो गया? ऐसी आशंका कर कहते हैं कि राजा जन्हु ने युवनाश्व की पुत्री कावेरी को पत्नीत्वेन ग्रहण किया था और युवनाश्व ने किसी कारणवश शाप दिया था कि तू मानुषी हो जा तब राजा जन्हु की पुत्री होती हुई गंगा अपने आधे भाग से नदियों में श्रेष्ठ कावेरी नदी का निर्माण किया जो कि राजा जन्हु की अनिन्दित भार्या बनी। इस प्रकार गंगा का संकल्प एक तरह से सत्य हो गया। जन्हु द्वारा कावेरी से सुनह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुनह के पुत्र अजक हुए।।१-१०।।

अजक का पुत्र बलकाश्व हुआ जो आखेट करने में प्रसिद्ध था, बलकाश्व का पुत्र कुश हुआ। कुश के कुशिक, कुशनाथ, कुशाम्ब तथा मूर्तिमान् ये चार पुत्र देवताओं की तरह तेजस्वी हुए। राजा कुशिक बनचारी पह्लवों के साथ वृद्धि को प्राप्त होकर इन्द्र के समान पुत्र प्राप्त करने के लिये तप किया तब इन्द्र डरकर स्वयं कुशिक का पुत्र बनकर उत्पन्न हुआ था इसलिए कि कोई हमारे समान दूसरा इन्द्र न हो जाय। जब कुशिक को तप करते एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये तो इन्द्र ने राजा के उग्र (कठिन) तप को देखर पुत्र बनने में समर्थ इन्द्र स्वयं अपने अंश रूप से राजा के शरीर में आ बसा था, इस प्रकार सुरोत्तम देवेन्द्र राजा का पुत्र बनने की कल्पना (इच्छा) की थी। वह इन्द्र कुशिक के द्वारा पुरुकुत्स-कन्या से गाधि नामक पुत्र बनकर उत्पन्न हुए थे। गाधि को महाभाग्यशालिनी सत्यवती नाम की सुन्दर कन्या हुई जिसे गाधि ने भृगुपुत्र ऋचीक को दे दी थी। इससे प्रसन्न होकर सत्यवती-पति ऋचीक ने अपने तथा गाधि को भी पुत्र होने के लिये दो चरुओं का

निर्माण किया। तब अपनी स्त्री सत्यवती को बुलाकर ऋचीक ने कहा कि, इस चरु को तुम अपने उपयोग में लाना और इस (दूसरे) चरु को अपनी माता के उपयोग के लिये देना। तो तुम्हारी माता से तेजस्वी तथा क्षत्रियों में श्रेष्ठ बालक उत्पन्न होगा, जो क्षत्रियों द्वारा अजेय तथा श्रेष्ठ (वीर) क्षत्रियों का विनाश करने वाला होगा।।११-२०।।

हे कल्याणी! तुम्हारा पुत्र भी इस चरु के प्रभाव से महातपस्वी, धैर्य धारण करने वाला, शान्त चित्त तथा ब्राह्मणों में श्रेष्ठ होगा। इस प्रकार अपनी भार्या सत्यवती से कह कर भृगुनन्दन ऋचीक तपस्या में तत्पर हो बन में चले गये। उसी समय तीर्थ यात्रा करते हुए महाराज गाधि अपनी पुत्री को देखने की इच्छा से सपत्नीक ऋचीक के आश्रम पर आये। तब सत्यवती ने ऋषि के दिये दोनों चरुओं को यत्न पूर्वक ले माता को दे दिया और ऋषि की कही बातों का निवेदन किया। तब उसकी माता ने हमें ऋषि के समान पुत्र हो इस मोह में पड़ कर चरु को बदल दिया अपने चरु को पुत्री को खिला दिया और पुत्री के चरु को अपने खा लिया। फिर तो ऋषियों का अन्त करने वाला गर्भ सत्यवती के धारण करने से उसका शरीर डरावना (भयानक) दिखाई लगने लगा। इस प्रकार सत्यवती को डरावनी देख कर अपने योग बल से सत्य बात को जान कर अपनी वरवर्णिनी भार्या से बोले कि चरु बदल कर तुम्हारी माता ने तुमको ठग लिया अब क्रूर कर्म (हिंसा) करने वाले अति दारुण (कठोर हृदय) पुत्र को उत्पन्न करोगी। और भाई ब्रह्म को प्राप्त करने वाली तपस्या से युक्त होगा, मैंने ब्रह्म की उपासना कर उस चरु में सम्पूर्ण वेद (ज्ञान) को समर्पित कर दिया था। पति से इस प्रकार की बात सुनकर सत्यवती ने प्रार्थना द्वारा पति को प्रसन्न कर कहा कि हे नाथ! तुम्हारे जैसे ब्रह्मवेत्ता ऋषि के द्वारा हमसे ब्राह्मणाधम पुत्र न हो, ऐसा सुन कर मुनि ने कहा।।२१-३०।।

हे भद्रे! मैंने इस प्रकार का पुत्र होने के लिये संकल्प की कामना नहीं

की थी क्योंकि माता-पिता के उग्रकर्मा होने से ही उग्रकर्मा पुत्र होता है। यहाँ पर तो तुम्हारे अज्ञान के कारण इस प्रकार की समस्या उपस्थित हो गई है, ऐसा सुन सत्यवती पुनः बोली। हे मुने! यदि आप इच्छा करें तो लोकों का निर्माण कर दें तो पुत्र में क्या प्रयास रखा है अतः शान्त चित्त, सरल स्वभाव वाला पुत्र हमको दीजिये। हे द्विजोत्तम! यदि आप इसको अन्यथा करने में (बदल देने में) समर्थ नहीं हैं तो इस प्रकार का पौत्र हो जाय पर पुत्र न हो यह सुन ऋषि ने पने तपोबल से वैसा होने के लिए कहकर उसे प्रसन्न कर दिया और कहा कि हे भद्रे! पुत्र और पौत्र में मैं कोई विशेषता नहीं समझता पुत्र उग्रकर्मा हो या पौत्र बात एक ही है पर अब जो तू ने कहा है वही होकर रहेगा। फिर सत्यवती ने शान्त आत्मा तप में रत रहने वाले उदार प्रकृति वाले जमदग्नि को उत्पन्न किया। यद्यपि रुद्र एवं विष्णु के अंशों से निर्मित चरु का उलट-फेर हो गया तथापि ऋचीक के देवाराधन (विष्णु का आराधन) करने से वैष्णव धर्म पालन कर्ता विष्णु के अंश से जमदग्नि उत्पन्न हुए। वही पुण्यात्मा सत्य तथा धर्म का पालन करने वाली सत्यवती कौशिकी नाम की महानदी बन कर बह रही है। इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न राजा रेणु की महाभाग्यवती कन्या हुई जो रेणुका के नाम से विख्यात है। उसके साथ विवाह कर जमदग्नि ने रेणुका से सुदारुण (रुद्रांश युक्त) परशुराम को उत्पन्न किया। वे परशुराम सब विद्याओं में पारंगत होते हुए धनुर्वेद के भी पारंगत हुए तथा सब क्षत्रियों का विनाश करने वाले अग्नि की भाँति प्रखर तेज वाले हुए।।३१-४०।।

और्व कुलोत्पन्न ऋचीक के तपोबल से सत्यवती में महायशस्वी एवं ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ जमदग्नि हुए। इसके बाद शुनः शेप हुए ये मझले पुत्र थे, इनसे छोटे शुनः पुच्छ थे ये सबसे छोटे कनिष्ठ थे और उधर कुशिकनन्दन गाधि ने तप-विद्या से युक्त शान्तात्मा विश्वामित्र को उत्पन्न किये जो तपोबल से ब्रह्मर्षियों की समता प्राप्त कर सप्तर्षि हो गये। धर्मात्मा विश्वामित्र का पहले विश्वरथ नाम था ये कौशिक वंश को बढ़ाने वाले ऋचीक के प्रसाद से उत्पन्न हुए थे। विश्वामित्र के देवरात आदि पुत्र हुए थे जो तीनों लोकों में विख्यात थे

उनके नाम सुनो। देवश्रवा (देवरात) तथा कति और हिरण्याक्ष ये तीन पुत्र शालावती से उत्पन्न हुए थे कति पुत्र कात्यायन प्रसिद्ध हैं । इधर रेणुका से रेणुमान, सांकृति, गालव, मुद्गल, मधुछन्दा, जय एवं देवल उत्पन्न हुए (ये परशुराम के भाई हैं)। अष्टक, कच्छप, तथा हारित ये तीन दृषद्वती से उत्पन्न होने वाले विश्वामित्र के पुत्र हैं, इनके पौत्रादि महात्मा कौशिक गोत्र से प्रसिद्ध हैं। हे राजन्! पाणिनि आदि बारह भाई तथा बभ्रव, ध्यानजप्य आदि और राजा देवरात आदि तथा शालङ्कायन एवं वाष्कल आदि, लोहितादि, यामदूतादि, कारिषादि, सौश्रुतादि और सैन्धवादि ये सभी कौशिक वंशी हैं।४१-५०।।

देवल पुत्र रेणुका पौत्र कहलाते हैं, याज्ञवल्क्य आदि छः भाई, अघमर्षण औदुम्बरादि, ह्यभिष्णतादि, तारकायन एवं चुञ्चुलादि ये शालावती के पौत्र और हिरण्याक्ष के पुत्र हैं सांकृत्य पुत्र और गालव पुत्र थे रेणुका के पौत्र हैं अन्य जो वादरायिणिन् हैं वे बुद्धिमान् विश्वामित्र के वंशज हैं। प्रवर भेद से अन्याय ऋषियों के यहाँ विवाह करने वाले कौशिक वंशी बहुत हैं, अर्थात् कहाँ तक गिनाऊँ, पौरव वंशीय राजा के साथ विश्वामित्र का सम्बन्ध है तथा ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के साथ भी सम्बन्ध है अतः इस प्रकार कौशिक वंश में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय दोनों कुलों का सम्बन्ध विख्यात है। विश्वामत्रि के पुत्रों में शुनः शेप सबसे ज्येष्ठ पुत्र हैं, ये जमदग्नि से छोटे भाई भृगुवंशी होते हुए भी श्रेष्ठ मुनि (कल्पान्तर में) कौशिक हो गये। विश्वामित्र के पुत्र शुनः शेप को हरिश्चन्द्र के यज्ञ में पशु बनाया गया। पश्चात् देवताओं ने शुनः शेप को विश्वामित्र के लिये पुनः दे दिया था इसलिये उसका नाम देवरात हुआ। । विश्वामित्र के देवरात आदि सात पुत्र थे, विश्वामित्र द्वारा दृषदती से अष्टक नामक पुत्र हुआ था। अष्टक के पुत्र लौहि हुए इस प्रकार जन्हु की वंशावली का वर्णन हुआ अब मैं महात्मा आयु के वंशज का वर्णन करूँगा।।५१-५८।।

❖❋❖

अथ अष्टविंशोऽध्यायः।।२८।।

वैशम्पायनजी बोले-हे नृप! स्वर्भानु की कन्या प्रभा से आयु के पाँच पुत्र हुए। वे पाँचों ही बीर तथा महारथी थे। पहले नहुष हुए इसके बाद वृद्धशर्मा, रम्भ, रजि तथा अनेना हुए। ये तीनों लोकों में विख्यात थे। रजि ने इन्द्र को भी भय उत्पन्न करने वाले पाँच सौ पुत्रों को उत्पन्न किया जो क्षत्रिय धर्म से युक्त थे। जब देवताओं तथा असुरों में परस्पर संग्राम का अति दारुण (कठिन) समय उपस्थित हुआ तब देवता और असुर दोनों ही ब्रह्मा से पूछे कि हम दोनों में किसकी विजय होगी? हे सब प्राणियों के ईश! हम लोगों को बतलाइये हम लोग इस विषय में आपका निर्णयात्मक वचन सुनना चाहते हैं। तब ब्रह्मा बोले-जिसकी विजय के लिये रजि आयुध ग्रहण कर युद्ध करेंगे वही तीनों लोकों को जीतने वाला होगा इसमें संशय नहीं है। जहाँ रजि रहेंगे वहाँ धृति (धैर्य) रहेगा और जहाँ धैर्य रहेगा वहाँ लक्ष्मी रहेगी और जहाँ धृति तथा लक्ष्मी दोनों रहेंगी वहाँ ही धर्म और विजय रहेगा। रजि पक्ष विजयी होगा यह ब्रह्मा द्वारा सुनकर दोनों दल प्रसन्न हो जय की इच्छा से भरतर्षभ रजि के समीप जाकर प्रार्थना करने लगे। वह परम तेजस्वी राजा सोम वंश की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला स्वर्भानु की पुत्री प्रभा से उत्पन्न हुआ था। उन रजि से देवता तथा दानव दोनों कहने लगे कि आप हमारी विजय के लिये श्रेष्ठ धनुष धारण करें।।१-१०।।

ऐसा सुनकर स्वार्थ का ज्ञाता अपने स्वार्थ का उद्देश्य कर अपने यश को प्रकाशित करता हुआ रजि देवता और दानवों से कहने लगा। रजि बोले-हे शक्र पुरोगमा! (हे देवो!) यदि मैं सभी दैत्यों को जीत कर धर्म पूर्वक इन्द्र बनाया जा सकूँ तो मैं संग्राम में युद्ध करूँगा तो देवताओं ने प्रसन्न मन से अग्रसर होकर कहा हे नृपते! यदि ऐसी आपकी इच्छा है तो आप इन्द्र बन जाइये स्वीकार है। इस प्रकार देव गणों का कहना सुन राजा रजि ने असुर

मुख्य से भी पूछा जिस प्रकार देवताओं से पूछा था तो अपने स्वार्थ को चाहने वाले दानव घमण्ड में आकर अभिमान सहित बोले कि हम लोगों के तो प्रह्लाद इन्द्र हैं, जिसके लिए हम लोग विजय कर रहे हैं। हे राजसत्तम! अब आप उसी व्रण पर रहिये अर्थात् हम लोगों को आपकी आवश्यकता नहीं है। यह सुन राजा ने कहा कि ऐसा ही होगा फिर देवताओं से प्रेरित अर्थात् दानवों को जीत आप ही इन्द्र बनेंगे ऐसे वचनों से उत्साहित हो रजि ने इन्द्र के सभी दानव शत्रुओं का संहार कर दिया और समर्थ रजि ने सब दानवों को मार कर देवताओं की सम्पूर्ण लक्ष्मी जो दानवों ने ले ली थी वापिस करा लिया। तब देवताओं को साथ ले इन्द्र ने महाबली रजि से कहा कि हम आपके पुत्र हैं, क्योंकि आपने हमारी रक्षा की है रक्षा करने वाला ही पिता है ऐसा कह कर फिर बोला आप सब देवताओं के इन्द्र हैं इसमें संशय ही क्या है कि जिसके पुत्र हम इन्द्र बन कर कर्मों से ख्याति प्राप्त करूँगा।११-२०।।

इन्द्र के इस प्रकार मायामय वचनों से वञ्चित होकर (ठग जाने पर) प्रसन्न होकर रजि ने इन्द्र से कहा कि ऐसा ही हो। उस राजा के स्वर्ग लोक पहुँचने पर जो रजि के पुत्र थे वे भी स्वर्ग पहुँच कर इन्द्र से समान भाग ले इन्द्र की तरह स्वर्ग में सुख प्राप्त करने लगे। रजि के पाँच सौ पुत्र थे उन्होंने अपने अधिक भाग के अनुसार स्वर्ग लोक और देवताओं पर अधिकार कर लिया तो इस प्रकार राज्य करते जब बहुत समय व्यतीत हो गये तो अपने राज्य तथा अपने भाग का अपहरण होते देख दुर्बल इन्द्र ने बृहस्पति से कहा। इन्द्र बोले-हे ब्रह्मर्षे! वदरी (वैर) फल के बराबर ही मेरा हविष्यान्न निश्चित कर दीजिये कि जिससे प्रसन्न होकर मैं अपने तेज (मर्यादा) से सदा स्थित रह सकूँ। हे ब्रह्मन्! राज्य और भाग अपहरण होने से मैं खिन्न मन वाला दुर्बल हो गया हूँ, हमको रजि के पुत्रों ने निस्तेज तथा दुर्बल एवं मूर्ख बना दिया है। इस प्रकार सुन कर बृहस्पति बोले-हे शक्र! यदि प्रकार मुझको पहले ही प्रेरित किया होता तो तुम्हारे लिये कोई ऐसी बात न थी कि मैं नहीं करता। अच्छा

ठहरो मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये प्रयत्न करूँगा जिससे तुम अपना राज्य और भाग शीघ्र ही प्राप्त कर लोगे। हे तात! तुम अपने मन को खिन्न मत करो वैसा ही करूँगा (जैसा कि कहा है) तत्पश्चात् बृहस्पति इन्द्र का तेज बढ़ाने वाला कर्म करने लगे और रजि पुत्रों को संमोह (मोहित) करने वाला उपाय वह द्विज श्रेष्ठ बृहस्पति करने लगे, नास्तिक बाद के लिये तर्क शास्त्र से बढ़कर कोई शास्त्र धर्मद्वेषी नहीं है।।२१-३०।।

इसलिये रजि पुत्रों को नास्तिक बनाने के लिये असज्जनों के मन में आनेवाले तर्क शास्त्र का निर्माण किया, जो वार्ता के प्रसंग में भी सज्जनों को अच्छा नहीं लगता तब वे अल्प बुद्धि रजि पुत्र बृहस्पति के बनाये शास्त्र को पढ़कर पूर्वोक्त धर्म शास्त्र (सनातन धर्म) का विरोध करने लगे वे धर्म द्वेषी बन गये। प्रवक्ता (बृहस्पति) के न्याय शून्य मत को वे अधिक रूप से मानने लगे, उस अधर्म से वे पापी नाश को प्राप्त हो गये और इन्द्र ने बृहस्पति के प्रसाद से दुष्प्राप्य तीनों लोकों का राज्य प्राप्त कर परम सुख को प्राप्त हुआ। जब वे मूर्ख सांसारिक सुख में उन्मत्त हो विधर्मी बन ब्रह्म द्वेषी तथा बल और पराक्रम से रहित हो गये। तब इन्द्र ने काम एवं क्रोध से लिप्त रजि के पुत्रों का वध कर देवता के ऐश्वर्य से युक्त उत्तम स्थान स्वर्ग को ले लिया। यह इन्द्र का अपने पद से भ्रष्ट होना तथा पुनः अपने पद को प्राप्त हो प्रतिष्ठा प्राप्त करना रूप आख्यान को जो पुरुष सुनेगा और धारण करेगा वह कभी दरिद्रता को नहीं प्राप्त होगा।।३१-३७।।



अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः।।२९।।

वैशम्पायनजी बोले-हे राजन्! रम्भ के कोई पुत्र नहीं था इसलिए अनेना के वंश का वर्णन करता हूँ। अनेना के पुत्र महायशस्वी राजा प्रतिक्षत्र

हुए। प्रतिक्षत्र के पुत्र सृंजय हुए सृंजय के जय, जय के विजय हुए। विजय के कृति, कृति के हर्यस्वत, हर्यस्वत के प्रतापी राजा सहदेव पुत्र हुए। सहदेव के धर्मात्मा विख्यात पुत्र नदीन हुए, नदीन के जयत्सेन, जयत्सेन के संकृति हुए। संकृति के पुत्र महायशस्वी क्षत्रधर्मा हुए यहाँ तक मैंने अनेना के वंश का वर्णन किया अब आगे क्षत्रवृद्ध के वंशजों को सुनो। क्षत्रवृद्ध के पुत्र महायशस्वी सुनहोत्र हुए, सुनहोत्र के परम धार्मिक तीन पुत्र हुए। काश, शल्य और गृत्समद, गृत्समद के पुत्र शुनक हैं जिनके वंशज शौनक इस नाम से प्रसिद्ध हैं। ये शौनक ब्राह्मण हैं तथा क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र भी इनकी सन्तानें हुईं, शल के पुत्र आर्ष्टिषेणा हैं इनके पुत्र काशक हुए। हे राजन्! काश के काशय संज्ञक कई पुत्र हुए जिनमें दीर्घतपा सबसे बड़े हैं, दीर्घतपा के पुत्र धन्व हुए ये विद्वान् होकर धन्वन्तरी नाम से विख्यात हुए। दीर्घतपा के महान् तप करने पर वृद्धावस्था में पुनः दूसरी बार देवता धन्वन्तरी मृत्युलोक आकर मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए थे और पहले समुद्र मंथन से उत्पन्न हुए थे।।१-१०।।

जनमेजयजी बोले कि धन्वन्तरी देवता होकर क्यों मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए? यह मैं सुनना चाहता हूँ आप यथा सत्य कहें। वैशम्पायनजी बोले–हे भरतर्षभ! आप धन्वन्तरी की जन्म कथा सुनें, जब अमृत के लिये समुद्र का मंथन होने लगा तो ये उसी समुद्र से सर्वाङ्ग शोभायुक्त हो सिद्धि के लिये विष्णु का ध्यान एवं जप करते हुए निकले तो विष्णु को देखकर खड़े हो गये तो विष्णु ने अप (जल) से उत्पन्न होने के कारण उनका नाम अब्ज रख कर कहा कि तुम कौन हो? अब्ज ने विष्णु से कहा हे प्रभो! मैं आपका पुत्र हूँ। हे मुनीश्वर! लोक में मेरे भाग तथा रहने के स्थान का निश्चय कर दीजिये, ऐसा कहने पर अब्ज से विष्णु ने सत्य बात कही। यज्ञिय देवताओं ने पहले ही यज्ञ का विभाजन कर लिया है और महर्षियों ने यज्ञ में देवताओं का भाग निश्चित कर दिया है और तुम देवताओं से बाद में उत्पन्न हुए हो इसलिये हे पुत्र!

तुम यज्ञ में भाग प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो, छोटे होमों में तुम्हारे लिये भाग देना अनुचित है। दूसरे जन्म में तुम लोक में विख्यात होओगे, तुम्हारे गर्भ में आने पर ही अणिमादिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जायेंगी। हे समर्थ! उसी शरीर से तुम देवत्व को प्राप्त करोगे। चरु (हविष्यान्न), मंत्र, व्रत तथा जप आदि के द्वारा ब्राह्मण तुम्हारा पूजन करेंगे। इसके पश्चात् तुम आयुर्वेद शास्त्र का आठ भागों में विभाजन करोगे यह बात अवश्य होगी इसको ब्रह्मा जी पहले से ही निश्चय कर चुके हैं।।११-२०।।

द्वापर के आने पर तुम उत्पन्न होओगे इसमें संशय नहीं है, इस प्रकार वरदान देकर विष्णु अन्तर्धान हो गये। फिर द्वापर के आने पर सुनहोत्र वंशी काशिराज दीर्घतपा देवताओं को प्रसन्न करते हुए तपस्या करने लगे। दीर्घतपा का यह सोचना था कि हम उसी देवता की उपासना करेंगे जो हमको पुत्र देगा, ऐसा सोचकर वह पुत्र के लिये अब्ज देवता (धन्वन्तरी) की आराधना करने लगे। आराधना से प्रसन्न हो अब्ज ने राजा से कहा कि हे सुव्रत! तुम क्या चाहते हो वर माँगो मैं वह दूँगा। राजा बोले–हे भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो आप हमारे ख्याति प्राप्त करने वाले पुत्र होइये तथास्तु (ऐसा ही होगा) कह कर अब्ज अन्तर्धान हो गये। हे महाराज! उसी राजा के घर धन्वन्तरि काशिराज होकर उत्पन्न हुए जो सब रोगों के समूल नष्टकर्ता हुए। आयुर्वेद (वैद्यक शास्त्र) तथा रोगों को दूर करने के लिये औषधि के प्रयोग की क्रिया भरद्वाज से प्राप्त कर (सीख कर) पुनः उस आयुर्वेद शास्त्र को आठ भागों में विभाजन कर शिष्यों को पढ़ाया। धन्वन्तरि के पुत्र केतुमान हुए, केतुमान के भीमरथ, भीमरथ के दिवोदास पुत्र हुए, वह वाराणसी के धर्मात्मा (राजा) हुए। राजा दिवोदास के राज्यकाल में वाराणसी शून्य हो गई (उजड़ गई) तो इस उजड़ी वाराणसी को क्षेमक नाम के राक्षस ने बसाया था जो शंकर का अनुचर था।।२१-३०।।

बुद्धिमान् निकुम्भ ने शाप दिया था कि यह वाराणसी एक हजार वर्ष तक शून्य रहेगी इसमें संशय नहीं है। वाराणसी को शाप देने पर प्रजेश्वर दिवोदास ने अपने राज्य के अन्तिम सीमा पर गोमती के किनारे अपनी राजधानी बनाई। पहले यह वाराणसी यदुवंशी महिष्मत के पुत्र राजा भद्रश्रेण्य की थी, भद्रश्रेण्य के धनुषधारियों में उत्तम सौ पुत्र थे। उनको मारकर नरश्रेष्ठ राजा दिवोदास ने इस पुरी में प्रवेश किया था, भद्रश्रेण्य के उस राज्य को दिवोदास ने बल पूर्वक हरण किया था। जनमेजयजी बोले–समर्थ निकुम्भ ने किसलिये वाराणसी को शाप दिया था, धर्मात्मा होकर मोक्ष क्षेत्र वाराणसी को शाप दे दिया यह बड़ा आश्चर्य है। वैशम्पायनजी बोले–राजर्षि दिवोदास ने नगरी बड़े विस्तार में बसाया। इसी समय शंकरजी विवाह कर पार्वती की प्रसन्नता के लिये श्वसुर के घर पर ही रहने लगे थे। शंकरजी की आज्ञा से उपदेश के अनुसार तपोधन रुद्रगण पार्वती की सेवा कर प्रसन्न करते थे। इससे महादेवी पार्वती तो प्रसन्न रहती थीं पर मैंना प्रसन्न नहीं रहती थीं वे बार-बार गणों तथा शंकर-पार्वती के ऊपर निन्दा कर क्रोधित रहती थीं। वह कहती थीं कि पार्षदों के सहित तुम्हारा भर्ता महेश्वर अनाचारी है यह सब देवों का देव होता हुआ भी दरिद्र है इसको शील नहीं है।।३१-४०।।

माता के ऐसा कहने पर वह अवरदा अर्थात् शिव-निन्दक दक्ष आदि का खण्डन करने वाली पार्वती स्त्री स्वभाव से क्रुद्ध शंकरजी के पास आईं। वह मुर्झाये मुख से महादेवजी से कहने लगीं कि हे देव! मैं यहाँ नहीं रहूँगी हमको अपने घर लिवा चलिये। पार्वती के साथ निवास करने के लिये सब लोकों की ओर दृष्टि पसार कर देखने लगे तो हे कुरुनन्दन! उनको इस पृथ्वी पर वाराणसी अच्छी लगी। तब महातेजस्वी महेश्वर यह ज्ञात कर कि वाराणसी इस समय दिवोदास के अधिकार में है। समीप बैठे गणेश्वर निकुम्भ को बुला कर कहा कि हे गणेश्वर! तुम जाकर वाराणसी को खाली कराओ और किसी कोमल उपाय द्वारा क्योंकि वह राजा बड़ा बलवान् है, तब वह

निकुम्भ वाराणसी को जाकर कण्डुक नामक नापित को स्वप्न में यह आदेश दिया कि हे अनघ! हमारा स्थान (मन्दिर) बनवा दो मैं तुम्हारा कल्याण करूँगा। हमारे ही रूप अनुसार मूर्ति बनवा कर नगरी के अन्तिम भाग में स्थापित करो। तब यह आदेश प्राप्त कर हे राजन्! नापित ने वैसा ही सब कुछ किया जैसा कि निकुम्भ ने स्वप्न में कहा था। इसकी सूचना दिवोदास को देकर यथाविधि पुरी के द्वार पर मन्दिर बनवा निकुम्भ की मूर्ति स्थापित कर नित्य प्रति उनके पूजन का महान् आयोजन कर दिया। गन्ध, धूप, माला, स्नान, मिष्ठान्न एवं ताम्बूलादिकों के द्वारा पूजन होने लगा।।४१-५०।।

इस प्रकार पूजा से प्रसन्न वह गणेश्वर नगर के निवासियों को हजारों प्रकार का वर देने लगा। पुत्र, धन, आयु तथा सब प्रकार के अभीष्टों को पूरा करने लगा। तब राजा ने ऐसा सुन कर और देख कर रानी से कहा कि तुम भी जाओ तब वह सुयशा नाम की श्रेष्ठ पटरानी पुत्र के लिये निकुम्भ के मन्दिर के पास आई और बड़ी भारी पूजा कर पुत्र की याचना की, इस प्रकार अनेक बार आकर पूजन कर पुत्र माँगा पर निकुम्भ इसलिये पुत्र नहीं देता था कि राजा हम पर कुपित हो तब मेरा कार्य सिद्ध होगा। इस प्रकार रानी को पूजन करते जब बहुत दिन बीत गया तो राजा के अन्दर क्रोध का प्रवेश हुआ और वह सोचने लगा कि यह मेरे राजधानी के दरवाजे पर रहता है और नगरवासियों को वर देता है पर सैकड़ों बार यजन-पूजन करने के बाद भी यह प्रसन्न हो मुझे वर प्रदान क्यों नहीं करता, यह मेरी ही नगरी में रह कर मेरे ही नगरवासियों से सदा पूजित भी है। मैंने पुत्र रूप बड़े प्रयोजन के लिये कई बार प्रार्थना की और मेरी रानी ने भी पुत्र के हेतु पूजा-प्रार्थना किया पर यह कृतघ्न निकुम्भ न जाने क्यों हमें पुत्र नहीं देता। इसलिये यह कृतघ्न हमारे यहाँ विशेष सत्कार के योग्य नहीं है अतः इस दुरात्मा के स्थान (मन्दिर) को मैं नष्ट कर डालूँगा। इस प्रकार निश्चित कर दुरात्मा पापी राजा दिवोदास ने गणेश्वर निकुम्भ के मन्दिर को गिरवा दिया। तो अपने मन्दिर को गिरा देख

निकुम्भ ने राजा को शाप दिया कि जैसे तूने मेरे इस निरपराधी का मन्दिर नष्ट कर उजाड़ कर दिया इसी प्रकार तेरी पुरी वाराणसी भी अकस्मात शून्य (उजाड़) हो जायेगी।।५१-६०।।

तत्पश्चात् उसी शाप से वाराणसी शून्य हो गई। शाप देकर निकुम्भ महादेवजी के पास चले आये। जब अकस्मात वाराणसी पुरी उजाड़ हो गई तब महादेवजी ने मोक्षधाम रूप अपना स्थान बनवाया और उस वाराणसी पुरी में पार्वती के साथ रमण करते हुए आनन्द पूर्वक रहने लगे, पर पार्वतीजी को अनधिकारियों को भी मुक्ति प्रदान करने वाला आश्चर्यकारक मोक्षधाम सुखकारी नहीं हुआ अर्थात् पार्वती दुःखी होकर शंकरजी से कहने लगीं कि मैं इस पुरी में नहीं रहूँगी। तब शंकरजी बोले—मैं अपने घर (कैलास) में नहीं रहूँगा यह अविमुक्त धाम ही मेरा घर है मैं नहीं वहाँ जाऊँगा। हे देवी! यदि तुमको यहाँ अच्छा नहीं लगता है तो तुम अपने घर चली जाओ। यह बात त्रिपुरान्तक भगवान् त्र्यम्बक ने हँस कर कहा था। इसलिए देवताओं ने स्वयं इसको अविमुक्त (मोक्षधाम) कहा है। इस प्रकार शाप प्राप्त कर अविमुक्त नाम से प्रसिद्ध हुई कि जिस पुरी में तीनों युगों में पार्वती के साथ शंकरजी रहते हैं और कलियुग के आने पर महात्मा शंकर की यह पुरी अन्तर्धान हो जाती है, जब अन्तर्हित होने पर पुनः यह पुरी बसती है, तो शंकरजी फिर रहने लगते हैं इस प्रकार वाराणसी का शाप पाना तथा पुनः बसना सुनाया। भद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्दम नाम से विख्यात है, दिवोदास ने सौ में निन्यानबे पुत्रों का वध कर इस दुर्दम को बच्चा समझ कर दया से छोड़ दिया था और इसे हैहय वंश का (अपने वंश का) पुत्र बना कर राजा रखा था, वह बड़ा होकर अपने पिता का राज्य जो दिवोदास के द्वारा हरण किया गया उसको बल पूर्व वैर का अन्त करने वाला हुआ हे महाराज! युद्ध करके भद्रश्रेण्य का पुत्र महात्मा दुर्दम काशी ले लिया।।६१-७१।।

दिवोदास द्वारा दृषद्वती से प्रतर्दन नामक पुत्र हुआ वह अपने पिता के

अपहृत राज्य को बालकपन में ही पुनः अपहरण कर लिया। प्रतर्दन के दो पुत्र वत्स तथा भार्ग नाम के हुए, वत्स का पुत्र अलर्क, अलर्क का पुत्र सन्नति हुआ। काशिराज अलर्क ब्रह्मवादी तथा सत्य (न्याय) से युद्ध करने वाला हुआ, अलर्क के प्रति प्राचीन लोगों का कहना है कि वह काशिकुल वाहक राजा साठ हजार और साठ वर्ष तक युवा (जवान) ही रहा। उसने लोपामुद्रा से परमायु होने का वर प्राप्त किया था, उस रूप तथा यौवनशाली राजा का राज्य दूर तक फैला हुआ था उस महाबाहु ने शाप के अन्त में क्षेमक नाम के राक्षस का वध कर इस रमणीक पुरी वाराणसी में पुनः प्रवेश किया था, सन्नति के पुत्र धर्मात्मा सुनीथ हुए। सुनीथ के पुत्र महायशस्वी क्षेम्य हुए, क्षेम्य के केतुमान इनके सुकेतु हुए और सुकेतु के धर्मकेतु, धर्मकेतु के महारथी सत्यकेतु पुत्र हुए। सत्यकेतु के प्रजेश्वर विभु, विभु के आनर्त्त, आनर्त्त के सुकुमार पुत्र हुए।।७२-८०।।

सुकुमार के धृष्टकेतु ये अच्छे धार्मिक थे धृष्टकेतु के प्रजेश्वर वेणुहोत्र हुए। वेणुहोत्र के प्रजेश्वर भर्ग हुए वत्स के दूसरे वत्सभूमि हुए तथा वत्स भाई भार्ग के भृगु भूमि पुत्र हुए। ये सब अंगिरा के पुत्र भृगु के वंश में उत्पन्न हुए थे इस कुल में हजारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सन्तानें उत्पन्न हुईं। यह मैंने काशिराज काश के वंश का वर्णन किया अब मुझसे नहुष के वंश को सुनो।।८१-८३।।



अथ त्रिंशोऽध्यायः ।।३०।।

वैशम्पायनजी बोले–वैश्यों के पूज्य सुस्वधा नामक पितरों की कन्या विरजा से नहुष के छः पुत्र महाबली इन्द्र के समान तेजस्वी उत्पन्न हुए। यति, ययाति, संयाति, आयाति, पांचिक तथा छठवाँ सुयाति हुआ, इनमें ज्येष्ठ यति था इसके बाद ययाति थे पर यति मोक्षधर्म का पालन कर ब्रह्मनिष्ठ मुनि हो

गये, इसलिए ययाति ही राजा हुए, इन्होंने काकुत्स की कन्या गौ को विवाहा था। उन शेष पाँचों की पृथ्वी (राज्य) को जीत कर ययाति ने दैत्यगुरु शुक्राचार्य की कन्या देवयानी को भार्या के रूप में प्राप्त किया था और वृषपर्वा की पुत्री आसुरी शर्मिष्ठा को भी विवाहा था। देवयानी से यदु और तुर्वसु उत्पन्न हुए, द्रुह्य, अनु तथा पूरु वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से उत्पन्न हुए थे। इन्द्र प्रसन्न होकर ययाति के लिये सूर्य की तरह चमकने वाला रथ दिया था। सुवर्ण का बना हुआ वह दिव्य रथ सम्पूर्ण लोकों में जाने वाला था, उसमें दिव्य श्रेष्ठ घोड़े जुते थे। मन के वेग के समान चलने वाले शुभ्र रथ में अपनी भार्याओं (रानियों) को बैठा कर घुमाता था। दुर्धर्ष ययाति ने उसी प्रमुख रथ के द्वारा छ दिन-रातों में पृथ्वी को तथा देवताओं सहित इन्द्र को जीता था। वह रथ पौरव वंशीय सभी राजाओं के राज्यकाल में था और हे राजन्! वसु नामक कौरव के काल तक था। कुरुवंशी राजा परीक्षित के राज्य काल में वह रथ बुद्धिमान् गार्ग्य के शाप से नाश को प्राप्त हो गया। गार्ग्य के कटुभाषी बच्चे को मार डालने से वह राजा ब्रह्महत्या को प्राप्त हो गया था।।१-१०।।

इससे जाति से बाहर कर दिया गया और पुरवासियों तथा देशवासियों ने भी त्याग दिया तब तो राजा इधर-उधर शान्ति के लिये दौड़ने लगा पर कहीं भी कल्याण को न प्राप्त कर सका। जब दुःख से संतप्त राजा कहीं भी शान्ति नहीं प्राप्त कर पाया तो वह इन्द्रोत (अपवित्र) राजा शौनक ऋषि की शरण में गया तो शौनक ऋषि ने इन्द्रोत राजा को पवित्र करने के लिये अश्वमेध यज्ञ करवाया। यज्ञ के अन्त में अवभृथ स्नान करने पर लोहगंध (ब्रह्महत्या से जनित जातिभ्रंश दोष) दूर हो गया। उसी समय इन्द्र प्रसन्न होकर रथ चेदिपति वसु को दे दिया और वसु से वह रथ वृहद्रथ को मिल गया और क्रमशः बृहद्रथ से बार्हद्रथ (जरासन्ध) राजा को मिल गया उसके बाद भीम ने जरासन्ध का वध कर उस उत्तम रथ को लेकर प्रेम से वासुदेव भगवान् को

दे दिया। राजा ययाति ने सप्त द्वीपों सहित पृथ्वी को जीत कर उसका पाँच भागों में विभाजन कर पाचों राजपुत्रों को दे दिया, दक्षिण-पूर्व दिशा का राज्य बुद्धिमान तुर्वसु को दिया। पश्चिम का राज्य द्रुह्य को दिया तथा उत्तर का राज्य अनु को दिया एवं पूर्वोत्तर दिशा का राज्य अपने बड़े बेटे यदु को दिया और मध्य भारत (कुरु पांचाल) का राज्य पुरु को देकर पाँचों राजाओं का राज्याभिषेक किया, उन्हीं सबों के द्वारा आज भी यह पृथ्वी वन-पर्वतों तथा नगरों सहित प्रदेशों के रूप में विभाजित होकर पालन की जाती है। हे नृप सत्तम! अब उनके पुत्र-पौत्रादिकों का वर्णन करता हूँ।।११-२०।।

जब वह राजा ययाति पुत्रों से कृत-कृत्य होकर धनुष रख दिया, इसके बाद राजा वृद्ध हो जाने से पुत्रों पर भार सौंप कर शस्त्र रहित राजा घूम कर पृथ्वी को देखने लगा। पृथ्वी को देख कर राजा को पृथ्वी से पुनः प्रीति उत्पन्न हो गई तब इस प्रकार पृथ्वी का विभाजन करने के बाद ययाति ने यदु से कहा। हे पुत्र! तुम मेरी बुढ़ापा को उपायान्तर से ग्रहण कर लो और अपना युवापन मुझे दे दो कि मैं युवा होकर तुम्हारे रूप से इस पृथ्वी पर विचरण करूँ तब यदु ने ययाति से कहा कि मैंने एक ब्राह्मण को अनिर्दिष्ट (जो मुझे ज्ञात नहीं है) भिक्षा देना स्वीकार किया है तो उसको बिना दिये कैसे मैं आपकी बुढ़ापा को ग्रहण कर लूँ। फिर बुढ़ापे में खाने-पीने के अनेक दोष भरे पड़े हैं इसलिए मैं आपकी बुढ़ापा नहीं ग्रहण करूँगा। हमसे भी प्रिय आपके और पुत्र हैं अतः हे धर्मज्ञ! किसी दूसरे पुत्र से बुढ़ापा लेने को कहिये। इस प्रकार यदु के कहने पर कुपित होकर श्रेष्ठ वक्ता ययाति उसकी निन्दा करते हुए कहने लगे कि हे दुर्बुद्धे! मेरे सिवा और कौन तुम्हारा आश्रय है तथा तुम किस धर्म का पालन करते हो जो कि मेरा (पिता का) अनादर कर रहे हो, मैं तुम्हारा देशक (शिक्षक विद्या प्रदाता) भी हूँ अतः मेरा अनादर कर अतिथि का अर्थ साधन करना धर्म विरुद्ध है। ऐसा कह कर धर्म से

पूरित हो ययाति ने यदु को शाप दे दिया जैसा कि आदि पर्व में कह चुका हूँ।।२१-३०।।

इस प्रकार कुपित राजा ने पुरु के चारों बड़े भाइयों को शाप देकर वही वचन पुरु से भी कहा हे पुरो! यदि तुम हमारी बात स्वीकार करो तो मैं अपनी पुढ़ापा का तुम्हारे में आरोप कर तुम्हारी जवानी ले तुम्हारे रूप से पृथ्वी पर विचरण करूँ। पिता की यह बात सुन प्रतापी पुरु ने पिता से बुढ़ापा ले ली और अपनी जवानी दे दी तब ययाति भी युवा होकर पृथ्वी पर चारों ओर घूमने लगा। वह काम की वासना का अन्त करता हुआ विश्वाची अप्सरा के साथ चैत्र वन में रमण करने लगा, यह विश्वाची इन्द्र के शाप से ककुत्स की कन्या गौ हुई थी और ययाति ने इसको विवाहा था। जब भोग में रह कर राजा तृष्णा रहित हो गया तब पुरु से अपनी जरा ले लिया। हे महाराज! इस विषय में ययाति के द्वारा जो गाई गई गाथा है उसे सुनो—संसार की वासनाओं से मनुष्य अपने इन्द्रियों को वैसे ही सिकोड़ ले जैसे कि कछुआ अपने अङ्गों को सिकोड़ लेता है। काम भोग करने से कदापि शान्त नहीं होता है, भोग से तो काम वैसे ही और अधिक तीव्र होता है, जैसे कि हवि के द्वारा अग्नि दीप्त होती है। इस पृथ्वी में धान्य, यव, सुवर्ण, हिरण्य, पशु तथा सुख देने वाली अनेक स्त्रियाँ हैं पर सन्तोष के बराबर सुख देने वाली इनमें से कोई नहीं है। इनकी ओर ध्यान देने से प्राणी मोह में पड़ जाता है। यदि सब प्राणियों द्वारा मनसा, वाचा, कर्मणा, पाप की भावना न की जाय तो ब्रह्म की प्राप्ति हो जाय।।३१-४०।।

यदि कोई दूसरों को नहीं डराता है तो उसे भी किसी का भय नहीं रहता, जब न इच्छा करेगा न द्वेष करेगा तब सहज हो ब्रह्म को प्राप्त कर लेगा। जो तृष्णा दुर्मतियों के द्वारा दुस्त्याज्य है वह तृष्णा मनुष्य के बूढ़े होने पर भी वृद्ध नहीं होती, जो कि मनुष्य के लिए प्राणान्त करने वाला रोग है,

इसके त्याग देने ही में सुख है। बूढ़ा होने पर केश भी पक जाते हैं और दाँत भी जीर्ण हो जाते हैं (टूट जाते हैं) पर तृष्णा और धन की आशा नहीं वृद्ध होती अर्थात् दिन-पर-दिन युवा होती रहती है। इस संसार में जो काम का सुख है और जो महान् दिव्य सुख है वह तृष्णा के त्याग सुख के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं है। इस प्रकार लोकोपदेश देकर वह राजा स्त्री के सहित तप के लिये वन में चला गया और दीर्घ काल तक निराहार रह कर भृगुतुङ्ग पर्वत पर वह महातपस्वी तप कर सपत्नीक स्वर्ग को चला गया। हे राजन्! उस ययाति के वंश में पाँच श्रेष्ठ राजर्षि हुए जिनकी सन्तानों से यह पृथ्वी वैसे ही व्याप्त है जैसे कि सूर्य की किरणों से। हे राजन्! राजर्षि यदु के राजर्षि-सत्कृत वंश को सुनो, कि जिस पवित्र कुल में वृष्णि वंश को प्रतिष्ठित करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए थे। हे राजन्! ययाति के इस चरित्र को पढ़ते तथा सुनते हुए मनुष्य धन्य होता हुआ पुत्रवान्, आयुष्मान तथा कीर्तिमान् होता है।।४१-४९।।



अथ एकत्रिंशोऽध्यायः ।।३१।।

जनमेजयजी बोले–हे ब्रह्मन्! मैं पुरु, द्रुह्यु, अनु, यदु तथा तुर्वसु के वंशों को पृथक-पृथक विस्तार से सुनना चाहता हूँ, वृष्णि वंश के प्रसंग से मैं अपने वंश को पहले सुनना चाहता हूँ। आप क्रमशः विस्तारपूर्वक कहिये। वैशम्पायनजी बोले–हे महाराज! पुरु के उत्तम वंश को विस्तार से क्रमशः सुनो कि जिस वंश में तुम उत्पन्न हुए हो हे राजन्! मैं आप से पुरु के उत्तम वंश को कहता हूँ तत्पश्चात् द्रुह्यु, अनु, यदु तथा तुर्वसु के वंश का वर्णन करूँगा। पुरु के पुत्र महाबली राजा जनमेजय हुए, उनके प्रचिन्वान् पुत्र हुए जिन्होंने पूर्व दिशा को जीता था। प्रचिन्वान् के पुत्र प्रवीर उनके मनस्यु हुए उनके पुत्र राजा

अभयद हुए। उनके पुत्र राजा सुधन्वा हुए और सुधन्वा के बहुगव उनके शम्याति हुए। शम्याति के रहस्याति उनके रौद्राश्व हुए और रौद्राश्व द्वारा घृताची नामक अप्सरा से दस पुत्र उत्पन्न हुए ऋचेयु, कृकणेयु, कुक्षेयु, स्थण्डिलेयु, सन्नतेयु, दशार्णेयु, जलेयु, महायशस्वी स्थलेयु, धनेयु तथा वनेयु। इनमें ऋचेयु ज्येष्ठ था और दस कन्यायें उत्पन्न हुईं।।१-१०।।

रुद्रा, शूद्रा, भद्रा, मलदा, मलहा, खलदा और हे राजेन्द्र! नलदा, सुरपि, गो तथा चपला ये दसों अपनी सुन्दरता से उर्वशी आदि अप्सराओं को लजाने वाली थीं। इनके स्वामी श्रेष्ठ कुलोत्पन्न प्रभा की कल्पना करने वाले अत्रि हुए, इन्होंने रुद्रा से यशस्वी सोम को उत्पन्न किया। जब राहु से पीड़ित हो सूर्य आकाश से गिरने लगे तो लोक में अन्धकार छा जाने से अत्रि ने प्रभा की कल्पना की थी अर्थात् प्रकाश स्थित रहना चाहा था। गिरते हुए दिवाकर के लिये स्वस्ति अर्थात् तेरा कल्याण हो ऐसा कहा था। ऋषि के स्वस्ति कहने पर दिवाकर वहीं ठहर गये, आकाश से भूमि पर नहीं गिरे। जिन महातपस्वी अत्रि ने अपने गोत्र को सब गोत्रों से श्रेष्ठ बना दिया, उन अत्रि के लिये यज्ञों में देवताओं ने धन देने की प्रथा चलायी। वह अत्रि उन पुत्रिकाओं में अर्थात् वेद-विधि गृहीत भार्याओं में उनके नामों से दस पुत्र उत्पन्न किये जो कठिन तपस्या में रत रहने वाले थे। वे वेद पारगामी गोत्र प्रवर्तक ऋषि हुए इसलिए अत्रि के धन से वर्जित वे स्वस्तात्रेय कहलाते हैं। रौद्राश्व के तृतीय पुत्र कुक्षेयु के सभानर, चाक्षुष तथा परमन्थु ये तीन पुत्र महारथी उत्पन्न हुए। सभानर के पुत्र राजा कालानल, इनके धर्मज्ञ सृञ्जय नाम के पुत्र हुए। सृञ्जय के वीर पुत्र राजा पुरञ्जय हुए और पुरञ्जय के महाराज (दूसरे) जनमेजय हुए।।११-२०।।

राजर्षि जनमेजय के पुत्र महाशाल हुए जो पृथ्वी पर वेद विख्यात प्रतिष्ठित यशस्वी थे। महाशाल के धार्मिक पुत्र महामना हुए जिस महायशस्वी

की पूजा देवता लोग यज्ञ में करते थे हे भारत! महामना के धर्मज्ञ उशीनर तथा तितिक्षु-महाबली तितिक्षु नामक दो पुत्र हुए। उशीनर की राजर्षि वंशीया पाँच पत्नियाँ थीं। नृगा, कृमी, नवा, दर्वा तथा पाँचवीं दृषद्वती। उशीनर के उन पाँचों रानियों से पाँच पुत्र हुए जो कुल की मर्यादा का पालन करने वाले थे। हे भारत! तपस्या के द्वारा वृद्धावस्था में ये उत्पन्न हुए थे। नृगा के नृग, कृमी के कृम, नवा के नव, दर्वा के सुव्रत पुत्र हुए और दृषद्वती से उशीनर के पुत्र शिबि हुए। शिबि का देश शिब्य, नृग का देश योधेय कहलाता है। नव का नवराष्ट्र, कृमी का देश कृमिलापुरी, सुव्रत का देश अम्बाष्ठा कहलाता है। अब शिबि के पुत्रों को सुनो। शिबि के लोकविख्यात चार वीर पुत्र हुए, वृषदर्भ, सुवीर, मद्रक तथा कैकेय। उनके जनपद को (राज्य सीमा के भीतर के देश को) कैकेय, मद्रक, वृषदर्भ और सुवीर कहते हैं अब तितिक्षु के पुत्रों को सुनो।।२१-३०।।

तितिक्षु के पुत्र महाबाहु उपद्रथ हुए जो पूर्व दिशा के राजा थे, उनके पुत्र फेन हुए। फेन के पुत्र सुतपा हुए, उनके पुत्र बलि हुए, पहले जो दानवेन्द्र बलि थे वे ही मनुष्य योनि में सुवर्ण के धनुष को लिये हुए उत्पन्न हुए। पहले जन्म में वह नृपति महान् योगी था वही बलि हुआ, उसने वंश की वृद्धि करने वाले पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया। अङ्ग, वङ्ग, सुह्य, पुण्ड्र तथा कलिङ्ग। इनमें अङ्ग सबसे बड़ा था, इनको बालेय क्षत्रिय कहते हैं। इसके वंश को प्रतिष्ठित करने वाले ब्राह्मण भी बालेय नाम से प्रसिद्ध हुए। हे भारत! ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर इनको वर दिया था कि तुम महायोग को प्राप्त होकर कल्प पर्यन्त की आयु वाला होओगे और तुम्हारी धर्म में प्रधानता (ख्याति) होगी तथा तुम संग्राम में अजेय होओगे। अपनी दिव्य दृष्टि से तीनों लोकों को देखोगे और वशित्व नामक सिद्धि तुम्हारी आज्ञा में रहेगी तथा बल में तुम उपमा रहित (बेजोड़) होओगे एवं धर्म के सूक्ष्म तत्त्वों के ज्ञाता होओगे। चारों वर्णों को अपने कर्म में नियत कर पृथ्वी पर वर्णाश्रम धर्म की स्थापना करने वाले

होओगे। इस प्रकार ब्रह्मा के वरदान रूप वचनों को सुन कर राजा बलि परम शान्ति को प्राप्त हुए। उसके सभी पुत्र उनकी विवाहिता धर्मपत्नी सुदेष्णा से बड़ी भारी तपस्या करने पर उत्पन्न हुए थे और वे श्रेष्ठ मुनि तथा महाबली हुए। राजा बलि अपने पापरहित पाँचों पुत्रों का राज्याभिषेक कर कृत-कृत्य हो गये। पश्चात् वह योगात्मा योगधर्म का आश्रय कर।।३१-४०।।

हे राजन्! सब प्राणियों से अघृष्य (मन से पृथक) हो ब्रह्म में विचरण करते हुए काल की प्रतीक्षा करने वाले बलि दीर्घ काल के बाद अपने स्थान को चले गये। उनके पुत्रों के नाम से पाँचों देश प्रसिद्ध हैं अङ्ग, वङ्ग, सुह्मक, कलिङ्ग तथा पौण्ड्रक। अब तुम अंग के पुत्र पौत्रादिकों को सुनो। अंग के पुत्र राजाओं में इन्द्र के समान श्रेष्ठ दधिवाहन हुए, उनके पुत्र-दिविरथ हुए। दिविरथ के पुत्र इन्द्र के समान पराक्रमी तथा विद्वान् धर्मरथ हुए, उनके पुत्र चित्ररथ हुए। उस महात्मा चित्ररथ ने विष्णुपद पर्वत पर यज्ञ करते हुए इन्द्र के साथ सोम का पान किया था। चित्ररथ के पुत्र दशरथ हुए जो लोमपाद के नाम से विख्यात थे जिसकी पुत्री शान्ता हुई जो ऋष्यशृङ्ग मुनि की पत्नी हुई, इन्हीं ऋष्यशृङ्ग मुनि के प्रसाद से दशरथ को चतुरङ्ग नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कुल को बढ़ाने वाला था। चतुरङ्ग के पुत्र पृथुलाक्ष हुए, उनके चम्प नामक यशस्वी पुत्र हुआ। राजा चम्प ने अपने नाम पर मालिनी पुरी का नाम चम्पा पुरी रखा। पूर्णभद्र मुनि के प्रसाद से चम्प को हर्यङ्ग नामक पुत्र हुआ। राजा हर्यङ्ग को चढ़ने के लिए विभाण्डक मुनि के पुत्र ऋष्यशृंग मुनि ने समुद्र से उत्पन्न हुए इन्द्र के उत्तम वाहन ऐरावत नामक गजेन्द्र को मन्त्रों के बल से बुलाया था।।४१-५०।।

हर्यङ्ग के पुत्र भद्ररथ हुए, उनके पुत्र प्रजेश्वर बृहदकर्मा हुए। बृहदकर्मा के पुत्र बृहद्दर्भ, उनके बृहन्मना हुए। हे राजेन्द्र! बृहन्मना ने जयद्रथ नामक पुत्र को उत्पन्न किया जिसके पुत्र राज दृढ़रथ हुए। हे जनमेजयजी! दृढ़रथ को विश्वजित नामक पुत्र था। विश्वजित का पुत्र कर्ण, कर्ण का पुत्र विकर्ण हुआ

और विकर्ण को सौ पुत्र अङ्ग कुल को बढ़ाने वाले हुए। बृहद्दर्भ का पुत्र जो राजा बृहन्मनाथा। उसकी दो स्त्रियाँ थीं। ये दोनों राजा चेद्य की पुत्री यशोदा तथा सत्या नाम वाली थीं इस कारण वंश भेद हो गया। हे राजेन्द्र! यशोदा से जयद्रथ उत्पन्न हुए थे और सत्या से ब्राह्मण के शान्त्यादि गुणों से युक्त तथा क्षत्रिय के शूरतादि गुणों से युक्त श्रेष्ठ पुत्र विजय हुए। विजय के पुत्र धृति, धृति के धृतव्रत, धृतव्रत के सत्यकर्मा महायशस्वी पुत्र हुए। सत्यकर्मा के पुत्र जो अधिरथ के नाम से विख्यात (रथ हाँकने वाले) थे, ये क्षत्रिय से ब्राह्मण की कन्या में उत्पन्न थे। जिसने कर्ण को ग्रहण किया था इसीलिये कर्ण सूत पुत्र कहे जाते हैं। यह सब मैंने महाबली कर्ण के प्रति कहा, कर्ण के पुत्र वृषसेन उनके वृष पुत्र हुए। ये सब मैंने महाराज अङ्ग के वंशजों का वर्णन किया जो कि महात्मा, पुत्रवान् तथा महारथी थे। हे राजन्! रौद्राश्व के पुत्र महाराज ऋचेयु के वंश का वर्णन सुनो कि जिस वंश में तुम्हारा जन्म हुआ है।।५१-६१।।



अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।

वैशम्पायनजी बोले-राजर्षि ऋचेयु अजय्य (अजेय) चक्रवर्ती सम्राट् थे, उनकी भार्या ज्वलना से तक्षक नाम का पुत्र हुआ। उसकी पटरानी से राजा मतिनार हुआ और मतिनार को तीन परम धार्मिक पुत्र हुए। सबसे बड़ा पुत्र तंसु था पश्चात् प्रतिरथ और धर्मात्मा सुबाहु था तथा गौरी नाम की एक कन्या भी उत्पन्न हुई जो महाराज मान्धाता की राजमाता थीं। वे तीनों पुत्र वेद के ज्ञाता, ब्रह्मचिन्तक, सत्यवादी, अस्त्र विद्या में पारंगत बलवान तथा युद्ध में कुशल थे। प्रतिरथ के पुत्र कण्व, कण्व के मेधातिथि और मेधातिथि के कण्व गोत्री ब्राह्मण काण्यवान नाम वाले हुए। हे भूप! ईलिनी जिस राजा की कन्या थी

उस राजा ईलिन का ब्रह्मवादी (ब्राह्मणों) के समुदाय में अधिक आदर था, तंसु ने उस ईलिनी नामक स्त्री को विवाहा था। तंसु के पुत्र सुरोध हुए वे राजर्षि धर्म प्रवर्तक, महायशस्वी तथा ब्रह्मवादी एवं पराक्रमी थे उनकी भार्या उपदानवी थी। ईलिनी पुत्र ऐल से उसे चार पुत्र प्राप्त हुए थे, दुष्यन्त, सुष्मन्त, प्रवीर तथा अनघ। दुष्यन्त के पुत्र महाबलवान् भरत हुए वे सर्वदमन नाम से विख्यात थे उनको दस हजार हाथियों का बल था। यह भरत दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला से उत्पन्न चक्रवर्ती सम्राट थे जिसके नाम पर इस देश का भारत नाम पड़ा।।१-१०।।

इस भरत के सम्बन्ध में आकाशवाणी ने दुष्यन्त से कहा था कि, माता भस्त्रा अर्थात् चमड़े की भाथी (धौंकनी) के समान है पुत्र जिससे उत्पन्न होता है उस पिता का है। हे दुष्यन्त! तुम शकुन्तला का अपमान मत करो पुत्र का पालन-पोषण करो अर्थात् शकुन्तला तुमसे ही गर्भवती हुई है। हे नरदेव! जिसका वीर्य धारण कर पुत्र उत्पन्न होता है वह उसका (उस पिता का) यम यातना से उद्धार करता है। तुम्हीं इस गर्भ को धारण कराने वाले हो यह वचन शकुन्तला सत्य कह रही है। हे तात! माताओं के कोप से भरत के पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर बृहस्पति के पुत्र अङ्गिरा इनके पुत्र महामुनि भरद्वाज को क्रतु देवता मरुतों ने भरत का पुत्र बना दिया यह मैं आदि पर्व में कह चुका हूँ। यहीं पर बुद्धिमान् भरद्वाज का मरुतों के द्वारा भरत के लिये धर्म का संक्रमण उदाहृत है। पहले माताओं के द्वारा पुत्र जन्म के विफल हो जाने पर क्रतु देवता मरुतों ने भरद्वाज को भरत का पुत्र नियुक्त कर दिया। इसके पश्चात् भरद्वाज को वितथ नाम का पुत्र हुआ, वितथ के उत्पन्न होने के बाद भरत दिवंगत हो गया। फिर वितथ ने पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया जो सुहोत्र, सुहोतार, गय, गर्ग, तथा कपिल नाम के थे इसमें कपिल मुनि हुए, सुहोत्र के दो पुत्र हुए। एक का नाम काशिक तथा दूसरे का नाम गृत्समति था गृत्समति के ब्राह्मण, क्षत्रिय तथ वैश्य जाति के पुत्र हुए।।११-२०।।

काशिक के पुत्र दीर्घतपा हुए, दीर्घतपा के पुत्र वैद्य धन्वन्तरि हुए। धन्वन्तरि के केतुमान, केतुमान के पुत्र वीर पुत्र राजा भीमरथ हुए। भीमरथ के पुत्र राजा दिवोदास हुए जिन्होंने सब राक्षसों का विनाश कर डाला था। इन्हीं दिवोदास के राज्यकाल में वाराणसी शून्य हुई थी, फिर क्षेमक नाम के राक्षस ने बसाई हे राजन्! बुद्धिमान् निकुम्भ ने शून्य होने का शाप दिया था। हे नराधिप! एक हजार वर्ष तक शून्य रहेगी ऐसा कहा था, निकुम्भ के शाप देने पर राजा दिवोदास अपने राज्य के अन्तिम सीमा गोमती के तट पर अपनी राजधानी बनवा कर रहने लगे। पहले यह वाराणसी भद्रश्रेण्य की थी जो कि यदु वंश में उत्पन्न हुए थे तथा महातपस्वी थे। भद्रश्रेण्य के उत्तम धनुषधारी सौ पुत्रों को मार कर प्रजेरश्वर दिवोदास ने इस नगरी को प्राप्त कर बसाया था। दिवोदास के पुत्र वीर राजा प्रतर्दन हुए और प्रतर्दन के दो पुत्र वत्स एवं भार्ग नाम के हुए। राज पुत्र अलर्क बड़ा ही विनम्र था उसने हैहय के भाग (राज्य) का हरण कर लिया था। भद्रश्रेण्य के छोटे पुत्र दुर्दम ने अपने पिता के राज्य को दिवोदास से बलपूर्वक हरण कर लिया जिसको कि बाल (बच्चा) समझ कर दिवोदास ने दया से छोड़ दिया था, वध नहीं किया था।।२१-३०।।

हे भारत! भीमरथ (दिवोदास) का पुत्र अष्टारथ (प्रतर्दन) ने दुर्दम के पुत्रों के असमर्थ होने से हरण हुआ पिता का राज्य युद्ध द्वारा वैर का अन्त कर वापिस लौटा लिया। प्रतर्दन का पौत्र काशिराज अलर्क ब्राह्मणों का भक्त तथा न्याय से युद्ध करने वाला था। वह छाछठ हजार वर्ष तक युवा रह कर विस्तृत राज्य किया वह रूप यौवनशाली राजा काशि कुल को प्रतिष्ठित करने वाला हुआ। उसने लोपा मुद्रा के प्रसाद से परमायु प्राप्त किया था। उसने अपनी अवस्था के अन्तिम भाग में क्षेमक राक्षस का वध कर शून्य वाराणसी पुरी को बसाया था। अलर्क के पुत्र सुनीथ राजा हुए, सुनीथ के महायशस्वी क्षेम्य पुत्र हुए। क्षेम्य के केतुमान, केतुमान के वर्षकेतु, वर्षकेतु के प्रजेश्वर विभु पुत्र

हुए। विभु के आनर्त्त, आनर्त्त के सुकुमार, सुकुमार के पुत्र महारथी सत्यकेतु हुए। तत्पश्चात् वत्स के पुत्र महातेजस्वी परम धार्मिक राजा वत्सभूमि तथा भार्गव के भार्गभूमि पुत्र हुए। हे भरतर्षभ! ये अङ्गिरा के पुत्र भृगु के वंश में उत्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र जाति कर्मा हुए थे।।३१-४०।।

सुहोत्र पुत्र वृहत् हुए और उनके अजमीढ, द्विमीढ तथा वीर्यवान् पुरूमीढ नामक तीन पुत्र हुए। अजमीढ को तीन सुन्दर पत्नियाँ नीलिनी, केशिनी तथा धूमिनी नाम की थीं। अजमीढ ने केशिनी से प्रतापी जह्नु को उत्पन्न किया था जिन्होंने सर्वमेध नामक महान् यज्ञ किया था और जिन जह्नु के पास विनीत हो गंगाजी पति के लोभ से गई थीं। जब जह्नु गंगा जी का पति बनना स्वीकार नहीं किया तो गंगा ने उनकी सभा को जलमग्न कर दिया था (डुबो दिया था) राजा गंगा द्वारा अपने यज्ञमार्ग को डूबा देख क्रुद्ध हो गंगा से बोला यह जो तुम्हारा तीनों लोकों का जल है उसे मैं बटोर कर पी जाऊँगा। हे गंगे! तू अब अपने किये पाप का फल प्राप्त कर। यह कह कर गंगा का जल पी गये ऐसा देख कर महर्षियों ने गंगा को जह्नु की पुत्री बना कर जाह्नवी नामकरण कर दिया। युवनाश्व की पुत्री कावेरी को जह्नु ने विवाहा जिसकी रचना गंगा ने शाप द्वारा अपने शरीर के आधे भाग से की थीं, पश्चात् वह नदी बन कर बहने लगीं। जह्नु की स्त्री से बलवान् अजक नाम का पुत्र हुआ और अजक के पुत्र राजा बलकाश्व हुए। वह मृगया अर्थात् शिकार खेलने में प्रसिद्ध था उसका पुत्र कुशिक हुआ वह वनेचर पह्लवों के साथ बड़ा हुआ था।।४१-५०।।

कुशिक इन्द्र के समान पुत्र प्राप्त करने के लिये तपस्या किये थे तब इन्द्र स्वयं भयभीत हो कुशिक का पुत्र बन कर उत्पन्न हुआ। वह इन्द्र स्वयं कुशिक का पुत्र राजा गाधि बन कर उत्पन्न हुआ था, गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए जो पहले राजा विश्वरथ नाम से भी प्रसिद्ध थे। गाधि के दो पुत्र विश्वकृत तथा विश्वजीत नाम के थे और एक कन्या सत्यवती नाम की थी कि जिस

सत्यवती से ऋचीक ऋषिद्वार जमदग्नि उत्पन्न हुए थे। विश्वामित्र के पुत्र देवरात आदि हैं कि जिनका तीनों लोक में नाम विख्यात है उन्हें हमसे सुनो। देवश्रवा (देवरात) तथा जो कति थे जिससे कात्यायन हुए थे, शालावती से हिरण्याक्ष उत्पन्न हुए। रेणु से रेणुमान हुए। हे राजन्! साङ्कृत्य, गालव तथा मुद्गल गोत्री बहुत सन्तानें उत्पन्न हुईं जो सब कौशिक वंश की सन्तानें हैं। पणिनि, बाभ्रव्य, ध्यानजप्य, राजा देवरातादि, शालङ्कायन, सौस्रव। लौहित्य, यामदूत तथा करिष्यादि और सैन्धवायनादि ये सब कौशिक वंश की विख्यात सन्तानें हैं। गोत्र प्रवर भेद से अन्यान्य ऋषियों के यहाँ विवाहादि करने पर कौशिक वंश की अनगिनत सन्तानें हुईं कहाँ तक गिनाऊँ, हे महाराज! पौरवों के साथ तथा ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के साथ विश्वामित्रादि का ब्रह्म-क्षत्र सम्बन्ध विख्यात है। विश्वामित्र का बड़ा पुत्र देवरात है यह जन्मान्तर में शुनःशेप नामक भार्गव (भृगुवंशी) था जो कि कौशिक वंश में उत्पन्न हुआ था, देवरातादि तथा अन्य अष्टकादि ये विश्वामित्र के पुत्र हैं।।५१-६१।।

विश्वामित्र से दृषद्वती नामक स्त्री से अष्टक हुए, अष्टक के पुत्र लौहि हुए यह सब मैंने जह्नु के वंश का वर्णन किया। हे भरतर्षभ! अब अजमीढ के वंश को सुनो–अजमीढ की नीलिनी नामक स्त्री से सुशान्ति नाम का पुत्र हुआ। सुशान्ति के पुरुजाति, पुरुजाति के वाह्याश्व तथा वाह्याश्व के देवताओं की तरह पाँच पुत्र हुए। मुद्गल, सृञ्जय, वृहदिषु, यवीनर तथा कृमिलाश्व। ये पाँचों अपने-अपने देश की रक्षा में समर्थ थे इसीलिये इनके जनसमूहों से व्याप्त अर्थात् विस्तार से फैले हुए देश (राज्य) को पाञ्चाल कहते हैं। पञ्चानां (पाँच) देशानां (देश के) तद्रक्षणे (रक्षा करने में) अलं (समर्थ थे) यह अर्थ रखने वाला पाञ्चाल शब्द से देश विख्यात (पंजाब) है। मुद्गल के महायशस्वी मौद्गल्य संज्ञक सन्तानें हुईं। ये महान् आत्मदर्शी क्षात्रधर्म से युक्त ब्राह्मण हुए तथा अंगिरा कण्व तथा मौद्गल के पक्ष का संश्रय करने वाले हुए। मौद्गल के ज्येष्ठ पुत्र का नाम महायशस्वी इन्द्रसेन था, इन्द्रसेन के वर्ध्यश्व हुए। वर्ध्यश्व के

मेनका नामक स्त्री से दो सन्तानें एक पुत्र दिवोदास नाम का तथा दूसरी पुत्री यशस्विनी अहल्या हुई थीं।।६२-७०।।

जो गौतम ऋषि को विवाही गई थीं। गौतम ने अहल्या से मुनिश्रेष्ठ शतानन्द को उत्पन्न किया था और शतानन्द से महायशस्वी धनुर्वेद पारंगत सत्यधृति नामक पुत्र हुआ, अप्सरा को अपने आगे (समीप में) देखकर सत्यधृति का शरस्तम्ब में वीर्य स्खलित हो गया उससे दो सन्तानें उत्पन्न हुईं, उस समय महाराज शन्तनु वन में आखेट के लिये गये थे, उन्होंने दोनों सन्तानों को उठा लिया। शन्तनु के कृपा कर उठाने से पुत्र का नाम कृप पड़ा और जो कन्या थी उसका नाम गोतमी कृपी हुआ, ये सब शारद्वत कहलाते हैं जो गौतम गोत्री कहे गये हैं। अब इसके आगे दिवोदास की सन्तानों का वर्णन करते हैं, दिवोदास के ब्रह्मर्षि राजा मित्रेयु हुए। मित्रेयु के पुत्र मैत्रायण सोम हुए, उसके बाद बहुत से पुत्र-पौत्रादि उत्पन्न हुए जो मैत्रेय कहे गये। ये सब क्षत्रिय थे भार्गवों के पक्ष का आश्रय लेकर रहते थे। महात्मा सृञ्जय के पुत्र पञ्चजन हुए और पञ्चजन के पुत्र राजा सोमदत्त हुए। सोमदत्त के पुत्र महायशस्वी सहदेव हुए और सहदेव के पुत्र राजा सोमक हुए। अजमीढ वंशी सहदेव का वंश क्षीण हो जाने पर सोमक की उत्पत्ति हुई थी। सोमक का पुत्र जन्तु था जिसको सौ पुत्र हुए थे। उनमें सबसे छोटा पृषत था जो राजा द्रुपद का पिता था, द्रुपद के धृष्टद्युम्न तथा धृष्टकेतु दो पुत्र थे।।७१-८०।।

ये अजमीढ वंशी ही सोमक कहलाते हैं, पहले अजमीढ वंशी कहलाते थे फिर सोमक के उत्पन्न होने के बाद सोमक वंशी कहलाये। अजमीढ की तीसरी पत्नी पुत्राभिलाषिणी जो धूमिनी थी हे पृथ्वीपते! वही धूमिनी आपके पूर्वजों की माता थी। वह पुत्र की अभिलाषा से व्रत में स्थित हो दस हजार वर्ष तक अत्यन्त कठिन तप कर हे जनमेजयजी! अग्नि में हवन कर पवित्र थोड़ा भोजन कर अग्निहोत्र के कुशा पर सो गई तब महाराज अजमीढ उसके पास पुत्रोत्पत्ति के लिये गये। पश्चात् उन्होंने बड़ा ही दर्शनीय साँवले रंग का पुत्र

उत्पन्न किया। जिसका नाम ऋक्ष हुआ, उन ऋक्ष के पुत्र संवरण हुए और संवरण के कुरु हुए जिन कुरु ने प्रयाग को छोड़कर अपनी राजधानी कुरुक्षेत्र अपने नाम से बसाई। जहाँ कि बहुत दिनों तक तप करने के बाद इन्द्र ने कुरु को वर दिया। यह कुरुक्षेत्र बड़ा पुण्यप्रद, रमणीय तथा पुण्यात्माओं से निवेषित है, कुरु से महान् वंश का यह कौरव हुआ। कुरु के चार पुत्र सुधन्वा, सुधनु, महाबाहु, परीक्षित तथा प्रबल अरिमेजय हुए! सुधन्वा के पुत्र बुद्धिमान् सुहोत्र हुए और सुहोत्र के पुत्र धर्म-अर्थ के ज्ञाता च्यवन हुए। च्यवन के कृतयज्ञ हुए, उस धर्मात्मा ने यज्ञ करके इन्द्र के समान विख्यात पुत्र उत्पन्न किया।।८१-९०।।

जिसका नाम चेदि देशिप उपरिचर वीर वसु था वह अन्तरिक्ष में मगन करने वाला था, चैद्योपरिचर के द्वारा गिरिका नाम की उसकी भार्या ने सात मानवी सन्तानें उत्पन्न कीं जिसमें छः पुत्र तथा एक कन्या थी। महारथी बृहद्रथ जो कि मगधराज के नाम से प्रसिद्ध था, प्रत्यग्रह, कुश जिसको मणिवाहन भी कहते हैं, मारुत, यदु तथा मत्स्य नाम के पुत्र तथा काली (सत्यवती) नाम की पुत्री हुई, बृहद्रथ का पुत्र कुशाग्र हुआ। कुशाग्र के पुत्र विद्वान् एवं बलवान् वृषभ हुए। वृषभ के पुत्र धर्मात्मा पुष्पवान् हुआ, उसका पुत्र पराक्रमी राजा सत्यहित हुआ। उसका पुत्र ऊर्ज हुआ, ऊर्ज का पुत्र बलवान् संभव हुआ। वह दो खंडों में उत्पन्न हुआ था इसके बाद जरा नामक राक्षसी ने उन दोनों खंडों को जोड़ दिया, इसलिये जरा द्वारा सन्धित होने से (जोड़े जाने से) वह जरासन्ध नाम से विख्यात हुआ। वह महाबली जरासन्ध सम्पूर्ण क्षत्रियों को जीतने वाला हुआ, जरासन्ध का पुत्र सहदेव हुआ। सहदेव का पुत्र तेजस्वी तथा महायशस्वी उदायु हुआ और उदायु ने परमधार्मिक श्रुतधर्मा नामक पुत्र उत्पन्न किया जो मगध देश में रहता था। कुरु के दूसरे पुत्र परीक्षित के पुत्र धर्मात्मा जनमेजय हुए।।९१-१००।।

जनमेजय के तीन पुत्र श्रुतसेन, उग्रसेन तथा भीमसेन नाम के हुए। ये

सभी महाभाग्यशाली, पराक्रमी तथा बलशाली थे, जनमेजय को दूसरी रानी से दो पुत्र सुरथ एवं मतिमान् हुए। सुरथ के पुत्र पराक्रमी विदूरथ हुए और विदूरथ के महारथी ऋक्ष हुए, यह दूसरे ऋक्ष हैं। यह अपने नाम के अनुसार शोभा पाते थे अर्थात् साँवले रंग की शरीर रोमावली से युक्त थी। हे राजन्! तुम्हारे वंश में दो ऋक्ष तथा दो परीक्षित एवं तीन भीमसेन और दो जनमेजय हुए हैं। दूसरे ऋक्ष के पुत्र भीमसेन हुए। इन भीमसेन के प्रतीप और प्रतीप के तीन पुत्र शन्तनु, देवापि तथा वाह्लीक हुए और तीनों महारथी हुए। शन्तनु का यही कुल है कि जहाँ तुम उत्पन्न हुए हो और वाह्लीक का राज्य हे नरेश्वर! सप्तवाह्य था। वाह्लीक के पुत्र महायशस्वी सोमदत्त हैं और सोमदत्त के भूरिश्रवा तथा शल हुए। देवापि मुनि हो गये और वे देवताओं के अध्यापक थे, उन्होंने यज्ञ के द्वारा च्यवन के पुत्र को उत्पन्न किया था। शन्तनु कौरव वंश में धुरन्धर राजा हुए। हे पार्थिव! मैं अब शन्तनु के वंश को कहता हूँ कि जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो।।१०१-११०।।

शन्तनु ने गंगाजी से देवव्रत नाम का पुत्र उत्पन्न किया जो भीष्म के नाम से विख्यात पाण्डवों के पितामह थे। हे भारत! शन्तनु की धर्मपत्नी काली से निष्पाप विचित्रवीर्य उत्पन्न हुए और विचित्रवीर्य की धर्मपत्नी से दृष्टिभोग के द्वारा व्यास मुनि ने धृतराष्ट्र, पाण्डु एवं विदुर को उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्र ने गान्धारी से सौ पुत्रों को उत्पन्न किया था, उनमें दुर्योधन सबसे बड़ा और सबका स्वामी था और पाण्डु के अर्जुन हुए और अर्जुन के सुभद्रा से अभिमन्यु उत्पन्न हुए जो महाराज परीक्षित के पिता थे कि, जिन परीक्षित से तुम उत्पन्न हुए हो। यही तुम्हारा पौरव वंश कहलाता है जिसमें कि तुम उत्पन्न हुए हो। अब तुर्वसु, द्रुह्य तथा यदु वंश को कहता हूँ। तुर्वसु के वह्नि, वह्नि के गोभान, गोभान के राजा त्रैसानु यह कभी पराजित नहीं हुए थे। त्रैसानु के करन्धम, करन्धम के मरुत आत्मज हैं। जो पहले मरुत कहा जा चुका है वह अविक्षित का पुत्र दूसरा राजा मरुत है। तुर्वसु वंशीय मरुत पुत्ररहित था। यह यज्ञ करने वाला तथा ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा देने वाला था। इस राजा को केवल

एक सम्मता नाम की कन्या थी। उसने उस सम्मता को यज्ञ की दक्षिणा में महात्मा सम्वर्त ऋत्विज को दे दी और ऋत्विज ने दुष्यन्त के पिता सुघोर को दे दी उसी से सुघोर ने पापरहित दुष्यन्त नामक पुत्र लाभ किया था।।१११-१२०।।

राजा ययाति के वृद्धावस्था न लेने पर ययाति के शाप से तुर्वसु वंश पौरव वंश में विलीन हो गया। दुष्यन्त के पुत्र करुत्थाम प्रजेश्वर हुए और करुत्थाम के आक्रीड तथा आक्रीड के चार पुत्र पाण्ड, केरल, कोल तथा चोल नाम के हुए उनके जनपद (देश) उनके नाम से पाण्ड्य, चोल तथा केरल प्रसद्धि हैं और ये बड़े प्रदेश हैं। हे राजन्! द्रुह्य के पुत्र बभ्रुसेतु हुए और बभ्रुसेतु के अङ्गारसेतु हुए जो मरुतों के स्वामी थे। जो मरुत राजा युवनाश्व के द्वारा बड़ी कठिनता से मारा गया, वह युवनाश्व से चौदह महीनों तक लड़ता रहा। हे भारत! अङ्गार का एक पुत्र गान्धार नाम का था उसी के नाम पर बड़ा गान्धार देश प्रसिद्ध है। जिस गान्धार देश के घोड़े श्रेष्ठ होते हैं। अनु के पुत्र धर्म, धर्म के पुत्र घृत हुए। घृत के पुत्र दुदुह और दुदुह के पुत्र प्रचेता हुए और प्रचेता के सुचेता हुए यह अनु के वंश का वर्णन किया। अब मैं ययाति के उत्तम तेज वाले बड़े पुत्र यदु के वंश का विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ सुनो।।१२१-१२९।।



अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।।३३।।

वैशम्पायनजी बोले–हे राजन्! यदु के देव पुत्रों की तरह पाँच पुत्र सहस्त्रद, पयोद, क्रोष्टा, नील और अञ्जिक नाम के हुए। सहस्त्रद के परम धार्मिक तीन पुत्र हैहय, हय तथा वेणुहय नाम के हुए। हैहय के पुत्र धर्म नेत्र हुए उनके कार्त और कार्त के साहञ्ज आत्मज हैं। जिन्होंने अपने नाम से

साहञ्जनी नामक नगरी बसाई, साहञ्ज के पुत्र राजा महिष्मान हुए जिन्होंने महिष्मती नाम की पुरी बसाई, महिष्मान के पुत्र प्रतापी भद्रश्रेण्य हैं जो वाराणसी के अधिपति थे, मैं पहले कह चुका हूँ कि भद्रश्रेण्य के विख्यात पुत्र दुर्दम थे। दुर्दम के पुत्र महाबली कनक हुए और कनक के लोक विख्यात चार पुत्र कृतवीर्य, कृतौज, कृतवर्मा तथा चौथा कृताग्नि हुआ, कृतवीर्य के अर्जुन हुए। जो सहस्रबाहु अर्थात् सहस्रार्जुन नाम से विख्यात था जो सूर्य के समान चमकते हुए रथ पर चढ़ कर सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत कर सप्तद्वीपेश्वर बन गया। उसने अत्रिपुत्र दत्तात्रेय की आराधना करते हुए दस हजार वर्ष तक परम कठिन तपस्या की।।१-१०।।

तपस्या से प्रसन्न होकर गुरु दत्तात्रेय ने चार वर प्रदान किये थे, जिससे पहला हजार भुजा होने का था जो कि अर्जुन के द्वारा माँगा गया था, दूसरा सज्जनों को अधर्म से निवारण करना, तीसरा शीघ्रता से पृथ्वी को जीत लेना और राजा के धर्म से प्रजा को प्रसन्न रखना और चौथा वर यह था कि बहुत संग्रामों को कर अपने हजारों शत्रुओं का वध कर संग्राम भूमि में रण करते हुए अपने से अधिक बलवान् महापुरुष द्वारा मारा जाना। हे भारत! उस योगेश्वर की योग माया से युद्ध काल में हजार भुजायें उत्पन्न हो जाती थीं। इससे उसने सात द्वीपों वाली पृथ्वी को नगर-ग्राम, समुद्र, वन-पर्वत सहित शीघ्र ही जीत लिया था। हे जनमेजय ! मैंने ऐसा सुना है कि उस सहस्रबाहु ने सातों द्वीपों में सैकड़ों यज्ञ शास्त्र विधि से किये थे और उसके सभी यज्ञ अधिक दक्षिणा वाले थे और सब यज्ञों में सुवर्ण के खम्भे तथा सुवर्ण की वेदिकायें बनाई गई थीं। हे महाराज ! और सभी यज्ञ देवताओं के विमानों से तथा गन्धर्वों एवं अप्सराओं से सुशोभित थे। जिसके यज्ञ की महिमा से विस्मित होकर वरीदास के विद्वान् पुत्र गन्धर्व ने तथा नारद जी ने गाथा गान किया था। नारद जी ने कहा कि यह निश्चय है कि जैसा यज्ञ, दान, तप, पराक्रम तथा ज्ञान कार्तवीर्य ने किया है वैसा कोई दूसरा राजा नहीं कर सकता।।११-२०।।

वह योगी खड्ग, कवच तथा धनुष-बाण धारण कर रथ पर बैठा हुआ सातों द्वीपों में मनुष्यों के द्वारा देखा जाता था। धर्म से प्रजा की रक्षा करने वाले उस राजा का धर्म के प्रभाव से कभी द्रव्य नष्ट नहीं होता था न कभी शोक, मोह तथा विभ्रम ही होता था। वह पचासी हजार वर्ष तक सब रत्नों से युक्त चक्रवर्ती सम्राट था। योग के बल से वह स्वयं यज्ञपाल एवं क्षेत्रपाल था वह स्वयं मेघ बनकर रक्षा करता था। धनुष की डोरी खींचने से कठिन हो गया हाथ का चमड़ा जिसका ऐसा वह सहस्त्रबाहु हजारों किरणों वाले शरद कालीन सूर्य की भाँति चमकता था। उस महातेजस्वी ने कर्कोटक नाग के पुत्रों को जीत कर अपनी महिष्मती पुरी में नागों को मनुष्यों के साथ बसा दिया था। उस कमलनेत्र ने वर्षा काल में समुद्र के वेग को क्रीड़ा करते हुए भुजाओं से व्यथित कर उल्टा कर दिया था। उसके जलक्रीड़ा द्वारा आलोडित होने से उत्पन्न हो गई है फेनों की माला जिसमें ऐसी फेनमाला के डोरों युक्त नर्मदा अपनी चंचल हजारों तरङ्गों के द्वारा शङ्कित चित्त होती हुई समुद्र से मिलती थी। उसके सहस्त्रों बाहुओं द्वारा समुद्र के क्षुब्ध होने पर पाताल में स्थित महासुर भय के मारे चेतना रहित हो छिप जाते थे। जैसे देवता और असुरों ने मन्दराचल को क्षीर सागर में डाल कर क्षीर सागर का मन्थन किया वैसे ही यह महाबलवान् सहस्त्रबाहु अपने शरीर को समुद्र में डाल कर जब हजारों भुजाओं द्वारा मंथने लगता था तब समुद्र की बड़ी-बड़ी लहरें चूर्ण-चूर्ण हो जाती थीं तथा बड़े-बड़े महामत्स्यादि जलचर इधर-उधर भागने लगते थे तथा बाहुबेग के उत्पन्न वायु से फेनों का समूह उत्पन्न होकर भँवरें पड़ने लगती थीं, इससे समुद्र को दुःसह क्लेश होता था।।२१-३१।।

मन्दराचलरूपी सहस्त्रबाहु के द्वारा उत्पन्न क्षोभ से चकित हो अमृत उत्पन्न होने की आशंका से हजारों सर्प ऊपर निकल आये पर भयंकर सहस्त्रबाहु को देख भय से नीचे फण कर उसकी वायु से कम्पित होते हुए सायंकाल कदली बन में चले गये। उस महान् वीर ने बलवान् लंकापति रावण

को पाँच बाणों से मूर्च्छित कर तथा बलपूर्वक जीतकर धनुष की डोर में बाँध उसे अपनी माहिष्मती नगरी में लाया था। जब यह समाचार पुलस्त्य मुनि ने सुना कि सहस्रार्जुन ने रावण को बन्धन में डाल दिया है तो वे माहिष्मती में जाकर सहस्रार्जुन का साक्षात्कार कर रावण को छोड़ने की याचना किये तब उसने रावण को छोड़ा। जिस सहस्रबाहु के धनुष की प्रत्यंचा का शब्द ऐसा भयानक होता है कि जैसे युगान्तकारी मेघ को फोड़कर विद्युत (बिजली) का शब्द होता है। अहोधन्य है उस परशुराम के बल को कि जिनने युद्धभूमि में उसकी सुवर्ण-सी चमकती हजारों भुजाओं को ताल वन की भाँति काट गिराया। एक बार अग्निदेव ने भूख से पीड़ित होकर सहस्रबाहु से भोजन की भिक्षा माँगी थी तब सहस्रार्जुन अग्नि को सातों द्वीप दे दिया। तब तो वह अग्नि पुर, ग्राम, घोष तथा देशों को चारों ओर से अपनी ज्वाला से जलाने लगा। इस प्रकार उसका सब कुछ जला दिया। अग्नि उस पुरुषेन्द्र महात्मा अर्जुन के प्रभाव से वन और पर्वतों को जलाते-जलाते वरुण पुत्र वसिष्ठ के सूने आश्रम को भी डरते-डरते हैहय (सहस्रबाहु) के साथ वन की भाँति भस्म कर दिया।।३२-४१।।

वरुण ने पहले जिस उत्तम तेज वाले पुत्र का लाभ किया था वही वसिष्ठ नाम से विख्यात मुनि हुए, उनको आपव भी कहते हैं। फिर वसिष्ठ मुनि से आश्रम को भस्म हुआ देख अर्जुन को शाप दे दिया कि हे हैहय! जिन भुजाओं के बल से तूने हमारे इस वन को जलाने से नहीं रोका और दुष्कर्म कर डाला उन भुजाओं को काटकर वेग से तुम्हारा मान मर्दन कर जमदग्नि के पुत्र तपस्वी ब्राह्मण प्रतापी एवं बली भृगुवंशी परशुराम वध करेंगे। वैशम्पायनजी बोले–हे अरिसूदन ! धर्म से प्रजा की रक्षा करने वाले राजा के राज्य में कभी भी द्रव्य नष्ट नहीं होता था। उस राजा की मृत्यु मुनि के शाप से परशुराम द्वारा हो गई। हे कौरव्य ! सहस्रबाहु ने भी दत्तात्रेय से स्वयं इसी प्रकार का वर पहले माँगा था। उस महात्मा के सौ पुत्रों में पाँच पुत्र शेष रह

गये जो कि यशस्वी, शूरवीर, धर्मात्मा एवं बली थे। शूरसेन, शूर, धृष्टक, कृष्ण तथा जयध्वज जो अवन्ती नगरी का महान राजा था। कार्तवीर्य के सभी पुत्र बली और महारथी थे, जयध्वज के पुत्र महाबलवान् तालजङ्घा हुए।।४२-५०।।

उसके सौ पुत्र हुए जो तालजङ्घा नाम से विख्यात हुए। हे महाराज! महात्मा हैहय के वंश में वीतिहोत्र, सुजात, भोज, अवन्ति तथा तौण्डिकेर आदि प्रमुख तालजङ्घा हुए थे। भरत के वंश में पुण्यकर्मा, वृष (पयोद) इत्यादि अनेक यादव उत्पन्न हुए कहाँ तक कहा जाय विस्तारधिक्य है। उनमें वृष विख्यात वंशधर हुआ, वृष का पुत्र मधु हुआ और मधु को सौ पुत्र थे उनमें वृषण वंश को चलाने वाला हुआ। वृषण के वंश वृष्णि कहलाते हैं और मधु के अन्य पुत्रों से उत्पन्न सन्तानें माधव कहलाती है तथा यदु से यादव कहलाते हैं। शूर आदि तथा शूरवीर शूरसेन इत्यादि हैहय कहे जाते हैं, शूरसेन के नाम पर ही उनका शूरसेन देश विख्यात है। जो मनुष्य कार्तवीर्य (सहस्त्रार्जुन) के जन्म आदि का पाठ नित्यशः कहते सुनते हैं उनका धन कभी नष्ट नहीं होता है तथा नष्ट हुआ धन पुनः प्राप्त हो जाता है। हे राजन्! ये सब मैंने ययाति के पुत्रों के विविध वीर वंशजों का वर्णन किया कि जिन्होंने इन लोकों को पञ्चमहाभूतों की भाँति स्थावर तथा जङ्गम सहित धारण किया था अर्थात् रक्षा किया था। इन्द्रियजीत इन पाँचों के विविध पुत्र-पौत्रों की उत्पत्ति को सुनकर राजा लोग धर्म तथा अर्थ के ज्ञाता होकर इन्द्रियों को वश में कर ईश्वर को भी पश्चात् वश में कर लेते हैं। हे भारत! इन पाँचों की कथा सुनने तथा धारण करने वाला आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य तथा भूमि ये पाँच दुर्लभ वर लाभ करता है। हे राजेन्द्र! यदु के वंश को बढ़ाने वाले पुण्यकर्मा तथा यज्वा यदु-पुत्र क्रोष्टा के उत्तम पुरुषार्थी वंश को सुनो। क्रोष्टा के वंश को सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है कि जिस उत्तम वंश में वृष्णि कुल का उत्थान करने वाले हरि (विष्णु) ने अवतार धारण किया था।।५१-६२।।



अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

वैशम्पायनजी बोले कि क्रोष्टा की दो रानियाँ थीं गान्धारी ने अनमित्र को जन्माया था और माद्री ने युधाजित् एवं देवमिढुष्ट इन दो पुत्रों को उत्पन्न किया था। तीनों से तीन वंश चले जो कि वृष्णि कुल को बढ़ाने वाले थे। माद्री के पुत्र युधाजित् के दो पुत्र वृष्णि और अन्धक नाम के हुए, वृष्णि के श्वफल्क तथा चित्रक दो पुत्र हुए। हे महाराज! श्वफल्क ऐसे महात्मा थे कि जहाँ वे रहते थे वहाँ अवर्षण तथा व्याधि का भय नहीं उत्पन्न् होता था। एक समय समर्थ काशिराज के देश में तीन वर्ष तक इन्द्र ने वर्षा नहीं की। तब काशिराज ने श्वफल्क को बुला उनका परम पूजन कर अपने यहाँ बसाया, फिर तो श्वफल्क के रहने से इन्द्र ने वर्षा की। श्वफल्क ने काशिराज की कन्या से विवाह किया, जिसका नाम गान्दिनी था जो प्रतिदिन विप्रों को गौदान किया करती थी। वह अपने माता के उदर में बहुत वर्षों तक निवास करती रही उत्पन्न नहीं होती थी तो उस गर्भ में स्थित रहने वाली कन्या से उसके पिता बोले। हे भद्रे! तुम्हारा कल्याण हो, तुम शीघ्र उत्पन्न हो जाओ तब गर्भस्थिता कन्या ने यह कहा कि यदि मैं प्रतिदिन गौ का दान दूँ तो आज ही उत्पन्न हो जाऊँ, पिता ने कहा ऐसा ही करना फिर पिता ने उसकी कामना को पूर्ण किया।।१-१०।।

दानशील, यज्ञकर्ता, धीर, अतिथिसेवी तथा विद्वान् अक्रूरजी उन्हीं श्वफल्क द्वारा गान्दिनी से उत्पन्न हुए जो कि यज्ञों में अधिक दक्षिणा देने वाले थे। उपासङ्ग, मद्गु, अरिमेजय, अविक्षिप, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मधृक्, यतिधर्मा, गृध्रमोजान्तक, आवाह तथा प्रतिवाह ये सब अक्रूरजी के भाई हुए तथा एक वराङ्गना नामक बहन हुई थी। अक्रूरजी द्वारा उग्रसेना नामक सुन्दर शरीर वाली पत्नी से प्रसेन और उपदेव नामक दो पुत्र देवता की तरह तेजस्वी हुए। चित्रक के पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मात्मा सुबाहु तथा बहुबाहु नामक पुत्र और

श्रविष्ठा तथा श्रवणा नामक दो कन्यायें हुईं। अश्मकी नामक स्त्री से देव मिढुष्ट ने शूर नाम का पुत्र उत्पन्न किया और शूर द्वारा भोजवंशी पटरानी से दस पुत्र हुए। जिनमें प्रथम महाबाहु वसुदेव हुए। जिस समय यह शूर के घर में उत्पन्न हुए उस समय स्वर्ग में आनक तथा दुन्दुभि नामक बाजे स्वयं बजने लगे थे। हे राजन्! उनका संह्लाद (प्रसन्नता रूप) महान् शब्द बड़ा ही सुहावना था और शूर के भवन में पुष्पों की महावर्षा हुई थी इसलिये इनका आनकदुन्दुभि नाम भी है। चन्द्रमा की भाँति सुन्दर कान्ति से युक्त रूप उस पुरुष श्रेष्ठ का था। उस समय मर्त्यलोक में उनके समान सुरूपवान कोई नहीं था।।११-२०।।

इसके बाद देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कनवक, वत्सवान, गृञ्जिम, श्याम, शमीक तथा गण्डूष ये ही दसों पुत्र तथा पाँच कन्यायें पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नाम की हुईं। ये पाँचों ही वीर पुरुषों की मातायें तथा स्त्रियों में श्रेष्ठ थीं। हे कुरुनन्दन! राजा कुन्तिभोज ने पृथा को अपनी पुत्री बनाने के लिये माँगा था तब कुन्तिभोज को वृद्ध और पूज्य समझ कर शूर ने पृथा को दे दी। उसी से पृथा कुन्तिभोज की पुत्री कुन्ती कहलाती हैं। अन्य के द्वारा श्रुतदेवा से जगृहु नामक पुत्र हुआ और चैद्य (दमघोष) से श्रुतश्रेव में महाबली शिशुपाल हुआ। यह पहले हिरण्यकशिपु नाम का दैत्यराज हुआ था, वृद्धशर्मा से पृथुकीर्ति में करुष देश का अधिपति महाबली और वीर दन्तवक्त्र हुआ और जिस पृथा को कुन्तिभोज ने पुत्री बनाया था उसको पाण्डु ने विवाहा था। जिसमें धर्म के अंश से धर्मवेत्ता राजा युधिष्ठिर, वायु के अंश से भीम, इन्द्र के अंश से अर्जुन उत्पन्न हुए। जिनके समान लोक में कोई वीर नहीं हुआ, वह इन्द्र के समान पराक्रमी थे। क्रोष्टा के प्रथम पुत्र वृष्णिनन्दन अनमित्र से शिनि उत्पन्न हुए। शिनि के सत्यक और सत्यक के सात्यकि और सात्यकि के युयुधान हुए और युयुधान के भूमि पुत्र हुए।।२१-३०।।

भूमि के युगन्धर हुए बस यहीं पर इनका वंश समाप्त होता है। देवभाग के पुत्र उद्धव हुए जो पण्डितों में श्रेष्ठ तथा देवताओं जैसी कीर्ति वाले थे। देवश्रवा ने अश्मकी नामक स्त्री से शत्रुओं से रहित शत्रुघ्न नामक यशस्वी पुत्र को उत्पन्न किया। किसी कारणवश देवश्रवा बाल्यावस्था में ही त्याग दिया गया था, पश्चात् उसका पालन-पोषण निषादों ने किया था, वह निषाद से उत्पन्न कहा जाता था। हे महाराज! वही एकलव्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पुत्ररहित वत्सवान् को प्रतापी वसुदेव ने अपना औरस वीर पुत्र दे दिया था। अपुत्र गण्डूष को श्रीकृष्णजी ने चारुदेष्ण, सुचारु, पंचाल तथा कृतलक्षण अपने चार पुत्रों को दिया था। हे पुरुषर्षभ! रुक्मिणी के छोटे पुत्र महाबाहु चारुदेष्ण संग्राम को बिना जीते कभी नहीं लौटते थे। उनके पीछे हजारों कौवे चारुदेवता के द्वारा आहत वीरों का स्वादिष्ट मांस खाने के लिये जाते थे। कनवक के तन्द्रिज और तन्द्रिपाल पुत्र थे, अवगृञ्झिम के वीर और अश्वहन पुत्र थे। श्याम के पुत्र शमीक हुए इन्होंने राज्य किया था, भोज वंशी राजा एक ही वंश के राजा हैं इस प्रकार अपनी आत्मा की निन्दा करता हुआ साम्राज्य को प्राप्त किया था। वह अजातशत्रु (युधिष्ठिर) का सहायक होकर उनके शत्रुओं का नाश किया था, अब मैं वसुदेव के वीर पुत्रों का वर्णन करता हूँ सुनो। तीन भागों में विभक्त जो वृष्णि के बहुत शाखा वाले बलवान वंश को सुनकर धारण करता है वह नाना प्रकार के अर्थों से युक्त होता है।।३१-४१।।



अथ पंचत्रिंशोऽध्यायः ।।३५।।

वैशम्पायनजी बोले-वसुदेव की अति सुन्दर चौदह पत्नियाँ जो थीं उनमें रोहिणी, श्रेष्ठ इन्दिरा, वैशाखी, भद्रा तथा सुनाम्नी ये पाँच पौरव वंश की थीं और सहदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और

देवकी ये सात देवक की कन्यायें थीं और सुन्दर तन वाली सुतनु तथा वडवा ये दोनों भोग पत्नियाँ थीं। हे महाराज! रोहिणी पौरव वंशी बाह्लिक की कन्या थीं और यह वसुदेव की ज्येष्ठ प्रिय पत्नी थीं। वसुदेव ने रोहिणी से ज्येष्ठ पुत्र बलराम, सारण, शठ, दुर्द्दम, दमन, स्वभ्र, पिण्डराक और उशीनर इन आठ पुत्रों को तथा चित्रा नाम की कन्या दो बार जन्मी इसलिये कुल दस सन्तानें उत्पन्न की थीं हे कुरुनन्दन! चित्रा ही पुनर्जन्म लेकर सुभद्रा नाम से विख्यात हुई थी। (पुराण की कथा है कि चित्रा नामक अप्सरा मुनि के शाप से रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुई और मर गई तब उसने सोचा कि मैं यदु कुल में उत्पन्न होकर भी भगवान् की लीला न देख सकी यह विचार कर उसने फिर दूसरा जन्म ग्रहण किया। इस प्रकार दस सन्तानें रोहिणी की हुई) वसुदेव से देवकी में श्रीकृष्ण हुए, बलराम से रेवती में निशठ हुए। सुभद्रा में महारथी अर्जुन से अभिमन्यु हुए और अक्रूर से काशिकन्या में सत्यकेतु हुए। वसुदेव की सात भाग्यशालिनी स्त्रियों से जो वीर पुत्र हुए उनके नाम सुनो। भोज और विजय ये दो पुत्र शान्तिदेवा के हैं। वृकदेव और गय सुनामा के पुत्र हैं।।१-१०।।

देवरक्षिता के पुत्र उपासंगवर हुए और वृकदेवी ने महात्मा अवगाह को उत्पन्न किया। वृकदेवी त्रिगर्तराज की कन्या थी उसका भर्ता गर्गवंशी शैशिरायण था उसका साला यादवों का पुरोहित तथा उनका पक्ष करने वाला था वह शैशिरायण की काम शक्ति की परीक्षा किया तब दृढ़व्रत से ब्रह्मचर्य पालन करने वाले उस गार्ग्य का काम-पौरुष दृढ़ नहीं हुआ, फिर तो उसके साले ने शैशिरायण नपुंसक है ऐसा कह दिया। फिर तो नपुंसक रूप मिथ्या दोष लगाकर निन्दित किया जाने वाला क्रोधित गार्ग्य बारह वर्षों के बाद लोह दण्ड के समान हो अन्यत्र काम शक्ति का प्रदर्शन करने के लिये गोप कन्या को लेकर मैथुन करने लगा, वह गोपाली अप्सरा थी जो गोप कन्या का वेष धारण कर ली थी। उसने गार्ग्य के अति तेजस्वी अच्युत गर्भ को धारण किया तब शूलपाणि शंकर की प्रेरणा से मानवी वेषधारिणी गार्ग्य की भार्या से

महाबलवान् राजा कालयवन उत्पन्न हुआ जिसे 'वृषभ' के समान मोटा नाभी से आगे शरीर है जिनका ऐसे वृषभकन्ध को घोड़े रण में ढोते थे। अप्सरा उस समय इस बालक को अन्तःपुर में रखकर अपुत्र राजा यवन के घर पाला-पोषा था अतः यह यवन का पुत्र कालयवन हुआ। वह राजा कालयवन युद्ध की कामना कर नारद से पूछा तो नारदजी ने वृष्णि और अन्धक कुल के वीरों को युद्ध के योग्य बतलाया। तब तो कालयवन ने एक अक्षोहिणी सेना लेकर मथुरा पर धावा बोल दिया तथा मथुरा पहुँच कर वृष्णि और अन्धकों के वास स्थान पर दूत भेजा। तब कालयवन के भय से वृष्णि और अन्धक वंशियों ने श्रीकृष्ण को अग्रसर कर एक गोष्ठी कर मंत्रणा करने लगे और उन्होंने उसे बली समझ रम्य मथुरापुरी को छोड़ कर द्वारका बसने की इच्छा की। जो पवित्र आचरणों से इन्द्रियों को वश में कर श्रीकृष्ण के जन्म कथा को पर्वों में सुनाता है वह विद्वान् ऋण रहित हो सुखी होता है।११-२२।।



अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः ।।३६।।

वैशम्पायनजी बोले–क्रोष्टा के पुत्र वृजिनीवान् हुए उनके यज्ञकर्त्ताओं में श्रेष्ठ स्वाहि हुए। स्वाहि के रुषद्गु हुए जो श्रेष्ठ वक्ता थे और उन्होंने अधिक दक्षिणा वाले अनेक यज्ञों को किया। वे अपने बड़े पुत्र से अधिक पुत्रों को उत्पन्न करने की इच्छा करते थे, उनके पुत्र सत्कर्म युक्त चित्ररथ हुए। चित्ररथ का पुत्र चैत्ररथि शशविन्दु हुआ जो बहुत दक्षिणा युक्त यज्ञों का करने वाला तथा राजर्षियों के मार्ग का अनुसरण करने वाला हुआ। शशविन्दु का पुत्र विपुल यशस्वी पृथुश्रवा हुआ, पुराण वेत्ता पृथुश्रवा के पुत्र को उत्तर कहते हैं। उत्तर के पुत्र सुयज्ञ, सुयज्ञ के उशत हुए वे सम्पूर्ण यज्ञों को करना अपना धर्म समझते थे। उशत के पुत्र शत्रुओं को संताप देने वाले शिनेयु हुए, उनके पुत्र राजर्षि मरुत्त हुए। मरुत्त के ज्येष्ठ पुत्र कम्बलबर्हिष हुए इन्होंने महान् धर्म को

आचरण किया तथा मरणधर्मा होने पर भी धर्म से न डिगे। कम्बलबर्हिष के पुत्र की इच्छा करने पर सुतप्रसूति नाम का पुत्र हुआ, उनके रुक्मकवच हुए। रुक्मकवच ने संग्राम में सौ कवच एवं धनुष धारण करने वाले वीरों को तीखे बाणों से मार कर उत्तम कीर्ति प्राप्त की थी।।१-१०।।

रुक्मकवच से वीरों का विनाश करने वाले पराजित उत्पन्न हुए और पराजित से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित तथा हरि। पालित और हरि को पिता ने विदेह की रक्षा के लिए विदेह देश के राजा को दे दिया। रुक्मेषु तथा पृथुरुक्म को इन लोगों के अनुचित कर्म से पिता ने इन लोगों को राज्य से निकाल दिया तथा ज्यामघ राजधानी में रहने लगा। राज्यलिप्सा त्याग देने से प्रशान्त हो वन में रह ब्राह्मणों से ज्ञान प्राप्त करके भी यह रथ में बैठ कर ध्वजा लगा अन्य देश को जीत लिया। मृत्तिकावनी नगरी और ऋक्षवान् पर्वत को भी जीत कर अकेले ही इसने नर्मदा के किनारे शुक्तिमती नामक नगरी में रहने लगा। ज्यामघ की भार्या बड़ी सती थी इसलिये पुत्र रहित होने पर भी इसने दूसरा विवाह नहीं किया। इसने संग्राम जीत कर एक कन्या प्राप्त की थी घर लाने पर उसने डरते-डरते अपनी भार्या से कहा कि यह पुत्र-वधू है। यह सुन कर पटरानी ने कहा कि किसकी पतोहू है? तब राजसत्तम ने कहा कि जिस पुत्र को तुम उत्पन्न करोगी उसी पुत्र की यह उपदानवी स्त्री होगी, फिर तो कन्या की उग्र तपस्या के प्रताप से शैव्या ने वृद्धावस्था में विदर्भ नाम का पुत्र उत्पन्न किया। युवा होने पर विदर्भ ने उस कन्या से क्रथ तथा कौशिक इन दो विद्वान् पुत्रों को उत्पन्न किया जो दोनों ही शूरवीर और रणकुशल थे।।११-२०।।

लोमपाद तीसरे पुत्र हुए जो परम धार्मिक थे, लोमपाद के पुत्र बभ्रु, बभ्रु के आह्वति आत्मज हैं। आह्वति के कौशिक और कौशिक के चेदिं पुत्र हुए इसी से चेदि वंश में उत्पन्न राजे चैद्य कहलाते हैं। विदर्भ के पुत्र भीम, भीम के कुन्ति, कुन्ति के धृष्ट, धृष्ट के प्रतापी रणधृष्ट, रणधृष्ट के परम धार्मिक

तथा शूर-वीर तीन पुत्र हुए। आवन्त, दाशार्ह तथा विषहर। दाशार्ह के व्योमा और व्योमा के जीमूत पुत्र हुए। जीमूत के बृहति, बृहति के भीमरथ, भीमरथ के नवरथ पुत्र हुए। नवरथ के दशरथ, दशरथ के शकुनि पुत्र हुए और शकुनि के करम्भ, करम्भ के देवरात पुत्र हुए। देवरात के देवक्षत्र, देवक्षत्र के देवताओं के समान तेजस्वी आनन्दकारी तथा महायशस्वी पुत्र देवक्षत्रि हुआ। यह मधुरभाषी राजा मधु के वंश को बढ़ाने वाला हुआ अतः यह मधु नाम से विख्यात हुआ, मधु ने वैदर्भी से मरुवसा नामक पुत्र उत्पन्न किया। मरुवसा के पुत्र पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुद्वान हुए। हे कुरुद्वह! भद्रावती नामक वैदर्भी कन्या से मधु ने पुरुद्वान को उत्पन्न किया था। मधु की दूसरी पत्नी इक्ष्वाकु वंश की थी उससे सत्त्वान उत्पन्न हुए थे, यह सर्वगुण सम्पन्न तथा सत्त्वत वंश की कीर्ति को बढ़ाने वाले हुए महात्मा ज्यामघ के वंशजों को जानकर मनुष्य परम कीर्ति को प्राप्त कर लेता है तथा पुत्रवान् होता है।।२१-३१।।



अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।।३७।।

वैशम्पायनजी बोले कि सत्त्वान् से कौशल्या नाम की भार्या ने सत्त्वगुणी पुत्रों को उत्पन्न किया, भजिन, भजिमान, रूपवान् राजा देवावृध और महाबाहु अन्धक एवं यदुकुल को आनन्द देने वाले वृष्णि को उत्पन्न किया। इनसे चार भागों में विभक्त चार वंश चले थे उसको विस्तारपूर्वक सुनो। भजिमान की दो स्त्रियों जो संजय की पुत्रियाँ बाह्यका और उपबाह्यका नाम वाली थीं, उनसे बहुत पुत्र उत्पन्न हुए। कृमि, क्रमण, धृष्ट, शूर, पुरंजय ये बाह्यका के पुत्र थे। अयुताजित्, सहस्राजित्, शताजित् और दाशक ये उपबाह्यका के पुत्र थे। राजा देवावृध यज्वा था, हमें सर्वगुणसम्पन्न पुत्र हो यह निश्चित कर उसने महान् तप किया था। वह पर्णाशा नदी के जल में खड़े हो आत्मा को समाधिस्थ कर तप करता रहा, तब उसके तप से द्रवीभूत होकर

पर्णाशा ने उसका प्रिय करने का विचार किया और यह निश्चय किया कि एक मैं ही अकेली ऐसी हूँ कि इस राजा का कल्याण अर्थात् सर्वगुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न कर सकती हूँ और दूसरी कोई स्त्री ऐसी नहीं दिखाई पड़ती है कि जिससे सर्वगुणसम्पन्न पुत्र हो सके, इसलिये मैं ही राजा की धर्मपत्नी हो जाऊँ। ऐसा निश्चय कर वह परम सुन्दरी कुमारी बनकर राजा को वर लिया, राजा ने भी इसे स्वीकार कर लिया।।१-१०।।

फिर तो राजा के उदार बुद्धिवाला तेजस्वी गर्भ उसमें धारण करा दिया। दस महीने बीतने पर उस श्रेष्ठ सरिता ने सर्वगुणसम्पन्न बभ्रु नामक पुत्र उत्पन्न किया। इसके वंश की प्रशंसा करते हुए पुराणज्ञों ने जो गाथा गान किया है वह विख्यात है। महात्मा देवावृध का गुणगान करते हुए सुना गया है कि वह योग के बल से कभी पास में दिखाई पड़ता था और कभी दूर में दिखायी पड़ता था अर्थात् अनेक रूपधारी था। बभ्रु भी मनुष्यों में श्रेष्ठ और देवावृध की ही भाँति योगी था और ऐसा वीर था कि इसके द्वारा युद्ध में मारे जाने पर साठ हजार से भी अधिक छः तथा सात हजार मनुष्य ब्रह्मलोक प्राप्त कर चुके थे और बभ्रु तथा देवावृध ने भी मोक्ष प्राप्त किया। बभ्रु यज्ञों का करनेवाला तथा दानियों का पति (राजा) एवं ब्रह्मचिन्तन करने वाला और दृढ़ आयुध वाला था। वह सात्त्वत वंश में महातेजस्वी, यशस्वी और महान् श्रेष्ठ था, उसका वंश महान् है, भोज और मार्तिकावत् इसकी सन्तानें हैं। सत्त्वान के पुत्र अन्धक के द्वारा काशिराज दृढ़ाश्व की कन्या से चार पुत्र हुए, कुकुर, भजमान, शमि तथा कम्बलबर्हि। कुकुर के पुत्र धृष्णु और धृष्णु के कपोतरोमा, कपोतरोमा के तैत्तिरि पुत्र हुए। तैत्तिरि से पुनर्वसु, पुनर्वसु से अभिजित हुए। अभिजित को दो सन्तानें एक साथ हुईं, पुत्र का नाम आहुक, पुत्री का नाम आहुकी था। ये दोनों विख्यात सन्तानें हैं। उस आहुक के विषय में यह गाथा प्रसिद्ध है कि।।११-२०।।

वह अपने श्वेत (शुद्ध) परिवार के साथ-साथ बछेड़ा की तरह महान्

उत्साह से चलता था और उसकी पालकी को अस्सी कँहार मिल कर ढोते थे अथवा नहीं है शीति (स्वप्न) जिसको वह अशीति (अस्वप्न = देवता) ही है चर्म (कवच) जिसके ऐसा वह बाहुक अर्थात् देवरक्षित होता हुआ चलता था। उसके साथ चलने वाले मनुष्यों में ऐसा कोई नहीं था कि जो पुत्रवान्, सैकड़ों-हजारों वर्ष की आयु वाला, शुद्ध कर्म करने वाला, यज्ञ करने वाला न हो। पूर्व दिशा में उस भोजवंशी राजा का अनुमोदन अर्थात् नमस्कार कर प्रसन्न के लिये सुवर्ण और चाँदी की बन्धन-जंजीरों वाले दस सहस्त्र हाथियों का झुण्ड आया था तथा ध्वजा की तरह अपने शुण्डों को ऊपर उठाकर अभिवादन किया था और सोने-चाँदी के कक्ष वाले दस हजार रथ भी मेघ की भाँति शब्द करते राजा के स्वागत के लिये आये थे। पूर्व दिशा की भाँति ही उत्तर दिशा में भी स्वागत हुआ था तथा अन्य दिशाओं में भू पूर्वोत्तर दिशा की तरह अनुमोदन हुआ था और भोजवंशी योद्धा पृथ्वी के सभी भूमिपालों को वश में कर लिया आहुक की सेवा में सभी उपस्थित रहते थे और आहुक ने उनपर प्रसन्न हो उनके रथों में सुवर्ण की घण्टिकायें लगवा दी थीं। अन्धक वंशियों ने आहुक की बहन आहुकी को पटरानी बनने के लिये राजा अवन्ति को दे दी थी। आहुक द्वारा काशिराज की कन्या से दो पुत्र देवक तथा उग्रसेन देवपुत्र के समान हुए, देवक के चार पुत्र देवताओं के समान हुए जिनके नाम देववान्, उपदेव, सुदेव तथा देवरक्षित हैं और सात कुमारिकायें हुई जो वसुदेव को दी गई। वे देवकी, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सुनासी नाम की सातों कन्यायें थीं। उग्रसेन के नव पुत्र हुए जिनमें कंस सबसे बड़ा था शेष के नाम न्यग्रोध, सुनामा, कंक, सुभूमिप, शंकु, राष्ट्रपाल, सुतनु, अन्धृष्टि तथा पुष्टिमान हैं और इनकी पाँच बहनें थीं कंसा, कंसावती तथा सतनू, राष्ट्रपाली और कंका ये सुन्दर अंगों वाली थीं उग्रसेन के साथ कुकुर वंश में उत्पन्न पुरुषों का व्याख्यान किया। अमित तेजस्वी तथा बलवान् कुकुर वंश को धारण करने वाले मनुष्य की सन्तानें बढ़ती हैं और वह पुत्रवान् होता है।।२१-३३।।



अथ अष्टात्रिंशोऽध्यायः ।।३८।।

वैशम्पायनजी बोले कि भजमान के पुत्र रथवानों में प्रधान विदूरथ हुए। विदूरथ के शूर-वीर पुत्र राजाधिदेव हुए। राजाधिदेव के बड़े ही बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए महाबली दत्त, अति दत्त तथा शोणाश्व तथा श्वेतवाहन, शमी, दण्डशर्मा, दण्डशत्रु तथा शत्रुजित और दो कन्यायें श्रवणा एवं श्रविष्ठा नाम की हुईं। शमी के पुत्र प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्र के स्वयंभोज, स्वयंभोज के हृदीक पुत्र हुए और हृदीक के सभी पुत्र भयंकर पराक्रमी हुए। कृतवर्मा सबसे बड़ा और शतधन्वा मध्यम था। च्यवन ऋषि के प्रसाद से भिषक्, वैतरण, सुदान्त तथा विदान्त ये सुधन्वा के चार भाई और दो बहनें कामदा, कामदन्तिका नाम की हुईं। कम्बलबर्हि के विद्वान् पुत्र देववान्, असमौजा तथा वीर नासमौजा हुए। पुत्रहीन असमौजा को अन्धक अपने तीन पुत्र सुदंष्ट्र, चारुरूप तथा कृष्ण नाम के दिये थे। गान्धारी तथा माद्री दो पत्नियाँ क्रोष्टा की थीं। गान्धारी ने महाबली अनमित्र को उत्पन्न किया था और माद्री ने युधाजित् एवं देवमिढुष्ट को।।१-१०।।

अनमित्र शत्रुओं को जीतने वाला और अपने कभी नहीं पराजित होने वाला था, अनमित्र के पुत्र निघ्न और निघ्न के प्रसेन और सत्राजित् ये दो पुत्र हुए, जिस समय द्वारिका बसाई जा रही थी उस समय प्रसेन ने श्यमन्तक नाम की महामणि को समुद्र के तट पर प्राप्त की थी, उसका भाई सत्राजित् सूर्य का प्राणों के समान मित्र था। एक समय प्रातःकाल रथ पर चढ़ स्नान कर सूर्य का उपस्थान करने के लिये समुद्र तट पर गया। जब वह समुद्र में स्नान कर सूर्य का उपस्थान करने लगा तो तेज समूह वाले भगवान् सूर्य स्पष्ट मूर्ति धारण कर उसके आगे आकर खड़े हो गये। अपने आगे स्थित सूर्य को देख कर सत्राजित् ने कहा कि हे ज्योतिषांपते! मैं जैसे आकाश में आपको देखता हूँ वैसे ही अपने आगे आपको स्थित देख रहा हूँ, हमारे और तुम्हारे मित्रता होने पर क्या विशेषता रह गई? कि जैसे और लोग हैं वैसा ही मैं भी हूँ अर्थात्

आपसे हमको कुछ लाभ नहीं हुआ। यह सुनकर भगवान सूर्य मणियों में रत्न श्यमन्तक को अपने गले से उतार कर एकान्त में रख दिये। तब स्पष्ट मूर्ति वाले सूर्य का दर्शन कर प्रीतिमान् हो सत्रजित् ने एक मुहूर्त तक वार्तालाप किया। जब सूर्य चलने लगे तो पुनः सत्रजित् ने कहा कि हे प्रभो! जिस मणि को धारण कर आप लोकों को प्रकाशित करते हैं वह मणि रत्न हमको दे दीजिये। तब सूर्य ने श्यमन्तक मणि सत्राजित् को दे दिया फिर तो सत्राजित् मणि को गले में बाँध नगरी में प्रवेश किया तो यह सूर्य जा रहा है ऐसा कहते हुए लोग दौड़ पड़े इस प्रकार पुरी को विस्मित कर वह अपने अन्तःपुर में चला गया। उसके बाद उस दिव्य मणि को प्रेम के कारण राजा ने अपने भाई प्रसेन को दे दिया। वह मणि वृष्णि और अन्धकों के यहाँ रह कर सुवर्ण वर्षा करता था और उसके रहने पर मेघ समय से वर्षा करते थे तथा कभी व्याधि का भय नहीं होता था। प्रसेन से उस मणि को भगवान् श्रीकृष्ण ने माँगा पर उसने नहीं दिया, भगवान् शक्तिशाली होकर भी उससे छीन कर नहीं लेना चाहते थे। एक बार उस मणि से विभूषित हो प्रसेन आखेट करने वन में गया, वहाँ पर मणि के कारण सिंह द्वारा मार डाला गया। जब सिंह मणि लेकर भागने लगा तो उसे ऋक्षराज जाम्बवान् ने मार कर स्वयं उस मणि को ले अपनी गुफा में चले गये। तदनन्तर वृष्णि और अन्धकों ने समझा कि मणि के लिये श्रीकृष्ण ने पहले प्रार्थना की थी पर प्रसेन मणि नहीं दिया था, तो अब वही मणि लेने के लिये प्रसेन का वध किये होंगे पर भगवान् ने ऐसा किया नहीं था फिर कलंक लगने लगा तो अपने कलंक को छुड़ाने के लिये 'मैं मणि को ढूंढ़ कर लाऊँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वन को गये।।२१-३०।।

विश्वासी मनुष्यों के द्वारा पता लगा कर वहाँ पहुँचे जहाँ कि प्रसेन आखेट करता रहा तब उसके पदचिह्नों के आधार पर ऋक्षवान् पर्वत तथा विन्ध्य गिरि पर खोजते-खोजते थक गये तब उस महात्मा ने घोड़े सहित प्रसेन को मरा पड़ा देखा पर मणि नहीं मिला इसके बाद यह भी देखा कि प्रसेन के

शिर के निकट ही थोड़ी दूर पर ऋक्ष के द्वारा सिंह मारा गया है यह बात ऋक्ष के वहाँ पड़े पदचिह्नों से ज्ञात हुई, तब ऋक्ष के पदचिह्नों से माधव ने ऋक्ष की गुफा ढूँढ़ ली। पश्चात् ऋक्ष के बिल में किसी स्त्री की ऊँचे स्वर में कही हुई वाणी सुनाई पड़ी हे राजन्! जाम्बवान् के लड़के को मणि से खेलाती हुई धाई कह रही थी कि अब मत रोओ। धाई ने कहा-सिंह ने प्रसेन का वध कर मणि ले लिया और जाम्बवान् ने सिंह का वध कर अपने मणि ले लिया इसलिये हे सुकुमारक! अब मत रोओ यह श्यमन्तक मणि तुम्हारा है। इससे सारी बातें स्पष्ट हो गईं तब भगवान् बिल के द्वार पर हलधर के सहित यादवों को खड़ा कर चुपके से बिल में प्रवेश किये तब शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले कृष्ण ने बिल में स्थित जाम्बवान् को देखा। फिर तो वासुदेव जाम्बवान् के साथ लपट कर इक्कीस दिन तक बाहु युद्ध करते रहे। इधर जब भगवान् को गुफा से लौटने में विलम्ब हुआ तो हलधर आदि यादव द्वारकापुरी में जाकर कह दिये कि श्रीकृष्ण मर गये।।३१-४०।।

वासुदेव जाम्बवान् को जीत कर उसकी पुत्री जाम्बवती के साथ ऋक्षराज की संमति से विवाह कर आत्म शुद्धि अर्थात् अपने को निर्दोष ठहराने के लिये मणि भी ले लियो और ऋक्षराज को समझा-बुझाकर परम शोभा से युक्त द्वारका चले गये। इस प्रकार मणि लाकर सात्त्वतों की सभा में सत्राजित् को देकर अपने कलंक को छुड़ा आत्मा को शुद्ध कर लिया। शत्रुओं का वध करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने मिथ्या कलंक लगने पर इस प्रकार श्यमन्तक मणि को जीत कर अपने कलंक को छुड़ाया। सत्राजित् को दस स्त्रियाँ थीं उनसे सौ पुत्र हुए थे, उनमें तीन विख्यात हुए सबसे बड़ा भङ्गकारी, वीर वातपति तथा उस्वावान् और तीन कन्यायें हुईं जो तीन दिशा में विख्यात हैं। स्त्रियों में उत्तम सत्यभामा तथा व्रतिनी दृढ़व्रता और प्रस्वापिनी, सत्यभामा श्रीकृष्ण को दी गईं। भङ्गकारी उपनाम सभाक्ष ने नारेय और नरोत्तम इन दो पुत्रों को उत्पन्न किया ये रूप और गुण से विख्यात थे। माद्रीपुत्र

युधाजित् के पृश्नि नामक पुत्र हुआ और पृश्नि के फल्क तथा चित्रकि दो पुत्र हुए। श्वफल्क ने काशिराज की कन्या से विवाह किया जिसका नाम गान्दिनी था जिससे उसके पिता प्रतिदिन गौदान कराते थे।।४१-५०।।

उसी कन्या से महाबाहु अक्रूरजी उत्पन्न हुए थे जो शास्त्रों के ज्ञाता तथा अनेक यज्ञों में अधिक दक्षिणा देने वाले हुए और भी उपासंग, मंगु, मृदुर, अरिमेजय, गिरिक्षिप, उपेक्ष, शत्रुओं का हनन करने वाले अरिमर्दन, धर्मभृत, यतिधर्मा, गृध्रभोज, अन्धक, सुबाहु तथा प्रतिबाहु नाम के पुत्र और सुन्दरी नाम की एक श्रेष्ठ कन्या हुई थी जो साम्ब देश के राजा की पटरानी हुई वह रूप यौवन सम्पन्ना सब प्राणियों के मन को हरण करने वाली कन्या वसुन्धरा नाम से विख्यात है। हे कुरुनन्दन! उग्रसेना नाम की स्त्री से अक्रूर ने देवताओं की तरह तेज वाले सुदेव और उपदेव दो पुत्रों को उत्पन्न किया। चित्रक के पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक और गवेषण नाम के पुत्र हुए। अरिष्टनेमि के अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत, सुबाहु तथा बहुबाहु नामक पुत्र तथा श्रविष्ठा और श्रवणा नामक दो पुत्रियाँ हुईं जो पुरुष श्रीकृष्ण को मिथ्या कलंक लगाने की कथा को कहे सुनेगा उसे मिथ्या कलंक कभी भी स्पर्श नहीं करेगा।।५१-५८।।



अथ एकोन चत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

वैशम्पायनजी बोले कि जो श्यमन्तक मणि श्रीकृष्ण ने सत्राजित् को दिया था उसको अक्रूर ने शतधन्वा के द्वारा अपहरण करवा लिया। मणि से सुवर्ण उत्पन्न कर लेने की इच्छा से अक्रूर ने कई बार सत्यभामा से मणि की याचना की थी पर मणि न मिली तो शतधन्वा को प्रेरणा की फिर तो महाबली शतधन्वा ने रात्रिकाल में सत्राजित् का वध कर मणि ले अक्रूर को दे दिया।

हे भरतर्षभ! अक्रूर ने मणि लेकर शतधन्वा से शपथ करायी कि तुम किसी से यह न कहना कि मणि अक्रूर के पास है। जब श्रीकृष्ण श्वसुर के वध से क्रुद्ध होकर तुम्हें घेरेंगे तो मैं बलपूर्वक उनका सामना करूँगा, आजकल द्वरिका मेरे ही वश में है इसमें संशय की बात नहीं है। पिता का वध हो जाने पर यशस्विनी सत्यभामा दुःख से कातर हो रथ पर चढ़ कर हस्तिनापुर चली गई। वहाँ जाकर श्रीकृष्ण से भोजवंशी शतधन्वा की काली करतूत कह कर उनके पास खड़ी होकर पिता-मरण से दुःखी हो आँसू गिराने लगी। वहाँ पाण्डवों के जल जाने पर श्रीकृष्ण उनकी उदक क्रिया करके अस्थि संचयन के लिये सात्यकि को नियुक्त कर दिये और अपने शीघ्र द्वारका आकर अपने बड़े भाई हलधर से यह कहे कि प्रसेन सिंह के द्वारा मारा गया और सत्रजित् शतधन्वा के द्वारा मरा हे विभो! अब श्यमन्तक मणि हमको मिलनी चाहिये उसका स्वामी मैं हूँ।।१-१०।।

इसलिये अब आप शीघ्र रथ पर सवार हो जायँ क्योंकि महाबली शतधन्वा का वध करने के बाद श्यमन्तक मणि हमारी होगी। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण युद्ध करने चल दिये। शतधन्वा और श्रीकृष्ण का तुमुल संग्राम होने लगा, शतधन्वा चारों ओर से अक्रूर की प्रतीक्षा करने लगा कि हमारी सहायता के लिये आते होंगे पर दोनों को क्रोध से लड़ते हुए देख कर लड़ने में समर्थ होते हुए भी अक्रूर शतधन्वा की सहायता के लिये अपनी हठतावश नहीं गये तो भय के मारे शतधन्वा भागने का विचार करने लगा उसकी घोड़ी हृदया नाम की थी जिस पर चढ़ कर वह श्रीकृष्ण से लड़ता रहा वह घोड़ी सौ योजन दौड़ने में समर्थ रही पर कृष्ण के साथ युद्ध करने से थक जाने के कारण वह सौ योजन के पहले ही रुक गयी तब रथ पर से श्रीकृष्ण ने उस भागते हुए सुधन्वा को देखा और रथ से उतर कर उसका पीछा करने लगे। हे भारत! अधिक परिश्रम करने से खेद को प्राप्त हो उस घोड़ी ने अपना प्राण विसर्जन कर दिया तब शतधन्वा पैदल ही भागा इधर श्रीकृष्ण बलराम से

कहने लगे। हे महाबाहो! हमारे घोड़े थक जाने से आगे चलने में असमर्थ हो गये हैं, अतः आप यहीं ठहर जाइये मैं पैदल ही चल कर मणि को लाता हूँ। ऐसा कह पैदल ही चल कर मिथिला के पास पहुँचते-पहुँचते हे राजन्! परमास्त्र वेत्ता श्रीकृष्ण ने शतधन्वा को मार डाला पर सुधन्वा का वध करने पर श्यमन्तक मणि उसके पास न दिखाई दी, श्रीकृष्ण लौट आये तब बलराम ने उनसे कहा कि श्यमन्तक मणि दीजिये।।११-२०।।

श्रीकृष्ण ने कहा कि भाई मणि तो उसके पास से नहीं मिली यह सुन बलराम श्रीकृष्ण को धिक्कारते हुए उनसे कहने लगे कि मैं सगा भाई समझ कर यह सहन किया, तुम्हारा कल्याण हो अब मैं जाता हूँ, मुझे तुमसे और तुम्हारी द्वारका से तथा वृष्णियों से कोई प्रयोजन नहीं रह गया है। ऐसा कह कर अरिमर्दन बलराम मिथिला को चले गये वहाँ सम्पूर्ण कामनाओं से पूर्ण मिथिलाधिप ने बलराम का पूजन (बड़ी स्वागत) किया। इसी समय श्रेष्ठ बुद्धि वाले अक्रूर ने अनेक प्रकार के यज्ञों को किया। अपनी रक्षा के लिये बुद्धिमान् एवं यशस्वी गान्दी पुत्र ने यज्ञ की दीक्षा रूप कवच को धारण किया क्योंकि यज्ञ दीक्षित पुरुष से वैर का धर्मशास्त्र द्वारा निषेध है। वे उत्तम रत्नों से और नाना प्रकार के द्रव्यों से साठ वर्ष तक यज्ञ करते रहे। उस महात्मा के किये यज्ञ अक्रूर-यज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन यज्ञों में अधिक अन्न तथा दक्षिणा देकर सब प्रकार से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया था। उसी समय राजा दुर्योधन मिथिला में जाकर बलरामजी से गदा चलाने की उत्तम शिक्षा प्राप्त की थी। इसके बाद श्रीकृष्ण ने अन्धक और वृष्णिवंशी महारथियों के साथ मिथिला पहुँच बलराम को प्रसन्न कर द्वारिका लाये। हे भरतर्षभ! अक्रूर यज्ञों को समाप्त कर अपने अन्धकों को साथ लेकर भाग गया था, क्योंकि प्रसेन और सत्राजित् के वध के बाद अपनी जाति में झगड़ा खड़ा होने के भय से श्रीकृष्ण ने अक्रूर की उपेक्षा कर दी थी उनसे बोलना बन्द कर दिया था, जब अक्रूर द्वारका से चले गये तो इन्द्र नौ वर्ष तक वहाँ वर्षा नहीं की।।२१-३१।।

तब अनावृष्टि के कारण वहाँ की प्रजा अन्नभाव से दुर्बल हो गई इसलिये कुकुर तथा अन्धकवंशियों ने अक्रूर को प्रसन्न किया और उनको पुनः द्वारका में लिवा लाये तब इन्द्र ने समुद्र के किनारों पर वर्षा की। हे कुरुनन्दन! श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिये अक्रूर ने अपनी बहिन उनको ब्याह दी जो कि शील-गुण युक्त थी। फिर श्रीकृष्ण ने योग से जान लिया कि मणि अक्रूर के पास है, तब सभा में उपस्थित अक्रूर से जनार्दन ने कहा। हे विभो! जो मणि आपके हस्तगत हुई है उसे सम्मान के साथ मुझे दे दें इसमें अनार्यता न करें। हे अनघ! जो क्रोध हमको आज साठ वर्ष पहले चढ़ा था वह चिरकालीन क्रोध अभी उतरा नहीं है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के वचनों को सुन कर सात्त्वतों को सभा में महामति अक्रूर ने श्यमन्तक मणि भगवान् को दे दिया। हे अरिंदम! इस प्रकार सरलता से अक्रूर से मणि प्राप्त प्रसन्न हो पुनः अक्रूर को मणि दे दी। तब श्रीकृष्ण के हाथ से प्राप्त श्यमन्तक मणि को गले में बाँध कर अक्रूर सूर्य की भाँति शोभा प्राप्त कर करने लगे। जो इस कथा को पवित्र हो समहित चित्त से सुनेगा वह सब प्रकार के सुखों का भागी होगा। हे नृपश्रेष्ठ! ब्रह्मलोक पर्यन्त सम्पूर्ण भुवनों में उसकी कीर्ति फैल जायगी, यह मैं सत्य कहता हूँ।।३१-४२।।



अथ चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४०।।

जनमेजयजी बोले-मैंने अमित तेजस्वी विष्णु के अवतारों को सुना जो कि पुराणों में वर्णित हैं, उनमें सज्जनों से कहे गये वाराह अवतार को भी सुना है। पर उनके चरित्रों को मैं नहीं जान सका, न उनके विधि (कार्य-कारण) को, न उनके विस्तार (कर्त्तव्य-अनुष्ठान) को तथा न उनके कर्म, गुण और सन्तान (प्रयोग विधान) एवं हेतु (अधिकार) को ही ज्ञात कर सका, न उनके मनीषित (इच्छित कर्तव्य) को ही जाना। किस स्वरूप का वराहावतार हुआ,

कैसी मूर्ति थी, कैसे देवता थे, उनका क्या आचरण था, कैसा प्रभाव था और उनने पहले क्या किया था? यज्ञ के लिये एकत्र हुए ब्राह्मणों से व्यासजी द्वारा कथित महावराह के चरित्र को सुना पर उसका तत्त्व न ज्ञात कर सका। अरिघाती नारायण ने वराह रूप धारण कर समुद्र से पृथ्वी को ऊपर किया इस प्रकार का संक्षिप्त विवरण जैसा ब्राह्मणों ने कहा वैसा सुना। अब मैं उन शत्रुघाती बुद्धिमान् श्रीकृष्ण का चरित्र विस्तार से उनके सभी वाराह आदि अवतार कृत कर्मों सहित आदि से अन्त तक सुनना चाहता हूँ। हे ब्रह्मन्! उनके क्रमशः सभी कर्मों को और सभी अवतारों को जो उन समर्थ ने धारण किया तथा उनकी प्रकृतियों अर्थात् अवतार धारण करने की उत्साहयुक्त भावनाओं को जो जिस प्रकार का हो उसका विस्तार से कथन कीजिये। जो कर्म बन्धनों से रहित देव शत्रुओं को नष्ट करने वाले भगवान् हैं वे अपने परम उत्तम धाम को छोड़ कर क्यों वसुदेव कुल में वसुदेव का पुत्र बन कर अवतार ग्रहण किये। देवताओं से घिरे तथा पुण्यकृत महर्षियों से सेवित वे विष्णु अपने देवलोक को त्याग कैसे मर्त्य लोक में यहाँ पर चले आये। जो देवता तथा मनुष्यों के नेता हैं वे समर्थ दिव्य-आत्मा किस प्रयोजन के लिये पार्थिव मनुष्य-शरीर में प्रविष्ट हुए।।१-१०।।

मनुष्यों के कर्म चक्र को जो अबाध गति से चलाने वाले चक्रधारियों में श्रेष्ठ हैं वे मनुष्य बनने की बुद्धि किस प्रकार कर लिये। जो सम्पूर्ण लौकिक जगत् है उसे वे अपने में छिपा लेने तथा सब लोकों के पालन करने वाले विष्णु कैसे गोपों के यहाँ जाकर गोप बन गये। प्राणियों की आत्मा महाभूतों को धारण करने वाले जो स्वयं सृष्टि को अपने गर्भ में (मन में) धारण करने वाले हैं उन्हें मानवी देवकी ने कैसे गर्भ में धारण कर लिया। जिनने वामन रूप कर अपने पाँवों तले सब लोकों को नाप कर जीत लिया और देवताओं की इष्टसिद्धि के लिये तीन वर्गों से तीन मार्गों का निर्धारण किया अर्थात् धर्म से स्वर्ग, अर्थ से यह लोक और क़ाम से अधोलोक (पाताल) प्राप्त होने का मार्ग बनाया। जो प्रलय काल के समय जगत् को पीकर (अपने उदर में स्थित कर)

जलमय शरीर धारण कर दृश्य और अदृश्य सबको एक कर एकमात्र समुद्र बना देते हैं। जो पहले सनातन पुरुष अरिसूदन ने वाराह रूप धारण कर अपने दाँतों के अग्रभाग से इस वसुधा का उद्धार किया था। जो देवताओं में उत्तम देव दैत्यों से तीनों लोकों को जीतकर इन्द्र के लिये दे दिया। जिनंने सिंह का शरीर धारण कर फिर उसमें एक भाग से मनुष्य का कर अर्थात् नरसिंह रूप धारण कर महाबली हिरण्यकशिपु का वध किया। जो विभु और्व वंश में सम्वर्तक नाम से अग्नि का रूप धारण कर पाताल स्थित समुद्रगत हविरूप जल का पान कर गये। हे ब्रह्मन! जिनको प्रत्येक युग में हजारों शिर, मुख, बाहु तथा चरणों वाला देव कहा गया है।।११-२०।।

जिनके नाभि से पितामह (ब्रह्मा) को उत्पन्न करने वाला कमल उत्पन्न हुआ, जबकि स्थावर जंगम को विलीन कर एक जलमय समुद्र रूप विष्णु स्थित थे। जिन्होंने तारकामय संग्राम में सभी देवताओं का रूप धारण कर और सभी आयुधों को लेकर दैत्यों को मार डाला था। जिन्होंने गरुड़ पर सवार हो कालनेमि का वध किया और मय दानव को तथा तारकासुर को मार डाला था। जो समुद्र के अन्त के उत्तरी भाग क्षीरोद नामक अमृत सागर के तट पर महान् अन्धकार फैलाकर योगनिद्रा का आश्रय कर सदा सोते रहते हैं। जिन दिव्य पुराण पुरुष को सुरारणि (देवमाता) अदिति ने गर्भ में धारण किया था और गर्भ के पूर्ण काल होने पर वामन रूप धारण कर दैत्यों के शत्रु इन्द्र की कामना पूर्ण की। जो अपने पैरों से लोकों को नाप कर दैत्यों को पाताल में भेजा और देवताओं को स्वर्ग दिया तथा इन्द्र को देवताओं का राजा बना दिया। जिन्होंने गृह्य सूत्रों के अनुसार अन्वाहार्य कर्म से पात्र, दक्षिणा, दीक्षा, चमस तथा यज्ञ-उलूखल आदि यज्ञ के पात्रों का निर्माण किया। हवन के योग्य अग्नि, वेदी, कुश, स्रुवा, प्रणीता-प्रोक्षणी-पात्र, स्रुवा तथा यज्ञ के अन्त में स्नान रूप अवभृथ कर्म को बनाया। जिन्होंने तीन प्रकार स्वधाओं का स्वर्ग, मर्त्य, पाताल लोक निवासियों की तृप्ति के लिये निर्माण किया और

हव्य-कव्य देने वाले ब्राह्मणों को बनाया और जो यज्ञ में देवताओं को हव्य तथा पितरों को कव्य का विधान किया। जिन्होंने देवताओं को यज्ञ में भाग प्राप्त करने के लिये यूप, समित् तथा स्रुक, सोम एवं पवित्र परिधियों का निर्माण किया।।२१-३०।।

ईंटों को जोड़ कुण्ड बना अग्नि स्थापना हवनादि रूपों यज्ञों का तथा यज्ञोचित द्रव्यों (पदार्थों) का और सदस्य यजमान एवं अनेक प्रकार मेध के योग्य जीवों को तथा उत्तम-उत्तम यज्ञों का विधान बनाया और ब्रह्मा के कर्मों के अनुसार उन सबका विभाजन भी किया तथा लोकों को यज्ञों के अनुरूप (यज्ञों के लायक) बनाकर अपने शासन के अधीन रखा। जिनने काल (समय) का विभाजन करने के लिये क्षण, लव, काष्ठा, भूत, भविष्य तथा वर्तमान, मुहूर्त, तिथि, मास, पक्ष, सम्वत्सर तथा ऋतु इस प्रकार प्रमाणात्मक समय का तीन विभाग कर दिये तथा जीवादिकों की आयु, क्षेत्र (निवास स्थान), उनके जाति-लक्षण और रूप की सुन्दरता का निर्माण किया और तीन वर्ग, तीन लोक, तीन विद्या, तीन अग्नि, तीन काल, तीन कर्म, तीन अपाय (बाधायें) और तीन गुण बनाया। सब प्राणियों तथा सब गुणों के आत्मा, सब प्राणियों के स्रष्टा प्रभु ने अपने अनन्त कर्मों से पहले लोकों की रचना की। जो जगदीश्वर मनुष्यों के योग द्वारा अर्थात् सांसारिक विषय सम्बन्धों के द्वारा रमण करता है और सबके जन्म तथा मृत्यु का सब ब्रह्माण्डों में नेता है। जो धर्मात्मा की गति (मोक्ष स्थान) तथा पापात्मा की अगति (बन्धन रूप है), चारों वर्णों के प्रवर्तक एवं चार ऋत्विक हैं जिस यज्ञ में उन यज्ञों का रक्षक है। जो चारों विद्याओं का ज्ञाता, चारों आश्रमों का आश्रय, तथा जो दिशा, आकाश, वायु, जल तथा स्वयं सूर्य है। जो चन्द्रमा और सूर्यात्मक हो प्रकाश करता है, जो योगियों का ईश तथा अज्ञान रूप तमसावृत्त रात्रि का विनाशक है, जो परम ज्योति तथा परम तप कहलाता है।।३१-४०।।

जिसको पर तथा अपर भी कहते हैं जो सबसे परे परम आत्मा वाला

है, जिन नारायण के आश्रित वेद एवं क्रियायें हैं। नारायण के आश्रित धर्म, गति, सत्य तथा तप है। मोक्ष भी नारायण के ही अधीन है, जो आकाश में भ्रमण करने वाला आदित्य है तथा दैत्यों का अन्त करन में जो समर्थ है। जो युगों के अन्त में यम रूप हो जाता है और जो लोकान्तक (यम) का भी अन्तक (यम) है, जो लोक की मर्यादाओं को धारण करने वाले धर्न नेता मनु आदि के भी धर्न नेता-नियन्ता हैं, जो मेध्य (पवित्र) करने वालों को भी पवित्र करने वाले हैं। जो वेद के विद्वानों के द्वारा जानने योग्य हैं, प्रभवात्माओं (मरीच्यादि ऋषियों) के प्रभु (ईश्वर) हैं, सौम्य (प्रिय लगने वालों) में चन्द्रमा की भाँति प्रियदर्शन हैं, अग्नि के समान तेजस्वियों में अग्नि भूत हैं। विग्रह (मूर्ति) धारियों में विग्रह स्वरूप, गति प्राप्त करने वालों में गति स्वरूप, स्वयं आकाश से वायु और वायु से अग्नि बन गये। देवताओं का प्राण अग्नि और अग्नि का प्राण स्वयं जो मधुसूदन हैं, जो जठराग्नि से रस, रस से रक्त और रक्त से मांस बनाता है और मांस से मेदा और अस्थि (हड्डी), अस्थि से मज्जा, मज्जा से शुक्र (वीर्य) और शुक्र से गर्भ बनता है। उसमें जो जल (वीर्य) है वह सौम्य पहला भाग है और जो उष्ण (गर्मी) से सम्भव गर्भ है, जो जठराग्नि के द्वारा पालित है वह आग्नेय दूसरा भाग है।।४१-५०।।

शुक्र सोमात्मक है और आर्तव पावकात्मक है। ये दोनों ही रस के भाग चन्द्रमा तथा अग्नि रूप हैं। कफ के वर्ग में वीर्य उत्पन्न होता है और पित्त के वर्ग में आर्तव उत्पन्न होता है, कफ का स्थान हृदय है तथा पित्त का स्थान नाभि है। शरीर के मध्य भाग में हृदय है जो मन का स्थान है, पित्त का स्थान नाभि कोष्ठ के भीतर है जहाँ अग्नि देवता का वास है। मन प्रजापति है और कफ सोम है तथा पित्त अग्नि है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् अग्निसोमात्मक है। जिस प्रकार धूम ज्योति तथा सलिल (जल) एवं पवन से बढ़ता है उसी प्रकार अन्न, जल तथा प्राणों से गर्भ बढ़ता है। जिस समय गर्भ बढ़ने लगता है तो ईश्वर के साथ वायु गर्भ में प्रविष्ट होता है और अङ्गों की रचना करता हुआ तथा उसको बढ़ाता हुआ पोषण करता है, वह ईश्वर पाँच प्रकार के

वायुओं के रूप में होकर पुनः उसको बड़ा कर देता है। प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान। इनमें प्राणवायु पहला स्थान (हृदय) को बढ़ाता हुआ शरीर में रहता है। अपान वायु पश्चिम शरीर जङ्घा से लेकर पैर पर्यन्त शरीर को बढ़ाता है, उदान वायु हृदय से ऊपर के भाग को बढ़ाता है, व्यान शरीर में रह कर व्यायाम = बलसाध्य कर्म कराता है तथा समान सब शरीर में रक्त तथा पित्तादि को यथास्थान पर स्थित करता है अर्थात् सबका निवर्त्तन करता है। इसके बाद जीव को इन्द्रियों के द्वारा पंचभूतों का साक्षात्कार होता है। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और पाँचवाँ ज्योति ये पाँचों शरीर की इन्द्रियों में प्रविष्ट होकर अपने-अपने गुणों को ग्रहण करते हैं, जैसे पार्थिव घ्राणेन्द्रिय पृथ्वी के गुणगन्ध को ग्रहण करती है, आप्य रसना जल के गुण रस को, तैजस चक्षु तेज के गुण रूप को, वायव्य स्पर्शनेन्द्रिय वायु के गुण स्पर्श को तथा नाभस श्रोत्रेन्द्रिय नभ के गुण शब्द को ग्रहण करती है। शरीर पृथ्वी (मिट्टी) की है और प्राण वाय्वात्मक है, छिद्र आकाशात्मक है और जल स्रावात्मक है।।५१-६०।।

चक्षु तेजसात्मक है जिन सबका नियन्ता मन है। इन्द्रियों का ग्राम तथा उनके विषय जिसके वीर्य (बल) से प्रवर्तित (व्यवहृत) हैं। इस प्रकार जो परम पुरुष सब सनातन लोकों की सृष्टि करता है वह विष्णु कैसे इस मृत्युप्रधान लोक में मनुष्य बन गया। हे ब्रह्मन्! यह मुझे बड़ा संशय और विस्मय है कि गति को प्राप्त हुए को भी गति प्रदान करनेवाला कैसे मानुषी तन को प्राप्त हो गया। हमने स्ववंशीय पूर्वजों की उत्पत्ति सुनी, अब मैं वृष्णि में उत्पन्न विष्णु की उत्पत्ति यथाक्रम से सुनना चाहता हूँ। हे महामुने! देवता और दैत्य जिन विष्णु को परम आश्चर्यमय कहते हैं उन विष्णु के आश्चर्ययुक्त उत्पत्ति को हमसे कहिये। बल और पराक्रम में विख्यात अमित तेजस्वी विष्णु के आश्चर्यमय आख्यान का कथन कीजिये और उनके आश्चर्यमय कर्मों को कहिये तथा विष्णु तत्त्व को कहिये।।६१-६६।।



अथ एक चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४१।।

वैशम्पायनजी बोले कि आपने शार्ङ्गधर विष्णु भगवान् के विषय में बड़ा भारी प्रश्न किया है, पर मैं अपनी शक्ति के अनुसार ही विष्णु यश का बखान करूँगा। विष्णु के प्रभाव को सुनने के लिये भाग्य से ही तुम्हारी मति प्रस्तुत हुई है, तो अब निश्चय रूप से उन विष्णु के दिव्य प्रवृत्ति (लीला) को हमसे सुनो। जिन विष्णु को वेद के ज्ञाता ब्राह्मणों ने हजार नेत्र, मुख, बाहु, शिर तथा हाथ वाला और अविनाशी कहा है। हजार जीभ, चमकते हुए हजार मुकुटों वाला तथा सहस्त्र दानी, काल, कर्म, हवनीय द्रव्य, यजमान, यज्ञ में होने वाले पवित्र पात्र, वेदी, दीक्षा, चरु, स्रुव, स्रुक्, सोम, शूर्प, मुसल, प्रोक्षणि पात्र, अन्वाहार्यादि, हवि के द्वारा प्रचरण, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्राह्मण, सदस्य, यज्ञशाला, सभा यूप, समिधा, कुश, दर्वी, चमस, उलूखल, प्राग्वंश, यज्ञभूमि, होता, ईंट की वेदी एक हायनी शकट सोमक्रय के लिये, वृषभ-स्तम्भ-शाला, चर, स्थावर, प्रायश्चित, स्वर्गादि फल, चौरसभूमि और कुशा। मन्त्र यज्ञ को धारण करने वाला, अग्नि, यज्ञ भाग को धारण करने वाला, अग्रभोक्ता, सोमभोक्ता तथा उदायुध आदि और यज्ञ में निरन्तर व्यापक कहा है, उन श्रीवत्साङ्कित सुरेश महाबुद्धिमान् विष्णु का।।१-१०।।

सहस्त्रों प्रकार से अवतार हुआ और फिर भी होगा इसमें संशय नहीं है, ऐसा प्रजापति ने कहा है। हे महाराज! जो आप भगवान् विष्णु की दिव्य कथा पूछते हैं तो उन महातेजस्वी वासुदेव के महान् चरित्र को प्रारम्भ से अन्त तक सुनिये कि जिस प्रयोजन के लिये रिपुसूदन भगवान् विष्णु ने अपने परमधाम को छोड़कर वसुदेव के कुल में अवतरित हुए थे, वह सब मैं सुनाता हूँ। सब प्राणियों की आत्मा भगवान् विष्णु देवताओं और साधु मनुष्यों के कल्याण के लिये तथा लोकों का ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये अवतार लेते हैं। अब मैं दिव्य गुणों से युक्त तथा उदार वेदों की श्रुतियों से विभूषित पुण्य अवतारों

का वर्णन करता हूँ। हे जनमेजयजी! आप पवित्र मन से वाणी पर नियन्त्रण कर इस परम पुण्यदाता तथा वेदों से सम्मत पुराण को सुनिये। हे तात! तुम्हारे लिये मैं विष्णु की दिव्य कथा को कहता हूँ सुनो–जब-जब धर्म की हानि होती है तब-तब वह महाविष्णु धर्म की स्थापना के लिय अवतार लेते हैं। हे महाराज सत्तम! उन विष्णु की एक मूर्ति साकेत लोक में स्थित रहकर सदा कठिन तप किया करती है और दूसरी मूर्ति जगत् की सृष्टि एवं पालन और संहार करने के लिए निद्रा-योग का आश्रय लेकर वैकल्पित समाधि से क्षीरसागर में प्रलय के पश्चात् शयन करती रहती है। दिव्य दो हजार युगों तक सोकर प्रलयकाल की अवधि समाप्त होने पर पुनः सृष्टि निर्माण के लिये देवदेव (विष्णु) सचेष्ट होते हैं।।११-२०।।

तब जो ब्रह्मा, लोकपाल, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, कपिलादि मुनि, सप्तर्षि महायशस्वी शंकरजी, वायु, पर्वत, जो उनकी शरीर में स्थित थे सनत्कुमार, महानुभाव मनु, भगवान् प्रजापति ये अग्नि की भाँति तेजस्वी होकर प्रकट होते हैं। जो कि प्रलय काल में नष्ट (अदृश्य) हो गये थे, ऐसे ही सर्प और राक्षस भी प्रकट होते हैं। जब राक्षस मधु और कैटभ युद्ध की कामना करने लगते हैं तो वे विष्णु उनका वध कर मोक्ष दे देते हैं। सागर में सोते हुए पुष्कर से (नाभि कमल से) जब देवता तथा सर्प आदि उत्पन्न होते हैं तो उस समय विष्णु का पुष्करक नाम का प्रादुर्भाव (अवतार) माना जाता है और दूसरा वाराह अवतार पुराण में कहा गया है जो श्रुतियों से सुशोभित प्रत्यक्ष वेद कहा गया है। देवश्रेष्ठ विष्णु जब वाराह के रूप में स्थित होते हैं तो उनका मुँह श्रुतियों का, पैर वेदों का, दाढ़ यज्ञीय यूपों का, दाँत यज्ञों का जो सफेद होता है, जिह्वा अग्नि की, रोम कुशा के और उन महातपस्वी की मूर्धा ब्रह्मा की होती है जिन्होंने वन-पर्वत सहित सागर पर्यन्त पृथ्वी का उद्धार किया था। उनका देखना दिवस है तथा पलकों का गिराना रात्रि है, उनका भूषण न्याय, व्याकरण, मीमांसा इत्यादि, वेदाङ्ग और श्रुतियाँ हैं उनकी नासा

(नाक) घी की, तुण्ड (मुख) श्रुवा का, उनका गर्जन (शब्द) सामवेद के गान की भाँति महान् गम्भीर होता है।।२१-३०।।

वे धर्म और सत्य की मूर्ति देखने में बड़े सुशोभित लगते हैं, पराक्रम की गति वाले सबसे सत्कृत होते हैं, उन धीर के नख प्रायश्चित के हैं और उन महाभुज का जानु (ठेंघुना) पशुओं का है। उद्गाता से लेकर पूर्णाहुति पर्यन्त की क्रियाओं का लिङ्ग, फलों का वृषण (अण्डकोष) और उन वृषणों के भीतर औषधि रूपी रेत (वीर्या) रहता है, प्राणवायु मन्त्रों का, रक्त निचोड़ी हुई सोमलता का होता है। स्कन्ध वेदी का, घ्राण हवि का और हव्य-कव्य रूप अति वेग वाले, उपनिषद रूप गुह्येन्द्रिय वाले, नाना प्रकार के छन्द रूप मार्ग वाले और छाया (परछाहीं) रूप पत्नी वाले सुमेरु पर्वत के शिखर की भाँति ऊँचे वाराह भगवान् वन-पर्वत सहित सागर पर्यन्त समुद्र में निमग्न पृथ्वी को अपे दाढ़ों और दाँतों के बल से लोक का हित करने के लिये ऊपर निकाल कर हजारों शिर वाले विष्णु ने देवताओं का निर्माण किया था। इस प्रकार वाराह रूप धारण कर उन्होंने पृथ्वी का उद्धार किया था। यह वाराहावतार कहा अब नरसिंहावतार को सुनो, जबकि गृगेन्द्र का रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध किये थे। पहले सत्ययुग में हे राजन्! दैत्यों के आदि पुरुष हिरण्यकशिपु ने बल के घमण्ड से उत्तम तप किया था।।३१-४०।।

केवल जल पान कर वह साढ़े ग्यारह हजार वर्ष तक दृढ़ मौन व्रत धारण कर तप करता रहा। हे अनघ! तब उसके शम-दम तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक नियम वाले तप से ब्रह्मा प्रसन्न हो गये और एक वर्ण श्वेत हंसों से युक्त चमकते विमान पर चढ़कर आये। उनके साथ आदित्य, वसु, साध्यदेव, मरुत देव, विश्व सहायक रुद्र, यक्ष-किन्नर। दिग्-विदिग्, नदियाँ, सागर, नक्षत्र, मुहूर्त, आकाशचारी महान् ग्रह। तपोवृद्ध देवर्षि, सिद्ध, सप्तर्षि, पुण्यकर्मा राजर्षि, गन्धर्व तथा अप्सराओं का समूह आया था। इस प्रकार चराचर के गुरु

ब्रह्मवत्ताओं में श्रेष्ठ सब देवों से युक्त हो दैत्य से बोले। हे सुव्रत! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ, अब तुम वर माँगकर अपना मनोरथ पूर्ण करो। हिरण्यकशिपु बोला-देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस, मनुष्य तथा पिशाच इनमें से कोई भी मुझे किसी प्रकार न मार सके और हे लोकपितामह! ऋषि भी क्रोध कर शाप न दे सकें, यही मैं वर माँगता हूँ।।४१-५०।।

शस्त्र, अस्त्र, पर्वत, वृक्ष, शुष्क, गीला आदि किसी से भी हमारी मृत्यु न हो। जो हमारे भृत्यों सहित हमारे बल (सेना) को एक ही हाथ से मार डाले उसी के द्वारा हमारी मृत्यु हो। हहमीं सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि जल, अन्तरिक्ष (आकाश), नक्षत्र, दसों दिशा हो जायँ और हमहीं क्रोध, काम, वरुण, वासव (इन्द्र), यम, धनाध्यक्ष कुबेर, यक्ष, किंपुरुषों के राजा हो जायँ। इस प्रकार दैत्य का कथन सुनकर हँसते हुए ब्रह्मा दैत्यराज से बोले। ब्रह्मा कहने लगे कि हे तात! ये सभी दिव्य वर मैंने तुमको दिये और कहा कि तुम सब प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करोगे इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार कहकर ब्रह्मर्षि गणों से सेवित ब्रह्मा वैराज नामक ब्रह्म-सदन को जाने के लिये आकाश मार्ग से प्रस्थान किये। तब इस प्रकार का वरदान सुनकर देवता, नाग, गन्धर्व और मुनि लोग इन्द्र को आगे कर ब्रह्मा के समीप जाकर कहने लगे। देवता बोले-हे भगवन्! जो आपने दैत्य को वर दे दिया है उस वर के प्रताप से तो वह हमहीं लोगों को बाधा पहुँचावेगा इसलिये हे भगवन्! इसके वध का उपाय सोचिये।।५१-६०।।

हे भगवन्! आप प्राणियों में सबसे आदि और स्वयं ही उत्पन्न होने वाले हव्य-कव्यों के स्रष्टा तथा व्यापक एवं समर्थ प्रकृति वाले अचल हैं। सब लोकों के लिये कल्याण की बात सुन प्रजापति ब्रह्मा ने देवताओं से कहा। देवताओ! तपस्या का फल तो उसे अवश्य ही प्राप्त होगा। जब उसके तपस्

का अन्त हो जायेगा तब विष्णु उसका वध करेंगे। ब्रह्मा की यह बात सुनकर सब देवता अपने-अपने आश्रम को-प्रसन्नतापूर्वक चले गये। इधर हिरण्यकशिपु वर पाकर घमंड में भर प्रजा को कष्ट देने लगा। तप में विख्यात मुनियों के आश्रमों में जाकर पहले सत्य-धर्म में रत तथा शान्त मुनियों को सताने लगा। पश्चात् तीनों लोकों में स्थित सभी देवताओं को जीतकर तथा तीनों लोकों को अपने वश में कर स्वयं ही स्वर्ग में रहने लगा। जिस समय वह दानव वर के मद से मदोन्मत्त हो गया उस समय इस पृथ्वी पर होने वाले यज्ञों में देवताओं को हटाकर उनकी जगह दैत्यों को यज्ञ का भाग दिलाने लगा। तब तो आदित्य, रुद्र, विश्वदेव तथा मरुत दैवादि सभी, शरण देनेवाले महाबली विष्णु की शरण में गये। तो इस प्रकार वेद एवं यज्ञमय ब्राह्मणों के देव सनातन विष्णु जो कि भूत, भव्य तथा भविष्य हैं तथा लोकों द्वारा नमस्कृत सर्वव्यापक नारायण हैं उनकी शरण में गये हुए देवता।।६१-७०।।

कहने लगे कि हे देव! अब हम लोगों को हिरण्यकशिपु के भय से बचाइये। हे सुरोत्तम! तुम्हीं ब्रह्मादिकों के भी ब्रह्मा तथा हम देवताओं के परम रक्षक एक पोषणकर्ता हो। तुम्हीं हम लोगों के परम देवता तथा परम गुरु हो, आपके नेत्र फूले हुए नील कमल के पँखुड़ियों के समान हैं, आप शत्रुपक्ष के लिए भयंकर हैं। अतः दिति वंश को विनष्ट करने के लिये हम शरणागतों की प्रार्थना स्वीकार करें। विष्णु बोले-हे दवताओ! तुम लोग भय छोड़ो अब मैं तुम लोगों को अभयदान देता हूँ, अविलम्ब तुम लोग स्वर्ग को प्राप्त करोगे। यह दानव वर के प्रताप से देवताओं और इन्द्र से अवध्य हो गया है अतः मैं स्वयं वरदान से दर्पित दानव हिरंण्यकशिपु को इसके गणों सहित मारे डालता हूँ। वैशम्पायनजी बोले-हे राजन्! इस प्रकार देवताओं को कहकर विदा दे विष्णु हिरण्यकशिपु की सभा में चले गये। उन्होंने आधा सिंह तथा आधा मनुष्य का रूप धारण किया था। नरसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु हाथ से हाथ को मलते हुए मेघ माला के समान श्याम वर्ण वाले, मेघ के समान गम्भीर

शब्द वाले और विद्युत के समान बल वाले एवं मेघ के समान ही वेग वाले वह बली सिंह की भाँति पराक्रमी, अति बलवान्, तेजस्वी और देत्य गणों से रक्षित दैत्य हिरण्यकशिपु को उसके बल वाहन सहित एक ही हाथ से मार डाले। यह मैंने नृसिंहावतार कहा अब वामनावतार सुनो। दैत्यों का विनाश करने वाले बली विष्णु वामन रूप धारण कर बलवान् बलि के यज्ञ में तीन डगों में तीनों लोक को नापकर दैत्यों को क्षुभित कर दिया था।।७१-८०।।

जिस समय वे लाकों को नाप रहे थे उस समय बड़े-बड़े दैत्य विप्रचित्त, शिबि, शङ्कुरथ, शङ्कु, अयः शिरा, शंकुशिरा, बलवान् हयग्रीव। वेगवान, केतुमान, उग्र, महासुर सोमव्यग्र, पुष्कर, पुष्कल, महारथ वेपन, बृहत्कीर्ति, अश्वसहित अश्वपति, प्रह्लाद, अश्वशिरा, कुम्भ, संह्लाद, गगनप्रिय, अनुह्लाद, हरिहर, वाराह, शंवर, रुज, शरभ, शलभ, कुपन, कोपन, क्रथ, महाजिह्व, घोर गर्जन करने वाला शंकु कर्ण, दीर्घजिह्व, अर्कनयन, मृदुचाप, मृदुप्रिय, वायु, यविष्ठ, नमुचि, शम्बर, महान विज्वर, चन्द्रहन्ता, क्रोधहन्ता, क्रोधवर्धन, कालक, कालकेय, वृत्र, क्रोध, विरोचन, गरिष्ठ, वरिष्ठ, प्रलम्ब, नरक, इन्द्रतापन, वातापी, बल का घमण्ड करने वाला केतुमान, असिलोमा, पुलोमा, वाष्कल, प्रमद, मद, खसृम, काल-वदन, कराल, कौशिक, शर, एकाक्ष, चन्द्रहा राहु, संह्लाद, सृमर और खन आदि शतघ्नी, चक्र, परिघ हाथों में लिये हुए। महान् शिलाओं का प्रहरण करने वाले शिला एवं शूल लिये हुए, रथों पर आयुध से युक्त होकर चढ़े हुए, भिन्दिपाल तथा हल, उलूखल, परस्वध, पाश, मुद्गर, मूसल आदि अस्त्र-शस्त्रों को धारण किये नाना प्रकार के प्रहरण करने वाले और नाना प्रकार के वेष धारण करने वाले महाबली, कछुआ, कुक्कट, शश, उलूखल की भाँति वाले।।८१-९२।।

गर्दभ, ऊँट, शूकर, मकर, शृगाल, मूस, मेढक और भेड़िया की तरह भयानक मुख वाले। बिल्ली, हाथी, नेवला, भेंड़ा, गो-अज और भैंसा की

तरह मुख वाले, गोह, शल्यक (स्याही), क्रौञ्च, गरुड़, खड्ग और मोर की तरह मुख वाले और हाथी के चर्म रूप तथा काले मृग के चर्म रूप वस्त्रधारी एवं कुछ कपड़े तथा कुछ वल्कल वस्त्र धारण किये, कुछ पगड़ी बाँधे, कुछ मुकुट लगाये, कुण्डल पहने, किरीट धारण किये लम्बी शिखा वाले, शंख की सी गर्दन वाले, सुन्दर तेज वाले, नाना प्रकार के माला एवं चन्दनों को धारण किये अपने-अपने आयुधों को लेकर तेज से चमकते हुए आक्रमण करने की इच्छा से चारों तरफ घेरे हुए थे। उन सम्पूर्ण दैत्यों को भयंकर रूप धारण कर हाथ के चपेटों लातों से मथन कर शीघ्र पृथ्वी को उनसे ले लिया। जिस समय वे पृथ्वी को पैरों से नाप रहे थे उस समय चन्द्रमा और सूर्य उनके स्तनों के बीच आ गये थे, जब आकाश को नापने के लिये ऊपर गये तो चन्द्र-सूर्य नाभि के सामने आ गये।।९३-१००।।

जब ब्रह्म लोक को नापने लगे तो वे जानु (ठेंघुन) प्रदेश में स्थित थे। विद्वान् ब्राह्मण इस प्रकार विष्णु के पराक्रम का वर्णन करते हैं। श्रेष्ठ असुरों को पराजित कर सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत कर बलियों में श्रेष्ठ विष्णु ने स्वर्गलोक इन्द्र को दे दिया था। यह मैंने वामनावतार का वर्णन किया, इसी प्रकार वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण भी विष्णु का यश कहते हैं। अब भूतात्मक विष्णु के दत्तात्रेय नामक अवतार को सुनो, जो क्षमा से युक्त होने से विख्यात है। विष्णु ने वेद, वेद की प्रक्रिया और वेद कथित यज्ञों के नष्ट होने पर और वर्णव्यवस्था के संकुचित हो जाने पर तथा धर्म के शिथिल होने पर अधर्म के बढ़ जाने और सत्य नष्ट होकर असत्य बढ़ जाने पर तथा प्रजाओं के दुःखी हो जाने तथा धर्मात्माओं के व्याकुल हो जाने पर दत्तात्रेय का अवतार धारण कर पुनः यज्ञ, क्रियाओं सहित वेदों की स्थापना की और उन महात्मा ने पुनः वर्ण-व्यवस्था धर्म को प्रचलित किया। उन बुद्धिमान् दत्तात्रेय ने हैहय वंशीय राजा कार्तवीर्य को अद्भुत वर प्रदान किया था कि ये जो तुम्हारी दो बाहुयें हैं ये युद्धकाल में दस सौ हो जाया करेंगी इसमें संशय नहीं है और हे वसुधाधिप!

तुम सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करोगे तथा शत्रुओं से दुर्धर्ष होओगे साथ ही धर्मज्ञ भी होओगे।।१०१-११०।।

हे अरिन्दम! यह दत्तात्रेय रूप विष्णु का अवतार जैसा सुना था वैसा कहा, अब जमदग्नि के पुत्र परशुरामावतार को पुनः सुनो। जिन प्रभु परशुराम ने रण में दुर्जय कार्तवीर्य की सहस्र भुजाओं को देख विस्मित हो सेना के बीच में स्थित सहस्रार्जुन को मार डाले। रथ पर चढ़े उस राजा को रथ से गिराकर संग्राम भूमि में पटक कर छाती पर चढ़ मेघ के समान गर्जना करते हुए उसकी हजारों भुजाओं को भृगुनन्दन परशुराम ने अपने चमकते हुए परशु (गँड़ासे) से जातियों के सहित काट गिराया। उनने करोड़ों क्षत्रियों से व्याप्त तथा मेरु मन्दर से विभूषित इस पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से रहित कर ब्राह्मणों को दे दिया था। जब इस वसुन्धरा को उन महातपस्वी ने क्षत्रियों से रहित कर दिया तब अपने सम्पूर्ण पापों का शमन करने के लिये उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया। उस यज्ञ की दक्षिणा में भृगुनन्दन ने प्रसन्न हो इस सागरान्त पृथ्वी को मारीच-कश्यप को दे दिया। हाथी और शीघ्रगामी घोड़े, रथ, सुवर्ण की आँखों से युक्त कराकर गौवें तथा गजेन्द्रों का दान उस अश्वमेध यज्ञ में उन महायशस्वी महात्मा ने किया था। वे लोकों के हित की दृष्टिकोण से आज भी महेन्द्र पर्वत पर कठिन तप कर रहे हैं। वे बुद्धिमान् देवताओं की तरह समाधि लगाये बैठे हैं। यह उन शाश्वत विष्णु का परशुरामावतार कहा, अब रामावतार को सुनो।।१११-१२०।।

चौबीसवें युग में विश्वामित्रादि को आगे कर वे कमलनेत्र विष्णु दशरथ के पुत्र बन अवतरित हुए थे। वे महाबाहु चार भागों में विभक्त होकर प्रकट हुए थे तब सूर्य के समान कान्तिमान रामके नाम से लोक में विख्यात हुए राक्षसों का विनाश कर लोकों को प्रसन्न करने के लिये तथा धर्म की वृद्धि करने के लिए महायशस्वी विष्णु ने अवतार लिया था। उन मनुष्येन्द्र को सब लोग विष्णु का अवतार कहते हैं, जिनको बुद्धिमान् विश्वामित्र ने राक्षसों

वध के लिये देवताओं द्वारा भी न धारण करन योग्य दिव्य अस्त्रों को प्रदान किया था, श्रीरामजी ने उन्हीं अस्त्रों के द्वारा धर्मात्मा मुनियों के यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने वाले बलियों में श्रेष्ठ मारीच और सुबाहु को बलपूर्वक निराश कर वध किया था। पश्चात् महात्मा जनक के धनुषयज्ञ में जाकर लीलापूर्वक शंकर के चाप का खण्डन कर डाला था। सब प्राणियों के हित में अनुरक्त सब धर्मों के ज्ञाता उन राम ने भाई लक्ष्मण एवं सती सीता के साथ चौदह वर्ष पर्यन्त वन में वास किया था। उनके साथ रहने वाली जो सुन्दर रूप वाली सीता कही जाती हैं वह विष्णु की भार्या लक्ष्मीजी थीं जो सीता नाम से अवतरित हो श्रीरामजी की अर्द्धाङ्गिनी बनीं। चौदह वर्ष तक वन में तप कर दण्डकारण्य में बसते हुए राघव ने देवताओं का कार्य साधन किया था, जब सीता आश्रम में न दिखाई पड़ीं तो उनके पदचिह्नों को ढूँढ़ते हुए उन व्यापक ने घोर पराक्रमी विराध तथा कबन्ध का वध किया था। वे दोनों पहले के गन्धर्व थे जो शाप के कारण राक्षस हुए थे।।१२१-१३१।।

रामचन्द्रजी ने अग्नि, सूर्य, विद्युत के समान चमकते प्रतप्त सुवर्ण से चित्रित पुंखों वाले तथा महेन्द्र पर्वत, वज्र तथा बिजली की भाँति शक्ति रखने वाले बाणों से बलपूर्वक राक्षसों का शिर धड़ से अलग कर दिया था। सुग्रीव के कहने से महाबली बानरेन्द्र बालि को युद्ध में मार सुग्रीव का राज्याभिषेक करवाया था। देवता, असुर, यक्ष तथा गन्धर्वों की सम्पत्तियों का उपभोग करने वाले, युद्ध में दुर्जय, करोड़ों राक्षसों से युक्त निलाञ्जन पर्वत की भाँति काला तथा विशाल, तीनों लोकों को भयभीत करने वाले, सिंह के समान पराक्रमी तथा देवताओं के वरदान से घमण्ड में चूर महाबली पुलस्त्यवंशी रावण को भाई, पुत्र, मन्त्री तथा सैनिक सेनापतियों के साथ शीघ्र ही राजा राम ने मार डाला और मधु के पुत्र पराक्रमी लवणासुर को भी मार डाला। मधुबन में भी युद्ध के व्याज से पराक्रमी अन्य राक्षसों का भी वध किया था।।१३२-१४०।।

धर्म को धारण करने वाले राम ने इस वसुन्धरा को राक्षसों से विहीन

कर दस अश्वमेध यज्ञ किया था। उनके शासनकाल में कोई अशुभ वार्ता नहीं सुनाई पड़ती थी। वायु आकुल होकर नहीं बहता था अर्थात् प्रतिकूल हवा नहीं चलती थी, न कोई किसी का धन ही चुराता था। विधवायें विलाप नहीं करती थीं, मेघ अनुकूल वर्षा करते थे, उनके राज्य में सब उदारचित्त थे। वर्षा तथा पवन से किसी प्राणी को कष्ट नहीं होता था, न वृद्ध लोग बालकों का प्रेत (मरण) कार्य ही करते थे। क्षात्रधर्म का प्रतिपालन करते हुए क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों की सेवा करते थे, वैश्य क्षत्रियों के अनुकूल रहते थे अर्थात् कृषि-वाणिज्य के द्वारा सबका पोषण करते थे, शूद्र तीनों वर्णों की अहंकार रहित सेवा करते थे, स्त्रियाँ भर्ताओं का तथा भर्ता स्त्रियों का अतिक्रमण नहीं करते थे। सब में रमण करने वाले राम ही (विष्णु ही) उनके पालनकर्त्ता थे तब ऐसे राजा के राज्य में पृथ्वी चोरों से रहित थी और सम्पूर्ण जगत् सुखी था। राम के राज्य में सब प्राणी रोगरहित थे और उनकी आयु एक हजार वर्ष की होती थी तथा एक मनुष्य को हजार-हजार पुत्र तक होते थे और देवता, ऋषि और मनुष्यों का एक दूसरे के यहाँ आवागमन (आना-जाना) हुआ करता था। पुराणज्ञ लोग राम-राज्य के विषय में गाथा गान करते हैं तथा राम को विष्णु तत्त्व जान कर उन बुद्धिमान महान् आत्मा का माहात्म्य सहित कथा कहते रहे हैं कि श्री रामचन्द्रजी साँवले रंग के युवावस्था वाले थे, उनका मुख बड़ा कान्तिमान था और वे थोड़ा सारगर्भित वचन बोलते थे, उनकी बाहुयें जा (पैर के घुटने के) बराबर थीं, कन्धा सिंह के समान था और मुख सुन्दर था उन महाभुज राम ने ग्यारह हजार वर्ष तक अयोध्या का अधिपति बनकर राज किया।।१४१-१५०।।

उनके राज्य में ऋक्, साम और यजुर्वेद का घोष (पाठ) तथा जयघो और भोजन करो, दान दो आदि शब्द अबाध गति से होता रहता था। बलवा और सभी सदगुणों से युक्त स्वयं अपने तेज से चन्द्रमा और सूर्य से भी अधि प्रकाश करने वाले दशरथ के पुत्र राम हुए थे। महाबली राम पुण्य के प्रता

से अधिक दक्षिणा वाले सौ यज्ञों को समाप्त कर अयोध्या छोड़ स्वजनों सहित साकेत लोक को चले गये। इस प्रकार वे इक्ष्वाकु-कुलनन्दन रावण को उसके गणों के सहित मारकर साकेत लोक पधारे थे। वैशम्पायनजी बोले—अब केशव (विष्णु) का वह अवतार सुनो जो माथुर कल्प में सम्पूर्ण लोकों के हित के लिये हुआ था जो बहुत विख्यात है। जिस अवतार में बलवान् विष्णु ने शाल्व, मैन्द, द्विविद, कंस, अरिष्ट, वृषभासुर, केशि, दैत्य-पुत्री पूतना कुवलयापीड़ हाथी, चाणूर और मुष्टिक आदि जो मनुष्य शरीर धारण करने वाले दैत्य थे उनका वध किया था और अद्भुत कर्म करने वाले बाणासुर की हजारों भुजाओं का छेदन कर मार डाला था, नरकासुर और महाबली कालयवन आदिक राक्षसों को समरभूमि में मार डाला था और भी दुराचारी महिलाओं का वध कर पृथ्वी को पापभारों से रहित कर उसके सम्पूर्ण रत्नों को ले लिया था।।१५१-१६०।।

यह विष्णु का मत्स्य कूर्म को लेकर नवाँ अवतार श्रीकृष्ण रूप अट्ठाइसवें द्वापर में हुआ था और दसवाँ अवतार वेद-व्यास जी का है जो जातूकर्ण पुरस्सर हुआ। था उन्हीं महात्मा ने वेद का चार भागों में विभाजन किया है और वे ही सत्यवती के पुत्र ने इस भरत वंश को चलाया है। ये सब अवतार लोक के हित के लिये उन विष्णु के हुए। हे राजन्! बीते हुए अवतारों का वर्णन कर चुका अब आगे भविष्य में होने वाले अवतारों को सुनो, शम्भलपुर ग्राम में एक विष्णुयशा नामक ब्राह्मण होगा वही कल्कि अवतार (कलियुग में विष्णु के अवतार) से विख्यात होगा, जो सज्जनों का कल्याण करेगा। दसवें अवतार के बाद यह याज्ञवल्क्य पुरस्सर कल्कि ग्यारहवाँ अवतार होगा जो आत्मवादी (आत्मा ही ईश्वर है इससे परे कोई नहीं है इस) मत को मानने वाले बौद्धों के साथ विवाद (शास्त्रार्थ) तथा युद्ध कर उनको परास्त कर वेदोचित धर्म को सत्य करेंगे। इससे यह सूचित है कि पाखण्डमय यज्ञों का खण्डन करने के लिये विष्णु का एक वौद्धावतार हो गया रहेगा तत्पश्चात् बौद्धों का पाखण्ड (मनगढ़न्त) धर्म का खण्डनात्मक कल्कि अवतार

होगा। कल्कि भगवान् अपने कुल तथा सैनिक सेनापतियों और मन्त्रियों एवं अनुचरों के साथ गंगा और यमुना के बीच (दुआबा) में अलक्षित (अदर्शित) हो जायेंगे। तब सुशासन के योग्य राजाओं के नष्ट हो जाने पर रक्षण रहित प्रजागण काम-लोभादि के वशीभूत होकर आपस में युद्ध कर एक दूसरे की हत्या करने लगेंगे। परस्पर एक दूसरे का धन चुराने आदि दुष्कर्मों से प्रजा अत्यन्त दुःखी हो जायेगी। जब इस प्रकार कलियुग के सन्ध्यांश काल में प्रजा अत्यन्त कष्ट पाती हुई कलियुग के साथ विनष्ट हो जायेगी तब कलि के समाप्त होने पर पुनः सत्ययुग आरम्भ होगा, ऐसा एक के बाद दूसरा युग स्वभावतः क्रमानुसार हुआ करता है, इसके विपरीत नहीं होता। जिन अवतारों को हमने कहा है इसके सिवा और भी देवगुणों से युक्त दिव्य अवतारों का पुराणों में ब्रह्मादि ब्रह्मर्षियों द्वारा वर्णन किया गया है। जिन अवतारों के वर्णन में देवताओं को भी मोह प्राप्त हो जाता है, मैंने तो अवतारों का संक्षिप्त वर्णन किया है कि जिन अवतारों में पुराण, वेद और श्रुतियाँ प्रमाण हैं मैंने वर्णन करने योग्य सब लोकों के गुरु विष्णु के मुख्य-मुख्य अवतारों का वर्णन किया है। जो इन विष्णु के अवतारों की कथा को कहता और हाथ जोड़कर सुनता है उसके पितर प्रसन्न होते हैं। योगेश्वर की योगमाया को सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और वह ऋद्धि, समृद्धि तथा भगवत् के प्रसाद से अनेक प्रकार के भोगों को प्राप्त करता है।।१६१-१७४।।



अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४२।।

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन्! विष्णु का विश्वत्व, कृतयुग में हरित्व, देवताओं में बैकुण्ठत्व और मनुष्यों में कृष्णत्व सुनो। उनका ईशरत्व और उनके कर्मों की गहन गति को जो व्यतीत हो गई है, जो वर्तमान है जो भविष्य में होने वाली है उसको यथातथ्य (जैसा का तैसा ही) सुनो। वे समर्थ भगवान्

जहाँ अव्यक्त हैं वहाँ व्यक्त लिङ्गस्थ (शरीरधारी भी हैं) और नारायण होते हुए अनन्तात्मा हैं अर्थात् अनेक जगत् की सृष्टि कर अनेक जीव भाव को स्वयं प्राप्त हो स्वयं उनका हरण भी करते हैं इसीलिये उनको हरि कहते हैं। वे हरि अविनाशी हैं। वे कृत युग में नारायण होकर हरि हो गये थें, पश्चात् ब्रह्मा, इन्द्र सोम, धर्म, शुक्र और बृहस्पति बन गये थे। यह विष्णु यादवनन्दन तथा अदिति के भी पुत्र बनकर अवतरित हुए थे और इन्द्र के छोटे भाई भी हुए थे। उन्होंने देवताओं के शत्रु दैत्य, दानव और राक्षसों का वध करने के लिये अपने को अदिति का पुत्र होना रूप वरदान दिया था। वे प्रधानात्मक प्रभु पहले ब्रह्मा को रचे और ब्रह्मा ने पूर्व पुरुष प्रजापतियों की रचना की। शाश्वत ब्रह्म ने कश्यप-अदिति के रूप से प्रजाओं का विस्तार किया और उत्तम ब्राह्मण वंश की रचना की, उन्हीं एक से यह सारा जगत् बहुत रूप में हो गया। अब आश्चर्यमय उन विष्णु का कीर्तनीय कीर्तन करता हूँ आप समझें। जब वृत्रासुर का वध हो चुका था और कृत्-युग चल रहा था उस समय 'तारकामय' के नाम से महाभयानक संग्राम हुआ था।।१-१०।।

जिस संग्राम में बड़े-बड़े भयंकर दानव संग्राम में मतवाला होकर देवताओं तथा यक्षों एवं उरग-राक्षसों को मारने लगे। तब मार खाने से संग्राम विमुख देवता क्षीण अस्त्र-शस्त्र हो अपने मनसे रक्षक नारायण हरि की शरण में गये। इस बीच वे दानव मेघ बनकर आकाश से अंगारे बरसाने लगे। सूर्य, चन्द्रमा और ग्रह-गणों (तारा-समुदाय) सहित आकाश ढक गया। वेग से आकाश में चलने के कारण आपस में एक-दूसरे से टकराने से चंचल बिजलियाँ प्रकट होने लगीं और बिजलियों से विद्ध सातों पवन हाहाकार कर भयंकर रूप से बहने लगे। गरम जल बरसने और बिजलियों के गिरने एवं वेगाकुल वायु के बहने से महाभयंकर शब्द होने लगा, इस प्रकार के उत्पात से आकाश जलता हुआ दिखाई पड़ने लगा। उस समय हजारों बिजलियाँ आकाश से एक साथ गिरती थीं और पुनः आकाश में चली जाती थीं। इसी

प्रकार विमान नीचे मुख करके गिरते थे और पुनः ऊपर उड़ जाते थे। चार युगों के अवान्तर प्रलय में जिस प्रकार भय उत्पन्न होता है उसी प्रकार व भय उन उत्पातों से ज्ञात होता था। पश्चात् इतना अन्धकार छा गया कि कुछ भी नहीं दिखाई देता था, घोरतम अन्धकार से आच्छादित दिशायें ठीक ज्ञात न होती थीं। काले-काले मेघों से घिरी अमावस्या की काली रात्रि की भाँति घोर अन्धकार से सूर्य के अच्छादित हो जाने पर आकाश शोभायमान नहीं दिखायी देता था। उस समय कृष्ण शरीर से हरि अपनी भुजाओं से घनघोर बादलों के अन्धकार को हटाकर देवताओं को दर्शन दिये।११-२०।।

जिनका शरीर काले मेघ के समान था और उनके बाल भी मेघ की कालिमा की भाँति चमकीले थे, उस काले शरीर से वे काले पर्वत की तरह लगते थे। वे चमकते हुए पीताम्बर धारण किये, चमकते हुए स्वर्ण के आभूषणों से युक्त प्रलयकालीन अग्नि के धूम की भाँति शरीर वाले थे। उनके आठ पुष्ट स्कन्ध थे और बगुले की पंक्ति की भाँति सफेद भूषणों को धारण किये थे और सुवर्णमय हाथ के आकार वाले आयुधों से उपशोभित थे। चन्द्रमा और सूर्य की किरणोंवाले पर्वत की भाँति अचल तथा मैनशील की तरह पीली-नीली बन्धन से युक्त नन्दन नामक खड्ग से शोभित करवाले धनुष-बाण धारण किये थे। शक्तिरूप स्वरूप वाले, हल रूप श्रेष्ठ आयुध वाले, शंख-चक्र धारण किये विष्णु रूप प्रजापालन स्वभाव वाले, क्षमा रूप मूल वाले, शोभा रूप वृक्ष वाले और शार्ङ्गधनुष धारण करने वाले थे। हरित वर्ण के घोड़ों से जुते गरुड़ध्वजा से सुशोभित चन्द्र-सूर्य रूप पहियों से युक्त मन्दराचल रूप जुए वाले, अनन्त बागडोर वाले, सुमेरु रूप कूबर वाले, तारा रूप चित्र-विचित्र पुष्प वाले और ग्रह-नक्षत्र रूप बन्दन वार वाले, भयभीतों को अभय प्रदान करने वाले स्वर्गलोकमय रथ पर बैठे थे, जब आकाश में स्थित दैत्यों से पराजित देवताओं ने देखा तो वे इन्द्र को आगे कर हाथ जोड़ जय-जय की ध्वनि करते उन शरण देने वाले विष्णु की शरण प्रत्यक्ष रूप से

चले गये। तब देवताप्रिय विष्णु उन देवताओं की आर्तभरी वाणी को सुनकर दानवों का विनाश करने के लिये मन में निश्चय किये।।२१-३०।।

उस उत्तम रथ में बैठे हुए विष्णु ने प्रतिज्ञापूर्वक देवताओं से कहा कि हे देवताओं अब भय मत करो और शान्ति का आश्रय करो मैं सम्पूर्ण दानवों को जीत लेता हूँ तो तीनों लोकों को प्रसन्न हो ग्रहण कर लो। इस प्रकार सत्यसन्ध विष्णु के वचनों से देवता वैसे ही सन्तुष्ट होकर परम प्रसन्न हुए जैसे मरणाधर्मा अमृत पीकर उठ खड़ा हो जाय। इसके बाद अंधकार हरण कर लिये और काले बादल भी नष्ट हो गये तथा वायु शान्ति धारण कर मन्दगति से बहने लगा एवं दिशायें प्रसन्न हो गईं और सुन्दर प्रभा वाले नक्षत्र चन्द्रमा की तथा तेजस्वी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करने लगे। ग्रहों ने आपस का टकराना छोड़ दिया और समुद्र भी प्रसन्न हो गये तथा स्वर्ग के तीनों मार्ग रज से रहित हो गये। नदियाँ यथार्थ रूप से बहने लगीं और समुद्र क्षोभ रहित हो गया तथा मनुष्यों की अन्तरात्मा शुद्ध हो गयी। इन्द्रियाँ शुभ कर्मों में संलग्न हो गईं। महर्षि गण शोक रहित हो उच्च स्वर से वेदों का पाठ करने लगे और यज्ञों में स्वादिष्ट हवि को अग्निदेव सुख से पाने लगे। सत्यप्रतिज्ञ विष्णु की शत्रु-निधन वाणी को सुनकर और देव-देव के भूपति विष्णु की कृपा से परम प्रसन्न हो लोक यज्ञादि धर्म में प्रवृत्त हो गया।।३१-३९।।



अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४३।।

वैशम्पायनजी बोले कि दिति पुत्र युद्ध-दुर्जय दानव विष्णु के भयभीत वचनों को सुनकर बड़े भारी युद्ध की तैयारी करने लगे। मय दानव बारह सौ हाथ लम्बे अविनाशी रथ पर चढ़ कर आया, उस रथ में चार पहिये लगे थे और उसमें बड़े-बड़े विक्रमशाली आयुध रखे थे। उसमें लगीं छोटी-छोटी घण्टियों के जाल से घन-घन का रव हो रहा था तथा वह रथ द्विपि (भेड़िये)

के चमड़े से मढ़ा हुआ था, जगह-जगह पर रत्नों और सुवर्णों से खचित था
वह सुन्दर धूरा वाला श्रेष्ठ रथ शोभा से युक्त पर्वत के तुल्य ऊँचा और व
नाना प्रकार के जानवरों और पक्षियों के बनावटी चित्रों से चित्रित था तथा उ
पर दिव्य अस्त्र एवं तूणीर रखा हुआ था, उसका शब्द मेघों की भाँति गम्भी
था। गदा और परिघ आदि शस्त्रों से भरा हुआ रथ साक्षात् समुद्र की भाँ
अलंघ्य था और सन्धियों पर केयूर और बलय आभूषण की भाँति सुवर्ण के
पट्टे लगे थे। छोटी-छोटी झण्डियों से युक्त ऊँची ध्वजा मन्दराचल पर सूर्य की
भाँति शोभती थी, वह रथ हाथी के शुण्ड की तरह बनावट वाला औ
भल्लूक के रंग वाला था और सिंह के समान शीघ्र शत्रु सेना पर आक्रम
करने वाला था। उसमें घोड़े की जगह हजारों ऋक्ष जुते हुए थे और हजा
मेघों के समान गर्जना करने वाला रथ दूसरे रथों को नष्ट-भ्रष्ट कर देने वाल
था। इस प्रकार के रथ पर वह रणाभिलाषी मय दानव सुमेरु पर्वत पर सू
के समान विराजमान था और तार नाम का राक्षस कोस भर के लम्बे लो
के रथ पर बैठा था जिसमें कौवे की ध्वजा लगी थी और पर्वत की चट्टा
से भरा तथा काले पर्वत के समान था, उसमें लोहे की पहियें लगी थीं, लो
के बने ईषा, युग और कूबर भी लगे थे और कोयले की कान्ति के सम
चमकीला काला एवं मेघ की भाँति गरजता था। लोहे की जालियों से यु
खिड़कियाँ लगी थीं और लोहे के परिघों, पत्थरों से वह रथ भरा था, प्रा
और उसमें पाश एवं तेल लगे हुए मुद्गर भी इधर-उधर रखे थे तथा तोमर औ
फरसे से सुशोभित रथ बड़ा भयानक था।।१-११।।

शत्रुओं का मन्थन करने के लिए वह दूसरे मन्दराचल की भाँति
और हजारों गदहे उस रथ में जुते थे, इस प्रकार के उत्तम रथ पर वह ता
बैठा हुआ था। विरोचन नाम का राक्षस क्रोध से भरा हुआ हाथ में गदा लेक
देव-सेना के सामने पर्वत-शिखर की भाँति अडिग होकर खड़ा था। शत्र
सेना को मर्दन करने वाला हयग्रीवनामक दानव हजारों घोड़ों से जुते रथ
बैठ कर चला। वराह नामक राक्षस वरोहयुक्त बरगद-वृक्ष की भाँति ज

धारण किये अपने हजारों भुजाओं से लम्बे-लम्बे धनुष की प्रत्यंचाओं को चढ़ाता हुआ चला। खर नाम का राक्षस घमण्ड में भर कर आँखों से क्रोधाश्रु बहाता तथा दाँतों से होंठ को काटता हुआ युद्ध की इच्छा कर रहा था। और त्वष्टा नाम का बलवान् दानव अट्ठारह घोड़ों के रथ पर सवार हो दानवों द्वारा व्यूह-रचना कर युद्ध के लिये उपस्थित था। विप्रचित्ति का पुत्र श्वेत नामक राक्षस श्वेत कुण्डल तथा आभूषण धारण किये सफेद पर्वत की तरह प्रकाशित होता हुआ युद्ध के लिए देवताओं के सामने खड़ा था। बलि का पुत्र बली अरिष्ट पर्वत की शिला लिये हुए युद्ध करने को दूसरे पर्वत की भाँति खड़ा हो गया। किशोर नामक दैत्य बछेड़ा की तरह उत्साहित हो सेना के मध्य में तेजस्वी सूर्य के समान प्रगट हो गया।।१२-२०।।

लम्ब नामक दैत्य लम्बे मेघ की भाँति काले और लम्बे वस्त्रों से भूषित हो दैत्यों की सेना में स्थित राहुग्रसित सूर्य की तरह ज्ञात होता था। राहु नामक महाग्रह जो दैत्यों में प्रधान था वह दाँत, ओष्ठ तथा नेत्र दृष्टि रूप कुटिल अस्त्रों को धारण किये हँसता हुआ खड़ा था। कितने दानव घोड़े और हाथियों पर सवार थे तथा कितने ही सिंह, वराह और ऋक्षों पर सवार थे। कितने गदहा, ऊँट और मेघों पर सवार थे तथा अन्य दानव नाना प्रकार की पक्षियों पर पवन के समान उड़ते हुए युद्ध के लिये उपस्थित थे। कितने विकृत मुख, भयंकर, एक पैर वाले, दो पैर वाले दैत्य पैदल ही युद्ध के लिये गर्जना कर रहे थे। बहुत से दानव उछलते हुए अपने भुजदण्डों पर हाथों से ताल ठोंक रहे थे, कितने श्रेष्ठ दानव सिंह के समान दहाड़ मार रहे थे। वे गदा, परिघ और उग्र धनुष का व्यायाम (अभ्यास) करने वाले अपने परिघ के समान बाहुओं से परिघ को घुमा-घुमाकर देवताओं को भयभीत कर रहे थे। वे प्रास, पाश, खड्ग, तोमर, बर्छा, पट्टिश, सौ धारों वाली शतघ्नी और मुद्गरों को घुमा-घुमा कर खेला कर रहे थे। गण्ड शैल, शैल, परिघ और उत्तम आयुधों तथा चक्रों से प्रमुख दैत्य अपने बल को प्रकाशित कर आनन्दित हो रहे थे। इस प्रकार

दैत्यों की वह सेना उठे हुए काले मेघ के समूहों की भाँति देवताओं का आगा रोक कर युद्ध के लिये उत्कट बल से खड़ी हो गई। हजारों बली दैत्यों से व्याप्त वह अद्भुत सेना वायु, अग्नि, पानी तथा पत्थर लिये एक भयंकर तूफान की भाँति रण रूप उत्सव करने के लिये युद्ध की इच्छा से उन्मत्त थी।।२१-३१।।



अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४४।।

वैशम्पायनजी बोले–आपने दैत्यों की सेना का विस्तार सुना, अब आगे देवताओं की सेना का विस्तार सुनें। आदित्य, वसु-गण, रुद्रगण, बली अश्विनीकुमार ये सभी अपनी-अपनी सेनायें लिये समराङ्गण में डटे थे। सहस्त्र नेत्रधारी इन्द्र देवताओं के मुख्य सेनापति बन कर ऐरावत हाथी पर चढ़े थे। इन्द्र के वाम भाग में गरुड़ के समान तीव्रगामी, सुन्दर पहियों से युक्त तथा सुवर्ण, हीरों से जटित रथ चल रहा था। जिसके पीछे-पीछे देव, गन्धर्व और हजारों यक्षों का समूह चला जा रहा था और वह रथ तेजस्वी सदस्यों और ब्रह्मर्षियों से प्रशंसित हो रहा था और वज्र की चिनगारियों की भाँति विद्युतयुक्त इन्द्रधनुष थे, हजारों मेघ इच्छानुसार चल कर पर्वतों की भाँति रक्षा कर रहे थे। जिन इन्द्र का सोम-यज्ञ में हवि-स्थापन के मण्डप में ब्राह्मणों द्वारा गान किया जाता है वे ऐरावत हाथी पर चल रहे थे। स्वर्ग लोक से इन्द्र के चलने पर देवताओं ने भेरियों का निनाद किया था, इन्द्र के आस-पास हजारों अप्सरायें नृत्य कर रही थीं। हजारों घोड़ों से जुता मन एवं वायु के समान तेज चलने वाला रथ बाँस में लगी पताका से सूर्य के समान शोभित हो रहा था। उस समय उस रथ को मातलि नाम का सारथि हाँक रहा था, सभी तेजवानों से घिरा रथ उदयाचल पर सूर्य की भाँति चमक रहा था।।१-१०।।

यमराज अपना यम-दण्ड तथा काल से युक्त मुद्गर लेकर देवताओं की सेना में खड़े अपनी गर्जना से दैत्यों को भयभीत कर रहे थे। चारों समुद्रों के संरक्षक जिह्वा को लपलपाते हुए सर्पों से रक्षित तथा शंख और मुक्ता के बाजूबन्द पहने जलमय शरीर धारण किये वरुण देव अपने कालपाश को घुमाते हुए चन्द्रमा के किरणों के समान घोड़ों से तथा वायु द्वारा उड़ाये गये जल कणों के उद्गार से हजारों प्रकार की खेलें कर रहे थे। वे श्वेत वस्त्र धारण किये, प्रवाल मणि का अङ्गद (बाजूबन्द) बाँधे, मणि के समान श्याम शरीर तथा उदरपर्यन्त हार पहने वरुण अपना पाश (बन्धन) लिये देवताों की सेना में युद्ध की इच्छा से तट का अतिक्रमण किये समुद्र की भाँति उद्यत हो गये। यक्ष-राक्षसों की सेना और गुह्यक गणों को साथ ले मणि के समान श्याम शरीर नर-वाहन कुबेर शंख-पद्म धारण किये निधियों के स्वामी राजराजेश्वर हाथ में गदा लिये शोभायुक्त दिखाई देने लगे। विमान पर चढ़ कर लड़ने वाले धनद (कुबेर) पुष्पक विमान पर चढ़कर युद्ध के लिये इधर-उधर देखते हुए वह शिवजी के मित्र साक्षात् शंकरजी की तरह ज्ञात होते थे। पूर्व दिशा की इन्द्र, दक्षिण की यम, पश्चिम की वरुण तथा उत्तर दिशा की कुबेर क्रमशः ये बलोत्कट लोकपाल देवसेना के चारों तरफ अपनी-अपनी दिशाओं की रक्षा कर रहे थे।।११-२०।।

सूर्य सात घोड़ों से चुते आकाशगामी रथ पर चढ़े हुए अपनी जाज्वल्यमान किरणों से स्वर्ग तक जाने-आने से तथा मेरुपर्यन्त चक्कर काटने से बार-बार उदय-अस्त करने लगे। अपनी बारह मूर्तियों को धारण करने वाले सूर्य अपनी हजारों किरणों से शोभित हो प्रकाश करते हुए देवसेना के बीच घूमने लगे। ठण्डी किरणों से युक्त चन्द्रमा सफेद घोड़ों के रथ पर चढ़ कर अपनी जलमिश्रित शीतल किरणों से युद्धस्थल में स्थित देवताओं को आनन्दित करने लगे। शीतांशु द्विजराज जो निशा के तम का विनाश करते हैं, जिनके शरीर में जगत् की छाया अंकित है ऐसे चन्द्रमा के पीछे-पीछे नक्षत्र-

योग चल रहे थे। नक्षत्र-पति रसेश औषधित्राता अमृत भण्डार जगत् के प्रथम भाग और देखने में सुन्दर शीतल किरणों से युक्त हिमरूपी अस्त्र धारण किये चन्द्रमा को आकाश में खड़े दैत्यों ने देखा। सभी प्राणियों के प्राण (वायु) जो मनुष्यों में पाँच भागों में विभक्त होकर रहते हैं जो सातों स्कन्धों में जाकर चराचर प्राणियों को धारण करते हैं जो अग्नि के यन्ता कहे जाते हैं और सबको उत्पन्न करने वाले हैं, जिनके सातों स्वरों में प्रवेश करने पर गीत कहते हैं। जो पंच महाभूतों में उत्तम महाभूत कहे जाते हैं, जिनको शरीर रहित कहा जाता है, जो आकाशगामी कहलाते हैं और जो शीघ्रगामी तथा आकाश से उत्पन्न कहे जाते हैं वह सब प्राणियों की आयु रूप वह अपने प्रबल तेज से मेघों को साथ कर प्रतिकूल होकर दैत्यों को कष्ट देते हुए बहने लगे।।२१-३१।।

उन्चासों मरुत, देवता और गन्धर्व-विद्याधर के समूहों के साथ केंचुल छोड़े हुए सर्प की भाँति चमकती तलवारों से क्रीड़ा करने लगे। सर्पों के स्वामी शेषनाग आदि देवताओं के बाण बन कर मुँह बाये क्रोध से विष वमन करते हुए आकाश में विचरण कर रहे थे। पर्वत भी शिला के शिखरों और सैकड़ों शाखाओं वाले वृक्षों को ले दानवों की सेना को मारने के लिए समर में डट गये। जो हृषिकेश पद्मनाभ त्रिविक्रम युग के अन्त में प्रकट होने वाले जगत् के ईश्वर श्याम वर्ण समुद्र रूप योनि वाले मधु दैत्य को मारने वाले यज्ञ में सत्कार पाकर हव्य का भक्षण करने वाले भूमि, जल, आकाश और भूतों (प्राणियों) की आत्मा शत्रुसूदन जगत् को उत्पन्न करने वाले जगत् के बीज, जगत-गुरु उदार बुद्धि हैं वे सूर्य और अग्नि के उत्तम तेज के समान चमकते हुए सुदर्शन चक्र को धारण कर देवताओं की सेना में उदित होते हुए लालिमा युक्त सूर्य मण्डल की भाँति प्रकट हो गये। वे अपनी बाईं भुजा में शत्रु को काल के समान वश में करनेवाली काली-काली गदा लिये हुए थे जो सम्पूर्ण असुरों का विनाश करने के लिये पर्याप्त थी और शेष हाथों से महायशस्वी प्रभु चमकते हुए शार्ङ्ग, धनुष आदि आयुधों के समूह को धारण किये हुए थे

वे कश्यप-पुत्र प्रभु भुजंगों का भोजन करने वाले अपनी आत्मा से उत्पन्न गरुड़ के ऊपर चढ़े थे।।३२-४०।।

वे गरुड़ पवन से भी अधिक उड़ने वाले तथा आकाश को क्षुभित करने वाले अर्थात् हलचल मचा देने वाले अपने मुँह में महान् सर्पों को निगलते हुए अधिक शोभायमान लग रहे थे। वे गरुड़ अमृत मंथन के आरम्भ में छोड़े मन्दराचल पर्वत की भाँति ऊँचे दिखाई दे रहे थे। वे देवता और दानवों के संग्राम में अनेक बार अपना पराक्रम दिखा चुके थे। गरुड़ जब अमृत लेने गये थे तो इन्द्र ने उन्हें वज्र से मार कर उनके शरीर में चिह्न बना दिया था। उस चिह्न से अंकित दिखाई पड़ रहे थे, उनके शिर पर शिखा थी और वे कानों में चमकते हुए कुण्डलों को पहने थे और विचित्र पक्षों (पाँखों) रूप वस्त्र धारण किये धातु (सुवर्ण) वाले पर्वत के समान शोभित हो रहे थे। अपने चौड़े वक्षस्थल में सर्प की मणि धारण करने से उनकी किरणों द्वारा चन्द्रमा के समान दिखायी दे रहे थे और सर्पभक्षण में भी प्रवृत्त थे। वे लीलापूर्वक अपने पंखों का आकाश में संचालन कर स्थित थे, उस समय इन्द्रधनुष के साथ मेघों वाला आकाश ज्ञात हो रहा था। ने नीली, पीली और लाल पताकाओं से अलंकृत कई प्रकार की पताकाओं से व्याप्त बड़ी भारी शरीर वाले ज्ञात हो रहे थे। उपरोक्त रूप वाले अरुण के लघुभ्राता पक्षियों में उत्तम गरुड़ के ऊपर हरि (भगवान् विष्णु) चढ़कर समर में पधारे थे। उन गदाधर विष्णु श्रीकृष्ण की देवता और तपोधन मुनि लोग वेदों के मन्त्रों से स्तुति करते हुए पीछे-पीछे चल रहे थे। वह देवताओं की सेना कुबेर, यमराज, वरुण और इन्द्र के द्वारा शोभित हो रही थी और चन्द्रमा की किरणों से बड़ी विमल ज्ञात होती थी कि जिसमें महातेजस्वी अग्नि और हाहाकार कर बहते हुए पवन उपस्थित थे। वह सेना विष्णु के बल से युक्त हो युद्ध के लिये उद्यत हो गई। तब बृहस्पति ने कहा कि देवताओं का कल्याण हो अर्थात् जय हो, उधर दैत्यों की सेना में शुक्राचार्य ने कहा कि दैत्यों का कल्याण हो, जीत हो।।४१-५२।।



अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४५।।

वैशम्पायनजी बोले कि, परस्पर जय की इच्छा वाले देवता और दानवों में तुमुल संग्राम प्रारम्भ हो गया। दानव नाना प्रकार के अस्त्रों को ग्रहण कर देवताओं से ऐसे लड़ने लगे जैसे पर्वत पर्वत से लड़ रहे हों। तब धर्म-अधर्म और विनय-घमण्ड रूप देवता और दानवों का अद्भुत समर होने लगा। इसके बाद वेग से दौड़ने वाले घोड़ों द्वारा खींचते हुए रथ से, चारों ओर खड्ग लिये आकाश में हाथों को घुमाने से, मूसलों के चलाने तथ धनुषों से खींच-खींच कर बाणों को छोड़ने से, मुद्गरों के चलाने से वह देवता और दानवों का प्रलय काल के कोप के समान कठिन युद्ध जगत् को भय देने लगा। दानव परिघों को चलाकर और पर्वतों को फेंक कर युद्ध के बीच इन्द्रादि देवताओं को मारने लगे। तब बली दानवों के द्वारा आहत देवता खिन्न मन हो परम दुःख को प्राप्त हुए। परिघ आदि शस्त्र समूहों से देवताओं के वक्षस्थल आदि शरीरों में घाव हो गये थे जिनसे अधिक रक्त बह रहा था। दानवों ने पाशों और बाणों से मार कर देवताओं को घायल कर मूर्च्छित कर दिया, वे दानवी माया के समक्ष कुछ भी प्रतिकार करने में समर्थ न हो सके।।१-१०।।

इस प्रकार दानवों द्वारा आहत होने से देव-सेनानियों के हाथ से हथियार छूटकर गिर पड़े और देव-सेना निष्प्राण मुर्दे की तरह ज्ञात होने लगी, एकदम स्तम्भित हो गई। तब सहस्त्रनेत्र इन्द्र अपने वज्र के द्वारा मायापाशों और उनके बाणों को खण्ड-खण्ड करते हुए दैत्यों की सेना में प्रविष्ट हुए। दै सेना के प्रमुख द्वार पर स्थित महाबलवान् दानवों का वध कर अपने अस्त्र जालों से ऐसा अन्धकार कर दिये कि आपस में दानव या देवता एक दूसरे को देख कर न पहचान सके, उस समय प्रमुख-प्रमुख देवता दानवों के माया पाश से छूटकर घोर अन्धकार छा जाने पर भी इन्द्र के तेज से अन्धकार पड़ी हुई दैत्यों की सेना को मार कर गिराने लगे। तम से काली कान्ति वा

दानव प्राणरहित होकर पक्ष कटे पर्वत की भाँति गिरने लगे। तब इस प्रकार विषम स्थिति उत्पन्न होनेपर सभी दैत्य एक साथ मिलकर अन्धकार के समुद्र की भाँति त्रस्त होकर उठी हुई देवसेना में प्रवेश करन लगे जिससे और भी अन्धकार हो गया। उस समय मय दानव ने और्व नामक अग्नि से इन्द्र द्वारा तामसास्त्र चला कर फैलाई हुई माया का विनाश करते हुए युगान्त काल की अग्नि की भाँति महामाया की रचना की। मायाकल्यित उस माया ने इन्द्र के किये सम्पूर्ण अन्धकार को जला दिया तब प्रकाश होने से दैत्य शरीर से कान्तिमान् हो समर में युद्ध के लिये खड़े गये। उस अग्नि रूप माया को प्राप्त कर देवता लोग जलने लगें वे अग्नि माया के भय से चन्द्रमा के समीप ठंडी किरणों से मिश्रित शिशिर के जल में शयन करने के लिये चले गये।।११-२०।।

वे और्वाग्नि के तेज से जाज्वल्यमान देवता इन्द्र के समीप जाकर यह सब वृत्तान्त कहे और शरण माँगने लगे। तब दानवों के द्वारा प्रयोग की गई माया से देवताओं के संतप्त होने पर इन्द्र ने वरुण से रक्षा करने को कहा तब वरुण इन्द्र से कहने लगे। वरुण बोले-हे इन्द्र! प्राचीन काल में ब्रह्मर्षि भृगु के पुत्र ऊर्व नाम के मुनि तेज और गुण में ब्रह्मा के समान हुए थे उन्होंने महा कठिन तप किया। वे तप करते समय सूर्य के समान अपने तेज के द्वारा अबाध गति से जगत् को तपाने लगे तब इस प्रकार जगत् को संतापित देख मुनि और देवतागण ब्रह्मर्षियों को साथ लेकर उनके पास गये। हिरण्यकशिपु जो पहले दानवों का राजा था उसने परम तेजस्वी ऋषि को इसकी सूचना दे दी। ब्रह्मर्षियों ने ऊर्व से वेद सम्मत वचन कहा कि हे भगवन्! आपके इस प्रकार के तप से ऋषि वंश में प्रसिद्ध आपका कुल विनष्ट होने जा रहा है। क्योंकि इस भृगु वंश में एक आप ही शेष बच गये हैं सो अभी तक पुत्र रहित हैं और ब्रह्मचर्य का पालन कर अर्ध्वरेता हो क्लेश उठा रहे हैं। सो इस प्रकार बहुत ब्राह्मणों के गोत्र उनके मुनि भाव धारण करने से पुत्रों के न उत्पन्न होने के

कारण उनकी देह तक ही सीमित रह कर विनष्ट हो गये क्योंकि वे कुल की वृद्धि के कारण न बन सके और आप तो तपस्या से प्रजापतियों के समान तेजस्वी हो गये हैं इसलिये आप वंशवृद्धि के लिये अपनी आत्मा से दूसरी आत्मा की रचना कीजिये अपने तेजोमय वीर्य का आधान कर अपने इस शरीर से दूसरी शरीर रूप पुत्र को उत्पन्न करिये।।२१-३०।।

इस प्रकार के वचनों को सुनकर ऊर्व मुनि केमन में बड़ा दुःख हुआ वे ब्रह्मर्षियों की निन्दा करते हुए यह कहने लगे कि जिस प्रकार से मुनियों के शाश्वत धर्म का पहले से विधान है ठीक उसी प्रकार से वन में उत्पन्न हुए फल-फूलों का भक्षण करते हुए आर्ष कर्म धर्म का पालन करना उचित है। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर ब्राह्मणों के कर्म के अनुकूल आचरण करता हुआ ब्रह्मचर्य धारण करने वाला सुचरित्र ब्राह्मण ब्रह्मा के आसन को भी डिगा सकता है। ब्राह्मणों की तीन वृत्तियाँ गृहस्थाश्रम धारण करने पर कही गयी हैं यज्ञ कराना, विद्या पढ़ाना और दान लेना। परन्तु हम ब्रह्मचारियों को तो वनवृत्ति धारण कर वन में वास करना ही श्रेष्ठ है। जो वायु तथा जल भक्षण करते हैं, फलादि पदार्थों को दाँतों रूपी उलूखल के द्वारा भक्षण करते, जो पत्थरों के द्वारा कूट-पीसकर दाँतों के सहारे खा-पी लेते हैं और चारों तरफ अग्नि जलाकर ऊपर से सूर्य के ताप को सहकर इस प्रकार पंचाग्नि के द्वारा कठिन तप करते हैं तथा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए कठिन व्रतों के द्वारा तप करते हैं वे परम गति को पा लेते हैं। ब्रह्मचर्य से ही ब्राह्मण को ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है ऐसा ब्रह्मलोक में ब्रह्मवादी लोग भी कहते हैं। ब्रह्मचर्य-धर्म पालन करने पर ही धैर्य प्राप्त होकर तपस्या होती है, जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य में स्थित हैं वे मानो स्वर्ग में निवास कर रहे हैं। इसलिये सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य के बिना योग नहीं होता और योग के बिना सिद्धि नहीं प्राप्त होती और बिना सिद्धि प्राप्त हुए यश नहीं प्राप्त होता इससे यह सिद्ध है कि इस लोक में ब्रह्मचर्य से बढ़कर

कोई भी तप यश का मूल कारण नहीं है। इसलिये इन्द्रिय समूहों और पंच भूतों को वश में कर यदि ब्रह्मचर्य पालन करे तो इससे बढ़कर कोई तप नहीं।।३१-४०।।

यदि योग नहीं करता है तो उसका केवल मुण्डन कराकर योगी का वेष बनाना पाखण्ड मात्र है, बिना संकल्प के व्रत की क्रिया तथा ब्रह्मचर्य का पालन कर तपस्या करना पाखण्ड माना है। जिस समय ब्रह्मा ने मानसिक सृष्टि के द्वारा सनत्कुमारादि पुत्रों को उत्पन्न किया था उस समय कहाँ स्त्री थी और कहाँ स्त्री का संयोग था और कहाँ चित्त की काम विह्वलता थी। यदि आप महात्माओं के पास तप का बल हो तो जैसे प्रजापति लोग स्त्री संयोग से पुत्रों की रचना करते हैं वैसे ही पुत्रों की रचना आप लोग ब्रह्मा की तरह मन से कीजिये। तपस्वी को तो चाहिए कि वह मन से निर्मित योनि में तप रूप ब्रह्म तेज का आधान कर पुत्र उत्पन्न करे, तपस्वियों के लिये तो तप कहा गया है स्त्री का संयोग कर बीज प्रदान करना नहीं कहा गया है। हमारी समझ से आप लोग सज्जन होते हुए भी असज्जनों की भाँति निर्भय होकर इस प्रकार का वचन हमसे कहा है कि यदि आप विवाह कर पुत्र नहीं उत्पन्न करेंगे तो धर्म रूप अर्थ वाला आपका कुल नष्ट हो जायेगा। मैं मनोमय शरीर बनाकर अर्थात् मानसिक सृष्टि के द्वारा तेजस्वी पुत्र को बिना स्त्री के संयोग से ही उत्पन्न कर दूँगा। इस प्रकार मेरी आत्मा वन में ही रहकर दूसरी आत्मा उत्पन्न करेगी जो अपने तेज से प्रजाओं को जलाने लगेगी। इस प्रकार कह कर तप युक्त ऊर्व मुनि अपनी जाँघ को अग्नि में डाल दिया पश्चात् अग्नि रूप पुत्र उत्पन्न होने वाली अरणी रूप अपनी जाँघ को एक कुश लेकर मथने लगे। फिर तो उनकी जाँघ को फाड़ कर लकड़ी के बिना ही ज्वालाओं की माला धारण किये अग्नि रूप पुत्र उत्पन्न हो गया जो जगत् को जला देने की इच्छा रखता था। वह ऊर्व की जाँघ का भेदन कर उत्पन्न हुआ इसलिये उसका और्व नाम पड़ा वह प्रलयकालीन अग्नि की तरह तीनों लोकों को जलाने में समर्थ परम क्रोधी उत्पन्न हुआ।।४१-५१।।

वह उत्पन्न होते ही अपने पिता और ऊर्व मुनि से बड़े कड़े शब्द में बोला कि हे तात! मुझे बड़ी भूख लगी है आप हमको आज्ञा प्रदान कीजिये जिससे मैं इस जगत का भक्षण करूँ। फिर तो स्वर्ग तक पहुँचने वाली लहरों से युक्त वह यमराज की भाँति और्व नामक अग्नि मुँह बाये दशों दिशाओं को जलाता हुआ बढ़ने लगा। तब इस प्रकार की भीषण स्थिति देख लोकपति ब्रह्मा वहाँ आ गये कि जहाँ से ऊर्व ने अपने पुत्र को छोड़ा था तब ऋषियों के साथ ब्रह्मा ने पुत्र की उत्पत्ति स्थान अग्नि से जलती हुई ऊर्व की जाँघ को देखा तथा लोकों और ऊर्व की क्रोधाग्नि से संतप्त तीनों लोकों को देखा तब आदर करते हुए उर्व मुनि से ब्रह्मा ने कहा कि लोक के हित की कामना से उत्पन्न तेज को धारण कर लीजिये अर्थात् पुत्र को रोक दीजिये। आपके इस पुत्र की मैं अच्छी तरह सहायता करूँगा, मैं इसे रहने के लिये स्थान दूँगा और अमृत के समान भोजन दूँगा, हे श्रेष्ठ वक्ता! मेरे इस सत्य वचनों को सुनो और मानो। ऊर्व बोले–आज मैं धन्य हो गया जो कि आप मेरे पुत्र के ऊपर अनुग्रह करने के लिये इस प्रकार की बात कह रहे हैं। यह तो बतलाइये कि इसके युवावस्था के प्राप्त होने पर जब अन्न की इच्छा करेगा तो हे भगवन्! इस समय प्रसन्न किया हुआ पुत्र किस प्रकार की हवि को प्राप्त कर सुखी होगा और इसका निवास स्थान कहाँ होगा तथा किस वस्तु का भोजन होगा? आप इस महाबली के पराक्रम के अनुसार ही जो कुछ करना होगा करियेगा। ब्रह्मा बोले–बडवा की तरह मुख वाले समुद्र में इसका निवास स्थान होगा और मेरी योनि जो जल है उसी का इसका शरीर होगा।।५१-६०।।

और जल रूप हवि का ही यह पान करेगा अब मैं तुम्हारे पुत्र को उसी समुद्र रूप गृह में भेज देता हूँ कि जल मय हवि का पान करता हुआ निश्चिन्त रूप से वहीं रहे। जब-जब प्रलय काल का समय उपस्थित होगा तब-तब यह मेरे साथ लोकों में विचरण कर अर्थात् लोकों को भस्म कर युग का अन्त किया करेगा। जल में शयन करने वाला इसे बडवानल बना देता हूँ। प्रलय

काल उपस्थित होने पर यह युगान्तकारी अग्नि बनकर देवता, असुर और राक्षसों सहित सम्पूर्ण प्राणियों को भस्म करेगा। ऐसा मुझे स्वीकार है, कह कर वह और्व नामक अग्नि अपने तेज को अपने पिता के अन्दर स्थित कर ज्वालमालाओं को समेट कर समुद्र के मुख में प्रविष्ट हो गया। पश्चात् और्व के प्रभाव को जानकर ब्रह्मा अपने लोक को तथा महर्षि लोग अपने-अपने आश्रमों को चले गये। इसके बाद हिरण्यकशिपु इस प्रकार अद्भुत चमत्कार देख ऊर्व को साष्टांग प्रणाम करके कहने लगा कि हे भगवन्! आपने तो लोक को अद्भुत दृश्य दिखलाया और आपकी तपस्या से पितामह ब्रह्मा प्रसन्न हो गये। हे मुनिश्रेष्ठ! हमको तो आप अपना तथा अपने पुत्र का दास समझिये और यदि मेरा कर्म प्रशंसनीय हो तो आपकी आराधना में रत मुझ शान्तिप्रिय को अपनी दया की दृष्टि से देखिये। हे मुनिश्रेष्ठ! यदि मेरा पराजय होगा तो वह आपका पराजय है। यह सुन ऊर्व बोले-मैं धन्य हूँ, तुम्हारे द्वारा अनुगृहीत हूँ कि तुमने मुझे गुरु माना। हे सुव्रत! अब तुम्हें इस नम्रता रूप तपस्या से कोई भय नहीं होगा। हमारे पुत्र के द्वारा निर्मित इस और्वी माया को ग्रहण करो जो कि ईंधन रहित अग्निमय है। इसे साक्षात् अग्नि भी कठिनाई से स्पर्श कर सकेगा। शत्रुओं के साथ संग्राम के समय यह माया तुम्हारे वंश वालों के अधीन रहा करेगी। यह अपने पक्ष की रक्षा करती है और शत्रु पक्ष के ऊपर प्रहार करती है। ऐसा ही हो कहकर हिरण्यकशिपु ने उस माया को ले लिया और मुनि श्रेष्ठ ऊर्व को प्रणाम कर कृतार्थ तथा प्रसन्न होता हुआ स्वर्ग को चला गया। वरुण बोले कि मय दानव से प्रयोग की गई यह वही दुर्विष रूपी शत्रु का हनन करने वाली माया है कि जिसका निर्माण ऊर्व पुत्र अग्नि ने किया था जो हम देवताओं के द्वारा कठिनता से विनष्ट की जायेगी। जिसके तेज सेस यह माया रची गई थी उस ऊर्व मुनि ने दानेश्वर के दुष्ट आचरणों को देख शाप दे दिया कि यह माया तुम्हारे ही जीवन तक बलवती रहेगी इसके बाद बलहीन हो जायेगी। यदि इस माया का विनाश कर देवताओं को ऐश्वर्य-सम्पत्ति से सुखी बनाना इष्ट है तो हे इन्द्र! आप जल योनि चन्द्रमा को हमारी

सहायता करने के लिये दीजिये जिससे कि मैं इनके साथ अपने जलचरों सहित जाकर आपके प्रसाद से इस माया का विनाश करूँ, इसमें संशय नहीं।।६१-७७।।



अथ षट् चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४६।।

वैशम्पायनजी बोले कि ऐसा ही होगा कहकर स्वर्ग की सिद्धि चाहने वाले इन्द्र ने सामने खड़े हिम प्रहारी चन्द्रमा को युद्ध के लिये आज्ञा प्रदान कर दिया। इन्द्र बोले कि हे सोम! देवताओं की विजय और असुरों के विनाश के लिये आप पाशधारी वरुण की सहायता के लिये जाइये। आप अप्रतिभ वीर्यवान् और आप ग्रहों के ईश्वर सूर्य, उनके भी ईश्वर हैं, सम्पूर्ण लोकों का रस आपका ही है ऐसा रसज्ञों ने कहा है। सागर-मण्डल की भाँति आपका घटना-बढ़ना होता है, आप आकाश में भ्रमण कर दिन-रात समय का जगत् में विभाजन करते हैं। आपके शरीर में लोक-छाया रूप शश नामक चिह्न है, नक्षत्रयोगी देवता भी आपके पराक्रम को नहीं जानते। आप सूर्य-मार्ग से भी ऊपर नक्षत्रों के समीप रहते हैं तथा अन्धकार को दूर कर सम्पूर्ण जगत् को अपने तेजमय शीतल प्रकाश से प्रकाशित करते हैं। आप हिम रूप शरीर धारण करने वाले श्वेत प्रभा वाले नक्षत्रों के स्वामी हैं, आप काल के योग से सम्वत्सर की रचना करते हैं, आप पूज्य हैं, यज्ञ के लिये अविनाशी रस रूप हैं। औषधियों के पोषणकर्ता, क्रिया और जल की योनि हैं इसलिये शीतल हैं एवं शीतल किरणों को और अमृत को धारण करने वाले हैं, चंचल एवं श्वेत वाहन वाले हैं। आप कान्तिमानों की कान्ति हैं, सोम की जीविका वालों के लिये सोम रूप हैं और सब प्राणियों के अन्धकार को दूर करने वाले नक्षत्रराज हैं। आप इस सेना वाले वरुण के साथ जाकर दानवी माया का विनाश कीजिये जिस माया से हम देवता इस संग्राम में जल रहे हैं।।१-१०।।

चन्द्रमा बोले–हे जगत्पते देवराज! यदि हमको युद्ध करने को कह रहे हैं तो देखिये मैं हिम की वर्षा करता हूँ कि जिससे दैत्य-माया का विनाश होगा। अब पाले से लथ-पथ अर्थात् निर्दग्ध इन दैत्यों को देखिये जो माया और मद से रहित हो जायेंगे तथा खेद को प्राप्त हो जायेंगे। वैशम्पायनजी बोले कि ऐसा कहकर चन्द्रमा मेघ गणों की भाँति अपनी हिम किरणों से कुहिरा की तरह हिम की वर्षा कर भयंकर दैत्यों को आच्छादित कर दिये और वरुण अपने पाश को फेंक दैत्यों को बाँधने लगे। इस प्रकार पाशधारी वरुण और श्वेत किरणधारी चन्द्रमा रण की विशाल भूमि में दानवों को पाश-पात तथा हिमपात से मारने लगे। ये दोनों जल-नाथ पाश और हिम से युद्ध करने वाले दो समुद्र की भाँति क्षुब्ध होकर समरभूमि में विचरने लगे। इन दोनों ने कठिन वर्षा कर प्रलयंकारी संवर्त्तक मेघ की भाँति दानव-सेना को जल में निमग्न कर दिया। शशांक तथा वरुण ने हिमांशु रूपी अस्त्रों को उठाकर मय दैत्य निर्मित माया का अन्त कर दिया। शीत-किरणों से निर्दग्ध और पाशों से बँधे दैत्य रम में शिर कटे पर्वत की भाँति कुछ न कर सके। हिम से लत-पथ हो छटपटा कर दैत्य गिरने और उठने लगे। हिम व्याप्त अङ्गों वाले गर्मी से रहित अग्नि की भाँति ठण्डे अर्थात् पराक्रम रहित हो गये। दैत्यों के प्रभा क्षीण विचित्र विमान आकाश से गिरने और ऊपर उठने लगे।।११-२०।।

तब हिम से आच्छादित और वरुण पाश से बँधे दैत्यों को आकाश में मायावी मय दानव ने देखा और अपनी ओर्वी माया को विनष्ट हुआ देखा। फिर तो उसने शिला जाल माया को फैलाया जो ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखरों से अट्टहास करने वाली थी, जो वृक्षों और उत्कट पर्वत शिलाओं तथा कन्दराओं से व्याप्त वनों की भाँति मुख वाली थी। सिंह, व्याघ्र और हाथियों रूप सेनापतियों द्वारा गरजती थी और वह माया इच्छा रूपी जीवों तथा मृगों से व्याप्त थी प्रबल पवन के झकोरों से उसके अन्दर वृक्ष झकोरे जा रहे थे। इच्छानुसार आकाश में विचरण करने वाली जो पार्वती माया मय दानव के

पुत्र क्रौञ्च द्वारा निर्मित थी उसी माया का दानवोत्तम मय ने देवताओं के ऊपर प्रयोग किया। वह माया वज्र की भाँति भयंकर शब्द करती बड़ी-बड़ी पर्वत शिलाओं की वर्षा कर और बड़े-बडे वृक्षों के द्वारा मार देवता-गणों का विनाश करने लगी है और दानवों का संरक्षण करने लगी। ऐसा करने से निशाकर और वरुण की नैशाकरी तथा वारुणी माया छिप गई, पार्वती माया लोहा और पत्थरों को मेघ की भाँति रण में देवताओं के ऊपर वर्षाने लगी। पत्थरों के आघात से पृथ्वी ऊँची-नीची हो गई और वृक्षों तथा पर्वतों से संकटग्रस्त रणभूमि पर्वतों की भाँति दुर्लंघ्य हो गई, वहाँ चलना महाकठिन हो गया। कितने देवता पत्थरों से घायल हो गये, कोई ऐसा न बचा था कि जो शिलाओं द्वारा घायल न कर दिया गया हो और वृक्षों के समूहों से अवरुद्ध न हो गया हो। उनके धनुष हाथ से छूटकर भूमि पर गिर पड़े तथा और भी जो अस्त्र-शस्त्र थे वे सभी हाथ से छूट गये, केवल एक गदाधर विष्णु को छोड़ कर सारी देव-सेना रण के प्रयत्न से रहित हो गई। परन्तु भगवान् विष्णु समर में टस से मस नहीं हुए और सहनशील होने से जगत् के स्वामी ने तब भी क्रोध न किया।।२१-३०।।

वे काले मेघ की आभा वाले समय को जानने वाले संग्राम में समय की प्रतीक्षा करने लगे वे देवता तथा असुरों का संग्राम देखना चाहते थे। पश्चात् भगवान् ने अग्नि और पवन को मय द्वारा छोड़ी गयी बढ़ती माया के शमन के लिये आदेश दे दिया। तब अग्नि पवन से और पवन अग्नि से दोनों आपस में मिल विष्णु के वाक्य से प्रेरित हो प्रबल अग्नि ज्वाला को प्रवाहित करते हुए पार्वती माया का विनाश करने लगे। अग्नि-पवन का कठिन वेग समर में अधिक बढ़ जाने से पार्वती माया जल कर भस्मीभूत हो गई। वह पवन अग्नि से संयोग कर और अग्नि पवन से संयोग कर प्रलय काल की भाँति दोनों क्रुद्ध होकर दैत्य सेना को जलाने लगे। पहले जोरों का पवन चलता फिर पवन के पीछे पवन का आश्रय कर अग्नि चलता। इस प्रकार

दानवों की सेना में अग्नि और पवन विचरने लगे। दानवों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग जलने लगते तो वे व्याकुल होकर गिरते और उठते हुए छटपटाने लगते थे। इस प्रकार दानवों का विनाश कर अग्नि कृतकार्य हुए। वायु के झोंकों से टूटे हुए दानवों के विमान चारों ओर गिरने लगे। इस प्रकार दानव माया का विनाश होने पर और दैत्यों के प्रयत्न रहित होने पर तीनों लोक बन्धन से मुक्त हो गये तब देवता भगवान् गदाधर की स्तुति करने लगे। देवता महाप्रसन्न होकर चारों ओर से साधु-साधु कहने लगे। तब इन्द्र की विजय और मय की पराजय हो जाने पर सभी दिशायें निर्मल हो गईं और चारों ओर धर्म का वातावरण छा गया।।३१-४०।।

चन्द्रमा अपने पथ पर चलने लगे और सूर्य अयन में स्थित हो गये, लोक स्वस्थ हो गये और राजा सदाचार प्रिय हो गये। मृत्यु अपनी मर्यादा में स्थित हो गई, अग्नि में हवन होने लगा, देवता यज्ञ भाग पाने लगे तथा लोगों को स्वर्ग दीखने लगा लोकपाल अपनी-अपनी दिशाओं में निर्भय हो संरक्षण करते हुए विचरने लगे। देवताओं की ओर प्रसन्नता तथा दैत्यों की ओर विषाद हो गया, धर्म तीन पाद से और अधर्म एक पाद से होने लग गया। मोक्ष का द्वार खुल गया, चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अपने-अपने धर्मों का पालन करते हुए सत्पथ पर चलने लगे और चारों आश्रमी ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी तथा संन्यासी अपने आश्रम में स्थित हो गये। राजा लोग प्रजाओं की रक्षा करते हुए शोभा पाने लगे और ऋषि लोग विष्णु का गुणगान करते हुए स्तोत्रों का पाठ करने लगे। पाप का आचरण शान्त हो गया, तप में जो कठिनाइयाँ थीं सो दूर हो गईं, अग्नि और पवन के संग्राम कर्म करने पर उनके विजय रूप कृत्य से प्रसन्न लोक अग्नि और पवन से विमल हो सुख पाने लगा। तब पवन और अग्नि के द्वारा दानवों के पराजय को सुनकर कालनेमि नामक दैत्य प्रकट हुआ। जिसका मुकुट सूर्य की भाँति चमकता था और बजते हुए घुघरुओं से युक्त अङ्गद बाजूबन्द पहने था। चमकते हुए चाँदी से आच्छादित मदराचल की भाँति उसका विशाल शरीर आभूषणों से

सुशोभित था। वह सौ शिर, सौ मुँह और सौ बाहुओं वाला सैकड़ों श्रेष्ठ अस्त्र-शस्त्र लिये सैकड़ों शिखरों वाले पर्वत की तरह प्रतीत हो रहा था।।४१-५०।।

वह संग्राम भूमि में ग्रीष्म काल में वन में लगे दावानल की भाँति बढ़ने लगा। उसक केश मटमैले, दाढ़ी हरित (लाल), दाँत निकले हुए और ठोडी के ऊपर ओष्ठ लटका हुआ था। वह इतना बड़ा शरीर धारण करने लगा कि मानो तीनो लोक भर जाएया। ज्ञात होता था कि वह अपनी बाहुओं से आकाश को तौल रहा है, अपने पैरों से पर्वतों को फेंकने लगा और अपने मुँह के श्वासों से बरसते हुए बादलों को तितर-बितर करने लगा। बड़े-बड़े तथा क्रोध से लाल-लाल नेत्रों से तिरछे देखने लगा, वह इन्द्र के समान तेजस्वी दिखाई देता था, वह आकर सम्पूर्ण देव गणों को अपने तेज से जलाता और डाँटता-फटकारता हुआ दशों दिशाओं में छा गया, वह संवर्तक मेघ के समय भूखे काल की तरह क्रोधित दिखाई दे रहा था मानो सबको खा लेने के लिये मृत्यु उठकर आई हो ज्ञात होता था कि जैसे सुतल लोक से उठकर आ रहा है, उसके अँगुलियों की गाँठें बड़ी-बड़ी थीं, माला और आभूषण से परिपूर्ण कवच किंचित् हिल रहा था। अपने दाहिने हाथ के अग्रभाग से देवताओं द्वारा मारे गये मूर्छत दानवों को पकड़ कर कहता था कि तुम लोग उठो। इस प्रकार द्वेष करने वालों में काल के समान कालनेमि को सभी देवता भय से विकल होकर देखने लगे। प्राणियों पर आक्रमण करने वाले कालनेमि को वामनरूप धारण कर तीनों लोकों को नापते हुए दूसरे नारायण की तरह देखने लगे। जिस समय वह पहला डग रखा उस समय वायु के झोंकों से आकाश घूर्णित हो गया, उसके वस्त्र उड़ने लगे। इस प्रकार सम्पूर्ण देवताओं को त्रास देता हुआ वह असुर घूमने लगा। वह कालनेमि असुरेन्द्र मय के साथ लिपट कर विष्णु के सहित मेरु पर्वत की तरह ज्ञात होने लगा। भयंकर कालनेमि को आता हुआ देखकर इन्द्र सहित सभी देवता भय से व्यथित चित्त हो गये।।५१-६२।।



अथ सप्त चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४७।।

वैशम्पायनजी बोले कि दानवों को प्रसन्न करने के लिये महातेजस्वी कालनेमि ग्रीष्म काल के अन्त में मेघ के समान बढ़ने लगा। इस प्रकार तीनों लोकों में बढ़े हुए कालनेमि को अपनी सहायता के लिये आया देखकर शिथिल दानव अमृत प्राप्त हो जाने के समान प्रसन्न होकर उठ खड़े हुए। देवताओं के भय से संत्रस्त मय तथा तार आदिक निरन्तर जय की कांक्षा करते हुए तारका मय संग्राम में युद्ध की इच्छा से डट गये। अस्त्रों को घुमाते हुए और दानवों की सेना में इधर-उधर व्यूह रचना में दौड़ते हुए कालनेमि को देखकर दानव परम प्रसन्न हुए। जो मय दानव के सेनापति थे वे भी अब भय रहित होकर प्रसन्नता से युद्ध के लिये उपस्थित हो गये। मय, तार, वराह, बलवान् हयग्रीव, विप्रचित्ति, श्वेत, खर, लम्ब, बलि-पुत्र अरिष्ट, किशोर, उष्ट्र, देवताओं में विख्यात स्वर्भानु (राहु) और महासुर वक्त्रयोधी ये सब दानव अस्त्र-शस्त्र विद्या में पारंगत और सभी तपस्वी सुष्टुव्रतधारी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कालनेमि के साथ युद्ध करने के लिये डट गये। वे दानव गदा, गुर्वि, चक्र, परश्वध, बर्छी और पर्वतों की भाँति गण्ड शैलों को, पट्टिश, भिन्दिपाल, परिघ आदि उत्तम आयुध, घातिनी गुर्वि (गूर्ज), शतघ्नी, कालकल्प, मूसल, क्षेपणी, मुद्गर, युगयन्त्र, निर्मुक्त, अर्गल, अग्रताडित, मोटे-मोटे कन्धों तथा लम्बी-लम्बी बाँहों से पाश, प्रास, जीभ लपलपाते सर्पों को लिये हुए बाणों को फेरते हुए प्रहरण करने योग्य वज्र और चमकते हुए तोमरों, तीक्ष्ण धार वाले खड्गों को खड्ग विवरों सहित और चन्द्रमा के समान सफेद चमकते शूलों आदि उत्तम आयुधों को धारण किये क्रोधित हो कालनेमि को आगे कर संग्राम के मोहड़ों पर डट गये। श्रेष्ठ अस्त्रधारी दैत्यों से वह सेना बड़ी शोभा पा रही थी जिस प्रकार सघन मेघों के छा जाने पर आकाश में तारे छिप जाते हैं और कालिमा प्रकट हो जाती है। चन्द्रमा के शीत किरणों से तथा सूर्य की उष्ण किरणों से व्याप्त इन्द्र के द्वारा सुरक्षित देवताओं की सेना भी शोभित हो रही

थी। तारा गणों रूपी पताकावाली, मेघ रूपी वस्त्रवाली, ग्रह तथा नक्षत्रों से हँसनेवाली, वायु वेग वाली यम, इन्द्र, कुबेर और बुद्धिमान् वरुण के द्वारा सेवित, अग्नि-पवन से चमकती नारायण का बल रखनेवाली यक्ष-गन्धर्वों से युक्त समुद्र के समान देवताओं की दिव्य महती भयंकर सेना शोभित थी। तब रणभूमि में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ उसी प्रकार हो गयी कि जैसे प्रलयकाल में आकाश पृथ्वी से मिलता है।।११-२०।।

फिर तो देवता और दानवों में तुमुल संग्राम होने लगा, वह देव-दानवों से संकुल संग्राम क्षमा-पराक्रममय, घमण्ड और विनय के संग्राम की भाँति था सुर और असुर दोनों ही अपने-अपने बल के अनुसार एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे जैसे पूर्व और पश्चिम समुद्र से उठे बादल लड़ रहे हों। पुष्पित वन से पर्वतीय गजों की भाँति अपनी-अपनी सेना से निकल प्रसन्न होकर देव तथा दानव रणभूणि में विचरण करने लगे। इसके बाद रणभेरियाँ बजने लगीं तथा अनेक युद्ध शंख बजने लगे, उन शब्दों से आकाश तथा पृथ्वी एवं दिशायें भर गईं। प्रत्यंचा के निर्घोष से और धनुष के टंकार से तथा दुन्दुभियों के निनाद से दैत्यों के शब्द छिप गये। वे देव-दानव परस्पर में अस्त्र-शस्त्रों के संचालन से एक दूसरे को धराशायी करने लगे और अन्य कितने द्वन्द्वयुद्ध करके एक दूसरे की बाहुएँ तोड़ने लगे। देवता लोग वज्र और भयंकर परिघ तथा उत्तम लोहे के बने अस्त्रों को चलाने लगे, उसके उत्तर में दानव खड्ग, गदा और गुर्ज चलाने लगे। गदा के प्रहार से किसी का अङ्ग-भङ्ग हो गया तो बाणों के लगने से कोई खण्ड-खण्ड हो गया, कोई अत्यन्त घायल होकर मुँह के बल गिर गया, कोई सँभल गया। कुछ देवता और दानव घोड़े जुते रथों तथा शीघ्र चलने वाले विमानों पर चढ़ कर संग्रामभूमि में आ आपस में युद्ध प्रारम्भ कर दिये। दूसरे उपस्थित वीर सम्मुख आते हुए अन्य वीरों को रोकने लगे, रथ पर चढ़े वीर अन्य आते हुए रथी वीरों को रथों से रोकने लगे और पैदल वीर पैदल आने वालों को रोकने लगे।।२१-३०।।

उनके रथों का तुमुल-शब्द वर्षाकाल के बादलों के समान होने लगा। अनेक का रथ टूट गये, अनेक रथों से कुचल दिये गये, बहुतों के रथ पृथ्वी में धँस जाने से चलने में असमर्थ हो गये। घमण्ड से भरे एक दूसरे को अपनी बाहुओं से ढकेल कर चले जाते थे और आभूषणों को बजाते हुए वीर ढाल-तलवार लिये वीरों को मारते थे और अनेक वीर अस्त्रों से घायल होकर रुधिर का वमन करते थे कि जैसे शरदकालीन मेघों द्वारा जल बरसने लगता है। अस्त्र-शस्त्रों की आपस में गाँठें पड़ने लगीं, वे आपस में टकराने लगे, चलाई गई गदा, गदा से व्यास होने लगी, इस प्रकार वह देव-दानवों का कठिन युद्ध हुआ दानव प्रलयकालीन मेघ की भाँति और देवता उसमें विद्युत की भाँति चमकने लगे। दोनों के परस्पर बाण-वर्षा से आच्छादित युद्ध दुर्दिन की तरह ज्ञात होने लगा। इसी बीच महासुर कालनेमि क्रुद्ध होकर समुद्र से उठी घटाओं के समान बढ़ने लगा। उसके शरीर से ठोकर खाकर मेघ वैसे ही चूर्ण-चूर्ण हो जाते थे कि जैसे पर्वतों के शिखरों से टक्कर खाकर चूर्ण हो जाते हैं। तब मेघ के अन्दर से पीड़ित होकर बिजलियाँ चमकते हुए वज्र की भाँति निकलने लगती थीं। क्रोध से अग्नि की तरह उष्ण हो जाने से उसके ललाट से पसीना की बूँदें गिरने लगती थीं। वह मुख से अग्नि की ज्वाला वमन करता हुआ तेजस्वी हो रण में विचरने लगा। उसकी बाहुएँ तिरछे ऊपर आकाश में बढ़ने लगीं, वे भुजाएँ पाँच मुख वाले काले सर्प की भाँति लपलपाते जिह्वा की तरह ज्ञात होती थीं।।३१-४०।।

वह अपनी भुजाओं से धनुष-बाण, परिघ आदि अनेक प्रकार के दिव्य आयुधों को लिये हुए ऊँचे पर्वतों की भाँति आकाश को घेर कर अग्नि के समान चमकते पीले वस्त्रों को पहने संग्राम के मुहाने पर खड़ा हो गया। वह उस समय सन्ध्याकालीन रवि की किरणों से चमकते हुए दूसरे सुवर्ण पर्वत के समान शोभित हो रहा था। वह अपने वक्षस्थल से ठोकर मार कर पर्वत के शिखरों और वृक्षों को देवताओं के ऊपर ढहाने लगा तब देवता इन्द्र द्वारा

पक्ष कटे विशाल पवर्तों की तरह गिरने लगे और तीक्ष्ण शस्त्रों के प्रहार से कालनेमि ने देवताओं के शिरों और वक्षस्थलों को छिन्न-भिन्न करने लगा जिससे देवत समर में चलने में असमर्थ हो गये। कितने यक्षों के तथा गन्धर्वों के सेनापति विशाल सर्पों के साथ उसकी मुष्टिका के प्रहार से घायल होकर गिरने लगे। कालनेमि के भय से भयभीत और घबड़ाये हुए देवता यत्न करने पर भी उसके उत्तर में अस्त्र-शस्त्र चलाकर प्रतिकार न कर सके। उसने ऐरावत सहित इन्द्र को बाणों के पिंजड़े में बन्द कर दिया जिससे संग्रामभूमि में ऐरावत चलने में असमर्थ हो गया। उसने वरुण का पाश छीन लिया और उनको युद्ध रूप व्यापार से रहित कर दिया तब वे जलरहित मेघ की भाँति और जलरहित समुद्र की भाँति प्रभारहित हो खेद करने लगे। उसने कालरूपी परिघ से कुबेर को मारा तो विह्वल होकर लोकपालेश कुबेर ने युद्धरूपी क्रिया का परित्याग कर दिया। काल रूप दण्ड से सबके ऊपर प्रहार करने वाले यम को याम्यावस्था मं ला दिया अर्थात् मरणासन्न दशा को प्राप्त करा दिया तब वे दक्षिण दिशा को भाग गये।।४१-५०।।

कालनेमि लोकपालों को हटाकर स्वयं लोकपाल का कार्य करने लगा। वह चारों दिशाओं का लोकपाल बनने के लिये अपने शरीर को चार भागों में विभक्त कर दिया अर्थात चार रूप धारण कर लिया। वह राहु के दिखलाने पर आकाश में जाकर चन्द्रमा की लक्ष्मी का अपहरण कर उनके विशाल राज्य को भी हर लिया और चन्द्रमा तथा सूर्य को स्वर्ग द्वार से ढकेल दिया और स्वयं चन्द्रमा और सूर्य बनकर रात्रि तथा दिन रूप कर्म को करने लगा। देवताओं के मुख में अग्नि को छिपा देख उसने अग्नि को हर कर अपने मुख में रख लिया और अति वेग से वायु को भी जीतकर अपने वश में कर अनुचर बना लिया। वह स्वयं अपने पराक्रम से समुद्रों का रूप धारण कर साक्षात् समुद्र में मिलने वाली नदियों को बलपूर्वक खींचकर अपने वश में कर लिया अर्थात् अपने में मिला लिया। इस प्रकार स्वर्ग में उत्पन्न तथा पृथ्वी पर उत्पन्न जल को भी वश में कर लिया और पर्वतों से रक्षित पृथ्वी का स्वयं

सम्राट् बनकर पालन करने लगा। तब वह महान् प्रजापति एकराट् स्वयंभुव मनु के समान महान् राजा होकर शोभित होने लगा। सम्पूर्ण लोकों को भय देने वाला वह दैत्य सम्पूर्ण लोकों में व्याप्त हो गया। वह अपने एक ही शरीर से अनेक शरीर प्रकट कर लोकपाल, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और वायु रूप होकर युद्धभूमि में शोभायमान होने लगा। लोकों की सृष्टि और विनाश करने वाले ब्रह्मा के पद पर स्थित हो गया और दैत्य-गणों से ब्रह्मा की भाँति स्तुति कराने लगा।।५१-५९।।



अथ अष्ट चत्वारिंशोऽध्याय: ।।४८।।

वैशम्पायनजी बोले–उसके विपरीत कर्म करने से वेद, धर्म, क्षमा, सत्य, विष्णु की सेविका लक्ष्मी उसके वशीभूत न हुईं। वेदादि के न आने से वह क्रोधित होकर सोचने लगा कि ये सब विष्णु के अधीन रहने वाले हैं, अत: विष्णुपद की इच्छा कर विष्णु को मारने के लिये उनके समीप गया तो विष्णु को गरुड़ पर चढ़कर दैत्यों के विनाश के लिये शुभ गदा घुमाते हुए देखा। वे जल सहित मेघ की भाँति श्याम रूप से शोभते थे, उनके पीले वस्त्र बिजली के समान चमकते थे, वे सुवर्ण पंखों वाले कश्यप-पुत्र शिखाधारी गरुड़ पर सुन्दर ढंग से चढ़े हुए थे। दैत्यों के विनाश के लिये रण में युद्ध के ढङ्ग से स्थित क्षुभित न होने वाले विष्णु को देखकर क्षुभित हो कहने लगा। हमारे पूर्वज दानवर्षियों का यह शत्रु है और समुद्रवासी मधु और कैटभ का भी यही शत्रु है। यह मूर्ति धारण किया विष्णु किसी से भी जीता नहीं जाता, ऐसा लोग कहते हैं, इसने युद्ध में बहुत दानवों को मार डाला है। यह बड़ा निर्दय है, यह जब युद्ध में अस्त्र ग्रहण कर लेता है तो बालकों की तरह लज्जारहित हो जाता है, इसने दानवों की स्त्रियों के केश तक मुड़वा डाले हैं। इसके प्रताप से स्वर्गवासी देवता बैकुण्ठ प्राप्त करते हैं, यह सर्पों में शेषनाग

है, जल में रहने वाला यह ब्रह्मा का भी निर्माणकर्त्ता विधाता है। यह देवताओं का तो रक्षक है और हम दानवों के विनाश में स्थित रहने वाला है, इसके महान् क्रोध करने पर हिरण्यकशिपु मारा गया।।१-१०।।

इसी के पराक्रम का आश्रय कर देवता यज्ञ में उपस्थित होकर महर्षियों के द्वारा दिये गये तीन प्रकार के आज्यों को खाते हैं। देवताओं से द्वेष करने वाले दैत्यों के विनाश का यही कारण है, युद्ध में हम लोगों का तेज इसी के तेज में प्रविष्ट हो जाता है। यह देवताओं की विजय के लिये अपने जीवन की आशा छोड़ कर युद्ध करता है और सूर्य के समान तेजस्वी चक्र शत्रुओं पर चलाता है। यह दैत्यों के ऊपर आक्रमण करनेवाला दैत्यों का काल आज मेरे कालस्वरूप युद्ध मे उपस्थित होने पर अपने किये कर्मों का फल प्राप्त करेगा। भाग्यवश ही आज यह मेरे सामने पड़ गया है, हमारे बाणों से जर्जरित होकर अभी यह मुझे प्रणाम करेगा। मेरे पूवर्ज दानवों को भय देने वाले इस नारायण को आज भाग्यवश युद्ध में मार कर मैं परम सन्तोष को प्राप्त होऊँगा। शीघ्र ही नारायण के आश्रित देवताओं की भी वध करूँगा, यह विष्णु अनेक जातियों में उत्पन्न होकर भी दानवों को बाँध लेता है,यह खेद का विषय है। यह पहले आकाश की भाँति निराकार था, फिर यह आकार धारण कर पद्मनाभ कहलाने लगा और वहाँ समुद्र में मधु तथा कैटभ को अपनी जाँघ पर रख कर मार डाला। यह आधा मनुष्य और आधा सिंह का रूप धारण कर हमारे पिता हिरण्यकशिपु को अकेले ही मार डाला। अग्नि के समान देवताओं को उत्पन्न करने वाली अरणि रूप अदिति ने इसके शुभ-गर्भ को धारण किया था, जब कि बलि यज्ञ कर रहे थे उस समय इसने वामन रूप धारण कर उन्हें छला और अकेला ही तीन डगों में तीनों लोकों को नाप कर ले लिया।।११-२०।।

फिर इस समय यह तारकामय संग्राम में भी पहुँच गया है पर आज यह हमारे साथ संग्राम करके देवताओं सहित विनष्ट हो जायेगा। वह कालनेमि

इस तरह अनेक प्रकार से वाक्यों का विष्णु पर आक्षेप करता हुआ वाक्युद्ध की तरह शोभित होने लगा। तब इस प्रकार दानवेन्द्र के वाक्याक्षेप से भी भगवान् गदाधर क्रोध न किये, क्षमारूप बल से युक्त हँसते हुए विष्णु कालनेमि से बोले। तुम्हारे में घमण्ड रूप बल तो थोड़ा है पर तुम क्षमा का उल्लंघन कर इस प्रकार अपशब्द बोल रहे हो इसलिये तुम तो स्वयं अपने दोष से ही अपनी आत्मा का हनन कर चुके, फिर मृतकतुल्य तुम क्या युद्ध करोगे। तुम्हारे इस वाग्-बल को धिक्कार है, हमारी समझ से तुम अधम हो, जहाँ पुरुष नहीं होता वहाँ स्त्रियाँ ही गर्जना करती हैं। हमको यह दिखाई पड़ रहा है कि तुम भी पहले के दानवों के मार्ग से जाने वाले हो, क्योंकि प्रजापति की बाँधी हुई मर्यादा का उल्लंघन कर कौन ऐसा है कि जो सुखपूर्वक रह सके। आज ही देवताओं के अपकारकर्ता तुमको मैं नष्ट कर डालूँगा पश्चात् देवताओं को उनके अपने-अपने स्थानों पर स्थापित करूँगा। वैशम्पायनजी बोले-विष्णु के इस प्रकार के शब्दों को सुनकर कालनेमि क्रोध से हँसा और हाथों में आयुध ग्रहण कर लिया तथा अपने सौ भुजाओं को उठाकर सब अस्त्रों को ग्रहण करने वाले विष्णु को क्रोध से लाल-लाल आँखें करके वक्षस्थल में मारा। मय तार को आगे कर और भी दानव विष्णु को देखकर तीक्ष्ण आयुधों को ग्रहण कर मारने लगे तो भी उन अति बलवान् दैत्यों द्वारा आहत होने पर भी हरि युद्ध में कम्पनरहित पर्वत की तरह अचल खड़े ही रहे।।२१-३१।।

तब महासुर कालनेमि गरुड़ से सट कर अपन सम्पूर्ण बल से बड़ी भारी अग्नि की तरह जलती भयंकर गदा को बाहुओं से घुमा कर गरुड़ के ऊपर मारा, उसके इस कर्म को देख कर विष्णु विस्मय हो गया। जब गरुड़ के माथे पर गदा गिरी तब व्यथित शरीर पक्षिराज गरुड़ पैरों के बल भूमि पर गिर पड़े। तब गरुड़ को व्यथित और अपने को भी घायल देख कर क्रोधवेश से आँखों को लाल-लाल कर देवताओं के वैकुण्ठ स्वरूप विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र को हाथ में ले लिय और गरुड़ के साथ ही वे बड़े वगे से बढ़ने

लगे। भुजायें दशों दिशाओं में व्याप्त हो गईं। वे अपनी शरीर-वृद्धि से दिशाओं, विदिशाओं, आकाश तथा ब्रह्मलोक को परिपूर्ण करते हुए अपने पराक्रम से ऐसे मालूम पड़ते थे कि मानों तीनो लोकों को फिर नापने जा रहे हों। देवताओं की विजय के लिये आकाश में इस प्रकार विष्णु को बढ़ा देख कर गन्धर्वों के साथ महर्षि लोग मधुसूदन भगवान् की स्तुति करने लगे। उनका मुकुट मानो स्वर्ग में देवताओं की विजय का लेख लिखने लगा, उनका वस्त्र आकाश में मेघ माला की तरह ज्ञात होने लगा, उन्होंने अपने पाद-वक्षेप से मानों सम्पूर्ण पृथ्वी नाम लिया और बाहुओं से दिशाओं को आच्छादित कर दिया। शत्रुओं के विनाश में समर्थ सुदर्शन चक्र में हजारहों ओर लगे थे और प्रदीप्त अग्निशिखा की भाँति भयंकर और वीरों को देखने ही योग्य था।।३२-४०।।

उस भयंकर वज्रनाभ चक्र के नोक पर्यन्त तक सुवर्ण लगा हुआ था और वह दानवों के मेद, मज्जा, अस्थि और रुधिर से भींगा हुआ था। वह प्रहार करने में अद्वितीय था, उसकी गोलाई में सब ओर छुरे लगे थे जिससे वह माला धारण किये हुए की तरह ज्ञात होता था और वह विष्णु की इच्छानुसार कार्य करने वाला एवं रूप धारण करने वाला था। सम्पूर्ण देव-विद्वेषियों को भय प्रदान करने वाला वह चक्र स्वयं ब्रह्मा के द्वारा निर्मित था, उसके अन्दर महर्षियों का क्रोध प्रविष्ट था और युद्धकाल में गर्वीला हो जाने वाला था। उसके प्रहार करने पर सम्पूर्ण चराचर लोकमोह में पड़ जाता था और उसके छूटने पर समरभूमि में मांस खाने वाले जीव तृप्त हो जाते थे। उपमारहित कर्म करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी उस चक्र उठाकर गदाधर समर में क्रोध से लाल हो गये और अपने तेज से दानवों के तेज को हरते हुए श्रीधर ने कालनेमि की भुजायें चक्र से काट दीं और अग्नि की चिनगारियाँ छोड़ते हुए हँसने वाले सौ मुँहों सहित शिर को उसी चक्र से काटकर बलपूर्वक हरि ने उसका मानमर्दन कर दिया। वह कालनेमि शिर-बाहुओं के कट जाने

पर भी किंचित् कम्पित न हुआ, उसका धड़ शाखा रहित ठूँठे वृक्ष की भाँति खड़ा रहा। इसके बाद गरुड़ ने अपने पंखों को फैलाकर वायु के समना वेग कर अपने वक्षस्थल से ठोकर मारकर कालनेमि को गिरा दिया। उसका मुखरहित शरीर ठूँठे वृक्ष की भाँति आकाश का भ्रमण करता हुआ स्वर्ग को छोड़ भूमि पर गिर पड़ा।।४१-५०।।

कालनेमि के धराशायी हो जाने पर ऋषियों सहित देवतागण विष्णु के समीप आकर 'यह अच्छा किया' कहने और उनका पूजन करने लगे। दुष्ट पराक्रमी शेष दैत्य विष्णु के बाहुओं से व्याप्त समरभूमि में न चल सके। विष्णु ने किसी का केश, किसी का कण्ठ, किसी का मुँख और किसी का मध्य भाग कटि पकड़ कर घसीटा। पश्चात् वे दैत्य गदा और चक्र से जल कर प्राणरहित हो गये और उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग टूट कर भूमितल पर गिर पड़े। इस प्रकार सम्पूर्ण दैत्यों का विनाश कर तथा इन्द्र का प्रिय कर कृतकर्मा भगवान् गदाधर खड़े हो गये। तब इस तरह तारकामय संग्राम से निवृत्त होने पर अर्थात् दैत्यों के विनष्ट हो जाने पर लोकपितामह ब्रह्मा सम्पूर्ण देव, ऋषि, गन्धर्व तथा अप्सरा गणों के साथ आकर उनका पूजन करते हुए बोले। ब्रह्मा ने कहा हे देव! आपने देवताओं के हृदय में गड़े शूल को निकाल कर यह बड़ा भारी कार्य किया, इस कालनेमि दैत्य के वध से हम देवताओं को आपने संतुष्ट कर दिया। हे विष्णो! आपने जो इस कालनेमि का वध किया सो आप ही केवल एक ऐसे हैं कि ऐसे दानव का वध किये अन्य दूसरा कोई इस कार्य को नहीं कर सकता। यह देवताओं सहित चराचर लोक को पराजित कर ऋषियों को कष्ट पहुँचाया और हमारे प्रति भी गर्जना करता था।।५१-६०।।

मैं आपके इस उग्र कर्म से संतुष्ट हूँ, जो आपने इस काल के समान कालनेमि का निपातन किया। आपका कल्याण हो आप स्वर्ग को चलिये हम लोग भी चलते हैं, वहाँ पर ब्रह्मर्षि लोग आपकी प्रतीक्षा करते होंगे। हे श्रेष्ठ वक्ता, वहाँ पर हम और महर्षि लोग आपका विधिवत पूजन करेंगे और हे

अच्युत! दिव्य वाणियों से स्तुति करेंगे। हे वरदान देने वालों में श्रेष्ठ! आप देवता और दैत्यों में सबसे श्रेष्ठ वर-दाता हैं हम लोग आपको क्या वर देंगे। आपने ही तीनों लोकों के विशाल राज्य को कण्टकरहित किया है इसलिये अब यह राज्य महात्मा इन्द्र को दे देवें। इस प्रकार ब्रह्मा के वचनों को सुनकर अविनाशी ब्रह्म विष्णु ने इन्द्र सहित सब देवताओं के समक्ष शुभवाणी से बोले। विष्णु बोले कि जितने सब देवता यहाँ उपस्थित हैं वे सभी अपने श्रवण शक्ति को सावधान कर इन्द्रपुरस्सर हमारे वचनों को सुनें। इस समर में प्रमुख कालनेमि सहित पराक्रमी दानव मारे गये जो कि इन्द्र से भी बढ़ कर अधिक बलवान् थे। इनके महाविनाश में केवल दो दानव, एक विरोचन का पुत्र बलि और दूसरा महाग्रह राहु निकल भागा है। अब इन्द्र अपने पूर्व दिशा, वरुण पश्चिम, कुबेर उत्तर तथा यम दक्षिण दिशा का पालन करें और चन्द्रमा नक्षत्रों के साथ और योगों सहित अपने समय से आकाश में विचरण करें, सूर्य अयनों के साथ चतुर्मुख वर्ष का निश्चय करते हुए भ्रमण करें। अग्नि ब्राह्मणों के द्वारा आहूत आज्य भागों का यज्ञ सदस्यों से पूजित होकर अदृश्य रूप से भक्षण करें। देवता बलि और होम से, महर्षि स्वाध्याय से और पितर श्राद्ध से पहले की भाँति तृप्त हों। वायु अपने मर्यादा रूप मार्ग का आश्रय कर अनुसरण करते हुए चलें और तीन प्रकार के अग्नि प्रज्ज्वलित हों तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने स्वाभाविक गुणों से तीनों लोकों को बढ़ाते हुए अपने-अपने धर्मों में निरत हो जायँ। दीक्षा देने योग्य द्विजातियों से दीक्षित होकर दक्षिणा और उपवास व्रत के सहित यजमान सभी यज्ञों को करें। सूर्य चक्षु को, सोम रस को, और वायु प्राणियों में रहकर प्राण को अपने मंगलमय सुन्दर कर्मों से सुरक्षित करते हुए व्यवहार करें। सलिल से उत्पन्न पर्वत यथाक्रम से लोकमाता पृथ्वी का संरक्षण करें और नदियाँ बहकर सागर में मिलें। देवता लोग दैत्यों का भय छोड़ कर शान्ति ग्रहण करें, अब आप लोगों का कल्याण हो, मैं सनातन ब्रह्मलोक को जाऊँगा। संग्राम में इस प्रकार तीनों

लोक में नित्य वंचना करने वाले क्षुद्र दानवों का आप लोग विश्वास कभी न करेंगे। थोड़ी सी भी गलती देख कर ये दानव प्रहार कर बैठते हैं, इनका कुछ भी धर्न-कर्मादि निश्चित नहीं है ओर आप लोग सौम्य और सरल स्वभाव वाले विनम्र बुद्धि वाले हैं।।७१-८०।।

हे देवो तुम लोगों के साथ दुष्टभाव रखनेवाले, दुरात्मा, दुर्व्यवहार करने वाले दानवों को मैं मोहित करता रहूँगा। जब-जब दुर्धर्ष दानवों से भय उत्पन्न हो जाता है तब मैं शीघ्र ही आकर भय को दूर कर आप लोगों को अभय प्रदान करता हूँ। वैशम्पायनजी बोले वि सत्य पराक्रमी विष्णु इस प्रकार देवताओं से कहकर महायशस्वी ब्रह्मा के साथ ब्रह्मलोक को चले गये। दानवों का और विष्णु का इस प्रकार आश्चर्यकारक तारकामय नामक संग्राम हुआ। हे राजन्! जो आपने पूछा था सो मैंने कह दिया।।८१-८४।।



अथ एकोन पञ्चाशत्तमोऽध्याय: ।।४९।।

जनमेजयजी बोले–हे ब्रह्मन्! सलिल योनि ब्रह्मा के साथ बैकुण्ठ जाकर भगवान् विष्णु ने क्या किया दैत्यों के वध हो जाने पर देवताओं द्वारा सत्कृत विष्णु को किसलिये ब्रह्मा लिवा गये। भूतभावन् विष्णु ब्रह्मलोक के अन्तर्गत किस स्थान पर गये, किस योग की उपासना किये और किस नियम को धारण किये। उनके स्वर्ग में रहने पर किस तरह यह जगत् देव-दानवों द्वारा पूजित विष्णु के द्वारा दी गई विशाल लक्ष्मी को प्राप्त करता है और वे हरि-शयनी एकादशी को किस प्रकार और क्यों सो जाते हैं और मेघों के समाप्त होने पर विष्णु-प्रबोधिनी एकादशी को उठ जाते हैं तथा वे ब्रह्मलोक में स्थित रह कर किस प्रकार लौकिक जगत् के पालन-पोषणादि का भार वहन करते हैं। हे विप्रेन्द्र! मैं भगवान् के स्वर्ग में रहने पर उनके चरित्रों को

विस्तार से ज्ञात करना चाहता हूँ। वैशम्पायनजी बोले-हे राजन्! उन नारायण के आदि विचारों को सुनो। जबकि ब्रह्मा के साथ रहकर ब्रह्मलोक में आनन्द करते हैं और उनके द्वारा आभाषित कार्य तथा उनकी सूक्ष्म गति को हम हमसे सुनो जो कि देवताओं के द्वारा भी दुःख से जानने योग्य है। जिस प्रकार सूत से वस्त्र बना है उसी प्रकार लोकों से विष्णु का शरीर कल्पित है जैसे वस्त्र पृथ्वी से उत्पन्न कपास के सूत से बन कर उपस्थित है अतः वस्त्र मृत्तिकामय सिद्ध है वैसे ही लोक विष्णुमय है और लोकमय विष्णु हैं, विष्णुमय देवता और देवतामय स्वर्ग इस प्रकार सम्पूर्ण जो कुछ है वह सभी विष्णुमय है। बहुत से उनके आदि-अन्त की खोज करने वाले पारचिन्तक देवता भी उनका पार नहीं पाते, लोकों के पार उन परम् आत्मा माधव को कोई नहीं जानता।।१-१०।।

जब देवता उनके पार को ढूँढ़ने लगे तो उनकी इन्द्रियाँ अन्धकार में पड़ गई अर्थात् वे इन्द्रियातीत ज्ञात हुए। अब ब्रह्मलोक के प्राचीन इतिहास को सुनो। विष्णु ने ब्रह्मलोकमें जा ब्रह्मा के स्थान को देखा और वहाँ स्थित ऋषियों की मंत्रों से वन्दना की। वह प्रातः-काल में महर्षियों को अग्नि में हवन करते देख कर उन्होंने भी प्रातःकाल की क्रिया अर्थात् लोक धर्म का पालन करते हुए सन्ध्या-वन्दनादि कर्म किया और उन्होंने देखा कि महर्षियों के द्वारा हवन किये आज्य भाग का उनसे पृथक उनका शरीर दूसरा रूप धारण कर भोजन कर रहा है। तब वे अभिवादन करने योग्य ब्रह्मतेजधारी ऋषियों का पुनः अभिवादन कर सनातन ब्रह्मलोक की परिक्रमा किये। फिर उन्होंने देखा कि यज्ञों में ऊँचे-ऊँचे स्तम्भ ऋषियों द्वारा बनाये गये सैकड़ों शुभ चिह्नों से चिह्नित कर खड़े किये हैं। वे घी के धुएँ को सूँघ कर ब्राह्मणों के द्वारा उच्चारित वेद-मंत्रों को सुनते हुए और अपने दूसरे रूप का पूजन देखते हुए ब्रह्मलोक में विचरण करने लगे। उस समय सभा में स्थित ऋषि, देवता तथा सदस्य हाथों में पवित्र पहने और अर्ध्य लेकर उठाये हुए विष्णु से बोले कि। देवताओं के अन्दर जो कुछ भी सामर्थ्यादिक (जप-तपादिक) प्रत्यक्ष रूप से

स्थित है वह सभी परोक्ष रूप से जनार्दन विष्णु से प्राप्त है और जो कुछ यज्ञादि कर्म देवता किये हैं वह सभी कर्म मधुसूदन की कृपा से हुआ जानना चाहिये जो विद्वान् इस लोक को अग्नि और सोममय समझे हैं वे सोमाग्नि लोक को सनातन विष्णमय कहते हैं।।११-२०।।

जिस प्रकार क्षीर से दधि और दधि से घी निकलता है उसी प्रकार पंच महाभूतों के सम्मिलित होने पर विष्णु से यह लोक निर्मित होता। जिस प्रकार इन्द्रियों और पंचभूतों से आत्मा का सम्बन्ध है और वह प्रतिभाषित होता हुआ भी आत्मा देखने में नहीं आता उसी प्रकार देवता और वेद तथा लोकों के द्वारा सम्बन्धित ईश्वर प्रतिभाषित होता हुआ भी सदा प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता है। जैसे इस भूमि पर पंचभूतों और इन्द्रियों में परमात्मा की व्याप्ति है अर्थात् पंचभौतिक शरीर में स्थित इन्द्रियों का प्राणरूप आत्मा से सम्बन्ध है उसी प्रकार स्वर्ग में देवताओं के प्राण स्वयं विष्णु हैं। वे ही यज्ञकर्ताओं को यज्ञ का फल देने वाले पवित्र और परम आत्मा वाले तथा लोकों को स्वतंत्र करन वाले अपने ही द्वारा उसी प्रकार वर्णनीय हैं कि जैसे वाणी कि मधुरता वाणी द्वारा ही वर्णित की जाती है, मंत्र स्वयं अपने ही मंत्रार्थ से कहा जाता है। ऋषि बोले-हे महायशस्वी सुरों में उत्तम पद्मनाभ! वेद मंत्रों के द्वारा हमारे इस यज्ञ में होने वाले आतिथ्यसत्कार के स्वीकार करें। आप ही यज्ञ के पवित्र पात्र हैं और अपो चरणोदक से सबको पवित्र करने वाले हैं और आप ही वेद मंत्रों द्वारा बतलाये गये यज्ञों के प्रधान देव हैं ऐसा हम लोगों का निश्चित मत है। आपके युद्ध में चले जाने के बाद न यज्ञ ही हो सकता है न क्रियायें होती हैं क्यों कि विष्णु से रहित यज्ञकर्म का विधान नहीं है। दक्षिणा सहित यज्ञों का फल आप से ही उत्पन्न होता है, अतः आज हम लोगों से पूजित आप अपने को अर्थात् प्रत्यक्ष रूप से पूजा ग्रहण कीजिये। ऐसा ही होगा, यह कहकर भगवान् ने सब ऋषियों का सम्मान किया, यह देखकर लोकपितामह ब्रह्मा बड़े ही प्रसन्न हुए।।२१-२९।।



अथ पञ्चाशत्तमोऽध्याय: ।।५०।।

वैशम्पायनजी बोले–इस प्रकार ऋषियों से पूजित हरि उन्हें प्रसन्न कर और पद्मयोनि ब्रह्मा को प्रणाम कर प्रसन्नात्मा हो अपने प्राचीन सदन नारायणाश्रम में प्रविष्ट हो गये और वहाँ जाकर अपने आयुधों को रख दिये। वे समुद्र के समान विस्तृत और अविनाशी देवगणों से सेवित अपने भवन को देखे। वह आश्रम संवर्त्तक मेघ से और नक्षत्रस्थान से व्याप्त था। इस प्रकार सभी मूलभूत सूक्ष्म वस्तुएँ थीं पर माया से आच्छादित होने के कारण देवता और दानवों से अदृश्य थीं। वह आश्रम वायु, चन्द्रमा सूर्य का विषय नहीं था, वह विष्णु के तेज से प्रकाशित था। वे सहस्र शिर वाले विश्वरूप विशालकाय का परित्याग कर जटाभार अर्थात् वहाँ के स्थानीय कर्म के वासना-जाल को धारण कर शयन करने का उद्योग करने लगे। तब लोकों के अन्तकाल का ज्ञान रखने वाली नयनशालिनी कालरूपिणी काली निद्रा उन महात्मा की सेवा करने लगी। वे व्रतियों में श्रेष्ठ हरि उक्त एकार्णव व्रत को धारण कर समुद्र तथा मेघ समान शीतल दिव्य शयनागार में सो गये। तब उन सोते हुए महात्मा विष्णु की ऋषिगणों के साथ देवता सेवा करने लगे।।१-१०।।

सोते हुए विष्णु के नाभि से कमल निकल कर शोभित होने लगा, वह कमल ब्रह्मा का आसनभूत सूर्य के समान तेजस्वी और हजार पत्र दलों से आच्छादित अभी कुमारावस्था से विभूषित अर्थात् ब्रह्माण्डरूप कोंढ़ी था वे महामुनि सोते ही सोते ब्रह्मसूत्र को हाथों में धारण कर लोकों के काल का उलट-फेर किया करते हैं। उनके खुले हए मुख के श्वास से प्रजाओं की पङ्क्तियाँ ऊपर उठती हैं और ऊपर से नीचे गिरती हैं। ब्रह्मा के द्वारा रची गई प्रजाओं का चार भागों में विभाजन होता है, यज्ञ के योग्य ब्राह्मण तथा पृथ्वीपालन के योग्य क्षत्रिय, कृषि तथा वाणिज्य के योग्य वैश्य सेवा कर्म के लिये शूद्रों का विभाजन भी ब्रह्मा ही किये हैं तब वे वेद के द्वारा कथित कर्मों

से अपने-अपने गति को प्राप्त किये हैं। विष्णु व निद्रामय योग में प्रविष्ट होने पर माया से ढके हुए उनके रूप को ब्रह्मा और महर्षि कोई भी नहीं जानते। ब्रह्मा के सहित ब्रह्मर्षि भी वे विष्णु कब और कहाँ किस प्रकार के आसन पर व्यवहारों का त्याग कर सोये यह बात नहीं जानते। वास्तविक में यहाँ कौन सोता है, कौन जागता है, कौन शक्तिमान् है, भोगवान् है, कौन तेजस्वी है और श्रीकृष्ण की आत्मा कौन है यह सब ब्रह्मादि देव और ऋषि नहीं जान पाते। देवता लोग श्रुतियों की युक्तियों के द्वारा विचार कर जानते हैं, पर उनके ज्ञान-कर्म ढूँढ़कर भी नहीं जान पाते। प्राचीन ऋषि पुराणों में निर्दिष्ट गाथाओं के द्वारा उनके चरित्र को जानकर कहते हैं। देवताओं से भी इनका चरित्र पुराना सुनाई देता है, महापुराण आदिकों से यह ज्ञात होता है कि इनसे पुराना कोई नहीं है।।११-२०।।

क्योंकि देव-देव विष्णु के प्रभाव से उत्पन्न चरित्रों से वैदिक और लौकिक दोनों श्रुतियाँ भरी हैं। वे लोकभावन मधुसूदन लोकों की रचना के समय में जागते हैं और जब इस पृथ्वी पर दानवों का अधिक आतंक फैल जाता है तब अवतार ग्रहण करते हैं और लोकों की सृष्टि के बाद आषाढ़ी एकादशी से लेकर कार्तिक एकादशी तक जब सोते हैं तब भी देवता इनको नहीं देख सकते। वही वेद, यज्ञ, वेदाङ्ग तथा आदि सब कुछ वही हैं और वही पुरुषोत्तम यज्ञ की गति भी हैं, यह वेद-शास्त्रों के द्वारा सिद्ध होता है। जब चार महीने सोते हैं तो वैदिक मन्त्र के द्वारा पवित्र यज्ञ नहीं होते हैं, शरद् काल में यज्ञों को प्रवृत्त होने के लिये जागते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक वर्ष का चक्र वैष्णव कर्म कराते हुए इन्द्र चलाते हैं। उन्हीं के घोर अन्धकार से व्याप्त निद्रारूपिणी माया इस संसार में स्थित है जो अकस्मात् द्वेष करने वाली राजाओं को कालरात्रि की तरह भयंकर है। उसी के तम रूप शरीर के द्वारा दिवस का विनाश होकर रात्रि होती है, वही इस भूमि पर प्राणधारी जीवों के आयु का आधा भग हर लेती है। समुद्र में डूबते हुए की तरह निद्रा से वशीभूत जम्हआई लेता हुआ ऐसा कोई नहीं दिखाई पड़ता कि जो इसके वेग को सह सके। यह

लौकिक निद्रा अन्न की उष्णता और परिश्रम करने के बाद थकावट से उत्पन्न होती है जिसका सभी को अनुभव है।।२१-३०।।

और यह प्राणियों के सो लेने पर नष्टप्राय हो जाती है तथा मृत्यु के समय प्राणियों को एकाएक ग्रस लेती है। इस निद्रा को नारायण के सिवा कोइ ऐसा देवता नहीं है कि जो धारण कर ले, यह विष्णु के शरीर से उत्पन्न हुई है और सबका विनाश करने वाले काल की सहचरी है। वही यह कमल लोचन निद्रा विष्णु की आँख में आने के समय युगान्त उपस्थित होने पर अल्प काल ही में लोकों को मोहित कर ग्रस लेती है। उसी प्रकार वे विष्णु इस निद्रा को लोकों का हित करने के लिये अपनी श्याम तथा सूक्ष्म शरीर से अपना लेते हैं जैसे कि पति द्वारा पतिव्रता स्त्री अपनाई जाती है। इसी प्रकार विष्णु इस जगत् को मोहते हुए उस निद्रा से व्याप्त होकर अपने नारायण आश्रम में सोते हैं। उन विष्णु को जब इस प्रकार शयन करते कितने ही हजार वर्ष बीत गये अर्थात् सत्ययुग त्रेतादि युग कई बार बीते तो एक बार द्वापर युग के अन्त में लोकों को दुःख समझ कर महर्षियों द्वारा स्तुति करने पर महातेजस्वी विष्णु उठे। ऋषियों ने स्तुति करते हुए कहा था कि–हे शरणदाता! आप पहनी हुई बासी माला की तरह निद्रा का त्याग करिये। ये ब्रह्मा के सहित देवता आपके दर्शन की आकांक्षा से आपके यहाँ आये हैं। हे हृषिकेश! संशितव्रती ब्रह्मवादी विद्वान्, ऋषि वेद-मन्त्रों से स्तुति कर आपके यश को बढ़ा रहे हैं। हे देवताओं की प्राणभूत आत्मा तथा प्राणियों की आत्मा को ज्ञान देने वाले विष्णो! आप पृथ्वी, आकाश, अग्नि, जल तथा पवन के अधिष्ठाता हैं, अतः हम लोगों की शुभ वाणी को सुनिये।।३१-४०।।

मुनि-मण्डलों के साथ ये सप्तर्षि वेद-मन्त्रों से सस्वर वाणी द्वारा एक साथ होकर आपकी स्तुति कर रह हैं। हे शतपत्राक्ष पद्मनाभ महातेजस्विन्! देवताओं के कार्य में कुछ विघ्न उपस्थित हो गया है अतः उनके कार्य की प्रतिष्ठा के लिये आप उठिये। वैशम्पायनजी बोले–इस प्रकार स्तुतियों को सुनकर वे विस्तृत जल को संक्षिप्त कर तथा अन्धकार समूह को चीरते हुए

परम शोभा से प्रकाशित होते हुए हृषिकेश उठे और उठ कर देखा कि ब्रह्मा के सहित क्षुभित सब देवता जगत् के कल्याण के लिये एकत्र होकर आये हैं। जिनके नेत्र निद्रा से रहित हो गये हैं ऐसे हरि देवताओं से धर्मयुक्त सारगर्भित वाणी से बोले। श्री भगवान् बोले–हे देवताओ! किससे झगड़ा खड़ा हुआ और किससे भय उत्पन्न हो गया है, किसका कौन-सा कार्य मुझे करना है आप लोग बतलाइये, मेरे में कौन-सा कार्य करने की शक्ति नहीं है? आर्थात् सब कुछ करने में मैं समर्थ हूँ। क्या दानवों के द्वारा लोक में उपद्रवं बढ़ गया है जिससे प्राणियों को कष्ट उत्पन्न हो गया है? मैं शींघ्र ही जानना चाहता हूँ मैं अपनी उत्तम निद्रा का त्याग कर आप ब्रह्मवादियों के बीच स्थित हूँ, बताइये आप लोगों के कल्याण के लिये हमको क्या करना है।।४१-४८।।



अथ एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५१।।

वैशम्पायनजी बोले–विष्णु के वचनों को सुन कर लोकपितामह ब्रह्मा देवताओं के हित के लिये परम उत्तम वचन बोले। हे असुरान्तक विष्णो! जिनको आप स्वयं संग्राम में देवसेना का सेनापति बनकर अभय प्रदान करते हैं तो भला आपके रहते देवताओं को कौन भय उपस्थित हो सकता है। आप जैसे देवेश असुरों को विनष्ट कर देने पर इन्द्र की विजय होती है तब मनुष्यों के धर्म में प्रयत्न रहने पर किससे भय हो सकता है। विषयवासना रूप ज्वर से रहित मनुष्यों के धर्म में निरत रहने पर तो असमय में मृत्यु भी उनकी ओर दृष्टि उठाकर नहीं देख सकती है और की तो बात ही दूर है। इस समय राजा लोग प्रजा से कर रूप छठवाँ भाग लेकर उसका उपभोग करते हुए प्रजा का पालन करते हैं और आपस में किसीको किसी का भय नहीं है। प्रजाओं का कल्याण करने वाले राजा कर देनेवालों से प्रशंसित होते हुए यथोचित कर ग्रहण कर अपना कोश भर रहे हैं और दोष से दूषित प्रजा को उल्टा दण्ड देकर क्षमा करने वाले राजा चारों वर्णों की रक्षा करते हुए विस्तृत देश खण्डों

का पालन कर रहे हैं और उपद्रव रहित राजाओं की मन्त्रिगण पूजा कर रहे हैं, वे राजा भी चतुरङ्गिणी सेनाओं से रक्षित होते हुए शास्त्रोत्तम नीतियों के अनुसार चल रहे हैं। सब राजे धनुर्विद्या में पारंगत और वेद-विहित धर्म में निष्ठा रखने वाले हैं और यथा समय बहुत दक्षिणा वाली यज्ञों को भी करते हैं। वे वेदों को महर्षियों से पढ़कर और दीक्षा ग्रहण कर श्राद्धपूर्वक सैकड़ों यज्ञों से ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुए सब देवताओं सहित ब्रह्मा को तृप्त करते हैं।।१-१०।।

इन राजाओं को कुछ भी धर्म अविदित नहीं है वेद विहित, लोक विहित और शास्त्र विहित तीनों प्रकार के धर्मों का ज्ञान है। वे महर्षियों की भाँति भूत काल और भविष्य काल के ज्ञाता हैं, वे राजे अपने सत्कर्मों के द्वारा इस द्वापर में सत्ययुग को ला देना चाहते हैं। उनके सत्कर्मों के ही प्रभाव से इन्द्र को शुभ कल्याण कारिणी वर्षा करनी पड़ती है और वायु को उचित रीति से बहना पड़ता है और दिशायें धूल रहित निर्मल रहा करती हैं। इस प्रकार पृथ्वी उत्पात रहित है, आकाश मण्डल में सभी ग्रह और नक्षत्र सहित चन्द्रमा यथा योग से भ्रमण कर रहे हैं। सूर्य अनुलोम (ठीक रीति) से उत्तरायण का आचरण करते हैं और अग्नि विविध प्रकार सुगन्धित हवियों से तृप्त हो रहे हैं। इस प्रकार सम्यक रीति का बर्ताव होने से और अनेक प्रकार के यज्ञों के होते रहने से सम्पूर्ण पृथ्वी प्रसन्न है तो राजाओं को काल का भय कैसे उत्पन्न हो सकता है। उज्ज्वल कीर्ति वाले बलवान् राजे एक दूसरे के वशवती होकर प्रेम से आपस में रहते हुए अपनी सेना के भार से वसुधा तल को पीड़ित कर रहे हैं बस विशेष बात एक यही है। सो यह सेना के भार से थकी राजाओं से पीड़ित पृथ्वी नौका की तरह उपस्थित विनाश वाली आपके समक्ष उपस्थित है। जिस प्रकार नौका में जड़े लोहों के बड़े-बड़े काँटे ढीले पड़ जाते हैं तो नाव में पानी भर जाने से वह डूब जाती है उसी प्रकार प्रलय काल की तरह पर्वत रूप कील सेनाओं के द्वारा बार-बार पृथ्वी के कँपाये जाने पर टीले पड़ गये हैं और उनके निकले जल रूप श्रम कण को यह पृथ्वी बार-बार धारण कर

रही है। क्षत्रियों के शवीर और तेज तथा बल से एवं राज्यों के विस्तार से यह वसुन्धरा थकी-थकी सी हो गई है।।११-२०।।

नगर-नगर में राजे करोड़ों-करोड़ों सेनाओं के साथ रह रहे हैं और एक-एक राज्य में लाखों ग्राम अधिक संख्या में बसे हुए हैं। तब राजों के इस प्रकार की हजारों सेनाओं से अर्थात् अनेक बली क्षत्रियों के बल से और ग्राम तथा राज्य समूहों के भार से पृथ्वी अच्छी तरह श्वास नहीं लेने पाती है। सो यह पृथ्वी व्याकुल हो रोगरहित काल को आगे कर हमारे धाम में आई हे विष्णो! आप ही इसके दुःख को दूर करने में समर्थ हैं। यह मनुष्यों की कर्म भूमि व्यथा को प्राप्त हो गई है अतः आप ऐसा कार्य करें कि यह निरन्तर रहने वाली पृथ्वी नष्ट न हो। हे मधुसूदन! इसके दुःखी होने से महान् दोष उत्पन्न हो जायेगा, लोकों को धर्म क्रियायें नष्ट हो जायँगी जिससे सारा संसार दुःखी हो जायेगा। यह बात स्पष्ट है कि अधिक राजाओं के भार से पृथ्वी अशान्त हो गयी और अपने स्वाभाविक क्षमा का त्याग कर यह अचला विचलित होने लगी है। इसके दुःख को मैं सुन चुका हूँ और आप भी सुन लिये इसलिये इसके भार को उतारने के लिये मैं आपके साथ मंत्रणा करूँगा। इस समय सब राजे सन्मार्ग का अनुसरण करते हुए राज्यों की वृद्धि कर रहे हैं और तीनों वर्ण बाह्मणों के अनुयायी हैं। चारों वर्ण अपने-अपने धर्म में तत्पर हैं सभी सत्यभाषी हैं सभी ब्राह्मण वेद परायण हैं और उसके नीचे के तीनों वर्ण ब्राह्मण के अनुसार चलने वाले हैं। इस प्रकार धर्म के अनुसार सभी मनुष्य जगत् में बर्ताव कर रहे हैं तो इस हालत में ऐसा विचार करना है कि धर्म का भी वध न हो और पृथ्वी का भार भी कम हो जाय। सज्जनों की गति और धर्म की अच्छी साधन रूप पृथ्वी का भार उतारने के लिये हमारे विचार से राजाओं का वध करना चाहिए तो हे महाभाग! आपके साथ मंत्रणा करने के लिये पृथ्वी को आगे कर देवताओं सहित मैं मेरु पर्वत के शिखर पर चल रहा हूँ आप वहीं चलें। हे राजेन्द्र! इस प्रकार ब्रह्मा कहकर पृथ्वी के साथ चुप हो गये।।२१-३३।।

❖❋❖

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५२।।

वैशम्पायनजी बोले कि–विष्णु मेघ जैसे गम्भीर वाणी में बहुत अच्छा कहकर देवताओं के साथ मेघवत् श्याम वर्ण वाले पर्वताकर मेघ की तरह चलने लगे। उदर पर्यन्त जटा मण्डल को धारण किये उनका मुख काली घटाओं के मण्डल के बीच चन्द्रमा की तरह शोभित हो रहा था वे मुक्तामणि को धारण किये थे जिससे विद्युत की भाँति चमक निकल रही थी इस प्रकार शोभा सम्पन्न श्रीहरि ज्ञात होते थे। उनके वक्षस्थल पर उठे रोमों की रेखायें झलकती थीं दोनों स्तन मुखों के द्वारा पूजित श्रीवत्स शोभित हो रहा था। वे लोकों के अविनाशी गुरु पीले वस्त्र धारण किये संध्याकलीन मेघ की भाँति पीतिमा-युक्त पर्वत की तरह ज्ञात होते थे। जिनके पीछे ब्रह्मा हैं ऐसे हरि जब गरुड़ पर चढ़कर चलने लगे तो उनके पीछे-पीछे सभी देवता गये उस समय देवताओं के नेत्र जाते हुए विष्णु को देखने में लगे थे। वे देवताओं सहित रत्न पर्वत पर शीघ्र ही पहुँच गये, वहाँ जाकर देवताओं ने उस इच्छानुसार रूप धारण करने वाली सभा को देखा वह मेरु के शिखर पर विस्तृत रूप से फैली हुई सूर्य के समान तेजस्विनी थी, वह सुवर्ण के खम्भों से सुशोभित थी उसका मुख्य द्वार रत्नों से खचित था और चारों ओर बन्दनवार बँधे थे। वह अपने मन के संकल्प द्वारा विचित्र रचनाओं से युक्त थी और सैकड़ों विमान उसमें उपस्थित थे, वह इच्छानुसार रत्नों से विभूषित थी तथा वह रत्नों के नालों की खिड़कियों से युक्त थी और इच्छानुसार चलने वाली भी थी। उसमें तरह-तरह के बाजे बज रहे थे और सब ऋतुओं के फूल लगे थे तथा पुष्पों से तीव्र गन्ध निकल रहा था वह सभा देवताओं की माया को धारण करने वाली एवं दिव्य, मनोहर थी वह विश्वकर्मा के द्वारा रची गयी थी। ब्रह्मा की आज्ञा के अनुसार सभी देवता यथा योग्य स्थान पर प्रसन्नतापूर्वक शुभ सभा में बैठ गये।१-१०।।

वे यथा उक्त विमानों पर, मंचों पर, काष्टपीठ चौकियों एवं पीढ़ों, कम्बलों और कुशासनों पर बैठ गये, तत्पश्चात् ब्रह्मा की आज्ञा पाकर प्रभञ्जन

नाम का वायु सबको 'चुप रहिये शब्द न कीजिये' इस प्रकार की सूचना सभा में घूम कर दे दिया। जब देवताओं की सभा में सन्नाटा छा गया तब धरणी दुःख से करुणा भरे वचनों को बोलने लगी। धरणी बोली-हे देव! यह निश्चय है कि तुम्हीं सम्पूर्ण जगत् को धारण करते हो इसलिये मैं भी तुम्हारे द्वारा धारण करने योग्य हूँ, तुम सब प्राणियों को तथा सब लोकों को धारण कर उनका पालन भी करते हो। जिन-जिन पदार्थों को तुम अपने तेज बल से धारण करते हो उन-उन पदार्थों को मैं प्रयत्न कर तुम्हारे प्रसाद से ही धारण करती हूँ। जिनको तुम धारण करते हो उन्हीं को बस मैं धारण करती हूँ। जिनको तुम धारण नहीं करते उनको मैं भी धारण नहीं करती हूँ और ऐसा कोई जीव नहीं कि जिसे तुम धारण न करते हो। हे देव! तुम्हीं जगत् के हित की कामना से प्रत्येक युग में हमारे भार को उतारा करते हो। इस समय तुम्हारे द्वारा उत्पन्न किये राजाओं की सेना तथा उनके बार से आक्रान्त होकर मैं रसातल को जा रही हूँ अतः आपके शरण में आई हूँ हे सुरश्रेष्ठ! मेरी रक्षा कीजिये। मैं जब-जब दुरात्मा दानवों और राक्षसों के द्वारा पीड़ित होती हूँ तब-तब तुम्हारे ही शरण में आया करती हूँ यह सनातन से चला आ रहा है। फिर मुझे जब तक भय उत्पन्न नहीं होता तब तक मैं आप धुर (भार) को धारण करने वाले की शरण में नहीं आती हूँ और जब शरण में आ जाती हूँ तब आप मेरी रक्षा करते हैं यह अपने मन से सैकड़ों बार देखी हूँ।।११-२०।।

जगत् के व्यवहार के पहले ब्रह्मा ने मुझे अच्छी तरह देखा था कि मैं मृत्तिका मय मधु और कैटभ से बनी हुई हूँ। और ये दोनों आप महात्मा विष्णु के कान की खोटों से काष्ठ की तरह अचेतन उत्पन्न हुए थे, जबकि आप महासागर में स्थित हो घोर निद्रा में सोये हुए थे। तब इन दोनों के भीतर प्राण-वायु का संचार कर स्वयं ब्रह्मा ने इनको उठाया था तब ये बढ़कर स्वर्ग को आच्छादित करने लगे थे। जब वे दोनों प्राण-वायु को पा साँस लेने लगे तो ब्रह्मा ने धीरे से उनके शरीर का स्पर्श किया तो एक कठिन ज्ञात हुआ और दूसरा कोमल तो जो कोमल था उसका नाम मधु और जो कठोर था उसका

कैटभ रखा। फिर मधु-कैटभ नामक दुर्जय दैत्य बल के घमण्ड से उन्मत्त हो युद्ध की इच्छा से सम्पूर्ण सागर को हीड़ने लगे। तब इस प्रकार दोनों को युद्ध की इच्छा से अपने पास आया देखकर ब्रह्मा सागर के जल-राशि में एक ओर छिप गये। वे चतुर्मुख ब्रह्मा भगवान् विष्णु की नाभि से निकले कमल के मध्य में छिपकर रहना ही अच्छा समझे। ब्रह्मा और विष्णु बहुत वर्ष पर्यन्त जल के गर्भ में सोते ही रहे, हिले-डुले नहीं। दीर्घकाल के बाद मधु-कैटभ दोनों वहाँ पहुँच गये जहां कि ब्रह्मा स्थित थे।।२१-३०।।

तब इन दुर्धर्ष भयंकर दानवों को आया देख कर ब्रह्मा कमल नाल से मार कर आप विष्णु को जगाने लगे तब सोने से महातेजस्वी विष्णु आप शीघ्र ही उठ बैठे। तब तीनों लोकों के जलमय राशि समुद्र में विष्णु का और मधु-कैटभ का भयंकर संग्राम होने लगा। इस प्रकार का तुमुल युद्ध हजारों वर्षों तक होता रहा तब भी वे दैत्य भगवान् विष्णु को न थका सके। तब दीर्घकाल से युद्ध करते हुए युद्धदुर्मद दानव प्रसन्न होकर विष्णु से बोले कि आपके किये गये युद्ध से हम लोग प्रसन्न हैं, आप जैसे तेजस्वी परम-पुरुष से हम लोगों का वध होना प्रशंसनीय है, अतः आप हम लोगों का वहाँ वध करें जहाँ कि पृथ्वी जल में न डूबी हो। हे सुरोत्तम! आपके द्वारा मर कर हम लोग आपके पुत्र होंगे क्यों कि ब्रह्मा ने कहा था कि तुम लोगों को जो युद्ध में मारेगा उसके तुम लोग पुत्र होओगे। तब विष्णु ने दोनों बाहुओं से पकड़ अपनी जाँघ पर उनका मर्दन कर मार डाले, इस प्रकार मधु-कैटभ का निधन हो गया। तब वे जल में तैरते हुए आपस में सट गये और जल की लहरों से टकरा कर उनके शरीर से मेद निकलने लगा और उनके मेद से जल व्याप्त हो गया तब वे पापरहित हो अन्तर्धान हो गये फिर आप भगवान् नारायण प्रजाओं की रचना करने लगे। इस प्रकार दैत्यों के मेदों से मैं बनी इसीलिये लोग हमको मेदिनी कहते हैं और मैं आप पद्मनाभ के प्रसाद से निरन्तर जगत् को धारण करने वाली जगती कहलाई।।३१-४०।।

पहले मार्कण्डेय मुनि के देखते-देखते आपने वराह रूप धारण कर अपने दाढ़ों से मुझे जल के बीच से निकाला। फिर आपने ही वामन रूप

धारण कर बलि के पास से मुझे नाप कर ले लिया था। इस समय भी मैं दुःखी होती हुई गदाधर भगवान् जगत् के नाथ की शरण में अनाथ होकर आई हूँ। जैसे सुवर्ण का गुरु अग्नि है, किरणों के अथवा इन्द्रियों के गुरु सूर्य हैं और नक्षत्रों के गुरु चन्द्रमा हैं वैसी मेरे गुरु तो आप नारायण हैं। जो यह स्थावर-जङ्गम जगत् है उसको मैं धारण करती और हूँ मेरे धारण किये जगत् को मेरे सहित आप गदाधर भगवान् धारण करते हैं। महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुरामने मेरे भार को उतारने की इच्छा से क्रोध कर इक्कीस बार मुझे क्षत्रियों से विहीन कर दिया था। मैं वही पृथ्वी हूँ कि जिसका परशुरामजी ने राजाओं के रक्त से तर्पण किया और मुझ पृथ्वी को उन भार्गव ने वेदी पर रख कर अपने पिता के श्राद्ध में कश्यप ऋषि को दक्षिणा में दे दी थी। उस समय में राजाओं के रक्त, मांस, मेद और उनकी अस्थियों से दुर्गन्धित रजस्वला युवती की भाँति कश्यप ऋषि के पास गई। उस अवस्था में देख ब्रह्मर्षि ने मुझसे कहा हे पृथ्वी! तुम वीर पत्नीव्रत को धारण करने वाली होकर भी क्यों मुँह फेर कर खेद कर रही हो। तब मैं उन लोकभावन कश्यपजी को बतलाई कि महात्मा परशुराम ने मेरे पतियों को मार डाला है।।५१-५०।।

सो मैं इस समय हथियार धारण करने वाले पराक्रमी क्षत्रियों से विहीन विधवा की तरह हो शून्य नगरों को धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। इसलिये हे भगवान्! हमको अपने समान ऐसा पति दीजिये कि जो नगर-ग्रामों सहित मुझ सागरमालिनी की रक्षा कर सके। तो मेरे वचनों को सुनकर वे कश्यप बहुत अच्छा कहकर मुझे मानवेन्द्र बुद्धिमान मनु को दे दिये। सो मैं क्रम से मनु से उत्पन्न इक्ष्वाकु कुल के एक राजा के बाद दूसरे राजा के पास आती गई। इस प्रकार मैं बुद्धिमान् मानवेन्द्र मनु को दी गई हूँ, हजारों राजाओं ने महर्षियों की सम्मति से मेरा भोग किया है। और भी बहुत से क्षत्रिय मुझको जीतकर स्वर्ग चले गये और काल के वश उनका पार्थिव शरीर जलकर हमारी मिट्टी मे मिल गया। हमारे ही कारण लोक में अनेकों युद्ध हुए जिसमें पीछे न हटने वाले बलवान् क्षत्रियों ने अपने प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध किया और कर रहे हैं। इस प्रकार आपके अंशभूत राजाओं से आप ही के नियमों

द्वारा परिपालित होती चली आ रही हूँ, इस समय भार भूत राजाओं का रण में वध कर मेरे भार को उतार संसार का कल्याण कीजिये। क्योंकि मैं भार से शिथिल हो चुकी हूँ, यदि मेरे दुःख कहने पर आपको दया आती हो तो स्वयं श्रीमान् चक्रधर आप मुझे अभय प्रदान करें। जो यह मैं भार से दुःखी होकर आपकी शरण आई हूँ ऐसी मुझ शरणार्थिनी की यदि भार दूर करना हो तो आप विष्णु ही मुझसे कहें।।५१-६०।।



अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५३।।

वैशम्पायनजी बोले कि–इस प्रकार पृथ्वी के वचनों को सुन सभी देवता पृथ्वी के भार उतारने का विचार निश्चित कर ब्रह्मा से बोले हे भगवन्! आप लोकों के निर्माणकर्ता तथा लोकों के ईश्वर हैं अतः इस पृथ्वी का भार हरण कीजिये। इसमें इन्द्र, यम, वरुण तथा कुबेर और नारायण के लिये जो कर्तव्य हो। अथवा चन्द्रमा, अग्नि, वायु, आदित्य, वसु तथा लोक भावन रुद्रों के लिये जो कार्य हो। और देव-वैद्यों अश्विनी कुमारों, साध्य देवताओं, बृहस्पति, शुक्र, काल तथा कलि। और शंकरजी, गुह्य, यज्ञ, राक्षस, गन्धर्व चारण, महासर्प।। पक्षी, पर्वत, बड़ी लहरों वाले समुद्रों और गंगा आदि दिव्य नदियों को जो कार्य करना हो हे सुरेश्वर! उसके लिये शीघ्र सूचित कर दें कि वे अपने-अपने बलों का किस प्रकार प्रयोग करें। यदि पृथ्वी का कार्य करना है तो पार्थिव शरीर धारण करने पर ही हो सकता है। हे पितामह! हम सब देवता किस प्रकार अंशावतार धारण करें, जो अन्तरिक्ष गत देवता हैं वे पृथ्वी में जाकर राजा हों। और यज्ञ कने वाले ब्राह्मणों तथा राजाओं के कुल में जगती तल पर जाकर अयोनिज शरीर धारण करें। तब एक ही कार्य करने वाले देवताओं का यह निश्चित मत सुनकर देवताओं के बीच ब्रह्मा बोले कि मुझे आप लोगों का निश्चय किया हुआ मत अच्छा लग रहा है ठीक है आप लोग अपने ही समान पराक्रमशाली अवतार अपने अंशों से पृथ्वी पर ग्रहण करें। सभी श्रेष्ठ देवता अपने तेज से अवतरति पृथ्वी पर त्रिभुवन की लक्ष्मी

प्राप्त कर भोग करते हुए पृथ्वी का, लोकों का पालन करें। मैंने पहले ही पृथ्वी की घबराहट को दूर करने के लिये जिस प्रकार भरत वंश की स्थापना की है उसकी कथा आप लोग सुनिये। एक बार पहले मैं पूर्वी समुद्र के पश्चिम तट पर महात्मा कश्यप के साथ बैठकर लोक और वेदों के अनुसार कथा कह रहा था तब इस प्रकार पुराण-इतिहास की अनेकों कथाओं के कहते रहने पर समुद्र मेघ और वायु से युक्त हो गंगा के साथ बड़े वेग से मेरे समीप शीघ्र ही आ गया। वह अपने ऊँची-नीची विषम लहरों से अत्यन्त लहराता जलचर जन्तुओं से आच्छादि चल रूप वस्त्र पहने था। और शंख एवं मोतियों की मालायें धारण किये प्रबाल (मूगों) के आभूषणों से आभूषित था तथा पूर्णमासी के चन्द्रमा को देख पूर्णरूपेण चंचल बादलों जैसा गम्भीर गर्जता हुआ वह अपने किनारों की सीमा लाँघ कर मेरा पराभाव करते हुए अपने खारे जल हिलोरों से मुझे भिगाने लगा।।१-२०।।

तब मैंने इस प्रकार समीप में उपस्थित समुद्र की चंच[illegible]ने करने के लिये। क्रोध भरी वाणी से कहा शान्त हो जा। मेरे शान्त हो[illegible] नाम से कहते ही वह अपने तरङ्ग समूहों को समेट कर राजाओं जैसा तेजस्विभाजर धारण कर खड़ा हो गया। फिर मैंने गंगा सहित समुद्र को शाप दिया, वहस्थि[illegible] शाप आप लोगों के हित [illegible] कारण से युक्त था। हे समुद्र! जो तुम राजा के तुल्य शरीर धारण कर मेरे सामने स्थित हो तो जाओ तुम राजा ही होओगे। वहाँ भी तुम अपने तेज को धारण कर सहज ही लीला करते हुए राजाओं के भी राजा होकर भरत कुल को बढ़ाने वाले होओगे। जो मेरे 'शान्त हो' ऐसा कहने पर तनु (शरीर) धारण कर लिये इसलिए यश से सुन्दर तनु धारण करने वाले तुम लोक में 'शन्तनु' नाम से विख्यात होओगे। और यह नदी श्रेष्ठ लम्बे और स्थूल नितम्ब वाली गंगा सर्वाङ्ग सुन्दरी रूप धारण कर तुम्हारी स्त्री बनेगी। इस प्रकार मेरे शाप रूप वचनों को सुनकर समुद्र क्षुब्ध हो गया और चारों और देखकर मुझसे कहने लगा। हे प्रभो! आप देवताओं के भी देवता होते हुए भी मुझे शाप क्यों दिये। मैं तो आपका आज्ञाकारी आपही के द्वारा निर्मित आप में निरन्तर प्रेम रखने वाला आपका पुत्र हूँ। फिर भी आपने बिना

कारण मुझको शाप क्यों दे दिया। हे भगवन्! आपके प्रसाद से ही मैं आज पर्व (पूर्णमासी) के दिन वेग से बढ़ गया तो इसमें मेरा क्या दोष है।।२१-३०।।

हे भगवान्! यदि आज पौर्णमासी के दिन पावन के वेग से बढ़े जल से आप का स्पर्श भी हो गया तो कौन सा ऐसा शाप का कारण उपस्थित हो गया। आँधी की तरह महावायु के और उठते हुए मेघों के तथा पूर्णिमा के चन्द्रमा से युक्त होने के इन तीन कारणों से मैं क्षुब्ध हो जाता हूँ। यदि इस प्रकार हमारा क्षुब्ध होना आपको अपराध ज्ञात होता है तो ये तीनों ही कारण आप के द्वारा रचे गये हैं, अतः हे ब्रह्मन! मुझ निरपराधी को क्षमा कर शाप को हटाइये। हे देवेश! यदि इन प्रमाणों को सत्य मानते हैं तो शाप से शिथिल मुझ अवलम्ब रहित पर दया कीजिये और यह गंगा जो कि आपकी आज्ञा मानकर पृथ्वी तल पर चली आई यह भी मेरे दोष से शापित हो गई तो इस निर्दोष के ऊपर तो प्रसन्न होइये। ऐसा सुनकर मैं देव हितार्थ शाप के कारण कर्तव्य हो तथा शाप रूप अग्नि से भयभीत महासागर से मुधरवाणी से बोला कि लियेहोदधे! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ तुम भय न करो शान्ति ग्रहण करो, हे सरित्पति! इस शाप के कारण को सुनो। तुम इस सागरी शरीर को छोड़ कर अपने तेज से भरत वंश में राजा के रूप मे उत्पन्न होओ। हे महोदधे! आप राज-लक्ष्मी से युक्त हो पृथ्वी-पालक राजा बनकर, धर्मानुसार चारों वर्णों का पालन करते हुए विचरिये। हे सलिलेश्वर! यह सरित श्रेष्ठ गंगा उत्तम रमणी रूप धारण कर आपकी सेवा करेगी।।३१-४०।।

मेरी आज्ञा से हे सागर! इस गंगा के साथ प्रसन्नतापूर्वक रमण करते हुए शाप से प्राप्त मानुषी योनि का क्लेश आपको भूल जायेगा। आपको इस मेरी आज्ञा का गंगा के साथ पुत्र उत्पन्न करते हुए शीघ्र पालन करना चाहिए। इस समय आठों वसु स्वर्ग से गिर कर पाताल को चले गये हैं उन्हीं को पुत्र रूप से उत्पन्न होने के लिये मैने यह योजना बनाई है। अग्नि के समान देवताओं को प्रसन्न करने वाले उन आठों वसुओं को यह गंगा अपने गर्भ में पुत्र के लिये धारण करे। हे सगर! तुम शीघ्र वसुओं को उत्पन्न कर और कुल गुरु का यश

बढ़ा कर मानव शरीर को त्याग पुनः सागरी तनु को धारण करोगे। हे सुरोत्तमो! मैं आप लोगों के हित के लिये पृथ्वी के पार्थिवात्मक भार को दूर करने के लिये पहले ही उपाय प्रारम्भ कर चुका हूँ। इसीलिये शन्तनु के वंश को पृथ्वी में प्रतिष्ठित कर दिया हूँ, जो आठो वसु गंगा में उत्पन्न हुए उनमें सात वसु तो स्वर्ग में चले आकर देवता बन गये हैं पर आठवाँ वसु भीष्म अभी वहाँ ही है, सात तो वसु बन कर अपना कार्य कर रहे हैं पर एक आठवाँ वसु अभी वसुत्व से दूर पृथ्वी के आश्रय में है। शन्तनु की बनायी गई दूसरी स्त्री सत्यवती से उत्पन्न चित्राङ्गद पहले मर चुका उसकी कोई गणना ही नहीं और भीष्म ने विवाह ही नहीं किया है, न राज्य पर ही बैठे हैं, शेष बचे सत्यवती पुत्र विचित्रवीर्य प्रतापी और तेजस्वी राजा थे। उन विचित्रवीर्य से दो पुरुषश्रेष्ठ विख्यात पुत्र धृतराष्ट्र और पाण्डु हुए।४१-५०।।

उसमें पाण्डु की दो परम सुन्दर स्त्री देवताओं की स्त्रियों के समान कुन्ती और माद्री नाम की हैं। और धृतराष्ट्र की एक ही भार्या उन्हीं के समान अन्ध वृत्ति का आचरण करने वाली पति-व्रत धर्म में तत्पर गान्धारी नाम से विख्यात है। वहाँ उन धृतराष्ट्र तथा पाण्डु से वंश का दो भागों में विभाजन होगा उन्हीं दोनों पक्ष के पुत्रों में हुए दो राजाओं में महान् कलह उपस्थित होगा। जब दोनों के वंशजों में युद्ध होगा तब पृथ्वी के भार भूत बहुसंख्यक राजाओं का नाश होगा संग्राम के समय युगान्तकारी भय उत्पन्न हो जायेगा। और सबल राजे एक दूसरे से लड़कर विनष्ट हो जायेंगे तब मनुष्यों से रहित ग्राम-नगर तथा राज्य हो जायेंगे और पृथ्वी उनके भार से रहित हो बिना सेना की निर्बल हो जायेगी। द्वापर के अन्त में शस्त्रों के द्वारा सेनानी मनुष्यों के साथ राजा लोग लड़कर मर जाते हैं, यह मैं पुरानी रीति देखता आ रहा हूँ। जो लड़ाई से शेष बच जाते हैं उनको रात्रि में चेतना रहित सोते समय शंकर के अंश से अवतरित अश्वत्थामा अपने अग्न्यास्त्र से भस्म कर देते हैं। युगान्त काल की भाँति उस घोर कर्मात्मक महासंग्राम के समाप्त हो जाने पर कुछ दिनों के बाद तीसरा द्वापर का युग भी समाप्त हो जायेगा। महेश्वर विष्णु के अंश भूत श्रीकृष्ण जी के साकेत लोकचले जाने पर भयानक कलियुग आ जायेगा। उस

कलियुग में मनुष्ट अल्प धर्म करने वाले होंगे बाकी प्रायः सभी अधर्म करने वाले हो जायेंगे और सत्य का लोप होने लगेगा। सभी लोग झूठ व्यवहार से धन संचय कर वृद्धि को प्रोप्त होंगे।।५१-६०।।

और प्रजा शंकर जी और स्कन्द जी का आश्रय करने वाली होगी और संसार में अल्पायु के कारण वृद्ध पुरुष नहीं रह जायेंगे। पृथ्वी पर पार्थिवों को अन्त कर देने का यही निश्चय श्रेष्ठ है अतः सभी देवता अपने-अपने अंशों से अवतार ग्रहण करें अब इसमें विलम्ब न करें। धर्म को ग्रहण करने के लिये देवता कुन्ती और माद्री से उत्पन्न हों और कलह का मूल अधर्म पक्ष ग्रहण करने वाले कलि रूप राक्षस गान्धारी से उत्पन्न हों। काल की प्रेरणा से संग्राम की लालसा वाले राजे इन्हीं दोनों पक्षों का आश्रय ग्रहण करने वाले होंगे और पृथ्वी के लिये संग्राम करेंगे। इस प्रकार राजाओं के विनाश का लोकविख्यात उपाय रच कर ब्रह्मा ने पृथ्वी को संकेत कर कहा कि यह लोकों का धारण करने वाली पृथ्वी अपने स्थान को चली जाय। पितामह के वचन को सुनकर पृथ्वी काल के साथ राजाओं के वध के लिये जिस प्रकार आयी थी उसी प्रकार अपने यथास्थान को चली गयी। और ब्रह्मा सुर-द्वेषियों के वध के लिये देवताओं को प्रेरणा करने लगे, मनुष्य, प्राचीन ऋषि, पृथ्वी को धारण करने वाले शेष, सनत्कुमार, साध्यों, अग्नि आदि देवताओं, वरुण, यम, सूर्य, चन्द्रमा, गन्धर्व, अप्सरा, रुद्रों आदित्यों और अश्विनीकुमारों को अपने-अपने अंशों से पृथ्वी पर अवतार धारण करने को कहा। जैसा कि पहले मैंने अंशावतार का आपसे वर्णन किया है एक तो अयोनिज दूसरे योनिज देवता पृथ्वी तल पर दैत्य और दानवों को मारने वाले पुरुषेश्वर के रूप में अवतरित हो गये जो कि क्षीरिक वृक्ष की तरह पुष्ट और वज्र के समान अंग वाले, वज्रों से मारने वाले थे।।६१-७१।।

वे दस-दस हजार हाथियों का और प्रखर धार वाले महा नदों के जैसा बल रखने वाले थे तथा गदा, परिघ एवं शक्तियों के चोटों को सहने वाले परिघ के समान लम्बी और मोटी बाहुओं वाले थे। वे सभी पर्वत-शिखरों और परिघों से युद्ध करने वाले महाबली सैकड़ों, हजारों और लाखों की संख्या में

तो वृष्णि कुल में उत्पन्न हुए थे और कुरु वंश तथा पाञ्चाल देश में राजा बन कर उत्पन्न हुए थे तथा कुछ देवता लक्ष्मीसम्पन्न यज्ञकर्ता ब्राह्मणों के कुलों में उत्पन्न हुए थे। वे सभी अस्त्र विद्या में पारंगत बड़ी-बड़ी धनुषों को धारण करने वाले वेद-व्रत पारायण थे तथा सम्पूर्ण ऋद्धियों और गुणों से युक्त यज्ञ करने वाले पुण्यकर्मा थे जो कि क्रुद्ध होने पर पर्वतों को हिला देने वाले तथा मही-तल का बाणों से भेद न कर देने वाले थे, जो आकाश में उड़ने वाले और समुद्र को क्षुभित कर देने वाले थे। इस प्रकार ब्रह्मा उन देवताओं को आदेश देकर नारायण से कहे कि आप इन लोगों की रक्षा कीजिये कि लोक शान्ति को प्राप्त हों। हे राजन्! फिर वह भी सुनो कि जिस प्रकार प्रजा के हित के लिये समर्थ प्रभु नारायण का पृथ्वि पर अवतार हुआ। वे यशस्वी प्रभु नारायण ययाति के वंशज बुद्धिमान वसुदेव के कुल में अवतार ग्रहण किये।।७२-८०।।



अथ चतुः पाञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५४।।

वैशम्पायनजी बोले-कि पृथ्वी और काल के स्वकार्य साधन कर यथास्थान चले जाने के बाद देवताओं ने राजा भरत के कुल में अपने-अपने अंशों से अवतार धारण किया। धर्म के पक्ष में स्वतः धर्म के अंश से युधिष्ठिर, इन्द्र के अंश से अर्जुन, पवन के अंश से भीमसेन और अश्विनीकुमारों के अंश से नकुल और सहदेव हुए तथा सूर्य के अंश से कर्ण उत्पन्न हुए। देवपुरोहित बृहस्पति द्रोण के रूप में और आठवाँ वसु भीष्म के रूप में ये दो पहले ही अवतरित हो चुके थे। यम के अंश के विदुर और अधर्म से अंश से दुर्योधन, सोम के अंश से अभिमन्यु, शुक्र के अंश से भूरिश्रवा और वरुणांश से श्रुतायुध पृथ्वी पर उत्पन्न हुए। शंकरांश से अश्वत्थामा, मित्रांश से कणिक, कुवेरांश से धृतराष्ट्र और यक्षों तथा गन्धर्वों के अंश से देवक-उग्रसेन आदि यादव धर्म के पक्ष में उत्पन्न हुए सर्पांश से दुःशासन अधर्म पक्ष में। इस प्रकार देवतादिकों के पृथ्वी पर अंशावतार धारण कर लेने पर नारायण के

पक्ष में रहने वाले नारद जी विष्णु के समीप गये। वे नारद उस समय प्रज्वलित अग्नि की भाँति तेजस्वी शान्त ज्ञात होते थे, उनके नेत्र उदित होते हुए सूर्य की भाँति लाल थे, वे बिखरी हुई बड़ी-बड़ी जटाओं को समेट कर वाम भाग में कर लिये थे। वे चन्द्रमा के समान श्वेत वस्त्र धारण किये भस्म रमाये अपनी विशाल वीणा को अपनी काँख में सखी की तरह दबाये हुए थे। काले मृग के चर्म को ओढ़े सुवर्ण के यज्ञोपवीत पहने दड-कमण्डल धारण किये साक्षात् दूसरे इन्द्र की भाँति सुशोभित हो रहे थे। वे संसार में गुप्त बातों को प्रकाशित करने वाले तथा विग्रह झगड़ा लगा देने में धूमकेतु ग्रह के समान थे और प्रधान ऋत्विजों के समान चारों वेदों के गाने वाले उद्‌गता थे तथा विग्रह में रुचि रखने वाले संगीत वेत्ता थे।१-१०।।

वे बैरियों से संग्राम की क्रीड़ा करने वाले दूसरे कलि के समान ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण थे और देवता तथा गन्धर्वों में प्रधान वक्ता महामुनि थे। ऐसे ब्रह्मलोक में अबाध गति से विचरण करने वाले ब्रह्मर्षि नारद क्रोधित होकर देवसभा में बैठे विष्णु से बोले कि जो आपने महाराजाओं के विनाश के लिये पृथ्वी पर देवताओं से अंशावतार धारण कराया है वह निष्प्रयोजन है। हे भगवन्! यह राजाओं का युद्ध तो आपके ही अधीन है अतः यह कार्य नर-नारायण के द्वारा ही साध्य हो सकता था ऐसा मुझे ज्ञात होता है। हे देव-देव! आप जैसे तत्त्व-दर्शी जानकार के लिये पृथ्वी के भार हरण हेतु इस प्रकार का कार्य उचित नहीं था यह नर-नारायण विहीन कार्य है। क्योंकि आप अन्तर्यामी के बिना यह सब निरर्थक है, चक्षुष्मानों के आप ही चक्षु हैं तथा प्रभाव शालियों में आपही सराहनीय हैं और योग करने वालों में सबसे श्रेष्ठ योगी हैं तथा गति चाहने वालों की गति हैं।। आप देवताओं के अंशावतार ग्रहण कर लेने पर भी क्यों नहीं अपने अंशसे उनकी सहायता करने के लिये अवतार ग्रहण कर रहे हैं। वे देवांशावतार आपही में मन लगाये आपकी आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, आपके वहाँ जाने पर ही वे सनाथ होंगे और एक कार्य करने के बाद दूसरा कार्य करते हुए पृथ्वी में विचारण करेंगे। मैं जो यह शीघ्र देव-सभा में चला आया सो आपको प्रेरणा देने आ गया और भी

कारण मेरे आने का सुनिये। जो तारकामय संग्राम में आपके द्वारा दैत्य मारे गये वे मर कर फिर पृथ्वी तल पर जाकर जन्म लिये हैं उनकी गति को सुनें।।११-२०।।

पहले से बसी हुई मथुरा नाम की विख्यात पुरी है जो यमुना के किनारे पर विस्तार से जनपदों के सहित बसी हुई है। वहाँ पर पहले एक महाबलवान् युद्ध में दुर्जय मधु नाम का दानव रहता था जो सब प्रणियों को त्रास देता था उसका वहाँ पर उसी के नाम से एक बड़ा भारी मधुवन नाम का भयंकर वन था जो बड़े-बड़े विशाल वृक्षों से व्याप्त था उसी वन में वह मधु रहता था। उसको लवणासुर नामक पुत्र था जो महाबली और पराक्रमी् था तथा सभी प्रणियों को भय देने वाला था। वह लवणासुर अनेक वर्षों तक उस वन में क्रीड़ा करता रहा पश्चात् वह बल से दर्पित होकर देवताओं सहित लोकों को कष्ट देने लगा। उस समय युद्ध करने में योग्य अयोध्या में दशरथ पुत्र राम स्थित थे वे राक्षसों के भय को दूर कर धर्म के अनुसार राज्य-शासन करते थे। तब वह अपने बल की प्रशंसा करने वाला दानव घोर वन में रहता हुआ श्रीरामचन्द्रजी के पास अपना कटुभाषी दूत भेजकर कहलवाया कि मैं लवणासुर नाम का तुम्हारा शत्रु तुम्हारे देश के समीप आ गया हूँ तब ऐसे देश के समीप आये शत्रु को राजा लोग नहीं छोड़ते उसको मार डालते हैं। व्रत में स्थित राजा लोग प्रजा के हित की कामना से और अपने राज्य के विस्तार की इच्छा से शत्रु को जीत लेना अच्छा समझते हैं। राज्याभिषेक के जल से भीगे हुए केश वाले राजा को चाहिये कि पहले वह अपने इन्द्रिय-समूहों को जीते क्योंकि इन्द्रियों को जीत लेने पर तो संसार में उसकी विजय ध्रुव है।।२१-३०।।

सम्यक् प्रकार के वर्ताव की कामना वाले को उसमें भी विशेष कर राजाओं को नीति का उपदेश देने वाले लोक ही गुरु हैं अर्थात् लौकिक व्यवहार लोक से ही जाना जाता है उसमें शास्त्र की विशेष अपेक्षा नहीं है। जो राजा किसी व्यसन आदि में मोहित न होकर धर्म के अनुसार अपनी बुद्धि से काम लेता हुआ नीति को श्रेष्ठ समझता है उसे देश के सीमा के समीप

उपस्थित शत्रुओं का भय नहीं होता। प्राय: सभी लोग इन्द्रिय रूप शत्रु के मनमानी बढ़ जाने पर सहज ही में वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे कि शत्रुओं का प्रिय करने के मोह से राजा नष्ट हो जाते हैं। जो तुम यह स्त्री के मोह में पड़कर रावण का वध कर डाला है उसे मैं उचित नहीं समझता हूँ मैं उसे महान् निन्दित कर्म समझता हूँ। तुमने वनवास रूप व्रत को धारण करते हुए भी व्रत का उल्लंघन कर रावणादि राक्षसों को जो मारा है वह सज्जनों की दृष्टिकोण से सर्वथा अनुचित है, तुम्हारे इस प्रकार व्रत के उल्लंघन को देख अन्य भी व्रत का उल्लंघन करेंगे इससे सिद्ध है कि तुम दुराचार के प्रवर्तक हो। क्योंकि जिस धर्म से सज्जन क्रुद्ध न हों ऐसा धर्म ही शुभ-सद्गति को प्राप्त कराता है, तुमने तो स्त्री के मोह में पड़कर व्रतधारियों को दूषित कर दिया। वह रावण ही धन्य है जो स्त्री के निमित्त धर्म समूहों का विचार करता हुआ तुम्हारे व्रतचारी से मारा गया। यदि तुमने संग्राम में अजितेन्द्रिय दुर्बुद्धि रावण को मार डाला है और इससे तू अपने को सचमुच बलवान् समझता है तो आ आज मेरे साथ युद्ध कर। इस प्रकार धर्मवादी दूत की बात सुनकर शान्त शरीर वाले श्रीरामचन्द्रजी धैर्य से हँसते हुए बोले कि–हे दूत! उसका गौरव बढ़ाने के लिये तुमने जो दोष के द्वारा मुझ पर आक्षेप किया और उसे दूषण रहित माना है यह असत्य भाषण किया है।।३१-४०।।

यदि यह सत्पथ पर है और रावण मूढ़ था मार डाला गया या मेरी भार्या का अपहरण हो गया और मैं सत्पथ से विचलित हो गया तो इसे क्यों कष्ट हो रहा है। जैसे सदा सन्मार्ग में चैतन्य देवता असाधुओं से दूषित नहीं किये जा सकते वैसे ही सत्पथ पर स्थित साधु पुरुष सत्य रहित वाणियों से दूषित नहीं होते। जो दूत का कार्य था उसको तुमने किया अब जाओ विलम्ब न करो इस प्रकार अपनी आत्मा की प्रशंसा करने वाले नीचों पर मेरे जैसा नीतिमान् प्रहार नहीं करता। यह मेरा भाई शत्रुघ्न शत्रु-तापन है उस दुर्बुद्धि दैत्य का यहीं प्रतिकार करेगा। इस प्रकार दूत से कहकर महात्मा श्रीरामचन्द्रजी ने शत्रुघ्न को जाने की आज्ञा प्रदान की तब उन्हीं के साथ दूत चला गया। शत्रुघ्नजी युद्ध की लालसा से शीघ्रगामी रथ पर सवार हो मधु वन

के बीच बड़े दानव पुर में जा पहुँचे और लवणासुर दूत की बात सुनकर क्रोध से उन्मत्त हो वन को अपने पीछे छोड़कर शत्रुघ्न से युद्ध करने के लिये उनके सामने स्थित हो गया। और रण के मुहाने पर शत्रुघ्न तथा लवणासुर दोनों महाबलियों का भीषण संग्राम हुआ। वे दोनों अपने-अपने तीक्ष्ण बाणों से एक दूसरे को मारते थे और दोनों प्रमुख योद्धा शान्त होकर पीछे नहीं हटते थे। इतने में शत्रुघ्न के बाणों से युद्ध में पीड़ित दानव के हाथ से शूल गिर पड़ा और वह बलहीन ज्ञात होने लगा।।४१-५०।।

फिर वह देवताओं से वरदानित सब प्राणियों को खींच लेने वाला अंकुश ग्रहण कर ललकारा। और उसी अंकुश से शत्रुघ्न की गर्दन पकड़ कर खींचा और चाहा की उनकी छाती में अंकुश भोंक दूँ। पर लवणासुर का वह उद्यम देखकर शत्रुघ्न ने सुवर्ण की मुष्टिका वाली उत्तम तलवार से लवणासुर का सिर काट लिया। मित्र वत्सल सुमित्रा नन्दन ने संग्राम में दानव का वध कर वहाँ एक पुरी बसाने की इच्छा से उस मधु-वन को अपने अस्त्रों से काट डाला। वे परम धर्मज्ञाता शत्रुघ्न ने उस देश की राजधानी बनाने के लिये बन काटकर चारों ओर से परम सुन्दर उस नगरी की रचना कराई। इस प्रकार दानव को मारकर उस मधु-वन के स्थान पर वह मथुरा नामक पुरी शत्रुघ्न के द्वारा पहले से बसाई गई है। वह पुरी चौपहली अट्टालिकाओं से युक्त चौतरफी चाहारदीवारियों से तोरण की भाँति घिरी लम्बी-चौड़ी बड़े-बड़े बलवानों की सेना से युक्त कई राष्ट्रों की राजधानी है और अच्छे-अच्छे बाग-बगीचों और उपवनों से शोभायमान सुन्दर सीमा के चिह्नों से प्रतिष्ठित ऊँचे-ऊँचे भवनों के दीवाल रूपी वस्त्र को पहनने वाली तथा चारों ओर की खाइयों रूपी करधनी को धारण करने वाली है। अट्टालिकाओं के चारों ओर लगे मुड़ेरों के बाजूबन्द को तथा महलों में लगे कलशों रूपी कुण्डलों को धारण करने वाली सुसज्जित द्वार रूपी मुख से आँगन रूप अन्तःकरण की हँसी से हँसने वाली है। उसके भीतर रोग रहित वीर पुरुषों का वास है और वह हाथी, घोड़ों और रथों से भर रही अर्ध चन्द्राकार यमुना के तीर पर बसी हुई शोभा पा रही है।।५१-६०।।

उसमें पुण्य का व्यापार होता है वह रत्नों के संचय से गर्वित है उसमें कठिनाई से प्रवेश होता है, समय पर वर्षा होने से उसके जनपद सुखी हैं। और नर-नारियों की प्रसन्नता से वह पुरी प्रकाशित होती रहती है इस प्रकार मथुरा के बसने के बाद वहाँ शूरसेन हुए थे। उसी मथुरापुरी में कार्तिकेय केसमान पराक्रमी [illegible] वंशी महाबलवान् उग्रसेन हुए। तारकामय संग्राम में जो आपके द्वारा महादैत्य कालनेमि मारा गया वह उग्रसेन का पुत्र हुआ है। वह बड़े-बड़े नेत्रों वाला तथा भोजवंश को बढ़ाने वाला राजा कंस के नाम से विख्यात है वह सिंह के समान स्पष्ट पराक्रम वाला है। वह सत्पथ का त्याग कर राक्षस वृत्ति को धारण करने वाला सब प्राणियों को भय देता है तथा पृथ्वी के राजा लोग उसके भय से शंकित रहते हैं। अपने दारुण स्वभाव से वह क्रूर अन्तरात्मा वाला घमण्ड में भरकर प्रजा के रोंगटे खड़ा कर देता है। वह राजाओं की न्याय-धर्म-नीति से विमुख है, अपने परिवार वालों को भी कष्ट देता रहता है और वह अपने राज्य का भी हित नहीं करता बड़ा ही प्रचण्ड कलि के व्यवहार में सदा रुचि रखने वाला है। वही आप से युद्ध में पराजित कालनेमि मथुरा में कंस हुआ है जो कच्चे मांसों का भक्षण करने वाला आसुरी अन्तरात्मा से लोकों को कष्ट दे रहा है। जो घोड़े की तरह विशेष पराक्रम करने वाला हयग्रीव था वह केशी नाम से घोड़ा के रूप में कंस का छोटा भाई बनकर जन्मा है वह भी उसी के समान दुराचारी है।।६१-७०।।

वह हिन-हिनाने में बड़ा चतुर है वह बाधा रहित अकेला सिंह के समान वृन्दावन में रहकर मनुष्यों का मांस खाता हुआ विचरता है। बलि का पुत्र अरिष्ट डीलधारी वृषभ के रूप में उत्पन्न होकर इच्छानुसार रूप धारण करने वाला वृषभासुर गौवों को मारता है। दिति का पुत्र रिष्ट जो दानवों में बलिष्ठ था वह इस समय हाथी का रूप धारण कर कंस का वाहन बना हुआ है। जो दैत्यों में घमण्डी लम्ब नाम वाला था वह इस समय प्रलम्बासुर नाम से भाण्डीर वन का आश्रय कर विचरण कर रहा है। खर नामक दैत्य इस समय धेनुकासुर नाम से जन्मा है वह प्रजाओं को उजाड़ता हुआ घोर ताल वन में चर रहा है। वाराह और किशोर नामक जो महाबली दानव थे वे मथुरा में

चाणूर और मुष्टिक नामक मल्ल हो अखाड़े में मल्ल युद्ध कर रहे हैं और जो मय एवं तार नाम के यम की भाँति दानव थे, वे प्राग्ज्योतिषपुर में भौमासुर और नरकासुर के नाम से उत्पन्न होकर आनन्द कर रहे हैं। ये सभी दैत्य आपके द्वारा निहत हो राक्षसी शरीर को छोड़ मानव शरीर ग्रहण कर पृथ्वी के मनुष्यों को कष्ट दे रहे हैं। आपकी कथा से द्वेष रखते हैं और आपके भक्तों को मारते हैं, आप ही के प्रसाद से इन दानवों का विनाश हो सकता है। ये दानव आकाश में छिप जाने वाले केवल आप ही से भयभीत होते हैं अन्य किसी से पृथ्वी पर किसी भी अवस्था में नहीं डर सकते हैं।।७१-८०।।

हे श्रीधर! आपके ही द्वारा वध कर देने के कारण ये स्वर्ग में गये और फिर वहाँ से गिरकर पृथ्वी पर आ गये अतः आप ही इनकी गति हैं। हे केशव! आपके ही जाग्रत होने से मनुष्य शरीरधारी पृथ्वी को व्यथित करने वाले दुराचारी राक्षस आहत होकर दुर्लभ स्वर्ग में गमन करेंगे। इसलिये आप शीघ्र ही पृथ्वी पर दानवों के विनाश के लिये अपनी आत्मा से दूसरी आत्मा का अंशावतार लें मैं पृथ्वी तल पर चल रहा हूँ। आपकी अव्यक्त मूर्ति उत्तम देवताओं से दृश्य-अदृश्य दोनों है उसमें दृश्य मूर्ति से आपके द्वारा पृथ्वी पर देवताओं की रचना की जाती है अर्थात् उसी से देवता उत्पन्न होते हैं। हे विष्णो! आपके ही अवतार धारण करने से वह दुर्धर्ष कंस मारा जायेगा तब वह कार्य सिद्ध होगा कि-जिसके लिए पृथ्वी आपके पास आयी थी। भारतवर्ष में पृथ्वी के इस महान् कार्य को आप ही कर सकते हैं, आप ही सत्पथ के प्रकाशक चक्षु हैं, सम्पूर्ण जगत् आपकी ही आराधना में तल्लीन है इसलिये हे ऋषीकेश! आप अवतार ग्रहण कर दानवों का वध कीजिये।।८१-९०।।



अथ पञ्च पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५५।।

वैशम्पायनजी बोले-नारद के वचनों को सुनकर भोग तथा मोक्ष के इच्छुकों से पूज्य प्रभु मधुसूदन हँसते हुए नारद से बोले कि-हे नारद! जो तुम

तीनों लोकों का हित करने के लिये कह रहे हो, उसमें मैं पहले ही से दत्तचित्त हूँ, मेरे उत्तर रूप वचनों को सुनो। जो-जो दानव जिन-जिन नामों से पृथ्वी पर उत्पन्न होकर कलह को बढ़ा रहे हैं, उन सबको मैं जानता हूँ। कंस नाम से उत्पन्न उग्रसेन के पुत्र तथा अश्व रूप में कलहकर्ता केशी को जानता हूँ। कुबलयापीड़ हाथी, मल्ल चाणूर और मुष्टिक तथा अरिष्ट जो वृषभासुर का रूप धारण किया है उसे भी जानता हूँ। खर जो प्रलम्बासुर बनकर उत्पन्न हुआ है, बलि की पुत्री जो पूतना बनी है यह सब मैं जानता हूँ। जो यमुना के कुण्ड में गरुड़ के भय से कालिय नाग छिपा है उसको भी जानता हूँ। जो राजाओं के शिर पर जरासन्ध चढ़ा हुआ है और प्राग्ज्योतिषपुर में जो भौमासुर-नरकासुर दुराचार कर रहे हैं उन सबकी मैं तर्कना करता हूँ। जो पृथ्वी पर मनुष्यों में मनुष्य बनकर शोणितपुर में छिपा हुआ महातेजस्वी हजार बाहुओं के घमण्ड में चूर देवताओं से भी दुर्जय बाणासुर है उसे भी जानता हूँ और जो पृथ्वी का महान् बोझ दूर कर देना मेरे ऊपर निर्भर है उसे भी जानता हूँ।।१-१०।।

जिस प्रकार पृथ्वी पर ये दैत्य नष्ट होंगे और इनका जैसा स्वर्ग में सत्कार होगा वह सब मैं विचार चुका हूँ मरने के बाद इनका फिर मानव शरीर धारण करना नहीं होगा। मैं पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में अवतरित हो अपने स्वयं उद्योग करूँगा और दूसरों से भी उद्योग कराऊँगा। कंसादि राक्षसों तथा और भी पृथ्वी के भार भूत दुराचारी नृपतियों का जिस-जिस प्रकार से वध हो सकेगा उस-उस प्रकार से वध करूँगा। और कराऊँगा जिससे कि वह शान्त हो जायेंगे। मैं अपनी योग माया के द्वारा उनकी गतियों में छिपे रूप से प्रवेश कर इन श्रेष्ठ देवताओं को सुखी करने के लिये युद्ध में उनका वध करूँगा। जगत् के कल्याण के लिये जो देवता, ऋषि तथा गन्धर्व आदि अपना अंशावतार धारण किये हैं वह मेरी ही आज्ञा थी। हे नारद! यह सब पहले ही मैं निश्चय कर चुका हूँ, मेरे अवतार ग्रहण करने का समय आ गया है इसलिये ब्रह्मा यह निश्चय करें कि मेरा किस स्थान में अवतार हो और कहाँ पर निवास हो। जिस देश में जहाँ प्रकट होऊँ और जिस वेष को धारण कर जहाँ बसता

हुआ उनको मैं समर में मारूँ आदि बातों को अब ब्रह्मा बतलावें। ब्रह्मा बोले कि हे नारायण! मेरे द्वारा निश्चित उपायभूत स्थानों को सुनिये कि आपको पृथ्वी के ऊपर जो जन्म देने वाले माता-पिता होंगे। और हे महाबाहो! जहाँ कुल को बढ़ाने वाले आप उत्पन्न होकर यादवों को बहुत बड़े वंश को धारण करेंगे तथा उन असुरों का उन्मूलन करेंगे और उन्हें वश में कर अपना यश फैलावेंगे एवं मनुष्यों के धर्म की मर्यादा की स्थापना करेंगे वह सब हमसे सुनिये।।११-२०।।

हे विष्णो! पहले के समय की बात है कि एक बार कश्यपजी वरुण के महान् यज्ञ में गये और उनकी यज्ञिया दुधार गौ को लेकर चले आये अदिति और सुरभि नाम वाली कश्यप की दो धर्म पत्नियाँ थीं जब कश्यपजी उस गौ को वरुण के यहाँ लौटाने लगे तो उन स्त्रियों ने रोक दिया। जब वरुण को यह ज्ञात हुआ कि स्त्री के मोह में पड़कर गुरु कश्यप ने गौ रोक ली तब वरुण मेरे पास आ शिर से प्रमाण कर बोले कि हे भगवन्! हमारी श्रेष्ठ गौवों को गुरु कश्यप ने हर लिया है। जब गौ से यज्ञादि कार्य समाप्त हो गया तो भी वे कश्यपजी अदिति और सुरभी के कहने में आकर गौवों को लौटाना नहीं चाहते वे कभी नष्ट न होने वाली दिव्य कामधेनु हमारी गौवें अपने तेज से सुरक्षित होकर समुद्रों के किनारों पर चरती थीं। इस प्रकार की हमारी उन गौवों को सिवा कश्यप के कौन बाँध लेने में समर्थ है, जो देवताों के अमृत के समान सदा अबाध गति से दूध दिया करती थीं। हे ब्रह्मन! यदि कोई समर्थ अथवा गुरु या दुसरे कोई धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करें तो आपको उचित है कि उन्हें मर्यादा के नियमानुसार चलावें क्योंकि आप सबकी गति हैं। हे लोकगुरो! यदि लोक में समर्थशालियों के अनुचित कार्यों पर विचार कर दण्ड विधान न किया जाय तो लोक की मर्यादा सुरक्षित नहीं रह सकती है अर्थात् श्रुति प्रवर्तित मार्ग भ्रष्ट हो जायेंगे। अब जिस प्रकार से हो उस प्रकार से हमारी गौवों को दिलवा दीजिये क्योंकि आप सामर्थ हैं मैं तो गौवों को लेकर ही सागर को जाने वाला हूँ अन्यथा नहीं। जो गौवें ब्रह्म रूप आत्म देवता वाली हैं, जो गौवें अविनाशी सद्गुणों वाली हैं लोक के रचयिता आप गौ और

ब्राह्मण को एक ही समान बतलाते हैं।।२१-३०।।

उसमें प्रथम गौ की रक्षा करनी चाहिये क्योंकि गौवें सुरक्षित होकर ब्राह्मणों की रक्षा करती हैं और गौ एवं ब्राह्मण रक्षित हो लोकों की रक्षा करते हैं। हे अच्युत! जब इस प्रकार वरुण ने हमसे कहा तो मैं गो के हरण के तत्त्व को समझकर कश्यप को शाप दे दिया कि कश्यप ने जिस अंश से गौवों का हरण किया है उस अंश से पृथ्वी पर नन्द गोप बनकर जन्म लेंगे दूसरे अंश से वसुदेव बनकर जन्म लेंगे। जो देवताओं की उत्पत्ति स्थान सुरभि और अदिति नाम की स्त्रियाँ हैं वे भी उनके साथ पृथ्वी पर जायेंगी। तब कश्यपजी वासुदेव रूप से उनके साथ रमण करेंगे और दूसरा कश्यप का अंशावतार कश्यप के ही समान तेजस्वी होगा। उनका नाम नन्द होगा और वे मथुरा से निकट ही गोवर्धन पर्वत पर स्थित गोपालों के अधिपति बनकर रहेंगे। कश्यप की मति गौ में होने से वहाँ भी वे गौवों में निरत रहकर कंस को कर देने वाले होंगे और उनकी स्त्री अदिति और सुरभि का भी जन्म होगा इस प्रकार मेरे शाप देने पर कश्यप का गो-हर्ता अंश नन्द बनकर गोकुल में उत्पन्न हुआ और कश्यप का दूसरा तपस्वी रूप अंश वसुदेव होकर उत्पन्न हुआ तथा उनकी स्त्रियाँ अदिति देवकी एवं सुरभी रोहिणी बनकर उत्पन्न हुई हैं। तो तुम देवकी से उत्पन्न होकर छल से गोपल बनकर गौवों को चराते हुए असुरों को मारो और हे महाबाहो! जिस प्रकार छल कर बलि दैत्य से वामन बनकर तीनों लोक लिये उसी प्रकार इन दैत्यों को भी योग माया से अपने को छिपा कर अवतार लीजिये और दैत्यों का वधकर लोक का कल्याण कीजिये।।३१-४०।।

वहाँ ''आपकी जय हो-जय हो'' इत्यात्मक आशीर्वाद वचनों से देवता लोग आपकी स्तुति कर उत्साहित करेंगे। अपनी आत्मा से अंश रूप दूसरी आत्मा को अवतीर्ण कीजिये देवकी और रोहिणी के गर्भ में जाकर उन सबको संतोष दिलाइये, वहाँ गोकुल में गोपों की हजारों कन्यायें हैं आप उनके साथ रमण करते हुए पृथ्वी पर विचरिये। गौवों को चराने लिये वनों में जाते-आते समय वनमाला पहने वे आपको देखेंगी और अपने को धन्य मानेंगी। हे विष्णो! जिस समय आप कमल और पलाश के समान सुन्दर नेत्रों वाले

गोपालों की बस्ती में जायेंगे उस समय गोपाल लोग आपको समझने में बालकों की भाँति अबोध हो जायेंगे। हे पुण्डरीकाक्ष! जो तुम्हारे भक्त हैं वे आपके चित्त के अनुकूल गौवों को चराने के लिये गोप-बालक होकर तुम्हारी सहायता करेंगे और वन में गौ चराते समय और गोष्ठों में दौड़ते समय तथा यमुना में स्नान करते समय देखकर आनन्द को प्राप्त होंगे और वसुदेव का जीवन तब सफल हो जायेगा जब आपको हे तात! हे पुत्र! कहकर पुकारेंगे, कश्यप को छोड़कर आप किसके पुत्र हो सकते हैं और अदिति को छोड़कर आपको अपने गर्भ में धारण करने के लिये दूसरी कौन स्त्री समर्थ है, अतः आप योग के द्वारा विजय के लिये अदिति के गर्भ में पधारिये हम लोग भी अपने-अपने स्थान को जायँ। वैशम्पायनजी बोले-ऐसा सुनकर विष्णु देवताओं को स्वर्ग में जाने की आज्ञा प्रदान कर अपने देश क्षीर सागर के उत्तर चले गये। वहाँ मेरु पर्वत में पार्वती नाम की गुफा है जो बड़ी ही दुर्गम है जो तीनों लोकों के पराक्रमियों से पर्व में पूजित है। उसमें जाकर अपने सनातन शरीर को छोड़कर वे उदार बुद्धि विष्णु अपने आत्मा को वसुदेव के घर में भेज दिये।।४१-५१।।

इति हरिवंश पर्वणि पं० रामविहारी मिश्र कृत भाषा टीकायां पञ्चपञ्चाशत्तमोध्यायः ।।५५।।

समाप्तोऽयं प्रथमो हरिवंश पर्वः ।।१।।



अथ

विष्णुपर्वः प्रारम्भः

अथ प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

वैशम्पायनजी बोले कि-जब नारद को यह ज्ञात हो गया कि विष्णु पृथ्वी पर चले गये हैं और देवताओं का अंशावतार हो चुका है तो वे कंस को उसके विनाश का उपाय बतलाने मथुरा चले गये। नारदजी स्वर्ग से चलकर मथुरा पहुँच एक उपवन में जा विराजे और वहाँ से एक दूत उग्रसेन के पुत्र कंस के समीप भेजकर उसे बुलवाया। वह दूत कंस के पास जाकर नारदजी का आगमन सुनाया, तब नारदजी का आना सुनकर वह पराक्रमशाली कमल नेत्र असुर कंस अपनी पुरी मथुरा से शीघ्र ही निकलकर पाप रहित प्रसंशनीय अतिथि नारदजी को देखा। उस समय नारदजी अग्नि के समान आकार वाले सूर्य के समान चमक रहे थे ऐसे नारदजी को प्रणाम कर उसने उनकी यथाविधि पूजा की और बैठने के लिये अग्नि की आभा की तरह चमचमाता सुवर्ण का आसन दिया, तब इन्द्र के मित्र मुनि नारद उस आसन पर बैठे। पश्चात् परम क्रोधी उग्रसेन के पुत्र कंस से बोले कि हे वीर! जिस प्रकार तुमने शास्त्र-विधि से मेरी पूजा की है उसी प्रकार तुम मेरे वचनों को सुनकर ग्रहण करो अर्थात् उसी के अनुसार चलो, मैं ब्रह्मलोक से अन्य लोकों में घूमता हूआ स्वर्ग लोक से आ रहा हूँ। हे तात! मैं सूर्य के मित्र विशाल मेरु पर्वत पर भी गया था तथा नन्दन वन और चैत्र वन को भी देखा और देवताओं के साथ सम्पूर्ण तीर्थों और नदियों में स्नान किया और गंगा की जो तीन धारायें आकाश, पाताल और मृत्युलोक में बहती हैं उनको भी देखा।। १-१०।।

जो गंगा का स्मरण करते ही मनुष्यों के सब पापों का खण्डन कर देती है, इस प्रकार मैंने यथा क्रम से सभी दिव्य तीर्थों में स्नान आदि दर्शन-स्पर्शन किया। ब्रह्मर्षियों से सेवित ब्रह्म-सदन को भी देखा कि जिसमें देवता, गन्धर्व और अप्सराओं के गाने-बजाने का सुन्दर शब्द हो रहा था। एक बार मैं मेरु

पर्वत पर देवताओं के समाज में अर्थात् ब्रह्मा की सभा में वीणा लिये हुए गया। सो मैं अपन पिता के सहित सब देवताओं को चन्द्रकान्त तथा सूर्यकान्त मणि के समान नाना रत्नों से विभूषित दिव्य आसनों पर बैठे हुए देखा और वहाँ अनुचरों एवं सैनिक सेनापतियों सहित आपके वध के लिए बड़ी कठिन उपाय की मंत्रणा करते हुए भी मैंने सुना। हे कंस! जो यह देवकी तुम्हारी छोटी बहिन है इसके आठवें गर्भ से उत्पन्न पुत्र के द्वारा तेरी मृत्यु होगी। जो देवताओं के सब कुछ हैं, जो स्वर्ग की गति रूप हैं तथा वेदों के परम रहस्य महा विष्णु हैं वे ही तेरी मृत्यु के कारण भूत उत्पन्न होंगे। जो देवताओं को पर स्वर्ग और अपर मोक्ष देने वाले हैं वे ही स्वयं उत्पन्न होने वाले हैं इसलिये हम उन्हें दिव्य महान् भूत महा-आत्मा कहते हैं। ऐसे महापुरुष से मृत्यु होने से प्रशंसा ही है और पहले जन्म में भी तुम्हारी मृत्यु उन्हीं के हाथों हुई थी; इसलिये तुम उसका स्मरण करो साथ ही मृत्यु के बचने के लिये देवकी के गर्भों के खण्डन का प्रयत्न करो। तुम्हारे ऊपर मेरा प्रेम है इसलिये तुम्हारे हित की बात कहने चला आया था, अब तुम्हारा कल्याण हो तुम कामना के अनुसार सब भोगों को भोगो अब मैं चलता हूँ।।११-२०।।

इस प्रकार नारद के कहकर चले जाने पर कंस नारद की बातों पर विचार करता हुआ अधिक समय तक अपने दाँतों से प्रकाश करता हुआ जोरों से हँसता रहा और हँसता हुआ ही अपने आगे खड़े भृत्यों से बोला कि नारद निश्चय ही अकुशल हैं और सभी के हँसने योग्य हैं। वह मुझे डराने आया था, मैं तो चाहे सोता रहूँ या आसन पर बैठा रहूँ या नशे में रहूँ अथवा पागल के समान क्यों न हो गया हूँ फिर भी इन्द्र के सहित देवताओं से नहीं डर सकता हूँ। जो मैं ऐसा हूँ कि इस पृथ्वी को चाहूँ तो अपने उदार दोनों बाहुओं से क्षुभित कर दूँ मथ दूँ तो फिर मनुष्य लोक में ऐसा कौन है कि जो मुझे क्षुभित पराजित करने का साहस कर सकता है। मैं आज ही से देवताओं के अनुयायी मनुष्य, पक्षी और पशु के समूहों को महान् कष्ट देना प्रारम्भ करता हूँ। और अश्व रूपधारी केशी, प्रलम्बासुर, अरिष्टासुर (वृषभासुर) पूतना और कालिय नाग को आज्ञा देता हूँ कि तुम लोग पृथ्वी पर इच्छानुकूल रूप धारण कर घूमो

और हम लोगों के पक्ष निन्दा करने वालों को मारो और गर्भ में स्थित प्राणियों का भी पता लगाओ क्योंकि नारदजी ने मुझे गर्भ से ही भय बतलाया है। और तुम लोग मेरे जैसे स्वामी को पाकर निर्भय हो इच्छानुसार प्रसन्नतापूर्वक आनन्द का उपभोग करो तुम्हें देवताओं का लेशमात्र भी भय नहीं है। वह नारद युद्ध कराने में बड़ा ही उत्सुक रहता है, वह भेदशील अर्थात् झगड़ा लगाने वाला है, वह आपस के दो प्रेमियों में भी भेद डालकर अपने को आनन्द का लाभ करता है। वह लोकों में घूमता हुआ संघर्ष उत्पन्न करता रहता है और राजाओं में अपने उचित उपायों से वैर करा देता है और वे लड़ बैठते हैं ऐसी घटनाओं का चक्र चलाता रहता है। इस प्रकार की अनर्थक बातों को बकता हुआ कंस हृदय से जलता हुआ अपने राज-भवन में चला गया।।२१-३२।।



अथ द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

वैशम्पायनजी बोले-कंस अपने आत्मा के कल्याण के लिये क्रोधित हो अपने मंत्रियों को इस प्रकारकी आज्ञा दी कि, जिससे वे देवकी के गर्भ को नष्ट करन के लिये प्रयत्नशील हो जायँ। सातो गर्भों को तो उत्पन्नहोते ही पहले दिन मार डालना चाहिए और जिससे अनर्थ का भय है उस आठवें गर्भ को तो जब गर्भ धारण हो तभी औषधि आदि उपायों से उस गर्भ का मूल ही नष्ट कर देना चाहिये। देवकी को घर के अन्दर छिपाकर रखा जाय और वह घर चारों ओर पहरेदारों से रक्षित रहे, उसी घर में देवकी स्वेच्छा से इधर-उधर घूमे और जब यह ज्ञात हो जाय की यह गर्भिणी हो गई तो उसकी घर में भी रक्षा की जाय और हमारी स्त्रियें मासिक धर्म वाले महीने से सब महीनों को गिनती रहें जब दसवाँ महीना लगे तो हमें बतलावें और अन्तःपुर की भूमि में हमारे हित में सावधान जनखों द्वारा प्रसवकाल सन्निकट होने पर वसुदेव को भी नियन्त्रण में रखा जाय वह सब उपाय छिपे रूप से किये जायँ कारण प्रकट

न होने पावे। यह मनुष्यों से किया जाने वाला यत्न मनुष्यों से ही साध्य है और मैं जिस उपाय से दैव का भी प्रति हनन कर डालूँगा उसे सुनो। विधान के अनुसार मन्त्रों के जाप से तथा अच्छी रीति से बनाई हुई औषधियों के प्रयोग रूप यत्न प्रतिकूल दैव भी अनुकूल बनाया जा सकता है। वैशम्पायनजी बोले-कि देवकी के गर्भ को विनष्ट करने के लिये इस प्रकार का प्रयत्न करने के हेतु नारद से मृत्यु के भय से कंस मंत्रणा करने लगा। तब इस प्रकार कंस के अनिष्ट जनक प्रयत्नों को महापराक्रमी विष्णु अन्तर्धान हो छिपे रूप से सुनकर चिन्ता करने लगे कि भोज-पुत्र देवकी के सातों गर्भों का वध करेगा और मुझे आठवें गर्भ में जाना है।।१-१०।।

उसी की चिन्ता करते हु वे पाताल लोक गमन करने की इच्छा करने लगे कि जहाँ षड्गर्भा नामक दानव जल के गर्भ में सो रहे थे। वे कालनेमि के पुत्र यद्ध काल में अमृत पीने वाले देवताओं के प्रतिमा के समान बलिष्ठ शरीर वाले और तेजस्वी थे। पहले वे अपने पिता हिरण्यकशिपु का त्याग कर लोक पितामह ब्रह्मा की उपासना करने लगे थे। वे जटा मंडलों को धारण किये कठिन तपस्या करने लगे तब ब्रह्मा उनके ऊपर प्रसन्न होकर षड्गर्भों को वर प्रदान किये। ब्रह्मा बोले-हे दानव-सिहों! तुम लोगों ने हमको प्रसन्न कर लिया है अतः तुम लोगों में जो जिस-जिस काम की इच्छा करता हो वह कहे मैं उसके उस-उस काम को पूर्ण करूँगा। तब वे एक ही समान प्रयोजन रखने वाले ब्रह्मा से बोले यदि आप हम लोगों पर प्रसन्न हैं तो यह श्रेष्ठ वर दीजिये। हे भगवन्! हम लोग महा सर्पों सहित देवताओं से अवध्य हों और शाप का प्रहार करने वाले महर्षियों से भी बचे रहकर कल्याण के भागी बनें। हे भगवन्! यदि आप हम लोगों को वर दे रहे हैं तो यह वर दीजिये कि यक्ष, गन्धर्व तथा उनके पतियों तथा सिद्ध-चारणों और मनुष्यों से भी हम लोगों का वध न हो। तब ब्रह्मा अन्तरात्मा से प्रसन्न होकर षड्गर्भों से बोले कि जो आप लोगों ने कहा वह सब बातें पूरी होंगी अर्थात् ऐसा ही होगा। इस प्रकार षड्गर्भों को वर देकर स्वयंभू ब्रह्मा स्वर्ग को चले गये, इसके पश्चात् जब इन

सब बातों का पता हिरण्यकशिपु को लगा तो वह इन लोगों से क्रोधित हो कहने लगा कि।।११-२०।।

तुम लोगों ने हमारा परित्याग कर ब्रह्मा की उपासना की और उनसे वर माँगा इसलिये मैं भी तुम लोगों से अपना प्रेम हटा लेता हूँ तथा तुम लोगों को अपना शत्रु समझकर त्याग देता हूँ। तुम लोगों का जो यह षड्गर्भ नाम है सो तुम्हारे पिता ने रखा है इसी नाम से तुम लोगों को लाला-पाला सो वही पिता तुम लोगों के गर्भ में जाने पर मार डालेगा। हे षड्गर्भ नामक असुरों! तुम लोग देवकी के गर्भ में जाओगे ओर कंस तुम लोगों को गर्भस्थ होने पर मार डालेगा। वैशम्पायनजी बोले कि विष्णु पाताल में वहाँ चले गये जहाँ कि हिरण्यकशिपु के शाप में बँधकर जल के गर्भ में वे षड्गर्भ नामक असुर सोते थे। वहाँ जाकर देखा कि वे षड्गर्भ काल की निद्रा से अन्तर्हित होकर जल के गर्भ में सो रहे हैं। तब स्वप्न के रूप से उनके भीतर प्रवेश कर उनके प्राणों को खींच कर योग निद्रा को दे दिया। और सत्य रूप पराक्रम वाले विष्णु निद्रा से बोले कि–हे निद्रे! तुम देवकी के भवन के समीप चली जाओ और इन खड्गर्भों के जीवों को लेकर देवकी के छै गर्भों में क्रम से स्थापित करो। और जब देवकी इन छवों को उत्पन्न करेगी और कंस उनको मारकर यम-सदन भेज देगा तब उसके बाद मैं तुम्हें वर दूँगा जिससे की तुम पृथ्वी पर मेरे ही समान प्रभावशालिनी होओगो और हे देवी! तब तुम सम्पूर्ण लोकों की देवी हो जाओगी।।२१-३०।।

देवकी का जो सातवाँ पुत्र होगा उसमें मेरा बड़ा भाई होगा जो गौर-वर्ण वाला देखने में सुन्दर होगा उस गर्भ को तुम सातवें महीनें में खींचकर रोहिणी के उदर में स्थाति कर देना। तुम्हारे इस प्रकार संकर्षण करने से युवा होकर वह संकर्षण कहलायेगा, मेरा बड़ा भाई चन्द्रमा की तरह प्रियदर्शन होगा। मेरे भय से देवकी का यह सातवाँ गर्भ गिर गया ऐसा कंस समझेगा और आठवें गर्भ में मैं जब प्रविष्ट होऊँगा तब वह मुझे मारने का प्रयत्न करेगा। जो नन्द गोप की प्रिया पृथ्वी पर गोप कुल को प्रतिष्ठित करने वाली यशोदा

नाम से विख्यात है उसके नवें गर्भ से हमारे कुल (गोकुल में) में भादों के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि को तुम उत्पन्न होओगी और मैं एक दिन पहले भादों कृष्ण अष्ठमी की आधी रात में जबकि अभिजित नक्षत्र रहेगा तब मैं देवकी के गर्भ से सुख पूर्वक मुक्त होऊँगा। हम और तुम दोनों आठ महीने बाद ही एक दिन के आगे पीछे उत्पन्न होंगे, इसके बाद हम दोनों का आपस में अदला-बदली कंस के विनाश के लिये होगा। हे देवि! हम यशोदा के यहाँ चले जायेंगे और तुम देवकी के पास चली आना हम लोगों के इस प्रकार के संयोग से कंस मूढ़ हो जायेगा उसकी समझ में भ्रम हो जायेगा और देवकी से उत्पन्न तुम्हें शत्रु समझकर तुम्हारे पैरों को पकड़ कर वह शिला पर पटकेगा तब तुम उसके हाथों से छूटकर आकाश में चली जाओगी और अविनाशी स्थान को प्राप्त करोगी। हमारी ही तरह तुम भी श्याम् वर्ण की होओगी और तुम्हारा मुँह बलदेवजी की तरह सुन्दर होगा एवं तुम्हारी चारों बाहुएँ हमारी विशाल चारों बाहुओं की भाँति आकाश में होंगी।।३१-४०।।

एक हाथ में त्रिशूल दूसरे में सुवर्ण मुष्टिका वाली काल-खड्ग और तीसरे में मदिरा से भरा पूर्ण पात्र तथा चौथे में सुन्दर व निर्मल कमल रहेगा। और रेशम के नीले वस्त्र को पहनी रहोगी तथा पीली चादर ओढ़ी रहोगी और तुम्हारे वक्षस्थल पर चन्द्रमा के समान प्रकाश करने वाला चन्द्रहार सुशोभित होता रहेगा। और दिव्य कुण्डलों से तुम्हारे कर्ण विभूषित रहेंगे तथा तुम्हारा मुख चन्द्रमा की शोभा को क्षीण करता रहेगा और मणि जालों के द्वारा विशेष रूप से चित्रित मुकुट को शिर पर धारण करने से तुम्हारे केशबन्ध चोटियाँ बड़ी ही शोभायमान लगती रहेंगी उस समय तुम सर्प के समान भयंकर भुजाओं से दशों दिशाओं को भूषित करती रहोगी और तुम्हारे साथ मोर-पंख की ऊँची ध्वजा विराजती रहेगी तथा तुम चमकीले वस्त्रों एवं मयूर समान चित्र-विचित्र हीरकादिकों से जड़े बाजूबन्द से चमकती रहोगी। उस समय तुम भूतादि के गणों से घिरी होकर मेरी आज्ञा का पालन करने वाली कौमार में आस्था रख कर स्वर्ग को चली जाओगी। वहाँ जाने पर हजारों नेत्रों वाला इन्द्र मेरे निर्देश के अनुसार देवताओं के साथ तुम्हारा दिव्य अभिषेक से पूजन

करेंगे और तुम्हें अपनी बहन बनाकर अपने घर में रखेंगे और कुशिक गोत्र में उत्पन्न होने से तुम्हारा नाम कौशिकी होगा। इसके बाद वह इन्द्र तुम्हें पर्वत श्रेष्ठ विन्ध्य गिरि पर सदा के लिए निवास स्थान देंगे, तत्पश्चात् पृथ्वी पर हजारों स्थानों पर तुम शोभित होओगी। तीनों लोकों में विचरण करने वाली तुम पृथ्वी पर जाकर मनुष्यों द्वारा याचित कामनाओं को पूरी करोगी हे महाभागे! इस प्रकार तुम वरदा होकर इच्छानुसार रूपों को धारण कर पृथ्वी पर विचरण करोगी। और वहाँ विन्ध्य पर्वत पर विचरने वाले शुम्भ-निशुम्भ नामक दानवों को अपने मन में मुझे धारण कर सेना सहित मार डालोगी। तुम्हें, सुरा, मांस और बलि प्रिय होगा प्राणी तुम्हारे स्थान में पहुँच कर नवमी तिथि को पशु-क्रिया और हवनादि से तुम्हारा पूजन करेंगे। हमारे प्रभाव को जानने वाले जो मनुष्य तुम्हें प्रणाम करेंगे उनके लिये धनादि-पुत्रादि कुछ भी दुर्लभ न होगा। दुर्गम वन में फँसे संकटापन्न तथा महासमुद्र में डुबते हुए और चौरादिकों से घिरे हुए मनुष्यों को तुम्हीं बचाने वाली परमगति होओगी। इस स्तोत्र से जो तुम्हारी स्तुति करेंगे उनके लिये मैं दूर नहीं हूँ और न वे मेरे लिए दूर हैं।।४१-५५।।



अथ तृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

वैशम्पायनजी बोले-कि अब मैं विन्ध्यवासिनी भगवती का 'आर्यास्तव' नामक स्तोत्र कहता हूँ जिसे कि ऋषियों ने पहले कहा है। नारायणी त्रिभुवन की ईश्वरी देवी को मैं नमस्कार करता हू। हे देवि! तुम्हीं सिद्धि, धृति, कीर्ति, श्री, विद्या, सम्यक् प्रकार से नम्रमति, सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, निद्रा तथा कालरात्रि हो। आर्या, कात्यायनी, कौशिकी, ब्रह्मचारिणी और उग्र आचरण करने वाली स्कन्ध की महाबलवती माता तुम्हीं हो। जया, विजया, पुष्टि, तुष्टि, क्षमा, दया और यम की ज्येष्ठ बहन नीले रंग के रेशमी वस्त्रों को धारण करने वाली तुम्हीं हो। अनेक रूपों को धारण करने वाली, भयंकर स्वरूपा, शत्रुओं

का नाश करने के लिये अनेक प्रकार के आचरणों को करने वाली, क्रोध से लाल-लाल नेत्रों को करने वाली विशालाक्षी और भक्तों की चारों ओर से रक्षा करने वाली हो। हे महोदरि! आपका वास भयंकर पर्वत शिखरों पर, नदियों में, गुफाओं में तथा वनों और उपवनों में है। और शबर, बर्बर तथा पुलिन्द नामक जातियों से भी पूजित हो। मोर-पंखों वाली ध्वजा धारण किये लोकों में सर्वत्र विचरण करने वाली हो। मुर्गों, बकरों, भेड़ों तथा सिंह और व्याघ्रों से घिरी रहती हो एवं तुम्हारे मन्दिर में घण्टों का घोर निनाद होता है और तुम विन्ध्यवासिनी के नाम से लोक में विख्यात हो। तुम त्रिशूल तथा पट्टिश धारण किये सूर्य तथा चन्द्रमा रूपी पताकाओं से शोभित हो। कृष्ण पक्ष की नवमी और शुक्ल पक्ष की एकादशी ये तुम्हारे पूजन और श्रृंगार की तिथियाँ हैं। तुम बलरामजी की बहन कलहप्रिया होकर भी शोभा से युक्त हो, तुम्हारा आवास सभी प्राणियों में है तथा उन प्राणियों को भक्ति के द्वारा मुक्ति भी प्रदान करने वाली हो।।१-१०।।

देताओं की विजय के लिये तुम नन्द गोप की पुत्री हुई हो, तुम सुन्दर रेशमी वस्त्रों को पहनने वाली, सुन्दर स्थान में वास करने वाली, उग्र कर्मों को करने वाली, सन्ध्या के समय विचरण करने वाली, रात्रि के समय माया का विस्तार करने वाली हो। तुम खुले बालों वाली, सुरा और मांस का पान-भक्षण कर लक्ष्मी रूप होती हुई भी दानवों के वध के लिये अलक्ष्मी बन कर मृत्यु स्वरूपा हो जाती हो। और देवताओं के लिए गायत्री स्वरूपा मन्त्र समूहों को उत्पन्न करने वाली जननी हो, कन्या का ब्रह्मचर्य और विवाहिता स्त्रियों के लिये सौभाग्य रूप हो। यज्ञों की अन्तर्वेदी और ऋत्विजों की दक्षिणा हो तथा किसानों के लिये हल जोतने की विधि रूप बुद्धि और प्राणियों के लिये पृथ्वी के समान क्षमा प्रदान करने वाली मता हो। नाव पर चढ़कर नदी से व्यापार करने वालों के लिए तुम किनारा हो और समुद्र की मर्यादा, यक्षों के लिये कुबेर की माता के समान हो और सर्पों के लिये उनकी माता सुरसा के समान हो। ब्रह्मवादिनी तथा परम शोभा और दीक्षा हो तथा चमकने वाले ग्रहों में प्रकाश रूपा और नक्षत्रों में रोहिणी हो। और राजद्वार की लक्ष्मी, नदियों के

संगमों के पुण्य रूपा, चन्द्रमा में पूर्णिमा रूप से बसती हो तुम्हें लोग कृत्तिवासा कहते हैं। तुम बाल्मीकिजी में सरस्वती बनकर और व्यासजी में स्मृति बनकर रहती हो, ऋषियों में धर्म बुद्धि रूप से तथा देवताओं में सत्य संकल्प रूप से वास करती हो, तुम देवताओं और प्राणियों में देवी तथा अपने कर्मों से स्तुत्य हो। इन्द्र के हजारों नेत्रों में तुम तेजरूपा हो तथा तापसों के लिये तुम वरदात्री और अग्निहोत्रियों के लिये अग्नि उत्पन्न करने वाली अरणी हो। सभी प्राणियों में क्षुधा, देवताओं में तृप्ति, स्वाहा, घृति और बुद्धि हो तथा वसुओं के लिये तुम वसुमती हो।।११-२०।।

मनुष्यों में, आशा, किये गये कर्मों की पुष्टि, दिशा, बीच के कोण, अग्नि की ज्वाला तथा प्रभा हो। तुम शकुनी, पूतना, रेवती, सुदारुण और सब प्राणियों को मोह में डाल देने वाली निद्रा और युद्ध के लिये क्षत्रियों का धर्मधारण करने वाली हो। विद्याओं में तुम ब्रह्मविद्या हो, वेदों में ॐकार हो तथा वषट्कार भी तुम्हीं हो, ऋषियों ने पुराण की नारियों में तुम्हें पार्वती समझा है। साध्वी स्त्रियों में अरुन्धती हो ऐसा ही प्रजापतियों का कहना है जैसा तुम्हारे नाम का अर्थ है उसी अर्थ से इन्द्राणी भी तुम्हारा नाम विख्यात है। यह सम्पूर्ण स्थावर जंगम तुमसे व्याप्त है इसलिये सभी संग्रामों में, प्रज्जवलित अग्नि में, नदियों के किनारों में, चोरों से घिरे रहने पर, कठिन वन में भय उपस्थित होने पर, विदेश में, राजाओं के द्वारा बन्धन होने पर और शत्रुओं के प्रहार करते समय तथा प्राणों पर संकट आ जाने पर इस प्रकार सभी दुःखद स्थानों में प्राणियों की तुम्हीं रक्षा करने वाली हो। हे देवि! मेरा हृदय, चित्त और मन तुम्हीं में रहता है अतः मेरी सब पापों से रक्षा करो तुम्हीं मेरा कल्याण करने में समर्थ हो। विष्णु द्वारा कहा गया और यह व्यासजी के द्वारा श्लोक के रूप में कल्पित जो तुम्हारा सुन्दर स्त्रोत्र है, इसको जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन सावधान चित्त से पढ़ेगा उसको तुम तीन महीने के भीतर वाञ्छित फल प्रदान करोगी और छै माह तक पाठ करने वाले को एक श्रेष्ठ वर प्रदान करोगी। और तीन महीने प्रतिदिन पूजन करने से दिव्य चक्षु प्रदान करोगी और एक वर्ष में इच्छित सिद्धि प्रदान करोगी।।२१-३०।।

यह तुम्हारा स्तोत्र ब्रह्म के समान दिव्य और सत्य है ऐसा ही व्यासजी का वचन है तुम मनुष्यों के बन्धन, घोर वध का कारण उपस्थित होने पर, पुत्र-नाश तथा धन-नष्ट हो जाने पर, रोग से मृत्यु होने का भय होने पर तुम पूजित होने पर उसे शान्त कर दोगी और हे महाभागे! तुम वर देने वाली तथा इच्छानुसार रूप धारण करने वाली कंस को मोह में डालकर एक-छत्र जगत् का राज्य भोगोगी। मैं भी अपनी आत्मवृत्ति को गोपालों की भाँति बनाकर गौवों में विचरण करूँगा और अपनी वृद्धि के लिये मैं वन में गौवों को चराया करूँगा। इस प्रकार योग माया को आदेश देकर ईश्वर अन्तर्धान हो गये, योग माया भी उनको नमस्कार कर ऐसा ही होगा कहकर निश्चिन्त हो गई। जो मनुष्य इस स्तोत्र को पढ़ता तथा बार-बार सुनता है वह अवश्य सिद्धि प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं है।।३१-३५।।



अथ चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

वैशम्पायनजी बोले कि-इस प्रकार गर्भ धारण का विधान निश्चित हो जाने पर देवकी ने कथनानुसार सात गर्भों को धारण किया। जिसमें छः गर्भों को कंस ने उत्पन्न होने के बाद उन्हें पत्थर के ऊपर पटक कर मार डाला और सातवें गर्भ को योग माया ने खींचकर रोहिणी में स्थापित कर दिया। इधर देवकी को सोते समय आधी रात को रजस्वला के रूप में गर्भ गिर गया। देवकी ने स्वप्न में गर्भ गिरा हुआ देख उसे गोद में उठा लिया फिर वह गर्भ अदृश्य हो गया तब देवकी कुछ समय तक दुःखी हो गई। तब रोहिणी के समान चन्द्रमा को प्रिय लगने वाली वसुदेव की शोक संविग्न प्रिया से योग माया ने कहा। हे गर्भ के कारण शोक युक्ते! तुम्हारे गर्भ का अहित न हो इस कामना से उसे खींच कर रोहिणी में स्थापित कर दिया गया है सम्यक् रूप से कर्षण के कारण उसमें संकर्षण नामक सुन्दर पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुन देवकी प्रसन्नता से कुछ मुख नीचे किये रोहिणी के घर में सुन्दर प्रभा युक्त

रोहिणी की तरह चली गई। कंस के भृत्य पता लगाने लगे कि देवकी का सातवाँ गर्भ क्या हुआ कहाँ गया इसी बीच में जिस हरि के लिये कंस ने छः गर्भो को मार डाला था तथा एक को भय से अन्यत्र हटाने के लिये लाचार किया उस विष्णु रूपी आठवें गर्भ को देवकी ने धारण कर लिया। आठवाँ गर्भ [illegible] हो गया यह जानकर कंस के मंत्री उसकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा करने लगे, हरि भी गर्भ धारण के पश्चात् अपनी इच्छानुसार गर्भ में रहने लगे। जिस दिन देवकी ने गर्भ धारण किया उसी दिन यशोदा ने भी गर्भ धारण किया और उस गर्भ में विष्णु की आज्ञाकारिणी उनके शरीर से उत्पन्न योग माया प्रविष्ट हो गई।।१-१०।।

गर्भ काल के पूरा होने के पहले ही आठवें महीने में दोनों स्त्रियाँ देवकी और यशोदा ने प्रसव किया। जिस रात में वृष्णि कुल को वहन करने वाले श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए उसी रात में यशोदा ने भी कन्या को उत्पन्न किय। यशोदा, नन्द गोप की स्त्री और देवकी, वसुदेव की स्त्री ये दोनों एक काल में गर्भवती हुई थीं। देवकी ने विष्णु को उत्पन्न किया और यशोदा ने कन्या रूपी योग माया को उत्पन्न किया अर्ध रात्रि के समय में अभिजित आया तब श्रीकृष्णजी उत्पन्न हुए और जब वसुदेवजी उनको लेकर चले तो योग माया उत्पन्न हुई अर्थात् एक पहर पश्चात् योग माया हुई पहले नवमी कहने का तात्पर्य हमारे बाद उत्पन्न होना है। जिस समय जनार्दन अवतरित होने लगे उस समय सागर काँप उठे, पर्वत व शेष डगमगा गये, शान्त हुई अग्नियाँ जलने लगीं। कल्याणप्रद वायु चलने लगा, उड़ती हुई धूलियाँ शान्त हो गईं और नक्षत्र आकाश में विशेष रूप से प्रकाशित होने लगे। उस समय अभिजित नक्षत्र था और वह रात्रि जयन्ती नाम की थी और विजय नामक मुहूर्त था। नारायण उत्पन्न होकर अपने नयनों से सबको मोहने लगे और आकाश में देवताओं की दुन्दुभियाँ बजने लगीं। देवता आकाश से फूलों की वर्षा करने लगे और मंगल युक्त वाणियों से मधुसूदन भगवान् की स्तुति करने लगे। महर्षि वेद पाठ और अप्सराओं सहित गन्धर्व प्रसन्न हो गाने-नाचने लगे इस प्रकार सारा जगत् प्रसन्न हो गया।।११-२०।।

इन्द्र देवताओं के साथ मधुसूनद की स्तुति करने लगे, वसुदेवजी अधोक्षज भगवान् को श्रीवत्स चिह्न से चिह्नत और दिव्य लक्षणों से युक्त देखकर श्रीकृष्ण से बोले कि हे प्रभो! आप अपने रूप को छिपा लीजिये। क्योंकि मैं कंस से डरा हुआ हूँ इसलिए ऐसा आप से कहता हूँ, हे कमल नेत्र! हमारे पुत्र आप के जेठे भाइयों को कंस ने मार डाला है। वैशम्पायनजी बोले–सुत वत्सल वसुदेव रात्रिकाल में अर्थात् यशोदा के घर में प्रवेश कर पुत्र को वहाँ रख और पुत्री को वहाँ से लेकर देवकी के शयनागार में रख दिये। भय से विकल वसुदेव इस प्रकार सन्तानों का स्थानान्तरण कर अपने को कृत कार्य हो गये और अपने देवकी के घर से चल दिये और आकर कंस को पुत्री का जन्म होना बतलाया। यह सुनकर कंस शीघ्र अपने रक्षकों के साथ वसुदेव के गृह के द्वार पर आ गया। और वहाँ खड़ा होकर डाँटता हुआ कहा कि क्या हुआ शीघ्र लाकर दो, तब देवकी के घर में स्त्रियाँ हाहाकार करने लगीं और देवकी अश्रुपात करती हुई गदगद वाणी से दीन होकर कहने लगी कि–।।२१-३१।।

यह तो पुत्री उत्पन्न हुई है मैं तुमसे इसकी याचना करती हूँ, हमारे सुन्दर सात पुत्रों को तुमने मार डाला है। हे विभो! यदि हमारी बात को मानते हो तो देखो यह लड़की मरी तुल्य ही है कंस उस कन्या को देखकर बलपूर्वक खींच लिया। वह मूर्ख "यह कन्या मरी ही हुयी है?" ऐसा कहकर गर्भ में शयन करने के कारण गर्भ के जल से भीगी हुई शिर वाली कंस के आगे पृथ्वी पर पृथ्वी के समान रख दी गई, तब कंस उसको पकड़ चारों ओर घुमाकर ऊपर से नीचे शीला पर पटका। पर वह योगिनी शिला पर न गिरकर आकाश में उसके हाथों से छूटकर चली गई और गर्भ वाली शरीर को छोड़ भगवती के रूप में खुले केशों वाली चन्दन और मालाओं से शोभित कंस को तेरा शत्रु जन्म ले चुका कहकर चली गई। वह हार और उज्ज्वल मुकुट से विभूषित थी उसकी देवता स्तुति कर रहे थे वह सर्वदा के लिये कन्या रूप वाली हो गई। वह नीले वस्त्र पहने और पीली चादर ओढ़े थी उसके हाथी के गण्डस्थल की तरह स्तन थे जाँघे गोल और मुँह चन्द्रमा के समान था तथा चार भुजाओं

वाली थी। वह विद्युत के समान चमक रही थी उसके नेत्र उदयकालनी सूर्य के समान लाल थे वह अपने मेघ के समान स्तनों से युक्त सन्ध्या के समान ज्ञात हो रही थी।।३२-४०।।

वह अन्धकारग्रस्त रात्रि में भूतगणों से घिरी हु थी उस समय वह नाचती और हँसती हुई कंस को मृत्यु रूप से प्रतीत हो रही थी। वह भयंकर रूप वाली आकाश में पीने योग्य उत्तम पदार्थों को पी रही थी तत्पश्चात् अट्टहास से हँसती हुई कंस से क्रुद्ध होकर बोली कि–हे कंस! जिस प्रकार तुम मुझे खींचकर आकाश में उठाकर सहसा शिला पर पटका है और अपने विनाश से बचने के लिये मुझे मारा है। इसलिये तुम भी अन्ताकल में शत्रु के द्वारा खींचकर मारे जाओगे उस समय मैं अपने हाथों से तुम्हारे शरीर का गरम रक्तपान करूँगी। इस प्रकार भयदायक वचनों को कहकर वह इच्छानुसार मार्ग से चलकर स्वर्ग और आकाश में अपने गणों के सहित विचरने लगी। तत्पश्चात वह देवी वसुदेव की आज्ञा से वृष्णि कुल से पूजित तथा पुत्र के समान पालित होकर बढ़ने लगी। हे राजन्! इस देवी को प्रजापति के अंश से उत्पन्न हुई जानो, यह केशव की रक्षा के लिये उनके ही अंश के योगकन्या के रूप में उत्पन्न हुई थी। उसकी सभी यादव प्रसन्न मन से पूजा करते थे और वह दिव्य शरीर धारण कर श्रीकृष्ण की रक्षा करती थी। उसके चले जाने के बाद कंस ने उसे अपनी मृत्यु माना और एकान्त में देवकी के पास जाकर लज्जित होकर कहने लगा। कंस बोला–कि हे बहन! मैंने जो यह यत्न कर तुम्हारे पुत्रों को मारा वह अपनी मृत्यु से बचने के लिये यत्न किया था पर वह विपरीत हुआ अब मेरी मृत्यु किसी अन्य से होगी। मैंने मृत्यु को निराशित करने के लिये स्वजनों को ही मार कर प्रयत्न किया, पर अब ज्ञात हो गया कि दैवाधीन कार्य पुरुषार्थ से नहीं टाला जा सकता।४१-५१।।

अब उनके मृत्यु का वही प्रकार था मैं तो केवल मृत्यु का एक निमित्तमात्र हूँ अतः तुम गर्भ सम्बन्धी चिन्ता को तथा पुत्र-मरण सन्ताप को छोड़ दो। मनुष्य का शत्रु मनुष्य नहीं काल ही है, काल ही सबका विनष्टकर्ता है, वह मेरे जैसे एक निमित्त को खड़ा कर सबको मृत्यु के मुख में डाल देता

है। हे देवि! मनुष्य के कर्मों के अनुसार ही उपद्रव आते हैं पर दूसरा यह समझता है कि मैं इस कष्ट का कर्ता हूँ। इसलिये तुम पुत्र-मरण से उत्पन्न हुई चिन्ता, विलाप और शोक को छोड़ दो, यह मनुष्यों की योनि इसी प्रकार के दुःखों से भरी है, काल की स्थिति कोई निश्चित नहीं है कि कब मार डाले। फिर भी हे देवकि! यह जान लिया कि तुम्हारा मैने अपराध किया है, अतः देखो मैं पुत्रवत् अपना शिर तेरे चरणों पर रखता हूँ जो क्रोध तुमने मेरे पर किया है उसे छोड़ दो। इस प्रकार कहकर चरण पर गिरे कंस से अपने पति वसुदेव का मुख देखती हुई माता की तरह बोली कि हे वत्स! उठो, उठो हे पुत्र! मेरे पुत्रों के वध का कारण तुम नहीं प्रत्युत यमराज ही कारण हैं। इस प्रकार के वचनों को सुनकर कंस ने कहा मैं तुम्हारे चरणों पर शिर रखकर अपने किये निन्दित कर्मों पर पश्चाताप करता हूँ इसलिये गर्भ-वध के पाप रूप अपराध को क्षमा कर दो। गर्भ में, बालकपन में तथा युवावस्था में भी मनुष्यों की मृत्यु होती है, वृद्धावस्था में तो मृत्यु निश्चित ही है।।५२-६०।।

इन सब मृत्युओं का काल ही कारण है तुम्हारे जैसे वधकर्ता तो केवल निमित्र मात्र दिखाने के लिये हैं, जो मनुष्य नष्ट हो जाता है वह वायु के रूप में अदृश्य हो जाता है। और जिसका जन्म होता है वह भी एक दिन मर जाता है, विधाता उसे जहाँ ले जाता है वह वहाँ पर कर्म की गति से चला जाता है। पूर्व जन्म के कृत कर्मों के अनुसार ही उसके जन्म-मरण के काल को निश्चित करते हुए सृष्टि में प्रवृत्त होता है। जीव अपने जाति-गुण कर्मादि के अनुसार ही माता-पिता के यहाँ विधाता के विधानानुसार जन्म लेता है और मरता भी है, देवकी के इस प्रकार ज्ञान युक्त वचनों को मुनकर कंस अपने राजभवन में चला गया।।६१-६५।।



अथ पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

वैशम्पायनजी बोले-व्रज में रोहिणी ने चन्द्रमा से भी अधिक प्रिय दर्शन मुख वाला पुत्र उत्पन्न किया है यह बात वसुदेव जी पहले ही सुन चुके

थे। वे शीघ्रातिशीघ्र नन्द के पास जाकर कहने लगे कि तुम यशोदा को साथ लेकर व्रज में शीघ्र चले जाओ। और वहां जाकर तुम दोनों पुत्रों का जात-कर्मादि संस्कार कर पालन-पोषण कर उनको बड़े करो। वहाँ रोहिणी से उत्पन्न जो मेरा पुत्र है उसका अपने पुत्र की भाँति सब तरह रक्षा करना कि मैं भी पितरों में पुत्र वाला कहला सकूँ। इतने पुत्रों के होने पर भी मैं एक भी पुत्र का मुख नहीं देख रहा हूँ, इस प्रकार का पुत्रशोक तो और मेरी सद्बुद्धि का बलपूर्वक अपहरण कर रहा है। निर्दयी कंस के भय से मैं भयभीत हूँ कि कहीं वह मेरे इस पुत्र का भी वध न कर दे, हे नन्द गोप! तुम जिस प्रकार अपने पुत्र की रक्षा करना उसी प्रकार रोहिणी से उत्पन्न मेरे पुत्र की भी रक्षा करना। इस समय बालकों को त्रास देने वाले अनेकों विघ्न उपस्थित हैं, अतः इन विघ्नों के यथातत्त्व को विचार कर हे तात! जिस उपाय से हो उससे रक्षा करो। हमारा पुत्र जेठा है तुम्हारा उससे कुछ ही छोटा है, दोनों की समान रूप ही सुखपूर्वक देख-भाल करो। प्रायः समान अवस्था वाले दोनों ही बढ़ते हुए गौवों के व्रज में जिस प्रकार सुशोभित हों वैसा ही करो। सभी बालक बाल्य-काल में इच्छानुसार क्रीड़ा की कला को दिखाते हैं और उस क्रीड़ा से मनुष्यों को मोह लेते हैं, बाल्यकाल में सभी लड़के अज्ञान के वश भयंकर से भयंकर कार्य कर बैठते हैं तो इस हालत में वहाँ यत्नपूर्वक उन्हें बचाते रहना।।१-१०।।

इस समय वृन्दावन में केशी वास कर रहा है वह बड़ा बालघाती पापी है इसलिये उससे तुम्हें सतर्क रहना चाहिए और वृन्दावन के भीतर तुम्हें गौवों को रहने के लिए मड़ई आदि अथवा गोपों के रहने का घर आदि किसी भी हालत में न बनाना चाहिए। और सर्पों, विषैले या डरावने कीड़े-मकोड़ों और पक्षियों तथा गोष्ठ में गौवों एवं बछड़ों से इन दोनों बालकों को बचाते रहाने चाहिए। हे नन्द गोप! अब रात्रि बीत गयी अतः शीघ्र चलने वाले रथ पर बैठखर जल्द चले जाओ, तुमसे ये दायें-बायें उड़ने वाले पक्षी कह रहे हैं। इस प्रकार एकान्त में वसुदेव के द्वारा आज्ञा देने पर प्रसन्नता पूर्वक यशोदा के साथ रथ पर चढ़ गये। और बच्चों को पालकी में बिछी गदिये पर महामति नन्द ने

सावधानी से सुला दिया। तब शीतल वायु स्पर्शी, सुन-सान बहुत जल वाले, यमुना के तीरे-तीरे जाने वाले मार्ग से चले और जाकर शुभ देश में गोवर्धन पर्वत के समीप गोपों के ग्राम व्रज को देखा, वह गोव्रज यमुना के तीर से सम्बन्धी शीतल वायु से सेवित था। जिनकी शाखाओं पर बैठे पक्षी विशेष रूप से कूँज रहे थे और नीचे फैली लताओं तथा ऊपर फैली बल्लियों से युक्त विशाल वृक्षों से जो व्रज रम्य था तथा घास चरती हुई दुधार गौवों से अलंकृत था। ज़िसमें गौवों को चरने वाली भूमि सम थी तथा जलाशय तीर्थ के समान थे उनमें गौव को जल पीने के सम घाट बने थे और बैलों के कन्धों और सींगों को खुजलाने से वृक्षों के छाल छूट गये थे। गिद्धों के पीछे उड़ने वाले बाजों, मांस भक्षण करने वाले वन बिलाओं के पीछे दौड़ने वाले मांसाहारी शृंगालों और मांस रहित हड्डी को खा जाने वाले चीतों तथा व्याघ्रों से जो घिरा था ऐसे गोव्रज को देखा।।११-२०।।

जिस व्रज के पास वन में सिंह गरज रहे थे तथा जो नाना प्रकार के पक्षियों से व्याप्त एवं मीठे फल वाले वृक्षों से रम्य और पर्याप्त घासों और लताओं से व्याप्त था। गौवों के बोलने से और गोप-गोपियों से भरा गोव्रज बड़ा ही रम्य लग रहा था जिसमें सर्वत्र बछड़े 'हूँ' 'माँ' की बोलियाँ बोल रहे थे। जो बहुत संकटों से घिरा था जिसके बाग कण्टकाकीर्ण थे जो बस्ती के समीप तक जंगलों से घिरे हुए विशाल वृक्षों से आवृत्त था। जो बछड़ा बाँधने की रस्सियों से बँधे खूँटियों से विभूषित तथा जिसकी भूमि गोइँठों-उपलों से व्याप्त थी और जिसमें चटाई बिछे हुए कुटी और मन्दिर थे। जिसमें कुशल का विशेष लक्षण था जो हृष्ट, पुष्ट मनुष्यों से भरा था, जिसमें मोटी-मोटी रस्स्यिों से खूटों में गायें बँधी थीं और मथनियों के घर्घर शब्द का गूँजार हो रहा था। जिसमें मट्ठे के गिरने से और दही में से घी निकालने से भूमि भिग गई थी और गोपियों के मन्थन दण्डों से शब्द उत्पन्न हो रहा था। काक पक्ष धारण करने वाले गोप-बालकों के अखाड़ों से व्याप्त है सिकड़ी लगे द्वार वाले गोपों के चरने वाले मार्गों में उनके जगह-जगह गोष्ठ बने थे। मक्खन को गरम कर घी निकालने से सुगन्धित वायु चल रहा था और नीले-पीले

वस्त्रों को धारण करने वाली गोपियों से अलंकृत था। जंगली पुष्पों की मालायें धारण की हुई, शिर पर घड़ों को धारण की हुई और चोलियों को पहनी हुई तथा यमुना के तीर से जल भरकर लाने वाली गोप-कन्याओं से आवृत्त तथा गोपों के शब्दों से गुञ्जारित गोपों के ग्राम में प्रसन्नतापूर्वक नन्द ने प्रवेश किया। वृद्ध गोप-गोपियों ने उठकर उनका स्वागत किया, फिर नन्दने जहाँ शकट आदि आ-जा सके ऐसे सुखदायक स्थल पर उन्होंने अपने रहने के लिये वास-स्थान बनाना उचित समझा। जहाँ कि वसुदेव को सुख देने वाली रोहिणी थीं वहीं बाल-सूर्य के समान प्रभा वाले छिपे रूप से विष्णु रूपी श्रीकृष्णजी को रखा।२१-३२।।



अथ षष्ठोऽध्यायः।।६।।

वैशम्पायनजी बोले कि-गोव्रज में नन्दजी को रहकर सुख से गोप कर्म करते बहुत दिन बीत गये। नामकरण संस्कारादि कर लालन-पालन करते हुए दोनों बच्चों को बड़ा करने लगे, जेठे का नाम संकर्षण तथा छोटे लड़के का नाम कृष्ण रखा गया था। अवतार रूप में हरि मेघ के समान श्याम वर्ण के थे इसलिये इनका नाम कृष्ण पड़ा, वे गोपों के बीच में सागर में बढ़ते बादल के समान बढ़ने लगे। एक बार पुत्र से प्यार करने वाली यशोदा शकट के नीचे श्रीकृष्ण को सुला कर यमुना नदी को चली गई। तब वे श्रीकृष्ण शिशु-लीला करते हुए हाथ-पैर पटकने लगे और मधुर रुदन करते दोनों पैरें को ऊपर पसारते हुए शकट में लगा दिये और एक पैर से पृथ्वी पर झुकी हुई गाड़ी को उठा कर फेंक दिया तथा स्तन पीने की इच्छा से चिल्लाने और रोने लगे। इसी बीच भय से विकल यशोदा बँधे हुए बछड़े वाली गौ के समान स्तनों से दूध चुआती आ गई। और देखीं कि वायु तक न चली और गाड़ी टूट-फूट कर इधर-उधर गिरी है तब हाहाकार कर शीघ्र बच्चे को उठा लिया। शकट को टूटने का कारण न जान सकीं, लड़के को प्रेम से गोद में ले कहने लगीं हमारा

लड़का सकुशल रह गया यह अच्छा हुआ। हे पुत्र! तुम शकट के नीचे सोते थे और अकस्मात् गाड़ी टूट गयी यह सब जब तुम्हारे परम क्रोधी पिता देखे सुनेंगे तो क्या कहेंगे।।१-१०।।

मेरे ऐसे स्नान से तथा नदी जाने से भला क्या लाभ, यहाँ शकट के नीचे तुम आपद्ग्रस्त थे और शकट टूटने पर भी तुम्हें देख रही हूँ। इसी बीच में काषाय वस्त्र धारण किये नन्दजी वन में गौओं को चरा कर व्रज के पास आ गये और देखा कि पहिया की हाल और धुरा का अग्रभाग जिसमें पहिया चकराती है तथा धूर्रा, जुआठा, चक्र आदि सब अलग-अलग टूटा गिरा पड़ा है। सहसा वे भयभीत हो शीघ्र आकर नेत्रों में आँसू भर बार-बार कहने लगे कि पुत्र तो सकुशल है? पुत्र को स्तनपान करते देख फिर बोले कि भला पुत्र तो सकुशल है, बैलों के लड़े बिना ही किसने मेरे शकट को तोड़ डाला। यशोदा भयभीत हो रुँधे कण्ठ से कहने लगीं कि मैं नहीं जानती कि इस शकट को किसने तोड़ डाला। हे सौम्य! मैं कपड़ा धोने नदी पर चली गयी थी और आकर देखा तो गाड़ी भूमि पर टूटी पड़ी है। इस प्रकार उन यशोदा-नन्द को कहते सुन लड़के कहने लगे कि इसी तुम्हारे बच्चे ने अपने पैर से गाड़ी को धक्का देकर तोड़ डालाहै। हम लोगों ने शकट को गिरते अपनी आँखों देखा है, इस बात को सुन नन्द विस्मित हो गये। प्रसन्न और भयभीत होते हुए चिन्ता करने लेग कि यह क्या हो गया भगवान् में मनुष्य बुद्धि रखने वाले गोपों के लड़कों की बातों पर विश्वास न हुआ।।११-२०।।

वे सब आश्चर्यभरी दृष्टि से देखने लगे और शकट के भिन्न अङ्गों को यथास्थान रख कर बनाने और पहिये पर हाल चढ़ाने लगे। वैशम्पायनजी बोले-एक समय पक्षी का वेष धारण कर बकासुर की बहन व्रज में आई, वह भोजवंशी कंस की धाई थी, उसका नाम पूतना था। वह पूतना पक्षी के वेष में प्राणों को भय देने वाली क्रोध से दोनों पंखों को फड़फड़ाती आधी रात के समय व्रज में आई। वह पूतना व्याघ्र के समान बार-बार गर्जती, हुँकार करती आधी रात को प्रकट हुई। मनुष्यों के सो जाने पर शकट के पहिये पर बैठ गई और दूध की अधिकता से पीड़ित स्तन को श्रीकृष्ण के मुँह में दे दी।

तब भगवान् श्रीकृष्ण उसके प्राणों सहित स्तन को पीने लगे तब वह पक्षी वेष वाली पूतना स्तन के कट जाने से चिल्ला कर सहसा भूमि पर गिर पड़ी। गिरी हुई पूतना के भयंकर शब्दों को सुन किसी भय की आशंका से नन्द-यशोदा जाग पड़े। और विष से लिप्त स्तन वाली पूतना को मरी देखा, ज्ञात होता था कि वह वज्र से विदारित होकर भूमि पर गिरी है। नन्द को आगे कर सभी गोप चारों ओर उसे घेर कर खड़े हो यह क्या हुआ, यह किसका कर्म है कहते हुए संत्रस्त हो गये। पर किसी को न ज्ञात हो सका कि इसके मरने का क्या कारण है, 'आश्चर्य है-आश्चर्य है' कहते हुए सब अपने-अपने घर चले गये। उन विस्मित गोपों के घर के चले जाने पर भ्रम में पड़े नन्द ने यशोदा से कहा कि यह घटना कैसे घटी मैं नहीं जान सका इससे हमको महान् विस्मय है, मेरे पुत्र के लिय यह विषम भय उपस्थित हो गया। यशोदा ने भयभीत हो कहा कि हे आर्य! इस घटना के बारे में मैं कुछ नहीं जानती, मैं तो अपने बच्चे के साथ सोई हुई थी, इसके शब्द को सुन कर जग गई। जब नन्द को यह ज्ञात हो गया कि यशोदा भी कुछ नहीं जानती तो अपने बन्धु गोपों सहित कंस के भय से अधिक डरने लगे और परम विस्मय को प्राप्त हो गये।।२१-३४।।



अथ सप्तमोध्यायः ।।७।।

वैशम्पायनजी बोले कि-कुछ काल बीतने पर दोनों संकर्षण-श्रीकृष्ण नाम वाले सुन्दर बच्चे कुछ बड़े होकर घुटनों के बल चलने लगे। वे दोनों आपस में मिलकर बाल्य स्वभाव से एक तरह की खेलों को खेलते, एक ही मूर्ति धारण करने वाले बाल-चन्द्रमा तथा बाल सूर्य की भाँति तेजस्वी थे। एक ही कार्य के लिये दोनों अवतरित हुए थे, एक ही आसन पर सोते और एक ही आसन पर बैठते थे एक ही तरह के वेष भी धारण किये एक तरह पोषित होकर वे शिशु व्रत का पालन करते थे। अपने हृदय में पृथ्वी केभार को दूर करना रूपी एक ही कार्य को धारण करने वाले एक शरीर मानों दो

भागों में विभक्त थी एक ही काल में शिशुता को प्राप्त कर वे दोनों महाबलवान् एक ही तरह का आचरण करते थे। लोक के देखने में एक ही प्रमाण वाले मनुष्य शरीर धारण किये देवताओं का वृत्तान्त अर्थात् पापियों का वध कर यज्ञादि कर्म-धर्मों की स्थापना रूप वृत्ति रखने वाले सम्पूर्ण जगत् के पालक गोप-बालक बने हुए थे। आपस में सट कर खेलते हुए ऐसे शोभित होते थे कि जैसे पूर्णिमा के दिन अस्त होते हुए सूर्य की किरणों और उदित होते हुए चन्द्रमा की किरणें आपस में मिलकर आकाश में सुशोभित होती हैं। वे सर्प की-सी भुजाओं वाले शरीर में धूल लगाये व्रज में सब जगह खिसक-खिसक कर खेलते हुए हाथी के बच्चों की भाँति शोभित होते थे। कभी राख लग जाने से चमकते थे और कभी उपलों को हटाने-बढ़ाने से उनकी धूलों से शुद्ध होकर दौड़ते हुए वे अग्नि-पुत्र कार्तिकेय के समान ज्ञात होते थे। कभी घुटनों के बल चलने से सुशोभित होते थे कभी गो-शाला में खेलते हुए जब उनके शिर पर गोबर पड़ जाता तो और भी शोभा से युक्त हो पिता नन्द के आनन्द के कारण बन जाते थे और सभी लोगों को मक्खन चुराने आदि से प्रसन्न करते कभी-कभी आपस में विशेष हँसने लगते थे।।१-१०।।

वे दोनों बालक जब खेलने लगते तो उनके बालों से उनकी आँखें ढक जाती थीं तो चन्द्र-बदन सुकुमार बड़े ही शोभायमान लगते थे। खेल में अत्यन्त आसक्त हो व्रज में विचरण करने वाले उन सुदुर्दम बालकों को नन्दजी देखकर भी रोकने में समर्थ न थे। इस प्रकार कहना न मान कर विचरण करने वाले श्रीकृष्ण के ऊपर एक बार यशोदा क्रोधित हो उन्हें पकड़ कर शकट के पास लाईं और उन्हें बार-बार डाटने लगीं। और उनके कमर में रस्सी लगा उलूखल में बाँध दीं और यदि तुम्हारे में शक्ति हो तो जाओ ऐसा कहकर अपने काम में व्यग्र आँगन में चली गई। जब भगवान् ने देखा कि माता तो अपने कामों में व्यग्रचित हैं तो वे आँगन से शिशु लीला कर व्रजवासियों को विस्मित करते हुए चलने लगे। वे श्रीकृष्ण आँगन से उलूखल को खींचते हुए चलकर यमलार्जुन वृक्षों के बीच से होकर निकले। उलूखल उनके मध्य में अड़ गई तब तो यमलार्जुन वृक्षों को मूल सहित खींचने लगे तब बलपूर्वक वेग से उनके

खींचने पर जड़ सहित दोनों अर्जुन के वृक्ष गिर पड़े और वे उनके बीच हँसने लगे। उनके उदर में बँधी रस्सी उनके प्रभाव से दृढ़ हो गई थी। वे गोपों को दिखाने के लिये अपने दिव्य बल का आश्रय कर स्थित थे। यमुना तीर के मार्ग में चलने वाली गोपियों ने वृक्षों के बीच श्रीकृष्ण को देखा तो विस्मय से युक्त हो चिल्लाती हुई यशोदा के पास गईं।।११-२०।।

वे विस्मित मुख वाली गोपियाँ यशोदा से बोलीं कि–हे यशोदे! यहां आओ संभ्रम से विलम्ब क्यों करती हो। जो तुम्हारे अर्जुन के वृक्ष याचना को सत्य करते थे वे तुम्होर पुत्र के ऊपर गिर पड़े हैं। उसके उदर में बलिष्ठ रस्सी बँधी हुई है और वृक्षों के बीच में हँस रहा है। हे दुर्बुद्धे! पण्डित मानिनी मृत्यु के मुख से जीवित बचे बालक को उठा लाओ। तब तो यशोदा भय-भीत हो हाहाकार कर सहसा उठ दौड़ी और वहाँ गई कि जहाँ वृक्ष गिरे पड़े थे। उन्होंने वहाँ अर्जुन वृक्षों के बीच में श्रीकृष्ण को उदर में बँधी रस्सी से उलूखल को खींचते देखी। वृद्ध गोप और गोपियों ने सारे व्रज में यह समाचार कह दिया जिसे सुन कर सभी व्रज के गोप-गोपी इस अद्भुत घटना को देखने आये और अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कहने लगे कि ये दोनों वृक्ष गोष्ठ और घर के समान सुखदायी थे। बिना वायु, बिना वर्षा, बिना बिजली गिरे और बिना हाथियों के लड़े ही इन वृक्षों को किसने गिरा दिया। ओ हो! ये भूमि पर गिरे अर्जुन वृक्ष मूल से अलग होकर वैसे ही शोभा नहीं पाते कि, जैसे जल से रहित मेघ शोभा नहीं पाते, ये घोष का छाया द्वारा कल्याण करने वाले घोष के ही समान थे।।२१-३०।।

हे नन्द गोप! ये दोनों वृक्ष आप के ऊपर प्रसन्न हैं क्योंकि पृथ्वी पर गिर कर भी आप के पुत्र को बचा दिया। यह व्रज में तीसरा उत्पात है, शकट टूटना, पूतना का विनाश तत्पाश्चत् इन पेड़ों का गिरना हुआ है। इस स्थान पर गृह बना कर रहना नहीं सहता है क्योंकि यहाँ बहुत उत्पात दिखाई पड़ते हैं जो कहने में भय उत्पन्न करने वाले अशोभन हैं। तत्पाश्चात् नन्दजी यशोदा को कोषते हुए घर में प्रवेश किये और गोप गण व्रज में अपने-अपने घर चले गये।

उदर में रस्सी से बाँधे जाने के कारण उन्हें गोपियाँ दामोदर के नाम से पुकारने लगीं। हे भरत! व्रज में निवास करते समय भगवान् श्रीकृष्ण की ये सब आश्चर्यजनक लीलायें हुईं।।३१-३६।।



अथ अष्टमोऽध्यायः।।८।।

वैशम्पायनजी बोले-इस प्रकार की बाल्यावस्था से बढ़कर संकर्षण और श्रीकृष्ण व्रज में ही सात-सात वर्ष को हो गये। वे नील और पीत वस्त्र धारण करते, पीला और सफेद चन्दन लगाते तथा काकपक्ष से बालों को सँवारे बछड़ों को चराने वाले हो गये। वे सुन्दर मुख वाले दोनों बालक तुम्बी यन्त्र को बजाते हुए वन को जाते हुए तीन शिर वाले सर्प की भाँति शोभा पाते थे, उनके बजाने का शब्द कानों को बड़ा सुखद लगता था। कभी वे मोरपंख के विजायट और कुण्डल तथा पत्तों के मुकुट धारण कर वक्षस्थल पर वनमालाओं को पहने छोटे पेड़ों की भाँति ज्ञात होते थे। कभी वे कमलों का मुकुट धारण कर रस्सी का यज्ञोपवीत धारण कर तुम्बी दण्ड ले वंशी बजाते थे। कभी आपस में हँसी करते खेलते-खेलते पत्तों की शय्या बिछा कर क्षण मात्र निद्रा में सो जाते थे। इस प्रकार वे बछड़ों को चराते हुए अश्व के बच्चों की भाँति उत्साह में भरे वन में विचरण करते हुए सुशोभित होते थे। इसके बाद दामोदर ने संकर्षण से कहा कि हे आर्य! इस वन में गोपालों के साथ अब क्रीड़ा करने लायक नहीं है क्योंकि इन वन के वृक्षों को गोपों ने तोड़ डाला है, इसके घास तथा काष्ठ क्षीण हो गये हैं, हम लोगों के द्वारा यह वन नष्ट कर दिया गया है और भोगा गया है। पहले जो वन-उपवन घने दिखाई देते थे वे अब डालों और पत्तों से शून्य दिखाई पड़ते हैं।।१-१०।।

गौवों के मार्ग में जो वृक्ष गोलाई में चक्राकार पाँती से लगे थे वे अविनाशी छाया वाले वृक्ष अब गोष्ठ की धुँआस में जल गये। जो तृण और

काष्ठ हम लोगों को समीप में मिल जाते थे अब उन तृण और काष्ठों के लिये दूर की भूमि में खोजना पड़ रहा है। घासों से भरा किनारा थोड़ा रह जाने से यह वन हम लोगों तथा गौवों के लिये आश्रयहीन सा हो गया है, विश्राम करने के लिये खोजने पर कहीं विरला ही वृक्ष मिल जाता है अतः विश्राम करना भी कठिन हो गया है। बहुत बड़ी बस्ता के लोग इन वृक्षों को काट दिये, कुछ तो ठूँठे हो गये, कुछ की जड़ों से दुबारा कंछे निकले इस प्रकार इस इस वन के वृक्ष अकर्मण्य फूल-फल से रहित हो गये हैं। अब इस वन में शीतल मन्द सुगन्ध वायु नहीं चलता अतः तरकारी-चटनी से रहित भोजन की भाँति यह वन आनन्दरहित और स्वादिष्ट फल रहित होने से पक्षियों से भी शून्य हो गया। इसके काष्ठों को और वन में उत्पन्न सागों को बेच देने से तृणों का संचय समाप्त हो गया, अब यह घोष नहीं बल्कि शहर हो गया है। क्योंकि पर्वतों का भूषण घोष है और घोषों का भूषण वन है और वन का भूषण गौवें हैं, गौवें ही हम लोगों की जीविका हैं। इसलिए हम लोगों का कर्त्तव्य है कि तृण और काष्ठ से भरे किसी दूसरे वन में चलें, गौवें भी नवीन घासों को चरना चाहती हैं। अतः सम्पूर्ण व्रजवासी नये तृण वाले वन में चलें, हम लोगों के पास कोई घर-खेत नहीं है कि द्वार पर रहने का बन्धन है हम लोग तो हंस, सारस पक्षियों की भाँति गृह रहित चराउर जहाँ रहे वहाँ विचरें इसी में कल्याण है। यहाँ की घासों पर गोबर-मूत्र कर देने से घासें नुनक्षार रसायन की भाँति हो गई हैं इन्हें हमारी गायें नहीं चरतीं और चरने पर इनका दूध भी हितकारी नहीं होगा।।११-२०।।

हम गलियों की भाँति प्रायः इस तृण रहित वीरान वन में कुछ नवीन लताओं को उगते देख गौवों को चराते फिरते हैं इसलिये हमें गौवों सहित व्रज को दूसरी जगह ले चलना चाहिए। मैं सुनता हूँ कि वृन्दावन नामक वन बड़ा ही रमणीक है जिसमें पर्याप्त घासें और मीठे फल तथा निर्मल जल है। झिल्ली तथा कण्टकों से रहित वन के सभी गुणों से युक्त है और यमुना के किनारे की ओर कदम्ब के वृक्षों से परिपूर्ण है। उसमें शीतल-मन्द पवन चलता है

और वह सब ऋतुओं का शुभ भवन है तथा गोपियों को सुख से घूमने लायक उसमें छोटे-छोटे सुन्दर प्राकृतिक बगीचे हैं। उस वृन्दावन के समीप ही गोवर्धन नामक महान् पर्वत है, वह ऊँचे-ऊँचे शिखरों से नन्दन-वन के पर्वत की भाँति शोभा पाता है। उसके मध्य भाग में एक योजन का ऊँचा वट-वृक्ष है, वह भाण्डीर नाम से आकाश में अपनी शाखाओं द्वारा नीले मेघ के समान शोभा पाता है। उसके बीच से उसके केशों को सँवारती हुई सी यमुना नन्दन-वन की सरिताश्रेष्ठ नलिनी नदी की भाँति बह रही है। हम लोग गौवों को चराते हुए गोवर्धन, भाण्डीर-वट तथा रम्य यमुना नदी को सुख से देखते हुए विचरेंगे। इस गुणरहित वन को छोड़कर वहीं सभी अपनी मड़इयों को लगावें। इसके लिये कोई भय का कारण उत्पन्न कर गोपों को भयभीत करना चाहिये। इस प्रकार महाबुद्धिमान् कृष्ण के कहते और चिन्ता करते सैकड़ों-सैकड़ों मांसाहारी भयंकर भेड़िये उनके रोमों से चारों ओर निकलने लगे।।२१-३१।।

और निकल कर व्रज को उजाड़ने के लिये उस पर आक्रमण करने लगे, गौवों में, बछड़ों में, मनुष्यों में तथा गोपियों में आये हुए भेड़िये को देख कर व्रज में महान् भय उत्पन्न हो गया वे एक साथ पाँच-दस, बीस-तीस तथा सौ-सौ का गोल बाँध कर श्रीवत्स चिह्न से चिह्नित हो श्रीकृष्ण के शरीर से निकलते थे। कृष्ण के समान काले शरीर वाले गोपों के भय को बढ़ाने वाले गो-व्रज को डराते हुए वत्सों का भक्षण कर विचरने लगे। रात्रि काल में बच्चों का अपहरण करते हुए व्रज को उजाड़ने लगे, गोप न वन में ही जा सकते थे न गौवों की ही अच्छी तरह रक्षा कर सकते थे। न कुछ वन से ही ला सकते थे न नदी ही पार कर सकते थे, तब इस प्रकार उस वन में रहते सभी गोप-गोपी उद्विग्न मन हो डरने लगे। वे व्याघ्र के तुल्य पराक्रम वाले दारुण भेड़िये उन्हें चेष्टा रहित कर एक ही स्थान में पिंजरे की भाँति रहने के लिये बाध्य कर दिये।।३२-३८।।



अथ नवमोऽध्यायः ।। ९ ।।

वैशम्पायनजी बोले–इस प्रकार दुर्दम्य वृकों को बढ़ते देख व्रज के सभी स्त्री-पुरुष मिल कर मन्त्रणा करने लगे। हम लोग इस स्थान पर वास न करें कहीं दूसरे वन में चल कर बसें जो हम लोगों के लिये कल्याणप्रद सुख से रहने योग्य हो और मेरी गौवों को भी सुखकर हो। इसमें विलम्ब की क्या आवश्यकता आज ही हम लोग गौवों के साथ, वृकों के द्वारा सारा व्रज जब तक नाश न हो उसके पहले चले जायँ। जब ये धूमरे व लाल अङ्गों वाले, तीक्ष्ण दाँतों वाले, नख से मांस खींच लेने वाले तथा काले मुँह वाले वृक रात्रि के समय गर्जने लगते हैं तो हम लोग डर जाते हैं। और लोग हमारे पुत्र, हमारे भाई, हमारे बछड़े तथा हमारे गौ को भेड़िये ने मार डाला घर-घर में कह कर रोने लगते हैं। इस प्रकार मनुष्यों के रोने और गौवों के हुङ्कार कर डकारने के कारण यहाँ सभा में आये वृद्ध गोप व्रज को उठा अन्यत्र ले चलने की आज्ञा प्रदान करें। तब वृद्ध गोपों का, व्रज के निवास तथा गौवों के हित के लिए वृन्दावन अच्छा पड़ेगा, अतः चल कर वृन्दावन में निवास किया जाय यह निश्चय जान कर नन्दजी ने उनके इस महान् वचन को बृहस्पति की भाँति स्वीकार कर लिया यदि हम लोगों को वृन्दावन चलना ही है तो इसके निश्चय की प्राप्ति अथवा सूचना आज ही सबको मिल जानी चाहिये कि सब लोग सज जाँय विलम्ब न करें। तत्पश्चात् डुग्गी पीटने वाले ने डौंडी पीट कर सबको सूचित कर दिया कि शीघ्र सब लोग गौवें इकट्ठी करो और अपने बर्तन-भड़वे को गाड़ियों पर लाद लो।।१-१०।।

और बछड़ों को यूथ में कर गाड़ियों को जोतो क्योंकि अब यहाँ से वृन्दावन में बसने के लिये चलो। इस प्रकार नन्द के वचनों को सुन कर सब लोगों ने साधु-साधु कहा और वृन्दावन गमन की लालसा से सम्पूर्ण व्रज उठ गया। कोई कहता चलो, कोई कहता उठो, कोई कहता चल रहे हैं, क्या छूटा भली प्रकार सामान देख कर रखो और उठो चलो इस प्रकार गोपों के शब्दों से व्रज में हल्ला मच गया। जिस समय शकट में बैठा शकट वाला वह व्रज

चलने के लिये उठा उस समय सागर तथा व्याघ्र-घोष के समान महान् घोष हो उठा। और आकाश से उतरती तारा पङ्क्ति की भाँति गोपियों की पाँति शिर पर गेंडुल के सहारे घड़ों को रखे निकली। नीले-पीले वस्त्र पहने उठे हुए उरजों वाली मार्ग में चलती हुई गोपियों की पङ्क्ति इन्द्रधनुष की भाँति ज्ञात होती थी। रस्सियों से बोझ बाँधने के बाद भी रस्सियाँ लटकने से, बोझों के भार से लचकते मार्ग में चलते हुए गोप, लटकते हुए वरोहों वाले वट वृक्षों की भाँति शोभा पाते थे। शकटों के समूह से शीघ्रता से चलता हुआ व्रज ऐसा शोभा पाता था कि मानों वायु वेग के झोंकों से जहाज समुद्र की ओर जा रहा हो। क्षण भर में ही वह व्रज का स्थान अरमणीय हो गया, इधर-उधर कुछ सामानों के टूटे-फूटे टुकड़े पड़े दिखायी देते थे जिन पर कौवों का समूह बैठा हुआ था। तत्पश्चात कुछ समय में वह व्रज वृन्दावन में पहुँच गया और गौवों की हित-दृष्टि से लम्बे-चौड़े भूमि पर वासस्थान बनाया गया।।११-२०।।

चन्द्रमा के आकार में गाड़ियाँ खड़ी कर दी गईं, वह व्रज चार कोस चौड़ा तथा आठ कोश लम्बी भूमि पर बसाया जाने लगा। वह स्थान काँटेदार वृक्षों द्वारा चारों ओर से घिरा था, वे काँटे वाले वृक्ष चारों ओर की खाइयों पर स्थित होने से ऊँचे लगते थे और शाखाओं के अग्र भाग से व्रज की रक्षा कर रहे थे। वहाँ गोपगण अपने मन्थन पात्रों को रखने लगे, शिकहरों को टाँगने लगे और इधर-उधर जल से उन्हें धोने लगे। शिकहरों को बाँधने के लिये खूँटी गाड़ने वाले खम्भों को खड़ा करने लगे और शकटों का मुँह अपनी ओर घुमाने लगे। शिकहर टाँगने वाले खम्भों के ऊपर बाँधने के लिये रस्सियाँ ढूँढ़ रहे थे घड़ों को रखने के लिये तृणों की गेडुलियाँ बन रहे थे। इधर-उधर वृक्षों की शाखाओं में पक्षियों को बैठने के लिये स्थान बना रहे थे, गौवों को रहने के लिये स्थानों को साफ कर रहे थे और उलूखलों को भूमि में बैठा रहे थे। प्रातःकाल पूर्व मुख हो देवताओं का जल से सिंचन कर रहे थे और अग्नियों को प्रज्जवलित कर रहे थे कुछ लोग पलँगों पर चमड़ों के बिछौने बिछा रहे थे। जल भरती हुई गोपियाँ वन को देखती तथा शाखाओं को

खींचती चारों ओर शोभित हो रही थीं। युवा और वृद्ध गोप शीघ्रता से टँगारियों के द्वारा झाड़-झंखाड़ों को काटकर साफ कर रहे थे। इस प्रकार वनों से घिरा वह व्रज का स्थान अधिक शोभायमान लगने लगा स्वादिष्ट फलों और जलों से वह वृन्दावन का निवास स्थान बड़ा ही रम्य लगने लगा। इच्छानुसार दूध देने वाली गौवों से और सब प्रकार की पक्षियों के कलरव से वह वृन्दावन इन्द्र के नन्दन वन की भाँति शोभा प्राप्त करने लगा। पहले ही वनचारी भगवान् की कृपा ने गौवों के हित के लिये इस वृन्दावन को कल्याणकारक समझा था। ग्रीष्मकाल के घाममय मास बीत जाने पर अन्तिम मास आषाढ़ के आने पर इन्द्र ने अमृत के समान जल की वर्षा की जिससे घासें विशेष रूप से बढ़ गयीं। लोक का कल्याण करने वाले भगवान् मधुसूदन जहाँ वास कर रहे हैं वहाँ गौवों, बछड़ों और अन्य उनके भक्तों को कैसे कष्ट हो सकता है। श्रीकृष्ण के द्वारा बसाये गये उस वृन्दावन में गौवों सहित युवा बलरामजी सुख से रहने लगे।।२१-३५।।



अथ दशमोऽध्यायः।।१०।।

वैशम्पायनजी बोले-सुन्दर रूप धारण किये वसुदेव के दोनों पुत्र वृन्दावन पहुँचकर बछड़ों के झुण्डों को चराते हुए विचरने लगे। उनके वन में सुख से रहते और गोप बालकों के साथ यमुना में स्नान करते ग्रीष्म काल समाप्त हो गया। तत्पश्चात् मन में काम उत्पन्न करने वाला वर्षा काल आ जाने पर इन्द्र-धनुष से चिह्नित महामेघ वर्षा करने लगे। मेघों से सूर्य छिप गये और घासों से पृथ्वी ढक गई, नवीन जल वर्षाने वायु सहित मेघों के वर्षने से धुली हुई पृथ्वी युवती की भाँति ज्ञात होने लगी, मेघों ने गर्मी को नष्ट कर दिया और अपने जल से पृथ्वी को सन्तुष्ट कर दिया। इन्द्र के वर्षा के नये जल से अवसिक्त गोप-कुल और नष्ट हुए दावाग्नि के धूम वाले वन हरे-भरे लगने लगे। शिखा वाले मयूरों के नाच का समय आ गया, तीव्र बोलने वाले

मदमस्त मयूर नाचने लगे। नीवन वर्षा काल के आने पर प्रिय लगने वाले युवा कदम्ब जो भ्रमरों को आहार देते हैं उनके वृक्ष नये मेघों के छा जाने पर शोभित होने लगे। सूर्य की किरणों से दावाग्नि की भाँति जलता हुआ वन कुटुज-वृक्ष के पुष्पों से हँसने लगा और कदम्ब के पुष्पों से सुगन्धित लगने लगा, मेघों ने गर्मी का नाश कर दिया तथा पृथ्वी जल से सन्तुष्ट हो गयी। मेघ के वर्षे हुए जल से पर्वतों ने जैसे श्वास लिया, पवन के झोकों से अलग-अलग किये हुए बादल रूपी नगर वाला आकाश पृथ्वी के राजा की भाँति लगने लगा।।१-१०।।

कहीं पर कदम्ब के वृक्षों के अधिक फूलने से, कहीं छत्राकों के भूमि पर उग आने से और कहीं पर फूले हुए नीप के वृक्षों से अग्नि की भाँति वन चमकने लगा। वर्षा के जल से सिक्त वायु द्वारा फैलाये हुए पृथ्वी के गध को सूँघ कर लोग कामातुर होने लगे भ्रमरों के गुझार से, मेढकों के निरन्तर ध्वनि से और युवा मोरों के विशेष शब्दों से वन का भू-भाग व्याप्त हो गया। जल के तेजी से घूमने के कारण महाभँवर वाली तथा वर्षा के जल को प्राप्त कर मिट्टियों और वृक्षों को फैलाती हुई नदियाँ फैलने लगीं। निरन्तर वर्षा होने से भीगी हुई छाल वाली डालियाँ प्रयत्न रहित हो थके हुए पक्षियों की भाँति वृक्ष को छोड़ती थीं। जल से गम्भीर वर्षते तथा गर्जते हुए लम्बायमान मेघों के बीच सूर्य स्नान करता हुआ सा ज्ञात होता था। वृक्षों के गिर जाने से और जल भर जाने से पृथ्वी पर मार्ग ढूँढ़ा जाने लगा, हरी-हरी घासों वाली वसुधा शोभित होने लगी। वर्षाती जल के धारों से काटे गय पर्वतों के शिखर वज्राघात से शिखरों वाले पर्वतों के शिखर की भाँति नीचे गिरने लगे। वर्षाती जल क्रमशः नीचे की ओर बहता हुआ छोटे-छोटे गड्ढों को भरता हुआ वन के बड़े-बड़े तालाबों को भरने लगा। मेघों की भाँति गर्जने वाले वाले वनैले हाथी अति वृष्टि के कारण चकित चित्त पृथ्वी पर झुके हुए मेघों की तरह शोभित होते थे।।११-२०।।

वर्षने वाले काले मेघों की घटा को देखकर बलरामजी श्रीकृष्ण से कहने लगे कि–हे श्रीकृष्ण! उड़ते हुए बगुलों की मालाओं से विभूषित बादलों

को देखो जैसे ज्ञात होता है कि आप के साँवले वर्ण को चुराकर ये ऊँचे आकाश में चले गये हैं। तुम्हें निद्रित करने वाले प्रलयकाल की भाँति काले मेघ तुम्हारे शरीर की ही तरह कृष्ण वर्ण के हैं, इनके बीच चन्द्रमा तुम्हारी ही तरह वर्षा वाले ग्राम में बस रहा है। मेघों से आच्छादित अन्धकारमय दुर्दिन का काल उपस्थित होने पर दुर्दिन युक्त आकाश नीले कमलों के दल के समान शोभित हो रहा है। हे श्रीकृष्ण देखो वर्षते हुए काले-काले मेघों से आच्छादित गोवर्धन पर्वत अपनी तृणों से गौवों को बढ़ाने वाला सचमुच गोवर्धन की भाँति ज्ञात होता है। हे कमल दल लोचन! वर्षा के जल को पाकर अपने कोमल-कोमल हरे-हरे पत्तों द्वारा बढ़कर घासें पृथ्वी को ढक रही हैं। वर्षा काल आ जाने पर झरना वाले पर्वतों और वनों तथा फसल युक्त खेतों की शोभा हरियाली की दृष्टिकोण से एक सी जान पड़ती है। शीघ्रगामी वायु के झोकों से शीघ्र चलने वाले मेघ मानों विदेश में रहने वाले लोगों की भाँति शीघ्र घर जाने को उत्सुक हो रहे हैं और आप ही जैसे गम्भीर शब्द करने वाले ढिठाई को प्राप्त हो गय हैं। हे हरे! हे त्रिविक्रम! बाण और प्रत्यंचा रहित इन्द्र-धनुष से विभूषित यह अन्तरिक्ष ब्रह्मलोक नापते समय आपके पैरों के बीच पड़ गया था।।२१-३०।।

श्रावण मास में आकाश में विचरता हुआ सूर्य शोभित नहीं होता है, मेघ-राशि में स्थित हो जैसे ठंडी धूप को फैलाता है, वैसे ही किरणों वाला होकर भी कीर्ण रहित सा प्रतीत होता है। समुद्र-समूह की भाँति निरन्तर जल-वर्षा कर आकाश और पृथ्वी को एक कर दिया है। पृथ्वी पर अति वृष्टि होने के कारण नीप अर्जुन तथा कदम्ब पुष्पों के कामोद्दीक गन्ध से मिश्रित वायु कोलाहल करता हुआ बह रहा है। चारों दिशाओं में फैलकर महावृष्टि करने वाले मेघों से युक्त आकाश मानों निस्सीम तथा अगाध सागर से युक्त हो ऐसा शोभित हो रहा है। निर्मल जलधारा रूपी बाणों, विद्युत रूपी कवचों तथा इन्द्र-धनुष रूपी आयुध को धारण किया हुआ आकाश ऐसा ज्ञात हो रहा है मानो युद्ध करने के लिए कोई वीर सज गया हो। हे श्रेष्ठ मुख वाले श्रीकृष्ण! पर्वतों के शिखर तथा वन-वृक्षों के ऊपरी भाग घने बादलों से ढके

हुए से प्रतीत होते हैं। सलिल को गिराने वाले काले मेघों से व्याप्त आकाश, जल गजों की सेनाओं से भरे हुए समुद्र की भाँति ज्ञात होता है। समुद्र में तूफान उत्पन्न कर देने वाला तथा चंचल पौधों को झकझोर देने वाला, बड़े-बड़े बूँदों से युक्त शीतल वायु प्रचण्ड रूप से बह रहा है। जब रात्रिकाल में मेघ बरसने लगते हैं तो चन्द्रमा से विहीन रात्रि में तथा दिन में सूर्य के छिप जाने पर आकाश तथा दिशायें अच्छी नहीं लगती हैं। वायु से भरे भाथियों की भाँति चारों ओर चलते हुए मेघों से भरा आकाश चेतन सा प्रतीत होता है, प्रजा को दिन और रात्रि एक सी ज्ञात होती है।।३१-४०।।

हे श्रीकृष्ण! देखो घाम से रहित और वर्षाती जल से शोभित वृन्दावन कुबेर के चैत्र रथ बन की भाँति प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार वर्षा-ऋतु का गुण वर्णन करते हुए श्रीकृष्णजी के बड़े भाई बलराम व्रज को चले गये। आपस में वार्तालाप करते हुए कृष्ण-बलराम अपने सम वयस्क गोप-बालकों के साथ वृन्दावन में विचरते थे।।४१-४३।।



अथ एकादशोऽध्यायः।।११।।

वैशम्पायनजी बोले-एक बार इच्छानुसार रूप धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण बलराम के बिना ही वृन्दावन में घूमने लगे वे काकपक्ष की भाँति बालों को सवारे श्याम वर्ण, कमलनेत्र चन्द्रमा के लक्षण की भाँति वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न धारण किये थे। उनके हाथ बाजूबन्द धारण करने से फूले हुए कमल की भाँति थे और सुकुमारावस्था के कारण उनका मुख लाल कमल की भाँति था। वे पैदल चलते समय अपनी स्वाभाविक चाल से बड़े शोभित हो रहे थे। वे मनुष्यों को प्रसन्न करने वाले दो महीन पीले वस्त्र धारण किये सन्ध्या-कालीन मेघ के समान शोभा पा रहे थे। वे देवताओं से पूजित जन-कल्याण की इच्छा रखने वाली अपनी बाहुओं में बछड़ों को हाँकने के लिये दण्ड और रस्सी लिये बछड़ों को हाँकने में व्यग्र थे। बाल्यकाल होने

से सुन्दर लाल-लाल ओष्ठों से युक्त उनका मुख फूले हुए लाल कमल के सदृश ज्ञात होता था तथा कमल पुष्प की-सी उससे गन्ध भी निकल रही थी। लटकते हुए घुँघराले बालों से उनका मुखमण्डल भ्रमर-पङ्क्ति से आच्छादित कमल की भाँति प्रतीत होता था। उनके शिर पर अर्जुन तथा कदम्ब के पुष्पों तथा अंकुरों से गुथी माला आकाश में नक्षत्रों की भाँति शोभित हो रही थी। कण्ठ के अधो भाग में लटकने वाली उस माला से वे वीर श्रीकृष्ण जल बरसने वाली मेघ-माला से युक्त साक्षात् मूर्तिमान् आकाश की भाँति शोभित हो रहे थे। मोर का एक निर्मल पंख उनके कण्ठ में बँधा था, वह मन्द-मन्द वायु से हिलता हुआ अत्यन्त ही शोभित हो रहा था।।१-१०।।

कहीं पर गाते, कहीं पर क्रीड़ा करते, कहीं-कहीं पर पत्तों को मोड़कर कानों को सुख देने वाला बाजा बजाने लगते थे। वन में गये हुए युवा की भाँति श्रीकृष्ण जी गौवों को प्रसन्न करने के लिये सुमधुर वंशी बजाया करते थे। मेघ के समान श्यामवर्ण भगवान् गौवों के बीच बिचरते हुए चित्र-विचित्र पुष्पित मनोहर लताओं के तले आनन्द करते थे। जिन लताओं में मोर बोल रहे हैं तथा जो पुष्पों की मादक सुगन्धि से काम का उद्दीपन करने वाली हैं और जो मेघों की प्रतिध्वनि द्वारा चारों ओर ध्वनित हैं। उनके बीच के मार्ग हरी घासों से ढक गये हैं वे केला के घारों का आभूषण धारण की हैं, उनके अन्दर से नये-नये पत्ते अंकुरित हो रहे हैं तथा उनसे बरसाती नया जल टपक रहा है। उनके पुष्पों के केसरों की नवीन गन्ध के द्वारा स्पर्शित निरन्तर चलने वाला वायु कामिनी के श्वास की भाँति प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार लताओं के बीच मद-भरी सुगन्धित वायुओं का सेवन करते तथा वृक्ष समुहों से स्पर्शित ताजी हवा का सेवन करते हुए प्रसन्नचित्त सुन्दर लता के कुञ्जों में विचरते थे। वे एक बार इसी तरह गौवों के साथ भ्रमण करते हुए वृक्षों में श्रेष्ठ एक विशाल वट के वृक्ष को देखे। जो अपनी शाखाओं से पृथ्वी पर मेघ की भाँति छाया कर अन्धकार किये हुए था। उसकी ऊँचाई आधे आकाश तक ऐसी प्रतीत होती थी मानों शिखरों को धारण कर कोई पर्वत खड़ा हो। चमकते हुए तीन विचित्र पंखों वाले बहुत ही मयूरों से वह सेवित था, वह लाल-लाल घने

फलों से इन्द्र-धनुष सहित प्रलय कालीन मेघ की भाँति शोभा पा रहा था।।११-२०।।

वह लताओं के फूलों से विभूषित वट-वृक्ष भवन की तरह ज्ञात होता था, पवन और मेघ को धारण करने वाले वट-वृक्ष से अनेकों बरोहें पृथ्वी पर लटकी थीं। वह आस-पास के वृक्षों पर अपना आधिपत्य किये हुए था और उन्हें वर्षा और धूप से बचाता हुआ शुभ कर्म कर रहा था। पर्वत के अगले भाग की तरह वट-वृक्ष भाण्डीर नाम से विख्यात था, भगवान् श्रीकृष्ण उसे देख उसके नीचे निवास करने का विचार किये। हे अनघ! वह कृष्ण अपने सम-वयस्कों के साथ वहाँ स्वर्ग की भाँति रमण करने लगे। वहाँ खेलने की इच्छा वाले श्रीकृष्ण को गोप-बालक वन में खेलने योग्य अनेक खेलों के साधनों द्वारा खेलाने लगे। कुछ ग्वाल-बाल प्रसन्न होकर गीत गाने लगे तथा अन्य गोप-बालक कृष्ण के प्रेम में विभोर होकर उन्हीं का चरित्र गाने लगे। गोपालों के इस प्रकार गाने पर पहले उन शक्तिमान् ने पत्तों का बाजा बजाया फिर बंशी बजाई पश्चात् तुम्बी की एकतारा बजाने लगे। एक बार गो तथा वृषों की भाँति बड़े नेत्रों वाले इस प्रकार गौवों को चराते हुए लताओं से विभूषित वृक्षों वाले यमुना के तीर पर जा निकले। वहाँ तरङ्ग रूपी टेढ़े कटाक्षपातों से टेढ़े किनारों वाली, जल-स्पर्श रूप मुखस्वाँसों वाली तथा लाल और नीले कमलों वाली यमुना नदी को देखा। जो सुन्दर तीर्थों, मीठे जलों तथा गहरे कुण्डों वाली एवं अति वेग से बहने वाली थी।।२१-३०।।

जो हंस तथा कारण्डव पक्षियों एवं सारसों के द्वारा निनादित तथा साथ चरने वाले चक्रवाकादिकों से सेवित थी। जो जल में उत्पन्न होने वाले मछली आदि जलचरों से भरी थी और जल से उत्पन्न शीतलादि गुणों से तथा कमल एवं सैवालों से विभूषित थी उसका जल नील कमलों जैसे नीला ज्ञात होता था। बहते हुए धार उसके चरण, जल से त्यक्त स्थल श्रोणी मण्डल, भँवरें गम्भीर नाभि तथा कमल रूपी रोमावलियों से विभूषित थी किनारों के कटाव रूपी उदर वाली, तरंग रूपी उदर रेखाओं वाली, फेन रूपी हर्ष से

हँसमुख हंसों रूपी हँसी से हँसने वाली थी। मनोहर लाल कमलों रूपी ओष्ठ वाली तथा कमल रूपी दृष्टि वाली लजीली स्त्री की भाँति अपने भौंहों को नीचे किये थी, तालाबों रूपी विस्तृत ललाटों वाली एवं सेवार रूपी शिर के बालों वाली थी। चक्रवाकों रूपी स्तनों वाली, तीर पर विस्तृत भू-भाग रूप मुख वाली, लम्बे-लम्बे स्रोतों रूपी भुजा वाली, दोनों तटों में जल द्वारा अन्दर प्रविष्ट रूपी कानों वाली थी। कारण्डव रूपी कुण्डलों वाली शोभा युक्त कमल के समान नेत्रों वाली तटों पर उत्पन्न वृक्षों रूपी आभूषणों को धारण किये मत्स्य-मण्डल रूपी करधनी पहने थी। जल में विस्तार रूप से फैले सैवालों तथा कमलों रूपी रेशमी साड़ी को पहने थी जल से उत्पन्न बुल्लों रूपी मोतियों का नुपूर धारण की थी, सुवर्ण के समान चमकते काश के फूलों की चादर ओढ़े हंसों रूपी हँसी से हँस रही थी। भयंकर मगरों को चन्दन रूप से अपने अङ्गों में लगाये थी, कछुआ रूप बिन्दियों से आभूषित थी, पशुओं के जलप्याऊ घाटों रूपी हारों वाली तथा स्नान करते हुए मनुष्य रूप उभड़े हुए स्तनों वाली थी। पशुओं के जल पीने से जूठी जल वाली जिसके किनारे महात्माओं के आश्रमों से व्याप्त हैं और जो समुद्र की पटरानी है ऐसी यमुना को चारों ओर से देखते श्रीकृष्णजी।।३१-४०।।

उसके रुचिर किनारों पर घूमते हुए यमुना को शोभित करने लगे तब इस प्रकार तट पर विहरण करते उन्होंने एक उत्तम तालाब देखा। जो चार कोस तक चारों ओर जल-विस्तार से फैला था जिसको पार करना देवताओं के लिये भी कठिन था वह अपने अगाध जल से बड़ा गम्भीर था मानों कम्प रहित कोई सागर हो। वह जलचर जन्तुओं से त्याग दिया गया था एवं सारस चक्रवाकादिकों से भी शून्य था और अगाध जल से परिपूर्ण वह मेघों से परिपूर्ण आकाश की भाँति प्रतीत हो रहा था। उसके किनारे दुःख से चलने योग्य थे क्योंकि उसके किनारे सर्पों की बहुत बिलों से युक्त थे और वह ह्रद सर्पों की विषाग्नि के धूमों से व्याप्त हो रहा था। उसका जल पशुओं को भी पिलाने योग्य नहीं था, कोई भी जीव जल पीने की इच्छा वाला उसका जल नहीं पीता था और देवताओं ने भी उसका उपभोग करना त्याग दिया था। और

उसके ऊपर के आकाश मार्ग को भी आकाश में उड़ने वाले पक्षियों ने त्याग दिया था, उसके जल में तृण भी गिर जाने पर उसके तेज से अग्नि की भाँति जल जाता था। उसके चारों ओर चार कोस तक देवताओं का भी जाना कठिन था क्योंकि उसके विष रूप अग्नि की ज्वाला से वहाँ के वृक्ष जल गये थे। व्रज के उत्तर एक कोस पर व्याधि रहित उस बृहद् तालाब को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण चिन्ता करने लगे कि जल से कान्तिमान् इतना बड़ा किसका तालाब है, ज्ञात होता है कि कालिय नाग समुद्र को छोड़कर इसी तालाब में बस रहा है, जिसे मैंने पहले से सुन रखा है।।४१-५०।।

सर्वभोगी गरुड़ के भय से भागा हुआ वही कालिय इस सागर तक बहने वाली यमुना के सम्पूर्ण जल को दूषित कर रहा है। उसी सर्पराज कालिय के भय से यहाँ पर कोई नहीं आता है और पकी घासों वाला यह वन कठिन हो रहा है। लताओं से युक्त भयंकर वृक्ष तथा नाना प्रकार की लताओं एवं द्रुमों से व्याप्त वन सर्पराज के उचित कार्य करने वाले मंत्रियों से रक्षित है। यह वन आकाश की भाँति सुन-सान एवं विष मिले अन्न की भाँति दुःस्पृश हो रहा है। क्योंकि कालिय के अनुकूल आचरण करने वाले इसमें विषधर चारों ओर घूम कर रक्षा कर रहे हैं। इस ह्रद का दोनों तट शैवाल और कमलों से तथा छोटी-छोटी लता चढ़े हुए वृक्षों से बहुत सुन्दर ज्ञात हो रहे हैं अतः इन दोनों तटों पर मार्ग बनाना चाहिए। ऐसा करने के लिये मुझे पहले सर्पराज का निग्रह करना चाहिये जिससे की मेघ के समान यमुना का श्याम वर्ण जलाशय शुद्ध होकर जल पीने योग्य हो जाय। इस नाग का दमन कर व्रज के उपभोग के योग्य तथा सुख से चलने-फिरने योग्य एवं इसके किनारे के तीर्थों को सुखप्रद बनाने के लिये ही मेरा व्रज में जन्म रूप आना हुआ है, ऐसे ही कुमार्ग पर चलने वाले दुष्टों के निग्रह के लिये मैं इस व्रज में बस रहा हूँ। इस प्रकार शिशु लीला के बहाने से कदम्ब के वृक्ष पर चढ़कर और इस भयंकर ह्रद में कूदकर इस कालिय का दमन करूँगा, इस प्रकार करने से लोक में मेरे बाहु-बल की प्रसिद्धि होगी।।५१-६०।।



अथ द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

वैशम्पायनजी बोले कि-वे श्रीकृष्णजी ऐसा निश्चित कर यमुना के तीर पर जा चारों ओर से कमर को कसकर बाँध कर चपलता पूर्वक प्रसन्न हो कदम्ब की ऊँची डाल पर चढ़ गये। उन कमल नेत्र घनश्याम के कदम्ब की शाखा से ह्रद में कूदने पर शब्द हुआ और यमुना का ह्रद क्षुभित हो काँप उठा तथा खण्ड-खण्ड होते हुए मेघ के समान अपने किनारों को जल से प्रक्षालित कर दिया। श्रीकृष्ण के कूदने के शब्द से सर्प का महान् भवन हिल उठा तब तो क्रोध से लाल-लाल आँखें किये व्याकुल दृष्टि से देखता हुआ नाग जल के भीतर से ऊपर निकल आया। सर्पराज कालिय मेघ माला की भाँति काले रंग का था क्रोध से उसकी आँखे लाल हो रही थीं। उसके पाँच मुख थे, उसकी जीभें चंचलता से लप-लपा रही थीं वह अग्नि के समान मुखों से अग्नि ज्वाला की भाँति फुफुकार छोड़ रहा था इससे पाँचो शिर मोटे होकर भयंकर लग रहे थे। अग्नि के समान अपने सर्प शरीर से उसने ह्रद को भर दिया उस समय वह क्रोध से काँपने की तरह तथा अग्नि की लपटों की भाँति जलता सा प्रतीत होता था। उसके जलते हुए क्रोध से ह्रद का जल खौलता सा ज्ञात होने लगा और यमुना भयभीत की भाँति उल्टी धारों से बहती ज्ञात होती थी। श्रीकृष्ण को ह्रद में आकर शीशु-लीला से क्रीड़ा करते देख उसके क्रोधाग्निपूर्ण मुखों से फुफुकार निकलने लगी। उस पन्नग-राज के मुख से धूम सहित अग्नि की प्रलय कालीन ज्वालायें निकलने लगीं जिससे किनारे के वृक्ष जल कर राख हो गये।।१-११।।

उसके पुत्र, स्त्रियाँ और भी अन्य जो सेवक थे वे भी अपने-अपने मुखों से विष से उत्पन्न घोर धूम सहित अग्नि का वमन करने लगे इस प्रकार अमित बल वाले सर्प श्रीकृष्ण के ऊपर टूटे पड़े। सर्पों ने उन्हें बाँध लिया तब श्रीकृष्ण सर्पों के बन्धन में पड़कर हाथ-पैर से यत्न रहित हो पर्वत की भाँति अचल हो गये। वे सर्प-पति अपने विष की थैली वाले दातों से उन्हें डसने लगे पर वे जल मिश्रित विषों से उन बलवान् श्रीकृष्ण को मार न सके। इसी बीच में

गोप-बालक भयभीत होकर रोते और अश्रु से गद्गद वाणी से चिल्लाते हुए व्रज में भाग गये। वहाँ जाकर गोप-बालकों ने कहा–शीघ्र आओ शीघ्र आओ विलम्ब न करो श्रीकृष्ण आज भूल से कालिय ह्रद में कूद पड़े हैं और उन्हें सर्पराज कालिय काट रहा है। नन्द गोप से और बलराम जी से शीघ्र निवेदन करो कि श्रीकृष्ण को कालिय नाग महा ह्रद में खींचे जा रहा है। वज्रपात के समान इस वचन को सुनकर नन्द गोप अत्यन्त दुःखी हो गिरते-पड़ते तालाब पर गये। पश्चात् लड़के बच्चों और युवतियों एवं वृद्धों सहित युवा बलराम जी भी कालिय के क्रीडा-स्थल ह्रद पर गये। नन्द प्रमुख सभी-गोप आँखों में आँसू भर कर ह्रद के तट पर खड़े होकर हाहाकार करने लगे।।१२-२०।।

असमर्थता के कारण लज्जित तथा अघटित घटना से विस्मित और सर्प बन्धन में पड़े श्रीकृष्ण को देख शोक से बार-बार दुःखी होने लगे, कोई हाय-हाय कोई मैं कुछ भी इनका उपकार करने में समर्थ नहीं हूँ अतः मुझे धिक्कार है, ऐसे कहने लगे। कोई हा हम सब मर गये ऐसा कहते हुए अत्यन्त दुःखी हो रूदन करने लगे, स्त्रियाँ यशोदा से कहने लगीं कि हाँ तू मर गई इस प्रकार उनकी निन्दा करने लगीं कि जो तुम अपने प्रिय पुत्र को सर्पराज के वश में पड़ा देख रही हो वह सर्प बन्धन से छटपटाता हुआ मृतक की भाँति खींचा जा रहा है।हे यशोदे! तुम्हारा ह्रदय निश्चय ही पत्थर का ज्ञात होता है जो इस प्रकार पुत्र की दुर्दशा को देख कर भी नहीं विदीर्ण हो जाता। ह्रद के समीप पुत्र के मुख पर दृष्टि लगाये दुःखी तथा निश्चेतन अवस्था में स्थित नन्द गोप को हम लगो देख रही हैं। हम लोग यशोदा के साथ इस सर्प के वास-स्थान ह्रद मे प्रवेश कर जायेंगी। सूर्य के बिना दिवस और चन्द्रमा के बिना रात्रि तथा वृष के बिना गौवें जैसे नहीं शोभतीं वैसे ही श्रीकृष्ण के बिना व्रज नहीं शोभित होगा। जिस प्रकार वत्स को वन में छोड़ कर गायें गोष्ठ में नहीं जातीं उसी प्रकार हम लोग भी श्रीकृष्ण को यहाँ छोड़ कर व्रज में नहीं जायेंगी इस प्रकार व्रजाङ्गनाओं और व्रजवासी गोपों का तथा नन्दजी का विलाप एवं यशोदा का रोना सुनकर एक तरह के शरीर ज्ञाता एक ही दो जगह में विभक्त संकषर्ण

बलराम जी क्रोध सँभाल कर अविनाशी श्रीकृष्ण से बोले। हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे महाबाहो, हे गोपों और नन्द की प्रसन्नता बढ़ाने वाले! विष रूप आयुध को धारण करने वाले इस सर्प का शीघ्र ही दमन कर डालो।।२१-३०।।

हे विभो! ये आप के बान्धव आपको मनुष्य मान आप में मनुष्य बुद्धि रखने वाले सभी करुणा कर विलाप कर रहे हैं। तब इस प्रकार हे कृष्ण, सम्बोधित कर कहे गये बलराम के वचनों को सुन कर श्रीकृष्ण जी ने पराक्रम कर नाग-बन्धन का भेदन कर अपने हाथों को निकाल लिया। फिर वे अपने हाथ से जल में उठे उसके शिर को नीचे कर पैर से उसके ऊपर आक्रमण कर फण पर चढ़ गये। सहसा वे उसके निचले शिर पर चढ़ गये पश्चात् उसी फण पर स्थित होकर मनोहर बाजूबन्दपहने नाचने लगे। श्रीकृष्ण के मर्दन करनेपर वह भुजङ्गम अपने फण को हिलाया-डुलाया नहीं वरन् शान्त भाव से स्थित रहा और अपने पाँचों मुखों से रुधिर छोड़ते हुए बड़ी कातर वाणी में बोला। हे श्रीकृष्ण! मैंने आपको न जान कर ही इस प्रकार का क्रोध दिखलाया है हे श्रेष्ठ मुख वाले! मैं आपके द्वारा दण्डित हो विष रहित हो गया, अब आप की शरण में हूँ। सो आप आज्ञा प्रदान करें कि मैं अपने पुत्रों तथा बान्धवों सहित क्या करूँ, किसके वश में रहूँ अर्थात् कहाँ पर निवास करूँ मुझे जीविका के साथ प्राण-दान दीजिये। तब सर्प के अरि गरुड़ की ध्वजा वाले सर्प को पाँचों फणों से नतमस्तक देख कर क्रोध रहित हो भगवान् सर्पराज से बोले तुमको मैं इस यमुना के जल में अब नहीं रहने दूँगा, हे सर्प! अब तू अपने भार्याओं तथा बान्धवों के साथ समुद्र के जल में चला जा। यदि फिर मैंने तुम्हारे लड़कों या भृत्यों को इस ह्रद में या यमुना के जल में देख लिया तो निश्चय जानो वह मेरे हाथों मारा जायगा।३१-४०।।

तुम्हारे रहने से यह स्थान दूषित हो रहा है, तुम्हारा विष मृत्यु के मुख में झोक देने वाला है अतः तू महासागर को चला जा कि यह कल्याणकारक जल शुद्ध हो जाय। मेरे पैरों के चिह्न को तेरे मस्तक पर देख कर सर्पों का शत्रु गरुड़ तुम्हारे ऊपर प्रहार नहीं करेगा। ऐसा सुन कर सर्पश्रेष्ठ कालिय

अपने फणों से श्रीकृष्ण के चरणों को चूम कर सब गोपों के देखते-देखते उस ह्रद से अलक्षित हो गया। इस प्रकार पराजित सर्प के चले जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण ह्रद से निकल कर तट पर स्थित हो गये तब विस्मित होकर गोपों ने उनकी स्तुति तथ प्रदक्षिणा की। और सभी वन-चारी गोप नन्दगोप से कहने लगे कि तुम इस प्रकार के पुत्र से धन्य तथा अनुगृहीत हो। हे अनघ! आज से हम गोपों तथा गौवों एवं गोष्ठ के आपत्ति के समय यह विशाल नेत्र वाले समर्थ श्रीकृष्ण ही शरण हैं। मुनि सेवित यमुना का सम्पूर्ण जल शुद्ध हो गया, अब इसके तट पर मेरी गौवें सुखपूर्वक सदा विचरण करेंगी। हम गोप व्रज में छिपे इन महात्मा श्रीकृष्ण को राख से ढकी अग्नि की भाँति नहीं जानते थे पर अब जान गये। इस प्रकार विस्मित हो श्रीकृष्ण की प्रसंशा करते हुए व्रज को चले गयेकि जैसे देवता प्रसन्नतापूर्वक चैत्ररथ वन को चले जाते हैं।४१-४९।।



अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

वैशम्पायनजी बोले–यमुना के महाह्रद से कालिय सर्प को हटा कर उसी तट पर राम-केशव साथ में विचरते हुए गौवों और गोपालों के साथ वासुदेव के पुत्र दोनों भाई रमणीक गोवर्धन पर्वत पर चले आये। और गोवर्धन पर्वत के उत्तर यमुना के तट पर स्थित विशाल ताल-वान को देखा। वे बलराम और श्रीकृष्ण वृषभ के बछड़े की तरह उद्धत ताड़-पत्र से फैले रम्य ताल-वन में परम प्रसन्न होकर खेलने लगे। उस ताल-वन की भूमि ढेलों और पाषाणों से रहित समतल थी तथा उसमें कुश जमे थे, उसकी मिट्टी अत्यन्त काली एवं सुन्दर थी। साँवले-साँवले फलों से तालों की फल वाली शाखायें ऊपर उठी हुई थी। इस प्रकार फल-शाखों को आगे कर वे ताल-वृक्ष सूण्ड उठाये हाथियों की भाँति शोभित हो रहे थे। वहाँ बोलने वालों में श्रेष्ठ दामोदर कहने लगे कि अहो! पके ताल-फलों से यह वन-भूमि वासित हो गयी है।

हे आर्य! सुगन्धित श्याम रंग तथा रस वाले इन फलों को हमें शीघ्र ही गिराना चाहिये। जब इसकी सुगन्धि ऐसी है कि नाक तृप्त हो जाती है तो रस इसका निश्चय अमृत के समान हेगा-ऐसा मेरा समझना है। इस प्रकार दामोदर के वचन सुनकर बलराम हँसते हुए ताल को हिलाकार पके-पके फलों को गिराने लगे।।१-१०।।

जो ताल-वन बड़ा ही दुरतिक्रम, मनुष्य से सेवन करने योग्य नहीं था, वह पुरुषों को खाने वाले राक्षसों के घर के समान सुनसान ज्ञात होता था। वहाँ पर गर्दभ रूप धारण कर धेनुक नाम का राक्षस गर्दभों के महान् झुण्ड के साथ रहता था। वह दुर्बुद्धि मनुष्य, पक्षी तथा अन्य जानवरों को त्रास देता हुआ गर्दभ के रूप में भयंकर ताल-वन की रक्षा करता था। ताल-फल गिराने से जो शब्द हुआ तथा ताल-वृक्ष को झकझोरने से जो शब्द हुआ उसे सुन कर वह क्रोध में भर गया और वैसे ही वह उस शब्द को न सह सका कि जैसे हाथों के ताल को हाथी नहीं सहता। वह क्रोधित हो शब्दों का अनुमान लगाता घमण्ड से भर कर अपने गर्दन के बालों को खड़ा किये रेंकने में कुशल खुरों से पृथ्वी को खोदता चकित नेत्र वाला चल पड़ा। वह अपने पूँछ को ऊपर उठाये था, रेंकने से फैला हुआ मुख वाला वह दूसरे यमराज की भाँति प्रतीत हो रहा था, आने के साथ बलरामजी को उपस्थित देखा और ताल-फलों को भूमि पर देख ध्वजा के समान ऊँचे अविनाशी बलरामजी को दाँत रूपी आयुध वाला वह दुष्ट धेनुक अपने दाँतों से काट लिया और पीछे की ओर मुँह करके अपने पिछले लातों से उस दैत्येन्द्र ने आयुध रहित बलराम की छाती पर मारा। तब तो बलराम जी उन्हीं दोनों पैरों को पकड़ लिये और मुख तथा कन्धों सहित घुमाते हुए उसे ताल-वृक्ष के ऊपर टकरातेहुए घुमाने लगे। उसके वक्षस्थल, कमर, गर्दन तथा पीठ टूट गये और उसका रूप बिगड़ गया, वह धेनुक ताल-फलों के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ा।।११-२०।।

प्राण निकल जाने से उसे शोभारहित भूमि पर गिरा देख कर बलराम जी उसके स्वजातीय अन्य गर्दभों को भी ताल-वक्षों पर पटक-पटक कर मार

डाले। ताल-वन की भूमि गर्दभों तथा श्याम रंग के ताल-फलों से वैसे ही ढक गई कि जैसे शरद ऋतु में मेघों से आकाश ढक जाता है। उस गर्दभ रूपधारी धेनुक के सहायकों सहित विनष्ट हो जाने पर रमणीक ताल-वन और रमणीक हो गया। राक्षसों का भय समाप्त हो जाने से वह वन शुद्ध होकर स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। उस ताल-वन में गोवों सुख से चरने लगीं। पश्चात् वन में विचरने वाले गोप भी शोक, भय तथा परिश्रम रहित हो उस ताल-वन में चारों ओर भ्रमण करने लगे। तत्पश्चात् गौवें जब चरने लगीं तब उसके बीच में गजेन्द्र के समान पराक्रम वाले श्रीकृष्ण-बलराम पेड़ के पत्तों का आसन बनाकर बैठ गये।



अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

वैशम्पायनजी बोले कि इसके बाद वसुदेव-पुत्र कृष्ण-बलराम हर्षित हो ताल-वन को छोड़ पुनः भाण्डीर नामक वट वृक्ष के समीप आ गये। वे बढ़ी हुई गौवों को चराते हुए तथा विस्तार से फैले हुए बड़े-बड़े वनों को देखते हुए एवं अपने भुजाओं पर ताल ठोकते, गाते, वृक्षों के फलों को बीनते तथा बछड़े वाली गौवों को उनका नाम लेकर पुकारते हुए वे परम तपस्वी आ रहे थे। वे अपने कन्धों पर भोजन की समग्री शिकहर पर रख बहँगियों को ढो रहे शुभ लक्षणों वाले वक्षस्थल पर वनमाला धारण किये छोटी-छोटी सींघों वाले बछड़ों की भाँति उत्साह से भरे थे। सुवर्ण तथा अञ्जन के चूर्ण के समान चमकने वाले एक ही सदृश कपड़े पहने इन्द्रधनुष युक्त श्वेत तथा कृष्ण मेघ के समान शोभा पा रहे थे। वे मार्ग में कुश के पुष्पों से मनोहर कर्णफूल बनाते हुए विशेष वेष धारण करने वाले हो रहे थे। वे विजयी राम-कृष्ण गोवर्धन पर्वत के अनुचर की भाँति उसके समीप अपने अनुचरों सहित लोकप्रसिद्ध क्रीड़ायें करने लगे। वे दोनों सुर पूजित मानुषी दीक्षा को धारण किये फरी-कलैया को खेलते हुए वन में विचरने लगे। वे भाण्डीर वन में बाल-क्रीड़ा

करते-करते अनेक शाखाओं से युक्त वृक्ष-श्रेष्ठ भाण्डीर वट को पा गये। वहाँ पर वे हिलने वाली बहँगियों के दण्डों से खेलने लगे और पत्थरों के टुकड़ों को उठा-उठा फेंककर कसरत करने लगे।।१-१०।।

और गोपालों के साथ युद्ध के विविध दाँव-पेंचों का अभ्यास करते हुए सिंह के समान पराक्रम वाले राम-कृष्ण प्रसन्नतापूर्वक इच्छानुसार विचरने लगे। उनको इस प्रकार खेलते देख कर राम-कृष्ण के वध की इच्छा से छिद्रान्वेषण करने वाला असुरोत्तम प्रलम्बासुर अच्छा अवसर प्राप्त कर उनके समीप आया। वह गोपालों जैसा वेष धारण कर वन-पुष्पों की मालाओं से विभूषित हो हास्ययुक्त क्रीड़ाओं से उन वीरों को लुभाने लगा। वह दानवोत्तम प्रलम्बासुर अमनुष्य होता हुआ भी मनुष्य का शरीर धारण कर गोपालों के बीच निःशङ्कभाव से खेलने लगा। देवताओं के शत्रु उस गोपाल वेषधारी प्रलम्ब को अपना बान्धव समझते हुए सभी गोपबाल उसके साथ खेलने लगे। वह उनके वध का अवसर ढूँढ़ता हुआ कृष्ण और बलराम पर क्रूर दृष्टि रखने लगा। भगवान् श्रीकृष्ण को अद्भुत् पराक्रमी होने के कारण अवध्य समझ कर बलराम के वध का वह दानवोत्तम प्रयत्न करने लगा। हरि घोड़चढ़ैया नामक बालकों का खेल खेलने लगे। दो-दो ग्वालबाल एक साथ दौड़ने लगे। श्रीकृष्ण गोपपुत्र श्रीदामा के साथ और अनघ बलराम प्रलम्बासुर के साथ और अन्य गोप बालक अन्य गोपालों के साथ एक दूसरे को पिछाड़ देने की इच्छा से बड़ी तेजी से लाँघते हुए दौड़ने लगे।।११-२०।।

इस खेल में श्रीकृष्ण ने श्रीदामा को बलराम ने प्रलम्ब को इस प्रकार श्रीकृष्ण के पक्ष वाले गोपालों से अन्य गोपाल हार गये। तब हारे हुए गोपाल जीतने वालों को कन्धों पर चढ़ाकर प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र चलते हुए ढोने लगे और ढोने की अन्तिम सीमा भाण्डीर नामक वट वृक्ष तक पहुँच पुनः वापस आने लगे। बलरामजी को वह दानव शीघ्रता से अपने कन्धे पर चढ़ा कर ले चला वह उल्टा मुख किये चन्द्रमा को लेकर मेघ की भाँति भागा जा रहा था। वह बलराम जी का भार न सह सकने के कारण अपने काले शरीर को इन्द्र के प्रलयकालीन साम्वर्तक मेघ की तरह बढ़ाया। और वह प्रलम्ब भाण्डीर वट

वृक्ष की भाँति विशाल तथा दग्ध अञ्जन पर्वत के समानकाला अपने शरीर को दिखलाया। पाँच शिखरों से युक्त सूर्य के समान चमकने वाला मुकुट धारण करने से उसका मुख से देदीप्यमान हो रहा था तथा वह सूर्य की किरणों के आक्रान्त काले मेघ के समान शोभा पा रहा था। वह विशाल मुख, लम्बी गर्दन और बालों से यमराज के समान भयानक लग रहा था। उसकी आँखें शकट की पहिया की आँखों जैसी थीं। वह अपनी चरणों से मानो पृथ्वी को दबाता हुआ चल रहा था। वह लम्बी मालाओं का आभूषण तथा लटकते हुए वस्त्रों से भूषित हो रहा था। वह वीर प्रलम्बासुर भागते हुए लम्बे वर्षते हुए मेघ के समान प्रतीत होता था। वह बड़े वेग से बलराम जी का हरण किये जा रहा था जैसे प्रलय काल में लोकों का हरण कर यमराज समुद्र में डुबोने को ले जाता हो। प्रलम्बासुर के द्वारा हरण किये जाते बलरामजी साम्वर्तक मेघ से ढोये गये चन्द्रमा की भाँति ज्ञात होते थे।२१-३०।।

इस प्रकार प्रलम्ब को देख कर बलराम जी सन्देह में पड़ गये और दैत्य के कन्धे पर चढ़े हुए ही श्रीकृष्ण से इस प्रकार बोले हे श्रीकृष्ण! यह पहले तो मनुष्य बनतकर अपनी महती माया को दिखलाया फिर ऊँचे पर्वत शिखर की भाँति शरीर धारण किये मुझे हर कर लिये जा रहा है। तो आप बतलावें कि मैं घमण्ड से बढ़ते हुए इस दुष्ट चित्त वाले प्रलम्ब को कैसे पराजित करूँ। बलराम जी के बल के पराक्रम को जानने वाले श्रीकृष्ण ने हँसते हुए शान्तिपूर्वक उनसे कहा कि अहो! जो आप जगत् में व्यापक देवता हैं तथा गुप्त से भी गुप्त सब बातों को जानते हैं फिर भी आप यह मनुष्य के समान अपने भाव को प्रकट कर रहे हैं? आप लोकों के विनाश काल में अपने नारायणात्मक स्वरूप का स्मरण करें कि जब समुद्र लोकों को अपने में मिलाने के लिये आता है, अपनी आत्मा से आत्मा को पहचानो। तुम अपने उस शरीर का स्मरण करो कि जिसके प्रभाव से पुरातन देवता ब्रह्म और ब्रह्मा एवं जल उत्पन्न होता है। तुम्हारा शिर आकाश, जल मूर्ति, क्षमा पृथ्वी, मुख अग्नि, श्वास वायु और मन ही सबकी सृष्टि करने वाला ब्रह्मा बन जाता है। हजारों मुख, अंग, चरण, आँखें, कमल नाभि, कीर्णों तथा जीभों से युक्त

अपने शरीर को दिखाते हो तभी देवता देखतें हैं यदि तुम न दिखाओ तो तुम्हारे स्वरूप को कौन ढूँढ़ सकता है।।३१-४०।।

इस लोक में जो जानने योग्य है वहा आपही के द्वारा कहा गया है, जिस किसी एक बात को केवल आप जानते हैं उसे देवता भी बिना बताये नहीं जान सकते हें। तुम्हारे अपने से उत्पन्न शरीर को आकाश में कोई देवता नहीं देख पाते, जो तुम्हारा कृत्रिम रूप है देवता उसी की पूजा करते हैं। देवताओं ने भी तुम्हारा अन्त नहीं पाया है इसी से तुम अनन्त नाम से स्मरण किये गये हो, तुम सूक्ष्म स्वरूप हो सूक्ष्मों से नहीं जानने योग्य हो। तुम्हीं इस जगते के स्तम्भ हो तुम्हारे ही ऊपर यह पृथ्वी टिकी हुई है, जो पृथ्वी सम्पूर्ण प्राणियों की योनि है जो सम्पूर्ण चराचर जगत् को धारण करती है। तुम्हीं चारों दिशाओं में फैले समुद्र की योनि हो, चारों वर्णों को विभक्त करो वाले हो तथा चारों युगों में चार प्रकार के यज्ञों के भाग भक्षण करने वाले हो। जैसे मैं लोकों का हित करने आया हूँ वैसे ही तुम भी आये हो। हम दोनों एक ही हैं पर इस समय दो भागों में विभक्त दो आकार वाले हैं। मैं निरन्तर रहने वाला ब्रह्म कृष्ण के रूप में हूँ और आप सनातन शेष बलराम के रूप में हैं, आप लोकों को निरन्तर धारण करने वाले शेष सनातन देव हैं हम दोनों के द्वारा दो शरीर से ही यह जगत् धारण किया जा रहा है। जो मैं हूँ वही आप हैं और जो आप हैं वही मैं हूँ हम दोनों एक ही महाबलियों के शरीर को धारण कर रहे हैं। तो आप मूढ़ की भाँति क्यों बैठे हैं आप अपने वज्र के समान मुष्टिक से देव-शत्र प्रलम्ब के शिर पर मारिये जिससे यह दानव प्राण रहित हो जाय। वैशम्पायनजी बोले कि श्रीकृष्णजी ने जब उन्हें प्राचीन स्वरूप का स्मरण दिलाया तब वे तीनों लोकों को धारण करने वाले बल से भर गये।।४१-५०।।

तत्पश्चात् वे महाभुज, वज्र के समान बँधे हुए मुष्टिक से दुराचारी प्रलम्ब के शिर पर सँभल कर मारे फिर तो उसका उत्तम अङ्ग विकराल कपाल उसके शरीर में प्रवेश कर गया और वह घुटनों के बल भूमि पर गिर

कर पसर गया फिर वह दानवोत्तम प्राण रहित हो गया। भूमि पर उसके टूट कर छितराये हुए अङ्ग-प्रत्यङ्ग आकाश में विदीर्ण मेघ की भाँति जान पड़ते थे। भग्न हुए शिर वाले उस दानव के शरीर से जो रक्त बहता था वह ज्ञात होता था कि पर्वत के शिखर से गेरु मिली जल की धारा बह रही है। प्रतापी रोहिणी के पुत्र प्रलम्ब दानव को मार कर अपना बल कम कर लिये और श्रीकृष्ण से लिपट गये। प्रलम्ब दैत्य के मारे जाने पर श्रीकृष्णजी, गोप तथा आकाश में स्थित होकर देवता विजय का आशीर्वाद देते हुए उन महाबली की स्तुति करने लगे। इस बालक के बल से यह दैत्य सहज ही मारा गया इस प्रकार की सुस्पष्ट वाणी आकाश से सुनाई पड़ने लगी। आकाश में स्थित देवताओं ने उनका बलदेव नाम रख दिया और भूमि पर स्थित मनुष्यों ने भी दैत्य और देवताओं से भी दुर्दमनीय प्रलम्ब के मारे जाने पर बलदेव के बल को जाना।।५१-५९।।



अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

वैशम्पायनजी बोले-इस प्रकार के खेलों को खेलते हुए कृष्ण और बलरामजी ने वर्षाकाल के दो माह व्यतीत कर दिये। इसके पश्चात जब वे व्रज में आये तो सुना कि इन्द्र के पूजा का दिन आ गया है और गोपों को भी उत्सव की लालसा से भरा देखा। तो आश्चर्य करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि यह इन्द्र-पूजा का कैसा दिन कि जिससे आप लोग प्रसन्न हो गये हैं। यह सुन वहाँ एक वृद्ध गोप ने कहा कि हे तात! सुनो कि क्यों हमलोग इन्द्र की ध्वजा का पूजन करते हैं। हे अरिसूदन! देवताओं तथा मेघों के स्वामी इन्द्र हैं उसी लोकनाथ इन्द्र का यह कुल परम्परागत यज्ञ होने जा रहा है। उन्हीं इन्द्र की आज्ञा से इन्द्र-धनुष से विभूषित मेघ नये जल की वर्षा कर खेतों में धान्यों को उपजाते हैं। मेघों को जल देने वाले इन्द्र ही हैं जो प्रसन्न होकर सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करते हैं। उन्हीं इन्द्र की आज्ञा से मेघ जल वर्षा कर धान्य को उपजाते

हैं जिसे हमलोग तथा अन्य भी मनुष्य खाते हुए जीते हैं और समय-समय पर पकवानों आदि से देवताओं को भी तृप्त करते हैं। इन्हीं देव की कृपा से वर्षा होने पर इस लोक में अन्न बढ़ता है और पृथ्वी तृप्त हो जाती है इस प्रकार पृथ्वी के तृप्त होने पर सारा जगत् अमृतमय प्रतीत होता है। वर्षा होने पर बछड़ा वाली गौवों का दूध बढ़ जाता और वर्षा से बढ़ी हुई घासों को सुख से चर कर वे मोटी-ताजी होकर श्रेष्ठ ज्ञात होने लगती हैं।।१-१०।।

जिस देश में वर्षा वाले बादल नहीं दिखाई पड़ते हैं वह देश धान्य रहित, तृण रहित होता है और भूख से पीड़ित मनुष्य वहाँ नहीं दिखाई पड़ते हैं। इन्द्र सूर्य की किरणों को दुधार गौ की भाँति दुहता है तब उन किरणों से जल क्षीर की भाँति वर्षता है। वायु से प्रेरित होकर बादल आपस में टकराकर जब शब्द करने लगते हैं तो लोग समझते हैं कि इन्द्र गर्ज रहा है। वायु से युक्त मेघों के द्वारा उसके जल ढोते रहने पर वज्र के समान शब्द करने वाली पर्वत भेदी बिजली का शब्द सुनाई पड़ता है। तब वह बिजली से चूर्ण किया हुआ मेघ जल के बूँदों के रूपमें वर्षने लगता है इन्द्र इच्छानुसार गमन करने वाले बहुत मेघों से भृत्यों से युक्त राजा की तरह ज्ञात होने लगता है। इन्द्र कभी आकाश में छा जाने से दुर्दिन करके, कभी इधर-उधर तितर-बितर हो करके, कभी अञ्जन के पहाड़ के सदृश आकार बनाकर और कभी झींसियों के रूप में वर्षा कर नभगत मेघों के द्वारा इस विश्व का श्रृंगार करता है, कभी मेघ अपनी बूँदों से आकाश को मोती के समान चमका देते हैं। इस प्रकार सूर्य की किरणों द्वारा दुहा हुआ जल मेघ का रूप धारण कर पृथ्वी पर सब प्राणियों के हित के लिये वर्षता है। हे कृष्ण! यह वर्षा ऋतु इन्द्र की पूजा कराने को पृथ्वी पर आती है जब वर्षा ऋतु समाप्त हो जाता है तब सभी राजा प्रसन्नता से युक्त हो उत्सव करके इन्द्र की पूजा किया करते हैं वही हमलोग और अन्य लोग भी करते हैं।।११-१९।।



अथ षोडशोऽध्याय: ।।१६।।

वैशम्पायनजी बोले कि यद्यपि श्रीकृष्णजी इन्द्र का प्रभाव जानते थे तथापि उनकी पूजा का महोत्सव सुनकर स्वीकार करने के सम्बन्ध में बोले कि हमलोग वन में विचरने वाले गोप हैं और गौवें हमारी जीविका हैं अत: गौवों, पर्वत और वन ही हमारे देवता हैं ऐसा समझो। कृषकों की खेती जीविका है, व्यापार कर जीने वालों की व्यापार की वस्तु जीविका है और दूध-दही बेचने वाले ग्वालों की गौवें ही जीविका हैं इस प्रकार से यह तीनों वृत्तियाँ वार्ता भेद से तीन प्रकार की विद्यायें है। तो जो जिस उपाय के द्वारा अपना जीवन-यापन करता है वह विद्या की वस्तु ही उसका परम देवता है, उसे उसकी ही पूजा-अर्चा करनी चाहिये क्योंकि उनका उपचार वही वस्तुएं करती हैं जो दूसरे के द्वारा मिला अन्नादि खाकर किसी अन्य का सत्कार करता है। तो वह मनुष्य इस लोक या परलोक दोनों में अपने किये अनर्थों का फल भोगता है, खेती करने वाले किसान खेतों की मेड़-डाँड़ बाँधने से वे खेत भले ज्ञात होते हैं, जिस वन के सीमान्त में खेती है वह वन तथा जिस पर्वत के आस-पास वन होता है वह पर्वत श्रेष्ठ होता है। ऐसे ही पर्वत, वन तथा खेत हम लोगों की जीविका है, मैं सुनाता हूँ कि इस वन के पर्वत इच्छानुसार रूप धारण करने वाले हैं, जिन-जिन शरीरों के धारण करने की आवश्यकता होती है वे उन-उन शरीरों को धारण कर वन में प्रवेश कर तथा अपनी ऊँची चोटियों पर रमण करते हैं। वे नख धारियों में श्रेष्ठ केसरी, सिंह तथा व्याघ्र बन कर वन काटने वालों को त्रास देते हुए अपने-अपने वनों की रक्षा करते हैं। जब वन घर बनाकर रहने वाले गोप तथा भील आदि इन वनों को काटकर इनका रूप बिगाड़ने लगते हैं तो उन दुराचारी वन-चरों को पर्वत उक्त जानवरों का रूप धर कर मार डालते हैं। ब्राह्मण मन्त्र यज्ञ करते हैं, किसान हल की पूजा करते हैं, वनवासी गोप पर्वत की पूजा करते हैं तो हम गोपों को वन में पर्वत की ही पूजा करनी चाहिए। यह हमको श्रेष्ठ ज्ञात होता है अत: गोपों को चाहिए कि सुखकर स्थान वृक्षों के नीचे अथवा पर्वत पर पूजन कर्म करके पर्वत पूजा का प्रचार करें।।१-१०।।

वहाँ पर कुण्ड तथा मण्डप आदि बनाकर हवनादि कर यज्ञीय पशुओं को बलि देनी चाहिये इसमें क्या विचार करते हो? सभी गोष्ठों के गौवों का दूध दूहना प्रारम्भ कर दो। फिर शरद् ऋतु के पुष्पों को चर जाने वाली गौवें सभी एक साथ गिरिश्रेष्ठ गोवर्धन की चारों ओर से प्रदक्षिणा कर पश्चात् व्रज में चली आवें। गौवों को स्वाादिष्ट जल और तृण देने का गुण रखने वाली यह शरद् ऋतु आ गई अब मेघ चले गये और जलाशय रम्य हो गये। कहीं फूले हुए कदम्बों से सफेद कहीं झिन्टी के पुष्पों के श्याम रंग वन दिखायी पड़ रहा है। अब तृण कुछ कड़े ज्ञात हो रहे हैं, मोर अपना बोलना बन्द कर दिये हैं। आकाश जल रहित हो निर्मल वन गया है, अब अकस्मात् बिजली गिरने का भाय नहीं रहा, नभ विद्युत से रहित हो गया, अब जलहीन बादल दन्तरहित हाथियों के समान बढ़ेत दिखाई दे रहे हैं। बोलने में कुशल मेघों के नवीन जल से अभिषिक्त वृक्ष नये पत्तों से घने होकर प्रसन्न हो रहे हैं। सफेद बादलों की पगड़ी बाँधें, हंसों का चँवर लगाये तथा निर्मल पूर्ण चन्द्रमा का छत्र लगाये आकाश राज्याभिषिक्त राजा की भाँति ज्ञात हो रहा है। मेघों के नष्ट हो जाने पर हंसों की हँसी से हँसते हुए सारसों से अपने को श्रेष्ठ समझते हुए सभी जलाशयों के जल अब कृशता को प्राप्त हो रहे हैं। चक्रवाक रूपी स्तनों एवं पुलिन रूप जघनों वाली नदियाँ हंसों की हँसी से हँसती हुई सागर को जली जा रही हैं। कुमुदों से फूले हुए जल और ताराओं से चित्रित आकाश रात्रि काल में आपस में मिलकर एक दूसरे से हँसते हुए ज्ञात होते हैं।११-२०।।

अब पीली-पीली धान्य की बालों के बीच बोलते हुए भैरों वाले रमणीय वन में मन लगा रहा है। इस समय तलैया, ताल तथा बावलियाँ और नदियाँ एवं सरोवर फूले कमलों से कान्तिमान् होते हुए सुशोभित हो रहे हैं। लाल, सफेद तथा नीले रंग के अनेक कमल जल से उत्पन्न हो शोभा को धारण कर रहे हैं। इस समय मयूरों ने अपने मद का त्याग कर दिया है, वायु मन्द गति से चल रहा है, आकाश बादलरहित हो गया है तथा समुद्र पूर्ण हो गया है। वर्षा ऋतु के समाप्त होने से शिथिल मयूर नाचना छोड़ दिये हैं, ऐसे मयूरों के पाँखों से पृथ्वी बहुत आँखों वाली ज्ञात हो रही है। काश के पुष्पों

से तथा अनेक प्रकार की लताओं से व्याप्त एवं अपने प्रकार की तलाओं से व्याप्त एवं अपने ही कीचड़ों से मलिन तटों वाली यमुना हंस और सारसों के तटों पर बैठने से शोभित हो रही है। पके हुए धानों को मनुष्यों के काटते रहने पर धान्यों को खाने वाले तथा मछलियों को खाने वाले पक्षी मतवाले होकर बोल रहे हैं। वर्षा काल में मेघों ने जिन धान्यों का अपने जल से सिंचन किया था वे धान्य पक कर कड़े हो गये हैं। शरद् काल के आने से उसके निर्मल गुण को धारण कर और मेघमय वास का त्याग कर विमल आकाश में बसता हुआ चन्द्रमा स्पष्ट दिखाई दे रहा है। अब गौवें दूना दूध देने लगीं बैल पहले से दूने मदमत्त हो गये तथा वनलक्ष्मी भी दूनी हो गई और पृथ्वी रबी की फसलों को बोने लायक हो गयी।।२१-३०।।

नक्षत्र मेघ रहित हो गये, जलों में कमल फूलने लगे तथा प्रसन्नता को प्राप्त होने लगे। इस समय सूर्य मेघों से रहित होकर शरद् के तेज की सृष्टि कर रहा है और अपनी तीखी कीर्णों से पृथ्वी के जल का शोषण कररहा है। विजय की इच्छा रखने वाले राजा अपनी सेनाओं को सन्तुष्ट कर दूसरे देश की ओर जा रहे हैं। अढ़उल के पुष्पों से लाल कमलों की भाँति युक्त चित्रविचित्र फूली हुई प्रिय लताओं में मन बस रहा है। वन को शोभित करने वाले असन, सप्तपर्ण तथा कोबिदार आदि वृक्ष पुष्पित होकर वन में शोभित हो रहे हैं। बाणसन, निकुम्भ, प्रियकर, स्वर्णपत्र, सेमर, पेचुक तथा केतकी वृक्ष चारों ओर वन में फूल रहे हैं। शरद् ऋतु स्त्री का वेष धारण कर व्रज में विशेष रूप से गर्गर के उद्गार से (दूहते समय घर-घर दूधों के उभड़े फेन से) हँसती हुई गोष्ठों में भ्रमण कर रही है। वर्षाकाल में सुखपूर्वक शयन करने वाले गरुड़ध्वज विष्णु को यह निश्चित कर कि वर्षाकाल समाप्त हो गया है देवता जगाते हैं। वर्षाकाल के नष्ट हो जाने पर शरद् ऋतु के आ जाने पर चन्द्रमा और सूर्य की भाँति चमकने वाले पक्षियों से तथा मूँगे के समान लाल-लाल फलों से भाण्डीर वट वृक्ष की चक्राकार शाखायें इन्द्रधनुष की भाँति शोभा पा रही हैं और लम्बी तलाओं से मण्डित यह वट वृक्ष भवन की भाँति ज्ञात हो रहा है।३१-४०।।

इसलिये अपनी विशाल बरोहों से झुके सर्पों की भाँति विभूषित इस वट वृक्ष की तथा गौवों की एवं देवतारूप इस गोवर्धन पर्वत की हम लोग विशेष पूजा करें। गौवों की सींगों में मोर के पंखों का मुकुट बाँध कर और गलों में घण्टियाँ बाँध कर एवं शरद् ऋतु के पुष्पों की माला पहना कर अपने कल्याण के लिये गौवों की पूजा करें। और इन्द्र-यज्ञ के स्थान पर गिरि-यज्ञ का प्रचार करें, देवता लोग इन्द्र की पूजा करें और हम लोग पर्वत की पूजा करें। यदि हममें आप लोगों का प्रेम हो और हमको अपना मित्र समझते हों तो मैं आप लोगों से गो-यज्ञ तथा पर्वत की ही पूजा बलपूर्वक कराऊँगा इसमें संशय नहीं है। क्योंकि गौवें सभी के द्वारा निरन्तर पूजा करने योग्य हैं, यदि आप लोगों को अपने कल्याण से प्रेम हो तो हमारे तथ्य वचनों को मानकर शान्तिपूर्वक बिना विचारे ही गो-पर्वत की पूजा कीजिये।।४१-४५।।



अथ सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

वैशम्पायनजी बोले–दामोदर के इस प्रकार वचनों को सुन कर सभी गोप प्रसन्न हो उनके वाक्यामृत को चख कर निशःङ्क भाव से बोले हे बाल! तुम्हारी गोपों के हित को बढ़ाने वाली तथा गौवों को बढ़ाने वाली विशाल बुद्धि हम सबको प्रसन्न कर रही है। हम लोगों की तुम्ही गति एवं रति हो, तुम्ही ज्ञानी हो, तुम्ही भय उपस्थित होने पर हमें अभय करे वाले हो, तुम्हीं हमारे मित्रों के भी मित्र हो हम सब लोग तुम्हारी बताई राह पर चलने वाले हैं। तुम्हारे ही कारण यह हमारा व्रज तथा गोकुल कुशली है मेरे शत्रु शान्त हैं और हम सभी स्वर्गस्थ देवताओं की भाँति यहाँ बस रहे हैं। हम लोग तुम्हारे जन्म से देखते चले आ रहे हैं कि तुम देवताओं से भी न होने वाले कार्य को करते चले आ रहे हो ऐसा समझ हम लोगों का मन घमण्ड में भूला रहता है। तुम अपने बल से, पराक्रम से तथा महान् यश से मनुष्यों में वैसे ही उत्तम हो जैसे कि देवताओं में इन्द्र उत्तम हैं। तुम अपने तीक्ष्ण प्रताप और पूर्ण तेज से

मनुष्यों में वैसे ही उत्तम हो जैसे देवताओं में सूर्य उत्तम हैं। तुम कान्ति और लक्ष्मी के प्रसाद से हँसते हुए मुँह से वैसे ही उत्तम हो कि जेसे देवताओं में चन्द्रमा हैं। बल से, शरीर से तथा बाल्यावस्था के चरित्रों के स्वामी कार्तिकेय के समान पराक्रमी हो तुम्हारी तुलना में कोई मनुष्य नहीं है। जो तुमने गिरि-यज्ञ की बात कही है तो भला महासागर की भाँति उसका उल्लंघन करने में कौन समर्थ हो सकता है।१-१०।।

हे तात! अब इन्द्र की पूजा का दिन स्थगित होकर पर्वत की पूजा दिन चला, आज से तुम्हारे द्वारा चलायी हुई यह गोवर्धन पूजा की प्रथा गोपों और गौवों के कारण संसार में चल पड़ी। इसलिये दूध से बने खोवे को भोजन-सामग्रियाँ बनाओ और सुन्दर कलशों में पीने का जल भरो। नदियों में और कूँड़ियों में दुग्ध भरो, दाँत से काट कर खाने योग मालपूआ, पकौड़ी आदि, भोज्य भात-कढ़ी आदि, पेय मेवे की तस्मै राबड़ी आदि ये सब बनाकर ले चलो। मांस पकाने के बर्तनों को और चावल पकाने के बर्तनों को रख लो तथा तीन रात का दूध सब गोष्ठों में एकत्र कर ले लो अर्थात् कोई बेचे न। भैंस, बकरा आदि भोज्य पशुओं को नहला-धुला कर वधकर सब गोप-गोपी मय बाल-बच्चों के मिल कर इस पर्वत-यज्ञ को करो। फिर तो व्रज में आनन्द छा गया, गो-कुल महाप्रसन्न दिखायी देने लगा, वे प्रसन्नता से तुरुहियाँ बजा कर घोषणा करने लगे, साँड़ गर्जने लगे। बछड़े हम्माँ-हम्माँ का शब्द कर गोपों को प्रसन्न करने लगे, व्रज के लोग दही, घी निकालने की मथानी, दूध का पात्र लिये हुए थे। मांस को बनाने के लिये वे तरह-तरह के मसाले लिये थे और भात की ढेर पर्वतों के समान दिखायी पड़ती थी। इस प्रकार गौवों से संकुल व्रज गोवर्धन की पूजा के लिये तत्पर हुआ। सन्तुष्ट गोपों से व्याप्त और सजी हुई गोप-नारियों से वह व्रज बड़ा ही मनोहर लगने लगा, वहाँ खाने की सैकड़ों प्रकार की सामग्रियाँ बन कर तैयार हो गईं और सुगन्धित मालायें अनेक प्रकार के धूप तथा छोटी-बड़ी पूजन की सामग्रियाँ इकट्ठी की गईं, गोवर्धन के समीप अग्नि का स्थान हवनादि कुण्ड बनाया गया पश्चात यज्ञ के लिये घृत पात्र आदि ले जाकर रखा गया पश्चात् शुभ तिथि में

गोपों ने ब्राह्मणों के साथ गिरि-यज्ञ किया।।११-२०।।

पूजन-हवन के बाद मिष्ठान्न आदि उत्तम अन्नों को तथा दूध-दही आदि को भगवान् श्रीकृष्ण पर्वत का रूप धारण कर खाने लगे फिर ब्राह्मण भोजनादि से तृप्त होकर प्रसन्न मन से खड़े हो सुखपूर्वक स्वस्तिवाचन करे लगे। तब इस प्रकार के यज्ञ के अन्त में स्नान के बाद इच्छानुसार दूध पीकर अपने दिव्यपर्वत रूप से श्रीकृष्ण बड़े जोरों से हँसे और कहे कि आज मैं सम्यक् प्रकार से तृप्त हो गया। गोवर्धन पर्वत के शिखर पर दिव्य मालाएं तथा चन्दन लगाये पर्वताकार श्रीकृष्ण को स्थित देख कर प्रधान-प्रधान गोप उनकी शरण गये। तब उन गोवर्धन रूपधारी ने कहा कि हम तुम लोगों के कल्याणकारक प्रधान देवता हैं, हमारे प्रभाव से तुम लोग हजारों-लाखों गौवों का सुख भोगोगे। मैं आप लोगों का वन में हर एक कल्याण करूँगा और आकाश में रहता हुआ मैं आपके साथ-साथ घूमूँगा। जिन-जिन नन्द आदि गोपों ने मेरी पूजा की है उन-उन गोपों को मैं बहुत गो-धन दूँगा। अब शीघ्र ही बछड़ों सहित गायें मेरी परिक्रमा करें ऐसा करने से परम मैं प्रसन्न होऊँगा इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार सुनकर गिरि को प्रसन्न करने के लिये साड़ों सहित बछड़े वाली गौवें के अलग-अलग झुण्ड बनाकर गोप गिरी की परिक्रमा कराने लगे। वे गौवें सैकड़ों-हजारों की संख्या में झुण्ड बाँध प्रसन्न हो शीघ्रता से परिक्रमा करने लगीं उनके पीछे गोपाल उन्हें हाँक रहे थे उनके पैरों में फूलों के गुच्छों के बाजूबन्द बँधे थे तथा सींगों के अग्रभागों में मालायें धारण की थीं और वे श्वेत, लाल, धूमर आदि रंगों के भेद से पृथक-पृथक झुण्डों में अनेक प्रकार के अनुलेपनों ये युक्त लाल-पीले वस्त्रों को धारण किये थीं।।गोपाल मयूर पंख के बाजूबन्द पहने हाथों में उन्हें हाँकने के लिये लकुटियाँ लिये थे और शिर पर मूयर पंखों के मुकुट धारण किये थे। उस अद्भुत उत्सव में गोपाल बड़े अच्छे लग रहे थे थे कुछ गोपाल वृषभों पर चढ़े हुए थे कुछ प्रसन्नता से नृत्य कर रहे थे। गिरि की परिक्रमा के अनन्तर अन्य गोपालों ने वेग से चलती हुई गौवों को रोक लिया। पश्चात् प्रकट रूप में जो पर्वतराज थे सो अन्तर्हित हो गये तब भगवान् श्रीकृष्ण गोपों को साथ ले व्रज

में प्रविष्ट हो गये। यह नया गिरि-यज्ञ करने से आश्चर्य से विस्मित गोपबालक वृद्धों सहित मधुसूनद की स्तुति करने लगे थे।।२१-३६।।



अथ अष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

वैशम्पायनजी बोले कि जब इन्द्र की पूजा बन्द कर दी गई तो वे क्रोधित होकर मेघों के राजा सम्वर्तक नामक मेघगण से बोले। हे मेघ मातङ्गों! हमारे कहे वचनों को सुनो राज-भक्ति पूर्वक यदि मेरा प्रिय करना चाहते हो तो, ये जो वृन्दावन में बसने वाले गोप मेरे उत्सव से द्वेष कर रहे हैं सभी नन्द आदि गोप दामोदर के कथनानुसार चल रहे हैं। इनकी परम जीविका गौवें हैं इसी से ये गोप कहलाते हैं तो इनकी गौवों को वायु सहित वर्षा कर सात दिन-रात तक पीड़ित करो। मैं ऐरावत पर चढ़ कर स्वयं दारुण जलवृष्टि करूँगा और वज्र तथा बिजली की भाँति प्रभाव वाली आँधी बहाऊँगा। आप लोगों के द्वारा वायु सहित चण्ड वेग से वर्षाये गये वर्षा से हत होकर व्रज सहित गौवें व्रज भूमि पर प्राण छोड़ देंगी। श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्र की पूजा उठा देने पर इस प्रकार की आज्ञा इन्द्र ने सभी मेघों को प्रदान की तत्पश्चात् पर्वताकार भयंकर नाद करने वाले भयदायक काले-काले मेघ आकाश को आच्छादित कर दिये। बिजली गिराने वाले इन्द्रधनुष से विभूषित मेघ अन्धकार से आकाश को ढक दिये। वे मेघराजों के गण हाथियों के समान तथा पर्वतों के समान आकार वाले मकर के समान काले रंग से चमकते हुए आकाश में विचरने लगे।।१-१०।।

हाथियों के झुण्ड की भाँति आपस में सट कर लम्बे-चौड़े विशाल नभ-स्तल को आच्छादित करते हुए दुर्दिन कर दिये। वे मेघ हाथियों के सुण्ड की भाँति मनुष्यों के लम्बे हाथ तथा बाँसों के आकार की तरह जल की धारायें वर्षाने लगे। उस महान् दुर्दिन को आँखों से देख कर मनुष्यों ने निस्सीम तथा अगाध समुद्र को आकाश पर चढ़ा हुआ माना। पर्वताकार मेघों को चारों

तरफ आकाश में गर्जते रहने पर पक्षियों ने उड़ना बन्द कर दिया और मृग जातियों ने इधर-उधर दौड़ना बन्द कर दिया। नभ में दारुण मेघों के छा जाने पर सूर्य-चन्द्रमा लुप्त हो गये। इस तरह का वह समय प्रलय काल की भाँति ज्ञात होने लगा, अति वृष्टि होने से संसार का रूप ही बदल गया, भयावना लगने लगा। मेघ समूहों के छा जाने से, ग्रहों-तारों की प्रभा से तथा चन्द्रमा एवं सूर्य की किरणों से रहित आकाश प्रकाश रहित हो गया। बारम्बार जल वर्षते रहने के कारण पृथ्वी सर्वत्र जलमयी हो गयी। मयूर बोलने लगे, पक्षियों का शब्द मन्द पड़ गया और नदियों में बाढ़ आ गई। वर्षा का दिन उपस्थित हो जाने से और मेघों के गर्जने से डाँटे गये मनुष्यों की भाँति वृक्षों सहित तृण काँपने लगे। भयाकुल गोप गण कहने लगे कि ज्ञात होता है कि अब संसार के प्रलय का समय आ गया क्योंकि पृथ्वी साफ समुद्र में डूबी हुई की तरह दिखाई पड़ रही है।।११-२०।।

उस उत्पाती वर्षा की जलधारा से गौवें अत्यन्त आहत होकर थक गई और हम्माँ-हम्माँ कर डकरने लगीं। ठंडक से उनके पैर स्तम्भित हो गये इसलिये चल नहीं सकती थीं। उनके पाँवों की हड्डी अकड़ गई इससे वे अपने खुरों तथा मुखों से कोई प्रयत्न नहीं कर सकीं, उनके भींगे हुए शरीर पर रोंगटे खड़े हो गये, उनकी कोख तथा स्तन पचक गये। कोई-कोई गायें इस प्रकार थक कर प्राण छोड़ दीं, कोई व्याकुल होकर गिर पड़ी, कोई वर्षा की बूँदों से व्याकुल होकर बछड़े सहित गिर पड़ी। कोई-कोई गायें अपने बछड़े को पेट के नीचे कर खड़ी रहीं कि जिनका मुख मलिन हड्डियाँ अकड़ी हुई तथा चारा न मिलने से पेट पचका हुआ था। वर्षा से हार कर गौवें काँपती हुई गिर पड़ी और उनके बछड़े श्रीकृष्ण ओर की देखने लगे मानों बछड़े भगवान् से दुःखी हो दीन मुखाकृति से कह रहे हैं कि हम गो-वत्सों की रक्षा करो। इस प्रकार के दुर्दिन से गौवों का विनाश होते और गोपों को मृत्यु के निकट देख श्रीकृष्ण कुपित हो गये। और उपाय को सोचकर अपनी ही आत्मा से वे प्रियंवद कहने लगे कि मैंने उपाय सोच लिया। गौवों को वर्षा से बचाने के लिए आज इस दुर्धर गोवर्धन पर्वत को वन सहित उखाड़ लूँ। जब मैं उखाड़

कर इसे हाथ पर धारण कर लूँगा तो इसके नीचे की भूमि घर के समान बन जायेगी और व्रज सहित गौवें सुरक्षित हो जायेंगी। और गोवर्धन भी मेरे वश में हो जायगा। सत्य पराक्रमी श्रीकृष्णजी इस प्रकार विचार निश्चित कर अपने भुजाओं का बल-प्रदर्शन करने के लिये इस महीध्र के समीप चले गये।।२१-३०।।

अपनी विशाल बाहुओं से दूसरे पर्वत के समान श्रीकृष्ण उस गोवर्धन को उखाड़ लिये, वह मेघों से मिला हुआ पर्वत उनके दाहिने हाथ पर स्थित हो गृह केसमान आकार वाला गोपों तथा गौवों का घर बन गया। जब वह पर्वत उखाड़ा जाने लगा तो उस समय उसकी ऊँची चोटियों से शिलायें टूटकर गिरने लगीं तथा पर्वत पर के वृक्ष भी उखड़ कर गिरने लगे। घहराते हुए शिकरों और काँपते हुए वृक्षों से घड़घड़ाते हुए ऊँचे शिखरों सहित वह अचल गोवर्धन गिरि आकाश में उठता हुआ पक्षी की तरह उड़ता सा ज्ञात होने लगा। उसके बहते हुए झरने आकाश में मेघ समूहों के साथ मिल गये और उनके साथ जो पत्थरों का ढेर था वह बिखर कर चारों ओर गिरने लगा, इस प्रकार वह पर्वत डगमगाने लगा। उस वर्षा के साथ प्रबल वायु के गर्जने से मेघों से जल वर्षने में तथा पर्वत से पत्थर वर्षने में लोगों को कुछ अन्तर न ज्ञात हुआ। मेघों के साथ पर्वतीय झरनों के मिल जाने से वे झरने नीलिमा लिये हुए और भी उद्गार से वृष्टि जल के साथ बहने लगेतब वह गोवर्धन पूँछ उठाये हुए मयूर पक्षी की भाँति शोभित होने लगा और विद्याधर, गन्धर्व तथा अप्सरायें यह कहने लगीं कि ज्ञात होता है कि यह पर्वत मेघरूपी पंखों को धारण कर आकाश में उड़ रहा है। पृथ्वी तल से उखड़ कर श्रीकृष्ण के हाथ पर रखा हुआ वह पर्वत सुवर्ण के अञ्जन सी चमकती गैरकादि धातुओं को बहाने लगा। पर्वत शिखरों के मेघों में घुस जाने पर उनमें टकरा कर कितने ही शिकर शिथिल हो गये, कितने ही शिखरों का ऊपरी भाग टूट गया। पर्वत के काँपने से उसके ऊपर स्थित वृक्ष भी काँपने लगे तब उनसे फूल झड़कर चारों ओर की ऊँची-नीची भूमि को ढक दिये।।३१-४०।।

और चौड़ी फणों वाले, उड़ने वाले सर्प क्रोध कर पर्वत से निकल

आकाश में उड़ने लगे। वर्षा के भय से पक्षीगण दुःखी हो गये और उड़-उड़ कर आकाश में जाते थे और नीच मुख करके पुनः घोषलों में वापिस आ जाते थे। जल सहित मेघों की भाँति क्रोधित सिंह गर्जने लगे और बड़े-बड़े व्याघ्र मथते समय दधि मन्थन पात्र के समान गुर्राने लगे। जो ऊँची-नीची भूमि थी वह सम हो गयी और समभूमि दुर्गम हो गई, वह पर्वत किसी अन्य पर्वत की भाँति ज्ञात होने लगा। युगान्तकारी मेघों के वर्षने से भींगा हुआ गोवर्धन आकाश में शंकरजी के द्वारा रोके हुए त्रिपुरासुर की भाँति प्रतीत होता था। श्रीकृष्ण के दण्ड रूप भुजा से धारण किया हुआ मेघों से आच्छन्न वह महान् गोवर्धन विशाल छाते की भाँति ज्ञात होता था। मेंघों द्वारा गुफारूपी मुख बन्द हो जाने से वह निद्रायमान पर्वत आकाश में श्रीकृष्ण के बाहुरूप तकिये पर सोता हुआ सा जान पड़ता था। पक्षियों के शब्द रहित वृक्षों से और मयूर की बोलियों रहित वनों से अपने शिविरों से युक्त पर्वत आश्रयरहित अर्थात उदास की भाँति प्रतीत होता था। पत्थरों के खड़बड़ाने से घहराते तथा काँपते हुए शिखरों से ज्ञात होता था कि वन सहित तथा शिखर सहित पर्वत को जाड़े का ज्वर अर्थात् जड़ैया आ गयी है। इन्द्र द्वारा शीघ्रवृष्टि की आज्ञा से पवनों को बहाते हुए मेघ पर्वत के शिखर पर जाकर अटूट जलधारा गिराने लगे। श्रीकृष्ण के हाथ पर लम्बायमान मेघों सहित वह पर्वत ज्ञात होता था कि किसी राजा के चढ़ाई कर देने पर जैसे देशवासी रथष शकट आदि पर चढ़ कर भाग रहे हों मेघों का समूह पर्वत को घेर कर वैसे ही खड़ा था कि जैसे लम्बा-चौड़ा महान् जनपद पुरों को घेर कर स्थित रहता है। गौवों और गोपों के रक्षक श्रीकृष्ण पर्वत का हाथों से तौल कर दाहिने हाथ पर रख कर प्रजापति की भाँति खड़े होकर हँसते हुए बोले कि हे गोपों! वर्षा और वायुरहित गौवों को रहने के लिये मैंने दिव्य विधि से पर्वत का घर बना दिया जो देवताओं से भी नहीं बन सकता था। अब शीघ्र ही इस वायुरहित पर्वतगृह में शान्ति प्राप्त करने के लिये गौवें प्रवेश करें और सूखपूर्वक निवास करें और आप लोग अपने श्रेष्ठता के अनुसार तथा गौवों के झुण्डों के अनुसार यथोचित हमारे द्वारा बनाये गये वर्षा निवारक देश का विभाजन कर लें, पर्वत को उखाड़ कर

मैंने इस भूमि को बड़ा बना दिया है। पाँच कोस लम्बी तथा एक चौड़ी चौड़ी यह बड़ी भूमि तीनों लोकों की रक्षा कर सकती है फिर व्रज की क्या बात है। तत्पश्चात् गोपों के घबराहट के शब्द से तथा गौवों के हुङ्कार से और बाहर से मेघों के गर्जने से बड़ा भारी हल्ला हो गया। गोपों के द्वारा झुण्ड में की गई गौवें गोवर्धन पर्वत की गुफा रूप उदर में प्रवेश करने लगीं। श्रीकृष्ण भी पंर्वत के मूल में स्तम्भ की भाँति खड़े होकर प्रिय अतिथि की भाँति उसे अपने हाथ से पकड़े हुए थे।।५१-६०।।

पर्वत रूपी निर्मित उस घर में वर्षा के भय से व्रज की बर्तन आदि से भरी गाड़ियाँ आकर प्रवेश करन लगीं। व्रज को बचा लेने वाले श्रीकृष्ण के दैविक कार्य ने इन्द्र की प्रतिज्ञा झूठी कर दी इन्द्र ने मेघों को वर्षने से रोक दिया। सात दिन-रात निरन्तर भूमि पर वर्षा करने के पश्चात हतोत्साह होकर इन्द्र मेघों सहित स्वर्ग को वापस लौट गये। इन्द्र सात दिन-रात्रिपर्यन्त वर्षा करने के बाद भी व्रज को डुबाने में सफल न हो सके, मेघों के चले जाने पर आकाश निर्मल हो गया दिन में सूर्य चमकने लगे। गौवें जिस मार्ग से आई थीं उसी मार्ग से अपने-अपने गोष्ठों में चली गईं, तत्पश्चात व्रजवासी भी व्रज में चले गये। श्रीकृष्णजी भी गोवर्धन को उसके कल्याण के लिये जहाँ से उखाड़े थे वहाँ स्थापित कर दिये।।६१-६६।।



अथ एकोनविंशोऽध्यायः।।१९।

वैशम्पायनजी बोले कि गोवर्धन को धारण कर गोकुल की रक्षा कर लिये यह देखकर विस्मित इन्द्र को श्रीकृष्ण जी के दर्शन की इच्छा हुई। वे जल रहित मेघ की भाँति श्वेत तथा मद के जल से भीगे ऐरावत मतङ्ग पर चढ़कर पृथ्वी तल पर आये और इन्द्र ने श्रीकृष्णजी को गोवर्धन पर्वत की चट्टान पर इतना कठिन कार्य करने के बाद भी अभिमान रहित साधारण कार्यकर्ता की भाँति देखा। तब विष्णु को अति तेजस्वी गोप बालक का रूप

धारण किये देख कर इन्द्र को उनके ऊपर बड़ा प्रेम उत्पन्न हुआ। नीले कमल दल के समान श्याम वर्ण तथा श्रीवत्स चिह्न से चिह्नित उन श्रीकृष्ण को अपने हजारों नेत्रों से देखकर इन्द्र तृप्तनयन हो गये। उन श्रीकृष्ण को शोभा से युक्त मर्त्य लोक के देवता के समान शिला पर बैठे देख इन्द्र लज्जित हो गये। उन बैठे हुए [illegible] पुरुष पर अन्तर्हित होकर गरुड़ अपने पंखों से छाया कर. रहे थे। लोक के कल्याण व्यवहार में तत्पर वन में एकान्त स्थान पर स्थित श्रीकृष्ण के पास बल-दैत्य-निषूदन इन्द्र गये। इन्द्र उनके समीप दिव्य मालाओं तथा चन्दनों से विभूषित हाथ में वज्र लिये सुशोभित हो रहे थे। सूर्य के समान चमकने वाले किरीट से तथा बिजली के समान प्रकाश करने वाले दिव्य कुण्डलों से उनका मुख शोभायमान प्रतीत हो रहा था।।१-१०।।

वह लटकने वाले पाँच गुच्छों से युक्त हार को हृदय पर धारण किये थे और हजार दल वाले कमल के समान कान्तिमान भूषणों से अपने शरीर को विभूषित किये थे वह इच्छानुसार रूप धारण करने वाले इन्द्र अपने नेत्रों से श्रीकृष्ण को देख रहे थे। देवताओं को भी सुनाई पड़ने के लिये मेघ के समान दिव्य संस्कृत भाषा में मधुर स्वर से श्रीकृष्ण से बोले–हे श्रीकृष्ण! हे महाबाहो! हे अपने जातियों को बढ़ाने वाले! तुमने गौवों के ऊपर प्रेम कर अत्यन्त दिव्य कार्य किया है। मेरे युगान्तकारी मेघों द्वारा वर्षा वर्षाये जाने पर भी जो तुमने गौवों की रक्षा कर ली है उससे मैं परम सन्तोषित हो गया हूँ। जो तुमने केवल अपने ही बले से इस पर्वत को आकाश में उठाकर भवन की भाँति बना दिया था इससे कौन नहीं विस्मय को प्राप्त होगा। यज्ञ के बन्द हो जाने से मैंने रुष्ट होकर गौवों पर सात दिन-रात्रि पर्यन्त अतिवृष्टि की सो तुमने उन मेघों की दुर्निवार्य वृष्टि को पर्वत के द्वारा निवारण कर दिया नहीं तो मेरे स्थित रहते वह अतिवृष्टि देव तथा दानवों से भी दुर्निवार्य थी। यह मुझे बड़ा प्रिय लगा कि जो तुम क्रोध में भरे विष्णु होकर भी मनुष्य देह धारण कर अपनी पूरी वैष्णवी शक्ति का प्रयोग नहीं किया। तुमने मनुष्य शरीर धारण कर अपने तेज से दवताओं का कार्य सिद्ध कर दिया यह मैं मानता हूँ। तुम देवताओं के सभी कार्यो को पूरा कर दोगे कुछ शेष नहीं रहेगा, सभी कार्य

में आगे रहने वाले देवताओं के तुम नेता हो।।११-२०।।

तुम्हीं एक देवता हो और सभी लोकों के सनातन देव हो दूसरे को मैं नहीं देखता इसीलिये तुम इनके सम्पूर्ण कार्य भार का वहन करते हो। जैसे बैलों में जो श्रेष्ठ बैल होता है उसी को गाड़ीवान गाड़ी में जोतते हैं वैसे ही हे द्विज-वाहन! तुम डूबते हुए देवताओं को उबार लेने में सबसे पहले हो। हे श्रीकृष्ण! यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हारे शरीर गत शक्ति से विरचित है, जैसे धातुओं में सुवर्ण श्रेष्ठ है वैसे ही तुम्हें ब्रह्मा ने देवताओं में श्रेष्ठ बतलाया है। स्वयं ब्रह्मा भी बुद्धि तथा व्यय से तुमसे वैसे ही नहीं श्रेष्ठ हैं कि जैसे लँगड़ा मनुष्य मनुष्यों की द्रुतगति में श्रेष्ठ नहीं है। जैसे पर्वतों में हिमालय, तालाबों में समुद्र तथा पक्षियों में गरुड़ श्रेष्ठ हैं वैसे ही आप देवताओं में सबसे श्रेष्ठ हैं। नीचे जल लोक है उसके ऊपर पर्वत है (जिनकी जड़ पानी में अन्दर तक है) और पर्वतों के सहारे पृथ्वी है और पृथ्वी के ऊपर मनुष्य बसते हैं, मनुष्य-लोक के ऊपर पक्षियों की गति-स्थान आकाश है, आकाश के ऊपर सूर्य लोक है जो स्वर्ग का द्वार कहा जाता है। सूर्य लोक के ऊपर महान् देवलोक है जहाँ विमान के द्वारा जाया जाता है, हे कृष्ण! जहाँ देवताओं ने मुझे इन्द्र पद पर स्थापति किया है। स्वर्ग-लोग के ऊपर ब्रह्मर्षिगण से सेवित ब्रह्म लोक है वहाँ सोम और नक्षत्रों तथा महान् आत्माओं की गति है। उसके ऊपर गो-लोक है जिसका पालन साध्यगण देवता करते हैं हे श्रीकृष्ण! वहाँ गौवों को पालन करने वाले सभी जा सकते हैं वह लोक महान् आकाश में है।।२१-३०।।

उस गो-लोक के ऊपर से ऊपर आपकी गति है आर्थात् आपका रहना होता है जिसको हमदेवता पितामह ब्रह्मा से पूछ कर भी नहीं समझ पाये। सबसे नीचे दुष्कर्म करने वालों का कठिन नाग लोक है और पृथ्वी कर्म करने वालों की कर्म भूमि है सब प्रकार के कर्म इसी पृथ्वी क्षेत्र पर किये जा सकते हैं। वायु की तरह उड़ने वाले चंचल जीवों का आकाश देश है और शम, दम, रूप, धन वाले पुण्य कर्मियों को स्वर्गलोक मिलता है। ब्रह्म में अनुरक्त होकर तप करने वालों को सबसे अन्तिम ब्रह्मलोक प्राप्त होता है और गौवों की सेवा

करने वालों को गो-लोक मिलता है तप आदि से गो-लोक पाना दुर्लभ है। वही महत्वशाली प्रत्यक्ष गो-लोक आपके साथ यहाँ आया है जिसे दुःखी होता हुआ देखकर उनके दुःख को आप जैसे धैर्यशाली विष्णु कृष्ण बनकर निवारण किये हैं। वही मैं गोवों के कहने से तथा ब्रह्मा के कहने से और हे महाभाग! आपके गौरव से प्रभावित होकर आपके पास आया हूँ। हे कृष्ण! मैं प्रणियों का स्वामी और देवताओं का राजा पुरंदर अदिति की गर्भ गणना से आपका बड़ा भाई हूँ। हे विभो! जो मैंने क्रोध से अपने वाहन रूप मेघों को भेजकर अपना तेज आपको दिखाया सो देव रूप से आप मेरे इस अपराध को क्षमा करने योग्य हैं। हे श्रीकृष्ण! अब आप अपने सौम्य तेज के द्वारा शान्त मन हो जायँ और हे जगविक्रम! ब्रह्मा के और गौवों के तथा मेरे वाक्य को सुनें। गौवें और ब्रह्मा तुमसे कहे हैं कि गौवों के संरक्षण रूप दिव्य कर्म से हम लोग सन्तुष्ट हो गये हैं।।३१-४०।।

गौवों ने कहा है कि आपने गौवों की रक्षा कर महान् गो-लोक की रक्षा कर दी है इसलिये हम लोग श्रेष्ठता के साथ बछड़ों को उत्पन्न कर बैलों के साथ बढ़ेंगी। बैल हल में चल कर किसानों को और गौवें हवि के द्वारा देवताओं को इच्छानुसार तृप्त करेंगी एक बार दुग्ध देने में प्रवृत्त होकर कान्ति को बढ़ा दूँगी। इसलिये आप ही हम लोगों को प्राण दान देने वाले हैं और आप ही हम लोगों के गुरु हैं एतस्मात् हे प्रभो! आज से हम गौवों के राजा इन्द्र हो जाइये। इसलिये आज से दिव्य दुग्ध भरे स्वर्ण कलशों से आप हमारे हाथों गौवों के इन्द्र पद पर अभिषिक्त होइये। मैं देवताओं के इन्द्र और आप गौवों के इन्द्र हो गये आज से इस पृथ्वी तल पर निरन्तर लोग आपकी गोविन्द इस नाम से स्तुति करेंगे। गौवों के द्वारा 'आप' हम इन्द्र के ऊपर भी इन्द्र बनाये गये हैं तथा उन्होंने अपना ईश्वर माना है इसलिये स्वर्ग में देवता लोग आपका उपेन्द्र नाम से गुणगान करेंगे। वर्षात के चार महीनों में जो अधिकार में विहित हैं उनमें से पिछले दो महीने शरद्-काल के मैं आपको प्रदान करता हूँ। आज से लोग दो महीना मेरा समझेंगे इस प्रकार वर्षात के चार महीनों के आधे भाग में मेरी ध्वजा खड़ी की जायेगी और लोग मेरी पूजा करेंगे, उसके पश्चात्

आपकी पूजा होगी। आपकी पूजा का समय आने पर वर्षा से उत्पन्न उत्साह को मयूर त्याग देंगे अर्थात् नाचन बन्द कर देंगे। मेरे समय को विचार करने वाले मेघों को देख कर जो नाद करने वाले अन्य भी पक्षीगण हैं वे मद से रहित हो थोड़ा बोलने लगेंगे और शान्त हो जायेंगे। हजार किरणों वाले सूर्य अपने तेज से लोकों को तपाते हुए त्रिशंकु और अगस्त नामक तारों के पथ का अनुसरण करते हुए दक्षिण दिशा का भ्रमण करने लगेंगे।।४१-५०।।

तब शरद् काल आने पर मयूर मौन धारण कर लेंगे और चातक पक्षी जल की याचना करने लगेंगे, नदियों का जल सूखने लगेगा। हंस और सारसों से नदियों के रेते भर जायेंगे, कौञ्च पक्षी मत्त होकर प्रबल नाद करने लगेंगे तथा वृषभ मद से मतवाले हो जायेंगे। गौवें प्रसन्न होकर अधिक दूध देने लगेंगी, मेघ जल वर्षा कर आकाश से चले जायेंगे। आकाश हंसों के विचरण करने से शस्त्र की भाँति चमकने लगेगा, वावलियों और सरोवरों में अनेक प्रकार के कमल उत्पन्न हो जायेंगे। जल के निर्मल हो जाने से तड़ाग कान्तिमान हो जायेंगे और धान्यों के अग्रभाग में बालों की पङ्क्ति दिखाई पड़ने लगेगी। नदियाँ जल को अपने मध्य में करने लगेंगी मुनियों के आश्रमों की सीमायें भी हरे-हरे अन्न के पौधों से मनोहर हो जायेंगी। वर्षा समाप्त हो जाने पर विभिन्न राष्ट्रों वाली पृथ्वी रमणीय हो जायेगी, मार्ग में फल वाले पौधे पंक्तिबद्ध होकर मार्ग की शोभा बढ़ाने लगेंगे, देश में ईख दिखायी देने लगेगी तथा वाजपेयादि यज्ञ होने लगेंगे। तुम्हारे शयन कर उठने पर जैसे शरद् ऋतु स्वर्ग में आनन्द देने लगती है वैसे ही हे कृष्ण! इस सम्पूर्ण लोक में भी व्यवहार करने लगेगी। मनुष्य इस पृथ्वी तल पर तुम्हारी और हमारी ध्वजा के दण्ड में इन्द्र तथा उपेन्द्र की पूजा करने लगेंगे। जो लोग हम दोनों की ध्वजा के नीचे हे महेन्द्र! हे उपेन्द्र! आप दोनों को प्रणाम है ऐसा कहकर प्रणाम करेंगे उनके पास अनीतियाँ नहीं आवेंगी।।५१-६०।।

तत्पश्चात् योगवेत्ता इन्द्र दिव्य दुग्ध भरे घटों को ग्रहण कर गोविन्द का अभिषेक करने लगे। इस प्रकार अभिषिक्त होते अविनाशी श्रीकृष्ण को देखकर गौवें भी अपने यूथपों के साथ स्तनों से दूध गिरा कर उनका अभिषेक

कीं मेघों ने भी अपनी जल धाराओं से उन अविनाशी का अभिषेक कर फिर आकाश गंगा के जल से मिश्रित अमृत से अभिषेक किया। पश्चात् सभी वनस्पतियों ने भी चन्द्रमा की भाँति निर्मल जल को चुवा कर अभषेक किया, फिर देवताओं ने पुष्पों की वृष्टि की तब आकाश में स्वयं दुन्दुभियाँ बजने लगीं। सभी ऋषि-मुनि अपनी वेदमयी वाणी से स्तुति करने लगे, पृथ्वी क्षीर समुद्र से पृथक् क्षीरमयी होकर सफेद दिखाई देने लगी। सागर प्रसन्न हो गये, जगत्-कल्याणकारी वायु चलने लगा, नक्षत्रों और ग्रहों से युक्त चन्द्रमा तथा सूर्य अपने मार्ग पर चलने लगे। अतिवृष्टि आदि का भय जाता रहा, राजा लोग आपस के वैर का त्याग कर प्रीति करने लगे, पेड़ में प्रवाल के सदृश लाल-लाल पत्ते निकल आये तथा फूलने-फलने लगे। हाथी अपना मद त्यागने लगे, वन के मृग सन्तोष को प्राप्त हो गये, पर्वतों पर रत्न आदि के धातुओं के प्रकट हो जाने से वे आभूषणों से अलंकृत से प्रतीत होने लगे। जिस प्रकार अमृत रूप रस से देवलोक तृप्त हो जाता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण के अभिषेक से यह लोक तृप्त हो गया, इस प्रकार दिव्य स्वर्ग के रस (अमृत) से उनका अभिषेक हुआ था। इस प्रकार गौवों के द्वारा अभिषिक्त दिव्य माला और वस्त्रों को धारण करने वाले अविनाशी गोविन्द से देव-देव इन्द्र बोले कि।।६१-७०।।

हे श्रीकृष्ण! मेरे पृथ्वी पर आने का पहला कारण यह है कि जो अपने गौवों की रक्षा की अब दूसरा कारण सुनिये। आप शीघ्र कंस तथा अश्वों में नीच केशी एवं मेद से मतवाले अरिष्टासुर का वध कीजिये पश्चात् राजाओं के ऊपर राज्य कीजिये। आपके पिता की बहन से हमारे अंश द्वारा हमारे ही समान अर्जुन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ है उसकी आप रक्षा कीजिये, उसका आदर कीजिये तथा उसे अपना सखा बनाइये। वह आपसे अनुगृहात होकर अपनी इच्छानुकूल बर्ताव करेगा, आपके वश में रहकर वह बहुत बड़े यश को प्राप्त करेगा। वह भरत-वंश में बहुत बड़ा श्रेष्ठ धनुर्धर होगा, वह आपके बिना आनन्द नहीं प्राप्त करेगा। भरत-वंशियों कौरव-पाण्डवों के संग्राम का भार तुम्हारे और उस पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन के ऊपर रहेगा। आप दोनों के संयोग

से ही भूभार रूप राजे विनष्ट किये जायेंगे। मैंने ऋषियों और देवताओं के बीच में यह प्रतिज्ञा की थी कि पृथ्वी का भार दूर करने के लिये अपने अंश से कुन्ती में अर्जुन नाम का पुत्र उत्पन्न करूँगा अतः उसी प्रतिज्ञा के अनुसार मैंने कुल को बढ़ाने वाले अर्जुन को अपने अंश से उत्पन्न किया हूँ। वह अस्त्रों की विद्या में पारङ्गत तथा धनुष को चलाने में श्रेष्ठ होगा, अस्त्र से युद्ध करने वाले राजों की वीरता अर्जुन की वीरता में विलीन हो जायेगी। संग्रामशील शूरवीर राजाओं की एक अक्षौहिणी सेना से यह अर्जुन अकेले युद्ध करेगा और मृत्यु रूप क्षात्रधर्म से उन्हें मार डालेगा। उसकी हस्त लाघवता से चलाये गये अस्त्रों का अनुकरण आपको छोड़कर अन्य कोई राजा या देवता नहीं कर सकेंगे।।७१-८०।।

वह संग्राम काल में आपकी सहायता भाई की तरह करेगा। हे गोविन्द! हमारे कहने से उसे योग-शास्त्र की शिक्षा दीजियेगा। जैसे आप मुझे देखते हैं वैसे ही उसे भी देखियेगा, जैसे आप लोकों को ज्ञान की शिक्षा देते हैं वैसे ही उसे भी बराबर ज्ञान की शिक्षा दीजियेगा। आप उसकी महासमर में सदा रक्षा करते रहियेगा, तुम्हारे द्वारा रक्षित होता हुआ अर्जुन मृत्यु को नहीं प्राप्त होगा। हे श्रीकृष्ण! जैसे आप हमको अपनी आत्मा समझते हैं वैसे ही अर्जुन को भी अपनी आत्मा समझियेगा। तुमने बलि के हाथ से तीनों लोकों को जीत कर मुझे अपना बड़ा भाई समझ कर देवताओं का राजा इन्द्र बनाया। इसीलिये तुमको सत्य-प्रतिज्ञ तथा सत्य-पराक्रम वाला समझ कर सत्य मार्ग पर चलते हुए देवता अपने अरियों के विनाश के लिये तुम्हीं को आगे नियुक्त करते हैं। वह अर्जुन आपके पिता की बहिन का पुत्र है, मेरी इच्छा है कि वह आपका सहचारी बनकर आपके प्रेम का पात्र बन जाय। उसके युद्ध करते रहने पर तथा गृह में रहनेपर अथवा संग्राम के मुँहाने पर सर्वत्र आपको उसके रक्षारूप भार का वृषभ की भाँति वहन करना चाहिए। हे श्रीकृष्ण! भविष्य में होने वाली हानियों के ज्ञाता आपके द्वारा कंस का वध होने पर राजाओं का युद्ध होगा यह निश्चित है। तब उस युद्ध में मनुष्यों के कर्म अतिक्रमण करने वाले नृवीरों को जीत कर अर्जुन विजय का भोक्ता होगा और आप यश के भागी होंगे।।८१-९०।।

हे अच्युत श्रीकृष्ण! यदि हम और देवता सचमुच आपको प्यारे हैं तो जितना मैं कहता हूँ उतना सब आप करियेगा। इस प्रकार इन्द्र के वचनों को सुनकर गोविन्द पद प्राप्त किये श्रीकृष्ण मन से प्रसन्न होकर प्रतिउत्तर रूप वाक्य बोले कि-हे शचीपते! मैं तुम्हारे दर्शन से ही प्रसन्न हो गया, जो कुछ तुमने कहा है वह सब मैं करूँगा कुछ भी शेष नहीं छोड़ूँगा। मैं आपके भाव को और अर्जुन के जन्म को जानता हूँ, पाण्डु को व्याही गई अपने पिता के बहन को भी जानता हूँ। धर्म के अंश से उत्पन्न युधिष्ठिर को तथा वायु के द्वारा उत्पन्न हुए पुत्र भीम को भी जानता हूँ। अश्विनी कुमारों द्वारा उत्पन्न किये नकुल-सहदेव रूप माद्री के पुत्रों को भी जानता हूँ। क्वाँरी अवस्था में अपनी फूफी से उत्पन्न कर्ण को भी जानता हूँ जो इस समय सूत हो गया है। युद्ध की आकांक्षा करने वाले धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनादिकों को भी जानता हूँ और शाप रूप वज्र से पाण्डु का मरण होना भी जानता हूँ। हे इन्द्र! देवताओं को सुख देने के लिये अब तुम स्वर्गलोक को जाओ, हमारे रहते-रहते अर्जुन कोजीत लेने वाला कोई शत्रु नहीं होगा। अर्जुन के कारण सभी पाण्डवों की महाभारत के युद्ध में रक्षा करूँगा और युद्ध समाप्ति के पश्चात उन पाण्डवों को कुन्ती के हवाले कर दूँगा। हे शक्र! जो तुम हमसे कहते हो तो जो तुम्हारा पुत्र अर्जुन है उसके साथ तुम्हारे स्नेह में बँधा हुआ मैं भृत्य की तरह आचरण करूँगा अर्थात् महाभारत के मैदान में सारथी बनूँगा। अपने ऊपर प्रेम रखने वाले सत्य-प्रतिज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से साक्षात् प्रिय लगने वाले वचनों को सुनकर स्वर्ग के राजा इन्द्र स्वर्ग को जले गये।।९१-१०२।।



अथ विंशोऽध्यायः।।२०।।

वैशम्पायनजी बोले-कि इन्द्र के चले जाने पर व्रजवासियों के द्वारा पूजित भगवान् गोवर्धनधारी शोभा से युक्त हो व्रज मे ही चले गये। श्रीकृष्ण के साथ बसने वाले उनके जाति के वृद्ध गोप उनका अभिनन्दन कर

और कहने लगे कि हम लोग आपके न्याय से तथा आचरण से धन्य हो गये। हे देवता के तुल्य पराक्रम वाले गोविन्द! तुम्हारे प्रसाद से गौवें जैसे वर्षा के भय से पार हो गई वैसे ही हम लोग भी इस अपार संसार सागर के भय से पार हो गये। हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे इस गोवर्धन पर्वत के धारण करने से तुम्हें हमलोग देवता समझते हैं क्योंकि हे गोपपते! यह तुम्हारा अमानुषिक कर्म देख रहे हैं। तुम कौन हो हम लोग सन्धिग्ध चित्त हैं, तुम रुद्रों में या मरुतों में या वसुओं में कोई हो, किस सम्बन्ध से वसुदेव तुम्हारे हुए। तुम्हारे इस बाल्यकाल का बल, क्रीड़ा तथा तुम्हारा जन्म हम निन्दितों के बीच हुआ और तुम्हारी कार्य चेष्टा इतनी ऊँची देखकर हम लोगों का मन शंकित हो रहा है कि किस कारण तुम लोकपालों की भाँति बलशाली होकर भी गोपवेष धारण कर हम निन्दित गोपों के साथ रह रहे हो और क्यों गौवों की रक्षा कर रहे हो। तुम देव हो कि दानव हो कि यक्ष-गन्धर्वों में से कोई हो? अच्छा जो भी हो सो हो; हमारे तो तुम बन्धु होकर जन्मे हो इसलिये तुम्हें नमस्कार है। यदि तुम किसी भी कार्यवश अपनी इच्छा से यहाँ बसते हो तो बसो हम लोग तुम्हारे अनुयायी हैं और तुम्हारी शरण में हैं तुम हम लोगों की रक्षा करो। वैशम्पायनजी बोले-इस प्रकार गोपों के वचनों को सुनकर कमलदल लोचन भगवान् श्रीकृष्ण हँस कर अपने उपस्थित जाति के लोगों से कहने लगे।।१-१०।।

जिस प्रकार आप लोग हमको भयंकर प्रराक्रम वाला मानते हैं वैसा मान कर हमारा अपमान मत कीजिये मैं तो आप लोगों का स्वजातीय बन्धु हूँ। यदि आप लोग सुनना ही चाहते हैं कि हम कौन हैंतो अभी समय की प्रतीक्षा कीजिये कुछ दिनों के बाद आप लोग सुन लेंगे और अच्छी तरह देख भी लेंगे कि मैं कौन हूँ। यदि आप लोग मुझे देवता की भाँति अपना बान्धव समझ कर प्रशंसा करते हैं तो यह हमारे ऊपर आप लोगों का परम अनुग्रह है फिर यह जानने से कौन कार्य है कि मैं कौन हूँ? वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने पर सभी गोप मौन हो मुँह बन्द कर अपने-अपने घर में चले गये। फिर श्रीकृष्ण रात्रि काल में चन्द्रमा की पूर्ण कला तथा वन एव शरद काल की

रम्य निशा देख कर रति करने का विचार करन लगे। पश्चात गोंइठियों से भरी हुई व्रज की गलियों में वे बली कृष्ण मदमत्त साँड़ों को लड़ाने लगे और बलवान गोपालों को लड़ाने लगे, वे श्रीकृष्ण वीर वन में गौवों को ग्राह की भाँति पकड़ लेते थे अर्थात् पकड़ने के बहाने दौड़ मारते थे। वे काल के ज्ञाता अपनी किशोर अवस्था मानते हुए रात्रि के समय युवती गोप कन्याओं को वश में कर उनके साथ मोद करते थे (दस वर्ष के बाद ग्यारहवें से उपनयन संस्कार के पहले-पहले किशोरावस्था कही जाती है इस अवस्था की खेलों का दोष नहीं लिया जाता ऐसा शास्त्रों का मत है) पृथ्वी पर उतरे हुए चन्द्रमा की भाँति वे सुन्दर गोप-स्त्रियाँ रात्रि काल में उन श्रीकृष्ण के प्रिय मुख का अपने नेत्र पक्षों से पान करती थीं। गीले हरताल के समान पीले मंगलप्रद रेशमी वस्त्रों को पहने हुए श्रीकृष्ण अत्यन्त ही सुन्दर ज्ञात होते थे। वह बाहुओं में बाजूबन्द तथा गले से चित्र-विचित्र पुष्पों से गुथी वनमाला पहन कर और भी शोभायमान होते हुए व्रज को सुशोभित करते थे। कृष्ण के व्रज में विचित्र चरित्रों को देख उनका उद्बोधन करती हुई गोप कन्यायें दामोदर यह नाम कह कर पुकारा करती थीं। और वे वराङ्गनायें अपने उठे हुए पयोधरों वाले वक्षस्थल से उन्हें पीड़ित करती हुई अपनी आँखों को घुमा कर तिरछी दृष्टियों से देखा करती थीं। वे गोप कन्यायें अपने पतियों, माता-पिताओं तथा अपने भाइयों के मना करने पर भी नहीं मानती थीं और रात्रि काल में रति-प्रिय गोपाङ्गनायें कृष्ण के साथ रतिक्रीड़ा करती थीं। दोनों बाहु रूप प्रदेशों से वर्ताव कर रहे हैं श्रीकृष्ण जिन गोप कन्याओं के साथ ऐसी सभी गोप कन्यायें पङ्क्ति बाँधकर गोलाई में खड़ी हो कृष्ण के चरित्र को गाती हुई मन को अच्छी लगने वाली क्रीड़ाओं से खेलती थीं। वे सुन्दर युवतियां कृष्ण में दृष्टि लगाये कृष्ण की लीला का अनुकरण करती थीं और उन्हीं की चाल का नकल कर चलती थीं। और अन्य गोप कन्यायें होथों से ताली बजाकर गाती हुई कृष्ण के चरित्र का आचरण करती हुई वन में विचरती थीं। वे कृष्ण के नाच-गान हास्यपूर्वक दृष्टिपात का अनुकरण कर मन को प्रसन्न करती हुई व्रज की स्त्रियाँ क्रीड़ा करती थीं। वराङ्गनायें दामोदर में आसक्त हो उन्हीं के भावों को

प्रकट करती हुई सुख से विचरती हुई व्रज में रहने लगीं। गोबर के उपलों की धूल लिपटी है अङ्ग में जिनके ऐसी व्रज-युवतियाँ श्रीकृष्ण को घेर कर वैसे ही रमण करती थीं कि जैसे हथिनियाँ गज को घेर कर रमण करती हैं।।२१-३०।।

श्रीकृष्ण को कृष्ण मृग जैसी आँखों वाली अपने नेत्रों से हाव-भाव प्रदर्शित करती हुई तथा प्रसन्न मुखों वाली अन्य व्रज वनितायें पान करती हुई तृप्त न होती थीं। कृष्ण के कमल के समान मुख को रति काल के बीच रात्रि में रस की लालच से प्यासी गोपा कन्यायें पीती थीं। जब वे उनका नाम लेकर हे राधे, हे चन्द्रमुखि कह कर शीघ्रता से अलग होने लगते थे तो वे वराङ्गनायें दामोदर से बोली हुई वाणी को सुनती थीं। गोप कन्याओं की बंधी केशों की चोटियाँ रति काल में झकझोरने से खुल जाती थीं और उनके खुले बाल उनके स्तनों के अग्र भाग पर लटकने लगते थे। इस प्रकार शरद ऋतु में चन्द्रमा की किरणों से भरी रात्रियों में गोप कन्याओं के मण्डलों से अलंकृत होकर भगवान् श्रीकृष्ण सुखी होकर प्रसन्न होते थे।।३१-३५।।



अथ एक विंशोऽध्यायः।।२१।।

वैशम्पायनजी बोले कि- इस प्रकार श्रीकृष्ण के रति क्रीड़ा करते समय आधी रात को भयभीत करता हुआ मदमत्त अरिष्टासुर गोष्ठ में दिखलाई पड़ा। वह बुताये हुए अङ्गारों तथा मेघ के समान काले रंग का था उसकी आँखें सूर्य की भाँति चमकती थीं, सींग तेज थी चरण का अग्र भाग छुरे के समान तीक्ष्ण था इस प्रकार वह काल से पृथक दूसरे काल के समान प्रतीत हो रहा था। वह अपनी जिह्वा से ओष्ठों को बार-बार चाट कर उन्हें बन्द कर लिया करता था तथा घमण्ड में भर कर अपनी पूँछ को घुमा रहा था और उसके कन्धे के ऊपर ककुद डील उठा हुआ और वह स्कन्ध कठोर था। वह अपने कड़े डील के अग्रभाग से वृक्षों की मोटी-मोटी शाखाओं को तोड़ कर

मार्ग बनाता चलता था और उसके अंग में मल-मूत्र लिपटा हुआ था, वह गौवों को उद्विग्न करने वाला था। उसका कमर लम्बा था मुख मोटा था जंघाये पुष्ट थीं और उदर बड़ा था। जब वह मुख का चर्वण करता तब उसके गले में लटकता गल-कम्बल और सींगे भी हिलने लगती थीं। वह गौवों के ऊपर चढ़ने में बड़ा चञ्चल था, वृक्षों के आघात का उसके मुख पर जिह्व दिखाई दे रहा था उसके सींगों का अग्र भाग युद्ध के लिये सुसज्जित था वह द्वेष करता हुआ वृषभों को मारने वाला था। वह अरिष्ट नाम का दारुण-स्वरूप वाला गौवों के मारकेश की भाँति था, वह वृषभ का रूप धारणकर गौवों मेंचारों तरफ दौड़ रहा था। बिना ऋतु के ही गर्भिणी गौवों पर चढ़ कर उनका गर्भ गिराने लगा और जम्भाई लेता हुआ चञ्चलता से तत्काल की व्याई हुई गौवों पर भी चढ़ कर मैथुन करने लगा। वह भंयकर रूपधारी दुर्मद अरिष्ट अपनी सींगों से गौवों के ऊपर प्रहार करने लगा, गोष्ठ में गौवों और वृषभों का उसके युद्ध करने के बिना छुटकार न था। इस प्रकार कुछ ही समय के बाद वह वृषासुर यमराज के वश में स्थित श्रीकृष्ण-बलराम के समाने आ गया।।१-१०।।

वह मद से उत्कट उनके सामने ही गौवों को क्रुद्ध हो मारने लगा तब गौवें बछड़े, बैल और साँड़ गोष्ठों से निकल कर भाग गये। इसी बीच वह यमराज के वश में स्थित दुष्टात्मा कृष्ण के समीप में खड़ी गौवों को भी डराने लगा। वह महासुर इन्द्र के वज्र की भाँति तड़प कर मेघ की तरह गर्जने लगा तब श्रीकृष्ण ने ताल ठोक कर सिंहनाद कर उसको मोहित करते हुए। वृषभ रूपधारी दैत्य पर झपटे, इस प्रकार अपनी ओर झपटता हुआ श्रीकृष्णु को देख कर मारे प्रसन्नता के उसके नेत्र प्रफुल्लित हो गये और वह पूँछ हिलाने लगा। ताल के शब्द से क्रोधित हो युद्ध की आकांक्षा से वह गर्ज कर चला तब वृषभ रूपधारी उस दुष्ट को अपने ऊपर टूटता देखकर भी भगवान् श्रीकृष्ण उस स्थान से विचलित न हुए वरन् वहीं पर्वत की भाँति अचल हो खड़े रहे। वह वृषभासुर श्रीकृष्ण की कोख में दृष्टि गड़ा उनको मार डालने की इच्छा से बडे वेग से ऊपर को उछला। तब अपने सामने इस प्रकार उछलने

वाले वृषभासुर को काले अञ्जनगिरि की कान्ति वाले श्रीकृष्ण जैसे वृषभ को पकड़े वैसे ही पकड़ लिये। फिर श्रीकृष्ण जैसे वृषभ के साथ महावृषभ भिड़ जाय वैसे ही भिड़ गये और बैल की तरह मुँह से फेन छोड़ने लगे और वैसे ही नासिका से शब्द भी करने लगे। कृष्ण और वृषभासुर दोनों एक दूसरे से अरुझ कर युद्ध करते हुए दो सटे हुए मेघ की भाँति शोभा पाने लगे। श्रीकृष्ण ने उसके दर्प रूप बल को मार कर शिथिल कर दिया और उसके सींगों के बीच में पैर रख कर तथा उसका सींग सहित थूथुन पकड़ कर ऐसे ऐंठ दिया कि जैसे कोई भीगा कपड़ा निचोड़े।।११-२०।।

फिर उसकी दाहिनी सींग उखाड़ कर यम-दण्ड की भाँति उसी सींग के प्रहार से मुँह पर मारने लगे तब अत्यन्त आहत होकर वह मर गया। उखड़ी हुई सींग वाला, टूटे मुख और कन्धा वाला वह दानव भूमि पर गिर कर रुधिर की धार छोड़ता हुआ जल धार छोड़ने वाले मेघ की भाँति ज्ञात होने लगा। गोविन्द के द्वारा बली वृषभासुर का वध देख कर सब लोग उनके इस कर्म पर साधु-साधु कह कर स्तुति करने लगे। वह कमल नेत्र उपेन्द्रजी वृषभासुर का वध कर प्रिय चन्द्रमा की चाँदनी में पुनः गोप कन्याओं के साथ रस-क्रीड़ा करने लगे। जैसे देवता इन्द्र की उपासना करते हैं वैसे ही सभी गोप प्रसन्न हो कमल लोचन श्रीकृष्ण की उपासना करने लगे।



अथ द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

वैशम्पायनजी बोले—व्रज में भगवान् श्रीकृष्ण को अग्नि की भाँति बढ़ता सुन कर कंस उद्विग्न हो गया और सशंकित हो भयभीत होने लगा। पूतना के मारे जाने से, कालिय के पराजित होने से, धेनुका सुर के समाप्त होने से तथा प्रलम्बासुर के ताल वृक्ष से गिरा कर मारे जाने से। गोवर्धन पर्वत के धारण करने से एवं इन्द्र के शासन को विफल कर गौवों की रक्षा करने से एवं गौवों पर प्रेम करने से ककुद्मी अरिष्ट के मारे जाने पर गोपों की प्रसन्नता

से अपना भी विनाश निकट देखता हुआ महाभय से व्याकुल हो गया। यमलार्जुन वृक्षों को उलूखल के आकर्षण द्वारा गिरा देना और शकट को गिरा देना आदि उनके अचिन्त्य कर्मों को सुनकर तथा शत्रु को बढ़ता जान कर वह मथुरेश्वर अरिष्टासुर की भाँति अपने को भी मृत्यु के मुख में समझने लगा, उसकी इन्द्रियाँ शून्य हो गईं तथा वह प्राण रहित की भाँति हो गया। इसके बाद वह उग्र शासन करने वाला राजा कंस अपने जातियों को और अपने पिता उग्रसेन को सन्नाटी रात में आदर के साथ बुला कर देवता के समान कान्तिमान वसुदेव और यादव कंक, सत्यक, दारुक और कंक के छोटे भाई भोज, वैतरण और महाबली विकद्रु, महाशंख, धर्मज्ञ, विपृथु तथा पृथुश्रिय को बुलवाया। तथा दान-पति अक्रूर कृतवर्मा, भूरितेजस्, अक्षोभ्य तथा भूरिश्रवा को बुलवाया।।१-१०।।

इन प्रधान-प्रधान यादवों का सम्बोधन कर कहा कि जो हम कहते हैं उसे आप लोग सुनिये ऐसा कहकर मथुरेश्वर उग्रसेन का पुत्र कंस बोला। आप लोग सभी कार्यों के ज्ञाता तथा वेदों के विद्वान हैं और न्याय के अनुसार वर्ताव करने में कुशल हैं एवं अर्थ, धर्म तथा काम इन तीनों वर्गों का मार्ग बतलाने वाले इनके आचार्य हैं। आप कर्तव्य कार्य को ही करने वाले हैं तथा लोक के विविद पण्डितों की उपमा के योग्य हैं और आपत्ति आने पर भी आप लोग अपने उच्च आचरणों पर ही पर्वत की भाति निश्चल रहने वाले हैं। आप सभी पाखण्ड रहित गुरु कुल में वास कर शिक्षा प्राप्त किये हुए हैं और सभी राजनीतिज्ञ एवं धनुर्वेद विद्या के पारङ्गत हैं। आप लोगों का यश तीनों लोकों में फैल रहा है और आप लोग वेदों के अर्थों के ज्ञाता एवं कर्म के पारंगत हैं। संकटकाल उपस्थित होने पर सुन्दर नीतियों को बतलाने वाले नीति दर्शकों के भी आप लोग नेता हैं और दूसरे राष्ट्रोंके आप लोग राजा हैं तथा आप लोग शरण में आये हुए की रक्षा करने वाले हैं। इस प्रकार के अक्षत चरित्रों के द्वारा आप श्रीमानों की ही चर्चा कथा प्रसंग में चला करती है, स्वर्ग भी आप लोगों से अनुगृहीत हो गया है तो पृथ्वी की कौन चलावे आप लोगों का चरित्र ऋषियों की भाँति और प्रभाव मरुत्गणों के जैसा, क्रोध रूद्र के जैसा तथा

तेज अग्नि की भाँति है। गिरते हुए यदुकुल को आप श्रेष्ठ पुरुषों ने अपनी विख्यात कीर्तियों से धारण कर लिया है जैसे पर्वत पृथ्वी को धारण किये है। इस प्रकार आप लोगों के चित्त के अनुकूल मेरे वर्ताव करने पर भी अब आप लोगों के द्वारा मेरे ऊपर बढ़ते हुए अनर्थ की उपेक्षा क्यों की जा रही है।।११-२०।।

व्रज में नन्द का पुत्र कृष्ण नाम से जो विख्यात है वह समुद्र की भाँति बढ़ता हुआ हम लोगों की जड़ को काट रहा है। अच्छे मंत्रियों से रहित होने से मेरा हृदय शून्य हो गया है तथा योग्य गुप्तचरों के न रहने से मैं अन्धा हो गया हूँ इसी कारण से नन्दगोप का पुत्र उसके घर में सुरक्षित है। व्याधि की उपेक्षा कर देन पर जैसे व्याधि बढ़ती है, पूर्णिमा के दिन जैसे समुद्र बढ़ता है और जैसे ग्रीष्म काल के अन्त में गर्जता हुआ मेघ बढ़ता है वैसे ही वह दुरात्मा कृष्ण बढ़ रहा है। नन्द गोप के घर उत्पन्न अद्भुत कार्य करने वाले उस कृष्ण की न मैं बल-सीमा जानता हूँ न उसके पराक्रम तथा न उसके वशीकरण के उपाय को ही जानता हूँ। वह किस शक्तिसे उत्पन्न हुआ है देव-पुत्र है कि और कोई है यह मैं नहीं जानता पर देवताओं को भी अतिक्रमण करन वाले उसके अमानुषिक कर्मों से यह ज्ञात होता है कि वह देवताओं से भी अधिक कोई है। पूतना पक्षी को बाल्यकाल में ही जबकि वह उतान हो शिशु अवस्था में सो रहा था तभी उसके स्तनों को प्राणों सहित पी लिया तथा यमुना के तालाब में कालिय का दमन कर रसातल को भेज दिया, वह कुछ क्षण बाद उस ह्रद से लुप्त हो गया। इस प्रकार योग कर अर्थात नाग बन्धन का भेदन कर पुनः उठ खड़ा हुआ तो धेनुकासुर को ताल वृक्ष से गिरा दिया जिससे वह प्राण रहित हो गया। देवताओं से भी दुर्जेय प्रलम्बासुर को बालक कृष्ण ने एक ही मुष्टिक से मार डाला जब उसने इन्द्र के उत्सव को भंग कर दिया तब इन्द्र कुपित हो व्रज में घोर वृष्टि करने लगे उस समय उसने गौवों के रक्षार्थ गृह बनाने के लिये गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर हाथ पर उठा लिया।।२१-३०।।

व्रज में गये हुए बलवान् बृषभासुर को उसकी सींग उखाड़ कर मार डाला वह लड़का नहीं है पर कपट से बालक बन कर बाल लीला करता हुआ

व्रज में रमण कर रहा है। गौवों के व्रज में बसने वाले उस कृष्ण के इस प्रकार के कार्यों के प्रबन्ध से ज्ञात होता है कि हमारे और केशी के लिए भी भय निश्चित सन्निकट है। पूर्व जन्म में भी यही मेरी मृत्यु का कारण था वही अब कृष्ण शरीर रूप धारण कर निरन्तर युद्ध की इच्छा करता हुआ मेरे सामने रह रहा है। कहाँ तो गोप का अशुभ मानुषीय रूपजो कि हमारे द्वारा मृत्यु योग से दुर्बल, कहाँ व्रज में देवताओं के योग्य खेलों को खेलना। अहो! यह निश्चित है कि वह नीच गोप के वेष में छिपा हुआ कोई देव है जो श्मशान में स्थित अग्नि की भाँति जलता हुआ व्रज में विचर रहा है। मैं सुनता हूँ कि पहले देवताओं के हित के लिये विष्णु ने वामन रूप धारण कर छल से सम्पूर्ण पृथ्वी को हर लिया। उसी अनेक रूपधारी विष्णु ने सिंह का रूप धारण कर दानवों के पितामह हिरण्यकशिपु को मार डाला। वही विष्णु हिमालय की चोटी पर शंकर का अचिन्त्य रूप धारण कर त्रिपुरासुर को मार कर दैत्यों को रसातल भेज दिया। इसने ही अङ्गिरा गोत्री गुरु पुत्र कच से शुक्र को विचलित करा कर दर्दुर मायाका आश्रय लेकर अनावृष्टि कराई थी। यह अनन्त अविनाशी हजारों शिरों वाला विष्णु वाराह रूप धारण कर समुद्र से पृथ्वी को ऊपर निकाला।।३१-४०।।

अमृत के निकलने पर विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर देवताओं और असुरों में महाभयंकर संग्राम करा दिया। अमृत मंथन के लिये देवताओं और दानवों के उपस्थित होने पर समुद्र में इसने अपना कछुए का रूप बनाकर मन्दराचल पर्वत को पीठ पर धारण किया था। बलि को प्रसन्न करने वाला वामन रूप धारण कर तीन पगों से तीनों लोकों को नाप कर स्वर्ग का हरण कर लिया। अपने तेज का चार भाग कर दशरथ के घर जन्म लेकर राम रूपी उसी विष्णु ने रावण का विनाश किया। इसी प्रकार यह विष्णु छल से अपना तत्-तत् रूप धारण कर देवताओं के प्रयोजन को सिद्ध करने की साधना करता रहता है। जो इस समय यह कृष्ण रूप में निश्चय ही विष्णु है अथवा इन्द्र है अथवा मरुत्-पति है हमारे वध की इच्छा से आया है, नारद ने भी हमसे कहा था। इस विषय में वसुदेव के प्रति मेरी बुद्धि ध्रुव शंका करती है,

इसकी विशेष बुद्धि से हम दुःखी हो गये हैं। मैं जब खड्वाङ्ग वन में नारद से मिला था तो उन्होंने मुझसे दूसरी बार फिर कहा था कि-हे कंस! जो तुमने गर्भों को नष्ट करने का महान् प्रयत्न किया था सो वसुदेव ने तुम्हारा प्रयत्न रात्रि में विफल कर दिया। हे कंस! जो तुमने कन्या को रात्रि में शिला पर पटका था वह यशोदा की कन्या थी और यह जो कृष्ण है सो वसुदेव का पुत्र है तुम यह समझो।।४१-५०।।

मित्र रूप से शत्रु का कार्य करने वाले वसुदेव ने तुम्हारे वध के लिए विचार कर इन दोनों गर्भों का अदला-बदली कर दिया था। इस समय वह यशोदा की कन्या पर्वतों में उत्तम विन्ध्य पर्वत पर रह रही है उसने पहाड़ में विचरने वाले शुम्भ-निशुम्भ का वध कर अभिषिक्त हुई है और लोगों को वर देती है वह भूतों के समूहों से घिरी रहती है और सेवकों के द्वारा पशुओं की महाबलि पाकर प्रसन्न होती है। वह मदिरा और मांस से भरे घटों से शोभित रहती है तथा मयूर पंखों का बाजूबन्द पहनती है तथा मुकुट धारण करती है। जिस वन में वह रहती है उस वन में प्रसन्न होकर मुर्गे और कौवे बोलते हैं तथा वह वन जंगली जीवों से व्याप्त सिंह, शूकर मृग आदिकों से भरा है और वह नाना प्रकार के पक्षी गणों से अवरुद्ध है। वह सिंह, व्याघ्र और शूकरादिकों के ध्वनि से प्रतिध्वनित होता रहता है उसमें वृक्षों की घनी छाया है चारों तरफ और भी वनों से घिरा है। जिस स्थान पर वह देवी रहती है उस स्थान पर सुवर्ण का गडुआ रखा है सुवर्ण का छत्र लगा है तथा चँवर डुलता रहता है और देवताओं के सैकड़ों प्रकार के प्रतिदिन बाजे बजा करते हैं। उसका स्थान विन्ध्य पर्वत पर है उसने अपने तेज से उस स्थान को बनवाया है, उस मनोरम स्थान पर रह कर वह माता शत्रुओं से लोगों की रक्षा करती है। इस प्रकार वह देवताओं से पूजित हो परम प्रसन्न कर वहाँ रहती है, जो कृष्ण को तुम लोग नन्द का पुत्र कहते हो। इसको नारद ने मुझसे कहा था कि यह आगे चल कर वसुदेव का पुत्र वासुदेव कहलायेगा। पहले नन्द का पुत्र बन कर दूसरी बार वसुदेव का पुत्र बनेगा।।५१-६०।।

वही वसुदेव का महाबली पुत्र वासुदेव द्वारा तुम्हारी सहज मृत्यु होगी

और बान्धव भी होगा, धर्म सम्बन्ध से बान्धव और हृदय से यमराज के समान हमारा शत्रु होगा। जैसे कौवा जिसके मस्तक पर बैठता है उसके ही नेत्रों को अपने मांसाहारी चोंचों के द्वारा विदीर्ण करता है। उसी प्रकार यह वसुदेव भी है जो पुत्र तथा जाति और बान्धवों सहित मेरा ही खाकर मेरे ही जड़ को काट रहा है। गर्भ गिराने का पाप प्रायश्चित्त के द्वारा मिटाया जा सकता है इसी प्रकार गो-वध एवं स्त्री वध का भी प्रायश्चित हो सकता है परन्तु कृतघ्नों के लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है यदि वह बान्धव है तो और भी नहीं है। जो कृतघ्न कार्य के अनुरोध से अर्थात देखने में अनुकूल कार्य करते हुए हृदय में कपट रख कर प्रेम व्यवहार करता है उसे पतितों की गति शीघ्र प्राप्त हो जाती है। जो पाप बुद्धि नहीं रखता उसके साथ जो पाप बुद्धि रख कर पाप का आचरण करता है वह नरक के कठिन मार्ग पर जाता है। नियम से या गुण से अथवा व्यवहार से या तुम्हारी भिन्न कामना से मैं अच्छा कि मुझसे अच्छा तुम्हारा पुत्र कृष्ण है। जिस प्रकार दो हाथियों के घोर युद्ध के बीच तृण विशेषों का नाश होता है और युद्ध समाप्त होने पर हाथी फिर जंगल में एक साथ होकर खाते हैं उसी प्रकार हमारे और कृष्ण के बीच में पड़ कर वसुदेव नष्ट हो जायेगा हम और वह फिर एक साथ हो जायेंगे। बान्धवों के बीच झगड़ा उपस्थित होने के समय भेद डालने वाला जो बीच में पड़ता है वही मारा जाता है, वह अन्य हो या स्वजन हो। हे वसुदेव! मैं यह जानता हूँ कि तुम इस कुल के विरोधी होओगे फिर भी मैं अपने विनाश के लिये तुम काल रूप वसुदेव का पोषण करता रहा यह हमारी ही गलती है।।६१-७०।।

स्वाभाविक बैरी की भाँति तू बराबर पाप बुद्धि रख कर ईर्ष्या करता चला आता है तू शठ है हे मूढ़! तुमने मथुरा में यदुकुल को सोचनीय बना दिया है। हे वृद्ध! जो तुम्हें बड़ा समझ कर सम्मानित किया है सो वृथा है बालों के सफेद होने से, सौ वर्ष की आयु हो जाने से कोई वास्तविक वृद्ध नहीं होता है। बल्कि जिसकी बुद्धि परिणाम पर पहुँचती हो वही वृद्ध से भी वृद्ध है अर्थात् वह मनुष्यों में सबसे बड़ा है वह वृद्ध नहीं कहलाता कि जिसके बाल सफेद हो गये हों। तुम कठोर स्वभाव के हो तूने अपनी बुद्धि से शास्त्रों को

नहीं सुना है केवल अवस्था मात्र से वृद्ध हो गये हो तुम उसी प्रकार व्यर्थ के मनुष्य हो कि जैसे शरद् कालीन मेघ जल रहित होने से व्यर्थ होता है। हे व्यर्थ मति वसुदेव! क्या तुम सचमुच यह जानते हो कि कंस के मरने के बाद मेरा पुत्र मथुरा का राजा बनेगा। यह सोचना तुह्मारा व्यर्थ है, तुम व्यर्थ के वृद्ध हो जाने से तुम्हारी यह बुद्धि नष्ट है क्योंकि जो मेरे आगे आता है वह जीने की इच्छा से रहित हो जाता है उसे मैं मार डालता हूँ। जो तुम विश्वासी मेरे ऊपर दुष्ट चित्त वृत्तियों से प्रहार करना चाहते हो तो मैं तुम्हारे पुत्रों के देखते-देखते तुम्हारा प्रतिकार करूँगा। मैंने कभी वृद्ध, ब्राह्मण तथा स्त्री का वध नहीं किया है न अब करूँगा जिसमें विशेष रूप से बन्धुओं में तो और भी किसी का वध नहीं करूँगा। हे वसुदेव! तुम यही पर जन्में हो और मेरे पिता के द्वारा बढ़ाये गये हो इसी से बड़े हुए हो तुम मेरे बहन के भर्ता हो तथा यदुकुल में सबसे बड़े प्रधान पुरुष हो। तुम चक्रवर्तियों के महान् प्रतिष्ठित कुल यदुवंश में उत्पन्न हुए हो इसी लिये सज्जनों से, बड़े-बड़े लोगों से तथा धार्मिक पुरुषों से पूजित हुए हो।।७१-८०।।

हम लोग क्या करें तुम यदुवंशियों के समूह में मुख्य होकर भी ऐसा दुष्ट कर्म कर रहे हो कि जो सर्वदा सज्जनों की गोष्ठी में हम सभी निन्दा के पात्र बन गये हैं। वसुदेव की दुर्नीतियों से रचे गये युद्ध में मेरी जय हो अथवा मेरा वध हो दोनों प्रकार से एक ही इस वसुदेव की काली करतूतों से लज्जित हो सारे यदुवंशियों का शिर सज्जनों की सभा में नीचा हो जायगा। तुमने हमारे वध के उपाय की तर्कना का विश्वासघात किया है इससे सभी यदुवंशियों को निन्दित करा दिया है। तुमने हमारे और श्रीकृष्ण के बीच कभी न शान्त होने वाला बैर उत्पन्न कर दिया है हम दोनों में एक के शान्त हो जाने पर ही अब यादव शान्त हो सकते हैं। इसलिये हे अक्रूर! तुम व्रज से राम-कृष्ण को यहाँ लिवा लाने के लिये शीघ्र ही चले जाओ और हमारी आज्ञा से कर देने वाले नन्द तथा अन्य गोपों को भी बुला लाओ। तुम जाकर नन्द से कहना कि वार्षिक कर लेकर सभी गोपों के साथ शीघ्र ही चलो इस प्रकार सबको अपने साथ लिवा कर तुम शीघ्र मथुरा चले आओ और नन्द से कह देना कि वसुदेव

पुत्र कृष्ण और संकर्षण को अवश्य ले चलो क्योंकि अपने भृत्यों और पुरोहित सहित कंस इनको देखना चाहता है। मैं सुनता हूँ कि ये दोनों युद्ध करना जानते हैं और उत्सव में समयानुसार युद्ध कर सबको प्रसन्न करने वाले तरह-तरह के व्यायाम की कलाओं को दिखाने वाले हैं। महारे यहाँ भी दो मल्ल उत्सव में युद्ध करने के लिये सुसज्जित हैं इन्हीं मल्लों के साथ उन युद्ध कुशल राम-कृष्ण दोनों को उत्सव में लड़ाया जायेगा। बहन के पुत्र जो इस समय वन में विचरने वाले व्रजवासियों में मुख्य हैं तथा देवता के समान हैं उन बालकों को मुझे अवश्य देखना चाहिए।।८१-९०।।

व्रज में जाकर तुम गोपों के समीप कहना कि सुखी राजा धनुष-यज्ञ नामक उत्सव करायेंगे। तुम लोग चल कर पास के ही जंगल में सुखपूर्वक निवास करो और यज्ञ में आये हुए निमंत्रित व्यक्तियों के लिये जो खर्च हो जैसे दूध, घी, दही तथा मट्ठा आदि आवश्यकता के अनुसार देने के लिये तथा दूध से मिश्रित पकवान बनाने के लिय जो दूध खर्च हो देने के लिये चलो। हे अक्रूर! तुम शीघ्र ही जाओ और मेरी आज्ञा से उन दोनों राम-कृष्ण को ले आओ क्योंकि उन्हें देखने के लिये मुझे बड़ा उत्साह हो रहा है। उनके यहाँ आ जाने से मेरा परम प्रिय कार्य होगा, जब वे आ जायेंगे तो उस महा शक्तिमानों को देख कर जैसे हित समझूँगा वैसे करूँगा। यह मेरा कहना सुन कर नहीं आयेंगे तो यथा समय वे बाँध कर लाये जायेंगे। बालकों को पहले शान्ति से समझाना क्यों बालकों के लिये यह पहला धर्म है, उनको मीठी बातों के द्वारा समझा कर उन मन्द बुद्धियों को शीघ्र लाओ। हे सुव्रत अक्रूर! यदि वसुदेव से मिले हुए न हो तो इस कार्य को करके हमारी परम दुर्लभ प्रीति को करो अर्थात् मित्र बनो तुम्हें यही उपाय करना चाहिए कि जिससे वे दोनों चले आवें, इस प्रकार के वचनों से आश्रित होते हुए भी वसु की उपमा वाले वसुदेव सागर की भाँति गम्भीर होकर बैठे रहे कम्पित नहीं हुए। मूर्ख कंस के वचन कण्टकों से छेदे गये भी वसुदेव मन में क्षमा धारण कर चुप रहे कुछ भी प्रतिउत्तर उसे न दिये। अनेक प्रकार के व्यंग वचनों से आक्षिप्त वसुदेव को जो भी देखे वे नीचे मुख कर मन्द स्वर से धिक्-धिक् कहने लगे महातेजस्वी

अक्रूर अपने चक्षुओं से सब जानते थे वे कंस की राजाज्ञा से वैसे ही प्रसन्न हुए कि जैसे प्यासा जल पाने पर प्रसन्न होता है। उसी क्षण वे दानपति अक्रूर प्रसन्न हो पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिये मथुरा से निकल कर चलने लगे।।९१-१०३।।



अथ त्रय विंशोऽध्यायः।।२३।।

वैशम्पायनजी बोले–यदुवंश में श्रेष्ठ वसुदेव को देखकर सभी यादव होथों से कान पकड़ कर उसे 'अब मरा' ऐसा समझने लगे। उस सभा में श्रेष्ठ वक्ता अन्धक क्रोध उद्विग्न न होते होते धैर्य धारण कर ओजस्वी वाणी द्वारा कंस से कहने लगे। जो तुमने कहा है वह व्यर्थ है, तुम्हारा मत निन्दित है, सज्जनोंसे निन्दित अयुक्त वचन किसी से न कहना चाहिए, यदि अपना सम्बन्धी हो तो और भी कुछ नहीं कहना चाहिये। आप यादव नहीं हैं इसलिये कुछ कहते हों तो हे वीर! ये यादव तुमको बलपूर्वक यादव तो नहीं बना रहे हैं। हे पुत्र! वृष्णियों पर अपने अनुकूल शासन करते हो वे वृष्णि कुल वाले निन्दित हो गये? एक समय इक्ष्वाकु वंश में प्रजापीडक असमंजस नाम का राजा हुआ था वह तुम्हीं थे जो पुनः आकर यहाँ कंस के रूप में उत्पन्न हुए हो। तुम भोजवंशी या यदुवंशी अथवा कंस जो भी हो तुम अपने स्वाभाविक बधे हुए राजमुकुट वाले शिर को मुड़ा डालो अथवा जटा धारण करलो हमसे क्या प्रयोजन पर हमारे कुल में कलंक लगाने वाले उग्रसेन शोचनीय है कि जिस दुर्जाति ने तुम्हारे जैसे पुत्र को उत्पन्न किया। हे तात! कोई बुद्धिमान अपने गुण अपने से कह कर गुणी नहीं बनता जब दूसरे लोग उसके गुण को वेदसम्मत कहते हैं तब वह गुणी कहलाता है। तुम्हारे जैसे कुलविनाशक मूर्ख द्वारा अनुशासित यह यदुवंश राजाओं की गोष्ठी में निन्दित तो है ही। तुमने अपने अनुचित वचनों को उचित समझ कर कहते हुए अपना कार्य सिद्ध नहीं किया है वरन् अपने को स्पष्ट निन्दित बना डाला है।।१-१०।।

बड़े सज्जनों से आदरणीय पापरहित श्रेष्ठ पुरुष पर किये गये आक्षेप को कौन है जो अच्छा कहेगा, उसे तो ब्राह्मण वध की भाँति ही निन्दित समझेगा। वृद्ध पुरुष आदरणीय होते हैं उनका शील मानना चाहिये अनादर करने सुनका अग्नि की भाँति क्रोध पाये हुए लोकों को भी नष्ट कर देता है। अपनी आत्मा की उन्नति करने वाले नम्र पण्डित को चाहिये कि जैसे मछली जल में चलकर अपने चारे को ढूँढ़ती है वैसे ही वे संसार में भ्रमण कर धर्म की गति को खोजें। तुम तो घमण्ड से अग्नि के समान जला देने वाले वृद्ध पुरुषों को मर्मभेदन करने वाली कठोर वाणी से वेध रहे हो, यह तो मन्त्र रहित आहुति की भाँति विपरीत फलदायक होग। यदि पुत्र के हेतु वसुदेव की निन्दा करते हो तो यह तुम्हारा झूठा प्रलाप है, हम तुम्हारे इस अनिष्टकारी वचनों की निन्दा करते हैं। यदि पुत्र दारुण होता है तो उसके साथ पिता भी दारुण नहीं बन जाता वरन् पुत्र के लिये पिता कठिन से कठिन आपत्तियों को झेलता है फिर भी पुत्र की रक्षा करता है। जन्म के समय यदि वसुदेव ने अपने नन्हें पुत्र को सुरक्षित रहने के लिये छिपा दिया, यदि इस कार्य को अकर्त्तव्य मानते हो तो तुम अपने पिता उग्रसेन से पूछो? वसुदेव की निन्दा करते हुए तथा साथ-साथ यदुवंश की भी निन्दा करते हुए तुमने यादव पुत्रों के वैर से उत्पन्न मौत मोल लिया। वसुदेव ने अपने पुत्र की रक्षा कर अकर्त्तव्य किया है तो उग्रसेने ने तुम्हें क्यों पाला, उन्होंने बचपन काल में तुम्हें मार क्यों नहीं डाला। पुम् नामक नरक से पितरों की पुत्र रक्षा करता है, इसी से धर्मवेत्ता विद्वान् सुत को पुत्र कहते हैं।।११-२०।।

जन्म काल से ही तुम यादव कृष्ण और युवा बलराम से वैर करते हो इसी से वे भी तुम्हारे प्रति अपने चित्त में वैर धारण किये हैं। वसुदेव के बालकों के वध करने के प्रथम अपराधी तो तुम्हीं हो। वसुदेव पर आक्षेप कर तथा श्रीकृष्ण पर कोप करके तुमने सभी यदुवंशियों के हृदय को अति ही कम्पित कर दिया है। वसुदेव की विशेष निन्दा तथा कृष्ण को द्वेषी बनाना ये अपशकुन तुम्हारे ऊपर संकट आने की सूचना दे रहे हैं। हमें निशा के समाप्त होते समय सर्पों का बड़ा ही दुःस्वप्न दिखाई पड़ रहा है इन कारणों से मैं

अनुमान करता हूँ कि ये सब पुरी को विधवा कर देने की सूचना दे रहे हैं। तुम्हारे जन्म नक्षत्र मृगशिरा से दसवें नक्षत्र चित्रा पर अनिनष्टकारी ग्रह राहु बैठा है साथ ही मङ्गल वक्री होकर स्वाती का भोग कर चित्रा में तुम्हारे लिये अनिष्ट का प्रदर्शन करता हुआ घूम रहा है इस प्रकार ये तुम्हारे कर्म नक्षत्र में बैठ कर जन्म नक्षत्र को विद्ध कर दिये हैं इसलिए तुम्हारे द्वारा जीने के लिये किया गया सब प्रयत्न निष्फल होगा। बुध सायंकाल के समय सूर्य के मार्ग में अपने घोर तेज से उदय हो रहा है और शुक्र भी वक्री होकर सूर्य के मार्ग में चल रहा है, इससे राज्यभङ्ग का पूर्ण अन्देशा हो गया है। धूमकेतु के केतु अर्थात् पूँछ से भरणी आदि तेरह नक्षत्र विद्व हो रहे हैं वहाँ भ्रमणशील चन्द्रमा भी अशुभकारी है। सायंकाल होने के पहले ही सूर्यमण्डल में परिघ के समान टेढ़ा चिह्न अपनी प्रभा से सूर्य को बाधता है, देखता हूँ कि पक्षी और मृग उलटा मुख करके बोलते हुए जाते हैं। श्मशान से निकलकर अपने श्वासों से अङ्गार बरसाने वाली सियारिनियाँ सुबह और सायं दोनों सन्ध्याओं में भयंकर रूदन करती हुई पुरी के चारों ओर घूम रही हैं। विशेष रूप से घातक शब्द करती हुई बिजली पृथ्वी पर गिर रही है, अकस्मात् पृथ्वी तथा पर्वतों के शिखर हिल रहे हैं। राहु दिन में जब सूर्य को ग्रस लेता है तो रात की तरह ज्ञात होने लगता है, धूम से दिशायें व्याप्त होकर उत्पात की सूचना दे रही हैं, चारों ओर बिना मेघ के ही बिजली गिर रही है। विद्युत् के साथ मेघ रक्त की वर्षा कर रहे हैं, देवता अपने स्थान से विचलित हो रहे हैं, पक्षियाँ पर्वतों को छोड़ कर भागी जा रही हैं। ज्योतिषियों ने राजा के विनाश के लिय जिन-जिन लक्षणों को बतलाया है, मैं उन-उन सभी अशुभसूचक लक्षणों को देख रहा हूँ। तुमको देखता हूँ तो तुम अपने आत्मीय जनों से द्वेष कर रहे हो, राजा के धर्म से विमुख हो तथा बिना कारण क्रोध कर रहे हो, इससे ज्ञात होता है कि तुम्हारी मृत्यु निकट है। हे मूर्ख! जो तुम देवता और वसु की भाँति श्रेष्ठ वृद्ध वसुदेव के ऊपर मोह में पड़कर आक्षेप कर रहे हो तो तेरी आत्मा को शान्ति कहाँ। तुम्हारे ऊपर जो हम लोगों का प्रेम था उसका हम लोग आज से त्याग कर देते हैं, वंश का अहित करने वाले तुम्हारी एक क्षण भी अब उपासना नहीं

करेंगे। वह दानपति अक्रूर धन्य हैं जो कमल लोचन, क्लिष्ट कर्म को सरलता से करने वाले श्रीकृष्ण को वन में देखेंगे। तुम्हारे ही कारण यदुवंशी इधर-उधर अन्य-अन्य देशों को चले गये हैं इससे यदुवंश छिन्नमूल हो गया है, भगवान् श्रीकृष्ण उन यदुवंशियों को बुलाकर फिर से इस पुरी में बसःवेंगे। काल के वशीभूत होने से तुम्हारा ज्ञान नष्ट हो गया है, यदि तुम अपने को सुरक्षित रखना चाहते हो तो बुद्धिमान वसुदेव को साथ में सहायता के लिये लेकर शान्तचित्त हो श्रीकृष्ण के वास-स्थान पर सन्धि के लिये जाओ, यदि तुम्हें हमारा कहना रुचता हो तो।।३१-४०।।



अथ चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।

वैशम्पायनजी बोले-कि अन्धक के वचनोंको सुनकर कंस के नेत्र क्रोध से रक्त हो गये पर वह क्रोध से कुछ बोला नहीं अपने घर में चला गया। यश को फैलाने वाले यादव भी कंस के विकृत वचनों की निन्दा करते मन मारे अपने-अपने घर चले गये। अक्रूर भी कंस की आज्ञा पा श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा से मन के वेग की भाँति शीघ्रगामी मुख्य रथ पर से वृन्दावन को चले गये। वहाँ श्रीकृष्ण के शुभसूचक अङ्ग फड़कने लगे इससे उन्हें ज्ञात होता था कि पिता के समान कोई बान्धव हमसे मिलने के लिये आ रहा है। अक्रूर को भेजने के पहले ही मथुराधिप उग्रसेन-पुत्र कंस ने केशी के पास श्रीकृष्ण के वध के लिये दूत भेज दिया था। मनुष्यों को कष्ट देने वाला केशी दूत की बात सुनकर वृन्दावन चला गया और वह दुष्ट गोपों को पकड़ने लगा। वह भयंकर अश्वरूपधारी दुष्ट पराक्रमी केशी क्रोध से गोपों के मांस को खा-खाकर उनका महाविनाश करने लगा। वह इच्छानुसार विचरने वाला केशी इतना उद्दण्ड था कि गोपालों और गौवों को मार कर उनके मांस का भोजन करता था वह किसी के पकड़ में नहीं आता था जिस वन में वह दुष्टात्मा अश्वरूपी दानव रहता था उस को मनुष्यों के मांस और हड्डियों से श्मशान की

भाँति बना दिया था। वह अपनी खुरों से पृथ्वी को विदीर्ण करता था, अपने वेग से वृक्षों को कँपा देता था और हिनहिनाता तथा वायु से द्वेष करता हुआ आकाश को लाँघता था। वह कंस के अनुसार कार्य करने वाला अति बलवान् दुष्ट प्रमत्त होकर बालों को कँपाता वन में घूमता हुआ दिखाई पड़ा। वह गोपों का वध करता हुआ अपने पाप कर्म से वन को निर्जन बना दिया था। उसने अपने दुष्ट आचरण से वृन्दावन को भयावह कर दिया था, गौवें और गोप वन में जाना छोड़ दिये थे। वह मद से चंचल हो मनुष्यों का मांस भक्षण करता हुआ उस क्षेत्र में रह कर मार्ग बन्द कर दिया था। एक बार वन में आये हुए मनुष्यों के शब्दों का अनुसरण करता हुआ काल की प्रेरणा से वह व्रज में चला गया। तब उसे देख कर गोप और बालकों के लिये हुई गोपियाँ भय से रोती-चिल्लाती श्रीकृष्ण की शरण में गईं। गोपियों के रुदन तथा गोपों के करुण क्रन्दन पर श्रीकृष्ण अभय प्रदान कर केशी के सम्मुख चले गये। केशी भी अपनी गर्दन को ऊँची कर दाँतों और आँखों को चमकाता, हिनहिनाता हुआ बड़े वेग से गोविन्द के सामने आया। जैसे बादल चन्द्रमा पर झपटे वैसे ही अपने ऊपर केशी को झपटता हुआ देख कर उसके पास कूद कर गोविन्द पहुँच गये। तब केशी के समीप श्रीकृष्ण को स्थित देखकर उनमें मनुष्य बुद्धि रखने वाले हितैषी गोप कहने लगे कि हे तात कृष्ण! तुम अभी लड़के हो और यह खल घोड़ों में नीच केशी बड़ा पापात्मा है और बली है तुम्हें इसके पास सहसा न जाना चाहिए। यह कंस को प्राणों के समान प्रिय है उसी के कहने से यह मथुरा से बाहर निकल कर विचर रहा है। यह अश्वेन्द्रों में सबसे श्रेष्ठ और युद्ध में उपमा रहित दानव है। यह पाप कर्म करने वालों में प्रथम है, सभी प्राणियों से अवध्य है, अतः सभी को डराने वाला तथा घोड़ों में महाबली है। इस प्रकार गोपों के कहते हुए वचनों को सुनकर शत्रुओं को मारने वाले मधुसूदन ने केशी के साथ युद्ध करने का विचार किया। इसके पश्चात वह केशी दाहिने-बायें गोलाई में पैंतरा काटता हुआ क्रोध में भर अपने दोनों पैरों से वृक्षों को तोड़ने लगा। उसके कन्धे के घने बाल मुख पर लटक रहे थे, मेघ की तरङ्गों की भाँति उसके मुख पर क्रोध से पसीना आ गया था। वह खुरों

से उड़ाई धूल से मिश्रित अपने मुख से फेनों की वर्षा कर रहा था मानों शीत काल में चन्द्रमा आकाश से कुहरों की वर्षा कर रहा हो। हे भारत! वह कमलनेत्र गोविन्द को हिनहिनाहट के समय मुख से निकले हुए थूक के बूँदों से तथा मुख से निकलते हुए फेनों से भिंगो दिया। मधु के छाते के चूर्ण के समान पाण्डुखुरों के धूलों से अवसिक्त कर वह केशी कृष्ण के शिर के बालों को लाल कर दिया। कूदता-फाँदता अपनी खुरों से पृथ्वी खोदता हुआ तथा दाँतों को पीसता हुआ केशी कृष्ण से भिड़ गया।।२१-३०।।

वह अश्वराज कृष्ण से युद्ध करता हुआ अपनेअगले दोनों पैरों से उनकी छाती पर मारा। फिर वह महाबली दानव कृष्ण के पसलियों पर बड़े जोर से मारा और कुपित हो वह अश्वासुर तेज दाँतरूप आयुधों वाले मुख से कृष्ण के हाथ के ऊपरी भाग पंखे को काट लिया। लम्बे-लम्बे केसरिया रंग वाले जटाओं को धारण करने वाला केशी कृष्ण के साथ लिपटा हुआ वैसे ही शोभा पा रहा था कि जैसे आकाश में सूर्य से सट कर मेघ शोभा पाता हो। क्रोध के कारण दूना प्राक्रम वाला बलवान् अश्वासुर वासुदेव के वक्षस्थल पर वेग से अपने वक्षस्थल से मारना चाहता था। तब उसके मुख के फेनों से भींगे अमित पराक्रमी बलवान् श्रीकृष्ण ने भी क्रोध कर अपनी लम्बी भुजा उसके मुँह में डाल दिया। वह उनकी भुजा को काट कर खाने में असमर्थ हो गया और उसके दातों के मसूड़ों से रुधिर फेन से मिल कर बहने लगा। उसके ऊपर नीचे के दोनों ओष्ठ गण्डस्थलों सहित फट गये आँखें विकृत हो गई और उसके शरीर का बल ढीला हो गया। नीचे दाढ़ टूट गयी, आँखें रक्त में सन गईं कान उखड़ गये उस केशी ने अपने प्राण बचाने की बहुत चेष्टायेंकीं फिर भी वह चेतना रहित हो गया। मूल-मूत्र करते हुए एक बार पैरों को फड़फड़ाया पश्चात् खिन्न रोंगटों वाला केशी पैरों का फड़काना बन्द कर शिथिल हो गया।।३१-४०।।

केशी के मुँह में घुसी हुई भगवान श्रीकृष्ण की भुजा उसके मुख मण्डल से घिरी वैसे ही शोभती थी कि जैसे मेघों से घिरा अर्ध चन्द्रमा शोभता है। श्रीकृष्ण से सटा हुआ केशी का शरीर प्रातःकाल में मेरु से आश्रित चन्द्रमा

की भाँति शोभा हीन ज्ञात होता था। श्रीकृष्ण को भुजा से उसके मुख से टूट कर बिखरे हुए दाँत शरद् काल के जल रहित बिखरे श्वेत मेघ के समान दिखाई पड़ते थे। सहज ही बलिष्ठ कर्म करने वाले श्रीकृष्ण केशी के बिल्कुल शान्त हो जाने पर अपनी बलिष्ठ भुजा उसके मुख से निकाल लिये। श्रीकृष्ण की आजान बाहुओं से चोट खाया हुआ केशी व्यथित होकर घोर नाद करता फटे पर्वत के समान गिर पड़ा। श्रीकृष्ण की भुजा से फाड़ा गया उसका मुख महा भयंकर लग रहा था वह भूमि पर गिरा दो टुकड़ों में फटे हुए नाग की भाँति ज्ञात हो रहा था। श्रीकृष्ण की भुजा से मारे गये केशी के शरीर का रूप शंकर जी द्वारा मारे गये महा घोर भैंसा की तरह ज्ञात होता था। वह दो पैर, आधी पूँछ, आधी पीठ, एक कान, एक आँख, एक नाक वाले टुकड़ों में होकर पृथ्वी पर पड़ा शोभा पा रहा था। वन में पुराना साखू का पेड़ जैसे गजराज के दाँतों से चिह्नित होकर शोभता है वैसे श्रीकृष्ण की भुजा दाँतों से चिह्नित होकर शोभती थी। कमलदल लोचन श्रीकृष्ण इस प्रकार केशी का आधे-आध दो टुकड़े कर वहीं खड़े हो गये। केशी को मरा हुआ देख कर सब गोप और गोपियाँ विघ्न तथा खेद रहित हो प्रसन्न हो गईं। गोपी-गोप शोभा युक्त दामोदर को अपने पद, अवस्था के अनुसार आशीर्वाद दे, प्रणाम कर प्रिय वचनों से बार-बार उनका सम्मान करने लगे। गोपों ने कहा हे तात्! आपने बड़ा अच्छा किया जो लोकों के कण्टक रूप इस राक्षस का वध किया, यह पृथ्वी पर अश्व के रूप में विचरता था। इस अश्व रूप दानव को मार कर वृन्दावन की बड़ी ही कुशल आपने की अब मनुष्य और पशुओं के सेवन योग्य हो गया। इसने बहुत गोपों और बछड़े वाली गौवों को मार डाला, इसने अकेले ही कितने गौवों को उजाड़ दिया। यह प्रलय कर देने के लिये उद्यत था ग्रामों को मनुष्य रहित कर अकेले सुख से विचरने की इच्छा करता था। जीने की इच्छा वाला कोई देवता भी इसके सामने खड़ा होने में समर्थ नहीं था तो पृथ्वी के मनुष्यों की क्या बात है। नारद ने आकाश में अन्तर्हित होकर कहा हे कृष्ण! हे विष्णो! मैं आपके ऊपर प्रसन्न हूँ। नारद ने कहा कि केशी का वध रूप जो यह दुष्कर कार्य आपने किया इसे तुमही कर सकते

थे अथवा शंकर जी कर सकते थे। हे तात! तुम्हारा मैं भक्त युद्धोत्सुक हो मनुष्य रूप आपका तथा अश्वरूप दानव का युद्ध देखने के लिये स्वर्ग से आया हूँ। आपके द्वारा किये गये पूतना आदि के वध को देख चुका हूँ इस प्रकार आपके खलवधादि कर्मों से हे गोविन्द! मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ। बल राक्षस को मारने वाला इन्द्र भी इस इस हयासुर से डरता था उस दुष्टात्मा केशी के शरीर को आपने जो भयंकर रूप धारण कर अपनी आजान बाहु से चीर डाला है सो इसी प्रकार ब्रह्मा ने इसका मरना लिखा था। जो तुमने केशी को मारा है इससे अब आप केशव नाम से लोक में विख्यात होंगे। इस लोक में आपका कल्याण हो मैं शीघ्र चलने वाला अब जा रहा हूँ जो कंस-वध शेष रह गया है उसे भी आप ही करने में समर्थ हैं अतः आप विलम्ब न करेंगे। तुम्हारे और भी महाभारतादिक युद्ध कर दुष्टों के समाप्त कर देने पर इस मृत्यु लोक के मनुष्य देवताओं को भी लज्जित करते हुए तुम्हारे बल के आश्रित हो आपकी लीला को खेलेंगे। अब महाभारत के समुद्र संग्राम का समय भी समीप ही है युद्ध में मृत्यु को हस्तगत कर स्वर्ग जाने वाले राजाओं के लिये इन्द्र मार्ग बना रहा है, विमान के द्वारा जाने के लिये आकाश का विभाजन कर रहा है। उग्रसेन के पुत्र कंस के शान्त हो जाने पर जब आप पदस्थ होंगे तो उस समय चारों ओर के राजाओं में युद्ध छिड़ जायेगा। ऐसे महाभारत के युद्ध में आप प्रतिकार रहित अर्थात् शस्त्र रहित होंगे उस हालत में भी पाण्डव लोग आप ही का आश्रय लेंगे तब आप राजाओं के युद्ध के समय पाण्डवों का पक्ष ग्रहण करेंगे। जिस समय आप राजासन पर विराजमान होंगे उस समय आपके प्रभाव से राजा राज्यश्री की शोभा से हीन हो जायेंगे। हे जगत्पते श्रीकृष्ण! यह मेरा सन्देश वेद की श्रुतियों के समान यहाँ और स्वर्ग मेंरहने वाले देवताओं में भी विख्यात हो जायेगा आपके द्वारा किये कर्मों को मैंने देख लिया अब कुशल से जाता हूँ जब आप कंस का वध करेंगे तब मैं फिर आऊँगा। इस प्रकार कहकर नारद जी आकाश मार्ग से चल दिये, देव-संगीत को उत्पन्न करने वाले नादर के वचनों को सुन भगवान् श्रीकृष्ण तथास्तु कह कर गोपों में जा मिले तब कृष्ण को पाकर गोप व्रज में चले गये।।६१-७५।।



अथ पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

वैशम्पायनजी बोले कि सूर्य के मन्द किरण हो अस्ताचल पर चले जाने पर, सन्ध्या हो जाने पर पश्चिम आकाश के लाल हो जाने पर तथा चन्द्रमा का पीला मण्डल आकाश में निकल आने पर। पक्षियों के घोसलों में चले जाने पर, याज्ञिकों के हवन के लिये अग्नियों के उत्पन्न हो जाने पर तथा दिशाओं में थोड़ा अन्धकार फैल जाने पर घोसले में रहने वाले पक्षियों के लड़कों के तथा शुक आदि पक्षियों के सो जाने पर, मांस भक्षण करने की इच्छा से रात को घूमने वाले जीवों के प्रसन्न हो जाने पर सूर्य के आतप से संतप्त गोपों को इन्द्र के समान सुखी हो जाने पर रजनी मुख के कारण अन्धकार छा जाने पर तथा सन्ध्यामयी गुहा में सूर्य के प्रविष्ट हो जाने पर गृहस्थों के अग्नि उत्पन्न कर हवन के लिये दूध, अग्नि पर गरमाना प्रारम्भ कर देने पर, बाण-प्रस्थाश्रमियों के नीवार आदि से अग्नि में हवन करने लगने पर व्रज में गौवों के दूहते समय बछड़ों के अलग बाँध देने से उनके बार-बार बोलने लगने पर गौवों को बाँधने की रस्सी लेकर गौवों को गोपों द्वारा बुलाने लगने पर तथा गौवों के आने पर उन्हें बाँधने लगने पर व्रज में सब जगह गोइठियों के सुलग जाने पर तथा काष्ठ के भार से झुके हुए कन्धों वाले गोपों के घर आ जाने पर दिवस के गत हो जाने पर तथा थोड़ी रात्रि फैल जाने पर, चन्द्रमा की मन्द-मन्द किरणों के फैल जाने पर इस प्रकार दिन समाप्त होकर रात्रि प्रारम्भ हो जाने पर, सूर्य का तेज समाप्त होकर चन्द्रमा का तेज फैल जाने पर।।१-१०।।

अग्निहोत्र से व्याप्त काल के समय सुन्दर चन्द्रमा के उपस्थित होने पर जगत् में अग्निसोमात्मक सन्धि के वर्तमान होने पर पश्चिम दिशा में अग्नि के समान लाल और पूर्व दिशा के कमल के समान लाल हो जाने पर आकाश के जलते हुए पर्वत के समान ज्ञात होने लगने पर तथा आकाश में कुछ-कुछ तारा गणों के निकल आने पर कोई कृष्ण का स्वजातीय बन्धु कृष्ण के घर आज रहने की इच्छा से आ रहा है इस प्रकार बन्धु समागम की सूचना पक्षियों

द्वारा देने पर रथ से दानपति अक्रूर शीघ्र ही व्रज में पहुँच गये। वह व्रज में प्रवेश करते ही बार-बार कृष्ण-बलराम तथा नन्द का वास स्थान पूछने लगे स्थान ज्ञात होने पर देवता के समान महाबली अक्रूर रथ से उतर नन्द के घर चले गये। वह घर पर आते ही प्रसन्न मुख नेत्रों में आनन्दाश्रु भरे गौवों के दोहन स्थान पर बछड़ों के बीच में साँड़ की तरह खड़े श्रीकृष्ण को देखा। तब वे धर्म वेत्ता हर्ष से गद्गद वाणी द्वारा हे तात कृष्ण! यहाँ आओ ऐसा कहने लगे अक्रूर ने कल्प के अन्त में वट-पत्र पर उत्तान सोते देखा था फिर तीनों लोकों को नापने वाले वामन रूप में शोभा से युक्त श्रीकृष्ण को देखा था। अभि युवावस्था पूरी स्पष्ट नहीं है जिसकी ऐसे कृष्ण की अक्रूर प्रशंसा करने लगे कि ये कमल नेत्र सिंह के समान पराक्रमी हैं। मेघ के समान श्याम हैं इनकी आकृति श्रेष्ठ पर्वत के समान है, वक्ष स्थल पर श्रीवत्स चिह्न धारण किये हैं, शश्रुओं से कभी नहीं पराजित होने वाले हैं और दुष्टों को मार डालने वाली सुन्दर भुजाओं से भूषित हैं।।११-२०।।

यह रहस्यमयी मूर्ति को धारण किये हैं, संसार में प्रथम पूजा करने योग्य हैं, भक्तों के दर्शन मात्र से पुलकित हो जाने वाले विष्णु इस समय गोप का वेष धारण किये हैं। छत्र के समान चारों ओर चमकने वाले किरीट और उत्तम कुण्डलों को धारण करने वाले दोनों कानों से विभूषित हैं। कीमती हार धारा करने वाले चौड़े तथा मोटे वक्ष स्थल से तथा दीर्घ आजानु भुजाओं से शोभित हैं। हजारों युवती स्त्रियों से परिचर्या करने योग्य कामदेव के समान सुन्दर शरीर पर पीताम्बर धारण किये यह वही सनातन विष्णु हैं। यह अरियोंको दमन करने वाले पृथ्वी के आश्रयभूत चरणों से तीनों लोकों को नापने वाले इस समय उन्हीं चरणों से पृथ्वी पर स्थित हैं। इनका दाहिना हाथ सुदर्शन चक्र धारण किये हुए की भाँति है तथा दूसरा हाथ गदा से संयोग करने की भाँति ऊपर उठा हुआ है। देवताओं के कार्य को धारण करने वाले यह जगत् के कल्याण करने के लिये अवतीर्ण हुए हैं यह निर्गुण ब्रह्म हैं। भविष्य जानने में कुशल मनुष्यों ने इनका यह गोपाल भविष्य कहा है ये क्षीण हुए यदुवंश का विस्तार करेंगे। सैकड़ों और हजारों तेजस्वी यादवों से यह

यदुवंश को भर देंगे जैसे जल समूह से नदियाँ समुद्र को भर देती हैं। इनके शासन में सम्पूर्ण जगत् सुखी हो जायेगा ये दर्द में भरे राजाओं को मार कर सतयुग के समान संसार को धार्मिक बना देंगे।।२१-३०।।

यह पृथ्वी पर स्थित होकर सम्पूर्ण जगत् को अपने वश में कर लेगें यह सब राजाओं के ऊपर होंगे इनके ऊपर कोई राजा न होगा। जिस प्रकार से यह तीन पगों से तीनों लोकों को जीत कर स्वर्ग देवताओं का राजा इन्द्र को बनाया था। उसी प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत कर उग्रसेन को राजा बनायेंगे इसमें संशय नहीं है। यह उत्पन्न हुए बैर का अन्त करने वाले होंगे उपनिषद् में ये छै प्रश्नों के उत्तर में प्रतिपादित होने वाले हैं, ब्रह्मवादी ब्राह्मणों से यह पुराण पुरुष कहें जाते हैं। यह केशव लोकों से पूजित होंगे तथा इनसे उत्पन्न हुई बुद्धि मनुष्यों के जीविका के लिये उपयुक्त होगी। मैं आज इनके वास स्थान की पूजा करूँगा और मन से इनके विष्णुत्व का वेद मंत्रों की भाँति आदर पूजन करूँगा जो इनकी जाति है तथा जिस लिये मनुष्यों में इन्होंने अवतार लिया है मैं सब जानता हूँ इसलिये इन्हें भगवान् मानता हूँ जो दिव्य चक्षु वाले हैं वे भी इनको ईश्वर मानते हैं। मैं रात्रि में सर्वज्ञ श्रीकृष्ण से मंत्रणा करूँगा यदि ये मेरी बात मान जायेंगे तो व्रज सहित इनके साथ मैं मथुरा जाऊँगा। इस प्रकार अन्यान्य कार्य-कारणों को विचारते हुए श्रीकृष्ण के साथ नन्द जी के घर में प्रवेश किया।।३१-३९।।



अथ षडविंशोऽध्याय:।।२६।।

वैशम्पायनजी बोले-बुद्धि कुशल अक्रूर केशव के साथ नन्द के घर में जा वृद्ध-वृद्ध गोपों को बुला कर उनके कंस का सन्देश कहा। बलराम जी के साथ बैठे हुए श्रीकृष्णजी से कहा कि हे तात! कल हम लोग सुख पूर्वक मथुरा चलेंगे। कंस की आज्ञा से ये सभी व्रज के गोपाल वार्षिक कर लेकर चलेंगे। वहाँ कंस का बड़ा भारी धनुष-यज्ञ है, सभी सज्जनों के साथ चल

कर देखेंगे। पुत्र-वध से दीन-दुःखी निरन्तर दुःख सहने वाले अपने पिता वसुदेव को तुम दोनों चल कर ही देखोगे। वे अशुभ बुद्धि कंस के द्वारा निरन्तर दुःख पा रहे हैं। एक तो वृद्धावस्था आने के कारण यों हीं उनका रक्त मांस सूख गया है उस पर कंस के दुःख से और भी शिथिल हो गये हैं। कंस के भय से तुम लोगों को यहाँ कर दिये अपने अग्नि की भाँति तुम लोगों को देखने की उत्कण्ठा से दिन-रात जलते रहते हैं। हे गोविन्द! देवी की भाँति तेजस्वीनी देवकी अब तेज से रहित हो गयी है पुत्रों ने जिनका दूध नही पिया ऐसे स्तनों वाली अपनी माता को दुःखी देखोगे। तुम्हें दिन-रात देखने की इच्छा वाली पुत्र शोक से सूखती हुई तथा खोई हुई बछड़े वाली गौ की भाँति पुत्र वियोग के शोक से संतप्त होती हुई अपनी माता को देखोगे। अश्रु भरे नेत्रों वाली नित्य दीन की भाँति मलिन वस्त्र धारण किये राहु ग्रस्त चन्द्रमा की भाँति प्रभाहीन मुख वाली माता को देखोगे।।१-१०।।

दर्शन की अभिलाषा से नित्य तुम्हारे आगमन की आकांक्षा करती हैं, तुम्हारे वियोग के शोक से वे तपस्विनी दुःखी हो रही हैं। बाल्यकाल में ही तुम्हारा त्याग कर देने से वे तुम्हारी बाल्यकालीन तोतली वाणियों के सुख से वंचित रह गईं। हे विभो! तुम्हारे चन्द्रमा के समान मुख वाले रूप को वे अब तक नहीं जानतीं कि कैसा है। हे तात! यदि तुम्हारे जैसे पुत्र को उत्पन्न कर देवकी दुःखी हो तो ऐसे पुत्र से क्या फल मिला, इससे तो पुत्र रहित होना ही अच्छा था। क्योंकि पुत्र रहित स्त्रियों को एक ही शोक रहता है कि पुत्र नहीं है और पुत्र वाली नारियों को यदि पुत्र होने का फल न मिल कर दुःख से संतप्त हों तो ऐसे पुत्रों का होना धिक्कार है। इन्द्र के समान तुम्हारे जैसे गुणी पुत्रों के रहते जो कि वृद्धावस्था को प्राप्त तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे रहते कंस की दासता को प्राप्त हो रहे हैं, तुम्हारे ही कारण अशुभ बुद्धि कंस द्वारा वे नित्य डाँटे-फटकारे जाते हैं। यदि देवकी पृथ्वी के समान आदरणीय ज्ञात हो तो शोक समुद्र में निमग्न उस पृथ्वी रूप देवकी का उद्धार करो। हे कृष्ण! तुम जैसे पुत्र से प्रेम करने वाले वृद्ध वसुदेव इस समय सुख करने के योग्य हैं यदि तुम पुत्र भाव से मिल कर उन्हें सुखी करोगे तो यह धर्म होगा। जिस प्रकार

तुमने यमुना के हृद में दुष्ट कालिय का दमन किया, जैसे गोवर्धन पर्वत को जड़ से उखाड़ लिया। जैसे घमंड में भरे बलवान् अरिष्टासुर का वध कर दिया तथा दूसरों के प्राणों को हरण करने वाले दुष्टात्मा केशी को मार डाला।।११-२०।।

वैसे ही प्रयत्नों से कंस का वध कर दुःखी अपने माता-पिता का उद्धार कर उन्हें सुखी करो, यह धर्म कार्य जैसे हो वैसा उपाय सोचो। कंस की सभा में तुम्हारे पिता को निन्दित होते हुए जिसने भी देखा वे अत्यन्त दुःखी हो नेत्रों में आँसू भर लिये। हे कृष्ण! कंस के वशीभूत हो तुम्हारी माता पुत्र वध आदि अनेकों दुःखों को सही और अब भी सह रही है। सभी पुत्रों को चाहिये कि अपने माता-पिता के ॠण से यथाशक्ति उॠण हो जायँ। हे कृष्ण! इस प्रकार सोच कर माता-पिता के ऊपर अनुग्रह करने से वे शोक का परित्याग कर देंगे और हे अनघ! इससे तुम्हें भी धर्म होगा। वैशम्पायनजी बोले कि-सब बातों को जानने वाले तेजस्वी कृष्ण ने अक्रूर से बहुत अच्छा कहा वे क्रोध के वशीभूत नहीं हुए। अक्रूर के वचनों को सुन कर कंस की आज्ञानुसार नन्द गोप को आगे कर सभी गोप मथुरा जाने को तैयार हो गये। वृद्ध व्रजवासी गोप भेंट की सामग्री जुटा कर मथुरा जाने को सुसज्जित हो प्रस्थान कर दिये। वे वार्षिक कर तथा भेंट के लिये घी, महिष, बैल अपने-अपने शक्ति के अनुसार दूध, दही लेकर एक साथ हो लिये। इस प्रकार भेंट की समग्री तथा कर को इकट्ठा कर सभी गोपति चलने के लिये उठ गये।।२१-३०।।

अक्रूर, श्रीकृष्ण तथा बलराम को आपस में बात-चीत करते इन तीनों की वह रात्रि जाग कर बीती। इसके पश्चात विमल प्रभात हो गया पक्षियाँ विशेष रूप से बोलने लगीं चन्द्रमा की किरणें रात्रि के समाप्त हो जाने पर मलिन हो गईं। पूर्व आकाश में सूर्य की लाली छा गई तारा गण लुप्त हो गये प्रातःकालीन वायु से पृथ्वी भीगीं हुई ज्ञात होने लगी। इस प्रकार ताराओं की प्रतिभा बिल्कुल समाप्त हो गई सूर्य के उदय से रात्रि छिप गयी। चन्द्रमा की किरणें प्रभारहित हो शान्त हो गईं इस प्रकार चन्द्रमा की ज्योति नष्ट होकर सूर्य की ज्योति बढ़ने लगी। व्रज के निकलने का मार्ग गौओं से भर गया,

मटकियों में मथनियों के घूमने से चारों ओर गर्र-गर्र शब्द होने लगा। बछड़े और बैलों को रस्सियों द्वारा बाँधने से व्रज की सभी गलियाँ भर गईं। वहीं पर बैलगाड़ियों को खड़ी कर उसमें बड़े-बड़े घी, दूध-दही के बर्तनों को रख कर शीघ्रता से व्रज को पीछे छोड़ रथों पर चढ़ कर चलने लगे। कृष्ण, बलराम और अक्रूर एक रथ पर तीन लोकपतियों ब्रह्मा, विष्णु, महेश की भाँति चलो लगे। यमुना के किनारे पहुँच कर अक्रूर ने श्रीकृष्णजी से कहा कि हे तात! तुम यहाँ रथ की रक्षा करो और घोड़ों का यत्न करो अर्थात् खिलाओ।।३१-४०।।

हे तात! रथ पर घोड़ों के खाने का बर्तन रखा है उसमें घोड़ों को यव खाने को दो इस प्रकार यत्न से मेरी क्षण मात्र प्रतीक्षा करो। मैं यमुना के ह्रद में भुजंगेश्वर शेष नाग की दिव्य भागवत के मन्त्रों से स्तुति करूँगा क्योंकि वे सम्पूर्ण लोकों को धारण करने वाले ईश्वर रूप हैं। वे सम्पूर्ण लोकों का कल्याण करने वाले छिपे रूप से भगवान् हैं वे अपने मस्तक पर स्वस्तिक चिह्न धारण करते हैं हजार शिर वाले नील वस्त्रधारी अनन्त देव हैं मैं ऐसे सर्पराज को नमस्कार करूँगा। उन धर्मदेव का जो विष होगा वह सब उनकी कृपा से अमृत के तुल्य हो जायेगा मैं उसका पान कर देवता की भाँति अमर हो जाऊँगा। दो जीभों वाले लक्ष्मी से विभूषित कल्याण के धाम उन सर्पराज को देखकर अन्य सर्पों का समाज शान्ति के लिये होगा। आप दोनों एक साथ यहाँ रह कर तब तक मेरी प्रतीक्षा करें कि जब तक मैं भुजगेन्द्र की पूजा से निवृत्त हो यमुना ह्रद से लौट न आऊँ। ऐसा सुन श्रीकृष्ण ने कहा–हे तात! जाओ देर न करो क्योंकि हम दोनों आपके बिना यहां अधिक देर तक बैठने में असमर्थ हो जायेंगे। अधिक दक्षिणा देने वाले अक्रूर ने जब यमुना के ह्रद में गोता लगाया तो उन्होंने रसातल में नागलोक को देखा। उस नाग लोक के मध्य में ताल के समान ऊँची सुवर्ण दण्ड वाली ध्वजा से युक्त पूँछ पर हाथ रखे मुसल के आश्रित ऊदर रखे हाजर मुख वाले शेष को देखा। वे नीले रंग के वस्त्र ओढ़े स्वयं पीले वर्ण के थे और पीले आसन पर कुण्डल धारण किये मतवाले की भाँति सो रहे थे।।४१-५०।।

वे अपने शरीर के द्वारा कल्पित शुभ्र आसन पर स्वस्तिक चिह्नों से पूजनीय तथा पृथ्वी को धारण करने वाले मुँखों को रखे हुए थे। सुवर्ण मुकुटधारी उनका मुख किंचित दाहिनी ओर को झुका था, चाँदी के पत्री से जटित कमलों की माला से उनका वक्षस्थल ढका हुआ था। उन अरिन्दम का अंग लाल चन्दनों से चर्चित था, उनकी नाभि कमल के समान थी और उनका शरीर श्वेत अभ्रक की भाँति चमक रहा था। इस प्रकार वासुकि आदि प्रमुख सर्पेन्द्रों से पूजित होते हुए उन समुद्राधिपति सर्पराज को स्थित देखा। धर्मासन पर स्थित उन प्रभु के दायें और बायें भाग में कम्बल तथा अश्वतर नाग चँवर और पंखा झुल रहे थे। उनके समीप में कर्कोटक आदि प्रमुख मन्त्रियों के साथ पन्नगेश्वर वासुकि सुशोभित हो रहे थे। सम्यक् प्रकार से समुद्र के जल से स्नान किये हुए उन सर्पराज को सर्पगण कमलों से आच्छन्न मुख वाले सुवर्ण के घड़ों से स्नान करे। तत्पश्चात उनकी गोद में श्रीवत्स से आच्छादित वक्षस्थल वाले पीताम्बरधारी विष्णु को जिनका कि रंग घन के समान श्याम था उन्हें आनन्द से बैठे हुए देखा। और दूसरे चन्द्रमा के समान समर्थ बलराम को समीप में ही आसन सहित भूमि पर बैठे देखा। अक्रूर श्रीकृष्णजी को देखकर सहसा कुछ कहना प्रारम्भ किये कि श्रीकृष्णजी अपने तेज से उनकी वाणी को स्तम्भित कर दिये। उन सर्पराज में भगवान् श्रीकृष्ण का अनुभव कर अक्रूरजी विस्मित होते हुए जल के अन्दर से ऊपर को मुख किये। तो देखा कि वे दोनों कृष्ण-बलराम रथ के ऊपर आसीन हैं परस्पर में एक दूसरे को देखते हुये उन अद्भुत रूपधारियों को देखा। इस प्रकार कुतूहल से जहाँ श्वेत मुख नील वस्त्रधारी शेषनाग की पूजा हो रही थी वहाँ देखने के लिये अक्रूर ने पुनः जल में गोता लगाया तो फिर सहस्त्र मुखधारी शेषनाग की गोद में पूजित होते हुए भगवान् श्रीकृष्ण को अक्रूर ने देखा फिर अक्रूर जी सहसा जल से निकल करके उनके मंत्र का जाप करते हुए रथ पर चढ़ मथुरा के मार्ग से चलने लगे। तब केशव परम प्रसन्न हो रथ पर आकर बैठे हुए अक्रूर से बोले कि कहिये कैसा नाग लोग का दृश्य यमुना के ह्रद में देखा। आपने स्नान में अधिक समय बिता दिया है, मैं समझता हूँ कि कोई आपने ह्रद के अन्दर आश्चर्य की वस्तु

देखी है क्योंकि आपका हृदय चंचल ज्ञात हो रहा है। तब अक्रूर ने प्रति उत्तर में कहा कि चर-अचर लोकों में आपके आलावे और दूसरी भला कौन आश्चर्य की वस्तु हो सकती है। हे कृष्ण! मैंने वह आश्चर्य देखा है कि जो इस पृथ्वीपर देखना दुर्लभ है, वैसा ही आश्चर्य यहाँ भी देखता हूँ कि आपके साथ बै० रहा हूँ। क्या यह कम आश्चर्य की बात है कि लोकों को आश्चर्य में डाल देने वाले रूप के साथ मैं बैठा हूँ, इससे अधिक आश्चर्य देखने का मुझमें सामर्थ्य नहीं है। हे प्रभो! आइये जब तक सूर्य अस्ताचल को नहीं जाते तब तक अर्थात् सूर्यास्त से पहले हम लोग मथुरा चल चलें।।६१-७१।।



अथ सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

वैशम्पायनजी बोले–अमित बल वाले सभी गोप उत्तम रथों को जोत कर श्रीकृष्ण और बलराम के साथ चलने लगे। फिर वे कंस से पालित मथुरापुरी के पास पहुच गये और सूर्य के लाल होकर अस्त होते समय उन लोगों ने रम्य मथुरापुरी में प्रवेश किया। बुद्धिमान् अक्रूर ने सूर्य के समान तेजस्वी उन दोनों वीरों श्रीकृष्ण-बलराम को अपने घर में लिवा गये। तब भयभीत हो दानपति अक्रूर ने उन सुन्दर रूप वाले कृष्ण-बलराम से कहा कि हे तात! इस समय अपने पिता वसुदेव के घर जाने की इच्छा का त्याग कर दीजिये क्योंकि वह वृद्ध आप दोनों के कारण दिन-रात कंस द्वारा निन्दित किया जाता है तथा धमकाया जाता है अतः इस समय रात्रि में वहाँ रहना योग्य न होगा। आप लोगों को वही करना चाहिए जिससे पिता को आत्म सुख मिले जिससे वसुदेव सुख पावें वही हितकारी कार्य आप लोगों को करना चाहिए। ऐसा सुन कर श्रीकृष्ण अक्रूर से कहने लगे कि हे धार्मिक वीर! हे साधो यदि आप मेरी बात मानें तो हम दोनों बिना किसी तर्क-वितर्क के ही मथुरा को देखते हुए सड़क से ही कंस के घर जायँ। वैशम्पायनजी कहते हैं कि (इस बात को स्वीकार कर) अक्रूर भी अविनाशी श्रीकृष्ण को मानसिक

नमस्कार कर अन्तःकरण से प्रसन्न होते हुए कंस के पास गये। और इधर अक्रूर से अनुशासन प्राप्त कर मथुरा को देखने की अभिलाषा वाले कृष्ण-बलराम जंजीर से छूटे हुए मत्त कुञ्जर की भाँति युद्ध की आकांक्षा करते हुए चल दिये। मार्ग में कपड़ा रंगने वाले रजक को देख कर ये लोग उससे रुचिकर वस्त्र माँगने लगे।।१-१०।।

रजक ने उनसे कहा कि तुम दोनों किसके वनेचर हो कि तुम दोनों निर्भय भाव से राजसी वस्त्रों की याचना कर रहे हो। मैं राजा कंस के लिये अनेकानेक देश के बने कपड़ों को उनके इच्छा के अनुकूल सैकड़ों प्रकार के विशेष रंगों से रंगता रहता हूँ। तुम लोग वन में मृगों के साथ पले हुए किसके यहाँ उत्पन्न हुए हो जो बहुत से रंगीन कपड़ों को देख कर बिना जाने मोह में पड़ गये हो। अहो! तुम दोनों यहाँ आकर अपने जीवन को मृत्यु के मुख में डाल रहे हो, तुम लोग मूर्ख हो तुम्हारा ज्ञान मूढ़ों जैसा है जो राजा के कपड़े माँग रहे हो। यह सुन श्रीकृष्ण उस अल्प बुद्धि रजक पर कुपित हो गये, वैशम्पायनजी कहते हैं कि उस मूर्ख रजक का मार्केश आ गया था इसीलिये विष के समान वचनों को बोल रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने वज्रवत् थप्पड़ से शिर पर मारा जिससे उसका शिर चूर-चूर हो गया और वह प्राण रहित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसको मरा देख उसकी स्त्रियाँ शोक-विलाप करती केशों को खोले कंस के भवन को चल दीं। और ये लोग भी राजसी सुन्दर वस्त्रों को धारण कर गन्ध को सूँघते हुए पुष्प माला धारण करने के लिये माला बिकने वाली गली में गये। वहाँ पर एक माला गूँथने वाला श्रीदामा नाम का बड़ा प्रियभाषी माली था उसकी मालाओं की दुकान थी वह सुन्दर स्वरूप वाला भी था। उस सुखी माली के श्रीकृष्ण ने प्रेम भरे वचनों से कहा कि हम दोनों को माला दो।।११-२०।।

तब माली प्रसन्न होकर बहुत सी मालायें उन्हें दीं और कहा कि यह सब आप ही का है। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रसन्न हो श्रीदामा माली को वर दिया कि हे सौम्य! हमारे प्रसाद से तुम्हें लक्ष्मी प्राप्त होगी तुम धन कोश को पाओगे। वह माली चंचलता रहित चित्त से नत मस्तक हो श्रीकृष्ण के चरणों

पर गिर कर वर ग्रहण कर लिया। कृष्ण-बलराम को वह माली कोई यक्ष समझ कर भय संविग्न हो कुछ उत्तर नहीं दिया। वसुदेव-सुत वहँ से आगे चले तो राजमार्ग में कुब्जा को चन्दन के पात्र में चन्दन लिये जाते देखा उससे श्रीकृष्ण ने कहा कि हे कुब्जे! यह किसका चन्दन लिये जा रही हो हे कमल नेत्र वाली! तुम शीघ्र मुझसे कहो। बिजली के समान टेढ़ी चलने वाली कुब्जा हँसती हुई सम्मुख हो मेघ के समान गम्भीर कमल नेत्र श्रीकृष्ण से प्रतिउत्तर में बोली मैं राजा के लिये चन्दन लेकर उनके स्नान गृह को जा रही हूँ हे सुन्दर मुख वाले कमल नेत्र! मैं तुम्हें देखने से ही विस्मित हो गई हूँ। हे वीर! यदि तुम हमसे चन्दन लेना चाहते हो तो मैं खड़ी हूँ आओ चन्दन लेलो तुम मुझे हृदय से प्रिय हो हे सौम्य! तुम कहाँ से आ रहे हो जो हमको नहीं पहचानते हो मैं महाराज कंस की प्रिय दासी हूँ और चन्दन घिसने के लिये नियुक्त की गई हूँ।।२१-३०।।

हँसती हुई खड़ी उस कुब्जा से कृष्ण ने कहा कि हम लोगों के शरीर के अनुसार चन्दन दो हे वराननेे! हम लोग पहलवान हैं इस देश में अतिथि बन कर धनुष-यज्ञ देखने आये हैं और महान् समृद्ध इस राष्ट्र को भी देखने आये हैं। कुब्जा ने कृष्ण से कहा कि मुझे देखने में तुम बड़े प्रिय ज्ञात होते हो सो तुम राजा के योग्य इस चन्दन को शान्ति पूर्वक ग्रहण करो। तब वे सुन्दर शरीर वाले कृष्ण-बलराम अपने अङ्गों में चन्दन का अनुलोपनकर वैसे ही सुशोभित होने लगेकि जैसे यमुना के तीर्थ में प्राप्त दो साँड अपने सींगों आदि अङ्गों में कीचड़ पोत कर सुशोभित होते हैं। लीला के विधान को जानने वाले कृष्ण ने कुब्जा के कूबड़ को अपने हाथ की दो अंगुलियों से पकड़ कर धीरे से दबा कर सीधा कर दिया। तब वह कुब्जा कूबर को अपने में अन्तर्हित कर सुन्दर लम्बी हो पवित्र हास्य और ऊँचे स्तनों वाली कुब्जा हँसने लगी, वह लता की भाँति टेढ़ी अब लकुटी की तरह सीधी हो गई। वह युवावस्था के मद को प्रकाशित करती हुई प्रेम के वशीभूत हो श्रीकृष्ण से बोली कि हे कान्त! तुम हमारे प्रेम में बँध गये हो अब कहाँ जाते हो यहीं रहो और हमको ग्रहण करो। कुब्जा की इस बात को सुन कर अविनाशी श्रीकृष्ण-बलराम

परस्पर देखते हुए ताली बजा कर हँसने लगे। श्रीकृष्ण कामासक्त हुई कुब्जा को छोड़ दिये, इसके बाद कुब्जा के प्रेम बन्धन से मुक्त हुए दोनों भाई कंस की राज-सभा में प्रवेश किये। वे दोनों गोप के वेष से विभूषित थे क्योंकि उनका लालन-पालन व्रज में गोपों के बीच हुआ था वे अपनी गुप्त चेष्टा को प्रारम्भ करने के लिये राज-भवन में प्रवेश किये।।३१-४०।।

वे बालक हिमालय के जङ्गलों में उत्पन्न हुए मद से उत्कृष्ट सिंह के समान सतर्कता से रहित जहाँ धनुष रखा था उस भवन के समीप गये। वहाँ धनुष-उत्सव के आयोजन से विभूषित मण्डप को देखने की इच्छा से अस्त्रालय के रक्षक से वे पूछने लगे। हे कंस के धनुष के रक्षक! मेरी बात को सुनो, हे सौम्य! वह धनुष कहाँ है जिसके लिय यह उत्सव हो रहा है। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो कंस से आयोजित उस उत्सव स्थान को दिखाओ, यह सुन उस रक्षक ने दोनों को लोहे के खम्भे के समान गम्भीर धनुष को दिखलाया। जो इन्द्र सहित सभी देवताओं से न चढ़ सकता था न टूट सकता था उस धनुष को उठा कर अति शक्तिशाली श्रीकृष्ण तौलने लगे वे कमल दल लोचन अन्तारात्मा से प्रसन्न हो अपनी बाहुओं से इच्छानुसार तौल कर दैत्यों से पूजित धनुष को चढ़ा कर बार नचाने लगे तब कृष्ण के द्वारा वह नचाया हुआ कठिन धनुष जो उत्सव के आयोजन से विभूषित था बीच से टूट कर दो खण्डों में हो गया इस प्रकार उस श्रेष्ठ धनुष को तोड़ कर महापराक्रमी कृष्ण और युवा बलराम बड़े वेग से धनुष-शाला से निकल कर चले गये। धनुष टूटने के शब्द से आँधी सी चल पड़ी जिससे कंस का महल काँप गया और दिशायें भर गईं। वे दोनों आयुधागार से निकल कर गोपों के पास चले गये और धनुष-रक्षक घबराया हुआ कंस के पास चलने लगा।।४१-५०।।

वह कौवे की भाँति भय से चंचल दृष्टि वाला हाँपता हुआ कंस के समीप जाकर कहा कि हे राजन्! जो धनुष-गृह में आश्चर्य हुआ सो सुनिये। इस समय जगत् के प्रलय के समान घटना घट गई वहाँ दो मनुष्य शिखा खोले ऐसे आये थे कि जिसकी उपमा किसी मनुष्य से नहीं दी जा सकती। एक पीताम्बर तथा दूसरा नीलाम्बर धारण किये पीले और सफेद चन्दन लगाये

इच्छानुसार वेष धारण करने वाले दोनों छिप कर अन्तःपुर में चले आये वे अग्नि के बालक के समान चमकने वाले देव-पुत्र की भाँति थे। वे आकाश मार्ग से आये हुए चन्द्र पुत्र की भाँति धनुष-गृह में स्थित हो गये मैंने स्पष्ट रूप से उन्हें देखा वे रुचिकर वस्त्र और मालायें धारण किये हुए थे। उनमें एक जो कमल नेत्र श्याम वर्ण पीले वस्त्र तथा पीली मालायें पहने था वह देवताओं से भी न उठने वाला धनुष-रत्न उठा लिया। और बलपूर्वक वह बालक यन्त्र के समान लोहे के महान् धनुष को शीघ्र ही खेल से चढ़ा कर नवाया बाण रहित धनुष को जब वह बाहुबलशाली खींचने लगा तब वह मुष्टि के समीप से बड़ा भयंकर शब्द कर दो टुकड़े गया। तत्पश्चात भूमि हिल गई और उसके शब्द से नभ स्थल घूमता हुआ सा दिखायी पड़ रहा था सूर्य का प्रकाश भी मलिन हो गया है। इस प्रकार महान् अद्भुत दृश्य को देख मैं परम विस्मित हो गया हे शत्रओं को भय देने वाले! मैं भयभीत हो आपसे कहने यहाँ चला आया हूँ हे महाराज! मैं नहीं जानता कि वे अति प्रराक्रमी कौन हैं। एक कैलस पर्वत की भाँति गोरे और दूसरा जो अञ्जन गिरि के समान श्याम रंग का था वही चाप-रत्न को जैसे हाथी किसी स्तम्भ को तोड़ दे वैसे ही तोड़ दिया। और अपने भाई के साथ वह अमित पराक्रमी वायु की गति से चला गया हे नृप! मुझे नहीं ज्ञात कि वह कौन है। विस्तार से सब कुछ जानने वाला कंस धुनष-भंग को सुन कर समझ गया और आयुध रक्षक को छोड़ अपने उत्तम भवन में चला गया।।५१-६२।।



अथ अष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

वैशम्पायनजी बोले कि-भोज वंश को बढ़ाने वाला वह कंस धनुष भंग सुन कर उदास हो चिन्ता करता हुआ अत्यन्त दुखी हो गया। कहने लगा कि वह निर्भीक बालक किस प्रकार महाबलियों का अपमान कर इतने पुरुषों के देखते-देखते धनुष तोड़ कर चला गया। जिसके वध के निमित्त मैंन बहन

के अपनी छः पुत्रों को मार कर लोक निन्दित दारुण कर्म किया वह मारा नहीं गया। दैव को पुरुषार्थ के द्वार कोई नहीं टाल सकता यह सत्य है, नारद ने जो वचन कहा था वह मेरे लिये विष्णु रूप शत्रु अब समाने उपस्थित हो गया। इस प्रकार राजा कंस सोच-विचार कर अपने आम भवन से निकल कर मंचों को देखने के लिये उत्सव के स्थान पर जहाँ धनुष टूटा था गया। वह नृपोत्तम प्रेक्षागार को देखा कि वह उत्सव के सभी सामानों से सुसज्जितं है मंचों की पङ्क्तियाँ लगी हुई हैं। जिनको शिल्पकारों ने खूब दृढ़ता पूर्वक बांधा है। वे मंच उत्तम बैठने के स्थान से युक्त दो तरफ झुके हुए मोटे और लम्बे खम्भों पर बने हैं कुछ मंच एक-एक स्तम्भ लगा कर विभूषित किये गये हैं। इस प्रकार वह स्थान चारों ओर दृढ़ मंचों से लम्बा-चौड़ा सजाया गया था वे मंच ऊँचे-उँचे थे पर सुन्दर-सुन्दर सीढ़ियों के लगने से चढ़ने में कोई क्लेश न था। वह स्थान राजाओं के आसनों से भरा हुआ था उनके बीच-बीच से आने-जाने के मार्ग बने थे, बीच का खाली स्थान वेदिकाओं से ढका हुआ था वह बहुत मनुष्यों को अपने अन्दर धारण कर सकता था। इस प्रकार सजे हुए स्थान को देख कर बुद्धिमान् कंस अपने अनुचरोंको आज्ञा देने लगा कि कल इन मंचों को चित्रों मालाओं तथा पताकाओं से सजाओ।।१-१०।।

और इन्हें गन्धों से सुवासित करो एवं इनके ऊपर पुरुषादि के चित्रों से चित्रित बिछौनों को बिछाओ और मंच मार्ग की गलियों को खम्भों से सजाओ। रंग भूमि के मार्ग में सूखी गोहरियों का ढेर इकट्ठा करो (पहलवानों का पसीना पोंछने या मगंल के लिये) बड़े-बड़े सुडौल खम्भों में उनके अनुसार कपड़ों को लपेट कर तथा तोरणों को बाध कर सुशोभित करो। उन्हें अचछी तरह गड्ढा खोद कर गाड़ो उनके ऊपर जल का कलश रखो खम्भे कलश का भार सह सकें ऐसे सुवर्ण के कलशों से उन्हें उत्तम रीति से सजा दो। इस प्रकार कुछ घड़ों में रस भर कर खम्भों की कल्पना कर सजाओ फिर मल्ल युद्ध के जानकार पहलवानों को निमन्त्रण दो उन्हें सबसे आगे बैठाने का प्रबन्ध करो। पहलवानों को और कुस्ती देखने वालों को सूचना दे दो और दंगल में सुन्दर ढंग से मंच को बना दो। इस प्रकार उत्तम विधि से सभा को सजाने की

आज्ञा देकर सभा मार्ग से निकल कर अपने भवन में जला गया। वहाँ जाकर अपने अपरिमित बल वाले चाणूर और मुष्टिक नामक पहलवानों बुलवाया। वे दोनों मल्ल महाशक्तिशाली बाहुबली कंस की आज्ञा से प्रसन्न होकर राज भवन में कंस के समीप आये। जगत् विख्यात दोनों मल्लों को अपने समीप आया देख कंस उनकी प्रशंसा करता हूआ यह वचन बोला कि आप लोग हमारे वीर ध्वज के समान ऊँचे तथा जगत् विख्यात मल्ल हैं और हमारे द्वारा योग्यतानुसार आप लोक सत्कारित किये गये हैं तथा विशेष सत्कार के योग्य हैं भी।।११-२०।।

यदि आप लोग मेरे किये गये उस सत्कार का स्मरण करते हैं तो मेरा एक महान् कार्य आ पड़ा है उसे आप लोगों को अपने पराक्रम से कर देना चाहिये। मेरे व्रज में ये जो बली बलराम-श्रीकृष्ण गौवों के पालक हैं कभी श्रमित नहीं होते। इनके साथ अखाड़े में मल्ल युद्ध करते हुए शीघ्र इन्हें गिरा कर मार डालना चाहिए इसमें संशय नहीं करना चाहिए। ये दोनों बालक सर्वथा न करने योग्य कर्मों को कर देने वाले बड़े चतुर हैं अतः उन्हें बालक समझ उपेक्षा नहीं करनी चीहिए प्रत्युत यत्न करके उन्हें मार डालना चाहिए। इनके रङ्गभूमि के निकट युद्ध में मारे जाने पर वर्तमान काल एवं भविष्य काल में बड़ा कल्याण होगा। राजा के इस प्रकार स्नेह भरे वचनों को सुन कर वे युद्ध के लिये मतवाले मल्ल चाणूर और मुष्टिक प्रसन्न मन हो बोले कि गोपों के पापस्वरूप यदि वे दोनों हम लोगों के सम्मुख उपस्थित हो गये तो उन्हें आप मरा ही समझें वे मरने पर प्रेत रूप तपस्वी हो जायेंगे। यदि हम दोनों के सात वे दोनों युद्ध करेंगे तो आप समझिये कि उनको मार्केश ही घेरे हैं क्योंकि हम दोनों क्रोध कर उन दोनों बनेचरों को मार डालेंगे। इस प्रकार के विष वचनों का वमन कर वे मल्ल श्रेष्ठ कंस से आाज्ञा लेकर अपने घर चले गये। इसके बाद कंस हाथी से जीविका करने वाले महावत से कहने लगा कि कुवलयापीड़ हाथी को कल तुम सभा द्वार पर रखना।।२१-३०।।

वह बलवान् है, उसके नेत्र मद से चंचल रहा करते हैं और मनुष्यों को देख उनपर क्रोधित हो जाता है, उसके गण्डस्थल मद से उत्कट हैं तथा अंकुश

दिखाने पर तो और भी क्रोध में भर जाता है। वनेचर वसुदेव के वीर पुत्र कृष्ण-बलराम जिस प्रकार मार डाले ज.यँ उसी प्रकार तुम हाथी को उनका उद्देश्य कर उभाड़ना। तुमसे या गजेन्द्र कुबलयापीड़ से वे गोष्ठजीवी मार कर गिरा दिये जायेंगे तो मैं उन उद्धतों को देखूँगा। और उन दोनों को गिरा देख बान्धवों सहित वसुदेव जड़ से कटे वृक्ष की भाँति बिना अवलम्ब होकर भार्या सहित विनष्ट हो जायेगा। जो ये सभी यादव कृष्ण की आशा लगाये हैं, इन सबकी कृष्ण को गिरा देखकर आशा टूट जायेगी। कृष्ण-बलराम को गजेन्द्र से, मल्लों से अथवा मैं स्वयं मारकर मथुरापुरी को यादवों से रहित करके सुखपूर्वक विचरण करूँगा। यादवों का भला चाहने वाले मेरे पिता और कृष्ण का पक्ष ग्रहण करने वाले यादव मेरा त्याग कर दिये हैं। पुत्र का सम्बन्ध रखने वाले अल्प शक्ति युक्त मनुष्य उग्रसेन से मैं नहीं उत्पन्न हुआ हूँ हमसे नारदजी ने यह बात कही थी। महावत बोला कि हे राजन्! नारद ने किस प्रकार यह बात कही। हे अरिन्दम! आपसे यह बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि पिता उग्रसेन के बिना दूसरे से आप कैसे उत्पन्न हैं। हे राजन्! आपकी माता ने कैसे इस प्रकार का दूषित कर्म किया।।३१-४०।।

दूसरी साधारण स्त्री भी इस प्रकार का निन्दित कर्म नहीं करेगी, मुझे इस बात पर बड़ा कौतूहल है, मैं विस्तार से इसे सुनना चाहता हूँ। कंस बोला कि यदि तुम्हें सुनने की इच्छा है तो जिस प्रकार नारद ने हमसे कहा था उसी प्रकार तुमसे कहता हूँ सुनो। नारद इन्द्र के मित्र हैं और वे इन्द्र के ही सदन से आये थे वे चन्द्रमा की भाँति श्वेत वस्त्र धारण किये, जटा रखाये, काला मृग चर्म ओढ़े, सुवर्ण का यज्ञोपवीत पहने तथा दण्ड-कमण्डल लिये साक्षात् दूसरे ब्रह्मा की भाँति शोभित थे। वे चारों वेदों का गान करने वाले विद्वान् हैं और गान्धर्व वेद के भी ज्ञाता हैं तथा वे अविनाशी ब्रह्मलोक में विचरण करने वाले हैं। मैं उन्हें अपने यहाँ आया देखकर उनका यथाविधि पूजन कर पाद्य, अर्घ्य तथा आसन देकर बैठाया और स्वेयं भी बैठा। तब सुख से बैठे मुनि मेरा कुशल पूछ कर प्रभावशाली आत्मा वाले मुनि प्रसन्न होकर फिर बोले। नारद

बोले कि हे वीर! मैं तुमसे विधि के अनुसार पूजित हुआ अब मेरी एक बात सुनो और उसे ग्रहण करो। मैं सुवर्णमय मेरु पर्वत पर देवताओं के सदन को गया था वहाँ एक दिन मेरु शिखर पर देवताओं की सभा में भी गया तो वहाँ पर देवताओं को, भाइयों सहित आपके वध का सुदारुण उपाय विचारते हुए सुना। हे कंस! जो देवकी का आठवाँ गर्भ है वह लोक नमस्कृत विष्णु का होगा और उसी से तेरी मृत्यु होगी। वह विष्णु देवताओं का सर्वेसर्वा है और उनकी गति है तथा वेदों का वह परम रहस्य है उसी से तेरी मृत्यु होगी। इसलिये तुम देवकी के गर्भों को गिरा देने का प्रयत्न करो, यदि शत्रु दुर्बल हो अथवा स्वजन हो तो भी उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हे महाबली! उग्रसेन तुम्हारा पिता नहीं है, तुम्हारा पिता सौभपति बलवान् तेजस्वी द्रमिल है। मैं नारद की इस बात को सुन कर कुछ क्रोधित होगया पर फिर उनसे पूछा कि हे ब्रह्मन! द्रुमिल मेरा पिता कैसे है। हे विप्र! हमारी माता के साथ उसका समागम कैसे हुआ हे तपोधन! इसे मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ। नारदजी बोले कि हे तात! द्रुमिल का तुम्हारी माता के साथ जिस प्रकार समागम हुआ तथा उसके बाद संवाद हुआ सो सब यथार्थ रूप से वर्णन करता हूँ सुनो तुम्हारी माता रजस्वला अवस्था में एक बार सुयामुन पर्वत को देखने के लिये कुतूहल से सखियों के साथ गई थी। वह वहाँ जाकर सुन्दर वृक्ष के वनों, में पर्वत के शिखरों पर एवं कन्दराओं तथ नदियों के किनारों पर रमणीय स्थानों में घूमने लगी। काम को उत्पन्न करने वाली, कानों को सुख देने वाली, ऊँचे स्वर में सुनाई पड़ने वाली किन्नरों केमदुर गीतों को सुनती हुई।।५१-६०।।

मोरों के शब्दों को तथा और अनेक प्रकार के पक्षियों के कल-रव को निरन्तर सुनती उसे स्त्री धर्म (काम) की अभिलाषा उत्पन्न हो गई। इसी बीच काम को जगाने वाला पुष्पों के सुवास से भरा वायु वन की लताओं से निकल कर हृदय को सुख देने लगा और भ्रमर रूपी आभूषण को धारण करने वाले निरन्तर काम के मद से मतवाले वन-पुष्प वायु से टकराकर अधिक गन्ध छोड़ने लगे। काम को जगाने वाले केसर के वृक्ष पुष्पों के द्वारा

वर्षा करने लगे उस समय पुष्पों के कण्टकों को धारण करने वाले कदम्ब के वृक्ष अपने पीले पुष्पों से दीप समूह की भाँति ज्ञात होने लगे। पृथ्वी नये हरे तृणों से ढकी हुई वीर बहूटियों से विभूषित युवावस्था वाली रजस्वला स्त्री की भाँति रूप धारण किये थी। उसी समय सौभपति द्रुमिल नामक दानव को भविष्य की होनी के योग से ब्रह्मा ने लाकर उपस्थित कर दिया। वह भी सुयामुन पर्वत को देखने की इच्छा से तरुण सूर्य के समान चमकते इच्छानुसार शीघ्र चलने वाले रथ से गया। शीघ्रता से गमन करने वाले रथ के द्वारा आकाश मार्ग से वह इच्छानुसार घूमने वाला महाबली द्रुमिल उस पर्वतेन्द्र के समीप आकर रथ से उतरा दूसरे रथों को नष्ट करने वाले अपने रथ को वह पर्वत के उपवन में खड़ा कर अपने रथ वाहक के साथ पर्वत के शिखर पर घूमने लगा। उन दोनों ने सब ऋतुओं के गुण से सम्पन्न इन्द्र के नन्दन वन की भाँति बहुत से वन और उपवनों को देखा।।६१-७०।।

नाना प्रकार की धातुओं से युक्त बहुत से ऊँचे शिखरों वाले पर्वत शिखर, कन्दरा और नदियों के किनारों पर विचरने लगा। नाना प्रकार के रत्नों से विचित्रित पर्वत पर सुवर्ण, नीलमणि तथा चाँदी के नाना प्रकार के कुसुमों के गन्धों से युक्त, नाना प्रकार के जीवों से युक्त, नाना प्रकार के पक्षिगणों से सेवित तथा नाना प्रकारके पुष्प फलों से युक्त वृक्षों को देखने लगा, नाना प्रकार की औषधियों से युक्त ऋषि सिद्धों से सेवित आश्रमों को देखते तथा विद्याधरों, किन्नरों पुरुषों, ऋक्षों, बानरों एवं राक्षसों को देखते, सिंह, व्याघ्रों, वराहों, वन महिषों, शरभों, खरगोसों, सृमरों, चमरों, न्यङ्कुओं, मतवाले हाथियों और राक्षसों एवं बहुत से जंगली वृक्षों को देखते हुए उस उत्तम पर्वत पर विचरता हुआ। वह सौभ नगरीका राजा द्रुमिल दूर से देव-कन्या के समान पटरानी तुम्हारी माता पवनरेखा को सखियों के साथ क्रीड़ापूर्वक पुष्पों को चुनते हुए देखा। तब इस प्रकार सखियों से घिरी विचरण करती हुई तुम्हारी माता को दूर से देख कर विस्मित होता हुआ सौभ-पति सूत से कहने लगा रूप और उदारता आदि गुणों से युक्त कामदेव

की स्त्री रति के समान सुन्दर मृग के बच्चों की भाँति नेत्रों वाली इस वन के बीच विचरण करने वाली यह किसकी स्त्री है? यह इन्द्र की स्त्री शची अथवा तिलोत्तमा अथवा नारायण की जंघा को फाड़कर उत्पन्न होने वाली वरवर्णिनी इलापुत्र राजा पुरूरवा की प्रिय पटरानी स्त्रियों में रत्नस्वरूप उर्वशी है। मैंने सुना है कि अमृत के लिये देवता और दानवों ने मिलकर मन्दराचल को मथानी बना क्षीरसागर को मथा तो अमृत के कुण्ड से नारायण को वरने के लोभ से लोकों को प्रभावित करने वाली लक्ष्मी प्रकट हुई क्या स्त्रियों में श्रेष्ठा यह लक्ष्मी है।।७१-८१।।

जो नीले मेघों के अन्तर्गत अधिक समय तक प्रकाश करनेवाली बिजली के समान यह स्त्रियों के बीच में अपने रूप से वन को प्रकाशित कर रही है। पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख वाली अत्यन्त सुकुमार अङ्गों वाली इसके अनिन्द्य अङ्गों को देख कर मैं व्यामोहित हो गया हूँ और मेरी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही हैं। इस समय मैं काम के वशीभूत हो गया हूँ मेरा मन बड़ा चंचल हो रहा है पुष्पों के आयुध को धारण करने वाला कामदेव अपने वाणों से मेरे अङ्गों को अत्यन्त ही व्यथित कर रहा है। वह मेरे हृदय में दया रहित हो पाँचों बाणों से मार कर हृदय की अग्नि को घी डाले हुए अग्नि की भाँति और भी उत्तेजित कर रहा है जिससे मेरा मन व्यथित हो रहा है अब कामदेव की अग्नि से शान्ति पाने के लिये आज किस प्रकार कार्य साधन करूँ। किस उपाय से क्या करें कि यह गजगामिनी मुझको स्वीकार कर ले, इस प्रकार की बहुत सी चिन्ता करता हुआ वह दानव धैर्य धारण कर। सूत से बोला कि हे अनघ! तुम क्षण मात्र यहाँ ठहरो मैं यह देखने जा रहा हूँ कि यह किसकी स्त्री है। जब तक मैं लौट कर वापस न आ जाऊँ तब तक तुम यहाँ ठहरना, इस प्रकार द्रुमिल के वचनों को सुनकर सूत बोला वैसा ही करूँगा। इस प्रकार दानव कहकर चलने के लिये मन में ठाना पश्चात् वह बलवान् जल से आचमन कर ध्यान कर देखने लगा। वह ज्ञान के बल से मुहूर्त मात्र ध्यान करके ज्ञात कर लिया कि वह उग्रसेन की पत्नी है तब तो महा प्रसन्न हो।।८२-९०।।

अपने रूप को उग्रसेन के रूप में परिवर्तित कर महाबाहु दानवेश्वर हँसता हुआ चला। और हँसता हुआ धीरे से जाकर उग्रसेन के रूप से तुम्हारी माता को पकड़ कर दबाया तब तुम्हारी माता भी उसको अपना पति समझ कर कोमल हृदय हो काम की भावना से उससे जा मिली इसके बाद उसकी गम्भीरता से वह सशंकित हो गयी और भयभीत हो उठ कर उससे कहने लगी तुम हमारे पति नहीं हो यह निश्चत है, इस प्रकार का व्यभिचार करने वाले तुम कौन हो जो मुझे मलिन कर दिया। हमारे एक पति-व्रत धर्म को तुम नीच ने मेरे पति का रूप धारण कर नीच कर्म के द्वारा सम्यक् प्रकार से दूषित कर दिया। भला मुझ कलंकिनी को मेरे बान्धव रुष्ट होकर क्या कहेंगे, मैं अब पति की ओर से निन्दित होकर कैसे रहूँगी। तुम्हारे जैसे व्याकुल इन्द्रिय वाले चंचल दुष्कुलीन को धिक्कार है, पर स्त्रीगमन, आयु और विश्वास को नष्ट कर देने वाला है। इस प्रकार धिक्कार से क्रोधित हो दानव कलह करता हुआ तुम्हारी माता से बोला कि मैं बलवान् सौभ नगरी का राजा हूँ मेरा नाम द्रुमिल है। हे मूर्खे! अपने को पण्डित मानने वाली मृत्यु के वशीभूत मनुष्य पति का आश्रय कर क्रोध से क्यों मेरे ऊपर आक्षेप कर रही हो। हे स्त्री के धर्म पर गर्व करने वाली! स्त्रियाँ व्यभिचार से दूषित नहीं होती हैं, स्त्रियों की बुद्धि निश्चल नहीं होती है उसमें भी मानुषी की बुद्धि विशेष रूप से चंचल होती है।।९१-१००।।

यह बात सुनने में आती है कि कुन्ती दमयन्ती आदिकों ने व्यभिचार के द्वारा देवताओं के समान पुत्रों को उत्पन्न किया कि जिनका पराक्रम समर में अडिग था। तुम्हीं एक स्त्रियों में पतिव्रता धर्म वाली सती हो जो पाप रहित मुझे इच्छानुसार फटकार रही हो। हे पागलों की भाँति अपना मन्तव्य प्रकाश करने वाली! जो तुमने हमसे कहा है कि तुम किसके हो इसी कारण से शत्रुओं को नष्ट करने वाला कंस नामक तुम्हें पुत्र होगा। ऐसा सुनकर वह देवी क्रोधित होकर पुनः उसकी निन्दा करती हुई दुःखित हो जबर्दस्ती से बोलने वाले दावन से बोली कि अपने पापाचरण को श्रेष्ठ आचरण बतलाने वाले तुम्हारे ऐसे

आचरण को धिक्कार है जो तू सभी स्त्रियों की निन्दा कर रहा है, इस संसार में नीच आचरण करने वाली तथा पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली दोनों प्रकार की स्त्रियाँ हैं। जो अरुन्धती आदि प्रमुख पतिव्रता स्त्रियाँ सुनाई पड़ती हैं उन्होंने अपने सत्य के बल से हे कुलाधम! सम्पूर्ण लोकों और प्रजाओं को धारण की हैं। तुमने जो मुझे कुल धर्मविनाशक पुत्र दिया है वह मुझे मान्य नहीं है, जो कुछ मैं कहती हूँ उसे सुनो। हे नीच! मेरे पति के वंश में ईश्वर अवतार धारण करेंगे वह तेरे दिये पुत्र को मार डालेंगे। इस प्रकार फटकारा गया द्रुमिल आकाश मार्ग से अपने दिव्य तथा उपमा रहित शीघ्र चलने वाले उसी रथ पर चढ़ कर चला गया। तुम्हारी माता भी दुःखी होती उसी दिन अपनी पुरी मथुरा को चली आई, इस प्रकार मुनि श्रेष्ठ भगवान् नारद मुझसे कह कर।।१०१-११०।।

तप के बल से अग्नि का भाँति देदीप्यमान होते हुए सप्त स्वर से युक्त अपनी वीणा को बजाते और गाते हुए ब्रह्मलोक के मार्ग से ब्रह्मा के पास चले गये हे महावत! हमारे कहे इन वचनों को सुनकर सत्य मानो क्योंकि बुद्धिमान नारद जो तीनों लोकों की बात को जानने वाले हैं हमसे सत्य ही कहे थे, मैं भी देखता हूँ कि बल, पराक्रम राजनीति, विनय, सत्य तथा दान में मेरे बराबर कोई दूसरा पुरुष नहीं है। हे हस्तिप! मैं यह सब सुन कर नारद जी में श्रदा रखता हूँ मैं उग्रेसन का क्षेत्रज पुत्र हूँ। मैं माता तथा पिता से त्यागा गया हूँ माता-पिता हमसे द्वेष करते हैं और मेरे बान्धव तो और भी विशेष रूप से द्वेष करते हैं मैं अपने तेज से राज्य सिंहासन पर स्थित हूँ। गोपों के पाप स्वरूप इन दोनों को हाथी के द्वारा मरवा कर कृष्ण के पक्षपाती इन सबों को भी मैं मारूँगा। इसलिये हे महावत! तुम अंकुश प्रास और तोमर ले हाथी पर चढ़ कर शीघ्र ही सभा द्वार पर जाओ विलम्ब न करो।।१११-११८।।



अथ एकोन त्रिंशोऽध्यायः।।२९।।

वैशम्पायनजी बोले कि उस दिन के समाप्त होने पर दूसरे दिन वह युद्धस्थल मल्लयुद्ध देखने वाले पुर के मनुष्यों से भर गया। उस युद्धस्थल में चित्र बने हुए थे वह आठ कोणों वाला था उसमें अनेक द्वार थे उनमें जंजीरें लगी थीं और रंग स्थल में वेदिकायें बनी थीं तथा अर्ध चन्द्राकार खिड़कियाँ लगी थीं और उत्तम बिछौने बिछे थे। उसमें पश्चिम की ओर राजदाराओं को बैठने के लिये मञ्चों से पुष्प विभूषित रस्सियों को बाँध कर उनके सहारे परदे लटका कर गुप्त स्थान बना था जिसके अन्दर से स्त्रियाँ बाहर बालों को देख लें और बाहर वाले उन्हें न देख सकें, वह स्थान तम्बुओं के तानने से शरद् ऋतु के मेघों से आच्छादित हुआ सा ज्ञात होता था और मालाओं से युक्त रस्सियों से विभूषित था। युद्ध देखने के लिये सुन्दर ढंग से उसमें मचांगार बने थे और वह स्थान सुन्दर ढंग से सजाया गया था वह सभास्थल मेघों के समूहों से घिरे समुद्र की भाँति शोभा पा रहा था शिल्पकारों ने अपनी कारीगरी से सभी सामानों, पताका आदि से विशेष रूप से श्रेणीबद्ध करके ऊँचे-ऊँचे मंचों का निर्माण किया था जो पर्वतों की भाँति शोभा पा रहे थे। अन्तःपुर में रहने वालों के लिये अनेक प्रकार के युद्ध देखने के स्थान बने हुए थे जो सुनहले चित्रों से और रत्नों से चमकते हुए शोभित हो रहे थे। रत्नों के समूहों से जड़ित तथा ऊँची-ऊँची ध्वजा वाले प्रेक्षागारों पर जिस समय परदे गिराये जाते थे उस समय वे आकाश में स्थित पक्ष वाले पर्वत की भाँति सुशोभित होते थे। उन प्रेक्षागारों में चामरों; हारों, और आभूषणों के झनकारों से तथा विचित्र सरस्वती स्वरूप स्त्रियों से बड़ी शोभा हो रही थी। वेश्याओं के बैठने के लिये अलग मंच बने हुए थे उस पर सुन्दर बिछौने और चाँदनियाँ बिछी हुई थीं। वे मुख्य-मुख्य वेश्याओं से विमानों की भाँति शोभित हो रहे थे। वहाँ सुवर्णमय पलंग तथा ख्यातिप्राप्त सुन्दर बिछौने बिछे हुए थे और बहुत से चित्रों से वह स्थान भरा हुआ था तथा जगह-जगह पुष्पों के गुच्छों से सुशोभित हो रहा था।।१-१०।।

वहाँ जल पीने के लिये सुवर्ण के घड़ों में जल भरा रखा था और जलपानगृह सुन्दर ढंग से बनाया गया था जहाँ फलों के रस से बना शर्बत गिलासों में भरकर पीने के लिये रखा था। अन्य और भी बहुत से मंच काष्ठ के बने हुए सैकड़ों-हजारों की संख्या में उत्तम बिछौनों से शोभित हो रहे थे। अन्य [illegible] के देखने के लिये कोठों के ऊपर अलग प्रेक्षागार बने हुए थे जिसमें महीन जालियाँ लगी थीं वे आकाश में राजहंसों की भाँति शोभा पा रहे थे। कंस के प्रेक्षागार का दरवाजा पूर्व की ओर था वह सुन्दर ढंग से निर्मित मेरु के शिखर की भाँति उसका सोने का शिखर बना था और उसमें सुवर्ण-पत्र के समान चमकने वाले खम्भे लगे थे, चित्रों की बनावट से वह और ही शोभित हो रहा था। कंस का प्रेक्षागार शोभा से अधिक चमक रहा था पुष्प-माला गुँथी रस्सियों से सुशोभित निवास के लक्षणों से युक्त था। नाना प्रकार के मनुष्यों से जब वह युद्धस्थल भरने लगा और जनसमूह के बोलने से गूँजने लगा तब वह समुद्र के समान लहराता सा प्रतीत होने लगा फिर सबके चुपचाप बैठ जाने पर जब सभा में स्तब्धता छा गयी तब कंस महावत को, कुबलयापीड़ हाथी सभा के दरवाजे पर स्थित रहे इस प्रकार आज्ञा देकर अपने प्रेक्षागार में चला गया। वह श्वेत वस्त्रों को धारण किये था, उसका पंखा और चँवर भी श्वेत वर्ण का था तथा श्वेत वर्ण के चमकीले मुकुट से वह श्वेत बादलों के बीच चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हो रहा था। उसके सुख से सिंहासन पर बैठ जाने के पश्चात् उसके अप्रतिभ रूप को देखकर पुरजन आशिष रूप जय-जयकार करने लगे। इसके पश्चात् फहराते हुए पहलवानी वस्त्रों को धारण किये मल्लों ने युद्धस्थल में प्रवेश किया मल्लों के बैठने की तीन श्रेणियाँ बनी थीं वे अपनी योग्यता के अनुसार अपनी श्रेणियों में बैठ गये।।११-२०।।

तत्पश्चात् भेरियों को बजाते और अपने मुसुकों पर ताल ठोंक कर उछलते हुए प्रसन्नता से भरे वसुदेव के पुत्र सभा के दरवाजे पर आ गये। वे दोनों सुन्दर प्यारे लगने वाले वस्त्रों को धारण किये देवताओं की वन्दनाओं से विभूषित थे उनकी ऊँची गर्दन मालाओं से ढकी थी वे बाहुओं को शस्त्रों के

समान घुमाते हुए आपस में ताल ठोंक रहे थे उनकी बाहें जंजीर की भाँति गठी हुई थीं। शीघ्रता से उनको आते देख महावत ने बार-बार मतवाले हाथी को उभाड़ कर उन सुन्दर मुख वालों को रोक दिया। वह दुष्टात्मा मतवाला हस्ती प्रेरणा पाकर अपने सुण्ड को गोलाकार कर बलराम और श्रीकृष्ण को मार डालने का प्रयत्न करने लगा इस प्रकार गज से भय दिखलाये जाने पर श्रीकृष्ण हँसते हुए उस दुरात्मा कंस के इस उपाय रूप बुद्धि की निन्दा करने लगे। श्रीकृष्ण कहने लगे कि कंस जो मुझे हाथी के द्वारा मरवा डालने की इच्छा कर रहा है इससे स्पष्ट विदित होता है कि वह वैवस्वत-यम के लोक को जाने के लिये निश्चय ही व्याकुल हो रहा है। मेघ के समान गर्जता हुआ नाग जब बिलकुल सन्निकट आ गया तब गोविन्द गज को कुपित करने के लिये ताली बजाने लगे। इस प्रकार हाथी के सामने ताल ठोंक उसके जल बिन्दुओं सहित सुण्ड को अपने बाहुओं से पकड़ छाती से दबाया और उसके दाँतों के बीच से होते हुए चरण के बीच में जाकर उस गज को वैसे ही व्याकुल करने लगे कि जैसे पवन मेघ को व्याकुल कर देता है। इस प्रकार वे हाथी के सुण्ड से, दाँतों के बीच से निकल उसकी पूँछ पकड़ भूमि पर गिरा दिये।।२१-३०।।

तब वह विशालकाय हस्ती व्याकुल हो श्रीकृष्ण को मारने में असमर्थ हो गया और अपने शरीर के इस प्रकार पीड़ित होने से चिग्घारने लगा। दाँतों और ठेगुनों के बल पृथ्वी पर गिर कर व्यथित हो गया और क्रोध से वह वर्षा काल के मेघ की भाँति मद की वर्षा करने लगा। श्रीकृष्ण नाग से शिशु-लीला की भाँति क्रीड़ा कर कंस के द्वारा द्वेष उत्पन्न किये गये चित्त से उसे मार डालने का विचार कर लिये। वह हाथी के मुख पर पैर रख हाथों से गण्डस्थल में धँसे हुए दाँतों को उखाड़ कर उन्हीं दाँतों से उसे मारने लगे। वह अपने वज्र तुल्य दाँतों से मार खाकर मल-मूत्र कर दिया और दुःखी होकर चिल्लाने लगा। कृष्ण की मार से जर्जरित कर दिये गये अंगों वाले हाथी के दोनों गण्डस्थलों से बहुत वेग से रुधिर बहने लगा। बलराम जी उसकी पूँछ को पकड़ कर जोर से वैसे ही खींचने लगे कि–जैसे पर्वतों में आधे धड़ से

घूसे सर्प को गरुड़ खींचे। कृष्ण ने उसी गज-दन्त से हाथी को मार कर उसके नितम्ब पर एक बार जोरों का प्रहार किया। तब हाथियों में श्रेष्ठ दाँत रहित हाथी बड़े जोरों का आर्त नाद कर महावत के सहित वज्र से पक्ष काटे गये पर्वत की भाँति गिर पड़ा। तत्पश्चात् कठिन लड़ाई करने वाले पुरुष श्रेष्ठ कृष्ण-बलराम ने तोरण बँधे द्वार के खम्भों को उखाड़ कर गज के पाद रक्षकों को मार डाला। उन सबों को मार कर अश्विनी कुमारों के स्वर्ग से उतरने की भाँति स्वेच्छा से रंग-भूमि के बीच प्रविष्ठ हो उपस्थित हो गये। और बाहुओं पर ताल ठोंकने लगे तथा उछल कर ऊँचे स्वर से गर्जने लगे इस प्रकार वन-माला पहने बलराम-श्रीकृष्ण को वृष्णि, अन्धक तथा भोजवंश वालों ने देखा वे दोनों भाई तालों को ठोक तथा सिंहनाद कर सभा के लोगों को प्रसन्न कर रहे थे। हे भारत! बलराम-कृष्ण के प्रति पुरजनों का प्रेम तथा हर्ष देख कर व्यर्थ मतिवाला भोजराज कंस विषाद करने लगा। हाथियों में श्रेष्ठ कुबलयापीड़ को मार कर गर्जना करते हुए बलराम के साथ श्रीकृष्ण जी समुद्र के समान विशाल जन समूह में उपस्थित हो गये।।३१-४४।।



अथ त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

वैशम्पायनजी बोले कि वायु से वस्त्र जिसके काँप रहे हैं ऐसे बलराम जी को आगे कर कमल लोचन श्रीकृष्ण को सभा में प्रवेश करते कंस ने देखा। गज के दाँतों से उनके बाहुओं में खरोच लग कर चिह्न बन गया था हाथी के मद और रुधिर रूपी बाजूबन्द को धारण करने वाले देवकी-पुत्र वीर कृष्ण को देखा। वे सिंह के समान गर्ज रहे थे मेघ के समान उनका प्रभाव लोगों के हृदयाकाश पर छा रहा था और वे बाहुओं पर ताल ठोंकने के शब्द से वसुन्धरा को हिला रहे थे। ऐसे हाथी के दाँत रूप आयुध को धारण करने वाले कृष्ण को देख कर फिर अत्यन्त मलिन मुख हो क्रोध से उन्हें देखने लगा। हाथ में गज-दन्त लिये केशव वैसे ही सुशोभित हो रहे थे जैसे चन्द्रमा

के आधे विम्ब को धारण कर एक शिखर वाला पर्वत सुशोभित होता हो। श्रीकृष्ण के सिंहनाद करने पर जन समूह के प्रतिनाद से वह समुद्र के समान रंग-स्थल भर गया। तब कंस क्रोध से लाल-लाल आँखें किये परम कुपित हो महाबली मल्ल चाणूर को कृष्ण के साथ लड़ने के लिये आदेश दिया। और महाबली अन्ध्र मल्ल कपट धारण करने वाले मुष्टिक को बलदेव के साथ लड़ने को आदेश दिया, मुष्टिक की शरीर पर्वत की शिलाओं से जोड़ी हुई सी ज्ञात होती थी। तुमको कृष्ण के साथ यत्न पूर्वक युद्ध करना चाहिए इस प्रकार कंस की आज्ञा से पहले ही आज्ञप्त चाणूर ने लाल-लाल आँखें कर जल से भरे मेघ के समान युद्ध करने के लिये कृष्ण के पास आ गया।।१-१०।।

राजा के द्वारा 'चुप रहो' ऐसी घोषणा कर देने पर सभा के लोगों के शब्द रहित शान्त हो जाने पर अर्थात् सन्नाटा छा जाने पर श्राकृष्ण के हित की आकांक्षा से सभासद बोलने लगे। अखाड़े में मल्ल युद्ध जो होता है वह शस्त्र से रहित दाँव-पेंच से होता है और लड़ने वाले दोनों मल्लों की बराबरी की योग्यता की परीक्षा कर तब लड़ाया जाता है ऐसा नियम पहले से बना हुआ है। कुश्ती के मिनट या आधा घण्टा निश्चित किये गये समय को जानने वाले पुरुषों को मल्लों का आप लोगों ने बड़ा परिश्रम किया अब रहने दो कहकर कुश्ती छुड़ाकर तथा गोहरियों से उनके पसीनों को शुद्ध करा कर इनाम क्रिया से निरन्तर स्वागत करना चाहिए। कुश्ती के निर्णायक उस्तादों का यह कहना है कि अखाड़े में उतरने पर जो जिस प्रकार से लड़े उससे उसी प्रकार लड़ना चाहिए। बालक हो तो बालक के साथ, वृद्ध हो तो वृद्ध के साथ, युवा युवा के साथ, दुर्बल हो तो दुर्बल के साथ, लम्बा-चौड़ा बलवान् हो तो वैसे ही पहलवान के साथ उसे लड़ना चाहिए, यही उचित है। बल तथा क्रिया, कला-कौशल आदि की परीक्षा कुश्ती बदने के पहले ही करनी चाहिए कुश्ती बद जाने पर अथवा अखाड़े में उतर जाने पर नहीं। ऐसा युद्ध विशारदों का कहना है। यहाँ रंग-स्थल में प्रस्तुत कृष्ण और अन्ध्र मल्ल चाणूर के कुश्ती बदने में कृष्ण बालक और अन्ध्र मल्ल चाणूर महान् युवा है इसका विचार क्यों नहीं किया जाता है। ऐसा सुनकर समाज में अवश्य विचार होना चाहिए यह शब्द

चारों ओर होने लगा और गोविन्द ने सिंहनाद कर यह कहा कि मैं बालक हूँ और यह अन्ध्र चाणूर शरीर से पर्वत के समान है तब भी इस बाहुबलशाली के साथ मुझे युद्ध करना पसन्द है। हमारे द्वारा युद्ध का कोई व्यतिक्रम नहीं होगा और न हम बाहुयुद्ध करने वाले पहलवानों के नियम को दूषित करेंगे।।११-२०।।

यह चाणूर नामक बाहु-योद्धा करुष देश में उत्पन्न शरीर से और दाँव-पेंच से कितना विख्यात है यह विचारने की बात है। इसने अनेक मल्लों को पटकने के बाद मार डाला है और अपने प्रताप को रंग-स्थल में दिखाने के लिये इसने मल्ल-युद्ध के सिद्धान्तों को दूषित कर दिया है। संग्राम भूमि में शस्त्रों के द्वारा एक दूसरे को मार डालने पर विजय प्राप्त करते हैं पर बाहुयोद्धा अखाड़े में एक दूसरे को पटक कर ही विजय प्राप्त करते हैं। संग्राम में विजय प्राप्त करने के बाद विजेता को अमर कीर्ति मिलती है और शस्त्र से मरने वाले को स्वर्ग प्राप्त होता है। संग्राम में जीतने तथा पराजित होने वाले दोनों को सिद्धि मिलती है। रण में मरने के बाद जो योद्धाओं की प्राणान्तिकी स्वर्ग-यात्रा है वह सज्जन पुरुषों से प्रशंसनीय है। यह चाणूर बल और दाँव पेचों में हमसे जो अधिक होते हुए भी हमसे बाहुयुद्ध करने आ रहा है तो इसे मुझे जीत लेने पर क्या सुख अथवा यश प्राप्त होगा आदि यह अखाड़े में मर गया तो यह स्वर्ग कैस जायेगा यह संशोधन का विषय है। पण्डितमानी राजा के प्रताप को विख्यात करने के लिये जो मल्ल अपने दोष से अन्य मल्लों को मार डालते हैं तो मल्लों के वध का पाप वध-कर्ता को हुआ। इस प्रकार की बातें करते-करते कृष्ण तथा चाणूर का देखने में सुन्दर लड़ने में कठिन युद्ध प्रारम्भ हो गया और दोनों में वैसा ही घोर युद्ध होने लगा कि जैसे वन में दो बनैले मत्त गजराजों का युद्ध होता है। कृत-प्रकृत चित्रों से अर्थात् दाँव-पेंचों तथा उनके काटों को करते समय अनेक प्रकार का अपना स्वरूप बनाने से, बाहुओं से बाहु को पकड़ कर आपस में चिपट कर, छाती से छाती भिड़ाकर तथा भूमि पर गिरा कर फिर उठा धक्का दे फिर गिरा कर आपस में दो पर्वतों की तरह सट कर, उछल कर, मुष्टिकों से तथा वाराह की भाँति शब्द रहित हो।।२१-३०।।

वज्र के समान ठेघुनों से प्रहार कर अँगुलियों से अँगुलियाँ मिला कर, एक हाथ कन्धे पर दूसरा कोख में देकर तथा कठिन पैरों को तिरछा फेंक कर अपने शत्रु को इधर-उधर विचलित करने लगे। जाँघों पर वज्र के समान निर्घोष कर, तिरछा हो कूदकर बाहु के बल से शस्त्र रहित घोर युद्ध होने लगा। शूरों के उत्सव सभा के सन्निकट योद्धों के बाहुओं से निकले पसीने की गन्ध जब आने लगी तो सभी लोगों ने बड़े जोरों का शब्द किया मंचों पर स्थित अन्य लोगों ने भी साधु-साधु की घोषणा की, उस समय कंस कृष्ण को वक्र दृष्टि से देख रहा था और उसके मुख पर पसीना आ गया था उसने दाहिने हाथ से निर्देश कर तुरुही आदि बाजों का बजना बन्द करा दिया। तुरुही आदि अनेक बाजे एक साथ बजने लगे। कमलनेत्र हृषीकेश के युद्ध करते समय तुरुहियाँ चारों ओर अपने आप स्वयं बजने लगीं। देवता विमानों पर चढ़ अन्तर्धान रूप से कृष्ण की जय की आकांक्षा से विद्याधरों के साथ आकाश में विचरने लगे। आकाश में स्थित हो सप्तर्षियों ने कहा हे कृष्ण! मल्लरूपधारी इस चाणूर नामक दानव को अब शीघ्र ही जीत लीजिये। देवकी-सुत ने कंस के भाव को देखा वे चाणूर के साथ अधिक समय तक खेल कर अपने में ईश्वरीय बल का समावेश किये। तत्पश्चात् पृथ्वी काँप उठी, मंच हिल उठे और कंस के मुकुट से उत्तम मणि गिर पड़ी।।३१-४०।।

श्रीकृष्णजी ने मरणोन्मुख चाणूर के छाती पर घुटने से मार कर अपनी दोनों बाहुओं को पीछे की ओर झुका उसके शिर पर मुष्टिक से प्रहार किया उसके दोनों नेत्र अश्रुमिश्रित रुधिर से युक्त बाहर निकल आये वे निकले नेत्र पिण्ड द्वार पर बँधे दो सुवर्ण घण्टे के समान प्रतीत होने लगे। आँख निकला हुआ चाणूर मरते समय रंग-स्थल के मध्य पृथ्वी पर गिर पड़ा और प्राण रहित हो गया। मरे हुए मल्ल चाणूर की शरीर से रंग स्थल घिर गया और वह पर्वत की भाँति दिखाई पड़ने लगा। बल का घमण्ड करने वाले चाणूर के मारे जाने पर रोहिणी-पुत्र बलराम ने रंग-स्थल में मुष्टिक को पकड़ लिया और कृष्ण ने तोशल को पुनः पकड़ लिया। काल के वशीभूत वे तोशल और मुष्टिक कृष्ण-बलराम से प्रथम बार भिड़ते ही क्रोध से मूर्छित हो गये। घूसों

के प्रहार से आखाड़े में नीचे होकर छटपटाने लगे। पर्वत के शिखर के समान लम्बे महाबली तोशल को श्रीकृष्ण उठा सैकड़ों बार घुमा कर पृथ्वी पर पटक कर रगड़ने लगे। कृष्ण के द्वारा पीड़ित किये गये अत्यन्त बली तोशल के मुख से मरते समय अत्यधिक रुधिर की धारा ऊपर को निकलने लगी। महामल्ल महाबली बलराम अधिक समय तक अच्छा मल्ल यह कर अन्ध्र मल्ल मुष्टिक को पैंतरे दिखाने लगे। बिजली सहित मेघ के समान एक ही मुष्टिक से तेजस्वी बलराम ने उसके शिर पर वैसे ही मारा कि जैसे विशाल पर्वत पर वज्र गिरे।।४१-५०।।

फिर तो मुष्टिक का माथा फट गया आँखें बाहर निकल आईं इस प्रकार बलराम द्वारा आहत हो वह पृथ्वी पर गिर पड़ा तत्पश्चात् बड़ा भारी शब्द हुआ। अन्ध्र तथा तोशल को मार कर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले कृष्ण-बलराम रंग-स्थल में उछलने लगे। चाणूर और तोशल तथा मुष्टिक का पतन कर देने पर युद्ध स्थल से सभी मल्ल भाग गये और रंग-स्थल भयानक लगने लगा। जो नन्द आदि गोप कुश्ती देखने वाले थे वे सब भय से क्षुब्ध हो वहीं ठहरे रहे। नेत्रों से हर्षाश्रु की वर्षा करती तथा स्तनों में दूध भर जाने से पीड़ित काँपती हुई देवकी कृष्ण को देख रही थीं। श्रीकृष्ण को देख कर वसुदेव के नेत्रों में जल भर आया और वे प्रेम के कारण वृद्धावस्था के भाव को छोड़ युवावस्था का भाव धारण करने लगे। श्रेष्ठ सभी स्त्रियाँ श्रीकृष्ण के रूप को आँखों में रख कर पलक रूपी भ्रमरों से उनके मुख कमल का पान करने लगीं और कंस के मुख पर पसीना आ गया कृष्ण को देख कर उसके भृकुटियों के मध्य से क्रोध की ज्वाला निकलने लगी। कृष्ण के कठिन कर्मों को देख क्रोध से उसका मन नीचे ऊपर होने लगा वह यह समझ कर कि कृष्ण मुझे भी अब मार डालेंगे इस अग्नि से उसका हृदय जलने लगा। उसके ओष्ठ फड़कने लगे ललाट पसीना से भर गया और रोषपूर्ण मुखाकृति से उसका शरीर सूर्य के समान जलने लगा।।५१-६०।।

क्रोध से लाल हुए कंस के मुख पर निकली पसीना की बूंदे वैसे ही

चमकने लगीं कि जैसे पेड़ के पत्तों पर पड़ी ओस की बूँदे सूर्य की किरणों से स्पर्श कर चमकती हैं। वह क्रोध में भर कर अपने भयंकर सिपाहियों को आज्ञा दिया कि इन दोनों जंगली गोपों को सभा से बाहर निकाल दो मैं इन दोनों पापियों को नहीं देखना चाहता हूँ और न मेरे राज्य में गोपों को रहने की आवश्यकता है। दुर्बुद्धि नन्द गोप भी पाप में रत हो हमारा अहित चाहता है अतः इसको पकड़ कर हाथ पैर में लोहे की हथकड़ी, बेड़ी डाल दो। हमसे नित्य प्रति द्वेष करने वाले वसुदेव को वृद्ध का विचार न करते हुए दण्ड देकर दुरुस्त करो और जो ये गोप श्रीकृष्ण से प्रेम करने वाले हैं इनकी गायें छीन लो और भी जो कुछ धन इनके पास है वह भी ले लो। इस प्रकार कठोर वचनों से आज्ञा देने वाले कंस को सत्य पराक्रमी कृष्ण ने क्रोध भरे नेत्रों से देखा। पिता वसुदेव तथा नन्द गोप के ऊपर इस प्रकार आक्षेप करते देख तथा मूर्छित अवस्था में माता देवकी के कष्ट को देख श्रीकृष्ण क्रोधित हो गये और सिंह के समान पराक्रम वाले महाबाहु श्रीकृष्ण कंस के नाश के लिये बड़े वेग से उछले। वे वायु के झोंके से आकाश में स्थित उड़ाये गये महा मेघ की भाँति उछल कर कंस के समीप जा पहुँचे।।६१-७०।।

रंग-स्थल से उछलते हुए श्रीकृष्ण को किसी ने न देखा केवल कंस के समीप पुरवासियों ने देखा। काल के धर्म से व्याकुल एवं परास्त कंस ने भी श्रीकृष्ण को आकाश से आया हुआ माना कृष्ण ने परिघ के समान बाहुओं को फैला कर कंस के केसों को पकड़ रंग-स्थल की सभा में खींच लिया। कृष्ण के बाहुओं द्वारा शिर के बाल पकड़ने से उसके शिर से मणि-विभूषित स्वर्ण मुकुट गिर पड़ा। काल रूप ग्रह से ग्रसित किये गये केशों वाला कंस प्रयत्न रहित हो गया एवं किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो विकल होने लगा। केश के पकड़ लेने पर वह मरणाधर्मा की भाँति श्वाँस लेने लगा और श्रीकृष्ण का मुख भी न देख सका। उसके कानों से कुण्डल गिर पड़े वक्षस्थल से हार टूट गया और उसकी बाहुयें पसर गईं शरीर के अङ्गों से सभी आभूषण गिर कर इधर-उधर बिखर गये। उसका दुपट्टा गिर कर सहसा उसके मुख में लिपट गया था इस प्रकार श्रीकृष्ण के तेज से खींचा गया था। क्लेश देने की योग्यता को

प्राप्त कंस को बलपूर्वक मंच से खींच कर विशाल सभा में पटक छाती पर सवार हो उसके केशों को पकड़ कर खींचने लगे। कृष्ण के द्वारा महातेजस्वी कंस के खींचे जाने पर उसकी शरीर से सभा भूमि में खाई बन गयी।।७१-८०।।

सभा में इस प्रकार क्रीड़ा कर तथा गतायु कंस को खींच कर कृष्ण ने कंस के शरीर को वहीं छोड़ दिया। वेद के विरुद्ध कार्य करने का यह फल हुआ कि सुख भोगने योग्य कंस का शरीर धूलों से लिपटा पृथ्वी पर पड़ा था। मुकुट सहित मुँदी आँखों वाला तथा फैले हुए हाथों पैरों वाला कंस का श्याम मुख वैसे ही शोभित नहीं होता था कि जैसे कमल के दलों को कुचल देने पर कमल शोभित नहीं होता। बाणों से संग्राम के बिना ही केश खींच कर कंस मारा गया अतः वीरों की स्वर्ग गति से बहिष्कृत कर दिया गया। उसके शरीर पर केशव के नखों से जीवित रहने पर ही खरोच लगने से उसके मासों पर नख का घाव स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। कृष्ण कंस को मार कर निष्कण्टक हो गये और उनका तेज दूना बढ़ गया। वे वसुदेव के चरणों की वन्दना किये। पश्चात् माता के पैरों में शिर से अभिवन्दन किया माता देवकी आनन्द के कारण निकले हुए स्तनों के दूध से श्रीकृष्ण का सिंचन करने लगीं। अपने तेज से प्रकाशित होते हुए श्रीकृष्ण पद के अनुसार और अवस्था के अनुसार यादवों को दण्ड-प्रणाम कर कुशल-समाचार पूछने लगे। धर्मात्मा बलदेवजी कंस के भाई जो कि द्रुमिल से उत्पन्न सुनामा बड़ा बलवान् था उसे घूसों से शीघ्र ही मार डाला। शत्रु को जीतने के बाद वे क्रोध-विजेता व्रज में अधिक समय तक बसने वाले वीर श्रीकृष्ण-बलराम प्रसन्न मन से अपने पिता वसुदेव के घर गये।।८१-९०।।



अथ एक त्रिंशोऽध्यायः।।३१।।

वैशम्पायनजी बोले–पुण्य क्षीण हुए ग्रह की भाँति अपने पति को मर कर भूमि पर गिरा देख कंस की पत्नियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। पृथ्वी

रूपी शय्या पर पृथ्वीनाथ कंस को मर कर सोते देख उसकी भार्यायें वैसे ही शोक करने लगीं कि जैसे मृग के मरने पर मृगियाँ शोक करती हैं। हे महाबाहो! तुम जैसे वीर-व्रत प्रेमी के मारे जाने से हम वीर पत्नियाँ मर गई हमारी आशायें टूट गईं और हम लोग बान्धव रहित हो गईं। हे राजसिंह! तुम्हारे जीवन की अन्तिम दशा को इस तरह दरिद्रों की भाँति देख कर बान्धवों सहित विलाप कर रही हूँ। हे विभो! तुम्हारे जैसे महान् बली पति के मृत्यु प्राप्त हो जाने से तुमसे त्यागी गई हम स्त्रियाँ जड़ कटे हुए वृक्ष की भाँति हो गईं। अब कौन ऐसा है कि हम लोगों के कोप करने पर रति की लालसा से हमें अपने बाहुओं से लता की भाँति लपेट कर पलंग पर ले जायेगा। हे सौम्य! तुम्हारे हृदय से निकलने वाला श्वास वायु इस चलते हुए वायु के समान हो गया। हे कान्त! तुम्हारे मुख को जल रहित कमल के समान सूर्य जला रहा है। गालों पर सटे हुए कुण्डलों से प्रिय लगने वाले तुम्हारे ये कान कुण्डलों से रहित इस समय शोभा नहीं पा रहे हैं। हे वीर! सभी रत्नों से विभूषित तुम्हारा मुकुट कहाँ है जो शिर पर धारण करने पर लक्ष्मी के समान अत्यन्त शोभित होता था। तुम्हारे दूसरे लोक में चले जाने पर तुम्हारे अन्तःपुर की दीन-हीन राज-रानियों को किस प्रकार क्या करना चाहिए।।१-१०।।

पति वंचना से रहित हो पति के साथ प्रेम से भोग करने वाली ही स्त्रियों का नाम साध्वी है और वे साध्वी स्त्रियाँ पतियों को त्यागने योग्य कदापि नहीं होती हैं तो तुम हम साध्वी स्त्रियों को छोड़ कर कैसे जा रहे हो अहो! काल महान् बली है जो विपरीत होकर शत्रु को काल के समान दिखाई देने वाले तुमको शीघ्र ही अपहरण कर लिये जाता है। हे तात! तुम्हारे द्वारा सुख से पाली गई हम दीनता का आश्रय कर विधवा हो दुख से जीवन व्यतीत करने के अयोग्य कैसे रहूँगी। स्त्रियों के हाव-भाव पर मोहित होने वाला पति ही एक स्त्रियों की परम गति है सो महा बलवान् यमराज ने हमारे गति को काट दिया तुम्हीं हमारी गति थे। हम लोग विधवा हो शोक से सन्तप्त रुदन रूपी सरोवर में डूबी हुई तुम्हारे बिना कहाँ जायँ अभी तुम्हारे साथ तुम्हारी गोद में क्रीड़ा करती थीं वह समय अब चला गया, क्षण मात्र में ही हम लोग तुमसे

रहित हो गईं, यह मनुष्य जीवन का आमोद-प्रमोद अनित्य है। हे मानद! तुम्हारे मरने से हम बल से विहीन हो गईं, हम सबों ने एक ही प्रकार का पाप की थीं इसीलिये एक ही साथ विधवा हो गईं। रति को प्रिय समझने वाली हम लोग तुम्हारे द्वारा स्वर्ग के सुखों से पालित थीं तथा काम के वशीभूत हो तुममें आसक्त थीं तो भी तुम हमें छोड़ कर कहाँ चले जा रहे हो। हे देवता तुल्य! हम अनाथों के तुम्हीं नाथ हो हे प्रभो! कुररी पक्षी की तरह विलाप करती हुई हमें हे मानद! हे जगत् के नाथ! हमारी बातों का प्रतिउत्तर दो। दुःखी हैं स्त्रियाँ जिसकी ऐसे तुम्हारे मर जाने से तुम्हारे बान्धवों का बल भी शान्त हो जायेगा। हे महाभाग! तुम्हारा जाना हमें बड़ा दुःखकर प्रतीत हो रहा है।।११-२०।।

हे कान्त! इससे निश्चय होता है कि दूसरे लोकमें हम स्त्रियों से भी प्रिय तुम्हारी श्रेष्ठ स्त्रियाँ हैं जिनसे मिलने के लिये हम आत्मीय जनों को घर में छोड़ कर प्रस्थान कर रहे हो। हे अधिक सुख देने वाले वीर! कौन ऐसा कारण है कि इन स्त्रियों के इस प्रकार रुदन करने पर भी तुम मोह से नहीं जाग रहे हो। अहो! पुरुषों की मरण-यात्रा दया रहित होती है वे अपनी भार्याओं से भी निरपेक्ष हो उन्हें त्याग कर चले ही जाते हैं। स्त्रियों का विवाह न हो बल्कि यही श्रेष्ठ है पर शूरवीर पति का होना अच्छा नहीं है, शूरवीर पति स्वर्ग की स्त्रियों को प्यारे होते हैं और शूरवीर पतियों को स्वर्ग की स्त्रियाँ प्यारी होती हैं। रण को प्रिय समझने वाले तुमको जो छिपे रूप से ले जाता हुआ यमराज हम सभी स्त्रियों की अन्तरात्मा पर प्रहार कर रहा है। संग्राम में तुमने जरासन्ध को जीत लिया तथा यक्षों को मार डाला था फिर इस पृथ्वी पर केवल एक मनुष्य से कैसे मार डाले गये। तुम इन्द्र के साथ बाणों के द्वारा संग्राम करके भी देवताओं से नहीं जीते गये तो तुम मनुष्य द्वारा कैसे मारे गये। नहीं क्षुभित होने वाले सागर को तुमने बाणों की वर्षा द्वारा क्षुभित कर वरुण को जीत उसके सभी रत्नों का हरण कर लिया था। इन्द्र के कम वर्षा करने पर तुमने बाणों से मेघों को जीत कर बलपूर्वक वर्षा करवाई। तुम्हारे प्रताप से सब राजे शिर झुकाते थे और वे श्रेष्ठ मूल्य के रत्न तथा वस्त्रादि भेजा करते थे।।२१-३०।।

शत्रुओं के द्वारा महाबली देवता के समान देखे गये तुम्हारे ऊपर इस प्रकार के प्राण का अन्त कर देने वाला घोर संकट किस प्रकार आ गया। तुम्हारे मरने के बाद हम लोगों ने विधवा की संज्ञा ग्रहण कर ली हम सीधी स्त्रियों को मतवाले यमराज ने दुःखित कर दिया। हे नाथ! यदि हम स्त्रियों को विस्मृत कर आपको जाना ही है तो वचन मात्र से मैं जाता हूँ ऐसा कह देने में क्या परिश्रम है। ड़े नराधिप! इस प्रकार का दूर वास करना छोड़ दो हम भयभीत हो अपके चरणों पर शिर रख रही हैं हमलोगों के ऊपर प्रसन्न हो जाओ। अहो वीर! तृण और धूलों में कैसे सोते हो? इस प्रकार भूमि में सोते हुए तुम्हारी शरीर को कष्ट नहीं होता है? तर्कना नहीं हो सकती कि ऐसा सर्वदा सोने वाला प्रहार तुम्हें अकस्मात् किसने दे दिया और तुम्हारी सम्पूर्ण स्त्रियों पर ऐसा कठिन प्रहार किसने किया। हम जिती हुई नारियों का विलाप अन्तःकरण का रोना है हम लोगों को तो तुम्हारे साथ जाना चाहिये, क्यों रुदन कर रही हैं। इस बीच में कंस की माता अत्यन्त रुदन करती तथा काँपती लड़खड़ाती हमारा पुत्र कहाँ है? हमारा वत्स कहाँ है? कहती हुई आई। अपने पुत्र कंस को प्रभा हीन चन्द्रमा की भाँति, मरा हुआ देख कर माता का हृदय विदीर्ण हो गया और वह चक्कर खाकर बार-बार गिरने लगी। पुत्र को देखती हुई हा मैं मर गई ऐसा कहती वह बान्धवों की भाँति दुःख से चिल्ला कर विलाप कर रुदन करने लगी।।३१-४०।।

पुत्र से प्रेम करने वाली वह उसके दीन मुख को गोद में लेकर हा पुत्र, हा पुत्र, ऐसी करुण वाणी से विलाप करने लगी। शूर-वीरों के व्रत को धारण करने वाले और अपनी जातियों के आनन्द को बढ़ाने वाले हे पुत्र! क्यों इतना शीघ्र प्रस्थान कर दिये। हे पुत्र! शयनागार का परित्याग कर ऐसे खुले स्थान पर क्यों सोते हो, तुम्हारे जैसे राजकीय लक्षणों से युक्त पुरुष ऐसे स्थान पर नहीं सोते हैं। लोकों में सबसे बड़ा बली रावण ने राक्षसों की सभा में यह साधु सम्मत श्लोक ठीक ही कहा है कि। देवताओं का विनाश करने वाले महाबली मेरे लिये सगे सम्बन्धियों विभीषणादि के द्वारा उपस्थित किया गया

यह महान् राम रूप शत्रु दुर्निवार्य होगा। उसी प्रकार से जातियों से स्नेह करने वाले मेरे बुद्धिमान् पुत्र पर भी जातियों के द्वारा ही महान् शरीरान्त का भय उत्पन्न हुआ। बच्चे से विहीन हरिणी की भाँति रुदन करती हुई मूर्छित हुए राजा उग्रसेन से बोली। हे शुद्धात्मन! हे राजन्! आओ वज्र से आहत पर्वत के समान वीर शय्या पर सोते हुए अपने राजा पुत्र को देखो प्रेत की योनि को प्राप्त हो यमपुर गये हुए इस पुत्र की अन्त्येष्ठि क्रिया कीजिये। जाकर कृष्ण से कह दो कि हम लोग पराजित हो गये, राज्य वीरों के द्वारा भोगने योग्य होता है अतः आप वीर हैं इसे भोगें, साथ ही कंस के अन्तिम संस्कार के लिये आज्ञा माँग लाओ।।४१-५०।।

मरणान्त बैर को मरण के पश्चात शान्त हो जाना चाहिये, कंस मर गया अब क्या उसको अपराधी ठहराते हैं, अब उसके दाह-संस्कार के लिये आज्ञा दें। पति उग्रसेन से इस प्रकार कह कर कंस की माता कंस का मुँह देखती हुई अपने केशों को खोल कर अत्यन्त विलाप करने लगी। तुम्हारे जैसे सुन्दर पति को प्राप्त कर भी अपने मनोरथ को पूर्ण नहीं कर पाने वाली ये स्त्रियाँ सुखी जीवन नहीं व्यतीत कर पायेंगी। श्रीकृष्ण के वशवर्ती तुम्हारे वृद्ध पिता को सूखते हुए तालाब के समान कैसे देखूँगी। हे पुत्र! मैं तुम्हारी माता हूँ, तुम हमसे क्यों नहीं बोलते तुमने अपने प्रियजनों का परित्याग कर लम्बे मार्ग को क्यों प्रस्थान कर दिया। अहो वीर! यमराज के पास रहने वाला काल मुझ अभागिनी का छेदन कर नीति के पण्डित तथा मुझे सम्यक् प्रकार सुख देने वाले पुत्र को लिये जा रहा है। हे कुलपालक! दान और मान से अपनाये गये ये तुम्हारे भृत्यों के कुल उन गुणों का स्मरण कर रो रहे हैं। हे नर-सिंह, हे महाबाहो! उठो हम दीन जनों को और इस पुर की तथा अन्तःपुर की जैसे रक्षा करते थे वैसे ही रक्षा करो। अत्यन्त दुखी हो विस्तार से कंस के गुणों का वर्णन कर स्त्रियों के रोते-रोते सन्ध्या की लालिमा से लाल होकर सूर्य अस्त हो गये।।४१-५९।।

❖✲❖

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।

वैशम्पायनजी बोले कि पुत्र-शोक से सन्तप्त एवं दुखित उग्रसेन विषपान करने वाले की भाँति श्वास लेते हुए श्रीकृष्ण के समीप गये। अपने घर में कंस के निधन पर पश्चात्ताप करते हुए यादवों से घिरे श्रीकृष्णा को देखा। कंस की नारियों का अत्यन्त करुण रुदन सुन कर वे यादवों की सभा में अपनी आत्मा की निन्दा कर रहे थे। अहो मैं अत्यन्त लड़कपन के क्रोध और दोष से युक्त हो कंस का वध कर हजारों स्त्रियों को विधवा बना दिया। यह स्वाभाविक है कि पुरुषों को स्त्रियों के ऊपर दया आ जाती है पर मैं दया न कर इनके पति का वध कर दिया और ये सब इस प्रकार दुःखी हो रही हैं। इनके इस प्रकार के विलाप को सुनकर यमराज को भी शोक हो सकता है और वह बिना परिचित इन स्त्रियों पर दया कर सकता है। पापाचरण में रत और सज्जनों को उद्विग्न करने वाले कंस का वध कर देना ही कल्याणकारक है यह पहले ही से मैं निश्चय कर चुका था। इस संसार में नीच प्रवृत्ति वाले कटुवादी मन्द बुद्धियों का इस प्रकार क्लेश रहित मरण ही कल्याणकारक है सज्जनों से विद्वेष करने वालों का जीना उचित नहीं है। कंस सज्जनों की बात न मान कर पाप कर रहा था और सब धिक्कारते थे कि यह पतित है तो ऐसे पुरुष के जीवन पर क्या दया की जाय। पुण्य का फल है कि तपस्या करने वालों का स्वर्ग में वास होता है और यहाँ पर भी वे स्वर्ग का सा सुख भोगते हैं।।१-१०।।

यदि राजा पाप रहित हो जाय तो प्रजा धर्म में रत हो जाय और मनुष्य धर्म करने लगें तो राजाओं को अनीति छूती तक नहीं है। यमराज दुष्टों के पाप में प्रवृत्त होने पर फल रूप दण्ड देता है, इसलिये इस संसार में रहकर धर्म करना चाहिये जिससे परलोक बने। जो मनुष्य धर्मपरायण हैं उनकी देवता भली प्रकार रक्षा करते हैं, पाप करने वाले भी लोक में बहुत हैं। जो मैंने कंस को मारा इसे अच्छा ही समझो, मैंने वेदविरुद्ध कर्म करने वाले कंस का मूल ही काट दिया। अब शोक से दुखी उसकी स्त्रियों को सांत्वना देनी चाहिये तथा

सब पुरवासियों को भी सान्त्वना देकर पुरी में शान्ति स्थापित करनी चाहिये। इस प्रकार श्रीकृष्ण के कहते रहने पर पुत्र के पाप से लज्जित नीचे मुख किये उग्रसेन यादवों को साथ लेकर पहुँचे। वह यादवों की सभा में अश्रु से सनी गद्गद दीनता से सजी वाणी द्वारा कमलनेत्र श्रीकृष्ण से बोले कि। आपने क्रोध से मेरे पुत्र कंस को मार डाला शत्रु को दक्षिण दिशा में भेज दिया, अब आपकी कीर्ति फैल गई आपने अपने नाम को पृथ्वी में विख्यात कर दिया। अपना प्रभाव सज्जनों में स्थापित कर दिया, शत्रुओं को सशंकित कर दिया, यादवों के वंश को स्थापित कर दिया तथा अपने सुहृदों को गर्वित कर दिया। शूरवीर राजाओं में अपने प्रताप को प्रकाशित कर दिया, अब आपके मित्र आपकी सेवा करेंगे तथा राजा लोग आपका आश्रय लेंगे।।११-२०।।

आपके स्वभाव के अनुकूल रहकर ब्राह्मण आपकी स्तुति करेंगे, सन्धि, विग्रह आदि नीतियों के प्रमुख ज्ञाता मन्त्रि लोग आपको प्रणाम करेंगे। हे श्रीकृष्ण! हाथी, घोड़े, रथ तथा पदातियों से भरे कंस के अक्षय बल (सेना) को अब ग्रहण कीजिये। धन, धान्य, रत्न तथा राजकीय वस्त्रों को ग्रहण कीजिये और अपने भृत्यों को उनकी रक्षा में नियुक्त कीजिये। सुवर्ण, सवारियाँ तथा और भी जो धन गो-महिषी आदि है वह सब आपका ही है हे श्रीकृष्ण! इस विग्रह में ऐसा ही योग ब्रह्मा के द्वारा विहित था। हे यदुओं को आनन्द देनेवाले यदुनन्दन! हे यदुओं को इस पृथ्वी पर बसाने वाले शत्रुसूदन! तुम्हीं यदुओं की गति और अगति दोनों हो। हे वीर! हम दीनों के कहे वचनों को सुनो, तुम्हारे कोपाग्नि से जले कंस की अन्त्येष्टि क्रिया होनी चाहिये। हे गोविन्द! मैं तुम्हारी आज्ञा से इसे करना चाहता हूँ, क्योंकि उस नरेन्द्र कंस की और्ध्वदेहिक क्रिया को करके हम अपने परिवार और भार्या के सहित वन में जाकर मृगों के साथ जीवन व्यतीत करेंगे, प्रेत की क्रिया कर देने के बाद बन्धुओं का लौकिक ऋण समाप्त हो जाता है। इसलिये हे कृष्ण! चिता पर कंस का शव रख वेद-विधि से पश्चिम अग्नि प्रदान कर उसे भस्म करने के पश्चात् तिलाञ्जलि देने मात्र से कंस के ऋण से हम लोग उऋण हो जायेंगे। हे श्रीकृष्ण! यही आपसे कहना था, अब मेरे ऊपर स्नेह कीजिये और आज्ञा

दीजिये पश्चिमाग्नि की क्रिया करने के बाद ही दीन बान्धव सुगति प्राप्त करते हैं।।२१-३०।।

इस प्रकार उग्रसेन के वचनों को सुन कर श्रीकृष्ण परम विस्मित हो सान्त्वना देते हुए उग्रसेन से प्रतिउत्तर में बोले। हे तात! हे राजसिंह! आपने-अपने कुल के स्वभाव के अनुकूल ही समयानुसार यह कहा है। जो आप इस प्रकार विपत्ति में पड़कर भी कह रहे हैं कि जिससे कंस मरकर भी राजा के योग्य सत्कार को प्राप्त हो। सो क्यों न हो आपका महान् कुल में जन्म है आप वेदों के ज्ञाता हैं, हे तात! होनी नहीं टालने योग्य होती ऐसा आप क्यों नहीं समझते। हे राजन्! स्थावर, जंगम सभी प्राणियों के पूर्व जन्म के किये कर्म समय पाकर फल दिया करते हैं। जो शास्त्रज्ञ हैं, धनी हैं, दाता हैं, देखने में सुन्दर स्वरूप वाले हैं, ब्रह्मवादी हैं, नीतिज्ञ हैं तथा दीनों पर अनुग्रह करने वाले हैं और लोकपालों के समान बली एवं इन्द्र के समान महान् पराक्रमी राजा हैं उन्हें भी हे तात्! हे नृपसत्तम! यमराज ले जा रहा है। धार्मिक, सब प्रकार की बातों को जानने वाले, प्रजा पालन में तत्पर क्षत्रिय-धर्म से युक्त उदार राजे भी काल के वशीभूत हो मृत्यु को प्राप्त हो गये। स्वयं अपनी आत्मा से किये शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल समय आ जाने पर सभी शरीर धारियों को प्राप्त होता है, यही देखा जाता है। देवताओं के द्वारा भी कठिनता से जानने योग्य यह छिपा हुआ ईश्वरीय विधान है जिसके द्वारा सम्पूर्ण लोक मोहित हो रहा है, इसमें कर्म ही कारण है।।३१-४०।।

कंस अपने पहले के किये गये कर्मों के कारण ही मारा गया है, मैं इसमें कारण नहीं हूँ बल्कि काल और कर्म ही कारण है। हे तात्! सूर्य और चन्द्रमा सहित सभी स्थावरजंगम काल के वशीभूत होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं तथा फिर उत्पन्न होते हैं। वह काल ही सबके ऊपर कृपा तथा दण्ड विधान करने में तत्पर रहता है, इसीलिए सभी प्राणी काल के वश में हैं ऐसा समझना चाहिये। हे नराधिप! तुम्हारा पुत्र अपने दोष से ही दग्ध हुआ है, मैं उसमें कारण नहीं हूँ उसमें काल कारण है। अथवा मैं ही कारण होऊँगा इसमें

संशय नहीं है (पर कर्म रूप कारण होने का क्या मैं दोषी हूँ? नहीं) क्योंकि काल कर्म परायण फल परक है अर्थात् कर्मों के अनुसार फल देने वाला है इसमें कारण क्या करेगा। हे राजन्। काल बड़ा बलवान् है और उसकी मोक्ष रूपी गति बड़ी कठिनता से जानने योग्य है, लोक-परलोक के विशेषज्ञ समदर्शी लोग ही मोक्ष रूप गति प्राप्त करते हैं। काल की देख-रेख में ही सम्पूर्ण जगत् है जो काल कर्म के द्वारा शासन करता आ रहा है यही काल की गति है हे तात्! अब जो मैं कहता हूँ वह करो। मुझे राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है न मैं राजा बनना चाहता हूँ और न मैं राज्य के लोभ में पड़कर कंस को मारा हूँ। किन्तु लोक के हित के लिये और कीर्ति के लिये तुम्हारे कुल कलंक स्वरूप पुत्र को भाइयों सहित मारा हूँ। मैं तो वही गोपों के साथ गौओं के बीच प्रसन्न होकर स्वछन्द हाथी के समान विचरण करना चाहता हूँ।।४१-५०।।

यह मैं सत्य ही सैकड़ों बार कह रहा हूँ, मुझे राजा बनने का कोई कार्य नहीं है, मेरा यह कहा आप कीजिये। आप हमारे मान्य हैं, आप राजा हैं और यदुओं में भी श्रेष्ठ हैं तथा सब प्रकार समर्थ हैं, अतः हे नृपसत्तम! अपनी विजय के लिये अपने राज्य सिंहासन पर अपना राज्याभिषेक कराइये। यदि आपको मेरा प्रिय करना हो और आपको कोई कष्ट न हो तो मेरे द्वारा जीते हुए राज्य को चिर काल के लिये ग्रहण कीजिये। वैशम्पायनजी बोले कि यह सुन कर उग्रसेन कुछ उत्तर नहीं दिये वे लज्जा से नीचे मुख कर लिये, फिर राजा उग्रसेन का यदुवंशियों की सभा में धर्मवेत्ता गोविन्द ने राज्याभिषेक कर दिया, तत्पश्चात् मुकुट बाँध कर महातेजस्वी उग्रसेन श्रीकृष्ण जी के साथ कंस की अन्त्येष्टि क्रिया किये। श्रीकृष्ण की आज्ञा से सभी यादव राजा उग्रसेन के पीछे पुरी के प्रवेश मार्ग से वैसे ही पीछे-पीछे चले कि जैसे इन्द्र के पीछे देवता चलते हैं। रात्रि व्यतीत होकर सूर्य के उदय हो जाने पर श्रेष्ठ यादवों ने कंस का दाह संस्कार किया। यथाक्रम कंस का शव पालकी में रख कर वेद विधान से कंस की सत्कार सहित क्रिया किया। नृप-सुत कंस सत्कारित हो यमुना के तीर पर लाया गया और राजाओं जैसा ढंग से चिता पर सुला कर

अग्नि के द्वारा भस्मीभूत किया गया। वहीं उसके भाई महाभुज सुनामा का भी श्रीकृष्ण के साथ यादवों ने दाह-संस्कार किया।।५१-६०।।

वृष्णि और अन्धक वंशियों के साथ यादवों ने यह बार-बार कह कर कि प्रेत के लिये यह तिलाञ्जलि अक्षय हो जल दिया। हे नृपोत्तम! तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने दस करोड़ सुवर्ण से मढ़ी सींगों वाली सुन्दर वर्ण की गौवें, रत्न, वस्त्र तथा नगरों जैसे विशाल ग्रामों को कंस का उद्देश कर ब्राह्मणों को दिया, तत्पश्चात् यादवों ने यह विप्रों को दिया हुआ दान अक्षय हो, ऐसा कह कर कंस तथा सुनामा के लिये तिलाञ्जलि दे और उग्रसेन को आगे कर मथुरापुरी में प्रवेश किया।।६१-६४।।



अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।।३३।।

वैशम्पायनजी बोले कि बलवान् श्रीकृष्ण रोहिणी-पुत्र बलराम के साथ यादवों से भरी मथुरापुरी में सुख से रहने लगे। युवावस्था को प्राप्त वीर श्रीकृष्ण राज-लक्ष्मी से युक्त अपने तेज को प्रकाशित करते हुए रत्नों के भण्डार से विभूषित मथुरापुरी में विचरने लगे। कुछ काल के पश्चात् बलराम के साथ श्रीकृष्ण धनुर्वेद सीखने के लिये काशी में उत्पन्न अवन्तिकापुरी वासी गुरु सान्दीपनि के समीप गये और अपने जन्मस्थान तथा कुल का एवं अपने अध्ययन का निवेदन कर शिष्य के आचरण से अलंकृत हो, अहंकार रहित भाव से बलराम और श्रीकृष्ण गुरु की सेवा करने लगे, काशी के सान्दीपनि भी उनको अपने यहाँ रखकर विद्या-दान देने लगे। हे वीर! श्रवण मात्र से विद्या ग्रहण करने वाले राम-कृष्ण चौंसठ दिन में ही अङ्गों सहित सम्पूर्ण वेदों को पढ़ लिये। गुरु ने दीक्षा, संग्रह, सिद्धि तथा प्रयोग और शास्त्रों के संग्रह से अल्प काल में ही धनुर्वेद को पढ़ा दिया। राम-कृष्ण की अमानुषी बुद्धि को देख गुरु चिन्ता में पड़ गये और इन आये हुए दोनों वीरों को चन्द्रमा और सूर्य की भाँति देवता मानने लगे। गुरु ने इन दोनों महात्माओं को पर्व के दिन

साक्षात् महादेव की पूजा करते हुए देखा। हे भारत! बलराम के साथ श्रीकृष्ण कृतकृत्य हो गुरु सान्दीपनि से बोले कि आप गुरुजी के लिये क्या दक्षिणा दें।।१-१०।।

तब उन दोनों का प्रभाव ज्ञात कर प्रसन्न हो गुरुजी बोले कि खारे समुद्र के जल म मेरा जो पुत्र मर गया है मैं उसी को चाहता हूँ। प्रभास तीर्थ की यात्रा में मछली के द्वारा वह मारा गया, वह मेरे एक ही पुत्र हुआ था, तुम उसी पुत्र को पुनः ला दो। बलराम से सहमत हो श्रीकृष्ण ने कहा कि ऐसा ही करूँगा, फिर तेजस्वी श्रीकृष्ण समुद्र के भीतर जल में प्रवेश कर गये। तब समुद्र हाथ जोड़कर अपने को दिखाया; श्रीकृष्ण ने कहा कि हे समुद्र! गुरु सान्दीपनि का पुत्र कहाँ है। समुद्र बोला-हे माधव! पंचजन नामक महान् दैत्य मत्स्य का रूप धारण कर उस बालक को निगल गया। हे भारत! जलराशि का मन्थन कर जल से निकल उस बालक को वह ग्रस लिया था; ऐसा सुनकर पुरुषोत्तम ने पंचजन के समीप जा उसे मार डाला फिर भी गुरु के बालक को अच्युत नहीं पाये। पंचजन को मार कर जनार्दन ने शंख रूप से उसे ग्रहण कर लिया, जो देवता और मनुष्यों में पाञ्चजन्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। तत्पश्चात् पुरुषोत्तम संयमनी पुरी को चले गये, तब यम उनके समीप आकर उन गदाधर भगवान् की वन्दना करने लगा। श्रीकृष्ण ने यम से कहा कि गुरु पुत्र को लादो, यम के इनकार करने पर श्रीकृष्ण और यमराज का वहाँ महान् घोर युद्ध हुआ। तत्पश्चात् भयानक यम को जीत कर अच्युत ने गुरु पुत्र प्राप्त किया।।११-२०।।

यम द्वारा दीर्घ काल से नष्ट किये गये गुरु पुत्र को ले लिया, वह गुरु सान्दीपनि का पुत्र अमित तेजस्वी श्रीकृष्ण के प्रभाव से दीर्घकाल का मरा हुआ पुनः शरीर धारण कर लिया, न करने योग्य, जो कभी सोची नहीं जा सकती इस प्रकार की अद्भुत् घटना को देखकर सभी प्राणी विस्मित हो गये, पाञ्चजन्य शंख तथा गुरु पुत्र को एवं बहुमूल्य रत्नों को लेकर जगत् के प्रभु माधव पुनः आ गये। यमराज के दासों ने बहुत से बहुमूल्य रत्नों को दिया था,

उन सभी रत्नों को लाकर इन्द्र के लघुभ्राता श्रीकृष्ण ने गुरु के लिये समर्पित कर दिया ग़दा और परिघ के युद्ध में तथा सभी प्रकार के अस्त्रों को चलाने में शीघ्र ही सम्पूर्ण लोकों में धनुषधारियों के बीच राम-कृष्ण मुख्यता को प्राप्त हो गये। प्रसन्न हो उदारबुद्धि श्रीकृष्ण ने रत्नों सहित उसी अवस्था और रूप वाला पुत्र गुरु सान्दीपनि को दिया कि जैसा उनका पुत्र पहले नष्ट हुआ था। हे राजन! चिरकाल से विनष्ट हुए पुत्र को पाकर राम-केशव का पूजन करते हुए गुरु सान्दीपनि प्रसन्न हो गये। सुन्दर ब्रह्मचर्य धारण करने वाले वसुदेव के दोनों वीर पुत्र अस्त्र विद्या को पूर्णतया प्राप्त कर गुरु को प्रणाम कर मथुरा में चले आये। राजा उग्रसेन मन्त्री और पुरोहितों के साथ आबाल वृद्ध यादवों तथा मथुरावासी सभी लोगों को पङ्क्ति वद्ध कर श्रीकृष्ण की आगवानी के लिये गये।।२१-३०।।

और जनार्दन की स्तुति करने लगे, भेरी और नगारे आदि बाजे बज रहे थे गलियाँ पताका और मालाओं से सजाई गई थीं वे जो चारों ओर से सुशोभित हो रही थीं। सभी अन्तःपुर प्रसन्न हो शोभित होने लगा, गोविन्द के आगमन पर इन्द्र यज्ञ के समान उत्सव मनाया गया। गायक प्रसन्न हो राजमार्गों पर गाने लगे और यादवों की प्रिय कारिणी प्रसिद्ध गाथा गाई गयी। यादवों के बालक कहने लगे कि लोक विख्यात गोविन्द और बलराम दोनों भाई आ गये हैं अब बन्धु बान्धवों के साथ निर्भय हो खेलो। हे राजन्! मथुरापुरी में जनार्दन के आने पर वहाँ कोई दीन मलिन और दुःखी नहीं रह गया। पक्षी मंगलकारी बोलियाँ बोलने लगे, गौवें, घोड़े तथा हाथी प्रसन्न हो गये और नर-नारियों के समूह मन से सुखी हो गये। कल्याणकारी वायु बहने लगा दिशायें रज से रहित हो गयीं और सभी मन्दिरों में देवता प्रसन्न हो गये। जो-जो लक्षण पहले सत्ययुग के थे वे सभी श्रीकृष्ण के आने पर मथुरा में दिखाई पड़ने लगे। ऐसे कल्याणदायक समय पुण्य समय में अरिमर्दन गोविन्द घोड़ों से जुते रथ में बैठ मथुरापुरी में प्रवेश किये। इन्द्र के छोटे भाई अरिन्दम श्रीकृष्ण के मथुरापुरी में प्रवेश करते समय उनके पीछे वैसे ही यादव चल रहे थे कि जैसे इन्द्र के पीछे देवता चलते हैं।।३१-४०।।

यदुनन्दन प्रसन्न मुख वाले बलराम-श्रीकृष्ण वसुदेव के भवन में वैसे ही चले गये कि जैसे चन्द्रमा और सूर्य अस्ताचल को चले जाते हैं। परम तेजस्वी इन्द्र के समान रूप वाले अपने आयुधों को अपने घर रख कर इच्छानुसार विचरने लगे। रैवतक पर्वत के समीप फल और पुष्पों वाले विचित्र उद्यानों में निर्मल जल वाली कमल और कारण्डवादि पक्षियों से युक्त नदियों में प्रसन्न होते हुए यादवों से घिरे दोनों वसुदेव पुत्र विचरण करने लगे। वे दोनों शुभ मुख वाले श्रीकृष्ण-बलराम एक तरह के निर्माण करने वाले राजा उग्रसेन के अनुगामी होकर कुछ समय तक मथुरा में प्रसन्नता से रहे।।४१-४५।।



अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

वैशम्पायनजी बोले-बलराम के साथ श्रीकृष्ण जी यादवों से भरी मथुरापुरी में सुख से रहने लगे। श्रीकृष्ण उस समय युववास्था को प्राप्त राज-लक्ष्मी से युक्त हो रत्नों की खानों से विभूषित मथुरा में प्रेमपूर्वक विचर रहे थे। इस प्रकार कुछ ही समय के बाद मगध नरेश जरासन्ध अपनी कन्याओं से कंस का मारा जाना सुन कर शीघ्र ही वह प्रतापी रथ, हाथी, घोड़ा, पैदल, अन्नों की दुकानों एवं तम्बू-रावटियों तथा सेना के साथ कंस के वध का स्मरण कर क्रुद्ध हो यदुवंशियों को मारने के लिये मथुरा पर चढ़ाई कर दिया, हे राजन्। अस्ति एवं प्राप्ति नाम की दो कन्यायें जरासन्ध की थीं। वे मोटे नितम्ब और स्तनों वाली थीं, उन्हें जरासन्ध ने कंस को दी थीं, वे कंस की दोनों कल्याणी पत्नियाँ थीं। कंस अपने पिता उग्रसेन को बाँध कर उन दोनों पत्नियों के साथ आनन्द पूर्वक रमण करता था और जरासन्ध का आश्रय लेकर यादवों का अनादर करता था, शूरसेन राजा कंस जैसा था वैसा कई बार हे राजन्! तुमने सुना होगा। वसुदेव अपनी जाति के कार्यसिद्धि के लिये उग्रसेन के हित में तत्पर रहा करते थे और कंस इसको अच्छा नहीं समझता

था। कंस के मारे जाने पर राम-कृष्ण का आश्रय लेकर भोज, वृष्णि तथा अन्धक वंशियों से घिरे उग्रसेन राजा बने। जरासन्ध वीरपत्नी अपनी प्रिय पुत्रियों से उपाय सुनकर लड़ने का सभी उद्योग कर क्रोध से अग्नि की भाँति जलता हुआ मथुरा पर चढ़ धाया; जरासन्ध के प्रताप से राजा लोग झुके रहते थे।।१-१०।।

जरासन्ध के मित्र राजे और जाति के लोग तथा सुहृद् प्रसन्नता से अपनी-अपनी सभी सेनाओं के साथ उसके पीछे चले। महान् धनुषधारी और महाबली जो जरासन्ध था उसका प्रिय करने वाले जैसे कारूष, दन्तवक्र, बलवान् शिशुपाल। कलिङ्ग नरेश, बलियों में श्रेष्ठ पौण्ड्र, सांकृति, केशिक, राजा भीष्मक और भीष्मक का पुत्र धनुषधारियों में मुख्य रुक्मी जो श्रीकृष्ण और अर्जुन से महासंग्राम में स्पर्धा करने वाला था, जरासन्ध के पीछे चले। वेणुदार, श्रुतपर्वा, क्रथ, अंशुमान्, अंग देशाधिपति, वंग देशाधिपति। कोशल देशाधिपति, काशि-राज, दशार्ण देशाधिपति, महापराक्रमी सुखेश्वर, मिथिलाधिपति, भद्रदेशाधिपति, बलवान् त्रिगर्त देशाधिपति, महापराक्रमी शाल्वदेशाधिपति, महान् बली दरद। यवन देशाधिपति, बलवान् भगदत्त, सौवीर देश के राजा शैव्य, बलियों में श्रेष्ठ पाण्ड्य। गान्धार देशाधिपति सुबल, महाबली नग्नजित्, काश्मीर नरेश, दरद देशाधिपति गोनर्द तथा महाबलवान् दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र तथा इसके आलावे और भी जो जनार्दन से द्वेष करने वाले बलवान् महारथी राजे थे वे जरासन्ध के पीछे चले और सूरशेन देश में पहुँच सेना को आगे कर मथुरा को घेर कर पड़ाव डाल दिये।।११-२२।।



अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।।३५।।

वैशम्पायनजी बोले-कि जिस समय ये राजे मथुरा के उपवन में ठहरे उस समय सभी वृष्णि वंशी श्रीकृष्ण को आगे कर इनको देखन लगे। वायु

के वेग के समान चलने वाले रथों में आगे लगी हुई ध्वजाओं से यह ज्ञात हुआ कि यह जरासन्ध आ गया। विजय की इच्छा वाले इन राजाओं के ऊँचे-ऊँचे श्वेत छत्र चन्द्रमा की भाँति शोभित हो रहे हैं। अहो राजाओं के रथ के ऊपर लगे छत्रों की पङ्क्तियाँ आकाश में हंसों की श्वेत पङ्क्तियों की तरह हमें ज्ञात हो रही हैं। निश्चय ही राजा जरासन्ध समय पर आया है, हम दोनों के युद्ध के बलाबल के निर्णय में यह पहला मेरा युद्ध अतिथि है। महीपति जरासन्ध के आ जाने पर हम लोगों को युद्धारम्भ करना चाहिए हे आर्य! प्रजा के हित के लिये हम दोनों को डट जाना चाहिए, पहले इसके बल को देखना चाहिए कि ये गतायु हैं या चिरायु।। ऐसा कह कर संग्राम की लालसा वाले स्वस्थ श्रीकृष्णजी जरासन्ध के बल को ज्ञात करने के लिये उसकी सेना को देखे। यदुओं में श्रेष्ठ मंत्रवित् श्रीकृष्ण जी उन राजाओं को देखते हुए मन में कहने लगे कि ये राजे मृत्यु के मार्ग पर स्थित हो गये हैं, शास्त्र के उल्लेखों के अनुमार अपने कुकर्मों के फल स्वरूप विनाश को प्राप्त होंगे। इन नृप श्रेष्ठों को मृत्यु से स्पर्शित मैं मान रहा हूँ, इनकी शरीर स्वर्गगामियों के समान चमक रही है। इन्हीं प्रधान-प्रधान राजाओं की सेना के समूह से पीड़ित यह पृथ्वी भार से थक कर दिविस्थ ब्रह्मा के स्थान पर गई थी। इस समय यह पृथ्वी ससैन्य राष्ट्रों से भरी है, अब थोड़े ही समय बाद इनसे पृथ्वी तल शून्य हो जायगा। सैकड़ों राजाओं के समूहों का वध होगा, वैशम्पायन जी कहते हैं कि इसके बाद सब राजाओं में प्रधान राजा जरासन्ध क्रुद्ध हो गया। महातेजस्वी जरासन्ध के पीछे दूर तक फैले हजारों राजे घोड़ों तथा सुन्दर रथों पर सजग होकर बैठे हुए चल रहे थे। कहीं-कहीं पर संग्राम करने वाले योद्धाओं से युक्त रथ अलग-अलग चल रहे थे और सुवर्ण की जंजीरों में बँधे विशाल घन्टों से युक्त बादलों के समान हाथी चल रहे थे। उन पर उत्तम महावत तथा चुने हुए रण-कुशल योद्धा सज कर बैठे थे, हाथी उछलते तथा गर्जते हुए चल रहे थे। मेघ के समान श्याम कर्ण घोड़े पंक्तिबद्ध हो कूदते हुए चल रहे थे, बलियों में श्रेष्ठ पदाती ढाल-तलवार उठाये चल रहे थे। इस प्रकार चारों प्रकार की सेना मेघों के समान कम्पायमान होती तथा सर्पों के समान ऊपर को उठती चल

रही थीं। इस प्रकार रण के व्रत को धारण करने वाला बलवान् जरासन्ध मेघ के समान शब्द करने वाले रथों, मदयुक्त हाथियों, हिनहिनाते हुए घोड़ों तथा उछलते-कूदते पैदल सेनानियों के साथ सम्पूर्ण दिशाओं और उस मथुरापुरी के वनों को शब्दयमान करता हुआ चलता था।।११-२१।।

राजा जरासन्ध की सेना सागर के समान दिखाई पड़ती थी, उसकी सेना राजाओं के प्रसन्न योद्धाओं से भरी थी। सेना के उछलने, कूदने, शब्द करने तथा वायु के समान रथों के चलने, वेग से घोड़ों के चलने, पदातियों के पक्षी की तरह आकाश में कूदने से मेघ की सेना की भाँति शब्द हो रहा था। जैसे उष्ण काल के बाद सागर में मेघ का समूह दिखाई पड़ता है वैसे ही मत्त हाथियों से मिली वह सेना दिखाई पड़ती थी। जरासन्ध को आगे कर सेना सहित राजे मथुरा पुरी को घेर कर पड़ाव डाल दिये। पड़ाव डाले हुए शिविरों की शोभा वैसे ही थी कि, जैसे शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा के चन्द्रमा से समुद्र की होती है। रात्रि के गत होकर सबेरा होने पर युद्ध की लालसा वाले राजे उठकर मथुरा पर आक्रमण करने के लिये इकट्ठे होने लगे। युद्ध रूपी कौतूहल वाले राजे यमुना तट पर एकत्र हो बैठकर मंत्रणा करने लगे। उन राजाओं का भयंकर शब्द युग के अन्त में प्रलय काल के समुद्र की भाँति सुनाई पड़ता था। राजाज्ञा से उनके पहरा देने वाले सिपाही हाथ में वेत का डण्डा लिये चारों ओर घूम कर कह रहे थे कि शब्द न करो।।२१-३०।।

सेना के शब्द रहित हो जाने पर उसका रूप जाल में लीन हुए मीन तथा मगरों वाले निश्शब्द समुद्र की भाँति शान्त ज्ञात हो रहा था। योग की भाँति चुप बैठी समुद्र के समान सेना में बृहस्पति की भाँति जरासन्ध ऊँचे शब्दों में भाषण देने लगा। राजाओं की सेनायें शीघ्र सावधान हो जायें और इस पुरी को चारों ओर से सैनिकों द्वारा घेर लें। पत्थर के यन्त्र क्षेपणी तथा मुद्गरों को ले लो और इस भूमि को बराबर कर जल छिड़क दो, प्रास, तोमर तथा धनुषों को ऊपर उठाओ। रम्भा और खन्ती आदि यन्त्रों को लेकर बहुत शीघ्र इस पुरी को खोद डालो और राजा लोग युद्ध मार्ग को समझ उनके समीप खड़े रहें।

आज से लेकर पुरी को तब तक घेरे रहें जब तक कि मैं रण में वसुदेव के पुत्र गोप बलराम और कृष्ण को सैकड़ों बाणों से न मार डालूँ और जब तक आकाश बाणों के चलने से रहित न हो जाय। मेरी आज्ञा से राजा लोग पुरी से मिलने वाले प्रत्येक मार्गों को शीघ्र घेर लें नगरी के पश्चिम द्वार को मद्राधिपति, कलिङ्गाधिपति, बाह्लीक सहित चेकितान, कश्मीर नरेश, गोनर्द, करुषाधिपति, द्रुम किंपुरुष, पर्वतीय तथा अनामय शीघ्र घेर लें।।३१-४०।।

राजा पौरव, वेणुदारि, वैदर्भ, सोमक, रुक्मी, भोजाधिपति, राजा मालव सहित सूर्याक्ष, अवन्ति देश के विन्द और अनुविन्द, बलवान् दन्तवक्र, छागलि, पुरमित्र, राजा विराट, कौरव्य, मालव, शतधन्वा, विदूरथ, भूरिश्रवा, त्रिगर्त, बाण तथा पञ्चनद ये कठिन युद्ध करन वाले तथा वज्र के समान गौरव वाले राजे पुरी के उत्तर द्वार को घेर कर शत्रुओं का मर्दन करें। उलूक, केतव, वीर अंशुमान के पुत्र एकलव्य, बृहत्क्षत्र, श्रत्रधर्मा जयद्रथ, उत्तमौजा, शल्य, कौरव, कैकय, वैदिश, वामदेव, सांकृति तथा सिनीपत्ति इनके अधीन मेरी सेना के व्यूह पूर्व द्वार को विदीर्ण करते और दौड़ते हुए पवन के झोंके से मेघों की भाँति आगे बढ़ें। मैं, दरद एवं बलवान् चेदिराज सज कर पुरी के दक्षिण द्वार का युद्ध रीति से पालन करूँगा। इस प्रकार यह पुरी शीघ्र ही सेनाओं द्वारा घेर ली जायेगी और विषभ वज्रपात से नगरी महान् भय को प्राप्त होगी। गदा धारण करने वाले गदा लेकर, परिघ वाले परिघ लेकर तथा अन्य लोग अन्यान्य शस्त्रों को धारण कर इस पुरी को खोद कर गिरा दें।।४१-५०।।

आप सभी राजे मिलकर आज ही विषम संकटों से घिरी इस नगरी के सम्पूर्ण भूमि को सम कर दें। इस प्रकार सभी राजाओं के साथ चतुरङ्गिणी सेना को तैनात कर क्रोध से यदुवंशियों पर आक्रमण किया था। तत्पश्चात् प्रहार करने वाले दाशार्हों ने भी अपनी सेना का गुट बनाकर उनका सामना करने के लिये जा डटे, तब दोनों ओर के वीरों का देवासुर संग्राम की भाँति भयंकर संग्राम हुआ; यह युद्ध अल्प वीरों का बहुत वीरों से हुआ, हाथी हाथी

से तथा रथ रथ से भिड़ गये। जब मथुरापुरी से वसुदेव के दोनों पुत्र कृष्ण-बलराम निकले तो इन्हें देखकर राजाओं की सेना क्षुभित हो गई और मारे भय के वाहन सहित किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई। समुंद्र को क्षुभित करने वाले दो मगरों की भाँति रथ पर सजकर बैठे कृष्ण-बलराम सेना में घुमने लगे। संग्राम में युद्ध करते हुए उन दोनों वीरों को प्राचीन आयुधों को धारण करने का लक्षण दिखाई पड़ा। फिर तो जीभों को लपलपाते चमकने वाले दिव्य महा दृढ़ आयुध आकाश से संग्राम में उनके समीप गिरने लगे। उन आयुधों के पीछे मांस खाने वाले पक्षी उड़े आ रहे थे तथा वे बड़ी मूर्ति धारण करने वाले रक्त के प्यासे राजाओं का मांस खाने को आ रहे थे। वे दिव्य मालाओं को धारण किये आकाश चारियों को त्रसित करते और अपनी प्रभा से प्रकाश करते हुए आकाश से गिर रहे थे। सम्वर्तक नाम वाला हल, सौनन्द नाम वाला मुसल और धनुष-श्रेष्ठ शार्ङ्ग नाम का धनुष तथा कौमोदकी नाम की गदा, ये चारों विष्णु के तेज से उत्पन्न यदुवंशोत्पन्न बलराम और श्रीकृष्ण के लिये महान् संग्राम में आकाश से उतरे थे।।५१-६१।।

पहले बलराम ने दिव्य मालाओं से व्याप्त सरकते हुए सर्पेन्द्र की भाँति लम्बे हल को बायें हाथ से ग्रहण किया। तत्पश्चात् श्रीमान् बलराम ने शत्रुओं को आनन्द रहित करने वाले सौनन्द नामक मुसल को दाहिने हाथ से ग्रहण किया। फिर लोक दर्शनीय मेघ के समान शार्ङ्ग धनुष को श्रीकृष्ण ने ग्रहण किया। देवताओं के अर्थ को सिद्ध करने वाले कमलनेत्र श्रीकृष्ण के दूसरे हाथ में कौमोदकी नामक गदा थी। सांक्षात् विष्णु के समान शरीर वाले बलराम-श्रीकृष्ण आयुधों को धारण कर शत्रुओं के साथ युद्ध करने लगे। आयुध को ग्रहण करने वाले बड़े भाई बलराम तथा छोटे भाई श्रीकृष्ण एक दूसरे का आश्रय लेकर वीर-लक्षण से युक्त शत्रुओं का प्रतिकार करते हुए ईश्वर के समान पराक्रम वाले वसुदेव पुत्र रणाङ्गण में विचरने लगे। सर्प्रेन्द्र के सदृश हल को उठाकर कुपित बलराम समर के बीच शत्रुओं को नष्ट करने के लिये यमराज की भाँति घूम रहे थे। महात्मा क्षत्रियों के रथ समूहों एवं हाथियों को अपने हल से खींच कर घोड़ों और हाथियों के ऊपर मुसल द्वारा

प्रहार कर अपना क्रोध सफल करने लगे।।६१-७०।।

समर में हल द्वारा खींचे गये तथा मुसल द्वारा मारे गये हाथी पक्ष कटे पर्वत की भाँति गिरने लगें। बलराम के द्वारा आहत श्रेष्ठ क्षत्रिय भयभीत हो समर से भाग कर जरासन्ध के पास चले गये। लड़ाई के मैदान में स्थित जरासन्ध उन क्षत्रियों से कहने लगा कि, समर में तुम्हारे जैसे कायरों के क्षत्रिय धर्म को धिक्कार है। समर में चढ़कर भागने वाले अथवा रथ टूट जाने पर भागने वाले क्षत्रियों को भ्रूण हत्या के समान असह्य पातक लगता है ऐसा पण्डितों का कहना है। भयभीत होकर क्यों भागते हो ऐसे क्षत्रवृत्ति को धिक्कार है, हमारी बात को मान कर सभी लोग अभी लौट जाओ। अथवा रथ के साथ यहाँ प्रेक्षक बन कर स्थित रहो, जबतक मैं बलराम-कृष्ण को यमपुर न भेज दूँ। तत्पश्चात् जरासन्ध के कहने से भागे हुए क्षत्रिय प्रसन्न होकर युद्ध करने के लिये फिर डट गये और बाण जालों की वर्षा करने लगे। वे स्वर्ण से विभूषित मेघ के समान शब्द करने वाले, घोड़ों से जुते रथों पर बैठे तथा मेघों के समान गर्जने वाले महावतों से प्रेरित हाथियों पर बैठे। कवच धारण किये खड्ग लिये पताका और ध्वजा के साथ अपने आयुधों को लिये अपने धनुषों पर बाण रखे हुए तूणीरों और परिघों को लिये। छत्र लगाये चँवर डुलवाते रण में लौट हुए राजे रथों पर बैठे सुशोभित हो रहे थे।।७१-८०।।

युद्ध श्रेष्ठ, युद्ध से प्रेम रखने वाले वे रथी गदा, गुर्वी, क्षेपण तथा मुद्गर आदि अस्त्र-शस्त्रों से लड़ने लगे। इसी बीच में गरुड़ की ध्वजा वाले उत्तम रथ पर बैठ कर देवताओं के आनन्द को बढ़ाने वाले श्रीकृष्ण आ गये। और जरासन्ध के सम्मुख जा उसे आठ तीक्ष्ण बाणों से तथा उसके सारथी को पाँच बाणों से मारा। प्रयत्न करने वाले जरासन्ध के घोड़ों को बली श्रीकृष्ण ने वध कर धनुष की डोरी काट दिया, तब जरासन्ध को कष्ट में पड़ा जानकर महारथी चित्रसेन और सेनापति कैशिक कृष्ण को बाणों से वेधने लगे, लड़ते हुए बलराम को भी तीन बाणों से कैशिक ने मारा। बलदेव ने कैशिक के धनुष की डोरी को भाले से दो टुकड़े कर दिये और बड़े वेग से गर्ज कर बाण वर्षा से शत्रुओं को पीड़ित करने लगे। इस प्रकार स्वर्णाभूषणों से विभूषित

बाहुओं से बाणों द्वारा चारों तरफ वीरों को मारने लगे तब क्रोधित चित्रसेन बलदेव को नव बाणों से, कौशिक पाँच बाणों से जरासन्ध सात बाणों से मारा, तत्पश्चात् जनार्दन ने तीन-तीन बाणों से उनको मारा। फिर बलदेवजी पाँच-पाँच बाणों से उन्हें मार चित्रसेन के रथ को तोड़ दिये और उसके धनुष की प्रत्यंचा को भल्ल बाण से दो टुकड़े कर दिये, तब धनुष के छिन्न होने पर रथहीन वह क्रोधित हो गदा लेकर मुसलायुध बलराम को मारने के लिये दौड़ा, इसी समय चित्रसेन के वध के लिये बाण चलाते हुए बलदेवजी के धनुष को महाबली जरासन्ध ने काट दिया।।८१-९०।।

और क्रोध से मगधेश्वर ने गदा द्वारा बलराम के घोड़ों को मार डाला, इस प्रकार महाबली जरासन्ध ने बलदेवजी को नीचा दिखाया। फिर तो बलराम मुसल सँभाल कर जरासन्ध पर टूट पड़े और परस्पर वध की इच्छा से दोनों का संग्राम होने लगा। राम से जरासन्ध को लड़ता देख चित्रसेन दूसरे रथ पर चढ़कर आया और जरासन्ध को वारण करने लगा। तत्पश्चात् दोनों सेनाओं तथा हाथियों के समूहों से परस्पर युद्ध होने लगा। तत्पश्चात् महाबली जरसन्ध बड़ी भारी सेना लेकर राम-कृष्ण सहित भोजवंशी वीरों को घेर लिया। तब दोनों सेनाओं में प्रक्षुभित समुद्र की भाँति महान् घोर शब्द होने लगे। दोनों सेनाओं में हजारों वेणु, भेरी, मृदङ्ग और शंख बजने लगे। हे राजन्! उनके बजने से महान् शब्द हो रहा था। क्रुद्ध होकर वीरों के उछलने, ताल ठोंकने और गर्जने का शब्द चारों ओर होने लगा, घोड़ों की खुरों और रथों के पहियों से धूल ऊपर को उड़ चली। लड़ाई के मैदान में महान्-महान् शस्त्रों को उठाये, धनुष-बाण धारण किये योद्धा एक दूसरे को देखकर गर्ज रहे थे।।९१-१००।।

हजारों रथी और घोड़सवार एवं पैदल चलते वीर तथा अत्यन्त बली हाथी चारों ओर एक दूसरे से जा भिड़े। वह युद्ध बड़ा भयंकर था, प्राणों की आशा छोड़कर वृष्णि वंशियों के साथ जरासन्ध के योद्धाओं का दारुण संग्राम हुआ। शिनि, अनाधृष्ट, बभ्रु, विपृथु और आहुक बलदेवजी को आगे कर शत्रु

की आधी सेना को घेर लिये। हे भारत! जो वह शिशुपाल और जरासन्ध के द्वारा रक्षित सेना का दाहिना भाग था। ये यदुवंशी वीर जीवन की आशा छोड़ बाणों की वर्षा करते हुए उत्तर प्रदेशीय महाबलवान् शल्य और शाल्व आदि राजाओं से युद्ध करने लगे। अवगाह, पृथु, कङ्क, शतद्युम्न और विदूरथ आदि हृषीकेश को आगे कर शेष आधी सेना को घेर लिये। हे राजेन्द्र! यह वाम भाग की सेना राजा भीष्मक, महाबली रुक्मी, देवक तथा मद्र देशाधिपति, पूर्व प्रदेशीय और दक्षिण प्रदेशीय अति शक्तिशाली बलवान् वीरों से रक्षित थी, वज्र के समान शब्द करने वाले शक्ति, ऋष्टि, प्रास तथा बाण समूहों से उन वीरों का युद्ध होने लगा। सात्यकि, चित्रक, श्याम, बलवान् युयुधान, राजाधिदेव, मृदुर, महारथी श्वफलक, सत्राजित् और प्रसेन बड़ी भारी सेना साथ लेकर शत्रुओं की व्यूहाकार सेना के आधे पक्ष को जा घेरा। मृदुर तथा राजाधिदेव से अभिरक्षित सेना बेणुदारि आदि अनेक राजाओं से युद्ध करने लगी।।१०१-१११।।



अथ षष्ठत्रिंशोऽध्यायः।।३६।।

वैशम्पायनजी बोले कि, मगधराज जरासन्ध के सहायक राजाओं के साथ वृष्णियों का महान् युद्ध हुआ। रुक्मों के साथ वासुदेव, भीष्मक के साथ आहुक, क्रथ का वसुदेव के साथ, कौशिक का बभ्रु के साथ। गद के साथ चेदिराज का, दन्तवक्र के साथ शङ्कु का तथा अन्य वृष्णि वंशीय वीरों के साथ अन्य राजाओं का। इस प्रकार सेनाओं का सैनिकों के साथ सत्ताइस दिन तक दारुण युद्ध होता रहा। हे नृप! हाथी हाथियों से, घोड़े घोड़ों से, पैदल सेना पैदल सेना से, रथ रथ से मिला कर योद्धा युद्ध करने लगे। जरासन्ध का बलराम के साथ समागम हो गया। इन दोनों में इन्द्र और वृत्रासुर के समान लोमहर्षण दारुण युद्ध होने लगा। रुक्मिणी का ध्यान कर श्रीकृष्ण रुक्मी को मारते नहीं थे, प्रत्युत अग्नि एवं सूर्य की किरणों तथा सर्प विष के समान

रुक्मी के विषैले बाणों का अपनी युद्ध विद्या से केवल निवारण करते रहे; इस प्रकार लड़ने से सेनायें नष्ट होने लगीं। हे राजन्! दोनों सेनाओं में शिर रहित बहुत से धड़ गिरने लगे, मांस और रक्त से पृथ्वी पर कीचड़ हो गया। उस युद्ध में मरे हुए वीरों की संख्या-गणना कठिन थी, रथ पर चढ़े बलराम सर्प विष तुल्य बाणों से जरासन्ध को वेध रहे थे।।१-१०।।

जरासन्ध भी शीघ्रगामी रथ पर चढ़ा बाण वर्षा कर बलराम को आच्छादित करता हुआ युद्ध करने लगा। दोनों वीर आपस में एक दूसरे से विद्ध होते हुए गर्जने लगे, शस्त्रों के क्षीण होने पर रथ के टूट जाने पर और घोड़ों तथा सारथी के मारे जाने पर दोनों पराक्रमी वीर गदा को ग्रहण कर पृथ्वी को कँपाते हुए एक दूसरे पर टूट पड़े। दोनों वीर शिखरयुक्त पर्वत के समान दिखाई पड़ रहे थे, इनके गदा-युद्ध के समय सब बन्द हो गया और सभी वीर इन दोनों महाबाहुओं का गदा-युद्ध देखने लगे, वे दोनों ही गदा-युद्ध में विख्यात क्रोधित हो दौड़-दौड़ कर गदायुद्ध में प्रवृत्त थे। वे दोनों ही महाबली लोक में गदायुद्ध के परम आचार्य माने जाते थे, दोनों मतवाले दो हाथियों की भाँति लड़ रहे थे। इनका युद्ध देखने को गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियों के साथ देवता चले आये तथा चारों ओर से हजारों अप्सरायें आ गईं। हे राजन्! देवता, यक्ष, गन्धर्व और महर्षियों से अलंकृत वह युद्ध-स्थल, नक्षत्रों से शोधित आकाश की भाँति अत्यन्त सुशोभित होने लगा। उस समय जरासन्ध बायें पैंतरे से तथा बलराम दाहिने पैंतरे से एक दूसरे पर चढ़ दौड़े। दो मतवाले गजराज की भाँति अपनी गर्जना से दशों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए वे गदायुद्ध में कुशल वीर एक दूसरे पर प्रहार करते हुए लड़ने लगे। रण में बलराम की गदा का शब्द वज्र के समान और जरासन्ध की गदा का शब्द फटते हुए पर्वत के समान सुनाई पड़ता था।।११-२०।।

जरासन्ध के हाथ से मारी गई गदा से गदाधारियों में श्रेष्ठ बलराम वैसे ही विचलित नहीं हुए कि, जैसे वायु वेग से विन्ध्य पर्वत विचलित नहीं होता है। राम की गदा के वेग को जरासन्ध बल, धैर्य और गदा की शिक्षा

द्वारा सह रहा था और उनके प्रहारों को विचलित कर रहा था। शत्रु का दमन करने वाले वे दोनों महाबली संग्राम में विचित्र पैंतरा दिखाते हुए विचर रहे थे। अधिक समय तक युद्ध करने से दोनों थक कर बैठ जाते थे और क्षण भर में विश्राम कर फिर एक दूसरे को आहत करने लगते थे। इसी प्रकार योद्धाओं में प्रमुख दोनों योद्धा चिर काल तक युद्ध करते रहे एक दूसरे से पीछे नहीं हटते थे महाबली बलराम ने जरासन्ध को गदायुद्ध में परास्त होते न देखकर क्रोध से गदा को छोड़ मुसल ग्रहण कर लिया। बलदेव को महासंग्राम में क्रोध से भयंकर अमोघ मुसल ग्रहण कर जरासन्ध पर झपटते देखकर अन्तरिक्ष से लोक की साक्षी रूप सुस्वर आकाशवाणी हल-मुशल ग्रहण कर युद्ध के लियें उद्यत बलराम से बोली। हे बलराम! यह जरासन्ध तुम्हारे द्वारा वध के योग्य नहीं है, अतः खेद न करो, इसकी मृत्यु मुझे ज्ञात है, इसलिये तुम युद्ध से विराम ग्रहण करो, बहुत थोड़े समय में जरासन्ध अपने प्राणों को छोड़ेगा। जरासन्ध आकाशवाणी को सुनकर खिन्न मन हो गया, बलराम फिर उसके ऊपर प्रहार नहीं किये।।२१-३०।।

दोनों ने आपस का युद्ध बन्द कर दिया तब वृष्णियों और राजाओं ने भी युद्ध से विराम ले लिया, हे राजन्! इस प्रकार उन लोगों का सुदारुण युद्ध हुआ था। हे महाराज! दीर्घ काल तक लड़ने के पश्चात् जरासन्ध के पराजित होकर चले जाने के बाद। सूर्यास्त होने पर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर केशव से रक्षित यदुवंशियों की सेनायें भी मथुरा में प्रवेश कीं, आकाश से जो आयुध गिरे थे वे भी अन्तर्धान हो गये। जरासन्ध भी उदासीन हो अपनी पुरी को चला गया और जो राजे उसके साथ आये थे वे भी अपनी-अपनी राजधानी को चले गये। हे कुरु सिंह! वृष्णियों ने जरासन्ध को जीत कर भी उसको जीता हुआ नहीं समझा, क्योंकि वह बड़ा बलवान् राजा था। यादवों का जरासन्ध के साथ अट्ठारह बार युद्ध हुआ फिर भी महाबली यादव उसे मारने में समर्थ न हो सके। हे महामते! जरासन्ध के साथ जो सेनायें युद्ध के लिये आई थीं वे बीस-बीस अक्षौहिणी प्रत्येक बार थीं। हे भरतकुल श्रेष्ठ राजेन्द्र! जरासन्ध

वृष्णियों की संख्या कम होने से ये, पराजित हो जायेंगे ऐसा समझ कर राजाओं के साथ कृष्ण से पालित यादवों पर उद्योग कर बार-बार चढ़ता था पर वृष्णि वंशी सिंह महारथी उसे जीत कर सुख से विहार करते थे।।३१-४०।।



अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः।।३७।।

वैशम्पायनजी बोले कि, वह श्रीकृष्ण रोहिणी पुत्र बलराम के साथ यादवों से व्याप्त मथुरा में सुख से रहते थे। वे विभु राज-लक्ष्मी से युक्त युवावस्था को प्राप्त प्रसन्नतापूर्वक वनों और मणि आदि की खानों से विभूषित मथुरा में विचरते थे। इस प्रकार कुछ काल बीतने पर राजगृह के प्रतापी राजा जरासन्ध ने कंस की मृत्यु का स्मरण किया और पुत्रियों के कहने से फिर युद्ध की तैयारी किया। यादवों के साथ जरासन्ध का सत्रह बार संग्राम हुआ पर महारथी यादवों ने न तो उसे पीठ दी न उसे मार डालने में ही समर्थ हो सके। तत्पश्चात् जरासन्ध चतुरङ्गिणी सेना के साथ अट्ठारहवीं बार संग्राम करने के लिये फिर चढ़ा। इन्द्र के सामन पराक्रमी बली जरासन्ध हार की लज्जा से फिर महान् युद्ध-साधन के साथ कृष्ण के वध की इच्छा से चढ़ाई किया। जरासन्ध की इस चढ़ाई को सुनकर यादव भयभीत हो मन्त्रणा करने लगे। नीति के पण्डित विकद्रु उग्रसेन को सुनाते हुए श्रीकृष्ण से बोले कि। हे गोविन्द! आप इस कुल की उत्पत्ति को सुनिये, इस समय सुनने का समय आया है; यदि मेरी बात उचित होगी तो मानियेगा और वैसा ही करियेगा।।१-१०।।

इस यादव वंश का उद्भव महाज्ञानी व्यासजी ने हमसे पहले कहा था। मनु के वंश में श्रीमान् इक्ष्वाकु के पुत्र इन्द्र के सामन पराक्रमी राजा हर्यश्व हुए थे। इन्द्र को शची की भाँति प्यारी मधु दैत्य की पुत्री मधुमती नाम की उसकी प्यारी स्त्री थी। वह मधुमती पृथ्वी में उस समय यौवन के गुण से युक्त अद्वितीय

रूप वाली राजा के मनोरथ को पूर्ण करने वाली प्राणों से भी प्रिय थी। इच्छानुसार रूप धारण करने वाली वह सुश्रोणी दैत्य कुल में उत्पन्न हुई थी और एक पत्नी व्रत को धारण करने वाली रोहिणी के समान आकाश में विचरण करती थी। वह कामिनी इक्ष्वाकुसिंह हर्यश्व का पतित्वेन वरण की थीं, हे माधव! कुछ समय के बाद वे नरश्रेष्ठ हर्यश्व अपने बड़े भाई के द्वारा राज्य से निकाल दिये गये, तब भाई में विश्वास करने वाला वह अयोध्या को छोड़ अल्प परिवार को ले अपनी प्रिया के साथ वन में जनकर रमण करने लगा और समय का ज्ञाता कमलनेत्र हर्यश्व ने मधुमती से सब बातें कहीं, तब कमलेक्षणा मधुमती ने भ्राता द्वारा राज्य से निकाले गये पति से बोली। हे नरश्रेष्ठ! राज्य की इच्छा को छोड़ दीजिये आप आइये पिता मधु के घर हम लोग चलें। इच्छानुसार पुष्प-फल देने वाला मधु-बन नामक मेरे पिता का बन है, उसी में स्वर्ग के समान सुख से हम दोनों रमण करेंगे।।११-२०।।

हे राजन्! हमारे पिता-माता को तुम प्रिय लगते हो, मेरा प्रिय करने के लिये मेरे भ्राता लवण के भी तुम प्रिय पात्र होओगे। हम लोग वहाँ राज्यस्थ राजा और पटरानी की भाँति रमण करेंगे, हे नरश्रेष्ठ! हम लोग वहाँ जाकर वैसे ही सुखी होंगे कि जैसे देवता नन्दन बन में जाकर सुखी होते हैं। आपका कल्याण हो, स्वर्ग के समान हम दोनों विहार करेंगे। आपका भाई राज्य के मद के मत्त हो गया है, हम लोगों से नित्य द्वेष करता है इसलिये ऐसे अभिमानी को हम लोग छोड़ देवें। दास की भाँति दूसरे के आश्रित रहकर जीवन व्यतीत करने को धिक्कार है, इसलिये हे वीर! हम लोग पिता के पास चलें। श्वसुर पक्ष बलवान् होते हुए भी अपने बड़े भाई के वध की इच्छा न करने वाले उस कामासक्त राजा की पत्नी के वचन अच्छे लगे। कामियों में श्रेष्ठ वह राजा हर्यश्व अपनी कामिनी भार्या के साथ मधुपुर को चला गया। दानवेन्द्र मधु ने कहा कि, हे वत्स! हर्यश्व तुम्हारा स्वागत है, तुम्हारे आने से मैं प्रसन्न हुआ, तुम साम नीति का आश्रय ग्रहण करो। हे राजेन्द्र! मधु वन को छोड़कर मैं अपना सम्पूर्ण राज्य तुम्हें देता हूँ, तुम यहाँ रहकर राज्य करना स्वीकार करो। मधुवन में रहने वाला लवण तुम्हारी सेना का कर्णधार बनेगा। अनुपम समुद्र से

विभूषित, समृद्ध गौवों वाले, लक्ष्मी से युक्त तथा प्रायः आभीर जाति के मनुष्यों वाले इस शुभ राष्ट्र का तुम पालन करो।।२१-३०।।

हे तात! बड़े भारी गिरिपुर दुर्ग में तुम्हारे बसने से आगे चलकर यह राजाओं का आवास रूप देश महान् राष्ट्र बन जायेगा। समुद्रान्त निष्कण्टक यह अनुपम देश आनर्त नाम से तुम्हारा लम्बा-चौड़ा महान् राष्ट्र प्रसिद्ध होगा। हे पार्थिव! मैं इसके भविष्य को इसी प्रकार मान रहा हूँ, समय आने पर ऐसा ही होगा; तुम उत्तम राजाओं के धर्म का पालन करो। तुम्हारा ययाति वंश यादव वंश में विलीन हो जायेगा और तुम्हारे बाद का वंश सोम वंश यादव वंश में विलीन हो जायेगा और तुम्हारे बाद का वंश सोम वंश कहलाने लगेगा, यह निश्चित है। यह जो मेरा उत्तम देश रूप विभव है, इसे तुम्हें देकर तप करने के लिये लवण-ससुद्र को मैं जाता हूँ। हे तात! अपने वंश की वृद्धि के लिये लवण से सहायता लेकर इस सम्पूर्ण उत्तम देशका पालन करो। बहुत अच्छा कह कर हर्यश्व श्वसुर के राज्य को ग्रहण कर लिया, मधु दैत्य भी तप के लिये वरुणालय को चला गया। महातेजस्वी हर्यश्व दिव्य उत्तम गिरिपुर में रहने के लिये स्वर्ग की भाँति पुर को बसाया। उस राष्ट्र का नाम आनर्त हुआ और अल्प काल के भीतर ही हजारों गौवों से युक्त समृद्धि को प्राप्त हो वह सुन्दर राष्ट्र बन गया। वह अनुपम देश जलाशयों के घाटों और बनों से विभूषित हो गया।।३१-४०।।

अनेकानेक धान्यों की फसलों से खेत भर गये और चाहारदिवारियों एवं ग्रामों से वह देश व्याप्त हो गया। प्रजाओं के आनन्द तथा राष्ट्र को बढ़ाने वाला राजा हर्यश्व, यशस्वी राजधर्म के द्वारा लम्बे-चौड़े उस राष्ट्र का शासन करने लगा। महात्मा हर्यश्व के राज्य करने से राष्ट्र के गुणों से युक्त हो वह आनर्त नामक राष्ट्र अवाध गति से उन्नति करने लगा। रजा हर्यश्व राज्य पर स्थित हो राज-धर्म से सुशोभित होने लगा और नीति के व्यवहार से उसने कुलोचित लक्ष्मी को प्राप्त किया। पुत्र की कामना वाले बुद्धिमान् उसी सदाचारी राजा का महायशस्वी यदु नामक पुत्र मधुमती से उत्पन्न हुआ था।

वही राजलक्षणों से युक्त शत्रुओं के वश में न आने वाला तथा नगारे के समान शब्द करने वाला वृद्धि को प्राप्त होने लगा। जैसे इनके पूर्वज राजा पुरु महायशस्वी हुए थे उसी प्रकार का यह यदु नामक पुत्र राजलक्षणों से युक्त हुआ। महात्मा हर्यश्व को परम सुन्दर बलवान् पृथ्वी का पालन करने वाला यदु नाम का एक ही पुत्र था। पृथ्वी पर परम धार्मिक राजा हर्यश्व दस हजार वर्ष अक्षय राज्य कर स्वर्ग को चला गया। पिता के स्वर्ग चले जाने पर जिस समय प्रजा ने अदीनात्मा यदु का राज्य पर अभिषेक किया उस समय वह श्रीमान् उदय हुए सूर्य के समान क्रमशः बढ़ने लगा। चोर-डाकुओं के भय से हीन पृथ्वी का शासन किया था, राजा यदु इन्द्र के समान पराक्रमी हुए थे कि जिनसे हमलोग उत्पन्न होकर यादव कहलाते हैं।।४१-५०।।

एक बार वह गुण से उदार अपनी स्त्रियों के साथ समुद्र में ताराओं सहित चन्द्रमा की भाँति जल-क्रीड़ा कर रहा था। तैरने की इच्छा वाला वह राजा सहसा समुद्र के जल में कूद पड़ा, तब बलवान् राजा को सर्पराज धूम्रवर्ण बड़े वेग से खींच कर विशाल सर्पपुर को ले गया कि जिसमें घरों के दरवाजे मणिमय स्तम्भों तथा मोतियों की झालरों से विभूषित थे। वह पुर शुभ्र शंखों की ढेर से व्याप्त था तथा रत्न की राशियों से विभूषित था और मूँगा के समान लाल-लाल अंकुर एवं पत्तों वाले वृक्षों से सुशोभित हो रहा था। समुद्र के भीतर बसने वाले श्रेष्ठ पन्नगों के समूहों से व्याप्त था सुनहले स्वस्तिक चिह्नों से वह पुर चन्द्रमा की किरणों की भाँति चमक रहा था। पृथ्वी तल पर निर्मित नगर की भाँति सागर कि विमल जल में राजा ने उस पन्नगेन्द्रपुर को देखा। सर्पिणियों से भरे मेघ के समान आकार वाले उस विशालपुर में राजा यदु ने प्रवेश किया। पन्नगों के उत्तम आसन पर बैठे उन राजा यदु से सर्पों के स्वामी धूम्रवर्ण ने शान्त भाव से कहा। तेज से प्रकाश करने वाले आप जैसे वसुधाधिप को उत्पन्न कर इस वंश को महान् बना आपके पिता स्वर्ग को चले गये।।५१-६०।।

हे श्रेष्ठ यदु! आपके पिता ने संसार के कल्याण के लिये राजाओं की खान इस वंश की स्थापना की है, अब यह आगे चल कर ''यादवों का वंश''

तुम्हारे नाम से कहलायेगा। हे विभो! तुम्हारे इस यदुवंश में देवता, ऋषि तथा उरगों के अंश से मनुष्य योनि में अक्षय कीर्ति वाले पुत्र उत्पन्न होंगे। हे नृपसत्तम! यौवनाश्व की भगिनी से उत्पन्न कुमारी सदाचारिणी पाँच मेरी कन्यायें हैं। तुम सन्तान उत्पन्न करने के लिये इन्हें वैदिक धर्म की रीति से विवाह कर अपनी पत्नी बना लो, यह मेरा विचार है। वर देने के योग्य समझ कर तुमको मैं वर दे रहा हूँ कि। तुमसे भौम, कुकुर, भोज, अन्धक, यादव, दाशार्ह एवं वृष्णि ये सात वंश चलेंगे। वह धूम्रवर्ण कन्याव्रत में स्थित कन्याओं को हाथ हाथ में जल ले संकल्प कर इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली राजा यदु को प्रदान कर दिया। और पन्नगराज धूम्रवर्ण प्रसन्न होकर अपनी कन्याओं को सुनाता हुआ दीनता रहित हो यदु को वर दिया कि हे मानद! मेरी इन पाँचों कन्याओं से माता-पिता के तेज का आश्रय कर पाँच पुत्र उत्पन्न होंगे। मेरे वरदान के प्रभाव से तुम्हारे वंश के राजे इच्छानुसार रूप धारण करने वाले तथा जल के भीतर विचरण करने वाले होंगे। श्रेष्ठ यदु कन्या तथा वर को प्राप्त कर जल से चन्द्रमा की भाँति बड़े वेग से निकल आये। राजा यदु पाँचों कन्याओं के बीच में अत्यन्त चमकने वाले पाँच नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हो रहे थे। पश्चात् यदु अग्नि के समान तेजस्विनि पत्नियों को आश्वासन दे अर्थात् पिता के गृह-वियोग का दुःख दूर कर परम प्रीति से युक्त हो अपने पुर को चले गये। नृपश्रेष्ठ यदु ने दिव्य चन्दन लगाये और दिव्य मालाओं को धारण किये दूल्हा के वेष में अपने अन्तःपुर को देखा।।६१-७३।।



अथ अष्टात्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

वैशम्पायन जी बोले-दीर्घ काल के बाद उन पाँचों नाग कन्याओं से राजा यदु ने कुल को बढ़ाने वाले पराक्रमी पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया। जिनके नाम महाबाहु मुचुकुन्द, पद्मवर्ण, माधव, सारस, तथा राजा हरित थे। पंच

महाभूतों के समान पाँचों पुत्रों को देख अतुल पराक्रमी राजा यदु परम प्रसन्न हुए। वे युवावस्था को प्राप्त हो पाँच पर्वतों के समान दिखाई देते थे, वे बल और दर्प के उत्साह से पिता के आगे कहने लगे। हे तात! हम लोग युवावस्था से युक्त हो महाबलवान् हो गये हैं, आपकी आज्ञा से किस कार्य को करें शीघ्र हम लोग जानना चाहते हैं। नृपति शार्दूल यदु ने सिंह के समान साहस वाले पुत्रों से परम प्रसन्न हो बल के कुतूहल से कहा। मेरा पुत्र मुचुकुन्द विन्ध्य उत्तर और ऋक्ष पर्वत के दक्षिण भाग में पर्वत का आश्रय ले यत्न से दो पुरियों को बसावे। पद्मवर्ण नामक मेरा पुत्र दक्षिण दिशा का आश्रय ले सह्य पर्वत के ऊपर पुरी को बसावे विलम्ब न करे। सह्य पर्वत के पश्चिम चम्पक के वृक्षों से विभूषित प्रिय देश में मेरा पुत्र सारस रमणीक नगर को बसावे। महाबाहु यह हरित, हरे सागर के बीच पन्नगराज धूम्रवर्ण के द्वीप का पालन करेगा।।१-१०।।

धर्मज्ञ माधव नामक मेरा ज्येष्ठ पुत्र युवराज होकर मेरे पुर का पालन करेगा। पिता के अनुशासन से उन चारों पुत्रों का राज्याभिषेक हुआ, सभी ने राजश्री को प्राप्त कर समान आचार वाले लोकपालों के समान राजा हो गये। वे सभी नृपश्रेष्ठ अपने-अपने वासस्थानों को चले गये और वहाँ पहुँच कर पुर को बसाने का यथाक्रम जैसा चाहिये वैसा प्रयत्न कर रमणीक स्थानों का निर्माण कराने लगे। राजर्षि मुचुकुन्द को विन्ध्य पर्वत के मध्य का भाग अच्छा लगा उसने नर्मदा के तट पर जो कि कठिन पत्थरों से संकीर्ण था वहाँ अपना स्थान बनवाने का विचार कर। उसका संशोधन करा कर साफ करा बराबर करवाया, नदी पर पुल बनवाया और पुरी के चारों ओर अथाह जल वाली खाइयाँ खुदवाईं। सब भागों में मन्दिर बनवा देवताओं की स्थापना की, गली-कूँचे और मनुष्यों के मार्ग तथा चौक बनवाये, बगीचे लगवाये। नृपश्रेष्ठ मुचुकुन्द ने उस पुरी को अल्प काल में ही इन्द्रपुरी की भाँति सम्पत्तिशालिनी बना दिया। श्रेष्ठ देवताओं के समान पराक्रम वाले नृपश्रेष्ठ ने अपने तेज से निर्मित उस पुरी का शुभ नाम रखा। महान्-महान् पत्थरों के समूहों से ऋक्षवान् पर्वत के समीप बसी है, अतः यह माहिष्मिती पुरी के नाम से

विख्यात होगी। दो तरफ से विन्ध्य पर्वत खड़ा है, उसके मध्य भाग की तलहटी में परम शोभा से युक्त माहिष्मती पुरी को बसाया।।११-२०।।

दूसरी पुरिका नाम की पुरी को; जो देवपुरी के समान शोभा सम्पन्न थी, जिसमें बड़ी-बड़ी बाजारें चौक एवं सैकड़ों बाग-बगीचे आदि थे; ऋक्षवान् पर्वत के समीप बाजारें चौक एवं सैकड़ों बाग-बगीचे आदि थे; ऋक्षवान् पर्वत के समीप निरापद स्थान में बसाई। राज-धर्म में तत्पर धर्मात्मा राजा मुचुकुन्द, देवताओं के द्वारा भोगने योग्य दोनों शुभ पुरियों का पालन करने लगा। राजार्षि पद्मवर्ण ने भी सह्य पर्वत के पृष्ठ भाग पर जो वेणा नदी का वृक्षों और लताओं से व्याप्त तट था वहाँ उत्तम पुर को बसाया। राजा पद्मवर्ण ने अपने देश को छोटा समझ कर सम्पूर्ण राष्ट्र के चारों ओर चाहारदीवारी खिंचवा कर उसे नगर का रूप देकर बसाया। उन्होंने शिल्प कर्म के द्वारा निर्मित पुर का नाम करवीरपुर तथा जनपद का नाम पद्मावत रखा। राजर्षि सारस ने भी ताम्रमयी मृत्तिका से क्रौञ्चपुर नामक रम्य तथा बड़ा नगर बसाया, जिसमें चम्पक तथा अशोक आदि के बहुत से वृक्ष लगवाये। क्रौञ्चपुर का जनपद लम्बा-चौड़ा, सब ऋतुओं में फूलने-फलने वाले वृक्षों से आवृत्त, शोभा सम्पन्न एवं महान् था। राजा हरित भी समुद्र के बीच द्वीप का पालन करने लगे जो सुन्दर नारियों से बड़ा मनोहर तथा रत्नों के संचय से पूर्ण था। उस राजा के मल्लाह जो मद्गुर नाम से प्रसिद्ध समुद्र के भीतर विचरण करने वाले थे वे सदा समुद्र से शंखों को निकाला करते थे।।२१-३०।।

उसके दूसरे दास (धीवर) लोग सीपों से उत्पन्न होने वाले चाँदी के समान चमकने वाले मोतियों को सदा इकट्ठा किया करते थे। उसके अन्य निषाद जल में उत्पन्न होने वाले रत्नों को सामुद्री बड़ी नावों के साथ चलने वाली छोटी नौकाओं पर चढ़ कर समुद्र से निकाला करते थे। इस प्रकार रत्नद्वीप के निवासी सब प्रकार के रत्नों को ग्रहण करते हुए मत्स्य के मांस से अपना जीवन सदा निर्वाह करते थे। दूर तक गमन करने वाले वणिक छोटी नौकाओं पर द्रव्य ले कुबेर के समान हरित को प्रसन्न करते थे। इस प्रकार

इक्ष्वाकु वंश से यह यदुवंश निकला है, यदु-पुत्रों से चार वंश चले फिर इन चारों से अनेक यदु वंश की शाखायें हुईं। राजा यदु यदुवंश में श्रेष्ठ माधव को राज्य दे इस पृथ्वी पर शरीर छोड़ कर स्वर्ग को चले गये। माधव का पुत्र बलवान् सत्त्वत हुआ जो कि सत्त्व गुणों से युक्त एवं राजनीतिज्ञ राजा हुआ। सत्त्वत के पुत्र महाराज भीमसेन हुए जिनके वंशज भैम हुए जो सत्त्वत से वंश चलने के कारण सात्त्वत कहे गये। राजा रामचन्द्र के शासन काल में भीम भी राज्यासीन थे, उसी समय शत्रुघ्न ने लवण को मार कर मधु-वन को कटवाया था। उसी मधु-वन के स्थान पर सुमित्रानन्दन शत्रुघ्न ने इस मथुरापुरी को बसाया था।।३१-४०।।

रामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के परमधाम चले जाने पर इस वैष्णव स्थान मथुरापुरी को पुनः भीम ने ले लिया। राज्य सम्बन्ध के कारण इस पुरी को भीम ने ले लिया और स्वयं राजधानी बनाकर रहने लगा; क्योंकि यह स्थान इसी वंश का था। तत्पश्चात् अयोध्या के राज्य सिंहासन पर कुश के आरूढ़ होने तथा लव के युवराज होने पर भीम के पुत्र अन्धक ने मथुरा में राज्य किया। अन्धक के पुत्र राजा रैवत हुए और रैवत के पुत्र ऋक्ष हुए कि जिनका जन्म रम्य पर्वत के शिखर पर हुआ था। इसके पश्चात् ऋक्ष के पुत्र द्वितीय रैवत हुए, समुद्र के समीप पर्वत का नाम इन्हीं रैवत के नाम पर रैवतक पृथ्वी में प्रसिद्ध हुआ। इन रैवत के पुत्र महायशस्वी विश्वगर्भ हुए जो कि राजा हुए और इस पृथ्वी पर बहुत विख्यात थे। हे केशव! उनकी दिव्य रूप वाली तीन भार्याओं से चार पुत्र उत्पन्न हुए जो लोकपालों के समान थे। जिनके नाम वसु, बभ्रु, सुषेण तथा सभाक्ष थे, ये यदुवंश में बलवान् तथा प्रख्यात वीर लोकपालों की भाँति थे। उन राजाओं से यह यदुवंश अनेक शाखाओं में परिणित हुआ, हे कृष्ण! जिनके साथ प्रजा वाले अनेक राजा रहते थे। वसु का दूसरा नाम शूर था, इनके वसुदेव नामक तेजस्वी पुत्र तथा कुन्ती और सुप्रभा नामक सुन्दर दो कन्यायें हुईं।।४१-५०।।

कुन्ती राजा पाण्डु की पटरानी थी, जो इस पृथ्वी पर देवता के समान

विचरण करने वाली थी, सुप्रभा चेदिराज दमघोष की भार्या हुई। हे श्रीकृष्ण! यह मैंने अपने वंश की उत्पत्ति कही, जिसे मैं श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास से सुना था। हे वंश के पोषण करने वालों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण! इस वंश के पतन होने पर आप ब्रह्मा की भाँति हम लोगों के कल्याण तथा विजय के लिये इस वंश में प्रदुर्भूत हुए हैं। हम लोग आपको नागरिक बनाकर गुप्त नहीं रख सकते, क्योंकि आप सभी के ऊपर अपना प्रभाव डाल देने वाले और सर्वज्ञ हैं। हे विभो! आप जरासन्ध से युद्ध करने में समर्थ हैं और हम लोग आपकी आज्ञानुसार कार्य करने वाले युद्ध-व्रत में स्थित हैं। जरासन्ध इस समय बलवान् है और सभी राजाओं के ऊपर उसका पद है अर्थात् राजाओं का भी राजा है, अतः उसका सैन्य बल उपमा रहित है और हम लोग अल्प सेना वाले हैं। यह मथुरापुरी एक दिन के भी आक्रमण को नहीं सह सकती है, क्योंकि यह खाई आदि से घिरी नहीं है और इसमें खाद्यान्न तथा इन्धनों की अत्यन्त कमी है। इसके जल की खाई शुद्ध नहीं है और इसके द्वार शत्रुघाती हथियारों से रहित हैं, इसके साथ इसमें सुरङ्ग, परकोटे आदि को विस्तारपूर्वक बनाना चाहिये। इसमें ईंटों को जोड़वा कर आयुधागार बनवाना चाहिये राज-नीति से रहति कंस के बल भोगी हुई इस पुरी की लोगों ने अच्छी तरह रक्षा नहीं की है। कंस के मरने के बाद यह राज्य एक बा एक हम लोगों के हाथ लगा, इस प्रकार राज्य का नवीन उदय होने से हम लोग रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं कर पाये, इसलिये यह अगले आक्रमण को रक्षा-प्रबन्ध के बिना न सह सकेगी।।५१-६०।।

शत्रु के द्वारा सेना मर्दन करने पर यह राष्ट्र रक्षा रहित होने से भग्न हो जायेगा और शत्रु के द्वारा इसको घेर कर लूट करा लेने पर यह राष्ट्र प्रजाओं के साथ नष्ट हो जायेगा। राज्य की इच्छा वाले यादवों के विरोध से जो लोग जीत लिये गये हैं वे सभी यादवों से लड़ना चाहते हैं, इसलिये जैसा उचित हो वैसा करना चाहिये। राजा जरासन्ध से भयभीत होकर हम राजा गण यदि भाग जायँ तो राज्य से वञ्चित कर देने के योग्य हो जायेंगे। हे श्रीकृष्ण! जब यह पुरी शत्रुओं द्वारा घेर ली जायेगी तो इस पुरी के लोग दुःखी होकर यह

कहेंगे कि यादवों के विरोध के कारण हम लोग विनष्ट हो गये। हे श्रीकृष्ण! यह मेरा मत है जो कल्याण के लिये कहा, यह सब आपको पहले ही से ज्ञात है मैंने कोई आपको नवीन बात ज्ञात नहीं करायी। यहाँ पर हम लोगों के लिये जो उचित हो वह कहिये, क्योंकि आप हम लोगों के नेता हैं, हम लोग आपके शासन के भीतर स्थित हैं। इस विरोध के मूल कारण आप ही हैं, इसलिये अपने सहित हम लोगों की रक्षा कीजिये।।६१-६६।।



अथ एकोन चत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

वैशम्पायनजी बोले कि, महायशस्वी वसुदेवजी विकद्रु की बात सुनकर सन्तुष्ट चित्त हो यह वचन बोले कि राजा षड्गुण का वक्ता तथा मन्त्रार्थ के तत्त्व का ज्ञाता होता है; हे कृष्ण! तत्त्व सहित नीति की बात इन बुद्धिमान ने कही है। हे यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण! विकद्रु ने राजधर्म को कहा है जो जगत् के कल्याण के लिये है और सत्य है; इसलिये हम लोगों का जो हित हो उसे कहिये। इस प्रकार पिता वसुदेव तथा विकद्रु की बात सुन कर और विकद्रु के तथ्य वचनों पर विचार कर यदुश्रेष्ठ भगवान् पुरुषोत्तम एकाग्र चित्र हो बोले। मैंने आपके कहे गये वचनों को सुना; दैव को हेतु, क्रम, न्याय तथा शास्त्र की दृष्टिकोण से देखना चाहिये। बलवान् शत्रु के सन्निकट नीति के पण्डितों को भी न रहना चाहिये, समय के ज्ञाता को वहाँ से हट जाना चाहिये और बलवान् हो तो शत्रु से युद्ध करना चाहिये। इस समय जीवन की रक्षा के लिये मैं शक्तिशाली होता हुआ भी अशक्त की भाँति आर्य बलराम के साथ चला जाऊँगा। मैं दूसरी आत्मा की भाँति शोभायमान सह्य पर्वत से युक्त अक्षय दक्षिण के मार्ग से जाऊँगा।।१-१०।।

करवीरपुर तथा रमणीक क्रौञ्चपुर को देखूँगा और इसके साथ गोमन्त पर्वत को भी देखूँगा जो कि पर्वतों में उत्तम है। हम दोनों के गमन को सुन कर विजय से प्रसन्न राजा जरासन्ध पुरी में न प्रवेश कर घमण्ड से मेरे पीछे-पीछे

आवेगा। इस प्रकार वह जरासन्ध सह्य पर्वत के बन में मेरे पीछे-पीछे चला आयेगा और हम दोनों को पकड़ने का प्रयत्न करेगा। हम लोगों के लिये यह यात्रा कल्याणकारिणी तथा कुल, पुर के लोगों और पुरी एवं देश के लिये सुखकारिणी होगी। विजय की इच्छा वाले राजा शत्रु को न पाकर जब परिभ्रष्ट हो जाते हैं अर्थात् हाथ में आया शत्रु जब निकल भागता है तो वे दूसरे-दूसरे राष्ट्रों में ढूँढ़ कर उसका वध किये बिना शान्त नहीं होते। इस प्रकार कह कर वे कुशल श्रीकृष्ण-बलराम दोनों शीघ्रता से दक्षिणापथ को चले गये। इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वे दोनों वीर सैकड़ों राष्ट्रों में विचरण करते सुख से दक्षिण दिशा में स्थित हो मार्ग चलने लगे। अल्प काल में ही वे सह्य पर्वत के रमणीक पृष्ठ पर पहुँच गये और वहाँ वे दोनों वीर प्रसन्नता को प्राप्त हुए फिर दक्षिण मार्ग को पकड़ कर चलने लगे। वे दोनों स्वल्प काल में ही सह्याचल से तथा अपने वंश से विभूषित करवीरपुर पहुँच गये। वे वहाँ पहुँच कर वेणा नदी के तट पर स्थित लताओं से आच्छादित तरु श्रेष्ठ वट वृक्ष के नीचे चले गये।।११-२०।।

उस वट वृक्ष के नीचे तपोधन से युक्त एक तेजस्वी ऋषि को देखा जो अपने कन्धे पर फरसा रखे वल्कल वस्त्र धारण किये जटाधारी थे। वे ऋषि अग्नि की शिखा की भाँति गौर वर्ण और सूर्य के समान तेज वाले थे, वे क्षत्रियों का अन्त करने वाले क्षोभ रहित समुद्र की भाँति शरीर वाले ज्ञात होते थे। अग्न्याधान व्रत का उद्यापन कर देने से उनका अग्न्याधान संकुचित हो गया था वे केवल पर्व काल में हवन किया करते थे, त्रिषवण के जल से अभिषिक्त होने के कारण श्रेष्ठ बृहस्पति के समान ज्ञात हाते थे। बछड़ा सहित एक सफेद गौ थी जो इच्छानुसार दुग्ध देने वाली थी, वह हवन के लिये दूही जाती थी; उसकी छिम्मी को खींचते हुए वे उस महेन्द्र पर्वत को देख रहे थे। इस प्रकार मन्दराचल पर बैठे थकावट रहित अविनाशी भृगुवंशी परशुराम को सूर्य पे समान चमकते हुए देखा। उन्हें देखकर न्यायतः अग्नि के समान तेजस्वी वसुदेव पुत्र वीर श्रीकृष्ण-बलराम ने उनके चरणों में नमस्कार किया। बोलने वालों में श्रेष्ठ लोक व्यवहार के पण्डित श्रीकृष्ण उन ऋषिराज से मधुर

तथा सरल वाणी में बोले। हे भगवन्! आप जमदग्नि के पुत्र मुनियों में श्रेष्ठ क्षत्रियों के कुल का अन्त करने वाले भृगुवंशी राम हैं मैं आपको जानता हूँ। आपने बाणों के वेग से सागर को हटा दिया और दो हाथ के धनुष से पाट कर वहाँ शूर्परिक नाम का नगर बसा दिया। पाँच सौ धनुष लम्बा और पाँच सौ इषु चौड़ा सह्य पर्वत के निकुञ्ज में लम्बा-चौड़ा महान् जनपद बसाया।।२१-३०।।

समुद्र के तट का अतिक्रमण कर समुद्र के पश्चिमी तट पर बसाया। आपने पिता के वध का स्मरण कर सहस्त्र बाहु के बाहुओं के बन का एक ही फरसे से काट डाला, आपके शत्रु क्षत्रियों के वध से आज भी यह पृथ्वी रुधिर से गीली दिखाई देती है। आपके तेज फरसे की धार द्वारा निकले रुधिर से यह वसुन्धरा कीचड़ से युक्त हो गई थी, हे रेणुका पुत्र! मैं जानता हूँ कि आप इस पृथ्वी पर पृथ्वीपालों के ऊपर क्रोधित रहते हैं। जिस प्रकार आप फरसे को ग्रहण करने में समर्थ हैं उसी प्रकार रण में भी उसे चलाने में समर्थ हैं, हे विप्र! आपसे हम दोनों कुछ प्रयोजन की बातें सुनने की इच्छा कर रहे हैं। आप वेद के अर्थ को जानने वाले हैं, अतः मुझे आशा है कि, आप मेरे प्रश्नों का उत्तर उचित और निःशंक भाव से देंगे, हम दोनों की मथुरा नगरी है जो यमुना के तट पर शोभा पा रही है। हे मुनि श्रेष्ठ! हम दोनों यदुवंशी हैं, यदुकुल में श्रेष्ठ व्रतधारी वसुदेव हम दोनों के पिता हैं, हो सकता है कि आपने सुना हो। कंस के भय से शंकित चित माता-पिता ने हम दोनों को जन्म काल से ही व्रज में रख दिया था, वहीं हम लेग बड़े हुए। लड़कपन की अवस्था को व्रज में समाप्त कर मथुरा में प्रवेश किये और वहीं हम दोनों सभा में बल द्वारा उद्दण्ड कंस को मार कर उसके पिता उग्रसेन को वहाँ का राजा बना दिया, हम दोनों गौ चराने वाले फिर गौ चराना आरम्भ कर दिया। जब हमारे पुर को जरासन्ध घेरने की व्यवस्था करने लगा तब हम लोगों ने अनेकों बार उससे संग्राम कर स्वयं विजय पायी।।३१-४०।।

हे व्रतधारिन्! इसके पश्चात् हम दोनों बल का साधन रहने पर भी पुर

और प्रजा की रक्षा के लिये उद्योग रहित हो असमर्थ हो गये। हम दोनों आयुध, कवच तथा रथ को छोड़ जरासन्ध के संग्राम के भय से पैदल ही पुर से निकल आये हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! हम लेग इस प्रकार आपके समीप आये हैं, आप हम दोनों को परामर्श देकर सत्कारित करें। श्रीकृष्ण-बलराम के इस प्रकार अनिन्दित वचनों को सुन रेणुका-पुत्र भृगुवंशी परशुरामजी धर्मयुक्त वचन बोले। हे प्रभो श्रीकृष्ण! पाश्चिमी समुद्र तट से मैं एक भी शिष्य को साथ न लाकर अकेला आप लोगों को मन्त्र देने के कारण ही यहाँ आया हूँ। हे कमललोचन! आपका व्रज में वास करना तथा अनेक दानवों का वध करना एवं दुरात्मा को मारना मुझे विदित है। हे वरानन पुरुषोत्तम! बलराम सहित आपका जरासन्ध से विग्रह ज्ञात कर मैं यहाँ आया हूँ। हे श्रीकृष्ण! आप अविनाशी प्रभु जगत् की रक्षा करने वाले देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये बालक न होते हुए भी बालक भाव को प्राप्त हुए हैं, यह मैं जानता हूँ। यद्यपि आपके लिये तीनों लोकों में कुछ जानने के लिये शेष नहीं है तथापि मैं भक्ति मात्र का आश्रय कर आपको परामर्श देता हूँ। हे गोविन्द! आपके पूर्वजों ने इस करवीरपुर नामक राष्ट्र को पूर्व काल में बसाया था।।४१-५०।।

हे श्रीकृष्ण! इस पुर का राजा परम क्रोधी वसुदेव पुत्र शृगाल नाम से विख्यात् था। हे गोविन्द! वह वीरों से द्वेष करने वाला राजा आपके वंश में होने वाले अपने ही गोत्र के राजाओं को मार डाला। वह अभिमानी, अजितेन्द्रिय, बड़ा द्वेषी और सदा राज्य के ऐश्वर्य-मद में भरा रहता था और अपने पुत्रों के साथ भी कड़ा व्यवहार करता था। हे नरोत्तम! ऐसे दुरात्मा राजा से दूषित इस करवीरपुर में आपका वासस्थान होना मुझे नहीं रुचता है। शत्रुओं को परास्त करने वाले आप दोनों जहाँ रह कर बलोन्मत्त जरासन्ध के साथ युद्ध करेंगे उस स्थान को मैं बतलाता हूँ, सुनिये। आप दोनों आज ही इस पुण्यमयी वेणा नदी को अपनी बाहुओं से तैर कर पार हो इस देश की सीमा पर स्थित दुर्गम गिरि पर रात्रि व्यतीत कीजिये। उस रम्य पर्वत का नाम यज्ञ गिरि है, वह सह्य पर्वत की शाखा है, उस पर मांस भक्षण करने वाले, चौर कर्म करने वाले तथा ऐसे ही घोर कर्म करने वाले मनुष्य निवास करते हैं। वह

अनेक प्रकार के द्रुमों और लताओं से आच्छादित है एवं फूले हुए वृक्षों से युक्त हैं वहाँ एक रात्रि निवास कर पश्चात् खट्वाङ्गा नामक नदी को पार कीजियेगा, आपका कल्याण हो, वह नदी निकष एवं प्रस्तरों के आभूषण धारण करने वाली महान् पर्वत से निकली है, उसका प्रपात गंगाजी के समान है। तपस्वियों और वनों से विभूषित उसके प्रपात को आप दोनों देखेंगे, तत्पश्चात् उन पर्वतों पर जाकर अपने कामों को भोग कर।।५१-६०।।

वहाँ के तपोधन वानप्रस्थाश्रमियों को देखेंगे, पश्चात् आप लोग पुरश्रेष्ठ क्रौञ्चपुर नामक नगर में जायेंगे। हे श्रीकृष्ण! वहाँ वन में वास करने वाले मनुष्यों का अधिपति महाकपि नामक राजा राज्य करता है, वह आपका ही वंशज है। दिन गत हो सायंकाल हो जाने के कारण उस राजा को आप न देख कर अनडुह नामक तीर्थ में वास करेंगे। वहाँ से चलकर आप सह्य पर्वत की गुफा में होते हुए विख्यात गोमन्त नामक पर्वत पर पहुँच जायेंगे, जो कि, अनेक शिखरों से विभूषित है। उसका एक शिखर इतना ऊँचा है कि, वह पक्षियों से भी दुरारोह है, वह शिखर देवताओं का विश्राम स्थान है और ज्योतियों से प्रकाशित रहता है। गगन गिरि की भाँति ऊँचा स्वर्ग की सीढ़ी की तरह ज्ञात होता है, वहाँ पर देवताओं के विमान उतरते हैं वह दूसरे मेरु पर्वत की भाँति प्रतीत होता है। उस उत्तम महाशिखर पर आप महातेजस्वी दोनों देवता रूप धारण करने वाले उदय और अस्त के समय सूर्य, चन्द्रमा को और अपार द्वीपों के भूषण धारण करने वाले लहराते समुद्र को देखते हुए सुखपूर्वक विचरण करेंगे। उस गोमन्त पर्वत के शिखर पर रह कर वन में विचरण करते हुए कठिन युद्ध के द्वारा दौड़ते हुए जरासन्ध पर विजय प्राप्त करेंगे। युद्धदुर्मद आप दोनों को पर्वत पर देख कर निश्चित है कि, जरासन्ध पर्वत युद्ध में आसक्त हो जायेगा।।६१-७०।।

तब वहाँ कठिन युद्ध छिड़ जाने पर आप दोनों को तत्काल आयुध प्राप्त हो जायेंगे; ऐसा मैं ज्ञान दृष्टि से देखता हूं। हे श्रीकृष्ण! दैव ने वहाँ पर यादवों और राजाओं के महान् संग्राम का निर्देश किया है, जिसमें मांस और शोणित से पृथ्वी पर कीचड़ हो जायेगा। वहाँ पर संग्राम में सुदर्शन चक्र, हल और

कौमोदकी नामक गदा तथा सौनन्द नामक मुसल ये वैष्णव आयुध प्रकट हो जायेंगे और अपने काल के समान शरीर से काल के वशीभूत राजाओं का रुधिर पान करेंगे। हे श्रीकृष्ण! दैव ने काल के आदेशानुसार चक्र-मुसल नामक विख्यात संग्राम की योजना बनाई है। हे सुरभावन श्रीकृष्ण! उस संग्राम में आपके स्पष्ट वैष्णव रूप को आपके सब शत्रु तथा देवता देखेंगे। हे श्रीकृष्ण! आप वहाँ जाकर अब देवताओं के विजय के लिये अपने स्वरूप से गदा को धारण कीजिये और चिर काल से विस्मृत सुदर्शन चक्र को धारण कीजिये। और लोक को अपनी वीरता से प्रभावित करने वाले यह बलराम भी भयंकर हल तथा शत्रुओं को भेदन करने वाले मुसल को ग्रहण करें। हे श्रीकृष्ण! देवताओं ने पृथ्वी का भार उतारने के लिये आपका राजाओं के साथ यह पहला संग्राम कहा है। आपकों यहीं पर आयुध की प्राप्ति होगी और आप वैष्णव शरीर धारण करेंगे तथा लक्ष्मी का तेज प्राप्त करेंगे और आप शत्रुओं की सेना का विदारण करेंगे। हे श्रीकृष्ण! इस संग्राम के बाद इस पृथ्वी पर शस्त्रों के द्वारा प्रसिद्ध महाभारत नामक महान् संग्राम होगा। हे श्रीकृष्ण! अब आप पर्वतों में उत्तम शैलेन्द्र गोमन्त पर्वत पर जाइये वहाँ जरासन्ध के साथ युद्ध होने पर आपकी विजय उपस्थित है। इस गौ का अमृत के समान दूध पीकर आप मेरे बताये मार्ग से चले जाइये आप लोगों का कल्याण हो।।७१-८३।।



अथ चत्वारिंशोऽध्याय:।।४०।।

वैशम्पायनजी बोले-तत्पश्चात् बल के दर्प से युक्त श्रेष्ठ यादव श्रीकृष्ण-बलराम होम धेनु का दूध पीकर परशुरामजी के साथ प्रस्थान कर दिये। और परशुरामजी के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से गोमन्त पर्वत देखने के लिये मत्त गजराज की भाँति वक्ताओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण-बलराम चलने लगे। श्रीकृष्ण-बलराम तथा परशुरामजी ये तीनों मार्ग में तीनों अग्नियों की भाँति

शोभा पा रहे थे, वह मार्ग इनसे वैसे ही सुशोभित हो रहा था, जैसे देवताओं से स्वर्ग सुशोभित होता है। वे मनुष्यों की भाँति पैदल चलकर दिन व्यतीत करते हुए वैसे ही गोमन्त पर्वत पर पहूँच गये कि, जैसे देवता मेरु पर्वत पर पहुँचते हैं। वह पर्वत लताओं द्वारा सुन्दर ढंग से आच्छादित, नाना प्रकार के वृक्षों से विभूषित तथा उसके अनेक अंग बड़े गम्भीर-गम्भीर शिला खण्डों से बड़े मोटे तथा मनोहर मयूरों से चित्रित थे। तथा भौरों के झुण्डों से व्याप्त एवं शिलाओं के बीच जमे हुए वृक्षों से युक्त था और मेघ के सामन गम्भीर वाणी बोलने वाले मत्त मयूरों के निनाद से निनादित था। उसके शिखर उच्चतर आकाश का चुम्बन कर रहे थे, वृक्ष अपनी उँचाई से मेघों को स्पर्श करने वाले थे और उसके पत्थर मतवाले हाथियों के दाँतों के अग्र भाग की रगड़ से चिह्नित थे। वह चारों ओर पक्षियों के कूँजने से प्रतिध्वनित हो रहा था तथा झरनों के जल-प्रपात द्वारा निकले जल बूँदों से वृक्षों के ढेर समूहों से अनेक वर्ण वाले मेघ के समान प्रतीत हो रहा था, धातुओं के बहने से उसके अंगों में छिद्र हो गया था और ऊँचे शिखरों से बहते हुए झरनों से सुशोभित हो रहा था और तेजस्वी देवताओं से व्याप्त वह गोमन्त मैनाक पर्वत की भाँति इच्छानुकूल गमन करने वाला तथा सुन्दर विशाल शिखरों से बड़ा ऊँचा था, उसके मूल भाग से जल बह रहा था।।१-१०।।

वह बनों आरै कन्दराओं से प्रतिष्ठित श्वेत रंग के मेघों से विभूषित तथा कटहलों, आमलों, आम्रों, बेतों, तेनु तथा चन्दनों के वनों से विभूषित हो रहा था। वह तमाल, इलायची के वनों से युक्त एवं मिर्च के वृक्षों से व्याप्त था और पीपर की लताओं से सुन्दर, इमली के वृक्षों से सुशोभित हो रहा था। वह चारों ओर राल के वृक्षों से सुशोभित हो रहा था तथा ऊँचे-ऊँचे सेखुओं के वनों तथा और भी अनेक प्रकार के वनों से अनेक वर्ण का ज्ञात हो रहा था। सर्ज, नीबू, अर्जुन तथा वन-कंटक झाड़-झंखाड़ों से आकीर्ण तथा हिन्ताल, तमाल और पुन्नाग के वृक्षों से सुशोभित हो रहा था। जल भाग में जल कमलों और स्थल भाग में स्थल कमलों से एवं और भी अनेक प्रकार के पुष्पों के द्रुम-खण्डों से उसका प्रत्येक भाग विभूषित हो रहा था। और भी

बहुत से जम्बीरी नीबू तथा केतकी पुष्प के वृक्ष थे, वह कदुआ, भूकन्द के लता-वृक्षों से विभूषित था और चम्पा, अशोक, बकुल, बिल्व तथा तेनु के वृक्षों से शोभित हो रहा था और नागकेसर के पुष्प गुच्छों से चारो तरफ उपशोभित था तथा हाथियों के झुण्डों से व्याप्त एवं मृग आदि जंगली जीवों के झुण्डों से शेभित हो रहा था। सिद्ध, चारण तथा राक्षस, गन्धर्व, गुह्यक और पक्षी उसके पत्थरों पर बैठे रहते थे। उसकी शिलाओं पर सदा विद्याधरों का समूह निवास करता था और प्रति क्षण वह सिंह तथा व्याघ्र आदि के नादों से प्रति निनादित रहता था, उस पर जल की धारायें बह रही थीं और वह चन्द्रमा की कीरणों से शोभित हो रहा था। अप्सराओं से अलंकृत उस पर्वत की देवता तथा गन्धर्व प्रशंसा किया करते थे और उसका ऊँचा-नीचा भाग दिव्य वनस्पतियों के पुष्पों से शेभित हो रहा था।।११-२०।।

उस पर इन्द्र ने कभी भी वज्र का प्रहार नहीं किया था और वह दावाग्नि और आँधी के संकटों से रहित था। वह झरनों से निकलने वाली नदियों से उपशोभित था, उसके वन जंगल मुख के समान प्रतीत हो रहे थे इससे उसकी और भी शोभा बढ़ रही थी। जल में सेवार से, शिखरों के अग्रभाग से मानों वह शोभा के साथ आँखमिचौनी कर रहा था और वह मृगों से सेवित मनोहर भूभागों से सुशोभित हो रहा था। काले-काले पत्थरों वाले पार्श्व भागों से युक्त, मेघों से विभूषित की भाँति ज्ञात हो रहा था, वह फूले हुए वृक्षों वाली पुष्पित भूमियों से चारों ओर विभूषित था। लताओं से घिरा वह पर्वत वैसे ही शोभित हो रहा था कि, जैसे युवती स्त्रियों से घिरा पति शोभित होता है, वह बनाई गई गुफाओं से तथा अपने बनी गुफाओं से सुशोभित था। वह स्थान-स्थान पर सपत्नीक की भाँति शोभित हो रहा था, उसके शिखर औषधियों के पुष्पों से चमक रहे थे और वानप्रस्थियों से सेवित वह पर्वत श्वेत तने वाले वृक्षों के वन से चाँदि से विभूषित की भाँति प्रतीत हो रहा था। सुन्दर विशाल मूल भाग से पृथ्वी को और ऊँचे-ऊँचे शिखरों से अन्तरिक्ष भाग को मानों वह आलिङ्गन करता हुआ स्थित था। देवता की उपमा वाले श्रीकृष्ण-बलराम तथा परशुराम भूमिधरों में उत्तम ऐसे रम्य गोमन्त पर्वत पर पहुँच कर

उसे देखा तो निवास करने के लिये सबको रुचिकर ज्ञात हुआ। वे पर्वत के शिखर पर वैसे ही चढ़ गये जैसे पक्षी आकाश में चढ़ जाते हैं, गरुड़ के समान पराक्रम वाले बिना किसी सहारे के वैसे ही पर्वत के शिखर पर चढ़ गये कि जैसे पक्षी पृथ्वी से आकाश में चढ़ जाते हैं। वे देवताओं की भाँति पर्वत के उच्च शिखर पर चढ़ मन के द्वारा निर्मित की भाँति शीघ्र अपने रहने के लिये भवन बना लिये।।२१-३०।।

तब श्रीकृष्ण-बलराम को बैठा देख महा बुद्धिमान् परशुरामजी अपना सरल अभिप्राय कहना प्रारम्भ किये। हे विभो! मैं शूर्पारिक पुर को जाऊँगा, आप दोनों को संग्राम में देवताओं से भी भय नहीं हो सकता है। आपके साथ मार्ग चलने से जो प्रीति मुझे प्राप्त हुई है, उस प्रीति से हे कृष्ण! आपके द्वारा यह मेरा अव्यय शरीर अनुगृहीत कर लिया गया है। यह वही देवताओं के द्वारा निर्दिष्ट स्थान है कि, जहाँ पर आप लोगों को आयुध प्राप्त होंगे और यह समय देवताओं के कार्य में व्यतीत करने का है। हे देवताओं से स्तुत्य, देवताओं में प्रधान, बैकुण्ठ, विष्णो, श्रीकृष्ण! सम्पूर्ण लोकों के तत्त्व की बात हमसे सुनिये। मनुष्यों के हित के लिये मनुष्य शरीर धारण कर जो आपने यह लौकिक कार्य उपस्थित किया है उसका प्रथम अध्याय जरासन्ध के साथ यह उपस्थित संग्राम है, काल ने ऐसी ही योजना बना रखी है। हे श्रीकृष्ण! इस उपस्थित संग्राम में आप स्वयं आयुध, रथ, अश्व, सेना बन कर रण में कठिन रूप धारण करिये। जिस समय आप हाथ में चक्र तथा गदा धारण कर रण के लिये उद्यत होंगे उस समय आपके आठ मोटे-मोटे बाहू मूलों को देख कर इन्द्र भयभीत हो जायेंगे। हे मानद! आप के अस्त्र धारण कर उसका पृथ्वी पर प्रयोग करने पर आज से राजाओं के लिये उक्त स्वर्ग की यात्रा उपस्थित है।।३१-४०।।

हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! गोविन्द! हे महाबाहो! अब आप शीघ्र ध्वजा पर चिन्हित अपने वाहन गरुड़ का आवाहन कीजिये। युद्ध करने वाले तथा दुर्योधन के वश में रहने वाले राजे स्वर्ग की ओर अभिमुख हो युद्ध की कमाना से उपस्थित हैं। राजाओं के मृत्यु को देखने वाली यह पृथ्वी विधवा रूप से

एक केश धारण कर आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं। हे अरि विमर्दन श्रीकृष्ण! आपके मनुष्य शरीर धारण कर लेने और युद्ध उपस्थित हो जाने पर राजे अपने क्षत्रियत्व को संकुचित न कर अति प्रसन्न हैं वे क्रूर ग्रहों से आक्रान्त नक्षत्र की भाँति अपने विनाश के लिये उपस्थित हैं। इसलिये हे श्रीकृष्ण! उनसे युद्ध के लिये, दानवों का वध करने के लिये तथा राजाओं को स्वर्ग भेजने के लिये और देवताओं को सुख देने के लिये शीघ्रता कीजिये। हे श्रीकृष्ण! मैं आपके द्वारा सत्कृत हो गया, क्योंकि आप सभी के सत्कारों के वाहक हैं अर्थात् सत्कारों को धारण करने वाले विश्वात्मा हैं। हे महाबाहो! आपकी कार्य सिद्धि के लिये मैं साधना करूँगा, आप राजाओं के विषम युद्ध में मेरा स्मरण कीजियेगा। बिना क्लेश से काम करने वाले श्रीकृष्ण से इस प्रकार परशुरामजी कह कर और उन्हें विजय का आशीर्वाद देकर अपनी अभीष्ट दिशा की ओर चले गये।।४१-४८।।



अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः।।४१।।

वैशम्पायनजी बोले कि परशुरामजी के चले जाने के बाद यादव वंश को धारण करने वाले श्रीकृष्ण-बलराम इच्छा के अनुसार रूप धारण कर गोमन्त पर्वत के रम्य शिखर पर विचरने लगे। वन मालाओं से उनका वक्षस्थल ढका था वे नील और पीत वस्त्र धारण किये गौर-श्याम आकाश में स्थित मेघ की भाँति पर्वत पर शोभा पा रहे थे। पर्वत के शिखर पर स्थित युवा कृष्ण-बलराम का अङ्ग पर्वतीय धातुओं के रंग से रंग गया था वे विहार की लालसा से सुन्दर वनों में विचरने लगे। पर्वत पर नक्षत्रों में श्रेष्ठ चन्द्रमा को वहाँ देखते हुए उदय तथा अस्त के समय ग्रहों को देखने लगे। एक बार बली श्रीमान् बलराम जी बिना श्रीकृष्ण के अकेले मणि के समान चमकने वाले उस पर्वत के शिखर पर विचरते हुए, पुष्पित कदम्ब की छाया में बैठ गये, उस समय मद के गन्ध से युक्त वायु उन्हें सुख देने लगा। मदभीनी वायु

का समूह मद तथा गन्ध का स्पर्श कर उनके नासिका रध्रों में भरने लगा। तब उन्हें शीघ्र मदिरा पीने की इच्छा उत्पन्न हुई, उनका गला वैसे ही सूखने लगा कि जैसे मद पीने वाले का दूसरे दिन मद न मिलने पर गला सूखने लगता है। तब उन विभु को पूर्व में अमृत पीने की बात स्मरण हो आई और वे मदिरा का अन्वेषण करते हुए तृषित भाव से वृक्ष की ओर देखने लगे। वर्षाकाल में वृक्ष के फूलों का जल गिर कर वृक्ष के खोखलों में एकत्र होकर सुन्दर मदिरा बन गया था।।१-१०।।

उसी मदिरा की तृष्णा से व्याकुलात्मा बलराम दुःखी की भाँति बार-बार पीने लगे, फिर तो वे बलराम जी मद के नशे से झूमने लगे। उन प्रमत्त बलराम जी का मुख और नेत्र भी झूमने लगा, इस प्रकार झूमते हुए वे शरद् कालीन चन्द्रमा की शोभा पाने लगे। कदम्ब के कोटरों में उत्पन्न हुई मदिरा का नाम कादम्बरी है, वह साक्षात् मूर्तिमान् वारुणी देवताओं के अमृत की अरणी की भाँति थी। श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम को मदिरा के आवेश में जानकर प्रिय बोलने वाली देवताओं की तीन स्त्रियाँ उनके समीप आईं। स्त्री का रूप धारण कर मदिरा तथा चन्द्रमा की स्त्री कान्ती और देवियों में श्रेष्ठ कमल की ध्वजा धारण करने वाली श्री आईं। वारुणी देवी हाथ जोड़ कर वारुणी सहित मद दे विह्वल बलराम जी से बोलीं। हे स्वर्ग के स्वामी बलदेव जी! दैत्यों की सेना को जीतिये हम आपकी प्रिय स्त्री वारुणी हैं, मैं आपके पास आई हूँ। वाडवमुख अर्थात् वाडवाग्नि के सन्निकट पाताल में नित्य निवास करने वाले इस समय वहाँ आपका अन्तर्धान होना सुनकर मैं क्षीणा, पुण्या स्त्री की भाँति हे सुन्दर मुख वाले! आपको मैं पृथ्वी पर ढूँढ़ रही हूँ। हे सौम्य! मैं फूले हुए पुष्पों के केसरों से अनुलिप्त कुमुद आदि पुष्पों में और अतिमुक्तेषु अर्थात् वासन्ती लताओं में और पुष्पों के गुच्छों में बसती हूँ। मैं इस वर्षाकाल में आपको ढूँढ़ती हुई अपने रूप को छिपाकर कदम्ब के कोटरों में प्रविष्ट हो गई थी।।११-२०।।

मैं सर्वाङ्ग यौवन के योग से परिपूर्ण हूँ, जैसे अमृत मन्थन के समय

समुद्र ने विष्णु को लक्ष्मी दिया था वैसे मै अपने पिता वरुण के द्वारा आपके पास भेजी गयी हूँ। वह लक्ष्मी जिस प्रकार क्षीर समुद्र में निवास करती थीं उसी प्रकार मैं वडवानल में निवास करती थी, मैं आपके साथ उपभोग करना चाहती हूँ आप हमारे पति हैं यह मेरा मत है। हे अनघ! अनन्त! आपके द्वारा निन्दिता होने पर भी मैं आपका परित्याग नहीं कर सकती हे देव। आपके बिना लोकों की सेवा करने का मुझे उत्साह नहीं होता। आदिपद्म, पद्माङ्क, कानों के दिव्य आभूषण तथा समुद्र की भाँति नीले रेशमी वस्त्र धारण किये हुई। मदिरा के पश्चात् मूर्तिमती कान्ती बलराम जी के समीप उपस्थित हुई, मद के आवेश में उसकी श्रोणी गीली हो गई थी और किंचित्मात्र घूमती हुई आखों से देख रही थी। हाथों को जोड़कर नम्रता पूर्वक, बलराम जी की जय हो ऐसा कह कर अर्थ रखने वाले वाक्य को कान्ती देवी बोली। मैं भी मदिरा की भाँति आपके गुणों से प्रभावित होकर आपसे प्रेम करती हूँ और हजार शीश धारण करने वाले आप समर्थ को ही प्रियकर समझती हूँ। कमलों के भवन में निवास करने वाली और विष्णु के हृदय में रहने वाली श्री देवी भी बलराम के वक्षस्थल पर निर्मल माला की भाँति उनके समीप चली गईं। दंशिता अर्थात् वह वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हाथ में कमल लिये कमल मुख वाली लक्ष्मी निर्मल माला का ग्रहण कर बलराम जी से बोलीं। हे राम! आप वारुणी से अलंकृत मेरी और कान्ती देवी के साथ संगत होकर चन्द्रमा की भाँति शोभा पा रहे हैं।।२१-३०।।

यह मुकुट मैं वरुणालय से उठाकर लाई हूँ कि जो आपके सहस्त्रशीर्ष के मस्तक पर सूर्य की भाँति शोभा पाता रहा है। स्वर्णमय एक कुण्डल जो कि हीरक से विभूषित है लाई हूँ, हे पद्माक्ष! आदिपद्म तथा दिव्य कर्णभूषण ग्रहण करें। समुद्र की भाँति नील रंग का रेशमी वस्त्र और समुद्र में रहने वाला चमचमाता पुष्प हार आपके इच्छानुसार लाई हूँ आप इन्हें आदर से ग्रहण करें। हे देव! आप अपने इन प्राचीन आभूषणों को अपने अङ्गों में धारण करें, हे महाबाहो! आपको यह समय आभूषणों से सजने का है। तब उन अलंकारों

और तीनों देवाङ्गनाओं को ग्रहण कर बलराम जी शरद् कालीन चन्द्रमा की प्रभा की भाँति सुशोभित हुए। फिर नील कमल तथा मेघ के समान कान्ति वाले श्रीकृष्ण से मिलकर ग्रह युक्त चन्द्रमा की भाँति परम प्रसन्नता को प्राप्त हुए। अपने गृह में रहने की भाँति जब वे दोनों महापुरुष बातें कर रहे थे उसी समय आकाश मार्ग का वेग से अतिक्रमण कर गरुड़ वहाँ आ गये। वे संग्राम के साज से सजे, तेजस्वी, दैत्यों के प्रहार से चिह्नित, देवताओं की विजय चाहने वाले गरुड़ दिव्य माला और चन्दन से विभूषित थे। वरुणालय दिव्य क्षीर सागर में जब विष्णु शयन कर रहे ते तब वैरोचन ने उनके किरीट का हरण कर लिया था। उसी किरीट रूप बड़े प्रयोजन के लिये गरुड़ ने सागर के मध्य दैत्यगणों के ाथ बलपूर्वक संग्राम किया।।३१-४०।।

और विष्णु के किरीट को छीनकर उड़ने वालों में श्रेष्ठ गरुड़ बड़े वेग से स्वर्ग को जा रहे थे। उसी समय किरीट के लटकने से शोभा पाने वाले गरुड़ ने कार्यान्तर से पर्वत पर आये हुए विष्णु को देखा। तेज से रहित मुकुट विहीन मनुष्य की भाँति शैलराज के शिखर पर बैठे हुए विष्णु को देख कर उड़ने वालों में श्रेष्ठ तथा उनके भावों को समझने वाले गरुड़ जी प्रसन्न होते हुए आकाश से ही मुकुट को विष्णु के सिर पर गिरा दिये। इन्द्र के छोटे भ्राता श्रीकृष्ण के शिर पर वह मुकुट पहना देने की भाँति ही गिर पड़ा, शिर के स्थान पर नियोजित मुकुट भगवान् श्रीकृष्ण को वैसे ही सुशोभित करने लगा कि जैसे मध्याह्न के समय सूर्य मेरु पर्वत के शिखर को सुशोभित करता है। गरुड़ के संग्राम रूप प्रयोग के द्वारा मुकुट आ गया यह जानकर श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर बलराम जी से बोले। इस पर्वत पर हम दोनों की जैसी संग्राम की रचना हुई है इससे यह ज्ञात होता है कि देवताओं का कार्य रूप अर्थ शीघ्र होना चाहता है इसमें संशय नहीं है। जिस समय मैं क्षीर सागर में सो रहा था उस समय वैरोचन ने इन्द्र जैसा दिव्य रूप धारण कर सागर से मेरे मुकुट को हर लिया। फिर उसे ग्राह का रूप धारण कर समुद्र की जलराशि में लिये जा रहा था जो कि मेरे सर्प की शय्या से हर लिया था उसी मुकुट को वैरोचन से छीन

कर गरुड़ ने गिराया है। देखो वायु के वेग के समान चलने वाले रथों की ध्वजाओं के अग्र भाग दिखाई पड़ रहे हैं, इससे सुस्पष्ट है कि नराधिप जरासन्ध समीप में आ गया है।।४१-५०।।

हे आर्य बलराम जी! विजय की इच्छा वाले राजाओं के छोटे-छोटे चमकने वाले उज्ज्वल छत्र चन्द्र-खंड की भाँति शोभित हो रहे हैं। अहो राजाओ के रथों पर लगे विमल छत्रों की पंक्तियाँ हमलोगों की तरफ आ रही हैं, ये श्वेत छत्रों की पंक्तियाँ आकाश में उड़ती हुई हंस की पंक्तियों की भाँति शोभा पा रही हैं। अहो, विमल तेज वाले शस्त्रों की चमक से आकाश का मुख चमकीला हो गया है और शास्त्रों की प्रभा सूर्य की किरणों में मिल कर दशों दिशाओं में विचरण करती सी ज्ञात हो रही है। यह निश्चय है कि राजाओं के द्वारा समर में मेरे ऊपर चलाये जाने पर ये आयुध विनष्ट हो जायेंगे। राजा जरासन्ध उपयुक्त समय में ही आया है यह हमलोगों के युद्ध का पहला अतिथि है तथा हमलोगों के समर की कसौटी भी है। राजा जरासन्ध के आ जाने पर हम दोनों को युद्ध प्रारम्भ करने के लिये उपस्थित हो जाना चाहिये, तब तक उसकी सेना को देखना चाहिये। ऐसा कहकर संग्राम की लालसा वाले स्वस्थ श्रीकृष्ण जी जरासन्ध के वध का उपाय सोचते हुए उसकी सेना को देखे अविनाशी यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णजी उन सभी राजाओं के देखते हुए अपने मन में कहने लगे कि, जो स्वर्ग में मन्त्रणा की गई थीं वह अब सत्य होना चाहती है। ये वे ही राजा मृत्यु के मार्ग में स्थित हैं जो अधर्मी होने के कारण शास्त्र की रीति से विनाश को प्राप्त होंगे। ये नृपश्रेष्ठ राजे मृत्यु के द्वारा ग्रसित हैं, ऐसा मैं मान रहा हूँ; इनके रूप को देखने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये स्वर्ग में जायेंगे। इन नृपति सिंहों की विशाल सेनाओं के भार से अत्यन्त पीड़ित यह पृथ्वी भार वहन से थक कर जो स्वर्ग में गई थी वह अच्छा ही की थी। यह निश्चित है कि, अब थोड़ेही समय में यह पृथ्वीतल राजाओं से रहित हो जायेगा और नभस्तल राजाओं के समूह से भर जायेगा।।५१-६२।।



अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४२।।

वैशम्पायन जी बोले कि-महा तेजस्वी राजा जरासन्ध राजाओं के और सेनाओं के साथ गोमन्त पर्वत के समीप आ गया। उसके साथ चौड़े और ऊँचे तथा अस्त्र-शास्त्र के पण्डितों द्वारा सुशिक्षित घोड़े लड़ाई के सामानों से युक्त रथों में जुते हुए आ रहे थे और रथ से अलग भी घोड़े आ रहे थे और स्वर्ण के हौदों तथा विशाल घण्टों से युक्त मेघ के समान हाथी चले आ रहे थे, जिनके ऊपर उत्तम महावत बैठे थे और जो रण की घोषणा की भाँति गर्ज रहे थे। सवारों के सहित समर में विख्यात घोड़े हिनहिनाते हुए बड़ी तेजी से चल रहे थे, वे वायु की गति से चलने वाले घोड़े मानो पक्षियों की भाँति आकाश में उड़ रहे थे। ढाल-तलवार धारण किये बलोन्मत्त सिपाही हजारों की संख्या में रण घोषणा से आकाश को शब्दायमान करते हुए फण उठाये हुए सर्पों की भाँति चल रहे थे। इस प्रकार घटाटोप की भाँति चलती हुई चतुरङ्गिणी सेना के साथ व्रतधारी बलवान् राजा जरासन्ध आया। रथों की घरघराहट से, मदोन्मत्त हाथियों की गर्जन से, घोड़ों की हिनहिनाहट से तथा पैदल सेना के उछलने-कूदने एवं उग्र शब्द करने से सम्पूर्ण दिशाओं का सम्यक् भाग इस प्रकार से गुञ्जायमान करता और पर्वतों की कन्दराओं में सोने वाले प्राणियों को जगाता हुआ चतुराङ्गिणी सेना के साथ राजा जरासन्ध समुद्र की भाँति उमड़ता दिखाई दिया। उछलते तथा ताल ठोंकते हुए योद्धाओं से भरी राजाओं की सेना मेघ की सेना के समान सुशोभित हो रही थी। वायु वेग से चलने वाले रथों से, मेघ के समान हाथियों से, श्वेत बादलों के समान घोड़ों से तथा कवच से सुसज्जित योद्धाओं से भरी लम्बी-चौड़ी सेना वर्षा ऋतु में समुद्र से उठते बालद-समूहों की भाँति शोभा पा रही थी।।१-११।।

जरासन्ध को आगे किये बलवान् राजे गोमन्त पर्वत को घेर कर पड़ाव डालने की तैयारी करने लगे। पड़ाव डाले हुई सेना की छोलदारियों की शोभा शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के दिन उमड़े हुए समुद्र के शोभा के समान प्रतीत हो रही थी। रात्रि समाप्त हो प्रातः काल होने पर अपने कृत्यकार्य कर पर्वत पर

चढ़ने के लिये युद्ध की लालसा वाले राजे इकट्ठे हो गये। वे सभी राजे गिरि प्रस्थ में जुट कर युद्धकालीन कुतूहल के वशीभूत हो बैठ कर मन्त्रणा करने लगे। प्रलयकाल के समय अपनी सीमा का भेदन कर उमड़े हुए समुद्रों के समान उन एकत्रित राजाओं का शब्द सुनाई देने लगा। उस समय जरासन्ध की आज्ञा से शिर पर पगड़ी बाँधे हाथ में वेत का दण्ड लिये वृद्ध कञ्चुकी राजाओं के बीच खड़ होकर "शब्द न करो" चुप रहो इस प्रकार कहने लगे। इस राजाज्ञा से उस सेना के मध्य वैसे ही शान्ति छा गई जैसे सर्पों और मछलियों के जल में विलीन होने पर समुद्र में शान्ति छा जाती है। तब समुद्र की भाँति सेना के शब्द रहति होने पर जरासन्ध बृहस्पति के समान बड़े गम्भीर वचन को बोला कि। राजाओं की सेनायें पर्वत के चारों ओर जाकर अपने सैन्य समूह से इस पर्वत को घेर लें।।१२-२०।।

और पत्थरों को तोड़ने वाले यन्त्रों तथा क्षेपणी एवं मुद्गरों का प्रयोग करें और पर्वत के ऊपर भी प्रास तथा तोमरों को चलावें। और कारीगर लोग ऊपर फेकने के लिये छोटे और दृढ़ अस्त्र-शस्त्रों को बनावें और ऊपर से गिरने वाले अस्त्रों को रोकने के लिये यन्त्रों का शीघ्र निर्माण करें। परस्पर प्रमत्त योद्धाओं के युद्ध के सम्बन्ध में जिस प्रकार रुद्रयामल आदि का कहना है इस प्रकार के विधान का शीघ्र ही प्रयोग करो। इस उत्तम पर्वत को फरसों और रम्भों से तोड़ कर गिरा दो और युद्ध को जानने वाले राजे पर्वत के समीप में खड़े हो जायँ। आज से मेरी सेनाओं के द्वारा यह पर्वत तब तक के लिये घेर लिया जाय कि जब तक मैं वसुदेव के दोनों पुत्रों को मार न डालूँ। शिलाओं की खान यह पर्वत अचल है इसको पक्षियों की भाँति चलायमान कर दो और आकाश को भी बाण समूहों से अवकाश रहित कर दो। मेरी आज्ञा में चलने वाले राजे पर्वत के चारों ओर भूमि पर डटे रहें जहाँ-जहाँ पर्वत पर चढ़ने लायक हो वहाँ-वहाँ पर्वत पर चढ़ जायँ। मद्र, कलिंगाधिपति, चेकितान बाह्लीक, काश्मीरराज, गोनर्द और करूषाधिपति। द्रुम, किंपुरुष, पर्वतीय, मालव देशीय राजे पर्वत के दूसरे भाग में शीघ्र ही चढ़ जायँ। पौरव, वेणुदारि, वैदर्भ, सोमक, रुक्मि, भोजाधिपति, सूर्याक्ष और मालव।।२१-३०।।

पाञ्चालाधिपति राजा द्रुपद, विन्दु, अनुविन्दु, बलवान् दन्तवक्र। छागलि, पुरमित्र, राजा दरद, कौशाम्ब्य, मालव, शतधन्वा, विदूरथ। भूरिश्रवा, त्रिगर्त, बाण और पञ्चनद ये कठिन संग्राम करने वाले एवं बज्र के समान गौरवयुक्त पराक्रमी राजे पर्वत को तोड़ते-फोड़ते उत्तर की ओर चढें। उलूक, कैतवेय, अंशुमान का पुत्र वीर एकलव्य, दृढाश्व, क्षत्रधर्मा जयद्रथ। उत्तमौजा, शाल्व, कैरलेय, कैशिक, वैदिश, वामदेव तथा बलवान् सुकेतु के अधीन पर्वत के पूर्वीय भाग में ब्यूह रचना द्वारा सेना रहे; जैसे प्रबल वायु मेघों को विदीर्ण करता है वैसे ही इस पर्वत को विदीर्ण करती हुई सेना दौड़ती हुई आगे बढ़े। हम और दरद तथा बलवान्चेदिराज कवच धारण कर पर्वत के दक्षिण भाग में शैल समूह को विदीर्ण करते हैं। इस प्रकार चारों ओर से सेनाओं से घिरा हुआ यह पर्वत वज्रपात की भाँति घोर भय को प्राप्त करेगा। गदा धारण करने वाले गदाओं से और परिघधारी परिघों से तथा अन्य लोग और अनेक प्रकार के शस्त्रों द्वारा इस उत्तम पर्वत को ढहावें। विषम एवं ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाले इस पर्वत को ढहा कर आज ही आप सब नृपगण मिलकर सम भूमि के समान कर दीजिये।।३१-४०।।

जरासन्ध के वचन रूप राजाज्ञा को सुनकर राजागण गोमन्त पर्वत को वैसे ही घेर लिये कि जैसे समुद्रों ने पृथ्वी को घेरा है। तत्पश्चात् देवताओं में इन्द्र के समान चेदिराज बोले-कि इस दुर्गम नगोत्तम गोमन्त पर्वत पर युद्ध करने से क्या लाभ। इसके ऊपर ऊँचे-ऊँचे काँटेदार वृक्ष हैं, इसके शिखर पर चढ़ना बड़ा कठिन है, इसलिये बहुत से काष्ठ आर तृणों को चारों ओर रखकर आग लगा दी जाय और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, ये क्षत्रियगण सुकुमार हैं ये रण में बाणों द्वारा संग्राम करने वाले हैं। इन्हें आप पर्वत के विकट युद्ध में नियुक्त कर दिये हैं, (अब आपको चाहिये कि, पर्वत के चारों ओर पैदल युद्ध करने वालों को नियुक्त कर दें इसके बाद इन नृप गणों को नियुक्त करें) आपके कथानानुसार किये गये रोध से अथवा इसके ऊपर चढ़ने से कुछ लाभ नहीं। ऐसा करने से तो हे तात्! इस पर्वत का देवता भी मर्दन नहीं कर सकते। हे राजाओं! किला युद्ध में क्रमशः रोध-युद्ध के

द्वारा कल्याण होता है, पर्वत पर रहने वाले तो भोजन तथा जल और इन्धन की कमी के कारण स्वयं शरण में आ जाते हैं अन्यथा नहीं, हम बहुत हैं और राजाओं में निपुण नीति वाले हैं और वे रण में दो ही यादव हैं ऐसा समझ कर उनका अपमान नहीं करना चाहिये वे अज्ञात बल वाले तथा देवताओं के समान पराक्रमी हैं ऐसा सुना जाता है। वे हैं तो बालक ही पर बड़े ही बलवान् हैं, उनके कर्मों से मैं उन्हें देवता समझता हूँ उन यदुकुल श्रेष्ठों ने इस संसार में अमानवीय कर्मों को किये हैं। इसलिये सूखे हुए काष्ठों और तृणों से आवेष्टित कर इस पर्वतोत्तम को चारों ओर से जला देंगे तो वे चेतना रहित हो जल जायेंगे।।४१-५०।।

यदि जलते हुए निकल आवेंगे तो हमलोग उनके समीप जाकर उन्हें गिरा देंगे तत्पश्चात् वे अपने प्राणों को त्याग देंगे। चेदिराज के ये वचन सेनाओं सहित राजाओं को अच्छे लगे, राजाओं ने कहा कि नृपों के हितों के हितचिन्तक चेदिराज ने जो कहा है वह ठीक है। इसके पश्चात् सूखे हुए काष्ठों, तृणों, बाँसों और सुखी हुई शाखाओं वाले वृक्षों से फूँक देने पर अग्निज्वालों से शैलेन्द्र वैसे ही गलने लगा कि जैसे सूर्य की किरणों से मेघ गलने लगता है। राजाओं ने थोड़े ही पराक्रम से पर्वत के चारों ओर शीघ्रता पूवर्क अपने लक्ष्य के अनुसार वायु का रुख देखकर अग्नि लगा दी। वायु का बल पाकर जलती हुई आग चारों तरफ से ऊपर को उठने लगी, धुएँ और लपटों की मालाओं की प्रभा आकाश को सुशोभित करने लगी। वह अनल पवन के साथ मिलकर सूखे काष्ठों से घिरे मूल वाले तथा सुन्दर वृक्षों वाले गोमन्त पर्वत को जलाने लगा। जलता हुआ वह पर्वत बड़ी-बड़ी शिलाओं को छोड़ने लगा, वे शिलायें सैकड़ों भागों में खण्डित हो बड़ी-बड़ी शिलाओं को छोड़ने लगी, वे शिलायें सैकड़ों भागों में खण्डित हो बड़ी-बड़ी बिजलियों के आकार में पृथ्वी पर गिरने लगीं। वह अग्नि स्वरूप पर्वत चारों ओर से सम्यक प्रकार अग्नि की लपटों को नीले आकाश की ओर उठा रहा था वे लपटें मेघ को स्पर्श करती हुई सूर्य की किरणों के समान शोभित हो रही थीं। वृक्षों के जलने तथा धातुओं के गलने से उद्विग्न जानवरों वाला वह पर्वतराज व्यथित

की भाँति रोता हुआ दिखाई पड़ने लगा। वह जलता हुआ प्रतप्त पर्वत सुवर्ण, चाँदी और अञ्जल आदि धातुओं की धाराओं को बहाने लगा।।५१-६०।।

अग्नि से जलते हुए अङ्गों वाला वह पर्वत शोभा को नहीं प्राप्त हो रहा था क्योंकि ऊपर उठते हुए धुओं से लम्बायमान पर्वत समुद्र में डूबते हुए मेघ के समान दिखाई दे रहा था। पत्थरों के समूहों के ढीले पड़ जाने से और कठिन अङ्गारों के वर्षाने तथा अग्नि का उद्गार छोड़ने से वह पर्वत बिजली की वर्षा करते हुए मेघ के समान प्रतीत हो रहा था। जल के झरनों आदि के सूख जाने से और धूम भर जाने से बढ़े हुए पेट वाला वह पर्वत प्रलय काल की अग्नि से जलते हुए के समान जलने लगा। पर्वत के ऊपर से अधजले सर्प व्याकुल होकर निकलने लगे, वे अपने फणों को चौड़ी कर ऊपर उठाये हुए क्रोध की दृष्टि से देख रहे थे। अग्नि से व्याकुल होकर सिंह और व्याघ्र पर्वत से ऊपर को आकाश में उछल पुनः आकाश से नीचे मुख किये नीचे गिरकर आर्तनाद कर रहे थे। वृक्ष जलने से अपने भीतर के जल को छोड़ने लगे। राख और अङ्गारों से व्याप्त वायु पिला होकर ऊपर को उठ रहा था, आकाश में धूम की छाया घमंड से भरे मेघ के समान दिखाई पड़ रही थी। ऊँचे-ऊँचे शिखरों पर रहने वाले पक्षी और पशु जब धूम्रमय आकाश मार्ग से भागने लगे तब वह पर्वत मानो विकल होने लगा। इन्द्र द्वारा वज्र विदीर्ण हुए की भाँति, ऊँची शिलाओं वाला वह पर्वत ऊपर से शिलाओं को गिराने लगा। पर्वत में आग लगाकर क्षत्रिय गण व्यूहाकार हो अग्नि के ताप से आधा कोश तक पीछे हट गये।।६१-७०।।

जब वह पर्वत जल रहा था और उसपर के वृक्ष झुलस रहे थे और जब धूम्र के कारण कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था एवं उसकी जड़ शिथिल हो गई थी तब क्रोधित हो बलरामजी केशिसूदन, कमलनेत्र, मधुसूदन श्रीकृष्ण से स्पष्ट रूप से बोले। हे तात! बड़े-बड़े शिखरों और वृक्षों सहित इस पर्वत को हम दोनों के वैर के कारण बलवान् राजे अग्नि से जला रहे हैं। हे श्रीकृष्ण! देखो, धूम से भरे जलते हुए बनों के हाथी आर्त वाणी बोलते हुए पर्वत की

तराई में भटक रहे हैं। हे तात! यदि हम लोगों के कारण यह गोमन्त पर्वत जल जायेगा तो लोक में हम लोगों के लिये यह बड़ ही अयश का प्रसंग होगा और इससे लोकापवादं भी होगा। इसलिये हे योद्धाओं में श्रेष्ठ! हम लोग पर्वत के ऋण से उऋण होने के लिये इस पर्वत के समीप में ही अपने हाथों से क्षत्रियों का वध करें। ये क्षत्रिय गण युद्ध का बाना धारण कर पर्वत को जला रथों पर चढ़े युद्ध-स्थल में युद्ध के लिये समुत्सुक दिखाई पड़ रहे हैं। इस प्रकार कहकर स्वर्ण पवर्त मेरु के ऊपर से चन्द्रमा की भाँति बनमाला धारण क्यिे युवा बलरामजी गोमन्त पर्वत के शिखर से कूद पड़े। वे कादम्बरी मदिरा के मद से मतवाले हो रहे थे, नीले वस्त्र धारण किये प्रसन्न मुख उदर पर वनमाला से भूषित शरद्‌कालीन चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हो रहे थे। प्रियदर्शन एक कुण्डल और सुन्दर मुकुट को धारण किये नीचे मुख वाले श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलरामजी राजाओं के मध्य में कूद गये।।७१-८०।।

बलरामजी के नीचे कूद जाने पर मेघ के समान श्याम, अमित पराक्रम वाले श्रीकृष्णजी भी गोमन्त के शिखर से नृप गणों के बीच कूद पड़े। कूदते समय श्रीकृष्णजी ने अपने पैरों से पर्वत को दबाया था तो उनके दबाने से पर्वत चारों ओर जल से नहा उठा। वह मद से भींगे हुए हाथी के समान भींगे पत्थरें वाला हो गया, उस जल से उसकी अग्नि तत् क्षण शान्त हो गई। वह पर्वत प्रलय काल में मेघ समूहों की जलधाराओं से स्नान किये की भाँति प्रतित होने लगा; घन के समान श्याम वर्ण, पीत वस्त्र धारण किये, सिंह के समान महान् गर्जन करते हुए, मस्तक पर किरीट धारण किये, सुन्दर मुख वाले, कमलनेत्र, वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न धारण किये इन्द्र के समान शोभायमान होते हुए महाबलवान् श्रीकृष्ण बलराम के बाद ही राजाओं के बीच में कूदे थे, कूदते समय उनके चरणों से गोमन्त पर्वत नीचे दब कर। तीक्ष्ण अग्नि को शान्त करने के लिये जल को धरातल से ऊपर को छोड़ा था; इस प्रकार जल को ऊपर निकलते देख राजे भयभीत हो गये।।८१-८७।।



अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४३।।

वैशम्पायनजी बोले- पर्वत से कूदे हुए बलराम और श्रीकृष्ण को देखकर नरपालों की सेनायें क्षुब्ध हो उठीं और वाहनों सहित सभी मूढ़ हो गये। समुद्र को क्षुभित करते हुए दो बलवान् बड़े मगरों के समान अपने बाहुओं के प्रहार से सेना को विकल करते हुए दोनों यादव युद्ध-स्थल में विचरने लगे। युद्धस्थल में प्रवेश करने के बाद उन दोनों यादवों को अपने पुराने आयुधों को ग्रहण करने की इच्छा हुई। तत्पश्चात् युद्ध की आकांक्षा रखने वाले बड़े-बड़े आयुध आकाश से हजारों राजाओं के मध्य गिरने लगे। संग्राम में शोभा पाने वाले जो आयुध मथुरा के युद्ध में आकाश से गिरे थे वे ही दिव्य आयुध इस संग्राम में भी गिरने लगे। राजाओं के रक्त को चाटने वाले दीप्त अग्नि के सदृश जिन आयुधों को मथुरा के युद्ध में आकाश से फेंका था उन्हीं आयुधों को श्रीकृष्ण-बलराम ने यहाँ प्राप्त किया। मूर्तिमान् बड़े-बड़े आयुधों के पीछे-पीछे मांसभक्षी जीव आ रहे थे, वे आयुध समर में राजाओं के मांस खाने के लिये भूखे थे। वे दिव्य माला रूप रज्जुओं को धारण किये आकाशचारी जीवों को भयभीत करते हुए तथा अपनी प्रभा से दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए गिरे। साम्वर्तक नाम का हल, सौनन्द नाम का मुसल, सुदर्शन नाम का चक्र और कौमोदकी नाम की गदा ये चारों विष्णु के तीक्ष्ण आयुध उन दोनों यादवों के लिये आकाश-मण्डल से अवतीर्ण हुए।।१-१०।।

बलरामजी ने पहले संग्राम में ध्वजा के तुल्य सरकते हुए सर्पेन्द्र की भाँति दिव्य मालाओं से विभूषित हल को बायें हाथ से उठाया। तत्पश्चात् सात्वतों में श्रेष्ठ बलवान् बलरामजी ने शत्रुओं को आनन्द रहित करने वाले सौनन्द नामक मुसल को दाहिने हाथ से उठाया। लोकों में दर्शन करने योग्य सूर्य के समान तेजस्वी सुदर्शन नामक चक्र को पहले प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्ण ने उठाया। तत्पश्चात् लोकों में दर्शनीय मेघ के समान शब्द करने वाले शार्ङ्ग नाम से विख्यात धनुष को महाबलवान् श्रीकृष्णजी ने उठाया। देवताओं के

कथनानुसार कुमुदाक्ष श्रीकृष्णजी के दूसरे हाथ में कौमोदकी नाम की गदा दिखाई पड़ने लगी। साक्षात् विष्णु के तुल्य बलराम तथा श्रीकृष्णजी इस प्रकार आयुधों को ग्रहण कर समर में उन शत्रु रूप राजाओं से युद्ध करने लगे। आयुध को ग्रहण किये ज्येष्ठ और अनुज की संज्ञा वाले एक ही समान समर में एक विष्णु ने दो रूप धारण कर ईश्वर के समान पराक्रमी बलराम तथा श्रीकृष्ण दोनों अपने द्वेषियों के ऊपर प्रहार करते हुए रण में विचरने लगे। सर्पेन्द्र के समान कोप करने वाले हल को उठाकर शत्रुओं के बीच यमराज के समान वीर बलरामजी समर में विचर रहे थे। बलरामजी अपने हाथ से बड़े-बड़े क्षत्रियों को सेनाओं सहित खींच उनपर तथा घोड़े और हाथियों पर मुसल के प्रहार द्वारा अपने क्रोध को सफल कर रहे थे।।११-२०।।

पर्वत के समान विशाल रूप धारण करने वाले व्यापक बलरामजी हल से खींचकर गिराये गये हाथियों को मुसल के प्रहार द्वारा पीड़ित करने लगे। समर में बलरामजी द्वारा ताड़ित राजे रथ रहित हो जरासन्ध की शरण में भाग कर जाने लगे। युद्ध के लिये समर में स्थित जरासन्ध ने उन क्षत्रियों से कहा कि, समर में आकर कायरता दिखलाने वाले तुम लोगों के इस क्षत्रवृत्ति को धिक्कार है। समर में रथ से रहित हो जाने पर शत्रु के डर से जो क्षत्रिय भागते हैं उनके लिये भ्रूण-हत्या के समान 'असह्य पातक' लगता है; ऐसा पण्डितगण कहते हैं। समर भूमि में पैदल लड़ने वाले अल्प बली एक गोप से डर कर क्यों भाग रहे हो? धिक्कार है तुम्हारे इस क्षत्रित्व को। मेरे कहने से तुम लोग शीघ्र लौट जाओ, मैं जब तक इन दोनों गोपों को यमपुर भेज देता हूँ। इसके बाद सभी क्षत्रिय जरासन्ध के कथनानुसार प्रसन्न हो बाण जालों को फेकते हुए पुनः युद्ध करने के लिये लौट पड़े। स्वर्णजटित जीन वाले घोड़ों पर तथा चन्द्रमा के समान चाँदनी वाले रथों पर और महावत से हाँके गये मेघ के समान हाथियों पर चढ़े सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण किये कवच पहने तीक्ष्ण आयुधों को लिये धनुषों पर बाण चढ़ाये सभी राजे छत्र लगाये और चँवर डुलाये जाते हुए रथों एवं वाहनों पर रणभूमि में पुनः शोभा पाने लगे।।२१-३०।।

युद्धोत्सव में युद्धविधि से आये हुए महाभुज दोनों वसुदेव के पुत्र भी युद्ध की इच्छा से दिखाई पड़ने लगे। तब इन दोनों वीरों और उन राजाओं की समर में मुठभेड़ होने पर वहाँ बहुत बाणों और गदा अस्त्र-शस्त्रों के निर्घात से दारुण युद्ध हुआ। तत्पश्चात् हजारों बाणों को सहते हुए रण की लालसा से योद्धाओं में मुख्य श्रीकृष्ण-बलराम वैसे ही रण से विचलित नहीं हुए कि जैसे वर्षा की बूँदों के आघात से पर्वत विचलित नहीं होते। गदाओं, बर्छों, क्षेपड़ियों तथा मुद्गरों की मार खाते हुए भी महान् धनुषों को धारण करने वाले यादव कम्पित न हुए। इसके पश्चात् शङ्ख, चक्र तथा गदा को धारण करने वाले मेघ के आकार वाले महातेजस्वी श्रीकृष्ण वायु से युक्त अग्नि के समान बढ़ गये। वे वीर श्रेष्ठ श्रीकृष्ण तेज से सूर्य के समान चमकते हुए चक्र से समर में मनुष्यों, हाथियों, घोड़ों तथा बड़े-बड़े रथों को टुकड़े-टुकड़े करने लगे। बलरामजी के हल से खींचे गये तथा उनकी गदा की मार से विशेष आहत हो मूर्छित हुए राजे रण में टिकने के लिये समर्थ न हो सके। श्रीकृष्ण द्वारा छुरे के समान तेज चक्र की धार से कटे हुए राजाओं के चित्रविचित्र रथों के समूह खण्डित होने से रण में चलने के लायक स्थान न रहे। मुसल के आघात से व्यथित हुए टूटे दाँतों वाले साठ-साठ वर्ष के पट्ठे हाथी वैसे ही आर्तनाद करने लगे कि, जैसे बादलों से टक्कर खाकर बादल शब्द करते हैं। चक्राग्नि की ज्वाला से आहत सवार, पैदल सिपाहियों सहित चक्र से आहत हुए राजे प्राण रहित हो गिरने लगे।।३१-४०।।

हल और चक्र के तेज से निर्दग्ध जरासन्ध की सेना प्रलय काल की भाँति यत्र-तत्र घायल हो गिर गई। शरीरधारी विष्णु के आयुधों को क्रीड़ाभूमि को आँखें खोलकर देखने में भी वे राजे असमर्थ हो गये। उस समर में कितने चूर-चूर हुए रथ, कितने एक-एक पहिया टूटे हुए रथ और कितने मरे हुए राजे पृथ्वी तल पर इधर-उधर पड़े हुए थे। उस संग्राम में चक्र और हल के प्रलय काल उपस्थित कर देने पर बड़े भयंकर राक्षसी उत्पात होने लगे। फटते हुए बाँस के समान पीड़ा से चिघरने वाले मनुष्यों, हाथियों और रथ में जुते घोड़ों का अन्त नहीं था। राजाओं के रक्तों से भींगी हुई रणभूमि

चन्दन लगाने से गीले अङ्गों वाली ललना की भाँति भैरवा प्रतीत होती थी। मनुष्य के केशों, हड्डियों, मज्जाओं और अँतड़ियों से तथा कटे हुए हाथियों के रक्तों के बहने से रणभूमि भर गई। नर और वाहनों के विनाश वाले उस भयंकर संग्राम में शृगालों के अशुभ शब्द करने से और भी भय लगने लगा। मरते हुए व्यथित वीर कराहने लगे, रुधिर रूपी जल के तालाबों से और मरे हुए हाथियों के शवों से आच्छादित संग्राम यमराज के क्रीड़ास्थल के समान प्रतीत होने लगा। बाहु उखड़े हुए योद्धाओं और घायल हुए घोड़ों और कङ्क तथा बड़े-बड़े गीधों के चीखने से संग्रामस्थल गूँज रहा था।।४१-५०।।

राजा लोग कट-कट कर गिर रहे थे, मृत्यु एक साधारण बात हो गई थी ऐसे रण में श्रीकृष्णजी शत्रुओं का वध करने के लिये यमराज की भाँति विचर रहे थे। प्रलय के सूर्य के समान तेज वाले चक्र और लौहमयी काली गदा को लिये हुए सेना के मध्य राजाओं से श्रीकृष्णजी ने कहा। हाथी, घोड़ों और रथों पर चढ़े हुए हे शूरवीरों! तुम लोग क्यों नहीं युद्ध कर रहे हो? तुम लोग अस्त्र विद्या के पारंगत और दृढ़ प्रतिज्ञ होकर भी क्यों भाग रहे हो? मैं उस प्रारब्ध के दोष से अपने बड़े भाई के साथ तुम्हारे सम्मुख पैदल ही खड़ा हूँ कि, जिस प्रारब्ध के दोष से तुम लोग रण में अब तक जीवित हो वह जरासन्ध क्या समझ कर इस समय हमसे नहीं लड़ रहा है। राजाओं से इस प्रकार कहने पर बलवान् राजा दरद सेना के बीच खड़े हाथ में हल को उठाये हुए बलरामजी से युद्ध करने को गया और हलवाहा जैसे बलोन्मत्त बैल को बुलावे वैसे ही लाल-लाल आँखों वाले बलराम को बुलाने लगा कि, हे अरिन्दम बलराम! आ-आ हमारे साथ युद्ध कर। फिर तो बलराम और राजा दरद का लोकप्रसिद्ध दो बलवान् गजराजों के समान युद्ध होने लगा। बलराम ने हल को दरद के कन्धे में लगा उसे खींच शिर पर मुसल से मारा। मुसल के आघात से उसका शिर उसके शरीर में समा गया और वह फटे हुए पर्वत के समान भूमि पर गिर पड़ा। बलराम के द्वारा राजसत्तम दरद के निहत हो जाने पर राजा जरासन्ध के साथ बलरामजी का समागम हुआ।।५१-६०।।

तत्पश्चात् इन दोनों का इन्द्र और वृत्रासुर के समान लोमहर्षण भयंकर

युद्ध होने लगा, गदा को ग्रहण कर अपना पराक्रम दिखाते हुए दोनों वीर आपस में एक दूसरे पर झपटने लगे। वे दोनों महावीर हाथ में बड़ी-बड़ी गदाओं को उठाये धरातल को कम्पित करते हुए दो शिखरयुक्त पर्वतों की भाँति दिखाई पड़ रहे थे। इन दोनों पुरुष श्रेष्ठों का युद्ध देखकर सबका युद्ध बन्दा हो गया; गदायुद्ध में विख्यात ये दोनों वीर क्रोधित हो आपस में एक दूसरे पर दौड़ रहे थे। गदायुद्ध के लोकविख्यात दोनों महाबली परम आचार्य मदमत्त कुंजरों की भाँति लड़ रहे थे। हे राजन् ! इस युद्ध को देखने के लिये हजारों देवता, महर्षि, यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सरायें आकाशमण्डल में उपस्थित हो गईं तथा इन लोगों से घिरा आकाश नक्षत्रमण्डल की भाँति सुशोभित होने लगा। जरासन्ध बलराम पर वाम मण्डल के पैंतरे से और बलराम जरासन्ध पर दक्षिण मण्डल के पैंतरे से प्रहार कर रहे थे। गदायुद्ध विशारद दोनों वीर दन्तैले गजों की भाँति दशों दिशाओं को अपने नाद से प्रतिनादित करते हुए दाँव-पेंच द्वारा प्रहार कर रहे थे। बलराम की गदा का प्रहार बिजली के समान और जरासन्ध की गदा का प्रहार फटते हुए पर्वत के समान सुनाई देता था। गदाधारियों में श्रेष्ठ बलरामजी जरासन्ध के गदाप्रहार द्वारा वैसे ही विचलित नहीं होते थे कि, जैसे आँधी से विन्ध्य पर्वत विचलित नहीं होता।।६१-७०।।

बलराम के गदा वेग को जरासन्ध गदायुद्ध की शिक्षा और महान् धैर्य से रोक कर सहन करता था। तत्पश्चात् सुन्दर स्वर में लोकसाक्षिणी आकाशवाणी हुई कि, हे मानद राम ! इसका वध तुम्हारे द्वारा नहीं होगा। इसकी मृत्यु दूसरे के द्वारा मैंने लिखी है, यह जरासन्ध थोड़े समय में ही अपने प्राणों को त्यागेगा; इसलिये तुम इस युद्ध से विश्राम लो। यह आकाशवाणी सुनकर जरासन्ध खिन्न मन हो गया, बलराम ने भी फिर गदा का प्रहार नहीं किया, वृष्णियों ने और राजाओं ने युद्ध बन्द कर दिया। हे महाराज! इसी प्रकार अधिक समय तक दोनों आपस में एक दूसरे पर प्रहार कर युद्ध किये थे, राजा जरासन्ध के पराजित हो भाग जाने पर उसके बिना सेना शून्य हो गई तब उसके महारथी भी भागने लगे। वे राजे भयभीत मन हो सिंह द्वारा सूँघे हुए मृग की भाँति हाथी, घोड़ों और रथों को हाँकते हुए भाग चले। उन

महारथी राजाओं का घमण्ड टूट गया, जब वे रणस्थल छोड़कर भाग गये तो मांस खाने वाले बहुत जीवों से रणस्थल भर कर भयंकर प्रतीत होने लगा। भागने वाले मुख्य महारथियों में महातेजस्वी चेदिराज यादवों से अपने सम्बन्ध का स्मरण कर श्रीकृष्ण के समीप लौट आया। हे अनघ! कारूष सेना एवं चेदि देशीय सेना से घिरा हुआ चेदिराज सम्बन्ध की इच्छा से श्रीकृष्ण से बोला– हे यादवनन्दन ! मैं तुम्हारे पिता की बहन का पति हूँ इसलिये मुझे तुम्हीं प्रिय हो मैं सेना सहित तुम्हारे पास आया हूँ।।७१-८०।।

संग्राम में अल्पज्ञ राजा जरासन्ध से मैंने कहा था कि, हे दुर्बुद्धे तुम श्रीकृष्ण से युद्ध करना स्थगित कर दो। पर वह मेरी बात को नहीं माना अतः मैंने उसका परित्याग कर दिया, इस समय वह तुमसे युद्ध में हार कर सेनाओं सहित भागा जा रहा है। राजा जरासन्ध तुमसे बैर रहित होकर अपने पुर को नहीं जा रहा है, वह फिर दूसरी बार तुमसे युद्ध करेगा। इसलिए मरे हुए मनुष्यों से व्याप्त तथा मांस खाने वाले जीवों से भरी इस रणभूमि को त्याग दीजिये क्योंकि यह भूमि अमानुषों द्वारा सेवन के योग्य हो गई है। हे श्रीकृष्ण! अब हम लोग सेना सहित करवीरपुर को चलें वहाँ चलकर राजा श्रृगाल को देखेंगे। मैंने इन दो श्रेष्ठतम रथों को शीघ्रगामी घोड़ों को जोत कर तैयार किया है, इनके चक्के और धूरे आदि सुदृढ़ हैं। अतः आप बलरामजी के सहित शीघ्र ही रथ पर बैंठें फिर हम लोग करवीरपुर में स्थित राजा श्रृगाल को देखने के लिये शीघ्रातिशीघ्र चल चलें। वैशम्पायनजी बोले–पिता की बहन के पति चेदिराज की बात सुनकर प्रसन्न मन हो जगद्गुरु श्रीकृष्ण बोले कि अहो चेदिराज! तुमने देश और कालोचित वचनरूपी जल से हम युद्धाग्नि से संतप्त दोनों को शीतल कर बन्धुत्व का प्रदर्शन किया। हे चेदिराज! देश-काल के अनुकूल मधुर वचन बोलने वाले वक्ता इस संसार में दुर्लभ हैं।।८१-९०।।

हे चेदिनाथ! आपके दर्शन से हम दोनों सनाथ हो गये, आपने हमें अपना बना लिया, आप जैसे बन्धु के मिल जाने से अब हम दोनों के लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं रह गया। हे चेदिकुल को बढ़ाने वाले! तुमसे सनाथ होकर हम दोनों जरासन्ध के तथा उसके समान और भी राजाओं के वध के लिये पर्याप्त

हो गये। सम्पूर्ण राजाओं में यादवों के आप निश्चित अग्रगण्य बन्धु हैं; अब आजसे आप केवल संग्राम देखियेगा। इस लोक में जो राजे संग्राम से जीवित बचेंगे वे इस संग्राम को चाक्र तथा मौसल-संग्राम के नाम से सम्बोधन कर कहेंगे। इस गोमन्त पर्वत पर युद्ध में राजाओं के पराजित होने की जो कथा कहेंगे अथवा सुनेंगे वे स्वर्गलोक में जायेंगे। हे चेदिराज! अब अपने कल्याण के लिये हम लोग आपके बताये मार्ग से करवीरपुर को चलें। तत्पश्चात् साक्षात् मूर्तिमान अग्नि के समान वे रथ पर चढ़ गये और वायु के समान चलने वाले घोड़ों के द्वारा लम्बे मार्ग को समाप्त करने लगे। वे लोग तीन रात्रि मार्ग में पड़ाव डाल कर करवीरपुर पहुँच गये, अपने कल्याण के लिये देवताओं के समान तेजस्वी वे कल्याणप्रद देश में प्रवेश किये।।९१-९८।।



अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४४।।

वैशम्पायनजी बोले कि-हे राजन्! इन लोगों का आगमन हमारे पुर पर चढ़ाई करने के लिये हुआ है ऐसा मानकर इन्द्र के समान पराक्रमी युद्ध दुर्मद राजा श्रृगाल युद्ध के लिये पुर के बाहर निकला। वह लड़ाई में जाने वाले रथ पर चढ़ा था, वह रथ सूर्य के समान प्रकाश कर रहा था और आयुधों से परिपूर्ण था वह पहिये के अग्र भाग से हँस रहा था। वह नग जटित आभूषणों से भूषित होने से मन्दराचल पर्वत की भाँति चमकीला प्रतीत होता था तथा समाप्त न होने वाले बाण भरे तूणों से परिपूर्ण वह रथ समुद्र की भाँति गम्भीर शब्द कर रहा था। उसमें गरुड़ के समान शीघ्र चलने वाले घोड़े जुते थे वे पर्वत के शिखर पर भी जा सकते थे उसके गर्भ में सुवर्ण का कूबर लगा था और वह दृढ़ धूरे से अत्यन्त सुशोभित हो रहा था। सुन्दर लगामों से चमकते गरुड़ के समान आकाश में गमन करने वाले घोड़ों से वह रथ इन्द्र के पर्वताकार रथ के समान ज्ञात होता था। सूर्य का व्रत पूर्ण होने पर स्वयं सूर्य ने इस रथ को उसे दिया था जो सूर्य की कीरणों के समान कीरणों से ही पहचान लिया जाता था। शत्रु के रथ को तोड़ने वाले उस प्रधान रथ पर

चढ़कर वह राजा शृगाल श्रीकृष्ण रूप अग्नि पर फतिंगे की भाँति चढ़ाई किया। वह हाथ में धनुष बाण लिये कवच धारण किये स्वर्ण की माला पहने अग्नि के समान आँखें लाल किये श्वेत पगड़ी बाँधे बार-बार चंचल प्रत्यञ्चा वाले कठिन धनुष को फेरते हुए अग्नि की ज्वाल-माला के समान रोष की वायु को छोड़ रहा था। आभूषणों की पंक्ति की चमक से स्वर्ण पर्वत के समान चमकता रथ पर बैठा हुआ राजा शृगाल शैलेन्द्र की भाँति दिखाई पड़ रहा था।।१-१०।।

उसके रथ की गर्जती हुई ध्वनि से प्रतिध्वनित और रथ की गम्भीरता से दबती हुई पृथ्वी भयातुर हो चलायमान हो गयी। साक्षात् मूर्तिमान् पर्वत की भाँति लोकपालों जैसे कान्तिमान् श्रीमान् राजा शृगाल को देखकर श्रीकृष्ण डिगे नहीं। शीघ्रगामी रथ पर क्रोध युक्त बैठा हुआ युद्ध की इच्छा से राजा शृगाल वासुदेव के समीप में दिखाई पड़ने लगा। वहाँ पर वासुदेव को स्थित देख युद्धाभिलाषी राजा शृगाल उन पर वैसे ही झपटा कि जैसे मेघों का समूह पर्वत पर झपटे। श्रीकृष्ण जी हँसकर युद्ध के लिये खड़े हो गये तब तो फिर उन दोनों का भयंकर संग्राम होने लगा वे दोनों वन में दो मत्त कुंजरों की तरह लड़ने लगे। युद्ध के राग से लाल हुआ अपने को गौरव रखने वाला राजा शृगाल व्यामोहित हो समर में उपस्थित श्रीकृष्ण से बोला। जो तुमने गोमन्त पर्वत पर नाहक ही मूर्ख और दुर्बल राजाओं की सेना में जो कुछ किया है, वह मुझे हे कृष्ण! अच्छी तरह ज्ञात है कि उस रणोत्सव में युद्ध को न जानने वाले बलहीन क्षत्रियों की पराजय हुई है। इस समय तुम अपनी भरपूर शक्ति से रथ में डटो मैं राजा के पद पर स्थित हूँ, हमारे द्वारा तुम घेर लिये गये हो अब भाग कर कहाँ जा सकते हो। मैं सेना के सहित तुमसे युद्ध करना नहीं चाहता, मैं अकेला, तुम अकेले से लड़ना चाहता हूँ।।११-२०।।

तुम और हम दोनों जब रण में स्थित हैं तो दूसरे लोगों के वध से क्या लाभ, आओ हम दोनों रण में धर्म युद्ध करें ताकि एक ही मृत्यु को प्राप्त हो। तुमको मार डालने पर इस संसार में मैं ही एक वासुदेव होऊँगा और हमारे मारे जाने पर तुम भी एक वासुदेव होओगे। क्षमाशील श्रीकृष्ण-शृगाल के वचनों

को सुन क्रोध कर "प्रहार करो" ऐसा कहकर सुदर्शन चक्र को उठाये। फिर तो क्रोध से मूर्छित शृगाल शीघ्रतापूर्वक श्रीकृष्ण के ऊपर भयंकर बाणों की वर्षा करने लगा। पश्चात् मुसल आदि अन्य जो अस्त्र-शस्त्र थे उन्हें भी श्रीकृष्ण के ऊपर प्रतापी शृगाल ने चलाया। अग्नि की ज्वालाओं की माला की भाँति अस्त्रों से निर्दयता पूर्वक शृगाल द्वारा आहत होने पर भी श्रीकृष्ण पर्वत की भाँति समर में अचल रहे। वे श्रीकृष्ण जी अस्त्रों से आहत होने पर किंचित् क्रोध युक्त हो शृगाल की छाती पर सुदर्शन चक्र को चलाये। चक्र के भय से न भागते हुए रथ पर बैठे युद्ध-दुर्मद एवं घमण्ड से भरे महाबली शृगाल को उस चक्र ने मार डाला। फिर वह सुदर्शन चक्र श्रीकृष्ण जी के हाथ में आ गया चक्र द्वारा शृगाल का वक्षस्थल विदीर्ण हो गया उससे रक्त बहने लगा, शोभा रहित हो वह विदीर्ण हुए पर्वत की भाँति गिर पड़ा। वज्रपात होने पर गिरे हुए पर्वत की भाँति राजा का गिरना सुनकर तथा शृगाल को मरा जानकर उसकी सेना भयभीत हो भागने लगी।।२१-३०।।

अपने स्वामी के शोक से पीड़ित कोई दुःख से संतप्त हो नगर में प्रवेश कर रुदन करते हुए भूमि पर गिरे हुए शृगाल को घेर कर दुःखित हो स्थित रहे। तत्पश्चात् राजा के आदमियों को अभयदान दिये। चक्र धारण करने वाले हाथ की सुन्दर पर्वों वाली अँगुलियों से निर्देश करते हुए तुम्हें न भयभीत होना चाहिये- तुम्हें न भयभीत होना चाहिये इस प्रकार राजपुरुषों से बोले। इसके पाप के दोष से बाधा न पहुँचाने वाले जनों को समर में मैं न मारूँगा, ऐसार मारना शूर-व्रत नहीं है। युद्ध में मार खाकर दीन हो शृगाल गिर गया है, इसलिये प्रजागण अश्रुपूर्ण मुख वाले हो रुदन करते हुए अत्यन्त दुःखी हो गये। वे खण्डित शिखर वाले पर्वत के समान पृथ्वी पर गिरे हुए चक्र से विदारित हृदय वाले अपने धरणी-पति को देखने लगे। सभी प्रजा और मंत्रीगण शोक के वश हो आँखों से आँसू बहाते हुए विलाप करने लगे। मंत्रियों और नगर निवासियों के विस्वर स्वर के रुदन को सुनकर राजा की पटरानियाँ पुत्रों सहित रोती हुई घर से निकल पड़ीं। वे अपने पति प्रशंसनीय राजा को भूमि पर गिरा देखकर हाथों से छाती पीटती हुई विलाप करने लगीं।।३१-४०।।

वे विकल हो निर्दयता पूर्वक अपने कुचों को ताड़ित करती एवं शिर के बालों को खींचती हुई बड़े करुण स्वर में रुदन करने लगीं। राजा के विदीर्ण वक्षस्थल को देखकर अत्यन्त दुःख से दुःखी हो अश्रु से भिगे नेत्रों वाली वे कोमल राज-रानियाँ अपने भुजाओं को ऊपर उठाकर कटी हुई जड़ वाली लताओं के समान गिर पड़ीं। उन रानियों के अश्रु जल से पूर्ण नेत्र; पाले से आहत कमल के समान प्रतीत हो रहे थे। अपने पति को भूमि पर गिरा देख कर छाती पीट कर रोती हुई एवं पति से प्यार प्रदर्शित करती हुई करुणा से विलाप करने लगीं। तत्पश्चात् श्रृगाल के अश्रु भरे आँखों वाले बालक पुत्र शक्रदेव को अपने आगे ले उसके पिता के पास खड़ा कर रानियाँ दूना रुदन करने लगीं। हे पराक्रमी वीर! यह तुम्हारा पुत्र अभी बालक है राजनीति में अज्ञ है, तुमसे रहित हो यह कैसे राज्य सिंहासन पर स्थित रह सकेगा अर्थात् कैसे राज्य का भार सँभालेगा। एकाएक हमें छोड़कर दूसरे अन्तःपुर को क्यों चले गये अभी हमलोग तुम्हारे सुख से तृप्त नहीं हुई हैं, इसलिये हम विधवायें क्या करें? बताओ। उसकी रानियों में प्रमुख पटरानी पद्मावती पुत्र को लेकर रोती हुई श्रीकृष्ण के समीप गई और बोली कि हे वीर! संग्राम कर जिसे तुमने गिरा दिया है उसी मारे गये राजा का यह पुत्र तुम्हारी शरण में आया है। यदि यह तुम्हें प्रणाम करे और तुम्हारे शासन को माने तो तुम्हें एकाएक इस राज्य पर प्रहार न करना चाहिये नहीं तो प्रजा को अत्यन्त कष्ट होगा।।४१-५०।।

यदि यह अज्ञ बालक तुम्हारे साथ बान्धवों की भाँति व्यवहार करेगा तो कच्चा मांस खाने वाले क्रूर जीवों से इस राज्य की पृथ्वी सेवित नहीं होगी। इस मरे हुए तुम्हारे बान्धव का यह पुत्र है इसलिये अपने पुत्र के समान इसका पालन करो। इस प्रकार पटरानी के वचन सुन वक्ताश्रेष्ठ यदुनन्दन कोमलतापूर्वक बोले-हे राजपत्नि! मेरा क्रोध इस दुरात्मा श्रृगाल के ही साथ चला गया इस समय मैं अपने स्वाभाविक स्थिति में हूँ। हे देवि! तुम्हारा वही बान्धव हूँ। हे साध्वि! तुम्हारे दोष रहित वचनों से मेरा क्रोध चला गया अर्थात् मैं प्रसन्न हो गया, यह श्रृगाल का पुत्र है हमारा भी पुत्र है इसमें संशय नहीं है। इसको सुखी करने के लिये मैं इसका राज्याभिषेक करूँगा तुम अपने

पुरोहित और मन्त्रिगणों तथा प्रजाओं को बुलाओ। मैं तुम्हारे पुत्र का पितृ-पितामह के परम्परागत राज्य पर पहले अभिषेक करूँगा तत्पश्चात् पुरोहित, मन्त्रिगण एवं सभी प्रजा अभिषेक करेगी। फिर तो जहाँ बलराम और श्रीकृष्ण थे वहीं अभिषेक करने के लिये सभी सामानों के सहित लोग चले आये तत्पश्चात् राज्य सिंहासन पर बैठाकर समर्थ श्रीकृष्णजी ने सुन्दर अभिषेक के ढंग से श्रृगाल के पुत्र शक्र का करवीरपुर के राज्य पर अभिषेक कर उसी दिन शीघ्र वहाँ से प्रस्थान कर देने का विचार किये। फिर श्रृगाल के सूर्य प्रदत्त रथ से श्रीकृष्णजी वैसे ही मथुरा के लिये प्रस्थान कर दिये कि, जैसे वृत्रासुर को मार कर इन्द्र स्वर्ग के लिये प्रस्थान किये थे।।५१-६०।।

हे परंतप! इधर धर्मात्मा शक्रदेव अपनी माता और आबालवृद्ध एवं प्रधान युवतियों और प्रजा, मन्त्रिगण तथा पुरोहितों के साथ युद्धदुर्मद अपने पिता श्रृगाल के शव को पालकी में चढ़ाकर शीघ्र पश्चिम मुख हो श्मशान पर चला गया। फिर अन्त्येष्टि क्रिया के विधान से उनकी सत्क्रिया किया पश्चात् अपने पिता का पारलौकिक संस्कार किया। अपने पिता के उद्देश्य से हजारों श्राद्ध किया और नामगोत्र का उच्चारण कर तर्पण किया। पिता के मर जाने पर तिलाञ्जलि आदि दे शोक से उदासीन मन हो राजा शक्रदेव अपने उत्तम पुर में प्रवेश किये।।६१-६५।।



अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।।४५।।

वैशम्पायनजी बोले कि-श्रीकृष्ण-बलराम दमघोष के साथ थोड़े ही काल में पाँच रात्रि मार्ग में पड़ाव डालते प्रसन्नता पूर्वक मथुरा नगरी को चले गये; वह पाँच रात्रियों का पड़ाव दमघोष के साथ उन्हें एक रात्रि के समान प्रतीत हुआ। जब वे मथुरा के समीप पहुँचे तो सभी यादव उग्रसेन को आगे किये सेना सहित उनकी आगवानी के लिये निकल आये। अनेक शिल्पकारों और प्रजाओं एवं मंत्रिगणों तथा बालक-वृद्धों एवं अटारियों पर चढ़ी हुई नारियों से वह पुरी उमड़ गयी। नन्दि, तूर्य और नगारे बजने लगे और लोग

श्रीकृष्ण-बलराम की स्तुति करने लगे, गलियाँ पताकाओं एवं मालाओं से सर्वत्र चमकने लगीं। श्रीकृष्ण और बलराम जी के आ जाने से सम्पूर्ण पुरी इन्दयज्ञ के समान परम प्रसन्न हो अत्यन्त सुशोभित होने लगी। गायक लोग राज मार्गों पर प्रसन्न हो गीत गाने लगे, वे प्रशंसा और आशीर्वाद वाली गीतें यादवों को बड़ी प्रिय ज्ञात हाने लगीं। वे अपनी गीतों में हे यादवो! लोक विख्यात श्रीकृष्ण-बलराम अपने पुर मथुरा में आ गये हैं, अतः आप लोग सुख पूर्वक निर्भय हो बिहार करें। श्रीकृष्ण-बलराम के मथुरा में आ जाने पर वहाँ कोई दीन, मलिन तथा दुःखी नहीं रह गया अर्थात् सभी प्रसन्न हो सुखी हो गये। श्रीकृष्ण के मथुरा आ जाने पर पक्षी मंगलकारिणी बोलियाँ बोलने लगे और गौवें, घोड़े, हाथियाँ और नर-नारियों के समूह सभी प्रसन्न हो मानसिक सुख में निमग्न हो गये।।१-१०।।

कल्याणप्रद, शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु चलने लगा और दिशायें रज रहित हो निर्मल हो गयीं। जो लक्षण सत्युग के होते हैं वे सभी लक्षण श्रीकृष्ण-राम के आगमन पर दिखाई देने लगे। ऐसे कल्याणप्रद पुण्य बेला में घोड़ों से जुते रथ पर बैठ कर दोनों अरिमर्दन वीर मथुरापुरी में प्रवेश किये। उस रम्य पुरी में प्रवेश करते समय श्रीकृष्ण और राम के पीछे, इन्द्र के पीछे देवताओं की भाँति यादव चल रहे थे। इस प्रकार वे यदुनन्दन प्रसन्न वदन हो अपने पिता वसुदेव के भवन में वैसे ही प्रविष्ट हो गये कि जैसे चन्द्रमा और सूर्य अस्ताचल पर प्रवेश करते हैं। अपनी इच्छानुकूल विचरण करने वाले यदुवीर वसुदेव-पुत्र अपने घर में आयुधों को रखकर परम प्रसन्न होते हुए। वसुदेव के चरणों में नमस्कार कर वहाँ राजा उग्रसेन तथा अन्य श्रेष्ठ यादवों का पूजन तथा नमन कर सबका आशीर्वाद प्राप्त कर प्रसन्न मन होते हुए माता के भवन में गये। इस प्रकार एक ही तरह के धर्म-राज्य के विधान का निर्माण करने वाले सुन्दर मुखाकृति वाले उग्रसेन के अनुकूल रहकर मथुरा में कुछ काल प्रसन्नता से बिताया।।११-१९।।

◆◆✱◆◆

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४६।।

वैशम्पयानजी बोले कि–कुछ समय मथुरा में रहने के पश्चात् गोपों के प्रेम का स्मरण कर श्रीकृष्ण की अनुमति से बलरामजी अकेले व्रज अर्थात् वृन्दावन को गये। बलरामजी वनचारी गोपों के सुन्दर वेष से अलंकृत हो तीव्रगति से व्रज में प्रवेश किये। वे अरिंदम पूर्व की प्रीति के समान ही उन गोपों से यथोचित अवस्था के अनुसार प्रणाम, आशीर्वाद के वचनों से बोले। जिस प्रकार सबको प्रसन्न करते हुए पहले बोलते थे उसी प्रकार सबको प्रसन्न करते हुए गोपों से वार्तालाप किये और गोपियों से भी पहले की भाँति जैसा उचित था मधुर कथायें कहीं। रमण करने वालों में श्रेष्ठ तथा प्रवास से पुनः व्रज में आये हुए उन बलराम से मधुरभाषी वृद्ध गोपों ने प्रिय वाणी में कहा कि, हे यदुकुल को आनन्द देनेवाले महाबाहो! आपका स्वागत है, आज हम लोग तुम्हें देखने से सुखी हो गये। हे वीर! तुम्हारे यहाँ आ जाने से हम लोग प्रसन्न हो गये, क्योंकि तुम शत्रुओं को भय प्रदान करने वाले हो और तीनों लोकों में विख्यात हो गये हो। हे यादवनन्दन! तुम्हें हम लोगों को बढ़ाना चाहिये अथवा सभी प्राणी अपनी जन्मभूमि में सुख मानते हैं, ऐसा समझ कर भी तुम्हें यहाँ आना चाहिये। हे अमलानन! तुम्हारे दर्शन देने पर आज हम लोग देवताओं की तरह पूजनीय हो गये हैं, हम लोग तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।।१-१०।।

दैवयोग से तुम लोगों ने मल्लों को मार डाला और कंस का भी वध कर डाला पश्चात् उग्रसेन को महात्मा होने से राज्य पर अभिषिक्त कर दिया और समुद्र में जो बड़े मत्स्य के समान पंचजन राक्षस से संग्राम कर उसका वध किया तत्पश्चात् जरासंध से जो संग्राम किया वह सब हम लोगों ने सुना फिर जो गोमन्त पर्वत पर क्षत्रियों से संग्राम हुआ वह भी सुना। उस संग्राम में आयुधों का आकाश से उतरना और राजा दरद का वध एवं जरासन्ध का पराजित होना भी हम लोगों ने सुना है। पुरी में उत्तम करवीरपुर में राजा श्रृगाल का वध तथा उसके पुत्र शक्र का राज्याभिषेक एवं नगर निवासियों

को सान्त्वना देना और देवताओं के द्वारा कीर्तन के योग्य मथुरा में आप लोगों का प्रवेश तथा राजाओं को वश में कर इस पृथ्वी को प्रतिष्ठित करना यह सब सुना है। तुम्हारे आगमन को देखकर हम सभी पहले की भाँति भाग्यवान् हो गये और परम सन्तुष्ट हो बान्धवों सहित हर्षित हो रहे हैं। अपने चारों ओर खड़े हुए गोपों से इसके प्रतिउत्तर में बलराम बोले कि, सम्पूर्ण यादवों मे आप लोग श्रेष्ठ बान्धव हैं। हम दोनों का यहाँ लड़कपन बीता है, हम लोगों ने इस भूमि पर खेला है, आप लोगों ने हम दोनों का पालन-पोषण कर बड़ा किया है, यह सब हम लोग कैसे भूल सकते हैं। आप लोगों के घरों में भोजन किया है, गौओं को चराया है, आप सभी लोग हम लोगों के प्रेम में बँधे हुए बान्धव हैं। गोपों के बीच खड़े बलरामजी के इन सब सच्ची बातों को कहते समय गोपिकायें बार-बार प्रसन्न मुख हो हँसती रहीं।।११-२०।।

तत्पश्चात् महाबली बलरामजी वन में जाकर आनन्द लेने लगे, इस समय यह समझ कर कि ये वारुणी का पान करेंगे, देशकालज्ञ गोपालों ने वारुणी लाया तब श्वेत बादल के समान श्वेत वर्ण वाले अपने बान्धवों से घिरे बलरामजी ने वारुणी का पान किया। वन में जाने के बाद जब मद के गन्ध को उड़ाने वाली वारुणी का पान कर लिये तब उनके लिये वन में उत्पन्न होनेवाली अनेक प्रकार की वस्तुएँ लाये। जैसे सूँघने योग्य सुगन्ध वाले सुन्दर फूल और मन को अच्छे लगने वाले खाने योग्य सुन्दर फल लाकर उनके आगे रख दिया और तुरन्त के तोड़े हुए कमल और फूले हुए उत्पल ले आये, शिर पर टेढ़े मुकुट से कुछ ढके कुछ खुले घुघुराले बालों वाले, एक कान में लटकते शोभायमान कुण्डल वाले पीला चन्दन लगाने से नीले शरीर वाले वक्षस्थल पर लटकती वनमाला वाले बलरामजी कैलास पर्वत के समान सुशोभित हो रहे थे। शीघ्र जल बरसने वाले मेघ के समान नीले वस्त्र को धारण किये बलरामजी का शरीर वैसे ही शोभा पा रहा था कि, जैसे अन्धकार में ढका चन्द्रमा शोभा पाता है। सर्प के समान भुजाओं के अग्रभाग में हल और मुसल लिये बलियों में श्रेष्ठ गम्भीर मुख वाले मद-मत्त बलरामजी मद के आलस्य से शिशिर ऋतु की रात्रि का तीन पहर बीतने पर ओसरूपी

पसीने से युक्त चन्द्रमा की भाँति ज्ञात हो रहे थे। उस समय बलरामजी ने यमुना से कहा कि हे महानदि! मैं स्नान करने की इच्छा कर रहा हूँ, अतः हे सागर से संगम करने वाली तुम मेरे पास आओ।।२१-३०।।

बलरामजी की वाणी मदावेश में कही गई समझ कर स्त्री स्वाभव से लज्जित हो उनके समीप यमुना नहीं गयीं। यमुना के नहीं आने से मद से उठी नशा वाले बलरामजी क्रुद्ध हो गये और यमुना को खींचने के लिये हाथ में हल ग्रहण कर नीचे मुख किये। यमुना को हल से खींचते समय देवताओं की मालायें गिरने लगीं और पुष्प के कोशों के सुगन्धित पराग से मदिरा की भाँति लाल जल गिरने लगा। हल के झुके हुए भाग से किनारे को पकड़ कर उस महानदी यमुना को कामपीड़िता स्त्री की भाँति बलरामजी ने खींचा। वह व्याकुल जल के स्रोतों वाली कुण्ड से खलबला कर चलती हुई मछलियों वाली नदी भयभीत हो हल के मार्ग से लौट पड़ी। हल के मार्ग से चक्कर काटकर बहते हुए जल वाली यमुना अति वेग से आती हुई बलरामजी के भय से स्त्री की भाँति व्याकुल होने लगी। बालुकामय किनारों रूपी जाँघों वाली तथा लाल कमलमण्डल रूपी ओठों वाली, जलधारा से ताड़ित फेनों के बने कोमल सूतों रूपी करधनी से युक्त समुद्र की ओर बहने वाली ऊपर मुख किये चक्रवाक रूपी उन्मुख स्तनों वाली, गम्भीर वेग से टेढ़ी अङ्गों वाली, डरे हुए मीन रूप आभूषणों को धारण करने वाली, तरंगों की विषमता से पीड़ित श्वेत हंसों रूपी हँसो से हँसती नेत्रों के टेढ़े कटाक्षों वाली, काश रूपी रेशम के वस्त्रों को धारण करने वाली, किनारे पर उत्पन्न होने वाले शैवालादिक रूप केशों वाली, जल को नीचे स्खलित कर बहने वाली। हल से की गई टेढ़ी रेखा का अनुसरण कर चलने पर सागर में संगम करने वाली क्षुभित यमुना राजमार्ग से चलती हुई मदमत्त कुलटा स्त्री की भाँति ज्ञात हो रही थी।।३१-४०।।

हल द्वारा ऊँचे से नीचे बहने के योग्य मार्ग से यमुना खींची जा रही थी कि, जिससे वह वृन्दावन नामक वन में आवे। ऐसा करने से वह यमुना वृन्दावन के बीच से बलराम के पास खींच ली गई, वह जल निवासी पक्षियों से युक्त नदी रोती सी दिखाई पड़ रही थी। वृन्दावन से होती हुई जिस समय

वह नदी बलरामजी के समीप पहुँची तो वह स्त्री का रूप धारण कर उनसे बोली। हे नाथ! मैं उस उल्टे कर्म से भयभीत हो गई हूँ, अतः आप अब प्रसन्न हों जाइये, मेरा रूप और मेरा जल उल्टा हो गया है अर्थात् समुद्र में संगम करने वाली मैं आपके समीप आ गई हूँ। हे रोहिणीपुत्र! तुमने नदियों के बीच मुझे परपुरुषगामिना बना दिया; हे महाबाहो! तुम्हारे इस खिंचने से मैं अपने मार्ग से भ्रष्ट हो व्यभिचारिणी हो गई। हे वीर! सागर में हमसे पहले पहुँचने वाली वेग से गर्वित अन्य नदियाँ फेन रूप हँसी से मुझ उल्टी बहन वाली को हँसी करेंगी इसलिये मेरे ऊपर कृपा कीजिये क्योंकि आप श्रीकृष्णजी के बड़े भाई हैं, हे देवताओं में उत्तम बलरामजी! मेरे ऊपर आप सदा प्रसन्न रहिये। खींचने योग्य हल रूप आयुध से मैं खींची गई हूँ, अतः अपने क्रोध को दूर कर दीजिये, हे हलायुध! मैं आपके चरणों में यह शिर से प्रणाम कर रही हूँ, हे महाभुज! मेरे मार्ग का निर्देश कीजिये मैं किस मार्ग से कहाँ जाऊँ! वैशम्पायनजी बोले कि-हलायुध बलरामजी नम्रता से झुकी हुई उसे देखकर मद से भींगी सागर-पत्नी यमुना से बोले कि- हे प्रियदर्शनि! इस मेरे हल द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से बहती हुई जल प्रदान से इस देश को भिंगो दो।।४१-५०।।

हे सुभ्रु! यही तुम्हारे लिये मेरी आज्ञा है, इसके बाद हे महाभागे! शान्ति को प्राप्त हे सुखपूर्वक सागर को गमन करो। जिससे जबतक यह लोक रहे तबतक यह मेरा यश रहे, फिर ऐसा ही हुआ। यमुना का खींचा जाना देखकर व्रजवासी साधु-साधु कह कर बलरामजी को प्रणाम करने लगे, तत्पश्चात् प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ बलरामजी मन से मथुरा आना सोचकर उस महाभाग यमुना और उन व्रजवासियों को उनके स्थानों पर लौटाकर आप मथुरा को लौट आये। वहाँ अपने गृह पर पहुँच पर अविनाशी तत्त्व मधुसूदन को टहलते हुए देखा। पश्चात् अपने वक्षस्थल पर सुन्दर वनमाला को आगे किये हुए बटोही के वेष को धारण कर जनार्दन के पास जब पहुँचे तो शीघ्रता से आते हुए हलधारी बलराम को देख गोविन्द ने झट आत्मानुकूल आसन दिया। जब बलराम आसन पर बैठ गये तब श्रीकृष्ण ने व्रज का और सभी बान्धवों का एवं गोपियों तथा गौओं का कुशल-समाचार पूछा। तत्पश्चात्

सत्यवक्ता भाई श्रीकृष्णजी से उत्तर में बलरामजी ने कहा कि, हे कृष्ण! तुम जिनका कुशल चाहते हो वे सभी कुशल से रहते हैं, यह निः सन्देह है। तत्पश्चात् वसुदेव के आगे राम और केशव में विचित्र अर्थों को रखने वाली बड़ी पुरानी कथायें होने लगीं।।५१-६०।।



अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।।४७।।

वैशम्पायनजी बोले कि–इसी बीच लोकपालों के समान चक्रायुध श्रीकृष्णजी के सभा भवन में संसार के समाचार की सूचना देने वाले मनुष्य आये। विरोधियों की बात कहने वाले उन गुप्तचरों के कृष्ण की सभा में आ जाने पर सभी श्रेष्ठ यादव वहाँ इकट्ठे हो गये। तब सभी श्रेष्ठ यादवों के सभा में एकत्र हो जाने पर गुप्तचरों ने राजाओं के विरोध की अर्थात् राजाओं के विनाश की बातें कहीं कि– हे जनार्दन! भीष्मक-पुत्र रुक्मी की आज्ञा से कुण्डिनपुर में अनेक मूर्ख छोटे-बड़े राजाओं और तालुकेदारों का आगमन हो रहा है, शीघ्रता से वहाँ अनेकों राजे गमन कर रहे हैं। मनुष्यों के द्वारा कही हुई यह बात सुनी जा रही है कि रुक्मी की रुक्मिणी नाम की जो बहन है उसी का वहाँ स्वयंवर होने वाला है इसीलिये हे जनार्दन! सेना के सहित ये राजे वहाँ जा रहे हैं। हे यादव! सुवर्ण के आभूषणों से भूषित त्रैलोक्य सुन्दरी उस रुक्मिणी का आज के तीसरे दिन स्वयंवर होना निश्चित है। तो हमलोग भी हाथी, घोड़े और रथों द्वारा जाकर इकट्ठे हुए उन बड़े-बड़े राजाओं के सैकड़ों शिविरों को देखेंगे। सिंह और शार्दूल के समान बल गर्वित युद्ध से प्रेम रखने वाले मद-मत्त गजराज की भाँति चलने वाले तथा परस्पर द्वेष रखने वाले राजाओं को देखेंगे।।१-१०।।

जब रुक्मिणी को प्राप्त करने की लिप्सा से सम्पूर्ण राजे अपनी विजय के लिये सेना सहित वहाँ जा रहे हैं तो क्या हमीं लोग भीलों के समान एकान्त में विचरण करने वाले निरुत्साहित हों? अर्थात् नहीं, हे यदुनन्दन! हम लोग भी अत्यन्त उत्साह से वहाँ चलें। हृदय में काँटे की तरह चुभने वाली बात

सुनकर यदुकुल श्रेष्ठ श्रीकृष्ण यादवों की सेना साथ ले कुण्डिनपुर चल पड़े। संग्राम की लालसा से महाबलवान् सभी यादव देवताओं के समान श्रेष्ठ रथों द्वारा कूच कर दिये। रुद्रगणों की भाँति आगे चलने वाली सेना से हरि भगवान् शंकर की भाँति ज्ञात हो रहे थे एक हाथ में चक्र उठाये और एक हाथ में गदा लिये श्रीकृष्णजी बड़े शोभित हो रहे थे। कुछ यादव वसुदेव के पीछे बजती हुई घण्टियों वाले सूर्य के समान तेजस्वी रथों पर बैठ कर चलते हुए शोभा पा रहे थे। निश्चित बात को देखने वाले गोविन्द उग्रसेन से बोले कि हे नृपशार्दूल! आप मेरे बड़े भाई के साथ हे निष्पाप ! यहाँ मथुरा में रहें। ये क्षत्रिय कपट बुद्धि वाले और युद्ध शास्त्र की नीतियों के जानकार हैं, मेरे चले जाने से इस पुरी को शून्य पाकर धावा बोल देंगे। जरासन्ध के अनुयायी राजे अपने राज्यों में देवताओं के समान स्वर्गीय आनन्द कर रहे हैं, केवल हम्ही से शंकित रहते हैं। वैशम्पायन जी बोले कि-इन वचनों को सुन कर महायशस्वी भोजराज श्रीकृष्ण के प्रेम से प्रभावित हो अमृत के समान वचन बोले कि-हे महाबाहो श्रीकृष्ण! हे यादवों के आनन्द को बढ़ाने वाले रिपुसूदन! आज जो मै कह रहा हूँ उसे सुनो।।११-२०।।

तुम्हारे बिना इस पुर में अथवा दूसरे देश में हम सब सुख से रहने में पतिहीन स्त्रियों की भाँति समर्थ नहीं हैं। हे तात! हम लोग तुम्हीं से सनाथ हैं और तुम्हारे बल के आश्रित रहने से हे मानद! इन्द्र के समान बलवान् राजाओं से भी भयभीत नहीं होते। हे यदुश्रेष्ठ! तुम जहाँ-जहाँ विजय के लिये जाओ वहाँ-वहाँ हम लोगों के साथ जाना चाहिये। राजा की बात सुन कर देवकीपुत्र श्रीकृष्णजी मुस्करा कर बोले कि, आप लोगों की जैसी इच्छा है, उसी प्रकार मैं करूँगा इसमें संशय नहीं है। वैशम्पायनजी बोले कि-इस प्रकार कहकर श्रीकृष्णजी शीघ्र रथ से कुण्डिनपुर को चल दिये और सूर्यास्त के समय राजा भीष्मक के घर पर पहुँच गये। राजाओं के समाज के जाने पर वहाँ का भूतल शिविरों से ढक गया वहाँ बृहदाकार स्वयम्वर मण्डप को देखकर श्रीकृष्णजी ने अपना राजसी शरीर धारण कर लिया। राजाओं को भयभीत करने तथा अपने प्राचीन प्रभाव का दर्शन कराने के लिये मनसे विनता-पुत्र महाबली

गरुड़ का स्मरण किये। भगवान् श्रीकृष्ण के स्मरण मात्र को जान कर विनतात्मज गरुड़ अपने शरीर को सजा कर केशव के समीप आने लगे। गरुड़ के वायु को आगे से खींचकर पीछे ऊपर को छोड़ने वाले पंखों के निपात से वहाँ सभी मनुष्य कम्पित हो नीचे मुख किये पृथ्वी पर गिर पड़े। गरुड़ से भयभीत हो सभी डरे हुए सर्प की भाँति चेष्टा करने लगे, उन राजाओं को पृथ्वी पर गिरा देख श्रीकृष्णजी पर्वत की भाँति अचल खड़े रहे।।२१-३०।।

अपने पक्ष के पात से राजाओ को गिराने वाले पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ को दिव्य माला और चन्दन धारण कर आया देख राजा भीष्मक ने स्वागत किया। उनकी पीठ पर जीभ लपलपाते सर्पों की भाँति भयानक आयुध रखे थे, वे अपने पंखों की वायु से बार-बार पृथ्वी को चलयमान कर रहे थे। विष्णु के हस्त स्पर्श से वे प्रसन्न हो नीचे मुख किये अपने अगले चरणों में लिपटे श्वेत रंग के श्रेष्ठ सर्प को नोच रहे थे। जो स्वर्ण पत्रों से विचित्र पंख वाले गरुड़ धातु वाले पर्वत के समान विशाल ज्ञात हो रहे थे जो अमृत को हरण करने वाले तथा सर्पराजों का विनाश करने वाले थे। जो दैत्यों के समूहों को भयभीत करने वाले थे, जिनका रूप ध्वजा पर अङ्कित था जिनकी बुद्धि आपत्तिकाल में मन्त्रियों के समान सहायता करने वाली है। ऐसे धैर्यशाली गरुड़ध्वज गरुड़ को देवता के समान अपने समीप आया देख कर परम प्रसन्न हो मधुसूदन अपने सामर्थ्य के तुल्य वाणी बोले-श्रीकृष्ण ने कहा कि हे आकाशचारियों में श्रेष्ठ अपनी माता विनता के हृदय को आनन्द देने वाले, हे देव सैन्य के शत्रु को मर्दन करने वाले मेरे प्रिय गरुड़! तुम्हारा स्वागत है। हे पक्षिश्रेष्ठ ! तुम राजा कैशिक के भवन को चलो वहाँ जाकर हम लोग स्वयम्वर की प्रतीक्षा करेंगे। हाथी, घोड़ों तथा रथों से आकर इकट्ठे हुए सेना सहित सैकड़ों महात्मा राजाओं को देखेंगे। महाबली गरुड़ से इस प्रकार कह कर महाबाहु श्रीकृष्ण महात्मा कैशिक के पुरी को चल दिये।।३१-४०।।

महारथी यादवों के साथ गरुड़ पर चढ़कर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण के विदर्भ नगर पहुँचने पर सभी शस्त्र तथा आयुधधारी बलवान् राजे प्रसन्नता से उछलते हुए अपने निवास के लिये डेरे-तम्बू ठीक कर रहे थे। वैशम्पायनजी

बोले कि-ऐसे समय में श्रीकृष्ण के पहुँचने पर नीतिकुशल कैशिक अन्तरात्मा से प्रसन्न हो स्वागत के लिये उठ खड़ा हुआ। राजा कैशिक अर्ध्य और आचमन अपने हाथों दे श्रीकृष्णाजी का सत्कार कर अपने पुर में ले गया। श्रीकृष्णजी के ठहरने के लिये उसने पहले से ही दिव्य मन्दिर बनवाया था उसी में सेना सहित श्रीकृष्णाजी वैसे ही चले गये कि जैसे कैलास पर शंकरजी चले जाते हैं; वहाँ पहुँचने पर कैशिक ने भोजन, पान आदि तथा-रत्नों की मालाओं से श्रीकृष्ण की पूजा की। प्रेमपूर्ण हृदय से मान द्वारा सत्कृत हो राजा कैशिक के स्वागत भवन में सुख से श्रीकृष्ण रहे।।४१-४६।।



अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः।।४८।।

वैशम्पायनजी बोले-गरुड़ के साथ श्रीकृष्णजी को आया देखकर सभी राजे चिन्ता से व्याप्त हो गये। हे राजन्! वे सभी नीति कुशल और भयंकर पराक्रमी मन्त्रणा करने में चतुर राजे मन्त्रणा करने के लिये सभा में इकट्ठे होने लगे। वे श्रेष्ठ राजे राजा भीष्मक की स्वर्ण रचित रम्य सभा में जाकर चित्र-विचित्र बिछौने बिछे सिंहासनों पर देवसभा में देवताओं की भाँति बैठ गये। उन राजाओं में महाबली महाबाहु महातेजस्वी जरासन्ध देवताओं में इन्द्र की भाँति बोला। जरासन्ध बोला कि-हे वक्ताओं में श्रेष्ठ राजाओं और महामते भीष्मक! बुद्धि के अनुसार कहे मेरे वचनों को सुनें। जो यह बली वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण के नाम से विख्यात है वह गरुड़ की सहायता से यहाँ कुण्डिनपुर में आ गया है। वह महातेजस्वी, यादवों की सेना सहित कन्या प्राप्त करने की इच्छा से आया है और वह वैसा ही यत्न भी करेगा कि, जिस प्रकार उसे कन्या प्राप्त हो जाय। तो ऐसे समय में हे नृपशार्दूल राजाओं! अपने बलाबल का निश्चय कर सुन्दर नीतियुक्त वही कार्य करो कि जिससे विजय प्राप्त हो जाय। क्योंकि गोमन्त पर्वत के समीप सेना रहित गरुड़ के बिना पैदल ही दोनों महाबली वसुदेव पुत्रों ने जो महाघोर संग्राम किया था वह आप लोगों को विदित ही है। तो इस समय जब कि वृष्णियों, यादवों और भोजवंशी एवं

अन्धक वंशी महारथियों के साथ संग्राम में आकर युद्ध करेगा तो वह कैसा भयंकर संग्राम होगा इसे आप लोग समझें।।१-१०।।

जब वह विष्णु गरुड़ पर चढ़ कर कन्या के लिये यत्न करने लगेंगे तो उनके सम्मुख कौन टिक सकेगा तब तो देवताओं के साथ इन्द्र भी नहीं ठहर सकते। यदि हम लोग इन्हें कन्या नहीं देंगे तो ये देवताओं को साथ लेकर बलपूर्वक कन्या लेने में समर्थ हो सकते हैं। सुना जाता है कि पहले यह पृथ्वी पाताल के नीचे गहरे समुद्र में डूबी हुई थी तब इस प्रभावशाली जगत् के आदि कारण विष्णु ने वाराह रूप धारण कर इस पृथ्वी को ऊपर लाया और उसी वाराह रूप से दैत्येन्द्र हिरण्याक्ष का वध किया और हिरण्यकशिपु जो कि महान् बली एवं पराक्रमी तथा देवता, दैत्यों, ऋषियों, गन्धर्वों और किन्नरों से अवध्य था। जिसे यक्ष, राक्षस तथा नाग कोई भी नहीं मार सकते थे, न वह आकाश में मर सकता था, न पृथ्वी पर, न पृथ्वी के नीचे, न रात्रिमें, न दिन में, न शुष्क वस्तु से, न गीली वस्तु से ऐसे तीनों लोकों में अवध्य और अपराजित दैत्येन्द्र को इसी विष्णु ने नृसिंह रूप धारण कर मार डाला था। कश्यप की धर्मपत्नी अदिति के गर्भ से उत्पन्न वामन रूपधारी इन्हीं बली विष्णु ने असुरोत्तम राजा बलि को सत्यमय बन्धन में बाँधकर पाताल भेज दिया और हजार भुजाओं को धारण करने वाले महाबलवान् सहस्त्रबाहु को जो कि गुरु दत्तात्रेय के वर के मद से तथा राज्य के मद से मत्त होकर घूम रहा था, ऐसे हैहय वंशीय सातों द्वीपों के राजा को रेणुका के गर्भ से जमदग्नि पुत्र होकर अर्थात् शस्त्रधारियों में उत्तम परशुरामावतार धारण कर इन्हीं विष्णु ने त्रेता और द्वापर की सन्धि में वज्र के समान फरसे से मार डाला।।११-२०।।

फिर इक्ष्वाकु कुल में दशरथ पुत्र राम बनकर त्रिलोक-विजयी वीर रावण को उसके सहायकों सहित मार डाला। पहले सत्ययुग में इन्हीं बली विष्णु ने तारकामय संग्राम में आठ भुजायें धारण कर गरुड़ पर सवार हो वरदान से गर्वित दैत्यों का वध किया था और देवताओं को भय देने वाला जो कालनेमि दैत्य था। उसे हजारों किरणों से चमकते हुए चक्र से संग्राम में मार डाला; इसी प्रकार विश्वरूप अजन्मा इन्हीं विष्णु ने काल के वशीभूत

बहुत से दैत्यों को मार डाला; बाल भाव से वन में खेलते हुए इन्होंने वन में विचरने वाले महाबली और पराक्रमी प्रलम्ब, अरिष्ट, धेनुक, पूतना, केशी और यमलार्जुन को मार डाला। इन्हीं गोप वेषधारी देवकी पुत्र केशव ने खेलते हुए कुबलयापीड़ हाथी, चाणूर, मुष्टिक एवं बलियों में श्रेष्ठ कंस को उसके गणों के साथ मार डाला, इसी प्रकार इन समर्थशाली विष्णु ने दिव्य कर्मों को करने के लिये पहले छल से अनेकानेक दिव्य रूप धारण किये हैं इसी लिये मैं आप लोगों के हित की इच्छा से कह रहा हूँ।।२१-३०।।

मैं तो उन्हें केशव, विष्णु, आदिदेव असुरों के लिये यमराज रूप, नारायण, जगत् की योनि, पुराण पुरुष, नित्य, सब प्राणियों का सृष्टिकर्ता; व्यक्त भी, अव्यक्त भी, सनातन, सब लोकों से अदृश्य, सब लोकों से नमस्कृत, आदि, मध्य और अन्त से रहति, प्रकट तथा अप्रकट रूप, निरन्तर, स्वायंभुव, अजन्मा, स्थाणु, सब चराचरों से अजेय, त्रिविक्रम, तीनों लोकों का स्वामी, देवता और इन्द्र के शत्रुओं का विनाशक मानता हूँ और यह मेरा निश्चित समझना है कि, चक्रवर्ती राजाओं के महान् कुल में मथुरा के मध्य उसी विष्णु ने अवतार धारण किया है, नहीं तो विष्णु को छोड़कर मनुष्य का गरुड़ वाहन कैसे हो सकता है जब कन्या के लिये विशेष रूप से पराक्रम के लिये समर में उपस्थित होंगे तो गरुड़ के आगे कौन ऐसा बली पुरुष है कि जो ठहरेगा। स्वयंवर में कन्या प्राप्त करने के लिये ही विष्णु का यहाँ आगमन हुआ है, नहीं तो निष्प्रयोजन विष्णु के आने में महान् दोष है। इसलिये जो कुछ करना हो उसे बहुत सोच-विचार कर करें। वैशम्पायनजी बोले कि–मगधराज के ऐसा कहने पर महाबुद्धिमान् सुनीथ ने यह वचन कहा; सुनीथ ने कहा कि–मगधाधिपति राजा जरासन्ध ने जो कुछ कहा वह बहुत ही उचित कहा। गोमन्त पर्वत के संग्राम में राजाओं के समक्ष जैसा कुछ राम-कृष्ण ने दुष्कर कर्म किया था उस वृत्तान्त को ध्यान में रखकर कहा है।।३१-४०।।

वहाँ पर हाथी, घोड़ों और रथों से पंक्तिबद्ध और पैदल सेना तथा ध्वजाओं से व्याप्त महती सेना चक्र और हल की अग्नि से भस्म हो गयी। इसी से उस दारुण घटना का स्मरण कर श्रीमान् मगधेश भविष्य को सोचते हुए

इस प्रकार राज-सभा में कह रहे हैं। वहाँ पर बलराम और श्रीकृष्ण पैदल ही लड़ रहे थे फिर भी घोर संग्राम रोकने से नहीं रुका और सेना का विनाश होकर ही रहा। हे नृप श्रेष्ठों! यह आप लोगों को विदित है कि जिस समय गरुड़ आये उस समय उनके पंखों की वायु से गगनचारी जीव मूर्छित से होने लगे। समुद्र क्षुभित हो गया, पर्वत और पृथ्वी बार-बार काँपने लगी तथा हमलोग भी भयभीत हो विकल हो गये और कहने लगे कि यह कैसा उत्पात हो रहा है? जिस समय श्रीकृष्ण गरुड़ पर चढ़कर युद्ध करेंगे उस समय रणाङ्गण में ठहरने के लिये हमारे जैसे राजे कैसे समर्थ हो सकेंगे। स्वयंवर राजाओं के महान् हर्ष को बढ़ाता है, पहले के श्रेष्ठ राजाओं ने यश और धर्म की वृद्धि के लिये ही स्वयंवर का विधान किया था। पर यहाँ मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि इस कुण्डिनपुर में आकर हम मनुष्यों के स्वामी श्रीकृष्ण शीघ्र ही महान् युद्ध करना चाहते हैं। यदि नृप-कन्या रुक्मिणी श्रीकृष्ण को छोड़कर अन्य किसी राजा का वरण करेगी तो श्रीकृष्ण उसे सहन न कर संग्राम के लिये प्रस्तुत हो जायेंगे तब उनके भुजाओं के बल के सामने कौन पुरुष टिक सेकगा? इस स्वयंवर महोत्सव का यह दोष हमने बतलाया जिस कार्य के लिये श्रीकृष्ण आये हैं उसी कार्य के लिये हम राजा-गण भी आये हैं। कन्या के लिये श्रीकृष्ण और राजाओं का आना परस्पर विरोध के कारण एक निन्दित युद्ध की सूचना दे रहा है जैसा कि मगधराज राजाओं के समझ कह रहे हैं।।४१-५१।।



अथ एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।४९।।

वैशम्पायनजी बोले कि–महात्मा सुनीथ के इस प्रकार कहने के बाद करुष देशाधिपति वीर दन्तवक्त्र ने अपना भाषण आरम्भ किया। दन्तवक्त्र बोला कि–जरासन्ध और सुनीथ जी ने जो कहा है उसको मैं युक्ति-युक्त मानता हूँ क्योंकि वह हम राजाओं के लिये हितकर बात है। हम श्रीकृष्ण के विद्वेष के कारण अथवा अंहकार के कारण या अपनी विजय की अभिलाषा

से युक्त अमृत के समान वचनों में दोष नहीं लगा रहे हैं। क्योंकि समुद्र के समान महा अगाध नीतिशास्त्र से संमिश्रित गूढ़ इतना बृहद् भाषण राज-सभा में इन्हें छोड़कर कौन कर सकता है। किन्तु इसके बाद कुछ विचार-विमर्श के लिये जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसे सुनें, हे राजाओं! यदि वासुदेव यहाँ आ गये तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? जिस प्रकार हमलोग आये हैं उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी आये हैं, यह स्पष्ट है कि सभी कन्या के लिये आये हैं इसमें क्या गुण-दोष है? जो हमलोगों ने एकत्र हो गोमन्त पर्वत को घेरा था तो वहाँ युद्ध में दोष उत्पन्न हो गया; उसमें आप लोग कुछ कैसे कह सकते हैं। कंस के व्यामोह के कारण वे दोनों वनवासी हो गये। तत्पश्चात् देवर्षि नारद के वचनों को मानकर यमुना तट पर स्थित वृन्दावन में रहते हुए उन दोनों राम-कृष्ण के वध के लिये कंस ने बुला कर कुबलयापीड़ हाथी को रंगद्वार पर डटा दिया तब वे दोनों हाथी से उद्विग्न हो कुबलया का वध कर भीतर चले गये। अपने बल का आश्रय कर रंग स्थल में मुर्दे की भाँति बैठे हुए कंस को सहायकों सहित मार डाले।।१-१०।।

कंस को मारने के साथ उन्होंने अवस्था में बड़े हम लोगों से वैर किया तो हम लोगों ने उन्हें घेरा, अब हम सभी लोग यहाँ आकर कौन सा दोष कर दिये? हमारी सेना का बल देख विशेष रूप से भयभीत हो राम-कृष्ण अपने पुर तथा अपनी सेना छोड़ गोमन्त पर्वत पर भाग गये। वहाँ भी हम समर योद्धा उनको मारने के लिये गये पर उन्हें बालक और पैदल समझ कर रणाङ्गण में रथ, घोड़े और हथियारों के सहारे युद्ध नहीं किया, किन्तु क्षत्रधर्म से पर्वत को घेरकर आग लगा दिया। हम सभी क्षत्रियश्रेष्ठ उन दोनों दुर्विनीत तपस्वियों को दावाग्नि के मुख में डालकर राख बनाना चाहते थे, उस समय उनसे युद्ध करना मानों जनार्दन के हृदय को दूषित करना है। क्योंकि जहाँ-जहाँ हमलोग स्वयंवर की राज-सभा में जायेंगे वहाँ-वहाँ पूर्व वैर का स्मरण कर निश्चय युद्ध होगा, इसीलिये श्रीकृष्ण के साथ प्रीति के लिये हम भूपतियाों को प्रयत्न करना चाहिये। यहाँ कुण्डीनपुर में श्रीकृष्ण युद्ध के लिये नहीं आये हैं परन्तु कन्या के लिये आये तो कैसे युद्ध करेंगे। इस मर्त्यलोक में यह पुरुषेन्द्र हैं कोई

साधारण मनुष्य नहीं हैं, देवलोक में स्थित देवताओं में भी यह पुरुषोत्तम सबसे श्रेष्ठ हैं। वे देवताओं के भी कर्ता हैं विशेष रूप से लोकों के भी कर्ता हैं, बच्चों की बुद्धि के समान इनकी बुद्धि नहीं है न ईर्ष्या है न मत्सर है अर्थात् किसी के उत्कर्ष को देखकर जलने वाले नहीं हैं। असद् व्यवहारों से रहित, दुःख और दुर्बलता से रहित हैं, सदा शरणागतों के दुःख को हरण करने वाले हैं देवताओं के भी देवता यह सबके स्वामी विष्णु हैं।।११-२०।।

अपने छिपे हुए प्रभाव को प्रकाशितर करने के लिये यहाँ गरुड़ पर चढ़कर आये हैं, यह अपने शत्रुओं का विनाश करने के लिये नाना प्रकार के अस्त्रों को धारण कर नहीं आये हैं। यादवेन्द्रों और भोजवंशी वृष्णि एवं अन्धकवंशियों के साथ जो हरि ने यहाँ यात्रा की है प्रीति के लिये की है ऐसा आप लोग समझें। इसलिये हम नराधिप राजाओं को चाहिये कि महात्मा केशव के लिये अर्घ्य और आचमन देकर आतिथ्य सत्कार करें। इस प्रकार प्रेम का व्यवहार करके हम राजे उद्वेग और ज्वर से रहित निर्भय होकर बसेंगे। इस प्रकार बुद्धिमान् दन्तवक्र के वचनों को सुनकर वक्त्यओं में श्रेष्ठ शाल्व राजाओं से बोला- शाल्व बोला कि–क्या इनके भय से हमलोग शस्त्र रख दें, क्या कृष्ण के भय से कम्पित होकर हमलोग उनसे सन्धि के लिये उनका पूजन करें? अर्थात् नहीं। अपनी आत्मा और बल की निन्दा कर शत्रु की स्तुति करना क्या उचित कार्य है? क्षत्रिय धर्म में स्थित राजाओं का यह धर्म नहीं है। महान राजवंशों में आप उत्पन्न हुए हैं और अपने कुल को बढ़ाने वाले हैं ऐसे आप लोगों में यह कायर पुरुषों की बुद्धि कैसे हो गई? मैं जानता हूँ कि कृष्ण आदि देव सनातन पुरुष, सभी देवताओं के स्वामी, नारायण, बैकुण्ठ, अजेय, चराचर लोकों के गुरु, हरि, लाकों से नमस्कृत विष्णु देवकी के गर्भ से राजा कंस का वध तथा हम राजाओं का विनाश कर पृथ्वी का भार उतारने और लोकों का संरक्षण करने के लिये अपने अंश से अवतरित हुए हैं।।२१-३१।।

मैं विष्णु के अंशावतरों का सम्पूर्ण कर्त्तव्य जानता हूँ, पृथ्वी के भारभूत हम राजे विष्णु के साथ अतुल संग्राम कर सुदर्शन चक्र की अग्नि से

जलकर यमसादन विष्णु को प्राप्त हो जायेंगे अर्थात् उनकी ज्योति में विलीन हो जायेंगे हे राजेन्द्रों! मैं इस तत्त्व को अच्छी तरह जानता हूँ कि आयु का छय होने पर ही कोई मरता है, बिना आयु समाप्त हुए कोई नहीं मरता काल के आ जाने पर कोई जीवित भी नहीं रह सकता इस प्रकार निश्चय करके किसी से भय न करना चाहिये। वही भगवान् विष्णु दैत्यों के तप को विनष्ट होता देखकर काल के अनुसार दैत्येन्द्रों को मार डालते हैं। उन्हीं विष्णु ने अवध्य महाबली विरोचन के पुत्र बलि को बाँध कर पातालवासी बना दिया। हे नराधिपों! इसी प्रकार की विष्णु की चेष्टायें हैं इसलिये युद्ध के लिये आप लोगों का विचार करना अनुचित है। श्रीकृष्ण का आगमन यहाँ संग्राम के लिये नहीं हुआ है, यहाँ तो जिस भी किसी को कन्या वरण कर लेगी तो वह उसी की हो जायेगी तो इसमें विग्रह की कौन सी बात है? इसमें तो प्रीति होना निश्चित बात है। वैशम्पयानजी बोले कि–इस प्रकार बुद्धिशाली राजाओं के कहते समय राजा भीष्मक यह मन में सोचकर कुछ नहीं बोलते थे कि मेरा पुत्र भृगुवंशी के अस्त्र से अभिरक्षित होने से अपने को अतिरक्षित और महाबली समझ कर मद से भरा रहता है अर्थात् मेरी बात को नहीं मानता है।।३२-४०।।

पर भीष्मक जी बोले कि अभिमान से भरा मेरा पुत्र बल के घमण्ड के कारण किसी से रण में नहीं डरता है और वह श्रीकृष्ण को भी कुछ नहीं समझता है। मुझे यह अच्छी तरह ज्ञात है कि श्रीकृष्ण के भुज पराक्रम से कन्या हर ली जायेगी इसके बाद राजाओं का उन महापुरुष से निश्चित संग्राम होगा। उस समय कृष्णद्वेषी और अभिमानी मेरा पुत्र कैसे जीवित बचेगा? मैं श्रीकृष्ण से अपने पुत्र का जीवन बचा नहीं देख पा रहा हूँ। कन्या के लिये पितरों के आनन्द को बढ़ाने वाले ज्येष्ठ पुत्र का श्रीकृष्ण के साथ अथवा श्रीकृष्ण का अपने पुत्र के साथ कैसे युद्ध कराऊँगा। नारायण देव श्रीकृष्ण को रुक्मी अपनी बहन का वर नहीं होने देना चाहता क्योंकि वह मूढ़ होने से मदोन्मत्त हो गया है मना करने पर भी संग्राम किये बिना नहीं मानेगा और उनसे संग्राम करने पर अग्नि से रुई की ढेर की तरह निश्चित भस्म हो जायेगा।

करवीरपुर के राजा शूर श्रृगाल को; विचित्र युद्ध करने वाले श्रीकृष्ण ने अपने बल से क्षणमात्र में ही मार डाला। बलवानों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण वृन्दावन में बसते समय गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर एक ही हाथ पर सात दिन तक धारण किये रह गये। श्रीकृष्ण के दुष्कर कर्मों का स्मरण कर मेरा मन अत्यन्त कम्पायमान हो रहा है। नगेन्द्र को यथा स्थान रख देने पर देवताओं के साथ इन्द्र ने आकर श्रीकृष्ण का अभिषेक कर कहा कि आप उपेन्द्र हैं। कालान्तक के समान प्रभावशाली विष की अग्नि से जला देने वाले भयंकर कालिय नाग का श्रीकृष्ण ने यमुना के कुण्ड में दमन कर दिया।।४१-५०।।

महाबली केशी जो कि घोड़े के रूप में उनसे लड़ने गया था, देवताओं से भी अजेय उस दानव का वासुदेव ने वध कर डाला। चिरकाल से सागर में नष्ट हुए गुरु सान्दीपनिजी के पुत्र को, सागर में प्रवेश कर पञ्चजन दैत्य को मार कर यमराज के भवन से ला दिया। गोमन्त पर्वत पर बहुत से राजाओं के घेर लेने पर भी राम-कृष्ण ने हाथी, घोड़ों और रथों को नष्ट करने वाला बड़ा भयकारी महान् संग्राम किया। सुदेव के दोनों पुत्र उस संग्राम में हाथी से हाथियों के समूह को, रथ से रथियों को, घोड़ों से घुड़सवारों को और मनुष्य से पैदल सेना को मार गिराया था। इस प्रकार का गज, अश्व तथा रथ का संक्षयात्मक युद्ध आज तक किसी देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस, नाग, दैत्येन्द्र, पिशाच तथा गुह्यक ने भी नहीं किया है, उस संग्राम को स्मरण कर मेरा मन अत्यन्त काँप रहा है। सुरोत्तम वासुदेव के समान इस पृथ्वी पर आज से पहले न तो किसी को सुना है न देखा है। महाबाहु दन्तवक्र ने उचित ही कहा है कि श्रीकृष्ण को सत्कारादि सान्त्वना देकर फिर जो हमलोगों को करना है करें। वैशम्पायनजी बोले कि–इस प्रकार मन से बलाबल विनिश्चय कर भीष्मक ने श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिये जाने का प्रस्ताव निश्चित किया। इस प्रकार चिन्तना करते हुए बहुत से नीति विशारद राजे रात्रि बीच जाने पर प्रातः सूत, मागध और बन्दियों के मांगलिक स्तुतियों से जग कर प्रातः काल की क्रिया से निवृत्त होकर अपने-अपने शिविरों में बैठे।।५१-६०।।

उस समय जिन राजाओं को ये राजे विदर्भ नगर में छोड़ आये थे वे यहाँ आकर अपने मित्र राजों से एकान्त में श्रीकृष्ण के राज्याभिषेक की बात कहे। श्रीकृष्ण के अभिषेक की बात सुनकर कोई राजा प्रसन्न हुए, कोई दुःखी हो भयभीत हो गये और कोई उदासीन हो गये। मनुष्य, हाथी, घोड़ों से घिरी नृप-मण्डली तीन भागों में होकर अभिषेक के कारण समुद्र की भाँति चंचल हो गई। इस प्रकार राजाओं के भेद को देखकर राजश्रेष्ठ भीष्मक सोचने लगे कि यह तो स्वयं अपने आप राजाओं ने अचिन्तनीय व्यतिक्रम कर दिया। इस प्रकार मन से चिन्तन कर जलते चित्त से महाराज भीष्मक राजाओं के समाज में उन्हें समझाने के लिये गये। इसी बीच इन्द्र के दूत आकर इस इन्द्र लेख को "कि, सभी राजे मिलकर श्रीकृष्ण का अभिषेक करें" अपनी पगड़ी से खोल कर क्रथ और कैशिक को समर्पित कर राज-सभा में प्रवेश किये।।६१-६७।।



अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५०।।

जनमेजयजी बोले कि-देवताओं से भी अजेय महाबली कंस को मारकर श्रीकृष्ण राज्य पर अभिषिक्त नहीं हुए और न राज्यसिंहासन पर ही बैठे और कन्या के लिये वहाँ जाने पर उनका अतिथि-सत्कार भी नहीं हुआ इस प्रकार महान् अपमान प्राप्त कर भी किस कारण से क्षमा कर लिये?। महाबली और महापराक्रमी विनता पुत्र भी क्षमा से युक्त थे इसमें कौन कौन सा कारण था; हे भगवन्! यह हमसे कहिये मुझे इस पर बड़ा आश्चर्य है। वैशम्पायनजी बोले कि गरुड़ के साथ श्रीकृष्ण के विदर्भ नगरी पहुँच जाने पर कैशिक ने वासुदेव के लिये मनमें विचार किया कि। इनके प्रभाव को देख कर हम लोगों को आश्चर्य होता हैं, इस बात को मैं सभी राजाओं से कहूँगा कि, वसुदेव पुत्र को देखने से निश्चय ही पाप का छय हो जाता है। श्रीकृष्ण का भाव बिल्कुल विशुद्ध है, हम दोनों ने इनके तत्त्व को देख लिया इन कमल पत्राक्ष देव-देव जनार्दन श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ दूसरा दान देने योग्य पात्र इन तीनों

लोकों में नहीं है इसलिये इनके अतिथि-सत्कार में हम लोग इन्हें क्या दें। योग्य पात्र को पाकर उसे अवश्य दान से सत्कृत करना चाहिये कि जिससे धर्म का लोप न हो इस प्रकार दोनों भाई क्रथ और कैशिक ने आपस में विचार कर। अपने राज्य को दे देने की इच्छा से श्रीकृष्ण के समीप गये, विदर्भ नगराधिप दोनों वीर उनके पास पहुँच शिर से प्रणाम कर दोनों महाभाग बोले कि आज हम दोनों का जन्म लेना सफल हो गया हम लोग सफल कीर्ति वाले हो गये आप देवेश के मेरे घर आ जाने पर मेरे पितर तृप्त हो गये।।१-१०।।

चँवर, पंखा, छत्र, ध्वजा तथा सेना सहित यह राज्यसिंहासन और कोष युक्त लम्बी-चौड़ी हम दोनों द्वारा पालित यह पुरी आपकी है। हे महाबाहो! देवताओं के इन्द्र ने आपका अभिषेक कर उपेन्द्र की उपाधि आपको प्रदान की थी और हम दोनों इस राज्यासिंहासन पर आपका अभिषेक कर विदर्भ नगरी का राज्य प्रदान कर रहे हैं। हम लोगों ने जो यह अभिषेक रूप कार्य का निश्चय किया है इसे बहुत राजे भी अथवा स्वयं जरासन्ध भी अन्यथा नहीं कर सकता। आपका शत्रु राजाओं को अभय प्रदान करने वाला महातेजस्वी मगधराज जरासन्ध आपकी वार्ता करते हुए कहा कि, यह राज्यसिंहासन पर बैठने योग्य नहीं है इसीलिये इसके पास कोई पुर नहीं है, तो कैसे यह देवकी पुत्र इस राज-समजा में आयेगा। कृष्ण महातेजस्वी, महाबली और अभिमानी है, कन्या के लिये इस स्वयंवर में नहीं आयेगा। क्योंकि स्वयंवर में राजा लोग अपने-अपने ऊँचे-ऊँचे राजकीय सिंहासन पर बैठे रहेंगे, उनके बीच में वह महातेजस्वी नीचे बिछे आसन पर बैठने कैसे आवेंगे। इस प्रकार की बात-चीत सुन कर विग्रह को शान्त करने के लिये राजा भीष्मक ने हम लोगों के साथ मंत्रणा करके आपके विश्राम के लिये यह उत्तम भवन बनवाया; आप देवताओं में आदि देव हैं आपकों सम्पूर्ण लोक नमस्कार करता है। इसलिये यहाँ मनुष्यों के मर्त्य-लोक में आकर इस राजेन्द्र पद को स्वीकार कर राजाओं के इन्द्र बनिये कि, जिससे राजाओं के समाज में राज्यासन पर बैठने के पश्चात विवाद न उठे।।११-२०।।

आप शास्त्र विधि से राज्याभिषेक के कृत्य को कीजिये कल इन्द्र की आज्ञानुसार जिस प्रकार सब राजे अभिषेक के लिये आयेंगे उस प्रकार का यत्न करूँगा। सुरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण से इस प्रकार कह दण्डवत् कर हाथ जोड़ दोनों वीर इन्द्र का सन्देश राजाओं की जानकारी के लिये रंग स्थल में ले गये। इन्द्र ने जिस प्रकार दूत से राजाओं के लिये आदेश दिया था उसी प्रकार दूत के आदे वचन को एक पत्र पर लिखकर महातेजस्वी कैशिक राजाओं के मध्य बाँचना प्रारम्भ किये। कैशिक बोले कि–गरुड़ के साथ भगवान् श्रीकृष्ण जो विदर्भ नगरी में अतिथि रूप से आये हैं सो आप सभी राजाओं को विदित ही है। मैं उनका आना देख और दान का पात्र समझ कर धर्म के लिये वासुदेव को अपना राज्य दे दिया। जिस समय मेरे भाई क्रथ ने कहा कि आप इस राज्य सिंहासन पर बैठें, उस समय इन्द्र के किसी दूत ने आकाश में छिपकर आकाशवाणी की थी। देव दूत ने कहा था कि–हे नराधिप! इन श्रीकृष्ण को बैठने के लिये जो अपना आसन देने जा रहे हो सो अपवित्र होने से अनुचित है इनके लिये यह इन्द्र का भेजा हुआ आसन जो स्वर्णमय तथा सम्पूर्ण रत्नों से विभूषित सिंह के लक्षण से लक्षित सुन्दर रचना से युक्त है इसे लो और इसी सिंहासन पर चराचर से नमस्कृत देवेश को बैठाकर बहुत से राजाओं के साथ राज्याभिषेक करो।।२१-३०।।

कन्या के लिये कुण्डिनपुर मे राजे आये हुए हैं जो राजा इनके अभिषेक में नहीं आयेगा वह इन श्रीकृष्ण के द्वारा वध का पात्र होगा। राजाराजेश्वर महात्मा कुबेर के ये आठ कलश जो आठ निधियों से उत्पन्न हैं। जो सुवर्ण और सभी प्रकार के रत्नों से भरे हैं तथा दिव्य आभूषणों से युक्त एवं दिव्य आसनों पर स्थित हैं वे राजेन्द्र श्रीकृष्ण के अभिषेक के लिये राजाओं से घिरे हुए आ रहे हैं। हे राजाओं! यह इन्द्र का सन्देश मैंने आप लोगों से कह दिया, लेख से अर्थ यही निकलता है कि सभी राजाओं को बुलाकर केशव का अभिषेक करें। इसके बाद फिर कैशिक ने कहा कि–इस प्रकार देवदूत कहकर और बाल सूर्य के समान प्रभा वाला सिंहासन देकर स्वर्ग को चला गया। इसलिये यहाँ आये हुए सभी राजाओं से प्रार्थना करता हूँ कि इन्द्र

के द्वारा स्वयं कहे गये अनिवार्य घोर वचनों का पालन करें। हमलोग वहाँ चलकर आकाश से कलशों द्वारा स्वयं अभिषेक होता हुआ पृथ्वी पर अद्भुत दृश्य को देखेंगे। इस आश्चर्य को देखकर और श्रीकृष्ण का दर्शन कर हम लोगों के पाप निश्चित नष्ट हो जायेंगे, इसलिये देव-देव श्रीकृष्ण रूपी विष्णु का अभिषेक करने के लिये हे नृपश्रेष्ठों! आप लोगों के हित के लिये उनसे सन्धि कर ली है। वे शरण में आ जाने पर सभी राजाओं को अभय प्रदान कर देते हैं, उनका भाव विशुद्ध है उनके मन को हम दानों ने अच्छी तरह जान लिया है।।३१-४०।।

मगधराज जरासन्ध के लिये भी उनके हृदय में विशेष रूप से कोई बैर भाव नहीं दिखलाई पड़ता है, अब इसके बाद यहाँ जो कार्य-कारण हो आप लोग विचार लीजिये। वैशम्पायनजी बोले कि-इस प्रकार इन्द्र के शाप के भय से सभी राजे भयभीत हो चिन्ता करने लगे कि, इसी बीच फिर महात्मा श्रीकृष्ण के अभिषेक में सम्मिलित होने के लिये राजाओं ने आकाशवाणी को सुना। मेघ के समान गम्भीर नाद से आकाशवाणी अपने स्वर से नभस्तल को पूर्ण करती हुई इन्द्र के शासन से बोली। इन्द्रदूत चित्राङ्गद छिपे रूप में आकाश से बोला कि-तीनों लोकों के अधिपति प्रजाओं का पालन और आप राजाओं का हित करने के लिये यह आज्ञा देते हैं कि। हे राजाओं! तुम लोग श्रीकृष्ण से वैर करके न रहो वरन् उनसे प्रीति उत्पन्न कर अपने-अपने राज्यों में सुख से रहो। जो श्रीकृष्ण की शरण लेता है तो उसके दुःख को वह दूर कर देते हैं और जो उनके प्रति वैर भाव करता है उसके लिये वह यमराज की भाँति होकर भस्म कर देते हैं, इसलिये उनके साथ प्रेम कर सन्ताप रहित हो आनन्द करो। मनुष्यों के देवता राजा लोग हैं और राजाओं के देवता सुर लोग हैं, सुरों के देवता इन्द्र हैं और इन्द्र के जनार्दन भगवान् हैं। यह श्रीकृष्ण देवताओं के भी देवता विष्णु हैं, यह इस समय मनुष्य लोक में नर रूप धारण कर अवतरित हुए हैं। यह सम्पूर्ण लोकों में देवता, दानव और मनुष्यों से अजेय हैं, कार्तिकेय के सहित स्वयं शंकरजी भी इन्हें नहीं जीत सकते हैं। इसलिये देवाधिदेव महात्मा केशव का अभिषेक करने की इच्छा से बढ़कर

लाभकारिणी कौन सी इच्छा हो सकती है?।।४१-५०।।

नर लोक में गये श्रीकृष्ण का राजेन्द्रत्व पद पर अभिषेक करने का हम देवताओं को अधिकार नहीं है, इसीलिये हम लोग सर्वलोक नमस्कृत श्रीकृष्ण का अभिषेक नहीं करते हैं, राजेन्द्र के पद पर अभिषेक करने का अधिकार भूलोक के राजाओं को ही है। इसलिये हे श्रेष्ठ राजाओं! आप लोग क्रथ और कैशिक के साथ विदर्भ नगरी में जाकर शास्त्र की विधि से इनका अभिषेक करें। हे राजाओं! यह उनसे प्रीति करने का अच्छा अवसर आया है यह सोचकर ही इन्द्र ने हमें आप लोगों के समीप भेजा है। यह राज्याभिषेक की बात श्रीकृष्ण को सुना दी गई है, इसलिये हे नृपश्रेष्ठों! आप क्रथ और कैशिक के साथ सम्मिलित होकर राजेन्द्रत्व के अभिषेक के लिये सुन्दर महान् उत्सव कर श्रीकृष्ण का अभिषेक से सत्कार कीजिये और प्रणाम एवं प्रदक्षिणा करने के पश्चात् पुनः स्वयंवर में पधारिये। रंगस्थल शून्य न हो इस लिये जरासन्ध, सुनीथ, महारथी रुक्मी और सौभ विमान के अधिपति शाल्व ये चार श्रेष्ठ राजे यहीं रहें। वैशम्पायनजी बोले कि–इस प्रकार सुरेश की आज्ञा दूत चित्राङ्गद के द्वारा सुनकर सब राजाओं ने जाने के लिये निश्चय किया। नरेन्द्र बुद्धिमान् जरासन्ध की आज्ञा से राजा भीष्मक को आगे कर सेनाओं को साथ ले राजे विदर्भ नगरी को चल पड़े। महाबाहु राजा भीष्मक अपनी सेना को साथ लेकर जलते हृदय से राजाओं के साथ वहाँ चले गये कि जहाँ पर कैशिक के वासस्थान पर श्रीकृष्ण विराजते थे वहाँ अभिषेक के लिये देवताओं की रम्य सभा लगी थी वह सभा पताकों और ध्वजाओं द्वारा दूर से ही प्रकाशित हो रही थी, वह दिव्य रत्नों की प्रभा से व्याप्त थी और दिव्य पताकाओं से भरी हुई थी।।५१-६०।।

उसके ऊपर दिव्य आकाश में दिव्य आभूषणों से युक्त बहुत सी ध्वजायें फहरा रही थीं और वह सभा दिव्य मालाओं की रस्सियों से सुशोभित थी एवं वह दिव्य गन्धों से सुवासित हो रही थी और सुन्दर सजे विमानों द्वारा चारों ओर से घिरी हुई थी, उसके चारों तरफ स्वर्गीय अप्सराओं के गण, विद्याधरों के गण, गन्धर्व, मुनि और किन्नर लोग आकाश का आश्रय लेकर

देवेश श्रीकृष्ण का गुणानुवाद कर रहे थे। मुनि, सिद्ध, महर्षि लोग स्तुति कर रहे थे और आकाश में अपने आप दुन्दुभियाँ बज रही थीं और देवता लोग आकाश में स्थित हो मंदार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष, हरिचन्दन के सुगन्धि पुष्पों और अनेक प्रकार के सुगन्धित चूर्णों की चारों तरफ से वर्षा कर रहे थे। देवताओं के साथ इन्द्राणी सहित स्वयं इन्द्र विमान पर चढ़कर प्रकाश करते हुए आकाश में स्थित थे। आठों दिग्पाल अपनी दिशाओं में सज-धज के साथ श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए नाच-गा रहे थे। इस प्रकार अभिषेकोत्सव के तुमुल नाद को सुनकर सभी राजे प्रफुल्लित नेत्र हो उस शुभ सभा में प्रवेश किये। वहाँ बली महाबाहु कैशिक राजाओं के समीप जाकर स्वागत सहित यथास्थान सभे में ले जा रहे थे।।६१-७०।।

राजाओं का आगमन सुरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण से निवेदन कर देने पर सब मंगलों से पूजित हो श्रीकृष्ण अपने विश्राम भवन से बाहर निकले। इसके बाद आकाश में स्थित आम्रपल्लव युक्त, कंठ में वस्त्र लपेटे कलशों ने मेघों की तरह दिव्य सुवर्ण और रत्नों के समूह और दिव्य पुष्पों से समन्वित गन्ध-चूर्ण मिले हुए अभिषेक के जल को श्रीकृष्ण का राजेन्द्र पद पर अभिषेक करने के लिये वर्षाया। दिव्य शुभ वस्त्रों और अलंकारों से राजाओं के दर्शन के योग्य अलंकृत कर शास्त्र की विधि से अभिषेक किया। तत्पश्चात् दिव्य वस्त्रों, मालाओं और चन्दनों से राजाओं का विधिवत् सत्कार कर और उनकी आज्ञा लेकर भगवान् जनार्दन सिंहासन पर बैठे। अभिषेक के लिये सभा में शुभ सिंहासन पर विराजमान हो जाने के बाद यदुवंशी और विदर्भ देश के राजे उनकी सेवा करने लगे। महाबली विनतापुत्र गरुड़ भी इच्छानुसार मनुष्य का शरीर धारण कर श्रीकृष्ण के दाहिने और आसन पर बैठ गये। महात्मा क्रथ और कैशिक भी श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व में, वृष्णि और अन्धक के प्रमुख महारथी सात्यकि आदि महाबलवान् वीर बैठ गये। सूर्य के समान प्रभावशाली दिव्य सिंहासन पर देवताओं से घिरे इन्द्र की भाँति बैठे हुए श्रीकृष्ण को मंत्रियों ने जो राजे वहाँ आये थे उनका क्रमशः परिचय दे रहे थे और वे अपनी योग्यतानुसार श्रीकृष्ण का पूजन कर।।७१-८०।।

सुख से अपने-अपने आसनों पर बैठ गये तत्पश्चात् महाबुद्धिमान् सम्पूर्ण शास्त्रों के पारंगत राजा कैशिक ने शास्त्र की विधि से उनका पूजन कर वक्ताओं में श्रेष्ठ कैशिक श्रीकृष्ण से बोले कि–हे देव! आपको मनुष्य समझ कर ही ये राजे अवरुद्ध किये थे इसलिये इनके अज्ञात अवस्था के अपराधों को क्षमा करना चाहिये; यह सुन श्रीकृष्णजी ने कहा कि–हे कैशिक मेरे हृदय में किसी के प्रति एक दिन भी वैर भाव नहीं बसता तो फिर क्षत्रधर्म में रहने वाले राजाओं के प्रति तो और भी वैर भाव नहीं रहता क्योंकि क्षत्रिय का धर्म ही युद्ध करना है यदि वे युद्ध से पराङ्मुख होते हैं तो अधर्म करते हैं। इसलिये उनके ऊपर किस कारण से कोप होगा? हे राजाओं ! जो हुआ सो बीत गया, जो रणाङ्गण में मर गये वे स्वर्ग चले गये। मरना और उत्पन्न होना यही मनुष्य लोक का धर्म है इसलिये हे नराधिपों! जो मर गये उनके लिये शोक करना योग्य नहीं है, जो कुछ हुआ उसे क्षमा कर वैर रहित हो उन्हें रहना चाहिये। वैशम्पायनजी बोले कि–इस प्रकार कहकर मधुसूदन ने आश्वासन दे कैशिक का मुख देखकर महातेजस्वी श्रीकृष्ण विराम ले लिये। इसी बीच नीति के पण्डित वक्ताओं में श्रेष्ठ राजा भीष्मक शास्त्रीय विधि से श्रीकृष्ण का पूजन कर बोले।।८१-८९।।



अथ एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५१।।

भीष्मकजी बोले कि–मेरा लड़का लड़कपन कर कन्या को स्वयंवर के बीच राजाओं को देना चाहता है। मैं इसे स्वीकार नहीं करता, मैं चाहता हूँ कि किसी एक राजा को अच्छी तरह देखकर वरण कर ले क्योंकि एक कन्या एक का वरण करे यही उचित है। पर मेरी मति को नहीं मान रहा है पुत्र के दुर्नीति के कारण मैं आपको प्रसन्न करने आया हूँ, अतः हे प्रभो! उसके अपराधों को क्षमा कर प्रसन्न हो जाइये। श्रीकृष्णजी ने कहा कि अभी तो आपका पुत्र बालक होकर राजाओं की मण्डली को डावाँडोल कर दिया है, जिस समय बड़ा होगा उस समय कैसा अविनीत होगा यह समझने की बात

है। झूठ बोलने से तपस्या द्वारा उपार्जित श्री और सूर्य तथा चन्द्रमा के समान प्रकाशक लोक एवं राजाओं के महान् कुल में उत्पन्न हुए वीर पुरुष यम-यातना रूप अग्नि से नष्ट हो जाते हैं। जो एक राजा के भी समक्ष झूठ बोलता है उसे वह राजा इस लोक में नहीं रहने देता तो तीनों लोकों के राजा के सामने झूठ बोलने का क्या फल होगा इसे समझो। हे राजन्! राजा लोग मिथ्यावादियों को दण्ड देते हैं यह आपको विदित है, इस लोक-धर्म को सब धर्मों से आगे कर पहले से मनु ने कह रखा है। तो हे राजेन्द्र! तुम्हारा पुत्र राजाओं की सभा में कैसे झूठ बोलने में समर्थ हो सकता है। जब तुम्हारे पुत्र ने स्वयंवर की घोषणा कर तथा रंग स्थल का निर्माण कर राजाओं को बुलाकर इकट्ठा किया है तो कैसे यह सब तुमको नहीं ज्ञात है, मुझे इसमें संशय प्रतीत हो रहा है। अग्नि और सूर्य-चन्द्रमा के समान तेजस्वी राजाओं का यथा योग्य पूजन कर उनका सत्कार किया तथा रथ, घोड़ों और हाथियों के आने से जो अतुलनीय भीड़ हो गई है तो हे राजन्! यह कैसे मान लिया जाय कि आपको अपने पुत्र का कार्य-क्रम नहीं ज्ञात है?।।१-१०।।

क्या चतुरङ्गिणी सेनाओं के आने पर विवाद नहीं होगा? अर्थात् अवश्य होगा, हे राजन्! यह आप कैसे नहीं जाने यह मेरी बुद्धि में संशय है। मैं यह समझता हूँ कि मेरा यहाँ आना तुम्हारे हित के विपरीत हो गया है, इसीलिये हे राजन्! मुझ अपात्र का स्वागत नहीं किया। आप मुझ अपात्र का त्याग कर पात्र को कन्या दीजिये। हे राजन्! क्या मेरे यहाँ आ जाने के दोष से अब स्वयंवर में कन्या नहीं दी जायेगी?। मनु आदि धर्म विशेषज्ञों ने कहा है कि जो कन्या के विवाह में विघ्न करता है वह नरक में दुःख पाता है, यही सोचकर हे विशाम्पते! मैं रंग स्थल में नहीं गया और हे नरदेव! अपने को अतिथि सत्कार से विहीन समझकर तेरे घर भी नहीं गया। हे नराधिप! मैं चक्रवर्ती राजाओं का भी राजा होता हुआ भी लज्जा से पराजित हूँ इसीलिये अपनी सेना को ठहरने के लिये विदर्भ नगर भेज दिया। अतिथि प्रिय कैशिक ने हमारा और गरुड़ दोनां का अतिथि सत्कार किया हम दोनों स्वर्ग के समान सुख से बसे। वैशम्पायनजी बोले कि-वचन रूपी वज्र से प्रेरित होकर इस

प्रकार क़हते हुए श्रीकृष्ण को मधुर वचर रूपी जल से अग्नि की भाँति शान्त करते हुए। भीष्मक बोले कि-हे सम्पूर्ण लोकों पर शासन करने वाले लोकेश! आप प्रसन्न होइये और मुझ अज्ञान से आवृत्त की रक्षा कीजिये तथा मुझे ज्ञान का नेत्र प्रदान कीजिये।।११-२०।।

हम मांस चक्षु वाले मनुष्य सब बातों को जानने मे असमर्थ हैं, इसलिये अविचार से किये गये हमलोगों के कार्य सिद्ध नहीं होते। देवताओं के भी देवता आपकी शरण पाकर हमें सम्यक् दृष्टि हो जाय जिससे कि मेरी क्रियायें सिद्ध हों। विचक्षण पुरुष न्याय से युक्त अनिष्यन्न क्रिया को भी महासेनापति की भाँति फलवती बना देते हैं। आपकी शरण को पाकर भय बाधा नहीं पहुँचाता है, इसलिये जो कार्य मैंने सोचा है उसे आप सुनिये। मेरा पुत्र स्वयंवर की क्रिया द्वारा स्वयंवर में राजाओं के बीच कन्या का पतिवरण नहीं चाहता; (तुम्हारे आने पर यह समझ गया है कि स्वयंवर करने पर कन्या श्रीकृष्ण का ही वरण करेगी इसीलिये स्वयंवर नहीं चाहता) इसलिये हे देवेश! कृपा कीजिये, कोप न कीजिये। श्रीकृष्णजी बोले-हे महामतिमान् राजन्! तुम्हारे इस प्रकार कहने से क्या होता है? तुम अपनी कन्या नहीं दोगे यह मैंने माना पर इसमें नियन्त्रण करने वाला कौन है। अपनी कन्या को हमको दो या न दो अथवा दूसरे को दो या न दो यह दोनों मुझे नहीं कहना है, पर रुक्मिणी दिव्यमूर्ति होने के कारण हमसे ही सम्बन्ध करेगी। मेरु पर्वत पर जिस समय देवताओं ने अंशावतार के लिये सभा की थी उस समय यही निश्चय कर लक्ष्मीजी से कहा था कि, आप भी अपने पति के साथ अंशावतार धारण कीजिये। हे विपुल श्रोणी! इन्द्र पर अनुकम्पा कर आप मनुष्य लोक स्थित कुण्डिनपुर में भीष्मक की स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होइये। इसलिये मैंने यह अलौकिक वचन कहा इसे सुनकर जो उचित होगा वह निश्चय कर आपका पुत्र करेगा।।२१-३०।।

रुक्मिणी नाम की तुम्हारी कन्या मानुषी नहीं है, वह लक्ष्मी है, ब्रह्मा के कहने से किसी कारणवश भू-भार उतारने के लिये अवतार लिया है। वह राजाओं के स्वयंवर के योग्य नहीं है, एक कन्या को किसी एक ही वर को

देना चाहिये यही धर्म-व्यवस्था है। हे राजन्! तुम उस लक्ष्मी को स्वयंवर के बीच नहीं ला सकते हो, तुम्हें तो उसके अनुरूप किसी वर को धर्म के अनुसार दे देना चाहिये। स्वयंवर में विघ्न करने के लिये ही इन्द्र की प्रेरणा से राजे कुण्डिनपुर में आये। मैं भी राजाओं के स्वयंवर को और कमल से रहित उस वरारोहा लक्ष्मी को देखने के लिये आया हूँ। हे राजन्! मेरे आगे तुमने भी जो कहा है वह क्षमा करने के ही योग्य है क्योंकि सब बातें युक्ति-युक्त ही तुमने कही इसमें मैं बुरा नहीं मानता हूँ। मैं जिस सौम्य रूप से यहाँ आया हूँ वह तुम्हारे विषय में पहले ही कह दिया और रूप के अनुकूल हे विभो! क्षमाशील भी हूँ। क्योंकि क्षमा में बहुत गुण हैं, दोष के अपहरण को ही क्षमा कहते हैं फिर हमारे जैसे पुरुष के हृदय में पाप कैसे रह सकता है। और सत्य गुण सम्पन्न कुल में उत्पन्न धर्मज्ञ और सत्यवादी आप जैसे पुरुष के भी हृदय में कलुष कैसे रह सकता है। मेरा सेना के सहित यहाँ आना अर्थात् विदर्भ नगर में आना शान्ति का ही प्रतीक मानना चाहिये क्योंकि जो मैं सेना के साथ शत्रु की सेना में नहीं गया हूँ।।३१-४०।।

जिस समय मैं अशान्त होता हूँ उस समय मैं गरुड़ पर चढ़कर शत्रु की सेना में संग्राम के लिये जाता हूँ और मेरे हाथ में चन्द्रमा तथा सूर्य के समान चमकने वाले आयुध रहते हैं। अवस्था में आप हमारे पिता के समान माननीय हैं इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप क्षत्रियों में पिता के सदृश हो अपनी पुरी का सम्यक् पालन कीजिये। हे राजेन्द्र! कलुष तो कापुरुषों के भीतर बसता है, शूर और शुद्ध भाव वाले पुरुष के भीतर कलुष कैसे रहेगा। इसी प्रकार की मेरी कलुष रहित वृत्ति है, इसे आप जानें; पुत्रों पर पिता का जैसा व्यवहार होता है उसी प्रकार के व्यवहार से हमलोग अनगृहीत किये जायँ, देखिये ये दोनों जो राजे विदर्भ नगराधिप हैं, इन्होंने हमारे अतिथि सत्कार में अपना राज्य दे दिया, इस दान के फल से इनके दस पीढ़ी पूवर्ज स्वर्ग में चले गये और आगे होने वाले भी दस पीढ़ियों के राजे वहीं स्वर्ग में जायेंगे और ये दोनों सुख पूर्वक चिरकाल तक अकण्टक राज्य भोगकर इच्छानुसार जब चाहेंगे तब संसार के बन्धन से रहित हो मोक्ष सुख को प्राप्त करेंगे। जो राजे मेरा

अभिषेक करने के लिये यहाँ आये हैं वे भी समय के अनुसार स्वर्ग को जायेंगे। आपका कल्याण हो मैं गरुड़ के साथ भोजराज उग्रसेन से पालित पुरी मथुरा को जाता हूँ। वैशम्पायनजी बोले कि–इस प्रकार राजा भीष्मक से कहकर और राजाओं से कुछ मंत्रणा कर यदुनन्दन क्रथ और कैशिक के साथ सभा स्थल से बाहर निकल रक रथ के समीप आये।।४१-५०।।

राजा भीष्मक श्रीकृष्ण को जाते हुए देखकर प्रसन्न हुए और सभी राजे उदास हो गये। श्रीकृष्ण जी को आदि, स्वायंभुव, देवता व दानवों से नमस्कृत, सहस्र पैर और भुजा तथा नेत्रों और मुकुटों वाले, दिव्य माला, वस्त्र, चन्दन तथा सुगन्ध युक्त एवं दिव्य आभरणों से और दिव्य आयुधों से युक्त, लाल कमल के से नेत्रों वाले और चन्द्रमा सूर्य एवं अग्नि के समान नेत्रों को देखकर हाथ जोड़ राजा भीष्मक वाणी-मन और शरीर के स्वामी उन राजेन्द्र की स्तुति करना प्रारम्भ किये। भीष्मक बोले कि–हे देव-देव! आप आदि-अन्त रहित सदा विद्यमान नारायण रूप आदि देव के लिये नमस्कार है। स्वायंभुव, विश्वरूप, स्थाणु, वेधस, पद्मनाभ, जटाधारी, दण्डी, पीताम्बरधारी, हंस की प्रभा वाले हंस स्वरूप चक्ररूप, बैकुण्ठ वरूप, अज, परमात्मा के लिये नमस्कार है। सत् - असत् भाव युक्त पुराण पुरुष, पुरुषोत्तम, सर्वगुण युक्त तथा निर्गुण आपके लिये नमस्कार है। हे सुरोत्तम! मैं आपका भक्त हूँ, अतः मेरे लिये आप वर देने वाले होइये, आप लोकों के नाथ हैं आप सबकी आत्मा को जानने वाले विष्णु हैं।।५१-६०।।

वैशम्पायनजी बोले कि–इस प्रकार संक्षेप रूप से स्तुति कर और श्रेष्ठ भूषणों से सत्कार कर कमल-लोचन श्रीकृष्ण जी को विदा किया। पराक्रमी श्रीकृष्ण जी राजाओं से मंत्रणा कर और भीष्मक के सत्कार को ग्रहण कर प्रस्थान किये तो उनके पीछे-पीछे राजा लोग भी चले। सौम्य रूप पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ को आगे कर दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए मथुरा को चले। वे बड़े भारी रथ के समूह द्वारा चारों ओर से घिरे हुए भेरी और नगारों के नाद और शंख एवं दुन्दुभियों के शब्दों के साथ जा रहे थे। हाथी गरज रहे थे और घोड़े हिनहिना रहे थे तथा शूर-वीर सिंहनाद कर रहे थे तथा रथ

घरघराते हुए चल रहे थे। महामेघ की भाँति बड़ा भारी तुमुल शब्द हो रहा था, इस प्रकार श्रीकृष्ण के चले जाने के बाद देवता लोग उस श्रेष्ठ आसन और सभा को लेकर स्वर्ग को चले गये इधर चतुरङ्गिणी सेना से घिरे राजा लोग श्रीकृष्ण जी को एक कोस तक पहुँचाने के बाद श्रीकृष्ण के आज्ञा से लौट कर पुनः स्वयंवर स्थान को चले आये।।६१-७१।।



अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५२।।

वैशम्पायनजी बोले-कि वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण के चले जाने के बाद भूषणों से भूषित अङ्गों वाले राजे श्रीकृष्ण का गमनोत्सव मनाने के लिये इन्द्र के समान राज-सभा को चले गये। चन्द्रमा तथा सूर्य के समान प्रकाश वाले राजाओं को राज-सभा में आकर सुन्दर आसनों पर बैठे हुए देखकर सुन्दर नीति के अर्थ को कहने वाले नर-राजों में सिंह के समान राजा भीष्मक बोले। हे नराधिपो! स्वयंवर में किये गये मेरे दोष को जानकर मुझ दुर्दग्ध वृद्ध के फलोदय को आप लोग क्षमा करें। वैशम्पायनजी कहते हैं कि-इस प्रकार कह कर और उन सभी राजाओं का यथोचित सत्कार करने के बाद मध्य देशीय राजाओं को विदा कर दिया। तत्पश्चात् पूर्व, पश्चिम और उत्तरापथ के राजाओं को भी विदा कर दिया; वे महान् धनुर्धर नरश्रेष्ठ राजे भी प्रसन्न मन हो यथायोग्य दण्ड-प्रणाम कर चले गये। जरासन्ध, सुनीथ, बलवान् दन्तवक्र,। सौभपति शाल्व, राजा महाकूर्म, क्रथ-कैशिक प्रमुख श्र्ेठ वंश वाले राजे और राजर्षि वेणुदारि, काश्मीर नरेश तथा अन्य दक्षिणापथिक बहुत से राजे एकान्त की बात सुनने के लिये भीष्मक के समीप रह गये, इन राजों को स्थित देख बली राजेन्द्र भीष्मक स्नेहपूर्ण मन से अर्थ, धर्म, मोक्ष सहित छवों नीतियों से युक्त।।१-१०।।

सुन्दर और मीठा वचन गम्भीर वाणी से बोले- भीष्मक ने कहा कि - आप अवनीशों को देखकर आर नीति से युक्त कहे वचनों को सुनकर भी जो मैंने स्वयंवर स्थागित कर दिया इसके लिये आप सज्जनों को मुझ नित्य

अपराधी को क्षमा करना चाहिये। वैशम्पायनजी बोले कि इस प्रकार कहकर नीति के पण्डित राजा भीष्मक अपने पुत्र को लक्ष्य कर राज-सभा में वचन बोले। भीष्मक बोले कि–पुत्र की चेष्टा को देखकर मेरी आँखें भयभीत हो रही हैं, मैं इन राजाओं को बालक के समान मान रहा हूँ और श्रीकृष्ण को परम पुरुष भगवान् मानता हूँ। उन्होंने बाहुबल से मानवों के बीच इस पृथ्वी पर कीर्तिशालियों के मध्य अपनी श्रेष्ठ कीर्ति तथा यशस्वियों में श्रेष्ठ यश स्थापित कर दिया है। वह महाभाग्यशालिनी स्त्रियों में श्रेष्ठ देवकी धन्य हैं जो कि त्रिभुवन श्रेष्ठ केशव को अपने गर्भ में धारण कर उत्पन्न की हैं। मेरे स्नेहपूर्ण नेत्र कमलपत्र के समान आँखों वाले उन श्रीकृष्ण के मुखकमल को देखा करते हैं। वैशम्पायनजी कहते हैं कि महातेजस्वी राजा शाल्व राज-सभा में राजा भीष्मक से चापलूसी करते हुए मधुर वाणी से बोला। शाल्व ने कहा कि–हे राजेन्द्र! रिपुओं को मर्दन करने वाले पुत्र के लिये शोक करना व्यर्थ है, क्षत्रिय की तो रण में जय अथवा पराजययही दो निश्चित है। सभी मनुष्यों को एक न एक दिन मरण रूप गति निश्चित है, यह मरण रूप धर्मप्राचीन काल से चला आ रहा है। बलराम-श्रीकृष्ण को छोड़कर अन्य तीसरा कौन है कि जो आपके महाबली पुत्र से रण में युद्ध करने को समर्थ हो सकता है। वह अकेले ही रणाङ्गण में रथियों और अतिरथियों के झुण्डों को परास्त कर सकता है।।११-२०।।

और वह महाभुज रिपुओं के धनुष को छीनकर उन्हें बाँध सकता है, देवताओं से भी दुरासद महाभयंकर भार्गवास्त्र को जिस समय अपने बाहुबल से छोड़ेगा उस समय रण में कौन ऐसा वीर है कि जो टिक सकेगा; "आप जो श्रीकृष्ण की बात करते हैं" तो वह अनादि, मृत्यु-रहित, अव्यय पुरुष भगवान् हैं। उनको जीतने के लिये स्वयं शंकरजी भी समर्थ नहीं हो सकते तो मनुष्यों की क्या बात है? हे महाराज ! आपका पुत्र सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ के तत्त्व को जानने वाला है। वह श्रीकृष्ण को शंकरजी समझ कर उनसे युद्ध नहीं करेगा। श्रीकृष्ण को जीतने वाला इस समय यवनाधिप राजा है। वह कालयवन नामक राजा श्रीकृष्ण से भी अवध्य है क्योंकि गार्ग्य मुनि ने पुत्र

की इच्छा से लौह चूर्ण का भक्षण कर परम दुश्चर महाघोर कठिन तप कर शंकर जी को प्रसन्न कर वरदान में इस पुत्र कालयवन को प्राप्त किया था। जिस समय मुनि ने पुत्र का वर माँगा था उस समय कहा कि यह पुत्र मथुरा में उत्पन्न होने वालों से अवध्य हो ऐसा सुनकर शंकरजीने भी ''ऐसा ही होगा'' कह कर मुनि को पुत्र प्रदान किया था। इस प्रकार गार्ग्य का पुत्र श्रीमान् कालयवन रुद्र के वर से उत्पन्न है जो माथुरों से अवध्य है विशेष रूप से मथुरा में तो उसकी मृत्यु हो ही नहीं सकती। बलवान् श्रीकृष्ण भी मथुरा में ही उत्पन्न हैं इसलिये कृष्ण से वह कालयवन अवध्य है, वह मथुरा में ही आकर श्रीकृष्ण को जीतेगा।।२१-३०।।

हे राजाओं! यह मेरी कही बात आप लोग सत्य मानें और यवनेन्द्रपुर के लिये दूत भेजें। वैशम्पायनजी कहते हैं कि सौभपति की बात सुनकर सभी श्रेष्ठ राजे प्रसन्न हो महाबली जरासन्ध से कहने लगे कि अवश्य वहाँ दूत भेजना चाहिये। हे राजन्! उन राजाओं की बात सुनकर जरासन्ध खिन्न मन हो गया और ब्रह्मा के वचनों का स्मरण करता हुआ जरासन्ध बोला- अन्य राजाओं से भयभीत राजे पहले मेरा आश्रय लेकर अपने हरण हुए राज्य, सेना और वाहन को प्राप्त करते थे। अब दूसरे का आश्रय लेने के लिये मुझे राजे उद्यत कर रहे हैं, यह तो ऐसी ही बात होगी कि जैसे कन्या द्वेष से अपने पति को छोड़ दूसरे जार पुरुष से प्रेम करे अर्थात् हम अपने बल का भरोसा न कर दूसरे का आश्रय लें। अहो! दैव बड़ा बलवान् है उसे हम लोग नहीं टाल सकते, अतः कृष्ण के भय से हम अधिक बल वाले कालयवन का आश्रय लेने जा रहे हैं। निश्चय ही उपाय से विहीन हम दूसरे का आश्रय करेंगे, हे राजाओं! इससे तो मेरे लिये मरण ही श्रेष्ठ है पर अन्य का आश्रय नहीं। कृष्ण हों अथवा बलराम हों या अन्य कोई राजा हों मैं मारने वाले शत्रु के प्रति अवश्य युद्ध करूँगा, जिस प्रकार की आकाशवाणी ने प्रेरणा दी है। यह मेरी निश्चित बुद्धि है और यही सत्पुरुषों का भी व्रत है, इसके विपरीत दूसरे का आश्रय करने को मैं समर्थ नहीं हूँ। आप साधु वृत्ति वाले राजाओं को वह श्रीकृष्ण बाधा न करें इसलिये राजाओं के संरक्षण के लिये मैं दूत भेज देता हूँ।।३१-४०।।

हे राजाओं! वह दूत आकाश मार्ग से जाय जिससे कि श्रीकृष्ण उसे बाधा न पहुँछा सकें ऐसा विचार कर आप किसी को भेजें। अग्नि और सूर्य के समान पराक्रम वाले यह श्रीमान् सौभपति सूर्य के समान चमकने वाले रथ से अपने पुर को जा रहे हैं। यही हम लोगों के दूत बनकर राजाओं के समागम को और हम लोगों से कृष्ण के विग्रह का समाचार उसी प्रकार कहें कि जैसे यवनेन्द्र मथुरा पर चढ़ाई कर दे। वैशम्पायनजी कहते हैं कि ऐसा निश्चय कर पुनः रजा जरासन्ध बलवान् सौभपति से बोला कि–हे मानद! आप राजाओं की सहायता कीजिये, यवनेन्द्र के पास जाइये। और जिस प्रकार यवनेन्द्र मथुरा पर चढ़ाई कर श्रीकृष्ण को जीत लें तथा हम लोगों को सन्तोष हो जाय उसी प्रकार की नीति से उससे बात करें। इस प्रकार सभी राजाओं को आदेश दे और धर्मानुसार भीष्मक की पूजा कर अपनी सेना के साथ जरासन्ध अपने पुर को चला गया। राजा शाल्व भी धर्मानुसार भीष्मक और जरासन्ध को प्रणाम कर वायु के समान वेग से चलने वाले रथ पर बैठ कर आकाश मार्ग से यवनेन्द्रपुर को चला गया। वे दक्षिणा पथ के भी सभी राजे जरासन्ध को कुछ दूर पहुँचा कर अपने-अपने नगर को चले गये। राजा भीष्मक पुत्र की दुर्नीति की चिन्तना कर और क्रथ व कैशिक के व्यवहारों का स्मरण कर अपने घर में श्रीकृष्ण का अनुचिन्तन करते हुए दीन हो रहने लगे। जब रुक्मिणी जी को यह ज्ञात हुआ कि श्रीकृष्ण के आगमन के कारण राजाओं के दोष से स्वयंवर स्थगित हो गया तो वह सखियों के बीच जाकर लज्जित मुख से बोलीं कि मैं कमलपत्राक्ष श्रीकृष्ण को छोड़ कर अन्य किसी राजा की पत्नी होना नहीं चाहती हूँ।।४१-५१।।



अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५३।।

वैशम्पायनजी बोले कि–बलोन्मत्त कालयवन यवनों का राजा हुआ, वह अपने पुरवासियों की धर्म से रक्षा करता था। वह अर्थ धर्म व मोक्ष का ज्ञाता तथा छवों राजनीतियों के अनुसार चलने वाला सातो व्यसनों में ज्ञान

रहित गुणों में सदा अनुरक्त रहता था। वह वेदज्ञ और धर्म शील एवं सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय था, वह संग्राम की विधि जानने वाला था और किला को प्राप्त करने के मार्ग का अनुसरण करने वाला था। अति प्रबल तथा शूरवीर और श्रेष्ठ मन्त्रियों के मन्त्र को मानने वाला था वह मन्त्रियों के साथ सुख से रम्य सभा में सिंहासन पर आसीन था। आत्म तत्त्व को जानने वाले यवन पण्डितों से ज्ञान प्राप्त करने वाला था, उसकी सभा में पण्डित लोग विविध प्रकार की कथाओं को परस्पर कह रहे थे। इसी बीच दिव्य गन्ध वाला सुख शीतल वायु बहकर कामदेव को उत्पन्न करने लगा। जो वहाँ सभा में आये थे वे सभी एक मन से "यह क्या है" ऐसा कहकर प्रफुल्लित नेत्र से देखने लगे उन्हें इस स्थिति में देखकर राजा भी चकित हो गया। फिर सभी, सूर्य के समान प्रकाश करने वाले और चमकने वाले सुवर्ण के कलशों एवं सुन्दर रथाङ्गों से सुशोभित आते हुए दिव्य रथ को देखने लगे। उस रथ से दिव्य रत्नों की किरणें छिटक रही थीं और उसमें दिव्य ध्वजा तथा पताकायें लगी थीं उस रथ को मन और वायु के वेग से चलने वाले घोड़े खींच रहे थे। विश्वकर्मा ने उस रथ पर सुवर्ण का चन्द्र और सूर्य-विम्ब बनाकर रचा था और वह व्याघ्र के चर्म से विभूषित था।।१-१०।।

वह रथ मित्रों को हर्ष और शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाला था और शत्रुओं के रथ को तोड़ देने वाला रथ दक्षिण दिशा की ओर से समीप में आ रहा था। उस पर शोभा सम्पन्न बलवान् सौभपति को बैठा देखकर बार-बार "अर्घ्य लाओ पाद्य लाओ" ऐसा यवनेन्द्र का श्रेष्ठ मंत्री कह रहा था फिर तो वहाँ स्वयं महाबाहु कालयवन राज-सिंहासन से उठ कर रथ के उतरने के स्थान पर अर्घ्य लेकर खड़ा हो गया, राजा शाल्व भी परम प्रसन्नता से युक्त हो स्वागत के लिये इन्द्र के समान अमित तेजस्वी राजा कालयवन को आया देखकर विश्वस्त हो अकेले उस उत्तम रथ से उतर गये और मित्र के दर्शन की लालसा से परम प्रेम पूर्वक उसके समीप गये राजर्षियों में श्रेष्ठ राजा शाल्व अर्घ्य देने के लिये उद्यत कालयवन को देखकर मधुरवाणी में कहे कि हे महाद्युते! मैं अर्घ्य के योग्य नहीं हूँ, मैं तो दूत हूँ, राजाओं का सन्देश लेकर

आपके पास आया हूँ। बुद्धिमान जरासन्ध ने बहुत से राजाओं के साथ मंत्रणा कर मुझे आपके पास भेजा है, इसलिये हे महाराज! मै राजाओं के बीच अपने को अर्घ्य के योग्य नहीं समझता। ''राजा शाल्व की यह बात सुनकर'' कालयवन बोला कि-हे महाबाहो! मैं जानता हूँ कि आप यहाँ दूत बनकर आये हैं और राजाओं की सभा में मंत्रणा कर मगधराज ने आपको भेजा है। हे महामते राजन्! इसीलिये तो मैं और भी विशेष कर अर्घ्य, पाद्य और आसन आदि सत्कार की सामग्रियों से विधिपूर्वक पूजन कर रहा हूँ।।११-२०।।

क्योंकि आपका पूजन करने से सभी राजाओं का पूजन हो जायेगा; हे जनेश्वर! आप मेरे साथ शुभ्र आसन पर बैठिये। वैशम्पायनजी कहते हैं कि-वह राजा कालयवन हाथ पकड़ कर कुशल और स्वास्थ्य पूछकर शाल्व को सुख से राज्य सिंहासन पर बैठा कर स्वयं भी बैठा। कालयवन शाल्व से कहने लगा कि-जिस जरासन्ध के बल का आश्रय कर हम सभी राजे निरुद्विग्न हो इन्द्र के समान सुख से रहते हैं उस जरासन्ध के लिये कौन सी बात असाध्य हो गयी कि जिसके लिये उन्होंने मेरे पास भेजा है? आप उनकी बातों को सत्य कहें कि वह बलशाली मेरे लिये क्या आज्ञा दिये हैं, यदि उनकी आज्ञा कठिन से कठिन होगी तो भी मैं अवश्य पालन करूँगा। राजा शाल्व बोले कि-हे यवनाधिप! मगधाधिप ने जैसा आप से कहने के लिये कहा है मैं ठीक वैसा ही कहता हूँ आप सुनें। जरासन्ध ने कहा है कि-जो यह श्रीकृष्ण जगत् को कष्ट देने वाला परम दुर्जय उत्पन्न हुआ है, उसके दुःखद व्यवहार को जानकर मैं उसे मारने के लिये उद्यत हुआ और बहुत से राजाओं को सम्पूर्ण सेनाओं के साथ लेकर गया (जब वह डर कर गोमन्त पर्वत पर जा छिपा तो) विशाल सेना से उस गोमन्त पर्वत को घेर कर चेदिराज के शत्रु-दमन-कारक वचनों को सुनकर श्रीकृष्ण-बलराम के विनाश के लिये उस पर्वत में अग्नि लगा दिया। प्रलयकाल की अग्नि के समान हजारों लपटों युक्त उस अग्नि को देख बलराम स्वर्ण ताल लेकर पर्वत से सागर के समान विशाल सेना के बीच कूद पड़ा और योधाओं, अश्वों, रथों तथा हाथियों को मार कर विनाश कर दिया।।२१-३०।।

नागराज की भाँति सरकते हुए हल से बलपूर्वक योधाओं और अश्वों को खींच कर मुसल से मार कर चकनाचूर कर दिया। वह हाथियों को फेंक कर हाथियों को, रथों से रथों को, घोड़ों से घोड़ों को और पैदल सिपाहियों से पैदल सिपाहियों को मार गिराया। सैकड़ों ससैन्य राजाओं से भरे समर में विविध मार्गों से ग्रीष्मकाल में प्रतापी सूर्य के समान वह बलराम विचरने लगा। बलराम के बाद सूर्य के समान किरणों वाले चक्र को धारण कर चक्रधारियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण (राजाओं पर) क्षुद्र मृगों पर सिंह के समान टूट पड़ा। वह महाबलवान् श्रीकृष्ण अपने पैर के वेग से उस गोमन्त पर्वत को नीचे को दबाकर शत्रु की सेना में ऊँचे पर्वत से कूदा। वह शैलेन्द्र नाचता हुआ जल की धारा से नहा उठा वह शब्द करता, अग्नि को बुझाता हुआ पृथ्वी में प्रवेश कर गया था। वह जानर्दन चारों ओर से जलते हुए पर्वत के शिखर से कूद कर हे राजन्! हाथ से शीघ्रता पूर्वक चक्र चलाकर सेना का संहार करने लगा। श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र को चला कर औ गदा प्रहार के बाद बलराम मुसल के प्रहार से मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के समूहों को चूर्ण-चूर्ण कर दिया। सूर्य के समान प्रतापी राजाओं से अभिरक्षित विशाल सेना को अपने क्रोधावेश से चक्र और हल की उत्पन्न अग्नि द्वारा श्रीकृष्ण-बलराम ने भस्म कर दिया। मनुष्य, हाथी और घोड़ों से व्याप्त तथा पैदल एवं ध्वजाओं और रथ समूहों से युक्त सैन्य दल को तितर-वितर कर दिया।।३१-४०।।

चक्र की अग्नि से भयभीत हो भागती हुई सेना को देखकर मैं स्वयं बड़े भारी रथ समूहों को लेकर वहाँ युद्ध करने लगा तब श्रीकृष्ण का भाई वीर बलराम हाथ में गदा और हल रूप आयुध लेकर मेरे सम्मुख लड़ने को आ डटा। बारह अक्षौहिणी सेना को मार कर क्रोधित हुए सिंह के समान बलराम सौनन्द मुसल और हल को त्याग गदा लेकर मुझसे युद्ध करने लगा। वह वज्रपात के समान वेग से मेरे ऊपर गदा का प्रहार कर पुनः प्रहार करने की इच्छा से स्वामी कार्तिकेय के समान गदा लेकर मेरे समक्ष भूमि में डट गया और जिस प्रकार मेरे मर्मस्थल पर प्रहार करने के लिये अग्नि के समान क्रोध में जलता हुआ विशाल नेत्रों को फाड़ कर मुझे देखने लगा। इस प्रकार

बलराम के रूप को रणाङ्गण में देखकर जीवन को चाहने वाला इस मनुष्य लोक में कौन मनुष्य है? जो उसके सामने खड़ा रह सके। वह भयंकर गदा को लेकर और काल दण्ड के समान पृथ्वी में लीन होने वाले हल के अंकुश को पृथ्वी में गड़ा कर मेरे सामने खड़ा रहा। इसके बाद मेघ के समान स्वर से आकाश मंडल को गुँजाते हुए लोक पितामह ब्रह्मा ने आकाशवाणी की। हे अनघ! हे महायुध! यह राजा जरासन्ध आपके द्वारा प्रहार के योग्य नहीं है, यह आप से अवध्य है, इसका वध दूसरे के द्वारा होना निश्चित है अतः इस युद्ध से आप विराम लें। इस प्रकार आकशवाणी को सुनकर मैं चिन्तित हो गया और युद्ध से पीछे हट गया, क्योंकि सभी के प्राण हरण का निश्चय करने वाले ब्रह्मा ने स्वयं इस घोर शब्द को कहा था।।४१-५०।।

इसलिये मैं राजाओं के हित की कामना से आप से जो कुछ कह रहा हूँ उसे सुनकर हे राजेन्द्र! आप वैसा करने को तत्पर हो जायँ। पुत्रार्थी मुनि ने महान् उग्र तपस्या द्वारा नरदेव शंकरजी को प्रसन्न कर माथुर जनों से अवध्य आप को पुत्र के रूप में प्राप्त किया है। उन मुनि ने लोहे के चूर्ण का भक्षण कर बारह वर्ष तक तप किया था उसके बाद देवता और दानवों द्वारा पूजित चरण कमल वाले महामुनि ने अपने इच्छित वर को प्राप्त किया था। महात्मा गार्ग्य मुनि के तप के बल से और चन्द्रमौलि शंकरजी के वर प्रभाव से आपको प्राप्त कर श्रीकृष्ण वैसे ही नष्ट हो जायेंगे कि जैसे सूर्य की किरणों से हिम (वर्फ) नष्ट हो जाता है। इसलिये हम राजाओं के वचन से प्रेरित होकर श्रीकृष्ण पर विजय प्राप्त करने के लिये व्रज की यात्रा का प्रयत्न कीजिये और मथुरा में प्रवेश कर सेना द्वारा श्रीकृष्ण को मार कर अपने यश को फैलाते हुए विजयी बनिये। वासुदेव और बलदेव ये दोनों भाई माथुर हैं इसलिये उस मथुरापुरी में पहुँच संग्राम कर दोनों भाइयों को आप जीत लेंगे। राजा शाल्व बोले कि—नरपति भास्कर राजा जरासन्ध द्वारा कहा गया राजाओं के लिये हितकारक वचन मैंने आप से कहा, अब आप अपने मन्त्रियों से विचार-विमर्श कर हे मनुजेन्द्र! जैसा उचित समझें वैसा करें।।५१-५७।।



अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५४।।

वैशम्पायनजी बोले कि–राजा जरासन्ध की आज्ञा से इस प्रकार राजा शाल्व के कहने पर परम प्रसन्न हो यवनाधिपति शाल्व से बोला। कालयवन बोला कि–श्रीकृष्ण के वध के लिये बहुत से राजाओं ने जो मुझे नियुक्त किया है इससे मैं धन्य हो गया, अनुगृहीत हो गया और मेरा जीवन भी आज सफल हो गया। जो श्रीकृष्ण तीनों लोकों में देवता और राक्षसों से भी दुर्जेय हैं उसको जीतने के हेतु मुझे नियुक्त कर सभी राजाओं को विजय का आर्शीवाद देना चाहिये। प्रसन्न हो राजसिहों को मेरी विजय की घोषणा करनी चाहिये। उनके इस वचन रूप जल के वर्षा से मेरी अवश्य विजय होगी। मैं जरासन्ध के वचनों से प्रेरित होकर उन राजाओं का कहना अवश्य करूँगा हे राजेन्द्र! श्रीकृष्ण के साथ युद्ध में मेरी पराजय भी जय के ही समान है। हे राजन्! आज ही मैं तिथि, नक्षत्र व करण के साथ शुभ मुहुर्त निकलवा कर श्रीकृष्ण को रण में जीतने के लिये मथुरा को जाऊँगा। वैशम्पायनजी बोले कि–बलवान् सौभपति राजा शाल्व से इस प्रकार कह कर बहुमूल्यक मणि और आभूषणों से यथोचित सत्कार कर कालयवन ने विजय के आशीर्वाद के लिये ब्राह्मणों को धन दिया और हे राजेन्द्र! अपने पुरोहित को बहुत सा धन दिया और श्रीकृष्ण को जीतने की इच्छा से अग्नि में हवन कर मंगलाचार पूर्वक प्रस्थान किया। हे भरत कुलश्रेष्ठ! राजा शाल्व भी कृतार्थ हो प्रसन्नता पूर्वक यवनेन्द्र से विदा हो अपने पुर को चला गया।।१-१०।।



अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५५।।

राजा जनमेजयजी बोले कि–इन्द्र के समान पराक्रमी श्रीकृष्ण विदर्भ नगर से मथुरा को चले गये; उन्होंने गरुड़ को किसलिये बुलाया था और गरुड़ ने कौन सा कर्म किया। महाबली गरुड़ के ऊपर भगवान् श्रीकृष्ण चढ़े भी नहीं हे महामुने! यह मुझे संशय है इसलिये इसका सारांश कहिये।

वैशम्पायनजी बोले-हे राजन्! महातेजस्वी गरुड़ ने विदर्भ नगरी में जाकर मनुष्य से न होने वाले कर्म को किया था। भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा नहीं पहुँचे थे तभी महातेजस्वी गरुड़ ने विचारा था कि। देव-देव श्रीकृष्ण ने राजाओं के समक्ष कहा था कि मैं भोजराज से पालित मथुरापुरी को जाऊँगा। ऐसा कहने के बाद यह मथुरा जायेंगे ही ऐसा विचारते हुए हाथ जोड़ प्रणाम कर यह कहे थे। गरुड़ कहे कि-हे देव! मैं रैवत पर्वत के समीप कुशस्थली नगरी को जाऊँगा वहाँ रमणीक रैवत पर्वत को तथा उसके ऊपर स्थित नन्दन-वन को देखूँगा। रेवतक द्वारा बसायी गई वह नगरी पर्वत के समीप समुद्र के तट पर है और वृक्ष, गुल्म तथा लताओं और पुष्प के परागों से विभूषित है। और गजराजों, सर्पों, भालुओं और वानरों से तथा शूकर भैसों एवं अनेक प्रकार के मृगों के झुण्डों से सेवित है। मैं उस नगरी को चारों ओर से देख कर आपके वास के योग्य स्थान ढूँढूँगा यदि आपके योग्य वह नगरी प्रशस्त होगी तो वहाँ के कन्टकों को साफ कर आपके पास आ जाऊँगा।।१-१०।।

वैशम्पायनजी बोले कि-इस प्रकार श्रीकृष्ण से कह और प्रणाम कर महाबली पन्नगेन्द्र पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े और कृष्ण भी यादवों के साथ मथुरा पुरी को पहुँचे उस समय मथुरा निवासी लोग और नर्तकियाँ तथा राजा उग्रसेन श्रीकृष्ण की आगवानी कर पूजा किये और सभी लोग प्रसन्न हो गये। जनमेजयजी बोले कि बहुत से राजाओं द्वारा राजेन्द्र के पद पर श्रीकृष्ण को अभिषिक्त हुआ सुनकर महाबाहु उग्रसेन ने क्या किया? वैशम्पायनजी बोले कि बहुत से श्रेष्ठ राजाओं द्वारा राजेन्द्र पद पर अभिषिक्त होना और इन्द्र द्वारा चित्राङ्गद नामक दूत को भेज कर सब राजाओं के साथ सन्धि करा देना सुन कर। राजा उग्रसेन ने एक-एक राजाओं को एक-एक लाख द्रव्य दिया और राजेन्द्रों को एक-एक अर्बुद तथा प्रत्येक मनुष्यों को दस-दस हजार द्रव्य दिया। जो कोई मनुष्य वहाँ आये थे वे खाली हाथ घर नहीं गये, श्रीकृष्ण की चिन्तना मात्र से शंख (निधि) ने यादव का रूप धारण कर धन दिया था। लोकों का समाचार जानने वाले अपने आत्मीय जनों से सुन कर देवताओं ने श्रीमान् निधिपति से इस बात को कहा था। उग्रसेन ने देवालयों में देवताओं की बड़ी

भारी पूजा कराई और वसुदेव के भवन के चारों तरफ तोरण लगवाये और चारों तरफ नटी के नाच-गाने और बाजे बजवाये एवं पताकाओं, ध्वजाओं और बहुत सी मालाओं से मथुरा नगरी को सजवाया। भोजराज उग्रसेन ने कंसराज की सभा को चित्र-विचित्र रेशमी वस्त्रों से सजवाया और अनेक प्रकार के पताकाओं से सभा को सुन्दर प्रभावशाली बना दिया।।११-२०।।

उसके चारों ओर तोरण लगवा दिया, झरोखों पर सुधापङ्क का अनुलेपन करा दिया इस प्रकार उग्रसेन ने राजेन्द्र श्रीकृष्ण के आसनालय को सजवा दिया था। नगरी में सभी स्थानों पर नटी के नाच-गाने हो रहे थे और बाजे बज रहे थे, पताका और वनमालाओं सहित स्थान-स्थान पर जल से भरा मांगलिक कलश रखा हुआ था और प्रमुख सड़कों पर चन्दन मिश्रित जल का छिड़काव कराया तथा भूमि पर सोने-चाँदी के बेल-बूटे कढ़े वस्त्रों के भूमि पर पाँवड़े बिछवाये थे। चन्दन, अगर, गुग्गुल तथा धूप की सुगन्धि मार्ग के दोनों ओर उड़ रही थी और ठौर-ठौर गुड़ औ राल अग्नि में धूपित हो रहा था। स्त्रियाँ वृद्ध स्त्रियों को आगे कर मांगलिक स्तुतियाँ गाती हुई अर्घ्य ले-लेकर अपने-अपने द्वारों पर श्रीकृष्ण के स्वागत के लिये प्रतीक्षा कर रही थीं। इस प्रकार मथुरा पुरी को आनन्दमयी बनाकर राजा उग्रसेन ने घर जा श्रीकृष्ण के प्रिय आगमन को कह बलराम के साथ मन्त्रणा कर रथ के समीप गये। हे राजन्! इसी बीच शंखों की महान् ध्वनि होने लगी। इसके पश्चात् मधुपुर निवासी सभी स्त्री, वृद्ध, बालक, सूत, मागध और बन्दी जन के साथ श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य शंख की मधुर ध्वनि सुनकर बलराम को आगे कर बड़ी भारी सेना के साथ अर्घ्य पाद्य ले बुद्धिमान् उग्रसने श्रीकृष्ण की स्वागत के लिये गये। श्रीकृष्ण के सामने वाले मार्ग में आकर राजा उग्रसेन शुभ्र रथ से उतर कर पाँव पैदल ही आगे-आगे चलने लगे।।२१-३०।।

और दिव्य रत्नों से विभूषित और उनकी प्रभा से युक्त, अंगों में आभूषण और वक्षस्थल पर वनमाला धारण किये चमकते हुए सूर्य के समान दिव्य, चामर, व्यजन, छत्र और ऊँचे उठे हुए गरुड़ध्वज वाले और सम्पूर्ण राजलक्षणों

से युक्त शोभा सम्पन्न कठिनता से देखने योग्य देवेश हरि को देखकर हे राजेन्द्र! राजा उग्रसेन हर्ष से गद-गद वाणी द्वारा पुण्डरीकाक्ष शत्रु सैन्य निषूदन बलराम से बोले। रथ से मेरा चलना ठीक नहीं इसी से मैं रथ से उतर गया हूँ हे महाभाग! आप रथ पर चढ़ कर चलिये। छद्म रूपधारी विष्णु जब मथुरा में आ जायेंगे तो मैं सर्व भाव से उन केशव की स्तुति करने की इच्छा करता हूँ कि जिन्होंने समुद्र के समान उमड़े हुए राजाओं के बीच अपने देवेन्द्रत्व को प्रकाशित किया था। यह सुनकर श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलरामजी राजा उग्रसेन से बोले कि-हे नृपते! आते हुए देवसत्तम श्रीकृष्ण जी की स्तुति करना आपको उचित नहीं है, ये जनार्दन बिना स्तुति के ही तुम्हारे ऊपर वे प्रसन्न हैं। जो स्वयं प्रसन्न हैं तो उनकी स्तुति से क्या लाभ? आपके दर्शन मात्र से उनकी स्तुति हो गई, ये राजेन्द्रत्व पद को प्राप्त कर आपके घर में आ रहे हैं। इसलिये अमानुषिक दिव्य स्तोत्रों से स्तुति न करना इस प्रकार आपस में वार्तालाप करते ये दोनों श्रीकृष्ण के समीप पहुँच गये।।३१-४०।।

अर्घ्य देने के लिये उठाये हुए भुजा वाले उग्रसेन को देखकर श्रीकृष्ण जी ने रथ खड़ा कर दिया और वक्ताओं में श्रेष्ठ वे राजा उग्रसेन से बोले कि-मैंने आपको मथुरा का राजा बनाकर अभिषेक किया है इसलिये हे मथुराधिपते! आपको स्वयं उलटा कार्य न करना चाहिये। इसलिये अर्घ्य, आचमनीय और पाद्य आप ही के लिये मैंने निवेदन किया हे राजन्! आप मेरे लिये अर्घ्य आदि दें यह उचित नहीं है यह मेरे मन को अच्छा नहीं लगता है। हे नृपते! मैं आपके पूजन के अभिप्राय को समझ कर ही यह बात कह रहा हूँ। तुम्हीं मथुरा के राजा हो इसलिये तुम्हें अन्यथा करना उचित नहीं है। जिस प्रकार छोटे राजा आपको कर देते हैं उसी प्रकार मैं आपके लिये राज्यधनांश आपके आगे एक लाख का भाग वस्त्राभूषणों को छोड़ कर देता हूँ इसे ग्रहण कीजिये और स्वर्ण से विभूषित शुभ्र रथ पर चढ़िये। हे मनुजेश्वर! चामर, व्यजन, छत्र और ध्वजा तथा दिव्य आभूषणों से युक्त सूर्य के समान प्रकाशित होने वाले मुकुट को आप धारण कीजिये और युवा पौत्रों के साथ प्रसन्नता पूर्वक इस मथुरापुरी का पालन कीजिये और अरि गणों को जीत कर

भोजवंश को बढ़ाइये बलरामजी के लिये वज्रपाणि इन्द्र ने दिव्य वस्त्रा-भूषणों को भेजा है और सभी मथुरा निवासी लोगों को दस-दस हजार स्वर्ण मुद्रा तथा सूत मागध और बन्दियों के लिये एक-एक हजार स्वर्ण मुद्रा एवं वृद्धा स्त्रियों और गणिकाओं को सौ-सौ स्वर्ण मुद्रा भेजा है।।४१-५०।।

राजा उग्रसेन के साथ रहने वाले विकद्रु आदि प्रमुख सेवकों को दस-दस हजार स्वर्ण मुद्रायें देने की कल्पना की है। वैशम्पायनजी बोले कि-इस प्रकार मथुरा के सेना के सामने राजा उग्रसेन की पूजा कर आनन्दमयी मथुरा को मधुसूदन चल पड़े। दिव्य आभूषणों और मालाओं से तथा दिव्य वस्त्रों और चन्दन के विलेपन से चारों ओर प्रकाशित होते हुए श्रीकृष्ण वैसे ही शोभा पाने लगे कि जैसे स्वर्ग में देवता शोभा पाते हैं। भेरी, पटह के नाद से और शंख एवं दुन्दुभी के शब्द से तथा हाथियों के गर्जने और घोड़ों के हिनहिनाने से, शूरों के सिंहनाद से और रथों के शब्द से वैसी ही तुमुल गर्जना होने लगी कि जैसे आकाश में मेघ की गर्जना होती है। बन्दियों के स्तुति करते समय प्रजा गणों ने श्रीकृष्ण को नमस्कार किया; अनन्त दान देकर भी हरि विस्मय को न प्राप्त हुए। नम्र स्वभाव होने से उस समय और भी नम्रता आ गई और अहंकार रहित होने से वे विस्मय को न प्राप्त हुए। सूर्य के समान अपने शरीर से देदिप्यमान श्रीकृष्ण के मथुरा आते समय उनको देख मथुरा निवासी पद-पद पर उनका नमस्कार कर रहे थे और लोग कह रहे थे कि--यह साक्षात् श्रीमान् नारायण हैं इनका क्षीर सागर में मकान है, यह नाग की शय्या को छोड़ कर मथुरापुरी में आये हैं।।५१-६०।।

देवताओं से दुर्जेय महाबलवान् राजा बलि को बाँध कर इन्होंने तीनों लोकों के राज्य को इन्द्र के लिये दे दिया और सम्पूर्ण दैत्य गणों को मार कर तथा बलियों में श्रेष्ठ कंस का वध कर इन केशि-निषूदन ने मथुरा के राज्य को भोजराज उग्रसेन के लिये समर्पण कर दिया है। इन्होंने राज्य सिंहासन पर अपना अभिषेक नहीं कराया अब राजेन्द्रत्व पद को प्राप्त कर मथुरा में प्रवेश कर रहे हैं। इस प्रकार मथुरा निवासियों के वार्तालाप को सुनकर बन्दी मागध और सूतों में जो गुणों में श्रेष्ठ थे वे कह रहे थे कि-हे गुण के समुद्र! भला

हम लोग एक मानुषी जिह्वा से आपके गुणों को और आपके प्रभाव से उत्पन्न उत्साह को क्या वर्णन करने में समर्थ हो सकते हैं! कदाचित् बुद्धिमान् नागेन्द्र वासुकी (शेषनाग) दो हजार जिह्वाओं से कह सकें। इस लोक में भूतल पर राजाओं के बीच जो इन्द्र के वहाँ से सिंहासन आया है, यह कार्य अद्भुत हुआ है, न कभी हुआ था न भविष्य में होने वाला है। आकाश मंडल से सभा का उतरना और कलशों का आकर स्वयं अभिषेक करना न सुना गया है न देखा गया है, इसलिये हम लोग इसे अद्भुत मानते हैं। स्त्रियों में श्रेष्ठ महाभागा देवकी धन्य हैं जो देवताओं में श्रेष्ठ आप केशव को गर्भ द्वारा धारण कर उत्पन्न की हैं। जो आप कमलनेत्र श्री के समूह देवताओं से पूजित श्रीकृष्ण के मुख कमल को स्नेह पूर्ण नेत्रों से देखती हैं।।६१-७०।।

इस प्रकार मथुरा वासियों के पृथक्-पृथक् वार्तालाप को सुनते हुए और राजा उग्रसेन को आगे किये हुए दोनों भाई राम-केशव किले के द्वार पर पहुँचे। किले के द्वार पर राम-केशव के पहुँच जाने पर उग्रसेन की पूजा की और अर्ध्य-आचमन देकर पाद्य-पाद्य बोले। बुद्धिमान् उग्रसेन ने श्रीकृष्ण के रथ के आगे शिर से प्रणाम कर हाथी पर सवार हो गये और वर्षा की भाँति सुवर्ण के सिक्कों की वर्षा करने लगे। इस प्रकार स्वर्ण जल की वर्षा होते समय श्रीकृष्ण पिता के घर पहुँच गये तब मथुराधिपति उग्रसेन मधुसूदन से बोले–हे प्रभो! राजेन्द्रत्व पद प्राप्त कर देवराज इन्द्र द्वारा दिये हुए सिंहासन को राजभवन में स्थापित करना उचित है। हे भगवन्! आपके भुजबल से अर्जित मथुरेश की सभा को ले चलेंगे और आपको क्रोध करना योग्य नहीं है। हे विशाम्पते! देवकी, वसुदेव और रोहिणी हर्ष से विमोहित हो कुछ करने में समर्थ नहीं हैं। इसके बाद कंस की माता ने केशव का पूजन किया और नाना दिशाओं और नाना देशों से कंस द्वारा लाये हुए धन को देश काल देख कर कंस की माता ने श्रीकृष्ण के युगल चरणों में निवेदन कर दिया तब श्रीकृष्ण जी उग्रसेन को मधुर वाणी से समीप बुला कर बोले। श्रीकृष्णजी बोले कि–मैंने मथुरा के राज्य तथा धन की आकांक्षा से तेरे पुत्र को नहीं मारा है वरन् काल ने मारा है तब वह मृत्यु को प्राप्त हुआ।।७१-८०।।

अब आप मेरे बाहुबल के आश्रय से विविध प्रकार के यज्ञों को कीजिये और विपुल धन को दान दीजिये तथा शत्रुओं की सेना को जीतिये। कंस के नाश से उत्पन्न भय को और मन के संताप को त्याग दीजिये मैंने यह धनराशि पुनः आपके दे दी आप ले जाइये। श्रीकृष्ण जी राजा उग्रसेन को इस प्रकार [illegible] दे भाई बलराम के साथ माता-पिता के समीप घर में प्रवेश किये। आनन्द परिपूर्ण हृदय से महाबली श्रीकृष्ण-बलराम माता-पिता के चरणों में झुक कर नमस्कार किये। उस समय मथुरापुरी ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानों स्वर्ग लोक का परित्याग कर स्वयं अमरावती पुरी अवतीर्ण हो गई हो। वसुदेव के भवन को पुरवासी देख कर चिन्ता करने लगे कि यह स्वर्ग लोक है भूतल नहीं है। पटरानी सहित मथुरेश उग्रसेन को विदा कर बलराम और केशव अपने पिता के घर में चले गये। वे घर में जा शस्त्रों को खोल कर रख दिये और अपने घर में इच्छानुकूल विचरण करने लगे तत्पश्चात् नित्य नैमित्तिक कर्मों को करके सुख से बैठ कर भली-भाँति अन्य कथायें कहने सुनने लगे। इसी बीच बड़ा भारी उत्पात प्रारम्भ हुआ आकाश में मेघ मँडराने लगे, पर्वत डोलने लगे। सभी समुद्र क्षुभित हो गये और शेषनाग भी भ्रम में पड़ गये और सभी यादव काँपने लगे और नीचे मुख कर पृथ्वी पर गिर पड़े।।८१-९०।।

राम-कृष्ण उन्हें पृथ्वी पर गिरा देख कर भी निश्चल रहे, उन्होंने यह समझ लिया कि यह सब कार्य गरुड़ के पक्ष के महान् वायु से हुआ है। तब तक दिव्य मालाओं को धारण किये और चन्दन लगाये सन्निकट आये हुए गरुड़ को देखा गरुड़ जी उन दोनों भाइयों को शिर से प्रणाम कर तथा सौम्य रूप धारण कर आसन पर बैठ गये। समीप में आये हुए अपने गम्भीर बुद्धिमान् तथा सौम्य धैर्यशाली मन्त्री को देख कर बलि को बाँधने वाले भगवान् गरुड़ से बोले। हे देव ! सेना के शत्रुओं को मर्दन करने वाले विनता के हृदय को आनन्द देने वाले केशवप्रिय! हे आकाश चारियों में श्रेष्ठ ! आपका स्वागत है। फिर श्रीकृष्णजी दूसरे देवता के समान बैठे हुए विनता पुत्र गरुड़ से सामर्थ्य के अनुसार वाणी से बोले। श्रीकृष्णजी बोले- हे उड़ने वालें

में श्रेष्ठ ! चलिये राजा उग्रसेन के अन्तःपुर में चलें और वहीं चल सुख से बैठ कर मन के अनुकूल मंत्रणा करेंगे। वैशम्पायनजी बोले कि-बलराम-श्रीकृष्ण और तीसरे गरुड़ जी राज-भवन में प्रवेश कर गुप्त रूप से मंत्रणा करने लगे। श्रीकृष्णजी ने कहा कि-यह जरासन्ध हम लोगों से अवध्य है और इसकी सेना भी बहुत बड़ी है यह जरासन्ध बड़े-बड़े राजाओं की बड़ी-बड़ी सेनाओं से घिरा रहता है। जासन्ध की सेना इतनी बड़ी है कि उसे सौ वर्षों में भी नष्ट नहीं कर सकता। इसलिये हे वैनतेय! मैं तुमसे यही कहता हूँ कि मथुरापुरी में रहने से हम लोगों का कल्याण नहीं होगा यही मेरी सम्मति है।।९१-१००।।

गरुड़ बोले-हे देव-देव! मैं आपको नमस्कार कर आपके समीप से रहने के लिये स्थान ढूँढने कुशस्थली को गया और वहाँ पहुँच आकाश में उड़ता हुआ मैं उस नगरी को चारों ओर से देखा। हे देवश्रेष्ठ! मुझे वह पुरी सभी शुभ लक्षणों से युक्त प्रतीत हुई। वह सागर द्वारा छोड़ी हुई विशाल भूमि पर बसी है पूर्व ओर के जलराशि से वह शीतल है; पर्वत और समुद्र के बीच में है और वह देवताओं से भी अभेद्य है। वह सभी रत्नों की खानों वाली है और वह सभी प्रकार के फल वाले वृक्षों से युक्त है और सभी ऋतुओं के पुष्पों से व्याप्त है वह चारों ओर से मन को हरण करने वाली है। सभी आश्रमों के लोगों के रहने योग्य है, सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने के गुणों से युक्त है, नर-नारियों से व्याप्त वह नगरी नित्य आमोद-प्रमोद को बढ़ाने वाली है। चाहारदिवारियों और खाइयों से युक्त है, वह झरोखों और गुम्मजों की माला धारण करने वाली है, उसके चौराहे विचित्र ढंग से बने हैं उसका प्रमुख द्वार बड़ा तथा तोरण से सुशोभित है। वह बहुत से यंत्रों और जंजीरों एवं स्वर्ण के परकोटों से शोभा पा रही है वह मनुष्य हाथी और घोड़ों तथा रथ एवं सेनाओं से व्याप्त है। वह नगरी नाना प्रकार की दिशाओं और देशों में उत्पन्न होने वाले दिव्य पुष्पों और फलों वाले वृक्षों से व्याप्त है उसमें बहुत सी पताकायें और ध्वजायें लगी हैं और बड़े-बड़े भवनों वाली है। वह शत्रुओं के लिये बड़ी भयंकर और मित्रों के हर्ष को बढ़ाने वाली है वह विशेष कर राजाओं के बसने योग्य नगरों में उत्तमपुरी है। इसलिये हे देव! पर्वत श्रेष्ठ उस

रैवत पर्वत पर आवास कर उसे आप स्वर्ग के समान बनाइये और उसके वन को नन्दन वन के समान बनाइये तथा उसके पुर द्वार को विभूषित कीजिये।।१०१-११०।।

हे सुरोत्तम! वहाँ जाकर आप वास कीजिये, वह कुमारियों को विचरने योग्य रमणीय होगी। वह पुरी द्वारवती नाम से तीनों लोकों में विख्यात होगी तथा इन्द्र की अमरावती नगरी के समान रम्य होगी। यदि चारों ओर से सुरक्षित उस भूमि को समुद्र दे देगा तो विश्वकर्मा वहाँ पर आपके इच्छानुकूल रचना कर्म को करेंगे। हे प्रभो! चमकते हुए मणि, मुक्ता, प्रवाल, हीरा और वैदूर्य मणियों द्वारा अर्थात् तीनों लोकों में उत्पन्न होने वाले दिव्य रत्नों से अपनी सुन्दर दिव्य इच्छा से स्वर्ग के देव-सभा के समान स्वर्णमय सभी रत्नों से विभूषित और दिव्य ध्वजा तथा पताकाओं से युक्त देवता और गन्धर्वों से पालित चन्द्रमा तथा सूर्य के समान चमकते कंगूरों वाले भवनों का निर्माण कराइये। वैशम्पायनजी बोले कि—इस प्रकार गरुड़ जी अपने विचार को सुना कर और केशव तथा बलराम को शिर से प्रणाम कर आसन पर बैठ गये। तत्पश्चात् हे राजन्! श्रीकृष्णजी भी कही गई हित की बात को विचार कर बलराम के सहित उसे यादवों में प्रकाशित करने के लिये मूल्यवान् श्रेष्ठ आभूषणों से गरुड़ जी का सत्कार कर और उन्हें विदा कर स्वर्ग में जैसे देवता सुख से प्रसन्न रहते हैं उसी प्रकार वे दोनों सुख से प्रसन्न होते हुए मथुरा में घूमने लगे। श्रीकृष्ण से उस बात को सुन कर महायशस्वी भोजराज प्रेम में विभोर होकर श्रीकृष्ण से अमृत के समान वचन बोले।।१११-१२०।।

हे रिपुसूदन! हे श्रीकृष्ण! हे महाबाहो! हे यादवों के आनन्द को बढ़ाने वाले! आज मेरे कहे वचन को सुनो! तुम्हारे बिना हम सब इस पुर में अथवा अन्य देश में सुख से रहने में पतिहीन स्त्री के समान समर्थ नहीं है। हे तात! हम लोग तुम्हीं से सनाथ हैं हे मानद! तुम्हारे ही बाहुबल के आश्रित होने से हम लोग राजाओं से भयभीत नहीं होते तथा इन्द्र से भी नहीं डरते। इसलिये हे यादव श्रेष्ठ! जहाँ-जहाँ भी आप विजय के लिये जाइये वहाँ-वहाँ हम लोगों को भी साथ लेते चलिये। राजा उग्रसेन की बात को सुन कर श्रीकृष्णजी

मुस्कुराते हुए बोले कि आपको जैसा इष्ट होगा उसी के अनुसार मैं कार्य करूँगा इसमें संशय नहीं है।



अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५६।।

वैशम्पायनजी बोले कि–कुछ ही समय बाद यादवों की सभा में सभ्य पुरुषों से श्रीकृष्णजी ने कारण सहित सब बात कही। यह राष्ट्र मालिनी मथुरा की भूमि यादवों की है, हम यहीं उत्पन्न हुए हैं और मथुरा में बड़े हुए हैं। इस समय हम लोगों का दुःख दूर हो गया है और हमारे शत्रु भी पराजित हुए हैं राजाओं में हमारा वैर फैल चुका है और जरासन्ध के साथ बहुत बड़ा वैर हो चुका। इस समय हम लोगों के पास बहुत से वाहन और पैदल सेना है तथा अनेक प्रकार के रत्न हैं तथा बहुत से मित्र हैं। और यह मथुरा की भूमि छोटी होने से शत्रु इसपर आक्रमण कर सकते हैं इस समय सेना और मित्र बढ़ते जा रहे हैं। करोड़ों कुमार और ये करोड़ों पैदल लड़ने वाले वीरों के समूहों को बसने के लिये यहाँ भूमि की कमी हो रही है, यहाँ रहने से शत्रु इनका आसानी से मर्दन कर सकते हैं। इस लिये हे यदुश्रेष्ठों! मुझे यहाँ का निवास कल्याणकर नहीं ज्ञात होता है, मैं दूसरी पुरी बसाऊँगा इसके लिये आप लोग मुझे क्षमा करें। आप लोगों के कल्याण के लिये जो मैंने इस यादवों की सभा में वचन कहा है इसके अभिप्राय को आप अच्छी तरह समझते हैं कि यह सब आपके अनुकूल ही है। यह सुन कर सभी यादव प्रसन्न मन हो श्रीकृष्ण जी से कहने लगे कि यादवों के कल्याण के लिये जैसी आपकी इच्छा हो वैसा कीजिये। इसके बाद वृष्णियों ने उत्तम मंत्रणा की कि यह जरासन्ध हम लोगों से अवध्य है और उसकी सेना भी बहुत बड़ी है।।१-१०।।

यद्यपि राजाओं ने हम से लड़ कर अपनी सेनाओं का बहुत बड़ा भाग नष्ट कर दिया तथापि इनकी इतनी सेनायें हैं कि मैं उसे सैकड़ों वर्षों में भी नाश नहीं कर सकता इसलिये यहाँ से भाग चलने का ही निश्चय कीजिये। इसी बीच राजा जरासन्ध कालयवन के साथ बहुत बड़ी सेना लेकर मथुरा पर चढ़

आया। जरासन्ध आदि राजे यह सुनकर कि माथुरों से राजा कालयवन अवध्य है अतः कालयवन की शरण लिये थे, इससे उस समय जरासन्ध का बल और भी दुनिवार्य हो गया था। सत्यसन्ध श्रीकृष्ण फिर यादवों से कहने लगे आज ही पुण्य यात्रा का दिवस है इसलिये आज ही हम लोगों को अपनी सेना के साथ निकल चलना चाहिये। फिर तो श्रीकृष्ण के आदेश से सभी यादव समुद्र के समान उमड़ते और शब्द करते मथुरा से निकल कर चल पड़े। वे वसुदेव को आगे कर अपनी स्त्रियों को साथ ले हौदे सजे हाथियों और सजे रथों एवं घोड़ों पर चढ़ कर चलने लगे। अपने सगे सम्बन्धियों और अपने बान्धवों के साथ दुन्दुभियाँ बजाते हुए मथुरा को छोड़ कर चले गये। स्वर्ण से विभूषित रथों पर और मदमत्त श्रेष्ठ हाथियों पर वे सवार होकर चल रहे थे सूतों द्वारा चाबुक के आघात से घोड़े उछलते हुए चल रहे थे। हे भरतर्षभ! इस प्रकार अपनी-अपनी सेना को आगे खींचते हुए शोभा पा रहे थे वे वृष्णि वंशी पश्चिम की ओर मुख करके चले गये। इसके पश्चात् प्रमुख रण-कुशल वासुदेव आदि यादव अपनी-अपनी सेनाओं के अग्रभाग को खींचते हुए।।११-२०।।

नाना प्रकार की लताओं से चित्रित नारियल के बनों से युक्त नागकेशर से व्याप्त केतकी बन खण्डों से विभूषित ताल, पुन्नाग, बकुल और अंगूर के घने बनों से कहीं-कहीं पर सुशोभित सिन्धुराज के अनूप देश में यादव पहुँच गये। वे सुखप्रिय यादव वहाँ समुद्र के रमणीय देश में वैसे ही प्रसन्न हो विचरने लगे कि जैसे देवता स्वर्ग में सुखी रहते हैं। शत्रु सेना के वीरों को मारने वाले श्रीकृष्ण पुर को बसाने के लिये स्थान ढूँढ़ते हुए सागर से घिरे एक बहुत बड़ भू-भाग को देखे। वह भू-भाग बालुका से युक्त वाहनों (हाथी-घोड़ों आदि) के सुख से बैठने योग्य और ताँबे के रंग के समान लाल मृत्तिका युक्त, पुर बसने के लक्षणों से युक्त शोभा का स्थान ज्ञात हो रहा था। सागर की वायुओं से स्पर्शित तथा सागर के जल से निषेवित वह सिन्धुराज का देश पुर के लक्षणों से शोभा पा रहा था। उसके समीप में ही रैवतक पर्वत उदार शिखरों द्वारा शोभा पा रहा था। वहाँ पर एकलव्य का वास-स्थान था और

द्रोणाचार्य भी वहाँ बहुत समय तक निवास किये थे इस प्रकार बहुत पुरुषों से सेवित तथा सब रत्नों से व्याप्त वह प्रदेश था। वहाँ पर जो राजा पहले रहता था उसकी विहार-भूमि थी, सुन्दर ढंग से बनी हुई थी बड़े-बड़े अठपहलू भूमि से युक्त द्वारवती नाम से विख्यात थी। वहीं पर श्रीकृष्ण ने पुरी बसाने की इच्छा की और यादवों को भी वहाँ सेना का निवासस्थान अच्छा ज्ञात हुआ।।२१-३०।।

फिर तो श्रेष्ठ यादवों और सेनापतियों ने रहने के लिये स्कन्धावार को बनाया। वे यदुश्रेष्ठ विभु श्रीकृष्ण पुरी बसाने के लिये निश्चित रूप से यादवों के साथ वहाँ उपस्थित रहे। गदाग्रज श्रीकृष्ण पुरी और वस्तुओं के नामों को उनके अनुरूप ही रख दिये और पुरुषश्रेष्ठ वे यादवोत्तम मानसिक (मन में) पुरी का निर्माण कर लिये। इस प्रकार द्वारवती पुरी को प्राप्त कर अपने बान्धवों के सहित यादव स्वर्ग में देवताओं के समान रहने लगे। केशी को मारने वाले श्रीकृष्ण कालयवन को माथुरों से अवध्य समझ कर और साथ ही जरासन्ध के भय से द्वारवती पुरी को चले गये।।३१-३५।।



अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५७।।

राजा जनमेजयजी बोले कि-हे भगवन्! यादवश्रेष्ठ वासुदेव महात्मा बुद्धिमान् श्रीकृष्ण का चरित्र विस्तार से सुनना चाहता हूँ। मधुसूदन मध्य देश के कन्धा रूप लक्ष्मी के धाम मथुरा को छोड़ कर क्यों चले गये? जो मथुरा पृथ्वी की शिखर रूप थी जहाँ असंख्य धन-धान्य भरा था और जहाँ आर्य रहते थे, जल से सेवित ऐसे उत्तम स्थान को बिना युद्ध किये ही हे द्विजश्रेष्ठ! उन श्रीकृष्ण ने क्यों त्याग दिया और वह कालयवन श्रीकृष्ण का क्यों अनिष्ट करने को था? महातपस्वी महायोगी महाबाहु श्रीकृष्ण ने जल दुर्ग द्वारका को प्राप्त कर क्या किया? कालयवन किससे उत्पन्न था? और उसका कैसा बल था कि जिसको असह्य समझ कर जनार्दन चले गये। वैशम्पायनजी बोले कि-वृष्णि वंश और अन्धक वंश के महामना गार्ग्यजी गुरु थे पहले वे

ब्रह्मचारी हो गये थे इसलिये वे स्त्री के रहते हुए भी उसके पास नहीं जाते थे। तब इस प्रकार ब्रह्मचर्य रहते हुए ऊर्ध्वरेता अविनाशी गार्ग्य को राजसभा में उनके साले ने ''यह नपुंसक है'' ऐसा कह कर उपहासित किया था। हे राजन्! इस प्रकार हास्य को प्राप्त गार्ग्य क्रोध से स्त्री को न चाहते हुए बड़े कठिन तप को किये। वे पुत्र की इच्छा से बारह वर्ष तक लोहे के चूर्ण को भक्षण कर अचिन्त्य शूलपाणि महादेव की आराधना किये थे।।१-१०।।

तब शंकरजी युद्ध में वृष्णि वंशियों और अन्धक वंशियों को मारने वाले तेजस्वी पुत्र का वरदान दिये थे। इसके बाद यवनों (म्लेच्छों) के राजा ने वरदान की बात सुनकर अपुत्र होने के कारण ऐसे पुत्र की इच्छा से। उन द्विजोत्तम गार्ग्य को अपने घर लाकर समझाया-बुझाया और उन्हें घोष में गोप-स्त्रियों के बीच रख दिया। वहाँ पर एक गोपाली नाम की अप्सरा गोप-स्त्री का वेष धारण कर रहती थी उसने मुनि से सम्पर्क कर दुर्धर अच्युत गर्भ को धारण किया। मानुषी रूप में रहने वाली गार्ग्य की भार्या की तरह व्यवहार करने वाली गोपाली से शंकरजी के वरदान के प्रताप से महाबली शूरवीर कालयवन उत्पन्न हुआ था। इसके पश्चात अपुत्र यवनाधिप के रनिवास में वह बालक रूप कालयवन बड़ा हुआ और यवनाधिप के मरने के बाद वह राजा हो गया। वह युद्धाभिलाषी राजा कालयवन श्रेष्ठ ब्राह्मणों से पूछा करता था तब नारदजी ने उसे वृष्णि और अन्धक वंशियों को युद्ध के योग्य बताया। मधुसूदन नारदजी से वरदान की बात जानकर भी यवनों में बढ़ते हुए उस तेजस्वी कालयवन की उपेक्षा किये रहे। यवनों का महाबली राजा जिस समय बढ़ा-चढ़ा था उस समय म्लेच्छ राजे उसका आश्रय लेकर उसके पीछे चलते थे। शक, तुषार, दरद, पारद, शृङ्गल, खस, पह्लव और हिमालय की तराई में उत्पन्न होने वाली अन्य म्लेच्छ जातियाँ उसके अधीन रहने लगीं।।११-२०।।

वह कालयवन इन्हीं जातियों के नाना प्रकार के वेष और आयुध धारण करने वाले भयंकर चोरों डाकुओं को साथ लेकर मथुरा पर धावा बोला था। अरबों की संख्या में हाथी, घोड़ों और गदहों वाली बड़ी भारी सेना से घिरा पृथ्वी

को कँपाने लगा। उसकी सेना की उठी हुई धूल से सूर्य का मार्ग ढक गया और सेना के मल-मूत्र से नदी बह चली। हे राजन्! घोड़े और ऊँटों के समूहों के मूत्रों से उत्पन्न होने के कारण उस नदी का नाम अश्वकृत् पड़ गया। उस महती सेना को आती हुई सुनकर वृष्णि और अन्धकों के अगुआ श्रीकृष्णजी अपनी जातियों को बुलाकर कहे कि यह वृष्णि और अन्धकों के लिये महान् भय उपस्थित हो गया, हम लोगों का शत्रु कालयवन शंकर जी के वरदान से अवध्य है। मैं साम आदिक सभी उपायों को कर चुक पर बल के मद से मत्त यह युद्ध करना ही चाहता है। इतना ही दिन का मेरा यहाँ वास नारदजी ने मुझसे कहा है, मेरा यही कहना है कि इस समय हम लोग इससे युद्ध न करें। जरासन्ध भी हम लोगों से द्वेष करता है तथा वृष्णि चक्र से संतप्त अन्य राजे भी हम लोगों से विरुद्ध हैं। कितने राजे कंस के वध से असन्तुष्ट होकर जरासन्ध से मिल गये हैं वे भी हम लोगों को मारना चाहते हैं।।२१-३०।।

यदुवंश के बहुत लोगों को राजाओं ने मार डाला है, इन कारणों से हम लोग यहाँ बढ़ने में समर्थ नहीं हो सकते, इस प्रकार भागने का निश्चय कर कालयवन के पास दूत भेजे वे घड़े में एक काले महा विषधर सर्प को बन्द कर दूत द्वारा कालयवन के पास यह बताने के लिये भेजवा दिये कि श्रीकृष्ण काले सर्प के समान भयंकर हैं। श्रीकृष्ण जी उस राजा को सर्प दिखवा कर डरवाया था, दूत ने वह घट कालयवन को दिखलाया। हे भरतर्षभ! दूत ने कहा कि श्रीकृष्ण काले सर्प के समान हैं, कालयवन ने सर्प को देखकर समझा कि यादवों ने ऐसा करके हमें डराया है। तब इसके प्रतिउत्तर में कालयवन प्रचण्ड चींटियों से उस घट को भरवा दिया फिर तो तीक्ष्ण मुख वाली बहुत सी चींटियाँ सर्प के अंग में चारों ओर काटने लगीं और वह सर्प जल कर भस्म हो गया पश्चात् उस घड़े को उसी प्रकार मूँद कर श्रीकृष्ण के पास भेज कर यह बतलाया कि हम लोग बहुत हैं इसी प्रकार तुम्हें नष्ट कर देंगे। श्रीकृष्ण ने यह देखकर समझा कि यह योग (सामनीति) अर्थात् उसे समझाना विफल हो गया, तब शीघ्र ही मथुरा का त्याग कर द्वारका चले गये। हे राजन्! वैर का अन्त करते हुए महायशस्वी श्रीकृष्ण द्वारका पुरी बसाकर

वृष्णिवंशियों को आश्वासन दे। बाहुओं से प्रहरण करने वाले पुरुष-व्याघ्र महाबली मधुसूदन पैदल ही मथुरा चले आये।।३१-४०।।

श्रीकृष्ण को आया देखकर कालयवन प्रसन्न हो गया फिर क्रोध कर श्रीकृष्ण को मारने के लिये निकला महाबली श्रीकृष्ण भी उसे देखने के बाद भागने लगे। फिर श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे उन्हें मारने की इच्छा से यवनेश्वर चलने लगा पर योग धर्म का पालन करने वाले श्रीकृष्ण को कालयवन न पकड़ सका। महायशस्वी राजा मुचुकुन्द मानधाता का पुत्र था पहले उस महाबली राजा ने देवासुर संग्राम में विजय प्राप्त किया था। उस समय देवताओं ने उससे वर माँगने को को कहा तब थके होने के कारण उसने निद्रा का वर माँगा कि मैं अबाध गति से सोऊँ। हे देवताओं! सोये हुए में जो मुझे जगावे उसे मैं अपने नेत्रों की क्रोधाग्नि से जला दूँ ऐसा बार-बार मुचुकुन्द ने कहा। तब इन्द्र ने देवताओं के साथ कहा कि ऐसा ही होगा फिर तो देवताओं से आज्ञा ले वह राजा पर्वतराज हिमालय को चला गया और वहाँ जा किसी गुफा में थक जाने के कारण जबतक श्रीकृष्ण का दर्शन न हो तबतक के लिये सो गया। देवताओं के द्वारा वरदान और राजा के पराक्रम की सभी बातें नारदजी ने श्रीकृष्णजी से कह दी थीं। उस म्लेच्छ शत्रु से पीछा किये जानेवाले श्रीकृष्ण विनीत भाव से मुचुकुन्द की उस गुफा में प्रविष्ट हो गये। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ केशव राजर्षि मुचुकुन्द के दृष्टि पथ से हट कर उसके शिर की ओर छिपे भाव में खड़े हो गये।।४१-५०।।

श्रीकृष्ण के पीछे गुफा में घुस कर यवनेश्वर ने उस पृथ्वीपति मुचुकुन्द को देखा, तब यमराज के समान सोते राजा के पास जा उसको श्रीकृष्ण समझ कर अग्नि में फतिंगे के समान नष्ट होने के लिये राजा को लात से मारा। पद के स्पर्श से राजर्षि मुचुकुन्द जग गये पैर की चोट लगने से और निद्रा के भंग होने से क्रोधित हो इन्द्र के वर का स्मरण कर सामने उपस्थित कालयवन को देखा तब वह कालयवन क्रोध भरी दृष्टि से देखते ही जलकर भस्म हो गया। जिस प्रकार सूखे वृक्ष को वज्र जला डालता है उसी प्रकार वह अग्नि उसे जला डाला; क्षणमात्र में ही वह भस्म हो गया। इसके बाद बुद्धिमान् श्रीकृष्ण चिर

काल से सोये शोभासम्पन्न राजा से कृतकार्य हो यह उत्तम वचन बोले कि हे राजन्! आप अधिक दिन से इस गुफा में सोते हैं यह बात नारद ने मुझसे कही थी, आपने हमारा बड़ा भारी कार्य किया आपका कल्याण हो, मैं जाता हूँ। राजा मुचुकुन्द श्रीकृष्ण के छोटे स्वरूप को लखकर समझ गये कि युग बदल गया और सोये हुए मुझे अधिक समय व्यतीत हो गया। राजा श्रीकृष्ण से बोले कि आप कौन हैं? और किस लिये यहाँ आये हैं? यह कौन युग है यदि आप जानते हों तो मुझ सोये हुए से कहिये। श्रीकृष्णजी बोले कि-सोम वंश में एक ययाति नाम राजा हुए थे, वे राजा नहुष के पुत्र थे, उनके यदु सबसे बड़े पुत्र थे और उनसे छोटे चार पुत्र तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पूरु थे।।५१-६०।।

उन्हीं यदु के वंश में उत्पन्न मुझे वसुदेव का पुत्र वासुदेव जानिये, हे नृपते! मैं तुम्हारे ही पास आया था। तुम त्रेता युग में सोये थे यह बात भी नारदजी के द्वारा विदित है। इस समय द्वापर का अन्त होकर कलियुग आनेवाला है, और कौन सा आपका कार्य करूँ बतलाइये। हे राजन्! शंकरजी द्वारा वर दिये गये मेरे शत्रु को आपने नष्ट कर दिया जो मुझसे सैकड़ों वर्षों में अवध्य था। वैशम्पायनजी बोले कि-जब इस प्रकार कृतकार्य श्रीकृष्ण ने कहा तब वह महापुरुष गुफा से निकल कर श्रीकृष्णजी के पीछे-पीछे चला। तब उसने अल्प उत्साह, अल्प बल और अल्प पराक्रम वाले छोटे-छोटे मनुष्यों से भरी पृथ्वी को देखा और अपने राज्य पर दूसरे को अधिष्ठित देखा। तब श्रीकृष्ण से प्रेम भाव प्रकट कर विशाल बन में प्रवेश कर तपस्या में मन लगाये वह राजा हिमालय पर्वत पर चला गया। इसके बाद तप कर अपने शरीर का त्याग कर वह राजा अर्जित शुभ कार्यों से स्वर्ग को चला गया। महामना धर्मात्मा श्रीकृष्ण भी उपाय द्वारा शत्रु को मार कर उसकी सेना में चले गये। बहुत से रथ, हाथी, घोड़े, कवच, आयुध और ध्वजाओं से युक्त जिसका स्वामी नष्ट हो गया है ऐसी सेना को लेकर चले गये। तत्पश्चात् पूर्ण मनसा वाले जनार्दन यह सब राजा उग्रसेन से निवेदन कर उस अधिक धन से द्वारका को सुशोभित कर दिये।।६१-७०।।



अथ अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५८।।

वैशम्पायनजी बोले कि-इसके पश्चात् सूर्योदय हो जाने पर निर्मल प्रातः काल में श्रीकृष्ण जपादि कर्म कर बन के समीप बैठे। फिर दुर्गस्थान को देखने की इच्छा से उस देश में भ्रमण करने लगे, उसय समय प्रमुख यादव यदुनन्दन के साथ हो लिये। शुभ दिन रोहिणी नक्षत्र में ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर पुण्याह वाचन के घोष से बड़े भारी दुर्ग की रचना का कार्य प्रारम्भ किया। उस समय कमलनेत्र वक्ताओं में श्रेष्ठ केशिसूदन जैसे इन्द्र देवताओं से बोलते हैं वैसे ही यादवों से बोले मैंने देवपुरी की भाँति इस भूमि पर पुरी बनाने की कल्पना की है आप लोग इसे देखिये इस पुरी का नामकरण भी मैंने कर दिया है जिससे यह विख्यात होगी। यह मैंने पृथ्वी तल पर द्वारवती नामक पुरी का निर्माण किया है, यह पुरी इन्द्र की अमरावती पुरी के समान रमणीक होगी। मैं इसमें वैसे ही चिह्न, मकान, चौराहे, सड़कें और अन्तःपुरों को बनवाऊँगा। आप लोग उग्रसेन सहित सन्ताप से रहित हो शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हुए देवताओं के समान इस पुरी में आनन्द कीजिये। हे यादवो! भवन बनाने के सामानों को ग्रहण कीजिये और ऐसे भवनों का निर्माण कीजिये कि जो चारों तरफ से बराबर हो और तीन मंजिला हो और जिनके दोनों तरफ बड़ी-बड़ी सड़कें तथा दुकानें हों। भवन निर्माण करने के प्रमुख कारीगरों को बुलाने के लिये दूतों को भेजिये और देश-देश में समाचार देने वाले दूतों को नियुक्त कीजिये।।१-१०।।

श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने पर यादव गृह के सामानों को लेने में तत्पर हो गये और प्रसन्न ही भवनों के अनुकूल सामानों का संग्रह कर लिये। हे महाराज! शुभ दिन मे ब्राह्मणों का पूजन कर श्रेष्ठ यादव हाथों में सूत ले भवन के योग्य भूमियों को नापने लगे और गृह बनाने वाले शास्त्र के अनुसार वे गृह भूमियों का विभाजन कर द्वार आदि के चिह्नों को लगाने लगे, वहाँ पर महामतिमान् गोविन्द ने वास्तु कर्म के जानकारों से कहा कि हमारे लिये यहाँ पर सुन्दर ढंग से एक मन्दिर बनाओ जिसके चारों ओर चौड़े-चौड़े मार्ग

हों तथा जिसमें इष्ट देवता की स्थापना हो सके। वे गृह कर्म कुशल कारीगर महाबाहु श्रीकृष्ण से ऐसा ही बनाऊँगा कहकर विधि के अनुसार संस्कारों को कर दुर्ग कर्म को प्रारम्भ कर दिये। जैसा चाहिये था वैसा दुर्ग और भवनों का निर्माण कर दिये और उन्होंने ब्रह्मादि देवताओं का उनमें यथाक्रम स्थान भी नियुक्त कर दिया। जल, अग्नि और इन्द्र के स्थानों को बना दिया और सिल-उलूखलों के स्थानों को बना दिया तथा चार देवताओं का स्थापन कर पूजन करने के लिये चार द्वार शुद्धाक्ष, ऐन्द्र, भल्लाट तथा पुष्पदन्त नाम के बना दिये, उन भवनों के निर्माण में महात्मा यादवों के लग जाने पर माधव ने सोचा कि यह पुरी कैसे शीघ्र बन जाय, तो ऐसा सोचने पर उनके हृदय में देवताओं की प्रेरणा से शीघ्र पुरी के बसा देनेवाली विमल बुद्धि उत्पन्न हुई। वह बुद्धि पुरी के लिये प्रियकरी और यादवों को बढ़ाने वाली थी देवताओं के प्रजापति के पुत्र शिल्पकारों में जो सबसे प्रमुख हैं, वे विश्वकर्मा अपनी बुद्धि से इस पुरी को शीघ्र बना देने में समर्थ हैं ऐसा मन में निश्चय कर उनको बुलाने के लिये श्रीकृष्णजी एकान्त में बैठ कर देवताओं की ओर ध्यान किये।।११-२०।।

उसी समय महाबुद्धिमान् शिल्पाचार्य देव-श्रेष्ठ विश्वकर्मा श्रीकृष्ण के सम्मुख उपस्थित हो गये। और बोले कि हे धृतव्रत विष्णो! मुझे इन्द्र ने शीघ्र भेजा है, मैं आपके दास के समान आया हूँ मैं आपका कौन सा कार्य करूँ मुझे आज्ञा दीजिये। हे प्रभो! जैसे मुझे ब्रह्मा और अव्यय शंकरजी मान्य हैं वैसे ही आप भी मान्य हैं मैं आप लोगों में भेद-भाव नहीं मानता हूँ। हे महाभुज! तीनों लोकों को आज्ञा देनेवाली वाणी का उच्चारण कीजिये मैं शिल्प-कला के सभी कार्यों का ज्ञाता हूँ मैं क्या करूँ आज्ञा प्रदान कीजिये। विश्वकर्मा के वचनों को सुनकर कंसारि यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णजी उपमा रहित वचन बोले। हे सुरोत्तम! आप यादवों के गुप्त प्रयोजन को सुन चुके हैं, इसलिये हम लोग जहाँ स्थित हैं वहाँ मेरा मकान बनाइये। हे सुव्रत! मेरे हृदय में जैसी इस पुरी की कल्पना है उसके प्रकाश के लिये मेरे प्रभाव के अनुरूप गृहों द्वारा चारों ओर से इस पुरी को सुशोभित कीजिये। इस पृथ्वी पर वैसी ही उत्तम पुरी तुम्हारे द्वारा बननी चाहिये कि जैसे स्वर्ग में अमरावती पुरी है। हे महामते! तुम

इसे बनाने में समर्थ हो। मेरे इस स्थान बैकुण्ठ को तुम्हें वैसा ही बनाना चाहिये कि जैसे स्वर्ग में बना है, मेरी इच्छा है कि मेरी लक्ष्मी का और इस यदुकुल की पुरी का मनुष्य दर्शन करें।।२१-३०।।

इस प्रकार कहने पर परम बुद्धिमान् विश्वकर्मा देवताओं के शत्रुओं को नाश करने वाले तथा बिना क्लेश से कर्म करने वाले श्रीकृष्ण से बोले। हे प्रभो! जो आपने कहा है वह सब मैं करूँगा, पर इतनी कम भूमि के अन्दर यह पुरी आपके जनों के लिये पर्याप्त न होगी। यह पुरी विस्तृत होनी चाहिये तब यह लम्बी-चौड़ी पुरी सुशोभित होगी, इसमें चारों सागर रूप धारण कर विचरण करेंगे। हे पुरुषोत्तम! यदि जलराज समुद्र कुछ भूमि छोड.दे तो यह पुरी लम्बी-चौड़ी बन सकती है। पहले से ऐसा निश्चय करने वाले वक्ताओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ऐसा सुनकर नदियों के स्वामी सागर से बोले कि–हे समुद्र! यदि मुझे मानते हो तो तुम बारह योजन (अड़तालिस कोस) पीछे हट जाओ। इतनी भूमि तुम्हारे दे देने पर यह पुरी पर्याप्त भूमि वाली रमणीक हो जायेगी मेरी सम्पूर्ण सेना के भार को सह सकेगी। श्रीकृष्ण के वचन को सुनकर नद और नदियों के स्वामी सागर ने वायुवेग से अपने जलराशि को पीछे हटाकर भूमि छोड़ दिया। पुरी को बसाने योग्य उस भूमिं को देखकर विश्वकर्मा प्रसन्न हो गये सागर गोविन्द का सम्मान कर चला गया। तब विश्वकर्मा यदुनन्दन श्रीकृष्ण से बोले कि हे गोविन्द आज से सभी लोग इस पुरी में बसें।।३१-४०।।

हे विभो! मैंने पुरियों में श्रेष्ठ इस पुरी को मन में बना चुका हूँ, अब थोड़े ही समय में गृहों की बन्दन बाला वाली पुरी बस जायेगी। यह पुरी सुन्दर-सुन्दर द्वारों और अग्रभाग के तोरणों तथा केयूर के सदृश ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं से इस पृथ्वी पर ककुद् (कन्या) के समान बड़ी रमणी होगी। देवताओं से पूजित उसे देश में स्थित द्वारका पुरी में विश्वकर्मा ने श्रीकृष्ण के विशाल अन्तःपुर को बनाया उसमें स्नानगृह आदि का भी निर्माण किया। इस प्रकार विश्वकर्मा ने मानस प्रयत्न से उस प्रिय लगने वाली वैष्णवी पुरी द्वारका का निर्माण किया। शास्त्र विधि के अनुसार बने द्वारों वाली वह पुरी श्रेष्ठ चाहारदिवारियों से शोभा पाने लगी, वह चारों ओर प्राकृतिक खाइयों से

सम्यक् प्रकार सुरक्षित थी वह अट्टालिकाओं, प्राकारों और तोरणों वाली थी। वह सुन्दर स्त्री-पुरुषों के गणों से युक्त बनियों की दुकानों से सुशोभित हो रही थी और नाना प्रकार के बाजारों से व्याप्त पुरी आकाशचारिणी की भाँति मानों पृथ्वी पर उतरी थी। वह फुहारे और निर्मल जल वाली बावलियों से युक्त बगीचों से सुशोभित हो रही थी वह सम्पूर्ण अङ्गों से सजी विशाल नेत्रों वाली तरुणी की भाँति शोभा पा रही थी। वह बड़े-बड़े चौराहों युक्त आकाश चूमने वाले अत्यन्त ऊँचे भवनों वाली थी और हजारों लाखों करोड़ों गलियों से युक्त उत्तर की ओर निकलने वाले चिकने सड़कों से शोभित थी। वह समुद्र को विभूषित करने वाली स्वर्ग स्थित इन्द्रपुरी की भाँति ज्ञात हो रही थी, सभी रत्नों में श्रेष्ठ पृथ्वी पर वह समृद्धिशालिनी एक रत्न रूप थी। देवताओं को भी रहने योग्य वह पुरी अपने ऊँचे चमकते भवनों से आकाश के अन्धकार को दूर कर रही थी।।४१-५०।।

वह पृथ्वी पर अनेक राष्ट्रों से सम्बन्ध करने वाली जन समूहों के ध्वनि से प्रतिध्वनित हो रही थी और जलराज समुद्र की लहरों से वहाँ का वायु शिशिर ऋतु की भाँति ठण्ढा होकर बह रहा था। अनूप-प्रिय उपवनों की छटा से मनुष्यों के मन को हरण करने वाली तारा सहित आकाश की भाँति वह द्वारका पुरी शोभा पा रही थी। वह एक रंग की चाहार दिवारियों से घिरी थी, सुवर्ण के समान कान्तिमान गम्भीर शब्द करने वाले गृहों से तथा श्वेत रंग के मेघ के समान संगीन अट्टालिकाओं से वह पुरी शोभ रही थी, कहीं-कहीं पर अत्यन्त ऊँची कोठियों की छाया से उसके बड़े मार्ग ढक रहे थे। ऐसी उस पुंरी में श्रीकृष्णजी तथा सभी यादव बसे थे, वह श्रीकृष्ण के इष्ट जनों से व्याप्त पुरी आकाश में चन्द्रमा की भाँति इस पृथ्वी को प्रकाशित कर रही थी। विश्वकर्मा उस द्वारका को इन्द्र की अमरावती पुरी की भाँति बनाकर गोविन्द से पुरस्कृत हो स्वर्ग को चले गये। फिर सबकी आत्मा को जानने वाले श्रीकृष्ण की ऐसी बुद्धि हुई कि यदि इन जनों को धन से तृप्त कर दूँ तो बड़ी अच्छी बात हो। वे इन्द्र के छोटे भाई प्रभु श्रीकृष्ण अपने भवन में रात्रि के समय कुबेर के समीप रहने वाले निधियों में उत्तम शंख नामक निधि को

बुलाये। तब द्वारकापति केशव की बुलाहट समझ कर निधिराज शंख स्वयं उनके समीप आ गये और नम्रतापूर्वक पृथ्वी पर गिर साष्टांग कर हाथ जोड़ वह शंख कुबेर की भाँति श्रीकृष्ण से बोले।।५१-६०।।

हे भगवन्! देवताओं के धन रक्षक मुझको क्या कार्य करना है? हे महाबाहो यदुनन्दन! जो कार्य हो उसमें मुझे नियुक्त कीजिये। हृषीकेश ने गुह्यक-उत्तम उस शंख से कहा कि जो मेरे यहाँ कम धन वाले हैं उन्हें धन से परिपूर्ण कर दो। मैं अपनी नगरी में किसी को भूखा और मलिन तथा दुर्बल नहीं देखना चाहता हूँ इसलिये इस नगरी में जो निर्धन मनुष्य धन की याचना करें उन्हें धन दो। वैशम्पायनजी बोले कि-केशव की आज्ञा को शिर पर धारण कर निधिराज ने द्वारका के घर-घर में धन की वर्षा करने के लिये निधियों को आज्ञा दे दी फिर तो निधियों ने वैसा ही किया तब वहाँ निर्धन और क्षीण भाग्यवाला कोई मनुष्य नहीं रह गया। श्रीकृष्ण की द्वारका पुरी में कोई दरिद्र मनुष्य नहीं रह गया। श्रीकृष्ण की द्वारका पुरी में कोई दुर्बल अथवा मलिन नहीं रह गया था। फिर अपने भवन में बैठकर यादवों का प्रिय करने वाले पुरुषोत्तम ने वायु को बुलाया। सभी प्राणियों के प्राणयोनि वायु, देवताओं के छिपे भावों को जानने वाले एकान्त में बैठे हुए गदाधर श्रीकृष्ण के पास आये और बोले कि शीघ्र चलने वाले सबके पास पहुँचने वाले मुझ वायु को क्या आज्ञा है? जैसे मैं देवताओं का दूत हूँ वैसे ही हे अनघ! मैं आपका भी दूत हूँ। पुरुष रूप धारण करने वाले हरि जगत् के प्राण स्वरूप वायु से एकान्त की बात कहे।।६१-७०।।

हे मारुत! तुम इन्द्र के पास जाओ और देवताओं सतिह उनसे मेरी बात स्वीकार करा सुधर्मा नामक सभा माँग कर देवताओं के साथ यहाँ लाओ वह बनावटी न हो, उसमें पराक्रमी और धार्मिक हजारों यादव बैठेंगे। जो सभा कभी नष्ट न होने वाली रम्य इच्छानुसार रूप धारण करने वाली और इच्छानुसार विचरने योग्य है वह देवताओं के समान यादवों को धारण करेगी। क्लेश रहित श्रीकृष्ण के वचन को सुनकर आत्मा की गति के समान चलने वाले वायु स्वर्ग को चले गये। वह सभी देवताओं को श्रीकृष्ण की बात का

निवेदन कर स्वीकृत कराकर सुधर्मा सभा लेकर पुनः महीतल द्वारका में चले आये। क्लेश रहित कर्म करने वाले धार्मिक श्रीकृष्ण की देवसभा में वह सुधर्मा सभा देकर वायुदेव अन्तर्धान हो गये। प्रमुख यादवों को बैठने के लिये केशव ने सुधर्मा सभा को द्वारका में स्थापित कर दिया फिर स्वर्ग में देवताओं के समान यादव उसमें विचरने लगे। इस प्रकार दिव्य, भोगों, कमलों तथा रत्नों आदि से द्वारका पुरी को श्रीकृष्ण अपनी पत्नी की भाँति सुसज्जित करने लगे। उन्होंने उस पुरी में मर्यादा, श्रेणी तथा प्रकृति और योग्य सेनापति एवं प्रकृतीश नियुक्त किया। उग्रसेन को राजा, काश्य को पुरोहित, अनाधृति को सेनापति तथा विकद्रु को मन्त्रियों में श्रेष्ठ मन्त्री बनाया।।७१-८०।।

कुल को सुरक्षित रखने वाले बुद्धिमान् दस वृद्ध यादवों को एक समिति बनाये जो सभी कार्यों में आने वाली बाधाओं पर विचार कर सकें। रथ हाँकने वालों में दारुक को अपना सारथी बनाया और योद्धाओं में मुख्य योद्धा सात्यकि को बनाया। इस प्रकार द्वारका पुरी में विधान बनाकर लोकों की सृष्टि करने वाले श्रीकृष्ण यादवों के साथ पृथ्वी तल पर आनन्द करने लगे। शीलसम्पन्न रेवत की कन्या रेवती को श्रीकृष्ण की अनुमति से बलरामजी ने विवाहा।।८१-८४।।



अथ एकोनषष्टितमोऽध्यायः।।५९।।

वैशम्पायनजी बोले कि-इसी समय जरासन्ध ने चेदिराज शिशुपाल का प्रिय करने की इच्छा से राजाओं को प्रेरित किया कि-शिशुपाल का विवाह स्वर्ण के आभूषणों से सजी राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी से हो। इसीलिये इन्द्र के समान युद्ध में सैकड़ों प्रकार की माया करने में कुशल दन्तवक्त्र के महाबली पुत्र सुवक्त्र को । पौण्ड्रक वासुदेव के पुत्र महाबली एक अक्षौहिणी सेना के संचालक बलवान् सुदेव को। एकलव्य के पुत्र बलवान् महाबल को, पाण्ड्यराज के पुत्र को तथा कलिंगाधिपति को। श्रीकृष्ण ने जिसका अप्रिय किया था ऐसे राजा वेणुदारि को, अंशुमान को, क्राथ को

तथा श्रुतधर्मा को। निवृत्तशत्रु कलिंग को, गान्धार देशाधिपति तथा महाबलवान् कौशाम्बी के राजा को (तैयार करा जरासन्ध अपने साथ कुण्डिनपुर ले गया। विशाल सेनावाले भगदत्त, शल, महाबली शाल्व, महती सेना वाले भूरिश्रवा तथा बलवान् कुन्तिवीर्य भी स्वयंवर के लिये राजा भीष्मक के यहाँ गये थे। जनमेजयजी बोले कि-हे वेदों के जानने वालों में श्रेष्ठ द्विजसत्तम! तेजस्वी राजा रुक्मी किस देश तथा किस वंश में उत्पन्न हुआ था? वैशम्पायनजी बोले कि राजर्षि यादव को विदर्भ नाम का पुत्र था उसने विन्ध्य पर्वत के समीप दक्षिण की ओर विदर्भ नामक नगरी बसाकर उसी में राजधानी बनाया था।।१-१०।।

उसके मुख्य पुत्र क्रथ, कैशिक आदि महाबली हुए उन राजाओं ने अपना अलग-अलग वंश चलाया उसी वंश में राजा भीम हुए थे उनके वृष्णि आदि पुत्र राजा हुए, क्रथ के वंश में अंशुमान और कैशिक के वंश मे राजा भीष्मक हुए थे। दक्षिण के राजाओं को अन्य राजा लोग हिरण्यरोमा भी कहते थे, कुण्डिनपुर में रहते हुए राजा भीष्मक अगस्त्य से रक्षित देश का शासन करते थे। हे विशाम्पते! उसी भीष्मक का पुत्र रुक्मी था और रुक्मिणी पुत्री थी, रुक्मी ने द्रुम से दिव्य अस्त्रों को सीखा था और जमदग्नि पुत्र परशुरामजी से ब्रह्मास्त्र को भी प्राप्त किया था, वह अद्भुत कर्म करने वाले श्रीकृष्ण से द्वेष करता था। हे राजन्! उस समय रुक्मिणी इस पृथ्वी तल पर उपमा रहित सुन्दरी थीं, उनके रूप का बखान सुनने से ही महातेजस्वी श्रीकृष्ण उन्हें चाहने लगे थे। तब ऐसा जानकर रुक्मिणीजी भी निश्चय कर लीं कि तेज और बल से सम्पन्न जनार्दन ही मेरे पति हों। कंस के वध के संताप से द्वेष के कारण महाबली रुक्मी श्रीकृष्ण के लिये उनके माँगने पर भी रुक्मिणी को नहीं देना चाहता था, यह विचार कर कि यह कंस का शत्रु है। इधर चेदि वंशोत्पन्न सुनीथ के पुत्र शिशुपाल के लिये राजा जरासन्ध ने भयंकर विक्रमशाली राजा भीष्मक से रुक्मिणी को माँगा था। चेदिराज वसु का पुत्र वृहद्रथ हुआ था पहले उसने मगध देश में गिरिव्रज नामक नगरी को बसाया था।।११-२०।।

जरासन्ध उत्पन्न हुआ था और वसु के वंश में चेदिराज दमघोष भी हुआ

था। यदुवंशी वसुदेव की बहिन श्रुतश्रवा से दमघोष के भयंकर पराक्रमी पाँच पुत्र हुए थे। शिशुपाल, दशग्रीव, रैन्य, उपदिश और बली ये सभी शास्त्रों में कुशल महाबली तथा पराक्रमी थे। जाति और वंश का होने से सुनीथ ने अपने पुत्र शिशुपाल को जरासन्ध के लिये दे दिया था जरासन्ध भी शिशुपाल को पुत्र की भाँति देखता और रक्षा करता था। (इस प्रकार एक ही वंश का होने के कारण) वृष्णि शत्रु जरासन्ध को आगे कर चेदिराज सुनीथ वृष्णिवंशियों का अप्रिय करना चाहता था दुःख देना चाहता था। कंस जरासन्ध का दामाद था श्रीकृष्ण के उसे मार देने पर श्रीकृष्ण के कारण वृष्णिवंशियों से जरासन्ध का वैर हो गया। जरासन्ध ने शिशुपाल के लिये रुक्मिणी को माँगा तो भीष्मक और रुक्मी दोनों बलवान् शिशुपाल के लिये कन्या देना स्वीकार कर लिये। इसके बाद शिशुपाल को ले दन्तवक्त्र के साथ राजा जरासन्ध विदर्भ नगर को चला गया। ऐसा करने के लिये बुद्धिमान् पौण्ड्रक वासुदेव ने भी अनुमति दी थी वह महाबली अङ्ग, बङ्ग और कलिंग देश का राजा था। रुकमी ने जरासन्ध आदि राजाओं की अगवानी कर उनका विधि से पूजन किया और सत्कार करता हुआ अपनी पुरी में ले आया।।२१-३०।।

अपने पिता की बहिन का प्रिय करने के लिये बलराम और श्रीकृष्ण भी गये तथा उनके साथ अन्य यादव भी सेना के साथ पधारे। क्रथ और कैशिक देश के राजा पूजन करने योग्य यादवों का पूजन कर तथा स्वागत के साथ मिलकर उन्हें पुर के बहार ही ठहराया। जिसका कल विवाह होनेवाला है ऐसी रुक्मिणी ज्येष्ठा नक्षत्र में बाहर निकल इन्द्र के शुभ मन्दिर में इन्द्राणी के पूजन के लिये गई, उनका कौतुक मंगल हो चुका था, शरीर से देदिप्यमान रुक्मिणी बड़ी भारी सेना से घिरी थीं। श्रीकृष्ण ने रूप की परम शोभा से सम्पन्न साक्षात् लक्ष्मी के समान देवालय के समीप रुक्मिणी को खड़ी देखा। वह अग्नि के शिखा के समान चमक रही थीं तथा पृथ्वी पर उतरी हुई माया के समान प्रतीत हो रही थीं एवं पृथ्वी तल से उठी हुई गम्भीर पृथ्वी के समान ज्ञात हो रही थीं। चन्द्रमा की किरणों के समान सुन्दर स्त्री रूप धारण करने वाली, अनुपम शोभा से युक्त बिना कमल के शोभा पाने वाली, भविष्य

में लक्ष्मीजी की सहायता करने वाली तथा जो श्रीकृष्ण के मानसिक दृष्टि से देखी गई थीं ऐसी देवताओं द्वारा भी दुर्लभदर्शना रुक्मिणी को श्रीकृष्ण ने देखा। वह श्याम वर्ण की श्वेत दाँतों वाली थीं उनके नेत्र बड़े-बड़े थे, नेत्र के नीचे के स्थल और ओष्ठ लाल थे और उनके जघन तथा स्तन स्थूल थे। सम्पूर्ण अंगों से वह बड़ी ही सुन्दर थीं उनका मुख चन्द्रमा के समान प्रिय ज्ञात हो रहा था ताम्र वर्ण के समान लाल और ऊँचे नख थे, भौंहे सुन्दर थीं और केश काले थे। वह रूपवती होने से अत्यन्त प्रिय थीं उनकी श्रोणी स्थूल तथा स्तन बड़े-बड़े थे, श्वेत तीखे-तीखे समान दाँतों से वह सुसज्जित रुक्मिणी प्रकाश कर रही थीं।।३१-४०।।

रूप, यश तथा शोभा से वह लोक में एक स्त्री थीं देवी का रूप धारण करने वाली रुक्मिणी पीले रंग की रेशमी साड़ी पहने थीं। जैसे घी छोड़ने से अग्नि बढ़ता है वैसे ही उस प्रियदर्शना रुक्मिणी को देख कर श्रीकृष्ण का काम बढ़ गया। महाबली केशव ने बलराम के साथ उनके हरण का निश्चय कर, वृष्णियों से भी इस बात को कह कर वे रुक्मिणी को हर लेने को तत्पर हुए और देवकार्य कर लेने के बाद मन्दिर से निकलती हुई रुक्मिणी को श्रीकृष्णजी सहसा उठा कर अपने रथ पर चढ़ा द्वारका की ओर चल पड़े। फिर तो शत्रु सेना के वीरों को उन पर टूटते देख बलरामजी वृक्ष को उखाड़ उन्हें मारने लगे और बलरामजी की आज्ञा से यादव भी चारों तरफ से टूट पड़े। वे उठी हुई ऊँची-ऊँची ध्वजाओं वाले नाना प्रकार के रथों पर तथा हाथी और घोड़ों पर सवार होकर बलरामजी की सहायता करने लगे। इधर बलराम तथा पराक्रमी युयुधान के ऊपर लड़ाई का भार सौपकर रुक्मिणी को ले श्रीकृष्णजी शीघ्रता से द्वारका को चल दिये। अक्रूर, विपृथु, गद, कृतवर्मा, चक्रदेव, सुदेव, महाबली सारण और महापराक्रमी निवृत्तशत्रु भङ्गाकार विदूरथ, उग्रसेन के पुत्र कङ्क, शतधुम्न, राजाधिदेव, मृदुर, प्रसेन, चित्रक, अतिदान्त, बृहद्दुर्ग, श्वाफल्क, सत्यक, पृथु इस प्रकार और भी अन्य प्रमुख वीर वृष्णि तथा अन्धकों के ऊपर संग्राम के गुरुतर भार को सौंपकर श्रीकृष्ण द्वारका को चले। इधर दन्तवक्त्र, जरासन्ध तथा शिशुपाल जनार्दन को मार

डालने की इच्छा से अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हो चल दिये। उनकी सहायता में अङ्ग, बङ्ग और कलिंग देश की सेना के साथ पौण्ड्रक और महारथी भाइयों के साथ चेदिराज भी संग्राम करने को चल दिये। जैसे देवता इन्द्र को आगे कर युद्ध करते हैं वैसे ही महारथी वृष्णिवंशीय वीर बलराम को आगे कर उनको युद्ध लिये रोक लिये। बड़े वेग से आते हुए जरासन्ध को युयुधान ने संग्राम में छे वाणों से वेध दिया। अक्रूर ने नव बाणों से दन्तवक्त्र को वेधा तब दन्तवक्त्र ने भी शीघ्रगामी दस बाणों से अक्रूर को वेधा। विपृथु ने शिशुपाल को सात-बाणों से वेधा तब प्रतापी शिशुपाल ने भी उसको आठ बाणों से वेधा। चैद्य को गवेषण ने छे बाणों से, अतिदान्त ने आठ बाणों से तथा बृहहुर्ग ने पाँच बाणों से मारा। इसके उत्तर में चैद्य ने उनको पाँच-पाँच बाणों से मारा और विपृथु के चारों घोड़ों को चार बाणों से मार डाला औ बृहदुर्ग का शिर भाले से काट दिया तथा गवेषण के सारथी को यमपुर भेज दिया।।५१-६०।।

मार डाले गये घोड़े के रथ का त्याग कर महाबली विपृथु पराक्रमी बृहदुर्ग के रथ पर शीघ्र सवार हो गये और विपृथु का सारथी गवेषण के रथ पर शीघ्र ही चढ़कर शीघ्रगामी घोड़ों को हाँकने लगा। तत्पश्चात् हाथ में धनुष-बाण लिये वे यादव मार्ग में रथ और अश्वों को नचाते और ललकारते हुए बाण वर्षा द्वारा सुनीथ को ढक दिये। चक्रदेव ने संग्राम में दन्तवक्त्र की छाती में एक बाण मारा और षडरथ को पाँच बाणों से मारा। तब उन दोनों ने दस मर्मभेदी तीक्ष्ण बाणों से चक्रदेव को मारा इसके बाद शिशुपाल के भाई बली ने दस बाणों से चक्रदेव को व्यथित किया तथा दूर से बली ने विदूरथ को पाँच बाणों से व्यथित किया तब विदूरथ ने भी उसे दस बाणों से वेधा। फिर तीस बाणों से बली ने महाबली विदूरथ को मारा, कृतवर्मा ने राजपुत्र (पौण्ड्रक-पुत्र) को तीन बाणों से मार और उसके सारथी को मार डाला तथा उसकी ऊँची उठी हुई ध्वजा को काट डाला इसके बाद राजपुत्र ने क्रोधित हो छै बाणों से कृतवर्मा को मारा। फिर भाले से कृतवर्मा का धनुष काट दिया, निवृत्तशत्रु विदूरथ ने कलिंग के राजा को तीक्ष्ण बाणों से छेद डाला, कलिंगराज ने

निवृत्तशत्रु के कन्धे के समीप तोमर से बड़ी मार मारा। हाथी पर चढ़ कर पराक्रमी कंक ने अंगराज के हाथी को तोमर से पीटा तब अंगराज ने भी कंक को बाणों से घायल किया।।६१-७०।।

चित्रक, श्वफलक तथा महारथी सत्यक ने कलिंगराज के समीप पहुँच कर सैकड़ों बाणों से वेधा। संग्राम में वीर द्रुम के द्वारा छोड़ दिये गये बंगराज को बलराम ने हाथी के सहित मार डाला। उसे मार रथ पर चढ़ धनुष-बाण ले पराक्रमी बलरामजी ने बहुत से कैशिक देश के वीरों को मारा। क्रोधित बलराम ने छै बाणों से मगधराज के वीरों को मार गिराया। तत्पश्चात् महाबाहु बलराम जरासन्ध पर टूट पड़े तब अपने पर आते हुए बलराम को देख जरासन्ध ने तीन बाणों से उन्हें वेधा तब मुसलायुध राम ने क्रोधित हो उसे आठ बाणों से वेधा और भाले से सुवर्ण के तारों से काम की गई उसकी ध्वजा को काट डाला। बाणों की वर्षा कर आपस में एक दूसरे को मार रहे थे उस समय यादवों और जरासन्धादिकों का घोर युद्ध देवासुर संग्राम की भाँति हो रहा था। उस युद्ध में कुपित हो हाथी हाथियों से, रथी रथियों से और सवार सवारों से युद्ध कर रहे थे। पैदल सेना पैदल से शक्ति और ढाल-तलवार हाथों में लेकर एक दूसरे के उत्तम अंगों को काटते हुए संग्राम में विचर रहे थे। कवच के ऊपर तलवारों तथा बाणों के गिरने से पक्षियों के समान शब्द सुनाई पड़ रहा था। संग्राम में भेरी, शंख, मृदङ्ग और वेणु की ध्वनि को अस्त्र-शस्त्रों और महात्मा वीरों के धनुष की प्रत्यंचाओं की ध्वनि ने ढक दिया।।७१-८१।।



अथ षष्टितमोऽध्यायः।।६०।।

वैशम्पायनजी बोले कि–रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के द्वारा हरी गई सुन कर भीष्मक के सामने प्रतिज्ञा किया। रुक्मी बोला कि मैं श्रीकृष्ण को मारे बिना और रुक्मिणी को लौटाये बिना कुण्डिनपुर में प्रवेश न करूँगा। आयुध से भरे ऊँची ध्वजा वाले रथ पर चढ़ साथ में विशाल सेना ले क्रोधित हो रुक्मी बड़े वेग से श्रीकृष्ण की ओर चला। उसके पीछे दक्षिणापथ के राजे

भी चले, क्राथ, अंशुमान, श्रुतर्वा, पराक्रमी वेणुदारि तथा भीष्मक के रथियों में श्रेष्ठ अन्य पुत्र भी रथ पर चढ़ कर चले तथा क्रथ और कैशिकों में प्रमुख सभी महारथी चले। वे क्रोध में भरे दूर के मार्ग को पार कर नर्मदा नदी के तट पर श्रीकृष्ण को रुक्मिणी के साथ बैठे देखे। तब रुक्मी ने उस सेना को चारों ओर तैनात कर द्वैरथ युद्ध करने की इच्छा से श्रीकृष्ण पर चढ़ दौड़ा। वह तीक्ष्ण चौसठ बाणों से गोविन्द को व्यथित किया तब संग्राम में श्रीकृष्ण ने सत्तर बाणों से उसे वेध कर उत्तर दिया और अपनी ओर आते हुए रुक्मी के ध्वजा को काट उसके सारथी का शिर धड़ से अलग कर दिया। रुक्मी को इस प्रकार आपत्ति में पड़ा जान कर दक्षिण देश के सभी राजे श्रीकृष्ण को मारने की इच्छा से उन्हें घेर लिये।।१-१०।।

महाबाहु अंशुमान दस बाणों से, श्रुतपर्वा पाँच बाणों से और क्रोधित वेणुदारि ने सात बाणों से श्रीकृष्ण को वेधा। तत्पश्चात् महाबली श्रीकृष्ण ने अंशुमान् का हृदय विदीर्ण कर दिया तब वह राजा दु;खी हो रथ पर ही बैठा रह गया। श्रुतपर्वा के चारों घोड़ों को चार बाणों से मार डाला और वेणुदारि के ध्वजा को काट कर उसके दाहिने हाथ को घायल कर दिया। ऐसे ही पाँच बाणों से श्रुतपर्वा को भी घायल कर दिया वह व्यथा से पीड़ित हो ध्वजा के सहारे बैठ गया। तत्पश्चात् क्रथ और कैशिक प्रमुख सभी महारथी बाणों की वर्षा करते हुए श्रीकृष्ण पर टूट पड़े। संग्राम में श्रीकृष्ण ने उनके बाणों को अपने बाणों से काट डाला, इस प्रकार ऊपर आते हुए अन्य क्रोधित वीरों को महाबली श्रीकृष्ण ने चौसठ तीक्ष्ण बाणों से घायल कर दिया। इस प्रकार अपनी सेना को तितर-वितर होते देख रुक्मी क्रोध के वशीभूत हो तीक्ष्ण पाँच बाणों से श्रीकृष्ण के वक्षस्थल को वेधा। उनके सारथी दारुक को भी तीन बाणों से वेधा तथा झुके बाण से उनकी ध्वजा को काट देने के लिये मारा। ऐसा देख श्रीकृष्णजी ने शीघ्र ही आते हुए रुक्मी के धनुष को क्रुद्ध हो काट दिया।।११-२०।।

तब रुक्मी श्रीकृष्ण को मारने की इच्छा से दूसरे धनुष और अन्य दूसरे दिव्य अस्त्रों को लेकर लड़ने लगा। उसके चलाये अस्त्रों को श्रीकृष्ण ने अपने अस्त्रों से निवारण कर पुनः उसके धनुष को काट दिया और तीन बाणों से रथ

को तोड़ दिया। कटे धनुष वाला वह रुक्मी रथ टूट जाने से पैदल ही ढाल-तलवार ले रथ से गरुड़ की भाँति शीघ्र कूद पड़ा। समर में अपनी ओर टूटते हुए रुक्मी के खड्ग को श्रीकृष्ण ने काट डाला और तीन बाण उसकी छाती में मारा। वह चिग्घारता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा, वज्र के लगने से महासुर की भाँति मूर्छित हो चेतना रहित हो गया। शेष सभी राजों को माधव ने पुनः बाणों से वेध कर घायल कर दिया, रुक्मी को गिरा हुआ देखकर सभी राजे भाग चले। तब भूमि पर छटपटाते हुए अपने भाई रुक्मी को देख रुक्मिणी जी उसके जीने की इच्छा से श्रीकृष्ण के पैरों पर गिर पड़ीं। श्रीकृष्ण जी उनको उठा आलिंगन कर शान्त्वना दिये और रुक्मी के लिये अभय दान दे अपनी पुरी को चल दिये। वृष्णि वंशी भी जरासन्ध और उसके साथ आये राजाओं का मान भंग कर प्रसन्न होते बलराम को आगे कर द्वारका को चल दिये। श्रीकृष्ण के चले जाने पर श्रुतपर्वा समर में आ रुक्मी को रथ पर चढ़ा अपनी पुरी को चला गया।।२१-३०।।

अपनी बहिन को न लौटा सकने के कारण मान के मद से युक्त प्रतिज्ञाभ्रष्ट होने से कुण्डिनपुर नहीं गया। उसने विदर्भ देश में रहने के लिये दूसरे पुर का निर्माण किया, वह नगर ''भोजकट'' के नाम से इस पृथ्वी पर विख्यात हुआ। वहीं रहकर महातेजस्वी अपने पराक्रम से दक्षिण दिशा का शासन करने लगा और महाभुज भीष्मक कुण्डिनपुर में ही रहे। सेना सहित बलराम के द्वारका पहुँच जाने पर श्रीकृष्णजी ने विधिवत् रुक्मिणी का पाणिग्रहण किया। इसके पश्चात् जैसे श्रीरामचन्द्रजी सीताजी के साथ और इन्द्र इन्द्राणी के साथ रमण किये थे वैसे ही प्रेम प्रदर्शित करते हुए श्रीकृष्णजी ने अपनी प्रिया रुक्मणीजी के साथ रमण किया। रूप, शील तथा गुण से युक्त पतिव्रता रुक्मिणी श्रीकृष्णजी की ज्येष्ठ पत्नी हुईं। उनसे श्रीकृष्णजी ने महारथी दस पुत्रों को उत्पन्न किया चारुदेष्ण, सुदेष्ण, महाबली प्रद्युम्न, सुषेण, चारुगुप्त, पराक्रमी चारुबाहु, चारुविन्द, सुचारु, भद्रचारु तथा बलियों में चारु नामक पुत्रों को तथा चारुमती नामकी कन्या को उत्पन्न किया, वे धर्म-अर्थ में कुशल तथा अस्त्र विद्या के विज्ञ एवं युद्धदुर्मद थे। रुक्मिणी के आलावे

और अन्य सात पटरानियाँ श्रीकृष्णजी की थीं जो अच्छे कुल में उत्पन्न गुणों से युक्त थीं जिनको विवाहा था।।३१-४०।।

कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, नाग्नजीती, जाम्बवान् की पुत्री जाम्बवती, इच्छानुसार रूप धारण करने वाली रोहिणी, मद्रराज की पुत्री सुन्दर नेत्रों वाली सुशीला, सत्राजित की पुत्री सत्यभामा, सुन्दर हँसी वाली लक्ष्मणा, शैव्य की पुत्री रूप में अप्सरा के समान तन्वी को पटरानी बनाया था, अतुल पराक्रमी हृषीकेश ने आठ पटरानियों के अलावे और भी सोलह हजार स्त्रियों से विवाह किया था और उन सभी का अर्ध्य, वस्त्र, आभूषण तथा सुखोचित सभी सामग्रियों से समान आदर करते थे। उनसे हजारों वीर पुत्रों को उत्पन्न किया था। वे सभी भाग्यशाली, महाबलवान्, शास्त्र के अर्थ में कुशल, महारथी, पुण्य कर्म करने वाले और यज्ञ करने वाले थे।।४१-४५।।



अथ एकषष्टितमोऽध्यायः।।६१।।

वैशम्पायनजी बोले कि-हे अरिन्दम! कुछ विशेष समय बीत जाने के वाद बलवान् रुक्मी ने अपनी पुत्री का स्वयंवर किया। उसमें रुक्मी द्वारा बुलाये हुए अनेक दिशाओं से शोभासम्पन्न महाबलवान् राजे और राजकुमार आये। वहाँ कुमारों के साथ प्रद्युम्न भी आये, वह कन्या प्रद्युम्न की इच्छा करती थी और उस शुभ्रलोचना को प्रद्युम्न भी चाहते थे। उस समय रुक्मी की पुत्री वैदर्भी शुभांगी नाम की यौवन की छटा से युक्त पृथ्वी पर विख्यात हो गई थी। उस स्वयंवर में सभी महात्मा और राजपुत्रों के बैठ जाने पर वैदर्भी अरिसूदन प्रद्युम्न को वर लिया। प्रद्युम्नजी सब प्रकार की अस्त्र विद्या में कुशल, श्रेष्ठ अंगों के रूपों से युक्त युवावस्था वाले श्रीकृष्ण के पुत्र उस समय लोक में रूप से उपमा रहित थे। वह राजपुत्री भी अवस्था, रूप तथा गुणों से युक्त लक्ष्मी के समान चन्द्र किरणों की भाँति प्रिय लगने वाली प्रद्युम्न के प्रीति की इच्छा करने वाली थी। स्वयंवर समाप्त हो जाने पर वे राजे अपने-अपने पुर को चले गये और विदर्भी को ले प्रद्युम्न द्वारका को चले गये। वीर प्रद्युम्न

उसके साथ वैसे ही रमण करने लगे कि जैसे नल ने दमयन्ती के साथ रमण किया था, वे उस वैदर्भी से देवता के समान पुत्र को उत्पन्न किये। वे पृथ्वी पर अप्रतिम कर्म करने वाले, धनुर्वेद तथा वेद एवं नीति शास्त्र के पारंगत अनिरुद्ध इस नाम से विख्यात हुए।।१-१०।।

जिस समय अनिरुद्ध यौवन की अवस्था से युक्त हुए उस समय स्वर्ण के समान चमकने वाली शोभा सम्पन्न रुक्मी की पौत्री रुक्मवती को पत्नी बनाने के लिये वरण करना चाहा। तब अनिरुद्ध के गुणों से तथा रुक्मिणी के आग्रह से अनिरुद्ध की प्रीति देख राजा रुक्मी अपनी पौत्री उन्हें देने का निश्चय किया। हे जनमेजयजी! श्रीकृष्ण से वैर का त्याग कर प्रीतिपूर्वक पौत्री को देने के लिये कह दिया। तब तो श्रीकृष्ण रुक्मिणी और पुत्रों तथा बलराम एवं अन्य वृष्णियों के साथ सेना सहित विदर्भ देश को चले गये। रुक्मी के बुलाये जाने पर उसके जाति के लोग तथा मित्र लोग और जो सगे-सम्बन्धी थे सभी राजे भोजकट में पधारे। हे महाराज! शुभ तिथि तथा शुभ नक्षत्र में देव-पूजन के बाद अनिरुद्ध का वह विवाह-परमोत्सव हुआ अनिरुद्ध द्वारा वैदर्भी का पाणिग्रहण कर लेने के बाद वैदर्भी और यादवों ने वहाँ बड़ा भारी उत्सव किया। वृष्णि पूजित हो वहाँ देवताओं के समान विचरने लगे; अश्मको के राजा उदार बुद्धि वेणुदारि, अक्ष, श्रुतर्वा, चाणूर, क्राथ, अंशुमान, महाबली कलिंगाधिपति जयत्सेन। राजा पाण्ड्य और श्रीमान् ऋषीकाधि पति ये सभी महाबुद्धिमान् दक्षिण देश के राजे आपस में मन्त्रणा कर रुक्मी से एकान्त में जाकर कहने लगे आप लोग जुआ में कुशल हैं अतः आप जुआ खेलिये हम लोग भी जुआ खेलना चाहते हैं, बलराम यद्यपि जुआ में निपुण नहीं है तथापि वे जुआ के प्रेमी हैं।।११-२०।।

हम लोग आपको जुआ में अगुआ बना बलराम को जीत लेना चाहते हैं, ऐसा करने पर महारथी रुक्मी को जुआ खेलना अच्छा लगा। वे स्वर्ण के खम्भों वाली पुष्पों से सजी चन्दन के जल से सिक्त शुभ अपनी सभा में जुआ खेलने चले गये। शुभ्र माला पहने चन्दन लगाये सभी राजे बलराम को जीतने की इच्छा से सभा में प्रवेश कर सुवर्ण के सिंहासनों पर बैठ गये। द्यूत शास्त्र

के धूर्त पण्डितों ने बलराम को बुलाया, बलराम ने प्रसन्न हो कहा अच्छा हम आप लोगों के साथ जुआ खेलेंगे। तब कपट से बलराम को जीतने की इच्छा करते हुए दक्षिणी राजाओं ने हजारों की संख्या में मणि, मुक्ता तथा अशर्फी लाये। इसके पश्चात् प्रीति को नष्ट करने वाला, कलह का घर, दुर्मदियों को नष्ट करने वाला उन सबों का भयंकर जुआ होने लगा। बलराम ने रुक्मी के साथ जुए में दस हजार सुवर्ण के सिक्कों को दाँव पर रखा। इसके बाद पासा फेंकने वाले बलराम को रुक्मी ने जीत लिया, इसी प्रकार दूसरी बार पुनः दस हजार के दाँव से बलराम को जीत लिया। इस प्रकार बार-बार रुक्मी द्वारा जीते जाने वाले केशव के बड़े भाई ने एक करोड़ का दाँव लगाया, उन महात्मा के इस दाँव को भी उसने ले लिया और वह कुटिल प्रसन्न हो कहने लगा कि इस दाँव को भी मैंने जीता, राजाओं से प्रशंस्यमान् रुक्मी हँसता हुआ मुसलायुध बलराम की निन्दा करने लगा कि।।२१-३०।।

यह श्रीमान् द्यूत विद्या के ज्ञाता नहीं हैं इसमें कमजोर हैं तभी मैं इनके अमित स्वर्ण निष्कों को जीता, यद्यपि युद्ध में यह अजेय हैं तथापि इनको मैंने जुए में पराजित कर दिया। इस बात को सुनकर अपने बड़े-बड़े दाँतों को दिखाता हुआ कलिंगराज बहुत हँसने लगा तब तो वहाँ हलायुध कुपित हो गये। परायज के कारण रुक्मी के निकलने वाले वचन को सुनते तथा भीष्मक सुत की तीक्ष्ण बाणियों को ग्रहण करते क्रोध को जीतने वाले धर्मज्ञ बलरामजी क्रोधित हो गये, हास्य को प्राप्त कर रोहिणी पुत्र महाबली बलदेवजी क्रुद्ध हो गये। फिर भी मन में धैर्य धारण कर बोले कि–दस कोटि हजार का एक और मेरा दूसरा दाँव यह है, हे नराधिप! इसको भी अधिक धूल वाले अर्थात् जुआ के इस देश में काले और लाल पासों को फेंक कर जीत लो। इस प्रकार कह कर बलरामजी ने रुक्मी को बुलाया, रुक्मी और कुछ न कह कर कहा ऐसा ही होगा। इसके पश्चात् राजा रुक्मी ने पासा फेंका तो चार चिह्नों से चिह्नित पासा पड़ जाने पर रुक्मी हार गया। बलरामजी ने धैर्यपूर्वक कहा कि तुम हारे तब रुक्मी बोला कि नहीं मैं नहीं हारा, ऐसा सुनकर भी बलरामजी मन में धैर्य धारण कर कुछ न बोले।।३१-४०।।

तत्पश्चात् रुक्मी हँसता हुआ बलदेव से कहा कि मैंने जीता, हे नराधिप! इस कपट की बात को सुनकर बलरामजी पुनः क्रोध में समाविष्ट हो कुछ भी उत्तर न दिये तत्पश्चात् आकाशवाणी हुई कि-वह महात्मा बलरामजी के उस क्रोध को और बढ़ाती बोली कि बलराम ने सत्य कहा है यह रुक्मी धर्मतः पराजित हो गया है। न कहा गया भी वचन कर्म से जान लिया जाता है और मन से भी उसका सम्यक् ज्ञान हो जाता है ऐसा सब कोई समझो। अन्तरिक्ष से ऐसा सुभाषित वचन सुनकर बली बलराम क्रोधित हो उठ कर अष्टापद से रुक्मिणी के ज्येष्ठ भ्राता आक्षेप करने वाले रुक्मी का वध कर दिया और भी कितने ही को उसी अष्टापद से यदुनन्दन ने पटक कर मार डाला। इसके बाद क्रुद्ध बलरामजी कलिंगाधिपति जयत्सेन के दाँतों को तोड़ डाले और सिंह के समान ऊँचे स्वर से दहाड़ने लगे। हाथ में खड्ग उठा सभी राजाओं को त्रास देने लगे, वे बलियों में श्रेष्ठ बलराम सभा के सुवर्ण के स्तम्भ को उखाड़ कर। स्तम्भ को हाथी की भाँति खींचते हुए निकल कर सभा द्वार से कैशिकों को भयभीत करने लगे। कपट के ज्ञाता रुक्मी को मार कर तथा सभी द्वेष करने वालों को सिंह के समान क्षुद्र मृगों को डराकर।।४१-५०।।

मनुष्यों से घिरे बलराम अपने शिविर में चले गये, वहाँ जैसे जो कुछ हुआ था वैसे ही श्रीकृष्ण से निवेदन कर दिया। महातेजस्वी श्रीकृष्णजी बलराम से कुछ भी न कहे और अपनी आत्मा में धैर्य धारण कर आँसू टपकाने लगे। रुक्मिणी के स्नेह के कारण रुक्मिणी के जेठे भाई जिस रुक्मी को शत्रु सेना के वीरों को मारने वाले श्रीकृष्ण ने नहीं मारा था। वह वज्र के समान शरीर धारण करने वाला बलवान् राजा जुआसार में बलराम के हाथ से छोड़े गये अष्टापद द्वारा मार डाला गया। द्रुम और भार्गव परशुराम से शिक्षित द्रुम तथा परशुराम के तुल्य भीष्मक पुत्र महापराक्रमी युद्धकुशल तथा नित्य यज्ञ करने वाले रुक्मी के मारे जाने पर वृष्णिवंशी और अन्धकवंशी सभी खिन्न मन हो गये। वैशम्पायनजी बोले कि भाई का मरण सुनकर महाभागा रुक्मिणी आर्तवाणी से विलाप करने लगीं तब विलाप करती रुक्मिणी को

श्रीकृष्ण ने सान्त्वना देकर समझाया। वृष्णियों से वैर का जो परिणाम हुआ तथा जिस प्रकार रुक्मी का वध हुआ वह सब मैंने सुना दिया। हे महाराज ! वृष्णिवंशी भी धन लेकर राम-कृष्ण का आश्रय कर द्वारका पुरी को चले गये।।५१-५९।।



अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः।।६२।।

राजा जनमेजय ने कहा–हे विप्रर्षे ! पृथ्वी को धारण करने वाले शेषावतार महात्मा बलदेवजी के माहात्म्य को मैं फिर सुनना चाहता हूँ। जो पुराणवेत्ता हैं उन बलदेवजी को अत्यन्त तेज की राशि और अजेय कहते हैं। जिनको लोग नाग, नागेश्वर तथा आदिदेव करके जाने हैं, हे विप्र! मैं उनके दुष्कर कर्मों को तत्त्व से सुनना चाहता हूँ। वैशम्पायनजी बोले कि–इन्हीं बलदेवजी को पुराण में नागराज, धरणीधर, शेष, तेजनिधि, श्रीमात्र अकम्प्य, पुरुषोत्तम, योगाचार्य, महावीर्य, देवमन्त्रमुख तथा महाबली कहकर बताया गया है। जो गदा-युद्ध में जरासन्ध को जीत कर भी वध नहीं किये। इस पृथ्वी तल पर बहुत से युद्धविख्यात राजे जरासन्ध के अनुयायी थे वे सब भी बलदेवजी द्वारा रण में जीत लिये गये। साठ हजार हाथी के बल वाले भयंकर पराक्रमी भीमसेन एक बार में ही बाहुयुद्ध में बलदेवजी द्वारा पराजित हो गये। दुर्योधन की कन्या को हरण करते समय हस्तिनापुर में जब जाम्बवती-पुत्र साम्ब बाँध लिये गये तो यह सुनकर बलरामजी वहाँ आये; चारों तरफ बैठे हुए राजाओं के बीच से वे बलपूर्वक साम्ब, कन्या का हरण कर रहे थे। बलरामजी उन्हें छुड़ाने के लिये आये थे पर कौरवों ने उन्हें बलराम के कहने से न छोड़ा तब तो बलरामजी शीघ्र ही क्रुद्ध हो गये और अद्भुत कर्म कर डाले।।१-१०।।

जिसका निवारण नहीं हो सकता ऐसे अभेद्य उपमा रहित हल रूप आयुध को ब्रह्ममन्त्र से अभिमन्त्रित किये। महातेजस्वी बलराम पुर की चाहारदिवारी की नींव में हल को डाल कर दुर्योधन के उस नगर को गंगाजी

में उलट देना चाहे। तब राजा दुर्योधन नगर को चारों ओर से चलायमान होता देख साम्ब को भार्या सहित लाकर उन बुद्धिमान् के समक्ष उपस्थित कर दिया और श्रेष्ठ महात्मा बलरामजी के चरणों में अपनी आत्मा को शिष्य बनने के लिये समर्पित कर दिया, तब बलरामजी ने कुरुपति को गदा-युद्ध में अपना शिष्य बना लिया। हे राजेन्द्र! तब से यह नगर गंगाजी की ओर विशेष रूप से झुका हुआ शोभा पाता है। इस प्रकार के अद्भुत कर्म बलरामजी के पृथ्वी पर विख्यात हैं जो कर्म बलराम ने पहले किया था वह भाण्डीर वन की कथा में कह चुका हूँ। जो हलायुध ने एक ही मुष्टिक से प्रलम्ब को मार डाला था, महाबलवान् धेनुक को पर्वत के शिखर पर पटक दिया वह प्राणरहित हो गदहे का रूप धर पृथ्वी पर गिर पड़ा। समुद्र के जल में मिलने वाली, शीघ्रता से बहने वाले जल के तरंगों की माला धारण करने वाली महानदी यमराज की बहिन यमुना को हल धारण करने वाले बलराम हल से अपने नगर की ओर खींच लिये थे। धरणी को धारण करने वाले अप्रमेय अनन्त बलदेवजी का यह माहात्म्य कहा। पुरुषश्रेष्ठ हलायुध के बहुत से माहात्म्य हैं, जो नहीं कहे हैं उसे पुराण के विस्तार से आप जान सकते हैं।।११-२०।।



अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः।।६३।।

जनमेजयजी बोले-हे महामुने! बलवान् रुक्मी के मारे जाने के बाद महाबाहु श्रीकृष्ण द्वारका पहुँच कर जो किये वह मुझसे कहिये। वैशम्पायनजी बोले-वह श्रीमान् यादवनन्दन भगवान् विष्णु यादवों से घिरे द्वारका पहुँच कर पुरी को देखा। जो विविध प्रकार के रत्न और धन प्राप्त किये थे उसे यथा योग्य अनुचरों द्वारा अपने घर में रखवा दिये। दिति के पुत्र दैत्य दानवों के साथ वहाँ विघ्न करते थे, उन घमण्ड से भरे महासुरों को महाबाहु श्रीकृष्ण ने मार डाला। वहाँ एक नरक नामक दानव श्रीकृष्ण के कार्यों में विघ्न करता था, वह सम्पूर्ण देवताओं को त्रास देने वाले इन्द्र का महान् शत्रु था। सभी देवताओं के कार्य का बाधक प्राग्ज्योतिषपुर का रहने वाला था देवता तथा

ऋषियों का भी उपकार करता था। वह भूमि से उत्पन्न नरकासुर केशरु नामक स्थान पर गया और त्वष्टा की सुन्दर अङ्गों वाली चौदह वर्ष की कन्या को हाथी का रूप धारण कर पकड़ लिया। बलात्कार कर नष्ट शोक और भय वाले प्राग्ज्योतिष पुर का राजा मोह के वशीभूत हो कन्या से कहा। देवता और मनुष्यों के पास जो विविध प्रकार प्रकार का रत्न हैं, जो रत्न सम्पूर्ण पृथ्वी में है और जो धन सागरों में हैं। वह सम्पूर्ण रत्नादि धन आज से मेरे राक्षस दैत्य और दानवों के साथ अपहरण करे मेरे पास ले आवेंगे।।१-१०।।

इस प्रकार अनेक प्रकार के उत्तम रत्न और वस्त्रों को भौमासुर हर कर लाया पर उसका उपभोग नहीं किया। महाबली नरकासुर ने गन्धर्वों की जो कन्यायें हरीं और जो देवता तथा मनुष्यों की जो कन्यायें हरीं एवं जो अप्सराओं के समूह को हर लिया था। वे सब संख्या में चौदह हजार इक्कीस सौ अर्थात् सोलह जार एक सौ थीं। वे सभी सती मार्ग का अनुसरण करने वाली एक वेंणी धारण करने वाली कुमारिका थीं। वैशम्पायनजी बोले-वह अदीनात्मा नरकासुर अलकापुरी में मेरु दैत्य के देश के निकट उन कन्याओं को रहने के लिये मणियों से जटित श्रेष्ठ पुर बसाया। वे कन्यायें प्राग्ज्योतिषपुर के स्वामी की उपासना करती थीं और मेरु के दस पुत्र तथा और प्रमुख राक्षस उसी पुरी की रक्षा करते हुए नरकासुर की उपासना करते थे, वर के अभिमान से भरा वह महासुर काले सागर के तट पर रहता था। उस समय जैसा भयंकर कर्म इस महासुर ने किया वैसा कर्म पहले किसी असुर ने नहीं किया था। जिसको पृथ्वी ने स्वयं उत्पन्न किया था जिसका प्राग्ज्योतिषपुर नगर था वह नरकासुर कुंडल के लिये अदिति को धमकाया था। उस महासुर के हयग्रीव, निसुन्द, पञ्चनद तथा मुरु ये युद्ध दुर्मद चार द्वारपाल थे मुरु को वरदान मिला हुआ था यह बड़ा भारी असुर था यह हजारों पुत्रों के साथ देवताओं के मार्ग को रोक कर उनको कष्ट देता हुआ खड़ा हो जाता था और भयंकर रूप वाले राक्षसों के साथ पुण्यात्माओं को त्रास दिया करता था। ऐसे ही राक्षसों के वध के लिये शंख, चक्र, गदा तथा खड्ग

धारण करने वाले महाबाहु श्रीकृष्ण वृष्णि वंश में वसुदेव से देवकी में उत्पन्न हुए थे।।११-२०।।

उन्हीं लोक प्रसिद्ध तेजस्वी पुरुषेन्द्र का निवास स्थान देवताओं ने उपाय से द्वारका बनाया था। वह द्वारकापुरी इन्द्रालय के समान बड़ी रम्य थी वह महासागर की लहरों का टक्कर खाती पाँच पर्वतों से शोभित थी। देवपुरी के समान प्रभा वाली उस पुरी में सुवर्ण के तोरणों वाली चार कोस लम्बी-चौड़ी सभा थी वह दाशार्ही नाम से विख्यात थी। उसमें राम-कृष्ण के सहित सभी वृष्णि वंशी तथा अंधक वंशी सम्पूर्ण लोक यात्रा की रक्षा करते हुए बैठते थे। हे भरतर्षभ! एक समय वहाँ सभी बैठे थे कि इतने ही में दिव्य गन्ध वाला वायु चलने लगा और पुष्पों की वर्षा होने लगी। तत्पश्चात् आकाश में क्षण भर किल-किल शब्द हुआ इसके बाद प्रभा के जाल से घिरा कोई पदार्थ भूमि पर उतरा। उस तेज के बीच श्वेत रंग के हाथी पर चढ़े देवताओं के गणों से घिरे इन्द्र दिखाई पड़े। राम-कृष्ण तथा राजा उग्रसेन वृष्णि और अंधकों के साथ स्वागत के लिये इन्द्र के समीप उठ कर गये। शीघ्रता पूर्वक हाथी से उतर इन्द्र ने श्रीकृष्ण का आलिंगन कर बलदेव तथा राजा उग्रसेन का आलिंगन किया तथा समय अवस्था के अनुसार वृष्णियों का भी आलिंगन किया तत्पश्चात् राम-कृष्ण से पूजित हो उस सभा में बैठ गये।।२१-३०।।

वहाँ बैठे हुए इन्द्र सभा को अलंकृत कर अर्घ आदि सुन्दर स्वागत की वस्तुओं को विधि पूवर्क ग्रहण किये। वैशम्पायनजी बोले कि-मित्रता पूर्वक हाथ से श्रीकृष्ण के शुभ शरीर का स्पर्श कर महातेजस्वी इन्द्र अपने छोटे भाई से श्रीकृष्ण बोले। हे शत्रुओं को मारने वाले देवकीनन्दन मधुसूदन! जिस कार्य से तुम्हारे पास आया हूँ उसे सुनो। ब्रह्मा के वरदान से घमण्ड में चूर जो दिति पुत्र नरक नामक राक्षस है वह मोह से अदिति के कुण्डल को हर लिया है। और वह देवताओं तथा ऋषियों का अनिष्ट करने में दिन-रात संलग्न है, आप यह सब देखकर उस पापस्वरूप राक्षस का वध कीजिये। अन्तरिक्षचारी विनतापुत्र इच्छानुसार बल वाले अति तेजस्वी इच्छानुसार गमन करने वाले यह गरुड़ आपको वहाँ पहुँचायेंगे। वह भूमिपुत्र नरकासुर सभी से अवध्य है

तो ऐसे उस पापी को नष्ट कर शीघ्र ही वहाँ से आइये। इस प्रकार इन्द्र द्वारा कहे जाने पर कमलनेत्र महाबाहु श्रीकृष्ण नरकासुर के वध के लिये प्रतिज्ञा किये। तत्पश्चात् शंख, चक्र तथा गदा धारण कर सत्यभामा को साथ ले गरुड़ पर चढ़ इन्द्र के साथ चल दिये (सत्यभामा पृथ्वी के अंश से उत्पन्न हैं अतः इनकी आज्ञा से उसे मारूँगा इसलिये साथ ले गये) क्रम से वायु के सात परतों को पार कर यादवों के देखते-देखते इन्द्र सहित महाबली श्रीकृष्ण ऊपर चले गये।।३१-४०।।

गजेन्द्र पर चढ़े इन्द्र तथा गरुड़ पर बैठे श्रीकृष्ण आकश में दूर चले जाने से सूर्य और चन्द्रमा की भाँति प्रकाश करने लगे। अन्तरिक्ष में गन्धर्व तथा अप्सराओं द्वारा स्तुति किये जाते हुए केशव और इन्द्र क्रमशः अन्तर्धान हो गये। देवताओं के राजा इन्द्र श्रीकृष्ण से कर्तव्य कार्य का निर्देश कर अपने भवन को चले गये और श्रीकृष्ण प्राग्ज्योतिषपुर को चले गये। उस समय गरुड़ के पक्ष से आहत वायु उलटा बहने लगा और भयंकर शब्द करने वाले गगनचारी मेघ आकाश में भ्रमण करने लगे। आकाशचारी गरुड़ के द्वारा क्षणभर में ही प्राग्ज्योतिषपुर चले गये और दूर से ही उन राक्षसों को देखकर जहाँ वे बैठे थे वहाँ चले गये और द्वारा पर स्थित हाथी, घोड़े, रथ तथा सेना को देखा तथा क्षुरा के समान तीक्ष्ण मुरु के द्वारा निर्मित पाशों को लिये छै हजार सैनिकों को देखा। वैशम्पायनजी बोले कि-शंख, चक्र, गदा तथा खड्ग को धारण किये पीताम्बर पहने नीले मेघ के समान गरुड़ पर चढ़कर चतुर्भुज श्रीकृष्ण आकाश में भ्रमण करने लगे। वे बनमाला पहने श्रीवत्स से अंकित भूषण वाले सूर्य के समान शिर पर किरीट धारण किये विद्युत् सहित चन्द्रमा की भाँति ज्ञात हो रहे थे। उनके धनुष की प्रत्यंचा का गूँजता हुआ बड़ा भारी शब्द वज्र के समान सुनकर दानव समझे कि स्वयं विष्णु ही यहाँ आ गये। क्रोध से दूना लाल नेत्रों वाला यमराज के समान मुरु नामक महासुर-शक्ति को ग्रहण कर वेग से श्रीकृष्ण पर दौड़ा।।४१-५०।।

मणि तथा सुवर्ण से भूषित महाशक्ति उनके ऊपर फेंका, महती उल्का के समान जलती शक्ति को आती हुई देखकर जनार्दन ने सुवर्ण पुंख वाला

एक बाण धनुष पर रखा, फिर पराक्रमी वासुदेव ने क्षुरप्र नामक बाण से शक्ति को दो टुकड़े कर दिया। शक्ति के छिन्न-भिन्न होने पर विद्युत् समूह की भाँति जलता, लाल-लाल आँखें किये मुरु पुनः विशाल गदा को ग्रहण कर चलाया। तब सुरोत्तम श्रीकृष्ण ने इन्द्र के वज्र के समान इन्द्र द्वारा कान तक खींचे धनुष के समान शब्द करने वाला, अर्धचन्द्र नामक बाण को कान तक खींच कर चलाया और स्वर्ण से भूषित गदा को मार्ग के बीच में ही टुकड़े-टुकड़े कर दिया फिर रण में उस दानव का शिर भाले से काट गिराया। पाश धारण किये सभी सैनिकों को तथा बान्धव सहित मुरु को मार डाला, इस प्रकार नरकासुर के प्रमुख राक्षसों को मार शिला के समूहों को लाँघ कर भगवान् देवकीसुत ने निसुन्द को तथा और भी दानवों की सेना को देखा। दिति के पुत्र हयग्रीव के अन्य विचित्र योद्धाओं को देखा, महाबली निसुन्द ने अपनी सेना से श्रीकृष्ण के मार्ग को रोक दिया और बलियों में श्रेष्ठ निसुन्द स्वयं शीघ्र रथ पर चढ़ कर सुवर्ण की पीठ वाला कठिन दिव्य धनुष ग्रहण कर लिया और दस बाणों से निसुन्द ने मधुसूदन को मारा, केशव ने भी उसे तीक्ष्ण सत्तर बाणों से मारा।।५१-६०।।

माधव ने निसुन्द द्वारा चलाये गये दसों बाणों को मार्ग में ही काट गिराया, निसुन्द के वे सभी सैनिक बाण बरसाते हुए श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेर लिये। तब सुरोत्तम मधुसूदन अपने को बाणों के बड़े भारी जाल से घिरता हुआ जान सभीं दानवों को क्रोध सहित देखकर पार्जन्य नामक दिव्य अस्त्र से बाणों की भारी वर्षा करते हुए उस सेना को तितर-बितर कर दिया। पाँच-पाँच बाणों से एक-एक करके बहुतों को मारे, पार्जन्य के प्रभाव से सभी के मर्मस्थल को चोट पहुँचाया। श्रीकृष्ण के भय से भयभीत हो दानव इधर-उधर रण में भागने लगे तब अपनी सेना को भागती हुई देखकर निसुन्द पुनः संग्राम में निकल पड़ा और बाणों की वर्षा करता हुआ केशव को ढक दिया। बाणों से अच्छी तरह निसुन्द गरुड़ध्वज को ढक दिया तब पुरुषोत्तम ने सावित्र नामक दिव्य अस्त्र को ग्रहण किया और रण में हरि ने सावित्र नामक बाण से उन बाणों को काट गिराया उसके बाणों को अपने बाणों से काटकर

महाबली श्रीकृष्ण एक बाण से छत्र काट और तीन बाणों से रथ तोड़कर चार बाणों से चारों घोड़ों को मार डाले। पाँच बाणों से सारथी को मार कर एक बाण से ध्वजा को काट गिराये और एक तीखे बाण से उसके शरीर का छेदन किया।।६१-७०।।

तत्पश्चात् सुरोत्तम ने जो हजारों वर्षों तक सभी देवताओं से युद्ध किया था ऐसे निसुन्द का शिर भाले से काट दिया। निसुन्द को गिरा देखकर प्रतापी दानव हयग्रीव बड़ी भारी शिला लेकर श्रीकृष्ण पर चलाया। पर्वत के समान शिला को छोड़ते ही अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने दिव्य पार्जन्य अस्त्र को लेकर काट दिया। विष्णु ने उस दिव्यास्त्र को तेज धार से शिला के सात टुकड़े कर दिये इस प्रकार उस लौह अस्त्र ने शिला विदीर्ण कर पृथ्वी पर गिरा दिया। हे भरतर्षभ! शार्ङ्ग धनुष से छूटे हुए नाना प्रकार के बाणों और महास्त्रों से देवासुर संग्राम की भाँति वह युद्ध ज्ञात होने लगा, नाना प्रकार के आयुधों से व्याप्त वह संग्राम देवासुर की भाँति भयंकर हुआ। महाबाहु श्रीकृष्ण गरुड़ पर चढ़े हुए शार्ङ्ग धनुष से छोड़े गये नाना प्रकार के बाणों और महास्त्रों से महान्-महान् असुरों को मार गिराये। रथ से विदारित शरीर वाले तथा शंख और शक्ति के शब्द से गिराये गये सभी दानव जनार्दन को पाकर नष्ट हो गये। कितने ही दानव चक्र की अग्नि से जलते हुए आकाश में उठकर गिर गये, कितने श्रीकृष्ण के समीप पहुँच कर प्राण छोड़ विकृत मुख हो गिर पड़े। श्रीकृष्ण के बाणों से पीड़ित विकृत अंगों वाले शेष सभी असुर वर्षा करने वाले मेघ के समान बाणों की वर्षा करने लगे। शोणित से लिप्त शरीर वाले दानव लाल फूले हुए टेसू के पेड़ के समान दिखाई दे रहे थे, टूटे हुए अस्त्रों वाले विचित्रयोधी दानव विशेष भयभीत होकर भाग चले।।७१-८०।।

तब पुनः क्रोध से लाल आँखें किये दानव हयग्रीव दसों दिशाओं में फैले वनस्पति लेकर वायु वेग से चला। वृक्ष को उखाड़ कर उसे ले बड़े वेग से श्रीकृष्ण पर दौड़ा और युद्ध की कला के साथ उस घने महा वृक्ष को फेंका। वृक्ष से उत्पन्न वायु का बड़ा भारी शब्द सुनाई पड़ा, सामने लड़ते हुए जनार्दन

ने हजारों बाणों से अग्नि के समान आकृति वाले वृक्ष को टुकड़े-टुकड़े कर दिये फिर एक बाण से हयग्रीव के हृदय में मारा। अग्नि के समान प्रभा वाला वह बाण दानव के स्तनों के बीच अति वेग से छिद्र कर प्रवेश कर गया और हृदय को भेद कर निकल गया। अपार तेज वाले दुर्धर्ष यादवनन्दन ने महाभयंकर बली हयग्रीव को मार डाला। समुद्र के प्रदेश में स्थित जल की परिखा वाली पुरी के मध्य देवकीपुत्र भगवान् पुरुषोत्तम ने विकृत रूप तथा आँखों वाले पापी को मारा था। हे परन्तप! आठ लक्ष दानवों का वध कर पुरुषसिंह श्रीकृष्ण प्राग्ज्योतिषपुर को चले। वहाँ पर पंचनद नामक महासुर को मार कर शोभा से देदिप्यमान प्राग्ज्योतिषपुर को गये वहाँ पर भी भारी युद्ध होने के बाद महाबली ने पांचजन्य नामक शंख को बजाया।।८१-९०।।

सांग्रामिक निनाद के समान उसका महान् शब्द सुनाई पड़ रहा था, वह भयंकर गम्भीर शब्द तीनों लोकों में सुनाई पड़ रहा था, उस शब्द को सुनकर नरकासुर के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वह लोहे की आठ पहियों वाले तीन नल्वा रत्न और सुवर्ण के चित्रों से विभूषित बैठने की चौड़ी वेदिका वाले रथ पर चढ़ कर आया। वह रथ सुवर्ण की विशाल वज्र चिह्न वाली ध्वजा से शोभा पा रहा था, उसमें सुवर्ण के दण्डों वाली पताकायें लगी थीं और उसका कूबर वैदूर्य मणि का था। शत्रु के रथ को तोड़ने वाला उसका राथ हजार घोड़ों से जुता था और वह लोहे की जालियों से ढका अनेक प्रकार के आवश्यक सामानों से भरा हुआ विशेष शोभित हो रहा था। वह सुवर्णजटित रथ नाना प्रकार के आयुधों से व्याप्त था, रथ के मध्य में बैठा हुआ नरकासुर सन्ध्या समय के सूर्य के समान शोभा पा रहा था। रथ का अग्र भाग चन्द्रमा के वर्ण वाले हीरों से आच्छादित था, कवच को धारण किये नरकासुर मुक्ता और अग्नि के समना तेजस्वी ज्ञात हो रहा था, वह सूर्य और अग्नि के समान प्रभा वाले किरीट को शिर पर धारण किये था और कानों में चमकते हुए कुण्डलों को पहने था और भी धूम्र वर्ण वाले, विशालकाय, लाल-लाल आँखों वाले, विकृत मुख वाले नाना प्रकार के कवच पहने सभी दैत्य, दानव और राक्षस निकल पड़े। कितने ढाल-तलवार और कितने धनुष-बाण धारण

किये, कितने शक्ति और कितने शूल हाथों में लिये हाथी, घोड़ों और रथों पर सवार हो पृथ्वी को चलायमान करते तैयार होकर सभी योद्धा नगर से बाहर निकल पड़े। काल के समान नरकासुर दैत्य गणों के साथ घिरा हुआ संग्राम को चल पड़ा, उस समय हजारों भेरी, शंख, मृदंग और नगारे बज रहे थे।।९१-१००।।

बजते हुए वाद्यों के शब्द मेघ तक सुनाई दे रहे थे, वे सभी विकृत मुख वाले दानव जहाँ श्रीकृष्ण थे वहाँ जा उन्हें घेर कर एक साथ ही जुट कर सभी श्रीकृष्ण से युद्ध करने लगे, सैनिकों ने बड़ी भारी बाणों की वर्षा कर उन्हें ढक दिया। हजारों शक्ति, शूल, गदा, प्रास, तोमर और बाणों को छोड़ कर आकाश को आच्छादित कर दिये। तब काले मेघ के आकार वाले श्रीकृष्ण शार्ङ्ग धनुष को ग्रहण कर मेघ के समान शब्द करने वाले उस महाधनुष को चढ़ा कर दैत्यों की बाण वर्षा का निवारण किया, बाणों की वर्षा से व्यथित हो महासंग्राम से सेना भाग चली। भयंकर रूप वाले राक्षसों से श्रीकृष्ण का बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, श्रीकृष्ण के बाणों से पीड़ित हो राक्षसों की सेना का व्यूह टूट गया। किसी की बाहें कट गई, किसी की गर्दन छिन्न-भिन्न हो गई, शिर फूट गया, मुँह टूट गया, कितने चक्र से दो टुकड़े हो गये, कितनों का बाणों से हृदय फट गया। कितने हाथी, घोड़ों और रथ पर चढ़े शक्ति से दो टुकड़े हो गये, कितने कौमोदकी गदा से चूर्ण-चूर्ण हो गये, कितने चक्र से विदीर्ण हो गिर पड़े। इसी प्रकार मनुष्य, हाथी, घोड़ों तथा रथ की सेना का मर्दन कर दिया, नरकासुर के साथ श्रीकृष्णजी का परम दारुण संग्राम हुआ। हे राजन्! जिसको मैं संक्षिप्त रूप से कहता हूँ तुम सुनो, देवताओं को त्रास देने वाले नरकासुर मधु (कैटभ के भाई) के समान पुरुषोत्तम मधु-सूदन को लड़ाया था।।१०१-११०।।

श्रीकृष्ण ने वीरतापूर्वक इन्द्र के धनुष के समान लम्बे धनुष को तथा सूर्य की किरणों के समान चमकते बाणों को उठाया और अपने दिव्य बाणों से संग्राम के बीच उसके रथ को भर दिया, महावेग से चलने वाले उत्तम अस्त्र को बली नरक ने श्रीकृष्ण पर छोड़ा। तब वज्र के समान चिनगारियों को

छोड़ते हुए आते अस्त्र को देखकर महाभाग श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र से उसे काट गिराये और एक बाण से उसके रथ को छिन्न-भिन्न कर दिये तथा दस बाणों से सारथी, ध्वजा और घोड़ों को मार डाले। एक बाण से उसके कवच को छिन्न-भिन्न कर दिये तत्पश्चात् कवच रहित उसका शरीर सर्प की भाँति ज्ञात होने लगा। मरे हुए घोड़ों वाला कवच रहित वह वीर दानव विमल प्रभा वाला लोहे का भारी दृढ़ त्रिशूल उठाकर छोड़ा। इन्द्र के वज्र के समान प्रभा वाले सुवर्ण से जटित सहसा छोड़े गये शूल को अपने ऊपर गिरता देखकर अद्भुत कर्म करने वाले श्रीकृष्ण ने क्षुरप्र नामक बाण से उसके दो टुकड़े कर दिये, भयंकर रूप वाले महा राक्षस नरक के साथ शस्त्रपात द्वारा महा आघात पहुँचाने वाला वह युद्ध बड़ा ही भयंकर हुआ, फिर क्षणमात्र मधुसूदन ने नरक को लड़ाया।।१११-१२०।।

इसके बाद तेज चक्र की धार से नरकासुर को दो टुकड़े कर दिया, चक्र से दो भागों में किया गया नरकासुर का शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। वज्र से दो टुकड़े किये गये पर्वत के शिखर के समान उसका शरीर पृथ्वी पर गिर कर शब्द किया, देवेश श्रीकृष्ण को प्राप्त कर वह सूर्य के समान अस्त हो गया। वज्र के प्रहार से छिन्न-भिन्न हुए गेरु के पर्वत के समान चक्र से काटा गया उसका शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। अपने पुत्र को गिरा देखकर उसकी माता भूमि रूप धारण कर कुण्डलों को श्रीकृष्ण के समीप लाकर बोली कि–हे गोविन्द! यह तुम्हारे ही द्वारा दिया गया था और तुम्हारे ही द्वारा यह मारा भी गया, बालकों की खेल की तरह जैसी इच्छा हो वैसी खेल खेलो। ये आपके कुण्डल हैं इन्हें ग्रहण करो और नरकासुर की प्रजा का पालन करो।।१२१-१२६।।



अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः।।६४।।

वैशम्पयानजी बोले कि–इन्द्र के समान पराक्रमी भौमासुर का वध कर इन्द्र के लघु भ्राता विष्णु नरकासुर के भवन को देखे। उसके खजाने को

प्राप्त कर श्रीकृष्ण विविध प्रकार के रत्नों, नाश न होने वाले धन को देखा। मणि, मुक्ता, प्रवाल तथा वैदूर्य मणि के ढेरों को देखे तथा मरकत मणि, चन्द्रकान्त मणि और हीरा के ढेरों को देखे। सुवर्ण के बने सात कुम्भ मद, अग्नि के समान चमकने वाले चन्द्रमा के समान प्रकाश करने वाले उसके पलँगों तथा बेशकीमती सिंहासनों को देखा और चन्द्रमा की किरणों के समान प्रकाश करने वाले सुवर्ण दण्ड से युक्त सुन्दर छत्र को देखा वह विशाल छत्र वर्षाकालीन मेघ के समान दिखाई पड़ रहा था। उसमें सुवर्ण की बनी चमकीली हजारों कड़ियाँ लगी थीं। हे राजन्! मैंने सुना है कि नरकासुर इस क्षत्र को वरुण के यहाँ से हर कर लाया था; नरकासुर के घर में जितना रत्न और अधिक धन श्रीकृष्ण ने देखा था। उतना रत्न-धन का संचय न तो राजा कुबेर के यहाँ था न इन्द्र के यहाँ न यम के यहाँ था और उतना धन न कहीं देखा गया और न सुना गया था। भौमासुर, निसुन्द तथा हयग्रीव के मारे जाने पर शेष बचे दानव जो कोष की रक्षा करते थे वे श्रीकृष्ण के योग्य जिसे जनार्दन चाहते ते बेशकीमती रात्नों और कन्याओं को उनके समीप ले आये।।१-१०।।

दैत्यों ने कहा कि ये विविध प्रकार के मणि और रत्नों को ग्रहण कीजिये, भयंकर रूप वाले हाथी जिन पर प्रबाल युक्त अंकुश हैं तथा सुवर्ण के रस्से लगे हैं विशाल होदे हैं, जिन पर तोमर आदि आयुध धरे हैं, जिन पर सुन्दर पताकायें लगी हैं और नाना प्रकार के सुन्दर अंकुश रखे हैं ऐसे बीस हजार हाथी और चालीस हजार हथिनियाँ हैं और अनेक देशों में उत्पन्न अठारह हजार उत्तम घोड़े हैं। गौवों में जितनी गायों को आपकी इच्छा हो उतनी गायें हे जनार्दन! हम लोग वृष्णि और अन्धकों के घर पर भेजवा देंगे और उनके बिछौनों तथा आसनों एवं इच्छानुसार बोलने वाले देखने में प्रिय लगने वाले पक्षियों और चन्दन, अगर तथा अगर काष्ठों को तथा तीनों लोकों में विख्यात जिस धन को आपने संग्राम द्वारा धर्मतः प्राप्त कर लिया है उन सबको हम लोग वृष्णि और अन्धकों के गृह पर भेजवा देंगे, देवता गन्धर्वों तथा यक्षों का जो धन था वह सभी नरक के घर में उपस्थित था। वैशम्पायनजी बोले

कि–उन सभी की परीक्षा कर तथा ग्रहण कर दानवों के द्वारा श्रीकृष्ण जी ने द्वारिकापुरी को भेजवा दिया। सुवर्ण की वर्षा करने वाले उस वरुण के छत्र को श्रीकृष्ण स्वयं लेकर गरुड़ पर चढ़ गये। इसके बाद साक्षात् मेघ के समान मूर्तिमान् पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ श्रेष्ठ मणि पर्वत को चले गये।।११-२०।।

वहाँ पर शीतल मन्द-सुगन्ध वायु बह रहा था और सुवर्ण के रंग के समान मणियों की विमल प्रभा सूर्य की प्रभा का तिरस्कार कर फैल रही थी। वहाँ मधुसूदन ने वैदूर्य मणि के समूहों को देखा और तोरण तथा पताका से युक्त द्वारों के शिखरों को देखा। सुवर्ण के चँदोवा वाले भवनों से सुशोभित वह मणि पर्वत, चमकते हुए विद्युत वाले मेघ के समान ज्ञात हो रहा था। वहाँ पर श्रेष्ठ सुवर्ण की कान्ति वाली गन्धर्व एवं देवता आदि की उन प्रिय कन्याओं को देखा। जिनको नरकासुर लाया था, जो पर्वत की कन्दरा में बन्द की गई थीं जिनकी चारों तरफ से रक्षा हो रही थी उन स्थूल श्रोणी वाली कन्याओं को देखा। जैसे देवियाँ काम वर्जित हो सुख से रहता हैं वैसे ही स्वर्ग के समान देश में अपराजित कन्यायें रहती थीं। वे सभी कन्यायें काषाय वस्त्र धारण किये थीं और नियतेन्द्रिय तथा एक वेणी वाली आर्थात् कुमारी थीं उन सबों ने श्रीकृष्ण को घेर लिया। वे श्रीकृष्ण के दर्शन की इच्छा से व्रतोपवास कर अपने शरीर को दुर्बल बना दी थीं, श्रीकृष्ण के पास जो सबों ने हाथ जोड़ा। नरकासुर, महासुर मुर, हयग्रीव तथा निसुन्द को मारा गया जानकर श्रीकृष्ण को घेर लीं। इन कन्याओं की रक्षा करने वाले वृद्ध सभी दानव हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण को प्रणाम किये।।२१-३०।।

वृषभ के समान नेत्र वाले श्रीकृष्ण को देखकर उन परम सुन्दर नारियों का यही संकल्प हुआ कि यही मेरे पति बनें। चन्द्रमा के समान श्रीकृष्ण के मुख को देखकर वे प्रसन्न हो गईं और हृदय से प्रसन्न हो महाबाहु श्रीकृष्ण से बोलीं कि जिस बात को वासुदेव भक्त सर्वभूतज्ञ, मतिमान् नारदजी कह गये थे वह बात आज सत्य हो गई। उन्होंने कहा था कि शंख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करने वाले नारायण विष्णु भौम नरक को मार कर तुम लोगों

के पति बनेंगे। जिनको बहुत पहले सुनी थीं उन अरिन्दम को अब हम लोग आँखों देख रही हैं सुन्दर और प्रियवार्ता है आज आप महात्मा के दर्शन से हम लोग कृतार्थ हो गईं। इन्द्र के छोटे भ्राता उन कन्याओं को सान्त्वना दिये और उन सभी कमलनेत्रियों को देखकर बोले कि तुम लोगों की बात सत्य होगी। केशव ने उनका उचित सत्कार कर और उनसे वर्तालाप कर कँहारों द्वारा ढोये जाने वाले डोलियों में बिठा कर ले चले। वायुवेग से चलने वाले हजारों किंकर डोली ढोये जाने के समय ऊँचे स्वर से सुन्दर जयघोष किये। उस पर्वतराज का जो परम पूजित शिखर था वह विमल सूर्य और चन्द्रमा के समान मणि तथा सुवर्ण के तोरणों से युक्त था। जो पक्षी और हाथियों से व्याप्त था। मृग, सर्प और वृक्षों से सेवित था, जो बानरों के समूहों से भरा था और जिसकी शिलाओं के पत्थर चिकने थे।।३१-४०।।

जो बारह सींग वाले भृगों, वराहों और रुरु मृगों से निरन्तर सेवित था जिसके ऊँचे शिखरों से झरनों का प्रपात हो रहा था जिसका शिखर अनेक प्रकार के द्रुमों से आच्छादित था। जो अनेक मृगों के गणों से मथित अत्यन्त अद्भुत और अचिन्त्य था जो चकोर और मयूरों से गुञ्जायमान था। ऐसे चमकते हुए शिखर को विष्णु ने दोनों भुजाओं से उखाड़ कर पक्षि श्रेष्ठ गरुड़ के ऊपर रख लिया। मणि पर्वत के शिखर तथा भार्या सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण को लेकर उड़ने वालों में श्रेष्ठ पक्षी गरुड़ लीला से ही उड़ने लगे। हिमालय पर्वत के शिखर के समान पक्षिराज गरुड़ बलपूर्वक पंखों के चलाने से दशों दिशाओं में पक्ष का शब्द फैलाने लगे। वायु वेग से चलने वाले गरुड़ जनार्दन के वश में रहकर पर्वत के शिखरों को टक्कर मारते और वृक्षों को उखाड़ते था विशाल मेघों को उड़ाते हुए चन्द्रमा और सूर्य के देश को लाँघ कर चलने लगे। वे मधुसूदन देवता तथा गन्धर्वों से सेवित मेरु पर्वत के शिखर पर जाकर देवताओं के सभी भवनों को देखा। हे नराधिप! विश्व, मरुत और साध्यों एवं अश्विनीकुमारों के शोभते हुए भवनों को लाँघ कर हे परंतप! हे अरिंदम! पुण्यतम स्वर्ग लोक चले गये वहाँ इन्द्र के भवन को प्राप्त कर जनार्दन उसमें प्रवेश कर गये।।४१-५०।।

वहाँ गरुड़ से उतर कर देवराज इन्द्र को देखा तब शतक्रतु इन्द्र ने उनका प्रेम से स्वागत किया। तब अच्युत ने अदिति के कुण्डलों को देकर नरश्रेष्ठ जनार्दन, भार्या-सहित देवश्रेष्ठ को प्रणाम किये। देवराज ने श्रीकृष्ण की पूजा की तथा रत्नों को देकर पुनः सत्कृत किये, इन्द्राणी ने उचित रीति से सत्यभामा का स्वागत किया। इसके पश्चात् इन्द्र और श्रीकृष्ण दोनों साथ ही महाबुद्धिमती देवमाता अदिति के भवन को गये। चारों ओर से अप्सराओं द्वारा उपासना की जाती हुई तप से युक्त महाभाग अदिति को दोनों महात्माओं ने देखा। इसके पश्चात् अदितिनन्दन इन्द्र ने दिव्य कुण्डलों को प्रसन्नता से दे दिया और शचीपति पुरन्दर ने अपनी माता को नमस्कार किया और श्रीकृष्ण को आगे कर संग्राम कर कुण्डल लाने की प्रशंसा की, अदिति ने स्नेह से दोनों पुत्रों का सम्मान तथा अभिनन्दन कर अनुकूल आशीर्वाद देकर वार्तालाप किया; इन्द्राणी और सत्यभामा परम प्रेम से युक्त होकर पूजनीया श्रेष्ठ देवी अदिति के शुभ चरणों को पकड़ा तब वे यशस्वीनी देवमाता अदिति ने प्रेम से आशीर्वाद दिया। जैसा चाहिये था वैसा जनार्दन से यह वचन बोलीं कि जैसे लोक पूजित देवराज इन्द्र सभी प्राणियों से अवध्य तथा अबाध्य हैं वैसे ही यह वरारोहा सत्यभामा भी होगी तथा सदा देखने में प्रिय लगने वाली होगी।।५१-६८।।

और स्त्रियों में उत्तम यह सत्यभामा सम्पूर्ण लोकों में विख्यात सुन्दर भाग्यशालिनी तथा स्थिर यौवन वाली मनोरमा होगी, इसके शरीर से दिव्य गन्ध निकला करेगा। हे श्रीकृष्ण! जब तक आप मनुष्य शरीर धारण किये रहोगे तब तक यह तुम्हारी वधू वृद्धा न होगी, इस प्रकार देवमाता अदिति ने महाबली श्रीकृष्ण का सत्कार किया। रत्नों से पूजित हो इन्द्र की आज्ञा से सत्यभामा सहित श्रीकृष्ण गरुड़ पर चढ़ कर देवर्षियों से पूजित देवताओं के क्रीड़ास्थल स्वर्ग की परिक्रमा करते हुए इन्द्र के क्रीड़ाथल नन्दन बन में देवताओं से पूजित दिव्य पारिजात पुष्प के वृक्ष को देखे जो नित्य पुष्पों को धारण करने वाला उपमा रहित दिव्य पुण्य गन्ध प्रकाशित करने वाला था। जिसके समीप जाने से सभी लोगों को अपने पूर्व जाति का स्मरण होने लगता

है, देवताओं के द्वारा सम्यक् प्रकार से सुरक्षित उस पारिजात वृक्ष को अमित पराक्रमशाली विष्णु ने एकाएक उखाड़ कर गरुड़ के ऊपर रख लिया फिर श्रीकृष्ण तथा सत्यभामा ने दिव्य अप्सराओं के समूह को देखा। सत्यभामा को पीछे बैठाये हुए श्रीकृष्ण जी दिव्य स्त्रियों से देखी जाती हुई उस द्वारकापुरी को वायु सेवित पथ द्वारा चले गये। देवराज इन्द्र इस बात को सुन श्रीकृष्ण के इस कर्म को मान्यता दिये और उन्हें कृतकर्मा कहे।।६१-७०।।

हे अरिन्दम! देवताओं से पूजित होते हुए सप्तर्षियों से प्रशंसित श्रीकृष्ण देवलोक से द्वारका को चले गये। देवराज से पूजित वे महाबाहु श्रीकृष्ण बहुत बड़े मार्ग अल्प मार्ग की भाँति पार कर यादवों की पुरी द्वारका को देखे। उस प्रकार के महान् कर्म को करके इन्द्र के छोटे भ्राता गरुड़ पर चल कर श्रीकृष्ण द्वारका को गये थे।।७१-७३।।



अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः।।६५।।

जनमेजयजी बोले–हे मुनिश्रेष्ठ मथुरा में श्रीकृष्ण के उत्पन्न होने पर जो-जो चरित्र श्रीकृष्ण ने किया उन्हें सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती है। विवाह कर द्वारका में निवास करते हुए श्रीकृष्ण के छवों ऐश्वर्य से युक्त चरित्र को कहिये क्योंकि श्रीकृष्ण के सभी चरित्र आपको अच्छी तरह विदित हैं। वैशम्पायनजी बोले–हे भरत कुलोत्पन्न जनमेजय! विवाहित श्रीकृष्ण के विचित्र चरित्र को सुनो जो ठीक उन्हीं के सदृश है। हे राजन्! रुक्मिणी से विवाह होने के पश्चात् महातेजस्वी प्रतापी वासुदेव रुक्मिणी देवी के साथ रैवतक पर्वत पर गये। रुक्मिणी के व्रत के अन्त में उनसे पूजन कराने के लिये तथा ब्राह्मणों को भोजन कराने के लिये मधुसूदन स्वयं रैवतक पर्वत पर गये थे। नारद की आज्ञा से श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गये पुत्र तथा पद में भाई लगेन वाले कितने ही कुमार वहाँ प्रसन्न होकर गये थे। हे राजन्! बुद्धिमान् श्रीकृष्ण के अनुरूप ही परम उत्तम शृंगार कर उनकी सोलह हजार पत्नियाँ भी वहाँ गई थीं। इसके पश्चात् वहाँ पर ब्राह्मणों तथा याचकों को एवं नित्य धर्म पर तत्पर

इष्ट वचन बोलने वाले बन्दियों को इच्छानुसार भोजन करा उनके इच्छित पदार्थों को दिया। हे कुरुनन्दन! योनि सम्बन्ध वाले, अध्ययन सम्बन्ध वाले तथा यज्ञ सम्बन्ध वाले शुद्ध ब्राह्मणों को उनके मन चाहे पदार्थों से तृप्त कर सज्जनों की गति सबके इष्ट भक्तवत्सल श्रीकृष्ण ने अपने जाति के लोगों को तृप्त किया।।१-१०।।

व्रत समाप्त हो जाने पर भीष्मक की पुत्री, अपनी प्रिय पत्नी रुक्मिणी का भगवान् श्रीकृष्ण ने बड़ा आदर किया। रुक्मिणी के साथ आदर से बैठे श्रीकृष्ण के पास मुनि नारद जी आये। इन्द्र के लघु भ्राता अप्रेमयात्मा केशव ने आये हुए नारद जी का शास्त्र की विधि से पूजन किया। हे भरतवंशी! सज्जनों के पूज्यतम नारद जी श्रीकृष्ण से पूजित हो पारिजात वृक्ष का पुष्प श्रीकृष्णजी को दिये। हे नरश्रेष्ठ ! वृक्षराज पारिजात के उस पुष्प को हरि ने रुक्मिणी को दे दिया, भोजराज की पुत्री रुक्मिणी श्रीकृष्ण के पास ही बैठी थीं। काम की अग्नि को काष्ठ के समान उत्पन्न करने वाली कमलनेत्री अनिन्दिता रुक्मिणी ने उस पुष्प को ग्रहण कर श्रीकृष्ण के इशारे से शिर में लगा लिया। त्रैलोक्य के रूप भण्डार उस देव पुष्प को धारण करने से नारायण के मन को हरण करने वाली भीष्मक की पुत्री उस समय दूने रूप से शोभा पाने लगीं। ब्रह्मा के पुत्र नारद मुनि उस समय रुक्मिणी से बोले-हे पतिव्रते ! हे देवी ! तुम्हारे योग्य यह एक ही पुष्प है। हे व्रत धारिणी ! तुम्हारे धारण करने से यह पुष्प अच्छी तरह विभूषित हो गया, हमारे मत से इस पुष्प को धारण करने से तुम अत्यन्त माननीया हो गई। हे पति से प्रेम करने वाली कामिनी! कल्याण के गुण से युक्त यह पुष्प कभी कुम्हलाता नहीं है दिन पर दिन और खिलता जाता है।।११-२०।।

हे बोलने वाली नारियों में श्रेष्ठ ! काल का ज्ञान रखने वाली गुण युक्ते! यह पुष्प एक वर्ष पर्यन्त इप्सित सुगन्ध को देता है और हे देवि ! इच्छा करने पर यह ठण्ढी और गर्मी को भी देता है तथा मन से चाहे रसों को प्रदान करता है एवं वरों को भी देता है। हे वरवर्णिनी ! इसका सेवन करने से यह सौभाग्य को देता है, प्रीति बढ़ाने वाले इच्छित गन्धों को भी प्रकट करता है।

हे देवि! तुम जिन-जिन पुष्पों की अभिलाषा करोगी उन-उन पुष्पों को यह वृक्षराज का पुष्प देगा। हे शुभे ! इसको सदा धारण करते रहने से यह कुमति नहीं करने देता है तथा हे धर्मिष्ठे ! यही पुत्र एवं ऐश्वर्य भी देता है। जिन-जिन रंगों की इच्छा करोगी उन सभी रंगों को यह धारण कर लेगा छोटा या बड़ा जैसा चाहोगी वैसा ही यह हो जायेगा। यह दुर्गन्धों को हरण कर सुगन्ध को बढ़ायेगा हे कमलनेत्रे! यह रात्रिकाल के अंधेरे में दीपक का भी काम करेगा। यह चिन्तन मात्र से सन्तान, हार, माला, पुष्पों तथा वस्त्रों को देगा और न गिरने वाले प्रमुख पुष्प के महलों को भी बना देगा। इसको धारण करने से देवताओं की भाँति इच्छा करने पर ही तुम्हें भूख, प्यास, खिन्नता तथा बुढ़ापा होगी। इच्छा करने पर तुम्हारे अनुकूल गीतों को यह गाया करेगा तथा तुम्हें अच्छे लगने वाले मधुर बाजों को बजाया करेगा।।२१-३०।।

हे देवि ! सम्वत्सर के पूर्ण हो जाने पर यह पुष्प तुम्हारे पास से वृक्षश्रेष्ठ पारिजात वृक्ष पर चला जायेगा। हे सुप्रभे ! तुम्हारा कल्याण हो यह पारिजात का स्वभाव देवताओं के सत्कार के लिये स्वभावतः ब्रह्मा ने बनाया है। हे सुप्रभे! इस पुष्प को शंकर जी की प्रिया हिमालय की पुत्री ईश्वरी सदा धारण किये रहती हैं। अदिति, पौलोमी, इन्द्र में प्रीति रखने वाली शची, देवमाता सावित्री तथा उचित सभी गुणों से युक्त लक्ष्मी एवं अन्य देवपत्नियाँ, देवता और वसु देवता आदि सभी देव इसको सम्वत्सर पर्यन्त धारण किये रहते हैं। हे भोजनन्दिनी ! आज मैंने सोलह हजार श्रीकृष्ण की स्त्रियों में तुमको श्रीकृष्ण की सबसे अधिक प्यारी स्त्री समझा। हे सर्वेश्वरप्रिये यद्यपि तुम्हारी सौतें सभी गुणों से युक्त हैं तथापि उन्हें आज तुमने हे भामिनि! पुष्प धारण कर तिरस्कार के अभिषेक से अभिषिक्त कर दिया। मधु को मारने वाले श्रीकृष्ण ने जो यह पारिजात का पुष्प तुमको दिया है इससे आज तुम्हारा सौभाग्य उज्वल हो गया तथा तुम्हारा यश भी अमिट हो गया। हे वरवर्णिनि! सत्राजित की पुत्री सत्यभामा देवी जो अपने सौभाग्य को बढ़ा-चढ़ा समझती थी तथा अपने को सुन्दरी मानती थी वह आज दुःखी हो जायेगी। साम्ब की माता जाम्बवती, गान्धारी तथा श्रीकृष्ण की अन्य पत्नियाँ जो सौभाग्य की आकांक्षा से उद्योग

किया करती थीं वे सब आज निस्पृह होकर बैठ जायेंगी।।३१-४०।।

हे देवि! आज तुम्हारा सौभाग्य रूपी यह एक विजयी रथ ऐसा तैयार हो गया है जो हजारों मनोरथ रूपी रथों से भी दुर्जय है। हे सबको शोभने वाली कामिनि! भोजकन्यके! आज तुमको मैं निश्चित रूप से श्रीकृष्ण की दूसरी आत्मा समझ रहा हूँ। हे हरिप्रिये! तीनों लोकों का रत्न स्वरूप पुष्प जो अच्युत ने तुमको दिया है, इससे तुमने प्राण से भी अधिक प्रिय पदार्थ पा लिया है। हे नराधिप! जिस समय नारद जी ने इस प्रकार के तथ्य वाक्यों को कहा उस समय सत्यभामा द्वारा भेजी गई दूतिकायें वहाँ खड़ी होकर सब बातें सुन रही थीं। हे विशाम्पते! सत्यभामा की दूतिकाओं तथा श्रीकृष्ण की अन्य देवी पत्नियों की दूतिकाओं को देख कर ही विशेष रूप से नारद जी ने इन बातों को कहा था। यह सब सम्पूर्ण बातें दूतिकाओं से सुनकर विष्णु के अन्तःपुर में हलचल मच गई। इस छिपाने योग्य बात को एक दूसरे के द्वारा सभी श्रीकृष्ण की पत्नियाँ सुनकर इस रुक्मिणी के अत्यन्त मान्यता पर मंत्रणा करने लगीं अर्थात् विचार करने लगीं। प्रायः सभी दामोदर की स्त्रियाँ प्रसन्न हो कहने लगीं कि, रुक्मिणी हम सबसे पहले आई हैं, जेठी हैं तथा लड़का वाली हैं इसलिये माननीया हैं। अन्य सौतों ने रुक्मिणी के सौभाग्य रूप गुणोदय को सुनकर डाह नहीं किया पर अतुल तेजस्वी विष्णु की सदा प्रिया, रूप-यौवन से सम्पन्न अपने सौभाग्य पर गर्व रखने वाली अभिमानिनी सत्यभामा देवी यह सब सुनकर ईर्ष्या के वशीभूत हो गइँ।।४१-५०।।

वे सुन्दर हँसी वाली सत्यभामा अपने पीले वस्त्रों को उठा कर फेंकने लगीं उन्होंने श्वेत वस्त्र धारण कर लिया, वे रोष भरे चित्त से काष्ट द्वारा बढ़ी हुई अग्नि की भाँति शोभा पाने लगीं। ईर्ष्या से उत्पन्न बढ़ती हुई अग्नि से जलती हुई वे प्रभा से हीन ज्ञात होने लगीं, क्रोधित हो एकान्त स्थित कोपभवन में जाकर छिप गईं जैसे रात्रि काल में तारा जल वाले मेघ से छिप जाता है। श्रीकृष्ण को रोष जनाने के लिये रोष चिह्न बर्फ और चन्द्रमा की भाँति श्वेत रेशमी साड़ी को शिर पर बाँध तथा ललाट पर गीला लाल चन्दन का लेप कर

बैठ गईं और बार-बार उस बात का स्मरण कर रोष में भर कर शिर को कँपाती हुई शय्या पर रखी हुई बड़ी तकियों और आभूषणों को झटक दीं और लटकती वेणी को समेट कर बाँध लीं। वह दूतिकाओं में चतुर दूतिकाओं द्वारा (यह बिना कारण का क्रोध त्यागिये) ऐसा समझाई जाने वाली वे सत्यभामा अपनी भृकुटि को नीचे किये लम्बी-लम्बी श्वासें लेकर अपने मुखकमल को खरोचने लगीं।।५१-५५।।



अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः।।६६।।

वैशम्पायनजी बोले कि-नारद मुनि बैठे हैं ऐसा समझ कर सभी बातों को जानने वाले अप्रमेयात्मा केशव रुक्मिणी के समीप से किसी बहाने निकल आये। वे शीघ्रता से विश्वकर्मा द्वारा रैवतक पर्वत पर बनाये गये सत्यभामा के महल में चले गये। वे विष्णु प्राणों से भी प्यारी अभिमान वाली अपनी इष्टा सत्राजित की पुत्री सत्यभामा का पता लगाने के लिये धीरे-धीरे महल में प्रवेश किये। सत्यभामा अवश्य रुष्ट हुई होगी ऐसी कल्पना करते हुए स्नेह के कारण डरते-डरते धीरे से मधुसूदन महल में गये। नारदजी की सेवे के लिये प्रद्युम्न को नियुक्त कर तथा सेवक से "दरवाजे पर खड़े रहो" ऐसा कहकर प्रवेश किये थे। उस समय उन्होंने दूर से ही अपनी प्रिया को कोपभवन में दासी की भाँति क्रोध से बार-बार लम्बी श्वास लेती हुई देखा। अपनी अँगुलियों से पकड़े हुए कमल को मुख कमल में सटाकर (यह मेरी सवत रुक्मिणी हमसे भी अधिक सौभाग्य प्राप्त कर ली इस आश्चर्य से) श्वास लेकर बार-बार हँसती हुई। हिलते हुए पैर की अँगुलियों से पृथ्वी को खरोचती हुई अपने मुँह को पीठ की ओर टेढ़ा कर बार-बार विचार करती हुई। सुन्दर अङ्गों वाली कमलनेत्री अपनी पत्नी को दाहिने कर-कमल पर मुखकमल रखकर ध्यान करती हुई। दासी के हाथ से गीले प्रशंसनीय चन्दन ग्रहण कर तथा उससे हृदय को प्रसन्न कर निर्दय भाव से पुनः फेंकती हुई।।१-१०।।

पलँग से उठ-उठ कर बार-बार गिरती हुई सत्यभामा को देखा तथा

अपनी प्रिया की इन चेष्टाओं एवं अन्य चेष्टाओं को भी हरि ने देखा। जिस समय सत्यभामा ने अपने मुख को श्वेत वस्त्र से ढक कर तकिये पर रखा उसी समय जनार्दन वहाँ जाकर दासियों से अपने आने की बात न कहने के लिये कह कर सशंकित हो चुपके से सत्यभामा के समीप पृष्ठभाग की तरफ चले गये और पास में ही खड़े होकर पंखा ग्रहण कर धीरे-धीरे वायु करने लगे और मुस्कुराये। वे श्रीकृष्ण पारिजात के पुष्प से सुवासित थे, वे भगवान् मनुष्यों द्वारा दुर्लभ गन्ध को धारण किये थे। तब ऐसे अद्भुत सुगन्ध को सूँघ कर सत्यभामा विस्मित हो मुख को खोल दीं और बोलीं कि, यह क्या? अर्थात् ऐसा अद्भुत सुगन्ध कहाँ से आ रहा है। सुन्दर हास्य वाली वह सत्यभामा उठकर पृष्ठभाग की ओर देखती हुई दासियों से पूछीं कि यह सुगन्ध कहाँ से आ रहा है? इस प्रकार से पूछी गई दासियाँ घुटनों को पृथ्वी पर टेक नीचे मुख कर हाथ जोड़ रह गईं अर्थात् कुछ भी उत्तर न दे सकीं। गन्ध के आश्रय को न देख कर तर्क करने लगीं कि क्या इस गन्ध को पृथ्वी छोड़ रही है? फिर तर्क किया कि पृथ्वी कैसे इतने अच्छे सुगन्ध को छोड़ सकती है, यह बात निश्चित नहीं हो रही है। यह सुगन्ध कहाँ से आ रहा है ऐसा सोचती हुई चारों ओर देखने लगीं तो एकाएक लोकभावन श्रीकृष्ण को देखीं।।११-२०।।

सत्यभामा 'यह बात है'' सहसा ऐसा कहीं; इसके बात आँसुओं से व्याप्त नेत्रों वाली और कुछ न कह सकीं; वह प्रणय से युक्त हो मानों न जानने वाले क्रोध से भर गई। वे फड़कते हुए सुन्दर ओष्ठों वाली लम्बी श्वास लेकर एक क्षण नीचे मुख कर लीं फिर दूसरी तरफ मुख फेर लीं। अपने भृकुटियों को टेढ़ी किये हुई तथा अपने हाथ पर मुख को रखी हुई अपनी पत्नी सत्यभामा से हरि व्यंग्य करते हुए बोले कि, शोभ तो रही हो। कमल और पलाश के पत्ते से जिस प्रकार ओस के कण गिरते हैं वैसे ही सत्यभामा के नेत्रों से प्रणय के कोप से उत्पन्न जल गिर रहा था। जिस समय नेत्र से निकल कर जल मुखकमल से होकर गिरा उस समय कमलनेत्र श्रीकृष्ण बड़ी शीघ्रता से उस जल को अपने हाथों पर ले लिये। श्रीवत्स चिह्न को धारण करने वाले

कमलनेत्र देव श्रीकृष्ण हृदय पर गिरते हुए अपनी प्रिया के नयन जल को पोंछ कर यह बोले–हे कृष्णकमल के समान नेत्रों वाली क्रोधशीले सुन्दरि! जैसे अश्वेत कमलों से जल गिरता है वैसे तुम्हारे नयनों से जल किस लिये गिर रहा है? हे मनोहरे! प्रातःकालीन पूर्ण चन्द्रमा की तथा मध्याह्न काल के कमल की क्षीण शोभा को तुम्हारा मुँह क्यों धारण कर रहा है? इससे तो तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त ही उदास हो गया है। हे सुश्रोणि! महाशोभने वाले पीले-लाल वस्त्रों को तुम क्यों नहीं पहनती हो? क्यो श्वेत वस्त्र को धारण की हो। यह शोभा देने वाले पीले और लाल वस्त्र तुमको बहुत अच्छे लगते थे (अब क्या हो गया?) सौभाग्यवती स्त्रियों को पूजा के समय में ही श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिये इससे अन्य समय में श्वेत वस्त्र पहनना निषेध है।।२१-३०।।

हे सुन्दर शरीर वाली! तुम शरीर पर आभूषणों को क्यों नहीं धारण की हो हे अवरवर्णिनी! अर्थात् मटमैले रंग की कान्ति को धारण करने वाली! तुम्हारा वक्षस्थल आँसुओं से व्याप्त क्यों है? हे प्रियदर्शने! श्वेत रंग के एक वस्त्र से तुम्हारा रूप अप्रिय हो गया है, तुम ललाट पर सरस प्रिय सुगन्धित चन्दन क्यों लगा ली हो? हे हृदय को प्रिय लगने वाली आयतापाङ्गि! किस कारण से तुम्हारे मुख की प्रभा क्षीण हो गई है? यह बातें हमारे सम्बन्ध में कर रही हो? हे प्रिये! इससे तो मेरे मन को ग्लानि पहुँचा रही हो। चन्दन का रस तुम्हारे कपोलों से प्रेम करने की भाँति बह रहा है, यह पत्रलेखा की सौत बन गया है पर विशेष नहीं शोभता है। रत्नजटित अभूषणों से रहित तुम्हारा गला वैसे ही नहीं शोभता है कि, जैसे ग्रह और नक्षत्रों से रहित शरद् काल का आकाश नहीं शोभता है। पूर्णिमा के चन्द्रमा के साथ सौत की भाँति ईर्ष्या करने वाले, बहुत बोलने वाले तथा कमल के समान गन्ध छोड़ने वाले मुख से आज हमसे क्यों नहीं बोल रही हो? तुम आधी आँख से भी हमको क्यों नहीं देख रही हो और क्यों लम्बे श्वास के साथ काजल से मिश्रित मलिन अश्रुबिन्दुओं को छोड़ रही हो? हे कृष्ण कमल के समान श्यामे! हे मनस्विनि! अब रोना बन्द कर दो, मुख से द्वेष करने वाले अंजन से मलिन आँसुओं को मत गिराओ। जगत् में विख्यात जब मैं तुम्हारा किंकर विद्यमान हूँ तब हे

वरवर्णिनि! तुमने हमसे पहले की भाँति अपने दुःख को क्यों नहीं कहती हो? हे भामिनि! हे देवि! मैंने तुम्हारा कौन सा विरोध किया है जिससे कि, हे सुन्दरि! तुम अपनी आत्मा को अत्यन्त कष्ट दे रही हो।।३१-४०।।

मन से, कर्म से तथा वचन से तुम्हारे प्रेम को हे सुन्दर अंगों वाली! कभी नहीं तोड़ा, सदा तुम्हारी सभी आज्ञाओं का पालन करता आया यह मैं सत्य ही कह रहा हूँ। हे शोभने! बहुत मान करने वाली मान के योग्य सभी स्त्रियों में तुमको छोड़कर और किसी का मैं बहुत आदर नहीं करता न और किसी से इतना स्नेह करता हूँ। मरने के बाद भी मेरा प्रेम तुम्हारे ऊपर बना रहेगा हे देव-कन्या की उपमा वाली! इस बात को बिल्कुल निश्चित जानो। हे कमल कोश की प्रभा वाली! जैसे पृथ्वी में क्षमा आदि गुण और आकाश में शब्द आदि गुण निश्चित रूप से रहते हैं वैसे ही मेरा प्रेम तुम्हारे में निश्चित रूप से है। जिस प्रकार जलते हुए अग्नि में दाहकता शक्ति तथा सूर्य में प्रभा एवं चन्द्रमा में चाँदनी निरन्तर विद्यमान रहती है उसी प्रकार मेरा प्रेम तुम्हारे में निरन्तर विद्यमान रहता है। इस प्रकार इच्छा के अनुकूल बोलने वाले जनार्दन से सुभगा सत्यभामा अपने नेत्रों से आँसू पोंछकर बोलीं। हे प्रभो! तुम मेरे हो यह बात मेरे मन में बराबर से थी पर आज के काण्ड से यह ज्ञात हुआ कि मेरे प्रति तुम्हारे अन्दर साधारण प्रेम है, मैं गई-गुजरी हो गई। मैं पहले यह नहीं समझती थी कि समय का परिवर्तन होता है परन्तु आज मैं सभी बातें समझ गई, इस संसार की सभी बातें अनिश्चित हैं। आज मैं तर्कना द्वारा निश्चित कर ली हूँ कि, जीते जी मेरे दूसरा जन्म हुआ है अर्थात् मै दूसरी हो गई और आप भी दूसरे हो गये यह सर्वथा सत्य है, इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ? हे अच्युत! मैं तुम्हारे हृदय को जान ली। मैं देखती हूँ कि आप केवल वाणी द्वारा ही प्रेम दर्शाते हैं, मेरे ऊपर आपका बनावटी प्रेम है और रुक्मिणी में आपका बनावटी प्रेम नहीं है।।४१-५०।।

हे पुरुषोत्तम ! मुझ सेविका को सर्वथा सीधी स्वभाव की समझ कर आप कपट करने वाले अपमान कर रहे हैं अतः कपटी हैं। आपके अमिट प्रेम को, जो देखने योग्य था देखा और जो सुनने योग्य था उसे सुना भी और

आपसे प्रेम करने का जो फल हुआ उसे भी देखा। हे पुरुषोत्तम! अब यदि आप मुझे अनुग्रह के योग्य समझते हों तो मुझे आज्ञा दीजिये मैंने तप करने का परम निश्चय कर लिया है पुरुषोत्तम ! मैं प्रण कर निश्चय कर ली हूँ कि मैं तपस्या करूँ यदि आप मुझे अपने अनुग्रह के योग्य समझते हों तो मुझे तप की आज्ञा प्रदान कीजिये। क्योंकि पति की आज्ञा से किया गया व्रत या तप फलदायक होता है और पति की आज्ञा के बिना वह निष्फल होता है। यह बात इसी प्रकार पुनः कह कर सती सुन्दरी सत्यभामा नयनों से जल बहाने लगीं इसके बाद पवित्र हास्य वाली सुन्दरी सत्यभामा हरि के पीताम्बर को पकड़ कर तथा अपने मुख पर अंचल डाल कर रुदन करने लगीं।।५१-५५।।



अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः।।६७।।

वैशम्पायनजी बोले–हे भरत कुलोत्पन्न! प्रणय से कुपित अभिमान करने वाली सती सत्यभामा से श्रीकृष्ण बोले। श्रीकृष्णजी बोले हे कमल लोचने! वह कौन सा ऐसा कारण है कि जिससे तुम अत्यन्त व्याकुल हो? यह तुम्हारा शोक मेरे अङ्गों को मानों जलाये दे रहा है। हे सर्वाङ्ग शेभने! यदि मेरा विनाश न चाहती हो और यदि मुझ भक्त तुम्हारे पति के द्वारा वह कारण सुनने योग्य हो तो कहो तुम्हें मेरे प्राणों की शपथ है। सत्य व्रत में स्थित अपने भर्ता श्रीकृष्ण से सत्यभामा नीचे मुख कर अश्रु द्वारा गद्गद वाणी से बोलीं। हे मानद! मेरे सौभाग्य को तुमने ही पहले स्थापित किया था हे कमलनेत्र केशिनाशन! जगत् में जिसकी ख्याति चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। तुम्हारी प्रेमाधिक्यता से गर्वित हो मैं शिर ऊँचा कर इस बात को दृढ़ता से घोषित कर दी थी कि सम्पूर्ण रानियों में मैं सबसे अधिक प्रेम-पात्रा हूँ। वही मैं, आज दूतिकाओं से सत्य बात सुन कर समझ ली कि, सौतों के बीच तथा मनुष्यों के मध्य हँसी के योग्य हो गई। जो पारिजात-पुष्प नारदजी ने आपको दिया था उसको अपने प्रिय जन को दे दिया और मुझे त्याग दिया। आपने पुष्प रत्न देकर रुक्मिणी के हृदय में अपना प्रेम और बहुमान्यता प्रकाशित किया और

उसे यह बतलाया कि सबसे अधिक प्रेम तुम्हीं में है। आपके सामने प्रिया की नारदजी ने प्रशंसा की तब उस प्रशंसा को आप सुनते रहे और बड़े प्रसन्न हुए, यह सब सत्य है।।१-१०।।

आपके समझ यदि वह जन नारद जी के द्वारा प्रशंसा का पात्र है तो उसके पीछे मुझ दुर्भाग्य जन का नाम क्यों लिया गया? हे प्रभो! यदि आपको पहले प्रेम का रस देकर पीछे पश्चाताप देना हो तो आप मुझ पर प्रसन्न हो मुझे तप करने की आज्ञा दीजिये। हे कमल नेत्र! मैं स्वप्न में भी इस बात पर विश्वास नहीं करती थी कि आपका प्रेम अन्य किसी स्त्री में होगा पर आपके देखते हुए जो घटना घटी उसे सुन कर सत्यता ज्ञात हो गई। हे देव! अतुल तेजस्वी नारद मुनि की इच्छा रुक्मिणी की स्तुति करने की थी सो किया पर मुझे क्रोध इस बात पर है कि, वह स्तुति आपके सामने हुई। मान के लिये जीना चाहिये, ऐसा सज्जन पुरुषों ने कहा है, तो इस प्रकार मान रहित होकर मैं जीना नहीं चाहती। जिससे मेरी रक्षा होती थी आज उससे भय उत्पन्न हो गया, स्वभावत: जो मेरी रक्षा करते थे आज वे मेरी रक्षा करना छोड़ दिये। हे बिभो ! तुमसे त्याग दी गई, हा! मैं किस गति को प्राप्त होऊँगी, मुझे यह निश्चय हो रहा है कि मैं चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श बिना कुमुदुनी की भाँति मुरझा जाऊँगी अथवा अज की पत्नी कुमुदुनी की भाँति आपके सामने ही मर जाऊँगी। मैं मोह में पड़ कर समर्थशाली देवताओं का क्या बिगाड़ा था कि जिससे हे मानद! आपकी प्रिया होते हुए अप्रिया हो गई। बसन्त के चित्र-विचित्र पुष्पों से सजे रैवतक पर्वत की प्रिया के पश्चात् अप्रिया होकर फिर कैसे देखूँगी? यह दुर्भाग्य द्वेष करने योग्य सती, कोकिल के ध्वनि से गूँजित पुष्प के गन्ध को उड़ाने वाले पवित्र वायु का किस प्रकार सेवन करेगी?।।११-२०।।

तुम्हारी गोद में बैठ कर समुद्र के जल में मैंने क्रीड़ा की थी सो अब तुमसे परित्यक्ता होकर समुद्र को भी देखूँगी। पहले आप कहते थे कि, हे सत्राजित पुत्री! तुमसे बढ़ कर मेरी कोई प्रिया नहीं है ऐसा प्रेम करने वाला मुझको समझो, यह कहना आपका कहाँ गया? जब जीते जी यह हालत है तो

मरने के बाद कौन स्मरण करता है। जो मेरी सास नन्दिनी हमको बहुत मान की दृष्टि से देखती थीं वह अब तुम्हारे द्वारा तिरस्कार कर देने पर मुझ रानी को निश्चय दुर्भाग्य-पीड़िता समझेंगी। हे मानद! मेरे सुन्दर और गूढ़ प्रेम से क्या लाभ? जो सबके समान भी आप मुझे न देखें। हे अरिन्दम! मुझे यह पहले नहीं ज्ञात था कि तुम कपटी और धूर्त हो, आज उस सवत के पक्ष को लेने से मैंने समझ लिया कि तुम मनचले और हमारे जैसे प्रेमी जन को ठग लेने वाले हो। हे देव! आप बोलने और अपने आकार-प्रकार तथा इशारों से अपने को छिपाने का प्रयत्न करते थे पर हे चौर! सवत का पक्ष लेने से आज ज्ञात हो गया कि तुम मुझसे केवल वाणी मात्र से प्यार करते हो अतः तुम शठ हो। इस प्रकार ईर्ष्या के वश में प्राप्त अभिमान करने वाली सत्राजित की पुत्री से सान्त्वना पूर्वक श्रीकृष्णजी बोले। हे कमल नेत्रे! हे प्राणेश्वरी! हे प्रिये! ऐसा मत कहो, इस विषय में बहुत कहने से क्या मुझको अपना समझो। हे देवि! उस पारिजात के कुसुम को मुझे प्रसन्न करने के लिये बिना क्लेश कर्म करने वाले नारद जी ने चतुरता और अनुरोध से मेरे सामने उसको दिया इसमें संशय नहीं है अर्थात् रुक्मिणी को देने के लिये ही मुझको दिया था, तो मैंने उसे दे दिया है पवित्र हँसी वाली ! इस मेरे एक अपराध को क्षमा करो और प्रसन्न हो जाओ।।२१-३०।।

हे अति कोपने ! यदि तुम पारिजात के पुष्प को चाहती हो तो हे सुश्रोणि ! मैं ला दूँगा यह मैं सत्य कह रहा हूँ। वृक्षराज पारिजात को मैं इन्द्रलोक से लाकर तुम्हारे महल के आँगन में लगा दूँगा, जब तक तुम चाहोगी तब तक वह रहेगा। हरि द्वारा इस प्रकार कहने पर हरि की प्रिया सत्यभामा बोलीं कि हे अच्युत ! यदि आपके कथनानुसार वह वृक्ष यहाँ लाया जा सकता हो तो यह क्रोध शान्त हो जाय और मेरे गुणों की बहुत प्रशंसा हो और हे अधोक्षज ! मैं सौभाग्यवती स्त्रियों में आदरणीय हो जाऊँ। जगत् की उत्पत्ति के कारण इसको मनाने का यह श्रेष्ठ उपाय है ऐसा समझ कर सत्यभामा से "ऐसा ही होगा" कह दिये। हे समितिंजय ! श्रीकृष्णजी के ऐसा कहने पर कंस को मारने वाले श्रीकृष्ण की प्रिया सज्जनों की इष्ट सत्यभामा

मान गईं। इसके पश्चात् सर्वभावन सर्वेश जगत् के नाथ श्रीकृष्ण ने स्नान किया तथा सज्जनों की मनसा पूर्ण करने वाले हरि ने स्नान के बाद के सभी आवश्यक कर्मों को किया। हे राजन्! स्नान किये देव श्रीकृष्ण ने देवर्षि नारद का ध्यान किया तो स्नान के अन्त में नारन मुनि समुद्र तट पर श्रीकृष्ण के समीप चले आये। हे राजन्! स्नान किये देव श्रीकृष्ण ने देवर्षि नारद का ध्यान किया तो स्नान के अन्त में नारद मुनि समुद्र तट पर श्रीकृष्ण के समीप चले आये। हे राजन्! सज्जनों की गति धर्मात्मा श्रीकृष्णजी सत्यभामा के साथ उन आये हुए मुनि का शास्त्र की विधि से पूजन किया। सत्राजित की पुत्री ने स्वयं मुनि के चरणों को धोया उस समय देव श्रीकृष्ण ने सुवर्ण के पात्र से जल दिया था।।३१-४०।।

आत्मा को वश में रखने वाले जगत् गुरु श्रीकृष्ण सुख से बैंठने के लिये मुनि को आसन देकर उनके भोजन के लिये खीर बनवाने लगे। लोक कर्त्ता श्रीकृष्णजी सत्कार कर उन्हें खाने के लिये खीर दिये, वक्ताओं में श्रेष्ठ उदार बुद्धि वाले मुनि परम श्रद्धा पूर्वक खीर का भोजन किये। भोजन से तृप्त होने के पश्चात् आचमन कर मुनि ने श्रीकृष्णजी को आशीर्वाद दिये, उन आशीर्वादों को केशव ने प्रसन्न मन से ग्रहण कर लिया। इसके पश्चात् प्रणाम करती हुई कमल नेत्री सत्यभामा को मुनि ने अपना दाहिना हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया कि हे देवि। जिस प्रकार इस समय तुम पति की प्यारी हो इसी प्रकार आगे भी पतिव्रता होओ और मेरे तप के बल से पति की प्यारी होओ। मुनि के इस प्रकार कहने पर हे नराधिप! हरि की प्रिया सत्यभामा महान् हर्ष से युक्त हो खड़ी हो गईं। अमित पराक्रमी बुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने भी मुनिवर से आज्ञा प्राप्त कर देव-ब्राह्मण से बचे अन्न का भोजन किया। हे भारत! इसके पश्चात् आवश्यक कार्यों को कर सत्यभामा भी प्रसाद पाने के लिये प्रसन्नता पूर्वक महल के अन्दर चली गईं। फिर श्रीकृष्ण की आज्ञा से अन्तःपुर से आ महात्मा को नमस्कार कर श्रीकृष्ण के पास खड़ी हो गईं। इसके बाद क्षण मात्र मुनि रुक कर श्रीकृष्ण से बोले कि हे अधोक्षज! मैं आपसे पूछता हूँ कि मैं इन्द्र लोक को जाऊँ?।।४१-५०।।

आज इन्द्र लोक में ईशान देव महेश्वर को नमस्कार कर देवता, गन्धर्व तथा अप्सराओं के गण गान करेंगे। हे प्रभो! इन्द्र के भवन में महीने-महीने यह उत्सव शंकर जी की पूजा के लिये होता है जिसमें गन्धर्व लोगों का नाच भी होता है। पर्वत-घाती इन्द्र द्वारा भक्ति से किये गये उस उत्सव को उमा के सहित प्रमथ नामक गण के साथ देव-देव शंकर जी छिपे रूप से देखते हैं। हे महा तेजस्विन्! आप का कल्याण हो, मुझे इन्द्र ने उत्सव में सम्मिलित होने के लिये कल निमन्त्रण दिया था महात्मा वृक्षराज का पुष्प भी दिया था। जिसको आपके लिये स्वर्ग से मैं लाया था यह वृक्षराज पारिजात का पुष्प देवताओं को भोगने योग्य है। नित्य प्रति पूजा करने से वह सौभाग्य को बढ़ाता है इसीलिये हे कमलनेत्र! इन्द्राणी उसकी बराबर सेवा-पूजा किया करती हैं। नित्य धर्म करने वाले कश्यप और अदिति ने पुण्य नामक व्रत करने के लिये इस महाद्रुम पारिजात की रचना की थी। पहले एक समय में अदिति ने महा तेजस्वी कश्यप को अपनी सेवा से प्रसन्न किया तो तपोनिधि मरीचि-पुत्र कश्यप ने कहा कि वर माँगो। तब उस सुभगा अदिति ने कहा कि, हे मुनिसत्तम! जिससे मैं इच्छानुसार सभी आभूषणों से विभूषित हो जाऊँ। हे तपोधन! मुझे इच्छानुसार गीत और नृत्य हो जाय तथा हे तपोनिधे ! मैं सदा कुमारी की भाँति बनी रहूँ और रजोगुण रहित एवं शोक रहित रहूँ तथा धर्मशीला होऊँ और पति की सेवा में सदा मेरी बुद्धि तत्पर रहे ऐसा वर दीजिये।।५१-६०।।

तब यह सब सुन कर कश्यम ऋषि ने अदिति का प्रिय करने की इच्छा से सब इच्छित पदार्थों को देने वाले और नित्य सुगन्धित पुष्पों से आच्छादित पारिजात वृक्ष की रचना की थी। वह तीन शाखाओं से युक्त सदा दर्शनीय तथा सभी प्राणियों के मन का हरण करने वाला है वही एक ऐसा पुष्प का महा वृक्ष है कि जिसमें सभी प्रकार के पुष्प दिखाई देते हैं। इस प्रकार के पुष्पों को एकरूपिणी अदिति धारण करती हैं तथा और भी अनेक रूप धारण करने वाले पुष्पों को धारण करती हैं इनसे अपर अन्य स्त्रियाँ भी इन गुण निधि पुष्पों को धारण करती हैं। कश्यप ऋषि ने मन्दार के वृक्ष से भी सार लेकर इस

वृक्षराज की रचना की है इसलिये यह सभी वृक्षों में श्रेष्ठ हो गया। इसके बाद अदिति ने कश्यप के साथ गाँठ जोड़ कर पुण्य और सौभाग्य के लिये पारिजात का मुझे दान दे दिया था। फिर अदिति ने इन्हीं पुष्पों की माला गले में पहना कर आत्मतत्त्व को जानने वाले कश्यप का दान मुझे पुण्य और सौभाग्य के लिये किया था। मैंने उनका मूल्य लेकर तपोधन कश्यप को छोड़ दिया, इसके बाद इन्द्राणी ने भी सौभाग्य के लिये मुझे इन्द्र का दान किया था। इसी प्रकार रोहिणी ने चन्द्रमा का तथा ऋद्धि ने कुबेर का दान किया था इस प्रकार सौभाग्य को देने वाला पारिजात वृक्ष है इसमें संशय नहीं। यह विष्णुपदीगंगा के ऊपर उत्पन्न हुआ था इसलिये पारिजात के नाम से पुकारा गया, यह मन्दार के पुष्पों से युक्त है इसलिये इसे मन्दार भी कहते हैं। जो लोग इन बातों से अनभिज्ञ थे वे इसे कौन दारु है यह कह कर पुकारे इसलिये यह महावृक्ष कोविदार के नाम से भी विख्यात हुआ। इस प्रकार मन्दार, कोविदार तथा पारिजात इन तीनों नामों से वह दिव्य वृक्ष जाना जाता है, जिसका कि यह उत्तम पुष्प है।।६१-७२।।



अथ अष्टषष्टितमोऽध्यायः।।६८।।

वैशम्पायनजी बोले कि-गमन करने की इच्छा वाले नारद जी से अतुल पराक्रमी भगवान् विष्णु बोले कि हे धर्म तत्त्व को जाननें वाले निष्पाप महर्षे! आप स्वर्ग में जाकर त्रिपुर का वध करने वाले बुद्धिमान् इन्द्र के सदस्यों को देख कर मेरे कहे वचनों के अनुसार इन्द्र को समझाना पर यह न ज्ञात हो कि मेरी आज्ञा से आप यह सब क़ह रहे हैं आप तो पुराण के वेत्ता हैं वामनावतार धारण कर जो भ्रातृ भाव मैंने दिखाया था उससे भी इन्द्र को प्रभावित कर यह कहियेगा कि। जिस पारिजात वृक्ष को पहले अदिति के सुख के लिये धर्म सत्तम मुनिश्रेष्ठ भगवान् कश्यप ने रचा था। वह उत्तम वृक्ष अतिशय सौभाग्य को देता है जो इस समय तुम्हारे यहाँ है, व्रत कर अदिति ने इस उत्तम वृक्ष का दान मुझे दिया था। हे सुरोत्तम! नित्य धर्म का पालन

करने वाली देवी रूपा श्री कृष्ण की पत्नियाँ इस प्रकार पारिजात का धर्मार्थ और सौभाग्यार्थ दान देना सुन कर वे इस बात की इच्छा करती हैं कि मैं भी धर्म तथा सौभाग्य के लिये पारिजात का दान करूँ। इस प्रकार इन्द्र को समझा कर पुण्यार्थ और दान के लिये तथा मेरी प्रसन्नता के लिये महावृक्ष पारिजात को आप द्वारका में लाइये। वृक्ष का दान हो जाने पर पुनः वृक्ष को आप स्वर्ग में ले जा सकते हैं हे भगवन् ! बल दैत्य को मारने वाले इन्द्र को आप इसी प्रकार समझाइयेगा। हे मुनिसत्तम ! इस कार्य में वैसे ही वैसे प्रयत्नों को कीजियेगा कि, जिस प्रकार सुरेश्वर वृक्षराज को दे देवे। हे तपोधन ! आपमें मैं कुशल दूत के गुणों को देख रहा हूँ, हमारी समझ में आपमें सभी कार्यों को सिद्ध कर देने की क्षमता है।।१-१०।।

नारायण के इस प्रकार कहने पर भगवान् तपोधन ऋषि नारदजी हँस कर केशिनाशन श्रीकृष्ण से बोले–हे सुरेश्वर यदुश्रेष्ठ! अच्छा मैं इसी प्रकार कहूँगा परन्तु देवेन्द्र पारिजात को किसी प्रकार भी नहीं देगा। दानव और देवताओं ने मन्दराचल को क्षीरसागर में डालकर पहले पारिजात को पाया है। हे जनार्दन! लोककर्त्ता भगवान् शंकर पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल से पारिजात को लाने के लिये अपने गणों को भेजे थे पर इन्द्र स्वयं शंकरजी के पास जाकर उनको यह बतलाया कि, वह पारिजात मेरे उद्यान में इन्द्राणी द्वारा क्रीड़ा का साधन बना लिया गया है अतः उसे वहीं रहने दिया जाय। शंकरजी ने भी ''अच्छा वहीं रहने दो'' ऐसा वर दे दिया और विचित्र कन्दरा वाले मन्दराचल से पारिजात को नहीं लाये। हे महाबाहो! यह शची का क्रीड़ा वृक्ष है इस बहाने से इन्द्र ने पारिजात को शंकरजी से छुड़ा लिया था। शंकरजी ने उमा को प्रसन्न करने के लिये मन्दराचल की कन्दरा में ढाई कोस लम्बा-चौड़ा साक्षात् पारिजात का वन बना दिया। हे श्रीकृष्ण! उस वन में सूर्य की किरणें भी नहीं प्रवेश कर सकती थीं न तो चन्द्रमा की शीतल चाँदनी ही जा सकती थी और न पवन ही प्रवेश कर सकता था। वहाँ शैलपुत्री की इच्छानुसार सर्दी-गर्मी हुआ करती थी वह वन महादेवजी के तेज के प्रताप से स्वयं तेजस्वी बन गया।।११-२०।।

हे यदुनन्दन ! उस वन में शंकर-पार्वती तथा उनके गणों को छोड़कर और मुझको छोड़कर कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता था। हे वृष्णि वंशोत्पन्न! मन से आकांक्षा करने पर वे पारिजात वृक्ष मुख्य-मुख्य सभी रत्नों की वर्षा करते थे। हे केशव! लोकों के स्वामी देव-देव शंकरजी की आज्ञा से महात्मा प्रमथ नामक गणों के समूह उन रत्नों का उपभोग करते हैं। इस पारिजात से बहुत अधिक गुण उस पारिजात वन में है, अभिमान तथा प्रभा आदि गुण तथा और भी जो बहुत गुण इस पारिजात में पाये जाते हैं वे सभी गुण उस वन के पारिजातों में हैं। हे केशव! वे पारिजात वृक्ष मूर्तिमान होकर प्रमथ नामक गणों के साथ उमा सहित वृषभध्वज शंकरजी की निरन्तर उपासना करते रहते हैं। शैलकन्या के प्रिय पारिजात वृक्ष उस मन्दराचल की कन्दरा में रुद्र के तेज से युक्त दुःख से रहित हो सुख से रहते हैं। एक समय अन्धक नाम का महाबली भयंकर दैत्य वरदान के घमण्ड से भरा पाप बुद्धि उस बन में प्रवेश किया। वह दैत्य सभी प्राणियों से अवध्य और वृत्रासुर से दस गुना बली था उसको शत्रु संहारी देवताओं के भी देवता शंकर जी ने मार डाला। हे कमल नेत्र! इस प्रकार वह दुःख से लभ्य है, इन्द्र आपको पारिजात वृक्ष नहीं देगा यह मैं सत्य कह रहा हूँ। शची देवी के और महाबली इन्द्र के सभी कामनाओं का वह श्रेष्ठ वृक्ष सर्वदा देता रहता।।२१-३०।।

श्री भगवान् बोले हे मुने ! शची का क्रीड़ा वृक्ष समझ कर जो शंकर जी पारिजात को नहीं ले गये यह बात बुद्धिमान् शंकर जी को ही शोभा देती है उन्होंने यह ठीक ही किया। क्योंकि वे सभी प्राणियों के उत्पत्ति स्थान तथा लोकों के कर्त्ता हैं एवं अविनाशी हैं मेरी समझ से उन्होंने लोक मर्यादा के अनुसार कार्य किया। हे भगवन् ! मैं बलघाती इन्द्र का छोटा भाई हूँ इसलिये हे मुनिसत्तम ! इन्द्र के द्वारा मैं जयन्त की भाँति सदा प्यार करने योग्य हूँ। हे तपोधन! पहले आप बहु विस्तृत उपायों से पारिजात लाने का प्रयत्न करें साथ ही इस बात का भी ध्यान रखें कि उससे प्रीति भी बनी रहे क्योंकि आप ऐसा करने में समर्थ हैं, आप भगवान् हैं। हे मुने ! मैंने पुण्य नामक व्रत के लिये सत्यभामा से प्रतिज्ञा कर ली है कि, मैं पारिजात को स्वर्ग से यहाँ ला दूँगा।

हे तपोधन ! तो मैं उस प्रतिज्ञा को कैसे झूठा कर सकता हूँ हे निष्पाप ब्राह्मण ! मैंने पहले भी किसी बात को झूठ नहीं कहा है। मेरी प्रतिज्ञा के झूठी हो जाने पर लोक में विप्लव मच जायेगा, मेरे झूठ बोलने पर तो सभी लोग झूठ बोलने लगेंगे क्योंकि हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं ही गुण से युक्त लोक धर्मों का प्रवर्तक हूँ, झूठ बोलने की स्थिति आने पर मैं ही सबको झूठ बोलने से वारण करता हूँ, तो भला ऐसा करने वाला वह परम पुरुष कैसे झूठ बोल सकता है। हे मुने ! आपका कल्याण हो, मेरी प्रतिज्ञा को भंग करने के लिये देवता, गन्धर्वगण, राक्षस, असुर, यक्ष तथा पन्नग भी समर्थ नहीं हो सकते। यदि आपके माँगने पर भी अमरेश्वर इन्द्र पारिजात वृक्ष प्रदान नहीं करेगा तो शची द्वारा लगा दिये गये चन्दन वाले इन्द्र की छाती में मैं गदा का प्रहार करूँगा। शान्ति पूर्वक आप के द्वारा माँगने पर यदि वह वृक्ष न दे तो, आप भी मेरे इन्द्रपुरी में आने की बात निश्चित रूप से कह दीजियेगा।।३१-४०।।



अथ एकोन सप्ततितमोऽध्यायः ।।६९।।

वैशम्पायनजी बोले कि–इसके बाद नारद जी इन्द्र के भवन में जाकर उस रात्रि में वहीं रहे और उस महोत्सव को देखे। उस उत्सव में महात्मा आदित्य, देवताओं में उत्तम वसु और अपने शुभ कर्मों से स्वर्ग गये विद्वान् राजर्षि, नाग, यक्ष, सिद्ध, चारण, तपोधन ब्रह्मर्षि और सैकड़ों देवर्षि तथा मनु, महात्मा सुपर्ण, महाबलवान् मरुत तथा देवताओं के सैकड़ों अन्य-अन्य गण आये थे। वहाँ सबके ऊपर अपने गणों से धिरे उमा के साथ अमित पराक्रमी महेश्वर विराजमान थे। हजारों कल्पों में भी जिनका नाश नहीं होता ऐसे देवर्षियों और श्रेष्ठ मुनियों से सर्वभावेन शंकर जी घिरे हुए थे कि–जिन शंकर जी की पूजा इन्द्र के समान उपमा वाले देवता कि, जिनको आत्मा का ज्ञान है तथा जो गर्व से रहित धर्म के मार्ग में स्थित हैं, निरन्तर धर्म किया करते हैं। हे भारत! रुद्र देवता कश्यपवंशय, स्कन्द, भगवान् अग्नि तथा नदियों में श्रेष्ठ गंगा उन महादेव की उपासना करते रहते हैं। अर्चिष्मान, तुम्बुरू, वक्ताओं

में श्रेष्ठ गन्धर्व आदि उन महादेव की उपासना करते हैं, ये देवदेवों के नेता तथा तपस्या युक्त हैं। हे नृप! नित्य धर्म तथा नित्य तप करने वाले और सज्जनों के भार्ग का आश्रय करने वाले देवताओं के सभी गण शंकर जी का अनुसरण करते हैं।।१-१०।।

हे राजन्! शुभ फल की इच्छा वाले जो मनुष्य महादेव की पूजा करते हैं उनके पूजा से अभीष्ट फल द्वारा मंगल की इच्छा वाले देवता करते हैं। हे कौरव्य! पितृ कार्य में जो संलग्न हैं तथा जो संन्यास धर्म का अनुष्ठान करते हैं और अध्ययन में तल्लीन हैं जो शास्त्रीय नियम से आचरण करने वाले हैं, वे सभी सफलता के लिये शंकर जी की उपासना करते हैं। हे राजन्! उस महोत्सव में गन्धर्वों के राजा श्रीमान् चित्ररथ पुत्रों के साथ प्रसन्न हो मृदङ्ग आदि बाजों को बजाये और ऊर्णायु, चित्रसेन, हाहा, हूहू, डुम्बर तथा तुम्बरू एवं अन्य गन्धर्व भी आलाप-तान आदिकों से युक्त गीतों को गाये। उर्वशी, विप्रचित्ति, हेमा, रम्भा, हेमदन्ता, घृताची और सहजन्या अदि अप्सराओं ने हाव-भावों द्वारा नृत्य रूपी सेवा से आत्मज्ञ भगवान् शंकर को प्रेम पूर्वक प्रसन्न किया, इस प्रकार इन्द्र के सत्कार से संतुष्ट होकर जगत् की गति शंकर कैलास को चले गये! महादेवजी के चले जाने पर सभी राजे जैसे आये वैसे ही चले गये, इन्द्र के द्वारा सत्कारित देवता भी अपने-अपने स्थान को चले गये। सबके चले जाने के बाद जब इन्द्र अपने सदस्यों के साथ सुख से बैठ गये तब नारदमुनि उनके सम्मुख गये। तब इन्द्र ने आसन से उठ कर तपोधन नारदमुनि का पूजन किया तथा अपने आसन के बराबर बैठने को कुश का आसन दिया। महातेजस्वी नारद इन्द्र से बोले कि हे देवश्रेष्ठ! मैं अतुल तेजस्वी विष्णु का दूत हूँ।।११-२०।।

उन महात्मा ने मुझे कुछ कार्य से यहाँ भेजा है, वह दुःख दूर करने वाला कार्य उन्हीं अतुल तेजस्वी का है जो आपके द्वारा हो सकता है। ऐसा सुन मुनि के हृदय को प्रसन्न करने वाली कुछ प्रीति की बातें कह कर फिर प्रसन्न होकर भगवान् इन्द्र बोले। हे मुने! पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने क्या कहा है उसे शीघ्र कहिये, बहुत दिन बाद महात्मा श्रीकृष्ण ने मुझे स्मरण किया है।

नारद जी बोले–हे महेन्द्र! मैं कश्यपवंशियों के यश को बढ़ाने वाले आपके छोटे भाई को देखने के लिये किसी प्रकार द्वारका गया था। मैं उन अरिन्दम वीर को रुक्मिणी के साथ बैठ कर शंकर जी की स्तुति करते हुए रैवतक पर्वत पर देखा। हे निष्पाप इन्द्र! मैंने उन अधिक तेजस्वी श्रीकृष्ण की पत्नियों को विस्मित होने के लिये उन्हें पारिजात वृक्ष का पुष्प दिया। बहुकामप्रद वृक्षराज के उस पुष्प को देख कर उनकी पत्नियाँ परम विस्मय को प्राप्त हुई। हे मानद! उस पुष्प के गुण भी मैंने उनकी पत्नियों से बता दिये और जिस प्रकार महात्मा कश्यप ऋषि द्वारा पारिजात की उत्पत्ति हुई, उसे भी कह दिया और जिस प्रकार पुष्पों की माला कण्ठ में पहना कर पुण्य व्रत के लिये सौभाग्यार्थ अदिति ने आत्मतत्त्वज्ञ कश्यप को मुझे दान दिया था और हे सुरेश्वर ! शची ने जिस प्रकार इन्द्र को दान दिया था और भी इसी प्रकार अन्य देवताओं का जो दान हुआ था तथा मूल्य लेकर जो कश्यपादिकों को मैंने फिर दे दिया, यह सभी बातें कह दीं।।२१-३०।।

इन बातों को सुन कर आपके छोटे भाई की प्रिय पत्नी जो सभी पत्नियों में विख्यात सत्यभामा नाम की एक पत्नी है उसने मन में इस पुण्य नामक व्रत को करने की इच्छा की। हे देव! उस देवी ने गणों के स्वामी अपने पति से पारिजात की याचना की तब हे मानद! धर्म के लिये आपके लघु भ्राता श्रीकृष्ण ने पारिजात ला देने की प्रतिज्ञा कर ली। इसके बाद बलवानों में श्रेष्ठ वीर विष्णु ने मुझसे जो कहा उसे हे देवताओं के स्वामिन्! मुझसे प्रेम पूर्वक सुनो। आपको प्रणाम कर अच्युत ने कहा है कि छोटों का बड़ों को लालन करना चाहिये इसलिये हे सुरश्रेष्ठ! आपको श्रेष्ठ वृक्ष पारिजात को दे देना चाहिये। हे असुर सूदन! आपके छोटे भाई की पत्नी का मनोरथ सफल होना चाहिये, विशेष कर धर्म कार्य में तो हे सुरसत्तम! आपके अनुज वधू का मनोरथ तो पूर्ण ही होना चाहिये। हे लोक गणेश्वर! इस वृक्ष ने लोक कल्याण की बात दिखा दी है जिसे अभी केवल देवताओं ने देखी है अब मेरे प्रभाव से मनुष्य भी देवताओं के कल्याण करने वाले वृक्ष को देखें। वैशम्पायनजी बोले कि–वासुदेव की बातों को सुन कर कुलनन्दन महेन्द्र वक्ताओं में श्रेष्ठ

नारद जी से यह बचन बोला। हे द्विजश्रेष्ठ! आप आसन पर विराजें हे द्विज! आपने उचित ही कहा है, मैं अतुल तेजस्वी विष्णु के प्रति संदेश दूँगा। नारद जी के बैठ जाने पर उनकी आज्ञा से उन्हीं के बराबर अपने आसन पर इन्द्र भी बैठ गये। वृत्रासुर को मारने वाले सुरपति हर्ष प्रदान करने वाले अपने पराक्रम और बल को समझ कर तपोधन नारद जी से बोले।।३१-४०।।

इन्द्र ने कहा हे महर्षे ! श्रीकृष्ण से कुशल-मंगल पूछ कर हमारे वचनों के आधार से सब प्राणियों को सुख देने वाले उन जनार्दन से मेरे संदेश कहना कि। (इन्द्र ने कहा है कि) हे अच्युत! मेरे बाद आप ही जगत् के स्वामी हैं इसमें संशय नहीं है, पारिजात और जो भी यहाँ रत्न हैं वे सब आपके ही हैं। हे देव! आप भार उतारने के लिये पृथ्वी पर गये हैं और कार्य की सिद्धि के लिये मनुष्य का रूप धर मनुष्यों के सभी व्यवहारों को कर रहे हैं। हे अधोक्षज! जिस समय प्रतिज्ञा को पूरी कर आप स्वर्ग में आ जायेंगे उस समय आपकी वधू के इष्ट कार्यों को पूर्ण करूँगा। हे केशव! थोड़े से प्रयोजन के लिये स्वर्गीय रत्नों को मानव लोक में नहीं ले जाना चाहिये, ऐसी मर्यादा पहले से चली आती है। हे महाबल! यदि मैं इस दैवी मर्यादा का उलंघन कर बर्ताव करूँगा तो हे प्रभो! हमको प्रजापतिगण क्या कहेंगे? महात्मा ब्रह्मा जी तथा उनके पुत्र-पौत्रों ने जगत् के सभी कार्यों की मर्यादा निश्चित कर दी है। तो प्रजापति के बनाये गये नियम का उल्लंघन कर जब हम ही चलेंगे तो इस बात को सुनकर समर्थ श्रीमान् प्रजापति मुझे शाप दे देंगे। तथा हमारे द्वारा मर्यादा का बाँध टूटता देख कर दैत्य और दैत्य के पक्ष का आश्रय लेकर चलने वाले तथा और लोग भी तो निःशंक भाव से मर्यादा को तोड़ कर चलने लगेंगे। हे मानद! स्त्री के निमित्त यहाँ से वृक्ष राज पारिजात के ले जाने पर स्वर्ग के रहने वाले खिन्न मनस्क हो जायेंगे।।४१-५०।।

ब्रह्मा जी ने मनुष्यों के उपभोग के लिये जो पदार्थ बनाये हैं उन्हीं पदार्थों से छोटे भाई समय को देख कर सन्तोष करें। हे तात! यहाँ स्वर्ग में मेरे पास जो भी पदार्थ हैं उन सभी का स्वर्ग में स्थित हो श्रीकृष्ण उपभोग करें। इस समय वे मांस भक्षण से हृष्ट-पुष्ट हो गये हैं इसलिये वे देव-धर्म का परित्याग

कर मानव-धर्म को अपना रहे हैं। इस समय जो वे स्त्री की वश्यता का प्रचार कर रहे हैं इससे मुझे यह ज्ञात होता है कि जगत् में महात्मा श्रीकृष्ण को अपयश लग जायेगा। हे नारद! मनुष्य लोक में प्राप्त मानुष शरीर को धारण कर यदि मधुसूदन मुझ अपने ज्येष्ठ भ्राता से लाचारी का कार्य करायेंगे तो हे अनघ! स्वर्गीय रत्नों के विलोप हो जाने पर मेरी निन्दा होगी अपनी जाति के द्वारा निन्दा बड़ी कष्टदायिनी होती है। ब्रह्मा द्वारा स्थापित किये सज्जनोचित्त, धर्म, अर्थ और काम का सेवन समानता के क्रम से श्रीकृष्ण को करना चाहिये। यदि मैं अपनी पत्नी की सम्मति लेकर पारिजात को पृथ्वी तल पर अर्पण कर दूँ तो कौन मेरा अधिक आदर करेगा। पृथ्वी तल पर पारिजात को देख और पूछ कर कौन मनुष्य स्वर्ग जाने के लिये यज्ञादि करेगा क्योंकि स्वर्ग का फल तो पृथ्वी पर ही मिलने लगेगा। हे नारद! यदि मनुष्य पारिजात के गुण का सेवन करने लगेंगे तो देवता और मनुष्यों में क्या अन्तर रह जायेगा।।५१-६०।।

वहाँ मनुष्य जो सत्कर्म करते हैं उसके फल में यहाँ स्वर्गीय भोगों को भोगते हैं, अब पारिजात के गुणों से युक्त होकर मनुष्य स्वर्ग के लिये प्रयत्न नहीं करेंगे। हे तपोधन! इस स्वर्ग में सभी रत्नों में श्रेष्ठ यह पारिजात रूपी रत्न है यदि यह पृथ्वी तल पर चला जायेगा तो मनुष्य देवताओं की समता करने लगेंगे। पृथ्वी पर ही स्वर्ग के फल को पाकर मनुष्य यज्ञ नहीं करेंगे और न देवताओं की समता पाकर मनुष्य हव्य-कव्य ही देंगे। हे तपोधन! मनुष्य स्वर्ग की इच्छा से श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन यज्ञ और जपादि कर हम लोगों को तृप्त करते हैं। अब वे पारिजात का गुण प्राप्त कर वह सब यज्ञादि नहीं करेंगे, पारिजात के चले जाने पर हम लोग उससे विहीन तेज से रहित हो जायेंगे। हम देवता जब यहाँ से पृथ्वी पर सुवृष्टि करते हैं तो वहाँ धान्य होता है उससे मनुष्य जीवन निर्वाह करते हैं और दान तथा यज्ञादि द्वारा हम लोगों को तृप्त करते हैं। हे धर्मज्ञ! पारिजात को प्राप्त कर जब मनुष्यों को भूख-प्यास ही नही लगेगी और जब रोग, बुढ़ापा, मृत्यु, रति, दौर्गन्ध अथवा उनके कर्म से उत्पन्न भयंकर दैविक भय आदि नहीं बाधा करेंगे तो पारिजात के गुण का सेवन

करने वाले मनुष्य क्यों स्वर्ग के लिये उद्योग करेंगे। हे विप्र! बिना कठिनाई के कर्म करने वाले विष्णु से यह कहना कि, पारिजात का वहाँ से जाना कदापि उचित नहीं है। जैसे मेरे भाई संतोष को प्राप्त करें वैसे ही विचार करते हुए तथा मेरी प्रीति को बचाते हुए उनसे कह कर आपको पारिजात न जाने वाला कार्य करना चाहिये।।६१-७०।।

आप वधू के लिये हार, मणि, चन्दन, अगर, चित्र-विचित्र के वस्त्र साड़ी वगैरह द्वारका को ले जाइये। मनुष्य के योग्य जो सामग्रियाँ हैं उनमें से जो केशव चाहते हों उसे ले जाइये परन्तु स्वर्ग की चोरी करना उचित नहीं है, उनकी इच्छा के अनुकूल रत्नों और आभूषणों को बहुत अधिक संख्या में मैं अभी दूँगा परन्तु हे मुने! स्वर्गवासियों के प्रिय पारिजात को मैं किसी प्रकार नहीं दे सकता।।७१-७३।।



अथ सप्ततितमोऽध्यायः।।७०।।

वैशम्पायनजी बोले कि–हे कुरुनन्दन! देवराज के वचन सुन कर वाक्यज्ञ धर्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ नारद जी बोले। हे बल निषूदन! हमको अवश्य आपके हित की बात कहनी चाहिये क्योंकि हे महाबाहो! तुम हमारे बहुत माननीय हो। मैं आपके विचार को जानता हुआ वासुदेव से यह बात कह दी थी क्योंकि तुमने पहले शंकर जी को भी पारिजात नहीं दिया था। मैंने पारिजात न देने का कारण भी उनसे संक्षेप में दर्शा दिया था, परन्तु वे श्रीकृष्ण मेरी बात को नहीं समझे यह मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ। बल्कि इसपर उन्होंने कहा कि मैं उनका छोटा भाई हूँ अतः मैं महेन्द्र के द्वारा सदा लालनीय हूँ, पुण्डरीकाक्ष ने यही कह कर मुझे उत्तर दिया। हे देव! मैंने बारम्बार पारिजात न देने का कारण दर्शाया फिर भी हे वृत्रासुर विनाशन! उनकी बुद्धि नहीं पलटी! हे इन्द्र! वार्तालाप के बाद पुरुषश्रेष्ठ मधुसूदन ने रोष के साथ हमसे कहा कि– हे मुने! आपका कल्याण हो, मेरी प्रतिज्ञा को भंग कर देने में देवता, गन्धर्व, राक्षस, असुर तथा पन्नगश्रेष्ठ कोई भी समर्थ नहीं हो सकते।

यदि आपके माँगने पर भी वह पुरन्दर पारिजात नहीं देगा तो शची के द्वारा प्रेम से चन्दन लगाये गये पुरन्दर के वक्षस्थल पर मैं गदा से प्रहार करूँगा। हे महेन्द्र! यही आपके छोटे भाई का अन्तिम निश्चय है, इस विषय में जो उचित समझते हों उसे समझ कर करें।।१-१०।।

हे देवेश! यदि हमसे हित और तत्त्व की बात सुनना चाहते हो तो सुनो, हमको तो पारिजात का द्वारका जाना ही अच्छा लग रहा है। हे नराधिप! नारद द्वारा इस प्रकार कहने पर बल राक्षस के देह को भेदन करने वाला हजार नेत्रों से युक्त इन्द्र ने रोष के आवेश में होकर यह कहा। हे तपोधन! निरपराध मुझ अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ यदि केशव इस प्रकार व्यवहार करने को प्रवृत्त हैं तो मुझे क्या करना उचित है (यह स्पष्ट है)। पहले भी श्रीकृष्ण ने मेरे प्रतिकूल बहुत से कार्यों को किया है पर मैं भाई के नाते सदा सहता गया हूँ। प्रथम बार अर्जुन का रथ हाँकते हुए उन्होंने खाण्डव वन में लगी प्रचण्ड अग्नि को शान्त करते हुए मेरे मेघों को मना कर दिया। फिर गोवर्धन पर्वत को धारण कर मेरे विरोध किया तथा वृत्रासुर के युद्ध के समय जब मैंने इनसे सहायता माँगी तो उन्होंने कह दिया कि मैं सभी प्राणियों के लिये एक सा हूँ तब मैं अपने ही बाहुबल का आश्रय कर वृत्रासुर का वध किया। हे नारद! देवासुर संग्राम में जब उपस्थित हुआ तो उसमें श्रीकृष्ण अपनी इच्छा से जो युद्ध किये हे मुने! वह आपको अच्छी तरह ज्ञात ही है। बहुत कहने से क्या लाभ? जो होनी होगी वह होकर ही रहेगी पर हमारे द्वारा भाई से कलह करना उचित नहीं है, इसके आप साक्षी हैं। पौलोमी का नाम लेकर यदि हमारे हृदय पर गदा मारने को केशव उद्यत हुए हैं तो इसमें कौन सा उनका गुण दिखाई पड़ रहा है।।११-२०।।

जब हमारे पिता समर्थ बुद्धिमान् कश्यप मेरे घर पर आवेंगे तो मेरी माता अदिति के साथ मेरे भाई श्रीकृष्ण के प्रति यही कहेंगे कि वह अजितात्मा है और तमोगुण तथा रजोगुण से युक्त हो गया है इसीलिये काम के वशीभूत होकर अपनी स्त्री के कहने से अपने श्रेष्ठ को हृदय पर गदा मारना कहा है। हे विप्र! इसलिये इस प्रकार के स्त्री प्रेम को धिक्कार और रजोगुण से व्याप्त

बुद्धि को धिक्कार है कि जिसके वश में होकर हे द्विज! स्त्रीजित होते हुए भी विष्णु ने मुझ पर आक्षेप किया है। हे महामुने! कश्यप के कुल में इस प्रकार कुवाच्य कहने का पात्र मैंने आज तक किसी को नहीं देखा था और न दक्ष के कुल में ही देखा था जहाँ कि मेरी माता का जन्म हुआ है। हे नारद! काल के वशीभूत हो श्रीकृष्ण ने यह नहीं विचारा कि इन्द्र मेरे ज्येष्ठ भ्राता और देवताओं के राजा है। हे अनघ! ब्रह्मा जी ने हमसे पहले कहा था कि सदाचारी और ज्ञान-सम्पन्न एक भाई हजारों पुत्रों और स्त्रियों से माननीय है। भाई के समान दूसरा कोई बन्धु माननीय नहीं है, यह वचन हमारे माता-पिता ने कहा था और प्रजापति दक्ष ने भी कहा था। हमारे पिता कश्यप सहोदर भाई ही में यह विशेषता बतलायी थी (और सौतेले भाई में नहीं) इसीलिये पाप में निश्चित बुद्धि वाले घमण्ड में चूर दिति के पुत्र दानव हमसे विरोध करते हैं। हे विप्र! आप से स्वयं हमको यह बात इच्छानुसार नहीं कहनी चाहिये, पर आज समय पड़ने पर कह रहा हूँ कि हे अनघ, मुनिश्रेष्ठ, महामुने! धनुषधारी विष्णु द्वारा बाण चलाते समय एक बार जब धनुष की डोरी टूट जाने पर उनका शिर रुद्र के तेज से कट गया तो मैंने देवताओं के वर-दान से विष्णु का धड़ पकड़ कर कटे हुए शिर को प्रयत्न कर जोड़ दिया।।२१-३०।।

हे नारद! तब उन्होंने कहा कि मैं ही सब देवताओं में बड़ा हूँ फिर धनुष चढ़ा कर घमण्ड से रणाङ्गण में खड़े हो गये। हे मुनिसत्तम! मैंने सोचा कि यदि ऐसा नहीं करता हूँ तो मेरे माता-पिता मुझे क्या कहेंगे? यही सोच कर स्नेह के कारण विष्णु के शरीर को जोड़ दिया था। हे मुने! मैं अपने इन्द्र-भाग को विष्णु-भाग बना कर दे दिया अर्थात् श्रावण-भादों में अपने पूजन के स्थान पर विष्णु का पूजन कराने लगे। हे नारद! मैं अपने छोटे भाई श्रीकृष्ण को बड़े प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ। हे तपोधन! संग्राम में मुझे पहले प्रहार करना चाहिये क्योंकि मैं राजा हूँ इसलिये मैं निश्चित समर में आगे बढ़ कर प्रहार करूँगा। अपने में केशव का प्रेम देख कर सभी अवतारों में मैं उनकी रक्षा अपने शरीर की ही तरह किया हूँ। हे मुने! इन सब उपकारों के बदले उन्होंने हमारे इस स्वर्गीय भवन का मान भङ्ग कर सभी लोकों के ऊपर अपने साकेत लोक को

बनाया। वह पीठ पीछे मेरा अपमान किया करते हैं और मैं भ्राता के गौरव से किये मेरे छोटे भाई हैं बालक हैं हमें इनका लालन करना चाहिये यह घमण्डी है फिर भी यह हमारा छोटा भाई है, बाल स्वभाव का है हमारे पुत्र के समान है तो मैं प्रेम करने लगा। अब वहाँ यह हो गया कि अन्य लोगों का केशव विशेष रूप से मित्र हो गया और इसके अन्य लोग मित्र हो गये, हम इसके द्वेष का पात्र बन गये इसमें सन्देह की बात नहीं क्योंकि हम इससे अधिक प्रेम करते थे।।३१-४०।।

जो मेरा यह ध्यान था कि केशव सर्वज्ञ बलवान्, शूर, योग्य है तथा माननीय है वह आज व्यर्थ हो गया। हे नारद! आप जाइये और केशव से कह दीजियेगा कि इन्द्र शत्रु के द्वारा आह्वान करने पर समर से नहीं भागता है। जो तुम करना चाहते हो वह सब तुम्हारे लिये ठीक ही है, जब इच्छा हो तब आओ। हे भार्याजित! अपने इच्छा के अनुसार तुम्हीं पहले प्रहार करो। हे जनार्दन! दृढ़ता पूर्वक गरुड़ पर चढ़ कर चक्र से शर्ङ्ग धनुष से, गदा से अथवा नन्दक खड्ग से प्रहार करो। हे केशव! अहो! मुझे धिक्कार है, यदि मुझे तुम्हारा प्रेम विवश नहीं करेगा तो तुम्हारे प्रहार करने पर मैं यथाशक्ति प्रहार करूँगा। हे मुनिसत्तम! जबतक मैं संग्राम में चक्रपाणि श्रीकृष्ण के द्वारा जीत न लिया जाऊँगा तब तक पारिजात को न दूँगा। हे तपोधन! जब वह छोटा होकर मुझ जेठे भाई को ललकार रहे हैं तो मैं स्त्री के द्वारा जीत लिये गये उस छोटे भाई श्रीकृष्ण की ललकार को कैसे सहूँगा। हे भगवन् ! आप आज ही श्रीकृष्ण से पालित द्वारका को जाइये और झगड़ा करने को उद्यत उस मूर्ख अच्युत से कहिये। हे तपोधन! मेरी बात का स्मरण करते हुए मधुसूदन से आप कहियेगा कि, तुम्हारे द्वारा अजित रहकर इन्द्र पलाश के पत्ते का आधा-टुकड़ा नहीं दे सकता पारिजात वृक्ष की बात तो दूर रही। हे भगवन्! मेरा प्रिय करने के लिये निःशंक होकर फिर अच्युत से कहियेगा कि, माया से पारिजात का हरण करना उचित नहीं है इसके लिये तो युद्ध ही श्रेष्ठ है, कुटिलता को धिक्कार है।।४१-५०।।



अथ एकसप्ततितमोऽध्यायः ।।७१।।

वैशम्पायनजी बोले कि–वक्ताओं में श्रेष्ठ नारदजी महेन्द्र की बात को सुनकर उन्हें एकान्त में लिवा जाकर कहने लगे। इच्छा के अनुकूल ही प्रिय वचन राजाओं से कहना चाहिये इसमें सन्देह नहीं, पर समय के पड़ जाने पर उनसे हित करन वाला अप्रिय वचन भी कह देना चाहिए। बिना कहे अगुआ नही होना चाहिये अर्थात् बिना पूछे किसी से कोई बात नहीं कहनी चाहिये यह लोग जो कहते हैं सो ठीक ही है परन्तु आप लोक-गति के तत्त्वज्ञ तथा नीति-विज्ञान के पण्डित होकर भी कार्याकार्य का विषय उपस्थित हो जाने पर मुझसे पूछा करते हैं इसलिये मैं आप से कुछ कह रहा हूँ यदि रुचेगा तो ग्रहण कीजियेगा। पराजय को न चाहते हुए हित की बात जानने वाले मित्र को बिना पूछे भी हित और न्याय की बात कहनी चाहिये। यदि हित की अप्रिय भी बात हो तो सज्जनों को निश्चय कह देनी चाहिये यही स्नेह के ऋण को चुकाना है, इस बात को सज्जनों ने पहले से मान्यता प्रदान किया है। झूठ बोलने वाले से, धर्म के विरुद्ध कार्य करने वाले से तथा बड़ों की सेवा न करने वाले से प्रिय तथा हित की बात न कहनी चाहिये क्योंकि इनसे प्रिय और हित की बात कहना सज्जनों द्वारा निन्दित है। हे सुनने वालों में श्रेष्ठ देव! मुझे तो सर्वथा आपसे हित की बात कहनी चाहिये इसलिये कल्याण करने वाले मेरे वचन को सुनो और सुन कर हे सर्वज्ञ! वैसा ही करो। हे बल राक्षस का अन्त करने वाले! भाइयों और मित्रों का परस्पर कलह शत्रुओं के लिये आनन्दकारी होता है इसमें सन्देह नहीं है। हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! कार्य; हित के कारणों से युक्त है अथवा इससे विपरीत है पहले यह समझना चाहिये फिर समझ कर कार्य करना चाहिये।।१-१०।।

आरम्भ करने के बाद जो कार्य पश्चाताप देने वाले होते हैं उन्हें विद्वानों को आरम्भ न करना चाहिये यही बुद्धिमानों की नीति है। हे विबुधाधिप! मैं इस कार्य का अर्थात् श्रीकृष्ण से संग्राम करने का परिणाम अच्छा नहीं देखता हूँ, हे देव! इसमें जो कारण है उसे सुनो। जो हरि जगत् के प्रधान कारण हैं

उनको सभी विद्वानों ने ज्ञान द्वारा माया से परे पाया सूक्ष्म अथवा स्थूल कारण जाना है। उस अव्यक्त का जो व्यक्त भाग अर्थात् ब्रह्म से लेकर छोटे जीव-जन्तु तक जो भी दिखाई पड़ता है उन सबका उत्पत्ति स्थान और उनकी परम आत्मा एवं सभी बुद्धिमानों के इष्ट देव विष्णु ही हैं। प्रकृति का प्रथम भाग यशस्विनी उमा देवी हैं उन्हीं से लोक की उत्पत्ति-स्थान सर्वमय स्त्री संज्ञक स्त्री-जगत् व्यक्त हुआ अर्थात् प्रकाशित हुआ है। रुक्मिणी आदि स्त्रियाँ उस प्रकृति की उमा की भाँति ही प्रथम गुण हैं, देवी उमा अथवा रुक्मिणी ये अव्यय प्रकृति हैं और गुणी रुद्र अथवा विष्णु हैं। हे देव श्रेष्ठ! शंकर जी में और विष्णु जी में कोई भेद नहीं है इसलिये विष्णु के कोप करने पर रुद्र तुम्हारी रक्षा नहीं करेंगे सभी गुणियों के शासक सदा से प्रथम गुण अव्यय महातेजस्वी सब कुछ करने वाले, लोकों के उत्पत्ति स्थान नारायण ही हैं, अधोक्षज विष्णु कर्त्ता हैं महेश्वर देव भोक्ता हैं। बुद्धि अभिमानी ब्रह्मा तथा अन्य बुद्धि अभिमानी देवताओं को उन महात्मा विष्णु ने पीछे रचा और हे देवेश! महादेव ने प्रजापति के गुणों को रचा है। इस प्रकार वेदों में अचिन्त्य, अप्रमेय, गुणों से परे और पुराण पुरुष के नाम से विष्णु पढ़े जाते हैं।।११-२०।।

पहले एक बार अदिति ने तपस्या द्वारा महात्मा विष्णु की आराधना की थी, विष्णु प्रसन्न हो अदिति से वर माँगने को कहे। अदिति ने प्रणाम कर और उनको नारायण अधोक्षज जानकर कहा कि हे सुरोत्तम! मैं आपके समान पुत्र चाहती हूँ। विष्णु ने कहा कि मेरे समान भुवन में दूसरा कोई पुरुष नहीं है इसलिये अपने अंश से मैं ही तुम्हारा पुत्र होऊँगा। हे सुरेश्वर! वे ही महातेजस्वी सब कुछ करने वाले देव नारायण पुत्र रूप में अवतरित हुए, जिनको उपेन्द्र के नाम से कहते हैं। भूत, भविष्य तथा उत्पत्ति प्रलय के स्थान अर्थात् जगत् के उपादान कारण हरि हल्दी के समान जैसी-जैसी आवश्यकता है तैसे भावों से विकार को प्राप्त होते हैं (रूप को धारण करते हैं) अपनी इच्छा से ही वे कश्यप के पुत्र बने थे। जगत् के स्वामी तथा कर्ता-हर्ता केशव जगत् के हित की कामना से मथुरा में श्रीकृष्ण के नाम से प्रकट हुए हैं। हे मानद इन्द्र! जैसे मांस पिण्ड चिकनापन से व्याप्त होता है वैसे ही व्यापक विष्णु से यह जगत्

व्याप्त है। जगत् में सर्वात्मा ब्रह्मण्य देव ही तत्-तत् भावों से विकृति को प्राप्त हैं वस्तुतस्तु सबके उत्पत्ति स्थान बैकुण्ठ देव गुणों से परे हैं। इसी लिये प्रजाओं की सृष्टि करने वाले व्यापक पद्मनाभ भगवान् केशव सभी देवताओं के पूज्य हैं। शेषावतार बलराम भी पृथ्वी को धारण करने के लिये अपने महान् यश को फैला रहे है, वेद के वक्ता सज्जन लोग इनको यज्ञ भी कहते हैं।।२१-३०।।

वे विभु सत्ययुग में श्वेत, त्रेता में लाल, द्वापर में पीले तथा कलि में कृष्ण वर्ण के होते हैं। इन्हीं हरि ने दिव्य रूप धारण कर हिरण्याक्ष का वध किया था, इन्हीं देव ने जल में डूबती हुई पृथ्वी का वाराह रूप धारण कर जगत् के हित की कामना से उद्धार किया था और इन्हीं ने नरसिंहावतार धारण कर हिरण्यकशिपु को मारा था। इन्हीं श्रीमान् देव विष्णु ने वामन रूप धारण कर पृथ्वी को जीत कर नागपाश से बलि को बाँध दिया था। देवता और दानवों द्वारा यत्नपूर्वक जुटाई गई साधारण लक्ष्मी को भी आक्रमण कर तुम्हारे लिये ले लिया था, अमित पराक्रमी उदार अनन्त विष्णु ने सम्पूर्ण लक्ष्मी तुममें ही पहले अर्पित कर दी थी। जिनकी तपस्या कुछ शेष रह जाती है और वे माया में लिप्त हो जाते हैं तो उन्हें हरि मार डालते हैं, उन महात्मा का यह व्रत है। नित्यधर्म में तत्पर सज्जनों की गति गोविन्द तुम्हारा प्रिय करने के लिये देवताओं के जो शत्रु थे उन प्रमुख-प्रमुख दानवों को मार डाला। वे सबकी आत्मा वाले रामावतार धारण कर रावण को मार डाले, इसी तरह अन्य अवतारों में भी शौर्यादि गुणों से युक्त हो जैसे सिंह हाथी को मार डालता है वैसे ही असुरों को मार डाला। सभी उत्तम प्राणधारियों में भी उत्तम जगत् के स्वामी तुम्हारे छोटे भाई जगत् के हित के लिये आज भी मनुष्य लोक में निवास कर रहे हैं। जटा, मृगचर्म तथा दण्ड धारण कर तृण के मध्य प्रचण्ड अग्नि के समान दैत्यों के बीच विचरते हुए हरि को मैंने देखा है।।३१-४०।।

दानवों के विशाल समूहों से व्याप्त जगत् में संसार के कल्याण के लिये दानवों से विहीन करते हुए गोविन्द को मैंने देखा है। हे अमरश्रेष्ठ! पारिजात को जनार्दन अवश्य द्वारका ले जायेंगे, यह तुमसे मैं सत्य कहता हूँ।

हे वासव! भाई के स्नेह से वशीभूत हो तुम उनके ऊपर प्रहार नहीं करोगे और न तुम्हारे जैसे जेठे भाई के ऊपर श्रीकृष्ण ही प्रहार करेंगे। हे देव! यदि हमारी बात को किसी प्रकार नहीं सुनना चाहते हो तो जो तुम्हारे हितकारी मन्त्री हैं उन नीति और धर्म को जानने वाले अपने मन्त्रियों से पूछो। वैशम्पायनजी बोले-हे जनमेजय! नारदजी के इस प्रकार कहने पर महेन्द्र ने जगत्गुरु ईश श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में यह उत्तर दिया-हे द्विज! जो श्रीकृष्ण को इस प्रकार प्रभावशाली कह रहे हो तो हे मुने! इस प्रकार का बहुत कुछ मैंने सुना है। जब श्रीकृष्ण इस प्रकार प्रभावशाली हैं तब तो मै सज्जनों के धर्म का स्मरण कर देने योग्य भी पारिजात को नहीं दूँगा। क्योकिं जो महाप्रभावशाली होता है वह थोड़े से प्रयोजन के लिये रुष्ट नहीं होता यह सोचता हुआ मैं सब प्रकार से तैयार हूँ। हे मुने! आपका कल्याण हो। महाप्रभावशाली पुरुष ज्ञानचक्षु वाले वृद्ध पुरुषों की बातों को सुनने वाले तथा सहनशील होते हैं। धर्मधारियों में श्रेष्ठ महात्मा श्रीकृष्ण क्या थोड़े से प्रयोजन के लिये अपने ज्येष्ठ भाई के साथ विरोध करेंगे?।।४१-५०।।

जैसे अधोक्षज श्रीकृष्ण मेरी माता को वर दिये हैं वैसे ही उसके ज्येष्ठ पुत्रों के प्रति सहनशीलता भी रखनी चाहिये। जिस प्रकार जनार्दन अपनी इच्छा से इन्द्र के छोटे भाई बने उसी प्रकार उनको इन्द्र का सम्मान भी करना उचित है। प्राचीन काल में क्या वामन अवतार धारण कर इन देव श्रीकृष्ण ने मुझे ज्येष्ठ नहीं बनाया? अब इस समय मधुसूदन स्वयं ज्येष्ठ बनना चाहते हैं। बल दैत्य के शत्रु इन्द्र का निश्चय सुन तथा उनसे विदा हो धर्मचारी धैर्य बुद्धिवाले तपोधन नारदजी यदु वृषभ श्रीकृष्ण से अभिरक्षित द्वारका पुरी को चले गये।।५१-५४।।



अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः।।७२।।

वैशम्पायनजी बोले कि-मुनिसत्तम नारद जी द्वारका पहुँच कर अरिन्दम पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्ण का दर्शन किये। वे सत्यभामा के साथ सुख से

अपने भवन में बैठे थे और सभी तेजों को अतिक्रमण करने वाले अपने शरीर के तेज से शोभायमान हो रहे थे। दृढ़व्रती महात्मा श्रीकृष्ण उसी बात का चिन्तन कर रहे थे और केवल वाणी मात्र से सत्यभामा को आश्वासन दे रहे थे। नारद जी को आया देख कर अधोक्षज उठ कर विधि-विधान से उनका स्वागत किये। पश्चात् श्रम रहित हो जाने के बाद सुख से बैठे हुए नारद जी से हँसकर मधुसूदन पारिजात तरु के बारे में समाचार पूछने लगे। हे जनमेजयजी! तब तपोधन मुनि ने इन्द्र के छोटे भाई से इन्द्र की सम्पूर्ण बातें विस्तार से कह दीं। श्रीकृष्ण जी वह सब सुन कर नारद जी से बोले कि हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ! मैं कल अमरावतीपुरी को जाऊँगा। ऐसा कह कर वे नारद जी को साथ ले सागर को चले गये और वहाँ एकान्त में जा नारद को आदेश दिया कि हे तपोधन। आप आज ही महेन्द्र के भवन जाकर महात्मा इन्द्र से प्रणाम कह कर मेरे वचनों को कहना। हे इन्द्र! मेरे प्रभु श्रीकृष्ण के समक्ष तुम्हें युद्ध में खड़ा होना उचित नहीं है, पारिजात को ले जाने के लिये उनका विचार निश्चित हो चुका है।।१-१०।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण की बात सुन कर नारद जी स्वर्ग को चले गये और अमित तेजस्वी इन्द्र से श्रीकृष्ण की बात कह दिये। हे कुरुनन्दन! तत्पश्चात् बलनाशन इन्द्र ने यह सब बातें गुरु बृहस्पतिजी से कहीं तब यह सब सुन बृहस्पतिजी इन्द्र से बोले। अहो धिक्कार है, हे शतक्रतो! मेरे ब्रह्मलोक चले जाने पर आपने यह धिक्कार के योग्य दुर्नीति से युक्त कार्य का आरम्भ कैसे कर दिया? इसमें तो बड़े भयंकर झगड़े की सम्भावना है। हे भुवनेश्वर देव! आपने मुझसे बिना कहे यह कृत्य किस कारण से और कैसे आरम्भ कर दिया। अथवा ठीक ही है कर्म के अनुसार ही भवितव्यतावश जगत् में विविध प्रकार की घटना घटा करती है, हे वृत्रघ्न! जिनका निवारण करना शक्ति से बाहर है। सहसा किसी कार्य को आरम्भ करना अच्छा नहीं होता, यह सहसा आरम्भ किया गया कार्य आपको छोटा बना देगा। महात्मा बृहस्पति से इन्द्र ने कहा कि ऐसी समस्या तो उपस्थित हो गई है, अब मुझे क्या करना चाहिये सो आप बतलावें। भूत-भविष्य के तत्त्वज्ञाता धर्मात्मा उदार बुद्धि बृहस्पति जी

नीचे मुख कर सोच समझ कर इन्द्र से बोले। अब पहले तुम पुत्र को साथ ले जनार्दन से यत्नपूर्वक युद्ध करो इसके बाद जैसा उचित होगा वैसा किया जायेगा। इस प्रकार कह कर बृहस्पति जी क्षीरोद सागर को चले गये और सभी बातें महात्मा कश्यप से कह दिये।।११-२०।।

वह सब बातें सुन कर कश्यप ऋषि क्रुद्ध हो बृहस्पति जी से कहे कि, अवश्य ऐसा होकर रहेगा इसमें संशय नहीं है। क्योंकि इन्द्र ने गौतम गोत्र वाले महर्षि देवशर्मा के सदृश अर्थात् उनकी ही तरह शुद्ध आत्मा वाली पत्नी अहल्या को काम भाव से चाहा था इसलिये मुनि के अपध्यान कृत दोष से यह शतक्रतु इन्द्र पतित हो रहा है। उस दोष की शान्ति के लिये हे मुने! मैंने जल में वास करना आरम्भ किया परन्तु वह दारुण दोष प्राप्त होकर ही रहा। हे तपोधन! अब मैं इसके मध्य में अदिति के साथ जाऊँगा और यदि भाग्य साथ दिया तो दोनों का वारण करूँगा अर्थात् झगड़े से रोक दूँगा। धर्मात्मा बृहस्पति ने मरीचि पुत्र कश्यप से कहा कि हे तपोधन! समय आने पर आप का वहाँ उपस्थित होना आवश्यक है। ऐसा ही होगा कह बृहस्पति को विदा कर कश्यप जी भूत-गणों के स्वामी देवता रुद्र का पूजन करने चल पड़े। अदिति के साथ बुद्धिमान् समर्थशाली कश्यप ने वर की लिप्सा से दयालु महात्मा वृषभध्वज की पूजा की और वेदोक्त स्तोत्रों से तथा स्वयं अपने बनाये स्तोत्रों से स्तुत्य जगत्-गुरु ईशान की कश्यप मुनि स्तुति करने लगे। त्रैलोक्याक्रमण समर्थ विश्वकर्मा, जगत् स्रष्टा, धर्म से देखने योग्य, वरेश, सर्वात्मक, सात्त्विकी धृति-निष्ठा के धाम, दिव्य रूप वाले विश्वेश्वर भगवान् को मैं सम्यक् प्रकार से नमस्कार करता हूँ। जो देवताओं के स्वामी और पापहर्ता हैं, जो जगन्मय होने से स्वयं विश्वरूप हैं, जिनका जल गर्भ है, जो चैतन्य रूप धारण करने वाले हैं ऐसे विश्वेश्वर की मैं शरण लेता हूँ।।२१-३०।।

इन्द्र के द्वारा प्रदत्त इन्द्रियजन्य सुख रूपी-भेड़िये को यति रूप जितेन्द्रिय होकर मार डालते हैं, जो शमादि रूप हितों के प्रेरक हैं ऐसे विरूपाक्ष, सुदर्शन, पुण्ययोनि विश्वेश्वर को मैं शिर से प्रणाम करता हूँ। जो जगत् के एक अर्थात् सर्वश्रेष्ठ स्वामी विश्व के पवित्र आत्माओं का पालन

करते हैं अथवा सूक्ष्म रूप से विश्व का भोजन अर्थात् संहार करते हैं, जो सूर्यादिकों के प्रकाश स्थान हैं, जो अभय रूप हैं ऐसे सोमपान तथा मरीचिपान करने वालों में श्रेष्ठ शंकर भगवान् अपने निरन्तर चमकने वाले तेज से मेरा पोषण करें। जो अथर्व वेद द्वारा प्रतिपाद्य सुन्दर पाँच शिर वाले हैं जो जगत् के कारण तथा पुण्यशील वीर एवं दानवों के बाधक हैं ऐसे यज्ञ में आहुति को प्राप्त करने वाले विशुद्ध विश्वेश्वर महादेव की मैं शरण में हूँ। जिनकी आत्मा से जगत् का जाल, इन्द्र-जाल की भाँति फैलकर विश्व यह संज्ञा प्राप्त करता है ऐसे विश्वात्मा जो शरणागतों को प्रसन्नता प्रदान करते हैं, जो ऊपर को जाने वाले रथ पर आरूढ़ होकर चलने में समर्थ हैं ऐसे विश्व के ईश्वर मेरे पर सदा प्रसन्न मन वाले हों। अन्तःकरण में विचरण करने वाले चिन्मय सुन्दर वेदों की शाखा वाले महाबली धर्म नेता, स्तुत्य, सहस्र नेत्रों वाले तथा सैकड़ों प्रकार के विहित कर्मों के फलदाता, विश्व की रचना करने वाले महादेव जी को मैं नमस्कार करता हूँ। पवित्र योग द्वारा प्राप्त वेद द्वारा प्रशंसित, सबका संहार करने वाले सुख के हेतु सुख कर जगत् के धुर को धारण करने वाले चन्द्रमौलि, कालादिकों के आश्रय भूत महादेव जी को मैं शिर से नमस्कार करता हूँ। शीघ्र फल देने वाले, रागादि दोषों को कृशित कर देने वाले, शमादि गुणों की वृद्धि करने वाले, प्रातः सवनादि क्रम से गर्जने वाले, अनुष्ठित यज्ञादि रूप धर्म को शीघ्र पूर्ण करने वाले, पुण्य को धारण करने वाले, सत्त्व शुद्धि की क्रिया वाले, सर्व स्वरूप, धृत व्रत, त्रिशूल को धारण करने वाले शंकर जी की मैं शरण में हूँ। अनन्त पराक्रम वाले, कर्म के फल को धारण करने वाले, यज्ञाङ्गभाव से हीन स्वतः पुरुषार्थ वाले याजन करने वालों को, यज्ञ-बुद्धि देने वाले, हवि पाने वाले, भुवनों में सदा सबसे बड़े ऐसे धर्म को धारण करने वाले ब्राह्मण प्रिय शंकर जी की शरण हूँ। गुणों से परे विष्णु स्वरूप, कीर्ति के शिखर, अपने प्रिय रूप से जगत् को मोहने वाले, विशुद्धात्मा पुरुष, सत्य के धाम और दुष्कर्मियों को सम्मोहित करने वाले शंकर जी को मैं नमस्कार करता हूँ। योगियों के लिये ॐकार अर्थात् सर्व प्रपंच रूप ॐकार के शिर अर्थात् अर्ध मात्रा स्वरूप, हिंसा से शून्य, धर्म

स्वरूप, दृढ़व्रती, दृढ़ धनुष वाले, क्षेपण क्रिया रूप, धनुर्वेदविद्, सभी अस्त्रों से अधिक पराक्रमी, जीवों के पति तथा सबका संहार करने वाले शंकरजी को मैं नमस्कार करता हूँ।।३१-४०।।

भक्तों के एक मित्र, भूत-भविष्य रूप, अग्नि मुख से हवि का भक्षण करने वाले, कामादि दोषों को नष्ट करने वाले, शत्रुओं का वध करने वाले, अपने विभाग के भागी एवं पाप-पुण्यों का विभाजन करने वाले भगवान् शिव मेरी रक्षा करें। जो जगत् में एक होते हुए भी जल में चन्द्रमा की भाँति विश्व में प्रवेश करते हैं, जो मरुतों के भी प्राणदाता अर्थात् जो प्राणों के भी प्राण हैं, जो दयालुता के भाव से प्राणियों की मित्रता सेवन किये हैं वे पुण्यशीलों के कल्याण के लिये मुझसे प्रीति करें। इसीलिये चतुर्मुख ब्रह्मा ने भुवनोत्तम सत्यलोक की रचना की और वे ब्रह्मवित् हैं, छै गुणों-ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, श्री, वैराग्य और धर्म से पूर्ण हैं तथा इस पूर्णता के कारण ही व्याहृति के अन्दर स्थित रहने वाले चराचर सम्पूर्ण जगत्-प्रपंच को रचकर उसमें प्रविष्ट हैं, ये छवो गुण-सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बोध, स्वतन्त्रता, सदा प्रकट शक्ति तथा अनन्त शक्ति महेश्वर के ही हैं, इसीलिये शंकरजी बहुत रूप वाले और कामादि दोषों को नष्ट करने वाले कहे जाते हैं। वे व्यञ्जन अर्थात् इन्द्रियों को जीतने वाले योगियों की भी इन्द्रियों के अर्थों के ज्ञापक हैं, अजन्मा हैं विद्वान् तथा आत्मदर्शी विषयों को स्पर्श करने वाले स्पर्श-भोक्ता और सबके प्राणदाता, गज चर्म को धारण करने वाले परमानन्द स्वरूप वायु के स्वामी, पत्नी पार्वती के सहित यज्ञों को पूर्ण करने वाले, यज्ञ फल देने वाले सार पदार्थ को धारण करने वाले हैं। ऐसे त्रिनेत्र पुष्टि को देने वाले, हम लोगों के लिये धर्म को कहने वाले, याज्ञिक ब्राह्मणों को वर देने वाले, श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ रण-विजेता, देवताओं के भी देवता ईश रुद्र की मैं शरण हूँ। देवताओं के अग्नि रूप से मुख, दुष्कर्मियों का अन्त कर देने वाले तीन प्रकार के स्तोत्र हैं जिसमें ऐसे सोमयाग स्वरूप, संसार वृक्ष को काटने वाले, कर्म साक्षी, प्राणियों के लय स्थान, भूतों के पति, गुणज्ञ तथा गुण के रूप रुद्र की शरण हूँ। यज्ञ के कर्ता, अन्त, मध्य, आद्य और यज्ञ कर्ताओं के लिये साम्य स्वरूप, वेदोक्त यज्ञों में

नाना प्रकार दैवत रूप से कहे गये, धर्म रूप ईश रुद्र की शरण हूँ। गज चर्म के वस्त्र धारण करने वाले, व्रती, मेखला से अलंकृत, थोड़े तप से प्रसन्न होने वाले क्रोध के स्वामी, पाप रहित, भूत (नित्य सिद्ध) क्षेत्रज्ञ, गुणी ऐसे कपर्दी वन्दनीय ईश को नमस्कार करता हूँ। देवों के भी देव, पवित्रों को भी पवित्र करने वाले, यज्ञों के भी यज्ञ महानों की महान् सैकड़ों आत्मा वाले अर्थात् अनन्तमूर्ति, इन्द्रिय-अधिष्ठातृ देवताओं से सम्यक् स्तुत तथा उनके पति ऐसे देव रुद्र की मैं शरण प्राप्त होता हूँ। सभी के अन्तःकरण में विचरने वाले पुरुष, गुप्त चिह्न से विख्यात, नीलकण्ठ, स्वयं प्रभावशाली, प्रणव रूप, सूर्यादिकों को भी ज्योतिष्मान् करने वाले, नष्ट न होने वाले आत्मा के परम कारण ऐसे शुभ गणों से युक्त महादेव को मैं साष्टांग प्रणाम करता हूँ।।४१-५०।।

जगत् और जीव इन दोनों के प्रसूति स्थान तथा प्रसूत नहीं है, अर्थात् कारणातीत होने से सूक्ष्म अर्थात् दुर्ग्राह्य, भूतों से पृथक् नहीं फिर भी एक पृथक् भूत, स्वयंभूत अर्थात् स्वयंभू, सम्पूर्ण जगत् को अपने में लय करने वाले दाताओं में श्रेष्ठ और आम्रादिक फलों में स्वाद के प्रकाशक तथा हर्ष के स्थान शंकर जी मेरी रक्षा करें। साधकों के निकट स्वतंत्रता पूर्वक अन्तर्यामी रूप से गमन करने वाले, श्रद्धा वालों को अहं ब्रह्मास्मि इस महावाक्य की प्रेरणा देने वाले, गणों तथा सात्त्विक यज्ञ करने वाले श्रेष्ठ सज्जनों के स्वामी, इच्छुकों की इच्छा पूर्ण करने वाले तथा सर्वज्ञत्वादि छवों गुणों को पूर्ण करने वाले शंकर जी को मेरी रक्षा करनी चाहिये। हृदयस्थ तथा बाहरी सांसारिक काम-मोहादि क्लेशों के विनष्टकर्ता संसार के निमित्त कारण प्राणियों को उत्पन्न करने तथा उन्हें विकार को प्राप्त कराने वाले, आयुधों को धारण किये, पुण्यात्माओं के लिये उत्तम तेज धारण करने वाले देवों के देव महादेव हमारे पापों को नष्ट करें। देवताओं के महान् अपराध को नष्ट करने वाले मायावी त्रिपुरों को अपने शर की अग्नि से उनके पुर में अग्नि लगा कर पुर दाह के द्वारा कण्टक की भाँति जला दिया ऐसे विश्व के प्रमुख रक्षक ईश मेरी रक्षा करें। अधिक भाग पाने की इच्छा वाले देवताओं के भाग का अन्त करने वाले अर्थात् अपमान से उनके वध की इच्छा वाले जिन महादेव जी ने दक्ष के यज्ञ

का विध्वंस करा दिया तब वह यज्ञेश की शरण में आया ऐसे दक्ष यज्ञ के विध्वंस-कारण, यज्ञ के आदि तथा अन्त, जिनका विद्वान् उदाहरण देते हैं ऐसे ईश शंकर जी मेरी रक्षा करें। जो जगत् की रचना कर उसका संहार कर देते हैं, जो गुप्त रूप से पालनकर्ता हैं, जो धन्य और पवित्रात्मा हैं, जो शमादि संस्कार से युक्त हैं, जिनके इन्द्र और अग्नि प्रधान मुख हैं, जो ऐश्वर्यादि छवों गुणों के प्रमुख स्थान हैं और जो नित्य अभेद दृष्टि से ईश्वर को सर्वत्र देखने वाले हैं ऐसे महादेव मेरी रक्षा करें। उत्पत्ति, स्थिति तथा सहांर जिस देवता के नित्य गुण हैं, जिनके अन्दर सत्त्व की अधिकता है, जो विष्णु के रूप से आविर्भूत हुआ है, इन्द्रादिक रक्षकों के भी रक्षक हैं, जो विश्व के माता-पिता की भाँति पालक हैं और जो जगत्-पीडकों को क्रुद्ध होकर नष्ट कर देते हैं तथा दुष्कर्मियों का नाश कर देते हैं। जिनके तेज समूह से हरि और ब्रह्मा सनकादि पुत्रों तथा मरीचि आदि ऋषियों के सहित उमा के साथ शिव जो भवन द्वार में पराजित हो प्रवेश नहीं कर सकते ऐसे परोपकारी जनों के रक्षक मेरे कल्याण के लिये प्रसन्न हों। जिनसे प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति तथा अन्त होता है, गृह से पराजित श्रेष्ठ पुरुष जो एकमात्र शिव जी की शरण लेते हैं ऐसे महात्माओं पर जिनका बड़ा अनुग्रह होता है और जिनकी कृपा से गुप्त वस्तुओं का भी श्रवण होता है। त्रिनेत्र, सबके ईश, लिंग चिह्न को धारण करने वाले हैं, सबको धारण करने वाली उमा भग चिह्न से अंकित हैं, इन दोनों के अलावे तीसरा कोई जगत् में नहीं है, इसीलिये आप सर्व-सर्वेश्वर कहे जाते हैं अतः मुझे दर्शन दें।।५१-६०।।

इस प्रकार सम्यक् स्तूयमान भगवान् वृषभध्वज ने धर्मधारियों में श्रेष्ठ कश्यप ऋषि को दर्शन दिया। अन्तरात्मा से प्रसन्न होकर देवों के ईश कश्यप जी से बोले कि, हे प्रजापते! जिस प्रयोजन के लिये तुम स्तुति कर रहे हो उसको मैं जानता हूँ। इन्द्र और श्रीकृष्ण दोनों ही महात्मा स्वास्थ्य को प्राप्त होंगे परन्तु धर्मात्मा जनार्दन पारिजात को ले जायेंगे। हे कश्यप! इसने पहले तप से अत्यन्त चमकने वाले मुनि की भार्या को चाहा था, इसलिये मुनि देवशर्मा द्वारा महेन्द्र शापित हो चुका है। हे धर्मज्ञ! दोनों पुत्रों के कल्याण के

लिये तुम दाक्षायणी अदिति के साथ वहाँ इन्द्र-भवन को जाओ। इस प्रकार शंकर जी के वचन को सुन कर ब्रह्मा के आत्मज मरीचि पुत्र अमित तेजस्वी विद्वान् कश्यप जी प्रसन्न मन हो देवताओं के गुरु शंकर जी को प्रणाम कर स्वर्ग लोक को चले गये।।६१-६६।।



अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।।७३।।

वैशम्पायनजी बोले कि-उधर महातेजस्वी विष्णु सूर्य के उदय होने पर आखेट के व्याज से रैवतक पर्वत पर चले गये। उन्होंने एक रथ पर नरश्रेष्ठ सात्यकि को चढ़ा लिया और हे कुरुकुल को वहन करने वाले जनमेजयजी! उन्होंने प्रद्युम्न को अपने पीछे आने को कहा। रैवतक पर्वत पर जाकर श्रीकृष्ण ने दारुक से कहा कि हे दारुक! तुम मेरे इस रथ को यहीं रोक कर मेरी प्रतीक्षा करो हे सौम्य! दोपहर तक घोड़ों को रोके रहना हे सूतश्रेष्ठ! मैं रथ के द्वारा ही द्वारका में प्रवेश करूँगा। दारुक को ऐसा आदेश देकर अमित पराक्रमी बुद्धिमान श्रीकृष्ण जय के लिये उद्यत हो सात्यकि के साथ गरुड़ पर सवार हो चल दिये। हे कुरुवंशी राजन्! शत्रुसूदन प्रद्युम्न अलग एक आकाशगामी रथ पर चढ़ कर श्रीकृष्णजी के पीछे चले। बुद्धिमान् हरि क्षणमात्र में ही पारिजात हरण की इच्छा से देवताओं के बगीचा नन्दन बन को चले गये। भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ नाना प्रकार के आयुधों को धारण करने वाले वीर देवयोद्धों को देखा जो कि नन्दन वन की रक्षा कर रहे थे। हे भारत! सज्जनों की गति महाबली श्रीकृष्ण ने उन वीरों के देखते-देखते पारिजात को सरलता से उखाड़ कर गरुड़ पर रख लिया; तब वह पारिजात शरीर धारण कर भयभीत हो केशव के समक्ष खड़ा हो गया।।१-१०।।

हे भारत! वासुदेव ने पारिजात को सान्त्वना दिया और महात्मा केशव ने कहा कि, हे वृक्षराज! तुम भय न करो। अपने साथ चलने के लिये उद्यत पारिजात को देखकर श्रीकृष्णजी श्रेष्ठ अमरावती पुरी की प्रदक्षिणा करने लगे। हे नृप! वे नन्दन वन के रक्षक इन्द्र के पास जाकर कहने लगे कि वृक्षों

में उत्तम पारिजात वृक्ष का हरण किया जा रहा है। तब इन्द्र ऐरावत पर चढ़ कर चले और उनके पीछे जयन्त रथ पर चढ़ कर चला। इन्द्र पुरी से बाहर निकलते ही पूर्व दिशा के दरवाजे पर शत्रुनाशन अभ्यागत केशव को देखकर इन्द्र ने कहा हे मधुसूदन! यह क्या करने के लिये प्रवृत्त हुए हो। गरुड़ पर चढ़े हुए केशव इन्द्र को प्रणाम कर बोले कि आपके वधू के पुण्य कार्य के लिये यह वृक्ष श्रेष्ठ पारिजात ले जा रहे हैं। तब इन्द्र ने उनसे कहा कि हे पुष्करेक्षण! तुम ऐसा न करो हे अच्युत! तुम बिना युद्ध किये पारिजात को नहीं ले जा सकते हो। हे महाबाहु केशव! पहले मेरे ऊपर प्रहार कीजिये, आप अपनी कौमोदकी गदा मेरे ऊपर चलाइये जिससे आपकी प्रतिज्ञा सफल हो जाय। हे भारत! इसके बाद हँसते हुए श्रीकृष्ण बिजली के समान चमकते तीखे बाणों से देवराज के उत्तम हाथी ऐरावत को मारने लगे। फिर तो वज्र धारण करने वाले इन्द्र भी दिव्य श्रेष्ठ बाणों से गरुड़ को वेधने लगे और स्फूर्ति करने वाले केशव के बाणों को सहसा काटने लगे।।११-२०।।

इन्द्र जिन-जिन बाणों का प्रयोग करते उन्हें माधव भी काटने लगे और माधव के द्वारा प्रयुक्त बाणों को इन्द्र काटने लगे। महेन्द्र के धनुष के शब्द से तथा उपेन्द्र के शार्ङ्ग धनुष के निनाद से स्वर्गवासी बार-बार घबराने लगे। जिस समय इन दोनों समर्थशालियों का संग्राम हो रहा था उस समय बली जयन्त पारिजात को छिन लेने के लिये गरुड़ के समीप पहुँचा तो कंस को मारने वाले गरुडस्थ महाबली श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न से कहा कि इसे हटाओ, तब रुक्मिणी-पुत्र प्रतापी प्रद्युम्न उसे हटाने लगे तो जेताओं में श्रेष्ठ रथ में बैठा हँसता हुआ जयन्त प्रद्युम्न के सम्पूर्ण शरीर में बाणों से मारने लगा। कमलनेत्र प्रद्युम्न भी रथ में बैठे-बैठे रथी इन्द्र-पुत्र जयन्त को सर्प के समान बाणों से व्यथित करने लगे। हे कुरुनन्दन! जयन्त और वीर रुक्मिणी-पुत्र का वह तुमुल संग्राम हुआ, महेन्द्र और उपेन्द्र के जगत् प्रसिद्ध अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ महाबली दोनों पुत्र अस्त्र-शस्त्रों को एक दूसरे पर चलाने तथा चलाये अस्त्रों का प्रतिकार करने लगे। उस महाघोर संग्राम को देवता, मुनि और चारणों सहित सिद्ध आश्चर्य से चकित हो देखने लगे। हे कुरुनन्दन! इसी बीच प्रवर नामक महाबली देवदूत

पुनः पारिजात को हरण करने की इच्छा करने लगा।।२१-३०।।

हे कुरुनन्दन! वह इन्द्र का सखा महास्त्रों को चलाने में कुशल था और ब्रह्मा के वरदान से वह सभी से अवध्य था। हे राजन्! तप से सिद्ध वह ब्राह्मण था और जम्बूद्वीप का रहने वाला था, अपनी शक्ति के बल से स्वर्ग में आया था और बलघाती इन्द्र से मित्रता की थी। उसको अपनी ओर आता देखकर श्रीकृष्ण ने सात्यकि से कहा कि हे सात्यके! यहीं बैठे-बैठे बाणों द्वारा प्रवर को रोको। हे सात्यके! तुम निर्दय होकर बाण न छोड़ना क्योंकि ब्राह्मण की चंचलता सर्वथा सहन करनी चाहिये। हे महाबाहो! इसके पश्चात् प्रवर ने रथीय साठ बाणों से सात्यकि को अत्यन्त पीड़ित कर दिया। शिनि पौत्र सात्यकि ने प्रवर के छोड़े गये बाणों को काट गिराया और पुरुष व्याघ्र सात्यकि ने यह कहा कि ब्राह्मण को मारना उचित नहीं है, इसलिये अपने मार्ग पर स्थित रहो, यादवों के लिये तो अपराध करने पर भी ब्राह्मण अवध्य ही है। हे कुरुनन्दन! प्रवर ने हँसकर सात्यकि से कहा कि हे शूर! मनुष्यों पर दया रहने दो, तुम आत्मा की भरपूर शक्ति से युद्ध करो। हे यादव! मैं भी जभदग्नि-पुत्र परशुराम का शिष्य हूँ, मेरा नाम प्रवर है, मैं बुद्धिमान् इन्द्र का मित्र हूँ। मधुसूदन के गौरव को मानकर देवता इनसे युद्ध नहीं करना चाहते, परन्तु हे माधव! मैं आज आपसे युद्ध कर मित्र के ऋण से उऋण हो जाना चाहता हूँ।।३१-४०।।

हे नरव्याघ्र! फिर तो सात्यकि तथा द्विजश्रेष्ठ प्रवर का दिव्य अस्त्रों द्वारा होनेवाला संग्राम बढ़कर भयंकर रूप धारण कर लिया। हे राजन्! उन महात्माओं के संग्राम से स्वर्ग काँपने लगा तथा हजारो की संख्या में पर्वत हिलने लगे। रण में श्रीकृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ इन्द्र-पुत्र जयन्त को न परास्त कर सके और न इन्द्र-पुत्र जयन्त ही श्रीकृष्ण-पुत्र शूरश्रेष्ठ मायावी प्रद्युम्न को परास्त कर सका। हे नरश्रेष्ठ! दोनों योद्धा परस्पर एक दूसरे को जीतने की इच्छा से युद्ध कर रहे थे, हे हन्त! "प्रहरण करो, प्रहार करो" ऐसा कह रहे थे। हे राजन्! इसके पश्चात् शार्ङ्ग धनुषधारी श्रीकृष्ण के पुत्र को शची-पुत्र जयन्त ने कटु बचन कह कर शीघ्रतापूर्वक दिव्य अस्त्र से

मारा। तेज जलते हुए अस्त्र को अपनी तरफ आते देख प्रद्युम्न ने तीक्ष्ण बाण जालो से उसे स्तम्भित कर दिया इससे वह आश्चर्य की भाँति प्रतीत हुआ। हे कौरव्य! इसके बाद जलता हुआ दानवों को मर्दन करने वाला वह भयंकर अस्त्र रुक्मिणी-पुत्र के सामने रण-भूमि पर गिर पड़ा। गिरने पर भी उस अग्न्यास्त्र से महात्मा प्रद्युम्न का रथ जल गया पर हे नराधिप! दुस्सह वह अस्त्र रुक्मिणी-पुत्र को नही जलाया। हे विशाम्पते! उद्धत अग्नि, अग्नि को नहीं जलाता यह निश्चय है, रुक्मिणी-पुत्र जलते हुए रथ से कूद पड़े। रथियों में श्रेष्ठ नारायण-पुत्र रथ रहित हो आकाश में स्थित हो गये और धनुष ले जयन्त से यह बोले कि।।४१-५०।।

हे महेन्द्र-पुत्र! जो तुमने यह दिव्य अस्त्र मुझ पर छोड़ा है तो ऐसे सैकड़ों दिव्य अस्त्रों से भी तुम मुझे नहीं मार सकते। तुम और अपनी अस्त्र-विद्या को प्रकाशित करो तथा अपना पराक्रम मुझे दिखलाओ हे अमरनन्दन! मुझे संग्राम में परास्त करने वाला कोई नहीं है। आयुध धारण कर रथ में बैठे तुम्हें देख कर पहले मुझे भय हुआ था पर इस समय तुम्हारे थोड़े बल को देख कर मेरा भय बिल्कुल जाता रहा। तुम केवल मन से स्मरण करते रहो कि वह यही पारिजात है जो मेरे वन में था पर तुम इसका हाथों से नहीं छू सकते हो। तुमने अस्त्रों की अग्नि से जो मायामय रथ को जलाये हो इससे तुम विजयी नहीं बन सकते क्योंकि ऐसे हजारों रथों की रचना मैं माया के द्वारा कर सकता हूँ। इस प्रकार की बातें सुन कर महाबली जयन्त अपने अमित तेज से तपस्या द्वारा प्राप्त किये हुए अस्त्र को प्रद्युम्न पर छोड़ा। प्रद्युम्न ने उस महाप्रतापी अस्त्र को अपने बाण-जालों से निवारण कर दिया इसके बाद जयन्त ने फिर उससे भी अधिक शक्ति वाले चार दिव्य अस्त्रों को छोड़ा। हे, भारत! उन अस्त्रों ने सम्पूर्ण दिशाओं को घेर लिया और पश्चात् पाँचवें प्रयुक्त बाण ने आकाश में महात्मा प्रद्युम्न को घेर लिया। हे अमर श्रेष्ठ! जयन्त ने भयंकर बिजली के समान बाणों तथा जिन-जिन भयंकर अस्त्रों का प्रद्युम्न के प्रति प्रयोग किया उन सभी अस्त्रों को कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न ने अपने बाण समूहों से निवारण कर दिया और अन्य तीक्ष्ण बाणों से जयन्त को मारा।।५१-६०।।

महात्मा प्रद्युम्न के धैर्य तथा शीघ्रता को देख कर पुण्य कर्म करने वाले देवता गर्जने लगे। हे भारत! इधर शिनि श्रेष्ठ सात्यकि ने तीखे बाण से प्रवर के धनुष को तथा हाथ को सुरक्षित रखने वाले हस्त-त्राण को काट दिया। तब प्रवर ने महेन्द्र द्वारा दिये गये बज्र के समान शब्द करने वाले बड़े उत्तम धनुष को धारण कर लिया। विप्र श्रेष्ठ प्रवर उस धनुष से सूर्य के समान तेजस्वी अनेक प्रकार के बाणों को छोड़ने लगा। और शिनिपुत्र के पुत्र अमित बली सात्यकि के धनुष को काट दिया तथा सात्यकि के सम्पूर्ण शरीर में बाण मारने लगा। हे कुरुनन्दन! सात्यकि ने पुनः दूसरा भार सहन करने वाला दृढ़ धनुष धारण कर रण में प्रवर को पीड़ित किया। उन दोनों वीरों ने आपस में तीक्ष्ण बाणों को मार कर कवच को उजाड़ दिया और मर्मभेदी बाणों को चला कर शरीर से मांस तक उचार लिया। फिर वीर प्रवर ने आठ धार वाले बाण से सात्यकि के धनुष के दो टुकड़े कर दिये और उनको तीन बाणों से मारा। जब सात्यकि दूसरा धनुष ग्रहण करने का मन में विचार किये तो उसी समय फुर्तीले हाथ वाले प्रवर ने उन्हें गदा से मारा। गदा की चोट से अत्यन्त पीड़ित बुद्धिमान् सात्यकि ने हँसते हुए धनुष न ग्रहण कर ढाल-तलवार उठा लिया तब प्रवर ने सात्यकि को सैकड़ों बाण मारे।।६१-७०।।

बाण प्रहार से मुठिया और तलवार टूट जाने से यदुनन्दन सात्यकि को विकल हस्त समझ कर प्रद्युम्न ने निर्मल आकाश की भाँति चमकने वाला खड्ग दिया। तब प्रवर ने भल्ल नामक बाण से उस खड्ग को भी काट दिया और हँसते हुए उसकी मुठिया भी काट गिरायी और शीघ्र चलने वाले तीक्ष्ण बाण से सात्यकि की ढाल में भी छिद्र कर दिया तथा उनके वक्षस्थल पर शक्ति मारा और गर्जने लगा। फिर सात्यकि को विकल जानकर प्रवर पारिजात हरण की इच्छा से गरुड़ के समीप जा रथ पर खड़ा हो गया। गरुड़ ने उसे अपने पंखों के वायु से ढाई कोस को दूरी पर फेंक दिया वह रथ सहित गिर पड़ा और मूर्छित हो गया। तब जयन्त वहाँ जाकर गिरे हुए उस ब्राह्मण को आश्वासन देकर शीघ्र रथ पर चढ़ा लिया। इधर मूर्छा से बार-बार गिरते शिनि-पौत्र सात्यकि को प्रद्युम्न आश्वासन देते हुए अपने चाचा को सहलाने

लगे। मधुसूदन ने अपने बायें हाथ से सात्यकि को स्पर्श किया तब श्रीकृष्ण के स्पर्श करने मात्र से ही सात्यकि पीड़ा से रहित हो गये। इसके बाद पारिजात के दाहिने तरफ प्रद्युम्न और बायें तरफ शिनि कुल श्रेष्ठ सात्यकि, युद्ध-कुशल दोनों वीर खड़े हो गये। इसी समय जयन्त और प्रवर दोनों एक ही रथ पर चढ़ कर गरुड़ पर आक्रमण करने चले तो महात्मा महेन्द्र ने हँस कर कहा कि-।।७१-८०।।

तुम लोग गरुड़ के समीप न जाओ यह विनता-पुत्र पक्षियों का राजा तथा बड़ा बलवान् है। तुम दोनों आयुध धारण कर मेरे दाहिने और बाये खड़े होकर मुझे युद्ध करते हुए देखो। ऐसा कहने पर दोनों वीर इन्द्र के अगल-बगल खड़े होकर देवराज और श्रीकृष्ण का युद्ध देखने लगे। इन्द्र महास्त्र-श्रेष्ठ वज्र के समान शब्द करने वाले बाणों से गरुड़ के सम्पूर्ण शरीर में मारने लगे। परन्तु उन बाणों की परवाह न करते हुए शत्रुओं को दमन करने वाले प्रतापी वीर वैनेतेय समर में इन्द्र के हाथी पर झपटे। हे राजन्! ऐरावत और गरुड़ दोनों ही महाबली सहसा पराक्रमपूर्वक प्राणों को अन्त कर देने वाले कठिन युद्ध को करने लगे। गजों के स्वामी ऐरावत घोर चिग्घाड़ करते हुए अपने दाँतों और सूंड तथा शिर से गरुड़ को मरने लगे और बलोत्कट गरुड़ नख रूपी अंकुशों तथा पंखों के प्रहार से ऐरावत को मारने लगे। ऐरावत और गरुड़ का कुछ देर तक महाभयानक संग्राम हुआ जो कि जगत् को विस्मित कर देने वाला तथा देखने वालों को भयभीत कर देने वाला था। हे भारत! महाबली गरुड़ ने अपने चरण के कराल नखांकुश से ऐरावत के मस्तक पर मारा।।८१-९०।।

हे जनमेजय! उस भयंकर प्रहार से पीड़ित होकर ऐरावत स्वर्ग से इस द्वीप में पारियात्र पर्वत पर गिर पड़े। ऐरावत को गिरती हुई दशा में भी करुणा और सौहार्द तथा पूर्व के सम्बन्ध के कारण महाबली इन्द्र ने छोड़ा नहीं। सबके उत्पत्ति स्थान अव्यय महाबली बुद्धिमान् श्रीकृष्ण पारिजात वाले गरुड़ द्वारा इन्द्र के पीछे चले। वह इन्द्र पारियात्र पर्वत पर ठहरा रहा और ऐरावत के स्वस्थ हो जाने पर पुनः संग्राम होने लगा। इन्द्र और केशव का रत्न जटित

सुन्दर तीक्ष्ण सर्प के समान बाणों से परस्पर युद्ध होने लगा। हे राजन्! इसके पश्चात् वज्रायुध इन्द्र ऐरावत-शत्रु गरुड़ के ऊपर बार-बार वज्र और अशनि को छोड़ने लगा। सर्वथा अवध्य बलियों में श्रेष्ठ पक्षिराज गरुड़ अपने स्वाभाविक बल से इन्द्र के वज्र और अशनि-पात को सहते रहे। कश्यप-पुत्र गरुड़ भाई के नाते उनके वज्र और अशनि का मान करने के लिये दोनों पक्षों से एक-एक पंख छोड़ दिये। हे नृपते! गरुड़ के आक्रमण से वह पर्वत नीचे धँसने लगा, हे राजन्! वह चारों ओर से बिखरता हुआ पृथ्वी में प्रवेश कर गया। श्रीकृष्ण की अधिक भार से वह पर्वत मरमराने लगा, जब उसका कुछ हिस्सा धँसने से शेष रह गया तो श्रीकृष्ण ने उसे देखा।।९१-१००।।

तब उस पर्वत को छोड़ कर गरुड़ द्वारा आकश में जाकर स्थित हो गये और सबके रचयिता लोकभावन श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न से कहा कि। हें महाबाहो! मेरे तेज और बल का आश्रय लेकर द्वारका जाकर दारुक के सहित रथ को शीघ्र लाइये। बलभद्र और राजा उग्रसेन से कहियेगा कि, हे मानद! इन्द्र की जीत कर कल मैं द्वारका को आऊँगा। धर्मात्मा प्रद्युम्न पिता से ''ऐसा ही करूँगा'' कहकर द्वारका को चले गये और वहाँ जाकर जैसा श्रीकृष्ण ने कहा था वैसा यादवेन्द्र उग्रसेन तथा बलराम जी से कहकर हे भारत! एक घड़ी के अन्दर दारुक सहित रथ पर चढ़ कर श्रीकृष्ण जी के पास आ गये।।१०१-१०५।।



अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः।।७४।।

वैशम्पायनजी बोले कि- उस रथ पर चढ़ कर श्रीकृष्ण पारियात्र पर्वत को गये जहाँ कि इन्द्र ऐरावत पर चढ़ कर स्थित था। पर्वतश्रेष्ठ पारियात्र जनार्दन को आता देखकर शिथिल हो उड़द की ढेर की भाँति होकर पृथ्वी में प्रवेश कर गया। वह उनके प्रभाव को जानता था इसलिये महात्मा वासुदेव का प्रिय करने के लिये ही ऐसा किया था, हे जनाधिप! हृषीकेश उस पर्वत पर प्रसन्न हो गये। इसके पश्चात् युद्ध के लिये जाने वाले अच्युत के पीछे

पारिजात सहित गरुड़ भी चले और महाबली प्रद्युम्न तथा सात्यकि भी पारिजात की रक्षा के लिये गरुड़ पर चढ़कर चले। हे राजन्! उस समय सूर्य अस्ताचल को चले गये थे और रात्रि प्रारम्भ हो गई थी ऐसे समय में पुनः इन्द्र और केशव का युद्ध प्रारम्भ हो गया। महातेजस्वी विष्णु ने प्रहार से घायल हुए थोड़े वाले ऐरावत को देखकर इन्द्र से कहा कि- हे महाबाहो! पहले से ही गरुड़ द्वारा अत्यन्त आहत हो गजोत्तम ऐरावत समर्थहीन हो गया है और रात्रि भी अधिक हो गई है, अतः इस रात्रिकाल को बिना युद्ध के बिताया जाय। कल प्रातः काल होने पर जैसी इच्छा होगी करना, तब देवराज ने कहा ऐसा ही हो। हे नृपसत्तम! पुष्कर क्षेत्र के समीप देवराज इन्द्र गोष्ठ की भाँति निवासस्थान बनाकर उसी में रहे।।१-१०।।

हे जनेश्वर! इसके बाद ब्रह्मा, महर्षि, कश्यप तथा अदिति, सभी देवता और मुनि, साध्य, विश्वेदेव, दोनों अश्विनीकुमार, बारहो आदित्य, ग्यारहो रुद्र तथा आठो वसु वहाँ पर आये। इधर श्रीकृष्ण पुत्र प्रद्युम्न तथा सात्याकि के साथ प्रसन्नतापूर्वक रमणीक पारियात्र पर्वत पर रहे। हे राजन्! भक्ति के कारण जो वह पर्वत उड़द-राशि की भाँति हो गया था इससे प्रसन्न होकर महातेजस्वी श्रीकृष्ण ने उसे वरदान दिया। हे महागिरे! शाणपाद की भाँति होने से अब तुम शाणपाद इस नाम से विख्यात होओगे और हिमालय के आधा शुभ पुण्य से युक्त होओगे। हे पर्वतसत्तम! इस प्रकार मेरु पर्वत से स्पर्धा करते हुए तुम श्रेष्ठ होओ और तुम अनेक प्रकार के मृगों और हाथियों एवं चित्र-विचित्र लताओं-वृक्षों से युक्त हो जाओ मैं तुमको देखता हुआ आनन्दित होऊँगा। इस प्रकार उस पर्वत को वर दे वृषभध्वज शंकरजी को नमस्कार कर नदियों में श्रेष्ठ गंगाजी का ध्यान किया। हे भारत! श्रीकृष्ण द्वारा स्मरण करने पर विष्णु पदी गंगा वहाँ पर आ गईं तब अधोक्षज श्रीकृष्ण ने उनका सम्यक पूजन कर स्नान किया और गंगा जल तथा बिल्व-पत्र ले सर्वेश्वर के भी ईश्वर रुद्र देव का अव्यय हरि ने आवाहन किया। इसके पश्चात् उमा के साथ अपने गणों सहित व्यापक महादेव जी आ गये और गङ्गोदक और बिल्व-पत्र के ऊपर खड़े हो गये।।११-२०।।

तब पारिजात के कुसुमों से केशव ने उन शिव का पूजन किया पश्चात् देव-वाणी द्वारा ईशों के भी ईश सबके कर्त्ता ईश्वर शंकर की स्तुति की। श्रीकृष्ण बोले कि- आप रुदन करने से अर्थात् माया रूपी पञ्जर द्वारा जीव का निरोधन करने से तथा द्रावण करने से अर्थात् माया को नष्ट कर देने से और शब्द से प्रतिपाद्यमान कहे जाने वाले एवं द्रावण अर्थात् संसार का लय कर देने से आप रुद्र कहे जाते हैं; आप भक्तों के भक्त और वत्सलों के वत्सल हैं मैं आपकी शरण लेता हूँ, अतः आप मुझको कीर्ति से युक्त कीजिये। आप भोग में आसक्त विरक्ति रहित मनुष्यों के तथा जीवों के पति होने से पशुपति कहे जाते हैं तथा कर्मों के कर्त्ता हैं हे देव-देव! तुमसे बढ़ कर जगत् का स्वामी और देवताओं के शत्रुओं को मारने वाला कोई नहीं है। आप ब्रह्मादि ईशों के भी ईश हैं, आद्य तथा सबके प्राणदाता हैं और प्रीति को देने वाले हैं, इसीलिये सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्वों के ज्ञाता सज्जन विद्वान् आप ही को ईश्वर तथा ईश कहते हैं। हे संसार के बुद्धि प्रवर्तक! हे जीवों के स्वामी! तुम्हीं जीववत् अप्रसिद्ध अविनाशी से जगत् उत्पन्न तथा अतिक्रान्त होता है, इसलिये विद्वान् आपको भव कहते हैं और जो आप सर्वेश्वर ब्रह्मादिक महानों पर उदारता दिखलाते हैं, इसलिये लोग आपको उदार कहते हैं। हे देवाधिदेव! जो मैं विदर्भ नरग में राजाओं तथा सम्पूर्ण देवता दानवों एवं प्राणियों से अभिषिक्त हुआ था वह आप ही हैं अर्थात् आप हमसे अभिन्न है, इसीलिये आपको सब विश्वकर्मा तथा महेश्वर कहते हैं। हे अनुपमेय पराक्रमी! आप पूज्य हैं इसी से देवताओं द्वारा सदा आप पूजे जाते हैं, आप कल्याण की आकांक्षा वाले भक्तों को निरन्तर वर देने वाले हैं, आप सभी प्राणियों की अपनी आत्मा में भावना करते हैं, इसीलिये आप सज्जनों के इष्ट, देव-देव भगवान् के नाम से विख्यात हैं। हे देवेश के भी स्वामिन्! भूमि, अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग अथवा भूत, भविष्य, वर्तमान अथवा अग्नि, वायु तथा सूर्य के उत्पत्ति और लय स्थान हैं, हे उत्पत्तिकारण! हे अप्रमेय! इसी से आपका पहला नाम त्र्यम्बक है। राक्षसों का वध करने के कारण आप शर्व कहे जाते हैं, आप अप्रमेय हैं, फिर आप राजादि भाव से शासन करने तथा अन्तर्यामी रूप से सर्व व्यापक होने एवं

सज्जनों का कल्याण करने से तथा शब्दों के स्वामी होने से हे श्रीकर! आपका तेज सूर्य के तेज से भी आगे हैं। आप संसक्त भक्तों का नित्य कल्याण करने से तथा असुरों को उनके हित के लिये शिक्षा देने से इस प्रकार सबके कल्याणकारी होने से आप शंकर कहे जाते हैं, धर्मज्ञ सज्जन आपको अप्रमेय तथा सर्वनाथ कहते हैं।।२१-३०।।

हे ईशान आदि वीर्य! प्राचीन काल में सुरराज इन्द्र ने आपके कण्ठपर वज्र का प्रहार किया इसलिये आपका कण्ठ नील होने से आप नीलकण्ठ नाम से विख्यात हो गये, दयालु होने से आप प्रहारकर्ता का यश ही फैलाते हैं, अतः आप समर्थ हैं, मेरी रक्षा करें। स्थावर तथा जंगम सम्पूर्ण जगत् लिङ्ग तथा भग चिह्न धारी वह सभी उमा के सहित आपके ही रूप हैं इसीलिये तत्त्वज्ञ ब्राह्मणों ने आपको गुणी और ध्यान करने योग्य अम्बिका को प्रकृति कहा है। वही प्रकृति वेदों द्वारा गाई गई है और तत्त्वों की प्रसूता है; यज्ञ की दीक्षा धारण करने वालों के लिये आप यज्ञ स्वरूप तथा योगियों के लिये अतिरूप हैं, हे देव! आपके समान अत्यन्त अद्भुत भूत कोई न हुआ, न होगा, न है। हे देव-देव! मैं श्रीकृष्ण, ब्रह्मा, कपिल, अनन्त और ब्रह्मा के सभी पुत्र सनकादि अथवा इन्द्रादि ये सभी तुम्हारे ही अंश से उत्पन्न हुए हैं इसलिये आप सर्वेश हैं तथा सभी कारणों के आत्मा हैं, इसलिये आप स्तुति करने योग्य हैं। इस प्रकार स्तुति करने पर वृषभध्वज भगवान् अपना दाहिना हाथ पसार कर नारायण से बोले–हे सुरसत्तम! आपको इच्छित प्रयोजन की प्राप्ति होगी आप मानसिक व्यथा न कर पारिजात का हरण करिये। जैसे आपने मैनाक पर्वत का आश्रय कर तप किया था वैसे ही हे प्रभो! मेरे वर का स्मरण कर स्थिरता को प्राप्त होइये। आप अजेय तथा अवध्य हैं और आप मुझसे भी शूर होंगे, यह जैसा मैं कहा रहा हूँ ऐसा ही होगा इससे अन्यथा नहीं हो सकता। हे अमरसत्तम! इस तुम्हारे किये गये स्तोत्र से जो मेरी भक्ति से स्तुति करेगा वह धर्म का भागी होगा तथा समर में विजय को प्राप्त कर उत्तम पूजा प्राप्त करेगा। हे अनघ! यहाँ पर मैं विल्वोदकेश्वर नाम से प्रसिद्ध होऊँगा क्योंकि हे देवेश्वर देव! आपने मुझे स्थापित कर अपनी प्रार्थना सिद्ध कर ली है।।३१-४०।।

हे जनार्दन! हे केशव! जो विद्वान् भक्ति सहित तीन रात्रि यहाँ रह कर उपवास व्रत करेगा वह अपने इच्छित लोक को जायेगा। इस देश में इस गंगा का अविन्ध्या नाम होगा और इसमें मन्त्र से स्नान करने पर गंगा-स्नान के समान फल होगा। हे जनार्दन! यहाँ पृथ्वी के अन्दर दानवों का षटपुर नामक नगर है वे महाबली पराक्रम कर वहाँ रहते हैं। ये दुरात्मा दैत्य देवताओं तथा जगत् के लिये कण्टक स्वरूप हैं, ये गुप्त रूप धारण कर इस विशाल पर्वत के शिखर पर भी रहते हैं और किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होने पर बिल में भी घुस जाते हैं। हे निष्पाप! ब्रह्मा के वरदान के कारण ये दानव देव-देवों के द्वारा भी अवध्य हैं, आप इस समय मनुष्य रूप में छिपे हैं, इसलिये हे केशव! इन दानवों को मारिये। हे राजन्! इस प्रकार कहकर महादेवजी वहीं महात्मा श्रीकृष्ण को छोड़कर अन्तर्ध्यान हो गये। हे नराधिप! महादेवजी के चले जाने पर जब रात्रि समाप्त होकर प्रातःकाल हुआ तब गोविन्द पर्वत से नम्रतापूर्वक बोले। हे पर्वतश्रेष्ठ! आपके नीचे महासुर बसते हैं और ब्रह्मा के पूर्व वरदान से देव-देवों से भी अवध्य है। मेरी आज्ञा से आप इनके द्वार को रोक लीजिये, द्वार के अवरुद्ध हो जाने पर मेरे द्वारा वे महाबली घेर लिये जायेंगे फिर निकल नहीं सकते, वे वहीं विनष्ट हो जायेंगे। हे महागिरे! तुम्हारी सहायता से मैं महाभंयकर राक्षसों पर नियन्त्रण कर यहीं रहूँगा।।४१-५०।।

हे पर्वतश्रेष्ठ! मनुष्य तुम्हारे शिखर पर चढ़ मेरे रूप का दर्शन कर हजार गोदान का फल प्राप्त करेंगे और जो लोग तुमसे पत्थर ले उसकी मेरी मूर्ति बनाकर नित्य भक्ति सहित सेवा करेंगे वे हमारी गति को प्राप्त करेंगे। इस प्रकार पर्वत को वर देकर अनुगृहीतवान हो देवेश अच्युत श्रीकृष्ण उस पर्वत पर रहते हैं। हे कौरव! इसी से विष्णुलोक प्राप्त करने की इच्छा वाले पुण्यात्मा उसके पाषाण द्वारा श्रीकृष्ण की प्रतिमा बनाकर सेवा-पूजा करते हैं।।५१-५४।।



अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।।७५।।

वैशम्पायनजी बोले-हे राजन्! इसके पश्चात् महामना श्रीकृष्ण बिल्वोदकेश्वर शिव को नमस्कार कर श्रेष्ठ रथ पर सवार हो पुष्कर क्षेत्र को चले। वहाँ जो रथ पर स्थित हो पुष्कर के समीप सब देवताओं द्वारा सत्कृत महेन्द्र को मधुसूदन ने बुलाया। तब सज्जनों की सम्पूर्ण इच्छाओं को पूरी करने वाले इन्द्र जयन्त के साथ घोड़ों से जुते उत्तम रथ पर चढ़े। इसके पश्चात् रथ पर चढ़े दोनों देवों का दैवयोग से पारिजात के लिये युद्ध छिड़ गया। शत्रुओं के बल को मर्दन करने वाले विष्णु रण में इन्द्र की सेनाओं को शीघ्रगामी बाण-जालों से मारने लगे। हे प्रभो! शक्त होने पर भी महेन्द्र उपेन्द्र को तथा विष्णु सुरेश्वर को शस्त्रों द्वारा नहीं मारते थे। हे राजन्! जनार्दन ने तीक्ष्णतायुक्त फलों के दस बाणों से इन्द्र के घोड़ों को एक-एक कर मारा। हे राजेन्द्र! देवेन्द्र ने भी अस्त्र-मंत्र से अभिमंत्रित भयंकर बाणों से श्रीकृष्ण के शैव्य, बलाहक तथा मेघपुष्प को छा दिया। वे श्रीकृष्ण भी हजारों बाणों से ऐरावत को छा दिये इसी प्रकार गरुड़ को इन्द्र भी हजारों बाणों से छा दिये। विशाल-विशाल रथों पर चढ़ें शत्रुओं का विदीर्ण करने वाले नारायण और सुराधिप दोनों महात्मा लड़ने लगे।।१-१०।।

उस समय पृथ्वी जल में स्थित नौका की भाँति काँपने लगी और दिग्-दाह से दिग्-देश चारों ओर अग्नि से जलने लगा। श्रेष्ठ पर्वत हिलने लगे, सैकड़ों वृक्ष गिर पड़े, धर्मात्मा मनुष्य पृथ्वी पर गिर पड़े। हे नराधिप! सैकड़ों बिजलियाँ गिरने लगीं और हे विशाम्पते! सभी नदियाँ उलट कर बहने लगीं। चौवाई वायु चलने लगा तथा प्रभाहीन उल्कायें गिरने लगीं और रथ के नाश से प्राणी समूह बार-बार मूर्छित होने लगे। हे राजन्! जल में भी अग्नि जलने लगा और आकाश में सब ओर ग्रह ग्रहों से लड़ने लगे। आकाश से सैकड़ों तारा गिरने लगे तथा दिशाओं के दिग्गज कुपित हो गये और पृथ्वी के नीचे के हाथी भी कुपित हो गये। गर्दभ के वर्ण के समान मटमैले लाल वर्ण वाले छिन्न-भिन्न मेघों से आकाश ढक गया, वे भयंकर शब्द करने वाले मेघ राख

तथा रक्त की वर्षा कर रहे थे। हे नरेन्द्र! उन दोनों सुर-वीरों को युद्ध में प्रवृत्त देख भूमि, आकाश और स्वर्ग को शान्ति न थी। जगत् की कल्याण-कामना से मुनिगण मन्त्र का जाप करने लगे महात्मा ब्राह्मण भी उनके समीप बैठे हुए शीघ्रता से मन्त्र जपने लगे। इसके बाद महातेजस्वी ब्रह्मा ने कश्यपजी से कहा कि हे सुव्रत! आप अपनी स्त्री अदिति के साथ जाकर दोनों पुत्रों को युद्ध से रोकिये।।११-२०।।

फिर तो वह कश्यप मुनि कमल भव ब्रह्मा से "ऐसा ही करूँगा" कह रथ पर सवार हो नरश्रेष्ठ के समीप खड़े हो गये। इसी बीच माता अदिति के साथ पिता कश्यप को देख कर दोनों महाबली रथ से उतर गये और शस्त्रों को रख दोनों शत्रुनाशक वीर धर्मतत्त्वज्ञ तथा सभी प्राणियों के हित में रत माता-पिता को नमस्कार किये। माता अदिति ने दोनों को दोनों हाथों से पकड़ कर कहा कि तुम दोनों सौतेले भाइयों की भाँति क्यों आपस में एक दूसरे को मारना चाहते हो। थोड़े से प्रयोजन के लिये क्यों इतने महादारुण युद्ध में प्रवृत्त हुए हो, इस प्रकार का युद्ध मैं नहीं देखना चाहती हूँ, तुम दोनों ही मेरे पुत्रों का सर्वथा प्रेम कर रहना चाहिये। यदि तुम दोनों को माता तथा प्रजापति पिता की बात सुननी हो तो अब शस्त्र रख दो और मेरे वचन को मानो। "ऐसा ही होगा" कहकर दोनों महाबली गंगा स्नान की इच्छा से परस्पर बातचीत करते गंगाजी को चले गये। इन्द्र ने कहा हे श्रीकृष्ण! तुम लोकों को बनाने वाले प्रभु हो तुमने ही इस राज्य पर मुझे स्थापित किया है तो मुझे इन्द्र पद पर स्थापित कर मेरा अपमान क्यों करते हो। हे कमलपत्राक्ष! आप मेरे छोटे भाई होकर मुझ ज्येष्ठ का विचार न कर सभी सम्बन्धों को क्यों समाप्त करना चाहते हो। हे राजन्! गंगा के जल में स्नान कर पुनः दोनों वहीं चले आये कि जहाँ दृढ़व्रती महात्मा कश्यप और अदिति थीं।।२१-३०।।

जहाँ पर दोनों कमलनेत्रों का माता-पिता के साथ संगम हुआ था उस देश को मुनि लोग प्रियसंगम नाम से पुकारने लगे। हे कुरुवंशी! इसके बाद धर्मचारियों समेत जहाँ सभी देवगण उपस्थित थे वहाँ श्रीकृष्ण ने इन्द्र को अभयदान दिया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवता अपने अनुरूप परम शोभा से युक्त हो

विमानों द्वारा स्वर्ग को चले गये। हे राजन्! कश्यप-अदिति और इन्द्र-श्रीकृष्ण भी एक ही विमान पर चढ़कर स्वर्ग को चले गये। हे कौरव्य! प्रसन्नतापूर्वक वे धर्मचारी इन्द्र-भवन को प्राप्त हो वहाँ एक ही साथ रात्रि में रहे। धर्मवत्सला शची सब प्राणियों के हित में रत महात्मा कश्यप की सेवा करने लगीं। तब रात्रि बीत कर प्रभात होने पर धर्मतत्त्वज्ञा अदिति हरि से सब प्राणियों के लिये हितकारी वचन बोलीं। हे इन्द्र के छोटे भाई श्रीकृष्ण! तुम पारिजात को ले द्वारका जाओ और वधू के द्वारा हृदय-स्थित व्रतोत्सव को पूरा कराओ। सत्यभामा के द्वारा व्रतोत्सव समाप्त हो जाने पर हे पुरुषश्रेष्ठ! तुम इस तरु को नन्दन वन में यथास्थान स्थापित कर देना। नारदजी द्वारा कहे धर्म-गुणों से युक्त यशस्विनी देवमाता अदिति से श्रीकृष्ण ने कहा ऐसा ही करेंगे।।३१-४०।।

इसके पश्चात् जनार्दन माता-पिता तथा इन्द्र-इन्द्राणी को नमस्कार कर द्वारका के प्रति प्रस्थान कर दिये। हे कुरुनन्दन! धर्मचारिणी इन्द्राणी ने प्रीति-देय पदार्थों को श्रीकृष्ण की सभी पत्नियों के लिये दिया, महातेजस्वी श्रीकृष्ण उनको ले द्वारका चले गये। आकाशवासी पुण्य कर्मकर्त्ताओं से पूज्यमान हो सात्यकि तथा पुत्र प्रद्युम्न के साथ रैवतक पर्वत पर पहुँच गये। श्रीकृष्ण श्रेष्ठ वृक्ष पारिजाता को रैवतक पर्वत पर स्थापित कर सात्यकि को द्वारवती द्वारका को भेजे। श्रीकृष्ण ने कहा—हे भीम वंश को बढ़ाने वाले महाबाहो! तुम द्वारका जाकर भीबवंशी यादवों से कह दो कि मैं महेन्द्र सदन से पारिजात को यहाँ लाया हूँ और आज ही पारिजात को द्वारका में प्रवेश कराऊँगा, इसलिये नगर में सुन्दर सजावट करो। हे प्रभो! इस प्रकार का समाचार ले सात्यकि द्वारका पहुँच श्रीकृष्ण के कहे सन्देशे को यादवों से कह कर पुनः साम्ब इत्यादि कुमारों तथा नगरवासी लोगों के साथ चले आये। इसके बाद रथियों में श्रेष्ठ प्रद्युम्न पारिजात को गरुड़ पर रखकर सबसे आगे हो रम्य द्वारका में प्रवेश किये।।४१-५०।।

शैव्य-सुग्रीव आदि घोड़ों से जुते रथ से श्रीकृष्ण उनके पीछे चले उसी प्रमुख रथ पर सात्यकि और साम्ब भी चले। हे नृप! जो अन्य वृष्णिवंशी

महात्मा थे वे अनेक प्रकार यानों से श्रीकृष्ण के उस कर्म की प्रशंसा करते हुए चले। सात्यकि से विस्तारपूवर्क पारिजात हरण की बात सुनकर अनुपमेय श्रीकृष्ण के कर्म से यादव तथा अन्य नगर निवासी परम विस्मय को प्राप्त हुए। हे राजन्! उस दिव्य पुष्प वाले वृक्ष को देखकर द्वारकावासी अपने भाग्योदय को देखते हुए तृप्त नहीं होते थे अर्थात् फूले नहीं समाते थे। मद से केलि करने वाले पक्षियों से युक्त उस अचिन्त्य वृक्षों में उत्तम पारिजात को देखकर वृद्धों की बुढ़ापा चली गई। जो अन्धी आँखों वाले थे वे दिव्य ज्योतियुक्त आँखों वाले हो गये और उस वनस्पति के गन्ध को सूँघ कर रोगी मनुष्य रोगरहित हो गये। उस वृक्ष पर श्वेत कोकिलाओं के आलाप सुनकर द्वारकावासी अन्तरात्मा से प्रसन्न हो जनार्दन की वन्दना करने लगे। उस वृक्ष के पास वाले मनुष्य उस वृक्ष से नाना प्रकार के बाजों सहित मधुर गीतों को सुन रहे थे। जो जिस प्रकार के गन्ध की मन में कल्पना करता था वह उस वृक्ष से निकले वैसे ही गन्ध को सूँघता था। इसके बाद यदुनन्दन श्रीकृष्ण रम्य द्वारका में प्रवेश कर महात्मा वसुदेव तथा देवकी का दर्शन किये।।५१-६०।।

राजा उग्रसेन तथा बलराम एवं अन्य माननीय देवता तुल्य यादवों से मिले। आदि-अन्त से रहित अच्युत उन लोगें का यथोचित पूजन और विसर्जन कर अपने भवन को चले गये। तरु श्रेष्ठ पारिजात को ग्रहण कर बलदेव बड़े भाई हैं जिनके ऐसे मधुसूदन सत्यभामा के वासस्थान में गये। सत्यभामा देवी ने इन्द्र के छोटे भाई श्रीकृष्ण का प्रसन्नतापूर्वक पूजन किया और महाद्रुम पारिजात को ले लिया। हे भारत! वह पारिजात श्रीकृष्ण की इच्छा से छोटा बड़ा भी हो जाता था यह उसमें महान् अद्भुत बात थी। हे भारत! कभी वह सम्पूर्ण द्वारका आच्छादित कर लेता था और कभी वह हाथ पर धारण करने योग्य अँगूठा के बराबर हो जाता था। हे कुरुवंशी! सत्यभामा देवी अपने मनोरथ को पाकर बड़ी आनन्दित हुई फिर पुण्यक व्रत की सामग्रियों को इकट्ठी करने के लिये उपाय करने लगीं। पुण्यक व्रत के योग्य जो भी पदार्थ इस जम्बूद्वीप में प्राप्त हो सकते ते उन सभी पदार्थों को महात्मा श्रीकृष्ण ने जूटा दिया। इसके बाद सत्यभामा के कथनानुसार व्रत के दान लेने के लिये इन्द्र

के लघु भ्राता वशी जनार्दन ने सर्वगुण सम्पन्न नारद मुनि का स्मरण किया।।६१-६९।।



अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः।।७६।।

वैशम्पायनजी बोले-हे कुरुवंशी! श्रीकृष्ण के केवल ध्यान मात्र से वक्ताओं में श्रेष्ठ तपोधन मुनिश्रेष्ठ नारद आ गये। हे विशम्पते! श्रीमान् वासुदेव उनका विधिवत् पूजन कर उन्हें व्रत का दान लेने को निमन्त्रित किये। हे भारत! दान के योग्य समय उपस्थित होने पर स्नान किये हुए मुनि का देव श्रीकृष्ण ने अन्तरात्मा से प्रसन्न हो प्रिया सत्यभामा के साथ गन्ध तथा पुष्प-मालादिकों से सम्यक पूजन कर उन्हें सभी को अच्छा लगने वाले पक्वानों का भोजन कराया। इसके बाद सद्भाव वाली सौभाग्यवती सत्यभामा ने पुष्प गुथी रस्सी को श्रीकृष्ण के गले में पहनाकर वनस्पति पारिजात में श्रीकृष्ण को बाँध दिया। देवी सत्यभामा ने केशव को जल के साथ संकल्प कर नारद को दान कर दिया, साथ ही हजारों गौवों तथा सुवर्ण का पर्वत जो कि सोने-चाँदी से मिश्रित मणि और रत्नों की प्रभा से युक्त था दिया और तिलमिश्रित अन्यान्य धान्यों से युक्त अन्न-राशि का दान किया। उन सब सामिग्रयों को ग्रहण कर मुनिसत्तम नारद अति प्रसन्न हो केशव से बोले। सत्यभामा द्वारा जल सहित तुम मुझे दान कर दिये गये हो, इसलिये हे केशव! तुम मेरे हो गये हो, अतः तुम मेरे अनुकूल चलो और जो मै कहता हूँ वह करो। मधुसूदन ने कहा कि यह प्रथम पक्ष है। अर्थात् यह उचित ही है कि दास स्वामी का कार्य करे, फिर तो जाते हुए नारद के पीछे जनार्दन भी जाने लगे।।१-१०।।

परिहास विचक्षण मुनिश्रेष्ठ नारद इस प्रकार परिहास की बहुत बातें खड़ाऊँ आदि लाने की कर भगवान् श्रीकृष्ण से कहे कि अच्छा तुम मैं जाता हूँ। इसके बाद उनके कण्ठ से पुष्प गुथी रस्सी निकाल कर श्रीकृष्ण से कहे कि हे भगवन्! इसके मूल्य में एक सवत्सा कपिला गौ मुझे दीजिये। कृष्ण मृग चर्म तथा तिलों से भरा हुआ स्वर्ण का पूर्ण पात्र भी देवें, हे श्रीकृष्ण इस

दान के बदले में वृषकेतु शंकरजी ने यही निष्क्रय निश्चित किया है। हे राजन्! तब हृषीकेश ने ''ऐसा ही करूँगा'' कहकर निष्क्रय पदार्थ मुनि को दिया और हँसकर मधुसूदन मुनिश्रेष्ठ नारद से बोले। हे धर्मज्ञ नारद! अपनी इच्छा के अनुसार मुझसे वर माँगिये मैं आपको वर देने वाला हूँ क्योंकि हमारी आप पर परम प्रीति हो गई है। नारद ने कहा हे सनातन विष्णो! आप मेरे ऊपर सदा प्रसन्न रहें तथा हे महामते! आपके प्रसाद से मैं आपके सालोक्य को जाऊँ। हे सज्जनों की गति नारायण! आपकी कृपा से मैं अयोनिज होऊँ तथा जन्मान्तर में भी ब्राह्मण होऊँ। हे भारत! विष्णु ने नारद से कहा ''ऐसा ही होगा'' फिर तो मुनिसत्तम बुद्धिमान् नारद सन्तुष्ट हो गये। हे कुरुवंशी! इसके पश्चात् हरिप्रिया सत्यभामा ने अतुल तेजस्वी विष्णु की सोलह हजार स्त्रियों को निमन्त्रित कर बुलाया। और शची द्वारा वासुदेव को दिये दिव्य वस्त्राभूषणादि को हरिवल्लभा सत्या ने एक-एक को बाँट दिया।।११-२०।।

वहाँ रहता हुआ पारिजात अपने गुणों को दिखाने लगा, वासुदेव की आज्ञा से महात्मा नारद ने मित्र तथा बन्धुगणों को बुलाया। हे कुरुनन्दन महात्मा केशव से निमन्त्रित सभी मित्र-बन्धुगण पारिजात के ऐश्वर्य को देखने लगे। महातेजस्वी श्रीकृष्ण ने द्रौपदी, सुभद्रा तथा फूफी कुन्ती के साथ पाण्डवों को बुलवाया। पुत्री सहित शिशुपाल की माता को और पुत्र सहित राजा भीष्मक को एवं हे कुरुवंशी! अन्य मित्र सम्बन्धियों को भी बुलाया। हे राजन्! महातेजस्वी श्रीकृष्ण अन्तःपुर सहित अर्जुन के साथ बड़े ऐश्वर्य से रहने लगे। तब एक सम्वत्सर बीत जाने पर अमरसत्तम केशि को मारने वाले सर्वभावन श्रीकृष्ण पारिजात को स्वर्ग में ले गये। वहाँ इन्द्र के साथ बुद्धिमान अमित पराक्रमी श्रीकृष्ण तथा अपनी माता अदिति के दर्शन कर प्रणाम किये। तब प्रणाम करते हुए मधुसूदन से माता अदिति ने कहा हे अमरसत्तम! तुम दोनों में भाईचारे का सुन्दर सम्बन्ध बना रहे। यही मेरा मनोरथ है हे जनार्दन! इसे तुम पूरा करो तब सर्वात्मा श्रीकृष्ण ने ''ऐसा ही होगा'' माता से कह दिया। महातेजस्वी वासुदेव माता-पिता को बुलाकर इन्द्र से यह सामयिक वचन कहे।।२१-३०।।

हे मानद! हे देवेश! मुझे महात्मा महादेव जी ने भूमि के अन्दर रहने वाले असुरों के प्रति वध का सन्देश दिया है। आज से दस रात्रि के अन्दर मैं वहाँ बैठे हुए असुरों को मारने वाला हूँ, इसलिये आप जैसे श्रेष्ठ महात्मा को वहाँ रहना चाहिये और दानवों के वध की इच्छा से जयन्त को भी वहाँ रहता चाहिये इस प्रकार एक मनुष्य रूपधारी देव तथा एक देवपुत्र को रहना उचित है। वे ब्रह्मा के वरदान से गर्वित तथा देवताओं से भी अवध्य हैं, मुझे मनुष्य रूप में अवतरित होने के कारण उन्हें मारना चाहिये। हे जनमेजयजी! प्रसन्नता से हरि की बातों का समर्थन करते हुए इन्द्र ने कहा ''ऐसा ही होगा'' फिर दोनों आपस में मिले।।३१-३५।।



अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः।।७७।।

राजा जनमेजयजी बोले कि- हे द्विजोत्तम! पुण्यक व्रत की उत्पत्ति हमसे कहिये, क्योंकि व्यासजी के प्रसाद से आपको सब कुछ ज्ञात है। वैशम्पायनजी बोले- हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ! पहले पहल उमा के द्वारा पुण्यक व्रत की विधि उत्पन्न की गई है फिर जिस विधान से लोक में प्रसिद्धि हुई उसे सुनो। अक्लेशकर्मा श्रीकृष्ण द्वारा स्वर्ग से पारिजात लाये जाने पर मुनिसत्तम बुद्धिमान् नारद द्वारका को गये। हे अनघ नृपश्रेष्ठ! महादेव जी की आज्ञा से षट्पुर के दानवों के वध के लिये घोर देवासुर संग्राम उपस्थित हो गया। हे नृप! इसके बाद श्रीकृष्ण के सहित धर्मवेत्ता विप्र नारद जब बैठे थे तब उनसे भीष्मक पुत्री रुक्मिणी ने पूछा। हे नराधिप! वहाँ जाम्बवती देवी, क्रोधशीला सत्यभामा, योगयुक्ता गान्धारराज की पुत्री तथा हे नृप! श्रीकृष्ण की कुलशील गुण से युक्त धर्मशील बहुत सी पतिव्रता देवी पत्नियाँ भी आ गई। रुक्मिणी ने कहा है धर्मधारियों तथा धर्मज्ञानियों में श्रेष्ठ मुने! पुण्यक व्रत की उत्पत्ति विस्तार से कहिये। हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! पुण्यक व्रत की विधि तथा उसका फल एवं दान का समय और उसकी सिद्धि यह सब हमसे कहिये क्योंकि हम लोगों को इसका बड़ा कौतूहल है। नारद जी बोले हे निष्पापे! तथा हे धर्मज्ञ

विदर्भ देश समुत्पन्ने! जिस प्रकार मैंने पहले पुण्यक व्रत की विधि कहा है उसे हे देवि! अपनी सौतों के साथ सुनो।।१-१०।।

हे देवि! पहले पवित्र व्रत वाली उमा ने इस व्रत को किया था व्रत के समाप्ति काल में उन्होंने अपनी सखियों को निमन्त्रित किया। तब वहाँ अक्लिष्टकर्मा दक्ष की अदिति आदि सभी कन्यायें और लोक विख्यात पतिव्रता देवी पौलोमी इन्द्राणी। चन्द्रमा की प्रिया महासौभाग्यवती सती रोहिणी, फाल्गुनी तथा हे विशाम्पते! पूर्वा एवं रेवती आई और हे कुरुनन्दन! शतभिषा तथा मघा आईं इन लोगों ने पहले महादेवी सती की अराधना की थी। हे भारत! गंगा, सरस्वती, वेणी, गोदावरी, वैतरणी तथा गण्डकी नदियाँ आईं। हे भारत! अन्य रम्य नदियाँ तथा अगस्त ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा एवं अन्य सतियाँ भी आईं जो संसार का सुख कल्याण करने वाली तथा अपने सत्य बल से जगत् को धारण करने वाली थीं। पर्वत की शुभ पुत्रियाँ तथा अग्नि की सुव्रता कन्यायें, अग्नि की प्रिया स्वाहा तथा यशस्विनी सावित्री देवी आईं। कुबेर की प्रिया ऋद्धि तथा राजा वरुण की रानी, पितृपति यमराज की पत्नी और जो वसु की पत्नियाँ थीं वे आईं। ह्री, श्री, धृति, कीर्ति, आशा और सुव्रता, मेधा, प्रीतिमती, ख्याति और तपोधन सन्नीति और सभी प्राणियों के हित में रत रहने वाली अन्य देवियाँ तथा सतियाँ आईं, तब व्रत के अन्त में उन सबको अम्बिका ने सम्पूर्ण धान्यों तथा तिल एवं रत्नमय पर्वत देकर प्रमुख आभूषणों तथा नाना प्रकार के रंगीन वस्त्रों से हे सुमध्यमे रुक्मिणी! उनका पूजन किया।।११-२०।।

तप रूप धन वाली देवियाँ अम्बिका द्वारा दिये पूजन-सामग्री को ग्रहण कर भर्ता को ही इष्ट देवता मानने वाली वे पतिव्रतायें बैठ कर विचित्र कथायें कहने लगीं। पतिव्रता-समुदाय में उन सतियों के बीच पुण्यक व्रत की कथा एवं उसकी विधि के बारे में बात उठी थी। तब उन सतियों की राय से सोम-पुत्री अरुन्धती ने उमा देवी से पुण्यक-व्रत की श्रेष्ठ विधि पूछी। हे वैदर्भि! तब मेरे सामने ही सब प्राणियों के हित में रत उमा ने उन सतियों का प्रिय करने के लिये पुण्यक व्रत का उपाय बतलाया। हे शुभे! इसके बाद उमा

ने मुझे रत्न पर्वत दिया था सो रत्न पर्वत मैं ब्राह्मणों को अर्पित कर दिया। हे कल्याणि! उस समय उमा जो अरुन्धती से कहा था उसे मैं कहता हूँ हे शुभे! तुम सभी स्त्रियों के साथ सुनो। हे शुभे! पुण्यक व्रत की सम्पूर्ण विधि यथाक्रम से जैसे मैंने देखा है वैसे ही कहूँगा।।२१-२८।।



अथ अष्टसप्ततितमोऽध्याय:।।७८।।

उमा ने कहा कि–हे पवित्र हास्ये! शंकर जी के प्रसाद से मैं सर्वज्ञा हूँ, उन्होंने ही एक समय मुझे पुण्यक व्रत का उपदेश दिया था तभी से मुझे पुण्यक व्रत की शुभ विधि ज्ञात है। हे अरुन्धति! महादेव जी के प्रसाद से मैंने इसे जाना, इस पुण्यक की विधि अनादि है ऐसा अपने बुद्धि से जानो। हे अनिन्दिते! बुद्धिमान् भगवान् स्वामी शंकर जी की आज्ञा से पुण्यक व्रत की विधि को मैंने किया है जिस स्त्री का धर्माचरण सतीत्व सदा अखण्डित् है उसी स्त्री के लिये पुराणों ने पुण्यक व्रत की विधि का विधान किया है। हे शुभे! अरुन्धति! असती स्त्रियों के लिये दान, उपवास, पुण्य, परोपकार तथा पुण्यक व्रत सभी निष्फल होते हैं। जो स्त्री अपने पति की वञ्चना करती है तथा योनि-दुष्टा है तो वह योनि दोष के कारण पुण्यफल को नहीं भोग पाती प्रत्युत नरक में जाती है। अनन्तभाव से धर्म का नित्य पालन करने वाली तथा सतियों के मार्ग का अनुसरण करने वाली, पति को ही देवता समझने वाली ऐसी सुशीला तथा साध्वी स्त्रियाँ जगत् को धारण करती हैं। दुष्ट बचन न बोलने वाली पवित्रता से युक्त धैर्यशालिनी शुभ व्रत करने वाली, साधु बचन बोलने वाली स्त्रियाँ ही निरन्तर जगत् को धारण करती हैं। पति रोगी हो अथवा दीन-दरिद्र हो तो भी स्त्री को उसे किसी प्रकार भी नहीं त्यागना चाहिये यही सनातन धर्म है यदि पति असत् कार्य करने वाला हो तथा पतित हो अथवा निर्गुण हो तो भी स्त्री को नहीं त्यागना चाहिये क्योंकि हे शुभानने! पतिव्रता स्त्री पति को तथा अपने को तार देती है।।१-१०।।

योनि दुष्टा स्त्रियों का कोई प्रायश्चित् नहीं है वह त्याज्या ही हैं। बल्कि

वचन से दुष्ट स्त्रियों का वेद में प्रायश्चित विहित है ऐसा सज्जन लोग कहते हैं। हे अरुन्धति! पुण्य तथा गति को चाहने वाली स्त्रियों को अपने भर्ता की आज्ञा से ही सर्वदा व्रत उपवास आदि करना चाहिये। योनि द्वारा असत् आचरण करने वाली योनि दुष्टा स्त्री हजारों कल्पान्तरों में भी गति नहीं पाती वह हजारों प्रकार के पक्षि योनि में पाप भोगती रहती है। यदि असती होकर मनुष्य की योनि में कथंचित् चली भी जाती है तो चाण्डाल की योनि में जन्म लेती है वह दुष्ट बुद्धि वाली कुत्ते का मांस खाती है। हे तपोधन! स्त्रियों के सर्वदा से पति ही इष्ट देव हैं ऐसा सज्जनों ने कहा है, जिसके द्वारा पति सन्तुष्ट रहता है वही स्त्री धर्मचारिणी है। खिलवाड़ से नष्ट हुई स्त्रियों को अच्छे लोक की प्राप्ति नहीं होती है, सद्भावना से पति में ही जिनका मन लगा है वे स्त्रियाँ मन, कर्म तथा वचन से पति की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करती हैं हे सौम्ये! उन्हीं स्त्रियों के लिये पुण्यक व्रत का पुण्य-फल कहा गया है। मैंने तपस्या द्वारा जिसको जान सकी हूँ उस स्वर्ग लोक को देने वाले पुण्यक व्रत की विधि हे शोभने! सबके साथ सुनो। हे व्रतधारिणी! सती स्त्री को चाहिये कि प्रातःकाल स्नान कर व्रत के तथा उपवास के लिये पति से आज्ञा लेवे। तथा सासु-ससुर के चरणों में प्रणाम कर ताँबे का कमण्डल तथा कुश एवं अक्षत ग्रहण कर।।११-२०।।

गौ के दाहिनी सींग को धोकर उसका जल ग्रहण करें इसके बाद नियम से प्रातः स्नान करने वाले पति को सती वह जल देवे। तत्पश्चात् अपने भी शिर पर वह जल छिड़के, वह तीनों लोकों में स्थित सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान का फल प्रदान करता है ऐसा कहा गया है। हे भामिनि! उपवास तथा इस व्रत में ऐसा करना चाहिये यह स्त्री तथा पुरुषों का एक ही भाँति स्नान है। हे अरुन्धति! महादेव जी के तेज से मैंने तपस्या के द्वारा देखा है, कण्टक रहित पृथ्वी पर वेदी बना कर स्त्रियाँ सोती तथा बैठती हैं। स्त्रियाँ पति के चरणों को स्वयं धोवें ऐसा कहा गया है रोने से, क्रोध करने से तथा कलह करने से स्त्रियाँ व्रत तथा उपवास का फल नहीं पाती हैं व्रतोपवास भ्रष्ट हो जाता है। हे चन्द्र पुत्रि! उपवास तथा व्रत में सदा श्वेत वस्त्र धारण करना शुभ है तथा एक वस्त्र के नीचे अवान्तर वस्त्र भी धारण करना चाहिये। इस व्रत में सदा तृण के जूता

का उपयोग करे उपवास में भी यही विधि प्रचलित है। इस व्रत तथा उपवास में अंजन, महावर, गन्ध तथा पुष्प आदि प्रयोग में लाना त्याग देवें। काष्ठ की दतुवन, शिर से स्नान तथा उबटन लगाना विवर्जित है, सभी शुद्धि के लिये मिट्टी ही प्रयोग में लावे। इस व्रत में आँवला, हरीतकी अथवा पके बिल्व फल के संयोग से मृत्तिका रहित जल से शिर को धोना चाहिये।।२१-३०।।

हे प्रियदर्शने! जब तक व्रत समाप्त न हो जाय तब तक तेल लगा कर शिर को न सँवारे तथा शरीर एवं पैरों में भी तैलादि चिकना पदार्थ न लगावे ऐसा कहा है। व्रत तथा उपवास में बैलगाड़ी या ऊँट की सवारी तथा गर्दभादि निकृष्ट जानवरों की सवारी वर्जित है तथा नग्न स्नान निरन्तर वर्जित है। हे सोमनन्दिनी! नदी का जल, झरने का जल स्नान के लिये शुभ है तथा कमल से युक्त शुभ तालाब इसके अभाव में बावली-पोखरे में जाकर स्नान करना सदा शुभ होता है, जो स्त्री घर के बाहर न निकल सकती हो वह नदी आदि के अभाव में घड़े से स्नान करे। नवीन घट से स्नान करना चाहिये, यह सनातन विधि है और स्नान शिर से करना चाहिये तभी तप का फल प्राप्त होता है।।३१-३५।।



अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।।७९।।

उमा ने कहा–इस प्रकार सम्पूर्ण विधि सहित पति को देवता मानने वाली उदार स्त्री एक सम्वत्सर पर्यन्त अथवा छः मास तक व्रत करे। व्रत करने वाली स्त्री को चाहिये कि समाहित चित्त से वह ग्यारह साध्वी स्त्रियों को निमन्त्रित कर बुलावे मैंने इस पुण्यक व्रत की शुभ विधि को स्वयं देखा है। मूल व्रत करने वाली स्त्री पहले उनके पतियों को निष्क्रय द्रव्य देकर उन्हें खरीदे तत्पश्चात् जल के साथ संकल्प करके उन ग्यारहों स्त्रियों को आचार्य के लिये दान दे देवे फिर समय और देश के अनुसार आचार्य को निष्क्रय द्रव्य दे उन्हें लेकर उनके पतियों को सौंप देवे। इसके बाद व्रताराधन कर व्रत के मासान्त में शुक्ल पक्ष नवमी तिथि को व्रत की समाप्ति करनी चाहिये। व्रत के आदि

तथा अन्त में व्रत की सिद्धि के लिये दिन-रात उपवास करना चाहिये यही व्रत का विधान निश्चित है। तत्पश्चात् पति का क्षौर कर्म तथा अपना भी नख आदि कटा लेवे अथवा स्मृति के भी कथनानुसार दो अंगुल तक बाल कटा लेवे उसी दिन स्नान और दान कहा है। पुण्यक व्रत की समाप्ति पर विवाह की भाँति स्नान तथा मुण्डन एवं माल्य आदि धारण करना विहित है। मन से अथवा वाणी से पति के चरणों को नमस्कार कर साध्वी स्त्री घड़े से स्नान करते समय आपो देव्य आदि यह मंत्र उच्चारण करे। जल ऋषियों का जन्मदाता है तथा विश्व का धारण करने वाला है, स्वयं अपने आदित्य लोक से उत्पन्न है, सबका कल्याण करने वाला एवं धर्म को धारण करने वाला है और निर्मल एवं शोधक है इसलिये कल्याण कर अपने गुण से मुझे तृप्त करे। जल का यह मंत्र सब स्थान पर कहा गया है हे सर्वाङ्ग शोभने! स्त्रियों के लिये पुराण विहित दूसरा मंत्र सुनो।।१-१०।।

शुभाऽव्यया गुणिनी आदि अर्थात् मैं पति के लिये कल्याण कारिणी धनादि के अक्षय भंडार से तथा धर्म से युक्त होऊँ एवं भर्त्ता के साथ वर के हेतु श्रेष्ठ दासी बन कर रहूँ। मैं कर्म, मन तथा वाणी से पति के ऊपर क्रोध न करूँ प्रत्युत उनके वश में रहूँ। मैं अपने सौतों के मध्य सुन्दर रूप वाली, पुत्र वाली तथा सौभाग्यवती एवं अन्नदानादि में खुले हाथ वाली होऊँ, मैं दरिद्र न होऊँ। पति मेरे पर सदा प्रसन्नमुख रहें, मेरी प्रतीक्षा करें, सदा मेरे भक्त तथा मेरी मति के अनुसार कार्य करने वाले एवं मेरी गति होवें, हम दोनों में चकवा पक्षी की भाँति प्रीति होवे, मन का विराग कभी न हो, मन साधुवत् एक दूसरे का उपकार करे। जो पतिभक्ति के बल से बली, पिता तथा भर्त्ता दोनों कुलों को पवित्र करने वाली शुभ पतिव्रतायें हैं और जिन्होंने सत्यबल से सम्पूर्ण विश्व को धारण कर रखा है ऐसी उत्तम साध्वी स्त्रियों के लोकों को जाऊँ। भूमि, जल, आकाश तथा अग्नि आदि क्षेत्रज्ञ देवता तथा प्रकृति एवं महत्तत्त्व और अहंकार ये सब मेरे व्रत के साथी हैं, अतः ये मेरे निश्चय तथा व्रत का स्मरण करें। जिन देवताओं ने मनुष्यों के इस भौतिक विधि का प्रारम्भ किया है वे बीज तथा सत्त्वादि भूतों से युक्त सर्वव्यापी देवता हमारे इस व्रत एवं निश्चय में

सदा साक्षी रहें। चन्द्रमा, सूर्य तथा पुण्य के साक्षी यम एवं सम्पूर्ण दिशायें और मेरी यह आत्मा ये सभी सर्वव्यापी मेरे इस व्रत तथा निश्चय में सदा साक्षी रहें। इन पुराणोक्त मन्त्रों द्वारा सभी द्रव्यों को अभिमन्त्रित करे जब से व्रत प्रारम्भ करे तभी से ऐसा प्रतिदिन करे यह पुराणों में कहा गया है। हे शुभे! इसके बाद स्नान कर अपने हाथ से काते सूत का वस्त्र पति को देवे यदि किसी कारणवश अपना काता सूत न हो तो दूसरा ही श्वेत नवीन मुख्य वस्त्र देवे और अपने काते सूत को उस वस्त्र में बाँध देवे।।११-२०।।

पश्चात् पति को साथ लेकर हे सुमध्यमे! ज्ञान-विज्ञान के पण्डित पवित्र तथा उदार ब्राह्मण को यथाशक्ति भोजन करावे। हे महातपे! ब्राह्मण को भी जोड़ा वस्त्र, शय्या, आसन, गृह, धान्य, दास तथा दासी का दान देवे। शक्ति के अनुसार आभूषण, सब धान्यों से मिला विशेष रूप से तिल मिश्रित रत्न का पर्वत दान देवे। हे अरुन्धति! नाना रंग के वस्त्रों को ओढ़ा कर हाथी, घोड़ों का समूह दान दे इसके अभाव में गौ-दान अवश्य करे। नमक, मधु तथा सुवर्ण की सुन्दर प्रतिमा शंकर-पार्वती की दान करे। इसी प्रकार सम्पूर्ण गन्धों की, सम्पूर्ण रसों की तथा पुष्पों की एवं चाँदी और ताँबे की प्रतिमा देवे। हे नन्दिनि! सभी फलों तथा वस्त्रों की एवं चित्र और काष्ठ की प्रतिमा देवे। पाषाण की प्रतिमा का दही, दूध, घी, दूर्वा से पूजन करे या और अन्य वस्तुओं की इच्छा कर वे उन्हीं वस्तुओं से पूजन कर दान करें। काल-देश के अनुसार और अपने विभव के अनुसार थोड़ा अथवा बहुत पति की आज्ञा से ही सदा देना उचित है। तिल का पात्र देना चाहिये और कपिला गौ अवश्य देनी चाहिये और काँसे का पात्र देवे परन्तु पति की आज्ञा के बिना न देवे।।२१-३०।।

हे अनिन्दिते! कृष्ण मृग चर्म तिल वस्त्र के साथ देवे। शीशा ऐना, मोर के पाँख की मुट्ठी और आसन देवे। हे वरवर्णिनि! ये सब पदार्थ देने से सम्पूर्ण कामनायें सिद्ध होती हैं और वह स्त्री अग्रगण्या, पुत्रवती, सौभाग्यवती तथा सुन्दर रूप वाली हो जाती है। वह निर्मल नेत्रों वाली, पवित्र हाथों वाली और अधिक धन वाली होती है और इच्छानुसार रूप-गुण से सम्पन्न कन्या प्राप्त करती है। वे स्त्रियाँ पुत्र, धन, शील तथा सौभाग्य वाली स्त्रियों में श्रेष्ठ नित्य

दान करने वाली होती हैं। हे अरुन्धति! हमने स्वयं इस व्रत को पहले किया था, इसलिये पृथ्वी तल पर यह उमा-व्रत के नाम से विख्यात है। स्त्रियों के लिये यह उत्तम व्रत है, अतः इस व्रत को करना चाहिये हे अनिन्दिते! यह सब दान करने से सम्पूर्ण कामनाओं की प्राप्ति होती है। हे सौम्ये! इस व्रत को बताने वाले स्वयं देव-देव वृषभध्वज शंकरजी हैं पहले मेरा प्रिय करने के लिये सब कुछ करने वाले महादेवजी स्वयं मुझे इस व्रत में अभिषिक्त किये थे। इस व्रत के अन्त में सर्वदा ब्राह्मण को भोज्य पदार्थ देना चाहिये तथा समय और देश के अनुसार स्त्रियों को इच्छित पदार्थ देना चाहिये। हे वरवर्णिनि! व्रत के देय पदार्थों को हर एक को विभाग करके देना चाहिये ब्राह्मणों को इच्छानुसार दक्षिणा सहित अन्नदान करना चाहिये। इस व्रत में यदि अन्य पदार्थ न हो सके तो खीर अवश्य देना चाहिये और इसमें किसी प्राणी की हत्या न करे पुराण में यही निश्चित है।।३१-४०।।

हे सोमपुत्रि! अब मैं दूसरे व्रत को कहती हूँ, जिसको कि मैंने महादेव जी की कृपा से देखा है। हे शुभे! सभी स्त्रियाँ पुत्र रूप फल को चाहती हैं ऐसा सज्जनों ने कहा है, इसलिये पुत्र की इच्छा वाली स्त्रियाँ डोंटी वाला छोटा मृत्तिका घट खोज कर दान करें। इस प्राचीन विधि को ज्येष्ठ अथवा आषाढ़ के मास में करें अथवा ज्येष्ठ या आषाढ़ में एक ही बार करे इसके बाद दो मासों के पूर्ण हो जाने पर या एक ही मास के पूर्ण होने पर सपुत्र डोंटी वाले गडुआ को रस भर कर दान करे। हे निष्पापे, चन्द्रप्रभे! घी, दूध, दही, मधु अथवा जल भर कर करक का दान करे। अथवा एक ही ज्ञानवृद्ध सुन्दर व्रत करने वाले जितात्मा ब्राह्मण को ही मन से प्रसन्न हो चाहे जितना करक का दान दे। यदि स्त्री स्त्रियोचित कर्म करने वाली पुत्री की इच्छा से कुछ द्रव्य दान करे तो वह इच्छित पुत्री की प्राप्ति कर लेती है इसमें संशय नहीं है। हे पवित्र हँसी वाली! इस व्रत में गौ अथवा सुवर्ण की दक्षिणा देना कहा है, ब्राह्मणको ओढ़ने के लिये चादर अवश्य देना चाहिये। इस व्रत में पवित्रव्रता नारी को यज्ञोपवीत भी देना चाहिये, इस करक-व्रत की विधि इसी प्रकार पण्डितों ने कहा है। अपत्याख्यान योग से अर्थात् पुत्र की इच्छा से पुरुष नक्षत्र पुष्यादि के

योग में अथवा पुत्री की इच्छा से स्त्री नक्षत्र रोहिणी आदि के योग में पवित्र व्रतवाली व्रत धर्म का अनुपालन करने वाली स्त्री सम्पूर्ण वर्ष भर ब्राह्मणों के लिये करकों का दान करे।।४१-५०।।

हे सत्य बोलने वाली अरुन्धति! वर्ष के पूर्ण हो जाने पर करकों का दान करे, यह सब जो भी कुछ करे सदा पति की आज्ञा से ही करे। इस आचरित ब्राह्मण व्रत को कार्तिक की पूर्णिमा को समाप्त कर ब्राह्मण के लिये सुवर्ण सूत्र से निर्मित यज्ञोपवीत देना चाहिये। जो सती अपनी शक्ति के अनुसार यज्ञोपवित, करक, अथवा दक्षिणा देती है वह स्त्रियोचित सम्पूर्ण कामनाओं का उपभोग करती है। जब तक इस व्रत का आचरण करे तब तक किसी नये अन्न अथवा फल पुष्प का उपयोग न करे। हे धर्मज्ञे! केवल एक बार भोजन कर पुण्यक व्रत करना चाहिये इसी प्रकार ब्राह्मण को देना चाहिये इसके बाद पति को तत्पश्चात् अपने भोजन करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्ष व्रत करके स्त्री सौभाग्यवती, रूपसम्पन्ना तथा पति सुख से युक्त धन की स्वामिनी होती है। जो स्त्री सम्पूर्ण सम्वत्सर भर भाँटा नहीं खाती है वह पुत्र का विनाश नहीं देखती ऐसा जानो। खरगोस तथा मृग के मांस को कभी न खाय ऐसा करने से स्त्री दीर्घायु होती है तथा पातिव्रत्य भाव को प्राप्त करती है। स्त्री को लौकी और पोइ का भी त्याग कर देना चाहिये, पति-सुख की इच्छा वाली स्त्री को सुवर्ण की लौकी का दान करना चाहिये। जो स्त्री वर्ष पूर्ण होने पर दक्षिणा सहित एक-एक शाकों का दान करती है वह पुत्रवती तथा स्त्रियों में अग्रगण्या होती है।।५१-६०।।

जो स्त्री व्रतारम्भ से ही अपने पैरों को अपने आप धोती है वह लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करती है तथा कभी उद्विग्न नहीं होती। जो पतिव्रता स्त्री सूर्य से पवित्र भोजन केवल दिन मे कर रात्रि में अन्न का त्याग कर देती है। हे अमरवर्णिनि! वह जीवित पुत्रिका तथा सौभाग्यशालिनी एवं अपनी सभी सौतों में श्रेष्ठ होती है इसमें संशय नहीं है। सम्वत्सर पूर्ण होने पर यशस्वी दरिद्र ब्राह्मण को सुवर्ण का उत्तम सूर्य बनवा कर दान करे। व्रत का आचरण करने वाली स्त्री सूर्यास्त से पहले ही फल, पुष्प तथा भक्ष्य पदार्थों का दान करे। हे

वरवर्णिनि! जो स्त्री नियमपूर्वक सूर्य के अस्त होने पर चन्द्रमा और नक्षत्रों से पवित्र हुआ भोजन करती है वह सुवर्ण के चन्द्रमा तथा नक्षत्रों का ब्राह्मण के लिये दान करे तथा उसे गृह बनवा कर देवे। हे अमरवर्णिनि! वह चन्द्रमा के समान शीतल शरीर वाली, दर्शनीया, सौभाग्यवती तथा पुत्रवती होती है। पूर्णमासी को चन्द्रोदय होने पर अक्षत और कुश सहित पुष्पों का अर्ध्य बराबर स्त्री को देना चाहिये और दही के साथ पूआ की बलि देवे, इस प्रकार जो स्त्री करती है वह सभी मनोरथों को प्राप्त करती है। जो पतिव्रता स्त्री बादलों के घिरे होने पर बिना सूर्य दर्शन के भोजन नहीं करती वह अपने अभिप्सित कामनाओं को पाती है। हे अमरवर्णिनि! जो मनःस्विनी स्त्री शक्ति के अनुसार ब्राह्मण को सुवर्ण दान देती है वह सौभाग्यवती और दर्शनीया होती है।।६१-७२।।



अथाशीतितमोऽध्यायः।।८०।।

भगवती पार्वती बोलीं– हे अरुन्धति! जिन पुण्य व्रतों से इस शरीर को पति के सुख योग्य बनाया जा सकता है उन व्रतों को श्रेष्ठ सामग्रियों सहित कहता हूँ। पति को देवता मानने वाली जो स्त्री हर एक कृष्ण अष्टमी को उपवास अथवा फल-मूल खाकर व्रत रहती है और अपने एक समय के भोजन को ब्राह्मण के लिये दान देती है तथा श्वेत वस्त्र पहन वर्ष भर शुभाचार से गुरु और इष्ट देवता का पूजन कर ब्राह्मणों के लिये जो कुछ भी रज्जु द्वारा सुन्दर ढंग से बने चामर को और ध्वजा को तथा दक्षिणा से पूर्ण मिष्ठान्न को देती है तो भर्त्ता में भक्ति रखने वाली उस स्त्री के केश सर्प गति के समान निरन्तर टेढ़े अर्थात् घुघराले तथा नितम्ब देश तक लटकने वाले होते हैं। हे वरवर्णिनि! जो सती अपने शिर को धोने की इच्छा करती हो तो वह आँवला और बेल श्रीफल को जल में मिला कर शिर के मैल को साफ करे और गो-मूत्र का सदा प्राशन करे और थोड़ा गो-मूत्र स्नान के जल में भी मिला दे ऐसा कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को ही करना चाहिये। ऐसा करने से स्त्री वैधव्य से रहित सौभाग्यवती तथा ज्वर रोग से रहित होती है, उसका शरीर शिर के रोग

से सन्तप्त नहीं होता। हे पवित्र हास्ये! जो स्त्री अपने ललाट को दर्शनीय बनाना चाहती हो तो वह प्रतिपदा को व्रत रहकर एक समय भोजन करे। वह भोजन दूध के साथ भात का हो इस प्रकार वर्ष भर व्रत कर अन्त में चाँदी के तारों से कढ़े बेल-बूटे वाला वस्त्र ब्राह्मण को दान दे।।१-१०।।

ऐसा करने से वह सुमध्यमा स्त्री का ललाट सुन्दर रूप वाला हो जाता है, यदि स्त्री भौहों को सुन्दर बनाना चाहता हो तो वह एक दिन का अन्तर कर दूसरे दिन शाक और भात का भोजन कर वर्ष भर व्रत करे, वर्ष पूर्ण होने पर ब्राह्मण से स्वस्तिवाचन करावे और उसे सुन्दर पके फल, एक माशा सुवर्ण की दक्षिणा के साथ देवे हे निष्पापे! तुम्हारा कल्याण हो घृत से पूर्ण पात्र तथा नमक का भी दान करे। यदि सुमध्यमा स्त्री अपने कानों को सुन्दर बनाना चाहे तो श्रवण नक्षत्र प्राप्त होने पर यव से निर्मित पदार्थ का भोजन करे। फिर वर्ष के पूर्ण होने पर सुवर्ण का दो कान बनवाकर उसे घी में रख दूध के साथ ब्राह्मण को दान दे। जो स्त्री अपनी नासिका को ललाट तक सीधी तथा व्याधि से रहित चाहती हो तो वह तिल के पेड़ को तब तक जल से सींचे कि जबतक वह फूल न जाय। एक दिन उपवास कर दूसरे दिन जल से बराबर सींचती जाय फिर उसके पुष्पों को घी में छोड़कर ब्राह्मण को दाने दे। हे अमृतोद्भवे! जो स्त्री अपनी आँखों को सुन्दर बनाना चाहती हो तो वह एक दिन बाद केवल दूध अथवा घी के साथ अन्न का भोजन करे एक वर्ष पूर्ण हो जाने पर वह व्रत वेष विभूषिता स्त्री लाल अथवा नीले कमल पत्र को दूध में छोड़े और दूध में उस तैरते हुए कमल पत्र को ब्राह्मण के लिये दान दे ऐसा करने से कृष्ण मृग की भाँति सुन्दर उसकी आँखें हो जाती हैं।।११-२०।।

धर्मगुण से युक्त जो स्त्री अपने ओष्ठों को सुन्दर बनाना चाहती हो तो वह मिट्टी के पात्र से एक वर्ष पर्यन्त जल पीवे और वह धर्मभागिनी नवमो को बिना माँगे पदार्थ का भोजन करे इसके बाद वर्ष पूर्ण हो जाने पर विद्रम का दान करे। हे शोभने! ऐसा करने से उस स्त्री के ओष्ठ विम्बा फल के समान लाल-लाल हो जाते हैं और उसका शरीर सुन्दर हो जाता है तथा वह पुत्र धन से धनी एवं गौवों वाली हो जाती है। हे अमरवर्णिनि! जो स्त्री अपने दाँतों को

सुन्दर बनाना चाहती हो तो वह अनिन्दिता शुक्ल पक्ष की अष्टमी को दोनों समय उपवास करे। इसके पश्चात् वर्ष पूर्ण होने पर वह सती अत्यन्त गाढ़े दूध में चाँदी के बने दाँतों को डाल कर दान करे। ऐसा करने से वह सती कुन्दकली के समान दाँतों को प्राप्त करती है तथा हे निष्पापे! वह सौभाग्य एवं पुत्रों को प्राप्त करती है। हे सुमुखि! जो स्त्री सम्पूर्ण मुख को प्रिय एवं दर्शनीय बनाना चाहती हो तो वह पूर्णिमा को स्नान कर शुभ चन्द्रोदय होने पर दूध से पके यावक विप्र को दान करे इसके बाद वर्ष पूर्ण होने पर चाँदी का सुन्दर चन्द्रमा बनवा उसे कमल के फूल में रख ब्राह्मण को दे तथा उनसे स्वस्तिवाचन करावे इस प्रकार दान करने से स्त्री पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली सुन्दरी होती है। जो स्त्री अपने स्तनों को ताड़-फल की भाँति सुन्दर बनाना चाहती है तो वह दशमी को मौन रहकर बिना माँगे पदार्थ का भोजन करे।।२१-३०।।

सम्वत्सर पूर्ण हो जाने पर सुवर्ण निर्मित दो बेल फलों को दक्षिणा सहित धैर्यशाली ब्राह्मण के लिये दान करे। हे अमरवर्णिनि! ऐसा करने से वह स्त्री परम सौभाग्य तथा अनेक पुत्रों को प्राप्त करती है तथा वह सदा उन्नत स्तनों को धारण करती है। एकान्त में भोजन करने वाली जो स्त्री अपने पेट को कृश बनाना चाहती हो तो उसे सदा पञ्चमी तिथि में जल के साथ अन्न का भोजन करना चाहिये। वर्ष पूर्ण होने पर हे धन्ये! वह फूली हुई जाति नामक लता दक्षिणा सहित संयमी ब्राह्मण को दान देवे। हे सुमध्ये ! जो स्त्री अपने हाथों को सुन्दर बनाना चाहती हो ता वह द्वादशी को श्रेष्ठ शाकों को खाकर व्रत करे। वर्ष पूर्ण होने पर वह सुवर्ण के हाथ बनवा कर दो शुभ कमलों के साथ सदाचारी ब्राह्मण को दान देवे। हे सुव्रते ! जो स्त्री नितम्ब को बड़ा बनाना चाहती हो तो वह बिना माँगे पदार्थ को त्रयोदशी तिथि में एक बार भोजन कर व्रत करे। हे वरानने! सम्वत्सर के पूर्ण होने पर वह नमक के ढेर में चारों दिशाओं में ब्रह्मा की तरह चार मुखाकृति बना कर दान करे और उसी तरह ब्रह्मा के मुख का आकार बना सुवर्ण का दान भी करे तथा वह धर्मज्ञा अञ्जन लगा धीरे-धीरे पूर्ण करे और वह सम्पूर्ण रत्नों तथा लाल वस्त्रों का दान करे इससे हे सौम्ये! वह इच्छित नितम्ब को प्राप्त करती है।।३१-४०।।

यदि सती मधुर बचन बोलना चाहे तो नमक छोड़ दे एक वर्ष अथवा एक मास तक व्रत रह कर नमक का दान करे। हे अमरवर्णिनि ! परम माधुर्य्य वचन को चाहती हुई दक्षिणा के सहित नमक का ब्राह्मण के लिये दान करे तो सुग्गे की बोली से सौ गुणा अधिक मीठी बोली बोलने लग जाती है। हे सोमनन्दिनि ! जो स्त्री अपने पैर की एँड़ियों को गम्भीर बनाना चाहती हो तो हे वरारोहे ! वह षष्ठी-षष्ठी को जल के साथ भात का भोजन करे और उसे कभी पैर से अग्नि तथा ब्राह्मण का स्पर्श नहीं करना चाहिये हे तपयुक्ते! यदि कभी भूल से पैर का स्पर्श हो जाय तो अग्नि अथवा ब्राह्मण की वन्दना करनी चाहिये। पैर से पैर को धोना चाहिये इस प्रकार नित्य व्रत से युक्त हो पति को देवता मानने वाली वह धर्मज्ञा। हे पतिव्रते ! चाँदी के दो कछुआ बनवा हे निष्पापे! उन्हें घृत में रख कर किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान देव और दो कमलों का मुख नीचे की ओर कर लाल वस्त्र तथा सुवर्ण के जंजीर से अलंकृत कर ब्राह्मण को दान देवे। जो स्त्री अपने सम्पूर्ण शरीर को ही अति मनोहर बनाना चाहती हो तो वह पति को देवता मानने वाली स्त्री पुष्य काल में त्रिरात्र व्रत को करे और वह पूर्णिमा अथवा माघ या क्वार की षष्ठी को माता-पिता तथा अतिथि देवता का सम्मान करे। वह पतिदेवता स्त्री प्रतिदिन ब्राह्मण को घी दान दे तथा प्रतिदिन घर में झाड़ू लगावे और लीपे। हे शुभ्रे! अपनी आत्मा के कल्याण के लिये पण्डिता स्त्री उपलेपन, बलिकर्म तथा कटुभाषण न करे। इस प्रकार व्रत में स्त्री किसी शाक का भोजन करे और बलि न दे तथा असत्य का बोलना त्याग दे।।४१-५२।।



अथ एकाशीतितमोऽध्यायः ।।८१।।

उमा ने कहा कि-यदि बन्धुओं को गुणी बनाना चाहती हो तो पति को देवता मानने वाली स्त्री सप्तमी-सप्तमी को सदा एक बार भोजन कर व्रत करे। वर्ष पूर्ण होने पर दक्षिणा सहित स्वर्ण का वृक्ष ब्राह्मण को दान दे तो वह शुभ बन्धुओं वाली हो जाती है। हे श्रेष्ठे! जो स्त्री करंज वृक्ष के नीचे दीपक

जलाती है और सम्वत्सर पूर्ण होने पर स्वर्ण का दीपक दान देती है तो वह स्त्री अपनी क्रान्ति से पति की प्रियतमा तथा पुत्रवती होती है और सौतों के मध्य दीपक के समान प्रकाशित होती है। जो स्त्री सबके बाद भोजन करती है तथा किसी को कष्ट नहीं देती है हे सौम्ये! जो कभी उपवास नहीं करती तथा पति को देवता मानती है। और पवित्रता धर्म से रहती है जो कभी कटु भाषण नहीं करती तथा सास-ससुर की सेवा में नित्य तत्पर रहती है और जो सत्य धर्म के गुण से युक्त हो नित्य पति की सेवा करती है उसे व्रत तथा उपवास से क्या प्रयोजन क्योंकि उसका तो प्रति दिन ही सदा व्रत है। हे सुमध्यमे! जो स्त्री दैव योग से विधवा हो गई है उसके पुराण में कहे गये धर्म को कहती हूँ। विधवा स्त्री सज्जनों के धर्म स्मरण करती हुई मृत्तिका की मूर्ति अथवा पति का चित्र बनाकर संकल्प कर सदा पूजन करती रहे। और व्रत अथवा उपवास तथा विशेषतया भोजन उन्हीं से आज्ञा लेकर करे।।१-१०।।

जो विधवा अपने पति का अपमान नहीं करती वह अपने भर्त्ता के लोक को जाती है और वह वेदी पर शयन करने वाली स्त्री सूर्य के समान तेजस्विनी हो जाती है। आज से सभी देवताओं की पत्नियाँ इस सनातन पुराणोक्त पुण्यक व्रत की विधि को देखेंगी तथा करेंगी भी। नारद मुनि सम्पूर्ण पौराणिक विधि को जानेंगे और वे धर्मात्मा व्रतों के उपवास की विधि भी जानेंगे। इस पुण्यक व्रत के अवसर पर हे सोमपुत्रि! सदा अदिति, इन्द्राणी तथा तुम्हारा नाम लिया जायगा और पतिव्रत गुण से युक्त सतियों का भी नाम कीर्तनीय होगा जिस प्रकार क्रमशः सम्पूर्ण उपवास व्रत को विधि है। उसी तरह विष्णु के अवतारों में उनकी भार्यायें इस सनातन पुण्यक व्रत विधि को जानेंगी और करेंगी। स्त्री धर्म के अन्दर पति की सेवा और उसका सदाचारिणी होना एवं दुष्ट वचन का न बोलना सब धर्मों से विशेष प्रशंसनीय है। नारदजी बोले कि–तपोधना महादेवी उमा के इस प्रकार कहने पर वे साध्वी स्त्रियाँ प्रसन्नता से हरप्रिया महादेवी को नमस्कार कर अपने वासस्थान को चली गईं। हे वैदर्भि! धर्मचारिणी अदिति ने जो इस पुण्यक व्रत को किया था जो उमा-व्रत की सम्पूर्ण विधि को पहले से ज्ञात कर रखा था तब उन्होंने व्रत किया था।

अदिति ने कश्यप जी को पारिजात में बाँध कर मुझे दान कर दिया था उसी अदिति व्रत के समान सत्यभामा ने श्रीकृष्ण को पारिजात में बाँध कर मुझे दान दिया है।।११-२०।।

धर्म को नित्य पालने वाली सावित्री ने इस व्रत को अधिक रूप में किया था। इस व्रत में सायंकाल हो जाने पर देवताओं के स्थानों पर पूजन तथा नमस्कार एवं जप द्विगुण फल को देने वाला कहा है। इस सावित्री व्रत तथा अदिति व्रत को करके पति-कुल एवं पिता-कुल तथा अपने आत्मा को भी स्त्रियाँ तार देती हैं। उमा ने जैसे व्रत किया था वैसे ही इन्द्राणी ने व्रत किया था और अधिक रूप में लाल वस्त्रों को दिया था तथा श्रद्धा के सहित भोजन कराया था। पुण्यक व्रत की सिद्धि के लिये चौथे दिन; दिन-रात उपवास कर एक सौ घड़ों का दान करना चाहिये। हे यशस्करि! गंगाजी ने भी इस उमा व्रत में दान दिया था, इस व्रत में प्रातःकाल गंगा के जल में स्वयं जाकर स्नान करना प्रशंसनीय है। हे हरिप्रिये! गंगाजल में अथवा किसी जलाशय में माघ शुक्ल पक्ष में स्नान करना सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाला गंगा-व्रत कहलाता है। हे हरिवल्लभे! गंगा-व्रत का आचरण करने वाली धर्मज्ञा स्त्री इक्कीस कुलों को तार देती है। शुभ गंगा व्रत में हजार घड़ों का दान देना चाहिये क्योंकि यह सब दुःखों को दूर कर मनोरथों को पूर्ण करने वाला सार्वकामिक व्रत है। हे हरिवल्लभे! यम की भार्या ने यामरथ नाम का व्रत किया था, यह व्रत हेमन्त ऋतु में खुले स्थान में करना चाहिये।।२१-३०।।

हे शुभे! पवित्र आचार वाली स्त्री को स्नान कर खुले स्थान में बैठ पति को नमस्कार कर इन वाक्यों को कहना चाहिये। मैं यामरथ व्रत को करती हूँ अतः पीठ पर हिम न धारण करती हुई पतिव्रता होऊँ और मेरे पुत्र जीते रहें तथा पुर में अग्रगण्या होऊँ। मैं सौतों के ऊपर रहूँ और यम को न देखूँ तथा चीरकाल तक पति और पुत्रों के सहित सुख से जीती रहूँ। मैं पति लोक को जाऊँ और पति के आनन्द देने वाली होऊँ मेरे वस्त्र सुन्दर रहें हाथ पवित्र रहें आत्मीयजनों की माननीया तथा गुणों से युक्त होऊँ। ऐसा कहने के पश्चात् ब्राह्मण से स्वस्ति वाचन करावे और उन्हें मधु, काले तिल अथवा खीर से

भोजन करावे। हे अमरवर्णिनि! हरि प्रिये! रुद्रपत्नी महादेवी द्वारा पहले कहे गये व्रतों को देवियों ने इसी प्रकार किया है। मैं कहता हूँ कि मेरे तप, बल से युक्त होकर तुम सभी कृष्ण पत्नियाँ इस व्रत के पुण्य फल को देखोगी। जैसे कल्याण के गुण से युक्त पवित्र और पुराणोक्त शुभ व्रतों के फलों को पहले उमा देवी ने देखा है। वैशम्पायनजी बोले कि-उमा के वरदान से दिव्य दृष्टि द्वारा व्रत के विस्तार तथा व्रत फल को देख कर इस व्रत को रुक्मिणी ने किया। उमा के सभी व्रतों में वृषभ का दान तथा रत्नमाला का दान उसी प्रकार अधिक प्रशंसनीय है कि जैसे सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाला अन्न का दान।।३१-४०।।

पहले उमा ने जिस प्रकार व्रत किया था उसी प्रकार के व्रत को जाम्बवती ने किया और उसने सबसे अधिक मनोहर रत्न वृक्ष का दान दिया था। उसी प्रकार सत्यभामा ने उमा व्रत कर दान दिया था उसने विशेष रूप से पीताम्बर का दान दिया। हे कुलवर्द्धने! रोहिणी, फाल्गुनी तथा मघा ने इस व्रत को कर बहुत दान दिया था। शतभिषा ने भी पुण्य लक्षण वाला व्रत किया था जिससे हे कुरुनन्दन! वह नक्षत्रों में प्रधान हो गयी।।४१-४४।।



अथ द्वयशीतितमोऽध्यायः।।८२।।

जनमेजय बोले-हे व्यास शिष्य धर्मज्ञ तपोधन वैशम्पायन! आपने पारिजात हरण के प्रकरण में षट्पुर की बात चलाई थीं। हे तपोधन! वहाँ पर प्रमुख दारुण असुरों का निवास करना भी बताया था, हे मुनिश्रेष्ठ! अब उनके वध की कथा कहिये। वैशम्पायनजी बोले-जब अक्लेशकर्मा रुद्र ने त्रिपुरों को मारा तो वहाँ बहुत से प्रधान असुरोत्तम शेष रह गये थे। वे त्रिपुर में रहने वाले असुर रुद्र के अग्निबाण से न जल सके थे वे छै लाख दानव थे, न इससे अधिक न कम। वे जाति वध से संतप्त हो महर्षिगणों से सेवित तथा सज्जनों को इष्ट जम्बू मार्ग में तप करने लगे। हे नृपश्रेष्ठ! वे वीर दानव सूर्य की ओर मुँह करके वायु भक्षण कर एक लाख वर्ष तक ब्रह्मा की स्तुति करते हुए तप

करते रहे। हे राजन् ! उन दानवों का एक समूह गूलर के वृक्ष की छाया में महान् तप कर रहा था। कुछ दानव कैंथ के वृक्ष का आश्रय ले उग्र तप करने लगे। हे कौरवनन्दन! कुछ दानव वट वृक्ष की जड़ पर बैठ कर तथा वट की शाखा पर चढ़ कर परब्रह्म का विचार करते हुए तप करने लगे। हे नरदेव! प्रजाओं के सृष्टिकर्ता पितामह ब्रह्मा उन दानवों के तप पर प्रसन्न हो गये तथा धर्मधारियों में श्रेष्ठ देवताओं में प्रमुख ब्रह्मा उन्हें वर देने उनके समीप चले गये।।१-१०।।

हे राजन्! कमल योनि ब्रह्मा ने उनसे वर माँगने को कहा पर वे त्र्यम्बक शिव से द्वेष करने के कारण वर नहीं लेना चाहते थे। हे कुरुनन्दन! जातियों की अपचिति को जाना चाहते थे अर्थात् वे रुद्र के क्रोध का बदला लेकर जाति के ऋण से उऋण होना चाहते थे तब ऐसा समझ कर सर्वज्ञा ब्रह्मा ने उन दानवों से कहा। सम्पूर्ण विश्व के कर्त्ता संहर्त्ता से भला कौन बदला ले सकता है? इस विषय में तुम लोगों का श्रम व्यर्थ है। वे उमा के साथ महेश्वर देव आदि मध्य तथा अन्त से रहित हैं उनकी स्तुति कर देवता स्वर्ग में सुख की इच्छा करते हैं। हे राजन्! वहाँ कुछ जो दुरात्मा महासुर थे वे वर लेना नहीं चाहे और जो सुन्दर भावना वाले थे वे वर की इच्छा किये। जो दुरात्मा दैत्य वर लेना नहीं चाहते थे उनसे ब्रह्मा ने कहा है असुरों! तुम रुद्र पर क्रोध करना छोड़ कर वर माँगो। तब उन दानवों ने कहा हे विभो! हम लोग सभी देवताओं से अवध्य हों और हम लोगों के छै पुर पृथ्वी के भीतर हों। हे प्रभो! हम लोगों का वह षट्पुर सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा धन-धान्य से पूर्ण हो जिससे कि हम लोग षट्पुर में जाकर सुखपूर्वक वास करें। जिन रुद्र ने हमारी जाति वालों को मार डाला उन रुद्र का उग्र भय हम लोगों को वहाँ न हो हे तपोनिधे! त्रिपुर को नष्ट देख हम लोग रुद्र से भयभीत हैं। पितामह ब्रह्मा जी बोले हे असुरों! तुम लोग देवताओं तथा शंकर से अवध्य होओगे परन्तु जब सज्जनप्रिय सत्पथ पर चलने वाले ब्राह्मणों को कोई कष्ट नहीं पहुँचाओगे।।११-२०।।

यदि मोह के वशीभूत होकर कभी ब्राह्मणों का अनिष्ट कर दोगे तो

तुम लोगों का नाश हो जायेगा क्योंकि ब्राह्मण जगत् की परमगति हैं। ब्राह्मणों का अहित करने में नारायण से डरना चाहिये क्योकिं सम्पूर्ण प्राणियों पर भगवान् जनार्दन दया करने वाले हैं। वे शंकर-द्वेषी दैत्य ब्रह्मा जी से वरदान लेकर उनके कहने पर चले गये और जो महादेव के भक्त धर्मचारी असुर रहे गये थे उन्हें अपने गणों को शंकर जी उमा सहित श्वेत वृषभ पर सवार हो स्वयं दर्शन दिया तथा सज्जनों की गति भगवान् शंकर असुरों से बोले कि। हे असुर श्रेष्ठों! वैर भाव तथा पाखंड एवं हिंसा को त्याग कर केवल मेरे ही आश्रित रहे हो इसलिये तुम लोगों को मैं वर देता हूँ। जिन परम सत्क्रिया करने वाले मुनियों और ब्राह्मणों से तुम लोग गुरु मंत्र लिये हो उन्हीं के साथ स्वर्ग को जाओगे मैं तुम लोगों के सुकर्म से प्रसन्न हूँ। जो कापित्थिक ब्रह्मवादी कैंथ के वृक्ष तले तप करते हुए निवास करेंगे उन लोगों को मेरे समान लोक की प्राप्ति होगी। जो मनुष्य यहाँ पर अमावस्या तथा पूर्णिमा को वानप्रस्थ विधि से मेरी पूजा करते हुए व्रत करेंगे वे हजार वर्ष की तपस्या का फल प्राप्त करेंगे तथा तीन रात्रि निवास कर विधिवत् मेरे पूजन करने से अपनी अभीष्ट गति को प्राप्त करेंगे। अर्कद्वीप में निवास करने से इसका दूना फल प्राप्त होगा। उससे दूर देश में निवास करने पर फल नहीं मिलेगा, तुम लोगों का कल्याण हों मैं तुम सबों को वर देता हूँ कि।।२१-३०।।

जो मुझे श्वेत वाहन के नाम से पूजेगा वह सब स्थानों से भयभीत होने पर भी मेरी गति को प्राप्त होगा। उदुम्बर, वटमूल, कपित्थ तथा शृगालबाटी नामक वृक्षों के नीचे निवास करने वाले दृढ़व्रती धर्मात्माओं, ब्राह्मणों तथा ब्रह्मवादी मुनियों का विशेष रूप से जो मनुष्य पूजन करेंगे वे अपनी इच्छित गति को जायेंगे। इस प्रकार कह कर महादेव भगवान् श्वेत वाहन से उन्हीं सबों के साथ रुद्र लोक को चले गये। मैं जम्बू मार्ग को जाऊँगा मैं जम्ब में निवास करूँगा इस प्रकार केवल संकल्प करने मात्र से मनुष्य रुद्रलोक में निवास प्राप्त करते हैं।।३१-३५।।



अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।।८३।।

वैशम्पायनजी बोले-इसी समय एक ब्राह्मण जो कि याज्ञवल्क्य के शिष्य धर्म के गुणों से युक्त एवं चारों वेद तथा छै शास्त्रों के ज्ञाता ब्रह्मदत्त नाम से विख्यात वाजसनेयि शाखा वाले जिन्होंने बुद्धिमान् वसुदेव का अश्वमेध यज्ञ कराया था। वह षट्पुर के निवासी थे उन्होंने मुनि सेवित आवर्ता नदी के शुभ तट पर एक वर्ष के यज्ञ व्रत की दीक्षा से दीक्षित हो गये। हे कुरुवंशी! वे द्विजोत्तम वसुदेव के मित्र थे और उनके साथ अध्ययन भी किये थे तथा वे उनके उपाध्याय एवं अध्वर्यु भी थे। हे राजन्! उनके उस यजन के समय देवकी के साथ वासुदेव षट्पुर स्थित ब्रह्मदत्त के पास गये जैसे कि इन्द्र बृहस्पति से मिलने जाते हैं। बहुत अन्न तथा बहुत दक्षिणा वाले ब्रह्मदत्त के उस यज्ञ को मुनियों में श्रेष्ठ महात्मा तथा दृढ़व्रती मुनि लोग करा रहे थे। हे भारत! ब्रह्मदत्त के उस यज्ञ में मैं याज्ञवल्क्य, सुमन्तु, जैमिनि, धृतिमान, जाबालि तथा देवल आदि ऋषि पधारे थे। वह यज्ञ बुद्धिमान् वसुदेव की सम्पदा से युक्त था वहाँ पर इप्सित सभी पदार्थों को धर्मचारिणी देवकी स्वयं दे रही थीं। जगत्-स्रष्टा वासुदेव श्रीकृष्ण के प्रभाव से महीतल में होने वाले उस यज्ञ में षट्पुर वासी दैत्य निकुम्भ आदि वहाँ आकर वर के घमण्ड से कहने लगे कि, यज्ञ में हम लोगों का भी भाग लगाइये हम लोग भी सोम रस का पान करेंगे और यजमान ब्रह्मदत्त हम लोगों को भी अपनी कन्यायें दे।।१-१०।।

हम लोगों ने सुना है कि इस महात्मा ब्रह्मदत्त की बहुत रूपवती कन्यायें हैं, इसलिये उन कन्याओं को बुला कर देवे और यह ब्रह्मदत्त विशिष्ट रत्नों को भी देवे अन्यथा यज्ञ नहीं कर सकता है यह हम सब आज्ञा दे रहे हैं। यह सुन कर ब्रह्मदत्त उन असुरों से बोले कि हे असुरश्रेष्ठों! पुराण में असुरों को यज्ञ-भाग का विधान नहीं है। तब हम कैसे इस यज्ञ में तुम लोगों को सोम रस पीने के लिये दे सकते हैं, वेद के भाष्यार्थ को जानने वाले पण्डित मुनिश्रेष्ठों से पूछ लो। जो कन्यायें हमें देनी हैं उनके देने का संकल्प मैंने पहले ही कर लिया है, उन्हें मैं विवाह वेदी पर किसी समान कुल वाले को ही दूँगा इसमें संशय नहीं

है। हाँ रत्नों को मैं दूँगा पर शान्ति से 'इसे विचार लो' बलपूर्वक नहीं दूँगा क्योकिं मैं देवकी पुत्र श्रीकृष्ण के आश्रित हूँ। इस पर निकुम्भ आदि षट्पुरवासी पापी दानव रुष्ट हो यज्ञ-मण्डप को लूटने लगे और कन्याओं के हरण का उद्योग करने लगे। इस प्रकार उपद्रव में दानवों को प्रवृत्त देखकर वसुदेव ने दुन्दुभी बजा कर महात्मा श्रीकृष्ण, बलभद्र तथा गद को बुलाया। बुलाने के अर्थ को समझने वाले श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न से कहा कि हे पुत्र! तुम शीघ्र जाओ और माया द्वारा कन्याओं की रक्षा करो। हे प्रभो! अर्थात् हे कन्या रक्षण में समर्थ! तब तक मैं यादवों की सेना के साथ षट्पुर जा रहा हूँ तत्पश्चात् पिता की आज्ञा का पालन करने वाले वीर प्रद्युम्न षट्पुर को चले गये।।११-२०।।

वे महाबली इच्छानुसार निमेष मात्र में ही वहाँ जाकर माया द्वारा कन्याओं को हर लिये और रुक्मिणी सुत ने माया से वैसी ही अन्य कन्यायें बनाकर वहाँ रख दिये तथा धर्मात्मा प्रद्युम्न ने देवकी से "मत डरो" ऐसा कह दिया। हे नराधिप! इसके पश्चात् ब्रह्मदत्त की मायामयी कन्याओं को हर कर संतुष्ट हो निकुम्भादि दैत्य षट्पुर में चले गये। हे नराधिप! इसके बाद वहाँ शास्त्र विधि से जो विशिष्ट तथा बहुत गुण वाला यज्ञ कर्म था हुआ। हे भारत! उसी समय बुद्धिमान् ब्रह्मदत्त द्वारा निमंत्रित राजे वहाँ यज्ञ में आये। जरासन्ध, दन्तवक्र, शिशुपाल, पाण्डव, धृतराष्ट्र-पुत्र कौरव तथा सेना सहित मालवा नरेश। रुक्मी, आह्वत्ति, नीलधर्म और अवन्ति के राजा विन्द-अनुविन्द, शल्य तथा शकुनि। हे भारत! इनके अतिरिक्त अन्य राजे भी जो महात्मा तथा दृढ़ायुध थे आये उन्हें ब्राह्मण देवता ने षट्पुर के समीप ही टिका दिया। उन राजाओं को आया देख प्रशंसनीय श्रीमान् नारद जी चिन्ता करने लगे कि यहाँ पर क्षत्रियों और यादवों का संग्राम होगा। यहाँ पर युद्ध का कारण मैं ही होऊँगा, इसलिये मुझे इसका प्रयत्न करना चाहिये, ऐसी चिन्तना कर वे निकुम्भ के भवन को चले गये।।२१-३०।।

वे धर्मात्मा निकुम्भादि दानवों से पूजित हो बैठ गये और निकुम्भादि दानवों से बोले। यादवों से विरोध कर कैसे सुख से रह सकते हो क्योंकि जो

ब्रह्मदत्त हैं वही हरि है, ब्रह्मदत्त के व्यापक हरि मित्र हैं। बुद्धिमान् ब्रह्मदत्त को पाँच सौ भार्यायें हैं, ब्रह्मदेव ने वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण का प्रिय करने के लिये उन्हें लाया था। उनमें दो सौ ब्राह्मण कन्यायें, एक सौ क्षत्रिय कन्यायें, एक सौ वैश्य की कन्यायें तथा एक सौ शूद्र कन्यायें हैं। उन कन्याओं की सेवा से प्रसन्न हो बुद्धिमान् धर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ पुण्यकर्मा मुनि दुर्वासा ने उन्हें वरदान दिया था। बुद्धिमान् दुर्वासा के वरदान से उनसे एक-एक कन्यायें तथा एक-एक पुत्र उत्पन्न हुए वे सब अनुपम रूप वाले हैं। हे वीर! वे पुत्रियाँ भर्ता के प्रत्येक सङ्गम में कुमारी की भाँति कमनीय हो जाया करती है और सभी श्रेष्ठ अङ्गनायें अपने शरीर से सब प्रकार के पुष्पों का गन्ध छोड़ती हैं, सभी सदा युवती रहती हैं और पतिव्रता हैं। हे दिति पुत्र! बुद्धिमान् दुर्वासा के वरदान से सभी अप्सराओं की भाँति गाना-नाचना जानती हैं और सभी पुत्र रूप सम्पन्न शास्त्र के अर्थ को जानने में कुशल हैं तथा सभी परम्परागत वर्ण धर्म में स्थित हैं।।३१-४०।।

उनमें चार सौ कन्याओं को बुद्धिमान् ब्रह्मदत्त ने प्रमुख भीम वंशियों के लिये दे दिया था और जो एक सौ कन्यायें शेष रह गई थीं उन्हें तुम हर लाये हो। हे वीर! उन कन्याओं के लिये तुमको यादवों से युद्ध करना पड़ेगा इसलिये तुम्हें सहायता के लिये सम्मानपूर्वक राजाओं का वरण करना चाहिये। तुम्हें ब्रह्मदत्त की कन्याओं के हेतु सहायतार्थ भूमिपालों को विविध प्रकार के रत्न देने चाहिये। उन राजाओं का आतिथ्य-सत्कार करो इससे सब राजे तुम्हारे पक्ष में आ जायेंगे, ऐसा कहने पर वे दैत्य वैसा ही किये। तब पाँच सौ कन्यायें (चार सौ विवाहित जो यज्ञ में आई थीं और एक सौ अविवाहित) तथा अनेक प्रकार के रत्नों को पाकर पाण्डव-पुत्रों को छोड़ सभी राजे आपस में यथायोग्य बँटवारा कर लिये; निमेष मात्र में नारदजी वहाँ जाकर पाण्डवों को मना कर दिया था। हे राजन्! वे श्रेष्ठ राजे सन्तुष्ट होकर असुरों से कहे कि, आप लोग सब प्रकार कामनाओं से समृद्धिशाली तथा स्वयं आकाशगामी होकर भी हम लोगों का पूजन किये हैं, अतः न्याय के अनुसार ये क्षत्रिय आपको क्या दें? आप जैसे दिव्य वीरों द्वारा यह पहले-पहल क्षत्रिय पूजित

हुए हैं। देवता शत्रु निकुम्भ प्रसन्न होकर क्षत्रियों की वीरता का वर्णन कर बोला- हे नृपोत्तमो! हम दानवों का शत्रु यादवों के साथ संग्राम होगा उसी युद्ध में मैं आप लोगों से सहायता चाहता हूँ।।४१-५०।।

हे विभो! क्षीण पाप वाले सभी क्षत्रिय पाण्डवों को छोड़कर "ऐसा ही होगा" कह दिये, पाण्डव सभी बातों को सुन चुके थे। हे कुरुनन्दन! उधर क्षत्रिय युद्ध के लिये इकट्ठे होने लगे इधर ब्रह्मदत्त की स्त्रियाँ यज्ञावट में चली आईं। हे नृप! महादेवजी के वचनों का स्मरण करते श्रीकृष्ण जी भी षट्पुर को चल दिये। पुरवासियों के हित की कामना से रक्षार्थ राजा उग्रसेन को द्वारका में स्थापित कर यादवों की सेना के साथ वसुदेव की प्रेरणा से यज्ञवाट के समीप उत्तम कल्याणकारी प्रदेश में समर्थ श्रीकृष्ण डेरा डाल दिये। प्रभु श्रीकृष्ण ने सेना के चारों ओर छोटे-छोटे वृक्षों से घेरा करा सेना के रक्षार्थ प्रद्युम्न को चारों तरफ घुमकर देखभाल करने के लिये नियुक्त कर दिया।।५१-५६।।



अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः।।८४।।

वैशम्पायनजी बोले–सूर्योदय के एक मुहूर्त बाद मनुष्यों की आँखें निर्मल हो जाने पर बलराम, श्रीकृष्ण तथा सात्यकि गरुड़ पर चढ़ गये। युद्ध की आकांक्षा से उन लोगों ने अंगुलियों की रक्षा के लिये गोह के चमड़े हाथों में पहन लिये तथा कवच से सुसज्जित हो विल्वोदकेश्वर महादेव को नमस्कार किया। रुद्र के पुण्य वचनों से उन लोगों ने वरदत्त आवर्त्त गंगा के जल में स्नान भी किया था। मानद श्रीकृष्ण ने यज्ञवाट की रक्षा के लिए पाण्डवों को नियुक्त कर तथा सेना के आगे सबसे ऊपर प्रद्युम्न को स्थापित कर और शेष सेना को गुफा के द्वार पर नियुक्त कर सज्जनों की गति भगवान् श्रीकृष्ण ने जयन्त तथा प्रवर ब्राह्मण का स्मरण किया। हे भारत! वे आते ही अपने को सेना के उग्रभाग में प्रद्युम्न की तरह नियुक्त देखा। इसके बाद श्रीकृष्ण की आज्ञा से रणभेरी, जलज, मुरज तथा अन्य और भी रण के बाजे बजने लगे। साम्ब और गद ने

मकर व्यूह की रचना की और हे भारत! सारण, उद्धव, भोज, वैतरण, अनाधृष्टि, धर्मात्मा पृथु, कृतवर्मा, दंष्ट्र, अरिमर्दन निचक्षु, सनत्कुमार तथा धर्मात्मा चारुदेष्ण और अनिरुद्ध को साथ लेकर सेना के पृष्ठभाग में साम्ब और गद इन लोगों के नायक बनकर रक्षा कर रहे थे।।१-१०।।

हे कुलवर्द्धन! रथ, अश्व, मनुष्य तथा हाथियों से व्याप्त यादवों की शेष सेना व्यूह के अन्दर व्यवस्थित थी। इधर युद्धदुर्मद दानव मेघ के समान शब्द करने वाले गर्दभों और हाथियों पर चढ़कर षट्पुर से निकले। हे भारत! वे मकर, शिशुमार, शीघ्र चलने वाले भैसों, गैड़ों, ऊँटों तथा कच्छपों पर भी चढ़कर निकले और कुछ प्रमुख दानव विविध आयुधों को हाथों में धारण किये तथा किरीट और सुसज्जित मुकुट एवं बाजूबन्द से विभूषित हो रथ पर सवार होकर चले। रथ की नेमि के शब्द के साथ वे नाना प्रकार के बाजे बजाते तथा महाघोर मेघ के समान शब्द करने वाले शंखों को बजाते चले आ रहे थे। हे जनेश्वर! लड़ाई के लिये उद्यत असुर सेना के आगे-आगे निकुम्भ वेसे ही चल रहा था कि जैसे देव सेना के आगे इन्द्र चलते हैं। बल से उत्कट दानव विविध प्रकार के अव्यक्त शब्दों से पृथ्वी और आकाश को भरते हुए तथा बार-बार उछलते-कूदते हुए चले आ रहे थे। हे जनमेजय! असुरों की सहायता के लिये वचन देने वाले राजे भी चेदिराज को अगुआ बना कर सेनाओं सहित तैयार हो रहे थे। हे नरव्याघ्र! दुर्योधन भी सौ भाइयों के साथ रथ पर चढ़ कर चेदिराज के छोटे भाइयों के आगे गन्धर्व नगर की भाँति स्थित था। कठिन नाद करने वाले वीर, द्रुपद के रथों पर सवार होकर खड़े थे और रण के लिये निश्चय कर रुक्मी एवं आह्वति खड़ा था, शल्य, शकुनि तथा राजा भगदत्त ताल वृक्ष के समान धनुषों को फेरते हुए खड़े थे, जरासन्ध, त्रिगर्त तथा उत्तर के सहित विराट खड़े थे।।११-२०।।

देवताओं से महासुरों की भाँति जय की इच्छा से युद्ध के लिये उद्यत निकुम्भादि वीर समर में डट गये। इसके बाद सर्प के समान विषधर बाणों द्वारा निकुम्भ भीम वंशियों की भयंकर सेना का मर्दन करने लगा। वहाँ सेनापति यादव अनाधृष्टि क्रोध कर कटैले पुंखों वाले तीक्ष्ग बाण के समूहों

से निकुम्भ को प्रतिउत्तर देने लगे। अनाधृष्टि के बाणों से सभी ढक गये न तो निकुम्भ का रथ न घोड़े न ध्वजा और न निकुम्भ ही दिखाई पड़ रहा था। इसके बाद मायावियों में श्रेष्ठ वीर निकुम्भ सावधान हो माया से भैम श्रेष्ठ अनाधृष्टि का स्तम्भन करने लगा। अनाधृष्टि को स्तम्भन कर षट्पुर की गुफा में लाकर बन्द कर दिया और माया के बल का आश्रय लेने वाले वीर निकुम्भ फिर रण में आया। इस बार कृतवर्मा, चारुदेष्ण, भोज, वेतरण, सन्त कुमार, ऋक्ष, निशठ तथा उल्मुक को स्तम्भन कर ले गया। इसी प्रकार अन्य बहुत से भोजवंशियों को ले गया। हे जनेश्वर! माया से छिपे रहने के कारण उसका शरीर दिखाई नहीं पड़ता था, यादवों को षट्पुर की गुफा में ले जाते हुए श्रीकृष्ण ने देखा तब इन भीमवंशियों के भयंकर नाश को देख कर भय को बढ़ाने वाले श्रीकृष्ण कुपित हो गये।।२१-३०।।

शत्रु वीरों का वध करने वाले साम्ब और दुर्धर्ष अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न आदि बहुत से भीमवंशी विशेष क्रोध में भर गये। तत्पश्चात् हे नरेश्वर! शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले श्रीकृष्ण शार्ङ्ग-धनुष को चढ़ा कर भीमवंशियों के नाश में प्रवृत्त दानवों के बीच घासों की ढेर में अग्नि की भाँति प्रविष्ट हो गये। तब उन दैव ईश्वर श्रीकृष्ण के ऊपर वे दानव प्रज्वलित अग्नि पर कालपाश के वशीभूत फतिङ्गो की भाँति टूट पड़े। और उन पर शतघ्नी और हजारों परिघ, अग्नि के समान जलते त्रिशूल, जलते हुए परश्वधों, पर्वत के शिखरों, वृक्षों तथा बड़ी-बड़ी भयंकर शिलाओं को छोड़ने लगे और मत्त हाथियों, रथों एवं घोड़ों को भी फेकने लगे। तब जगत् के लिये हितकर महातेजस्वी हरि ने उन सबको नारायणास्त्र की अग्नि से भस्म कर दिया। जैसे गौवों का पति साँड़ शरद् की वर्षा को सहन करता है वैसे ही यादवों के स्वामी अरिन्दम श्रीकृष्ण दानवों की बाण वर्षा को सहते रहे। असुर नारायण की धनुष से छोड़े गये बाणों को वैसे ही न सहन कर सके कि जैसे वर्षा की जलधारा को बालू का पुल नहीं सहता है। मुँह बाये हुए सिंह के सामने वृषभों की भाँति वे असुरसत्तम श्रीकृष्ण के सम्मुख खड़ा होने में समर्थ न हो सके।।३१-४०।।

वे श्रीकृष्ण से प्राण बचाने के लिये उनके भय से जीवन की आशा धारण कर आकाश मे चले गये। हे प्रभो! उनके आकाश में चले जाने पर वहाँ इन्द्र-पुत्र जयन्त और प्रवर उन्हें जलते हुए अग्नि के समान भयंकर बाणों से मारने लगे। उन असुरों के शिर धरणी तल पर ताल वृक्ष के फल की भाँति गिरने लगे। और उनकी कटी हुई भुजायें वसुधा तल पर काल से उपहत पाँच मुख वाले वीर सर्पों की भाँति गिरने लगीं। इधर रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न एक मायामयी गुफा का निर्माण कर तथा उससे निकलने का मार्ग अदृश्य रख कर क्षत्रियों को उसमें बन्द करने के लिये उद्यत हो गये। जो यादव निकुम्भ द्वारा गुफा में बन्द नहीं किये गये थे वे गद, सारण, अपने पुत्र अनिरुद्ध, साम्ब तथा और भी अन्य यादवों के साथ रण के बीच कृष्ण-पुत्र बलवान् प्रद्युम्न ने यादवों की पराजय के लिये प्रयत्न करते हुए फुर्तीले कर्ण को पीड़ित कर पकड़ लिया इसके बाद हे नृप! गर्ज कर मायामयी भयंकर गुफा में ले जाकर वीर प्रद्युम्न ने कर्ण को बन्द कर दिया, इस प्रकार क्रमशः राजा दुर्योधन, विराट और द्रुपद को भी पकड़ लिया। हे भारत! शकुनि, शल्य, नील, नदीसुत भीष्म, विन्द, अनुविन्द तथा राजा जरासन्ध को पकड़ा। त्रिगर्त देश तथा मालवा देश के एवं वसन्ति नामक प्रदेश के महाबलवान् धृष्टद्युम्न आदि राजाओं को एवं अस्त्र विद्या के ज्ञाता पाञ्चाल देश के राजाओं को पकड़ा।।४१-५०।।

हे भारत! आह्वति, मामा रुक्मी, शिशुपाल तथा राजा भगदत्त को पकड़ कर इनसे प्रद्युम्न ने कहा कि हे नराधिपो! मैं आप लोगों के सम्बन्ध तथा श्रेष्ठता को मानता हूँ पर क्या करूँ बुद्धिमान् शूलपाणि विल्वोदकेश्वर ने मुझे यह आज्ञा दी है कि इन राजाओं को गुफा में फेक दो, इस कारण मैं आप लोगों को इस भयंकर रूप वाली गुफा में फेक रहा हूँ। महात्मा निकुम्भ ने जो शम्बरासुर की माया का आश्रय कर यादवों को षट्पुर की गुफा में डाल दिया उन्हें मैं अब निश्चय छुड़ा लूँगा। इस प्रकार कहे जाने पर सेनापति राजा शिशुपाल भीमवंशियों को तथा विशेष रूप से प्रद्युम्न को बाणों से मारने लगा। विल्वोदकेश्वर महादेव को नमस्कार कर रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न महाबली

राजा शिशुपाल को बाँधने का उपाय करने लगे। तत्पश्चात् हजारों पाशों को लेकर रुद्र पार्षदों में श्रेष्ठ नन्दी महाबली प्रद्युम्न से बोले। हे यदुनन्दन! जैसे तुम्हें विल्वोदकेश्वर देव ने करने को कहा है और जैसे मैंने रात में कहा है वैसे ही सब कार्य करो। कन्या तथा रत्न के लोभी इन राजाओं को पाशों से बाँध कर इस गुफे में बन्द कर दो हे यदुनन्दन! षट्पुर के दानवों के नष्ट होने पर तुम्हीं इन्हें छोड़ भी देना। हे महाबाहो! तुम जनार्दन से कहना कि असुरों का विनाश करें।।५१-६०।।

हे भूमिप! इसके पश्चात् भगदत्त, शिशुपाल, आह्वत्ति तथा रुक्मी और अन्य शेष राजाओं को। हे कुरुनन्दन! शंकर जी द्वारा दिये गये पाशों से बाँध कर बली प्रद्युम्न ने मायामयी गुफा में ले आये। सर्प की भाँति फुफुकारते हुए राजाओं को बन्दी बना कर रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न ने अपने पुत्र अनिरुद्ध को उनकी रक्षा के लिये नियुक्त कर दिये। राजाओं के निःशेष हो जाने पर हे भारत! सेनापतियों, कोषाध्यक्षों तथा शेष क्षत्रिय सिपाहियों को बाँध लिये। यहाँ तक कि हाथी, घोड़ों और रथ के समूहों को भी अपने वश में कर लिये, इसके बाद हे प्रभो! वे असुरों को मारने के लिये उद्यत हो गये। संग्राम के लिये तत्पर होते समय द्विजसत्तम ब्रह्मदत्त से बोले कि तुम अर्जुन को देखो, भय न करो सम्पूर्ण कर्मों को उचित रूप से करो। हे द्विजश्रेष्ठ! जिसके रक्षक पाण्डव होते हैं उसको देवता-दानवों तथा नागों से भय नहीं होता। तुम्हारी पुत्रियों को असुर चित्त से भी स्पर्श नहीं कर सके हैं मैंने उन्हें माया से सुरक्षित रखा है आप कन्याओं को यज्ञवाट में देख सकते हैं।।६१-६८।।



अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः।।८५।।

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! सेना सहित राजाओं के बन्दी हो जाने पर असुरों को चिन्ता चढ़ गई कि पाप ने उन्हें घेर लिया। वे युद्ध दुर्मद श्रीकृष्ण-बलराम आदि यादवों से ताड़ित हो चारों ओर दिशाओं में भागने लगे। तब दानव श्रेष्ठ निकुम्भ ने रुष्ट होकर उनसे कहा कि तुम लोग प्राण के

मोह से भयभीत तथा व्याकुल होकर और प्रतिज्ञा भंग कर क्यों भागे जाते हो। तुम लोग प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होकर भागने वाले किस लोक को प्राप्त करोगे तुम लोगों ने युद्ध में स्वजातियों का बदला लेने की प्रतिज्ञा की थी सो उसका पालन न कर कहाँ भाग रहे हो? समर में कठिन लड़ाई करने वाले वीरों को जीत कर ही फल भोगने को मिलता है यदि रण में शूर के द्वारा मृत्यु हो जाती है तो सुख से वह स्वर्ग में वास पाता है। हे असुरों! घर भाग कर किसका मुख देखोगे और अपनी स्त्रियों से क्या कहोगे तुम्हें धिक्कार है- धिक्कार है, तुम लोग लजाते क्यों नहीं हो? हे राजन्! ऐसा कहने पर लज्जा के वशीभूत हो वे असुर लौट पड़े और दुगुने वेग से यादवों के साथ युद्ध करने लगे। हे नृप! उस युद्ध उत्सव में युद्ध-कुशल यादवों ने नाना प्रकार के अस्त्रों से मार खाकर जो दानव यज्ञवाट की ओर जाते उनको अर्जुन, नकुल-सहदेव तथा भीम एवं युधिष्ठिर मारते थे और जो आकाश में जाते उन्हें जयन्त और द्विज श्रेष्ठ प्रवर मारते थे। फिर तो असुरों के खून रूपी जल से नदी वर्षा ऋतु की भाँति बहने लगी हे राजन्! वह नदी असुरों के केशों से व्याप्त चक्र रूपी कछुओं और रथ रूपी भँवरों वाली तथा हाथी रूपी पर्वतों से शोभा पाने वाली, ध्वजा व भाला रूपी वृक्षों वाली, घायल वीरों के क्रोध से निन्दित शब्दों वाली कायर पुरुषों के चित्त को भय देने वाली रक्त के बुल्लों रूपी फेन वाली तथा खड्ग रूपी मछलियों वाली गोविन्द रूपी पर्वत से निकली थी।।१-१०।।

निकुम्भ अपने मारे गये सभी सहायकों तथा शत्रुओं को बढ़ता देख कर पराक्रम से आकाश में उछल कर गया। हे भारत! वहाँ जयन्त और प्रवर वज्र के समान बाणों से उस रण कर्कश निकुम्भ को मार कर लौटा दिये। वह लौट कर क्रोध से ओष्ठों को काटने लगा और दुरासद वह निकुम्भ प्रवर को परिघ से मारा प्रवर पृथ्वी तल पर गिर पड़े। जयन्त ने भूमि पर गिरे हुए प्रवर को बाहुओं से आलिंगन किया, प्रवर जीवित है ऐसा जानकर वे असुर पर चढ़ दौड़े। और जाकर निकुम्भ को तीक्ष्ण बाण से मारे तब दिति-पुत्र निकुम्भ भी जयन्त को परिघ से मारा। इन्द्र-पुत्र ने निकुम्भ के शरीर में बहुत बाण मार छिद्र कर दिया तब इस प्रकार मार खाता हुआ वह महासुर सोचने लगा कि

मुझे वैरी, जातिघाती श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करना चाहिये। मैं समर में इन्द्र-पुत्र के साथ परिश्रम क्यों करूँ। इस प्रकार वह निश्चय कर युद्ध करने के लिये जहाँ महाबली श्रीकृष्ण जी थे वहाँ चला गया।।११-२०।।

यह देख बल दैत्य के नाशक इन्द्र ऐरावत के कन्धे पर चढ़कर युद्ध देखने के लिये आये और देवताओं के साथ महाप्रसन्न हुए और सन्तुष्ट हो साधु-साधु कह कर पुत्र का आलिंगन किया और मोहरहित प्रवर का भी आलिंगन किया। रण दुर्जय जयन्त को संग्राम में जीतता देख इन्द्र ने देवताओं को दुन्दुभी बजाने की आज्ञा दी फिर तो देव दुन्दुभियाँ बजने लगीं। उधर निकुम्भ ने रणदुर्जय केशव को अर्जुन के साथ यज्ञवाट के सन्निकट खड़ा देखा। वह महान् गर्जन कर भयंकर परिघ से गरुड़ को पहले मारा फिर बलराम, सात्यकि, नारायण, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, नकुल-सहदेव को मारा इसके बाद फिर वासुदेव को तथा साम्ब, बलवान् प्रद्युम्न आदि को भी मारने लगा। हे भारत! शीघ्रता करने वाला दैत्य माया से छिप कर युद्ध कर रहा था, इसीलिये सब शस्त्रों को चलाने में कुशल वीर उसे नहीं देख पाते थे। जब वह दिखाई नहीं पड़ा तब्र हृषीकेश ने प्रमथ गणों के ईश्वर विल्वोदकेश्वर देव का ध्यान किया। तब अति तेजस्वी विल्वोदकेश्वर के प्रभाव से मायावी निकुम्भ को सभी ने देखा। वह कैलास के शिखर की भाँति लम्बा मानों सबको ग्रस जाना चाहता है वह जाति नाशक वैरी श्रीकृष्ण को रण में बुला रहा था (ऐसा देखा)।।२१-३०।।

तब अर्जुन गाण्डीव धनुष चढ़ाकर उसके रथ, परिघ तथा सभी शरीर में बारम्बार बाणों से बेधने लगे। हे जनाधिप! उसके शरीर तथा परिघ में लग कर अर्जुन के तीक्ष्ण बाण टूट कर और कुंठित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते थे। हे भारत! इस प्रकार बाणों को विफल होते देखकर वीर अर्जुन ने केशव से पूछा कि यह क्या बात है? मेरे वज्र के समान बाण पर्वतों को भी छेद डालते हैं फिर हे देवकी-पुत्र! यहाँ क्या हो गया है इससे तो मुझे बड़ा विस्मय हो गया है। हे भारत! तब श्रीकृष्ण हँसते हुए अर्जुन से कहे कि हे कौन्तेय! यह निकुम्भ लोकोत्तर पराक्रम वाला है इसका विस्तार से वर्णन सुनो। यह दुरासद

देवशत्रु निकुम्भ उत्तरा कुरु में जाकर एक लाख वर्ष तक तप किया। तब भगवान् शंकर उससे वर माँगने को कहे, निकुम्भ ने वर माँगा कि मेरे तीन रूप हों और देवता तथा असुरों द्वारा न मारा जाऊँ। इसपर भगवान् वृषभध्वज महादेवजी ने कहा कि, मेरा और ब्रह्मणों तथा विष्णु का जब तुम अप्रिय करोगे तो महासुर तुम हरि के द्वारा मारे जाओगे दूसरे के द्वारा नहीं, मैं ब्राह्मण्य हूँ तथा ब्राह्मणों की गति विष्णु भी ब्रह्मण्य हैं। हे पाण्डवनन्दन! यह अत्यन्त हठी दानव उसी वर के घमण्ड में रहता है इसका तीन रूप है तथा यह सभी अस्त्रों से अवध्य है।।३१-४०।।

भानुमती का अपहरण करते समय हमने इसके एक शरीर को मार डाला षट्पुर में रहने वाला इस दुरात्मा का दूसरा देह अवध्य है इसका तप से युक्त एक और देह दिति की सेवा कर रहा है और षट्पुर मे बसने वाले भयंकर देह को तुम देख ही रहे हो। संक्षेप से मैंने निकुम्भ का चरित्र कहा अब इसके वध में शीघ्रता करनी चाहिये विस्तार से इसकी कथा फिर होगी। अर्जुन और श्रीकृष्ण में इस प्रकार वार्ता होते समय रणदुर्जय असुर षट्पुर की गुफा में प्रवेश कर गया। हे कुरुनन्दन! तब ठसकी खोज करते हुए मधुसूदन षट्पुर की दुर्धर्ष गुफ़ा में प्रविष्ट हुए। चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा से हीन वह गुफा स्वयं अपने तेज से प्रकाशित थी वह इच्छानुसार अपने जनों को सुख तथा शत्रुओं को दुःख गर्मी तथा ठंडक दिया करती थी। हे राजन्! इस गुफा में प्रवेश कर भगवान् ने निकुम्भ द्वारा बन्दी बनाये गये यादवों को देखा फिर उस भयंकर निकुम्भ से युद्ध करने लगे। महात्मा श्रीकृष्ण के गुफा में प्रवेश करने पर बलराम आदि यादव तथा सभी पाण्डव भी गुफे में प्रविष्ट हो गये। यादवों समेत पाण्डव श्रीकृष्ण की अनुमति से ही गुफा में गये थे वह निकुम्भ श्रीकृष्ण के साथ वहाँ लड़ रहा था इधर श्रीकृष्ण की आज्ञा से रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न ने पहले निकुम्भ द्वारा बाँधे गये यादवों को छुड़ा लिया। रुक्मिणी-पुत्र द्वारा छुड़ाये गये सभी यादव प्रसन्न हो निकुम्भ के वध की इच्छा करते हुए श्रीकृष्ण के समीप चले गये।।४१-५०।।

पुनः श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न से कहा हे वीर! राजाओं को भी छोड़ दो तब

प्रतापी वीर रुक्मिणी-पुत्र ने राजाओं को छोड़ दिया। तब लज्जा के मारे सभी बँधे राजा शोभाहीन तथा मौन हो नीचे मुँह कर खड़े हो गये। गोविन्द जय के लिये प्रयत्न करते हुए यादव अपने भयंकर शत्रु निकुम्भ से लड़ने लगे। हे विभो! निकुम्भ ने परिघ द्वारा श्रीकृष्ण को बहुत मारा और श्रीकृष्ण ने भी निकुम्भ को गदा से बहुत मारा। उस समय जय रूप मोह के वशीभूत निकुम्भ और श्रीकृष्ण को तथा पाण्डवों और यादवों को दुःखी देखकर मुनिगण श्रीकृष्ण के जय की कामना से जप करने लगे और वेदोक्त स्तोत्रों से उन महात्मा की स्तुति करने लगे। तब भगवान् केशव प्राणों की बाजी लगा कर समर करने लगे तथा दानव भी उसी प्रकार उद्यत हो लड़ने लगा। हे भारत! वे दोनों क्रोध से गर्जते हुए दो साड़ों, गजराजों तथा भेड़ियों की भाँति रण में उत्कट हो एक दूसरे पर प्रहार करते हुए लड़ने लगे। उस समय आकशवाणी ने श्रीकृष्ण से कहा कि देवता और ब्राह्मण के कण्टक इस निकुम्भ का वध कीजिये।' भगवान् विल्वोदकेश्वर महादेव ने कहा कि हे महाबल! ऐसा करने से धर्म और बड़ा भारी यश तुम प्राप्त करोगे।।५१-६०।।

सज्जनों की गति लोकों के स्वामी श्रीकृष्ण ने शंकरजी को नमस्कार कर ''ऐसा ही होगा'' कह दैत्य कुल के संहारक सुदर्शन चक्र को छोड़ा। तब वह नारायण के हाथ से छोड़ गया सूर्य मण्डल के समान तेजस्वी चक्र निकुम्भ के श्रेष्ठ कुण्डल वाले शिर का काट दिया। कुण्डल से देदीप्यमान् उसका शिर आकाश में ऊपर उठ कर वैसे ही भूमि पर गिर गया कि जैसे मेघ से उन्मत्त मोर पर्वत के शिखर से गिर पड़ता है। हे नरव्याघ्र! निकुम्भ के मारे जाने पर जगत् के त्रास को हरने वाले विल्वोदकेश्वर भगवान् सन्तुष्ट हो गये। शत्रु के नाश हो जाने पर इन्द्र ने आकाश से पुष्पों की वर्षा करायी तथा देव दुन्दुभियाँ बजने लगीं। सम्पूर्ण जगत् आनन्दित हो गया मुनि लोग विशेष रूप से प्रसन्न हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने यादवों को सैकड़ों दानव कन्यायें दीं। भगवान् ने क्षत्रियों को बार-बार सान्त्वना देकर विचित्र रत्नों और श्रेष्ठ वस्त्रों को दिया। गद के बड़े भाई केशव अन्तरात्मा से प्रसन्न होकर घोड़ों से जुते छै हजार रथ पाण्डवों के लिये दिये। गरुड़ श्रेष्ठ ध्वजा वाले पुरवर्द्धन श्रीकृष्ण ने उस श्रेष्ठ

षट्पुर को ब्रह्मदत्त ब्राह्मण के लिये दे दिया। शंख, चक्र तथा गदा को धारण करने वाले महाबली श्रीकृष्ण यज्ञ समाप्त हो जाने पर उन क्षत्रियों और पाण्डवों को विदा कर विल्वोदकेश्वर महादेव का उत्सव किया और उसमें बहुत से व्यंजनों से युक्त अन्न आदि का भोजन कराया।।६१-७०।।

और पहलवानों के प्रेमी देव श्रीकृष्ण ने पहलवानों की कुश्ती करवाया तथा सबकी आत्मा वाले श्रीकृष्ण कुश्ती करा उन्हें बहुत सा धन तथा वस्त्र दिये। इसके बाद माता-पिता तथा यदुवंशियों के साथ महाबली श्रीकृष्ण ब्रह्मदत्त को नमस्कार कर द्वारकापुरी को चले गये। वे मार्ग में मनुष्यों से नमस्कृत होते हुए हृष्ट-पुष्ट जनों से व्याप्त तथा पुष्पों से चित्र-विचित्र मार्गों वाली रम्य द्वारकापुरी में प्रवेश किये। चक्रपाणि श्रीकृष्ण के इस निकुम्भ-वध तथा षट्पुर विजय नामक आख्यान को जो मनुष्य पढ़ेगा अथवा सुनेगा वह युद्ध में विजय प्राप्त करेगा। इसके पढ़ने-सुनने से अपुत्र को पुत्र तथा निर्धन को धन मिलता है रोगी रोग से तथा बन्दी बन्धन से छूट जाता है। हे भारत! इसको पुंसवन तथा गर्भाधान में पढ़ना चाहिये श्राद्ध में पढ़ने से यह पितरों की अक्षय तृप्ति करने वाला कहा गया है। जो देवता श्रेष्ठ तथा भारत में विख्यात बल वाले महात्मा श्रीकृष्ण के इस षट्पुर विजय को निरन्तर पढ़ता है वह संताप रहित हो सुगति को जाता है। मणि खचित सुवर्ण के विचित्र आभूषणों को हाथों में धारण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी शत्रुनाशक आदिनाथ चार रूप धारण कर चारों समुद्रों में शयन करने वाले, हजार नाम वाले उन जगत् पुरुष श्रीकृष्ण की जय हो।।७१-७९।।



अथ षडशीतितमोऽध्यायः।।८६।।

जनमेजय जी बोले–हे मुनिवरोत्तम! मैंने षट्पुर के दानवों का वध अच्छी तरह से सुना अब हे वैशम्पायनजी! पहले कहे गये अन्धक वध को कहिये! हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! भानुमती का हरण तथा तीन में से एक निकुम्भ का वध कहिये क्योकिं मुझे इसका बड़ा कौतूहल है। वैशम्पायनजी

बोले-प्रभावशाली विष्णु के द्वारा अपने पुत्रों को मारे जाने पर दिति ने तपस्या द्वारा मारीचि-पुत्र कश्यप की आराधना की। हे भारत! उचित समय की तपस्या, शुश्रूषा तथा मधुर भाषण द्वारा मुनि के अनुकूल रहकर उन्हें प्रसन्न किया। तब तपोधन कश्यप दिति से संतुष्ट होकर बोले कि हे भद्रे! हे सुव्रते! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ वर माँगो। दिति ने कहा हे धर्मधारियों श्रेष्ठ! हे भगवन्! मैं देवताओं द्वारा हत पुत्र वाली हो गई हूँ इसलिये अमित पराक्रम वाले और देवताओं से अवध्य पुत्र की इच्छा करती हूँ। कश्यप ने कहा हे कमललोचने! हे दाक्षायणि! देवि! तुम्हारा पुत्र देवताओं से अवध्य होगा इसमें कोई संशय तो नहीं है परन्तु देव-देव शंकर को छोड़ कर क्योंकि मैं उनको प्रभावित नहीं कर सकता इसलिये तुम्हारे पुत्र द्वारा उनकी आत्मा को कष्ट न पहुँचने पावे इस बात का सदा ध्यान रखना। इसके बाद उस दिति देवी को सत्यवाक कश्यप ने अंक में प्राप्त किया तब उसने अँगुलियों के हथेली से पुत्र को उत्पन्न किया। हे कौरव्य! उस पुत्र के हजार बाहु, हजार शिर तथा दो हजार नेत्र एवं हजार पैर थे।।१-१०।।

हे भारत! पैरों के अधिक होने से वह अन्धा न होता हुआ भी की अन्धों की भाँति चलता था इसलिये वहाँ के निवासी उसे अन्धक नाम से पुकारने लगे। हे भारत! अपने को अवध्य समझ कर वह सभी लोकों को बाधा पहुँचाने लगा और अपने आत्मबल के प्रभाव से सभी रत्नों को हरने लगा। सर्व लोक भयंकर वह बली अपने आत्म-पराक्रम से अप्सराओं के समूहों को पकड़ कर अपने घर मे रखता था। मोह के वशीभूत पाप मति वाला वह अन्धक दूसरों की स्त्रियों या रत्नों को हर लिया करता था। हे भारत! सबको कष्ट देने वाले असुरों की सहायता से वह त्रैलोक्य को जीतने के लिये उद्यत हो गया। इस बात को सुन कर इन्द्र अपने पिता कश्यप से कहने लगे कि हे मुनिसत्तम! अन्धक त्रैलोक्य विजय के लिये उद्यत है। इसलिये हे विभो! हमें क्या करना चाहिये इसकी आज्ञा दीजिये क्योंकि इस छोटे भाई की ऐसी अनीति मुझसे कैसे सही जायेगी। हे विभो! दिति के इष्ट पुत्र पर मैं कैसे प्रहार करूँ यदि इसको मैं मार डालता हूँ तो दिति हमारे ऊपर क्रोध करेंगी। देवेन्द्र

के बचन सुन कर कश्यप मुनि बोले कि हे देवेन्द्र! मैं उसको ऐसा करने से सर्वथा रोकूँगा तुम्हारा कल्याण हो। हे भारत! दिति के साथ कश्यप ने बड़ी कठिनाई द्वारा त्रैलोक्य विजय करने से अन्धक को रोका।।११-२०।।

परन्तु वह दुष्टात्मा वारण करने पर भी देवताओं को कष्ट पहुँचाने लगा तथा अनेकों उपायों से देवताओं को परास्त कर वह दुर्मति स्वर्ग बन के वृक्षों को उखाड़ा और बागों को नष्ट-भ्रष्ट कर उच्चैश्रवा के पुत्रों को बलपूर्वक स्वर्ग से हर लाया। और वर के गर्व से देवताओं के देखते-देखते दिग्गजों के दिव्य पुत्रों को बलपूर्वक हर लाया यज्ञ और तपस्या से जो देवताओं को सन्तुष्ट करना चाहते थे उनके उन कार्यों में वह देवकण्टक विघ्न करने लगा। यज्ञ में विघ्न करने से अन्धक के भय से तीनों वर्णों के लोग यज्ञ और तप करना बन्द कर दिये। उसी के इच्छानुसार वायु चलता तथा सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश करते थे जब वह चाहता था तभी नक्षत्रों सहित चन्द्रमा दिखाई पड़ते थे अन्यथा नहीं। हे प्रभो! अति भयंकर बलोन्मत्त दुर्मति अन्धक के भय से आकाश में विमान नहीं चलते थे। हे वीर! जगत् ओंकार और वषट्कार से शून्य हो गया हे कुरुकुल को वहन करने वाले! ये सब धर्म कार्य अति भयंकर अन्धक के भय से बन्द हो गये। हे भारत! कुरु तथा उत्तर कुरु, भद्राश्व, केतुमाल तथा जम्बूद्वीप को जीत कर वश मे कर लिया। दुरासद देवता तथा दानव और समर्थशाली अन्य प्राणी भी सर्वथा उसको मानने लगे।।२१-३०।।

हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ! उससे पीड़ित हो ऋषि तथा ब्रह्मवादी देवता अन्धक के वध की चिन्तना करने लगे। उनके मध्य बुद्धिमान् बृहस्पति ने कहा कि रुद्र को छोड़ कर इसकी मृत्यु किसी दूसरे के हाथ से किसी प्रकार नहीं होगी। बुद्धिमान् कश्यप ने वर देते समय यह कह दिया था कि मैं इसे रुद्र से नहीं बचा सकता। इसलिये हम लोगों को वही उपाय करना चाहिये जिससे कि सबका कल्याण करने वाले शंकर यह जान जायँ कि अन्धक से सभी प्राणी पीड़ित हैं। इस बात को जान लेने पर जगत् के स्वामी सज्जनों की गति भगवान् महादेव जी अवश्य हम लोगों के आसुओं को पोछेंगे। जगद्गुरु देव-देव शंकर का असज्जनों से सन्तों की रक्षा करना तथा विशेष रूप से ब्राह्मणों

की रक्षा करना व्रत ही है। हम सभी नारद जी की शरण चलें वे अन्धक के वध का उपाय जानते होंगे क्योंकि वे शंकर जी की अवस्था के हैं। बृहस्पति की बात सुन कर सभी तपोधन जब तक आकाश में देखते हैं तब तक देवर्षि श्रेष्ठ नारद आ गये। तब मुनि का विधिवत् पूजन और सत्कार कर देवताओं ने कहा है देवर्षे! हे भगवन्! हे साधो! आप शीघ्र कैलास को जायँ। हम लोगों की रक्षा के अर्थ महादेव जी से अन्धक के वध के लिये कहिये तब नारद जी ने कहा कि ऐसा ही करूँगा।।३१-४०।।

शौनकादि ऋषियों के चले जाने पर विद्वान् नारद मुनि उस कार्य को इस प्रकार करेंगे ऐसा मन से विचार प्रसन्न हो गये। वह ऐश्वर्यशाली मुनि देवों के देव शंकर को देखने के लिये मन्दार वन के मध्य चले गये कि जहाँ वृषभध्वज रह रहे थे। वे मुनिसत्तम प्रिय शूलपाणि के मन्दार वन में एक रात्रि वास कर हे भारत! मन्दार पुष्पों की माला को अपने शिर की जटा पर बाँध वृषभध्वज की आज्ञा लेकर पुनः स्वर्ग में चले आये। सभी गन्धों से उत्तम गन्ध वाली विशेष रूप से गुँथी गई माला जो सुरतरु के पुष्प से बनाई गई थी ऐसे देवतरु के महागन्ध देने वाले माल्य के रज्जु को गले में पहनकर नारदजी वहाँ आये जहाँ बल के घमण्ड से भरा दुरात्मा अन्धक था। मन्दार के पुष्पों की महागन्ध वाली माला को महामुनि के गले में देखकर और उसके उत्तम गन्ध को सूँघ कर अन्धक ने कहा हे तपोधन! ऐसे कमनीय पुष्पों का वृक्ष कहाँ है कि जो अपने गन्ध तथा शुभवर्णों का बराबर पोषण कर रहा है अर्थात् ताजा के रूप में रख रहा है यह पुष्प पंक्ति तो स्वर्ग में होने वाले मन्दार के कुसुमों का सर्वथा अतिक्रमण कर रही है। हे मुने! उस वृक्ष का कौन स्वामी है अथवा नहीं है, हे देवताओं के अतिथि! यदि आपके हम लोग अनुग्रह के पात्र हों तो आप पता बताइये मैं उसे ला सकता हूँ। हे भारत! महान् तपस्या के धाम मुनि श्रेष्ठ नारद उसे दाहिने हाथ से पकड़ कर बोले।।४१-५०।।

हे वीर! पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल पर एक कामनाओं को देने वाला बन है वही पर ऐसे पुष्प हैं वह सब शूलपाणि शंकर की रचना है। उन महात्मा के उस वन में कोई स्वेच्छया नहीं प्रवेश कर सकता है क्योंकि शंकर के उत्तम

प्रवर गण उसकी रक्षा करते हैं। वे नाना प्रकार के आयुध धारण करने वाले अनेकानेक वेष धारण किये भयंकर तथा दुरासद एवं सभी प्राणियों से अवध्य हैं और महादेवजी द्वारा अभिरक्षित हैं। वहाँ मन्दार वृक्ष के वन-खण्डों में उमा तथा अपने गणों सहित सर्वात्मा सर्वभावन शंकर जी नित्य क्रीड़ा करते हैं। हे कश्यप पुत्र! त्रिभुवनेश्वर शंकर की तपस्या द्वारा विशेष आराधना कर ही कोई मन्दार के पुष्पों को प्राप्त कर सकता है। भगवान् शंकर के वे प्रिय वृक्ष आकांक्षा करने पर स्त्रीरत्न तथा मणिरत्नों को और अन्य भी पदार्थों को देते हैं। हे अन्धकं! वहाँ अतुल प्रभावशाली सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश नहीं करते बल्कि वह वन अपनी ही प्रभा से प्रकाशित रहता है तथा सब दुःखों से रहित है। हे महाबल! वहाँ कोई गन्धों को छोड़ने वाले वृक्ष हैं और कोई रसों को छोड़ने वाले हैं तथा कोई विविध प्रकार के सुगन्धित वस्त्रों को देते हैं। मन से इच्छा करने पर वहाँ के तरु भक्ष्य, भोज्य, पेय चोष्य तथा चाटने योग्य पदार्थों को तथा इसी प्रकार अन्य भी विविध पदार्थों को देते हैं। हे वीर! उस मन्दार वन में प्यास, भूख, ग्लानि तथा चिन्ता नहीं होती ऐसा समझिये। उस वन के गुणों को सैकड़ों वर्ष में भी वर्णन नहीं किया जा सकता; वहाँ स्वर्ग से बहुत गुना अधिक गुण फैलते हैं। हे दितिपुत्रोत्तम! जो वहाँ एक दिन भी वास कर ले तो वह महेन्द्र सहित सभी लोकों को जीत सकता है इसमें संशय नहीं है। वह मेरे विचार से स्वर्ग का भी स्वर्ग तथा सुखों का भी सुख जगत् का सर्वश्रेष्ठ स्थान है।।५१-६३।।



अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः।।८७।।

वैशम्पायन जी बोले-हे भारत! नारद जी के वचनों को ध्यान से सुन कर महासुर अन्धक मन्दराचल पर्वत पर जाने के लिये मन में निश्चय कर लिया। महातेजस्वी वह महाबली अन्धव सेना ले क्रुद्ध हो महादेव के वासस्थान मन्दार पर्वत पर चला गया। वह पर्वत बड़े-बड़े मेघों से ढका हुआ, महौषधियों से व्याप्त तथा अनेक सिद्धों से व्याप्त और महर्षि गणों से सेवित था। चन्दन

और अगर के वृक्ष रूप धन से धनी एवं साल के वृक्षों से आकुल था वह किन्नरों की गीतों से बड़ा ही रम्य और बहुत से नाग परिवारों से युक्त था। कहीं पर फूले हुए वन; पवन के झकोरों से नृत्य करने की भाँति झूम रहे ते कहीं पर धातुओं के बहने से स्वयं बने चित्रों से विलिप्त था। कहीं पर पक्षियों के सुमधुर शब्दो द्वारा नाद करते हुए के समान ज्ञात हो रहा था, कहीं पवित्र स्थानों पर बैठे हंसों से तथा इधर-उधर उड़ते हुए हंसों से शोभायमान हो रहा था। कहीं पर दैत्यनाशक पहाबलिष्ट चरते हुए महिषों से तथा चन्द्रमा की विमल किरणों के समान सिंहों और कहीं पर स्वर्ण की ढेरियों से विभूषित था। कहीं पर सिंहों से व्याप्त, कहीं मृग के समूहों से सेवित था; इस प्रकार के रूप वाले मन्दार गिरि से बल-गर्वित वह अन्धक बोला तुम यह जानते ही हो कि मैं पिता कश्यप के वरदान से अवध्य हूँ और मेरे वश में सम्पूर्ण चराचर सहित तीनों लोक हैं। हे पर्वत! मेरे भय से कोई मुझसे युद्ध करने की इच्छा नहीं करता हे महागिरे! तुम्हारे शिखर पर जो पारिजात वन है वह सब प्रकार की कामना देने वाले पुष्पों से विभूषित है, इसलिये वह रत्नों में उत्तम रत्न है उसे तुम बताओ मैं उस वन का तुम्हारे अनुचरों सहित उपभोग करना चाहता हूँ मेरा मन आकुल हो रहा है तुम क्रोध करके क्या कर सकते हो?।।१-१०।।

हमारे द्वारा तुम व्यथित होओगे। तुम्हारा कोई रक्षक भी नहीं देख रहा हूँ उसके ऐसा कहने पर मन्दराचल वहीं अन्तर्धान हो गया। इसके बाद वरदान से गर्वित अन्धक कुपित हो बड़े जोर से गर्ज कर यह कहा। हे पर्वत! मेरे द्वारा याचना करने पर भी तुम जो मेरा अपमान करते हो तो मैं तुम्हें चूर्ण-चूर्ण करता हूँ अब मेरे बल को देखो। इस प्रकार कहकर वह बली अन्धक बहुत योजन लम्बे-चौड़े शिखर को उखाड़ कर उस पर्वत के दूसरे शिखरों पर रगड़ने लगा। वर से दर्पित वह अन्धक नदी जालों से व्याप्त उसे महान् पर्वत मानता हुआ अपने साथी असुरों के साथ व्यथित करने लगा। ऐसा जानकर भगवान् रुद्र ने पर्वत के ऊपर अनुग्रह किया था वह विशेष रूप से पारिजातादि सहित मदमत्त हाथियों और मृगों युक्त हो गया तथा अन्धक से क्षुभित हो जो नदियाँ स्वर्ग में चली गई थीं वे स्वर्ग से नभमण्डल द्वारा फिर आकर पहले

की भाँति पर्वत पर बहने लगीं थी अतः वह बहुत सी नदियों के जाल से व्याप्त हो गया था तथा चित्र-विचित्र वनों से युक्त होकर शोभा पाने लगा। हे भारत! महादेवजी के प्रभाव से उखाड़े हुए पर्वत के शिखर वीरों के समान असुरों को ही मारने लगे। हे जनाधिप! जो असुर पर्वत के शिखरों को फेक कर भागते थे उन्हीं असुरों का वे पर्वत शिखर वध करते थे।।११-२०।।

जो असुर पर्वत के शिखर पर स्वस्थ हो बैठे थे उनको महान् पर्वत मन्दार के शिखर नहीं मारते थे। इसके बाद अन्धक ने अपनी सेना को नष्ट-भ्रष्ट होते देखकर क्रोधित हो महान् गर्जन कर बोला। यह जिसका वन है उसे मैं बुला रहा हूँ युद्ध के लिये वह उपस्थित होवे तुम्हारे छिपकर पर्वत के द्वारा युद्ध करने से क्या लाभ इस तरह छल से रण में हम लोगों को मारने में वीरता नहीं है। अन्धक के इस प्रकार कहने पर अन्धक के वध की इच्छा से देव महेश्वर त्रिशूल उठा वृषभ पर सवार हो आये। वे बुद्धिमान् त्रिनेत्र भूतगणों के ईश्वर प्रमथ नामक गणों तथा भूतगणों से घिरे हुए थे। शंकरजी के क्रोध करने पर सम्पूर्ण लोक काँपने लगे और नदियाँ उलट कर बहने लगीं तथा उनका जल खौलने लगा। हर के तेज से सभी दिशायें जलने लगीं हे जनाधिप! आकाशमण्डल में ग्रह लड़ने लगे इस प्रकार सभी बातें विपरीत दिखाई देने लगीं। हे कुरुकुल का वहन करने वाले! उस समय पर्वत हिलने लगे और मेघ धुओं के सहित अङ्गारों की वर्षा करने लगे। चन्द्रमा गरम प्रभा तथा सूर्य शीतल प्रभा वाले हो गये तथा ब्रह्मवादी मुनियों का ब्रह्मज्ञान भूल गया। हे निष्पाप! घोड़ियाँ बछड़ों का तथा गायें घोड़ों का जन्म देने लगें और वृक्ष बिना कटे ही भस्म होकर पृथ्वी पर गिरने लगे।।२१-३०।।

वृषभ गौओं को घेरने लगे और गायें वृषभों पर चढ़ने लगीं; राक्षस, यातुधान और पिशाचादि सभी विपरीत क्रिया करने लगे। इस प्रकार जगत् को विपरीत होता देखकर भगवान् महादेव जी अग्नि के समान जलता हुआ त्रिशूल छोड़े। तब शंकर जी द्वारा छोड़ा गया दुर्धर त्रिशूल अन्धक की छाती पर गिर पड़ा और साधुओं के भयंकर कण्टक अन्धक को भस्म कर दिया। जगत-शत्रु अन्धक के मारे जाने पर देवतागण तथा तपोधन सभी मुनि

शंकरजी की स्तुति करने लगे। देवताओं की दुन्दुभियाँ बजने लगीं और पुष्पों की वर्षा होने लगी हे राजन्! तीनों लोक सन्ताप रहित हो चिन्ता से निवृत्त हो गये। देवताओं के गन्धर्व; गाने और अप्सरायें नाचने लगीं, ब्राह्मण वेद-मन्त्रों का जप करने लगे तथा यज्ञों द्वारा देवताओं को सन्तुष्ट करने लगे। ग्रह यथास्थान स्थित हो गये, नदियाँ पहले की भाँति बहने लगीं, जल की अग्नि शान्त हो गई और दिशायें स्वच्छ हो गईं। शंकर के तेज से पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल फिर परम शोभायुक्त हो गया। धर्मानुसार इन्द्रादि देवताओं के घूमने-फिरने के स्थानों को कण्टकरहित कर भगवान् शंकर उमा के साथ पारिजात वन में रमण करने लगे।।३१-३९।।



अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।।८८

जनमेजय जी बोले–हे मुने! सुनने योग्य अन्धक का वध तथा बुद्धिमान् महादेवजी द्वारा तीनों लोकों में शान्ति स्थापित करना सुना। अब चक्रपाणि द्वारा निकुम्भ के दूसरे देह का जिस लिये और जैसे वध हुआ उसे आप सुनाइये। वैशम्पायनजी बोले–हे राजेन्द्र! आप जैसे श्रद्धा वाले पुरुष से अमित तेजस्वी लोकनाथ हरि का चरित अवश्य कहना चाहिये। हे राजन्! अतुल तेजस्वी विष्णु के द्वारका निवास करते समय एक बार पिण्डारक तीर्थ के समीप समुद्र-यात्रा का समय आया। हे भारत! नगर के अध्यक्ष राजा उग्रसेन तथा वसुदेव को छोड़कर शेष सभी यादव यात्रा के लिये निकल पड़े। बलरामजी अलग चले तथा बुद्धिमान् लोकनाथ जनार्दन अलग चले और अमित तेजस्वी नरदेव कुमारों की टोली अलग चली। हे नराधिप! सुन्दर अलंकारों से युक्त रूप वाले वृष्णिवंशी कुमारों के साथ हजारों गणिकायें निकलीं। हे वीर! अत्यन्त पराक्रमी यादवों ने दैत्यों के निवासस्थान को जीत कर द्वारका में हजारों वेश्यायें बसा दी थीं। वे महात्मा कुमारों की सामान्य क्रीड़ा नारियाँ बन गई थीं, उनके अन्दर गुण होने से इच्छानुसार भोग्या थीं वे सभी राज-वेश्यायें थीं। हे प्रभो! भीमवंशियों की ऐसी स्थिति श्रीकृष्ण ने कर

दी थी कि यादवों में स्त्री के निमित्त वैर न हो।।१-१०।।

यदुश्रेष्ठ प्रतापी बलराम जी अपने अनुकूल केवल एक रेवती के साथ ही चक्रवाक की भाँति प्रेम से रमण करने लगे। वे बलराम कदम्ब की मदिरा के नशे में व्याकुल होकर सागर के जल में रेवती के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। सब कुछ देखने वाले कमललोचन गोविन्द विश्वरूप से अर्थात् अनेक रूप सागर के जल में सोलह हजार स्त्रियों के साथ अलग ही रमण कर रहे थे। रात्रि में नारायण की सभी स्त्रियाँ सोचने लगीं कि मैं ही केशव की इच्छित प्रिया हूँ क्योंकि मेरे ही साथ केशव जल में बस रहे हैं। वे सब सुरत के चिह्न से चिह्नित अङ्गों वाली तथा सुरत से तृप्त गोविन्द के प्रति प्रीति से उत्पन्न बहुत मान करने लगीं। और अपने परिचित जनों में वे सभी नारायण की स्त्रियाँ प्रसन्नता से हम गोविन्द की प्रिया है- हम गोविन्द की प्रिया हैं ऐसे अपनी प्रशंसा करने लगीं। वे कमल-नेत्रियाँ स्तन और ओष्ठों पर नख और दाँत के चिह्नों को दर्पण में देख-देख कर प्रसन्न होने लगीं। वे श्रीकृष्ण की स्त्रियाँ अपने नयनों से कृष्ण के मुखकमल का मानों पान करती हुई श्रीकृष्ण के नाम का उच्चारण कर गीत गाने लगीं। हे राजन्! नारायण की वे प्रिय स्त्रियाँ अपने को और दृष्टि को श्रीकृष्ण में अर्पित कर एक निश्चय वाली होने से बड़ी मनोहर लग रही थीं। एक ही मन और दृष्टि अर्पित करने वाली वे स्त्रियाँ आपस में ईर्ष्या नहीं करती थीं क्योंकि नारायण देव उन सभी के मनोरथों को एक समान ही पूर्ण करते थे।।११-२०।।

वे प्रियदर्शना सभी स्त्रियाँ केशवमय प्रेम को धारण करती हुई गर्वित हो अपने शिरों को हिला रही थीं। क्योंकि सर्वात्मा हरि ने अनेक रूप धारण कर समुद्र के विमल जल में उन सभी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा की थी। वासुदेव की आज्ञा से समुद्र खारापन रहित शुद्ध तथा सभी सुगन्धों से युक्त जल को धारण कर लिया था। केशव की स्त्रियाँ अपनी इच्छानुसार एँड़ी, घुटना, जाँघ तथा स्तन पर्यन्त जल को पाकर अर्थात् जल में खड़ी हो जैसे नदियाँ समुद्र को जल से सींचती हैं वैसे ही केशव को सींचने लगीं और गोविन्द जैसे- मेघ फूली हुई लता को सींचते हैं वैसे ही उन स्त्रियों को सींचने लगे। हरिण के समान नेत्रों

वाली वे स्त्रियाँ हरि के कण्ठ में बाहुओं का अवलम्बन कर "मुझको पकड़िये मैं गिर रही हूँ" ऐसा कहने लगीं। सम्पूर्ण अङ्गों से सुशोभित मयूर, क्रौञ्च तथा हाथियों के समान आकार वाली कुछ स्त्रियाँ काष्ठमयी नौका पर चढ़ कर घूमने लगीं। कुछ स्त्रियाँ मकर के आकृति वाली तथा कुछ मीन के समान आभा वाली इसी प्रकार अन्य स्त्रियाँ बहुत से रूप को धारण कर तैरने लगीं। कुछ स्त्रियाँ अपने स्तन-कुम्भों को बल ऐसी लगीं मानों वे घड़ों पर तैर रही हों, वे जनार्दन के प्रसन्न करती हुई इस प्रकार समुद्र के जल में क्रीड़ा कर रही थीं। उस समुद्र में प्रसन्नतायुक्त हो श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ रमण कर रहे थे, देवताओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण जिस रमण करने योग्य मार्ग से रमण करना चाहते थे प्रसन्नतापूर्वक उसी मार्ग का नारायण की स्त्रियाँ भी अनुसरण करती थीं तथा वासुदेव की कमलनेत्री अन्य कृशगात्रा स्त्रियाँ महीन वस्त्रों को धारण कर लीला करती हुई जल में क्रीड़ा कर रहीं थीं।।२१-३०।।

जिन-जिन स्त्रियों का जो-जो भाव था उनके अन्दर प्रवेश कर उन-उन भावों को जानकर वशी केशव ने उन्हीं भावों से उन्हें अपने वश में कर लिया। इन्द्रियों के स्वामी सनातन प्रभु भगवान् हृषीकेश देश-काल के अनुसार उन प्रियाओं के वश में हो गये। वंश के अनुसार जनार्दन के साथ क्रीड़ा का बर्ताव करती हुई वे स्त्रियाँ इनको अपने कुल तथा शील के अनुसार यह योग्य है ऐसा मानने लगीं। उस समय कुशलता से युक्त तथा हँस कर बोलने वाले उन श्रीकृष्ण की भार्यायें भक्ति पूर्वक चाहने लगीं और बड़ा आदर करने लगीं। गुणों की खान वर कुमारों का समूह स्त्री-गणों के साथ प्रकट रूप में अलग ही समुद्र के जल को सुशोभित कर रहा था। हे जनेश्वर! गीत और नृत्य की विधियों को जानने वाली उन स्त्रियों की कुशलता से और उनके तेज से अपहृत चित्त हो कुमार उनके वश में हो खड़े रहे। उत्तम नारियों के गानों-बजानों को सुन तथा उनके अभिनयों को देख श्रेष्ठ यादव मोहित हो गये। पञ्चचूड़ा तथा कुबेर की कोबेरी नामक श्रेष्ठ अप्सरा तथा महेन्द्र की महेन्द्री नामक अप्सरा को विश्व नियन्ता होने के कारण श्रीकृष्ण भगवान् बुला लाये। जगत् प्रभु सर्वात्मा श्रीकृष्ण ने हाथ जोड़ कर प्रणाम करती हुई उन

अप्सराओं को उठा सान्त्वना देकर बोले।।३१-४०।।

हे वरारोहा अप्सराओं! मेरे प्रिय करने के लिये तुम लोग भीमवंशियों की क्रीड़ा युवती होकर शंका रहित हो उनके मध्य प्रवेश करो और यादवों को आनन्द दो। नाचने-गाने से तथा अनेक प्रकार के बाजों को बजाकर और अभिनयों से अपने गुणों को दिखाओ। ऐसे करने पर तुम्हारी मन की कामनाओं को मैं पूरी करूँगा, ये सभी यादव मेरे ही शरीर के समान हैं। वे सभी श्रेष्ठ अप्सरायें हरि की आज्ञा को शिरोधार्य कर भीमवंशियों की क्रीड़ा-युवतियाँ बनकर उनके समीप चली गईं। हे अनघ! जैसे आकाशमण्डल में विजलियों, मेघों का समूह शोभा पाता है वैसे ही अप्सराओं, यादवों का समूह शोभा पाने लगा, अप्सराओं के केवल प्रवेश करने मात्र से ही समुद्र चमक उठा। वे अप्सरायें जल में स्थल की भाँति बाजों को बजाती हुई गाने लगीं और स्वर्गीय अभिनय करने लगीं। गन्ध, माला तथा दिव्य वस्त्रों से अलंकृत हो अपनी लीला अथवा क्रीड़ा और हास्यभावों द्वारा भीमवंशियों के मन का हरण करने लगीं। इसी प्रकार भीमवंशियों के मन को प्रिय लगने वाले कटाक्षों, इशारों तथा हास्यों और क्रीड़ा के रोष तथा हँसियों से उनके मन को सम्यक् प्रकार से खींच लीं। वे बहुत से भीमवंशियों को वायु के स्कन्धों पर आकाश में उठा-उठा कर ले जातीं और फिर वापस ला देती थीं इससे मदिरा के वश में हुए भीमवंशी उनको श्रेष्ठ अप्सरा मानने लगे। भीमवंशियों की प्रसन्नता के लिये श्रीकृष्ण भी प्रसन्नतापूर्वक सोलह हजार स्त्रियों के साथ आकश में क्रीड़ा करने लगे।।४१-५०।।

वे भीमवंशी अमित तेजस्वी श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानते थे इसलिये वे विस्मय को न प्राप्त हो गम्भीरतापूर्वक स्थित रहे। हे अरिमर्दन भरतवंशी! अपनी इच्छानुसार कोई यादव रैवतक पर्वत पर जाकर पुनः लौट आते थे और घर तथा कोई वन में जाकर लौट आते थे। उस समय अतुल तेजस्वी लोकनाथ विष्णु की आज्ञा से न पीने योग्य सागर का जल पीने योग्य हो गया था। कमललोचना नारियाँ हाथ पकड़ कर स्नान करती हुई जल में स्थल की भाँति दौड़ने लगीं। भक्ष्य, भोज्य, पीने, चूसने तथा चाटने योग्य बहुत प्रकार के पदार्थ

भीमवंशियों के ध्यान करते ही उपस्थित हो जाते थे। मलिन न होने वाली मालाओं को धारण किये वे स्त्रियाँ स्वर्ग में देवताओं के समान एकान्त में अनिन्दित भीमवंशियों को रमण कराने लगीं। सायंकाल में पराजित न होने वाले अन्धकवंशी तथा वृष्णिवंशी स्नान तथा चन्दन के लेपन कर प्रसन्न हो गृह रूप से बनी नौकाओं से क्रीड़ा करने लगे। हे कुरुवंशिन्! विश्वकर्मा ने उन नौकाओं पर चतुष्कोण, लम्बे-चौड़े, गोल, स्वस्तिक चिह्न वाले भवनों का निर्माण कर दिया था। कैलास पर्वत, मन्दार पर्वत तथा मेरु पर्वत के समान रूप वाली और नाना प्रकार के पक्षियों के तथा ईहा मृग के समान रूप वाली नौकायें बड़ी-बड़ी लहरों से युक्त हो सागर के जल को सुशोभित करने लगीं। वैदूर्य मणि के तोरणों से चित्रित तथा मड़ियों से जड़ित नौकायें तथा मरकत मणि, चन्द्रकान्त मणि तथा सूर्यकान्त मणि से चित्रित सैकड़ों नौकायें बड़ी-बड़ी लहरों से युक्त हो सागर के जल को सुशोभित कर रही थीं।।५१-६०।।

तथा लीला गरुड़ के समान रूप वाली सुवर्ण से चित्रित नौकायें और क्रौञ्च तथा शुक पक्षी के समान और कुछ हाथी के रूप वाली स्वर्ण के समान चमकने वाली तथा मल्लाहों से खेई जाती हुई नौकायें सागर की बड़ी-बड़ी लहरों से युक्त हो सागर के जल को सुशोभित कर रही थीं। जल में आखेट योग्य श्वेत नौकाओं से सवारी और सामग्री ढोने वाली नौकाओं से, शीघ्र चलने वाली बड़ी नावों से तथा भवन बने नृत्य-गीत एवं लीला करने योग्य झिल्लिका नौकाओं से उमड़ा हुआ समुद्र बड़ा शोभायमान लग रहा था। गन्धर्वों के आकाशगामी पुरों की भाँति भीमवंशियों की नौकायें सागर के जल में चारों ओर इधर से उधर घूमा रही थीं। विश्वकर्मा ने नन्दन बन के रूप से युक्त यात्रा करने वाली नौकाओं मे नन्दन वन की भाँति सभी चीजों को बनाया था। उसमें विश्वकर्मा ने उद्यानों, सभा वृक्षों तथा बावलियों एवं रथ आदि नन्दन वन की ही भाँति अपनी शिल्प कला द्वारा निर्मित कर दिया था। हे वीर! नारायण की आज्ञा से स्वर्ग के समान जल यानों में विश्वकर्मा ने संक्षिप्त रूप से स्वर्ग की सभी सामग्रियों को बना दिया था। उन स्वर्गीय बनों में पक्षी हृदय को प्रिय लगने वाली तथा भीमवंशियों के मन को अतिशय रूप

से हरण करने वाली बोलियाँ बोल रहे थे। यदुवंशियों की इच्छानुसार देवलोक स्वर्ग की उत्पन्न कोलिकायें मधुर और विचित्र बोलियाँ बोल रही थी। चन्द्रमा की श्वेत किरणों के समान भवनों की छतों पर मोर अपने गणों से घिरे हुए मधुर स्वर से बोलते हुए नाच रहे थे।।६१-७०।।

सवारी नौकाओं की सभी पताकायें पक्षिगणों से युक्त थीं तथा उनमें लिपटी हुई पुण्य मालाओं पर भ्रमर आसक्त होकर गुंजार कर रहे थे। नारायण की आज्ञा से वृक्ष पुष्पों की झड़ी लगा रहे थे और ऋतुयें सुन्दर रूप से आकाश में अपना प्रदर्शन कर रही थीं और रति की खिन्नता को हरण करने वाला सुखद वायु चन्दन की शीतलता तथा पुष्पों के गन्धोले पराग के साथ बह रहा था। हे वसुधापते! वासुदेव के प्रभाव से वहाँ भीमवंशियों के क्रीड़ा काल में उनकी इच्छानुसार जाड़ा-गर्मी पड़ रही थी। चक्रपाणि श्रीकृष्ण के प्रभाव से भीमवंशियों को भूख, प्यास, ग्लानि, चिन्ता तथा शोक नहीं प्रभावित कर रहा था। अमित तेजस्वी भीमवंशियों की वह सागर क्रीड़ा गूँजते हुए बाजों के शब्दों तथा गीतों और नृत्यों से बड़ी सुहावनी लग रही थी। श्रीकृष्ण द्वारा अभिरक्षित इन्द्र के समान विलासी भीमवंशी जल के स्थान समुद्र को बहुत योजन तक घेर कर क्रीड़ा कर रहे थे। महात्मा नारायण देव के सवारी नौका को विश्वकर्मा ने सोलह हजार पत्नियों के रहने तथा क्रीड़ा करने योग्य बनाया था। हे विशाम्पते! तीनों लोकों में जो भी विशिष्ट रत्न थे वे सभी अति तेजस्वी श्रीकृष्ण के जल-यान में लगाये गये थे। हे भरतवंशी! श्रीकृष्ण की पत्नियों का अलग-अलग निवास स्थान वैदूर्यमणि द्वारा चित्रित सुवर्ण से विभूषित था। वहाँ सिंह के समान शुभ यादवों से सेवित सभी ऋतुयें पुष्पों से तथा सभी प्रकार के गन्धों से अधिवासित एवं स्वर्गवासी पक्षियों से युक्त थीं।।७१-८१।।



अथैकोननवतितमोऽध्यायः।।८९।।

वैशम्पायनजी बोले कि-गीले चन्दन का अनुलेपन किये कादम्बरी

मदिरा के पीने से विकल लाल-लाल आँखों तथा लम्बी बाहुओं वाले इधर-उधर पैर लड़खड़ाते हुए बलराम जी रेवती का आश्रयण कर रमण कर रहे थे। नीले रंग के मेघ के समान वस्त्रों को पहने चन्द्रमा के समान गोरे वर्ण वाले तथा मदिरा से घूमती हुई आँखों वाले बलराम जी नीले मेघों के बीच पूर्ण चन्द्रमा के समान शोभा पा रहे थे। केवल बायें कान में निर्मल कुण्डल की शोभा वाले मनोज्ञ लाल कमल की आभा वाले बलराम तिरक्षे कटाक्ष का अवलोकन करते हुए अपनी प्रिया रेवती के साथ प्रसन्न हो रहे थे; बलराम के सुन्दर मुख को दूर से देखता हुआ अप्सराओं का गण कंस तथा निकुम्भ के शत्रु श्रीकृष्ण की आज्ञा से बलराम तथा रेवती को देखने के लिये स्वर्ग के समान वेश-भूषों से अलंकृत हो प्रसन्नता पूर्वक रेवती के समीप गया और वे सुन्दर गान तथा कटि वाली वराङ्गनायें दण्ड की भाँति पड़ कर रेवती और बलराम जी को नमस्कार कर चारों ओर से घेर कर बाजे के अनुसार कुछ अप्सरायें नाचने लगीं तथा शेष स्वर-ताल के अनुसार गाने लगीं। बलराम तथा रैवतराज की पुत्री रेवती के आज्ञानुसार हृदय को अनुकूल लगने वाला उन लोगों की प्रसन्नता के लिये अभिनय करने लगीं। मांगलिक वस्त्राभूषणों को अङ्गों में धारण कर वराङ्गनायें उस देश की भाषा में तथा उसी वेश में हँसती हुई ताल के साथ लीला पूर्वक रास करने लगीं। बलराम और श्रीकृष्ण को आनन्द देने वाले कंस, प्रलम्ब आदि के घात और रङ्गस्थल में चाणूरादि के घात का रमणीय मंगल गान गाने लगीं। वे जनार्दन के कमर में रस्सी बाँधना तथा यशोदा के द्वारा डाँटना-फटकारना आदि और अरिष्ट तथा धेनुकासुर का वध एवं व्रज का वास और शकुनी पूतना के वध का गान करने लगीं। जैसे महात्मा श्रीकृष्ण ने यमलार्जुन के वृक्ष को गिराया था और गौ-बछड़ों के हरण करने पर जैसे बछड़ों युक्त गौवों की सृष्टि की थी तथा जिस प्रकार यमुना के ह्रद में दुरात्मा नागपति कालिय का दमन किया था।।१-१०।।

हे वीर! जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने शंखादि निधि से युक्त उस ह्रद से कालिय को निकाल बाहर किया तथा जैसे गौवों के हित के लिये गोवर्धन का पूजन कराया और उसे उठाया था। जैसे चन्दन घिसने वाली कुब्जा का कूबर

सीधा किया था और अपने अनिंद्य तथा अजन्मा एवं वामन न होते हुए भी जैसे वामन रूप धारण किया था। जैसे सौभ को नष्ट किया, देवशत्रु हल के आयुध से युद्ध करने वाले मुर राक्षस को मारा था और गन्धार राज की कन्या के हरण के समय बली राजाओं के रथ पर आक्रमण करना। इसके बाद सुभद्रा हरण रूपी इच्छा पूर्ति की जय तथा बलाहक और जम्बुमाली के युद्ध में जय और युद्ध द्वारा हरण कर रत्न राशि को लाना एवं इन्द्र के सामने से पारिजात का लाना। इसी प्रकार और भी अनेक प्रीति की कथाओं के आश्रय वाली प्रियकर तथा बलराम और श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने वाली विचित्र गीतों को अप्सरायें गाने लगीं। इसके पश्चात् कादम्बरी मदिरा के पान से मदोत्कट बलराम जी हाथ से ताल देकर उन्हीं के समान मधुर स्वर में रेवताराज की पुत्री रेवती के साथ गाने लगे। तब बलराम जी को गाते हुए देख कर महात्मा मधुसूदन प्रसन्नता से खिल उठे और बलराम जी की प्रसन्नता के लिये बुद्धिमान् श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ स्वयं गाने लगे। तथा समुद्र यात्रा के लिये आये हुए नरलोक के वीर अर्जुन भी सुन्दर कटि वाली सुभद्रा के साथ प्रसन्नता से गाने लगे हे राजन्! इसके बाद बुद्धिमान् गद, सारण प्रद्युम्न, साम्ब, सात्याकि तथा सत्राजित की पुत्री सत्यभामा के उदार विक्रमी और सुन्दर पुत्र चारुदेष्ण गाने लगे। बलराम के वीर पुत्र निशठ और उल्मुख गाने लगे इसी प्रकार अक्रूर के सेनापति तथा और भी भीम वंश के प्रधान-प्रधान पुरुष गाने लगे।।११-२०।।

हे उदार कीर्ति वाले राजन्! गाते हुए प्रमुख भीमवंशियों से वह जल-यान ज्यो-ज्यों भरता जाता था त्यों-त्यों श्रीकृष्ण के प्रभाव से वह जल-यान बढ़ता जाता था। हे वीर! राजेन्द्रपुत्र! रास में आसक्त गाते हुए देवताओं के समान उन यदुवीरों से जगत् हर्षित हो गया तथा पाप शान्त हो गये। उन यादवश्रेष्ठों के मध्य मुर और केशि के शत्रु श्रीकृष्ण के प्रसन्नार्थ अपने जटासमूह को एक तरफ कर अतिथि नारद जी भी वहाँ गाने लगे। हे राज पुत्र! उपमा रहित नारद मुनि वहाँ रास के प्रणेता प्रधान हो गये और भीमवंशियों के बीच जाकर लीला की नकल करते हुए वे अपने अङ्गों को हिलाते हुए गाने

लगे। वे बुद्धिमान् मुनि सत्यभामा, केशव, अर्जुन, सुभद्रा, बलदेव तथा रेवतराज की पुत्री रेवती को देख-देख कर हँसने लगे। वे परिहास के स्वभाव वाले मुनि उन धैर्यशाली स्त्रियों की हँसी की नकल कर तथा लीलाओं की नकल कर तथा अनेक चेष्टा की नकल कर जैसे वे हँसे हँसाने लगे। स्त्रियों की ओर कुछ लक्ष्य कर भगवान् नारद ऊँचे स्वर में गाने लगे तथा अपनी हँसी से श्रीकृष्ण जी को हँसाने के लिये बड़ी जोर की हँसी से हँसने लगे। हे नृपराजपुत्र! श्रीकृष्ण की आज्ञा से मुनि के अनुरूप सुन्दर रत्नों तथा वस्त्रों को अतिशय रूप में युवतियाँ देने लगीं। हरि के इशारे को समझने वाली काल-देश की ज्ञाता युवतियाँ स्वर्गीय कल्पवृक्ष के पुष्पों की मुक्ता के समान मालायें तथा सब ऋतुओं में होने वाले पुष्पों की मालाओं को लाकर उस समय मुनि को दीं। रास के अन्त में अप्रमेय भगवान् श्रीकृष्ण मुनि का हाथ पकड़ कर सत्यभामा तथा अर्जुन को साथ ले कूद पड़े।।२१-३०।।

और शिनि पुत्र सात्यकि से मुस्कुराते हुए बोले कि आप लोग भी स्त्रियों सहित दो भागों में होकर नौका से इस क्रीड़ा जल में कूद आइये। समुद्र के इस जल में मेरे पुत्रों सहित आधे भीमवंशियों ने नेता रेवती सहित बलराम रहे और बलराम के पुत्रों सहित आधे भीमवंशी मेरे पक्ष में रहे। इसके बाद श्रीकृष्ण ने हाथ जोड़ खड़े हुए समुद्र को आज्ञा दी कि तुम क्षार रहित शुद्ध तथा ग्राहों से रहित सुगन्धित जल वाले हो जाओ। और मेरे प्रभाव से अपने तीर की भूमि को रत्न विभूषित तथा पैदल चलने योग्य सुख कर एवं देखने योग्य दर्शनीय बनाओ और मेरे जनों के मन के अनुकूल जल पीने योग्य हो जाओ और तुम्हारे अन्दर की मछलियाँ वैदूर्य मणि, मुक्तामणि तथा स्वर्ण के समान दर्शनीय रूप वाली हो जायँ। तुम सुगन्ध तथा सुन्दर स्पर्श वाले भँवरों से युक्त मनोहर नीले तथा रक्त वर्ण के कमलों से युक्त हो जाओ। गौड़ी सुरा तथा महुवा अथवा ताल फल के रस की मदिरा से भरे घड़ों को अपने जल के ऊपर स्थापित करो तथा भीमवंशियों को मदिरा पीने के लिये सुवर्ण के पात्र दो जिससे वे मदिरापान करें। हे जलराशे! तुम मेरे प्रभाव से पुष्प-समूह के सुगन्ध से वासित जल वाले हो जाओ और स्त्रियों सहित यदुवंशियों के

साथ किसी प्रकार का अनुचित कार्य न हो जाय इसका प्रयत्न करो। हे नृप! इस प्रकार समुद्र से कहकर अर्जुन के साथ श्रीकृष्णजी जलक्रीड़ा करने लगे, श्रीकृष्ण के मुख का इशारा समझने वाली सत्राजित-पुत्री सत्यभामा ने पहले नारद मुनि पर जल छिड़कना प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् मदिरा की नशा उतरने के बाद सुन्दर शरीर वाले बलराम कामगीत गाते हुए मनोहर रेवती के हाथ को पकड़ कर लीला पूर्वक जल में कूद पड़े।।३१-४०।।

इसके बाद भीमवंशी प्रधान श्रीकृष्ण के जो पुत्र थे वे श्वेत वस्त्राभूषणों को धारण किये मदिरा से चंचल नेत्र वाले जल क्रीड़ा की लालसा से प्रसन्न हो समुद्र में कूद पड़े। निशठ और उल्मुक आदि शेष भीमवंशी चित्र-विचित्र वास्त्राभूषणों को धारण कर तथा गले में पारिजात पुष्प की माला पहने जल-क्रीड़ा की इच्छा से हरि के पास चले गये। वे बल से युक्त मांगलिक चिह्न धारण करने वाले शरीर में चन्दन लगाये हाथ में जल पात्र लिये उस वेश के अनुरूप स्वर से युक्त मनोहर गीतों को गा रहे थे। इसके बाद श्रीकृष्ण की आज्ञा से सुन्दर बाजा बजाने वाली सैकड़ों बधुयें स्वगीर्य अप्सराओं के साथ नाना प्रकार के स्वरों में जलतरंग बजाने लगीं। आकश गंगा के जल को बजाने का ज्ञान रखने वाली, निरन्तर युवती रहने वाली तथा एक चित्त से कामदेव का ध्यान करने वाली कुछ युवतियाँ जलवाद्य विशेष जलतरंगादि को बजाने लगीं और कुछ युवतियाँ प्रसन्न हो बाजे के अनुसार गाने लगीं। वे कमल-कलिका की भाँति नेत्रों वाली कमल से विभूषित मुकुटों को धारण किये देवताओं के समान सुन्दर मुख वाली युवतियाँ सूर्योदय से खिलने वाले कमलों की शोभा को चुरा रही थीं। हे राजन्! दैव की इच्छानुसार जैसे कभी-कभी हजारों किरणों वाले चन्द्रमा से आकाश शोभित होने लगता है वैसे ही पूर्ण चन्द्रमुखियों से वह समुद्र शोभा पाने लगा। चमकती हुई बिजली से जैसे आकाश में मेघ शोभा पाता है वैसे ही सैकड़ों-हजारों स्त्रियों की प्रभा से समुद्र-मेघ शोभा पाने लगा। सुन्दर चिह्न वाले नारायण नारद को साथ लेकर सुन्दर चिह्न वाले बलराम के पक्ष वालों पर जल छिड़कने लगे। उस समय प्रेम से उन्मत्त तथा मदिरा पान से उन्मत्त बलराम और देव श्रीकृष्ण की प्रसन्नता से

भरी पत्नियाँ हाथों तथा पिचकारियों से जल छिड़क रही थीं।।४१-५०।।

अभिमान, कामदेव तथा मद को धारण करने वाले लाल-लाल आँखें किये जल छिड़कने में लीन भीमवंशी स्त्रियों के सामने अपने पुरुषत्व को दिखाते हुए बहुत दिन के पश्चात् होने वाली जल-क्रीड़ा से पीछे नहीं हटते थे। इस प्रकार स्त्रियों के ऊपर अतिक्रमण के प्रसङ्ग को विचार कर चक्रपाणि श्रीकृष्ण ने उन भीमवंशियों को वारण कर दिया और जलतरंग के शब्दों को सुन श्रीकृष्ण नारद तथा अर्जुन के साथ जल-क्रीड़ा से स्वयं निवृत्त हो गये। तब श्रीकृष्ण के इशारे को समझने वाले अत्यन्त अभिमानी भीमवंशी जल-युद्ध के प्रसंग से निवृत्त हो गये इसके बाद अपने प्रियतम को नित्य आनन्द देने वाली भीमवंशियों की प्रियायें विश्वास मान कर नाचने लगीं। नृत्य समाप्त होने पर बुद्धिमान् इन्द्र के लघु भ्राता भगवान् श्रीकृष्ण जल-क्रीड़ा संग का त्याग कर दिये और जल से निकल कर लेप के अनुकूल चन्दन ले मुनि श्रेष्ठ को दिये। श्रीकृष्ण को जल से बाहर निकले देख कर भीमवंशी भी जल त्याग कर बाहर निकल आये तब श्रीकृष्ण की आज्ञा से अमित पराक्रमी शुद्ध शरीर वाले भीमवंशी भोजन-पान के स्थान पर चले गये। अवस्था के अनुसार तथा छोटे-बड़े के क्रम जैसा जिनका सम्बन्ध था बैठ कर अपने रुचि के अनुसार भीमवंशी वीर सिद्धान्नों का भोजन करने लगे और पीने योग्य अनुकूल पदार्थों को पीने लगे। पवित्र भण्डारी पके हुए मांसों को तथा इमली और अमला एवं खट्टे अनार के फलों की बनी चटनियाँ परोसने लगे तथा हरिण-सूकर आदि बन पशुओं के मांस के टुकड़े शूलों से कोंच कर आग में पका कर परोसने लगे। बन-महिष के मांसों को शूल से आग में सेंक कर तथा घृत में तल कर अमलवेत वृक्ष के खट्टे रस से पूर्ण मांसों को भोजन करने योग्य बनाकर यादवों को सूपकार परोसने लगे। रसोईं की विधि से गले हुए मृग के मांस के बड़े-छोटे नाना प्रकार के स्वाद वाले टुकड़े तथा निचोड़े हुए पके आम के खट्टे-मीठे रस परोसने लगे और अन्य व्यक्ति समुद्र के चूर्ण से मिश्रित तथा मिर्चों के चूर्ण से युक्त घृत में तले बन पशुओं के मांस के टुकड़ों को परोसने लगे।।५१-६०।।

मूली, अनार, मातुलिङ्ग, कुठेरक, हींग तथा और अन्यान्य शाकों द्वारा बनाये हुए सुन्दर पेय पदार्थों को अमित पराक्रमी वे भीमवंशी प्रसन्नतापूर्वक पीने लगे और अपनी प्रियाओं से घिरे भीमवंशी घृत, खट्टे तथा तैल से सिक्त कड़वे रस से युक्त काष्ठ के शूलों द्वारा भुने पक्षियों के मांस को खाकर मैरेय तथा महुआ की मदिरा को एवं और भी आसवों को पीने लगे। श्वेत चर्बी तथा रस से युक्त सुगन्धित तथा नमक पड़े भक्ष्य पदार्थों को तथा भैंस के दूध से भिंगे खाने योग्य पदार्थों को खाने लगे तथा खाँड़ से बने नाना प्रकार के खाने योग्य पदार्थों को खाने लगे। हे राजन्! मांस तथा मदिरा को न खाने-पीने वाले उद्धव, भोज तथा मिश्र आदि वीर शाक, दाल तथा अनेक प्रकार के पेय जैसे दूध-दही आदि से शुद्ध अन्नों को प्रसन्नता से भोजन करने लगे और दूध तथा खाँड़ से युक्त अनेक प्रकार के फलों को खाते हुए बहुत प्रकार के बने सुगन्धित काञ्जिक रायता बड़े कसोरे या ढँकनियों-परइयों में पीने लगे। प्रमुख भीमवंशी स्त्रियों के साथ भोज्य से तृप्त होकर पुनः प्रियाओं द्वारा गाई मनोहर और रम्य गीतों को प्रसन्न होकर गाने लगे। इसके बाद उस रात्रि में भगवान् उपेन्द्र ने आज्ञा दी कि बहुत प्रकार तान-आलाप आदिकों से युक्त छालिक्य गीत को गाओ जिसे लोग गान्धर्व गीत कहते हैं। हे नरदेव! तब तो नारद जी ने छै ग्राम तथा रागों को प्रकट करने वाले वस्त्रों से आच्छादित वीणा को खोल कर ले लिया था बहुत सी स्त्रियों के साथ नृत्य करने वाली वंशी को श्रीकृष्ण ने, अर्जुन ने मृदंग ले लिया तथा अन्य बाजों को अप्सराओं ने विश्वासपूर्वक ले लिया, सभी बाजों के स्वर मिल जाने के बाद अभिनय मे कुशल रम्भा नाम की अप्सरा विश्वस्त होकर उठी और अपने श्रेष्ठ शरीर के कटि आदि अङ्गों को संचालित कर अभिनय नृत्यादि करने लगी, उसके अभिनय करने पर बलराम और श्रीकृष्ण सन्तुष्ट हो गये इसके बाद हे राजन्! सुन्दर और विशाल नेत्रों वाली उर्वशी, हेमा और मिश्रकेशी, तिलोत्तमा तथा मेनका इसी प्रकार हरि का प्रिय करने लिये अन्य अप्सरायें भी उठकर क्रमशः मन को अनुकूल लगने वाले तथा कामी जनों के द्वारा अभीप्सित गानों को गाने लगीं और अभिनय करने लगीं।।६१-७०।।

हे नरेन्द्रपुत्र। वासुदेव में अनुरक्त चित्त वाली वे श्रेष्ठ अप्सरायें अपने उदार गानों और नृत्य एवं अभिनयों से तथा ताम्बूल आदि से भीमवंशियों को सन्तुष्ट कर दिया। हे मनुष्य श्रेष्ठ जनमेजय! ताम्बूलादि देने से उत्पन्न अप्सराओं के गर्वमय अंकुरों को श्रीकृष्ण की इच्छा से जलक्रीड़ा के समय आई हुई पञ्चचूड़ा, कौबेरी तथा माहेन्द्री आदि अप्सराओं ने अपने गुणों के द्वारा हर लिया, भीमवंशी वीरों ने उत्तम गन्ध वाले फलों को प्राप्त किया तथा छालिक्य गान्धर्व-गान को सुना। हे नरदेव! हरि के समान तेजस्वी रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न ने इस होने वाले रम्य उत्सव का मन्तव्य प्रकट करते हुए कहा कि पृथ्वी पर मनुष्यों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये श्रीकृष्ण की इच्छा से यह स्वगीर्य छलिक्य गान तथा देवता योग्य फलों को लाया गया है। इसके बाद उदार बुद्धि प्रद्युम्न ने छालिक्य गान्धर्व-गान का पान सबको दिया, श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा साम्ब द्वारा प्रयोजित छालिक्य गान मनुष्यों को निरन्तर प्रिय लगने लगा। उदारकीर्ति नारायण को इष्ट छालिक्य गान शुभावह, वृद्धिकर, प्रशंसनीय, मंगल करने वाला तथा यश, पुण्य, पुष्टि और भाग्योदय करने वाला है। इस छालिक्य गान को गाने से पाप हटकर धर्म बढ़ने लगता है तथा यह गान दुष्ट स्वप्नों का नाश कर देता है, पापों को विशेष रूप से नष्ट कर देता है देवताओं के आवास स्वर्ग में जाकर इस गान को राजा रेवतक को सुनते हुए एक दिन के समान ही चारों युगों के दिन व्यतीत हो गये। हे राजन्! इसके बाद इस गीत को गाने वाले कुमार जाति। गन्धर्व जाति तथा भेद-प्रभेद से गन्धर्व की अन्य जातियाँ एक दीप से जलाये गये सैकड़ों दीपों की भाँति फैल गईं, इस गान को श्रीकृष्ण जी तथा नारद जी जानते थे इसके बाद हे नृप! प्रद्युम्न आदि प्रमुख भीमवंशी जाने, इनसे सुनकर इस लोक में मनुष्य वैसे ही छालिक्य गान को जाने कि जैसे कोई नदी अथवा समुद्र से जल भर लेता है।।७१-८०।।

छालिक्य गान को फल तथा गुण से हिमालय पर्वत जानता है, बिना तपस्या किये छालिक्य गीत के विधान को कोई नहीं जान सकंता और न इसके मूर्छना आदि में प्रवेश कर सकता है। हे राजन्! छालिक्य के प्रथम अङ्ग से छे

ग्राम तथा रागों में गान करना चाहिये, कुमार जाति के लेशमात्र गाने को ही मनुष्य बड़ी कठिनाई से पा सकता है तो छालिक्य की क्या बात है। जो देवता, गन्धर्व तथा महर्षियों का समूह है वही छालिक्य गान्धर्व गुणोदय में पारंगत होता है मनुष्य नहीं ऐसा समझ कर ही मधुसूदन ने। हे नरदेव! लोक पर अनुग्रह करने के लिये उत्तम भीमवंशियों को दिया था तब से इस गान की प्रतिष्ठा होने लगी और देवताओं द्वारा गाने योग्य इस गीत को बालक युवा वृद्ध सभी गाने लगे। जन्मोत्सव में भीमवंशी क्रीड़ा करते थे पहले बालक प्रसन्नता सहित इसे गाते थे पश्चात् वृद्ध लोग गाते थे और अपने स्थानों पर वे नित्यप्रति मान देकर गाया करते थे। अपने वंश के धर्मका स्मरण करते हुए प्राचीन धर्म के विधान को जानने वाले अत्यन्त वीर यादव मर्त्यलोक में मनुष्यों के प्रति प्रीति को ही श्रेष्ठ मानते थे अवस्था को नहीं। प्रीति के प्रमाण को मानने वाले अपने सुहृदों दशार्हों, वृष्णियों तथा अन्धकों को केशिविनाशन श्रीकृष्ण ने विदा कर दिया तब वे पुत्र के समान सुखी होते हुए चले गये। श्रीकृष्ण के द्वारा विनोदित अप्सराओं का यूथ मधु तथा कंस-शत्रु श्रीकृष्ण को प्रणाम कर स्वर्ग को चला गया, देवता तथा सभी लोक प्रसन्न हो गये।।८१-८८।।



अथ नवतितमोऽध्यायः।।९०।।

वैशम्पायनजी बोले–हे राजन्! उन पुण्यकर्मा यादवों को क्रीड़ा विहार में आसक्त देख उनमें छिद्र पा अपने वध की आकांक्षा वाला देव-शत्रु निकुम्भ दानव भानु यादव की भानुमती नामक कन्या का अपहरण कर लिया। हे राजन्! वह मायावी अपनी माया से यादवों की स्त्रियों को मोहित कर पहले के वैर का स्मरण करता हुआ छिप कर अपहरण किया था। हे वीर! वज्रनाभ की कन्या प्रभावती को प्रद्युम्न ने हर लिया तथा वज्रनाभ को मार डाला। यादवों के छिद्र को जानने वाला वह अधम दानव भानु के ही वन में बसता हुआ वन को बली रक्षक से विहीन समझ अवसर पाकर ऐसा किया था। हे समितिंजय! हरण होते समय कन्या के रोने पर कन्या के पुर में सहसा होहल्ला

मच गया। तब भानु-कन्या के पुर में लोगों का आर्तनाद सुनकर वीर वसुदेव तथा उग्रसेन सजकर वहाँ गये और अपकारी को ढूँढ़ने लगे पर जब वह दिखाई नहीं पड़ा तब वे दोनों सज्जित वीर जहाँ महाबल श्रीकृष्ण थे वहाँ चले गये। यह समाचार सुन अरिनाशक जनार्दन अर्जुन के साथ अपने विमान सर्पशत्रु गरुड़ पर सवार हो गये और मकरध्वज प्रद्युम्न को रथ पर चढ़ कर पीछे आने का आदेश देकर कश्यप-पुत्र गरुड़ को शीघ्रता से चलने का आदेश दिया।।१-१०।।

अरिन्दम अर्जुन और श्रीकृष्ण वज्र नगर में पहुँच रणदुर्जय निकुम्भ के समीप चले गये। हे नपृ! माया करने वालों में श्रेष्ठ महातेजस्वी प्रद्युम्न भी वहाँ पहुँचे तब निकुम्भ उन लोगों को आया देख कर अपने को तीन रूपों में विभक्त कर लिया और देवता के समान निकुम्भ हँसता हुआ बहुत काँटों वाली गदा लेकर उन लोगों से युद्ध करने लगा। हे नृप! वह बायें हाथ से कन्या को पकड़े दाहिने हाथ से गदा द्वारा बार-बार प्रहार कर रहा था। हे नृपसत्तम! कन्या को बचाने के लिये श्रीकृष्ण अथवा प्रद्युम्न निर्दयतापूर्वक महासुर निकुम्भ पर प्रहार नहीं करते थे। वे महाबली महात्मा शत्रु निकुम्भ को मारने में समर्थ थे परन्तु हे नरपते! कन्या पर दया के भाव से दुःखी होकर श्वास लेने लगे। धनुषधारियों में श्रेष्ठ तथा सर्वथा युद्धकुशल अर्जुन ने बाण की पंक्तियों से दैत्य को नागोष्ट्र विधि (ऊँट को अजगर सर्प लिपटने पर केवल अजगर मारना ऊँट को नही) से कन्या को बचा कर मारने लगे। हे महीपते! वे एक बित्ता के बाणों से अपनी पाई हुई शिक्षा तथा कला के द्वारा युद्ध में विविध रूप वाले दानव को मारने लगे, कन्या को नहीं। बाण लगने पर वह आसुरी माया का आश्रय कर कन्या के साथ वहीं अन्तर्धान हो गया उसकी माया को कोई न जान सका। श्रीकृष्ण तथा अर्जुन एवं रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न उसके पीछे चले, वह महासुर हारित पक्षी बनकर बैठ गया।।११-२०।।

तब अर्जुन फिर कन्या की रक्षा करते हुए मर्मवेधी बित्ता-बित्ता भर के बाणों से उसे मारने लगे। इस प्रकार उन वीरों से पीछा किये जाने पर अरिमर्दन वह महासुर सात द्वीपों वाली इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमने लगा।

गोकर्ण पर्वत के ऊपर गंगा के तट पर बालू के मैदान में वह महासुर कन्या के साथ गिर पड़ा। हे भारत! महादेवजी के तेज से रक्षित उस गोकर्ण पर्वत को देवता तथा दानव एवं तपोधन ऋषि कोई लाँघ नहीं सकते थे। इसी बीच अवसर पाकर फुर्तीले पराक्रमी रणदुर्जय भीमवंशी प्रद्युम्न ने कन्या को पकड़ लिया। हे राजन्! इसके बाद वह निकुम्भ श्रीकृष्ण और अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से व्यथित हो उत्तर गोकर्ण को त्याग दक्षिण गोकर्ण को चला गया उसके पीछे-पीछे गरुड़ पर चढ़े श्रीकृष्ण और अर्जुन भी चले तब तो वह अपनी जाति के भवन वाले षट्पुर में प्रवेश कर गया तब श्रीकृष्ण और अर्जुन उस गुफा के द्वार पर रात्रि में उसे घेर कर पड़ रहे। श्रीकृष्ण की आज्ञा से प्रद्युम्न भानुतनया भानुमती को अन्तरात्मा से प्रसन्न होते द्वारका लाये। वीर प्रद्युम्न उसे द्वारका पहुँचा कर पुनः दानवों से व्याप्त षट्पुर को आ गये और गुफा के दरवाजे पर महापराक्रमी कृष्णार्जुन को देखा। निकुम्भ के वध की आकांक्षा से महाबली कृष्णार्जुन प्रद्युम्न के साथ षट्पुर के निकलने वाले द्वार को घेर कर रहने लगे।।२१-३०।।

इसके बाद भयंकर पराक्रमी अति बली निकुम्भ युद्ध करने के लिये बिल से बाहर निकला। हे विशाम्पते! उस बिल से निकलते समय निकुम्भ का मार्ग अर्जुन ने गाण्डीव द्वारा छोड़ गये बाणों से सब तरफ से अवरुद्ध कर दिया। तब बलियों में श्रेष्ठ वह निकुम्भ सम्मुख आ बहुत से काँटों वाली गदा को उठाकर अर्जुन के शिर पर मारा। अदृष्ट से शिर पर चोट खाये हुए वीर अर्जुन मूर्छित हो गये, गदा से आहत होने पर रक्त का वमन करते हुए मूर्छित हुए थे, हँसता हुआ घमण्ड से भरा वह असुर प्रद्युम्न को भी मारा। माया करने वालों में श्रेष्ठ प्रद्युम्न उस समय पूर्व की ओर मुख किये थे उस असुर ने इनको पश्चिम की ओर से मारा था तब अदृश्य से शिर पर चोट खाने पर ये भी मूर्छित हो गये। तब बलराम बड़े भाई हैं जिनके ऐसे श्रीकृष्ण कौमोदकी गदा को उठा कर निकुम्भ पर चले वे दोनों ही दुराधर्ष वीर गर्जते हुए आपस में लड़ने लगे। सभी देवताओं के साथ इन्द्र ऐरावत पर चढ़ कर गये थे सो इस घोर देवासुर संग्राम को देखने लगे। देवताओं को देख कर अरिनाशक हृषीकेश विचित्र

प्रकार से युद्ध करने लगे, वे देवताओं के हित की कामना से दानव को मारना चाहते थे। परन्तु अभी युद्ध विशारद महाबाहु केशव कौमोदकी गदा को घुमाते हुए तरह-तरह के पैतरों को दिखा रहे थे।।३१-४०।।

उसी प्रकार असुरश्रेष्ठ निकुम्भ भी पायी हुई शिक्षा के अनुसार बहुकण्टका गदा को घुमाते हुए पैतरों का आचरण कर रहा था। पुष्पवती को प्राप्त कर वृषभों के समान चिग्घार करते और भेड़िये के समान क्रोधित होकर लड़ रहे थे। वीर निकुम्भ बड़ा कठोर गर्जन कर स्पष्ट आठ पहलों वाली गदा से श्रीकृष्ण को मारा। हे भारत! इसी समय श्रीकृष्ण ने भी अपनी महती गदा को घुमा कर निकुम्भ के शिर पर मारा। संसार के शत्रु का बल दिखाने के लिये अपनी इच्छा से जगद्गुरु बुद्धिमान् हरि कौमोदकी गदा को पकड़ कर क्षणमात्र खड़े रहे इसके बाद मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। मनुष्य तथा देवता के समान महात्मा वासुदेव के मूर्छित होने पर सम्पूर्ण जगत् में हाहाकार मच गया। तब देवेश्वर इन्द्र ने स्वयं सुगन्धित, शीतल तथा अमृत मिले आकाश गंगा के जल से श्रीकृष्ण को सींचा। निश्चय ही श्रीकृष्ण अपनी इच्छा से मूर्छित हुए थे नहीं तो भला महात्मा हरि को कौन युद्ध में मूर्छित कर सकता है। हे भरतवंशी! रिपुनाशन श्रीकृष्ण जी चैतन्य हो चक्र उठा कर दुरात्मा निकुम्भ से बोले कि अब अपने मरण की प्रतिक्षा करो। अति मायावी निकुम्भ अपनी शरीर का परित्याग कर आकाश में चला गया इस बात को केशव नहीं जाने।।४१-५०।।

हे विभो! यह मरना चाहता है अथवा मर गया ऐसा मान वीर व्रत का स्मरण करते हुए उसकी रक्षा करने लगे। इसी बीच प्रद्युम्न और अर्जुन मूर्छा से चेतना प्राप्त कर निकुम्भ-वध के निश्चय वाले श्रीकृष्ण के समीप आकर खड़े हो गये। मायावी प्रद्युम्न इस बात को जान कर पिता श्रीकृष्ण से बोले कि हे तात! निकुम्भ यहाँ नहीं है वह दुर्मति कहीं भाग गया। प्रद्युम्न के ऐसा कहने पर उसका शरीर भी अदृश्य हो गया तब प्रभु श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ हँसने लगे। हे जनाधिप! उस समय प्रद्युम्न आदि वीरों को आकाश में तथा पृथ्वी पर सर्वत्र हजारों निकुम्भ दिखाई पड़ने लगे और हजारों निकुम्भ

श्रीकृष्ण, पार्थ और रुक्मि-पुत्र प्रद्युम्न को ललकारने लगे यह बड़ी अद्भुत बात हो गई। कितने निकुम्भ पाण्डव अर्जुन के धनुष को कितने उनके महान् बाणों को और कुछ उनके हाथों तथा कुछ महासुर उनके पैरों को पकड़ कर आकाश में ले जाने लगे और पकड़े गये पार्थ भी करोड़ों की संख्या में दिखाई देने लगे। पार्थ से रहित रिपुनाशन श्रीकृष्ण तथा प्रद्युम्न ने बाणों से निकुम्भ का छेदन करके भी पार न पा सके। हे भरतवंशी एक-एक के दो-दो टुकड़े होने के बाद वे निकुम्भ के रूप में परिणित हो जाया करते थे तब दिव्यज्ञानी भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने दिव्य दृष्टि से देखने लगे।।५१-६०।।

तत्त्वतः इन सब मायाओं को फैलाने वाले और अर्जुन को हरने वाले सही निकुम्भ को मधुसूदन ने देखा। भूत-भविष्य तथा वर्तमान को जानने वाले अंरिसूदन हरि ने सभी प्राणियों के देखते-देखते सुदर्शन चक्र से निकुम्भ का शिर काट गिराया। हे भरतवंशी राजन्! शिर कट जाने पर वह असुर मुख्य अर्जुन को छोड़ कर कटे पेड़ के समान भूतल पर गिर पड़ा। हे मानद! श्रीकृष्ण के कथनानुसार आकाश से गिरते हुए पार्थ को प्रद्युम्न ने आकाश में ही पकड़ लिया। निकुम्भ का पतन हो जाने पर अर्जुन को आश्वासन देकर अर्जुन और प्रद्युम्न के साथ श्रीकृष्ण जी द्वारका चले गये। दाशार्हवंशी विभु यदुनन्दन प्रसन्नता से द्वारका पहुँच कर महात्मा नारद को नमस्कार किये। महातेजस्वी नारद ने भानु यादव से कहा कि हे भीमवंशी नन्दन! तुम मेरी बात को सुनो हे भानो! क्रोध न करना। राजा रैवत के उद्यान में क्रीड़ा करते समय इसने दुर्वासा ऋषि को कुपित कर दिया था, इसलिये उन्होंने क्रोध में आकर तुम्हारी पुत्री को शाप दे दिया था कि यह कन्या अत्यन्त दूषित प्यार से शत्रु के हाथ में चली जायेगी तब तुम्हारी कन्या के शापोद्धार के लिये मुनियों के साथ मैंने दुर्वासा को प्रसन्न किया। मैंने उनसे कहा हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ धर्मज्ञ मुने! बाल व्रत वाली निष्पाप कन्या को क्यों शाप दे दिया हम लोग आप से प्रार्थना करते हैं, इसलिये आप-इस पर कृपा कीजिये।।६१-७०।।

हे भीमवंशीनन्दन! हम लोगों के ऐसा कहने पर मुनि दया भाव से युक्त हो क्षण भर के लिये नीचे मुख कर बोले कि जो हम कह चुके हैं वह अन्यथा

नहीं होगा यह राक्षस के हाथ में अवश्य जायेगी इसमें तो संशय नहीं है। लेकिन यह वहाँ दूषित नहीं होगी और धर्म से रहकर पति को प्राप्त करेगी पश्चात् बहुत पुत्रों तथा धन वाली और सौभाग्यवती होगी। इसके शरीर से सुगन्ध निकला करेगी और बार-बार प्रसव करने पर भी कुमारी की भाँति ज्ञात होगी और यह कृश कटि वाली कभी भयंकर शोक नहीं धारण करेगी। हे वीर! इस प्रकार की ऋषि कृपा वाली भानुमती को सहदेव के लिये आप प्रदान करें। क्योंकि वह पाण्डुपुत्र श्रद्धालु, धर्मशील तथा शूरवीर है। इसके बाद नारदजी के वचनों का स्मरण करते हुए धर्मात्मा भानु यादव ने भानुमती को माद्री-सुत सहदेव के लिये दे दिया। चक्रपाणि श्रीकृष्ण ने सहदेव को बुलाकर भानु के यहाँ भेजा था तब विवाह हो जाने पर भार्या के साथ सहदेव अपने पुर को चले गये। जो कोई मनुष्य श्रद्धा के साथ इस श्रीकृष्ण के विजय को पढ़ेगा अथवा सुनेगा वह सब कार्यों में सफलता प्राप्त करेगा।।७१-७८।।



अथैकनवतितमोऽध्यायः ।।९१।।

जनमेजयजी बोले–हे धर्मधारियाँ में श्रेष्ठ मुने! भानुमती का अपहरण तथा केशव की विजय एवं अमित तेजस्वी वृष्णिवंशियों की सागर में दिव्य क्रीड़ा करना आदि परम आश्चर्यकारक आख्यान सुना। हे मुने! अब आपके प्रसाद से वज्रनाभ के वध को सुनने का मुझे कौतुहल है जिसकी चर्चा निकुम्भ वध के कीर्तन में आपने की है। वैशम्पायनजी बोले–हे भारतवंशी नृप! वज्रजनाभ का वध तथा प्रद्युम्न एवं साम्ब की विजय अवश्य तुम्हें बतलाऊँगा। हे नरपते! महासुर वज्रनाभ मेरु पर्वत के शिखर पर तपस्या किया था। उसकी तपस्या से संतुष्ट होकर महातेजस्वी लोकपितामह ब्रह्मा उससे वर माँगने को कहे। वह दानव-श्रेष्ठ अपने को सब देवताओं द्वारा अवध्य होना तथा सम्पूर्ण रत्नों से युक्त शुभ वज्रपुर नामक नगर को माँगा। और हे भरतवंशी राजन्! उसने कहा कि उस नमर में अपनी इच्छा से वायु का भी प्रवेश न हो सके और चिन्तना के बिना ही कामनाओं की सिद्धि हो जाया करे। हे जनमेजय! उपमा

रहित उस नगर के चारों ओर शाखा नगर की भाँति चाहारदीवारियों से घिरे सैकड़ों बगीचें हों ऐसा वरदान माँगा। हे भारत! ब्रह्मा के वरदान से जैसा वह चाहा वैसा सब हो गया, महासुर वज्रनाभ वज्रपुर में रहने लगा।।१-१०।।

हे राजन्! उस वर पाये वज्रनाभ को घेर कर करोड़ों असुर उसके पुर तथा शाखा नगर रूपी बगीचों में रहने लगे। हे नराधिप! उन रमणीक शाखा नगर में देवताओं के शत्रु असुर बड़े हृष्ट-पुष्ट तथा प्रसन्न होकर आनन्द करने लगे। वरदान से गर्वित दुष्टात्मा वज्रनाभ अपने पुर में जगत् को बाधा पहुँचाने के लिये उद्यत हो गया। हे विशाम्पते! वह देवलोक में जाकर महेन्द्र से कहा कि हे पाकशासन! अब मैं तीनों लोकों का स्वामी बनना चाहता हूँ अर्थात् तुम स्वर्ग का राज्य त्याग कर मुझे दे दो। अथवा हे देवगणों के ईश्वर! मेरे साथ युद्ध करो क्योंकि सामान्य रूप से यह सम्पूर्ण जगत् महात्मा काश्यपों का है अर्थात् देवताओं और दानवों दोनों का है। हे कुरु के वशंज! महेश्वर इन्द्र बृहस्पति के साथ मंत्रणा कर वज्रनाभ से बोले। हे सौम्य! इस समय मेरे पिता कश्यप मुनि यज्ञ में दीक्षित हो चुके हैं, अतः कुछ नहीं कर सकते यज्ञ से निवृत्त होकर जैसा वह उचित समझेंगे करेंगे। इसके बाद वह दानव जाकर पिता कश्यप से इन्द्र की कही बातें कहा तब कश्यपजी उससे बोले कि-यज्ञ के समाप्त होने पर जैसा उचित होगा वैसा करूँगा हे पुत्र! इस समय तुम मेरे कहने से वज्रपुर में जाकर वास करो। ऐसा कहने पर वज्रनाभ अपने पुर को चला गया और महेन्द्र द्वारों से युक्त द्वारका को गये।।११-२०।।

और छिपे रूप से जाकर श्रीकृष्ण से वज्रनाभ का सब वृत्तान्त कहा तब जर्नादन ने इन्द्र से कहा कि हे वासव! इस समय वसुदेव का महान् अश्वमेध यज्ञ होने जा रहा है यज्ञ समाप्त होने पर मैं वज्रनाभ को मारूँगा। हे प्रभो! सज्जनों की गति ब्रह्मा की बातों पर ध्यान देते हुए हम दोनों को पुर में प्रवेश करने का विचार करना है, उन्हीं के वरदान से वहाँ वज्रनाभ की अनिच्छा से वायु का भी प्रवेश नहीं हो पाता है। इसके बाद वासुदेव से सत्कृत हो देवराज इन्द्र चले गये। हे भारत! जब श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव का अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ हुआ तो उस वर्तमान यज्ञ में देवराज इन्द्र और अच्युत श्रीकृष्ण ये दोनों

सुरोत्तम वीर वज्रनाभ के पुर में प्रवेश करने का उपाय सोचने लगे। उस वर्तमान यज्ञ में भद्र नामक एक नट अपने सुन्दर नृत्य से महर्षियों को प्रसन्न किया। मुनि-श्रेष्ठों ने उससे वर माँगने को कहा तब देवेन्द्र और श्रीकृष्ण की इच्छा से सरस्वती से प्रेरित देवेश्वर की उपमा वाला वह सज्जन नट अश्वमेध यज्ञ में आये हुए मुनियों को दण्डवत् कर आत्मा के अनुकूल वर माँगा। नट बोला हे मुनिश्रेष्ठों ! मैं सभी ब्राह्मणों को पोष्य हो जाऊँ और इस सात द्वीप वाली पृथ्वी पर विचरण करूँ और प्रसन्नतापूर्वक पक्षियों की भाँति विशेष रूप से आकाश में गमन कर सकूँ तथा मैं स्थावर जङ्गम सभी प्राणियों से अवध्य होऊँ।।२१-३०।।

मैं जिस मरे अथवा जिस जीवित प्राणी के शरीर में प्रवेश करना चाहूँ तो ठीक वैसा ही रूप तुरंत बना कर प्रवेश कर सकूँ और शीघ्र ही वैसा हो जाऊँ तथा बुढ़ापा के रोग से रहित रहूँ और मेरे ऊपर मुनि तथा अन्य लोग सदा संतुष्ट रहें। हे नृपते! ऐसी वर-याचना सुनकर ब्राह्मणों ने कहा कि ''ऐसा ही होगा'' तब तो देवता के समान वह नट सात द्वीपों वाली पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा। वह दानवेन्द्रों के पुरों में तथा उत्तर कुरु के नगरों में एवं भद्राश्व, केतुमाल और कालाभ्र अदि द्वीपों में घूमने लगा। वह वर पाया हुआ लोक वीर महानट यादवों से सुशोभित द्वारका में प्रत्येक पर्व पर आया करता था। इसके पश्चात् भगवान् सुरेश्वर इन्द्र ने स्वर्ग निवासी धार्तराष्ट्र नामक हंसों को सान्त्वना देकर कहा कि–आप लोग देव पक्षी तथा कश्यप के वंशज हैं, अतः मेरे भाई हैं इसके आलावे आप लोग पुण्यात्मा तथा देवताओं के विमान को ढोने वाले हैं। इस समय देवताओं का एक कार्य आप लोगों के करने योग्य आ पड़ा है जिसके अन्दर शत्रु का वध निहित है उसे आप लोग करें और किसी प्रकार भी इस भेद को प्रकाशित न करना। यदि आप लोग देवताओं की आज्ञा का पालन नहीं करेंगे तो बड़ा कठोर दण्ड पायेंगे हे हंसश्रेष्ठों! आप लोगों का गमन कहीं पर निषिद्ध नहीं है। इसलिये जहाँ दूसरों का जाना निषिद्ध है ऐसे पुरों में उत्तम वज्रनाभपुर में यहाँ से जाकर अन्तःपुर की बाबली में आप उचित रूप से चरें।।३१-४०।।

वज्रनाभ को एक शुभ कन्या रत्न है जो कि तीनों लोकों से बढ़कर है उसका नाम प्रभावती है वह सचमुच चन्द्रमा के समान प्रभा वाली है। उसकी माता ने महादेवी पार्वती से उस वरानना को वरदान के रूप में पाया है ऐसा मैंने सुना है। हे हंसों! वह शोभना सती अपने सर्गे-सम्बन्धियों द्वारा स्वयंवर में लाई जाने पर अपनी इच्छानुसार पति का वरण करेगी। अतः आप लोग वहाँ जाकर महात्मा प्रद्युम्न के अच्छे गुणों तथा उनके कुल के प्रताप, रूप, शील तथा अवस्था का वर्णन कीजिये। जब वज्रनाभ की पुत्री प्रद्युम्न की ओर आकर्षित हो जाय तो उसका सन्देश चुपचाप प्रद्युम्न के पास ले जाना फिर प्रद्युम्न का सन्देश प्रभावती के पास पहुँचाना, अपनी बुद्धि से विचार कर समय के अनुसार मेरा हित करना। वहाँ अपने नेत्र और मुख को बराबर प्रफुल्लित रखना और वैसे ही वैसे महात्मा प्रद्युम्न के गुणों का वर्णन करना कि, जैसे-जैसे प्रभावती का मन प्रद्युम्न में आसक्त होता जाय और प्रतिदिन वृत्तान्त मुझे बराबर देते रहना साथ ही द्वारका में मेरे छोटे भाई श्रीकृष्ण को भी समाचार देते रहना। आप लोगों को तबतक यह प्रयत्न करना है कि जबतक आत्मज्ञानी विभु प्रद्युम्न वरारोहा वज्रनाभ-पुत्री प्रभावती को लाने के लिये उद्यत न हो जायँ।।४१-५०।।

ब्रह्मा के वरदान से गर्वित वे दानव देवताओं से अवध्य हैं, इसलिये प्रद्युम्न आदि देवपुत्रों द्वारा युद्ध में वे सब मारें जायेंगे। वर प्राप्त किये भद्र नामक नट के वेष में प्रद्युम्न आदि यादव वज्रनाभ के विनाश के लिये जायेंगे। हम लोगों के प्रिय की कामना से यह सब यथासमय करना और अन्य भी जो आवश्यक समझना करना। हे हंसों! वहाँ पर देवताओं तक का प्रवेश नहीं हो सकता वज्रनाभ के चाहने पर ही वहाँ किसी का प्रवेश हो सकता है।।



अथ द्विनवतितमोऽध्यायः ।।९२।।

वैशम्पायनजी बोले-हे जनाधिप! इन्द्र के वचन को सुनकर वे हंस वज्रपुर को चले गये, हंसों का वहाँ जाने का पहले से ही विचार था। वे वीर

पक्षी स्पर्श की क्षमता रखने वाले स्वर्ण के समान कमलों से ढकी उस रम्य बावली पर नीचे उतरे और वे शुद्धतापूर्वक भाषण करने वाले पहले-पहल आये हुए हंस मधुर नाद करते हुए आश्चर्य प्रकट करने लगे। हे नृप! इसी प्रकार रनिवास के विचरने योग्य बावली पर विचरण करने लगे और वे स्वर्ग निवासी हंस वज्रनाभ के दृष्टिगोचर हुए। हे जनेश्वर! वे धार्तराष्ट्र नामक हंस सुमधुर आलाप करते हुए विचर रहे थे, इनको देख दितिपुत्र वज्रनाभ ने उन हंसों से यह कहा कि-सुन्दर भाषण करने वाले आप लोग स्वर्ग में नित्य आनन्द लेने वाले हैं, जब हमारे यहाँ उत्सव हुआ करे तो आप लोग आया कीजिये। हे हंसो! यह आप लोगों का घर है, आया कीजिये, आप लोग स्वर्ग निवासी हैं, इसलिये विश्वस्त होकर मेरे घर में प्रवेश कीजिये। हे भारत! वज्रनाभ द्वारा ये बातें सुन कर ऐसा ही करूँगा कह कर वे हंस दानवेन्द्र के भवन में चले गये। मनुष्य की बोली में बोलने वाले वे हंस देवकार्य करने की इच्छा से परिचय करने लगे तथा अनेकानेक कथा कहने लगे। वे सब कल्याण के भागी दानवों की वंशावली की कथा कहने लगे तब ऐसी संगत कथायें सुनती हुई स्त्रियाँ विशेष रूप से प्रसन्न होने लगीं।।१-१०।।

इधर-उधर विचरते हुए हंसों ने सुन्दर हँसी वाली वरारोहा वज्रनाभ की कन्या प्रभावती को देखा। तब हंसों ने उस चारुहासिनी को अपना परिचित बनाया और राज-कन्या ने शुचिमुखी नामक हंसिनी को अपनी सखी बना लिया। फिर तो शुचिमुखी ने सैकड़ों सुन्दर आख्यानों को कह कर विश्वस्त बना लिया और कभी अवसर प्राप्त कर वज्रनाभ की उस श्रेष्ठ कन्या सखी से पूछा कि। हे प्रभावती! मैं तुमको रूप, शील तथा गुणों से तीनों लोकों में सबसे अधिक सुन्दरी समझती हूँ इसलिये हे देवि! मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ। हे चारुहासिनी! इस समय तुम्हारी अवस्था बीती जा रही है जो बहते हुए जल के समान पुनः वापस नहीं आ सकती। हे देवि! हे कल्याणि! स्त्रियों के लिये इस संसार में काम-भोग के समान सुख और कोई नहीं है यह मैं तुमसे सत्य कह रही हूँ। हे सर्वाङ्गशोभने! जब तुम पिता के द्वारा स्वयंवर में खड़ी कर दी जाओगी तो उस समय देवता तथा दानवों के कुल में उत्पन्न किसी वर का वरण

न कर सकोगी हे सुश्रोणि! तुम्हारे द्वारा प्रतिउत्तर पा वे लज्जित होकर चले जायेंगे क्योंकि हे शुभे! तुम तो अपने कुल के अनुसार ही रूप, शूरता तथा गुणों से युक्त वर को चाहोगी। स्वयंवर में आये हुए लोग तुम्हारे कुल और रूप के सदृश न होंगे इसलिये हे देवि! उन्हें तुम नहीं चाहोगी, तुम्हारे योग्य वर केवल एक रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न हैं पर वे किसलिये यहाँ आयेंगे अर्थात् उनके यहाँ आने की सम्भावना ही नहीं है। हे शुभे! जिसके रूप, कुल, शूरता तथा गुण की समानता का तीनों लोकों में कोई भी नहीं है।।११-२०।।

वे महाबली धर्मात्मा प्रद्युम्न देवताओं में देवता, दानवों में दानव तथा मनुष्यों में मनुष्य हैं। जिसको देखकर गौओं के दूध भरे स्तनों तथा नदियों के स्त्रोंतो की भाँति स्त्रियाँ के जघन स्थल चूने लगते हैं। उनके मुख के पूर्ण चन्द्रमा से तथा आँखों की कमल से एवं चाल की सिंह से उपमा नहीं दे सकती। हे शुभे! प्रभावशाली विष्णु ने जगत् का सार ग्रहण कर सुन्दर अङ्गों सहित कामदेव को ही प्रद्युम्न नामक अपना पुत्र बनाया है। बाल्यकाल में वे शम्बर असुर द्वारा हर लिये गये थे इसलिये उस पापी को उन्होंने मार डाला और उसकी सभी माया सीख लिये परन्तु वे अपने शील को नष्ट न किये। हे पृथुश्रोणि। तुम जिन-जिन गुणों की मन से कल्पना करोगी वे सभी गुण तीन लोकों में ढूँढ़ने पर केवल प्रद्युम्न में ही मिलेंगे। वे अग्नि के समान तेजस्वी, पृथ्वी के समान क्षमा वाले और सूर्य के समान तेजस्वी तथा सरोवर की भाँति गम्भीर हैं, इन बातों को सुन प्रभावती कन्या शुचिमुखी से बोली। प्रभावती ने कहा हे सौम्ये! विष्णु मनुष्य लोक में रह रहे हैं, यह बात मैंने अनेक बार अपने पिता तथा बुद्धिमान् नारद के मुख से सुनी हूँ। हे अनघे! वे दैत्यों के कट्टर शत्रु हैं इसलिये वे त्याज्य हैं, क्योंकि हे मानिनि! उन्होंने जलते हुए चक्र, धनुष तथा गदा द्वारा दैत्यों के कुल को कई बार भस्म कर दिया है जिसका लक्ष्य कर मेरे पिता दानवेन्द्र शाखा नगरों में रहने वाले दैत्यों से कहा करते हैं। परन्तु उस बलवान् के प्रति हे शुचिहास्ये! सभी स्त्रियों का मनोरथ हो सकता है क्योंकि कामदेव के गूढ़ होने से वैरी कुल में भी स्त्रियों का प्रेम होता है।।२१-३०।।

सभी कन्यायें यह चाहती हैं कि पिता के कुल से मेरे पति का कुल

श्रेष्ठ हो, यदि उन प्रद्युम्न के यहाँ आने का कोई उपाय हो तो बताओ। यदि तुम ऐसा करोगी तो तुम्हारा मेरे ऊपर महान् अनुग्रह होगा और तुम्हारे प्रायस से मेरा कुल पवित्र हो जायेगा, हे पवित्रभाषिणि! हमारे पूछने पर तुम कार्य करने का उपाय करो। जिससे वृष्णि कुल में उत्पन्न प्रद्युम्न हमारे पति हो जावें, मैंने वृद्धा स्त्रियाँ को कहते हुए सुना है कि दैत्यों के हरि अन्यन्त वैरी हैं तथा असुरों को उद्विग्न करने वाले हैं और प्रद्युम्न के जन्म को भी मैं पहले से ही सुनती आ रही हू और जिस प्रकार उन्होंने बलवान् शम्बर को मारा वह भी जानती हूँ, हे सत्तमे! प्रद्युम्न मेरे हृदय में नित्य रहते हैं। परन्तु ऐसा कोई कार्य-कारण नहीं उपस्थित हुआ कि जिससे उनसे हमारा समागम हो, हे साख्यार्हे! सखी बनने योग्य! मैं तुम्हारी दासी हूँ लेकिन मैं तुम्हें इस कार्य में दूती बना रही हूँ। तुम पण्डिता हो इसलिये हमारे और उसके मिलन का उपाय बताओ इसके बाद प्रभावती को सान्त्वना देकर शुचिमुखी हँसती हूई बोली। शुचिमुखी ने कहा कि हे चारुहासिनि! मैं तुम्हारी दूती बनकर वहाँ जाऊँगी और हे पवित्रहास्ये! तुम्हारे प्रेम को कहूँगी और वैसी ही उपाय करूँगी कि जैसे वे तुम्हारे पास आवें हे सुश्रोणि! साक्षात् उन प्रद्युम्न रूपी कामदेव से तुम पूर्ण काम वाली हो जाओगी।।३१-४०।।

हे पवित्रलोचने! मेरे इन वचनों का बराबर स्मरण करती रहना और हे विशालनेत्रे! तुम अपने पिता से मेरी कथा कुशलता को कहना। हे देवि! वहाँ तुम मेरे ममत्व तथा हित का पूरा ध्यान रखना, ऐसा कहने पर उसने वैसा ही किया कि जैसा हंसिनी ने कहा था। तब अन्तःपुर में दानवेन्द्र ने उस हंसी से पूछा- क्यों तुम कथा कहने में कुशल हो? प्रभावती ने तुम्हारी कथा-कुशलता को हमसे कहा है। हे श्रेष्ठ शुचिमुखि! अपनी योग्यता के अनुसार सार कथा को कहो हे उत्तम पक्षिणि! तुमने जगत् में क्या आश्चर्य देखा है? हे अनिन्दिते! जो पहले कभी अन्य लोगों से न देखा गया हो ऐसा योग्य अथवा अयोग्य विषय कहो हे श्रेष्ठ नरोत्तम! ऐसा सुन उस हंसी ने वज्रनाभ से कहा। महातेजस्वी दानवेन्द्र से ''सुनिये'' ऐसा निर्देश कर बोली कि-हे दानवश्रेष्ठ! मैंने शाण्डिली नामक साध्वी मनःस्विनी को मेरु पर्वत के समीप आश्चर्य कर्म

करते देखा है और सभी प्राणियों के हित में रत सुमना कौशल्या को देखा वह शाण्डिली से भी कई बातों में श्रेष्ठ हैं तथा वह शैलपुत्री पार्वती की शुभ सखी है। मैंने मुनियों द्वारा वर प्राप्त किये शुभ नट को देखा है जो इच्छानुसार रूप धारण करने वाला तीनों लोकों में नित्य भ्रमण करता है वह भोज्य अर्थात् नाट्य देखने योग्य है। हे निष्पाप वीर! वह उत्तरा कुरु के देशों में कालाभ्र द्वीप में तथा भद्राश्व, केतुमाल आदि देशों एवं अन्यान्य द्वीपों में भ्रमण करता रहता है। वह देवता तथा गन्धर्वों के गाने योग्य विविध गीतों और नृत्यों को जानता है तथा अपने नृत्य से देवताओं को भी विस्मित कर देता है।।४१-५०।।

वज्रनाभ बोला हे हंसि! मैंने भी इस बात को चारणों, सिद्धों तथा महात्माओं को कहते सुना है यह थोड़े ही दिन की बात है। हे पक्षिनन्दिनि! मुझे भी इसका कुतूहल है परन्तु वर पाये नट ने मेरी प्रशंसा नहीं सुनी है। हंसी बोली हे दितिपुत्रोत्तम! वह गुणी जनों को सुनकर सदा अपना गुण प्रकाशित करता है इसी प्रकार सातों द्वीपों मे वह विचरण किया करता है। हे वीर! यदि वह आपके सद्गुणों के विस्तार को सुन लेगा तो हे महासुर! उस नट को अपने पुर में आया ही हुआ समझिये। वज्रनाभ बोला–हे शुभ हंसिनि! किसी ऐसे उपाय की रचना करो कि जिससे वह हमारे देश में आवे हे पक्षिनन्दिनि! तुम्हारा कल्याण हो। इस कार्य के लिये वज्रनाभ द्वारा विदा किये गये हंस इन्द्र से तथा श्रीकृष्ण से सब समाचार कहे। तब श्रीकृष्ण ने इस कर्म में अर्थात् प्रभावती के ससंर्ग एवं वज्रनाभ के वध के लिये प्रद्युम्न को नियुक्त कर दिया। हे भारत! हरि ने दैवी माया का आश्रयण कर भीमवंशियों को नटवेष से नट बना कर भेजा। प्रद्युम्न को प्रधान नट भद्र, साम्ब को विदूषक तथा गद को परिपार्श्वक और अन्य भीमवंशियों को नाचने वाली वेश्या बना कर उनके बाजों और गानों के अनुसार नाचने के लिये भेजा और कुछ को भद्र नट का सहायक बना कर भद्र के वेश में भेजा। प्रद्युम्न के द्वारा बनाये गये सुन्दर विमान पर चढ़ कर अतुल तेजस्वी वे महारथी देवताओं की कार्यसिद्धि के लिये चल पड़े। हे नराधिप! वे एक-एक सभी पुरुषों के रूप में पुरुष थे तथा अन्य सभी स्त्रियों के सदृश हो गये थे। वे वज्रनगर के उत्तम शाखा नगर जो

दानवों से व्याप्त था ऐसे सुपुर नामक नगर में चले गये।।५१-६३।।



अथ त्रयनवतितमोऽध्यायः ।।९३।।

वैशम्पायनजी बोले–हे नराधिप! जब यह समाचार वज्रनाभ को ज्ञात हुआ तो उसने अपने पुरवासी असुरों को आज्ञा दी कि इनको ठहरने के लिये उत्तम गृह दो और इनका आतिथ्य सत्कार करो तथा इनकी प्रसन्नता के लिये मनुष्यों को सुख कर बहुत से रत्न तथा रंग विरंगे वस्त्र दो। तब स्वामी की आज्ञा प्राप्त कर असुरों ने नटों की सब प्रकार से स्वागत की तथा जिसका नाम पहले सुना गया था। वह नट आ गया। ऐसा विचार कर सब आश्चर्य प्रकट करने लगे। दैत्यों ने परम प्रसन्नता से सत्कार की सामग्रियाँ दीं और उनको वेष धारण करने के लिये बहुत से रत्न दिये। इसके पश्चात् वह वरदानी नट नृत्य करने लगा तब स्वपुर में रहने वाले असुर परम प्रसन्न होने लगे। इसके अनन्तर वह नट महाकाव्य रामायण का उद्देश्य कर रावण के वध की इच्छा से विष्णु के रामावतार का नाटक करने लगा। हे निष्पाप! लोमपाद दशरथ, महामुनि ऋष्यश्रृंग तथा शान्ता को गणिकाओं के साथ रंग-मंच पर लाये। हे भारत! वे नट ही राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, ऋष्यश्रृंग तथा शान्ता बने हुए थे। हे अच्युत! उस समय के जीवित वृद्ध दानव विस्मय को प्राप्त हो गये और उन लेगों ने कह दिया कि राम, लक्ष्मणादि के समान ही इन नटों ने अपना रूप बना लिया है। प्रस्तावना (हम अमुक नाटक करेंगे), पात्रों का प्रथम प्रदर्शन, वेष धारण, नाटक क्रिया का प्रदर्शन तथा पाठों का स्मरण देख कर सभी दानव विस्मय को प्राप्त हो गये।।१-१०।।

नाटक के प्रत्येक आकर्षक विषयों पर वे नाटक के रंग में रंगे असुर बार-बार उठ-उठ कर परम प्रसन्नता से ताली बजाने लगे। वे पुरस्कार में वस्त्र, कण्ठा, बाजूबन्द तथा वैदूर्यमणि से विभूषित सुवर्ण के मनोहर हारों को देने लगे। लोगों द्वारा अर्थात् वहाँ के असुरों द्वारा अलग-अलग विषयों पर पुरस्कार देने पर नट सन्तुष्ट हो गये और दानवों तथा मुनियों के गोत्रों-देशों

का नाम लेकर प्रशंसा करने लगे। शाखा नगर निवासी असुरों ने वज्रनाभ के यहाँ सन्देश भेजा कि दिव्य रूप वाले नट का राजा के रूप में रंगमंच पर आगमन हुआ है। हे भारत! पहले से ही इस बात के जानने वाला दैत्येन्द्र दूत को भेजा कि उस नट को वज्रपुर में लिवा लाओ। तब दानवेन्द्र की बात सुन कर शाखा नगर निवासी नट वेषधारी यादवों का वज्रपुर में लिवा गये। राजा ने उन्हें रहने के लिये विश्वकर्मा द्वारा सुन्दर ढंग से बनाये हुए आवास स्थान को दिया और भी जो इच्छित पदार्थ चाहिये थे उससे सौ गुना पदार्थ दिये। महासुर वज्रनाभ ने महाकालेश्वर शंकर जी का उत्सव किया उसमें नटों द्वारा नाटक का आयोजन किया और उसे देखने के लिये सैनिकों को भी बुलवाया तथा दर्शक-स्थल को मनोहर बनवा दिया। महाबली वज्रनाभ बहुत से रत्नों को देकर उन विश्राम किये नटों को नाटक करने के लिये प्रेरित किया और जालीदार परदे की ओट में आँखों से देखने योग्य स्थान पर अन्तःपुर को बैठा कर आत्मज्ञ राजा अपनी जाति वालों के साथ नृत्यादि को देखने बैठा।।११-२०।।

नट वेषधारी भीम कर्मा भीमवंशी भी परदे की आड़ में नृत्यादि करने के लिये सज गये। इसके बाद वंशी, जोड़ी, मृदंग, वीणा आदि के स्वरों से युक्त वाद्य-विशेषों को बजाने लगे। इसके पश्चात् देवता तथा गन्धर्वों के गाने योग्य छालिक्य गान को भैमों की स्त्रियाँ गाने लगीं जो कि कान को अमृत के समान तथा मन और श्रवण को सुख पहुँचाने वाल था। वे स्वर के धन से धनी स्त्रियाँ गान्धार स्वर से लेकर सातों स्वरों के राग में गङ्गावतरण का आख्यान गाने लगीं एक राग में दूसरे राग का भी सुन्दर आभास दिखाने लगीं। हे भारत! लय और ताल की समानता से युक्त शुभ गंगावतरण को सुन कर राजदूत उठ-उठ कर असुरों को सन्तोष देने लगा कि आप लोग शान्ति से बैठे रहें। देव कार्य की सिद्धि के लिये नट का वेष धारण करने वाले प्रद्युम्न, गद तथा बली साम्ब नान्दि नामक बाजे अर्थात् मसक बजाने लगे तथा अन्य मंगल पाठ करने लगे। मंगल पाठ के अन्त में रुक्मिणी-पुत्र ने विनम्र भाव से गंगावतरण से युक्त श्लोक सुनाया। इसके बाद रम्भाभिसार-कौबेर नाटक को खेलना प्रारम्भ किया और एक शूरवीर रावण तथा दूसरा मनोवती

का पाठ लिया। प्रद्युम्न कुबेर-पुत्र नलकूबर बने और साम्ब उसका विदूषक बने यदु कुमारों ने माया के बल से कैलास बनाया और जिस प्रकार से क्रुद्ध होकर नलकूबर ने दुरात्मा रावण को शाप दिया था और जैसे रम्भा को समझाया था इसी प्रकरण को वीर यादव नाटक कर दिखाने लगे और महात्मा सर्वज्ञ नारद मुनि की कीर्ति का भी प्रदर्शन करने लगे।।२१-३०।।

अमित तेजस्वी भीमवंशियों के पैर उठा कर नाचने से तथा अभिनय करने से सभी दानव सन्तुष्ट हो गये। वे दानव पुरस्कार में प्रमुख दुशाला, रत्न, आभूषण और गोलाकार मणि से जटित तथा वैदूर्यमणि से विभूषित हारों को देने लगे और आकाश में उड़ने वाले विचित्र विमानों और रथों को तथा दिव्य गज कुल में उत्पन्न आकाश में गमन करने वाले गजो को देने लगे। गीले तथा शीतल दिव्य चन्दनों को तथा अति गन्ध वाले गम्भीर प्रमुख अगरों को देने लगे। नाटक दिखाने वाली स्त्रियों को चिन्तना करने मात्र से सभी कामनाओं को देने वाले उदार चिन्तामणि दानव देने लगे। हे पुरुषश्रेष्ठ राजन्! भद्र नामक नट का नाटक प्रमुख-प्रमुख दानवों की स्त्रियों को धन से रहित कर दिया। इसके बाद प्रभावती की सखी हंसी प्रभावती से बोली कि हे अनिन्दिते! मैं भीमवंशियों से रक्षित रमणीक द्वारका में गई थी। हे सुन्दरनेत्रे तथा पवित्रहास्ये! एकान्त स्थान में प्रद्युम्न को देखकर मैंने उनसे तुम्हारे प्रेम का वर्णन किया। हे कमल-लोचने! वे प्रसन्न हो आज प्रदोष के समय सायंकाल में तुम्हारे साथ समागम का समय निश्चित किये हैं।।३१-४०।।

हे रुचिरश्रोणि! आज तुम्हारा प्रिय के साथ समागम निश्चित होगा क्योंकि भीमवंशी मिथ्या नहीं भाषण करते हैं। तब प्रभावती प्रसन्न होकर उस हंसी से बोली कि हे सुन्दरि! तुम आज हमारे वासस्थान पर रहो क्योंकि तुम यहाँ सोने योग्य हो। हे पक्षिणि! तुम्हारे साथ ही अपने आवास में केशव-पुत्र को देखना चाहती हूँ, तुम्हारे साथ रहने से मैं भयरहित हो जाऊँगी। तब हंसी कमललोचना सखी से 'ऐसा ही करूँगी' कह दिया और प्रभावती के भवन की छत पर बैठ गयी। विश्वकर्मा के द्वारा बनाये भवन की छत पर प्रभावती प्रद्युम्न के आने योग्य प्रबन्ध करने लगी। प्रबन्ध कर लेने के बाद प्रभावती से

कहकर हंसी प्रद्युम्न को लिवाने के लिये वायु की गति से शीघ्र गई। पवित्र हँसी से हँसने वाली हंसी ने जाकर नट वेषधारी प्रद्युम्न से कहा–हे भगवन्! आज ही रात्रि में उससे समागम करने का समय निश्चित हुआ है। प्रद्युम्न ने हंसी से कहा ''ऐसा ही होगा' तब वह हंसी प्रभावती के पास लौट आई और आकर प्रभावती से कहा कि हे विशालनेत्रे! रुक्मिणी पुत्र आ रहे हैं। आत्मज्ञ अरिमर्दन प्रद्युम्न ने भँवरों से व्याप्त सुगन्धित माल्य को ले जाते हुए देखा। तो भँवरे का रूप धारण कर उसी माल्य में छिप गये वे प्रतापी इस बात को जानते थे कि प्रभावती के यहाँ ही ये माल्य पहुँचाया जा रहा है।।४१-५०।।

स्त्रियों द्वारा मधुकरों से युक्त वह माल्य प्रभावती के लिये उसके भवन में पहुँचाया गया। हे जनाधिप! प्रभावती के समीप माल्य रख दिया गया, सन्ध्या काल होने पर वे भ्रमर चले गये। तब वे भैम श्रेष्ठ वीर प्रद्युम्न सहायकों से विहीन हो प्रभावती के कर्ण कमल में जाकर धीरे से विलीन हो गये। इसके बाद बोलने वालों में श्रेष्ठ प्रभावती उगते हुए अति मनोहर पूर्ण चन्द्रमा को देखकर हंसी से बोली। हे सखि! मेरे अंग जल रहे हैं और मुख सूख रहा है तथा हृदय में अत्यन्त उत्सुकता बढ़ रही है, यह बिना औषधि के कौन व्याधि उत्पन्न हो रही है। यह ठण्डी किरणों वाला नवोदित चन्द्रमा दूनी उत्सुकता धारण कर रहा है और प्रिय होता हुआ भी मेरी प्रसन्नता का हरण कर रहा है। स्त्री के स्वभाव को धिक्कार है, जिसको कभी देखा भी नहीं केवल श्रवण मात्र से इच्छा की थी फिर भी मेरे अंग जल रहे हैं। यदि मेरे प्रिय नहीं आवेंगे तो हाय! मैं अभागिनी बुद्धि के अनुसार उनके स्वरूप की कल्पना कर कुमुद्वती के मार्ग का अनुसरण करूँगी अर्थात् पति के रहते जवानी में ही मरण को प्राप्त होऊँगी हाय! हाय! मैं अभिमानिनी मदनरूपी सर्प से डँस ली गई हूँ। जगत् को प्रसन्नता और सुख पहुँचाने वाली चन्द्रमा की ठण्डी किरणें मेरे शरीर को क्यों जला रही हैं। स्वभाव से शीतल तथा नाना प्रकार के पुष्पों की रज को धारण करने वाला वायु आज मेरे शुभ शरीर को बन की अग्नि के समान क्यों जला रहा है। मैं मन को धैर्य देने की कल्पना करती हूँ पर संकल्प से व्यथित चंचल मन धीरता नहीं धारण कर रहा है। हा! हा! अब मैं निश्चय

ही मरण को प्राप्त हो जाऊँगी क्योंकि मेरा मन डूबा जा रहा है और हृदय में कँपकँपी हो रही है तथा मैं मूर्छित हो रही हूँ।।५१-६२।।



अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः।।९४।।

वैशम्पायनजी बोले–हमारे द्वारा वह बाला सर्वथा काम के वशीभूत कर ली गई है ऐसा समझ कर कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न हंसी से बोले कि। भ्रमर बनकर भ्रमरों के साथ माल्य में छिप कर मैं प्रभावती के समीप आ गया, यह जान लो। यह बात प्रभावती से कह दो मेरे साथ इच्छानुसार जैसा चाहे बर्ताव करे यह कहकर अपने को सुन्दर रूप में प्रकट कर दिया। उन बुद्धिमान् की प्रभा से भवन का छत प्रकाशित हो गया तथा उनकी प्रभा से चन्द्रमा की चाँदनी फीकी पड़ गई। जिस प्रकार पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर जल का सागर उमड़ जाता है वैसे ही प्रद्युम्न को देखकर प्रभावती के काम का सागर उमड़ पड़ा। लज्जा के मारे वह नीचे मुख कर कुछ तिरछी दृष्टि से देखने लगी, उस समय कमलनेत्रा प्रभावती निश्चल भाव से खड़ी हो गयी। इसके बाद सुन्दर आभूषणों से आभूषित उस प्रभावती के अधःप्रदेश को स्पर्श कर स्वयं भी रोमाञ्चित शरीर हो उस वरारोहा से बोले। सैकड़ों मनोरथ करने के बाद भी मुझे प्राप्त कर पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रभाशाली मुख क्यों नीचे कर ली हो कुछ मुझसे कहती क्यों नहीं हो। हे वराननें! बदन की प्रभा को मत छिपाओ हे भीरु! भय को त्याग दो और इस दास पर उपकार की कृपा करो। हे भीरु! यह समय के अनुसार उचित नहीं समझता हूँ तुम भय को त्याग दो मैं हाथ जोड़कर याचना करता हूँ कि समय के अनुसार मेरी बात को समझो।।१-१०।।

तुम रूप की उपमा से रहित सती हो, इसलिये गान्धर्व विवाह द्वारा मेरे ऊपर अनुग्रह करो। इसके बाद भीमवंशी वीर प्रद्युम्न मणि में स्थित अग्नि को जगा कर समय के अनुसार मन्त्रों का उच्चारण करते हुए उस अग्नि में हवन किये और श्रेष्ठ आभूषणों से भूषित प्रभावती के हाथ को पकड़ कर मणि स्थित अग्नि की प्रदक्षिणा किये। जगत् के शुभ-अशुभ कर्मों के साथी

तेजस्वी भगवान् अग्निदेव प्रद्युम्न को श्रीकृष्ण-पुत्र समझ कर प्रज्वलित हो गये। यदुनन्दन वीर ने ब्राह्मणों की दक्षिणा का मानसिक संकल्प कर हंसी से बोले कि तुम द्वार पर बैठो और हम दोनों की रक्षा करो। प्रणाम कर हंसी के चले जाने पर प्रद्युम्न उस काम-विह्वला, सुन्दरनेत्रा का दाहिना हाथ पकड़ कर श्रेष्ठ पलँग पर लिवा गये और उसको अपनी जाँघों पर ही बैठा कर बार-बार सान्त्वना देकर अपने मुख की वायु से वासित करते हुए धीरे-धीरे उसके कपोल का चुम्बन करने लगे। जैसे भ्रमर कमल के रस का पान करता है वैसे ही उसके अधरोष्ठ का पान करने लगे रति क्रिया में निपुण प्रद्युम्न क्रमशः इसी प्रकार उस सुश्रोणि का अलिङ्गन करने लगे। रति कार्य में दक्ष प्रद्युम्न ने एकान्त में उससे रमण किया उन्होंने नवोढा होने से अपकृष्ट प्रयोजन का अच्छे ढंग से आचरण किया, उसको उद्विग्न नहीं किया, समर्थी श्रीकृष्ण-पुत्र ने उसके साथ रमण करते हुए रात्रि बिता दिया। प्रभावती की अनिच्छा से किसी प्रकार छोड़े गये प्रद्युम्न अरुणोदय के समय नट जहाँ रहते थे उस भवन में चले गये।।११-२०।।

भीमवंशी के वंशज देवताओं की कार्यसिद्धि के लिये मन से प्रिय रूपवाली कान्ता प्रभावती का स्मरण करते हुए वहाँ रहने लगे। इन्द्र और केशव द्वारा वज्रनाभ के त्रैलोक्य विजय के उद्योग के प्रति कहे गये वचन की प्रतीक्षा करते हुए रहने लगे। अर्थात् हे राजन्! जब तक कि कश्यप मुनि का यज्ञ समाप्त हो तब तक तुम महात्मा अपने को गुप्त रख कर समय की प्रतिक्षा करो। त्रैलोक्य विजय के उद्योग के पहले महात्मा देवताओं और असुरों में विरोध न हो जाय इस बात का प्रयत्न करते हुए और काल की प्रतिक्षा कर रहते हुए धर्मचारी उन बुद्धिमान् यादवों को सभी प्राणियों के मन को हरण करने वाला रम्य वर्षाकाल आ गया। मन के समान वेग वाले हंस महात्मा; कुमारों का प्रतिदिन का समाचार इन्द्र और केशव को दिया करते थे। महातेजस्वी प्रद्युम्न धार्तराष्ट्र नामक हंसों से अभिरक्षित हो प्रत्येक रात्रि में प्रभावती के साथ रमण करने लगे। हे नृप! इन्द्र की आज्ञा से वज्रपुर में वास करते हुए हंसों ने उस पुरी को नटों से व्याप्त कर दिया पर काल से विमोहित

वज्रनाभ को इस बात का पता न चला। हंसों के समूह से अभिरक्षित वीर प्रद्युम्न दिन में भी प्रभावती के महल में रहने लगे। माया द्वारा आधे शरीर से नटालय में रहते थे और आधे शरीर से हे कुरुवंशी! वे प्रभावती का सेवन करते थे।।२१-३०।।

इन महात्मा नटों की विद्वत्ता, नम्रता, विनय, शील, चतुरता तथा सरलता को देखकर इनसे असुर प्रेम करने लगे तथा यादव नारियों के रूप, विलास, गन्ध, सुन्दर भाषण और श्रेष्ठता को देखकर असुर स्त्रियाँ यादव स्त्रियों से स्नेह करने लगीं। वज्रनाभ का एक भाई सुनाभ नामक विख्यात था उस राजा को रूप और गुण से युक्त दो कन्यायें थीं। एक का नाम चन्द्रवती तथा दूसरे का नाम गुणवती था वे दोनों प्रभावती के भवन में प्रतिदिन जाया करती थीं। उन्होंने वहाँ प्रभावती को रति में आसक्त देखा तो अपनी विश्वासी बहिन से पूछा। तो प्रभावती ने उत्तर दिया कि मैंने एक ऐसी विद्या को सीखा है जो रति करने के लिये इच्छानुसार पति को ला देती है और सौभाग्य को सदा के लिये प्रदान कर देती है। वह विद्या देवता तथा दानव किसी को भी शीघ्र वश में कर लेती है उसी विद्या के द्वारा में बुद्धिमान् इन प्रिय देवपुत्र के साथ रमण करती हूँ। देखो मेरे प्रभाव से यह प्रद्युम्न मेरे सुप्रिय बन गये हैं तब रूप और यौवन की सम्पदा से युक्त प्रद्युम्न को देखकर वे विस्मित हो गईं। फिर सुन्दर हँसी वाली वरारोहा प्रभावती प्राप्त समय के अनुसार अपनी बहिनों से बोली देवता धर्म में रत रहते हैं तथा महासुर पाखण्ड में रत रहते हैं, देवता तपस्या में प्रसन्न रहते हैं और महासुर सुख में प्रसन्न रहते हैं।।३१-४०।।

देवता नित्य सत्य में रत रहते हैं और महासुर झूठ में रत रहते हैं, जहाँ पर सत्य, धर्म तथा तप होता है वहाँ निश्चित विजय होती है। यदि तुम लोग देवपुत्रों का वरण करना चाहो तो मैं पति लाने वाली विद्या को सिखा दूँ, उसके प्रभाव से तुम लोग भी उचित पतियों को प्राप्त कर लोगी। ऐसा सुन वे बहिनें प्रसन्नता से चारुलोचना प्रभावती से बोलीं कि ऐसा हम लोगों को भी स्वीकार है, तब सत्पति को मानने वाली प्रभावती प्रद्युम्न से इस कार्य को पूछा किसको बुलाया जाय। वे रूप और सुन्दर शील से युक्त तथा रण कर्म शूर गद तथा

साम्ब को बता दिये। प्रभावती अपनी बहिनों से कहने लगी कि पहले मेरे पर प्रसन्न होकर दुर्वासा मुनि ने इस विद्या को मुझे दिया था और प्रसन्न हो कहा था तुम्हारा सौभाग्य अचल रहेगा तथा तुम बराबर कन्या की ही भाँति रहोगी। फिर उन्होंने कहा था कि देवता, दानव तथा यक्षादिकों में तुम जिसका ध्यान करोगी वही तुम्हारा पति हो जायगा, मैंने इन्हीं वीर की इच्छा की थी। इसलिये तुम दोनों इस विद्या को ग्रहण कर लो तो तुम दोनों का प्रिय से संगम हो जायगा, इसके बाद बहिन प्रभावती के मुख से उन दोनों ने प्रसन्न हो उस विद्या को ग्रहण कर लिया। उन दोनों शुभाङ्गियों ने उस विद्या का अभ्यास कर गद और साम्ब का ध्यान किया तब वे भीमवंशी गद-साम्ब प्रद्युम्न के साथ भवन में प्रविष्ट हो गये। हे नृप! मायावी कृष्ण-पुत्र की माया द्वारा वे वीर छिपे हुए थे, गन्धर्व विवाह की विधि से वे शत्रु-बलनाशक तथा सज्जनों के प्रिय मन्त्रपूर्वक पाणिग्रहण किये, गद ने चन्द्रवती के साथ और केशव-पुत्र साम्ब ने गुणवती के साथ विवाह किया। तब वे यादवश्रेष्ठ इन्द्र और श्रीकृष्ण की अनुज्ञा की प्रतिक्षा करते हुए असुर कन्याओं के साथ रमण करने लगे।।४१-५१।।



अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः।।९५।।

वैशम्पायनजी बोले कि प्रद्युम्नजी भाद्रपद के महीने में मेघ समूहों से व्याप्त आकाश को देखकर सुन्दर तथा विशाल नेत्रों वाली एवं पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाली प्रभावती से बोले। हे श्रेष्ठ शरीर वाली तथा निरन्तर सुन्दर जाँघों वाली! तुम्हारे मुख की आभा के समान सुन्दर बिम्ब वाला चन्द्रमा तुम्हारे बाल समूहों के समान मेघों से ढक जाने के कारण दिखाई नहीं दे रहा है। बादलों के बीच स्थित बिजली के समान स्वर्ण के सुन्दर आभरणों से युक्त तुम दिखाई पड़ रही हो, हे श्रेष्ठ अङ्गों वाली! तुम्हारे श्रेष्ठ यष्टि प्रदेश की भाँति ये मेघ गर्जते हुए जल की धारायें छोड़ रहे हैं अर्थात् वर्षा कर रहे हैं। हे सुभ्रु! मेघों कें प्रदेश आकाश में उड़ती हुई बगुलों की पंक्ति तुम्हारी दन्तपंक्ति की भाँति शोभित हो रही है, नदियों में कमलों को डुबा कर शीघ्र बहने वाले जल

नहीं शोभा पा रहे हैं। बगुलों की पंक्ति रूपी श्वेत दन्त वाले ये मेघ वायु के वशीभूत हो बन में सफेद दाँतों वाले हाथियों के समान आपस में लड़ने के लिये प्रवृत्त हैं। हे श्रेष्ठ शरीर वाली कान्ते! तुम्हारे मुख पर स्थित अपाङ्ग की भाँति तीन वर्ण लाल, पीला तथा हरा इन्द्रधनुष आकाश तथा मेघ को विभूषित करता है तथा कामो जनों के हृदय में हर्ष उत्पन्न करता है। हे सुश्रोणि! मेघों को गर्जते हुए देख प्रसन्न हो स्वयं भी बोलते तथा आदर से पुच्छभार को उठा मोरिनियों को अच्छे लगने वाले नाचते हुए मयूरों को देखकर अन्य मयूरों के समूह चन्द्रमा के समान सफेद भवनों पर शोभा पा रहे हैं और मुहूर्त मात्र अपने अति सुन्दर रूप की शोभा दिखा छोटे जलाशयों के किनारों पर उतरते हुए भींगे पंख वाले मयूर वृक्षो के ऊकर क्षण भर के लिये चूड़ामणि के समान झाँकी दिखा भूमि पर उतर जाते हैं वे सुन्दर शरीर वाले शंका करते हुए नवीन घासों वाली भूमि पर बैठते हैं। वर्षा के बीच से निकला हुआ सुखकर वायु गीले चन्दन के समान शीतल हो कदम्ब, सर्ज तथा अर्जुन के पुष्पों के गन्ध को ले कामोद्दीपक बन कर बह रहा है।।१-१०।।

हे सुन्दर शरीर वाली! यह वायु रति के परिश्रम से उत्पन्न पसीने को नाश करने वाला तथा नवीन मेघों को इधर-उधर ले जाने वाला है, यदि इस प्रकार का वायु न चले तो हमारे लिये वर्षा का समय सुखकर नहीं प्रतीत होगा। इस प्रकार के प्रिय संगम में रति के अन्त में यदि रति के श्रम से उत्पन्न पसीने को हरण करने वाला वायु बहता है और सुगन्ध फैलाता है तो इससे बढ़कर इस लोक में कौन सुख है। बड़ी-बड़ी नदियों के किनारों को जल में डूबा हुआ देख कर सारसों सहित क्रौञ्च पक्षी-समूहों को अनुयायी बना कर मानसरोवर में वास की लालच से श्रम को प्राप्त हो गये अर्थात् चले गये। हे सुन्दर तथा विशालनेत्रे! चकवा की भाँति बोलेने वाले सारसों और हंसों के चले जाने से शोभा रहित नदियाँ तथा सरोवर अच्छे नहीं लग रहे हैं। जगत् के नाथ एवं इन्द्र के छोटे भाई विष्णु को सर्प की शय्या पर सुन्दर शयन करते हुए देख कर श्रेष्ठ समय का ज्ञान रखने वाली निद्रा सुन्दर रूप वाली लक्ष्मी को प्रणाम कर विष्णु के समीप निश्चय रूप से चली गई है। हे कमल के

समान विशाल नेत्रों वाली! भगवान् उपेन्द्र के सोने पर मेघरूप वस्त्रों से ढका हुआ कमल की आभा को प्राप्त करने वाला चन्द्रमा आज श्रीकृष्ण के मुख का अनुकरण कर रहा है। श्रीकृष्ण से प्रसाद की इच्छा करने वाली सभी ऋतुएँ कदम्ब, नीप, अर्जुन तथ केतकी की मालायें तथा अन्य पुष्पों को श्रीकृष्ण के पास ले जा रही हैं। विष से युक्त मुख वाले सर्प विचरण करते हुए भ्रमरों द्वारा रसपान किये गये पुष्पों तथा अन्य वृक्षों का स्पर्श कर मनुष्यों को अत्यन्त आश्चर्यित कर रहे हैं। जल के भार से गम्भीर मेघों से व्याप्त आकाश तुम्हारे सुन्दर मुख, स्तन तथा जाघों को देख कर भूमि पर गिरता हुआ सा ज्ञात हो रहा है। हे निर्मल अङ्गयष्टे! जगत् के हितार्थ फसलों को बढ़ाने के लिये वर्षने वाले तथा बगुलों की माला के समान बँधी पाँती से सुन्दर लगाने वाले मेघ के समूहों को देखो।।११-२०।।

जैसे मन की प्रसन्नता के लिये राजा अपने हाथियों से बनैले बलवान् हाथियों का युद्ध कराता है वैसे ही जलावलम्बी मेघ समूहों को इधर-उधर खींचने वाला वायु मेघों से मघों का युद्ध करा रहा है। चातक तथा मयूरों एवं मेघ प्रिय पक्षियों के हर्ष को उत्पन्न करने वाले मेघ पवित्र और निर्मल एवं वायु से सुगन्धित जल की वर्षा कर रहे हैं। जैसे सत्य तथा धर्मप्रिय ब्राह्मण अच्छे शिष्यों से घिरा होकर वेद के मंत्रों का पाठ करता है वैसे ही आठ माह सोने वाला मेढकों का समूह अपनी मेढकियों के साथ बोल रहा है। यह बरसात का समय बड़ा गुणकारी है जो मेघों की गर्जना से डरे हुओं को आलिङ्गन करता हुआ शय्या के समय के बिना भी प्रियाओं के काम को बढ़ा देता है। हे उदार वयवर्णशीले! इस वर्षाकाल का एक यही मुझे दोष जान पड़ता है कि जो तुम्हारे मुख के समान चन्द्रमा मेघ रूपी ग्रह से ढका होने के कारण नहीं दिखाई पड़ता है। जिस समय बादलों के बीच से जगत् का दीपक चन्द्रमा दिखाई पड़ने लगता है उस समय लोग परदेश से लौट कर आये हुए बन्धु के समान प्रसन्न होकर देखने लगते हैं। हे भीरु! प्रिय से रहित कामिनियों का विलाप-साक्षी चन्द्रमा जिस समय निकलता है उस समय परदेश गये पति वाली कामिनियों के नेत्र वैसे ही प्रफुल्लित होते हैं जैसे कि अपने प्रिय को देख

कर ऐसा मुझे ज्ञात होता है। जिनके पति समीप आ गये हैं ऐसे कामिनियों के लिये नेत्रोत्सव के समान और प्रिय से रहित कामिनियों के लिये अग्नि के तुल्य है, चन्द्रमा एक ही रूप से वराङ्गनाओं को प्रिय तथा अप्रिय दोनों हो जाता है। तुम्हारे पिता के पुर में चन्द्रमा के बिना भी तुम्हारे चन्द्रमा के समान मुख की गौर वर्ण वाली किरणों की प्रभा उपस्थित है, इसीलिये चन्द्रमा के गुण और अवगुणों को विशेष रूप से मान्यता नहीं देता हूँ न प्रशंसा करता हूँ। स्तुति करने योग्य जिस चन्द्रमा ने अन्य पुण्यशीलों द्वारा तप से भी दुर्लभ ब्राह्मणों के राज्य को प्राप्त किया है, उस चन्द्रमा के पवमान संज्ञक उदार गुण को यज्ञ में आये हुए ब्राह्मण लोग गाते हैं।।२१-३०।।

जिस बुध के अतुल पराक्रमी राजा पुरुरवा पुत्र हैं उसके पिता स्तुत्य हैं, प्राण की अग्नि में ज्ञान द्वारा हवन करने वाले जिन पुरूरवा ने अग्नि को उत्पन्न किया अर्थात् जिन पुरूरवा द्वारा गन्धर्व लोक से लाते समय बीच मार्ग में अग्नि नष्ट हो गया उसी अग्नि को ढूँढ़ते हुए शमी के गर्भ में देखा और उससे अग्नि लेकर त्रेता के कर्म को प्रचलित किया। शंकर जी शिर में अग्नि धारण करते हैं उसी प्रकार अग्नि धारण करने से पुरूरवा भवात्मा थे। जिस चन्द्रमा ने स्वयं वा पौत्र की आत्मा से अप्सराओं में श्रेष्ठ उर्वशी की कामना की थी हे श्रेष्ठगात्रे! उस अमृतमय चन्द्रमा के सम्पूर्ण देह को पहले भयंकर मुनि पी गये थे। पुनः जिसके वंश में राजा आयु हुए जो यज्ञ की परम्परा से स्वर्ग में अग्नि की भाँति पूजित हो रहे हैं पुनः जिसके वंश में वीर राजा नहुष उत्पन्न हुए जो स्वर्ग में जाकर इन्द्र पद को प्राप्त किये। हे सुभ्रु! दक्ष की पुत्रियों से घिरे जो चन्द्रमा हैं उन्हीं के वंश में जगत् के प्रणेता देवताओं के भी देवता हरि देवताओं के कार्य के लिये भीमवंशियों में श्रेष्ठ वीर होकर अवतरित हुए हैं। जिस चन्द्रवंश में चन्द्रवंश को प्रकाशित करने वाले दीपक की भाँति महात्मा राजा वसु हुए थे, जो अपने कर्मों से इन्द्र के समान प्रभावशाली होकर चक्रवर्ती राजा हुए। इस चन्द्रवंश के प्रमुख राजा यदु हुए जो इस पृथ्वी पर अधिराज पद को प्राप्त किये, जिस राजा यदु के कुल में इन्द्र के समान वैभवशाली वीर राजा भोज हुए थे। उस वंश में कोई राजा कपटी, नास्तिक,

कृतघ्न, श्रद्धारहित, कायर अथवा वीरता से रहित नहीं हुआ। हे कमलाक्षि! उसी वंश में गुणों की धामभूत तुम प्रशंसनीया वधू हुई हो इसलिये हे शिखर के समान दाँतों वाली! सज्जनों के प्रिय उस वंश के स्वामी लोक तथा देवताओं के धाम स्वयं प्रकट होने वाले गरूड़ध्वज अपने श्वसुर पुरुषोत्तम को प्रणाम करो।।३१-३८।।



अथ षट्नवतितमोऽध्यायः।।९६।।

वैशम्पायनजी बोले–अमित तेजस्वी कश्यप मुनि का यज्ञ समाप्त हो जाने पर अमित पराक्रमी देवता तथा असुर अपने-अपने स्थान को चले गये। यज्ञ समाप्त हो जाने पर त्रैलोक्य की विजयेच्छा से वज्रनाभ कश्यप के पास गया तब कश्यप ने वज्रनाभ से कहा कि–हे वज्रनाभ! यदि हमारी बातें सुनने योग्य हों तो तुम सुनो मैं तो यही कहता हूँ कि हे पुत्र! तुम अपने सज्जनों के सहित वज्रपुर में वास करो अर्थात् त्रैलोक्य विजयेच्छा को त्याग दो। क्योंकि इन्द्र तुम से तप में अधिक है और स्वभावतः तुमसे बलवान् तथा कृतज्ञ एवं गुणों से भी श्रेष्ठ और देवताओं का स्वामी तथा तुमसे अवस्था में भी बड़ा है। वह सम्पूर्ण जगत् का राजा इन्द्र पद का पात्रभूत है और सज्जनों की गति तथा सभी प्राणियों के हित में रत है इसीलिये उसने तीनों लोकों का राज्य प्राप्त किया है। हे वज्रनाभ! वह तुम्हारे द्वारा जीतने योग्य नहीं है। तुम मारे जाओगे जैसे सर्प को पैर से मारने वाला तत्काल ही विनष्ट हो जाता है। हे भारत! जैसे काल के पाश से बँधा पुरुष मरने की इच्छा से औषध नहीं खाता वैसे ही कश्यप के औषधि स्वरूप बचन वज्रनाभ को अच्छे नहीं लगे। वह दुर्बुद्धि लोकभावन कश्यप को प्रणाम कर चला गया और वह दुरासद त्रैलोक्य विजय करने का उपाय करने लगा। हे विशाम्पते! स्वजाति के असुर योद्धों को और बहुत से मित्रों को बुला कर पहले स्वर्ग को जीतने की इच्छा से यात्रा करने को उद्यत होने लगा। इसी बीच महाबली श्रीकृष्ण और इन्द्र ने वज्रनाभ के वध के प्रति सन्देश देकर हंसों को भेजा।।१-१०।।

तब आये हुए हंसों की बात सुन कर महाबली महात्मा प्रमुख यदुवंशी मन्त्रणा कर चिन्ता को प्राप्त हो गये। वे कहने लगे कि प्रद्युम्न के द्वारा वज्रनाभ मार डालने योग्य है यह बात संशय रहित है परन्तु वज्रनाभ और उसके भाई सुनाभ की कन्यायें सर्वभावेन भक्ति से यदुवंशियों की स्त्रियाँ बन गई हैं और सभी गर्भवती हो गई हैं तथा उनका प्रसवकाल भी सन्निकट आ गया है तो भला ऐसे समय में दूसरा कोई कार्य कैसे किया जायेगा। इस प्रकार मंत्रणा कर इस बात को महाबली यादवों ने हंसों से कहा कि तुम यह सभी बातें इन्द्र तथा श्रीकृष्ण से जाकर कहो। तब हसों ने जाकर सब वृत्तान्त इन्द्र तथा श्रीकृष्ण से कहा हे प्रभो! श्रीकृष्ण और इन्द्र ने यह सन्देश दिया कि इस बात से डरो मत। इच्छानुसार रूप धारण करने वाले गुणों से प्रशंसनीय पुत्र उत्पन्न होंगे, वे अनिन्दित पुत्र गर्भ में ही अङ्गों सहित वेदों को जान लेंगे और वे भविष्य की बातों तथा विविध प्रकार की अस्त्र विद्या को जानेंगे तथा वे उत्पन्न होते ही सुन्दर पण्डित हो युवा हो जायेंगे। हे विभो! ऐसा कहने पर वे हंस फिर वज्रपुर को चले गये और इन्द्र तथा केशव का कहना भीमवंशियों से कहा हे भारत! इसके बाद पिता प्रद्युम्न के ही सदृश पुत्र को प्रभावती ने उत्पन्न किया वह उत्पन्न होते ही युवा तथा सभी ज्ञानों का ज्ञाता हो गया। हे नृप! एक मास बीत जाने पर चन्द्रवती देवी ने पिता गद के ही सदृश चन्द्रप्रभ नामक पुत्र को उत्पन्न किया।।११-२०।।

हे भारत! वह भी तत्काल युवावस्था को प्राप्त हो सभी बातों का ज्ञाता हो गया; इसी प्रकार अनिन्दिता गुणवती ने गुणवान् पुत्र उत्पन्न किया। इन्द्र और केशव के प्रसाद से वे दोनों तत्काल युवा हो गये तथा सम्पूर्ण शास्त्रों के पण्डित युद्ध को बढ़ाने वाले हो गये। इन्द्र और उपेन्द्र की इच्छा से बढ़ते हुए वे यदुनन्दन महल की छत पर दिखाई पड़ने लगे। अन्यथा नहीं ऐसा समझिये। तब आकाश भाग के रक्षक दैत्य चकित हो स्वर्गविजय की इच्छा वाले वीर वज्रनाभ से इस बात का निवेदन किये। ऐसा सुन कर महासुर वज्रनाभ ने दैत्यों से कहा कि ये मेरे गृह को नष्ट करने वाले हैं इसलिये वध करने के लिये इन सभी को पकड़ लो। हे कुरुकुल को वहन करने वाले! इसके बाद बुद्धिमान्

असुरेन्द्र वज्रनाभ ने सेना को आज्ञा दे दी तब सैनिकों ने सम्पूर्ण दिशाओं को घेर लिया। असुरेन्द्र वज्रनाभ की आज्ञा से शत्रु पर शासन करने वाले असुर शीघ्र पकड़ो, मार डालो ऐसा चारों ओर कहने लगे। असुरों की ऐसी बातें सुन पुत्र वत्सला मातायें दुःखित हो रुदन करने लगीं तब रुदन करती हुई उन स्त्रियों से प्रद्युम्न ने कहा कि तुम लोग हम लोगों के जीते जी किसी बात का भय न करो ये दैत्य हम लोगों का क्या बिगाड़ कर सकते हैं तुम लोगों का सर्वथा कल्याण होगा। फिर प्रद्युम्न ने विपत्ति में पड़ी प्रभावती से कहा कि अब तो संग्राम का समय उपस्थित हो गया है क्योंकि तुम्हारे पिता हाथ में गदा लेकर तथा अन्यान्य अस्त्रों को ग्रहण कर, तुम्हारे चाचा, भाई और जाति के लोग एवं अन्य वीर लड़ने को खड़े हैं। ये सभी तुम्हारे सर्वथा पूज्य और माननीय हैं।।२१-३०।।

तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपनी बहनों से भी पूछ लो क्योंकि यह बड़ा कठिन समय उपस्थित हो गया है क्योंकि मरण-व्यथा को सहन करने वालों के युद्ध करने पर मरण अथवा विजय दो में एक निश्चित होता है। ये दानवेन्द्र वज्रनाभ इत्यादि हम लोगों के वध की इच्छा से युद्ध अवश्य करेंगे तो बताओ कि तुम्हारी आज्ञा के अनुसार बर्ताव करने वाले हम लोगों को अब क्या करना चाहिये। तब रोती हुई प्रभावती अँगुली को शिर पर रख तथा जानुओं से पृथ्वी पर गिर कर प्रद्युम्न से बोली। हे शत्रुनाशक! आप शस्त्र को ग्रहण कर अपनी आत्मा की रक्षा करें क्योंकि हे यदुनन्दन! आप जीवित रहने पर ही अपने पुत्रों तथा अपनी स्त्रियों की रक्षा कर सकेंगे। हे नरश्रेष्ठ! हे मानद! हे अरिमर्दन! आप श्रेष्ठ रुक्मिणी और अनिरुद्ध का स्मरण कर इस विपत्ति से अपनी आत्मा को मुक्त कीजिये। बुद्धिमान् मुनि दुर्वासा ने मुझे वर दिया था कि वैधव्य से रहित और प्रसन्न रहोगी तथा जीवित पुत्र वाली होओगी। हे इन्द्र के छोटे भाई के पुत्र! सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी दुर्वासा के वाक्य का मुझे विश्वास है वह अन्यथा नहीं होगा। ऐसा कहकर वह मनःस्विनी वर को वरण करने वाली प्रभावती खड्ग ले उसे अच्छी तरह साफ कर प्रद्युम्न को दिया और कहा कि विजय करो। उस धर्मात्मा प्रद्युम्न ने अन्तरात्मा से प्रसन्न हो प्रिया

के द्वारा दिये खड्ग को शिर से प्रणाम कर ले लिया।।३१-४०।।

चन्द्रवती ने भी तीक्ष्ण तलवार प्रसन्नता से गद को दिया उसी समय गुणवती ने भी महात्मा साम्ब के लिये तलवार दी। प्रद्युम्न ने प्रणाम करने वाले हंसकेतु से कहा तुम साम्ब सहित यादवों के साथ रहकर यही युद्ध करो। हे अरिंदम! मैं अकेले आकाश तथा सभी दिशाओं में युद्ध करूँगा ऐसा कहकर मायावियों में श्रेष्ठ प्रद्युम्न माया के द्वारा एक रथ का निर्माण किये। हे कुरुवंशी! सभी नागों में उत्तम अनन्त रूप धारण करने वाले हजार शिर के नाग को अपना सारथी नियुक्त किया। वे प्रद्युम्न उस प्रमुख रथ से प्रभावती को प्रसन्न करते हुए तृण में अग्नि के समान असुरों की सेना में विचरने लगे और सर्प के समान विषैले तथा अर्धचन्द्र के तुल्य बाणों एवं नोकीले तथा मोटी नोक वाले बाणों से दैत्यों को प्रद्युम्न पीड़ित करने लगे। मदमत्त असुर भी निश्चित विजय की आशा कर शस्त्रों से इधर-उधर श्रीकृष्ण-पुत्र कमलनेत्र प्रद्युम्न को मारने लगे। इधर प्रद्युम्नजी किसी के बाजूबन्द और कंकण से चमकते हुए बाहुओं को काटने लगे और किसी के कुण्डल सहित शिर को काटने लगे। इस प्रकार अति तेजस्वी प्रद्युम्न द्वारा छुरा के समान तीक्ष्ण बाणों से काटे गये असुरों के शिरों-धड़ों तथा शरीर के टुकड़ों से रणभूमि पट गई। उस समय देवताओं सहित तथा समितिंजय के साथ इन्द्र प्रसन्न हो दैत्यों के साथ भीमवंशियों का युद्ध देख रहे थे।।४१-५०।।

गद तथा साम्ब से जो दैत्य युद्ध करने आये थे वे सभी मृत्यु के मुख में वैसे ही चले जाते थे कि जैसे जलचर समुद्र में चले जाते हैं। उस समय के विषम युद्ध को देख देवपति हरि ने गद के लिये अपना रथ भेज दिया और मातलि के पुत्र सुवर्चा को रथ हाँकने का आदेश दे दिया और इन्द्र ने साम्ब के लिये अपना ऐरावत हाथी भेज दिया। ऐरावत को नियन्त्रण में रखने के लिये प्रवर को नियुक्त कर दिया तथा प्रद्युम्न की सहायता के लिये जयन्त को भेज दिया। देवताओं के अध्यक्ष लोकभावन ब्रह्मा को सूचना देकर देव-पुत्र जयन्त तथा ब्राह्मण प्रवर को मातलि-पुत्र सुवर्चा को एवं ऐरावत हाथी को सब कर्मों में विधि को जानने वाले इन्द्र ने भेज दिया। इसका तप क्षीण हो

गया है यह दुष्टबुद्धि यादवों के द्वारा वध के योग्य हो गया है, सभी लोग इच्छानुसार सब जगह प्रवेश करने लगे। महाबली प्रद्युम्न और जयन्त राजमहल की छत पर चढ़ गये और पराक्रम कर बाणजालों से असुरों को नष्ट करने लगे। उस समय दुर्वार्य एवं रणदुर्जय कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न ने गद से कहा इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र ने तुम्हारे लिये यह रथ भेजा है। यह घोड़ों से जुता है तथा महाबली मातलि-सुत सुवर्चा इसका सारथी है। प्रवर जिस पर चढ़े हुए हैं यह ऐरावत हाथी साम्ब के लिये है।।५१-६०।।

आज द्वारका में रुद्र की महापूजा है उसके समाप्त हो जाने पर कल महाबली हृषीकेश यहाँ आयेंगे। तो उनकी आज्ञा से त्रैलोक्य-विजय के प्रति उद्योग करने वाले पापी वज्रनाभ का बान्धवों सहित वध करेंगे। और ऐसा विधान करेंगे कि यह पुत्र सहित इन्द्र को नहीं जीत सकेगा। मेरे विचार से इस समय प्रमाद से रहित रहना ही कर्त्तव्य है। सभी बुद्धिमान् मनुष्यों को स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये स्त्री का अपमान मरने से भी अधिक कष्टदायी होता है। महाबली भीमवंशी प्रद्युम्न ने गद और साम्ब को ऐसा आदेश दे दिव्य रूप वाली माया से करोड़ों प्रद्युम्न की रचना कर दी। और दैत्यों द्वारा फैलाये गये दुःसाध्य अन्धकार को नष्ट कर दिया तब रिपुमर्दन प्रद्युम्न को देख कर देवराज इन्द्र प्रसन्न हो गये। और सभी प्राणी बहुसंख्यक प्रद्युम्न को देख तथा सभी शत्रु अपनी अन्तरात्मा में कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न को वर्तमान रूप में देखने लगे वे उनको क्षेत्रज्ञ की भाँति समझने लगे। इस प्रकार रुक्मिणी-पुत्र को युद्ध करते वह रात्रि व्यतीत हो गयी उन अति तेजस्वी ने तीन भाग असुरों को मार गिराया। जबतक विष्णुपदी के जल में जयन्त सन्ध्योपासन करते थे तब तक कृष्ण-पुत्र दैत्यों को युद्ध कराते रहे और जब तक आकाश गंगा में प्रद्युम्न सन्ध्योपासन करते थे तबतक महाबल जयन्त दैत्यों को युद्ध कराते रहे।।६१-७०।।



अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः।।९७।।

वैशम्पायनजी बोले-इसके पश्चात् जगत्-चक्षु सूर्य के क्षण भर उदित

हो जाने पर देव हरि; सर्प-शत्रु गरुड़ पर चढ़ कर प्रकट हो गये। हे कुरुनन्दन! हंस, वायु तथा मन के समान वेग से चलने वाले गरुड़ आकाश में इन्द्र के समीप स्थित हो गये। यथाचित इन्द्र के सन्निकट जाकर श्रीकृष्ण ने दैत्यों के भय को बढ़ाने वाला पाञ्चजन्य नामक शंख बजाया। उस शंख-ध्वनि को सुन कर शत्रु पक्ष के वीरों को मारने वाले प्रद्युम्न वहाँ चले गये तब केशव ने कहा कि शीघ्र वज्रनाभ को मारो। फिर कहा कि गरुड़ पर चढ़ कर जाओ ऐसा सुन वीर प्रद्युम्न ने इन्द्र तथा केशव को प्रणाम कर वैसा ही किया। हे भरतवंशी नृप! वह वीर प्रद्युम्न मन के समान तीव्र गति वाले गरुड़ पर चढ़ कर महासंग्राम मचाने वाले वज्रनाभ के समीप चले गये। सम्पूर्ण अस्त्र-विद्या को जानने वाले अनिन्दित वीर प्रद्युम्न रण के मोर्चे पर गरुड़ पर स्थित हो वज्रनाभ को मारने लगे। गरुड़ पर बैठे-बैठे महात्मा कृष्ण-पुत्र ने गदा से वज्रनाभ की छाती पर मारा। वह वीर दैत्य गदा के लगने से मूर्छित हो गया और चक्कर खा बहुत रुधिर वमन कर मुर्दे के समान हो गया। रणदुर्जय कृष्ण-पुत्र उसको आश्वासन देने लगे, चेतना प्राप्त कर वह वीर वज्रनाभ प्रद्युम्न से यह बोला कि।।१-१०।।

हे यादव! पराक्रम से आप मेरे प्रशंसनीय शत्रु हैं, इसलिये हे महाबल! आप स्थिर हो जाओ क्योंकि यह मेरे बदला लेने का समय है। इस प्रकार कह सैकड़ों मेघों के समान महा रण-नाद कर घन्टा सहित बहुत कण्टकों वाली गदा को वेग से छोड़ा। हे नृप! उस गदा से प्रद्युम्न के ललाट पर गहरा चोट लग गया और यदुनन्दन बहुत रुधिर वमन करते हुए मूर्छा को प्राप्त हो गये। रिपुनाशन भगवान् श्रीकृष्ण प्रद्युम्न को इस दशा में देख कर पुत्र को आश्वासन देने के लिये जल से उत्पन्न पाञ्चजन्य शंख को बजाये। पाञ्चजन्य के शब्द से आश्वासित उन महाबल को देख कर सभी लोक प्रसन्न हो गये विशेष रूप से इन्द्र और केशव प्रसन्न हुए। हे भारत! इसके बाद श्रीकृष्ण की इच्छा से छुरा के समान तीक्ष्ण नेमि से युक्त हजारों आरों वाला दैत्य कुलनाशक सुदर्शन चक्र प्रद्युम्न के हाथ में चला गया। हे भारत! तब अच्युत-पुत्र ने महात्मा सुरेन्द्र और श्रीकृष्ण को नमस्कार कर वज्रनाभ के वध के लिये उसको छोड़ दिया। दैत्यों

के देखते-देखते नारायण सुत द्वारा छोड़ा गया चक्र वज्रनाभ के धड़ से शिर को काट कर अलग कर दिया। भवन की छत पर भैमों को मारते हुए रणगर्वी तथा विजय का प्रयत्न करने वाले भयंकर सुनाभ को रणाङ्गण में गद ने मार डाला। समर के मध्य स्थित असुरों को अरिमर्दन साम्ब ने तीक्ष्ण बाणों द्वारा प्रेताधिप यमराज के भवन को पहुँचा दिया।।११-२०।।

महासुर वज्रनाभ के मारे जाने पर नारायण के भय से कातर हो निकुम्भ भी षट्पुर को चला गया। देव-शत्रु महासुर वज्रनाभ के मारे जाने पर इन्द्र और केशव वज्रपुर में उतर गये। और शत्रु पराजय में प्राप्त अशान्ति का शमन किया अर्थात् भैमों को शान्त किया और भय से कातर बालक तथा वृद्धों को सान्त्वना दिया। महाबली महात्मा इन्द्र तथा उपेन्द्र ने मंत्रणा कर उस समय बृहस्पति के मत का अनुसरण कर। हे नृप! वज्रनाभ के उस राज्य को चार भागों में विभक्त कर दिया और एक चौथाई राज्य जयन्त के पुत्र विजय को दे दिया। हे जनेश्वर! एक चौथाई प्रद्युम्न के पुत्र को तथा एक चौथाई रुक्मिणी-पुत्र साम्ब के पुत्र को और एक चौथाई गद के पुत्र चन्द्रप्रभ को दे दिया। हे विशाम्पते! इन्द्र और केशव ने प्रसन्न हो चार करोड़ से भी अधिक ग्राम तथा वज्रपुर के समान लम्बे-चौड़े हजारों शाखा नगरों को चार भागों में बाँट दिया। और फिर इन्द्र तथा केशव ने कम्बलों, मृग चर्मों, वस्त्रों तथा विविध प्रकार के रत्नों को चार भागों में बाँट दिया। हे नृप! इसके बाद देव दुन्दुभि को बजा विष्णुपदी के जल द्वारा इन्द्र की आज्ञा से वे वीर राज्य पद पर अभिषिक्त कर दिये गये। इन्द्र और माधव को आनन्द देने वाले वे महात्मा कुमार ऋषियों के समूह के सन्निकट स्वयं बुद्धिमान् इन्द्र और केशव द्वारा अभिषिक्त हुए थे।।२१-३०।।

जयन्त पुत्र बुद्धिमान् विजय की तो आकाश में गति प्रसिद्ध ही थी परन्तु मातृज गुण होने से अर्थात् असुर पुत्री के पुत्र होने से महात्मा माधवों की भी आकाश में गति थी। अभिषेक कर भगवान् इन्द्र ने जयन्त से कहा कि हे वीर! ये समितिंजय राजे तुम्हारे ही द्वारा रक्षा करने योग्य हैं। मेरे वंश का यहाँ एक राजा है। हे अनघ! तीन राजे केशव के वंश के हैं ये सभी मेरी आज्ञा

से सभी प्राणियों से अवध्य होंगे। आकाश में आने-जाने में सभी समर्थ होंगे और ये सभी स्वर्ग तथा भैमों से रक्षित रमणीक द्वारका में भी आ-जा सकेंगे। इनकी इच्छानुसार इन्हें दिग्गजों के वंश के हाथी और उच्चैश्वा वंश के घोड़े एवं त्वष्टा द्वारा बनाये गये रथों को दो। वीर साम्ब और गद को आकाश मार्ग से भैम रक्षित द्वारका जाने के लिये और पुनः यहाँ आकर पुत्रों को देखने के लिये ऐरावत हाथी के आकाशगामी पुत्र शत्रुंजय और रिपुंजय नामक हाथियों को दो। भगवान् देवराज पुरन्दर इस प्रकार का आदेश देकर स्वर्ग को चले गये और केशव भी द्वारका चले गये। छै महीने रहने के बाद राज्य सँभल जाने पर महाबली प्रद्युम्न, गद तथा साम्ब भी द्वारका चले गये। हे देव-तुल्य जनमेजयजी! मेरु के उत्तर निकट में ही वे राज्य आज भी वर्तमान हैं और यह जगत् जब तक रहेगा तब वे रहेंगे।।३१-४०।।

हे विभो! मौसल युद्ध से निवृत्त हो वृष्णि वंशियों के स्वर्ग चले जाने पर गद, प्रद्युम्न और साम्ब वज्रपुर को चले गये। हे जनेश्वर! लोककर्त्ता श्रीकृष्ण के प्रसाद से वे लोग वहाँ निवास कर अपने शुभ कर्मों के पुण्य से स्वर्ग को चले जाते और लौट आते तथा पुनः स्वर्ग को चले जाते हैं। धन, यश तथा आयु बढ़ाने वाला और शत्रुओं को नाश करने वाला यह हमने प्रद्युम्न का उत्तर काल कहा है। द्वैपायन व्यास जी का जैसा वचन है उसके अनुसार इसके सुनने से पुत्र-पौत्र, आरोग्य, धन तथा सम्पत्ति बढ़ती है और मनुष्य महान् यश को प्राप्त करता है।।४१-४४।।



अथ अष्टनवतितमोऽध्यायः ।।९८।।

वैशम्पायनजी बोले कि–गरुड़ पर चढ़े श्रीकृष्ण ने देव-भवन के समान चारों ओर से प्रतिध्वनित द्वारिकापुरी को देखा। मणि पर्व के यन्त्रों, क्रीड़ागृहों, प्रमुख उद्यानों और बनों तथा प्रमुख चौराहों को देखा। श्रीकृष्ण के द्वारका पहुँच जाने पर इन्द्र ने विश्वकर्मा को बुलाकर यह कहा कि। हे शिल्पकला जानने वालों में श्रेष्ठ! यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो

श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये पुनः द्वारकापुरी मनोहर बना दो। हे देवश्रेष्ठ! सैकड़ों उद्यानों से युक्त स्वर्ग के समान द्वारका को बना दो जैसी मेरी पुरी है वैसी ही द्वारका को कर दो। तीनों लोकों में जहाँ तुम रत्न देखो उसे लेकर शीघ्र द्वारकापुरी की रचना में लगा दो। क्योंकि श्रीकृष्ण सभी सुरकार्यों में निरन्तर उद्योगशील रहते हैं तथा वे महाबल घोर संग्राम को करते हैं इस इन्द्र के वचन से विश्वकर्मा द्वारकापुरी को जाकर। उस पुरी को चारों ओर से अलंकृत कर इन्द्र की अमरावती पुरी के समान बना दिये तब विश्वकर्मा के दिव्य अभिप्राय से अलंकृत उस पुरी के दाशार्हों के स्वामी गरुड़वाहन श्रीकृष्ण ने देखा। उस समय सब सम्पत्तियों से सम्पन्न प्रभु व्यापक नारायण द्वारका को देख कर प्रसन्न हो गये तथा उसमें प्रवेश करने के लिए उपक्रम किये। उन दाशार्हों ने विश्वकर्मा द्वारा द्वारका में; चित्रित देखने मे मनोहर वृक्ष युक्त वन खण्डों को देखा।।१-१०।।

कमल के वन खण्डों से युक्त किनारों वाली तथा हंसों से सेवित जल वाली गंगा और सिन्धु नदियों के समान बहने वाली खाइयों से घिरी हुई पुरी को देखा। सूर्य के समान महलों तक ऊँचे तथा चमकीले प्राकार से तथा अँटारियों के मस्तक पर सुवर्ण के कलशों से पुरी वैसे ही शोभ रही थी कि जैसे मेघ की मालाओं से आकाश शोभा पाता है। नन्दन तथा चैत्ररथ नामक वनों जैसे वनों से युक्त द्वारका वैसे ही सुन्दर लग रही थी जैसे मेघों से आकाश। वहाँ ऊँचे शिखरों और लम्बी-चौड़ी गुफा रूपी आँगनों से युक्त रैवत पर्वत भी शोभयमान हो रहा था पूर्व दिशा का द्वार मणि तथा सुवर्णमय तोरणों से लक्ष्मीमान् दिखाई पड़ रहा था। दक्षिण का द्वार लताओं से आच्छादित वेतों से शोभा पा रहा था और पश्चिम का अक्षय द्वार इन्द्रधनुष के समान रंग-बिरंगा शोभित था। हे पार्थिवश्रेष्ठ! उत्तर दिशाको मन्दराचल के समान सफेद वेणुमान पर्वत अत्यन्त विभूषित कर रहा था। चित्रक वन, पञ्चवर्ण वन, विशाल पांचजन्य वन तथा सर्वत्र्ऋतुक वन ये रैवतक पर्वत पर शोभा पा रहे थे। मेरु पर्वत के समान विशाल तथा लताओं से चारों ओर वेष्टित भानु वन तथा महान् पुष्पक वन शोभा पा रहा था। अक्षक, बीजक तथा मन्दार के वृक्षों से शोभित

तथा करवीर के वृक्षों की खान शतावर्त वन शोभ रहा था। विशाल चैत्ररथ वन तथा नन्दन वन शोभायमान हो रहा था और चारों ओर सुन्दर लगने वाले बाँसों से युक्त वन शोभ रहे थे।।११-२०।।

हे भारत! पूर्व दिशा में वैदूर्य मणि के पत्रों वाले कमलों से मन्दाकिनी तथा सुन्दर महानदी पुष्पकरिणी शोभ रही थी। विश्वकर्मा की प्रेरणा से केशव का प्रिय करने की इच्छा वाले बहुत से देवता तथा गन्धर्वों द्वारा भवनों के कंगूरे सजाये गये थे। पुण्यशलिला महानदी मन्दाकिनी पचासों, सैकड़ों और हजारों महामुखों से अर्थात् धराओं से द्वारका में प्रविष्ट हो वहाँ के निवासियों को प्रसन्न करती हुई चारों ओर बह रही थी। बिशाल-विशाल महलों तथा अगाध परिखाओं एवं श्रेष्ठ ऊँची चाहार दिवारियों से युक्त तथा श्वेत लेपनों वाली, नुकीले यंत्रों से और सुवर्ण की जालियों से भूषित महान्-महान् लौह चक्रों से युक्त द्वारका को श्रीकृष्णजी ने देखा। उसी पुरी में घंटियों से युक्त तथा ऊँचे झण्डों वाले आठ हजार रथ देवपुरी के समान खड़े थे। बत्तिस कोस चौड़ी और अड़तालिस कोस लम्बी तथा इसके दूने उपनिवेश शाखा नगरों वाली द्वारकापुरी को देखा। आठ बड़ी गलियों तथा सोलह चौराहों एवं समुद्र के एक मार्ग से घिरी तथा पुर निर्माण वेत्ता शुक्र द्वारा बसाई हुई पुरी को देखा। और युद्ध करने के उत्तम व्यूह मार्गों वाली तथा सात बड़े अन्य सड़कों वाली द्वारका पुरी थी जिसमें स्त्रियाँ भी युद्ध कर सकती थीं तो महारथी वृष्णिवंशियों की बात ही निराली है। यशस्वी दाशार्हों के लिये उस श्रेष्ठ पुरी में साक्षात् विश्वकर्मा ने विविध प्रकार के भवनों का निर्माण किया था।।२१-३०।।

मनुष्यों को हर्ष प्रदान करने वाली सुवर्ण तथा मणि की सीढ़ियों तथा भवनों के सुन्दर चौक एवं जोर से बोलने पर महाध्वनि से युक्त भवनों को देखकर देवकीनन्दन प्रसन्न हो गये। ऊँची पताका वाले चारों ओर पुष्प के बगीचों से युक्त भवन देखने में सुन्दर ज्ञात हो रहे थे। भवनों के कंगूरों का अग्रभाग सुवर्ण से निर्मित होने से चमक रहा था। ऐसे सुवर्ण पर्वत के समान ऊँचे रमणीय भवन शोभा पा रहे थे। श्वेत से भी श्वेत भवनों के सैकड़ों सुवर्ण कलश जटित शिखरों से रम्य तथा चित्र-विचित्र शिखरों वाले गृहों से व्याप्त

द्वारका पुरी पाँच रंगों वाले सुवर्णों से युक्त पुष्प वृष्टि की प्रभा वाले मेघ के समान निर्घोष करने वाले और नाना प्रकार के पर्वतों से। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित वनाग्नि के समान चमकने वाले आकाश स्पर्शी भवनों से। तथा महाभाग्यशाली दाशार्हों से वन के वृक्षों से द्वारकापुरी चमक रही थी तथा अनेक रूपधारी वासुदेव श्रीकृष्ण रूपी इन्द्र के मेघों से अलंकृत हो रही थी। सुन्दर मेधों से आच्छादित आकाश की भाँति द्वारिकापुरी दिखाई पड़ रही थी। श्रीकृष्ण के भवन को साक्षात् विश्वकर्मा अपने हाथों से निर्मित किये थे। श्रीकृष्ण जी का महा सम्पत्तिशाली अनुपम भवन सोलह कोस लम्बा और सोलह कोस चौड़ा दिखाई दे रहा था। वह श्रेष्ठ कोठों और अट्टालिकाओं से भरा तथा क्रीड़ा पर्वतों से युक्त था इन्द्र की आज्ञा से जिसको महाभाग विश्वकर्मा ने बनाया था।।३१-४०।।

सभी प्राणियों के मन को हरण करने वाला, स्वर्ण के समान चमकने वाला, मेरु पर्वत के समान ऊँचे स्वर्णमय शिखरों से युक्त काञ्चन नाम वाले विशाल भवन को श्रेष्ठ पटरानी रुक्मिणी के रहने के लिये विश्वकर्मा ने बनाया था। विचित्र मणियों की सीढ़ियों वाला श्वेत रंग का भोगवत् नाम का महल सत्यभामा के लिये बनाया था। प्रतिक्षण नवीन रहने वाला सूर्य की निर्मल कीरणों की आभा के सदृश तथा पताकाओं से अलंकृत जिसके चारों ओर बड़ी-बड़ी ध्वजायें लगी थीं ऐसे संजवन नाम के महल को जाम्बवती के लिये निर्माण किया था। वह सभी महलों में प्रमुख था तथा अपनी प्रभा से सभी भवनों को तिरस्कृत करने वाला सूर्य के समान था। इन दोनों भवनों के बीच में उदित सूर्य के रंग कैलास के शिखरों के समान ऊँचे शिखरों वाला एक दिव्य भवन विश्वकर्मा ने निर्मित किया था। वह स्वर्ण के समान चमकने वाला तथा प्रज्वलित अग्नि के वर्ण का था जो सागर की भाँति ऊपर को उमड़ रहा था। तथा जिसका नाम मेरु भवन था। उसमें गान्धारराज की कुलवती पुत्री सत्या को केशव ने बसाया था। कमल के समान रंग की महा प्रभा वाला पद्मकूल नाम का भवन जिसमें बड़े-बड़े कंगूरे थे उसमें भीमा का सुन्दर वास था। हे नृपश्रेष्ठ! सभी कामनाओं को पूर्ण कर देने वाले गुणों से युक्त सूर्यप्रभा

नाम के भवन में रहने के लिये शर्ङ्गधन्वा ने लक्ष्मणा को निर्देश किया था।।४१-५०।।

हे भारत! वैदूर्य मणि के समान हरी प्रभा वाला जिनको सभी लोग परम-भवन के नाम से जानते थे। वह देवर्षिगणों से पूजित तथा उन भवनों में भूषण स्वरूप भवन में वासुदेव की पटरानी मित्रविन्दा का वास स्थान हुआ। जिस भवन को विश्वकर्मा ने सब भवनों में प्रमुख तथा सुन्दर से भी अति सुन्दर बनाया था वह पर्वत के समान था तथा सभी देवताओं से प्रशंसित था जिसका नाम केतुमान विख्यात था उसमें वासुदेव की पटरानी सुवार्ता का वास स्थान हुआ। जहाँ पर भगवान् देवता तथा ब्राह्मणों की स्वागत करते थे वह विरजा नाम का भवन था उसको स्वयं विश्वकर्मा ने सम्पूर्ण रत्नों से जटित सुन्दर प्रभा वाला बनाया था वह शुभ भवन चार कोस लम्बे क्षेत्रफल में शोभा पा रहा था वह महात्मा केशव का उपासना गृह था। उसमें सभी सुवर्ण दण्ड वाले पताके लगे थे, वासुदेव के उस उपासना-सदन में जाने के लिये मार्ग का निर्देश करने वाले झण्डे गड़े थे। उस भवन में रत्नों की जालियाँ लगी थीं यदुसिंह श्रीकृष्ण वैजयन्त नामक महान् पर्वत को लाकर स्थापित किये थे। इन्द्रद्युम्न तालाब पर जो हंसकूट पर्वत का सात ताड़ ऊँचा तथा आधा योजन लम्बा शिखर था उस लोक-विख्यात शिखर को किन्नरों और महा नागों सहित अमित तेजस्वी श्रीकृष्ण सभी प्राणियों के देखते-देखते उठा लाये थे।।५१-६०।।

सूर्य के मार्ग में सुवर्णमय सैकड़ों हजारों कमलों से तथा विमानों से सेवित जो मेरु पर्वत का सुवर्णमय दिव्य तथा लोक विख्यात शिखर था उसको भी श्रीकृष्ण के लिये विश्वकर्मा उखाड़ लाये थे। सम्पूर्ण औषधियों से युक्त चमकते हुए उस पर्वत के अग्र भाग को श्रीकृष्ण के कार्य के लिये इन्द्र के वचन से विश्वकर्मा ले आये थे। और पारिजात वृक्ष को स्वयं श्रीकृष्ण ही हर कर वहाँ ही लाये थे। पारिजात लाते समय अद्भुतकर्मा श्रीकृष्ण का उत्तम वृक्ष की रक्षा करने वाले देवताओं के साथ वहाँ युद्ध हुआ था। वह पारिजात सैकड़ों प्रकार के कमलों से तथा सुवर्णमय विमानों से सेवित था; वासुदेव के लिये

विश्वकर्मा ने रत्न के फूल-फल वाले वृक्षों की रचना की थी। और कमलवन के जल खण्ड से युक्त तथा रत्न के सुगन्धित कमलों से युक्त एवं मणि और सुवर्ण की छोटी नौकाओं से व्याप्त बावलियाँ और तालाबों का निर्माण किये थे। जो सुवर्ण के समान फूल-फल वाले वृक्ष थे और जो मेरु पर्वत पर जमने वाले वृक्ष थे उन्हें विश्वकर्मा ने यदुसिंह श्रीकृष्ण के लिये लाकर उनके बगीचे में लगा दिया था उन बावलियों और तालाबों के किनारों पर शाल, तमाल तथा सैकड़ों शाखाओं वाले कदम्ब के महान् वृक्ष शोभायमान हो रहे थे। उन बगीचों की क्यारियों में विश्वकर्मा ने लाल, पीले, काले तथा श्वेत पुष्पों, के वृक्ष तथा सभी ऋतुओं में फलने वाले वृक्ष लगाये थे।।६१-७०।।

उस द्वारकापुरी में समतल किनारों और श्वेत बालुकाओं से युक्त जल से भरी नदियाँ और निर्मल जल वाले तालाब थे। और अन्य नदियाँ स्वर्ण के समान बालुकाओं से युक्त कमल पुष्पों से व्याप्त जल वाली थीं और उनके किनारों पर नाना प्रकार की लताओं से वेष्टित वृक्ष लगे थे। उस पुरी के बन वृक्षों पर मद से भरी कोकिलायें सदा कूक रही थीं तथा मदमस्त मोरगण नृत्य कर रहे थे। और उस पुर में गौवें और भैसें सुखी दिखाई दे रही थीं तथा हाथियों का समूह था, वनों में शूकर, मृग तथा पक्षियों ने अपना निवास स्थान बनाया था। और उस रम्य पुरी में विश्वकर्मा ने सौ हाथ की ऊँची स्वर्णमय चाहारदीवारी बनाई थी। लताओं से वेष्टित वह चहारदीवारी वृक्षादिकों से आच्छादित स्पष्ट पर्वत के समान अति सुन्दर ऊँची थी विश्वकर्मा ने जिन-जिन महान् पर्वतों, नदियों तालाबों तथा वन-उपवनों को बनाया था वे-वे पर्वतादि बड़े ही शोभायमान हो रहे थे।।७१-७६।।



अथ एकोनशततमोऽध्यायः।।९९।।

वैशम्पायनजी बोले-वृषभ के समान नेत्र वाले श्रीकृष्ण इस प्रकार द्वारका को देखते हुए सैकड़ों भवनों से युक्त अपने गृह को देखे। मणियों के लाखों स्तम्भों तथा मणि और मूँगा से शोभित अग्नि के समान प्रभा वाले

तोरणों की प्रभा से उस भवन का अन्धकार दूर हो गया था। श्रीकृष्णजी का उपासना गृह वहाँ के सब गृहों से सुन्दर और बड़ा था। स्थान-स्थान पर चित्रित स्वर्ण की वेदिकायें प्रकाशित हो रही थीं। वह भवन संगमरमर के स्तम्भों से घिरा तथा लम्बा-चौड़ा स्वर्ण से निर्मित था और वहाँ की बावलियाँ फूले कमलों से व्याप्त जल खण्डों से शोभित थीं तथा सुगन्ध वाले लाल कमलों से युक्त थीं एवं मणि और सुवर्ण के समान रत्नों की सीढ़ियों से विभूषित थीं और वे मदमत्त मयूरों तथा सदा मद में रहने वाली कोकिलाओं से युक्त थीं, उस भवन के पर्वत और चाहारदिवारी को स्वयं विश्वकर्मा ने बनाया था। वह भवन सौ हाथ ऊँची चाहारदीवारी तथा खाई से घिरा था, वृष्णिसिंह का वह गृह विश्वकर्मा द्वारा निर्मित था। वह इन्द्र के भवन के समान आधा योजन का लम्बा-चौड़ा था, पीला मिश्रिथ उस श्वेत भवन में स्थित गरुड़ के शिर पर बैठ कर परम प्रसन्न श्रीकृष्ण ने शत्रुओं के रोंगटे खड़े कर देने वाले शंख को बजाया, उस शंख के शब्द से समुद्र अत्यन्त क्षुभित हो गया औ आकाश प्रतिध्वनि करने लगा उस समय यह विचित्र बात हुई। गरुड़ को देखकर तथा पाञ्चजन्य शंख के शब्द को सुनकर कुकुर और अन्धकवंशी शोक से रहित हो गये।।१-१०।।

सूर्य के समान तेजस्वी श्रीकृष्ण को हाथ में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म लिये गरुड़ पर स्थित देखकर पुरवासी प्रसन्न हो गये। पुरवासियों ने प्रसन्नता से भेरियों तथा तुरहियों का महान् नाद करते तथा कुकुर एवं अन्धकवंशी श्रीकृष्ण को देख प्रसन्न होते हुए चले। वासुदेव को आगे कर राजा उग्रसेन शंख और तूर्य के शब्दों के साथ वसुदेव के घर गये। वसुदेव की जो आनन्ददायिनी देवकी, रोहिणी तथा आहुक (उग्रसेन की) आदि स्त्रियाँ और यशोदा अपने घरों में स्वागत का साज सजाने लगीं। इसके बाद श्रीकृष्ण गरुड़ द्वारा अपने घर गये और ईश्वर अर्थात् इन्द्रादि अनुचर हैं जिनके ऐसे हरि अपने उद्देश्य के अनुसार व्यवहार करने लगे। यादवश्रेष्ठ यदुनन्दन श्रीकृष्ण ने गृह के द्वार पर उतर कर यथायोग्य यादवों का पूजन किया। **बलराम, वसुदेव,** गद, अक्रूर तथा प्रद्युम्न आदि से सम्मानित होते **श्रीकृष्ण जी मणि-पर्वत को**

लेकर गृह में प्रवेश किये। इसके बाद इन्द्र के प्रिय पारिजात वृक्ष को रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न जी गृह में ले गये। वे यादव वीर पारिजात वृक्ष के प्रभाव से आपस में एक दूसरे को देवता की तरह शरीर धारण किये देखे, इसके बाद मनुष्य भी परम मुदित होने लगे।।११-२०।।

श्रेष्ठ यादवों से प्रसन्नतापूर्वक प्रशंसित होते हुए श्रीमान् गोविन्द जी विश्वकर्मा द्वारा बनाये भवन में प्रवेश किये। इसके बाद अतुलात्मा अच्युत वृष्णियों के साथ उस शिखर सहित मणि पर्वत को अन्तःपुर के मध्य ले गये। तत्पश्चात् शत्रु को जीतने वाले वृक्षश्रेष्ठ तथा पूजने योग्य दिव्यवृक्ष पारिजात का स्वस्थचित्त हो पूजन किया, अपने इष्ट स्थान पर उसे स्थापित कर दिया। शत्रुवीर नाशक केशव ने अपनी जाति वालों को सूचित कर नरकासुर द्वारा हरण की गई दोषरहित उन स्त्रियों का पूजन किया। जिन स्त्रियों की वसुदेव-देवकी, रोहिणी, रेवती तथा राजा उग्रसेन ने दिव्य वस्त्राभूषणों एवं रत्नों तथा चन्द्रमा के समान महाप्रभाववाले मणि के हारों से पूजन किया था। उस समय सभी स्त्रियों में सौभाग्य के द्वारा सत्यभामा उत्तम हो गई थीं तथा भीष्मक पुत्री रुक्मिणी कुटुम्ब की स्वामिनी बन गई थीं। श्रीकृष्ण ने उन स्त्रियों को रहने के लिये यथायोग्य शिखर वाले भवनों तथा उनके व्यवहार में आने वाले सुन्दर पदार्थों को दे दिया।।२१-२८।।



अथ शततमोऽध्यायः ।।१००।।

वैशम्पायनजी बोले कि इसके पश्चात् श्रीकृष्ण गरुड़ का पूजन तथा सत्कार कर और मित्र की भाँति अपने अंक में पकड़ कर घर जाने की आज्ञा प्रदान कर दिये। इस प्रकार आज्ञा प्राप्त कर इच्छानुसार गमन में उड़ने वाले गरुड़ जनार्दन को सत्कार तथा प्रणाम कर ऊपर को चले गये। वह अपने पंखों के वायु से मकरालय समुद्र को क्षुब्ध कर महान् वेग से पूर्वसागर को चले गये। कार्य के समय उपस्थित होने के लिये कह कर गरुड़ के चले जाने पर श्रीकृष्ण ने अपने वृद्ध पिता वसुदेव का दर्शन किया। इसके पश्चात् राजा

उग्रसेन, बलदेव, सात्यकि, काश्यप, सान्दीपनि, ब्राह्मण गार्ग्य तथा वृष्णि, भोज तथा अन्धक वंशीय एवं दाशार्ह वंशीय वृद्धों का अपने बल से लाये श्रेष्ठ रत्नों से पूजन किया। इसके पश्चात् राजाज्ञा की घोषणा करने वाला कुण्डल पहने राज-पुरुष चौराहों पर घोषणा करने लगे कि ब्रह्मद्वेषी सभी मार डाले गये और अन्धक तथा बृष्णियों की विजय हुई और मधुसूदन बिना किसी चोट-चपेट के रण से वापस आ गये। तत्पश्चात् जनार्दन पहले सान्दीपनि को फिर वृष्णियों के नृपति उग्रसेन को विनयपूर्वक नमस्कार किये। फिर सफल नेत्र एवं हृदय में आनन्दित पिता वसुदेव को बलराम के साथ इन्द्र के छोटे भाई श्रीकृष्ण ने वन्दना की।।१-१०।।

और शेष सभी दाशार्हों के पास जा-जाकर सभी का नाम ले-लेकर यथायोग्य सत्कार किये। इसके पश्चात् उपेन्द्र श्रीकृष्ण के साथ सभी दिव्य तथा सभी रत्नों से बने श्रेष्ठ आसनों पर बैठ गये। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण की आज्ञा से जिस अक्षय धन को किंकरों ने हर लाया था उसे वे सभा में ले आये। तत्पश्चात् यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण दुन्दुभियों नगारों के शब्दों के साथ पूजन करते हुए सभी दाशार्हों को आदरपूर्वक सभा में ले आये। श्रीकृष्ण की आज्ञा से वे सभी दाशार्ह मणि और मूँगा के तोरणों से सुशोभित सभा में प्रवेश कर आसनों पर बैठ गये। हे भरतर्षभ! तब तो पुरुष सिंह यादवों से व्याप्त जो सभा थी वह सर्वथा गुण सम्पन्न शुभ्र सभा वैसे ही अत्यधिक शोभने लगी कि जैसे सिंहों से पर्वत की गुफा शोभती है। भोज और वृष्णियों से सम्मानित गोविन्द बलराम के साथ उग्रसेन को आगे कर सुवर्ण के विशाल आसन पर बैठे। वहाँ पर बैठे वीरों से अवस्था के अनुसार यथा प्रेम संभाषण कर यदुश्रेष्ठ पुरुषोत्तम बोले।।११-१८।।



अथैकशततमोऽध्यायः।।१०१।।

श्रीकृष्ण जी बोले कि-पुण्यकीर्ति वाले आप लोगों के तपोबल तथा ईश्वर समाराधन एवं अनिष्ट के ध्यान से पापात्मा भुमि-पुत्र नरकासुर मारा

गया। और उसके द्वारा रक्षित कन्याओं का अन्तःपुर भी बन्धन से मुक्त कर दिया गया तथा मणिपर्वत शिखर सहित उखाड़ कर लाया गया। इस महान् धनराशि को हमारे किंकर लाये हैं, अब आप लोग इस द्रव्य के स्वामी हैं ऐसा कह कर श्रीकृष्ण जी चुप हो गये। वासुदेव की इस बात को सुन कर भोज तथा वृष्णि एवं अन्धकवंशी पुलकित हो हँसने लगे और जनार्दन का पूजन करते हुए हाथ जोड़ उन मनुष्यश्रेष्ठों ने श्रीकृष्ण से कहा कि हे महाबाहो! देवकीनन्दन! तुम्हारे में ऐसा गुण होना कोई विचित्र बात नहीं है कि जो देवताओं से भी कठिनता से होने योग्य दुष्कर कर्म को करके स्वयं उपार्जित रत्नों और भोगों से अपने जनों का लालन-पालन कर रहे हैं। इसके पश्चात् दाशार्हों एवं उग्रसेन की जो स्त्रियाँ थीं वे उत्साहित हो श्रीकृष्ण जी को देखने की इच्छा से आईं। देवकी सप्तमा तथा सुभानना रोहिणी आदि स्त्रियों ने महाभुज बलराम और श्रीकृष्ण को स्वर्ण सिंहासन पर बैठे देखा। उन बलराम और श्रीकृष्ण ने सबको पार कर रोहिणी को नमस्कार कर देवी देवकी को प्रणाम किया। वह माता देवकी वृषभ के समान नेत्रों वाले दोनों पुत्रों से वैसे ही शोभित होने लगीं कि जैसे देवताओं की माता अदिति सूर्य और वरुण से शोभित होती हैं।।१-१०।।

इसके बाद यशोदा की कन्या 'एकानंशा नाम की योगमाया' राम-कृष्ण के समीप आई जिसे मनुष्य इच्छानुसार रूपधारिणी कहते हैं। जिसके द्वारा क्षण अथवा मुहूर्त में सुरेश्वर उत्पन्न हुए, जिसके कर्तव्य से पुरुषोत्तम ने गणों सहित कंस को मारा था। वह कन्या श्रीकृष्ण की आज्ञा से पूजित हो पुत्र के समान वृष्णियों के घर में पालित हो बढ़ने लगी। जिसको पृथ्वी पर मनुष्य एकानंशा के नाम से कहते हैं और जिस दुराधर्ष योगकन्या को केशव की रक्षा के लिये उत्पन्न हुई मानते हैं। सभी यादव सुप्रसन्न मन से जिसकी पूजा करते थे और जिसके द्वारा दिव्य पुरुष श्रीकृष्ण देवता के समान संरक्षित रहे। उसी योगकन्या के पास जा अपनी प्रिय सखी के समान दाहिने हाथ से माधव ने उसका पकड़ लिया। अति बलवान् बलराम ने उस भाविनी को पुचकार कर तथा उसके शिर को सूँघ कर उसी प्रकार बायें हाथ से पकड़ लिया। उनकी

स्त्रियों ने राम और कृष्ण के मध्य में सुवर्ण का कमल लिये चंचल हाथ वाली उनकी बहन को कमल भवन वाली लक्ष्मी के समान शोभायमान देखा। और उसके ऊपर अक्षतों, लावों तथा विविध प्रकार के शुभ पुष्पों की वर्षा कर वे स्त्रियाँ अपने-अपने घर चली गईं। इसके बाद सभी यादव जनार्दन की पूजा तथा इन्होंने अद्भुत कार्य किये है ऐसी प्रशंसा करते हुए प्रसन्न हो बैठ गये।।११-२०।।

पुरवासियों के प्रेम को बढ़ाने वाले महाकीर्तिशाली महाबाहु श्रीकृष्ण जी इस प्रकार पूजित होते हुए यादवों के साथ देवता के समान शोभा पा रहे थे। सभी यादवों के बैठे हुए समय में इन्द्र के आदेश से नारदजी सभा में श्रीकृष्ण के पास आये। पूजनीय वह नारद जी यादवश्रेष्ठ शूरों से सम्यक् पूजित हो हरि का हाथ स्पर्श कर परम श्रेष्ठ आसन पर बैठ गये। सुख से बैठे हुए नारद जी सभा में बैठे हुए उन वृष्णियों से बोले कि हे नरश्रेष्ठों! मुझे इन्द्र के वचन से आया हुआ जानो। हे राजसिंहों! इन श्रीकृष्ण के पराक्रम को सुनो कि बाल्यावस्था से जिन-जिन कर्मो को केशव किये हैं। उग्रसेन का पुत्र कंस सभी यादवों को परास्त कर तथा अपने पिता आहुक को बाँध कर राज्य को ग्रहण कर लिया। वह कुलघालक दुष्ट बुद्धि कंस अपने श्वसुर जरासन्ध का आश्रय ले भोज, अन्धक तथा सभी वृष्णिवंशियों का अपमान करने लग गया। उस समय अपनी जाति का रक्षण कार्य करने की इच्छा वाले प्रतापशाली वासुदेव उग्रसेन के रक्षार्थ अपने पुत्र हरि की रक्षा की थी अर्थात् गोकुल पहुँचाया था। तब वे धर्मात्मा मधुसूदन गोपों के साथ मथुरा के उपवन में निवास किये और अति अद्भुत कर्मों को किया। शूरसेनों के समक्ष नारद जी कहने लगे कि श्रीकृष्ण का बड़ा अद्भुत कार्य सुनाई पड़ता है शकटासुर के नाश के लिये उतान सोते हुए मारा श्रीकृष्ण ने पक्षी का रूप धारण करने वाली महा भयंकर तथा विशाल शरीर वाली तथा बलवाली पूतना नामक राक्षसी को मार डाला। वह विष से लिप्त भयंकर स्तन जनार्दन के मुख में दे रही थी इसके बाद उस राक्षसी को बनचारी गोपों ने जब मरी हुई देखा तो कहने लगे कि इस बालक का पुनः जन्म हुआ है ऐसे कहने से अधोक्षज नाम

हुआ और कहा कि यह बड़ी अद्भुत घटना घटी जो बालक पुरुषोत्तम ने खेलते हुए पैर के अंगूठे से शकट को चूर-चूर कर दिया और रस्सी से उलूखल में बँधे होने पर भी कुमारों का प्रिय करते हुए यमलार्जुन नाम से विख्यात वृक्षों को तोड़ डाला तब इनका दामोदर नाम हुआ, खेलते हुए इन वासुदेव ने यमुना के ह्रद में कूद कर दुराधर्ष महाबली तथा महा विषधर नाग कालिय को जीत कर यमुना से निकाल दिया अक्रूर के सामने ही विभु श्रीकृष्ण नाग के भवन में नागों से पूज्यमान दिव्य शरीर को धारण किया था और जल की ठंढक तथा वायु के झोकों से दुःखित गौवों को देखकर बुद्धिमान् महात्मा श्रीकृष्ण बाल्यावस्था में ही गौवों की रक्षा की इच्छा से गोवर्द्धन पर्वत को सात दिन सात रात्रि तक धारण किये रह गये। इसी प्रकार विशाल शरीर तथा अत्यन्त बली गोपति दुष्ट वृषभ रूपधारी अरिष्टासुर को इन वासुदेव ने मार डाला और गौवों की रक्षा के लिये महाबलवान् तथा विशाल शरीर वाले दुर्बुद्धि धेनुक दानव को मार डाला।।३१-४०।।

सब प्रकार की सेना से पुरस्कृत सुनामा को सामने उपस्थित देख भेड़ियों के द्वारा तितर-बितर कर दिया (यह कथान्तर है)। रोहिणी पुत्र बलराम के साथ वन विचरण करते हुए गोद वेषधारी श्रीकृष्ण ने पुनः कंस को भयभीत किया। व्रज में रहते हुए वासुदेव पुरुषोत्तम ने भोजराज कंस के सहायक अश्व को देख कर युद्धस्थल में मार डाला। हे महाबाहो! कंस के मंत्री प्रलम्बासुर को बुद्धिमान् रोहिणी-पुत्र बलराम ने एक ही मुष्टिक से मार गिराया। ये देव-पुत्र के समान महाबली वसुदेव के पुत्र ब्राह्मण श्रेष्ठ गार्ग्य द्वारा संस्कार सम्पन्न हो बड़े हुए थे। जन्म से लेकर अन्त तक सभी बातें गार्ग्य ने यथातथ्य बतलाकर इनका संस्कार किया था। जिस समय ये दोनों नरश्रेष्ठ युवावस्था में आये उस समय ये सिंह के बच्चों के समान पराक्रमी और हिमांचल प्रदेश में उत्पन्न मदमत्त हाथी के समान ज्ञात हो रहे थे। इसके बाद गोपियों के मन को हरण करते हुए देव-पुत्रों के समान शोभा वाले महाबली गोष्ठ श्रेष्ठ वीर व्रज मे रहने लगे। इन दोनों महात्माओं को खेल में, युद्ध में अथवा अनेक प्रकार के खेलों में नन्द गोप के गोपाल मारे भय के अच्छी तरह

देखने में भी समर्थ न हो सकते थे। उन्नत वक्षस्थल तथा लम्बी बाहुओं वाले सखुआ के वृक्ष के समान ऊँचा सुन कर कंस दुःखि हो मंत्रियों के साथ मंत्रणा करने लगा।।४१-५०।।

जब कंस अनेक उपायों से भी बलराम और केशव को न पकड़ सका तो मारे क्रोध के बान्धवों सहित वसुदेव को बन्दी बना लिया। और उग्रसेन के साथ वसुदेव को भी चोर के समान कठिन बन्धन मे डाल दिया तब उस महान् कष्टकर समय को वसुदेव ने किसी प्रकार बिताया। इस प्रकार पिता उग्रसेन को बाँध कर जरासन्ध तथा राजा भीष्मक का आश्रय लेकर शूरसेनों पर कठिन शासन करने लगा। इस प्रकार कुछ समय के बाद कृष्ण-बलराम को मारने के लिये पिनाकी शंकर जी का उद्देश्य कर कंस मथुरा में एक महोत्सव कराया। हे विशाम्पते! उस महोत्सव में अनेकानेक देशों के बहुत से पहलवान आये और नृत्य कला में कुशल नाचने गाने वाले भी बहुत से आये। महातेजस्वी कंस ने अच्छे कुशल कारीगरों, से वैभवशालीरंगबाट का निर्माण करवाया था। उस रंगबाट में पुरवासियों तथा जनपद निवासियों से भरे हजारों मंच आकाश में तारों की भाँति चमकते दिखाई पड़ रहे थे। भोजराज कंस लक्ष्मी से सेवित महान् समृद्धशाली रंगबाट में आकर वैसे ही मंच पर चढ़ा कि जैसे कोई पुण्यशील स्वर्गीय विमान पर चढ़ा हो। बली कंस उस रंगबाट में प्रमत्त हाथियों को खड़ा कर दिया था कि जिन पर बहुत से आयुधों को लिये शूर-वीर चढ़े हुए थे। जिस समय से उस महातेजस्वी ने सूर्य और चन्द्रमा के समान राम-कृष्ण का आना सुन लिया था।।५१-६०।।

हे नराधिप! उसी समय से अपनी रक्षा के लिये प्रयत्न करने लगा था राम-कृष्ण के चिन्तना करता हुआ वह कंस रात्रि में सुखपूर्वक न सो सका था। उत्तम से उत्तम महोत्सव को सुन कर दोनों वीर राम-कृष्ण उस रंगबाट में वैसे ही निःशंक भाव से घुस गये कि जैसे सिंह गौवों के गोष्ठ में घुस जाता है। रक्षकों ने प्रवेश के समय उन्हें रोका पर उन दुधर्ष अरिन्दम पुरुष श्रेष्ठों ने सवारों सहित कुबलयापीड़ हाथी को रक्षकों सहित मर्दन कर उत्सव स्थल में प्रविष्ट हो गये। और चाणूर तथा आन्ध्र नामक मल्लों को पटक कर रगड़ते

हुए मार डाले। इसके बाद केशव-बलराम उग्रसेन के पुत्र दुष्टात्मा को उसके भाइयों सहित मार डाले। जिस कर्म को यदुसिंह ने किया देवताओं से भी सुदुष्कर उस कर्म को केशव को छोड़ दूसरा कौन पुरुष करने में समर्थ हो सकता है। जिस धनराशि को पहले प्रह्लाद, बलि तथा शम्बर भी प्राप्त न कर सके उस धनराशि को यादवों के लिये आप श्रीकृष्ण ने प्राप्त किया है। इन्होंने गुरु एवं पञ्चजन नामक दैत्य पर आक्रमण कर मार डाला तथा शैल के संघात से निकल कर गणों के सहित निसुन्द को मार डाला। और भूमि-पुत्र नरकासुर को मार अदिति के शुभ कुण्डलों को छीन लाये इससे केशव ने स्वर्ग में देवताओं के बीच महान् यश प्राप्त किया। हे यादवों, श्रीकृष्ण के बाहुबल के आश्रित होने से तुम लोग शोक, भय तथा बाधा से रहित हो इसलिये अब राग-द्वेष को छोड़ विविध प्रकार के यज्ञों से भगवान् का यजन-पूजन करो। बुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने देवताओं का बड़ा भारी सुन्दर कार्य किया है, मैं अब प्रियकर समाचार कह चुका आप लोगों का कल्याण हो।।६१-७०।।

हे श्रेष्ठ यादवों! जो तुम लोगों का इष्ट होगा मैं उसे आलस्य रहित होकर करने वाला हूँ क्योंकि आप लोगों का मैं हूँ और आप लोग हमारे हैं मेरा वास आप लोगों के हृदय में है और आप लोग मेरे हृदय में बसते हैं इस प्रकार संकेत कर कृष्ण से कहने के लिये सुरश्रेष्ठ इन्द्र प्रसन्न हो मुझे भेजे हैं जैसे आप प्रसन्न हैं वैसे मैं भी प्रसन्न हूँ। जहाँ सुमति रहती है वहीं सम्पत्ति स्थिर रहती है और जहाँ सम्पत्ति है वहाँ सद्नम्रता रहती है श्रीकृष्ण जी में नित्य ही सन्नति, सुमति और निवास करती है।।७१-७३।।



अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१०२।।

नारदजी बोले-इन श्रीकृष्ण ने मुरु के पाशों को तोड़ डाला और निसुन्द तथा नरकासुर को मार डाला पुनः प्राग्ज्योतिषपुर के मार्ग को कुशलपूर्वक जाने योग्य कर दिया। और शार्ङ्ग धनुष तथा पाञ्चजन्य शंख के निनाद से रण में द्रोह करने वाले महिपालों को त्रस्त कर दिया। और वृष्णि

श्रेष्ठ! केशव दक्षिण देश के मेघ के समान शब्द करने वाले रथों के समूह से सुरक्षित महाबली तथा महापराक्रमी रुक्मी को युद्ध में जीत कर रुक्मिणी को शीघ्र हर लाये। भोजवंश की पुत्रीभूत पटरानी को पाकर शंख, चक्र, गदा तथा खड्ग धारण करने वाले रथ द्वारा जारूथी नामक नगरी के मैदान में आह्वति, क्रथ तथा शिशुपाल को जीत लिये थे, व्रक को सेना के साथ शतधन्वा ने जीत लिया था। दृढ़धन्वा श्रीकृष्ण क्रोध कर इन्द्रद्युम्न, कालयवन तथा कशेरुमान को मारा था और सौभपति श्रीमान् राजा शाल्व को भी मार डाला। पुण्डरीकाक्ष पुरुषोत्तम ने अपने चक्र से हजारों पर्वतों को बिखेर कर द्युमत्सेन को मारा था। शार्ङ्ग धनुषधारी पुरुषव्याघ्र श्रीकृष्ण ने मन्द्र पर्वत के शिखर तथा इरावती नगरी में रावण के चारों ओर घूमने वाले अग्नि और सूर्य के समान तथा आँखों पर नाचने वाले महाभोज गोपति और तालकेतु को युद्ध में मार डाला। और पलक गिरने मात्र में श्रीकृष्ण डिम्भ और हंस नाम के दानवों को अनुचरों सहित मार डाले थे।।१-१०।।

और इन महात्मा केशव ने वाराणसी को जला दिया था तथा सामग्री और राष्ट्र सहित काशिराज को मार डाले। अद्भुत कर्म करने वाले श्रीकृष्ण ने नीचे झुके पुंखों वाले बाणों से युद्ध में यमराज को जीतकर इन्द्रसेन के पुत्र को लाये। श्रीकृष्ण ने लोहितकूट को प्राप्त कर सम्पूर्ण जलचरों सहित समर में महाबली वरुण को जीत लिया। महेन्द्र के भवनभूत नन्दन वन में देवताओं से रक्षित पारिजात वृक्ष को इन्द्र की चिन्ता न करते हुए हर लाये। पाण्ड्य देश, पौंड्र देश, कलिङ्ग देश तथा मत्स्य देश के राजाओं को मार डाले और वङ्गाल के राजा को भी मार डाले। इन वीर ने एक सौ महात्मा राजाओं को रण में मारकर प्रियदर्शना पटरानी गान्धारी को ले आये। रणक्रीड़ा करते हुए इन विभु ने कुन्ती के सामने भरत कुलश्रेष्ठ गाण्डीवधारी अर्जुन को विजयी बना दिया। इन पुरुषोत्तम ने समराङ्गण में सारथी के बहाने रथ हाँकते अर्जुन को निमित्त बनाकर द्रोण, द्रौणि, कृपाचार्य, कर्ण, भीष्म तथा दुर्योधन को जीत लिया। शंख, चक्र, गदा तथा खड्गधारी प्रभु श्रीकृष्ण ने वभ्रु का प्रिय करने की इच्छा से सौवीरराज की पुत्री का हठ से हरण कर लिया। राजा वेणुदार

के लिये पुरुषोत्तम ने अश्व, रथ और हाथियों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया।।११-२०।।

तपोबल और शारीरिक एवं गम्भीरता प्राप्त कर माधव ने वामन अवतार में बलि से तीनों लोक छीन लिया। दानवों के वज्र, अशनि, गदा तथा खड्ग के भय से जिस बाणासुर के प्राग्ज्योतिषपुर में मृत्यु भी नहीं पहुँच सकी थी। वह महाबली एवं पराक्रमी और धनी बलि का वंशज बाणासुर श्रीकृष्ण से पराजित हो गया। महाबली जनार्दन ने कंस के मन्त्री पीठ, पैठिक तथा असिलोमा को मार डाला। इन महायशस्वी पुरुषव्याघ्र ने मनुष्य रूपधारी जृम्भ, ऐरावण तथा विरूप नामक दैत्य को मार डाला। और पुण्डरीकाक्ष ने जमुना के जल में कूदकर महाबली नागपति कालिय को जीतकर समुद्र में भेज दिया। पुरुषव्याघ्र हरि ने वैवस्वत नामक यम को जीतकर गुरु सान्दीपनि के मृतक पुत्र को जिला दिया था। हे राजन्! जो ब्राह्मणों और देवताओं से सदा द्वेष करते हैं ऐसे दुरात्माओं पर यह महाबाहु इसी प्रकार शासन किया करते हैं। वज्रपाणि इन्द्र का प्रिय करने के लिये भूमिपुत्र नरकासुर को मार तथा मणि के कुण्डलों को छीन देवमाता अदिति को दे दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण लोकों की रचना करने वाले महायशस्वी विभु श्रीकृष्ण देवताओं और ब्राह्मणों को अभय तथा दैत्यों को भय प्रदान करने वाले हैं।।२१-३०।।

इस प्रकार मनुष्यों में धर्म की स्थापना कर तथा देवताओं के लिये अमित कार्य कर और दक्षिणा सहित यज्ञों द्वारा यजन-पूजन कर अपने स्थान बैकुण्ठ को चले जायेंगे। महायशस्वी श्रीकृष्ण रमणीक एवं ऋषि की द्वारका शून्य कर समुद्र में डुबा देंगे। बहुत रत्नों से भरी, सैकड़ों स्तम्भों से चिह्नित तथा वनों सहित द्वारका को वरुण के आवास स्थान समुद्र में प्रवेश करा देंगे। वासुदेव द्वारा त्यागी हुई, सूर्य के समान तेजस्वी भवनों से विख्यात द्वारका को श्रीकृष्ण के अभिप्राय को जानने वाला समुद्र डुबो देगा। मधुसूदन को छोड़कर देवता, दानवों तथा मनुष्यों में कोई ऐसा न हुआ न होगा जो इस पुरी में निवास करे। दाशार्हों के लिये उत्तम विधान बनाकर यह विष्णु नारायण सूर्य और चन्द्रमा हो जायेंगे। अपनी इच्छानुसार विचरने वाले अप्रमेय और अचिन्त्य

वशी यह श्रीकृष्ण बालकों की खेल की भाँति प्राणियों से खेला कर प्रसन्न होते हैं। महाबाहु मधुसूदन का कोई पार पाने में समर्थ नहीं हो सकता। ये पर और अपर दोनों हैं पर इन विश्व के रूप से पृथक् नहीं है। इनके सैकड़ों-हजारों तथा लाखों कर्मों का कोई अन्त नहीं है न इनके समान पुरुष को कोई पहले देखा है, ऐसा ही मैंने सुना है। बलराम को साथ ले बालकों के बीच इन्हीं प्रकार के कर्मों को पुण्डरीकाक्ष ने किया था।।३१-४०।।

तपोबल द्वारा दिव्य नेत्रों से सब कुछ प्रत्यक्ष देखने वाले महाबुद्धिमान् एवं योगी व्यासजी ने पहले ही यह सब कह दिया है। इस प्रकार महेन्द्र के वचनानुसार नारद मुनि श्रीकृष्ण की स्तुति कर सभी यादवों से पूजित हो स्वर्ग को चले गये। इसके बाद उस धन को पुण्डरीकाक्ष मधुसूदन गोविन्द अन्धक और वृष्णियों में यथायोग्य बँटवा दिये। यादव धन प्राप्त कर अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों से उन महात्मा बलराम-कृष्ण का यजन-पूजन कर द्वारका में रहने लगे।।४१-४४।।



अथ त्र्याधिकशततमोऽध्यायः ।।१०३।।

राजा जनमेजय बोले कि-हे भगवन्! सोलह हजार स्त्रियों में आपने आठ ही स्त्रियों का कीर्तन किया अब आप उनकी सन्तानों का मुझसे वर्णन कीजिये। वैशम्पायनजी बोले-प्रधानतः उन स्त्रियों में जो आठ पटरानियाँ थीं वे ही पुत्रवती और वीर प्रजाओं वाली हुईं उनकी सन्तानों का वर्णन सुनो। रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्नजिती देवी, सुन्दर दाँतों वाली शैव्या, सुन्दर हँसने वाली लक्ष्मणा। मित्रवृन्दा, कालिन्दी, जाम्बवती, पौरवी, माद्री, भीमा इन श्रीकृष्ण की रानियों में रुक्मिणी के पुत्रों को सुनो। रुक्मिणी के प्रथम शुभ पुत्र प्रद्युम्न हुए कि जिन्होंने शम्बरासुर को मारा था, दूसरे पुत्र चारुदेष्ण हुए कि जो वृष्णियों में सिंह के समान और महारथी थे। चारुभद्र, चारुगर्भ, सुदेष्ण, द्रुम, सुषेण, द्वितीय चारुदेष्ण, बलवान् चारुविन्द। तथा सबसे छोटे पुत्र चारुबाहु हुए और एक चारुमती कन्या उत्पन्न हुई थी। सत्यभामा से भानु,

भीमरथ तथा रोहित, दीप्तिमान्, ताम्रजाक्ष तथा जलान्तक ये पुत्र तथा भानु, भीमलिका, ताम्रपर्णी एवं जलंधमा ये चार उन पुत्रों की बहनें गरुड़ध्वज श्रीकृष्ण से उत्पन्न हुईं। जाम्बवती के पुत्र सभा को शोभित करने वाले साम्ब, मित्रवान्, मित्रविन्द, मित्रबाहु तथा सुनीथ हैं और मित्रवती नाम की एक कन्या हुई। अब नाग्नजिती की सन्तानों को सुनो।।१-१०।।

भद्रकार और भद्रविन्द पुत्र तथा भद्रवती नाम की कन्या हुई थी। सुदत्ता शैव्या से संग्रामजित् उत्पन्न हुए। तथा सत्यजित, सेनजित् और शूरवीर सपत्नजित उत्पन्न हुए। मद्र देशीया भीमा के पुत्र वृकाश्व, वृकनिर्वृति और कुमार वृकदीप्ति थे। अब लक्ष्मणा की सन्तानों को सुनो–गात्रवान्, गात्रगुप्त और बलवान् गात्रविन्द नाम के पुत्र गात्रवती नाम की एक छोटी बहन के साथ उत्पन्न हुए थे। कालिन्दी के श्रुतिसम्मत अश्रुत नाम का एक पुत्र हुआ था। मधुसूदन श्रुतसेन नामक पुत्र को श्रुतसेना को प्रदान कर दिये, उस पुत्र को देकर प्रसन्न हो अपनी भार्या श्रुतसेना से बोले। यह पुत्र हम लोगों का बहुत समय तक सेवा करेगा। बृहती में गद तथा शैव्या में अंगद हुए। तथा कुमुद, श्वेता, अवगाह, सुमित्र पवित्र चित्ररथ तथा चित्रसेन नामक पुत्र हुए और श्वेता नाम की कन्या हुई सुदेवा को चित्रा तथा चित्रवती नाम की कन्या एवं वनस्तम्ब तथा स्तम्बवन दो पुत्र हुए थे। कौशिकी श्रुतसोमा में निवासन, वनस्तम्ब, उपसन्न, शंकु, वज्रांशु तथा क्षिप्र नामक पुत्र तथा स्तम्बवती नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी यौधिष्ठिरी में विचित्र युद्ध करने वाले युधिष्ठिर और गरुड़ नामक पुत्र तथा कापालिका नाम की कन्या हुई थी।।११-२०।।

हे राजन्! इन्हीं पुत्रों की भाँति हजारों लाखों पुत्रों को समझिये एक लाख अस्सी हजार जनार्दन के पुत्र रण-पण्डित वीर थे जिनका वर्णन मैंने आप से किया। हे राजश्रेष्ठ! प्रद्युम्न के विदर्भ देशीया स्त्री से रण में न घिरने वाले अनिरुद्ध नामक पुत्र हुए थे कि जिनके ध्वजा पर मगर का चिह्न था। बलदेव के रेवती नामक स्त्री में निशठ और उल्मुक नाम के पुत्र हुए ये दोनों भाई देवता के समान पुरुषों में उत्तम थे। वसुदेव ने जो सुतनु और सुतारा के पाणि-ग्रहण किया उन दोनों स्त्रियों से पौण्ड्रक तथा कपिल नाम के ये दो पुत्र

वसुदेव के हुए थे। तारा के कपिल और सुतनु के पौण्ड्रक उत्पन्न हुए थे उनमें पौण्ड्रक राजा हुआ था और कपिल वन को तप के लिये चला गया था। वसुदेव से चौथी शूद्रा स्त्री में जरा नाम का वीर पुत्र उत्पन्न हुआ था जो धनुष धारण करने वाले निषाधों का स्वामी हुआ। साम्ब द्वारा काश्या से सुपार्श्व नाम का बड़ा। शीघ्रकारी और अनिरुद्ध के सानु नाम का पुत्र हुआ सानु के वज्र नाम का पुत्र हुआ। वज्र के अतिरथ और अतिरथ के सुचारु पुत्र हुए और छोटे वृष्णिनन्दन अनमित्र के शिनि पुत्र हुए। शिनि के सत्यवक्ता महारथी सत्यक हुए सत्यक के शूरवीर युयुधान हुए। युयुधान के असंग हुए असंग के मणि और मणि के युगन्धर पुत्र हुए इस प्रकार वंश समाप्त होता है।।२१-३१।।



अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।।१०४।।

राजा जनमेजयजी बोले कि-जो आपने पहले यह बताया कि शम्बर को मारने वाले प्रद्युम्न हुए सो उन प्रद्युम्न ने किस प्रकार शम्बरासुर को मारा वह मुझसे कहिये। वैशम्पायनजी बोले-वासुदेव से लक्ष्मी रुक्मिणी में व्रतधारी कामदेव के समान सुन्दर स्वयं काम ही शम्बर का अन्त करने के लिये प्रद्युम्न के रूप में उत्पन्न हुए जो पुराण में सनत्कुमार के नाम से भी सम्बोधित किये गये हैं। उनके जन्म से सात रात्रि व्यतीत हो जाने पर आठवीं आधी रात्रि में सूतिका गृह से श्रीकृष्ण पुत्र प्रद्युम्न को काल शम्बर हर ले गया। देव माया के आश्रय लेने वाले उन श्रीकृष्ण को उसकी यह बात ज्ञात थी फिर भी वे युद्ध दुर्मद दानव को न पकड़े। वह महासुर मृत्यु के वशीभूत हो माया द्वारा प्रद्युम्न का हरण किया था उन्हें बाहुओं पर रख कर अपने नगर में ले गया। उसकी रूप-गुण से सम्पन्न मायावती नाम की सन्तान रहित शुभदर्शना भार्या थी। काल की प्रेरणा से उस दानव ने वासुदेव के पुत्र को अपने आत्मज पुत्र की भाँति उस माननीया पटरानी मायावती को दे दिया। उस बालक को देख कर मायावती पुलकित हो प्रसन्न हो गई और महान् हर्ष से युक्त हो वह बार-बार उसे उठा कर देखने लगी। इस प्रकार देखते हुए उस

मायावती को पूर्व की बात का स्मरण हो आया कि यह वही मेरा पति कामदेव उत्पन्न हुआ है ऐसा स्मरण कर चिन्तना करने लगी। यह वही मेरा नाथ मेरा भर्त्ता है जिसके लिये मैं दिन-रात शोक समुद्र में डूबी रह कर लेश मात्र भी सुख नहीं प्राप्त करती हूँ।।१-१०।।

पूर्व काल में त्रिशूलधारी भगवान् शंकर ने दुःखित हो इनको भस्म कर अङ्ग रहित कर दिया था आज मैं इनको दूसरी जाति में उत्पन्न हुआ देख रही हूँ। हम दोनों आपस में पति-पत्नि हैं इस बात को जानती हुई मैं इनके मुख में कैसे स्तन दे सकती हूँ और कैसे पुत्र कह सकती हूँ। इस प्रकार मन से विचार कर वह मायावती उन्हें धातृ के लिये दे दिया तब रसायन औषधियों आदि के प्रयोग से प्रद्युम्न शीघ्र ही बड़े हो गये। वह धातृ के मुँह से उस मायावती को माता सुनते हुए अज्ञानता से अपनी माँ की भाँति मानने लगे। वह मायावती पोषणादि करा कृष्ण-पुत्र कमल लोचन प्रद्युम्न को बड़ा बनाया और उस काम-मोहिता ने प्रद्युम्न को सभी दानवी मायायें सिखला दीं। कामदेव के समान दर्शनीय प्रद्युम्न जब युवा हुए तो वे सब प्रकार के अस्त्रों के चलाने की विधि में कुशल हो गये और स्त्रियों की चेष्टाओं को जानने लगे। तब वह कामिनी मायावती अपने पति से काम की इच्छा प्रकट करने लगी हँस कर देखती हुई इशारों से अपनी तरफ लुभाने लगी तब इस प्रकार आलिंगन के लिये उद्यत उस सुन्दर हँसी वाली मायावती देवी से प्रद्युम्न बोले। प्रद्युम्न ने कहा कि—माता के भाव का उल्लंघन कर तुम क्यों दूसरी तरह अर्थात् स्त्री की भाँति व्यवहार कर रही हो? अहो तुम दुष्ट स्वभाव की ज्ञात हो रही हो, स्त्री होने से चंचल मन की हो। इसी से तुम पुत्र भाव का त्याग कर लोभ से मेरे कामभाव से बर्तांव कर रही हो हे सौभ्ये! तो क्या मैं तुम्हारा पुत्र नहीं हूँ यह कैसा तुम्हारा उलटा-पलटी स्वभाव है। हे देवि! मैं सत्य बात जानना चाहता हूँ यह कैसी विधि है? निश्चित ही स्त्रियों का स्वभाव विद्युत-सम्पात की भाँति चंचल है।।११-२०।।

जो मनुष्यों में पर्वत के शिखरों में मेघों की भाँति लिप्त हो जाती हैं, हे सौम्ये! यदि मैं तुम्हारा पुत्र हूँ अथवा हे शुभे! तुम्हारा आत्मज नहीं हूँ। इन दोनों बातों में जो सत्य है उसे जानना चाहता हूँ यह कैसा स्वेच्छा-व्यवहार इस

प्रकार प्रद्यमुन द्वारा कहने पर काम से पीड़ित इन्द्रियों वाली वह भयशीला मायावती एकान्त में केशव-पुत्र से बोली हे कान्त! न तुम मेरे पुत्र हो और न तुम्हारा शम्बर पिता है। हे वृष्णिनन्दन! जाति के गुण से रूपवान और पराक्रमी हो रुक्मिणी के आनन्द को बढ़ाने वाले तुम वासुदेव के पुत्र हो। जब कि तुम्हारे जन्म के केवल सात दिन बीते थे और तुम सूतिकागृह में उतान सुला दिये गये थे उसी समय रात्रि में तुम हर लिये गये थे। बल और पराक्रम से विख्यात मेरे स्वामी शम्बर ने तुम्हारे पिता के महान् सुरक्षित गृह का तिरस्कार कर तुम्हारा हरण किया था। इन्द्र के समान श्रीकृष्ण के भवन से शम्बर ने तुम्हें हर लिया था वह रुक्मिणी तुम्हारी माता तुम्हें बाल रूप में ही हर लिये जाने से करुण विलाप करती होंगी। शीघ्र की ब्याई हुई बछड़ा से रहित गौ की भाँति तुम्हारी माता सन्तप्त होती होगी और इन्द्र से भी महान् पिता गरुड़ध्वज श्रीकृष्ण भी सन्ताप करते होंगे। हे कान्त! वे तुम बालक का यहाँ अपहरण होना नहीं जानते हैं, तुम वृष्णि-कुमार हो शम्बर के पुत्र नहीं हो। हे वीर! इस प्रकार के पुत्रों को दानव नहीं उत्पन्न करते न हमने ही तुमको उत्पन्न किया है, इसलिये मैं तुमको चाहती हूँ।।२१-३०।।

हे सौम्य! मैं तुम्हारे रूप को देखती हुई हृदय में व्यथित हो रही हूँ तथा इससे दुर्बल हो रही हूँ, हे कान्त! जो मेरे हृदय ने सोचा है और जो मेरे हृदय में वर्तमान है वह मेरे मन में ही है, हे वृष्णि-पुत्र! आप उसे पूरा करने योग्य हैं तुम्हारे में जो मेरा सद्भाव था वह सभी कह दिया। न तुम मेरे पुत्र हो, न शम्बर के, इस प्रकार मायावती द्वारा कही सभी बातों को सुनकर। चक्रायुध श्रीकृष्ण के पुत्र सभी मायाओं के ज्ञाता प्रद्युम्न अपना नाम सुनाकर शम्बर को ललकारने लगे। अहो! यह दुष्टात्मा दानव केशव के नन्हें से पुत्र को निर्भय हो हरता है, आज इसको मैं भयभीत करूँगा। कैसे यह दानव क्रोधित होगा, कैसे मुझसे द्वेष करेगा यह मेरे द्वारा कैसे मारा जायेगा पहले मैं क्या करूँ कि जिससे यह मन्दबुद्धि कुपित हो जाय। सिंह के चित्र से चित्रित इसकी मेरु शिखर के समान ऊँची ध्वजा को तथा गृह के तोरण को तीक्ष्ण भल्ल नामक बाण से काट कर गिरा दूँ तब ध्वजा का काटा जाना जान कर शम्बर मुझसे

लड़ने के लिये निकलेगा। इसके बाद संग्राम में युद्ध द्वारा इसको मार कर द्वारका चलूँगा ऐसा कहकर बलपूर्वक धनुष पर बाण चढ़ाये। और महाभुज शम्बर के ध्वजा रत्न को काट गिराये तब महात्मा प्रद्युम्न के द्वारा ध्वजा का काटना सुनकर।।३१-४०।।

कालशम्बर ने क्रुद्ध हो पुत्रों को आज्ञा दिया कि हे महावीरो! तुम लोग शीघ्रता से रुक्मिणी-पुत्र को मार डालो। मैं इसको नहीं देखना चाहता हूँ यह मेरा अनिष्ट करने वाला है, शम्बर के मुँह से इस बात को सुनकर शम्बर के पुत्र आयुधों से सुसज्जित हो प्रद्युम्न के वध की इच्छा से प्रसन्नतापूर्वक निकल पड़े चित्रसेन, अतिसेन, विष्वकसेन, गद, श्रुतसेन, सुषेण, सोमसेन, मन, सेनानी, सैन्यहन्ता, सनाहा, सैनिक, सेनस्कन्ध, अतिसेन, सेनक, जनक, सुत, सकाल, विकाल, शान्त विभु शान्तान्तकर, कुम्भकेतु, सुदंष्ट्र तथा केशी आदि अनेकों पुत्र चक्र, तोमर, शूल, पट्टिशों और फरसों को लेकर निकल पड़े वे धृष्ट परम क्रोध से भरे प्रद्युम्न को ललकारते हुए समर के मुहाने पर डट गये। उस समय महाबाहु प्रद्युम्न भी शीघ्र ही धनुष-बाण ले रथ पर समराभिमुख हो निकल पड़े। इसके पश्चात् शम्बर के पुत्रों का केशव-पुत्र से रोंगटों को खड़ा कर देने वाला तुमुल युद्ध प्रारम्भ हो गया। उस समय गन्धर्वों तथा उरग एवं चारणों सहित देवता विमानों पर बैठे इन्द्र को आगे किये आये।।४१-५०।।

नारद, तुम्बरू, हाहा, हूहू आदि कितने ही गाने वाले गन्धर्व अप्सराओं से घिरे वहाँ आकर खड़े हो गये। इन्द्र के द्वारपाल एक गन्धर्व ने प्रद्युम्न के इच्छित कार्य को वज्रधारी इन्द्र को सुनाया। 'वह कहने लगा' शम्बर के सौ पुत्र हैं और श्रीकृष्ण पुत्र अकेले हैं तो इन बहुसंख्यकों से युद्ध कर प्रद्युम्न कैसे विजय प्राप्त करेंगे। तब द्वारपाल द्वारा कहे गये वचनों को सुन कर बलसूदन इन्द्र हँस कर यह बोले कि जो इन प्रद्युम्न का जो पराक्रम हैं उसे सुनो। पहले के यह कामदेव हैं, शंकरजी के क्रोधाग्नि से जब यह भस्म हो गये तब शंकरजी सन्तुष्ट हो रति को वरदान दिये कि। जब मनुष्य शरीर से विष्णु द्वारका में जायेंगे तब उनका यह काम पुत्र होकर उत्पन्न होगा इसमें संशय नहीं हैं। अब यह महायशस्वी अनङ्ग के नाम से तीनों लोकों में विख्यात होगा,

द्वारका में उत्पन्न होकर यह महातेजस्वी काम शम्बर को मारेगा। जन्म काल से सात दिन बीतने पर रुक्मिणी की गोद में स्थित प्रद्युम्न को माया कर शम्बर हर ले जायगा। इसलिये तुम शम्बर के घर चली जाओ और उसकी मायावती हो भार्या बन जाओ वहाँ माया द्वारा अपने रूप को छिपाकर शम्बर को मोह में डाल देना। और वहाँ पर अपने बालक रूप पति को पोषण करा कर बढ़ाना, युवावस्था को प्राप्त कर यह शम्बर को मार डालेगा।।५१-६०।।

इसके पश्चात् तुम प्रद्युम्न के साथ द्वारका चली जाना वहाँ यह तुम्हारे साथ रमण करेगा जैसे मैं शैल पुत्री पार्वती के साथ रमण करता हूँ। इस प्रकार का आदेश देकर देवेश पुरुषोत्तम शंकरजी सिद्ध और चरणों से सेवित मेरु के समान कैलास को चले गये। काम-पत्नी रति भी देव-देव उमापति को प्रणाम कर शम्बर के घर जाकर पति-वियोग के अन्तिम समय की प्रतिक्षा करने लगी इस प्रकार यह पुत्र के सहित शम्बर को मार डालेंगे, इस दुरात्मा के प्रद्युम्न हन्ता हैं।।६१-६४।।



अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।।१०५।।

वैशम्पायनजी बोले कि इसके बाद शम्बर के पुत्रों का रुक्मिणीनन्दन के साथ लोमहर्षण तुमुल युद्ध बढ़ गया। महादैत्य क्रुद्ध हो बाण, शक्ति, फरसा, चक्र, तोमर, भाला, भुशुण्डि और मुसल एक ही साथ प्रद्युम्न के ऊपर बड़े वेग से छोड़ने लगे तब श्रीकृष्ण पुत्र प्रद्युम्न बड़े क्रोधित हो सब प्रकार के अस्त्रों को छोड़ने वाले धनुष से छुटे बाणों से समर में दानवों के अस्त्रों को काट गिरायें और एक-एक को पाँच-पाँच बाणों से मारा फिर तो प्रद्युम्न के वध का निश्चय करने वाले सभी दैत्य क्रुद्ध हो गये। वे प्रद्युम्न के वध की आकांक्षा से बाण जालों की वर्षा करने लगे, तब अनङ्ग प्रकुपित शीघ्र धनुष को लेकर। महापराक्रमी प्रद्युम्न शम्बर के दस पुत्रों को शीघ्र ही मार डाले इसके बाद बलवान् केशव पुत्र कुपित हो दूसरे भल्ल नामक बाण से चित्रसेन का भी शिर शीघ्र ही काट डाले तब मरने से शेष बचे दैत्य जुटकर प्रद्युम्न को

मारने की इच्छा से चारों ओर से दौड़-दौड़ कर बाणों की वर्षा करते हुए युद्ध करने लगे वे रणोत्सुक दैत्य बाणों को धनुष पर चढ़ा कर छोड़ने लगे। महातेजस्वी प्रद्युम्न रण-क्रीड़ा करते हुए इन दैत्यों के शिर काट गिराये इस प्रकार उत्तम एक सौ धनुषधारियों को समर में मार कर शम्बर से समर करने की इच्छा से संग्राम के बीच खड़े हो गये तब सौ पुत्रों का मारा जाना सुनकर शम्बर क्रोधित हो गया।।१-१०।।

उसने सारथी से कहा कि मेरे रथ को युद्ध के लिये तैयार करो तब राजाज्ञा को सुन पृथ्वी पर झुक शिर से प्रणाम कर सेना के सहित रथ को सुसज्जित किया वह रथ हजारों मृगों से जुता हुआ था और उसपर सर्पराज के चित्र से अंकित ध्वजा लगी थी। उसमें सिंह का चर्म बिछा हुआ था और वह घण्टियों के जाल की माला से शोभ रहा था, वह दस भागों में नाना प्रकार के पशुओं के चित्रों से शोभा पा रहा था। और उसके अङ्गों पर ताराओं के चित्र बने हुए थे, वह सुवर्ण के कूबर से विभूषित था, लगे हुए सुन्दर पताकों से वह महान् ऊँचा लग रहा था और सिंह की भयदायक ध्वजा लगी थी। उसका प्रत्येक भाग अलग-अलग दिखाई पड़ रहा था, उसकी इषिका लोहे की तथा कूबर हीरे का था, उसका शिखर मन्दराचल की भाँति ऊँचा था और वह सुन्दर चामर से भूषित था। नक्षत्र माला से शोभित तथा सुवर्ण के दण्ड से विभूषित ऐसे शोभासम्पन्न रथ पर शम्बर चढ़ गया। सुवर्ण से चित्रित कवच को पहन धनुष और बाणों को ग्रहण कर मृत्यु से प्रेरित समर की इच्छा वाला शम्बर समरांगण को प्रस्थान कर दिया। वह दुर्धर, केतुमाली, शत्रुहन्ता तथा प्रमर्दन इन अपने चारों मन्त्रियों तथा विशाल सेना से घिरा शम्बर रण में चल पड़ा। दस हजार हाथियों, दो सौ रथों, आठ हजार घोड़ों और दस हजार पैदल चलने वाले योद्धों से घिरा हुआ शम्बर उस समय चला था।।११-२०।।

उसे संग्राम में जाते समय बहुत से उपद्रव हुए, गिद्ध और चकवा पक्षियों से व्याप्त आकाश में सन्ध्या समय के समान लाल बादल घड़-घड़ाने लगे। मेघ कठोर शब्दों में गर्जने लगें और आकाश से बिजली गिरने लगी

और महती सेना को काल की सूचना देते हुए श्रृगालिनियाँ अशुभ बोलियाँ बोलने लगीं। दानव के रक्तपान की इच्छा से उसके ध्वजा के ऊपर गिद्ध गिर पड़ा और उसके रथ के आगे पृथ्वी पर गिरा हुआ कबन्ध दिखाई पड़ने लगा। शम्बर के रथ के ऊपर पक्षी चीं-चीं, कूं-चीं ऐसा शब्द बोलने लगे और परिधि द्वारा चारों ओर से घिरा सूर्य राहु से ग्रस्त दिखाई देने लगा। भय की सूचना देने वाला उसका बायाँ नेत्र फड़कने लगा तथा बाईं भुजा फड़कने लगी और रथ के अश्व गिरने लगे। देव-शत्रु शम्बर के शिर पर कौवा गिर पड़ा और मेघ बालू तथा अंगारों से मिश्रित रुधिर की वर्षा करने लगे। रण के मध्य हजारों बार उल्कापात हुआ, घोड़ों को हाँकने वाले सारथी के हाथ से चाबुक गिर गया। उठे हुए उत्पातसूचक अशकुनों की चिन्ता न कर प्रद्युम्न के वध की आकांक्षा से शम्बर क्रुद्ध होता चला जा रहा था। भेरी, मृदंग, शंख, पणव, नगारा तथा दुन्दुभी के एक साथ बजने से पृथ्वी काँपने लगी। उस शब्द से पक्षिगण महान् संत्रस्त हुए और भय से व्याकुल चित्त हो चारों ओर भागने लगे।।२१-३०।।

उधर शत्रु-वध की चिन्ता करते हुए रण के बीच श्रीकृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न खड़े थे, असंख्य सेना से घिर जाने पर भी प्रद्युम्न ने युद्ध का ही निश्चय किया। शम्बर ने क्रुद्ध हो हजार बाणों से प्रद्युम्न को पीड़ित किया पर उन आये हुए बाणों को सिद्धहस्त की भाँति प्रद्युम्न ने काट गिराया। और हाथ में धनुष लेकर प्रद्युम्न भी बाणों की वर्षा करने लगे, शम्बर की सेना में कोई ऐसा वीर न था कि जो प्रद्युम्न के बाण से विद्ध न हुआ हो। प्रद्युम्न ने बाण की मार से उसकी सेना को लौटा दिया और शम्बर के समीप जो सेना स्थित थी वह भयभीत के समान हो अपने चित्तवृत्ति को बटोर कर खड़ी ही रह गई। शम्बर ने अपनी सेना को भागती देखकर क्रोध से व्याकुल हो अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि—हमारे कहने से तुम लोग जाकर शत्रु के पुत्र को मारो यह शत्रु उपेक्षा करने योग्य नहीं है इसको शीघ्र ही मार डालो। उपेक्षा किया हुआ शत्रु उपेक्षित रोग की भाँति शरीर को नष्ट कर देता है इसलिये मेरे प्रिय करने की इच्छा से इस पापी दुर्बुद्धि को मार डालो। इसके पश्चात् वे सचिव शम्बर की

आज्ञा को शिरोधार्य कर शीघ्रता से रथों को आगे बढ़ाते हुए क्रोध से बाणों की वर्षा करने लगे। तब उसको रण में दौड़ कर आते देख मकरध्वज बली प्रद्युम्न क्रुद्ध हो सावधानी से उनके सम्मुख खड़े हो गये। और महातेजस्वी प्रद्युम्न ने झुके पक्षों वाले पचास बाणों से दुर्धर को तथा तिरसठ बाणों से केतुमाली को बेधा।।३१-४०।।

और सत्तर बाणों से शत्रुहन्ता को तथा बयासी बाणों से प्रमर्दन को परम क्रोधी रुक्मिणी के आनन्द को बढ़ाने वाले प्रद्युम्न ने मारा। तब वे मन्त्री क्रुद्ध हो प्रत्येक ने साठ-साठ बाणों से समर में प्रद्युम्न को बेधा। उन बाणों को बीच ही में मकरध्वज प्रद्युम्न ने काट गिराया इसके पश्चात् अर्ध चन्द्रमा के समान बाण को लेकर राजाओं और सभी सैनिकों के देखते-देखते दुर्धर के सारथी का शिर काट डाला फिर सुन्दर पर्व वाले और तीक्ष्ण हैं कंक पत्र जिनके ऐसे चार बाणों से दुर्धर के चारों घोड़ों को तथा एक बाण से रथ को और एक बाण से जुए और छत्र तथा ध्वजा को एवं एक बाण से बन्धुर को काट गिराये। और साठ बाणों से दोनों चक्राक्ष को काट गिराया इसके बाद मकरध्वज ने तीक्ष्ण कंक पत्र वाले दूसरे बाण को ले मन्त्र जीवी दुर्धर की छाती में मारा उसका प्राण निकल गया, इससे वह निर्जीव शोभा तथा कान्ति से रहित हो गया। वह क्षीण पुण्य ग्रह की भाँति रथ से गिर पड़ा शूरवीर दानव दुर्धर के मारे जाने पर दानवेश्वर केतुमाली बाणों की वर्षा द्वारा श्रीकृष्ण पुत्र को पीड़ित करने लगा वह क्रोध से भृकुटि और मुख को भयंकर बनाये दौड़ता हुआ सहसा प्रद्युम्न से खड़े रहो-खड़े रहो ऐसा कहने लगा तब क्रुद्ध प्रद्युम्न बाण वर्षा कर उसको बाणों से वैसे ही ढक दिये जैसे वर्षा काल में मेघ जलधारा द्वारा पर्वत को ढक देता है, वह शम्बर दानव का मन्त्री धनुषधारी प्रद्युम्न से घायल हो गया।।४१-५०।।

उसने प्रद्युम्न के वध की इच्छा से चक्र लेकर उन पर छोड़ दिया तब श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र की भाँति तेजस्वी हजारों आरों वाले उस चक्र को आता देख सहसा कूदकर उसे पकड़ लिया और सबके देखते-देखते उसी चक्र से केतुमाली का शिर काट डाला। रुक्मिणी-पुत्र के इस महान् आश्चर्यकारी

कार्य को देख देवराज इन्द्र देवताओं सहित परम विस्मय को प्राप्त हो गये। गन्धर्व तथा अप्सरा उन पर पुष्पों की वर्षा करने लगी, केतुमाली को मारा गया देखकर शत्रुहन्ता और प्रमर्दन बड़े सैन्य समूह को साथ ले प्रद्युम्न पर चढ़ दौड़ा। वे सैनिक गदा, मुसल, चक्र, प्रास, तोमर, बाण, भिन्दिपाल चमकते हुए कुठार, कूट तथा मुद्गरों को श्रीकृष्ण नन्दन के वध के लिये एक साथ ही फेंकने लगे तब प्रद्युम्न भी उन अस्त्र जालों को अपने अनेक शस्त्र जालों से काट गिराये वीर प्रद्युम्न ने इस प्रकार हस्त लाघवता दिखाई उन्होंने हजारों हाथियों और हाथी के सवारों को मार डाला। सारथियों के साथ रथों और घोड़ों का मर्दन कर दिया बाण समूहों से ऐसा कोई शेष न बचा जो विद्ध न हुआ दिखाई दे। इस प्रकार मकरध्वज ने सभी सेना का मन्थन कर शोणित रूपी जल तरङ्गों वाली भयंकर नदी को बदा दी।।५१-६०।।

मोती के बहुत से हार उसमें लहरों की भाँति प्रतीत हो रहे थे तथा वसा और मेदा एवं हड्डियाँ उसमें कीच के समान प्रतीत हो रहीं थीं छत्र द्वीप के समान तथा बाण भँवर के समान लग रहे थे उस नदी का किनारा रथों से शोभित था। बाजूबन्द और कुण्डल रूपी कच्छपों वाली वह नदी ध्वजा रूपी मछलियों से विभूषित हो रही थी तथा हाथी रूपी ग्राहों से वह भयंकर नदी उक्त प्रकार के मछली और कच्छपों से शोभित हो रही थी। केश रूपी सेवारों से ढक रही थी वह नदी श्रोणि की नसों रूपी कमल तन्तुओं से युक्त तथा मनुष्य के मुख रूपी कमलों से व्याप्त श्वेत चँवर रूपी हंसों से शोभा पा रही थी। शिर रूपी मत्स्यों से भरी रक्त को बहाने वाली दुस्तर तथा भयंकर उस नदी को प्रद्युम्न ने बहाई थी। कठिनता से देखने और लाँघने योग्य भयंकर नदी यमराज के राष्ट्र को बढ़ाने वाली ज्ञात हो रही थी श्रीमान् रुक्मिणी पुत्र वहाँ शत्रुहन्ता को लक्ष्य कर बहुत बाणों को चारों ओर फेक रहे थे और अन्य धनुषधारियों का मन्थन कर रहे थे। तब शत्रुहन्ता ने पुनः क्रोध कर उत्तम बाण को छोड़ा वह बाण प्रद्युम्न की छाती में आकर लगा। उस बाण से विद्ध हो प्रद्युम्न विशेष रूप से काँपने लगे तब उन बलवान् ने मरने की इच्छा वाले शत्रुहन्ता के लिये शक्ति उठा लिया। रुक्मिणी-पुत्र के द्वारा रण में छोड़ गई

वह शक्ति इन्द्र के वज्र के समान शब्द करती हुई गिरी और शत्रुहन्ता के हृदय का भेदन कर पृथ्वी में प्रवेश कर गई। विदीर्ण हृदय वाला वह शिथिल अङ्ग हो गया और मर्म अस्थि के बन्धन से मुक्त हो गया महाबली शत्रहन्ता रुधिर का उद्गार छोड़ता हुआ भूतल पर गिर पड़ा।।६१-७०।।

शत्रुहन्ता को समर में गिरा देख कर प्रमर्दन मूसल लेकर खड़ा हो गया और बोला कि। ठहरो रणप्रिय होकर तुम क्यों इन साधारण सिपाहियों से युद्ध कर रहे हो हे दुर्बुद्धे! तुम मेरे साथ युद्ध करो तो इस संसार में नही रह सकोगे। हमारे शत्रु तुम्हारे पिता वृष्णिकुल में उत्पन्न हुए हैं यदि उनके पुत्र को मारता हूँ तो उन्हीं का मारा जाना होगा। उसके मर जाने पर सभी देवताओं का विनाश हो जायेगा तब दिंति पुत्र सभी दानव हतशत्रु होकर प्रसन्न होंगे। हमारे अस्त्र से तुम्हारे मरने के बाद जो रुधिर निकलेगा उसी से शम्बर के पुत्रों की तिलाञ्जलि दूँगा। आज भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी गतायु तुम्हारा युवायस्था में मरण सुन कर करुण विलाप करेगी। तुम्हारे पिता चक्रधर निष्फल आशा वाले हो जायेंगे वह मन्द बुद्धि तुम्हारा मरण जान कर प्राण छोड़ देगा। ऐसा कह कर वह परिघ से शीघ्र ही रुक्मिणी पुत्र को मारा तब परिघ से मार खाकर महातेजस्वी प्रतापी रुक्मिणी पुत्र। कूद कर बाहुओं से उसके रथ को पृथ्वी पर चूर्ण-चूर्ण कर दिये और प्रमर्दन रथ से कूद कर पैदल खड़ा हो गया। यह सहसा गदा लेकर रुक्मिणी पुत्र पर टूट पड़ा तब प्रद्युम्न ने उसी गदा से प्रमर्दन को मार डाला।।७१-८०।।

दैत्य प्रमर्दन के मर जाने पर उसे देख सभी राक्षस भाग निकले उन प्रद्युम्न के समक्ष ठहरने में वैसे ही समर्थ न हो सके कि जैसे सिंह के भय से हाथी। जिस प्रकार कुत्ते को देख कर भेड़ें भागती हैं उस प्रकार विषाद करती हुई सेना प्रद्युम्न के भय से दुःखी हो भागने लगी। शरीर में अस्त्रों द्वारा घाव हो जाने से रक्त से लिप्त वस्त्रों वाली वह सेना खुले बालों वाली रजस्वला युवती की भाँति शोभा से रहित हो संकुचित होने लगी। कामदेव के बाणों से विशेष वृद्ध युवती जैसे निर्दय कामुक से पीड़ित हो जैसे रति को देखने में अर्थात् रति करने में असमर्थ हो अपने घर जाने की इच्छा कर वहाँ नहीं

ठहरती वैसे ही युवती सदृश वेष वाली वह सेना निदर्य प्रद्युम्न के बाणों से पीड़ित हो समर करने की इच्छा न करती हुई अपने घर को भाग चली वहाँ ठहरने की इच्छा न की।।८१-८४।।



अथ षडधिकशततमोऽध्याय: ।।१०६।।

वैशम्पायनजी बोले–हे विशाम्पते! इसके पश्चात् कुपित होकर शम्बर ने सारथी से कहा कि हे वीर! तुम मेरे रथ को शीघ्रता से शत्रु के सम्मुख ले चलो। जिससे कि मैं अपने अनिष्ट करने वाले को बाणों से मारूँ तब शम्बर का प्रिय करने वाला सारथी स्वामी की बात सुनकर सुवर्ण से विभूषित रथ चलाने लगा, उस रथ को आते हुए देखकर प्रफुल्लित नेत्र प्रद्युम्न ने धनुष को ले उसपर स्वर्णभूषित बाण का सन्धान किया और अत्यन्त कुपित हो रण में उस बाण से शम्बर को कुपित करते हुए मारा। हृदय में बाण के लगने से देवशत्रु शम्बर विकल हो गया और रथ का आश्रय ले वहीं रथ पर मूर्छित हो गया। मूर्छा दूर हो जाने पर पुन: चैतन्य हो वह शम्बर धनुष ले कुपित हो सात तीक्ष्ण बाणों से श्रीकृष्ण-पुत्र को मारा। प्रद्युम्न ने अपने सात बाणों से बीच ही में उनके सात टुकड़े कर दिये और तीखे सत्तर बाणों से शम्बर को मारा। फिर मोरपंख के कंक पत्र वाले हजार बाणों से क्रोध कर शम्बर को वैसे ही मारा जैसे मेघ अपनी धाराओं से पर्वत को मारते हैं। दिशायें और दिशाओं के कोने बाण की वर्षा से ढक गये फिर भी प्रद्युम्न ने दिशा और विदिशाओं को बाणवर्षा कर आच्छादित कर दिया। आकाश में अन्धकार छा गया, सूर्य का दिखाई देना कठिन हो गया तब शम्बर ने वैद्युतास्त्र से अन्धकार को हटाया।।१-१०।।

और प्रद्युम्न के रथ पर बाण वर्षा करने लगा। हे राजन्! उस अस्त्र-जाल को प्रद्युम्न अपने हाथ की स्फूर्ति दिखाते हुए झुके हुए पर्वों युक्त बाणों से काट गिराये, प्रद्युम्न द्वारा बाणों की वृष्टि समाप्त हो जाने पर काल शम्बर माया के द्वारा वृक्षों की वर्षा करने लगा तब वृक्षों की महती वर्षा को देखकर

प्रद्युम्न क्रोध से मूर्छित हो गये। आग्नेय-अस्त्र को छोड़ वृक्षों का नाश कर दिया, वृक्षों के भस्म हो जाने पर काल शम्बर सांघातिक शिलाओं को छोड़ने लगा। प्रद्युम्न ने वायव्यास्त्र को छोड़कर समर में उन शिलाओं का वारण कर दिया इसके बाद प्रतापी देवशत्रु काल शम्बर ने दूसरी माया का प्रयोग किया। हे विशाम्पते! वह कालशम्बर धनुष चढ़ा प्रद्युम्न के रथ पर सिंह, व्याघ्र, शूकर, रीछ, बानर और मेघों के समान हाथी तथा ऊँटों को फेंकने लगा तब प्रद्युम्न ने गन्धर्वास्त्र चलाकर इन सभी के टुकड़े-दुकड़े कर दिये। प्रद्युम्न के द्वारा इस माया का नाश देख कर क्रोधमूर्छित हो शम्बर दूसरी माया का प्रयोग किया। उसने मुँह बाये साठ वर्ष के गजराजों की रचना कर प्रद्युम्न के सामने भेजा कि जिन पर उत्तम हाथीवान् तथा कल्पित रण पण्डित शूर-वीर बैठे थे। उस माया को अपनी ओर झपटती देख कर कमललोचना महामना प्रद्युम्ना सैंही माया रचने की योजना बनाये।।११-२०।।

बुद्धिमान् रुक्मिणी पुत्र द्वारा बनाई गई उस सैंही माया से वह नागवती माया वैसे ही नष्ट हो गई कि जैसे सूर्य से रात्रि नष्ट हो जाती है। तब हस्ती माया को नष्ट हुआ देख वह महासुर दानवेन्द्र दूसरी सम्मोहिनी नामक माया की रचना की। तब मयनिर्मित सम्मोहिनी नामक माया को देखकर बलवान् प्रद्युम्न ने संज्ञास्त्र द्वारा उसका नाश कर डाला। इस प्रकार उस माया के नष्ट होने से शम्बर क्रुद्ध हो गया और उस समय उस महातेजस्वी दानवेश्वर ने सैंही माया की रचना की। उन सिंहों को अपनी और झपटते देख प्रतापी रुक्मिणी-पुत्र ने गान्धर्व अस्त्र को उठा शरभों की रचना की, वे शरभ आठ पैरों वाले बल से उन्मत्त रण में नख और दाँतों के आयुधों को धारण करने वाले थे। वे शरभ सिंहों को वैसे ही भगा दिये कि जैसे वायु मेघों को तितर-बितर कर देता है तब अष्टापद माया से सिंहों को भागते देखकर शम्बर चिन्ता करने लगा कि कैसे इसको मार डालूँ, अहो! मैं मूर्ख स्वभाव का हूँ जो इसको बाल्यावस्था में ही न मार डाला। मैंने इस दुर्मति को अस्त्र सिखलाया और युवा बना दिया, अब रण के मोर्चे पर डटे हुए शत्रु को कैसे मारूँगा। 'हाँ स्मरण आया' असुरघाती देव-देव शंकरजी ने जिस माया को मुझे दिया था वह भयंकर तीक्ष्ण पन्नगी नाम की माया मेरे

पास है तो अब सर्पों से व्याप्त उसी महामाया को मैं रचूँ जिससे मायावी यह बलवान् शत्रु जलकर भस्म हो जाय।।२१-३०।।

'ऐसा विचार कर' शम्बर ने विष की ज्वाला से व्याप्त पन्नगी माया की रचना की उस पन्नगमयी माया ने घोड़े, सारथी और रथ सहित प्रद्युम्न को शरबन्धनों से बाँधने लगी तब वृष्णिवंशज अपने को बँधता देख। सर्पनाशिनी सौपर्णी माया की चिन्तना करने लगे, महात्मा प्रद्युम्न द्वारा चिन्तना मात्र से वह महामाया आ गई। तो समर में गरुड़ विचरने लगे जिससे महाविषैले सर्प नष्ट हो गये, इस प्रकार सर्प माया के नष्ट होने पर देवता तथा असुर सभी प्रद्युम्न की प्रशंसा करने लगे। हे रुक्मिणी के आनन्द को बढ़ाने वाले, हे महाबाहो! हे वीर! तुमने जो इस माया का मर्दन कर दिया इससे हम लोग सन्तुष्ट हो गये हैं। सर्प वाली माया के नष्ट हो जाने से शम्बर पुनः प्रद्युम्न को मारने का विचार करने लगा- कि हमारे पास सुवर्ण से विभूषित कालदण्ड के समान एक मुद्गर है। वह युद्ध में देवता-दानवों से अप्रतिहत है अतः उसी के प्रयोग में लाऊँ जिसको परम सन्तुष्ट पार्वती ने पहले मुझको दिया था। उन्होंने कहा था कि हे शम्बर! तुम इस सुवर्णभूषित मुद्गर को ग्रहण करो मैं अपने शरीर से दुश्चर तप कर इसको रची हूँ। सम्पूर्ण असुरों का विनाशक यह मायान्तकरण नाम का मुद्गर है, इस मुद्गर से मैंने इच्छानुसार रूप धारण करने वाले भयंकर तथा बली शुम्भ-निशुम्भ नामक दानवों को गणों सहित मारा डाला है, तुम अपने प्राण के संशय उत्पन्न होने पर इसे शत्रु को मारने के लिये छोड़ना।।३१-४०।।

ऐसा कहकर पार्वती देवी वही अन्तर्धान हो गई थीं तो मैं उस श्रेष्ठ मुद्गर को शत्रु-वध के लिये छोड़ूँगा। तब शम्बर के चित्त की बात को जान कर देवराज इन्द्र नारदजी से कहने लगे कि हे नारद! तुम शीघ्र ही प्रद्युम्न जी के रथ के पास जाओ। और महाबाहु प्रद्युम्न को समझाओ तथा उनको उनकी पूर्व जाति का स्मरण कराओं एवं शम्बर के वध के लिये उन्हें वैष्णवास्त्र दो। हे असुरसूदन! उन्हें अभेद्य कवच भी दो। इन्द्र द्वारा इस प्रकार कहने पर नारदजी शीघ्रतापूर्वक आकाश में स्थित हो मकरध्वज प्रद्युम्न से बोले हे कुमार। मुझ आये हुए देवगन्धर्व नारद को देखो, तुम्हें समझाने के लिये देवराज ने मुझे

भेजा है। हे मानद! तुम अपने पूर्वजन्म के भाव का स्मरण करो, तुम कामदेव हो, शंकरजी के क्रोधाग्नि से जलकर तुम यहाँ अनङ्ग के नाम से पुकारे जाते हो। इस समय तुम वृष्णिवंश में रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए हो, तुमको केशव ने उत्पन्न किया है, तुम प्रद्युम्न नाम से पुकारे जाओगे। हे मानद! तुम्हारे जन्म की सात रात्रियाँ भी नहीं बीतीं कि तुम्हें प्रसूतिगृह से शम्बर हरकर यहाँ लाया। हे महाबाहो! तुम शम्बर के वध के लिये ही हरण किये गये हो इसी देवकार्य को सिद्ध करने के लिये केशव ने शम्बर की उपेक्षा कर दी थी। यह यह शम्बर की मायावती नाम की भार्या है उसको अपनी पहले की भार्या कल्याणी रति समझो।।४१-५०।।

उसने तुम्हारे संरक्षण के लिये शम्बर के घर में निवास किया है दुरात्मा शम्बर को मोह में डाले रहने के लिये अपने शरीर से माया की स्त्री बना कर रमण के लिये भेजा करती है, इस प्रकार कहने से अपनी प्रतिष्ठित भार्या रति को प्रद्युम्न ने जान लिया। हे वीर! समर में वैष्णवास्त्र द्वारा शम्बर को मार देने पर अपनी भार्या मायावती अर्थात् रति को लेकर द्वारका को चले जाना। हे शत्रु-सूदन! महातेजस्वी वैष्णवास्त्र तथा कवच को ग्रहण करो, इन्द्र ने संग्रह कर तुम्हारे लिये भेजा है। हे तात! अब मेरी दूंसरी बात को सुनो और निःशंक भाव से कार्य करो, इस देवशत्रु का मुद्गर बड़ा ही पराक्रमी है। पार्वती ने प्रसन्न होकर संग्राम में देवता, दानवों तथा मनुष्यों पर निष्फल न होने वाले शत्रुनाशक मुद्गर को दिया था। इसलिये उस अस्त्र को विफल कर देने के लिये तुम पार्वती देवी की स्तुति करो, वह महादेवी रणोत्सुकों द्वारा नमस्कार तथा स्तुति करने योग्य हैं। संग्राम में शत्रु के साथ लड़ते हुए उसे विफल होने के लिये प्रयत्न करो, इस प्रकार कहकर नारदजी इन्द्र के समीप चले गये।।५१-५८।।



अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः।।१०७।।

वैशम्पायनजी बोले कि इसके बाद क्रुद्ध हो शम्बर उस मुद्गर को उठा

लिया तब उस मुद्गर को उठाते ही बारहो सूर्य निकल आये। सभी पर्वत और पृथ्वी तल काँपने लगा, सागर ऊपर को उछलने लगे और सभी देवता दुःखी हो गये। आकाश गिद्धों और चकवा नामक पक्षियों से भर गया, उल्कापात होने लगा और मेघ रुधिर की वर्षा करने लगे, वायु आँधी की भाँति बहने लगा। इस प्रकार के उत्पातों को देखकर वीर प्रद्युम्न शीघ्र ही रथ से उतर हाथ जोड़ स्तुति करने को स्थित हो गये। वे मन से शंकर की प्रिया पार्वती का स्मरण करने लगे और शिर से प्रणाम कर देवी की स्तुति करना प्रारम्भ कर दिये। प्रद्युम्नजी बोले कि कात्यायनी तथा गिरि पर्वत पर शयन करने वाली पार्वती को नमस्कार है, तीनों लोकों की माया को एवं पुनः कात्यायनी देवी को नमस्कार है। शत्रुविनाशिनी तथा शिव की प्रिया गौरी के लिये नमस्कार है, शुम्भ तथा निशुम्भ को मन्थन करने वाली देवी को नमस्कार है। हे कालरात्रि! तुम्हें नमस्कार है तथा कौमारी को नमस्कार है, गहन वन में निवास करने वाली देवी को हाथ जोड़ कर नमस्कार करता हूँ। विन्ध्य पर्वत पर निवास करने वाली, कठिन विपत्ति को नष्ट करने वाली रणप्रिया तथा रणदुर्गा एवं महादेवी जया और विजया को नमस्कार करता हूँ। अपराजिता और शत्रुनाशिनी अजिता को मैं नमस्कार करता हूँ तथा हाथ में घण्टा लिये हुई और घण्ट की माला से व्याप्त पार्वती को नमस्कार करता हूँ।।१-१०।।

त्रिशूल धारण करने वाली महिषासुर घातिनी को नमस्कार करता हूँ तथा सिंह के समान मुख वाली एवं श्रेष्ठ सिंह चिह्न से चिह्नित ध्वजा वाली भगवती को नमस्कार करता हूँ। मैं एकानंशा तथा यज्ञ में सत्कृत गायत्री देवी को नमस्कार करता हूँ तथा ब्राह्मणों की सावित्री देवी को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। हे देवि! आप मेरी बराबर रक्षा करें तथा संग्राम में विजय करें, इस प्रकार कामदेव के वचनों को सुनकर दुर्गा मन से प्रसन्न हो गईं। तब अन्तरात्मा से परम प्रसन्न हो देवी ने यह कहा कि–हे महाबाहो! हे रुक्मिणी के आनन्द को बढ़ाने वाले वत्स! तुम वर माँगो क्योकि मेरा दर्शन अमोघ अर्थात् निष्फल नहीं होता, इस प्रकार देवी के वचनों को सुनकर प्रद्युम्न पुलकित हो गये, मन से प्रसन्न हो गये। देवी को शिर से प्रणाम कर वर

माँगना आरम्भ किये, हे देवि! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो मेरे अभिष्ट वर को दो। हे वरदे! मैं यही वर चाहता हूँ कि सभी शत्रुओं पर मेरी विजय होवे और जो तुमने अपनी आत्मा से उत्पन्न मुद्गर शम्बर को दिया है यह मुद्गर मेरे शरीर का स्पर्श कर कमल की माला हो जाय, तब 'ऐसा ही होगा' यह कहकर भगवती वहीं अन्तर्धान हो गईं। और महातेजस्वी प्रद्युम्न सन्तुष्ट हो रथ पर चढ़ गये, इसके पश्चात् ही क्रोध से विह्वल शम्बर उस मुद्गर को उठाया। और घुमाकर उस बलवान् ने प्रद्युम्न की छाती पर चला दिया तब वह मुद्गर कामदेव के समीप जा कमल की माला होकर प्रद्युम्न के गले में पड़ गया, उस माला से प्रद्युम्न वैसे ही सुशोभित होने लगे कि जैसे नक्षत्रों की माला से घिरा चन्द्रमा।।११-२०।।

प्रद्युम्न के निकट पहुँच मुद्गर को पुष्प की माला हुआ देखकर केशव-पुत्र का पूजन करते हुए गन्धर्वों सहित देवता, सिद्ध तथा महर्षिगण प्रद्युम्न को साधु-साधु कहने लगे, इसके पश्चात् प्रद्युम्न नारद द्वारा लाये गये परम श्रेष्ठ वैष्णवास्त्र को धनुष नवाकर चढ़ाया और यह कहा कि यदि मैं सचमुच केशव का आत्मज रुक्मिणी-पुत्र हूँ तो इस सत्य के बल हे बाण! तुम शम्बर को रण में मार डालो, ऐसा कहकर महात्मा प्रद्युम्न ने बाण पकड़ धनुष को खींचकर शम्बर के ऊपर छोड़ दिया तब वृष्णिसिंह प्रद्युम्न द्वारा छोड़ा गया असुरों को मोह में डालने वाला वैष्णवास्त्र जैसे तीनों लोकों को जलाता हुआ शम्बर की छाती को फोड़कर पृथ्वी तल में प्रवेश कर गया, शम्बर के मांस, हड्डी, स्नायु, चमड़ा तथा रक्त का पता न चला। वह सभी वैष्णवास्त्र के तेज से जल कर भस्मीभूत हो गया, महाकाय दानवाधम शम्बर के मारे जाने पर। देवता तथा गनधर्व प्रसन्न हो गये और अप्सराओं के समूह नाचने लगे, उर्वशी, मेनका, रम्भा, विप्रचित्ता तथा तिलोत्तमा आदि प्रमुख स्वर्गीय अप्सरायें भी प्रसन्न मन से नाचने लगीं, प्रायः स्थावर-जंगम सभी जगत् प्रसन्न हो गया, देवताओं के साथ इन्द्र महाप्रसन्न हुए और प्रद्युम्न का पुष्पों की वर्षा से पूजन कर प्रसन्नता प्रकट किये। मधुसूदन-पुत्र प्रद्युम्न द्वारा वैष्णावास्त्र से दैत्यराज शम्बर के रण में मारे जाने पर शत्रु के भय से रहित हो देवता मकरध्वज प्रद्युम्न की स्तुति

करते हुए चले गये। वे रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न भी युद्ध के परिश्रम से थके हुए नगर में प्रवेश किये और नयी प्रियतमा द्वारा प्रेम से ग्रहण किये जाने वाले प्रियतम की भाँति शीघ्रता से पैर उठा कर रति का दर्शन किया।।२१-३२।।



अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः।।१०८।।

वैशम्पायनजी बोले कि कालशम्बर अष्टमी तिथि को समर में प्रद्युम्न से मारा गया। प्रद्युम्न जी कालशम्बर को मार मायावती देवी को साथ ले पिता के नगर को चल दिये। प्रद्युम्न आकाश मार्ग से अपने पिता के तेज से रक्षित द्वारकापुरी में आ गये। प्रद्युम्न उस मायावती के साथ आकाश से केशव के अन्तःपुर में उतरे। केशव की पटरानियाँ विस्मित तथा प्रसन्न एवं भयभीत हो गई। प्रिया के साथ प्रद्युम्न को देखती हुई रानियाँ अपने नयनों को सफल मानने लगीं। पद-पद पर प्रद्युम्न को देखकर श्रीकृष्ण की सभी पत्नियाँ स्नेह की कामना करने लगीं। रुक्मिणी जी उन्हें देख आँखों में आँसू भर कर बोलीं। आधी रात्रि के बाद स्वप्न में कंसारि श्रीकृष्ण जी ने मुझे हार सहित पल्लव दिया है। उस हार को केशव मेरे अंक में रख मेरे गले में बाँध दिये हैं।।१-१०।।

और कमल लिये बार-बार मुझे देखती हुई एक श्यामा स्त्री मेरे घर में प्रवेश कर गई है। फिर वह मुझे पकड़ सुन्दर जल में स्नान कराई, मेरे शिर पर उस स्वच्छ माला को दे दी है, इस प्रकार प्रसन्न मन से स्वप्न का वर्णन करती हुई रुक्मिणी कहने लगीं कि यह प्रिय दर्शन तथा दीर्घायु पुत्र निश्चय ही किसी धन्य-भाग्या स्त्री का है। हे पुत्र! तुम्हारे द्वारा कौन सी यह स्त्री सौभाग्यशालिनी हुई है। मेघ के समान श्याम वर्ण वाले तुम अपनी भार्या के साथ किस लिये यहाँ पर आये हो, मेरा भी पुत्र प्रद्युम्न इतनी ही अवस्था में ऐसे ही कहीं सुशोभित हो रहा होगा, देखने में तुम श्रीकृष्ण के ही कुमार ज्ञात होते हो यह मेरा तर्क असत्य नहीं है। तुम्हारा मुख नारायण के ही समान है और केश तथा केशान्त भी उन्हीं के समान हैं। और जाँघें, वक्षस्थल तथा

भुजायें हलधर के समान हैं तो अपने शरीर से वृष्णि के चिह्न प्रकट करते हुए तुम कौन हो? इसी बीच नारद द्वारा शम्बर वध का समाचार सुन सहसा श्रीकृष्णजी आ गये।।११-२०।।

ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न तथा अपनी पतोहू मायावती को देखा और वे सहसा देवता के समान रुक्मिणी देवी से बोले। श्रीकृष्ण ने कहा हे देवि ! यह तुम्हारा ही पुत्र आया है इसने शम्बर को मार कर उसकी मायाओं को भी नष्ट कर डाला है। मायावती नाम से विख्यात यह सती तुम्हारे पुत्र की भार्या है। पहले कामदेव के नष्ट हो जाने से यह कामदेव की पत्नी है न कि शम्बर की रतिप्रिया भार्या है, यह शोभना माया का रूप धारण कर उस दैत्य को बराबर मोह में डाले रहती थी। यह अपनी माया से अपने ही समान दूसरा रूप बनाकर शम्बर को सन्तुष्ट करने के लिये वहाँ रहा करती थी। यह श्रेष्ठ अङ्गों वाली मेरे पुत्र की पत्नी और तुम्हारी पुत्र-वधू है। मेरे पुत्र-वधू को घर में ले जाओ और आये हुए पुत्र का आदर-सत्कार करो। वैशम्पायनजी बोले कि श्रीकृष्ण के वचनों को सुनकर रुक्मिणी अतुल हर्ष को प्राप्त कर बोली कि।।२१-३०।।

अहो ! आज वीर पुत्र के आ जाने से मैं धन्य-धन्य हो गई और मनोरथ पूर्ण हो गया। भार्या के साथ हे पुत्र ! आओ भवन में प्रवेश करो। इसके पश्चात् प्रद्युम्न ने पिता गोविन्द और माता रुक्मिणी के चरणों को नमस्कार कर महाबली हलायुध की पूजा की, केशव ने प्रद्युम्न को उठा अंक भर उनके मस्तक को सूँघा। और इधर स्नेह से गद्गद रुक्मिणी जी उस वधू को प्यार से आलिंगन तथा ग्रहण कर पत्नी सहित आये हुए पुत्र को उसी प्रकार घर में लिवा ले गईं कि जैसे अदिति शची और इन्द्र को घर में लिवा ले गई थीं।।३१-३६।।



अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः।।१०९।।

वैशम्पायनजी बोले-हे यज्ञश्रेष्ठ! एक आह्निक नाम का स्तोत्र है जिसको प्रद्युम्न की रक्षा के लिये बलदेव जी ने कहा था, जिसका पाठ कर

मनुष्य पवित्र आत्मा वाला हो जाता है। जिसको विष्णु ने भी कहा था तथा धार्मिक ऋषि-मुनियों ने भी कहा है। किसी समय बलदेव के साथ प्रद्युम्न घर में बैठे थे उसी समय प्रद्युम्न हाथ जोड़ प्रणाम कर बलराम जी से बोले। आप मेरे लिये कोई स्तोत्र बतलाइये कि जिसका जप कर मैं निर्भय होऊँ। श्री बलराम जी ने आह्निक स्तोत्र को बतलाया- (आप मूल ग्रन्थ में देख लें) बलराम जी द्वारा कहे गये इस स्तोत्र को लक्ष्मी तथा विजय की आकांक्षा से जो विद्वान् मनुष्य किसी को सुनाता अथवा स्वयं सुनता है उसकी मनोकामना पूर्ण होती है।।१-१०।।

इस मंगलाष्टशत नामक स्तोत्र को जो जपता है अर्थात् मन से पाठ करता है वह वध, बन्धन, अतिक्लेश, पराजय को नहीं प्राप्त करता है। यह कल्याण को देने वाला है तथा धन, आयु एवं यश को देने वाला और वेद के समान पवित्र है। यह सुन्दर स्तोत्र पुत्र को उत्पन्न करने वाला है और मनुष्य के शुभ कल्याण तथा शुभ बुद्धि को उत्पन्न करने में उत्तम है। यह सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने वाला और अपने कुल की कीर्ति को बढ़ाने वाला है।।११-१७।।



अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः।।११०।।

वैशम्पायनजी बोले कि जिस महीने में आत्मघाती शम्बर प्रद्युम्न जी को हर ले गया था उसी महीने में जाम्बवती से साम्ब उत्पन्न हुए थे। लड़कपन से ही बलराम जी साम्ब को शस्त्र विद्या सीखने में लगा दिये थे। साम्ब के जन्म काल में श्रीकृष्ण जी द्वारका में वैसे ही विचर रहे थे कि जैसे इन्द्र के बगीचे में देवता विचरण करते हैं। यादवों की लक्ष्मी को देखकर इन्द्र अपनी लक्ष्मी से द्वेष करता था और जनार्दन के भय से राजे भी शान्ति नहीं प्राप्त करते थे। एक समय वाराणसी में दुर्योधन के यज्ञ में सभी राजे आये हुए थे। उसमें जनार्दन की प्रशंसा सुनकर श्रीकृष्ण के दूतों से प्रेम सम्बन्ध कर सभी राजे श्रीकृष्ण के मन्दिर द्वारकापुरी में आये। दुर्योधन आदि कौरव तथा धृतराष्ट्र के वंश में रहने वाले पाण्डव प्रमुख धृष्टद्युम्न आदि राजे। पाण्ड्य, चोल तथा

कलिङ्ग देश के राजे, बाह्लीक, द्राविण तथा खश देश के राजे अट्ठारह अक्षौहिणी सेना साथ लिये गोविन्द की भुजाओं से रक्षित द्वारका पुरी में आये वहाँ वे पृथ्वीपति राजे रैवतक पर्वत को घेर कर अलग रहने की योजना बना कर अपनी निर्दिष्ट भूमियों में पड़ाव डाल दिये। इसके बाद कमलनेत्र हृषीकेश प्रमुख यादवों के साथ राजाओं के समीप स्वागत के लिये गये तब उनके मध्य स्थित हो यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण शरद्कालीन सूर्य के समान सुशोभित होने लगे।।१-१४।।

राजाओं के बैठ जाने पर यादवों के सहित वह राजाओं का समाज शोभा पाने लगा। यादवों और राजाओं का इस प्रकार समागम होने पर केशव को सुनाते हुए राजे विचित्र कथायें कहने लगे। इसी बीच मेघ के समान शब्द करने वाला वायु बहने लगा तथा भयंकर दुर्दिन हो गया और कड़कती हुई बिजलियाँ चमकने लगीं। इसके पश्चात् अपनी जटाओं को समेटे हाथ में वीणा लिये हुए नारद जी दिखाई पड़े। सागर के समान गम्भीर इन्द्र के मित्र श्रीमान् नारद मुनि राजाओं के मध्य उतर पड़े। नारद जी के भूमि पर उतर जाने के बाद वह अद्भुत मेघ हट गया।।१५-२०।।

नारद मुनि राजाओं के बीच में आसन पर बैठे हुए यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्णजी से बोले कि तुम देवताओं में एक हो, तुम्हारे समान लोक में कोई दूसरा नहीं है। श्रीकृष्ण जी हँस कर मुनि से उत्तर में बोले तुम सत्य कहते हो। मुनिश्रेष्ठ नारद राजाओं के मध्य बोले कि हे श्रीकृष्ण! आपके वाक्यों से मेरी शंका का समाधान हो गया अब मैं जाता हूँ। इस प्रकार कह कर नारद को प्रस्थान करते देख राजे श्रीकृष्ण से कहने लगे हे माधव! नारद के आश्चर्य तथा धन्य हो ऐसा कहने पर आपने प्रतिउत्तर में जो आश्चर्य तथा दक्षिणा सहित मैं ही धन्य हूँ ऐसा कहा है सो इस महान् दिव्य मन्त्र पद का क्या अर्थ है यह हम लोग नहीं समझ पाये। इसके बाद उन श्रेष्ठ राजाओं से श्रीकृष्ण ने कहा कि इसके अर्थ को नारद जी से सुनना चाहिये वे द्विज नारद जी आप लोगों से कहेंगे। हे नारद! जिस बात को तुमने कहा है और जो मैंने उसका प्रतिउत्तर दिया है उसके तत्त्वार्थ को कहो ये राजे सुनना चाहते हैं। तब वे नारद जी

आसन पर बैठ कर उन जगत् वन्द्य श्रीकृष्ण के प्रभाव को कहना प्रारम्भ किये।।२१-३०।।

नारदन जी बोले कि यहाँ आये हुए जितने राजे हैं वे सभी श्रेष्ठ राजे इस बात को सुनें कि जिस प्रकार हम इन महान् श्रीकृष्ण का पार पाये हैं। मैं एक समय गंगा के तट पर त्रिकाल स्नान के लिये गया था तब वहाँ एक रात्रि निवास किया रात्रि बीत कर सबेरा होने पर तथा सूर्य के दिखाई पड़ने पर मैंने पर्वत के समान एक कछुए को देखा वह एक कोस का गोल तथा दो कोस का लम्बा था। वह चार चरणों वाला मेरी वीणा के आकार का था तब हमने कहा हे कूर्म! हमारे समझ से तुम्हारा शरीर आश्चर्यमय है तथा तुम धन्य हो। जो तुम अभेद्य दो कपालों से ढके हुए हो, तुम किसी अन्य बात की चिन्ता न करते हुए निःशंक भाव से जल में विचरण करते हो। तब उस जलचर कछुए ने मुझसे मनुष्य के समान वाणी में कहा मेरे में क्या आश्चर्य है और मैं कैसे धन्य हूँ। हे द्विज! धन्य हैं ये गंगाजी कि जिनके अन्दर हमारे जैसे हजारों जलचर विचरण कर रहे हैं इससे बढ़कर परम आश्चर्य क्या होगा। तब मैं कुतूहलवश गंगा नदी के पास गया और उनसे कहा कि हे सरितश्रेष्ठे! नित्य आश्चर्य से युक्त तुम धन्य हो। जो तुम इस प्रकार महान् शरीर वाले जलचरों से युक्त हो शोभित हो रही हो।।३१-४०।।

इस प्रकार कहने पर गंगा ने रूप धारण कर मुझ ब्राह्मण नारद से कहा। हे द्विजश्रेष्ठ! ऐसा मत कहो न मैं धन्य हूँ न आश्चर्ययुक्त हूँ। इस लोक में सबको आश्चर्य करने वाला धन्य समुद्र है। जहाँ हमारी जैसी विस्तारवाली सैकड़ों नदियाँ बह कर जाती हैं, सो मैं गंगा की बात सुन समुद्र के पास गया। और मैंने कहा कि हे महार्णव! तुम लोकों में धन्य हो और आश्चर्यमय हो, तुम जल के उत्पत्तिस्थान सलिलेश्वर हो। जल वहन करने वाली लोकपावन तथा लोकों से नमस्कृत ये तुम्हारी नदी रूप पत्नियाँ प्रेमपूर्वक तुम्हारे स्थान में आकर तुमसे मिलती हैं। अपने जल समूह का भेदन कर समुद्र उठा और हमसे कहने लगा कि–हे देवगन्धर्व! ना-ना ऐसा मत कहो, धन्य यह वसुधा है कि जिसके ऊपर मैं स्थित हूँ। पृथ्वी को छोड़कर इस लोक में कौन आश्चर्यमय

तथा धन्य है, सो मैं सागर की बात सुनकर पृथ्वी तल पर स्थित होकर कौतूहल से युक्त हो पृथ्वी से कहने लगा कि हे धरित्रि! तुम शरीरधारियों की उत्पत्तिस्थान हो इसलिये तुम धन्य हो।।४१-५०।।

जो तुम प्राणियों पर महान् क्षमा करती हो इसलिये तुम आश्चर्यमय हो, तुम मनुष्यों को उत्पन्न करने वाली कही जाती हो। क्षमा तुमसे ही उत्पन्न हुई है इस प्रकार मेरे कहे गये वचनों से पृथ्वी उत्तेजित हो गई और अपने स्वाभाविक धैर्य को छोड़ प्रकट हो मुझसे कहने लगी कि ना-ना ऐसा मत कहो। मैं दूसरे के द्वारा धारण की गई हूँ हे द्विजश्रेष्ठ! ये पर्वत धन्य हैं जो मुझको धारण किये हुए हैं। जो लोक के कारण भूत आश्चर्यमय दिखाई पड़ रहे हैं, सो मैं पर्वतों के पास गया। और कहा हे भूधरों! आप लोग बहुत ही आश्चर्यमय दिखाई पड़ रहे हैं, अतः धन्य हैं, आप सभी पर्वत पृथ्वी पर निरन्तर रत्नों की खानि कहे जाते हैं, इस प्रकार मेरे वचनों को सुनकर स्थित रहने वालों में श्रेष्ठ पर्वत कहने लगे कि हे ब्रह्मर्षे! न हम लोग धन्य हैं, न आश्चर्यमय हैं; हम लोगों को बनाने वाले ब्रह्मा धन्य और देवताओं में भी सर्वाश्चर्यमय हैं। सो मैं ब्रह्मा के पास गया उस वाक्य के पर्याप्त अर्थ को उनमें लक्षित किया सचमुच ब्रह्मा धन्य तथा आश्चर्यमय हैं। ब्रह्मा की स्तुति करने के लिये समीप में गया तब उन्हें प्रणाम कर सुनाया कि आप ही एक जगत् के गुरु भगवान् हैं इस लिये आप धन्य और आश्चर्यमय हैं।।५१-६०।।

क्योंकि तुम्हीं से स्थावर-जंगम सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। हे दर्व देवेश! इस सम्पूर्ण जगत् को देख कर ज्ञात होता है सभी प्राणी आप से उत्पन्न हुए हैं आप देवताओं के भी देव हैं लोकों में सर्वप्रथम आप ही उत्पन्न हुए हैं। ऐसा कहने पर लोकपितामह ब्रह्मा हमसे बोले कि हे नारद! धन्य और आश्चर्य आदि हमको क्यों कह रहे हो। आश्चर्य और धन्य वेद हैं जो लोकों को धारण कर रहे हैं और वे ही तत्त्वदर्शी भी हैं। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अर्थवेद में सत्य पदार्थ अर्थात् ईश्वरवाद का सिद्धान्त है मैं उन्हें धारण करता हूँ तथा वे वेद मुझे धारण करते हैं। तब मैं ब्रह्मा के वाक्यों से प्रेरित होकर उनके समीप पहुँचने की कोशिश करने लगा। सो मैं वेदों के समीप पहुँचा और चारों

वेदों से कहने लगा कि। आप लोग धन्य और पुण्यमय हैं तथा नित्य आश्चर्य से विभूषित हैं, इस प्रकार प्रजापति ब्रह्मा ने कहा है।।६१-७०।।

ब्रह्माजी का आप लोगों में विश्वास है आप लोगों से बढ़कर श्रुति तथा तप में कोई नहीं है। वेदों ने मुझसे कहा कि आश्चर्यमय तथा धन्य आत्मपरायण यज्ञ हैं। ब्रह्मा ने यज्ञ के लिये हम लोगों की रचना की है, इसलिये हम लोगों से बढ़कर यज्ञ ही हैं हम लोग अपने वश में नहीं है। ब्रह्मा से बढ़कर वेद और वेदों से बढ़कर यज्ञ हैं, तब मैं वेदों से पुरस्कृत यज्ञों से कहने लगा। हे यज्ञो! मैं आप लोगों में निश्चय ही परम तेज को देख रहा हूँ क्योंकि ब्रह्मा ने तथा वेदों ने भी ऐसा ही कहा है। इस लोक में आप लोगों से बढ़कर कोई दूसरा आश्चयर्मय तथा धन्य नहीं है। आप ही लोगों के द्वारा सभी देवता तृप्त होते हैं तथा मन्त्रों से महर्षि प्रसन्न होते हैं। मेरे इस प्रकार कहने के बाद अग्निष्टोमादि यज्ञों ने मुझसे कहा। आश्चर्य शब्द तथा धन्य शब्द का प्रयोग उन परम विष्णु के लिये कीजिये वही हम लोगों की श्रेष्ठ गति हैं। जो हम लोग अग्नि में हवन किया हुआ पवित्र घी का भोजन करते हैं वह सभी लोकमूर्ति पुण्डरीकाक्ष विष्णु ही देते हैं।।७१-८०।।

सो मैं यज्ञों के कहने से विष्णु की गति प्राप्त करने के लिये अर्थात् विष्णु ही सबसे धन्य तथा आश्चर्यमय हैं यह जानने के लिये पृथ्वी तल पर आया तो हमने इन श्रीकृष्ण के आप लोगों से घिरा देखा। हे राजाओ! आप लोगों के बीच बैठे हुए देखकर मैंने तुम धन्य तथा आश्चर्यमय हो कहा था। और इस वाक्य का इन्होंने जो उत्तर दिया कि दक्षिणा सहित यज्ञों से मुझे आश्चर्यमय तथा धन्य जाना जा सकता है इस प्रकार मेरे वचन को मान लिया। सभी यज्ञों की गति विष्णु हैं तथा सहदक्षिण हैं, दक्षिणा के सहित मैं धन्य हूँ तथा आश्चर्यमय हूँ ऐसा कहकर इन्होंने मेरे प्रश्न का उत्तर दे दिया। जो बातें मैंने कछुए से पहले कही थीं वह परम्परया यहाँ तक चली आई और वह बात इन सदक्षिण पुरुष श्रीकृष्ण में सत्य हो गई। जो आप लोगों ने इस वाक्य का विनिर्णय पूछा था सो सब मैंने कह दिया अब मै अपने कार्य साधन के लिये जा रहा हूँ। इस प्रकार कहकर नारद के स्वर्ग चले जाने पर सभी राजे

विस्मित होते हुए अपनी सेनाओं सहित अपने राष्ट्रों को चले गये। वीर यदुनन्दन जनार्दन भी अग्नि के समान तेजस्वी यादवों के साथ अपने भवन में प्रवेश कर गये।।८१-८८।।



अथ एकादशाधिकशततमोऽध्यायः।।१११।।

राजा जनमेजय जी बोले कि हे द्विजसत्तम! मैं जगत् के स्वामी महाबाहु श्रीकृष्ण के श्रेष्ठ माहात्म्य को फिर सुनना चाहता हूँ। उन श्रीकृष्ण के कर्मों को क्रमपूर्वक सुनते हुए भी मुझे तृप्ति नहीं होती है। वैशम्पायन जी बोले हे महाराज! उन गोविन्द के प्रभाव को मैं सैकड़ों वर्षा में भी वर्णन कर पार नहीं पा सकता फिर भी उनके अद्भूत चरित्र को सुनें। शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म ने गाण्डीवधारी अर्जुन को केशव का माहात्मय वर्णन करने के लिये कहा था तब राजाओं के मध्य में अपने ज्येष्ठ भाई शत्रुजित युधिष्ठिर को लक्ष्य कर जो माहात्मय अर्जुन ने वर्णन किया हे महाराज! उसको सुनो। अर्जुन बोले-एक समय अपने सम्बन्धियों को देखने के लिये मैं द्वारका में गया था तब उत्तम भोज, अन्धक तथा वृष्णियों से सम्मानित हो वहाँ रहा। इसके बाद एक समय एकाह यज्ञ में शास्त्र की विधि से कर्म करने के लिये महाबाहु मधुसूदन दीक्षित हुए। तब यज्ञ में दीक्षित उन श्रीकृष्ण से एक ब्राह्मण आकर कहने लगा कि रक्षा कीजिये-रक्षा कीजिये। ब्राह्मण बोला कि हे विभो! आपको रक्षा करने का अधिकार है, इसलिये मेरी रक्षा कीजिये धर्म की रक्षा करने वाले को चौथाई फल प्राप्त होता है। वासुदेव ने कहा-हे द्विजश्रेष्ठ! भय मत करो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा तुमको भय कहाँ से प्राप्त हो गया जो सुदुष्कर भी कार्य होगा तो भी मैं उसे करूँगा।।१-१०।।

ब्राह्मण बोला हे महाबाहो! उत्पन्न होते ही कोई मेरे पुत्र को हर लेता है इस प्रकार मेरे तीन पुत्र हर लिये गये अब हे श्रीकृष्ण! चौथे पुत्र की आप रक्षा कीजिये। जैसे मेरा पुत्र जीवित रह सके वैसा ही उपाय कीजिये। अर्जुन बोले कि तब गोविन्द ने मुझसे कहा कि मैं यज्ञ में दीक्षित हूँ और ब्राह्मण की

सभी अवस्था में रक्षा करनी चाहिये। मैं इस प्रकार श्रीकृष्ण के वचनों को सुन कर कहा कि मुझे नियुक्त कीजिये मैं भय से ब्राह्मण की रक्षा करूँगा। ऐसा कहने पर जनार्दन ने मुझसे कहा कि तुम रक्षा कर लोगे? उनके ऐसा कहने पर मैं लज्जित हो गया। मुझे लज्जित जानकर पुनः जनार्दन ने हमसे कहा हे कौरवश्रेष्ठ! यदि तुम रक्षा कर सकते हो तो जाओ। महाबाहु बलराम तथा महाबली प्रद्युम्न को छोड़ कर सभी वृष्णि और अन्धक वंश के महारथी तुमको आगे कर रक्षा करेंगे। फिर तो वृष्णि और अन्धकों की विशाल सेना से घिरा हुआ मैं ब्राह्मण को आगे कर सेना सहित वहाँ गया।।११-१८।।



अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः।।११२।।

अर्जुन बोले कि क्षण भर में मैं उस ग्राम में पहुँच कर सभी थके हुए वाहनों को विश्राम करने के लिये व्यवस्था कर दिया। इसके बाद विशाल वृष्णि सेना से घिरा मैं ग्राम के बीच प्रवेश किया। तब तो क्रूर बोलियाँ बोलने वाले पक्षी तथा मृग दीप्त दिशा मे बोलते हुए मुझसे भय का निवेदन करने लगे। सन्ध्या का रंग लाल हो गया, सूर्य प्रभा से रहित हो गये तथा बड़ी भारी उल्का गिरी और पृथ्वी भी काँपने लगी। तब मैं उन रोंगटे खड़े कर देने वाले महा दारुण उत्पात को देख कर जन समुदाय को सजग कर दिया कि अब तुम लोग सजग हो जाओ। ब युयुधान आदि वृष्णि तथा अन्धक वंश के सभी महारथी सुसज्जित हो रथ पर जा बैठे और मैं भी सज्जित हो रथ पर बैठ गया। आधी रात बीत जाने पर भय से विकल ब्राह्मण आकर हम लोगों से कहने लगा कि। अब मेरी ब्राह्मणी के प्रसव का समय आ गया इसलिये आप लोग उसी प्रकार सजग रहें कि जिस प्रकार ठगहारी न हो। फिर क्षण भर के बाद ही उस ब्राह्मण के घर में हर लिया-हर लिया ऐसा करुण रुदन का शब्द मैंने सुना। फिर हरण किये जाते हुए उस बालक के ऊँह-ऊँह ऐसा शब्द आकाश में सुना मैं प्रयास करने के बाद भी हरण करने वाले राक्षस को नहीं देख पाया।।१-१०।।

हे तात! इसके बाद हम लोगों ने बाणों की वर्षा से सभी दिशायें सभी तरफ से घेर लीं इतने पर भी वह बालक हरण कर ही लिया गया। उस कुमार के हरण हो जाने पर ब्राह्मण रुदन कर मुझको तीक्ष्ण कटु बचन सुनाने लगा उस समय वृष्णि लोग हत संकल्प हो गये और मैं ज्ञान शून्य हो गया विशेष रूप से ब्राह्मण हमको ही कहने लगा कि तुमने कहा था कि मैं रक्षा करूँगा पर रक्षा न कर सके हे दुर्मते! इस कटु वाक्य को सुनो। तुम नित्य वृथा ही डींग हाँकते हो यदि गोविन्द यहाँ होते तो यह अहित मेरा न हुआ होता। हे मूढ़! जिस प्रकार धर्म की रक्षा करने वाला धर्म का चौथा भाग प्राप्त करता है उसी प्रकार रक्षा नहीं करने वाला पाप का चौथा भाग पाता है। मैं रक्षा करूँगा ऐसा कह कर भी तुम रक्षा करने में समर्थ न हो सके, इसलिये तुम्हारा वीर का नाम भी निरर्थक ही है। तब मैं वहाँ से चला आया कि जहाँ महातेजस्वी श्रीकृष्ण विराजमान थे। श्रीकृष्ण को देख कर मैं शोक से सन्तप्त लज्जित हो गया गोविन्द ने भी इस बात को जान लिया। ब्राह्मण श्रीकृष्ण के समीप कहने लगा कि मेरी मूर्खता को तो देखो कि जो मैं इस प्रसिद्ध नपुंसक का विश्वास कर लिया।।११-२०।।

जहाँ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलराम तथा केशव रक्षा करने में समर्थ न थे तो दूसरा कौन रक्षा करने में समर्थ हो सकता था। व्यर्थ सिंहनाद करने वाले अर्जुन को धिक्कार है दैव संयोग की ही प्रधानता से यह दुर्मति मेरे साथ जाकर वहाँ से निष्फल आ रहा है। इस प्रकार के कटु वचन पर मैं वैष्णवी विद्या का ध्यान कर संयमनी पुरी को चला गया। वहाँ विप्र के पुत्र का पता लगाया फिर इन्द्र पुरी को गया पश्चात् आग्नेयी, नैर्ऋति, सौम्या, उदीची तथा वारुणी पुरी को गया। इसके बाद आयुध को उठाये रसातल, स्वर्ग तथा अन्य अनेकों ऐसी तेजस्विनी पुरियों में गया पर ब्राह्मण का पुत्र न पाकर मैं सब कुछ सुनने का पात्र बन कर लौट आया। इसके बाद मैं अग्नि में प्रवेश करने को उद्यत हो गया तब श्रीकृष्ण ने मना कर दिया और कहा कि मैं ब्राह्मण पुत्र को तुम्हें दिखाऊँगा तुम अपनी आत्मा का अपमान मत करो। तुम्हारी विपुल कीर्ति को ये मनुष्य स्थापित करेंगे। विप्र को सान्त्वना देकर दारुक नामक सारथी

से बोले कि घोड़ों को रथ में जोतो; रथ के सुसज्जित हो जाने पर ब्राह्मण तथा दारुक को रथ पर बैठा कर श्रीकृष्ण मुझसे कहे कि तुम रथ को हाँको। हे कौरव श्रेष्ठ! इसके बाद दारुक सहित श्रीकृष्ण और मैं तथा ब्राह्मण ये सभी पश्चिम से होते हुए उत्तर दिशा की ओर चले।।२१-२९।।



अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः।११३।।

अर्जुन बोले—तब पर्वत समूहों, नदियों तथा बनों को पार कर उस सागर को देखा जिसमें वरुण जी का भवन बना हुआ था। इसके पश्चात् जलराशि से ऊपर उठ कर समुद्र साक्षात् मनुष्य रूप धारण कर अर्घ ले जनार्दन के समीप आया और हाथ जोड़ कर बोला कि मैं क्या करूँ। जनार्दन उस पूजा को ग्रहण कर समुद्र से बोले कि मैं अपने रथ को जाने के लिये मार्ग चाहता हूँ। तब समुद्र हाथ जोड़ कर कहा कि यदि आप ऐसा करेंगे तो सभी इसी प्रकार जाने लगेंगे। तुमने ही मुझे अगाध बनाकर स्थापित किया है, यदि तुम्हारे द्वारा मार्ग बना दिया जायगा तो मैं सभी के गमन करने के योग्य बन जाऊँगा। इसलिये इन्हीं सब बातों का विचार कर जैसा उचित समझें वैसा करें। वासुदेव ने कहा हे सागर! मुझे छोड़कर कोई अन्य पुरुष तुम्हें अपमानित नहीं करेगा। इसके बाद फिर समुद्र ने शाप के भय से जनार्दन से कहा कि अच्छा ऐसा ही होगा। मैं अपने जल को सुखाकर मार्ग बना देता हूँ जिससे आप सारथी सहित रथ से चले जायेंगे। वासुदेव ने कहा कि मैंने तुमको पहले न सूखने का वरदान इसलिये दे दिया है कि तुम्हारे विविध प्रकार के रत्न भण्डारों को मनुष्य न जान लें।।१-१०।।

हे साधो! तुम जल का स्तम्भन करो इसके बाद मैं रथ से चला जाऊँगा। सागर के ऐसा स्वीकार करने पर मणि के समान चमकने वाले स्तम्भित जल मार्ग से भूमि मार्ग के समान ही चले गये। क्षण मात्र में उत्तर कुरु तथा गन्धमादन पर्वत को भी पार कर गये। इसके बाद सात पर्वत केशव के समक्ष उपस्थित हुए जिनके नाम जयन्त, वैजयन्त, नील, रजत पर्वत,

महामेरु, कैलास तथा इन्द्रकूट थे, ये विविध प्रकार के अद्भुत वर्ण तथा रूपों को धारण किये थे। वे पूजन कर बोले कि हे गोविन्द! हम लोग क्या करें तब हृषीकेश नीचे झुक कर प्राणम करते हुए उन पर्वतों से बोले कि तुम लोग अपने में विवर बना कर मेरे लिये रथ का मार्ग दो। तब वे श्रीकृष्ण के इच्छानुसार मार्ग दे दिये। और वही सब अन्तर्धान हो गये, फिर जैसे मेघ जालों में सूर्य जाता है वैसे ही रथ बिना किसी रोक-टोक के जाने लगा। सातों पर्वतों तथा लोकालोक पर्वत को भी पार कर रथ महान् अन्धकार में प्रवेश कर गया।।११-२०।।

हे नृप! उस अन्धकार में घोड़े बड़े दुःख के साथ रथ को खींच रहे थे, अन्धकार का स्पर्श करने पर वह कीचड़ की भाँति ज्ञात हो रहा था। फिर वह अन्धकार पर्वत के समान रूप धारण कर लिया तब तो उस पर्वत को पाकर घोड़े प्रयत्न रहित हो खड़े हो गये। उस समय गोविन्द ने अपने चक्र से तम को विनष्ट कर आकाश का दर्शन कराया और रथ का उत्तम मार्ग बना दिया। उस अन्धकार से निकल कर आकाश का दर्शन करने पर मुझे विश्वास हो गया कि अब मैं जी जाऊँगा। इसके बाद मैंने आकाश में बनते हुए तेज को देखा वह तेज मानों सम्पूर्ण लोकों को अपने में प्रवेश कराकर पुरुष के रूप में स्थित था। उसी जलते हुए तेज में हृषीकेश प्रवेश कर गये उस समय हम रथ पर बैठे रहे। इसके क्षण भर के पश्चात् ब्राह्मण के चारों बालकों को लेकर समर्थ श्रीकृष्ण उस तेज से निकल आये। जनार्दन ने चारों पुत्रों को ब्राह्मण के लिये दे दिया। हे प्रभो! पुत्रों को देखकर ब्राह्मण बार-बार प्रसन्न होने लगा। हे भरतर्षभ! हम सभी लोग जैसे गये थे वैसे ब्राह्मण के पुत्रों के साथ चले आये। हे नृपसत्तम! हम लोग क्षण मात्र में ही द्वारका में चले आये, यह सब चरित्र दिन का आधा भाग भी नहीं बीतने पाया कि समाप्त हो गया इससे मैं बार-बार विस्मित होने लगा। उस समय महायशस्वी श्रीकृष्ण ने पुत्रों सहित ब्राह्मण को भोजन करा धन से सन्तुष्ट कर उसके घर भेज दिया।।२१-३२।।



अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः।।११४।।

अर्जुन बोले-इसके बाद ब्राह्मणों और ऋषियों के सैकड़ों समूहों को भोजन कराकर श्रीकृष्ण कृतकृत्य हो गये। तत्पश्चात् मेरे और वृष्णि एवं भोजवंशियों के साथ भोजन कर श्रीकृष्ण विचित्र तथा दिव्य कथायें कहने लगे। तब कथा समाप्त हो जान पर मैं जनार्दन के समीप जाकर जो कुछ आश्चर्य की बातें देखी थीं उन्हें श्रीकृष्ण से पूछीं। हे कमलेक्षण! आपने समुद्र जल को स्तब्ध कैसे किया था और पर्वतों में विवर कैसे कर दिया था। और उस घोर अन्धकार को चक्र द्वारा कैसे विनष्ट कर दिया था और जो वह परम तेज था उसमें आप कैसे प्रविष्ट हो गये थे और वह तेज कौन था? हे प्रभो! उस तेज ने किस लिये ब्राह्मण बालकों को हर लिया था और जो इतना लम्बा मार्ग था उसे कैसे आप संक्षिप्त अर्थात् थोड़े ही समय में पार कर गये थे। और कैसे अल्प काल में ही लौट भी आये। वासुदेव बोले कि तेज रूपधारी उस महात्मा ने मेरे दर्शन के लिये बालकों को हर लिया था उसने सोचा कि विप्र के लिये श्रीकृष्ण आवेंगे अन्यथा नहीं आवेंगे। ब्रह्मतेजमय जिस तेज को तुमने देखा था वह मैं ही हूँ। वह मेरी व्यक्त अव्यक्त सनातन प्रकृत्ति है जो अहंकारादिकों से भी बड़ी है जिसके अन्दर योग को जानने वाले उत्तम योगी प्रवेश कर मुक्त हो जाते हैं।।१-१०।।

हे पार्थ! वह सांख्यज्ञों, योगियों तथा तपस्वियों की गति है, वह परम ब्रह्म है जो जगत् के चेतन अंशों से जड़ अंश को अलग करता है। हे भारत! उस घने तेज को मुझे ही समझो, स्तब्ध जल वाला समुद्र भी मैं ही हूँ और मैं ही उसके जल को स्तम्भित करने वाला भी हूँ। जो तुमने विविध रूप में सातों पर्वतों को देखा है वह भी मैं ही हूँ और जो कीचड़मय अन्धकार को देखा है वह भी मैं ही हूँ। मैं ही उस धनीभूत अन्धकार को विनष्ट करने वाला भी हूँ, मैं ही प्राणियों का काल तथा सनतान धर्म हूँ। चन्द्रमा, सूर्य, बड़े-बड़े पर्वत, नदियाँ तथा तालाब एवं चारों दिशायें मैं हूँ। तेज, पृथ्वी, जल तथा आकश ये चार प्रकार की मेरी आत्मा है। हे भारत! चारों वर्ण और चारों आश्रम मेरे

से ही उत्पन्न हैं, मुझे ही चारों प्रकारों का कर्त्ता समझो। अर्जुन बोले-हे भगवन्! हे सर्वभूतेश! हे प्रभो! मैं तुम्हारी विभूतियों को जानना चाहता हूँ। वासुदेव बोले-हे भारत! ब्रह्म, ब्राह्मण, तप, सत्य यह उग्र माया की प्रबलता एवं वृहत्तम मोक्षादि हमसे ही उत्पन्न तथा प्राप्त हैं। तुमको मैं प्रिय हूँ तथा तुम हमको प्रिय हो। इसलिये यह सब बातें तुमसे कह रहा हूँ अन्यथा किसी दूसरे से कहने वाला मैं नहीं हूँ। यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद। ऋषि, देवता तथा यज्ञ हे भरतर्षभ! मेरे ही तेज से उत्पन्न हुआ जानो; पृथ्वी; वायु, आकाश; जल और पाँचवाँ ज्योति।।११-२०।।

चन्द्रमा, सूर्य, दिन-रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, मुहूर्त, काल, क्षण, संवत्सर। और विविध प्रकार के मन्त्र तथा हे पार्थ! जितने भी शास्त्र हैं तथा जितनी भी विद्यायें हैं सब मेरे से उत्पन्न होती हैं ऐसा समझना चाहिये। इस सृष्टि तथा प्रलय को मुझ ईश्वरमय ही समझो, सत् तथा असत् और असत् से परे जो सत् अर्थात् परब्रह्म है उसे मेरी आत्मा समझो। अर्जुन बोले-प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने पर उसी प्रकार का मेरा मन भी जनार्दन में अचल रूप से लग गया। हे राजेन्द्र! जो हमसे आप पूछते हैं तो मैं यहाँ श्रीकृष्ण का माहात्म्य देखा और सुना है परन्तु इससे भी असंख्य गुना जनार्दन अधिक हैं। वैशम्पायनजी बोले हे कुरुश्रेष्ठ! यह सब सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने पुरुषोत्तम गोविन्द की पूजा की। तथा सहोदर भाइयों सहित राजा युधिष्ठिर विस्मित हुए और राजा के साथ और भी जो आगन्तुक व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे वे भी विस्मित हो गये।।२१-२७।।



अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११५।।

राजा जनमेजय बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ! मैं फिर श्रीकृष्ण के अपरमित कर्मों को तत्त्व से सुनना चाहता हूँ। उनके जिन कर्मों को सुनकर मैं प्रसन्न हो जाऊँ हे अनघ! ऐसे उनके कर्मों का बखान कीजिये। वैशम्पायनजी बोले-हे

महाबाहो! विस्तार से उनके कर्मों का वर्णन कर कोई अन्त नहीं पा सकता फिर भी लेशमात्र वर्णन अवश्य करूँगा। हे राजन्! पराक्रमी विष्णु के चरित्र को मैं क्रमशः वर्णन करता हूँ एकाग्र मन से सुनो। श्रीकृष्ण ने प्रमुख महात्मा राजाओं के राष्ट्रों को क्षुभित कर दिया था। विचक्र दानव को मार डाला था, प्राग्ज्योतिषपुर जाकर नरक दानव को मार डाला और इन्द्र को पराजित कर पारिजात वृक्ष को बलपूर्वक हर लाये थे। वरुण को जीत लिया था तथा दक्षिणा पथ में दन्तवक्र को मार डाला।।१-१०।।

और शिशुपाल को मार डाला तथा शोणितपुर जाकर शंकर जी द्वारा अभिरक्षित बलि के पुत्र महाबली बाण को जीत कर जीवित ही छोड़ दिया। अग्नि को जीता था तथा संग्राम में राजा शाल्व को जीत कर सौभ नामक विमान को विनष्ट कर दिया था। और सागर को विक्षुभित कर पाञ्चजन्य को वश में कर लिया था तथा हयग्रीव को मार डाला था। जरासन्ध के मरने के बाद सभी बन्दी राजाओं को बन्दीगृह से छोड़ दिया था और गान्धार राजा की पुत्री का हरण कर लिया था। राज्य के हार जाने के बाद शोक से दुःखी पाण्डवों की सब प्रकार से रक्षा की थी तथा इन्द्र के खाण्डव वन को जला दिया था। गाण्डीव धनुष अर्जुन के लिये दे दिया था, हे जनमेजय! कौरव और पाण्डवों में घोर विग्रह उपस्थित हो जाने पर पाण्डवों के दूत बने थे। अपनी फूफी कुन्ती के सम्मुख पाण्डवों के प्रति यह प्रतिज्ञा की थी कि महाभारत युद्ध के समाप्त हो जाने पर तुम्हारे पुत्रों को तुम्हें सुरक्षित हालत में वापस कर दूँगा। इन्होंने राजा नृग को भयंकर शाप से मुक्त कर दिया था। काल यवन को ये मार डाले थे और महा बलवान् मैन्द और द्विविद नामक बानरों को संग्राम में जीत लिये थे तथा जाम्बवान् को भी युद्ध में पराजित किया था, गुरु सान्दीपनि के पुत्र तथा तुम्हारे पिता परीक्षित वैवस्वत यमराज के वश में चले गये थे लेकिन उन्हीं श्रीकृष्ण के तेज से जीवित हो गये। हे जनमेजय! जैसा कि युद्धों में मैंने इनका पराक्रम वर्णन किया है वैसे ही राजाओं को पराक्रम कर मार डाला था, इस प्रकार पराक्रम कर इन्होंने अद्भुत विजय को प्राप्त किया था।।११-२३।।



अथ- षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११६।।

राजा जनमेजय बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ! श्रीकृष्ण के अपरिमित कर्मों को मैंने तुमसे सुना, जो तुमने महासुर बाण के प्रति पहले संक्षेप में वर्णन किया है। उसी को मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ कि देव-देव शंकर जी का कृपापात्र असुर-पुत्र कैसे हो गया? हे ब्राह्मण! जो वह स्वयं महात्मा शंकर जी द्वारा अभिरक्षित हुआ तथा गणों सहित स्वामि कार्तिकेय के साथ रहता था। बलि का बलवान् पुत्र जो असंख्य विशाल शरीर वाले सैकड़ों महाबलियों से घिरा हुआ था उसे वासुदेव ने कैसे संग्राम में पराजित कर दिया था। वह जीवन्मुक्त कैसे हो गया? वैशम्पायनजी बोले हे राजन्! अमित तेजस्वी श्रीकृष्ण का मनुष्य लोक में बाणासुर के साथ जैसे महान् युद्ध हुआ था जहाँ कि रुद्र तथा स्वामी कार्तिकेय से उसने सहायता प्राप्त की थी यह सब एकाग्र चित्त से सुनो। बलि का पुत्र जिस प्रकार जीत कर श्रीकृष्ण द्वारा जिन्दा छोड़ दिया गया था तथा जैसे बाण ने शंकर जी की समीपता प्राप्त की एवं जैसे अक्षय गाणपत्य पद को पाया, जैसे जीवनमुक्त हुआ।।१-१०।।

और शंकर जी का जैसे पुत्र बन गया वह सब सम्पूर्ण बातें सुनो। एक समय शिव-पुत्र महात्मा कुमार को खेलता हुआ देख कर महाबली बाण परम विस्मय को प्राप्त हुआ। तब वह महादेव रुद्र की अराधना के लिये उद्यत हो गया कि जैसे मैं शंकर जी का पुत्र हो जाऊँ। उसने परम तप कर शंकर जी को प्रसन्न किया तब महादेवजी उमा के साथ परम सन्तोष को प्राप्त हो उसके समीप गये और बाणासुर से बोले कि तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे मन में जो अभीष्ट हो वह वर माँगो। तब बाणासुर बोला हे त्रिलोचन! तुम्हारे द्वारा दिये जाने पर वर के प्रताप से मैं पार्वती देवी का पुत्र होना चाहता हूँ। शंकर जी 'ऐसा ही होगा' कहकर रुद्राणी से बोले कार्तिकेय का छोटा भाई समझ कर इसको पुत्र रूप में ग्रहण कर लो। जहाँ रुधिरपुर में अग्नि से कार्तिकेय प्रकट हुए थे वही इसका पुर होगा इसमें संशय नहीं है। उस पुरोत्तम का नाम शोणितपुर होगा और हमारे द्वारा वह अभिरक्षित होगा। तब वह बाणासुर

शोणितपुर में निवास करता हुआ तथा नित्य सभी देवताओं को दुःखी करता हुआ राज्य-शासन करने लगा।।११-२०।।

सहस्त्र बाहुओं वाला वह बाणासुर मद से युक्त होकर देवता गणों से सदा युद्ध की इच्छा करने लगा। कुमार ने प्रसन्न होकर इसे अग्नि के समान चमकने वाली ध्वजा तथा चित्र-विचित्र चमकने वाला मयूर का वाहन दिया था। शंकर जी के प्रताप से इसके साथ युद्ध में कोई भी नहीं टिकता था। तब त्र्यम्बक द्वारा अभिरक्षित मद से युक्त वह बाणासुर बार-बार युद्ध को ढूँढ़ता हुआ त्रिशूलधारी शंकर जी के समीप गया। साष्टांग प्रणाम कर वृषभध्वज से यह पूछा कि—मैंने सेना लेकर मरुद्गणों सहित देवताओं को कई बार जीता। अब वे पराजय के भय से संत्रस्त हो मेरे पुरि में सुख से निवास कर रहे हैं। और कुछ देवता स्वर्ग में जाकर सुखपूर्वक निवास कर रहे हैं; सो मैं अब युद्ध के लिये निराश होकर जीना नहीं चाहता। यदि इन हजारों बाहुओं के धारण करने पर भी यदि मैं बिना युद्ध के रहूँ तो मेरा इन बाहुओं को धारण करना व्यर्थ है आप बताइये कि मेरे लिये कब युद्ध प्राप्त होगा। मुझे युद्ध के बिना अच्छा नहीं लगता है, इतना कहने पर वृषभध्वज हँस कर बोले।।२१-३०।।

हे बाण! जिस प्रकार युद्ध होगा उसे सुनो तुम्हारी ध्वजा जब टूट कर गिर पड़ेगी तब युद्ध होगा। प्रसन्नता से प्रसन्न बदन हो शंकर जी के चरणों में गिर कर बोला तब तो मेरे भाग्य से सहस्त्र बाहुओं का धारण करना व्यर्थ न होगा। मैं फिर इन्द्र को संग्राम में जीत लूँगा, ऐसा कह वह पाँच सो अञ्जुलि से महादेव की पूजा करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब शंकर जी बोले हे वीर! उठो-उठो, तुम अपने कुल तथा आत्मा और बाहुओं के योग्य हो अप्रतिम महान् युद्ध को प्राप्त करोगे। वैशम्पायन जी बोले कि इस प्रकार महात्मा त्र्यम्बक के कहने पर बाणासुर प्रसन्नता से उठ कर वृषभध्वज को प्रणाम किया। नीलकण्ठ से विदा हो बाणासुर घर पहुँच कर वहाँ चला गया कि जहाँ महान् ध्वजागृह था। और मंत्री कुम्भाण्ड से बोला कि हे प्रिय! एक बात कहूँगा कि जो आपके मन में है। ऐसा सुन कुम्भाण्ड बाणासुर से बोला कि आप मेरे किस प्रिय बात का निवेदन करने की इच्छा करते हैं। मैं आप से वह सुनना

चाहता हूँ कि नीलकण्ठ के प्रसाद से आपने कौन सा वर प्राप्त किया है? क्या शूलपाणि ने आपको तीनों लोकों का राज्य दे दिया है?।।३१-४०।।

क्या विष्णु के महासंग्राम में तुम्हें विजय का वर मिल गया है? क्या तुम्हारे भय से इन्द्र पाताल में चले जायेंगे? कि दिति के पुत्र दैत्य विष्णु से नहीं डरेंगे। क्या महासुर लोग पाताल के निवास का परित्याग कर स्वर्ग में रहने लगेंगे। हे नृप! तुम्हारे पिता क्या जलराशि से निकल कर अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे। हे तात! क्या दिव्य मालाओं तथा वस्त्रों को धारण किये तुम्हारे पिता राजा बलि को हम लोग देखेंगे? हे प्रभो! क्या हरण किये गये इन तीनों लोकों के राज्य को पुनः प्राप्त कर लेंगे? क्या हम लोग सुन्दर तथा समितिंजय नारायण देव को जीत लेंगे? हे तात! क्या वृषभध्वज तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो सुमुख हो गये कोई ऐसा ही सुन्दर वर दे दिये इन्हीं सब बातों का अनुमान हो सकता है। क्या शंकर जी के सन्तुष्ट होने से दैत्यों की राज्य-लक्ष्मी को प्राप्त कर लिये हो। कुम्भाण्ड के वचनों से प्रेरित हो बाण गद्गद वाणी से बोला।।४१-५०।।

बहुत दिनों से मुझे युद्ध करने को नहीं मिला इसलिये मैंने नीलकण्ठ से पूछा। हे देव! जो यह मेरी युद्ध की अभिलाषा है कब पूरी होगी मैं कब युद्ध प्राप्त करूँगा। तब हर के अधिक समय तक सोच-विचार करने के बाद हँस कर प्रिय वचन हमसे बोले तुम अप्रतिम युद्ध को प्राप्त करोगे। जिस समय तुम्हारे मयूरध्वज का भंग होगा उसी समय युद्ध प्राप्त करोगे। मैं वृषभध्वज को शिर से प्रणाम कर तुम्हारे समीप आया हूँ। कुम्भाण्ड राजा से बोला कि अहो राजन्! जो तुमसे ऐसा वचन कहा है सो शुभकर नहीं है। इस प्रकार उन दोनों के वार्तालाप करते समय में ही ऊँची ध्वजा इन्द्र के वज्र से आहत होकर गिर पड़ी। बाणासुर उस ध्वजा को गिरी हुई देख कर अतुल हर्ष को प्राप्त किया और अब युद्ध का समय आ गया ऐसा मान लिया। इन्द्र के अशनिपात से समाहत पृथ्वी काँप गई और भूमि के अन्दर बड़ा भारी शब्द तथा बनबिलाव अमङ्गल सूचक बोलियाँ बोलने लगे। इन्द्र शोणितपुर में चारों ओर शोणित की वर्षा करने लगे तब तो परम अमङ्गल दिखाई पड़ने लगा।।५१-६०।।

और आकाश का भेदन कर बड़ी भारी उल्का धरणी पर गिरी और कृत्तिका नक्षत्र में उदित सूर्य बाणासुर के जन्मनक्षत्र रोहिणी को पीड़ा पहुँचाने लगा और सहसा चैत्य नामक वृक्ष से रक्त की धारायें बहने लगीं तथा भयंकर तारे गिरने लगे। हे विशाम्पते! राहु सूर्य को ग्रसने लगा तथा प्रलयकाल के [illegible] महान् निर्घात गिरा और दक्षिण दिशा में केतु उदित हो गया तथा सुदारुण वायु बहने लगा। तीन वर्ण वाला परिवेश मण्डल जिसका कण्ठ कृष्ण वर्ण का था सूर्य को घेर लिया। मंगल वक्र गति से कृत्तिका नक्षत्र में भ्रमण करने लगा इसी प्रकार सभी ग्रह बाणासुर के जन्म नक्षत्र भरणी को क्रूर दृष्टि से देखने लगे। दानवों की कन्याओं द्वारा पूजित चैत्य वृक्ष पृथ्वी तल पर गिर पड़ा। इस तरह अमंगलों को सुनता हुआ उन्मत्त बाणासुर कुछ निश्चय न कर सका। मंत्री कुम्भाण्ड इन बहुत से अमंगलों का वर्णन करता हुआ मूर्छित हो गया जितने उत्पात दिखाई दे रहे हैं, ये तुम्हारे राज्य के विनाश के लिये समर्थ होंगे इसमें संशय नहीं है।।६१-७०।।

हे राजन्! हम मंत्रीगण तथा अन्य तुम्हारे भृत्य सभी अविलम्ब ही क्षय को प्राप्त हो जायेंगे और जिस प्रकार चैत्य वृक्ष गिर पड़ा उसी प्रकार युद्ध को चाहने वाले तुम्हारे मोह से पतन हो जायगा। तुमने त्रैलोक्य पर विजय प्राप्त किया किन्तु अब घमण्ड से तुम्हारा नाश दिखाई पड़ रहा है ऐसा सुन कर युद्ध की आकांक्षा वाला बाणासुर गर्जने लगा। बाण प्रसन्न मन से दानवों के साथ शराब पीने लगा। उस समय प्रधानमंत्री कुम्भाण्ड चिन्ता से व्याकुल हो राजभवन से चला गया और तत्-तत् उत्पात-परिणामों को सोचने लगा कि–प्रमादी बाणासुर मद के वशीभूत हो दोषों को नहीं मान रहा है, यह युद्ध को ही चाहता है। इन उत्पातों से जो भय है वह झूठ नहीं होगा। इस समय भले ही यह उत्पात दर्शन झूठा समझ लिया जाय। यहाँ पर शंकर जी तथा कार्तिकेय रह रहे हैं इस कारण से ये उत्पन्न दोष भी पराजय का कारण नहीं बन सकते यह भी शंकर जी के युद्ध रूप वर से संगत नहीं ज्ञात हो रहा है। यह ज्ञात होता है कि महान् क्षय हाने वाला है क्योंकि दोषों का नाश नहीं होता है यही मेरी मति है। यह दोष तो निश्चित ही अपना प्रभाव दिखा कर रहेगा

इस नृपति के दुरात्मा होने से सभी दानव दोषी हो गये हैं।।७१-८०।।

शंकर जी तथा भगवान् कार्तिकेय ने लोहितपुर में बाणासुर को बसाया है। शंकर जी को प्राणों से भी अधिक प्रिय कार्तिकेय हैं और उनसे बढ़ कर बाणासुर भी निरन्तर प्रिय है। पर अपने नाश के लिये शंकर जी से वर की याचना की है इसलिये बाण अवश्य नष्ट हो जायेगा। यदि विष्णु प्रमुख इन्द्रादिक देवताओं का भावीवश यहाँ आगमन होगा तो शंकर जी के हाथों से उनका अकल्याण ही होगा। बाण की सहायता की आकांक्षा वाले इन कुमार तथा शंकर के समक्ष आकर कौन युद्ध करने में समर्थ है। महादेव का वचन भी मिथ्या नहीं होगा इससे यह निश्चय होता है कि सम्पूर्ण दैत्यों का विनाश करने वाला महान् युद्ध होगा। तत्त्वदर्शी महासुर कुम्भाण्ड इस प्रकार की चिन्तना कर अपने कल्याण की बात सोचने लगा। जो अपने पुण्य कर्मों के बल से संग्राम में देवताओं से विरोध करते हैं वे जैसे बलि बाँध लिया गया वैसे ही नाश को प्राप्त होते हैं।।८१-८८।।



अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११७।।

वैशम्पायनजी बोले–किसी समय नदी के रमणीक तट पर पार्वती के साथ शंकर जी क्रीड़ा विहार में रत हुए। वहाँ सभी ऋतु वाले रमणीक वन में गन्धर्व पति तथा सैकड़ों अप्सरायें चारों ओर से क्रीड़ा करने लगीं। पारिजात पुष्पों से नदी के तट का आकाशमण्डल चारों ओर सुगन्धमय माला की भाँति प्रतीत होने लगा। शंकर जी वहाँ बजते हुए हजारों वेणु, वीणा, मृदंग तथा पणव के साथ अप्सराओं के गीत सुनने लगे। शंकर जी की अप्सरायें सूत तथा मागध के वेष में स्तुति करने लगीं। तथा वे मनोरम श्री महेश की अर्चना करने लगीं इसके बाद अप्सरा चित्रलेखा ने पार्वती देवी का रूप धारण कर शंकर जी को प्रसन्न किया उस समय शंकर जी को प्रसन्न करती हुई चित्रलेखा को देख देवी हँसने लगीं तथा अप्सराओं का समूह भी हँसने लगा। वे रहस्यमय मनोरंजक खेल में पण्डित पार्षद महादेव के चिह्नों

को धारण कर शंकर के रूप में क्रीड़ा करने लगे तथा अप्सरायें पार्वती के रूप में क्रीड़ा करने लगीं। तब अपने ही जैसी रूप तथा लीला एवं मुख के देखने से पार्वती हँसने लगीं।।१-१०।।

उस समय शंकर जी अतुल हर्ष को प्राप्त किये, वहाँ बाणासुर की कन्या उषा भी थी। महादेव जी को देवी पार्वती के साथ क्रीड़ा करते देख कर उषा ने पार्वती के समीप पति प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट किया। तथा कहा कि आप धन्य हैं जो अपने पति के साथ यहाँ आकर इस प्रकार रमण कर रही हैं, तब उषा के उस अभिप्राय को जान देवी पार्वती उषा को प्रसन्न करती हुई धीरे से बोलीं। हे उषे! जिस प्रकार मेरे साथ देव शंकर रमण कर रहे हैं। उसी प्रकार तुम भी शीघ्र ही अपने भर्ता के साथ रमण करोगी। उषा कहने लगी कि मैं भर्ता के साथ कब रभण करूँगी? तब हैमवती पार्वती ने हँसकर कहा कि जब तुम पति संयोग को प्राप्त करोगी। वैशाख मास की द्वादशी की रात्रि में जब तुम भवन में सोती रहोगी तब स्वप्न में जो तुम्हारे साथ रमण करेगा वही तुम्हारा भर्ता होगा। इस प्रकार कहने पर कन्याओं के समूह से घिरी दैत्य पुत्री उषा हर्ष से सुखपूर्वक आनन्द मनाती हुई उछलने लगी।।११-२०।।

इसके बाद सखियों द्वारा परिहास की जाती हुई हर्ष से प्रफुल्लित नेत्रों वाली उषा ताली बजाकर आपस में क्रीड़ा करने लगी। किन्नरियाँ और यक्ष कन्यायें तथा अनेकों दैत्य कन्यायें एवं अप्सराओं की कन्यायें उषा की सखी बन गईं। तथा उन सखियों ने कहा कि हे वरानने! देवी के वचनानुसार तुम्हारा पति शीघ्र ही प्राप्त होगा। देवी का वचन कभी मिथ्या नहीं होगा, रूप और कुल से सम्पन्न पति का पार्वती जी ने निर्देश किया है। वरदान को यथा विधि पाकर कर उषा पति प्रतीक्षा में स्थित हो गई। इसके बाद उमा के उस क्रीड़ा विहार के आनन्द का अनुभव कर दिन समाप्त होने पर सभी अद्भुत वेषधारी स्त्रियाँ अपने-अपने घर को चली गईं और देवी भी अन्तर्धान हो गईं। हे विभो! उसी दिन से वह उषा काम के मोह को प्राप्त हो गई। पति का ध्यान करती हुई उषा को रात्रि में शयन तथा दिन में भोजन अच्छा नहीं लगता था। वह

राजकन्या पति भाव का स्मरण करती हुई विलाप करने लगी तथा स्वर्ग में रहने वाले चन्द्रमा की निन्दा करती हुई चन्दन का सेवन छोड़ दी।।२१-३०।।

हे राजन्! वह बाला काम से परिपीड़ित हो दुर्बल होने लगी, यद्यपि उसे ज्वर नहीं हुआ था तथापि उसकी सखियाँ ज्वरपीड़िता की भाँति उसका उपचार करने लगीं। चन्दन का लेप करने पर भी उसका हृदय जलता रहता था, उसके कपोलों पर सफेदी छा गई तथा नेत्रों में जल भरा रहता था। वह बार-बार जँम्हाई लेने लगी और उसके शरीर में निद्रा का भाव बढ़ने लगा अर्थात् 'हम बराबर सोये रहें' ऐसा भाव होने लगा, कामेदव की अग्नि से जलते हुए उसके हृदय पर सखियाँ बार-बार कमलिनी के मूल का शीतल चूर्ण छोड़ा करती थीं और वे पंखा झलती हुई बार-बार पूछती थी कि। हे भामिनि! तुमको कौन सी व्यथा है, तेरा शरीर यह कैसा हुआ जा रहा है, यह क्या हो गया है, तुम्हें क्या अच्छा लग रहा है वह हमसे कहो। यह दुःख से साध्य रोग कैसे उत्पन्न हे गया है, ये मैनायें तुम्हारे मन के अनुकूल बोलियाँ बोल रही हैं। हे सुभ्रु! ये सुग्गे पुरुष के समान पढ़ रहे हैं। हे उषे! आज तुम क्यों नहीं बोल रही हो? तुम्हारे पिता महान् वीर हैं, उनके सामने कोई नहीं टिक सकता है। दुजेर्य महान् वीर बाण ने शोणितपुर का यह नगर बसाया है जहाँ स्वयं महेश्वर देव रहते हैं। जिन महादेव ने गिरिजा से बाण के प्रति कहा था कि इसको अपना पुत्र जानो, इन सब बातों को सुनो।।३१-४०।।

कमल के ऊपर जैसे ओस की बूँदे शोभती हैं वैसे ही तुम्हारे मुख पर ये पसीना की बूँदें शोभायमान हो रही है और नासिका का अग्रभाग भी सुन्दर लग रहा है। जैसे कान्तिहीन चन्द्रमा बादलों के बीच शोभायमान नहीं होता है वैसे कालिमा रहित तुम्हारा पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख शोभायमान क्यों नहीं हे रहा है? तुम दीर्घ श्वासें छोड़ रही हो, तुम दिव्य भोजन करो। अब पान क्यों नहीं खाती हो, मिष्ठान्नों को उठ कर ग्रहण करो और शरीर में जो पीड़ा है उसे कहो; उषा के घर में इस प्रकार का कोलाहल सुनकर दासियों ने उसकी माता से कहा कि हे देवि! जल-क्रीड़ा विहार से लौटकर राजपुत्री जब से घर आई है तब से मौन की भाँति दिखाई पड़ रही है, हम दासियाँ हैं, इसलिये तुमसे

इन बातों को क़ह रही हैं। हे देवि! यह कैसा मोह है? विचार कर कष्ट की शान्ति के लिये किसी वैद्य को बुलवाइयें। जो पुष्प के समान सुकोमल है वह व्याधि के भार को कैसे सहन कर सकती है? इन सब बातों को सुनकर माता जहाँ उषा थी वहाँ जाकर बोली कि यह कष्ट का लक्षण कैसे उत्पन्न हो गया?।।४१-५०।।

वह राज-रानी अपने हाथ से उषा के हाथ को स्पर्श कर अंगुलियों को खोलने लगीं। हे कल्याणि! ये वैद्य आकर तुमसे पूछ रहे हैं कि तुमको कौन व्यथा है। वैद्यों ने कहा ज्ञात होता है कि राजपुत्री सखियों के साथ जलक्रीड़ा के लिये गई थी वहाँ पार्वती के साथ क्रीड़ा करनें में परिश्रम अधिक पड़ गया है उसी से इसकी ऐसी हालत है। परिश्रम से इसे खिन्नता उत्पन्न हो गई है और नींद भी आ रही है इसलिये भय की कोई बात नहीं है। देवी बोली–हे वैद्यों! हमने बर्फ से युक्त चन्दन इसके हृदय पर रखवाया फिर भी कुछ लाभ नहीं हुआ, हे अमात्यों! क्यों इतनी घबराहट तथा क्यों बुद-बुद शब्द हो रहा है? इसके शरीर में बड़ा दाह है, इसे बड़ा पसीना निकल रहा है, न प्यास लग रही है न भूख और प्रलाप क्यों कर रही है इस विषय में आप लोग बतावें। वैद्यों ने कहा कि क्रीड़ा विहार में बहुत सी स्त्रियाँ गई थीं; उन स्त्रियों ने इसे नजर लगा दी है, इसी कारण पुत्री के हृदय में व्यथा उत्पन्न हो गई है, अतः कुमारिका को रक्षा मन्त्रों से शान्ति मिल सकती है। फिर काम के अभिप्राय से वह व्यथा उत्पन्न हुई है ऐसा कहते हुए सभी वैद्य चले गये; माता के पूछने पर उषा माता से बोली कि हे मातः! मुझे बोलना और भोजन रुचिकर नहीं ज्ञात होता है।।५१-६०।।

मेरा हृदय जल रहा है ऐसा कहकर उषा चुप हो गई। इसके पश्चात् सभी स्त्रियाँ आपस में एक दूसरी का मुख देखने लगीं और कहने लगीं कि युवावस्था आने पर स्त्रियों को लज्जा का अनुसरण करना ही पड़ता है। यह क्या कहे राजकन्या भर्ता के योग्य हो गई है अब यह माता-पिता के प्रसाद से अपने सदृश वर को प्राप्त करे यही उचित है।।६१-६४।।

❖✳❖

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११८।।

वैशम्पायनजी बोले कि जब वह उषा वैशाख शुक्ल पक्ष द्वादशी को सखियों के बीच अपनी छत पर सोई उसी समय स्वप्न में कहा हुआ पुरुष उस शोभना के साथ रमण किया। देवी पार्वती के वचन से प्रेरित उषा तरह-तरह की चेष्टा तथा रुदन करती स्वप्न में उस पुरुष के साथ रमण की और स्त्रीभाव को प्राप्त हुई इसके बाद रक्त से लिप्त रोती हुई उषा सहसा रात्रि में उठ गई। तब उसको उस प्रकार रोती देख चित्रलेखा मीठा बचन बोली। हे उषे! मत डरो राजा बलि के पुत्र की प्रख्यात पुत्री हो। हे सुभ्रु! तुम्हारा पिता रण में देवताओं का अन्त करने वाला है अतः तुम भय रहित हो जाओ। इस प्रकार के वास स्थान में कोई भय नहीं होता है। तुम्हारे पिता द्वारा इस नगर में आने के पहले ही शची के भर्ता इन्द्र को रण में मसल दिया गया है। सखी द्वारा इस प्रकार कहने पर उषा स्वप्न में जैसा रूप देखी थी उसका निवेदन करने लगी।।१-१०।।

उषा ने कहा हे साध्वी! इस प्रकार सन्धर्षित अर्थात् रगड़ी जाने पर मैं कैसे जीने का उत्साह करूँ। वंश को कलंकित करने वाली मैं अपने पिता से क्या कहूँगी। मेरे लिये मर जाना ही कल्याणकर है, जैसे कोई इच्छित पुरुष आकर चला जाय वैसे ही वह आकर मेरे पास से चला गया। जैसे में जागती सी रही फिर भी उसने मेरी यह अवस्था कर दी रात्रि में जागती हुई के समान मेरी यह दशा किसने कर दी मैं कन्या होकर कैसे जीने का साहस करूँ। साध्वी स्त्रियों के सामने कुल की निन्दा करने वाली कुलाङ्गारी तथा निराश्रया कैसे जीने की इच्छा करेगी। इस प्रकार आँखों में आँसू भर कर सखियों से घिरी उषा अधिक समय तक विलाप करती रही। अनाथ की भाँति रोती हुई उसको देख सभी सखियाँ चेतना रहित हो गई, आई हुई सखियों ने उषा से कहा। हे देवि! दूषित मन से पुण्य-पाप करने पर ही कोई दोषी ठहराया जाता है इसके विपरीत नहीं, तुम्हारा मन कोई दूषित नहीं था बल्कि शुभ था। यदि अत्यन्त प्रबल दैव संयोग से स्वप्नावस्था में तुम भोगी गई हो तो इससे व्रत का लोप नहीं हो सकता। इस प्रकार के व्यभिचार से तुम्हारे व्रत में कोई

व्यतिक्रम, दूषण नहीं हुआ क्योंकि मर्त्य लोक में सपने में किये गये कार्य का दोष नहीं माना जाता है।।११-२०।।

धर्मज्ञ महर्षि इसी प्रकार कहते हैं, जो मन वचन तथा विशेष रूप से कर्म तीनों से जो दुष्ट होते हैं उन्हीं को पण्डित लोग पापी कहते हैं। हे भीरु! तुम्हारा मन कभी चंचल नहीं दिखाई देता, तुम स्वप्न के दोष से कैसे दूषित मानी जाओगी तुम तो ब्राह्मचारिणी हो। तुम शुद्ध भाव वाली यदि सोई थी और स्वप्नावस्था में इस दशा को प्राप्त हो गई तो इससे धर्म का लोप नहीं हुआ। हे भामिनि! जिसका मन पहले से दुष्ट हो फिर वैसा कर्म भी कर ले तो उसको असती होना कहा है तुम तो सती हो। अच्छे कुल में उत्पन्न, ब्रह्मचारिणी तो तुम समय के कारण इस अवस्था को प्राप्त हो गई हो काल अलंघनीय है। रोती हुई उषा से कुम्भाण्ड की पुत्री ने परम मार्मिक वचन कहा। हे बरानने! तुम पाप रहित हो। जो वचन मैंने सुना है उसको सत्य-सत्य सुनो। तुमसे देवी पार्वती ने जो कहा था उस बात का स्मरण करो कि। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष द्वादशी की रात में छत पर शयनावस्था में तुमको जो स्त्रीत्व भाव में ला देगा वही वीर तुम्हारा भर्त्ता होगा, देवी ने प्रसन्न होकर यह तुम्हारे मन की बात कही थी।।२१-३०।।

जो पार्वती के द्वारा कहा गया वचन है वह कभी मिथ्या नहीं हो सकता तब तुम इस प्रकार रुदन क्यों कर रही हो। कुम्भाण्ड पुत्री द्वारा इस प्रकार कहने पर देवी के वचनों का स्मरण कर वह शुभेक्षण शोक से रहित हो गई। उषा ने कहा कि क्रीड़ा के समय देवी के द्वारा कही बातों का मैं स्मरण करती हूँ, जैसे उन्होंने कहा था वैसा ही सब कुछ मैंने भवन की छत पर प्राप्त किया। यदि पार्वती जी द्वारा आदिष्ट पति मेरा यही है तो इसको कैसे जाना जाय कि यह कौन है इसका उपाय करना चाहिये। ऐसा कहने पर कुम्भाण्ड की पुत्री पुनः न्यायोचित बात कहने लगी कि हे देवि! उसके कुल को अच्छी तरह से कोई नहीं जानता फिर तुम मोहित क्यों हो रही हो। हे शुभे! जो न देखा गया न सुना गया केवल स्वप्न में देखा गया ऐसे रति चोर का पता हम लोगों से

कैसे लग सकता है? जिसने राजमहल में प्रवेश कर बलपूर्वक अत्यन्त रोती हुई तुझको भोगा है वह कोई साधारण पुरुष नहीं है जो तुम्हारे लोक विख्यात नगर में प्रवेश किया है वह एक अद्वितीय शत्रुनाशक देवता है। भयंकर पराक्रम वाले आदित्य, वसु, रुद्र तथा महाबली अश्विनी कुमार भी शोणितपुर में इस प्रकार प्रवेश कर भोग करने में समर्थ नहीं हो सकते।।३१-४०।।

बाण के मस्तक पर पैर रखकर शोणितपुर में जिसने प्रवेश किया है वह इन लोगों से सौगुना गुण में चढ़ा-बढ़ा वीर होगा। जिसका भर्ता इस प्रकार युद्ध विशारद न हो तो उसके जीवन से तथा भोग से क्या प्रयोजन? तुम धन्य हो तथा पार्वती के द्वारा अनुगृहीत हो कि जो देवी की प्रसन्नता से कामदेव के समान ऐसा पति प्राप्त किया है। अब करने योग्य श्रेष्ठ कार्य सुनो, वह जिस कुल का है और जो नाम है इन सब बातों को जानने का उपाय करना चाहिये। उषा कुम्भाण्ड की पुत्री से कहने लगी कि मैं कैसे यह जान सकूँगी। तुम्हीं उपाय सोचो मुझसे तो कुछ कहते करते नहीं बनता है। उषा के वचन को सुन कर कुम्भाण्ड-पुत्री रामा ने पुनः उषा से कहा। तुम्हारी सखी चित्रलेखा नाम की अप्सरा है उसे शीघ्र सूचना दे दो। उसे त्रैलोक्य की सभी बातों की सदा जानकारी रहती है इस प्रकार कहने पर उषा चित्रलेखा को बुलवा कर हाथ जोड़ दीन वचन कहने लगी।।४१-५०।।

उषा के वचन को सुनकर चित्रलेखा ने उषा को आश्वासन दिया। तत्पश्चात् उषा ने चित्रलेखा से कहा। आवश्यक जो बात कह रही हूँ उस बात को सुनो; यदि तुम मेरे प्रिय भर्त्ता को जो तेजस्वी तथा कमलपत्रोंके समान नेत्रं वाला है एवं मत्त हाथी के समान गमन करने वाला है, नहीं लाओगी तो मैं अपने प्राणों को शीघ्र ही त्याग दूँगी। तब चित्रलेखा उषा को प्रसन्न करती हुई धीरे से बोली कि हे भामिनि! यह प्रयोजन हमारे द्वारा ज्ञात होना तो सम्भव नहीं जान पड़ता क्योंकि हे सखि! उस चोर का कुल, वर्ण, शील, रूप तथा देश को मैं नहीं जानती हूँ। फिर भी मैं बुद्धिपूर्वकन उद्योग करने के लिये उद्यत हूँ, जिस प्रकार तुम अपने पति को प्राप्त कर सकोगी उसे मुझसे सुनो। देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प तथा राक्षस इनमें जो भी अपने प्रभाव से, रूप से तथा समाज

से नामी हैं और मनुष्य लोक में भी जो श्रेष्ठ तथा विख्यात हैं उन सभी का प्रभाव के अनुसार फोटो सात रात्रि के अन्दर बनाकर दिखाऊँगी तब तुम चित्रपट पर बने चित्रों को देख कर अपने भर्त्ता को पहचान लोगी।।५१-६०।।

इस प्रकार कहने पर उषा ने चित्रलेखा से कहा कि ऐसा ही करो। इसके बाद चित्रलेखा सात रात्रि के भीतर उन सभी का चित्र लिख कर उषा तथा विशेष रूप से सखियों को दिखलाने लगी कि ये देवताओं और दानववंशियों में मुख्य हैं। इसी प्रकार किन्नर, असुर तथा दैत्य एवं जो अन्य भोगी कहे गये हैं उन्हें दिखलाई। जो प्रमुख मनुष्य हैं उन सभी के चित्रों को तुम देखो। जो तुम्हारा भर्त्ता है और जिस रूप का है उसे भी मैंने लिख दिया है अब तुम स्वप्न में जैसा देखी हो वैसा पहचान लो। इसके बाद क्रमशः उन सभी को देख कर उषा देव, दानव, गन्धर्व, विद्याधर आदि के गणों को हटा कर सम्पूर्ण यादवों को देखा उसमें यदुनन्दन अनिरुद्ध को देख कर उसके नेत्र प्रफुल्लित हो गये और वह चित्रलेखा से कहने लगी कि हे सखि! यही वह चोर है। जिसने पहले-पहल स्वप्न में छत पर सोई हुई मुझ सती को दूषित किया है, यही मेरा पहचाना हुआ रूप है यह रति-चोर कहाँ रहता है?।।६१-७०।।

इसको तुम अच्छी तरह बतलाओ, कुल तथा शील कैसा है, किस देश में रहने वाला तथा इसका नाम क्या है इसके बाद कार्य के निश्चय का विधान करूँगी। चित्रलेखा बोली यह भयंकर पराक्रम वाला तुम्हारा पति त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण का पौत्र और प्रद्युम्न का पुत्र है। इसके समान पराक्रम वाला तीनों लोकों में कोई नहीं है यह पर्वतों को उखाड़ कर शत्रुओं को मारता है। त्रिनेत्र शंकर जी की पत्नी पार्वती ने तुम्हारे सदृश ही सज्जन यदुश्रेष्ठ पति का आदेश दिया है इसलिये तुम धन्य हो। उषा बोली–तुम्हीं इस कार्य में योग् हो दूसरे की गति सम्भव नहीं है तुम हमारी अगति की गति हो जाओ। तुम आकाश में विचरण करने वाली योगिनी और इच्छानुसार रूपों को धारण करने वाली हो तुम्हीं इस कार्य में कुशल हो, अतः शीघ्र मेरे पति को लाओ। तुम वही उपाय सोचो कि जिस उपाय से कार्य सिद्ध कर वापिस आओ। आपत्तिकाल में जो मित्र होता है उसी मित्र की पण्डितजन प्रशंसा करते हैं मैं कामपीड़िता

हूँ तुम मेरे प्राणों को धारण कराने वाली होओ। यदि देवता के समान मेरे इस पति को आज नहीं लाओगी तो मैं शीघ्र प्राणों को त्याग दूँगी। उषा के वचनों को सुन कर चित्रलेखा बोली कि मेरे वचन को सुनो।।७१-८०।।

जिस प्रकार बाणासुर की नगरी चारों तरफ से सुरक्षित है उसी प्रकार द्वारका भी सुरक्षित है हे भीरु! उसमें देवताओं द्वारा भी प्रवेश कठिन है। वह लौहमय फाटकों से ढकी है और उस पुरी का प्रवेशद्वार गुप्त है तथा वह वृष्णि कुमारों और द्वारकावासियों द्वारा रक्षित है। और वह समुद्र रूपी खाइयों से घिरी है उसको स्वभावत विश्वकर्मा ने सुरक्षित बनाया है। श्रीकृष्ण की आज्ञा से घोर पराक्रमी पुरुष उसके चारों ओर पहरा दिया करते हैं। उसके चारों और पर्वतों की चाहारदिवारी तथा समुद्र की खाई होने से उसके प्रवेश का मार्ग कठिन है, धातुओं से मंडित पर्वतों के सात परकोटों के अन्दर वह पुरी विरचित है। अनभिज्ञ व्यक्ति उसमें प्रवेश करने के लिये समर्थ नहीं हो सकते, इसलिये तुम अपनी तथा मेरी और विशेष रूप से अपने पिता बाण की रक्षा करो। उषा बोली कि हे सखि! वहाँ योग के बल से तुम्हारा प्रवेश हो सकता है। यदि पूर्ण चन्द्रमा के समान अनिरुद्ध का मुख नहीं देखूँगी ते मै अब यमराज के सदन को चली जाऊँगी। दूत को प्राप्त कर कठिन कार्य की भी सिद्धि हो जाती है, यदि तुम मुझे जिन्दा चाहती हो तो तुम हमारा दूत बन कर जाओ। और मेरे कान्त को लाओ मैं तुम्हारी शरणागत हूँ। काम के मद से विकल तथा दुःखी कामिनियाँ जीवन के सन्देह और कुल क्षय को नहीं देखती हैं।।८१-९०।।

कार्य सिद्धि के लिये प्रयत्न करना चाहिये यह शास्त्रों का आदेश है। तुम द्वारका में प्रवेश करने के लिये समर्थ हो। मैंने तुम्हारी स्तुति की है, अतः मेरे प्रिय का दर्शन कराओ। चित्रलेखा ने कहा कि हृदय से निकले अमृत के समान वाक्यों से तुमने हमारी सर्वथा स्तुति की है। इसलिये हे भीरु! मैं शीघ्र द्वारकापुरी को जाती हूँ और द्वारका में प्रवेश कर वृष्णिकुल में उत्पन्न महाबाहु तेरे भर्त्ता अनिरुद्ध को आज ही लाती हूॅ। मन के समान वेग से चलने वाली वह चित्रलेखा शीघ्र ही अन्तर्धान हो गई। और यहाँ सखियों के साथ चिन्तना करती हुई उषा बैठी रही, दिन के तीसरे प्रहर में शोणितपुर से वह गई थी।

वह सखी उषा के प्रिय को लाने की इच्छा करती क्षण भर में ही श्रीकृष्ण से पालित द्वारका को पहुँच गई। और उसने कैलास के शिखरों के समान भवनों से सुशोभित रम्य द्वारकापुरी को आकाश में स्थित तारा की भाँति देखा।।९१-९८।।



अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्याय: ।।११९।।

वैशम्पायनजी बोले-कि चित्रलेखा द्वारका मैं पहुँच कर श्रीकृष्ण के भवन के समीप स्थित हो गई और अनिरुद्ध के हरण की बात सोचने लगी। बुद्धि के अर्थ को निश्चय करती हुई वह जल में नारद मुनि को ध्यान करते हुए देखा। उनके निकट जा नमस्कार कर खड़ी हो गई। नारद जी आशीर्वाद दे बोले कि तुम यहाँ किस लिये आई हो? चित्रलेखा ने कहा-हे भगवन्! मैं यहाँ दूती बन कर अनिरुद्ध को लेने के लिये आई हूँ। शोणितपुर में बाण नाम का महासुर है उसकी कन्या उषा नाम से विख्यात है। वह अनिरुद्ध पर आसक्त है; पार्वती देवी ने वरदान द्वारा उषा के लिये इन्हीं को भर्त्ता नियुक्त किया है। जिस प्रकार कार्य सिद्ध हो वैसाही मुझे विधान बताइये हमारे द्वारा अनिरुद्ध को शेणितपुर ले जाने पर। हे मुने! इस वृत्तान्त को पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण से कह दीजियेगा तब अवश्य ही श्रीकृष्ण के साथ बाण का संग्रामभूमि में महान् युद्ध होगा; वह महासुर वरदानी है।।१-१०।।

उस महासुर को युद्ध में जीतने के लिये अनिरुद्ध समर्थ नहीं है उस सहस्रबाहु को रण में श्रीकृष्ण ही जीतेंगे। मैं जिस लिये यहाँ आई हूँ कह दी; अब यह बात श्रीकृष्ण को कैसे ज्ञात होगी। हे भगवन्! आपके प्रसाद से मुझे श्रीकृष्ण से भय नहीं है अब अनिरुद्ध कैसे हरे जायेंगे? इसका कोई उपाय बतलाइये क्योंकि पौत्र के शोक से संतप्त हो महाबाहु श्रीकृष्ण त्रैलोक्य को भस्म कर देंगे, वे हमको भी शाप से जला देंगे। हे भगवन्! जैसे उषा अपने प्रिय को प्राप्त कर सकती है और मैं भी निर्भय रूप से रह सकती हूँ वैसे उपाय को सोचने में आप ही समर्थ हैं। ऐसा कहने पर भगवान् नारद ने चित्रलेखा

से शुभ वाक्य कहा कि तुम डरो मत मेरे अभयकारक वचन को सुनो। अनिरुद्ध को ले जाकर कन्या उषा के घर में प्रवेश करा देने पर यदि कोई भय उपस्थित हो जाय तो वहाँ तुम मेरा स्मरण करना। हे मनोरमे! क्योंकि युद्ध देखने की मेरी बड़ी ही इच्छा रहती है, हे देवि! मैं तुमको यह तामसी विद्या देता हूँ, इससे तुम कृतकृत्य हो जाओगी। महर्षि नारद से तामसी विद्या ले।।११-२०।।

नमस्कार कर चित्रलेखा आकाश मार्ग से अनिरुद्ध के भवन में प्रविष्ट हो गई। उस भवन में सुवर्ण की बेदिकायें बनी थीं तथा सुवर्ण के खम्भे लगे थे वह सुवर्ण एवं वैदूर्य मणि के तोरणों और पुष्पमाला की रस्सियों एवं मांगलिक कलशों से सुशोभित था जहाँ कि अनिरुद्ध सुख से निवास करते थे वहाँ परम सुन्दर स्त्रियों के बीच तारापति चन्द्रमा के समान उदित अनिरुद्ध को देखा। क्रीड़ा विहार में स्त्रियों के द्वारा सेव्यमान परम शोभा से युक्त हो उनको माध्वीक मधु पीते हुए देखा। वहाँ ताल के साथ बाजे बजाये और मधुर गीत गाये जा रहे थे। यद्यपि वहाँ सर्व-गुण से सम्पन्न स्त्रियाँ नाच रही थीं तथापि अनिरुद्ध का मन वहाँ नहीं लग रहा था उनका मन तो उषा की ही चिन्तना कर रहा था। वे प्रसन्न होकर मधु का सेवन नहीं कर रहे थे।।२१-३०।।

इनके मन में स्पष्ट रूप से वही स्वप्न की बात स्मरण हो रही थी इन सब बातों का निश्चय भयरहिता चित्रलेखा ने अपने बुद्धि से किया था। सुन्दर स्त्रियों के मध्य इन्द्रध्वज के समान अनिरुद्ध को देख कर चित्रलेखा का हृदय चिन्ता से युक्त हो गया कि—अनिरुद्ध का हरण कैसे किया जाय और कैसे इसका कल्याण हो वह यशस्विनी चित्रलेखा इस प्रकार की चिन्ता कर अनिरुद्ध को छोड़ तामसी विद्या के द्वारा सबको व्यामोहित कर दी इसके बाद अन्तरिक्ष से वह भवन की छत पर जाकर खड़ी हो गई। और अनिरुद्ध के लिये उनकी ओर देख कर, उन्हें अपनी और आकर्षित कर प्रद्युम्न-पुत्र से मधुर वाणी से बोली। चित्रलेखा एकान्त में यह बात कही कि हे वीर यदुनन्दन! मेरे द्वारा सन्देश को सुनो। मैं अपनी सखी उषा का सन्देश कह रही हूँ कि जिसको तुमने स्वप्न में देखा था और स्त्री भाव को भी प्राप्त कराया था। जो तुमको अपने

हृदय में धारण की है उसी उषा ने मुझको भेजा है, वह बार-बार आपके लिये रुदन कर रही है, जम्भाई ले रही है तथा लम्बी-लम्बी स्वाँसे छोड़ रही है। हे सौम्य! तुम्हारे दर्शन के लिये वह कामिनी परितप्त हो रही है। हे वीर! जब तुम उसके पास जाओगे तभी वह जीवन धारण करेगी।।३१-४०।।

यदि तुमको वह नहीं देखेगी तो उसका मरण हो जायेगा इसमें संशय नहीं है। हे यदुनन्दन! यद्यपि तुम्हारे हृदय में हजारो नारियाँ बसती हैं तथापि। आपकी कामना करने वाली स्त्री का हाथ ग्रहण करना चाहिये क्योंकि पार्वती देवी ने वरदान के समय उसके मनोरथ को पूर्ण करने के लिये आपको ही पति होने का वर दिया है। मैंने तुम्हारा चित्रपट उसे दिया है उसी तुम्हारी प्रतिमा को देख कर वह जीवित है हे यदुश्रेष्ठ! आप उसके पति होकर उसके मनोरथ को पूर्ण करें। उषा आपको शिर से नमस्कार कर रही है और हम लोग भी नमस्कार करती हैं वह शोणितपुर के राजा की कन्या तुम्हें चाहती है उसका चित्त तुम्हारे में लगा है उसका जीवन तुम्हीं पर हो गया है। उसके मनोरथ करने पर देवी पार्वती ने आप ही को पति रूप में दिया है वह शुभा तुम्हारे संगम से ही प्राण धारण करेगी। चित्रलेखा की बात सुन अनिरुद्ध ने कहा कि हे शोभने! मैंने स्वप्न में देखने के बाद जैसी मेरी हालत है उसे मुझसे सुनो। मैं उसके रूप, कान्ति, मति और संयोग एवं रुदन आदि सब बातों की चिन्तना करता हुआ मोहित हो रहा हूँ। हे चित्रलेखे! यदि तुम मेरे ऊपर अनुग्रह करना तथा उससे मेल करा देना चाहती हो तो मुझको वहाँ ले चलो मैं अपनी प्रिया को देखना चाहता हूँ।।४१-५०।।

प्रिया के संगम की इच्छा से मैं कामदेव से सन्तप्त हो रहा हूँ अतः मेरे सपने को सत्य करो मैं तुम्हारा हाथ जोड़ रहा हूँ। अनिरुद्ध के वचन को सुन श्रेष्ठ अप्सरा चित्रलेखा मन में कहने लगी कि मेरे सखी ने जो चाहा था सो और मेरा परिश्रम आज सफल हो गया। वैशम्पायनजी बोले कि भामिनी चित्रलेखा अनिरुद्ध की इच्छा को जान कर सन्तुष्ट हो गई और बोली कि ऐसा ही करती हूँ। फिर तो भवन के अन्दर स्त्रियों के बीच बैठे हुए युद्धदुर्मद अनिरुद्ध को छिपे तौर से लेकर उड़ चली। और उसी रास्ते से जो सिद्ध और

चारणों से सेवित था, होकर मन के समान वेग वाली चित्रलेखा सहसा शेणितपुर में प्रवेश कर गई। इच्छानुसार रूप धारण करने वाली चित्रलेखा माया के द्वारा छिपे रूप से अनिरुद्ध को लेकर वहाँ चली गई कि जहाँ उषा रहती थी। चित्र-विचित्र वस्त्र-भूषणों को धारण करने वाले देवता के समान रूप वाले अनिरुद्ध को एकान्त में उषा को दिखाया। सखियों के समीप घर में बैठी हुई उषा उन्हें देख कर विस्मित हो गई इसके बाद अपने निजी घर मे लिवा ले गई। प्रयोजन को सिद्ध करने में कुशल उषा के नेत्र अपने प्रिय को देख कर प्रफुल्लित हो गये उसने अर्घ के द्वारा यादव अनिरुद्ध का पूजन किया। और चित्रलेखा का आलिंगन कर प्रिय भाषणों से सन्तुष्ट किया फिर शिघ्रता पूर्वक भयभीत हो कामिनी उषा चित्रलेखा से बोली।।५१-६०।।

इन्हें गुप्त रखने ही में कल्याण है प्रकट करने में तो जीवन का नाश है। ऐसा कह शीघ्रता से सज-धज कर गुप्त स्थान में अपने कान्त के साथ भयभीत की भाँति स्थित हो गई। चित्रलेखा ने कहा कि हे सखि! तुम मेरे निश्चय को सुनो पुरुषार्थ से किये कार्य को दैव नष्ट कर देता है। यदि देवी पार्वती का तुम्हारे ऊपर अनुग्रह है तो तुम्हारे ही अनुकूल सभी बातें होंगी, आज के माया से किये गये गुप्त कार्य को कोई पुरुष नहीं जानेगा। सखी के इस प्रकार कहने पर चित्रलेखा स्थिर चित्त हो गई उसने अनिरुद्ध से कहा कि। स्वप्न में चोर की भाँति आया हुआ सुन्दर पति भाग्य से ही आज दिखलाई पड़ रहा है कि जिस दुर्लभ प्रिय की आकांक्षा से हम खिन्न थीं। हे महाबाहो! कहो तुम्हारा तो सब प्रकार से कुशल है? स्त्रियों का हृदय कोमल होता है इसी से तुमसे पूछ रही हूँ। उषा के मधुर और सारगर्भित वचन को सुन कर यदुसिंह अनिरुद्ध भी अत्यन्त शुभ अक्षरों से बोले। हर्ष के कारण अश्रु भरे नेत्रों वाली उषा के आसुओं को अपने हाथ से पोंछ कर तथा हँस कर वे हृदयग्राहक वचन बोले। हे मितभाषिणी, बरारोहे! तुम्हारे प्रसाद से मेरा सब प्रकार कुशल है अब मैं तुमसे प्रिय बातों का निवेदन करता हूँ।।६१-७०।।

हे शुभदर्शने! यह देश पहले का मेरा देखा नहीं था रात्रिकाल स्वप्न में एक बार जैसा कुछ देखा था वैसा ही देख रहा हूँ। हे भीरु! इस प्रकार

तुम्हारे प्रसाद से मैं यहाँ आ भी गया रुद्र पत्नी पार्वती जी का वाक्य मिथ्या नहीं होगा। हे भामिनि! देवी की तुम्हारे ऊपर प्रीति है ऐसा जानकर ही आज मैं यहाँ आया हूँ, मैं देवी की शरणागत हूँ अब तुम प्रसन्न हो जाओ। ऐसा कहने पर शीघ्रता से सज-धज कर उषा अपने कान्त के साथ भयभीत की भाँति गुप्त स्थान में छिपत हो गई। इसके पश्चात् गान्धर्व विवाह की विधि से उन दोनों ने विवाह कर लिया और चकवा-चकई की भाँति दिन में रमण करने लगे। अनिरुद्ध जैसे पति से वह वराङ्गना प्रसन्न हो गई वह दिव्य वस्त्र तथा माला एवं चन्दन से अलंकृत हो अपने कान्त के साथ रहने लगी। अनिरुद्ध के साथ कन्या रमण कर रही है इस बात को कोई नहीं जानता था उसी प्रेम-व्यवहार के समय में एक बार यदुश्रेष्ठ अनिरुद्ध दिव्य माला तथा वस्त्रों को धारण किये चन्दन लगाये उषा के साथ बैठे थे कि बाणासुर के रक्षकों ने देख लिया। इसके बाद उन गुप्तचरों ने बाण से शीघ्र ही सभी बातों का निवेदन कर दिया जैसे कि कन्या के धर्म का अतिक्रमण हुआ था। फिर तो शत्रुघाती भीमकर्मा ने सेना को आज्ञा दे दिया कि।।७१-८०।।

तुम सब सेना के साथ चले जाओ और उस दुर्मति को मार डालो कि जिस दूषितात्मा ने मेरे कुल के चरित्र को दूषित किया है। उषा के दूषित होने पर हमारा महान् कुल कलंकित हो गया, हमारे द्वारा बिना दिये ही उसने स्वयं अपने मन से कन्या को दूषित किया है। उस दुर्मति के बल, धैर्य तथा ढिठाई को तो देखो जो यह मेरे पुर तथा भवन में प्रविष्ट हो गया, वह बालक नहीं है। ऐसा कह कर पुनः सेवकों को कड़ी आज्ञा दी तब वे महाबली उसकी आज्ञा को ग्रहण कर अच्छी तरह तैयार हो वहाँ चले कि जहाँ अनिरुद्ध थे। अनिरुद्ध के वध की आकांक्षा से वे भयंकर दानव नाना प्रकार के शस्त्रों को लिये थे। उस सेना को देख कर यशस्विनी बाणपुत्री उषा अनिरुद्ध के वध के भय से रोने लगी। तब हा, हा, कान्त कह कर रोती और काँपती उस कन्या को देख कर अनिरुद्ध बोले। हे सुश्रोणि! मेरे रहते तुम भय न करो अभय हो जाओ तुम्हारे लिये यह हर्ष का समय प्राप्त हुआ है भय का कोई कारण नहीं है। हे यशस्विनी! बाण की सम्पूर्ण सेना भी आ जाय तो भी मुझे कुछ चिन्ता

नहीं है हे भीरु! आज तुम मेरे पराक्रम को देखो। 'यह क्या' ऐसा कहते हुए सेना के होहल्ला को सुन कर सहसा उठ खड़े हो सेना के सम्मुख चले गये।।८१-९०।।

उन्होंने देखा कि नाना प्रकार के आयुधों को ग्रहण कर सेना विशाल भवन को चारों ओर से घेरे खड़ी है। तब वे वहाँ चले गये कि जहाँ सेना सज कर खड़ी थी अपने बल का स्मरण कर वे क्रोध के मारे ओष्ठ काटने लगे। तत्पश्चात् युद्ध के लिये बाहर निकले हुए बाण के सैनिकों को देख कर चित्रलेखा ने नारद जी का स्मरण किया। तब चित्रलेखा के स्मरण करने पर निमिष मात्र में मुनिश्रेष्ठ नारद जी शोणितपुर में आ गये। और आकाश में स्थित हो अनिरुद्ध से बोले कि हे वीर! तुम भय न करो मैं आ गया हूँ तेरा कल्याण हो। तब नारद जी को देख नमस्कार कर वे महाबली युद्ध के लिये उद्यत हो गये। अनिरुद्ध को भवन के चौतरे से उतरते हुए देख कर भय के मारे दैत्य भागने लगे। अनिरुद्ध ने अन्तःपुर के दरवाजे पर रखे बड़े भारी परिघ को उठा कर दैत्यों के वध के लिये चलाया। तब रण में उतर जाने पर वे सभी दैत्य बाण वर्षाकर गदा, मूशल, खड्ग, शक्ति एवं शूल से अनिरुद्ध को मारने लगे।।९१-१००।।

अनिरुद्ध क्षुभित नहीं हुए परन्तु आषाढ़ मास कालीन मेघ की भाँति गर्जते रहे और वे मेघ के बीच सूर्य के समान भयंकर परिघ को घुमाते हुए स्थित रहे। दण्ड तथा कृष्णमृग चर्मधारी नारद जी प्रसन्न होकर अनिरुद्ध को साधु-साधु कहने लगे। अमित पराक्रमी अनिरुद्ध द्वारा भयंकर परिघ से मारे जाते हुए वे दैत्य भय से वायु प्रेरित मेघ की भाँति भागने लगे। सुन्दर पराक्रमी वीर अनिरुद्ध परिघ से दानवों को भगाकर प्रसन्नता पूर्वक सिंह के समान दहाड़ने लगे। उष्ण काल के बाद जैसे आकाश में बादल गर्जत हैं वैसे ही बड़े भारी शब्द से नाद करते हुए युद्धदुर्मद दानवों को ठहरो-ठहरो ऐसा कहते हुए निन्दित करने लगे। वे सब भयभीत दानव युद्ध से पराङ्मुख हो बाण के समीप चले गये और रुधिर से भींगे दानव हाँफने लगे। भय से विकलचित्त दानव अशान्त हो गये तब बाण ने कहा कि मत डरो-मत डरो। भय से वित्रस्त

उन दानवों से बाणासुर ने पुनः कहा कि हे दानवश्रेष्ठों! भय को त्याग इकट्ठे होकर युद्ध करो।।१०१-११०।।

लोक प्रसिद्ध यश को दूर से ही त्याग कर नपुंसकों की भाँति काँपते हुए आप लोग क्यों विकल हो रहे हैं। यह कौन है कि जिसके भय से त्रस्त होकर आप लाग तितर-बितर हो भाग रहे हैं। यदि आज आप लोगों से युद्ध रूपी कार्य की सहायता नहीं हो सकती है तो आप लोग मेरे सामने से चले जाइये ऐसा नीचा दिखाते हुए बाण ने पुनः दस हजार शूरों को युद्ध के लिये भेजा। तथा अनिरुद्ध को बाँध लेने के लिये उसने बहुत से शंकर जी के विशेष गणों को भेजा वे आकाश में चारों ओर वर्षा काल के मेघ की भाँति शोभने लगे। इस प्रकार पुनः बड़ी भारी सेना इकट्ठी हो जाने पर। वीर अनिरुद्ध भी उन दानवों के सामने उपस्थित हो गये इसमें आश्चर्य यही हुआ कि वे अकेला होते हुए भी अनेक दैत्यों का सामना किये। अनिरुद्ध महाबली दानवों के साथ युद्ध करने लगे और उनके परिघों तथा तोमरों को छीनने लगे।।१११-१२०।।

और वे महाबली उन्हीं परिघों एवं तोमरों से उन्हें मारने लगे वे रण के बीच परिघ में फेक कर मारते थे और पुनः उसे पकड़ लेते थे। वह शत्रुसूदन अनेक रूप धारण कर अनेक मार्गों पर विचरते हुए लड़ने लगे उन्होंने भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत तथा प्लुत आदि बत्तीस तरह के युद्ध के पैतरों को दिखलाया, उन एक अनिरुद्ध को वहाँ रण के बीच में हजारों रूप में दैत्यों ने देखा। इस प्रकार युद्ध में अनेकों क्रीड़ा करते हुए अनिरुद्ध को मुँह फैलाये यमराज के समान दैत्यों ने देख अनिरुद्ध से संतप्त तथा रुधिर से भींगे हुए जहाँ बाण था वहाँ भाग गये कितने दैत्य घोर आर्त-नाद करते हुए चारों तरफ दिशाओं में भागने लगे यहाँ तक हो गया कि मारे डर के आपस में एक दूसरे पर गिरने लगे। कितने रुधिर का वमन करते हुए भागे ऐसा भय तो पहले देवताओं के साथ युद्ध करने में भी नहीं हुआ था। कितने रुधिर वमन करते पृथ्वी तल पर गिरने लगे। कितने भय से व्याकुल हो भाग गये इस प्रकार दानवों को देख कर।।१२१-१३०।।

बाणासुर मारे क्रोध के यज्ञाग्नि की भाँति जलने लगा, अनिरुद्ध के इस प्रकार संग्राम करने पर नारद जी परम प्रसन्न हो साधु-साधु कहते हुए आकाश में नाचने लगे, इसी बीच परम क्रोधी बलवान् बाणासुर कुम्भाण्ड द्वारा लाये रथ पर चढ़ कर जहाँ अनिरुद्ध खड्ग लिये खड़े थे वहाँ चला गया। हजार बाहुओं से इन्द्र की सैकड़ों ध्वजाओं की भाँति शोभने लगा। क्रोध से लाल-लाल आँखों वाला बाणासुर क्रुद्ध हो धनुष चढ़ाये कहने लगा कि ठहरो-ठहरो। तब बाणासुर के वचन को सुन तथा संग्राम में उसके मुख को देख कर विजयी अनिरुद्ध हँसने लगे। देवासुर संग्राम में हिरण्यकशिपु के रथ के समान उसका रथ शोभा पा रहा था। जब बाण को युद्ध के लिये आता हुआ अनिरुद्ध ने देखा तब प्रसन्न हो तेज से परिपूर्ण हो गये।।१३१-१४०।।

संग्राम की लालसा से ढाल-तलवार धारण किये स्वस्थ वीर अनिरुद्ध बाणासुर के वध के लिये वैसे ही उद्यत हो गये कि जैसे नरसिंह भगवान् हिरण्यकशिपु के वध के लिये उद्यत हुए थे। अनिरुद्ध को ढाल-तलवार लिये पैदल ही युद्ध के लिये आते हुए देख कर वधेच्छु बाण बड़ा ही प्रसन्न हुआ और कवच विहीन तथा हाथ में खड्ग लिये उन यादव अनिरुद्ध को अजेय मान कर उन्हें रण में जीत लेने की इच्छा से उनके सम्मुख स्थित हो गया। और वह कहने लगा कि पकड़ लो मार डालो तब समर में उसके इस वचन को सुन। भयत्रस्त रोती हुई उषा को आश्वासन देकर अनिरुद्ध हँसते हुए खड़े हो गये इसके बाद अनिरुद्ध के वध की इच्छा से बाण क्षुद्र नामक बाण समूहों की समर में वर्षा करने लगा और अनिरुद्ध उसके पराजय की इच्छा से उन बाणों को काटने लगे। रण में वध की आकांक्षा से बाणासुर अनिरूद्ध के शिर पर क्षुद्र नामक बाण जालों की वर्षा करने लगा। तब हजारों बाणों को ढाल से वारण कर बाण के सम्मुख अनिरुद्ध उदित सूर्य के समान खड़े हो गये।।१४१-१५०।।

रण में बाणासुर को अनादृत कर यदुनन्दन वैसे ही खड़े थे कि जैसे वन में एक हाथी को देख कर कोई प्रमुख सिंह खड़ा हो। इसके बाद बाण ने अपराजित अनिरुद्ध को भेदी बाण समूहों से मारने लगा। तब इस प्रकार

बाणों से समाहत हो अनिरुद्ध ढाल-तलवार लिये बाणासुर पर दौड़े, उन्हें आता देख फिर तीक्ष्ण बाणों से मारने लगा। मुड़े हुए पर्व वाले बाणों से अत्यन्त घायल हो अनिरुद्ध क्रोध से भभक उठे और दुष्कर कर्म करने की इच्छा करने लगे। रुधिर से भींगे तथा बाण-वर्षा से छिदे शरीर वाले अनिरुद्ध तिरस्कृत हो क्रोध से बाण के रथ की ओर चले। वे बाण समूहों से अत्यन्त विद्ध होने पर भी कम्पित न हुए। रण के बीच क्रुद्ध हो सहसा वे कूद कर खड्ग से रथ के धुरे को काट दिये और घोड़ों को मार डाले। युद्ध करने में कुशल बाणासुर ने पुनः पट्टिश तथा तोमरों और बाणों की वर्षा से अनिरुद्ध को ढक दिया। यह मार डाला गया ऐसा समझ कर बाणासुर गर्जने लगा तब अनिरुद्ध बाणजाल से सहसा निकल रथ के पास खड़े हो गये। इसके बाद बाण जलती हुई शक्ति को उठाया।।१५१-१६०।।

अग्नि और सूर्य की भाँति चमकती शक्ति को आसङ्ग से अर्थात् अनिरुद्ध के मरने से हमारी पुत्री विधवा हो जायेगी इस बात की उपेक्षा से चला दिया। जीवन का अन्त कर देने वाली उस शक्ति को अनिरुद्ध ने कूद कर उसे पकड़ लिया। और उसी शक्ति से महाबली अनिरुद्ध ने बाण को घायल कर दिया वह शक्ति बाण के शरीर को छेद कर पृथ्वी तल में प्रवेश कर गई। तब बाणासुर अत्यन्त गहरा घाव लगने से व्यथित हो ध्वज-दण्ड के सहारे बैठ गया इसके बाद मूर्छा से व्याप्त बाण से कुम्भाण्ड बोला। हे दानवेन्द्र! वध के लिये उद्यत शत्रु की इस प्रकार उपेक्षा क्यों कर रहे हो यह वीर लक्ष्य पा लेने से विकार रहित दिखाई पड़ रहा है। तुम माया का आश्रय लेकर युद्ध करो नहीं तो यह दूसरे प्रकार से नहीं मारा जा सकता है, अपनी और मेरी रक्षा करो। आज ही इसे मार डालो नहीं तो यह हम सबका नाश कर देगा और अन्य सैकड़ों दैत्यों को मार तथा उषा को लेकर चला जायेगा। दानवेन्द्र क्रुद्ध हो रूखे वचन कहने लगा। मैं अभी इसके प्राण को हर लेने वाली मृत्यु का विधान कर रहा हूँ इस प्रकार कह कर अन्तर्धान हो गया।।१६१-१७०।।

माया को धारण करने वाला बली छिप कर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगा तब इस प्रकार छिपे रूप से बाणों को आता जान कर अनिरुद्ध

पुरुषार्थ से युक्त हो दसो दिशाओं की ओर सकर्त हो देखने लगे उस समय महाबली बाण और भी क्रुद्ध हो तामसी विद्या को ग्रहण कर तीक्ष्ण बाण वर्षाने लगा उसी बली मायाधर ने सर्पाकार बाणों द्वारा अनिरुद्ध को सब तरफ से बाँध लिया। अनिरुद्ध का शरीर सर्पों के समूह से आच्छादित हो गया तब सर्वाङ्ग सर्पों से वेष्टित होने से समर में अनिरुद्ध बाँध लिये गये। वे प्रयत्न रहित हो मैनाक पर्वत की भाँति खड़े हो गये और विष की ज्वाला उगलते हुए सर्पों में चेष्टा रहित हो गये। रण में अनिरुद्ध चारों तरफ से पर्वताकार हो गये, सर्प के समान मुख वाले बाणों से निष्प्रयत्न होने पर भी तथा सब तरफ से बँधे जाने पर भी वे सर्वात्मा व्यथित नहीं हुए इसके बाद क्रुद्ध बाणासुर कड़े वचनों से उन्हें डाँटने लगा। ध्वजा को पकड़ कर बाणासुर ईर्ष्या युक्त हो बोला कि हे कुम्भाण्ड! इस कुल में कलंक लगाने वाले को शीघ्र मार डालो। जिस दूषितात्मा ने मेरे चरित्र को दूषित किया है वह जिन्दा रहने लायक नहीं है ऐसा कहने पर कुम्भाण्ड बोला। हे राजन्! मैं कुछ कह रहा हूँ यदि इच्छा हो तो सुनो पहले इस बात को जानिये कि यह किस कुल का है और कहाँ से आया है।।१७१-१८०।।

इस इन्द्र के समान पराक्रमी को कौन यहाँ लाया है हे राजन्! मैंने रण में युद्ध करते हुए इसको अनेकों बार देखा है। युद्ध में क्रीड़ा करता हुआ यह देव-पुत्र के समान दिखाई पड़ता है, यह बलवान् तथा पराक्रम युक्त एवं सम्पूर्ण शस्त्रों में कुशल है। हे दैत्यश्रेष्ठ! वह वध करने योग्य नहीं है। गन्धर्व विवाह कर तुम्हारी कन्या इसके साथ रहती है। इसलिये अब वह दूसरे को देने योग्य नहीं है और अप्रतिग्राह्य है अर्थात् दूसरे के द्वारा ग्रहण करने योग्य भी नहीं रह गई है इस कारण सोच कर इसका वध करो इन सब बातों को जान लो फिर वध अथवा इसकी पूजा करना। इसके वध में महान् दोष तथा रक्षण में महान् गुण है। यह उच्चकोटि का पुरुष है अतः सर्वथा मान के योग्य है। कुल चतुर बलवान् तथा पराक्रम से युक्त होने के कारण चारों ओर से सर्पों द्वारा बँधा होने पर भी यह व्यथित नहीं हो रहा है। हे राजन्! देखो कि महान् पराक्रम से युक्त यह बली पुरुष श्रेष्ठ वध को प्राप्त है फिर भी हम सबों को कुछ नहीं

गिनता है। यदि यह माया के प्रभाव से बाँधा नहीं गया तो यह सम्पूर्ण देवताओं में रण में युद्ध कर सकता है इसमें संशय नहीं है। यह सब प्रकार के मार्गों को जानने वाला है तथा तुमसे अधिक बली है इसका शरीर रुधिर से भींगा है तथा नागों से आच्छादित है फिर भी अपने बाहुबल के भरोसे भृकुटि को टेढ़ी कर हम लोगों को कुछ भी नहीं समझता है।।१८१-१९०।।

हे राजन्! यह तुम्हारी कुछ भी चिन्ता नहीं कर रहा है न जाने यह बलवान् युवक कौन है जो दो बाहु का होकर हजार बाहु के सामने समर में सम्यक् डटा है और बल के मद से युक्त यह आपके बल की चिन्ता नहीं कर रहा है। हे राजन्! यदि आप उचित समझें तो इस पराक्रमी बलवान् का पता लगाइये, कन्या ने इसके साथ वैवाहिक सम्बन्ध कर ली है अब वह दूसरे के साथ नहीं जा सकती। हे असुरोत्तम! यदि यह किसी पुण्यात्मा के वंश में उत्पन्न है तो यह बहुत अच्छा है और यह पूजा प्राप्त करेगा। महात्मा कुम्भाण्ड के इस प्रकार कहने पर बाणासुर, 'ऐसा ही होगा इसकी रक्षा करो' कहकर उठ गया। शत्रु-निषूदन बाणासुर कुम्भाण्ड से 'तथास्तु' कह बुद्धिमान् अनिरुद्ध को रक्षकों के हवाले कर दिया। और बलि-पुत्र अपने भवन को चला गया इधर माया से बँधे हुए महाबली अनिरुद्ध को देखकर ऋषि श्रेष्ठ नारद जी द्वारका को चल दिये, मुनि आकाश मार्ग से द्वारका पहुँचे। ऋषिश्रेष्ठ नारद के चले जाने पर अनिरुद्ध चिन्ता करने लगे कि, अब युद्ध अवश्य होगा और यह क्रूर दानव नष्ट हो जायेगा। क्योंकि नारद जी वहाँ जाकर श्रीकृष्ण जी से इन सब बातों को विस्तार से कहेंगे इसमें संशय नहीं है। इधर नागों से आच्छादित अनिरुद्ध को देख कर उषा रोने लगी उसकी आँखें अश्रु से भर गई तब उस रोती हुई उषा से अनिरुद्ध बोले कि।।१९१-२००।।

हे भीरु! तुम क्यों रो रही हो हे मृगलोचने! तुम मत डरो मेरे लिये यहाँ आये हुए मधुसूदन को देखो। जिस बलवान् की शंखध्वनि सुनकर दानव तथा असुर पत्नियों के गर्भ नष्ट हो जायेंगे। वैशम्पायनजी बोले कि अनिरुद्ध के इस प्रकार कहने पर उषा को विश्वास हो गया और वह सुमध्यमा अपने क्रूर पिता पर शोक करने लगी।।२०१-२०३।।



अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।। १२० ।।

वैशम्पायन जी बोले-जिस समय बाणासुर के द्वारा उषा सहित वे वीर अनिरुद्ध बन्दी बना लिये गये उस समय अपनी रक्षा के लिये वे कोटवती देवी के शरण में गये तब अनिरुद्ध के द्वारा देवी का जो स्तोत्र गाया गया। (उस स्तोत्र को मूल में देखें और पाठ करें) देवी के इस पुण्य स्वरूप स्तोत्र का जो पुरुष समाहित चित्त होकर पाठ करता है उसे सातवें महीने में देवी वर देती हैं। अट्ठारह भुजाओं वाली, दिव्य आभूषणों से भूषित, हार से शोभित सम्पूर्ण अङ्गों वाली, उज्वल मुकुट से विभूषित कात्यायनी देवी स्तुति करने से श्रेष्ठ वर देती हो, इसलिये हे वरदे! हे वामलोचने! मैं उस कात्यायनी देवी की स्तुति करता हूँ। हे महादेवि! तुम्हें नमस्कार है, तुम हमारे पर सदा प्रसन्न होओ और मुझे आयु, पुष्टि, क्षमा एवं धैर्य स्वरूप वरदान दो। बन्धन में पड़ा मैं छूट जाऊँ यह मेरी बात सत्य हो। वैशम्पायनजी ने कहा कि इस प्रकार स्तुति करने पर भाषण पराक्रम वाली दुर्गा शरणागत वत्सला देवी अनिरुद्ध का हित करने के लिये बन्धन में पड़े अनिरुद्ध के समीप आई और बाणासुर के नगर में बँधे हुए वीर अनिरुद्ध को छुड़ा दिया फिर उस अमर्षण वीर अनिरुद्ध को सान्त्वना दिया। प्रतापी वीर अनिरुद्ध ने उस भगवती की पूजा की, बन्धन में पड़े अनिरुद्ध के ऊपर देवी ने कृपा दिखलायी थी। उषा के द्वारा हर लिये गये चित्त वाले तथा नागपाश से बँधे हुए अनिरुद्ध के उस सर्प बन्धन को अपने अँगुलियों से फाड़ कर प्रसन्न मुखवाली देवी सान्त्वना देती हुई अनिरुद्ध से बोलीं।।१-४०।।

श्री देवी ने कहा कि हे अनिरुद्ध! थोड़ा समय की प्रतीक्षा करो मधुसूदन शीघ्र ही बाणासुर के हजार बाहुओं का छेदन कर तुम्हें बन्धन से छुड़ा कर अपनी पुरी को ले जायेंगे। इसके बाद चन्द्रमा के समान प्रिय मुख वाले अनिरुद्ध प्रसन्न हो पुनः देवी की स्तुति करने लगे, अनिरुद्ध ने कहा हे वर प्रदान करने वाली देवि! तुमको नमस्कार है। हे रुद्रप्रिये! आपको मैं शिर से नमस्कार करता हूँ, बन्धन में पड़े हुए मुझको आपने मुक्त किया। वैशम्पायनजी बोले कि-'आर्यस्तव'

नामक इस पुण्य स्तोत्र का जो मनुष्य एकाग्रचित्र से पाठ करता है वह सभी पापों से छूट कर विष्णु लोक को जाता है और जैसा कि व्यासजी का वचन है उसके अनुसार प्राणी बन्धन से छूट जाता है।।४१-४८।।



अथ एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२१।।

वैशम्पायनजी बोले-कि इधर अनिरुद्ध के घर प्रिय अनिरुद्ध को न देख सभी स्त्रियाँ कुररी पक्षी की तरह रोने लगीं। अहो धिक्कार है कि, नाथों के नाथ श्रीकृष्ण के आश्रित रहने पर भी हमलोग अनाथ की भाँति भयभीत हो दुःख से रुदन कर रही हैं। जिन श्रीकृष्ण के बाहुबल का आश्रय लेकर इन्द्र प्रमुख देवता आदित्य और मरुद् गणों सहित स्वर्ग में सुख से रहते हैं। दूसरों को भय देने वाले उन श्रीकृष्ण के लिये लोक में यह महाभय उत्पन्न हो गया जो कि हम लोगों के वीर पौत्र अनिरुद्ध को किसी ने हर लिया। अहो! क्या उस दुर्मति को इस संसार में भय नहीं है जो कि वासुदेव के दुःसह क्रोध को उत्पन्न कर रहा है। जो मुँह फैलाये हुए मृत्यु के दाँतों के आगे हैं। यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण का इस प्रकार अनिष्ट कर साक्षात् इन्द्र भी कैसे जीवित रह सकता है? किसने हम लागों को अनाथ कर दिया? नाथ के वियोग से हम सबों को किसने यमराज के वश में कर दिया। इस प्रकार बार-बार कहती और रोती हुई वे श्रेष्ठ अङ्गनायें नेत्रों से शोकाश्रु जल को बहाने लगीं। अश्रु के जल से पूर्ण उनके नेत्र वैसे ही चमकने लगे कि जैसे वर्षा काल में जल में डूबते हुए कमल चमकते हैं।।१-१०।।

अनिरुद्ध के भवन में बैठी उन स्त्रियों के महाविलाप के शब्द से वैसे ही भवन पूर्ण हो गया कि जैसे हजारों की संख्या में रोती हुई कुररी पक्षियों से आकाश पूर्ण हो जाय। तब ऐसे घोर शब्द को सुनकर अरे क्या यह अपूर्व भय आ गया ऐसा सोचकर श्रेष्ठ पुरुष अपने घरों से सहसा निकल पड़े। श्रीकृष्ण द्वारा सुरक्षित अनिरुद्ध के घर में महान् कोलाहल कैसे सुनाई पड़ रहा है, कहाँ से हम लोगों के लिये यह भय उपस्थित हो गया। पीड़ित हो गुफा

से निकले सिंह के समान वे यादव स्नेह से विकल हो आपस में ऐसा कहने लगे। उसी समय श्रीकृष्ण की महती भेरी बज उठी जिसके शब्द को सुनकर सभी यादव आकर इकट्ठे हो गये। क्या बात है यह आपस में यादव पूछने लगे तब जो घटना घटी थी उसे एक दूसरे से कहने लगे। तब उस घटना को सुनकर युद्धदुर्मद यादवों के नेत्रों में आँसू भर आये और क्रोध से नेत्र लाल हो गये, वे लम्बी श्वासें छोड़ते हुए मौन हो गये। इस प्रकार सभी यादवों के मौन हो जाने पर विप्रथु ने श्रीकृष्ण से कहा कि हे पुरुषेन्द्र! आप क्यों चिन्तामय हैं, आप ही के बाहुबल के आश्रय से सभी यादव सुखपूर्वक रहते हैं।।११-२०।।

हे श्रीकृष्ण! हम लोग अलग-अलग रहकर भी आपके ही आश्रित हैं तथा बलवान् इन्द्र भी आपके ही ऊपर जय-पराजय का भार रखकर निःशंक हो सुख से सोते हैं। बहुत देर के बाद श्रीकृष्ण ने कहा हे विप्रथो! मैं चिन्तामग्न हो इसी कार्य को सोच रहा हूँ। मैं चिन्तना करने पर भी अनिरुद्ध का हरण किसने किया है यह समझ नहीं पा रहा हूँ, इसीलिये आपके इतना कहने पर भी कुछ उत्तर नहीं देते बनता। मैं जिसलिये चिन्ता में हूँ उसे सभी यादव सुनें। अनिरुद्ध के हरण हो जाने से अब पृथ्वी के सभी राजे बान्धवों सहित हम लोगों को शक्तिहीन मानने लगेंगे। हम लोगों के राजा आहुक को शाल्व ने पहले हर लिया था तब हम लोग कठिन युद्ध कर उनको छुड़ा लाये। प्रद्युम्न को भी बाल्यावस्था में शम्बर हर ले गया था तब कुछ दिन बाद वे उसका वध कर लौट आये।।२१-३०।।

अनिरुद्ध को कहाँ छिपा दिया गया है इसका पता लगाना महान् कष्ट की बात है हे मनुष्यश्रेष्ठों! इस प्रकार का हरण रूप दोष उपस्थित हो जायेगा, मैं इसका स्मरण भी नहीं करता था। पैर को जिसने मेरे शिर पर रखा है सहायकों सहित उसके प्राणों को मैं रण मे हर लूँगा। श्रीकृष्ण के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सात्यकि ने कहा कि हे श्रीकृष्ण! अनिरुद्ध की खोज में दूतों को भेजना चाहिये कि, पर्वत और वनों सहित इस पृथ्वी को ढूँढें। तब श्रीकृष्ण ने हँस कर राजा उग्रसेन से कहा कि हे नृप! गुप्त रूप तथा प्रकट रूप से ढूँढ़ने के लिये दूतों को भेजिये। वैशम्पायनजी बोले कि केशव की बात को सुनकर

राजा उग्रसेन ने शीघ्रता से अनिरुद्ध के अन्वेषण में दूतों को भेजा चारों तरफ तुम लोग ढूँढ़ो। तुम लोग लताओं से आच्छादित वेणु वन वाले रैवतक पर्वत को और ऋक्षवान पर्वत को ढूँढ़ो। वहाँ एक-एक उद्यानों में निःशंक भाव से तुम लोगों को चले जाना चाहिये। हजारों घोड़ों तथा अनेकों रथों पर चढ़ कर तुम सभी शीघ्रता से यदुनन्दन अनिरुद्ध को ढूँढ़ो। सेनापति अनाधृष्टि श्रीकृष्ण से कहने लगा कि हे प्रभो! यदि मेरी बात अच्छी लगे तो सुनें।।३१-४०।।

आपने असिलोमा, पुलोमा, निसुन्द तथा नरक को मार डाला और सौभ-शाल्व को एवं मैन्द तथा द्विविद को मार डाला है और सहायकों सहित महान् वीर हयग्रीव को मार डाला, देवताओं के लिये यह सब दारुण संग्राम आप किये। हे गोविन्द! इस प्रकार प्रतिरण में आपनें कठिन कर्मों को किया और आपका कोई सहायक नहीं था। पारिजात के हरण में जो दुष्कर कर्म दिया वह आपने अनुबन्ध के साथ बड़ा भारी कर्म किया। आप युद्धविशारद ने ऐरावत के शिर पर बैठे हुए इन्द्र को बाहु के बल से जीत लिया। इसलिये उसका आपके साथ वैर करना कर्तव्य हो गया इसमें संशय नहीं, उसने उस वैर का बदला लेने के लिये यह हरणरूप महान् कार्य तुम्हारे साथ किया है। इन्द्र ने स्वयं अनिरुद्ध का हरण किया है, दूसरे की शक्ति वैर का बदला लेने की नहीं है। इस प्रकार कहने पर बुद्धिमान् श्रीकृष्ण सर्प के समान श्वास लेते हुए महाबली अनाधृष्टि से कहने लगे। हे सेनापते! ना-ना ऐसा मत कहो, देवता क्षुद्र कर्म करने वाले नहीं होते, वे कृतघ्न, नंपुसक, पापी तथा मूर्ख प्रकृति के नहीं होते।।४१-५०।।

देवताओं के लिये दानवों के नाश में मेरा महान् प्रयत्न रहता है, उन्हीं का प्रिय करने के लिये मैं रण में उन्मत्त महाबलवान् दानवों को मारा करता हूँ। मैं इन्हीं में तत्पर, उन्हीं की तरफ मन लगाये, उन्हीं का भक्त तथा उन्हीं देवताओं का प्रिय करने में रत रहता हूँ तब मुझे इस प्रकार जानकर भी ऐसा पाप वे कैसे करेंगे। देवता क्षुद्रताविहीन सत्यवक्ता तथा भक्तों पर सदा कृपा करने वाले होते हैं, उनके अन्दर पाप नहीं रहता है, तुम अज्ञानता से ऐसा कह रहे हो। अनिरुद्ध का किसी मनचली स्त्री ने हरण किया हो तो यह हो सकता

है, देवताओं सहित इन्द्र का यह कार्य नहीं है। वैशम्पायनजी बोले कि, इस प्रकार विचार करते हुए अद्भुतकर्मा श्रीकृष्ण के वचन सुनकर अक्रूरजी बोले। हे प्रभो! जो इन्द्र का कार्य है वह हम लोगों का भी निश्चित कार्य है और हम लोगों का जो कार्य है वह इन्द्र का भी है, देवताओं के द्वारा हम लोग रक्षणीय हैं और हम लोगों के द्वारा देता रक्षणीय हैं, हम लोगों ने देवताओं के लिये ही मनुष्य का रूप धारण किया है। अक्रूर के इस प्रकार कहने से प्रेरित मधुसूदन पुनः बोले कि हे महायशस्वी! प्रद्युम्न के पुत्र देवता, गन्धर्व, यक्ष तथा राक्षसों के द्वारा नहीं हरे गये हैं, इनको किसी पुंश्ली स्त्री ने हर लिया है। क्योंकि दैत्य और दानव की स्त्रियाँ मायाविनी होती हैं उन्हीं के द्वारा यह हर लिये गये हैं इसमें सन्देह नहीं है, मुझे दूसरे से भय नहीं है।।५१-६०।।

वैशम्पायनजी बोले कि इस प्रकार महात्मा श्रीकृष्ण द्वारा कहे जाने पर यदुमण्डल में सूचना देने के लिये तत्त्व से पता लगाकर आते हुए दूत दिखाई पड़े। यादवों के वासस्थान पर सबको प्रसन्न करता हुआ सूत, मागध तथा बन्दियों का मधुर घोष सुनाई देने लगा। सभी तरफ से वे सभी दूत सभा-द्वार पर उपस्थित हो गये और धीरे-धीरे गद्‌गद वाणी से कहने लगे कि। हे राजन्! एक-एक करके सैकड़ों प्रकार से ढूँढ़ा पर अनिरुद्ध नहीं दिखाई पड़े। अन्य दूत भी कहने लगे कि हम लोगों ने सभी देशों में ढूँढ़ा पर प्रद्युम्न-पुत्र नहीं दिखाई पड़े। अनिरुद्ध को ढूँढ़ने के लिये जो कुछ अन्य विधान बनाया गया हो तो उसे शीघ्र आज्ञा दीजिये। दूतों के द्वारा निराशापूर्ण उत्तर सुनकर सभी यादव दीन मन हो नेत्रों में आँसू भर कर आपस में कहने लगे कि अब इसके बाद क्या करना उत्तम होगा। कोई दाँतों से ओष्ठ दबा, कोई नेत्रों में आँसू भर कार्य-सिद्धि के विषय में सोचने लगे। अनिरुद्ध कहाँ है यह महान् संभ्रम उपस्थित हो गया। उस रात्रि को वे किसी प्रकार खिन्न मन से बिता दिये, हे अरिंदम! वे बार-बार यही कहते थे कि अनिरुद्ध हर लिये गये यह बड़े कष्ट की बात हुई है।।६१-७०।।

उन यादवों के इस प्रकार कहते-सुनते रात्रि समाप्त हो गई इसके बाद श्रीकृष्ण को जगाया जाने लगा। तत्पश्चात् सूर्योदय हो जाने पर प्रसन्न होते हुए

सभा में अकेले नारद मुनि ने प्रवेश किया। श्रीकृष्ण के साथ सभी यादवों को बैठे हुए देखकर नारद जी ने 'जय' शब्द से भाधव की पूजा की। श्रीकृष्ण जी उठकर नारद जी के लिये मधुपर्क दिये। शुभ्र आसन पर नारद जी बैठ गये फिर अर्थयुक्त वचन बोले। आप सभी खोये हुए मन वाले होकर पुरुषत्व हीनों की भाँति क्यों बैठे हैं? नारद जी के इस प्रकार कहने पर वासुदेव ने कहा हे भगवन्! अनिरुद्ध को किसी ने हर लिया है इसी से हम सभी लोग चिन्तित हैं। हे अनघ! यदि आप इस वृत्तान्त को देखे-सुने हों तो कहिये, यही मुझे इस समय प्रिय लग रहा है। नारद जी बोले, हे मधुसूदन! अकेले अनिरुद्ध तथा बाणासुर का देवासुर की भाँति महान् संग्राम हुआ है।।७१-८०।।

बाणासुर की कन्या उषा के लिये चित्रलेखा नाम की अप्सरा अनिरुद्ध को हर ले गई है। इसीलिये अनिरुद्ध तथा बाण इन दोनों का महान् युद्ध हुआ है। उस अद्भुत युद्ध को हम लोगों ने भी देखा था। संग्राम में पीछे न हटने वाले महाबली अनिरुद्ध को बाणासुर ने माया का आश्रय लेकर नागपाश द्वारा बाँध लिया फिर हे गरुड़ध्वज! बाण ने उनके वध के लिये आदेश दिया तब कुम्भाण्ड नामक मन्त्री ने बाण को मना कर दिया; संग्राम में आसक्त बाणासुर ने सर्पों के द्वारा अनिरुद्ध को बाँधा है, अतः हे भगवन्! आप यश और विजय के लिये उठिये। हे तात! वीर अनिरुद्ध किसी प्रकार धैर्य का अवलम्बन कर स्थित हैं। वैशम्पायन जी बोले कि नारद जी द्वारा ऐसा कहने पर प्रतापी वासुदेव युद्ध-यात्रा के सामानों को तैयार करने के लिये आज्ञा दे दिये। तत्पश्चात् चारों तरफ से चन्दनचूर्ण लावा छिड़के जाते हुए महाबाहु जनार्दन निकल पड़े।।८१-९०।।

नारद जी बोले हे माधव! आपको गरुड़ का स्मरण करना चाहिये। हे महाभुज! उस मार्ग को किसी अन्य सवारी द्वारा नहीं तय कर सकते। हे जनार्दन! यहाँ से शोणितपुर ग्यारह हजार योजन अर्थात् चौवालिस हजार कोस पर है जहाँ कि इस समय अनिरुद्ध विराजमान हैं; गरुड़ मन के समान वेग से चलने वाले प्रतापी तथा महाबलवान् हैं। इसलिये हे गोविन्द! उनका आह्वान कीजिये वह एक मुहूर्त में आपको वहाँ ले जायेंगे और बाण को

दिखला देंगे। वैशम्पायन जी बोले तब नारदजी का वचन सुन श्रीकृष्ण ने गरुड़ का स्मरण किया तो गरुड़ श्रीकृष्ण के पास आ हाथ जोड़ प्रणाम कर मधुर वाणी से बोले हे प्रभो! अपने पंखों के परिक्षेप से किसकी पुरी को नष्ट कर दूँ, हे गोविन्द! आपके प्रभाव से हमारे बल को कौन नहीं जानता है। हे महाभुज! आपके गदा के वेग को तथा सुदर्शन चक्र की अग्नि को कौन मूढ़ात्मा नहीं समझ रहा है? हे प्रभो! आज बलराम किसके ऊपर सिंह के समान मुख वाले हल को नियुक्त करेंगे?।।९१-१००।।

वह कौन ऐसा है कि जो परिवार के सहित यमपुर जाना चाहता है। वासुदेव बोले कि शेणितपुर नामक नगर में उषा के कारण अपराजित अनिरुद्ध बाण के द्वारा बाँध लिये गये हैं, अनिरुद्ध विषैले सर्पों से बाँधे गये हैं। हे पतगेश्वर! उन्हीं को छुड़ाने के लिये मैंने तुमको बुलाया है, आपके वेग के समान चलने वाला कोई नहीं है, अन्य किसी सवारी के द्वारा उस मार्ग को तय करना असम्भव है। इसलिये आप मुझे शीघ्र वहाँ पहुँचाइये कि जहाँ अनिरुद्ध बन्दी बने पड़े हैं। हे वीर! पुत्र को पाने की इच्छा वाली आपकी पुत्र-वधु वैदर्भी रुदन कर रही है। तुम्हारे प्रसाद से वह भामिनी पुत्र के साथ हो जायेगी, हे पन्नगाशन! सारे वृष्णिवंशी तुम्हारे भक्त हो गये हैं इसलिये उनके मित्रता तथा भक्ति पर ध्यान दो। तुम्हारे वेग के समान उड़ने वाला कोई पक्षी नहीं है, मैं तुमको सुकृत के द्वारा शपित करता हूँ। पहले तुमने दासी भाव को प्राप्त अपनी माता को अकेले ही छुड़ाया था तथा पक्षों के विक्षेप का सहारा ले योधाओं को मार डाला था। आपने सभी देवताओं को अपनी पीठ पर चढ़ाकर अपने पराक्रम से विजय प्राप्त किया था, अब हमारे कथनानुसार अगम देश शोणितपुर को चलिये क्योंकि विजय आप ही के बल पर निर्भर है।।१०१-११०।।

गम्भीरता में आप मेरु पर्वत के तुल्य तथा हल्कापन मे पवन के समान हैं। भूत, भविष्य तथा वर्तमान काल में तुम्हारे पराक्रम की तुलना में कोई नहीं है। हे विनतापुत्र! आज अनिरुद्ध को देखने के लिये मेरी सहायता करें। गरुड़ बोले हे महाभुज! आपके प्रसाद से सर्वत्र विजय ही है। मैं धन्य तथा अनुगृहीत

हो गया जो मेरी आपने स्तुति की, मुझे आपकी स्तुति करनी चाहिये सो आप ही हमारी स्तुति कर रहे हैं। हे प्रभो! आप वेदाध्यक्ष, सुराध्यक्ष एवं वर माँगने वालों को वर देने वाले हैं आप नेता और महाकवि हैं। आप शेषनाग के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। हल, मुसल तथा चक्र वाले आप ही देवकी-पुत्र हैं तथा कंस को मारने वाले हैं। गोवर्धन को धारण करने वाले तथा महापुरुष भी हैं। ब्राह्मणों के भक्त तथा सबमें श्रेष्ठ आप दामोदर नाम से पुकारे जाते हैं, दानवों का अन्त करने वाले आप ही हैं।।१११-१२०।।

विभीषण को राज्य देने वाले आप ही हैं। सुग्रीव को राज्य देने वाले, समुद्र के मध्य से उत्पन्न होने वाले धन्वन्तरि आप ही हैं। आप ही तप एवं स्वर्ग स्वरूप हैं, आप ही प्रलयकारी मेघ, आविष्कर्ता, प्रलय काल तथा महान् काल हैं। आप हिरण्य गर्भ वाले, रूपज्ञाता, असंख्य गुणों से युक्त हैं। हे देव! आप स्तुति करने के योग्य होते हुए भी जो मेरी स्तुति करने की इच्छा करते हैं सो आश्चर्य की बात है। जिन घोर रूप वाले प्राणियों को आपने कड़ी दृष्टि से देखा वे यम-दण्ड के द्वारा आहत हो पक्षी आदि की योनि तथा नरक में चले गये और जिन प्राणियों को आपने परम प्रीति की दृष्टि से देखा वे सुख से यहाँ प्राण त्याग स्वर्ग को चले गये। हे महाबाहो! शोणितपुर गमन के लिये मैं खड़ा हूँ आप सवार होइये। श्रीकृष्ण ने कहा हे सखे! शत्रु के विनाश के लिये यह अर्घ ग्रहण करो। पुरुषोत्तम परम प्रीति से अर्घ देकर गरुड़ पर सवार हो गये। फिर श्रीकृष्ण के पास ही आकर प्रसन्नता से बलराम जी भी बैठ गये, उस समय विष्णु का वर्ण काला था। उनकी चार दाढ़ें तथा चार भुजायें थीं, श्रीवत्स चिह्न को धारण किये थे, उन अजान बाहु का मुख लाल हो गया था वासुदेव द्वारका की रक्षा का प्रबन्ध कर चलने को उद्यत हो गये। देव श्रीकृष्ण गरुड़ पर बैठे थे, उनके पीछे हलायुध बलराम तथा उनके पीछे शत्रुकर्षण प्रद्युम्न बैठे थे। हे महाबाहो! आप रण में बाणासुर को जीत लीजिये, आपके सम्मुख रण में ठहरने के लिये कोई समर्थ नहीं हो सकता। आपकी प्रसन्नता में लक्ष्मी और पराक्रम में विजय है। इस प्रकार सिद्ध, चरणों के समूहों तथा महर्षियों की बातें सुनते हुए केशव अन्तरिक्ष मार्ग से रण के लिये चल पड़े।।१३१-१४५।।



अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२२।।

वैशम्पायनजी बोले कि इसके पश्चात् धौसों तथा शंखों का महान् शब्द होने लगा। बन्दी, मागध एवं सूत, विजय का आशीर्वाद देने वाले मनुष्यों से स्तूयमान होते हुए श्रीकृष्ण के तेज से गरुड़ का रूप आकाश में उड़ते समय अत्यन्त सुशोभित हो रहा था; 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा लोग कहने लगे। बाणासुर का क्षय चाहते हुए पर्वत के समान विशाल हो गरुड़े शोभा पाने लगे। दाहिने चार हाथों में खड्ग, चक्र, गदा तथा बाण और बायें चार हाथों में ढाल, शार्ङ्ग-धनुष, चाप तथा शंख स्थित था। शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले श्रीकृष्ण ने हजारों शिर धारण कर लिया तथा संकर्षण बलराम ने भी हजारों शरीरों को धारण कर लिया। श्वेत आयुधों को धारण करने वाले कैलास पर्वत के समान शृङ्ग वाले अजेय श्रीकृष्ण उदय होते हुए सूर्य के समान गरुड़ के द्वारा प्रस्थान किये। संग्राम में पराक्रम की इच्छा वाले महाबाहु महात्मा प्रद्युम्न का शरीर सनत्कुमार के रूप में बदल गया था। गरुड़ पंखों के बलपूर्वक विक्षेप से वायु को रोकते तथा अनेक पर्वतों को कम्पायमान करते हुए मार्ग में चले जा रहे थे। तत्पश्चात् गरु सिद्ध-चारणों के समूहों के शुभ मार्ग को लाँघ गये।।१-१०।।

तब बलराम बोले कि हम अपनी प्रभा से हीन क्यों हो गये ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ था। हम सभी सुवर्ण के समाप पीले हो गये यह असंशय है, क्या हम लेग मेरु पर्वत के पास आ गये? यह क्या बात है इसका भेद बतलाइये। श्रीकृष्ण जी बोले हे अरिन्दम! अब हम लोग बाणासुर के नगर के समीप चले आये हैं उस नगर की रक्षा के लिये यह स्थापित अग्नि जल उठा है। हम लोग उसी आहवनीय अग्नि की प्रभा से समाहत हो गये हैं इसी से हे हलायुध! यह विरूपता आ गई है। बलराम बोले यदि हम लोग शोणितपुर के सन्निकट आ जाने से प्रभारहित हो गये हैं तो यहाँ जिससे हित हो वह विधान स्वयं बुद्धि से सोचकर बनाइये। श्रीमगवान् बोले हे वैनतेय! जो

यहाँ उपाय करना चाहिये उसे तुम करो तुम्हारे उपाय विधान करने पर जो उत्तम होगा मैं करूँगा। वैशम्पायनजी बोले कि वासुदेव का यह कहना सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करने वाले महाबली गरुड़ हजारों मुख धारण कर लिये। पश्चात् गरुड़ आकाश गङ्गा के समीप चले गये और गङ्गाजी में उतर कर [illegible] गङ्गा जल पी लिये। प्रतापी वैतनेय आकाश में जाकर अग्नि के ऊपर वर्षा करने लगे इससे विनता-पुत्र ने अग्नि को शान्त कर दिया। आकाश गङ्गा के जल से आहवनीय अग्नि को शान्त हुआ देखकर श्रीकृष्ण, बलराम तथा प्रद्युम्न परम विस्मय को प्राप्त हुए तब गरुड़ बोले।।११-२०।।

अहो! अग्नि का पराक्रम ऐसा है कि जो प्रलय काल में सबको जला देता है इसी ने बुद्धिमान् श्रीकृष्ण का वर्ण विरूप बना दिया था। हमारे विचार से श्रीकृष्ण, बलराम तथा महाबली प्रद्युम्न तीनों लोकों के लिये पर्याप्त हैं। अग्नि के शान्त हो जाने पर पक्षिराज गरुड़ अपने पंखों के बलपूर्वक विक्षेप से महाघोर शब्द करते हुए चल पड़े। तब उन गरुड़ को देख कर रुद्र की अनुचर अग्नियाँ विस्मित हो गईं कि, भिन्न-भिन्न भयानक रूप धारण किये गरुड़ पर बैठे ये कौन हैं? ये तीनों किसलिये यहाँ आये हैं? इस बात को वे गिरिव्रज की अग्नियाँ निश्चय न कर सकीं। वे अग्नियाँ तीनों यादवों के साथ संग्राम में प्रवृत्त हो गईं, तब युद्ध में प्रसक्त उन कर्त्ता का महानाद होने लगा। सिंह के समान गर्जते हुए उन सबों के महानाद को सुन कर बुद्धिमान् अङ्गिरा ने अपने पुरुषों को भेजा। अङ्गिरा ने कहा कि जहाँ वह युद्ध हो रहा है वहाँ तुम लेग जाओ विलम्ब न करो और वहाँ का सब वृत्तांत देख कर शीघ्र आओ ऐसा कहने पर वे ''अच्छा जाता हूँ'' ऐसा कह कर शीघ्रता से चल पड़े और महासंग्राम में जाकर वासुदेव के साथ लड़ती हुई अग्नियों का युद्ध देखा। वे सभी जातवेदस, कल्माष, कुसुम, दहन, शोषण, महाबली तपन तथा स्वाहाकार के विषय में प्रसिद्ध पाँचों अग्नियाँ एवं अन्य भी महाऐश्वर्यशाली अग्नियाँ अपनी-अपनी सेनाओं के साथ वहाँ उपस्थित हैं।।२१-३०।।

पिठर, पराग, स्वर्ण, श्वा, गाध, भ्राज तथा स्वधाकार के आश्रित रहने वाली पाँचों अग्नियाँ वहाँ लड़ रही हैं और ज्योतिष्टोम के विभाग में तथा

वषट्कार के आश्रय में रहने वाली दोनों ही महातेजस्वी महात्मा अग्नियाँ युद्ध कर रही हैं। 'ऐसा समाचार पा' अङ्गिरा भी आग्नेय रथ पर चढ़ चमकता हुआ बाण उठा रण में यादवों और अग्नियों के बीच जा विराजे। तब रथ पर स्थित अङ्गिरा को तीक्ष्ण बाण छोड़ते हुए देख कर क्रुद्ध श्रीकृष्ण बार-बार मुस्कुराते हुए बोंले। हे सभी अग्नियों! ठहरो यह मैं भय का विधान करता: हूँ मेरे अस्त्र के तेज से दग्ध होकर तुम सभी दिशाओं को भागोगी; ऐसा सुन अङ्गिरा क्रोध से श्रीकृष्ण का प्राण ले लेने की भाँति जलते हुए त्रिशूल को लेकर दौड़े तब श्रीकृष्ण ने यम के समान क्रूर और अन्तक के समान प्राणों को हरने वाले अपने परम तीक्ष्ण अर्धचन्द्र नामक बाण से उस दीप्त त्रिशूल को काट गिराया। इसके पश्चात् महातेजस्वी श्रीकृष्ण ने स्थूलकर्ण अर्थात् दोनों तरफ टेढ़े फल वाले अन्तक के तुल्य बाण से अङ्गिरा की छाती में मारा। बाण के लगने से स्तम्भित शरीर हो अङ्गिरा धरती पर गिर पड़े। फिर शेष सभी अग्नियाँ और ब्रह्मा के चारों पुत्र बाणासुर के नगर के समीप से भाग चले।।३१-४०।।

इसके बाद श्रीकृष्ण शेणितपुर में जहाँ बाणासुर था वहाँ चले तब दूर ही से बाणासुर को देख कर नारद जी कहने लगे हे महाभुज! देखिये यही शेणितपुर है यहाँ रुद्राणी के साथ रुद्र निवास करते हैं। स्वामी कार्तिकेय भी बाण की रक्षा के लिये निरन्तर उसका कल्याण चाहते हुए निवास करते हैं, नारद जी की बात सुन कर श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले कि। हे महामुने! मेरी बात सुनें और क्षणमात्र सोचें बाण के संरक्षण के लिये स्वयं रुद्र भी समर में उतर जायेंगे तो भी हम लोग अपनी शक्ति के अनुसार उनके साथ युद्ध करेंगे इस प्रकार श्रीकृष्ण और नारद बात करते रहे कि निमेष मात्र में शीघ्रगामी गरुड़ जी उन्हें शोणितपुर में पहुँचा दिये तब कमलनेत्र बलवान् श्रीकृष्ण ने शंख को अपने मुख पर रख कर जैसे वायुवेग से हटता हुआ मेघ चन्द्रमा को उगल देता है वैसे ही शंख बजा कर भय उत्पन्न कर दिया। श्रीकृष्ण अद्भुतकर्मा बाण के पुर में प्रविष्ट हो गये तब शंख के प्रखर निनाद से तथा भेरियों के महाशब्द से बाण की सेना सहसा चारों तरफ से तैयार हो गई भय के कारण बाण ने विकट सेना को समर में जाने का आदेश दिया। चमकते हुए आयुधों को

धारण किये वे करोड़ों की संख्या में गणना रहित दानव समूह अप्रमेय तथा अक्षय ज्ञात हो रहे थे। वे सभी दैत्य, दानव और राक्षस एवं प्रमुख-प्रमुख रुद्रगण तीखे आयुधों को लिये हुए अविनाशी श्रीकृष्ण से युद्ध करने लगे।।४१-५०।।

उस समय वे अति उग्र यक्ष, राक्षस एवं किन्नर चारों ओर से कर कण-कण छिटकते हुए अग्नि की भाँति कूद-कूद अपने प्रदीप्त मुखों द्वारा समर में उन चारों का रुधिर पान कर रहे थे। इन सबों के लिये श्रीकृष्ण ने अन्तक के समान प्रभावशाली आग्नेय अस्त्र को उठाया और असुर समूहों को भय से कँपाते हुए शीघ्रता से वहाँ चले कि जहाँ शत्रु की सेना दिखाई पड़ रही थी वहाँ पर्वत के समान विशाल रूप धारण किये सभी योधा उपस्थित थे। इसके बाद बलराम ने देव मधुसूदन से कहा कि।।५१-६०।।

हे महाबाहो श्रीकृष्ण! जो यह सेना दिखाई पड़ रही है इसके साथ मैं युद्ध करना चाहता हूँ। श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं भी इन श्रेष्ठ योधाओं के साथ युद्ध करना चाहता हूँ। पार्श्व में प्रद्युम्न तथा दाहिने तरफ आप रहे और आपस में एक दूसरे की रक्षा करें। वैशम्पायनजी बोले कि गरुड़ पर चढ़े वे युद्ध करने लगे, युद्ध करते हुए बलरामजी काल रूप हो गये। वे हल के अग्र भाग से खींच कर मुसल से दानवों को कूटने लगे। प्रद्युम्न युद्ध करने वाले दानवों को अपने बाण जालों से पीछे हटाने लगे। जनार्दन बार-बार शंख को बजा कर युद्ध करने लगे। बुद्धिमान् गरुड़ ने पक्षों के प्रहार से और नखों से विदार कर कितने ही दानवों को यमपुर भेज दिया। इन यादवों के द्वारा बाण वर्षा से दैत्यों की सेना भागने लगी।।६१-७०।।

रक्षा की कामना से ज्वर ने यादवों का सामना किया। बिजली के समाग वह तड़क रहा था। वह लम्बी स्वासें तथा जँभाई लेता। उसके रोवें खड़े तथा आँखे मलिन थीं वह खिन्न चित्त पुरुष की भाँति श्वास लेता हुआ क्रुद्ध हो आक्षेप सहित बलराम जी से बोला। तुम इस प्रकार बल से क्यों उन्मत्त हो गये हो क्या समर में मुझको नहीं देख रहे हो ठहरो, ठहरो मेरे जीतेजी रण

से तू नहीं भाग कर जा सकता। इस प्रकार कह कर हँसता हुआ प्रलयकालीन अग्नि के समान वह बलराम पर दौड़ा। ज्वर ने भस्म को उनके ऊपर फेंका शीघ्रता से वह भस्म बलराम के पर्वताकार शरीर में छाती पर जा पड़ा। फिर वह भस्म वक्षस्थल से मेरु पर्वत के शिखर पर चला गया वहाँ ज्वलनकारी भस्म गिर कर पर्वत-शिखर को तोड़ डाला। शेष बचे भस्म से बलराम जलने लगे वे दीर्घ श्वास तथा जँभाई लेते हुए निद्रित शरीर होने लगे चक्कर आने लगा, रोवें फूटने लगे, आँखें मलिन हो गई थीं।।७१-८०।।

इस प्रकार खिन्न हो मूर्छित होते हुए बलराम श्रीकृष्ण से बोले हे महाबाहो श्रीकृष्ण! मैं ज्वर से पीड़ित हो रहा हूँ मुझे अभय कीजिये। हे तात! मैं चारों तरफ से जल रहा हूँ मुझे कैसे शान्ति प्राप्त होगी? श्रीकृष्ण ने हँस कर कहा कि मत डरिये, ऐसा कह कर बलराम को सीने से लगा लिया। श्रीकृष्ण के परम प्रेम से आलिंगन करने पर बलराम दाह से मुक्त हो गये, मधुसूदन ज्वर से बोले तुम यहाँ आओ और जितनी शक्ति तुम्हारे पास हो उससे मेरे साथ युद्ध करो। ज्वर ने बायें तथा दायें दोनों हाथों से ज्वाला से भरे महाभस्म को श्रीकृष्ण पर छोड़ा तब मुहूर्त मात्र के लिये प्रभु प्रदीप्त शरीर हो गये। श्रीकृष्ण अग्नि विगत हो गये ज्वराग्नि शान्त हो गयी इसके पश्चात् सर्पाकार तीन भुजाओं से श्रीकृष्ण को मारा तथा एक मुष्टिक उनके हृदय पर मारा इस प्रकार उन दोनों पुरुष सिंहों का तुमुल प्रहार होने लगा। ज्वर और महाबली श्रीकृष्ण के उस महायुद्ध में पर्वतों पर गिरती हुई बिजलियों के समान शब्द होने लगे। तब आकाशवाणी द्वारा यह महाशब्द हुआ कि इस प्रकार का प्रहार नहीं होना चाहिये; श्रीकृष्ण ज्वर को अपने भुजदण्ड से समर में पीड़ित करने लगे।।८१-९३।।



अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२३।।

वैशम्पायनजी बोले कि ज्वर को मरा हुआ जानकर शत्रुनिषूदन श्रीकृष्ण ने अपने भुजबल से उसे पृथ्वी पर फेक दिया। तब ज्वर बाहुओं से

छूटकर उनके शरीर में प्रविष्ट हो गया। ज्वर से व्याप्त श्रीकृष्ण बार-बार पृथ्वी पर लड़खड़ाने लगे और उनका शरीर भारी हो गया। वे जँम्भाई लेने लगे तथा शीघ्रता से श्वाँस छोड़ने लगे और बार-बार बकने-झकने लगे, उनके रोंगटे खड़े हो गये और शरीर निद्रा से व्याप्त होने लगा। तब महायोगी श्रीकृष्ण धैर्य का अवलम्बन कर विकार का प्रदर्शन करने लगे। इस ज्वर को नष्ट करने वाले एक दूसरे ज्वर की रचना किये उन्होंने वैष्णव ज्वर की रचना की। तब विरचित ज्वर पहले वाले ज्वर को बलपूर्वक पकड़कर प्रसन्नता से श्रीकृष्ण को दे दिया और हरि ने उसे पकड़ लिया। इस प्रकार वासुदेव परम क्रुद्ध हो स्वनिर्मित ज्वर द्वारा उस ज्वर को अपने शरीर से निकाला था। जब वे उस ज्वर को पृथ्वी पर पटक कर सैकड़ों टुकड़े कर देने को उद्यत हुए तब पूर्व ज्वर ने चिल्लाकर कहा कि हे श्रीकृष्ण! आपको हमारी रक्षा करनी उचित है।।१-१०।।

श्रीकृष्ण द्वारा ज्वर को पटके जाते देखकर अन्तरिक्ष से आकाशवाणी ने कहा। हे महाबाहो! आप इस ज्वर का वध न करें, आपको इसकी रक्षा करनी चाहिये। ऐसा कहने पर हरि ने उस ज्वर को छोड़ दिया। तब वह ज्वर श्रीकृष्ण के चरणों में शिर रख कर उनकी शरण में चला गया, ज्वर हृषीकेश से बोला। हे यदुनन्दन! मेरे विज्ञापन को सुनें और जो मेरा मनोरथ है उसे पूरा करें। मैं यही वर चाहता हूँ कि लोक में मैं ही एक ज्वर रहूँ दूसरा कोई ज्वर न रहे। श्रीकृष्णजी बोले–'ऐसा ही हो', जो मैंने इस ज्वर की रचना की है सो यह मेरे में ही विलीन हो जायगा। वैशम्पायनजी बोले कि श्रीकृष्ण के ऐसा कहने के बाद ज्वर के प्रति फिर बोले। वासुदेव ने कहा कि हे ज्वर! स्थावर जंगमों में जिस प्रकार तुम विचरण करोगे उसके नियम रूप सन्देश को सुनो।।११-२०।।

यदि तुम मेरे प्रिय की आकांक्षा करते हो तो अपने शरीर का तीन भागों में विभाजन कर लो एक शरीर से चौपायों को तथा दूसरे से स्थावरों का सेवन करो और तीसरे भाग का मनुष्यों में उपयोग करो, जो चौथा अंश है उससे तुम पक्षियों में उत्पन्न होओ और एक दिन का अन्तर देकर तथा तीन

दिन का अन्तर देकर होने वाले ज्वर भी तुम्हीं होओ। इसी प्रकार विभाग कर मनुष्यों और अवशेष जातियों में तू निवास कर और मेरी बात को पुनः सुन। वृक्षों में तुम कीट रूप से तथा उनके पत्तों को संकुचित कर देने के रूप से निवास कर और फलों में प्रसिद्ध पीलेपन के रूप में तथा फल के एक भाग में मटमैला दाग आदि के रूप में निवास कर। जल में काई के रूप में तथा मयूरों में शिखा गिरने के रूप में निवास कर, कमलिनियों में पाला और पृथ्वी में ऊसर के रूप में रहो। पर्वतों में मेरे प्रसाद से गेरु के रूप में होओगे, गौओं में अपस्मार तथा खुर-रोग के रूप में होओगे। इस प्रकार तुम पृथ्वी तल पर बहुत रूपों को धारण कर उत्पन्न होओगे, दर्शन तथा स्पर्शन करने से भी तुम प्राणियों का वध कर देना चाहोगे। देवता तथा मनुष्यों को छोड़ कर दूसरा कोई तुम्हें नहीं सह सकेगा। श्रीकृष्ण के वचन को सुन कर ज्वर प्रसन्न हो गया। ज्वर ने कहा हे माधव! आपने सभी जातियों पर मेरे प्रभुत्व को स्थापित कर दिया इससे मैं धन्य हो गया।।२१-३०।।

मैं क्या करूँ, असुर कुल को मथने वाले तथा तीनों पुरों को विनष्ट करने वाले हर के द्वारा मैं रचा गया हूँ अब आपने रण के बीच मुझे जीता है, अतः मैं आपका किंकर हो गया हूँ। अब आपका जो प्रिय कार्य हो उसे करने की आज्ञा दीजिये। श्रीभगवान् बोले हे ज्वर! जो मुझे प्रणाम कर एकाग्र मन हो हमारे-तुम्हारे महासमर को पढ़े वह मनुष्य ज्वर रहित हो जाय। ज्वरग्रस्त मनुष्य इस प्रकार तुम्हारी प्रार्थना करें कि प्रद्युम्न, संकर्षण तथा वासुदेव सभी ज्वरों का नाश करें। ज्वर यदुसिंह से 'ऐसा ही होगा' कह कर तथा शिर से प्रणाम कर रण से चला गया।।३१-३९।।



अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२४।।

वैशम्पायनजी बोले कि इसके बाद वे तीनों यादव तीन अग्नियों के समान प्रदीप्त हो शीघ्रता से गरुड़ पर चढ़कर युद्ध करने लगे। चक्र, हल तथा

मुसल के चोट से तथा बाणों की वर्षा से पीड़ित हो दानवों की दुरासद विशाल सेना अत्यन्त क्रुद्ध हो गई। सूखे हुए तृण से जैसे अग्नि वृद्धि को प्राप्त हो जाती है वैसे ही समर में दानवों को पाकर श्रीकृष्ण की बाणाग्नि अत्यन्त ही बढ़ गई। और उसे समर के मोर्चे पर हजारों दानवों को जलाकर राख बनाती हुई वह लपटों वाली अग्नि प्रलयकालीन अग्नि की भाँति शोभा पाने लगी। अनेक प्रकार के आयुधों से पीड़ित तथा बाणाग्नि से जलती हुई उस सेना के समीप आकर बाणासुर सैनिकों को रोकते हुए बोला कि। तुम लोग क्यों भाग रहे हो? शंकर जी के संसर्ग को स्मरण करते हुए आप लोगों का भाग जाना उचित नहीं है, देखो अब मैं भी उपस्थित हो गया हूँ। बाण द्वारा इस प्रकार कही बात को सुनकर भी उसकी परवाह न कर भय से मोहित सभी दानव भाग खड़े हुए।।१-१०।।

प्रमथ गण की ही सेना खड़ी रही, अवशिष्ट सेना को लेकर बाण ने युद्ध करने का विचार किया। मन्त्री कुम्भाण्ड सेना को भागती देखकर बोला कि। युद्ध में यह बाणासुर भी खड़ा है तथा शंकर जी एवं स्वामि कार्तिकेय भी खड़े हैं फिर भी क्यों भाग रहे हो? कुम्भाण्ड की बात सुनते हुए भी दानव दसों दिशाओं में भागने लगे। अमित तेजस्वी श्रीकृष्ण के द्वारा सेना को तितर-बितर देखकर शंकर जी के नेत्र लाल हो गये, वे बाणासुर का संरक्षण करने को युद्ध के लिये प्रवृत्त हो गये। देव कार्तिकेय भी अग्नि के समान देदीप्यमान रथ से आ गये। नन्दीश्वर के साथ वीर्यवान् रुद्र रथ पर सवार हो दाँतों से ओष्ठ को काटते हुए जहाँ हरि थे वहाँ चढ़ दौड़े। अक्लिष्ट कर्मा रुद्र के दिव्य रथ को देख कर। श्रीकृष्ण गरुड़ पर बैठ कर रुद्र से संग्राम करने को चल पड़े आते हुए हरि को अक्लिष्ट कर्मा हर ने कुपित होकर नाराच नाम वाले सौ बाणों से वेध डाला, फिर तो बाणों से घायल हरि ने कुपित हो उत्तम पार्जन्य नामक अस्त्र को उठा लिया उस समय विष्णु तथा रुद्र से पीड़ित हो भूमि डोलने लगी। हाथी पीड़ित हो ऊपर को मुख उठाये चिल्लाने लगे और जल की धाराओं से गीले होकर पर्वत गिरने लगे।।२१-३०।।

कुछ पर्वत अपने शिखरों को गिराने लगे सभी तरफ दिशायें और

कोण एवं भूमि तथा आकाश जलता हुआ दीखने लगा शंकर तथा श्रीकृष्ण का समागम होने पर सभी ओर पृथ्वी तल पर उल्कापात होने लगा और सियारिनियाँ अमंगल नाद से रुदन करने लगीं जो बड़ा ही भयानक लग रहा था इन्द्र भयंकर नाद करते हुए रुधिर की वर्षा करने लगे। उल्का बाणासुर की सेना के पिछले भाग को घेर कर स्थित हो गई और आँधी आगई तथा आकाश में तारे खलबला उठे। औषधियाँ प्रभाहीन हो गई आकाशचारी जीवों का आकाश में विचरना रुक गया, इसी बीच सभी देवगणों से घिरे हुए ब्रह्मा त्रिपुरारि को मोहित होते जानकर उनके समीप आ गये, उसी समय विष्णु ने पार्जन्य अस्त्र को रुद्र के ऊपर छोड़ा। वह जलता हुआ अस्त्र वहाँ गया कि जहाँ रुद्र का रथ खड़ा था और सभी दिशाओं से झुके हुए पर्व वाले सैकड़ों हजारों बाण हर के रथ पर गिरने लगे तब अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ शंकर जी ने रुष्ट हो महाभयंकर आग्नेय अस्त्र को छोड़ा यह आश्चर्य की बात हुई कि गरुड़ सहित चारों, सभी तरफ से जलने लगे।।३१-४०।।

बाणों से ढक जाने तथा अग्नि से जाज्वल्यमान होने से वे चारों उस समय दिखाई नहीं पड़ते थे आग्नेय-अस्त्र से श्रीकृष्ण को मरा समझ कर श्रेष्ठ असुर सिंहनाद करने लगे, इधर आग्नेयास्त्र की अग्नि को सहन कर अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ प्रतापी वासुदेव ने वारुण नामक अस्त्र को ग्रहण किया फिर तो वासुदेव के द्वारा अतितेजस्वी वारुणास्त्र के प्रयोग करने पर। आग्नेयशास्त्र शान्त हो गया शंकर जी ने प्रलयकालीन अग्नि के समान पैशाच, राक्षस, रौद्र तथा आङ्गिरस नामक चार अस्त्रों को छोड़ा। वासुदेव ने उन अस्त्रो को रोकने के लिये वायव्य, सावित्र, वासव तथा मोहन नामक चार अस्त्रों को छोड़ा। माधव ने अपने चार अस्त्रो से शीघ्र ही उन चारों का वारण कर मुँह बाये यमराज के सदृश वैष्णवास्त्र को छोड़ा। वैष्णवास्त्र के प्रयुक्त होने पर बाणासुर की सेना भय के मोह से विकल हो सभी दिशाओं में भागने लगी जिसमें प्रमथगण भी अधिक संख्या में थे तब बाण शीघ्रता से युद्ध के लिये सामना किया।।४१-५६।।



अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२५।।

वैशम्पायनजी बोले–त्रिपुरारी ने चार मुख वाले बाण को ग्रहण कर लिया। जब त्रिलोचन ने उसे छोड़ने की इच्छा से धनुष पर रखा तो चित्त के ज्ञाता महात्मा वासुदेव ने जान लिया। पुरुषोत्तम ने भी जृम्भण नामक अस्त्र को उठाया और शंकर जी को जृम्भित कर दिया। धनुष-बाण सहित शीघ्र ही जृम्भित हो असुरों और राक्षसों के विजेता भगवान् शंकर चेतनाशून्य हो गये बाणासुर उन्हें बार-बार उद्बोधित करने लगा इधर उस समय श्रीकृष्ण ने शंख को बजाया तब पाञ्चजन्य शंख के घोष से और शार्ङ्ग धनुष के टंकोर से महाभयकारी दृश्य उपस्थित हो गया। महादेव जी को विजृम्भित देख कर सभी त्रसित होने लगे, इसी बीच रुद्र के पार्षदों ने माया-युद्ध का आश्रय ले रण में प्रद्युम्न को घेर लिया तब प्रद्युम्न सभी पार्षदों को निद्रा के वश में कर। बाण-जालों से दानवों को नष्ट करने लगे जिसमें अधिक संख्या में महाबली प्रमथगण सम्मिलित थे।।१-१०।।

इसके बाद जँभाई लेते हुए अक्लेशकर्मा महादेव जी के मुख से दशों दिशाओं को जलाती हुई सी एक ज्वाला प्रकट हुई। फिर तो इन महात्माओ से पीड़ित हो काँपती हुइ पृथ्वी विश्वधाता ब्रह्मा के समीप चली गई। पृथ्वी ने कहा हे देव-देव! महाबाहो! मैं अधिक भार से पीड़ित हो रही हूँ श्रीकृष्ण और रुद्र के भार से आक्रान्त होकर मैं समुद्र में डूब जाऊँगी। हे पितामह! इस असह्य भार को विचारिये जिससे मैं हल्की हो चराचर को धारण कर सकूँ। तब पितामह पृथ्वी के प्रति बोले कि मुहूर्त मात्र और अपनी आत्मा को धारण किये रहो फिर हल्की हो जाओगी। ब्रह्मा रुद्र को देख कर कहने लगे कि आपने ही महासुर बाण के वध की रचना की है फिर क्यों उसकी रक्षा करते हैं। हे महाबाहो! श्रीकृष्ण के साथ आपका युद्ध अच्छा नहीं लग रहा है आप श्रीकृष्ण को नहीं समझ रहे हैं कि एक ही आत्मा आप दोनों के शरीर में दो प्रकार से विभक्त है। ऐसा कहने के बाद भगवान् शंकर सम्पूर्ण चराचर को देखने लगे। योगात्मा शिव योग में प्रवेश कर वरदानों का चिन्तन करने लगे;

द्वारका में जो कहा था उसका अच्छी तरह स्मरण कर ब्रह्मा को कुछ उत्तर न दे सके और वे युद्ध से निवृत्त हो गये। अपनी आत्मा तथा श्रीकृष्ण की आत्मा को एक ही ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ देखने लगे फिर योग से निकल कर संग्राम में युद्ध नहीं करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा कर लिये।।११-२०।।

रुद्र ने ब्रह्मा से कहा कि हे भगवन्! श्रीकृष्ण के साथ मैं युद्ध नहीं करूँगा अब पृथ्वी हल्की हो जायेगी। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण और रुद्र आपस में मिल कर परम प्रसन्न हो परस्पर संग्राम करने से मुँह मोड़ लिये। मार्कण्डेयजी को दीर्घ-दर्शी समझ कर ब्रह्मा ने पूछा हे ब्रह्मन्! मैं रात्रि के समय स्वप्न में मन्दराचल पर्वत के पास कमलिनी के अन्दर शिव और केशव को देखा है। हर को हरि के रूप में और हरि को हर के रूप में देखा; हर गरुड़ पर चढ़े थे और हरि वृषभ पर सवार थे। हे ब्रह्मन्! उस परम अद्भुत बात को देख कर मुझे बड़ा विस्मय है सत्य-सत्य यह हमसे कहिये। मार्कण्डेय जी बोले विष्णु रूप शिव के लिये और शिव रूप विष्णु के लिये मैं कोई अन्तर नहीं देखता हूँ इसलिये वे दोनों हम लोगों का कल्याण करें। मैं उसी आदि, मध्य तथा अन्त से रहित अक्षर-अविनाशी हरिहरात्मक रूप को आप से कहता हूँ।।२१-३०।।

जो विष्णु हैं वही रुद्र हैं और जो रुद्र हैं वही पितामह ब्रह्मा हैं एक ही मूर्ति तीन देवताओं रुद्र, विष्णु तथा पितामह में विभक्त है। वे वर देने वाले तथा लोकों की सृष्टि करने वाले एवं लोकों के नाथ हैं, वे स्वयं उत्पन्न होने वाले अर्धनारीश्वर हैं तथा एक ही तीव्र व्रत में स्थित हैं। जैसे जल में छोड़ा गया जल, जल ही हो जाता है उसी प्रकार विष्णु रुद्र में प्रवेश कर रुद्रमय हो जाते हैं। जैसे अग्नि में प्रवेश कर अग्नि, अग्नि ही होता है वैसे ही रुद्र विष्णु में प्रवेश कर विष्णुमय ही हो जाते हैं। रुद्र को अग्निमय जानना चाहिये और विष्णु सोमात्मक कहे गये हैं यह स्थावर-जंगम जगत् अग्नि-सोमात्मक ही है। स्थावर तथा चर जगत् के कर्ता, अपहर्ता एवं कल्याणकर्ता विष्णु तथा महेश्वर दोनों ही हैं। ये कार्य-कारण के कर्ता तथा सृष्टिकर्ता (ब्रह्मा) कारण (महाभूत) इनके भी कर्ता हैं एवं भूत, भविष्य तथा वर्तमान रूप नारायण और महेश्वर

हैं। ये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र मेघ रूप से वर्षा करते हैं तथा सूर्य रूप से तपते हैं एवं वायु रूप से बहते हैं ये ही सबकी सृष्टि करते हैं हे पितामह! यह मैंने परम गुप्त बात आपसे कही। जो मनुष्य इसका नित्य पाठ करेंगे तथा सुनेंगे वे विष्णु और रुद्र के प्रसाद से परम धाम को प्राप्त होंगे। ब्रह्मा के साथ हरि-हर देव की मैं स्तुति करता हूँ ये दोनों परम देव तथा जगत् की उत्पत्ति एवं प्रलय करने वाले हैं।।३१-४०।।

रुद्र के परम पूज्य विष्णु हैं तथा विष्णु के परम पूज्य रुद्र हैं दोनों एक ही हैं पर ये दो रूपों से लोक में विचरण करते हैं। शंकर के बिना विष्णु तथा विष्णु के बिना शंकर नहीं रह सकते इसीलिये पहले भी रुद्र और विष्णु एकत्व को प्राप्त हुए थे रुद्र और श्रीकृष्ण के लिये नमस्कार है। छै के आधे तीन नेत्र तथा दो नेत्र वाले को नमस्कार है। (यह स्तोत्र है इसे मूल में देखें और पाठ करें) जो इस महात्मा रुद्र और विष्णु के स्तोत्र को पढ़ता है वे परम पद प्राप्त करते हैं। बुद्धिमान् नारद ने एवं भरद्वाज, गर्ग, विश्वामित्र, अगस्त्य, पुलस्त्य तथा महात्मा धौम्य ने भी इसी स्तुति को पढ़ा है। इस हरिहरात्मक स्तोत्र का जो नित्य पाठ करता है वह पुत्र को पाता है तथा कन्या अच्छे पति को पाती है, जो गर्भिणी इस स्तोत्र को सुनती है वह श्रेष्ठ पुत्र को उत्पन्न करती है। इस स्तोत्र का जहाँ पाठ होता है वहाँ राक्षस, पिशाच भय नहीं उपस्थित करते हैं।।५१-६३।।



अथ
षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२६।।

जनमेजयजी बोले-महादेव जी तथा महात्मा श्रीकृष्णजी का युद्ध समाप्त हो जाने पर पुनः युद्ध किस प्रकार हुआ? वैशम्पायनजी बोले-इसके बाद कुम्भाण्ड द्वारा सजाये रथ पर बैठे कार्तिकेय ने श्रीकृष्ण, बलराम तथा प्रद्युम्न का सामना किया। युद्धमार्ग को जानने वाले दीप्त तेजस्वी उन तीनों ने

वायव्य, आग्नेय तथा पार्जन्य नाम वाले तीन अस्त्रों से वेधना चाहा कि इतने ही में प्रतापी कार्तिकेय ने उन तीनों को शैल, वारुण तथा सावित्र नामक तीन अस्त्रों से वेध दिया। कार्तिकेय के बाण समूहों को वे महात्मा यादव अस्त्र माया से आकाश में ही जब ग्रस लेते थे तब कार्तिकेय ने कठिन ब्रह्मशिर नामक अस्त्र को उठा लिया, उसका प्रयोग करते ही सभी प्राणी हाहाकार करते हुए चारों ओर दौड़ने लगे फिर तो केशव ने सुदर्शन चक्र को ग्रहण कर लिया।।१-१०।।

वह चक्र संसार के सभी अस्त्र के बल को रोकने वाला तथा सभी अस्त्रों को खण्डित कर देने वाला था। उस चक्र ने अपने तेज से ब्रह्मशिर नामक अस्त्र को वैसे ही निस्तेज कर दिया कि जैसे ग्रीष्म ऋतु के समाप्त हो जाने पर मेघ सूर्यमण्डल को निस्तेज कर देते हैं। ब्रह्मशिर अस्त्र का पराभव हो जाने पर मारे क्रोध के कार्तिकेय के नेत्र लाल हो गये। कार्तिकेय जल उठे और उन्होंने दिव्य काञ्चनी शक्ति को छोड़ा, वह महाशक्ति श्रीकृष्ण के वध की इच्छा से उनकी और दौड़ी। जब वह श्रीकृष्ण के समीप पहुँची तो उन्होंने हुङ्कार मात्र से ही ठोकर देकर शक्ति को भूतल पर गिरा दिया अमित तेजस्वी श्रीकृष्ण द्वारा चक्र ग्रहण कर घुमाये जाने पर महादेव जी की आज्ञा से लम्बी कोटवी देवी सुन्दर शरीर धारण कर कुमार की रक्षा के लिये वहाँ नंगी ही हालत में उपस्थित हो गई, वह महाभागा कोटवी पार्वती के आठवें भाग से उत्पन्न थीं।।११-२०।।

वे विचित्र कनक शक्ति नग्न हो बीच में खड़ी हो गई तब कुमार के तथा अपने बीच में खड़ी देवी को देखकर महाभुज मधुसूदन ने मुँह फेर लिया और बोले हट जाओ, हट जाओ तुम्हें ऐसा करने को धिक्कार है, कुमार के निश्चित वध में तुम क्यों विघ्न कर रही हो? वैशम्पायन जी बोले हे विभो! श्रीकृष्ण के इस प्रकार वचन सुनकर भी कोटवी देवी ने कुमार की रक्षा के कारण वस्त्र नहीं धारण किया। तब फिर भगवान् ने कहा कि तुम कुमार को लेकर शीघ्र रणाङ्गण से चली जाओ, मुझ युद्ध करने वाले के साथ युद्ध करने

वाले कुमार का इसी प्रकार आज कल्याण हो सकता है। हरि ने चक्र को घुमाना बन्द कर दिया। कोटवी देवी कुमार को लेकर शंकर जी के समीप चली गईं तब संग्राम देश में बाणासुर आ गया।।२१-३०।।

वैशम्पायनजी बोले कि भूत तथा यक्ष-गण और बाणासुर के सैनिक भय से मोहित नेत्र होकर सभी भागने लगे। बाण महाबली एवं वीर सैनिकों से वैसे ही घिरा था कि जैसे श्रेष्ठ देवताओं से इन्द्र घिरे हों। बाण को युद्ध के लिये तैयार देख श्रीकृष्ण जी गरुड़ पर सवार हो उसके सम्मुख चले। श्रीकृष्ण को देख बाणासुर बोला आज तुम मार डाले जाओगे, अब तुम अपने मित्रों को नहीं देख सकोगे।।३१-४०।।

हे माधव! तुझे काल ही आज प्रेरित कर यहाँ लाया है। हे गरुड़ध्वज! तुम आठ भुजा वाले होकर मुझ हजार बाहु वाले से रण में आकर कैसे युद्ध करोगे। शोणितपुर में घायल होकर द्वारका का स्मरण करोगे। मेरे हजार बाहुओं को तुम आज करोड़ों की संख्या में देखोगे। बाणासुर के वाक्य समूह जलराशि की लहरों के समान निकल रहे थे। बाणासुर के अत्यन्त गर्वित वचनों को सुन कर नारद जी मानो नभस्तल का भेदन करते हुए अट्टहास की हँसी में हँस पड़े। कौतूहलवश खिले नेत्रों वाले नारद मुनि योग-पट्ट पर बैठ कर युद्ध देखने की इच्छा से आकाश में पर्यटन करने लगे। श्रीकृष्ण जी बोले हे बाणासुर! बहुत सी अनर्गल बातें कह रहे हो।।४१-५०।।

आओ मुझको जीत लो अथवा स्वयं पराजित होकर चिरकाल के लिये वसुधा तल पर नीचे मुख किये दीन-हीन हो असुरों के साथ सो जाओ। बाणासुर से इस प्रकार कह कर श्रीकृष्ण ने उस निष्फल न जाने वाले महान् मर्मभेदी बाणों से वेध दिया। तब श्रीकृष्ण के द्वारा बाणों से विद्ध बाणासुर भी हँसता हुआ मर्मभेदी बाणों की वर्षा से श्रीकृष्ण को ढक दिया। मुसल एवं पट्टिशों से केशव को आच्छादित कर दिया। सहस्त्रबाहु श्रीकृष्ण की हस्त लाघवता से क्रोधित हो उठा और जिसे ब्रह्मा ने बनाया था ऐसे दिव्य अस्त्र को दिति-पुत्र बाण ने छोड़ा; उस अस्त्र के छूटने पर सभी दिशायें मण्डलाकार

अन्धकार से ढक गई। संसार में कुछ दिखाई नहीं देता था इसके पश्चात् अस्त्र बल के वेग से भयंकर अग्नि की लपटों वाली महाघोर बाणों की वृष्टि प्रारम्भ हो गई।।५१-६०।।

तब भगवान् मधुसूदन ने रण में कालान्तक के समान महावेगवाले पार्जन्य नामक अस्त्र को उठाया। फिर तो लोक का अन्धकार नष्ट हो गया और बाण की अग्नि बुझ गई तथा सभी दानव अत्यन्त निराश हो गये। जब पार्जन्यास्त्र के अभिमंत्रित होने पर दानवास्त्र शान्त हो गया तब देवतागण हँसने तथा गर्जने लगे। हे महाराज! शस्त्र की शक्ति नष्ट हो जाने पर बाण क्रोध से केशव को अस्त्रों से ढक दिया। केशव हँसते हुए वारण कर दिये, केशव और बाणासुर के उस होने वाले संग्राम में। केशव ने शार्ङ्ग धनुष से वज्र के समान बाणों को छोड़ कर बाणासुर के रथ, घोड़े, ध्वजा तथा पाताकाओं को तिल के समान काट गिराया। इसके बाद केशव ने उसके शरीर से कवच तथा महाप्रभाशाली मुकुट एवं शंकर प्रदत्त महातेजस्वी कार्मुक धनुष और हाथ के अन्य धनुषों को भी काट गिराया।।६१-७०।।

फिर हँसते हुए उसके हृदय में बाण मारा तब मर्मस्थल के आहत होने से वह अल्प चेतना हो मूर्छित हो गया। प्रहार से पीड़ित हो मूर्छित बाणासुर को देख कर राजभवन के श्रेष्ठ शिखर पर बैठे हुए मुनिश्रेष्ठ नारद जी उसे उठकर देखने लगे उस समय वे अपनी काँख को बजाने में तत्पर हो चुटुकियों को बजाने लगे भला हुआ-भला हुआ जो दामोदर का विचित्र पराक्रम मेरे दृष्टिगोचर हुआ इससे मेरा जन्म सफल हो गया रणस्थल के आकाश में विचरने लगे फिर तो वहाँ दौड़ती हुई ध्वजायें आपस में युद्ध करने लगीं तथा देवता और दैत्यों के वाहनों का युद्ध होने लगा। गरुड़ तथा कार्तिकेय के मयूर का पंख, चोंच और चरण एवं नखों से संग्राम होने लगा। मयूर और गरुड़ दोनों क्रुद्ध हो आपस में प्रहार करने लगे इसके बाद महाबली गरुड़ क्रुद्ध हो दीप्ततेज वाले मयूर के शिर पर अपने चोंच से प्रहार करते हुए उड़-उड़ कर पंखों से भी मारने लगे।।७१-८०।।

दोनों पंखों के प्रहार से अनेकों बार आघात कर शीघ्रता से खींच मयूर को बगल में दबा कर महाबली गरुड़ आकाश में उड़ गये। फिर मूर्छित हुए मयूर को आकाश मण्डल से गिरा दिया, उस मयूर के गिरने पर अत्यन्त बली बाणासुर भी पृथ्वी पर गिर पड़ा। समर में अत्यन्त व्याकुल बाणासुर अपने किये युद्ध रूप कार्य की चिन्तना करने लगा कि मैं अत्यन्त बल से मत्त हो मित्रों का कहना नहीं माना। देवता और दैत्यों के देखते-देखते मैं बड़ी भारी आपत्ति को प्राप्त हो गया, इस प्रकार दीन मन वाले बाण को रण मे अत्यन्त व्याकुल जान कर भगवान् रुद्र चिन्तना करने लगे इसके बाद बाणासुर की रक्षा के लिये आतुर महादेव जी नन्दी से बोले। हे नन्दिकेश्वर! चमकते हुए दिव्य एवं सिंहों से जुते रथ से वहाँ जाओ कि जहाँ बाणासुर रण में पड़ा है। शीघ्र तुम रथ को बाणासुर के समीप ले जाओ बल्कि हे अनघ! युद्ध के लिये उसे रोक देना, मैं प्रमथ गणों के बीच में स्थित हूँ मेरा मन खिन्न है। आज मैंने युद्ध से विराम ले लिया है, तुम जाओ बाण की रक्षा करो तब रथियों में श्रेष्ठ नन्दी 'ऐसा करूँगा' कह कर रथ से चल पड़ा। जहाँ बाण था वहाँ पहुँच कर धीरे से बाणासुर से कहा कि हे महाबली दैत्य! आओ शीघ्र इस रथ पर बैठ जाओ। इसके बाद दानवान्तक श्रीकृष्ण से रण में युद्ध करो 'ऐसा सुन कर' बाणासुर बुद्धिमान् महादेव जी के रथ पर चढ़ गया।।८१-९०।।

ब्रह्मा द्वारा रचे उस रथ पर चढ़ अति बलि बाण क्रुद्ध हो सम्पूर्ण अस्त्रों का विघातक ब्रह्मशिर नामक महाभयंकर अस्त्र को छोड़ा। ब्रह्मशिर नामक अस्त्र के प्रदीप्त होने पर संसार क्षुब्ध हो उठा, ब्रह्मा ने उस अस्त्र की रचना लोक के संरक्षण के लिये किया था। श्रीकृष्ण उस अस्त्र को चक्र के द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर बाणासुर से बोले। हे तात! तुम्हारी कथित बातें कहाँ गईं अब तुम क्यों नहीं बढ़ कर बोलते हो? देखो यह मैं युद्धस्थल में उपस्थित हूँ आओ युद्ध करो और पुरुषार्थी बनो। पहले एक तेरे जैसा कार्तवीर्य अर्जुन नाम का सहस्त्र बाहुओं वाला महाबली वीर हो चुका है उसे परशुराम ने समर में दो बाहुओं वाला कर दिया था वैसे ही तुम्हें भी हजार बाहुओं के बल से यह घमण्ड उत्पन्न हो गया है। रण के मोर्चे पर इस तुम्हार घमण्ड का नाश करूँगा, आज जब

तक अपने बाहुओं से तेरे घमण्ड को नष्ट करता हूँ तब तक तुम रण में ठहरे रहो, आज मेरे सामने से तू भाग कर नहीं बच सकता; इस परम दारुण दुर्लभ युद्ध को देख कर उस युद्ध में नारद जी नाचने लगे; महात्मा प्रद्युम्न ने उधर सभी गणों को जीत लिया। फिर नारद जी युद्ध को छोड़ कर महादेव जी के पास चले गये, इधर श्रीकृष्णजी वर्षाकालीन मेघ के समान गर्जते हुए बाण का अन्त कर देने की इच्छा से शीघ्रतापूर्वक हजारों आरे वाले उस सुदर्शन चक्र को उठा लिये। जो तेज नक्षत्रों का है, जो तेज विद्युत का है तथा जो तेज इन्द्र का है वह सभी तेज चक्र में स्थित था। तीनों अग्नियों का जो तेज है और जो तेज ब्रह्मचारियों का है वह सभी चक्र में स्थित था इसके आलावे ऋषियों का ज्ञान भी चक्र में स्थित था। पतिव्रताओं का जो तेज है और पशु-पक्षियों का जो बल है एवं चक्रधारियों में जो कुछ गुण होना चाहिये वे सब चक्र में संनिवेशित थे, नाग, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं एवं त्रैलोक्य का जो बल है वह सभी चक्र में स्थित था उन तेजों से संयुक्त वह चक्र सूर्य के समान ज्वलन शक्ति धारण करता हुआ मानों स्वयं अपने शरीर से तेज धारण करता बाणासुर के सामने उपस्थित था। अप्रमेय तथा अप्रतिहत अति तेजस्वी चक्र को श्रीकृष्ण द्वारा उठाया जान कर पार्वती जी ने शिव जी से कहा कि हे नाथ! यह देखिये श्रीकृष्ण ने तो त्रैलोक्य में अजेय इस सुदर्शन चक्र को धारण कर लिया है।।९१-१००।।

हे प्रभो! जब तक श्रीकृष्ण चक्र नहीं छोड़ते हैं इसके पहले ही बाणासुर की रक्षा का उपाय कर लीजिये तब त्रिनेत्र शंकर जी यह बात सुन कर लम्बा देवी से बोले। हे लम्बे! तुम बाणासुर के संरक्षण के लिये शीघ्र जाओ यह सुन हिमवान की पुत्री लम्बा योग बल का साधन कर अदृश्य हो। अकेले श्रीकृष्ण के पास आ गईं, रणाङ्गण में चक्र उठाये भगवान् को देख कर वह विजया पुनः अन्तर्धान हो अपने वस्त्र को छोड़ कर बाणासुर की रक्षा के लिये डट गई।।१०१-११०।।

वासुदेव के सम्मुख नंगी हो कोटवी देवी खड़ी हो गई तब रुद्र की

संमति से पुनः आई हुई कोटवी देवी को देख कर दूर खड़ी हुई लम्बा से श्रीकृष्ण कहने लगे कि नंगी क्यों खड़ी हो? यह सुन कर रण में नंगी खड़ी देवी ईर्ष्या के साथ अपने नेत्रों को लाल-लाल कर ली और बाणासुर की रक्षा में तत्पर हो गई ''मैं बाणासुर को मार डालूँगा इसमें संशय नहीं है'' ऐसा श्राकृष्ण। के कहने पर देवी फिर श्रीकृष्ण से यह कही कि मैं तुम्हें जानती हूँ कि तुम सभी प्राणियों की सृष्टि करने वाले पुरुषोत्तम हो तथा महाभाग, महादेव, अनन्त एवं सभी को अपने में विलीन करने वाले अविनाशी हो। पद्मनाभ, हृषीकेश तथा लोकों आदि के कारण हो हे देव! आपको रण में अप्रतिम बाणासुर को मारना उचित नहीं। क्योंकि मैंने इसे यह वर दिया है कि तुम पुत्र-रूप से जीवित रहो उसी की मैं रक्षा कर रही हूँ, इसलिये आप बाणासुर को अभयदान दीजिये। हे माधव! मेरे वरदान को मिथ्या करना उचित नहीं है; देवी के इस प्रकार कहने पर श्रीकृष्ण कहने लगे कि हे भामिनि! मेरी सत्य बात को सुनो बाणासुर हजार बाहुओं के घमण्ड का आश्रय ले गर्जता है। इसलिये आज इन बाहुओं का छेदन कर देना ही मेरा कर्त्तव्य है इसमें संशय नहीं है अब तुम दो बाहुओं वाले बाणासुर से जीवित पुत्र-वाली होओगी।।१११-१२०।।

श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने पर देवी ने कहा कि मैं यही चाहती हूँ कि यह बाणासुर आप आदिदेव का दिया हुआ होकर जीवे तब कार्तिकेय की माता देवी से 'ऐसा ही होगा' कह कर वे वक्ताओं में श्रेष्ठ प्रभु श्रीकृष्ण समर में बाणासुर से बोले कि समराङ्गण में आओ मुझसे युद्ध करो तुम्हारी रक्षा के लिये कोटवी देवी खड़ी हैं। ऐसा कहने के बाद महाबली श्रीकृष्ण आँख मूँद कर उस चक्र को छोड़ दिये। रण में वह चक्र बाणासुर के दो कम हजार बाहुओ को क्रमशः काट गिराया।।१२१-१३०।।

कटे हुए शाखा वाले वृक्ष के समान उस बाणासुर को दो बाहुओं वाला करके पुनः सुदर्शन चक्र श्रीकृष्ण के हाथ में आ गया। वैशम्पायनजी बोले दैत्य की बाहुओं से रक्त चू रहा था। वह महासुर विविध प्रकार से नाद करने लगा उसके महान् नाद करने से रिपुसूदन केशव बाण के नाश के लिये उद्यत

हो पुनः चक्र छोड़ने की इच्छा करने लगे तब कार्तिकेय के सहित महादेव जी ने आकर कहा कि हे कृष्ण! तुम पुरुषोत्तम को मैं जानता हूँ। तुम तीनों लोकों से अजेय हो इस उठाये हुए दिव्य चक्र को तुम रख दो। क्योंकि हे केशिनिषूदन! इस बाणासुर को मैंने अभयदान दे दिया है सो मेरा वाक्य झूठा न हो इसी कारण तुमसे क्षमा कराना चाहता हूँ। श्रीकृष्णजी बोले हे महादेव! तुम देवता तथा दानवों एवं असुरों सभी के माननीय हो इसलिये यह चक्र रख देता हूँ, अब यह बाणासुर जीवित रहे। हे महेश्वर! आपको नमस्कार है, अब जो कार्य है उसको करने जाऊँगा अर्थात् अपने पौत्र अनिरुद्ध को बन्धन से छुड़ाने जाऊँगा। हम कोई कार्य आपकी आज्ञा के बिना नहीं करेंगे, इसलिये आप मुझे आज्ञा दीजिये।।१३१-१४०।।

ऐसा महादेव जी से कहकर महामनस्वी श्रीकृष्ण शीघ्रतापूर्वक वहाँ चले गये कि जहाँ बाण जालों से घिरे प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध थे। श्रीकृष्ण के चले जाने पर नन्दी ने बाणासुर से शुभ वचन कहा कि हे बाण! तुम प्रसन्न हुए महादेव जी के सामने जाओ। नन्दी के इस वचन को सुनकर शीघ्रगामी बाणासुर महादेव जी के पास चल पड़ा तब नन्दी ने कटे बाहु बाणासुर को देखकर। उसे रथ पर चढ़ा जहाँ महादेव जो थे वहाँ ले गया, इसके बाद नन्दी ने फिर बाणासुर से यह पूछने पर कि मैं क्या करूँ? इसके उत्तर में कहा कि हे बाण! तुम महादेव जी के सामने नाचो, तुम्हारा कल्याण होगा, ये महादेव जी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं। नन्दी के वचन से प्रेरित हो विशेष रक्त से भींगे शरीर होने पर भी जीवन की इच्छा वाला बाणासुर शंकर जी के सम्मुख भय से संविग्न तथा विक्षिप्त होकर नाचने लगा तब भय से उद्विग्न बार-बार नाचते हुए बाणासुर को देखकर। भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने वाले महादेव जी करुणा के वशीभूत हो नन्दी के वाक्य से वेगपूर्वक नाचते हुए बाणासुर से बोले हे बाण! तुम मन से जो चाहते हो वह वर माँगो मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ, हे दानव! तुम हमारे प्रिय पात्र हो। बाणासुर बोला—हे विभो! यदि आप मुझे मानते हैं तो मैं सर्वथा अजर-अमर हो जाऊँ यही मेरी पहली वर-याचना है।।१४१-१५०।।

महादेव जी बोले हे बाणासुर! तुम देवताओं के समान हो, तुम्हारी मृत्यु नहीं है, अतः आज दूसरा कोई वर माँगो क्योंकि तुम निरन्तर हमारे अनुग्रह के योग्य हो। बाणासुर बोला–हे देव! जैसे मै शोणित लिप्त घाव से पीड़ित अत्यन्त दुःखी हो नाच रहा हूँ ऐसा नाचने वाले भक्तों के यहाँ हे भव! आप पुत्र का जन्म देवें। श्री हर बोले कि क्षमा वाले सत्य तथा सरलतायुक्त निराहार रह कर जो भी मेरे भक्त इस प्रकार का नृत्य करेंगे उनके यहाँ अवश्य पुत्र का जन्म होगा। हे बाणासुर! अब तुम तीसरे मनोगत वर को माँगो हे पुत्र! मैं उसे भी दूँगा जिससे कि तुम इस लोक में सफल मनोरथ वाले हो जाओगे। बाणासुर बोला हे भव! चक्र के घाव से जो मुझे अत्यन्त पीड़ा हो रही है वह तीसरे वर से शान्ति को प्राप्त हो जाय। श्री रुद्र बोले–तुम्हारा कल्याण हो, ऐसा ही होगा, तुमको अब पीड़ा नहीं होगी, तुम्हारा शरीर घावरहित हो स्वस्थ की दशा में हो जायेगा। यदि तुम चाहते हो तो चौथा वर माँगो, मैं तुम्हें चौथा वर दे रहा हूँ हे तात! मैं तुमसे कभी विमुख नहीं होऊँगा, प्रसन्नता से सदा तुम पर सुमुख रहूँगा। बाणासुर बोला हे विभो! यदि ऐसा ही है तो प्रमथ गणों के वंश में मेरा प्रथम स्थान हो, मैं महाकाल इस नाम से सदा के लिये विख्यात हो जाऊँ। वैशम्पायन जी बोले कि देव महेश्वर ने बाण से कह दिया कि ऐसा ही होगा, तुम मेरे आश्रय द्वारा शरीर से पीड़ारहित तथा अक्षत एवं दिव्य रूप वाले हो जाओगे। हे बाण! मेरे विशेष अनुग्रह से तुम सर्वत्र सभी अवस्था में भय से रहित हो जाओ, विख्यात बल तथा पौरुष वाले तुमको मैं फिर पाँचवाँ वर दे रहा हूँ इसलिये जो तुम्हारे मन में है वह फिर माँग लो।।१५१-१६०।।

बाणासुर बोला हे महादेवजी! बाहुओं के कटने से जो विरूपता आ गई है वह विरूपता मेरी सदा के लिये नष्ट हो जाय, हे भव! दो बाहु वाला मेरा देह विरूप न हो। श्री हर बोले हे महासुर! जैसा तुम चाहते हो वैसा ही होगा, इस प्रकार के भक्तों के लिये मेरे पास कोई ऐसा पदार्थ नहीं है कि जो अदेय हो। वैशम्पायन जी बोले–समीप में खड़े बाणासुर से महादेव जी ने कहा जो भी कुछ तुमने कहा वह सभी वैसा ही हो जायगा जैसा कि तुम चाहते हो।

त्रिलोचन भगवान् इस प्रकार कहकर सब गणों के साथ सबके देखते-देखते वही अन्तर्धान हो गये।।१६१-१६४।।



अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२७।।

वैशम्पायनजी बोले–इन बहुत वरों को पाकर बाणासुर प्रसन्न हो गया और महाकाल की उपाधि प्राप्त कर रुद्र के साथ चला गया। इधर वासुदेव भी नारद जी से बार-बार पूछने लगे कि हे भगवन्! नागों के बन्धन से बँधे अनिरुद्ध कहाँ हैं मैं उस स्थान को तत्त्व से जानना चाहता हूँ, मेरा मन उनके प्रेम से भर आया है और वीर अनिरुद्ध के हरण हो जाने से द्वारकापुरी व्याकुल हो उठी है। उसी लिये हम लोग यहाँ आये हैं, अतः उनको शीघ्र ही छुड़ाऊँगा, आज उस शत्रुरहित अनिरुद्ध को हम लोग देखना चाहते हैं। हे भगवन्! क्योंकि वह स्थान आपको विदित है, श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने पर नारद जी बोले कि–हे माधव! वह अनिरुद्ध कुमार कन्या के महल में नागों से बँधा पड़ा है, इसी बीच चित्रलेखा शीघ्र ही आकर उपस्थित हो कहने लगी कि। शिव के उत्तम भक्त दैत्येन्द्र महात्मा बाणासुर का अन्तःपुर यही है, आप सुखपूर्वक इसमें प्रवेश कीजिये। ऐसा कहने पर बलराम, प्रद्युम्न, नारद तथा गरुड़ एवं श्रीकृष्ण सभी अनिरुद्ध को छुड़ाने के लिये उस अन्तःपुर में चले गये। वहाँ पहुँचने के बाद अनिरुद्ध के शरीर में शररूपी जो सर्प लिपट कर बैठे थे वे सभी गरुड़ को देखकर एक-बा-एक उनके शरीर से निकल भूमि पर आकर अपनी प्राकृतिक अवस्था बाण के रूप में हो गये।।१-१०।।

श्रीकृष्ण के कृपापूर्ण दृष्टि से देखने पर तथा कमलवत् अपने हाथों से स्पर्श करने पर महायशस्वी अनिरुद्ध प्रसन्न होकर खड़े हो हाथ जोड़कर बोले। हे देव-देव! आप सदा युद्ध में विजय करने वाले हैं, आपके सम्मुख साक्षात् इन्द्र भी खड़ा होने में समर्थ नहीं हैं तो बाणासुर की क्या बात है। इसके बाद वे महामनस्वी अनिरुद्ध महाबली एवं यशस्वी बलभद्र जी को प्रसन्न

हो नमस्कार किये। इसके बाद हाथ जोड़ महात्मा माधव श्रीकृष्ण को तथा पक्षियों में श्रेष्ठ महाबली गरुड़ को नमस्कार करने के बाद मकरध्वज एवं चित्र-विचित्र बाणों को धारण करने वाले अपने पिता प्रद्युम्न को नमस्कार किये। भवन में खड़ी हो सखियों से घिरी हुई उषा अति बली बलराम तथा सुदुर्जय श्रीकृष्ण एवं अमित गति वाले गरुड़ को नमस्कार कर पुष्प के बाणों को धारण करने वाले प्रद्युम्न को लजाती हुई नमस्कार की। इसके पश्चात् इन्द्र के कहने से परम तेजस्वी नारद जी हँसते हुए पुनः वासुदेव के समीप आ गये और शत्रुसूदन गोविन्द को बढ़ावा देने लगे, नारद ने कहा हे गाविन्द! अनिरुद्ध के समागम से आप अपने भाग्य से बढ़ रहे हैं। इसके बाद अनिरुद्ध सहित बलराम, प्रद्युम्न तथा श्रीकृष्ण नारद जी को प्रणाम कर स्थित हो गये तब देवर्षि नारद जी आशीर्वाद से उन लोगों को बढ़ाकर श्रीकृष्ण से बोले।।११-२०।।

हे विभो! अब आप अनिरुद्ध का वीर्याख्य विवाह कीजिये (बलपूर्वक जीती गई कन्या से विवाह करना वीर्याख्य विवाह कहलाता है) क्योंकि मुझे जम्मूल-मालिका देखने की श्रद्धा हो रही है (जम्मूल; वर पक्ष की स्त्रियों के उपहास-वचन को कहते हैं और मालिका कहते हैं उसकी परम्परा को) अर्थात् विवाह में होने वाले वर-पक्षीय स्त्रियों के उपहास वचन सुनना चाहते हैं। फिर तो नारद जी के वचन को सुनकर सभी हँसने लगे। श्रीकृष्ण ने कहा हे भगवन्! शीघ्र ही ऐसा कीजिये, विलम्ब न कीजिये। इसी बीच विवाह की सामग्रियों को लेकर कुम्भाण्ड उपस्थित हो गया और श्रीकृष्ण को नमस्कार कर कुम्भाण्ड बोला हे महाबाहो! आप अभय प्रदान करें, मैं आपकी शरण में आया हूँ, मैं अपको श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ आप प्रसन्न होवें। नारद जी के वचन को सुनकर पहले ही महात्मा कुम्भाण्ड के लिये श्रीकृष्ण ने अभयदान दे दिया था। श्रीकृष्ण ने कहा कि हे मन्त्रियों में श्रेष्ठ कुम्भाण्ड! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हारे अच्छे कार्यों को जानता हूँ; अतः आप यहाँ राजा हो अपनी जातिवालों के साथ सुख से रहिये, अब आप सब झंझटों से निवृत्त हो गये हैं। मैंने तुमको यहाँ का राज्य दे दिया, अब मेरे आश्रय से चिर

काल तक जीवित रहो, इस प्रकार महात्मा कुम्भाण्ड को राज्य देकर जनार्दन ने उस अनिरुद्ध का विवाह किया, भगवान् अग्निदेव स्वयं वहाँ उपस्थित हुए थे। अनिरुद्ध का वह विवाह शुभ नक्षत्र में हुआ था। उस अवसर पर अप्सरायें खेल-तमाशा करने के लिये तत्पर थीं। जब अपनी भार्या उषा के साथ अनिरुद्ध स्नान कर अलंकारों को धारण किये तब गन्धर्व लोग सुरीले तथा शुभ वाक्यों से गीत गाने लगे थे।।२१-३०।।

और अप्सरायें विवाह की शोभा बढ़ाने के लिये नृत्य करती हुई मंगलगान करने लगी थीं। इसके बाद अनिरुद्ध का विवाह समाप्त कर सुप्रज्ञ शत्रुसूदन शत्रु के पुर को जीतने वाले श्रीकृष्ण सभी देवगणों से घिरे हुए वरदान देनेवाले देवनमस्कृत रुद्र को आमन्त्रण कर द्वारका जाने का विचार किये; शत्रुनिषूदन श्रीकृष्ण को द्वारका जाते जानकर कुम्भाण्ड हाथ जोड़कर मधुसूदन से बोला कि बाणासुर की गायें इस समय वरुण के हाथ में हैं। हे माधव! जो अमृत के समान दूध देती हैं उसे पीकर मनुष्य अत्यन्त बली तथा दुर्जय हो जाता है। कुम्भाण्ड के ऐसा कहने पर हरि प्रसन्न मन हो 'वहाँ अवश्य जाना चाहिये' कहकर वहाँ जाने का विचार कर लिये। इसके पश्चात् भगवान् ब्रह्मा केशव कों बधाई दे ब्रह्मलोक निवासियों से घिरे ब्रह्मलोक में स्थित अपने भवन में चले गये। मरुत गणों के साथ इन्द्र द्वारका की ओर चले गये और विजय की आकांक्षा वाले सभी श्रीकृष्ण जहाँ जाते थे वहाँ चलने लगे और देवी पार्वती से विदा हो उषा सखियों से घिरी मयूर वाहन से द्वारका की ओर चल दी तत्पश्चात् बलराम, श्रीकृष्ण तथा महाबली प्रद्युम्न तथा विक्रमशाली अनिरुद्ध गरुड़ पर चढ़ कर वरुण की तरफ प्रस्थान किये, उड़ने वालों में श्रेष्ठ तेजस्वी गरुड़ के चलने से सभी दिशायें आकुल हो गईं और आकाश धूल से मटमैला हो गया।।३१-४०।।

वरुण की दिशा में जाते समय उन महात्माओं ने दिव्य पय देने वाली गौवों को देखा वे समुद्र तक के वन में चर रही थीं तथा हजारों की संख्या में नाना वर्ण की थीं। श्रीकृष्ण जी कुम्भाण्ड के कथनानुसार उन्हें पहचान कर उन गौवों की ओर मन दिये, गरुड़ पर बैठे हुए बोले हे वैनतेय! तुम वहीं चलो

कि जहाँ बाणासुर की गौवें हैं जिनके दूध को पीकर मनुष्य अमृतत्त्व प्राप्त कर लेता है। मुझसे सत्यभामा ने कहा था कि मेरे लिये बाणासुर की गौवों को लाना; जिसके दूध को पीकर महासुर लोग वृद्ध नहीं होते। विशेष वृद्धावस्था वाले भी उन गौवों के दूध को पान कर वृद्धावस्था का त्याग कर युवा हो जाते है, अब वे गौवें मेरी जानकारी में आ गई हैं।।४१-५०।।

गरुड़ बोले कि गौवें मुझे देखकर वरुणालय में सहसा प्रवेश कर रही हैं अब यहाँ उनके रोकने का उपाय करना चाहिये। ऐसा कहकर गरुड़ समुद्र में प्रवेश कर गये, तब वेग से गरुड़ को वरुणालय में आया देखकर वरुण के सभी गण विभ्रान्त हो इधर-उधर भागने लगे। तब तो सैन्य को वासुदेव के सामने जाने के लिये वरुण ने आज्ञा प्रदान कर दी फिर गरुड़ से वरुण के सेनानियों का युद्ध होने लगा, युद्ध में आने वाले वरुण के उन सेनानियों को महात्मा केशव ने तितर-बितर कर दिया। छाछठ हजार वरुण के सैनिकों को शूर बल-देव, जनार्दन, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा गरुड़ ने भगा दिया। तब वरुण वहाँ चला जहाँ कि केशव थे। उस समय वरुण के ऊपर छत्र लगा था और श्वेत वर्ण वाले उसके शरीर से जल चू रहा था, वरुण धनुष को चढ़ाकर मानो युद्ध के लिये श्रीकृष्ण को बुलाने लगा, वह बाण जालों से श्रीकृष्ण को ढक दिया।।५१-६०।।

इसके बाद जनार्दन अपने बाण जालों से सभी दिशाओं को आच्छादित कर दिये, बाणों से रण में वरुण पीड़ित हो श्रीकृष्ण से युद्ध करने लगा। भयंकर वैष्णवास्त्र को अभिमन्त्रित कर वासुदेव रण में वरुण के सामने खड़े होकर कहने लगे। यह वैष्णवास्त्र तुम्हारे वध के लिये उठाया हूँ तुम इस समय स्थिर भाव से खड़े रहो, ऐसा सुनकर महाबली वरुणदेव उस अस्त्र को देख सावधान हो अपने वरुणास्त्र से वैष्णवास्त्र को छोड़ कर उसको शमन करने में लग गया। वरुणास्त्र से निकली जलधारायें वैष्णवास्त्र पर गिर-गिर कर चलने लगीं तथा वैष्णवास्त्र के जलने पर वरुण के सैनिक भी जलने लगे।।६१-७०।।

महाविक्रमी वैष्णवास्त्र के दीप्त होने पर वरुण के गण भयभीत हो दिशाओं में भाग चले तब वरुण श्रीकृष्ण से कहने लगा कि अव्यक्त तथा व्यक्त लक्षणों वाली अपने पहले वाली प्रकृति को स्मरण कीजिये, आप मुझसे क्यों मोहित हो रहे हैं? हे महामते! आप सदा सत्त्व में स्थित रहने वाले हैं इसलिये पंचभूतों के आश्रय में रहने वाले दोषों का वारण करिये। आपकी जो-जो वैष्णवी मूर्तियाँ हैं उन सभी से मैं ज्येष्ठ हूँ, अतः मैं माननीय हूँ क्यों मुझको तुम जलाना चाहते हो। अग्नि अग्नि के ऊपर अपना पराक्रम नहीं दिखाता इसलिये कोप का त्याग कीजिये, मैं तुम्हारे ऊपर पराक्रम नहीं दिखा सकता क्योंकि आप जगत् के उत्पत्तिस्थान हैं। तुम्हीं ने प्रकृति की रचना की थी जो सृष्टि कारण रूप धर्म से युक्त है वह प्रभाव मेरे में कैसे आ सकता है। हे महाद्युते! आप अजय हैं मेरी रक्षा करें आपके द्वारा मैं रक्षा करने योग्य हूँ न कि विनाश। मैं प्रकृति का द्वेषी नहीं हूँ, दूषण उत्पन्न करने वाला भी नहीं हूँ।।७१-८०।।

वरुण के ऐसा कहने पर श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये, श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले–मेरी शान्ति के लिये गौवों को दो। वरुण बोले हे देव! मैंने बाणासुर के साथ पहले प्रतिज्ञा की है तो प्रतिज्ञा करके उसे कैसे तोड़ें। प्रतिज्ञा को भंग करने वाला पापी अच्छे लोकों को नहीं प्राप्त करता। हे मधुसूदन! आप प्रसन्न होकर ऐसा ही कुछ कीजिये कि जिससे मेरे धर्म का लोप न हो। हे वृषभेक्षण! मैं जीते जी गायों को न दूँगा, मेरी हत्या कर आप गायों को ले जा सकते हैं, इसी प्रकार मेरी पहले की प्रतिज्ञा है।।८१-९०।।

मैं अनुग्रह के योग्य होऊँ तो हे मधुसूदन! आप मेरी रक्षा कीजिये अथवा गौवों पर यदि विशेष प्रेम हो तो हे महाभुज! मुझे मार कर गौवें ले जाइये। श्रीकृष्ण वरुण के प्रण को अभेद्य समझ कर गौवों के प्रति निराश हो गये। श्रीकृष्ण ने कहा हे वरुण! मै धर्मज्ञ होता हुआ कैसे तुम्हारे ऊपर पाप का भार लादूँगा, आप हम लोगों के सम्बन्ध हैं, अब आप मुक्त कर दिये गये, अतः जाइये। इसके बाद वरुण केशव की पूजा करने लगे फिर व्यवहार

कुशल वरुणदेव ने बलराम की पूजा की इसके बाद प्रतापी वासुदेव ने वरुण को अभयदान देकर।।९१-१००।।

शचीपति इन्द्र के साथ द्वारका को चल पड़े। बाणासुर विजय तथा वरुण को मुक्त हुआ देखकर कलहप्रिय नारद जी भी सन्तुष्ट हो कर द्वारका के प्रति प्रस्थान किये। पीछे चलने वाले विमानों के निर्घोष तथा पाञ्चजन्य के शब्द को सुनकर सभी द्वारकावासी महान् हर्षित हुए। वे जल से पूर्ण कलशों तथा लावों एवं बहुत से पाँवड़ों से सम्पूर्ण द्वारकापुरी के द्वारों को शोभित कर रत्नों से शोभित बन्दनवारों को बाँध दिये इसके बाद कुलपुरोहितों के समान ब्राह्मण अर्घ लेकर निकले। वे द्वारकावासी जय-जयकार शब्दों के साथ विविध प्रकार से गरुड़ पर आसीन नील रंग के अंजन की उपमा वाले उन माधव की पूजा करने लगे।।१०१-११०।।

तथा परम शोभा से युक्त श्रीकृष्ण की उस समय स्तुति करने लगे, इसी प्रकार अन्य वर्ण के लोग भी क्रमशः उन महाबली की पूजा करने लगे। केशिहन्ता अनन्त का सेठ आदि लोग श्रेणीबद्ध हो पूजन-वन्दन करने लगे, द्वारका के उपवन में स्थित पुण्डरीकाक्ष की ऋषि, देवता तथा गन्धर्व-चारण चारों ओर से स्तुति करने लगे, उस समय दाशार्ह गण इस दृश्य को देख आश्चर्य में पड़ गये। बाणासुर को जीत कर महादेव पुरुषोत्तम महाभुज श्रीकृष्ण को द्वारका में आया हुआ देख कर यादव अतुल हर्ष को प्राप्त किये। यादवों में महारथी एवं महाभाग श्रीकृष्ण के आने पर द्वारकावासी अनेक प्रकार की बातें कहने लगे कि—हम लोग धन्य हैं तथा अनुग्रह के पात्र हैं कि जगत् के पिता श्रीकृष्ण, जिनके संरक्षक गरुड़ हैं, लम्बे मार्ग को जाकर शीघ्र ही लौट आये यह बड़ा आश्चर्य है। गरुड़ से उतर कर वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध गृह में प्रवेश किये उस समय देवताओं के विमान आकाश में भ्रमण कर रहे थे।।१११-१२०।।

श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न आदिक हजारों उपस्थित कुमारों से मधुर वाणी द्वारा कहा कि इन देवताओं एवं इन्द्र की आदर के साथ वन्दना करो। ये

सप्तर्षि आये हैं इनकी सुखपूर्वक वन्दना करो। ये गौवें आई हैं इनकी वन्दना करो। वे कुमार सबकी वन्दना करने लगे इस दृश्य को देखकर पुरवासी विस्मय को प्राप्त हो गये।।१२१-१३०।।

वे देवताओं का पूजन करने के लिये शीघ्र ही पूजन सामग्रियाँ ले आये तथा कहने लगे कि अहो! वासुदेव के कारण यह महान् आश्चर्य है कि। हम लोग देवताओं का दर्शन प्राप्त कर रहे हैं, ऐसी बातें कहने के बाद चन्दन के चूर्णो तथा गन्ध-पुष्पों एवं लावों को देवताओं के ऊपर बिखेर कर धूप-दीप दिखा बाजा बजा एवं प्रणाम आदि से उनकी पूजा करने लगे। यादव कुमारों का इन्द्र आलिंगन कर तथा उनके शिर को सूँघकर यदु-मण्डल के समक्ष स्तुति करते हुए केशव से उत्तर रूप वचन को बोले यह सभी सात्त्वतों में प्रधान हैं इन्होंने रण में युद्ध करने वाले महादेव तथा कार्तिकेय के सामने से अनिरुद्ध को छुड़ाकर लाया है। यह रण में बाणासुर को जीतकर तथा उस सहस्रबाहु की भुजाओं को काटकर द्वारका में आ गये हैं। जिस कार्य के लिये श्रीकृष्ण का मनुष्यों में आना हुआ है उस कार्य को करके हम लोगों को शोक से रहित कर दिया है, अब सभी लोग सुखपूर्वक विचरण करेंगे।।१३१-१४०।।

इन्द्र लोक नमस्कृत श्रीकृष्ण का आलिंगन तथा उनसे आज्ञा ले मरुत गणों के साथ स्वर्ग को चले गये। ऋषि और महात्मा लोग भी महान् पराक्रमी श्रीकृष्ण को विजय से आशीर्वादित कर चल पड़े, यक्ष, राक्षस तथा किन्नर भी जैसे आये थे वैसे चले गये। इन्द्र के स्वर्ग चले जाने के बाद महाबली, महाभाग पद्मनाभ श्रीकृष्ण सभी से उनके निरन्तर कुशल को पूछा। इसके पश्चात् 'आश्चर्य है-आश्चर्य है' इस शब्द को मुँह से निकालते हुए हजारों पुरुष श्रीकृष्ण के मुख-कौमुदी प्रभा को देखने के लिये आते थे और वे अनघ श्रीकृष्ण उन भक्तों पर निरन्तर प्रसन्न होते थे। द्वारका आकर परम शोभा से युक्त श्रीकृष्ण यादव गणों के साथ विविध प्रकार सम्पूर्ण काम तथा अर्थों को भोगते हुए आनन्द करने लगे।।१४१-१४८।।

❖✻❖

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।। १२८ ।।

राजा उग्रसेन बोले कि हे यदुनन्दन! अप्सरायें अपने साज-समाज के साथ आई हैं, इसलिये अनिरुद्ध के विवाह का एक महान् उत्सव कीजिये। सखियों से घिरी महाभागा उषा भी परम प्रीति से अनिरुद्ध के साथ युवावस्था की क्रीड़ा कर रही है। कुम्भाण्ड की पुत्री जो रामा है उसे भी उषा के सखीमण्डल में भेज देना चाहिये क्योंकि महाभागा रुक्मिणी उसकी बड़ाई कर रही हैं। कुम्भाण्ड की शुभ पुत्री रामा को साम्ब के लिये दे दीजिये और शेष कन्याओं को क्रमशः अन्य कुमारों को दे दीजिये। तब वह शुभ उत्सव अनिरुद्ध तथा श्रीधन्वा के घर में होने लगा। मद के वशीभूत हो वहाँ कुछ स्त्रियाँ बाजे बजाने लगीं और अप्सरायें नाचने लगीं तथा अन्य स्त्रियाँ गाने लगीं। वहाँ कोई प्रसन्न हो रही थीं, कोई आपस में बातें कर रही थीं, वहाँ सभी स्त्रियाँ नाना प्रकार के रंग-बिरंगे वस्त्रों को धारण कर क्रीड़ा कर रही थीं। कुछ स्त्रियाँ मद के वश हो आपस में मिल कर चली जातीं तथा हर्ष तथा प्रफुल्लित नेत्र कुछ स्त्रियाँ वहाँ पाशों से खेल कर रही थीं। सखियों के साथ उषा मयूर से जुते रथ पर चढ़ा कर देवी रुद्राणी के द्वारा भेजी गई है, इसलिये इसे ग्रहण करो।।१-१०।।

यह कुल में प्रशंसनीय तथा सुन्दरियों में श्रेष्ठ है, इसका नाम उषा है, यह बाणासुर की पुत्री तुम्हारी वधू है, अतः इस भामिनी को ग्रहण करो, ऐसा चित्रलेखा के कहने के बाद मंगलाचार पूर्वक स्त्रियों ने उस शोभना को ग्रहण कर अनिरुद्ध के घर में प्रवेश कराया। देवकी-रोहिणी तथा वैदर्भी-रुक्मिणी अनिरुद्ध को देख स्नेह के हर्ष से आँखों से आँसू गिराने लगीं। रेवती तथा रुक्मिणी गृह मुख्य कोहबर में प्रवेश करा कर कहीं कि हे वधू! तुम भाग्य से अनिरुद्ध का दर्शन कर वृद्धि को प्राप्त होओ। जब उषा घर में सम्यक् प्रकार से स्थित हो गई तब शुभ मुख वाली श्रेष्ठ स्त्रियाँ तुरही के शब्द के साथ मांगलिक क्रियायें करना आरम्भ कर दीं। इसके पश्चात् वृष्णिश्रेष्ठ अनिरुद्ध के साथ महल में रहती हुई सुन्दर मुख वाली उषा अपने अनुकूल सभी भोगों

के साथ रमण करने लगी। अप्सरा का रूप धारण करने वाली सुश्रोणी चित्रलेखा सखी उषा से आज्ञा लेकर स्वर्ग को चली गई। इस प्रकार सभी सखियों के चले जाने के बाद असुर सुन्दरी उषा को पहले मायावती ने निमन्त्रित कर अपने घर में बुलाया। वह प्रद्युम्न की भार्या मायावती अपनी सुन्दर पुत्र-वधू को देखकर वस्त्र तथा अन्नपानादि से उसका सत्कार किया। इसके बाद लोकाचार को देखती हुई यादवों की सभी स्त्रियों ने क्रमशः उषा को निमन्त्रित कर अपने कुल-धर्मानुसार सत्कार किया।।११-२०।।

वैशम्पायनजी बोले हे कुरुकुल को वहन करने वाले! जीवनमुक्त बाणासुर को जिस प्रकार से विष्णु ने जीत लिया था वह सब मैंने कह दिया। इसके बाद श्रीकृष्ण यादव गणों के साथ परम प्रसन्नतायुक्त हो सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करते हुए विचरने लगे। हे पृथ्वीपते! इस प्रकार श्रीविष्णु पृथ्वी पर अवतार लेकर यदुकुल में श्रेष्ठ वासुदेव के नाम से विख्यात हुए। इन्हीं कारणों से वृष्णियों में श्री वसुदेव के कुल में देवकी के गर्भ से उत्पन्न हु, थे जो कि तुमने मुझसे पूछा था। हे जनमेजय! नारद के प्रश्न करने पर जो मैंने संक्षेप में कहकर निवृत्त किया उन सभी पहले की बातों को विस्तारपूर्वक तुमने सुना। तुम्हारा विष्णु के मथुरा में अवतार लेने का जो महान् संशय था सो उस वासुदेव की अवतार क्रिया को हमने कहा। श्रीकृष्ण आश्चर्य के धाम हैं, इसके विषय में कोई अन्य आश्चर्य की बात नहीं सोचनी चाहिये, सभी आश्चर्यजनक वस्तुओं में विष्णु की सत्ता से परे कोई आश्चर्य नहीं है। यह विष्णु स्वयं धन्य तथा धन्यों को भी धन्य करनेवाले धन्यमूल हैं। दैत्यों सहित देवताओं में अच्युत से बढ़ कर कोई धन्यवाद का पात्र नहीं है। आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनी-कुमार, मरुत, आकाश, पृथ्वी, दिशा, जल तथा ज्योति इनको सदा से बनाने वाले तथा पालन करने वाले एवं संहार करने वाले हैं; सत्य, धर्म, तप तथा सबके पितामह ब्रह्मा तथा नागों में शेषनाग, रुद्रों में शंकर यही कहे गये हैं, यह स्थावर जंगम जगत् नारायण से ही उत्पन्न हुआ है।।२१-३०।।

हे भारत! इन्हीं जनार्दन से सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है और प्रलय

उपस्थित होने पर इन्हीं में सम्पूर्ण जगत् विलीन हो जाता है इसलिये उन विष्णु को नमस्कार करो। यह सनातन पुरुष सभी देवताओं द्वारा पूजनीय हैं, मैंने तुमसे बाणासुर-संग्राम तथा केशव के माहात्म्य को कहा। इसको सुनने से ही तुम अतुलनीय वंश प्रतिष्ठा का लाभ करोगे, जो इस बाणासुर युद्ध तथा केशव के माहात्म्य को धारण करेंगे उनकी सेवा में अधर्म नहीं उपस्थित होगा। हे जनमेजय! यज्ञ से निवृत्त होकर तुम्हारे पूछने से यह पूर्णतापूर्वक वैष्णवी गाथा का मैंने कीर्तन किया। इस सम्पूर्ण आश्चर्य पर्व को जो धारण करता है। तथा प्रातःकाल उठकर सावधान हो नित्य इसका कीर्तन करता है वह सभी पापों से छूट कर विष्णुलोक में जाता है। तथा इस लोक में अथवा परलोक में उसके लिये कुछ दुर्लभ नहीं रह जाता, ब्राह्मण सभी वेदों का वेत्ता, क्षत्रिय विजयी होता है। वैश्य धन-समृद्धि तथा शूद्र अपनी कामनाओं को प्राप्त करता है, कोई अशुभ नहीं प्राप्त करता, वह दीर्घ आयु लाभ करता है। सूतपुत्र बोले कि हे द्विजोत्तमो! परीक्षित-पुत्र जनमेजय ने एकाग्र चित्त हो वैशम्पायन द्वारा कहे गये हरिवंश को सुना था। हे शौनक! इस प्रकार संक्षेप तथा वित्तार से सभी वंशों को मैंने कहा, पुनः अब क्या सुनना चाहते हो।।३१-४१।।

।। विष्णु पर्व समाप्त ।।



卐 अथ 卐

भविष्य पर्वः प्रारम्भः

अथ प्रथमोऽध्यायः।।१।।

श्री गोपाल कृष्ण के लिये नमस्कार है। शौनक जी बोले–हे लोमहर्षण-पुत्र सूत जी! जनमेजय के किन पुत्रों के नाम का पाठ किया जाता है और महात्मा पाण्डवों का वंश किस पुत्र में प्रतिष्ठित हुआ। यह सुनने का मुझे परम कौतूहल है आपके कहने से मैं सब स्पष्ट रूप से समझ जाऊँगा। सूत-पुत्र बोले परीक्षित के दो पुत्र काशीराज की कन्या से उत्पन्न हुए उसमें चन्द्रपीड राजा हुए और सूर्यपीड मोक्षधर्म के ज्ञाता हुए। चन्द्रपीड के धनुषधारी सैकड़ों उत्तम पुत्रों से पाण्डवों का वंश प्रतिष्ठित हुआ वे इस पृथ्वी पर जनमेजय के गोत्र से प्रसिद्ध क्षत्रिय हुए। उनमें जो श्रेष्ठ था वह वाराणसी पुरी में राजा हुआ उसका नाम सत्यकर्ण था वह महाबाहु बहुत यज्ञों को करने वाला तथा अधिक दक्षिणा देने वाला हुआ। सत्यकर्ण का पुत्र प्रतापी श्वेतकर्ण तथा वह पुत्र रहित था इसलिये वह धर्मात्मा तपोवन में चला गया। वन में जाने वाले राजा श्वेतकर्ण से उसकी स्त्री यादवी ने गर्भ धारण कर लिया था वह सुचारु की कन्या सुन्दर भौहों वाली मानिनी 'भातृ मालिनी' नाम की थी। गर्भ के जन्म समय में ही प्रजेश्वर श्वेतकर्ण ने अच्युत की प्राप्ति के लिये पूर्वजों द्वारा गये हुए महाप्रस्थान की यात्रा की थी। राजा श्वेतकर्ण को बन जाते देख कर वह भातृमालिनी रानी भी उनके पीछे चली और उस सुभ्रू ने वन में कमलनेत्र पुत्र को उत्पन्न किया। परन्तु उस कुमार को छोड़ वह द्रौपदी के समान अपने पति के पीछे चली गई।।१-१०।।

वह राजकुमार गिरि के कुञ्ज में रोने लगा उसकी छाया के लिये मेघों ने चारों तरफ छा लिया। श्रविष्ठा के दो पुत्र पिप्पलाद और कौशिक को देखकर दया आगयी तो उसको उठाकर अश्रु जल पोछा उस बच्चे के दोनों पार्श्व शिला में रगड़ खा जाने से रुधिर से भिग गये थे। उसके दोनों पार्श्व अज अर्थात्

बकरे के सदृश श्याम हो गये थे तब अज के समान पार्श्व होने से वह अजपार्श्व हो गया। तब उन ऋषिकुमारों ने उसका 'अजपार्श्व' यही नाम रख दिया, वह स्वर्गीय वेमक ऋषि की पाठशाला में पिप्पलाद और कौशिक द्वारा पोष-पालकर बड़ा किया गया। पिप्पलाद और कौशिक ने वेमक की भार्या को पुत्र रहित होने से उसको पुत्रवत् पोषा-पाला इसलिये वह वेमकी का पुत्र हुआ और पिप्पलाद और कौशिक ये दोनों ब्राह्मण उसके मंत्री हुए। उन पिप्पलाद, कौशिक तथा अजपार्श्व के पुत्र-पौत्र सम कालीन जीवन वाले हुए वह यहीं पाण्डवों का पौरव वंश प्रतिष्ठित हुआ। इस विषय में नहुष-पुत्र बुद्धिमान् ययाति ने जरावस्था के आ जाने पर प्रसन्नता पूर्वक यह श्लोक गाया था- चन्द्रमा, सूर्य तथा अन्य ग्रहों से शून्य होकर यह पृथ्वी रह सकती है इसमें संशय नहीं है परन्तु पुरु वंशियों से रहित होकर कभी नहीं रहेगी।।११-१८।।



अथ द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

शौनक जी बोले–जैसे पहले बुद्धिमान् व्यास शिष्य ने कहा था वैसे आपने सम्पूर्ण पर्वों को कहा तथा इस हरिवंश को कहा। सम्पूर्ण पापों का नाशक तथा अमित इतिहासों से युक्त आप के द्वारा कहा गया आख्यान हम लोगों को अमृत के समान तृप्त कर रहा है। हे धीर! सुख से सुनने से हम लोगों का मन अत्यन्त ही प्रसन्न हो रहा है हे सूत-पुत्र! राजा जनमेजय महाभारत के उत्तम आख्यान को सुनकर सर्प-यज्ञ के बाद क्या किये। सूतपुत्र बोले–राजा जनमेजय महाभारत के उत्तम आख्यान को सुन कर सर्प-यज्ञ के पश्चात् जो कार्य आरम्भ किया था उसे मैं कहता हूँ। सर्प-यज्ञ के समाप्त होने पर परीक्षित-पुत्र ने अश्वमेघ यज्ञ करने के लिये सामग्रियों को एकत्र करने लगे। उन्होंने ऋत्विग्, पुरोहित और आचार्य को बुला कर कहा कि मैं अश्वमेध यज्ञ करूँगा इसलिये घोड़े को छोड़ो। इसके बाद जनमेजय की इच्छा को जानकर भूत-भविष्य की बात जानने वाले श्रीकृष्ण-भक्त महात्मा द्वैपायन व्यासजी अदीनसत्त्व जनमेजय को देखने के लिये सहसा आगये। राजा जनमेजय ने उन

ऋषि को आया देखकर अर्ध्य, पाद्य तथा आसन देकर शास्त्र की विधि से उनका पूजन किया। उन दोनों के बैठ जाने पर उनके चारों तरफ सदस्य भी बैठ गये इसके बाद वे वेद संहिता से युक्त अनेक प्रकार की विचित्र कथायें कहने लगे। कथा के अन्त में राजा जनमेजय पाण्डवों के पितामह एवं अपने प्रतिमाह व्यास मुनि से बोले कि।।१-१०।।

वेद के समान विस्तृत महाभारत के बहुत बड़े आख्यान का सुख से सुनने से मेरा समय निमेष मात्र की भाँति गत हो गया। हे ब्रह्मन्! विभूति का विस्तार करने वाले तथा सभी के यश को करने वाले महाभारत को आपने बड़े अच्छे ढंग से रचा है, मानो आपने शंख में छीर समुद्र भर दिया है। जैसे अमृत तथा स्वर्ग में सुख से तृप्ति नहीं होती है वैसे ही इस महाभारत की कथा को सुन कर मैं तृप्त नहीं हो रहा हूँ। हे भगवन्! मैं आपको सर्वज्ञ समझ कर पूछता हूँ, हमारे मत से यह जान पड़ता है कि कौरवो के विनाश का हेतु राजसूय यज्ञ है। युद्ध में अजेय राजन्यों का जैसे नाश हुआ उससे मैं यही मानता हूँ कि युद्ध के लिये ही राजसूय यज्ञ की कल्पना की गयी थी। सुना जाता है कि पहले सोम ने भी राजसूय यज्ञ किया था उसके अन्त में 'तारकामय' नामक महान् संग्राम हुआ था। वरुण ने भी इस महान् यज्ञ को किया था जिसके अन्त में सभी प्राणियों को नष्ट कर देने वाला 'देवासुर' नामक संग्राम हुआ था। राजर्षि हरिश्चन्द्र ने भी इस राजसूय यज्ञ को किया था वहाँ भी 'आडी-बक' नामक क्षत्रिय नाशक युद्ध हुआ था आडीजलचर विशेष वसिष्ठ तथा बक के रूप में विश्वामित्र लड़े थे। इसके बाद पाण्डवों ने महाभारत को आरम्भ करने वाले अग्नि के समान राजसूय यज्ञ को जब किया तब आपने लोकक्षय मूलभूत उस राजसूय यज्ञ का क्यों नहीं निवारण कर दिया?।।११-२०।।

क्योंकि राजसूय यज्ञ यज्ञाङ्गों से कठिन होने के कारण असंहार्य है अर्थात् सर्वाङ्ग युक्त करना कठिन है। यज्ञाङ्ग के मिथ्या प्रयोग से प्रजाओ का नाश ध्रुव है। आप हमारे सभी पूर्वजों के पितामह, भूत-भविष्य के ज्ञाता और हम सभी के स्वामी और हम सबको उत्पन्न करने वाले हैं। सो आपके नेतृत्व

में वे बुद्धिमान् पाण्डव कैसे नीति से च्युत हो गये? अपराध तो वे मनुष्य करते हैं जिनके नेता कुत्सित हैं तथा जो अनाथ हैं। व्यसजी बोले-तुम्हारे पूर्व पितामह काल से विपरीत बुद्धि वाले हो गये थे, वे हमसे भविष्य की बात नहीं पूछते थे और मैं बिना पूछे कुछ नहीं कहता हूँ। भविष्य को उलट देने में मैं किसी का सामर्थ्य नहीं देखता, काल के द्वारा विहित गति को कोई नहीं टाल सकता है। तुमने जो यह पूछा है तो मैं आने वाले भविष्य को कहता हूँ लेकिन काल के बलवान् होने से उसे सुनकर भी तुम नहीं करोगे। संरम्भ (भय) अथवा आरम्भ (उत्साह) से पुरुषार्थ में स्थित नहीं रह सकोगे क्योंकि काल के द्वारा लिखी हुई लेखा को लाँघना बड़ा ही कठिन है। अश्वमेघ यज्ञ श्रेष्ठ है तथा क्षत्रियों को प्रसिद्ध करने वाला है, इसी भाव को लेकर इन्द्र तुम्हारे यज्ञ को नष्ट करेगा। हे राजन्! यदि किसी प्रकार पुरुषकार से दैव का वारण कर सकते हो तो करो देखो होता है? इसीलिये मैं कहता हूँ कि तुम इस यज्ञ को मत करो। इसमें इन्द्र का अपराध नहीं है न उपाध्यायों का अपराध है न तुम यजमान का ही अपराध है बल्कि काल का उलंघन करना अत्यन्त दुःसाध्य है।।२१-३०।।

परमेष्ठी काल की ही प्रेरणा से इस यज्ञ की योजना उपस्थित की गई है, जैसा की अदृष्ट (देव) है उसके अनुसार युगक्षय में प्रजा चली जायेगी। तथा यज्ञ-फल के ब्राह्मण विक्रेता हो जायेंगे, चराचर त्रैलोक्य को काल के ही अधीन समझो। जनमेजयजी बोले हे भगवन्! यदि मेरी बात मानते हैं तो बतलाइये कि अश्वमेध यज्ञ की निवृत्ति का क्या कारण होगा? मैं सुनकर परिहार करूँगा। व्यास जी बोले हे प्रभो! अश्वमेध की निवृत्ति में ब्राह्मणों का कोप कारण होगा, तुम परिहार के लिये प्रयत्न करना, तुम्हारा कल्याण हो। हे परंतप! तुम्हारे अश्वमेध यज्ञ कर लेने के बाद जब तक पृथ्वी रहेगी तब तक इस यज्ञ को क्षत्रिय नहीं करेंगे। जनमेजय बोले-ब्रह्मशाप की अग्नि के तेज से बन्द हुए अश्वमेध का मैं ही कारण होऊँगा यह समझ कर मुझे बड़ा भय लग रहा है। मेरे जैसा पुण्यात्मा पुरुष अपकीर्ति से युक्त होकर लोक में वैसे ही विचरण नहीं करेगा कि जैसे पाश फन्दे में बँधा पक्षी आकाश में नहीं

उड़ता। जिस प्रकार विनाशकारी भविष्य को आपने देखा है वैसे ही यदि अश्वमेध यज्ञ की पुनरावृत्ति हो सकती हो तो मुझे आश्वासन दीजिये। व्यास जी बोले–उपात्त अर्थात् असंहत (बन्द हुआ) यज्ञ वैसे ही देवता तथा ब्राह्मणादिकों में रहेगा जैसे तेज से खींचा गया तेज तेज में ही रहता है। ब्राह्मणों का सेनानी (नेता) कोई कश्यप नाम का एक ब्राह्मण भूमि के विवर से प्रकट होगा वही पुनः इस यज्ञ को कलियुग में लौटायेगा।।३१-४०।।

हे राजन्! उस युग में उसके कुल का कोई श्वेत ग्रह के समान प्रलय को उपस्थित करने वाले राजसूय यज्ञ को भी पुनः करायेगा। यज्ञ कर्ता मनुष्यों को उनके श्रद्धा के अनुसार ही यज्ञ फल प्रदान करेगा और ऋषियों द्वारा छिपाया गया यज्ञ कलियुग के आरम्भ समय में विचरण करेगा। उसी समय से मनुष्य प्रायः धर्माचारों की हँसी करने लगेंगे और मनुष्यों के प्राण और इन्द्रियाँ प्राचीन मनुष्यों जैसा शिष्टाचार का अनुकरण नहीं करेगी। उस समय विघ्न की अधिकता से थोड़ा भी धर्म महान् फल देने वाला होगा और जिस किसी भी प्रकार दिया गया दान मूल्यवान् होगा अर्थात् कल्याण करने वाला होगा। इस समय थोड़े तप से भी मनुष्य सिद्धि को प्राप्त कर लेंगे हे जनमेजय! वे मनुष्य धन्य होंगे जो कलियुग के अन्त में भी धर्म का आचरण करेंगे।।४१-४५।।



अथ तृतीयोऽध्यायः।।३।।

राजा जनमेजय बोले कि मेरे मोक्ष का काल समीप है अथवा दूर है यह मैं नहीं जानता हूँ, इसलिये द्वापर से संविद्ध युगान्त अर्थात् द्वापर के अन्त में होने वाले कलि के धर्माधर्म समन्वय को सुनने की इच्छा करता हूँ। क्योंकि धर्म करने की तृष्णा से हम लोग उस कलिकाल को प्राप्त हो गये हैं कि जो सुख से थोड़े कर्म के द्वारा ही परम धर्म को दे देता है। शौनकजी बोले हे धर्मज्ञ सूतपुत्र! त्रास और उद्वेग एवं धर्म को प्रणष्ट करने वाला यह युगान्त कलिकाल

का समय उपस्थित हो गया है यह बात आप उसके कारणों से कह सकते हैं। सूतपुत्र बोले-इस प्रकार भविष्य की गति पूछने पर तत्त्व से सोचकर कलिकाल में होने वाले प्राणियों की बातें भगवान् व्यास जी कहने लगे। व्यासजी बोले कलिकाल में राजे अपनी ही रक्षा में तत्पर रहा करेंगे वे प्रजा से कर वसूल कर लेंगे पर प्रजा की रक्षा नहीं करेंगे। कलिकाल में क्षत्रियों से भिन्न जातियों के लोग राजा होंगे और ब्राह्मण शूद्रों का कार्य कर जीविका चलायेंगे और शूद्र ब्राह्मणों जैसा आचरण करने लगेंगे। हे जनमेजय! वेदपाठी ब्राह्मण बाण को धारण करने लगेंगे और हवियों की क्रियायें पंच यज्ञ रहित होंगी, सभी जाति के लोग एक ही पंक्ति में बैठकर भोजन करने लगेंगे। अधिकतर मनुष्य शिल्प कला (कल पुर्जों) के जानकर होंगे और वे झूठ बोलने, मद्य पीने तथा मांस खाने के प्रेमी होंगे और हे जनमेजय! वे स्त्री को ही मित्र समझेंगे। चोर राजों की वृत्ति वाले और राजे चोरों की भाँति स्वभाव वाले होंगे, नौकर बिना आज्ञा के ही भोजन कर लिया करेंगे। धन ही प्रशंसनीय होगा और सज्जनों का आचरण निन्दनीय होगा, मनुष्य पतित हो जाने पर भी अनिन्दनीय होंगे।।१-१०।।

मनुष्य धर्माधर्म के विवेक से शून्य होंगे, विधवायें संन्यासियों से मैथुन कराकर सन्तान उत्पन्न करेंगी, कलि के अन्त में मनुष्यों की आयु सौलह वर्ष के अन्दर ही होगी। जनपद के लोग अन्न बेचने लगेंगे और चौराहों पर वेद बिकने लगेगा तथा प्रमदायें अपनी इज्जत बेचने लगेंगी। सभी ब्रह्मवादी होंगे तथा सभी वाजसनेय यज्ञ करने वाले होंगे; युग के क्षयकाल में शूद्र भी (ऐ) शब्द से सम्बोधन कर बोलने वाले होंगे। ब्राह्मण यज्ञ के फलों के विक्रेता हो जायेंगे और कलियुग के अन्त में ऋतुयें विपरीत भाव दिखायेंगी। शूद्र शुक्लदन्त मांस भक्षण-त्यागी तथा अञ्जिताक्ष (सूक्ष्मदर्शी) मुण्डन करा गेरुआ वस्त्र पहन शाक्य बुद्ध के मत का अवलम्बन कर अर्थात् नास्तिक बनकर जीविका चलाते हुए नास्तिक धर्म का आचरण करेंगे। श्वापद (हिंस्रक जन्तु भेड़िया-व्याघ्र इत्यादि) अधिक मात्रा में हो जायेंगे और गौओं का क्षय होने लगेगा तथा कलियुग के अन्त में भोज्य पदार्थ स्वाद से रहित हो जायेंगे। म्लेच्छ मध्य देश

अर्थात् कुरु-पांचाल देशों में निवास करने लगेंगे और कुरु-पांचाल पंजाब के रहने वाले दूसरे देशों में रहने लगेंगे, युग-क्षय काल में प्रजायें नीच मार्ग का अनुसरण करने लगेंगी। दो-दो वर्ष के बछड़े बैलगाड़ी और हल में जीते जाने लगेंगे, कलि के अन्त में मेघ विचित्र वर्षा (अर्थात् हल में जुते बैल की एक सींग भींगेगी दूसरी नही) होगी। सभी चौर कुल में उत्पन्न हो परस्पर एक दूसरे की चोर करने लगेंगे, कलि के मनुष्य थोड़े ही धन से धनी कहलाने लगेंगे और किसी न किसी व्यसन को प्राप्त कर दुर्गति भोगेंगे। आधे से अधिक कलि बीत जाने पर वे मनुष्य धर्म नहीं करेंग, पृथ्वी अधिक मात्रा में ऊसर से व्याप्त हो जायेंगी, मार्ग चोरों से आच्छादित रहेंगे।।११-२०।।

कलियुग में सभी व्यापार करने लगेंगे तथा पितरों को दान दी गयी सम्पत्ति का बटवारा करने लगेंगे, लोभ और असत्य के वशीभूत हो आपस में विरोधी बनकर एक-दूसरे के भाग का अपहरण करने लग जायेंगे। युग के अन्त में सुकुमारता, रूप तथा रत्नों के विनष्ट हो जाने से नारियाँ केवल केशों से ही अलंकृत हुआ करेंगी। युगान्त के प्राप्त होने पर भोग सामग्री से रहित गृहस्थों को स्त्री के समान कोई गति नहीं होगी। जब कुशील-अनार्य अधिक बढ़ जायेंगे और झूठ-मूठ के रूपों को धारण करने लगेंगे तथा पुरुष थोड़े और स्त्रियाँ अधिक हो जायेंगी तब युग का अन्त होगा ऐसा समझना चाहिये। तब लोग अधिक संख्या में याचक हो जायेंगे और एक-दूसरे को न देगा, ब्राह्मण लोग बिना विचार किये ही दूसरे वर्णों से दान ग्रहण करेंगे। राजा, अग्नि और चोरों के भय से जनता दुःखी हो विनष्ट होने लगेगी, खेत की फसलें बिना फल की होने लगेंगी, युवा पुरुष वृद्ध की भाँति आचरण करने लगेंगे, युग-क्षय में लोग तृष्णा के मारे दुःखी हो जायेंगे। वर्षा काल में संतप्त वायु चलने लगेगा और मेघ बालुकाओं की वर्षा करने लगेंगे, युग-क्षय काल आने पर लोगों को परलोक में सन्देह होने लगेगा। आत्मज्ञानी भी दुराचारी हो जायेंगी और वे ब्रह्म में दूषण दिखाने लगेंगे तथा अपनी आत्मा को ही बहुत कुछ मानने लगेंगे और ब्राह्मणों को ग्रसित करने लगेंगे। राजे बनियों की भाँति आचरण करने लगेंगे और वे धन के ब्याज से तथा खेती

बारी से जीवन-यापन करने लगेंगे, युग के अपक्रमण अर्थात् धर्म मर्यादा के भंग हो जाने पर सभी ब्राह्मण बनने लगेंगे। समयोचित धर्म तथा शपथ झूठे किये जायेंगे युग के क्षीण होने हर ऋण को विनय से समाप्त कर दिया जायेगा।।२१-३०।।

मनुष्यों को बिना फल के ही हर्ष होगा और क्रोध सफल होगा तथा दूध के लिये बकरियाँ पाली जायेंगी। बिना शास्त्र पढ़े ही मनुष्य अपने स्वभाव से अपने को विद्वान् समझने लगेंगे और वे पण्डितमानी अप्रामाणिक नीति को कहा करेंगे। कलि के अन्तिम समय में शास्त्रों का वचन कोई नहीं रह जायेगा, वृद्धों की सेवा किये बिना ही सभी सब कुछ जानने लगेंगे। युगान्त के उपस्थित हो जाने से कोई ऐसा पुरुष न होगा जो कवि न हो, निःकृष्ट कर्म रत हुए ब्राह्मण क्षत्रियों को उपदेश द्वारा धर्म के नियन्त्रण में नहीं ला सकेंगे, युगान्त काल में राजे प्रायः चौर प्रवृत्ति के हो जायेंगे। हे जनमेजय! कलि के अन्त में कुण्डावृष (पति के जीते जार से उत्पन्न) तथा अनधिकारी एवं सुरापान करने वाले ब्रह्मवादी बनेंगे और वे अश्वमेघ यज्ञ करेंगे। युगान्त के उपस्थित होने पर ब्राह्मण धन-लोलुप होकर जिनसे यज्ञ नहीं कराना चाहिये उनसे अभक्ष्य भक्षण करने वालों से यज्ञ करावेंगे। सभी भी शब्द का उच्चारण कर बोला करेंगे, कोई विद्या नहीं पढ़ेगा, उस समय नारियाँ एक शंख वाली होंगी तथा वे गवेधुक अर्थात् तृण और धान्यों एवं गुञ्जा आदि के अलंकारों को धारण किया करेंगी। कलि के अन्त में योगों से रहित नक्षत्र होंगे, दिशायें विपरीत हो जायेंगी और सन्ध्या के वर्ण के समान दिशायें जलने लगेंगी। पिता लोगों को पुत्र अपने नियन्त्रण में रखेंगे और वधुयें सासुओं को कार्य में लगाया करेंगी और मनुष्य दूसरो योनि (पशु आदि की) स्त्रियों में रमण करेंगे। शिष्य अपने वाग् बाणों से गुरुओं को कष्ट पहुँचायेंगे, प्रमत्त नर अपने मुख में अशिष्ट शब्दो का प्रयोग करेंगे।।३१-४०।।

मनुष्य गौ-ग्रास आदि निकाले बिना ही भोजन कर लिया करेंगे। स्त्रियाँ अपने सोते हुए पति की वञ्चना कर अन्य पुरुषों के साथ गमन करेंगी और पुरुष अपनी भार्या को सात्ती छोड़कर दूसरे की स्त्री से रमण करेंगे। कलि

के युग में कोई व्याधि तथा रोग से रहित नहीं रहेगा, सभी एक दूसरे की निन्दा करेंगे, उपकार के बदले कोई प्रति उपकार नहीं करेगा।।४१-४३।।



अथ चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

जनमेजय जी बोले-कि इस प्रकार संसार के कलुषित हो जाने पर मनुष्य किसके द्वारा रक्षित रहेंगे, वे कैसे स्थानों पर निवास करेंगे और उनका कैसा आचरण होगा तथा कैसा आहार विहार होगा। वे किन कर्मों को करेंगे तथा वे किस विचार के होंगे और कितने बड़े होंगे एवं कितनी आयु होगी? फिर कैसी दशा प्राप्त होने पर सत्ययुग आवेगा। व्यासजी बोले-इसके आगे चलकर जब धर्म का बिल्कुल ह्रास होगा तब प्रजा गुणों से रहित उत्पन्न होगी और व्यसनों में पड़कर मनुष्यों की आयु का ह्रास होने लगेगा। आयु की हानि से बल की ग्लानि हो जायेगी और वैवर्ण्य होने पर व्याधियाँ उत्पन्न होंगी और व्याधियों से पीड़ा और पीड़ा से वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा। और वैराग्य से आत्म-बोध ज्ञान उत्पन्न होगा और आत्म संबोध से धर्मशीलता उत्पन्न होगी, क्रमशः इस प्रकार की दशा प्राप्त होने पर सत्ययुग आ जायेगा। इस कलियुग में उद्देश्य मात्र के लोग धर्मशील होंगे, वे धर्म को क्रिया द्वारा नहीं करेंगे, कोई धर्माधर्म में मध्यस्थ मात्र रहेंगे, कोइ धर्म को थोड़ा विचारने वाले होंगे, न कि हेतुवाद क्रिया के द्वारा हृदय से धर्म-कौतूहल करने वाले होंगे। निश्चित रूप से प्रत्यक्ष और अनुमान को ही प्रमाण मानेंगे, कोई एक प्रत्यक्ष मानेंगे, पण्डितमानी लोग कुछ नहीं मानेंगे अर्थात् नास्तिक होंगे। दूसरे लोग वेदोक्त बातों को ही अप्रमाणिक सिद्ध करेंगे, उस समय स्त्रियाँ मुखभगा हो जायेंगी। कोई परम नास्तिक बनकर धर्म का ही लोप करने लगेंगे, उस समय मनुष्य मूर्ख होंगे और वे मन्दबुद्धि स्वयं को पण्डित मानने लगेंगे। शास्त्र के ज्ञान से बहिष्कृत मनुष्य तदात्व मात्र में अर्थात् वर्तमान काल में ही श्रद्धा करने वाले होंगे और वे पाखण्डी होगे तथा वाद-विवाद के कुतूहल वाले होंगे।।१-१०।।

जिस समय धर्म इस प्रकार विचलित हो जायेगा, उस समय शेष पुरस्कृत अर्थात् भगवान् विष्णु की कृपा वाले ही दान, सत्य से समन्वित शुभ धर्म का आचरण करेंगे। जिस समय संसार सर्वभक्षी, अजितेन्द्रिय, गुण रहित तथा निर्लज्ज हो जाय तो उस समय कलियुग का लक्षण समझना। जब ब्राह्मणों की अविनाशिनी वृत्ति भिक्षा को दूसरे वर्ण वाले माँगने लगेंगे और लोक में ज्ञान और विद्या का विनाश हो जायेगा, तब कलुषित समय के आ जाने पर निरुपस्कृत (दान के त्यागी) लोग अल्प काल की तपस्या से ही सिद्धि, मोक्ष को प्राप्त कर लिया करेंगे। जब महायुद्ध तथा महानाद एवं महावृष्टि और महाभय उपस्थित होने लगेगा तब घोर कलियुग का लक्षण समझना। युगान्त के उपस्थित होने पर राक्षस विप्रों का रूप धारण कर अनीति करेंगे और राजे पर निन्दा में तत्पर होकर पृथ्वी का उपभोग करेंगे। स्वाध्याय और वषट्कार से रहित आपस में एक-दूसरे को देखकर अभिमान करने वाले ब्राह्मण होंगे और वे राक्षसों की भाँति सर्वभक्षी तथा वृथा आडम्बर करने वाले होंगे। घोर कलियुग के आ जाने पर लोग मूर्ख, स्वार्थ परायण, लोभी, क्षुद्र, छोटा वस्त्र पहनने वाले सनातन धर्म से भ्रष्ट होकर भोजन और कपड़े की प्राप्ति में ही तत्पर रहा करेंगे। वे परायी स्त्रियों तथा पराये रत्नों धनों का अपहरण करेंगे और वे कामी दुरात्मा तथा छल करने वाले होंगे, उनको साहस परम प्रिय होगा। इस प्रकार दुष्टों के प्रभावशाली एवं ऐश्वर्यशाली हो जान पर सभी प्रजा उन्हीं के शील का अनुकरण करने लगेगी, तब बहुत रूप अर्थात् चारों आश्रमों को धारण करने वाले विनाशकारी मुनि प्रकट हो जायेंगे।।११-२०।।

जो प्रधान पुरुष के आश्रय से सत्युग में पहले उत्पन्न हुए थे उन्हीं सब मुनियों की कथा योग से मनुष्य पूजा करेंगे। कलि में मनुष्य खेत की फसलों के तथा वस्त्रों के चोर होंगे, भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों का अपहरण किया करेंगे तथा उपलों (गोहरों) को हरण करेंगे। चोरों को भी चुराने वाले चोर उत्पन्न होंगे तथा हरण करने वालों को हनन करने वाले होंगे, इस प्रकार जब चोरा-चोर आपस में लड़कर नष्ट हो जायेंगे, तब कल्याण होगा। इस तरह संसार

के सार से रहित एवं निष्क्रिय तथा दुःखी हो जाने पर सभी एक ही वर्ण हो जायेंगे और वे मनुष्य कर के भार से पीड़ित होकर बन का आश्रय लेने लगेंगे। युगान्त के आने पर पुत्र पिता को आज्ञा दिया करेंगे और वधुयें सास को आज्ञा देंगी। शिष्य गुरुओं को वाग्बाणों से वेधेंगे, यज्ञ कर्म के बन्द हो जाने पर राक्षस, हिंसक पशु, विषैले कीड़े तथा सर्प मनुष्यों को कष्ट देने लगेंगे, हे नरश्रेष्ठ! युग क्षय में कल्याण, सुभिक्ष, आरोग्य तथा अपने बन्धुओं पर प्रेम थोड़ी मात्रा में होगा। युग के प्रभाव रूपी भार से लदे हुए मनुष्य स्वयं पालक तथा स्वयं चोर हो जायेंगे, वे अलग-अलग समूह बनाकर देश-देश घूमा करेंगे। काल क्षय होने पर सभी मनुष्य बान्धवों सहित धन से रहित हो अपने-अपने देशों से भ्रष्ट हो जायँगे। उस समय भूख और भय से पीड़ित मनुष्य अपने बच्चों को कन्धों पर चढ़ाकर कौशिकी जैसी भयंकर धार वाली नदी को पार करने लगेंगे।।२१-३०।।

क्षुधा से पीड़ित मनुष्य अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, काशमीर, मेकल तथा ऋषियों की पर्वत गुफाओं का आश्रय लेने लगेंगे। हिमालय की सम्पूर्ण तराई तथा क्षार समुद्र के तट पर और वनों में मनुष्य म्लेक्षों के साथ निवास करने लगेंगे। उस समय वसुन्धरा न तो शून्य ही रहेगी न अशून्य ही रहेगी, शस्त्रधारी रक्षक अरक्षक हो जायँगे। पशु, मत्स्य, चिड़िया, हिंसक जन्तु, सर्प तथा किटाणुओं के आहार से मनुष्य जीवन बितायेंगे और कुछ लोग मधु, शाक, फल एवं मूलों से जीवन बितायेंगे। अधिकतर मनुष्य अपने हाथ से बनायें कपड़े, पत्ते, वल्कल वस्त्रों तथा मृग चर्मों को मुनियों के समान धारण किया करेंगे। पर्वतादि की नीची और गीली भूमियों में बीजों (धान्यों) के आकृति को उत्पन्न करने की इच्छा करते हुए काष्ठ के खूटों द्वारा पृवी जोतने के लिये बकरियों, भेड़ों, गदहों तथा ऊँटों का यत्नपूर्वक पालन करेंगे। जल के लिये तटों का आश्रय लेकर मनुष्य नदियों के श्रोतों को बाँध-बाँधकर रोकेंगे और वे आपस में पके हुए अन्नों से व्यवहार करेंगे, जैसे आज एक सेर भात ले लो, कल सवा सेर भात दे देना आदि। मनुष्य मूलधन के साथ सूद के लिये कलह करेंगे, बहुत सन्तानें उत्पन्न होंगी, वे प्रजाहीन तथा कुल के लक्षण से रहित

होंगी। काल की प्रेरणा से उस समय ऐसे ही मनुष्य होंगे, हीन मनुष्यों से हीन प्रजायें उत्पन्न होंगी और वे हीन धर्म का आचरण भी करेंगी। उस समय मनुष्यों की परम आयु तीस साल की होगी, मनुष्य दुर्बल तथा विषय की ग्लानि से खिन्न तथा रजोगुण से ओत-प्रोत होंगे।।३१-४०।।

रोगों से उनकी इन्द्रियों का संक्षय हो जायेगा और आयु के क्षय से उन्हें विषाद होने लगेगा। तब वे साधुओं की सेवा सुश्रूषा तथा दर्शन में रत होंगे अपने अनिष्टकारी व्यवहार से संक्षय को प्राप्त होने से वे सत्य का पालन करने लगेंगे। वे कामनाओं को न पाने से उसे लाभ करने की इच्छा से धर्मशील हो जायेंगे और अपने पक्ष में अधर्म की कमी कर देंगे। इस प्रकार साधु सेवा, दान, सत्य तथा प्राणों के अभिरक्षण से कल्याणकारी धर्म चारों पादों से प्रवृत्त हो जायेगा। धर्म से गुणों में परिवर्तन के लाभ से वे मनुष्य अनुमान द्वारा कौन स्वादिष्ट तथा कौन कटु है जानकार धर्म ही करना चाहिए, ऐसा कहने लगेंगे। जिस प्रकार क्रम से धर्म की हानि हुई थी उसी प्रकार क्रमशः धर्म वृद्धि को प्राप्त हो जायेगा, अच्छी तरह धर्म के ग्रहण कर लेने पर सत्ययुग आ जायेगा। सत्ययुग में साधु आचरण होता है और कलियुग में अच्छे आचरणों की हानि हो जाती है, वह काल तो एक ही है पर कलियुग आने पर वह हीन वर्ण वाले चन्द्रमा की भांति कलुषित हो जाता है। जैसे तम से चन्द्रमा ढक जाता है, वैसे ही कलियुग में अधर्म से काल ढक जाता है और जैसे पूर्ण चन्द्रमा तम से रहित हो जाता है वैसे ही कृतयुग के आने पर काल भी कलुष से रहित हो जाता है। तत्व ज्ञान ही परब्रह्म है, इसी को ऋषियों ने वेदार्थ समझा है, अनिर्णित तथा अविज्ञात विषय दायाद्य ही धारण करते हैं। इष्टवाद का नाम तप है, तप को स्थावर किया है, गुणों से अर्थात् देहादि से कर्म की सिद्धि होती है और सत्य कर्म से गुण (देहादि) होते हैं अतः कर्म से मुक्त होना असम्भव है, इसलिए सर्वव्यापक ब्रह्म का ही आश्रय लेवे।।४१-५०।।

आशीः (एक ही कर्म से फल की प्राप्ति) युग-युग में देश काल के अनुसार ऋषियों ने कहा है। यहाँ मर्त्यलोक में धर्म, अर्थ, काम और देवताओं की प्रतिक्रिया (अवहेलना) अथवा आशिष (धर्मानुकूल सेवन) और पुण्य कर्म

जैसे किया जाता है उसी के अनुसार हर एक युगों में मनुष्य की आयु हुआ करती है। ब्रह्मा के स्वभाव से जैसे युगों का परिवर्तन चिरकाल से होता चला आया है, उसी प्रकार से जीवमय लोक क्षय और उदय होने से एक प्रकार का नहीं रहता, उसमें परिवर्तन होता ही रहता है।।५१-५३।।



अथ पंचमोऽध्यायः।।५।।

सूतजी बोले–इस प्रकार राजा जनमेजय को आश्वासन देते हुए ऋषि के वाक्यों को सभी लोगों ने सुना था। अमृत के समान प्रवाह वाला और चन्द्रमा के समान प्रभा वाला महर्षि का वाक्य-सोम रस सभासदों के कानों को तृप्त कर दिया। धर्म, काम तथा अर्थ से युक्त करुण एवं वीरों को प्रसन्न करने वाला वह सम्पूर्ण सुन्दर आख्यान सभा के सभी मनुष्यों ने सुना। हाथ में लेकर दिखाये हुए के समान उस इतिहास को सुनकर कुछ लोग आँखों से आँसू गिराने लगे तथा और लोग ध्यानस्थ हो गये। इसके बाद भगवान् महर्षि व्यास सदस्यों से आज्ञा लेकर तथा यज्ञ मण्डप की परिक्रमा कर पुनः आकर आप लोगों को देखूँगा, ऐसा कह कर चले गये। लोक स्थित वक्ताओं में श्रेष्ठ ऋषिश्रेष्ठ को जाते देख जो विशिष्ठ तपोधनी थे वे सब भी उनके पीछे चले गये। ब्रह्मर्षियों के साथ भगवान् व्यास के चले जाने पर ऋत्विग् तथा राजे भी जैसे आये थे, वैसे अपने-अपने स्थानों को चले गये। सर्पों का भयंकर वैर से यातना करने वाले राजा जनमेजय भी विष त्याग किये सर्प के समान शेष को छोड़कर चले गये। तक्षक की रक्षा कर होमाग्नि के समान प्रदीप्त शिर वाले महामुनि आस्तीक भी अपने आश्रम को चले गये। राजा अपने स्वजनों के साथ हस्तिनापुर चला गया और प्रसन्नता पूर्वक प्रसन्न प्रजा का शासन करने लगा।।१-१०।।

विधिवत् यज्ञ की अधिक दक्षिणा देने वाला राजा जनमेजय कुछ काल के बाद अश्वमेघ यज्ञ की दीक्षा से दीक्षित हुआ। जब उस यज्ञ में घोड़ा मारा गया तब विधि दृष्ट कर्म के अनुसार काशिराज की पुत्री जनमेजय की पटरानी

वपुष्टमा उसके समीप बैठ गई। तो उस सर्वाङ्ग सुन्दरी को इन्द्र चाहने लगा, इससे उस मरे अश्व में इन्द्र प्रवेश कर वपुष्टमा के साथ मिल गया। तब ऐसे विकार के उत्पन्न हो जाने पर उसे तत्त्व से जानकर राजा ने अध्वर्यु से कहा यह अश्व जिन्दा है, इसलिए तुम्हारा नाश हो। तब ज्ञान से इसे विचार कर इन्द्र का किया हुआ जानकर अध्वर्यु ने राजा से सब कह दिया, तब राजा जनमेजय ने इन्द्र को शाप दिया। जनमेजय ने कहा–यदि प्रजाओं का रक्षण करते हुए मेरे पास यज्ञ अथवा तप का फल है तो उन सभी फलों से जो मैं कहता हूँ उसे सुनो, हे शौनक! आज से अब क्षत्रिय वाजिमेध यज्ञ के द्वारा अजितेन्द्रिय तथा चंचल मन वाले देवेन्द्र की पूजा न करेंगे। वह राजा जनमेजय क्रुद्ध हो ऋत्विजों से कहा कि जो यज्ञ नष्ट कर दिया गया, इसमें आप लोगों की दुर्बलता है; इसलिए आप लोग मेरे देश में न रहें; अपने बान्धवों के साथ कहीं अन्यत्र चले जायँ, ऐसा कहने पर ब्राह्मण भी क्रुद्ध होकर राजा को त्याग दिये। परम धर्मज्ञ राजा जनमेजय तामसी बनकर ईर्ष्या से रनिवास में जाकर स्त्रियों को आज्ञा दिया कि इस असती वपुष्टमा को मेरे घर से निकाल दो, जिसने मेरे शिर पर धूल भरे चरणों को रखा है।।११-२०।।

इसने मेरे माहात्म्य को खण्डित कर दिया तथा यश और मान को दूषित कर दिया, मैं इसे मसली गई माला की भाँति नहीं देखना चाहता हूँ। दूसरे पुरुष के द्वारा भोगी हुई प्रिय भार्या का जो अनुसरण करता है, वह स्वादिष्ट पदार्थों को नहीं खा सकता न एकान्त में सुख से सो सकता है। जैसे कुत्ते से चाटी गई हवि हवन के योग्य नहीं होती है, वैसे ही धर्मज्ञ पुरुष दूसरे के द्वारा भोगी गई स्त्री का उपभोग नहीं करते, इस प्रकार उच्च स्वर से भाषण करते हुए क्रुद्ध राजा जनमेजय से गन्धर्वराज विश्वावसु ने कहा। विश्वावसु बोले–तीन सौ यज्ञ करने वाले आपको इन्द्र सह नहीं सकता है, इसलिए उसने अप्सरा को तुम्हारी पत्नी वपुष्टमा बनाया है। जो रम्भा नाम की अप्सरा है वहीं काशिराज की पुत्री वपुष्टमा देवी है। हे राजन्! वही यह स्त्रियों में श्रेष्ठ रत्नभूता वपुष्टमा है, इसका आप अनुभव करें। यज्ञ में मौका पाकर इन्द्र ने तुम्हारे लिये यह विघ्न उपस्थित कर दिया है, हे कुरुश्रेष्ठ! आप तीन सौ यज्ञों को करने

वाले समृद्धि में इन्द्र के बराबर हैं। हे विभो! आपके यज्ञ फलों से इन्द्र पराजित होने की आशंका से भयभीत होता रहता है, इसीसे उसने यज्ञ को विघ्नित कर दिया है। विघ्न की इच्छा से इन्द्र ने यहाँ माया का प्रयोग किया है, यज्ञ में छिद्र या मरे हुए घोड़े को देखकर उसमें प्रविष्ट हो रम्भा में रति किया है, जिसे आप वपुष्टमा मानते हैं। इस बात को बिना जाने आपने तीन सौ यज्ञ कराने वाले गुरुओं को शाप दे दिया।।२१-३०।।

इन्द्र ने माया के बल से अपने समान तुमको तथा विप्रों को नष्ट कर दिया, तीन सौ यज्ञ करने वाले आपको दुर्धर्ष समझ आपसे और आपके ब्राह्मणों से भी इन्द्र डरता है सो इन्द्र एक ही उपाय से आप और ब्राह्मणों दोनों को नीचा दिखा दिया। नहीं तो विजयेच्छु महातेजस्वी वह इन्द्र दूसरे महान् व्यक्तियों के द्वारा न किया गया व्यभिचार रूप कार्य अपने पौत्र की स्त्री के साथ कैसे करता? विश्वावसु ने कहा–जैसी परम चतुर बुद्धि, परम धर्म, परम साहस तथा परम ऐश्वर्य हरिवाहन इन्द्र में कहा गया है, वैसे ही तीन सौ यज्ञ करने वाले दुर्धर्ष आप में भी है। इन्द्र और अपने गुरुओं एवं अपनी आत्मा को तथा वपुष्टमा को आप दोष से युक्त न समझें क्योंकि समय का उल्लंघन सर्वथा असम्भव है। देवेन्द्र अपनी माया के ऐश्वर्य से अश्व में प्रविष्ट हो आपको क्रोधित कर दिया है, सुख की इच्छा वाले को चाहिये कि वह इन्द्र के अनुकूल बर्ताव करे। जलधार के प्रतिकूल तैरना कठिन है वैसे ही इन्द्र से प्रतिकूल आचरण कर सुख से रहना कठिन है अब आप ज्वर रहित हो पाप रहिता इस स्त्रीरत्न का उपभोग करें। पाप रहित स्त्रियों के त्याग देने पर स्त्रियाँ भी पुरुषों को त्यागने लगेंगी, हे राजन्! स्त्रियाँ दूषित नहीं होती हैं, ये विशेष रूप से दिव्य हुआ करती हैं। भानु की प्रभा, अग्नि की लपट तथा हवन कुण्ड में दी हुई आहुति एवं स्त्रियाँ ये दूसरों के द्वारा दूषित कर देने के बाद भी दूषित नहीं होती हैं। इसलिए बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा स्त्रियों का ग्रहण, लालन-पालन एवं समादर होना ही चाहिये, शील सम्पन्न स्त्रियों को तो नमस्कार करना चाहिये और लक्ष्मी की तरह उनकी पूजा करनी चाहिये।।३१-४०।।



अथ षष्ठोऽध्यायः ।। ६ ।।

सूत पुत्र बोले इस प्रकार विश्वावसु के समझाने पर मिथ्या दोष से शङ्कित चित्तवाले राजा वपुष्टमा के ऊपर प्रसन्न होकर मानधर्म से युक्त परम शान्ति को प्राप्त हुए। खेद को मन से निकाल कर धर्म-बुद्धि राजा जनमेजय अपने यश की अभिलाषा से उस वपुष्टमा के साथ प्रसन्नता पूर्वक रमण करते हुए देश का शासन करने लगे। राजा जनमेजय ब्राह्मणां के पूजन से विराम नहीं लिया न यज्ञ, दान तथा शीलता से मुँह मोड़ा न देश की रक्षा करने में पीछे हटा और न वपुष्टमा की निन्दा करता था। पहले चिन्तना कर ऋषि ने जो कहा था कि विधि के विधान को अन्यथा करना मानव शक्ति के बाहर है उसी बात को सोचकर आत्मज्ञ राजा क्रोध से रहित हो गया। महर्षि व्यास के इस महा काव्य को पढ़ने से मनुष्यों में वह पुरुष पुज्यमान हो जाता है और वह दीर्घायु प्राप्त कर सम्पूर्ण ज्ञानों के फल रूप दुर्लभ केशव को पा जाता है। इन्द्र के कल्मष को छुड़ाने वाले इस काव्य को पढ़ने से मनुष्य कल्मषों से छूट जाता है और वह विविध प्रकार के कामनाओं का भोग करता है तथा चिरकाल तक आनन्द करता है। जैसे वृक्ष पुष्पजन्य फलों को उत्पन्न करते हैं और पुनः फल से वृक्ष उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार महर्षि व्यास से उत्पन्न यह ग्रन्थ व्यासों को उत्पन्न करता है। इसके पढ़ने व सुनने से पुत्र रहित पुरुष तेजस्वी पुत्रों को प्राप्त करता है पदच्युत पुरुष पुनः अपने पद को पाता है; वह चिर काल तक व्याधि तथा बन्धन नहीं प्राप्त करता और वह गुणों से युक्त हो पुण्यमयी क्रियाओं का लाभ करता है। मुनि की इस शुभ वाणी को सुन कर कन्या सज्जनों में गणना किये जाने वाले पति को प्राप्त करती है और वह गुणों से युक्त पुत्रों को उत्पन्न करती है, यह आख्यान स्वजनों का हित तथा द्वेषियों का मर्दन करने वाला है। इसके सुनने से राजा लोग वसुधा को जीत लेते हैं तथा अतुल धन लाभ करते हैं और शत्रुओं के ऊपर विजय पाते हैं, वैश्य भी बहुत धन लाभ करते हैं तथा शूद्र सुगति को पाते हैं।।१-१०।।

साधु, पुरुष, महात्माओं के चरित रूप इस पुराण का अध्ययन कर

नैष्ठिकी बुद्धि को पाते हैं और वे दुःखों को हटा कर विमुक्त संग तथा वीतराग हो वसुन्धरा पर विचरण करते हैं। इस आख्यान को मैंने आप लोगों से कहा और आप लोग ब्राह्मणों के समूह में प्रतिपादन करते हुए स्थिरता और धीरता से पुनः-पुनः इसका स्मरण करते हुए संसार में विचरें। अद्भुत वीर्य और कर्म वाले महात्माओं के ऋषि प्रणीत इस चरित्र को संक्षेप तथा विस्तार से कहा अब मैं क्या कहूँ? क्या सुनना चाहते हैं।।११-१३।।



अथ सप्तमोऽध्यायः।।७।।

जनमेजय जी बोले–हे योग वेत्ताओं के स्वामिन्! क्षीर सागर में सोते हुए पद्मनाभ के प्रभाव को तथा जिस प्रकार पुष्कर में ऋषियों के साथ देवता पहले उत्पन्न हुए इन सम्पूर्ण बातों को कहिये। उन भगवान् की कीर्ति को सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती है, कितने काल तक पुरुषोत्तम सोते हैं और काल का स्वयं उत्पन्न करने वाले होते हुए भी नियमित काल तक क्यों सोते हैं? हे सुराधिप! और कितने समय बाद उठते हैं तथा उठकर सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि किस प्रकार करते हैं। हे महामुने! पहले कौन-कौन प्रजापति हुए और वे इस विचित्र सनातन लोक का किस प्रकार निर्माण किये? स्थावर और जङ्गम लोक के एकार्णव अर्थात् जल मग्न हो जाने पर तथा देवता, असुर गणों, सर्पों एवं राक्षसों के नष्ट हो जाने पर। वायु, अग्नि तथा आकाश एवं पृथ्वी के नष्ट हो जाने पर और महाभूतों के विपर्यय हो जाने पर जब संसार गह्वरी भूत हो जाता है तो महाभूतपति महातेजस्वी महामति सुरगुरुश्रेष्ठ कैसे रहते हैं और हे मुने! किस विधि से सृष्टि-रचना करते हैं। हे ब्रह्मन्! हे धर्मिष्ठ! इस नारायणात्मक यश को मुझ शरणागत से असंशय रूप से कहिये। हे भगवन्! श्रद्धा से युक्त बैठे हुए हम लोगों से महात्मा हरि के प्रादुर्भाव को पहले कहकर फिर भूत ता भविष्य काल की बातें कहिये।।१-१०।।

वैशम्पायन जी बोले–हे कुरुकुल श्रेष्ठ! नारायण के यश ज्ञान में जो

आप की स्पृहा है सो आपके पवित्र वंश का यह पुरातन कार्य है। आदि पुराणों तथा देवताओं से जैसे सुना जाता है और महात्माओं ब्राह्मणों से जैसा मैंने सुना है वैसा सुनो। मैंने तपस्या के पुण्य से बृहस्पति के समान तेजस्वी पराशर-पुत्र व्यास जी का दर्शन किया इसके बाद द्वैपायन व्यास जी ने जो कहा उसे मैंने जैसे सुना है बुद्धि के अनुसार कहता हूँ हे भारत! मैं केवल ऋषि मात्र होने से ईश्वर को अच्छी तरह जानने में असमर्थ हूँ। जब विश्वात्मा ब्रह्मा भी तत्त्वतः उस नारायणात्मक ज्ञान को नहीं जानते हैं तो कौन दूसरा जानने वाला है? विश्व-देवों तथा महर्षियों से जिस रहस्य को मैंने सुना है उसी तत्त्ववादी देवताओं के यथार्थतः नारायणात्मक ज्ञान को तुमने मुझसे पूछा है। अध्यात्मवादियों तथा कर्मयोगियों को भी इस कारण नारायणात्मकज्ञान पर विचार करना चाहिये। वही नारायणात्मक स्वरूप कर्म करने वालों के कार्य फल का कारण अर्थात् प्रवर्त्तक है उसी को अधिदैव अर्थात् सभी को सुख देने वाला भाग्य कहते हैं। जो भूत, अधिभूत है और जो महर्षियों के ज्ञान से परे हैं; जो सत्य है देव दृष्ट है जिसको कि वेद-वेत्ता जानते हैं। जो कर्ता, कारक, बुद्धि, मन तथा क्षेत्रज्ञ है वह सबके ऊपर शासन करने वाला प्रधान पुरुष एक ही ऐसा कहा जाता है। वह काल रूप काल को भी शयन कराने वाला अर्थात् काल का भी काल सबका द्रष्टा, स्वाधीन एवं प्राण रूप से पाँच प्रकार का है साथ ही ध्रुव है तथा अक्षय भी है।।११-२०।।

हे अनघ! जो उसमें तत्पर हैं वे उस एक को ही विविध प्रकारों से कहते हैं वही भगवान् सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न तथा अपने में विलीन भी करता है। जो हम लोगों से कर्म कराता है वही हम लोगों को विधि-निषेध मय इस गहन संसार में गिरा कर व्याकुल कर रहा है, उसी ईश का यज्ञों द्वारा हम लोग यजन-पूजन करते हैं और सबसे निर्वृत्त होकर उसे पाने की इच्छा करते हैं। जो वक्ता है तथा जो वक्तव्य है उसको हम आप लोगों से कहते हैं सुने जो कि कल्याणप्रद है तथा जिसको आप लोग भी अन्यान्य रूपों से कहते हैं। जो गम्भीर अर्थवाली कथायें और जो गम्भीर श्रुतियाँ हैं जो विश्व है तथा जो विश्व के रक्षक देवता है वे सभी नारायणात्मक हैं। जो सत्य, झूठ, आदि, अविनाशी

है और जो मिश्रित है जो कुछ भी चराचर एवं अव्यव त्रिलोक में है वह सभी पदार्थ पुरुष श्रेष्ठ वरिष्ठ प्रभु ही हैं।।२१-२५।।



अथ अष्टमोऽध्यायः।।८।।

वैशम्पायनजी बोले–हे जनमेजय! सत्य युग चार हजार वर्ष का कहा गया है और उसकी संध्या आठ सौ वर्षों की होती है। उसमें धर्म के चारों चरण (तप, शौच, दया तथा सत्य) होते हैं, धर्म से अधर्ग के पैर बँधे रहते हैं ऐसे समय में सभी मनुष्य अपने धर्म में निरत रह कर यजन-पूजन आदि कर्म करते हैं। उस समय ब्राह्मण धर्म में, राजा राजवृत्ति में, वैश्य कृषि तथा व्यापार में और शूद्र सेवा में रत रहते हैं। सज्जन पुरुष जिसका आचरण किये तथा करते हैं और जिसे कहते हैं वह तप, सत्य तथा धर्म सत्य युग में बराबर बढ़ता चला जाता है। हे भरत वंशिन्! कृत युग में धर्म बुद्धि तथा नीच योनि में उत्पन्न सभी प्राणियों का इसी प्रकार धर्माचरण होता है। तीन हजार वर्षों का त्रेता युग कहा जाता है और उसकी सन्ध्या छे सौ वर्षों की कही गई है। उसमें अधर्म दो चरण से तथा धर्म तीन चरणों से होता है, सत्य तथा सत्त्व सभी कृत युग में होते हैं। और वे त्रेता में विकृति को प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि धर्म-फल के लोभ से युक्त सभी वर्ण हो जाते हैं तब चारों वर्णों के धर्म वैकृत्य से सभी वर्ण दुर्बलता का आश्रय लेने लगते हैं। यह देव निर्मित त्रेता युग की विधि सुनाया अब द्वापर की जो चेष्टा है उसे भी सुनो। हे कुरुश्रेष्ठ! द्वापर दो हजार वर्षों का है और उसकी सन्धया चार सौ वर्ष की होती है।।१-१०।।

उसमें ब्राह्मण अर्थोपार्जन में तत्पर होते हैं और ज्ञानी लोग रजोगुण से आच्छादित हो जाते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! अधिकतर शठ, क्षुद्र तथा क्रिया रहित प्राणी उत्पन्न होते हैं। द्वापर में धर्म दो चरणों से स्थित रहता है और अधर्म दो चरणों से उठ खड़ा होता है सत्य युग में जो धर्म के सेतु बँधे थे वे धीरे-धीरे टूटने लगते हैं। जब द्वापर-युग समाप्त होने लगता है और कलि का आगमन

समीप आ जाता है तो ईश्वर में विश्वास उठने लगता है तथा आस्तिकता ढीली पड़ने लगती है एवं लोग व्रत-उपवासादि छोड़ने लगते हैं। इस तरह एक हजार वर्ष का कलियुग कहा गया है तथा दो सौ वर्षों की उसकी सन्ध्या कही गयी है! उसमें अधर्म चारों चरणों से होता है और धर्म के पैर बँधे रहते हैं, काम की निष्ठा वाले तथा मोहान्धकार से आछन्न मनुष्य उत्पन्न होते हैं। कोई उपवास करने वाला नहीं होता न कोई साधु न सत्य वक्ता होता है, अस्तिक, ब्रह्मवक्ता उस समय कोई नहीं होता है। कलि में मनुष्य अहंकारी तथा बान्धवों से बहुत कम स्नेह करने वाले होते हैं, ब्राह्मण शूद्रों की भाँति तथा शूद्र ब्राह्मणों की भाँति आचरण करते हैं। कलियुग में आश्रमों और वर्णों को दूषित करने वाली वर्ण संकर सन्तानें उत्पन्न होने लगती हैं और जिसके साथ गमन नहीं करना चाहिये उसके साथ लोग रमण करने लगते हैं। इस प्रकार बारह हजार वर्षों का एक महायुग होता है और एकहत्तर महायुगों का एक मन्वन्तर होता है। हे जनमेजय! उत्पत्ति, स्थिति एवं क्षय में तो सन्देह ही नहीं है, कवियों ने दिव्य बारह हजार वर्षों का एक महा युग कहा है जिसमें चारों युग बीतते हैं। एक हजार महायुगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है।।११-२०।।

जब ब्रह्मा का दिन समाप्त होने लगता है तो सभी देहधारियों की शरीर में सुख की आसक्ति हो जाती है तब शरीर निर्वृत्ति (शरीर सुखाशक्ति) को देखकर संहार बुद्धि वाले रुद्र। हे महीपते! सभी देवताओं तथा ब्रह्मलोक निवासियों और दैत्यों, मनुष्यों, यक्षों, गन्धर्वों, राक्षसों, देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों, राजर्षियों, किन्नरों, अप्सराओं, सर्पों, वनों, नदियों पशुओं तथा हे भारत! तिर्यग्योनि में गये जीवों, मृगों तथा पक्षियों का संहार करते हैं। इसके पश्चात् महाभूतपति महादेव जी भूतों द्वारा उत्पन्न तथा पंचभूतों का संहार करते हैं, वे रुद्र जगत् का संहार करने के लिये बड़ी विभत्स लीला करते हैं। वे सूर्य बन कर नेत्रों का और वायु बन कर प्राणों का हरण करते हैं तथा अग्नि होकर संपूर्ण लोकों को जला देते हैं पुनः मेघ बन कर सर्वत्र वर्षा करने लगते हैं।।२१-२६।।



अथ नवमोऽध्यायः।।९।।

वैशम्पायन जी बोले–योगी नारायण अग्नियों की सात मूर्तियाँ धारण कर अपनी प्रदीप्त (तेजस्वी) किरणों द्वारा सागरों को सोख लेते हैं। समुद्रों को पीकर सम्पूर्ण नदियों तथा कूपों के जल को भी पी जाते हैं फिर अपनी किरणों से पर्वतों के जलों को पीकर पृथ्वी के हजारों टुकड़े कर रसातल में ले जाकर वहाँ भी रसातल के सम्पूर्ण जल तथा उत्तम रस को पी जाते हैं। जल में स्थित जो क्लेद (मन को आनन्द देने वाला पदार्थ) है जो प्राणियों में सृष्टि के लिये कार्य रूप से निश्चित होता है, ऐसे सभी पदार्थों को कमल नेत्र पुरुषोत्तम ग्रहण कर लेते हैं। फिर बलवान् वायु बनकर जगत् को कँपा कर वायु के द्वारा देवताओं के प्राणों को हरि प्रकट करते हैं, इसके बाद सम्पूर्ण देवताओं तथा प्राणियों के प्राणों को हरि प्रकट करते हैं, इसके बाद सम्पूर्ण देवताओं तथा प्राणियों के जो इन्द्रिय गण और इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले पूय, घ्राण आदि एवं शरीर, पृथ्वी के आश्रित रहने वाले गुण। जिह्वा, रस, क्लेद, जल के आश्रित रहने वाले गुण, रूप, चक्षु-विपाक ज्योति के आश्रित रहने वाले गुण। स्पर्श, प्राण, चेष्टा, वायु के आश्रित रहने वाले गुण ये सभी परमेष्ठी (सूत्रात्मा) वरण करने योग्य हृषीकेश का सम्यक् प्रकार से आश्रय लेते हैं। फिर भगवान् के द्वारा किरणों से एकत्रित किये देवतादि के इन्द्रिय गण तथा वायु दूारा खींचे जाने वाले रूपादि ये सब आपस में एकीभाव को प्राप्त होने लगते हैं। तब उनके संघर्ष से सैकड़ों ज्वालाओं वाला पावक उत्पन्न हो जाता है वह संवतर्क नाम का उग्र अनल सम्पूर्ण लोकों को जलाता हुआ।।१-१०।।

पर्वतों सहित वृक्षों, गुल्मों, लताओं, वल्ली तथा तृणों को एवं दिव्य विमानों और विविध प्रकार के पुरों को, पुण्य आश्रमों को, दिव्य भवनों को जो कि आश्रय लेने योग्य हैं उन सभी को भस्म कर देता है। फिर भस्मीभूत सभी लोकों को लोकगुरु हरि जल-युक्त कर्म से शान्त करने लगते हैं। महा तेजस्वी हजार नेत्रों वाले श्रीकृष्ण महा मेघ बनकर दिव्य जल रूप हवि से पृथ्वी को तृप्त करने लगते हैं। इसके बाद दूध के समान परम स्वादिष्ट एवं

कल्याण तथा पुण्यमय जल से पृथ्वी निर्वाण को प्राप्त हो जाती है। फिर जल को चारों ओर से धारण करने वाले तथा जल से ढँके हुए वे पर्वत एकार्णव जलमय होकर सम्पूर्ण सत्त्वों से रहित हो जाते हैं। महाभूत भी अमित तेजस्वी भगवान् में प्रविष्ट होकर विलीन हो जाते हैं, इस प्रकार सूर्य, पवन तथा आकाश के शून्य (नष्ट) हो जाने पर यह संसार जन रहित हो जाता है, तब अति बुद्धिमान् वाणी और मन से परे सनातन पुरुष सबका शोषण कर तथा जल पीकर प्राचीन रूप को धारण कर वे योगी योग को प्राप्त होकर एकार्णव के जल में रहते हैं, जिस एकार्णव के जल में हजारों लाखों प्राणी विलीन हुए रहते हैं, इन अव्यक्त पुरुष के कोई व्यक्त रूप से जानने में समर्थ नहीं है। जनमेजय जी बोले–कि यह एकार्णव विधि क्या है, जिसका आपने वर्णन किया है और यह पुरुष कौन है? किस नाम का है तथा योग क्या है और योगवान् कौन है?।।११-२०।।

वैशम्पायन जी बोले–इस एकार्णव विधि को इतने ही समय तक भगवान् करेंगे यह कोई नहीं जानता। क्योंकि उस ईश्वर को कोई देखने वाला, जानने वाला, अनुमान अथवा मान करने वाला उनके पास नहीं रहता तो बिना किसी के रहे कैसे जाना जा सकता है। आकाश, पृथ्वी, पवन के संघात को प्रकाशित करते हुए प्रजापति, भुवनचर, सुरेश्वर, पितामह, वेदसमूह तथा महामुनि एवं पृथ्वी को शासित (लीन) करने के बाद प्रभु शयन करना चाहते हैं।।२१-२३।।



अथ दशमोऽध्यायः।।१०।।

जल के कार्य के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को ढँककर अर्थात् लोक के एकार्णव हो जाने पर महा यशस्वी प्रभुहरि नारायण महार्णव के समान महान् रज के मध्य सोते हैं, ज्ञानियों ने जिनको ब्रह्म, विरजस्क, महाबाहु तथा अविनाशी समझा है। तपस्या से व्यक्त वे अविनाशी प्रभु अपने आत्म स्वरूप

प्रकाश से तीनों कालों को धारण कर सोते हैं। जिसको योग यज्ञ द्वारा प्राप्त परम पुरुष कहा गया है जो अपने पुरुषार्थ से सबको प्रकाशित करता है वही वह पुरुषोत्तम है। जो यज्ञनिष्ठ अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों की भाँति रागादि से शून्य हैं जो ऋतु समय आने पर दूसरे में संगति करते हैं जो आत्मदेह (चित्) पुरुष से पहले यज्ञ के लिये जैसे जो प्रादुर्भूत हुए थे वैसे उनको मुझसे सुनो। प्रभु ने मुख से परम वेदज्ञ ब्रह्मा को तथा सामवेद के उद्‌गाता को उत्पन्न किया तथा होता और अध्वर्यु को बाहुओं से उत्पन्न किया। ब्राह्मणत्व से अर्थात् ब्रह्म (वेद) का अध्ययन करने से ब्राह्मणच्छंसी, प्रस्तोता तथा उनके मित्र मैत्रावरुण को तथा प्रतिप्रस्थाता को उत्पन्न किया। हे भारत! अपने उदर से प्रतिहर्ता और पोता को तथा अच्छावाक और नेष्टा को मन एवं ऊरु से उत्पन्न किया। और याज्ञय अग्नीध्र एवं सुब्रह्मण्य को हाथों से तथा ग्रावस्तोता और उन्नेता को बाहुओं से उत्पन्न किया। इस प्रकार जगत् पति भगवान् यज्ञ-प्रवक्ता सोलह उत्तम ऋत्विजों की रचना की।।१-१०।।

वे ऋत्विक् रुष्टा भगवान् वेदमय अर्थात् वेद द्वारा गम्य पुरुष हैं तथा वे यज्ञ (योग) से संमित (सम्यक् प्रमित-परोक्षकृत) हैं वेद और अंग सहित उपनिषदों की क्रियायें तन्मय है अर्थात् वेद उसी के प्रतिपादक हैं तथा क्रियायें उसी को प्राप्त कराने वाली हैं। जिस समय वे एकार्णव में सो रहे थे उस समय एक आश्चर्य हुआ था जिस वृत्तान्त का अनुभव मार्कण्डेय मुनि ने किया था ऐसा सुना जाता है। वे महा मुनि उन भगवान् की कुक्षि में ही जीर्ण हो गये थे भगवान् के वरदान के प्रताप से उनकी आयु बहुत हजार वर्षों की है। जप-होम में रत शान्त मुनि घोर तप का आश्रय लेकर तीर्थ के प्रसंङ्ग से भूतल के तीर्थों में पर्यटन कर रहे थे वे महात्माओं के आश्रमों, पुण्य तीर्थों, देवमन्दिरों, अन्यान्य देशों, राष्ट्रों तथा विविध प्रकार के पुरों में भ्रमण कर रहे थे। इसके बाद मार्कण्डेय मुनि धीरे से भगवान् के मुहँ से निकल गये-देवमाया के प्रभाव से वे निकलते हुए अपने को न जान सके। वे मुख से निकलते ही एकार्णव में चले गये और अन्धकार से ढके हुए समुद्र को सब जगह देखने लगे। उनको बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया उन्हें अपने जीने में संशय दिखाई देने लगा फिर

देव के दर्शन से प्रसन्न हो वे बड़े विस्मय को प्राप्त हो गये। एकार्णव के मध्य में स्थित हो मार्कण्डेय जी अतिशङ्कित हो चिन्तन करने लगे कि अहो यह कैसी चिन्ता? क्या यह मोह के स्वप्न का अनुभव हो रहा है? इन मेरे सोचे हुए भावों में से कुछ न कुछ भाव स्पष्ट सत्य हो सकता है क्योंकि इस प्रकार अविद्यादि संक्लेश से शून्य घटना सत्य हो सकती है।।११-२०।।

चन्द्रमा, पवन, तथा सूर्य के नष्ट हो जाने से और पर्वत तथा भूतल के जल मग्न हो जाने से यह कौन लोक है? यह चिन्ता उत्पन्न हो गई। उन्होंने महासागर के बीच जल राशि से भरे मेघ के समान पर्वताकार पुरुषोत्तम को सोते हुए देखा भी। वे महाविष्णु अपने तेज से तप रहे थे और अपने प्रकाश से प्रकाशित हो रहे थे और गम्भीरता से जागते हुए की भाँति तथा श्वास लेते हुए महा सर्प की भाँति ज्ञात हो रहे थे। वे मुनि विस्मय से उन देव के समीप पूछने के लिये जा रहे थे कि आप कौन हैं? इसी बीच पुनः मुनि को अपनी कुक्षि में देव ने प्रवेशित कर लिया। पुनः मार्कण्डेय जी कुक्षि में प्रविष्ट होकर सुनिश्चित हो गये कि यह मैंने स्वप्न देखा है यह जानते हुए फिर उसी प्रकार विचरने लगे। जिस प्रकार पहले वे पृथ्वी पर तीर्थ यात्रा प्रसंग से पर्यटन कर रहे थे पुनः उसी प्रकार भूतल पर पवित्र पुण्य तीर्थों का दर्शन करने लगे। उन मुनि ने भगवान् की कुक्षि में स्थित सैकड़ों यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों को देखा जो श्रेष्ठ दक्षिणा वाले यज्ञों से भगवान् का (पूजन) कर रहे थे। ब्राह्मण आदि सभी वर्ण अच्छे आचरण का व्यवहार कर रहे थे और चारों आश्रम शास्त्र के उपदेशानुसार सम्यक् प्रकार से चल रहे थे। महामुनि मार्कण्डेय जी एक लाख वर्ष पर्यन्त कुक्षि में सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरने पर भी कुक्षि का अन्त न पा सके। इसके बाद एक बार फिर मार्कण्डेयजी मुँह से निकले तो वट वृक्ष की शाखा पर सोते हुए बालक को देखा।।२१-३०।।

फिर वे नीहार से ढक जाने के कारण भीषण अन्धकाराछन्न एवं सम्पूर्ण प्राणियों से रहित एकार्णव जलजगत् में फिर विस्मित हो कौतूहल से युक्त हो गये। वे सोचने लगे कि बालक समीप जाऊँ पर सूर्य के समान तेजस्वी बालक के समीप न जा सके। वे सलिल के समीप एकान्त में स्थित हो गये

और देवमाया से शंकित हो चिन्तना करने लगे कि पहले हम इसे देखे हैं या नहीं। मार्कण्डेय मुनि प्रवाह रहित समुद्र के अगाध जल में तैरते हुए थक जाने से संत्रस्त हो विकल हो गये और शान्ति को न प्राप्त कर सके। तब भगवान् हंस पुरुषोत्तम जो कि योग के द्वारा बालक बने हुए थे, मेघ के तुल्य गम्भीर स्वर से बोले। श्रीभगवान् बोले हे मार्कण्डेय! हे धीर! हे मुने! तुम किसी भय से न डरो, यहाँ मेरे पास आओ तुम बालक होने से श्रमपीडित हो गये हो। मार्कण्डेय जी बोले कि कौन मेरे तप का अनादर तथा बहुत हजार वर्ष आयु की निन्दा करते हुए मुझको नाम लेकर बुला रहा है। ऐसा आकार तो देवताओं में भी नहीं पाया जाता, विश्वेश ब्रह्मा भी मुझको दीर्घायु कह कर बोलते हैं। आज कौन तपस्वी अपना जीवन त्यागन चाहता है जो घोरशिर नामक मुझको मार्कण्डेय कह कर मृत्यु को देखने की इच्छा कर रहा है। वैशम्पायन जी बोले कि जब क्रोध से महामुनि मार्कण्डेय इस प्रकार कह रहे थे तब फिर नारायण में तत्पर उन मार्कण्डेय मुनि से भगवान् बोले।।३१-४०।।

श्रीभगवान् बोले हे वत्स! मैं तुम्हारा जनक, पिता, हृषीकेश, गुरु, आयुप्रदाता तथा पुराण पुरुष हूँ तुम क्यों नहीं मेरे पास आते हो? पहले तुम्हारे पिता अङ्गिरा गोत्रिय मुनि पुत्र की कामना से कठिन तपस्या का आश्रय लेकर मेरी आरधना किये थे। तब मैंने अग्नि के सामन तेजस्वी परम को इष्ट मानने वाले अमित आयु से युक्त घोरशिर नाम वाले तुम महर्षि को पुत्र रूप से उन्हें दिया था। जो हमारी आत्मा के समान नहीं है वह एकार्णव में मुझ योगधर्म बोले की क्रीडा करता हुआ नहीं देख सकता है। वैशम्पायनजी बोले कि तब तो महातपस्वी मार्कण्डेय हाथ को जोड़ शिर पर रखलिये और प्रसन्न वदन हो गये विस्मय से उनके नेत्र प्रफुल्लित हो उठे। अपना नाम और गोत्र सुनकर लोकपूजित दीर्घायु मार्कण्डेय जी कर और शिर से उन प्रभु को प्रणाम करने लगे। मार्कण्डेय जी बोले हे अनघ! मैं आपकी इस माया को तत्त्व से जानने की इच्छा करता हूँ जो आप एकार्णव के मध्य में स्थित हो बालक रूप से सो रहे हैं। तो वहाँ आपका क्या नाम है? और हे अनघ! लोक में आप किस नाम से भगवान् जाने जाते हैं आपको मैं तत्त्व द्वारा महाभूत समझता हूँ क्योंकि

आपने सभी भूतों को अपने में विलीनकर लिया है यहाँ पर कोई भूत नहीं है। श्रीभगवान् बोले मैं नारायण तथा सभी देहधारियों का उत्पत्ति स्थान ब्रह्मा भी हूँ और सभी प्राणियों को उत्पन्न करने वाला तथा उनका विनाश भी करने वाला मैं ही हूँ। ऐन्द्र पद पर स्थित इन्द्र मैं ही हूँ, ऋतुओं में संवत्सर, युग में युगाक्ष और युग का आवर्त भी मैं ही हूँ।।४१-५०।।

मैं सम्पूर्ण सत्त्वमय हूँ तथा सम्पूर्ण देवतामय हूँ, सर्पों में शेष नाग तथा सम्पूर्ण पक्षियों में गरुड़ हूँ। मैं सहस्रशीर्ष और आकाश आदि पदों से ढका हूँ और मैं ही सूर्य, यज्ञ-पुरुष, आदिदेव, यज्ञमय तथा यज्ञ हूँ, मैं हव्यों का वहन करने वाला अग्नि तथा जलचर जीवो का अविनाशी पति हूँ। पृथ्वी पर तप से पूतात्मा जो द्विजेन्द्र हैं उनमें बहुत जन्मों से आत्मा को निरुद्ध (वश) में करने वाला जो ब्राह्मण यति कहलाते हैं वह मैं ही हूँ। मैं ज्ञानी तथा विश्वभय की आत्मा को देखने वाला हूँ, मैं योगियों में श्रेष्ठ योग वेत्ता हूँ मैं सभी प्राणियों का अन्त करने वला यमराज भी हूँ, मुझे लोग सम्पूर्ण विश्व का काल भी कहते हैं। मैं ही क्रिया, कर्म तथा जीव हूँ मैं ही सबको धर्म दिखलाता हूँ, मैं सभी प्राणियों में निष्क्रिय रूप से रहता हूँ, मैं अपनी आत्मा की ज्योति से प्रकाशित सनातन पुरुष हूँ। मैं प्रधान पुरुष आदि देव, अक्षय तथा अव्यय हूँ सभी आश्रमों में निवास करने वालों का धर्म तथा तप मैं ही हूँ। श्रीर रूप जल वाले महासागर में जो हयशिर नामक देव हैं वह मैं ही हूँ मैं ऋतु (वेदोक्त अनुष्ठान) द्वारा प्राप्त करने योग्य सत्य (ब्रह्म) हूँ, मैं एक परम महान् प्रजापति हूँ। मैं सांख्य, वेदान्त का विचार, योग, (चित्त वृत्ति का निरोध) हूँ तथा इनके द्वारा प्राप्त परम पद भी मैं ही हूँ, पूजनीय तथा संसार स्वरूप और विद्याओं के अधिपति हम्ही कहे गये हैं। हम्हीं ज्योति, हम्हीं वायु, हम्हीं भूमि और हम्हीं आकाश हूँ, मैं ही जल तथा सभी समुद्र एवं नक्षत्र तथा दशों दिशायें हूँ, मैं वर्षा, चन्द्रमा, मेघ तथा सूर्य हूँ। क्षीर रूप जल का सागर और खारे जल का समुद्र मैं ही हूँ, मैं ही बड़वानल तथा संवर्तक नामक अग्नि बन कर जल पीता हुआ रवि बन जाता हूँ।।५१-६०।।

मैं ही परम पुराण पुरुष हूँ तथा इस एकार्णव के जल में सोने वाला

मैं ही हूँ, भूत, भविष्य और वर्तमान आदि सबका स्थान मैं ही हूँ। लोक में जो कुछ देखते हो, जो कुछ सुनते हो और जो अनुभव करते हो वह सब कुछ मेरा ही कहा गया है। मैंने ही पहले विश्व की सृष्टि की थी और फिर अब सृष्टि करूँगा मुझको आज पहचानो हे मार्कण्डेय! प्रत्येक युग में सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता हूँ। हे मार्कण्डेय! ये सम्पूर्ण बातें धारण करो और धर्म को सुनने की इच्छा से मेरी कुक्षि में विचरण कर सुखी होओ। मेरे शरीर में ब्रह्मा तथा ऋषियों सहित सभी देवता स्थित हैं मेरे प्रकट तथा गुप्त योग को, मुझ अजेय पुरुष को समझो। मैं ही अक्षर अर्थात् सम्पूर्ण वाणी स्वरूप एकाक्षर (आकार) हूँ तथा मैं ही तीन अक्षर वाला मन्त्र ॐ (आ, उ, म्) हूँ एवं तीन पद वाला गायत्री हूँ और त्रिवर्ग को अर्थ, धर्म, काम को, दिखाने वाला हूँ। वैशम्पायन जी बोले-इसी प्रकार से पुराणों में तथा वेदान्त में महामुनि व्यास जी ने कहा है कि मुख में प्रवेश कराने के लिये नारायणजी महामुनि मार्कण्डेय को अपने मुख के पास (आहूतवान् = आनीतवान्) बुलाया। इसके बाद विश्वरूप धारण करने वाले प्रभु अपने उदर में उन्हें प्रविष्ट करा लिये, तब भगवान् की कुक्षि में प्रविष्ट ही मुनिश्रेष्ठं मार्कण्डेय अविनाशी हंस की सेवा करने की इच्छा से सुख प्राप्त कर सेवा करने लगे। हंस संज्ञक वह अक्षर (अविनाशी) ब्रह्म कैसा है? इसके उत्तर में कहते हैं कि वह विविध शरीर को धारण करने वाला होकर भी चन्द्रमा तथा सूर्य के नष्ट हो जाने पर महार्णव में (चिन्मात्रावस्था में) धीरे-धीरे विचरण करते हुए हंस नाम वाले प्रभु जगत् की सृष्टि करते हैं तथा काल के समाप्त होने पर जगत् का विनाश करते हैं।।६१-६९।।



अथ एकादशोऽध्यायः ।।११।।

वैशम्पायन जी बोले-वे हंस नामक विभु ने आपव (वसिष्ठ) होकर तथा कुम्भ से उत्पन्न अपनी आत्मा के शरीर को सम्पूर्ण सृष्टि करने की इच्छा वाली'' आत्मा से ढक कर तप किया (यह स्मरण रहे कि मित्रावरुण का वीर्य उर्वशी को देख कुम्भ में गिरा उससे अगस्त्य तथा वसिष्ठ दोनों की उत्पत्ति है

इसी से यहाँ वसिष्ठ को कुम्भ सम्भव बताया है। तत्पश्चात् अत्यन्त बली महात्मा विश्वभूत महान् पंचभूतों तथा लोक की रचना का विचार करने लगे। वहाँ उनके इस प्रकार विचार करते रहने पर आकाश से रहित जलमय गम्भीर सूक्ष्म जगत् में तप के बल से आत्मा (अहंकार) भावित (संवर्द्धित) हो गया। वे जल में स्थित होकर थोड़ा समुद्र को क्षुब्ध किये (हिंडोरा) उसमें अनन्त लहरें उठ गई तब उन लहरों के साथ छोटे-छोटे छिद्राकाश स्वयं उत्पन्न हुए। वहाँ अनन्त लहरों से शब्द गति भी उत्पन्न हुई, यह शब्द गति कैसे उत्पन्न हुई इसी का उत्तर देते हैं कि वायु के, द्रव के सहारे शब्द गति हुई तब वह ईश्वर छिद्र परक अक्षोभ्य वायु होकर उनमें बढ़ने लगा। बढ़ते हुए उस बलवान् वायु ने समुद्र को संक्षुब्ध कर दिया अर्थात् अच्छी तरह हिलोर दिया तब लहरें वेग से आपस में अभिहत होकर समुद्र को अच्छी तरह मथने लगीं। क्षुब्ध महार्णव के जल में मन्थन होने पर समर्थ कृष्णवर्त्मा वैश्वानर नामक ज्योतिष्मान् अग्नि उत्पन्न हुआ। वहाँ जब वह अग्नि बहुत जल का संशोषण कर लिया तब जलनिधि का जल नष्ट होने पर छिद्र निकल आया वही आकाश कहलाया। ईश्वर के आत्मतेज से अमृत रस के समान पुण्य जल उत्पन्न हुआ और आकाश जल छिद्र से उत्पन्नहुआ और जलछिद्र से उत्पन्न होने वाले आकाश से वायु उत्पन्न हुआ। (अज्य (घी) के समान द्रव (पिघलन) होने से जलको आज्य कहा गया है) आज्य के संघर्षण से उत्पन्न पावक को आज्य संभव देखकर महाभूतों को उत्पन्न करने वाले आदिदेव प्रभु प्रसन्नता से युक्त हो गये।।१-१०।।

लोक सृष्टि तत्त्ववेत्ता बहुरूपधारी प्रभु महाभूतों को देखकर सृष्टि के लिये ब्रह्मा के जन्म का हित पूर्वक चुनाव करने लगे। चारों युगों वाले हजार युगों में पृथ्वी पर तप से प्रभावित आत्मा वाले ब्राह्मणों में जो ब्राह्मण बहुत जन्मों तक अपनी आत्मा को वश में रखता है जो यतिरूप उत्तम ब्राह्मण है, ज्ञानवान् है जो विश्व की आत्मा को अपनी आत्मा के समान देखता है और जो योगियों में श्रेष्ठ योगवेत्ता है। उसी योग वाले ब्राह्मण को सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के योग्य तथा विज्ञेय (सर्व-उपास्य) समझ कर विश्व सृष्टि के लिये योगवेत्ता प्रभु ब्रह्मा के पद पर नियुक्त करते हैं। ब्रह्मा की नियुक्ति के बाद उस महार्णव के

जल में सृष्टिभार से रहित हो अच्युत हरि शयन करते हैं और नियुक्त हुआ पावकि (ब्रह्मा) प्राणियों के हविष (कर्मवश) सृष्टि करने में प्रवृत्त हो विविध प्रकार की क्रिड़ा करते हुए ब्रह्माण्डपति होकर प्रसन्न होते हैं। (ब्रह्मा का उत्पत्तिप्रकार बतलाते हैं) जल में सोते हुए भगवान् अपनी नाभि से एक कमल उत्पन्न करते हैं जो हजार दलों वाला तथा धूलि से रहित सूर्य के समान प्रकाशित सुवर्णमय रहता है। और वह जलते हुए अग्नि की शिखा के समान उज्वल एवं शरद कालिन सूर्य के तेज के समान निर्मल रहता है तथा उसमें सुगन्ध भरा रहता है महात्मा विष्णु के तनु से उत्पन्न होने के कारण सुन्दर दर्शनीय उदार तेज वाला कलम बड़ा शोभायमान लगता है।।११-१७।।



अथ द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

वैशम्पायन जी बोले-- पार्थिव लक्षणों से युक्त सम्पूर्ण तेज तथा गुणमय बहुत योजन विस्तार वाले सुवर्णमय उस कमल में योग वेत्ताओं में श्रेष्ठ सभी प्राणियों के मनोमय एवं सभी प्राणियों के स्त्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्मा को वे प्रभु नियुक्त करते हैं। पुराणवेत्ता महर्षि लोग नारायण के अङ्ग से उत्पन्न उस कमल को पृथ्वी से जन्य उत्तम कमल बताते हैं। जो पद्मासना देवी हैं उन्हीं को पृथ्वी कहते हैं जो कमल गर्भ में सार रूप अंकुर से उत्पन्न है जो दिव्य पुष्प-दल हैं वे ही पर्वत कहे गये हैं। हिमवान् मेरु, नील, निषध, कैलास, मुञ्जवान् तथा गन्धमादन पर्वत हैं। और पुण्य मय शिखर, प्रिय मन्दर, उदयाचल, कन्दर तथा विन्ध्य अस्ताचल पर्वत है। ये पर्वत देवताओं, सिद्धों तथा महात्माओ एवं पुण्य शील मनुष्यों के सम्पूर्ण कामनायुक्त आश्रम हैं। इन पुण्यशीलों के दूसरे देश का नाम जम्बू कहा गया है, जम्बूद्वीप का यह संख्यान (लक्षण) है कि यज्ञिय देश की इच्छा करने वाले याज्ञिक पुरुष जहाँ यज्ञ किये हों अर्थात् जम्बूद्वीप ही शुद्ध कर्म भूमि हैं। कमल गर्भ से जो देवामृत रस के समान जल चूता है वही द्विप नदियों के रूप में हो जाता है उन्हीं नदियों के भ्रूभंग रूप सैकड़ों तीर्थ हैं। कमल के चारों तरफ जो केशर हैं वे पृथ्वी पर

असंख्य धातुओं के पर्वत हैं।।१-१०।।

हे नराधिप! कमल के ऊपर जो अनेक पत्र हैं वे दुर्गम पर्वतों के किनारे म्लेच्छों के देशों की कल्पना की गई है। कमल के नीचे के जो पत्र हैं क्रमशः वे महात्मा दैत्यों, और नागों का आवास स्थान पाताल है। उन पातालों के नीचे जो जल है उसमें महापातक कर्म करने वाले मनुष्य डूबते हैं। कमल के अन्त में जो (कुः पृथ्वी, शेते। इति कुशम्) अर्थात् जिस पर पृथ्वी सोती है ऐसा जो एकार्णव की महान् जलराशि है उसी के चारों दिशाओं के चार समुद्र कहते हैं। ऋषि नारायण का यह महापुष्कर संभव प्रादुर्भाव भी अर्थात् उत्पन्न कमल का भी नाम पुष्कर संभव है। इसी कारण से उत्पत्ति के ज्ञाता याज्ञिक तथा वेद के अर्थात् प्राचीन महर्षियों ने यज्ञ मे कमल के आकार का कुण्ड बनाने का विधान किया है जिसको पद्मचिति कहते हैं। इस प्रकार भगवान् ने कमल में विश्व सृष्टि का परम विधान किया है जिसके मध्य में पर्वत नदी तथा देवताओं का निर्माण किया है। इस प्रकार अमित प्रभाव वाले प्रभाकर महत्मा तथा विभु भगवान् ही हैं जो स्वयं शयनावस्था में जगन्मय कमलनिधि का महार्णव में निर्माण करते हैं।।११-१८।।



अथ त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

वैशम्पायन जी बोले- हजारों युग के बीत जाने पर चारों युगों में पहले सत्य युग के आने पर विघ्न रूप अन्धकार में मधु नामक महान् असुर उत्पन्न हुआ। उसका सहायक एक दूसरा भी कैटभ नाम का असुर रजोगुण प्राबल्य होने पर उत्पन्न हुआ। इस प्रकार राजस तथा तामस गुण से युक्त इच्छानुसार रूप धारण करने वाले मधु-कैटभ दो असुर उत्पन्न हुए। वे काले तथा लाल वस्त्रों को धारण करने वाले एवं श्वेत तथा चमकीले उग्र दाँतों वाले महासुर एकार्णव के जल को क्षुब्ध करने लगे। वे दोनों मद से उत्कट होने के कारण बड़े ही प्रचण्ड थे और केयूर तथा बाजूबन्ध से उज्वल लग रहे थे उनकी आँखें महा विकराल तथा लाल-लाल थीं और वक्षस्थल पुष्ट तथा भुजायें महालम्बी

थीं। उनके मुख सूर्य के समान चमकीले थे। वे विद्युत तथा लाल मेघ के समान अती भीषण भुजाओं तथा पैरों को चला कर समुद्र के जल को हिलाने लगे। वे दोनों पुष्कर के जल में बिहार करते हुए विश्वतोमुख अरि-सूदन हरि को कम्पायमान करने लगे। इसी बीच उन्होंने नारायण की आज्ञा से [illegible] विश्व तथा मानस पुत्रों एवं ऋषियों सहित सम्पूर्ण प्रजा को सृष्टि करते हुए योगियों में श्रेष्ठ तेजस्वी शरीर वाले ब्रह्मा को देखे। इसके बाद घमण्ड से भरे युद्ध की इच्छा वाले क्रुद्ध तथा रोष से लाल नेत्रों वाले असुरोत्तम ब्रह्मा से बोले। कमल के मध्य में स्थित श्वेत पाग बाँधे चार मुँह के तुम कौन पुरुष हो? जो हम दोनों की कुछ भी गणना न कर मोह से ज्वर रहित होकर बैठे हो।।१-१०।।

हे कमलोद्भव! यहाँ आओ और हम दोनों से बाहु युद्ध करो। हम दोनों अत्यन वीरों के साथ संग्राम में तू नहीं टिक सकता। तुम कौन हो? किससे उत्पन्न हो किससे प्रेरित होकर यहाँ रह रहे हो तुमको उत्पन्न करने वाला कौन है? और कौन तुम्हारा रक्षक है उसको किस नाम से पुकारते हैं। ब्रह्मा बोले कि जिसको (जल) के नाम से कहते हैं हजारों प्रकार से लोक में जो अविज्ञात है उससे उत्पन्न योगवान् मुझको तुम दोनों नहीं जानते? मधु-कैटभ बोले- हे महामते! हम दोनों से परे लोक में कुछ नहीं है हम्हीं दोनों इस विश्व को तम तथा रज से आच्छादित करते हुए रहते हैं। रजोगुण तथा तमोगुण मय हम दोनों यतियों के दुःख के लक्षण हैं और धर्मशील पुरुषों को छलने वाले सभी प्राणियों से दुस्तर हैं। हम्हीं लोगों के उन्नत होने से प्रत्येक युग में संसार मोहित हो जाता है हम्हीं दोनों अर्थ, काम तथा यज्ञ एवं सभी प्रकार के परिग्रह (दान) हैं। जहाँ सुख है, प्रसन्नता है, जहाँ सन्निवृत्ति है और इनकी जो आकांक्षा करता है वहाँ सभी के आदि में हम्हीं दोनों को जानो। ब्रह्माजी बोले योग वेत्ताओं में जो श्रेष्ठ हैं जिस सम्पूर्ण विश्वमय की मैंने पूजा की है उसका ध्यान कर मैं सत्त्व से उत्पन्न गुणवान् होकर प्रतिष्ठित हो रहा हूँ। मैं तो तुमसे युद्ध कर तुम्हें वश में नहीं करूँगा परन्तु जो योगियों का परम अविनाशी इष्ट सत्त्वमय है, जो रज और तम का निर्माण कर्ता है और जो जीवों का उत्पत्ति स्थान है। जिससे प्राणी

उत्पन्न होते हैं और अन्य सात्त्विक भी उत्पन्न होते हैं वही तुम दोनों का समर में शमन करेगा तथा वह वज्री तुम दोनों को वश में भी करेगा।।११-२०।।

वैशम्पायन जी कहते हैं कि इसके बाद वे दोनों असुर बहुत योजन लम्बे-चौड़े पद्मनाभ श्रीमान् हृषीकेश को शयनावस्था में ही प्रणाम कर बोले। हम लोग तुम विश्वयोनि अद्वितीय पुरुष श्रेष्ठ को जानते हैं तुम्हारी उपासना के लिये हम दोनों ने इस कारण रूप शरीर को धारण किया है इसे जानो। हे देव! तुम अमोघ दर्शन हो यह सत्य है क्यों कि तुम को लोग ईश्वर कहते हैं इसलिये हम दोनों तुमको सभी तरफ से देखना चाहते हैं। हे अजितञ्जय! तुम्हारा दर्शन निष्फल नहीं होता इसलिये हे अरिदंम! हम इच्छा करते हैं कि तुम्हारे द्वारा हम दोनों को वर दिया जाय। श्री भगवान् जी बोले- हे असुर मित्रों! किस वर की इच्छा करते हो शीघ्र बतलाओ हमारे द्वारा तुम दोनों को आयु दिया जा चुका है जो अब समाप्त हो गया है फिर भी तुम दोनों जीवित रहना चाहते हो यह आश्चर्य की बात है। इसलिये तुम दोनों का यह प्रयत्न जिस कार्य के लिये है उसको प्राप्त होओ, तुम दोनों वध्य हो जाओ ऐसा उन महा बलियों से हरि ने कहा तब उन दोनों छल वर्जित बलवान् महात्माओं ने कहा। मधु-कैटभ बोले कि हे विभो! जिस देश में कोई न मेरा हो उस देश में हम लोगों का वध हो हे सुराधिप! हम लोगों की इच्छा है कि हम दोनों आपके पुत्र होवें। श्री भगवान् ने कहा कि अच्छा दूसरे कल्प के आने पर तुम दोनों मेरे श्रेष्ठ पुत्र होओगे इसमें सन्देह नहीं है। मै यह सत्य कह रहा हूँ। वैशम्पायन जी बोले- विश्व के वरदाताओं में श्रेष्ठ सनातन विभु असुरों को वर देकर वे देव-शत्रु संहारक भव भावन की उपमा वाले राजस और तामस से युक्त असुरों को अपनी जाँघ के ऊपर मथने लगे।।२१-२९।।



अथ चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

वैशम्पायन जी बोले- ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ महाबाहु ब्रह्मा उस कमल में

स्थित होकर अपने बाहुओं को ऊपर उठाकर घोर तप करने लगे। अपनी प्रभा से तम को हटाने वाले वे तेजस्वी सर्वधर्मस्थ (योग धर्मस्थ) ब्रह्मा सूर्य के समान कीरणों वाले होकर चमकने लगे। इसके बाद अचिन्त्यात्मा, सनातन, अविनाशी तथा शंभु नारायण अपनी आत्मा को दो भागों में कर पहले के आलावे एक अन्य रूप धारण कर ब्रह्माजी के पास आये और महातेजस्वी एवं महायशस्वी योगाचार्य तथा सांख्याचार्य ब्राह्मण श्रेष्ठ बुद्धिमान् कपिल भी आये। वे दोनों देवर्षियों द्वारा ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ कहे गये हैं दोनों ही बड़े ऊँचे महात्मा थे वे क्षेत्र तत्पर पुरुष एक है या अनेक है, प्रकृति मिथ्या है या सत्य है इस विवाद में तत्पर थे। बराबर के विशेषज्ञ महर्षियों से पूजित वे दोनों अमित तेजस्वी ब्रह्मा से बोले। आप बहुत रूप वाले होने से तथा दृढ़ पदों वाले होने से विश्वात्मा जगत् के उत्पत्ति स्थान हैं सम्पूर्ण लोकों के मुखिया हैं तथा लोकों के गुरुओं में श्रेष्ठ हैं। उनकी इस बात को सुनकर तीनों व्याहृतियों का जप करते हुए ब्रह्मा ने तीनों लोकों की रचना कर दी जैसे कि ब्राह्मणों ने श्रुति ने कहा है। वहाँ ब्रह्मा ने भू नाम वाला एक मानस पुत्र उत्पन्न किया उस अविनाशी पुत्र पर उनका स्नेह हो गया। वह मानस पुत्र उत्पन्न होकर ब्रह्मा के आगे खड़ा होकर बोला कि मैं आप की क्या सहायता करूँ भगवान् ब्रह्मा ने कहा।।१-१०।।

जो यह कपिल नाम वाले तथा ब्रह्म नारायण वर देने वाले कहें। हे महामते! उसे तुम करो। वैशम्पायन जी बोले कि ब्रह्मा के ऐसा कहने पर संशय उपस्थित हो गया फिर हाथ जोड़ उन दोनों महापुरुषों से मानस पुत्र ने कहा कि मैं सेवा करना चाहता हूँ क्या करूँ। दोनों परमेश्वर बोले जो सत्य अक्षर ब्रह्म अट्ठारह प्रकार का कहा गया है जो सत्यामृत तथा सबसे परे हैं उसीका अनुसरण करो। वैशम्पायन जी बोले कि यह बात सुनकर वह उत्तर दिशा की तरफ चला गया वहाँ जाकर वह ज्ञान चक्षु के द्वारा ब्रह्मत्व को प्राप्त हो गया। इसके बाद महामना ब्रह्मा ने भुव नामक पुत्र को मन से ही कल्पना कर उत्पन्न किया। वह भी पितामह ब्रह्मा से बोला कि मैं क्या करूँ पितामह ने कहा कि ये दोनों महापुरुष जो कहें वह करो तब ब्रह्मा से यह आज्ञा पाकर उन दोनों के सहित वह

भी भागवती गति को प्राप्त हो गया। उन दोनों के पास आने से परम स्थान को पा गया। उस पुत्र के भी चले जाने पर प्रभु ब्रह्मा ने मोक्ष के उपाय में कुशल भुर्भुव नामक तीसरे पुत्र की रचना की। वह भी उसी धर्म को प्राप्त हो उन्हीं के समान गति को प्राप्त हो गया। इस प्रकार महात्मा शंभु, सांख्य तथा योगाचार्य सूर्य-कपिल से तीनों ही उपदिष्ट थे। नारायण और यतीश्वर कपिल ब्रह्मा के उन पुत्रों को ग्रहण कर अपनी गति को प्राप्त हो गये।।११-२०।।

जिस समय वे मुक्त होकर चले गये उसी समय से प्रसंशित व्रत ब्रह्मा पुनः घोर तप करने लगे। अकेले तप करते हुए ब्रह्मा प्रसन्न नहीं हूए तब अपने आधे शरीर से एक शुभ भार्या की उत्पत्ति की। तप, तेज, प्रभाव तथा नियम में अपनी आत्मा के सदृश लोक सृष्टि में समर्थ भार्या को देखकर। तपोमय ब्रह्मा वहाँ सम्पूर्ण प्रजापतियों तथा सागरों और नदियों की सृष्टि करते हुए उसके साथ रमण करने लगे। इसके बाद वेद की माता त्रिपदा गायत्री की रचना की और अकार की तथा गायत्री से उत्पन्न चारों वेदों की रचना की। और अपनी आत्मा की सहायता के लिये लोक कर्ता पुत्रों की रचना की वे विश्व में प्रजा-पति हुए कि जिनसे सम्पूर्ण लोक उत्पन्न हुआ। जिनमें महातपस्वी विश्वेश नामक पुत्र को पहले उत्पन्न किया फिर सभी आश्रमों का श्रेष्ठता पूर्वक पालन करने वाले धर्म नामक पुण्यशील पुत्र की रचना की इसके बाद दक्ष, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, गौतम, भृगु, अंगिरा और मनु को उत्पन्न किया। ये विख्यात ब्रह्मर्षि अथर्व वेद के अनुसार हुए इन तेरहों महर्षि पुत्रों के जो वंश हुए उन्हें सुनो। अदिति, दिति, दनु, कला, अनायु, सिंहिका, मुनि, प्रबोधा, सुरसा, क्रोधा, विनता तथा कद्रु।।२१-३०।।

हे भारत! तुम्हारा कल्याण हो ये बारह कन्यायें दक्ष की ही हैं तथा सत्ताइस नक्षत्र रूपी कन्यायें भी इन्हीं दक्ष से उत्पन्न हैं। मरीचि के तप से निर्मित पुत्र समर्थशाली कश्यप हुए उन्हीं कश्यप को पहलेवाली बारह कन्यायें दक्ष ने व्याह दीं। हे जनमेजय! इसके बाद पुण्यमयी रोहिणी आदि संज्ञक सत्ताइस कन्यायों को दक्ष ने वसुरूप चन्द्रमा को दे दीं। लक्ष्मी, कीति, साध्या,

विश्वा, शुभा-कामानुगा तथा मरुत्वती देवी इन छै कन्याओं की ब्रह्मा ने स्वयं पहले रचना की थी। हे भारत! तुम्हारा कल्याण हो, धर्म को देखने वाले ब्रह्मा ने इनमें से श्रेष्ठ पाँच कन्यायें देवताश्रेष्ठ धर्म को दे दीं। इनमें से एक जो कामनानुसार रूप धारण करने वाली रुप से धर्ममयी ब्रह्मा की पत्नी बनी वह सुरभि गौ रूप धारण कर ब्रह्मा के पास खड़ी हो गई। हे भारत! इसके बाद लोक में गौओं की सृष्टि के लिये लोक पूजित ब्रह्माने सुरभि के साथ रमण किया। फिर धर्म संहिता वाले विपुल तेजस्वी ग्यारह पुत्रों को उत्पन्न किया जो सन्ध्या कालीन मेघ के समान लाल वर्ण तथा अग्नि के समान तेजस्वी थे। वे रोते हुए भगवान् पितामह के पास आये वे रोने से और द्रविण करने से रुद्र के नाम से कहे जाने लगे। निर्ऋति, सर्प, तीसरा अजैकपात्, मृगव्याध, पिनाकी, दहन, ईश्वर, अहिर्बुध्न्य, अपराजित भगवान् कपाली तथा महातेजस्वी सेनानी ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं।।३१-४०।।

उसी सुरभि से गौ तथा वृष उत्पन्न हुए और आकृष्ट तथा उड़द, बालू तथा प्रश्रय, अक्षत उत्पन्न हुए। एक वंशा बकरियाँ तथा उत्तम अमृत उत्पन्न हुआ तथा जो श्रेष्ठ औषधियाँ हैं वे सुरभि से उत्पन्न हुई धर्म से लक्ष्मी में काम उत्पन्न हुआ और साध्या ने साध्य गणों को उत्पन्न किया और सुरभि च्यवन, प्रभव तथा ईशान को उत्पन्न किया। अरुन्धती, आरुणी, विश्वावसु, बल, ध्रुव, महिष, तनूज, विज्ञान, मत्सर और विभूति ये सभी सन्तानें सुरभि की हैं तथा लोक नमस्कृता साध्या ने सुपर्वत, विष, तथा नागों को उत्पन्न किया। इन्द्र के पीछे चलने वाली सुरभि देवी ने पहले देव धर को दूसरे अविनाशी ध्रुव को तीसरे विश्वावसु को चौथे ईश्वर सोम को पाँचवें पर्वत को इसके बाद छठवें योगेन्द्र को सातवें वायु को आठवें निर्ऋति वसु को उत्पन्न किया धर्म के सुरभि से ये सब सन्तानें हुईं। धर्म से विश्वा में विश्वेदेवा उत्पन्न हुए ऐसा सुना जाता है। महाबाहु दक्षयज्ञ, वसु, सुत, महाबाहु सुधर्मा, महाबली शङ्खपाद, महाबाहु उक्त, पुष्यमान्, अनन्त, महीरक्ष, विश्वावसु, सुपर्व, महायशस्वी विष्टर तथा सूर्य के समान तेजस्वी ऋषि-पुत्र रुरु ये चाक्षुष मनु की सन्तानें हैं।।४१-५०।।

देवमाता ने विश्व के स्वाम विश्वेदेवा नामक पुत्रों को उत्पन्न किया, मरुत्वती ने धर्म से शुभ देवताओं को उत्पन्न किया। जिनके नाम अग्निचक्षु, हविज्योंति, सावित्र, मित्र, अमर, शरवृष्टि, महाभुज संक्षय, विरज, शुक्र, विश्वावसु, विभावसु, अश्मन्त, चित्ररश्मि तथा निष्कुपित, राजा नहुष, आहुति, चारित्र तथा बहुत से सर्प, बृहद् रूप वाले बृहन्त तथा परतापन हैं। पहले भी धर्म से गरुत्वती में दो शुभ पुत्र उत्पन्न हुए थे। हे राजन्! कश्यप से अदिति में बारहों आदित्य उत्पन्न हुए जिनके नाम इन्द्र, विष्णु, भग, त्वष्टा, वरुण, अंश, अर्यमा, रवि, पूषा, मित्र, वरद मनु तथा पर्जन्य हैं। ये बारहों आदित्य देवताओं में श्रेष्ठ हैं। आदित्य के सरस्वती में दो शुभ पुत्र उत्पन्न हुए रूपश्रेष्ठ तथा बलश्रेष्ठ ये स्वर्ग में भी रूपवानों में श्रेष्ठ थे। दनु ने दानवों को और दिति ने दैत्यो को उत्पन्न किया तथा काला ने कालकेयों, असुरों एवं राक्षसों को उत्पन्न किया।।५१-६०।।

अनायुषा के पुत्र व्याधि और आधि हैं तथा राहु-केतु की माता सिंहिका हुई और मुनि गन्धर्वो की जननी हुई। प्रबोधा अप्सराओं की माता हुई और सुरसा से सर्प उत्पन्न हुए इसी तरह हे भारत! क्रोधा से सभी भूत-पिशाच उत्पन्न हुए। हे विशाम्पते! गुह्यक तथा यक्षगण भी सुरसा से हुए सुरभि से उत्पन्न गौओं को छोड़ कर सभी चार पैर वाले पशु सुरसा से उत्पन्न हुए। अरुण और गरुड़ विनता से हुए, पर्वतों तथा सर्प और नागों को कद्रु ने उत्पन्न किया। हे राजन्! महात्मा पुष्कर के प्रादुर्भाव होने पर विश्व में सभी लोग परस्पर बढ़ने लगे। पौष्कर माहात्म्य में हमने जिस प्रकार द्वैपायन व्यास जी से पुराण सुना था और जो महर्षियों ने कहा था उसी आधार पर मैंने यह सब कहा। जो महात्मा इस आगे हुए प्रथम पुराण को पढ़ता है वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर तथा शोक से रहित होकर दूसरे जन्मों में स्वर्ग-फल का भोग करता है।।६१-६७।।



अथ पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

जनमेजय जी बोले- हे ब्रह्मन्! मैंने अपने वंश के परम पवित्र तथा

महान् चरित्र को सुना जो परस्पर एक दूसरे से उत्पन्न एवं दिव्य तथा बहुत प्रकार के गुणों से मानते हैं। जो छन्द-पंक्तियों की उत्पत्ति से युक्त हैं तथा कहीं पर संक्षिप्त और कहीं पर विस्तार से युक्त है कम शब्द तथा मधुर भाषणों से एवं पद-विग्रहों से ग्रथित (विभूषित) है और जो त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ व काम) से युक्त एवं भोग करने वाले शरीर धारियों के धर्म तथा अर्थ के वर्णनों से सम्पन्न है जिसमें शरीर के अन्तर्गत होने वाली कामनाओं का बहुत प्रकार से वर्णन है। जो ब्राह्मणों के प्रभाव तथा योधाओं के पराक्रमों से युक्त है और वैर के निर्यातन (बदला) एवं प्रतिज्ञा पालकों के प्रतिज्ञा पालन से विभूषित है। जो रिपुओं के स्तोत्रों से सम्पन्न है, जिसमें ब्राह्मण के विग्रह से राजा के द्वारा दोनों वंशों के विनाश के लिये कारण उपस्थित कर दिया गया था। उस महाभयानक संग्राम में जो राजा मारे गये थे उनके राज्यों को सभी पुत्रों ने पाया, कौरव राजा भगवान् के शासन के अनुकूल चल कर विख्यात हुए। जिसमें तीनों वर्णों के सम्पत्ति रूप धर्म को बहुत प्रकार से कहा गया है हे द्विज श्रेष्ठ! जिसमे शूरों के स्वर्ग मिलने के कारण का भी विशेष आख्यान किया गया है। यह सब वर्णन प्राणियों के अनुग्रहार्थ किया गया है उत्सेक के लिये नहीं, चारों वर्णों के पृथक्-पृथक् धर्मों का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। गर्भ में गिरते हुए प्राणियों के कर्मा को सम्यक् प्रकार से बतलाया गया है और पुण्य कर्म के क्षीण होने पर देवताओं के संचार का अर्थात् मृत्यु लोक में आने का पूछने पर वर्णन किया गया है। और दान में जो आदि संयोग है वह भी बहुत प्रकार से कहा गया है तथा दो व्यक्तियों के संयोग का विधान किया है और उनके मधुर वाणी वाले वचन का भी वर्णन किया गया है।।१-१०।।

हे ब्रह्मन्! महाभारत के अध्ययन के बाद मैं इसका वर्णन महान् होने से दिव्य चक्षु वाले ब्रह्मा के एक दिन में भी नहीं कर सकता। हे भगवन्! अब मैं ब्रह्मा के दिन का विस्तार तथा संक्षेप से सुन्दर संग्रह को ढंग से सुनना चाहता हूँ क्योंकि इसका मुझे बड़ा कौतूहल है।।११-१२।।



अथ षोडशोऽध्यायः।।१६।।

वैशम्पायन जी बोले- हे राजन्! मेरे द्वारा विकार रहित चित्रा से कही जाने वाली कथा को पंच ज्ञानेन्द्रियों से सावधान हो एकाग्र मन से सुनो। हे राजन्! जो वेद के सम्बन्ध से संबद्ध तथा कर्मों से असंबद्ध पहले ब्रह्मवेत्ताओं ने जिनका अदक्षिण अर्थात् कर्म से अप्राप्य कहा है वह अव्यक्त होने के कारण जो नित्य तथा सत् असत् आत्मक दोनों है जो कला रहित पुरुष है उसी में आत्मयोनिज उत्पन्न हुए हैं। वे व्यापक सब प्राणियों के स्वामी तथा दिव्य शरीर के द्वारा दिव्य एवं अचिन्त्य अविनाशी और युगों के उत्पन्न कर्ता हैं। वे अभूत, अजात तथा सर्वत्र समान गति वाले हैं और अव्यक्त से परे हैं ऐसा ही नारायण को जानने वालों ने बताया है। सभी स्थानों पर उनके हाथ पैर हैं सभी स्थानों पर उनका शिर एवं मुख है और सभी स्थानों पर उनके कान हैं वे लोक में सभी पदार्थों में छाये रहते हैं। असत् तथा सत् दोनों रूपों से रहते हैं इस विषय में कारण को जानना चाहिये, जो अव्यक्त है वह व्यक्त रूप में स्थित हो विचरता हुआ भी दिखाई नहीं पड़ता है। वह विकार से युक्त होने पर भी अव्यक्त कहलाता है तथा रूप का आश्रय ग्रहण करके भी रूप रहित हो सभी में उसी प्रकार विचरण करता है कि जैसे काष्ठ में गूढ अग्नि विचरण करता है। प्राणियों के भव्य और उद्भव (उत्पन्न) करने से वे स्वामी, परमेष्ठी प्रजापति तथा सम्पूर्ण लोकों के प्रभु कहे जाते हैं इनके ये सब नाम तत्त्व से रखे गये हैं। अपद से पद उत्पन्न हुआ उससे नारायण हुए वे कामना से ब्रह्मयोग के द्वारा अव्यक्त होते हुए भी व्यक्तित्त्व को प्राप्त हुए।।१-१०।।

ब्रह्मभावी में भी ऐसा ही ब्रह्म योग समझा वह प्रभु उस ब्रह्म शब्द को प्राप्त किये, वे स्थावर तथा इतर जंगम सहित सम्पूर्ण लोकों के प्रभु स्वामी हैं। हे भारत! हम प्रजाओं की सृष्टि करेंगे वह कहे थे, अतः वे सभी प्राणियों के उत्पत्ति स्थान हैं जिनकी सन्तति रूप ये प्रजायें हैं। स्वभाव से ही सब उत्पन्न होता है तथा स्वभाव से ही हुआ था, स्वभाव से ही अहंकार उत्पन्न हुआ तथा अहंकार से यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। सर्व व्यापक, अवलम्ब रहित,

अग्राह्य, जय स्वरूप यथा ध्रुव इसी प्रकार की ब्रह्ममय ज्योति ब्रह्म शब्द से कही जाती है। पाँचों यज्ञ लक्षणों से अव्यक्त पुरुष व्यक्तित्व को प्राप्त हुआ है तथा वेद से व्यक्त हुए विविध प्रकार के संकल्पोत्थित बातों को धारण कर्ता हुआ। जिससे यह सभी जगत् उत्पन्न हुआ है उस ब्रह्म से प्रेरित हो स्वभाव से मूर्ति को धारण कर ब्रह्मा ने जल की रचना की। इसके पश्चात् वायु की रचना की जल की सृष्टि के पहले ब्रह्म के वश में रहने वाले मरीचि आदिकों के बीच· यही श्रेष्ठ थे और वेद के व्यक्त भावों को धारण किया था इससे लोक में धाता यह नाम उचित ही प्राप्त हुआ। पहले यह सम्पूर्ण जगत् वायु से उत्पन्न हुआ था लेकिन देवताओं ने इसका पहले ही अतिक्रमण कर दिया इससे वे उत्पन्न मनुष्यत्व को न प्राप्त हो सके वे सरस्वती अर्थात् समुद्र में ही स्थित रह गये। तब पृथ्वी शब्दार्थ लोकों की सृष्टि की इच्छा से ब्रह्मा ने जल को अर्थात् सागर को घनत्व तथा द्रवत्व से (धर्म भेद से) पृथक् कर दिया इस पृथ्वी-जल के पृथभत्व को सभी लोग जानते हैं। जल से पहले फल के रूप में पृथ्वी उत्पन्न हुई वह फल जल में डूबने लगा तब वह जलोत्पन्न फल सभी दिशाओं को गुञ्जारित करता हुआ शुभ वाणी बोला कि मैं जल के ऊपर स्थित रहना चाहता हूँ कोई हमको जल से निकाले क्यों कि कठिन मूर्ति वाले (लोष्ट पिण्ड) की भाँति गहरे जल विवर में डूबने से मेरा अन्तःकरण क्षुभित हो रहा है।।११-२०।।

सभी जगह से उत्पन्न हुई मूर्ति धारण करने वाली तथा सम्पूर्ण प्राणियों को अपने ऊपर विचरण कराने की स्वभाव वाली पृथ्वी टिकने के स्थान को इच्छा करती तथा ऊपर कथनानुसार दुःखी होती हुई हमारा उद्धार करो, ऐसा कहने लगी। तब उसके द्वारा कही गई सुभाषित वाणी को सुन कर भगवान् वाराह रूप धारण कर महार्णव में प्रविष्ट हो गये और जल से पृथ्वी को ऊपर निकाले ऐसे सुदुष्कर कर्म को कर वे समाधि योग से अन्तर्धान हो गये उन्हें कोई न देख सका। जो ब्रह्ममय ज्योति आकाश कहलाता है वही सम्पूर्ण प्राणियों के पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे। सम्पूर्ण योग वेत्ता वही धाता (ईश्वर) आज भी प्रजाओं की हित कामना के लिये ज्ञान योग द्वारा मन से पृथ्वी को

धारण कर रहे हैं। पृथ्वी के मध्य भाग को भेदन कर मेरु आदि पर्वत उत्पन्न हुए हैं जिनके उत्पत्ति स्थान स्पष्ट हैं और सूर्य ऊपर स्थित रहता है जो किरणों से हँसता हुआ सा ज्ञात होता है। अति ताप के कारण सूर्य मण्डल के मध्य से जल मय सोम मण्डल निकला है वह ब्रह्मा अर्थात् ब्राह्मण है सनातन से आदि में उत्पन्न होने से वह ब्राह्मणों का राजा कहलाता है सौम्य होने से सोम इस नाम को प्राप्त किया। सोम मण्डल के पर्यन्त (मुख) से निश्वास भूत पवन उत्पन्न हुआ है वह अक्षर मय वर्णात्मिक वेद रूप ज्योति अपने तेज से सभी के अर्थ को अभिवर्द्धित प्रकाशित करता हुआ उत्पन्न हुआ। वह ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण स्वाभाविक योगमय ज्ञान हो सनातन ब्रह्मयोनि आध्यात्मिक दिव्य पुरुष की सृष्टि करता है।।२१-३०।।

सोम का द्रव पदार्थ जल तथा उसका घन पदार्थ पृथ्वी हुई, जो उसमें छिद्र है सो आकाश है, जो ज्योति है वह नेत्र है। ईश्वर से प्राप्त चेतन शरीर वायु द्वारा संचालित होता है और पंच भूतों के संघात से ज्योति अर्थात् जठराग्नि की उत्पत्ति होती है, यह पंचभूत (छिति, जल, पावक, गगन तथा समीर) मय महान् भाव वाला हो जाता। भूतात्मा जीव सम भाव से सभी शरीर में देहधारी बन कर रहता है यह परिपाटी सनातन आदि काल से चली आ रही है इस शरिरी की बुद्धि में ज्ञान निहित रहता है जिसके योग से सनातन यज्ञ होता है। जो धातुओं के साथ मिलकर देहधारियों के शरीर में निरन्तर अग्नि निवास करता है वह तपन का ही रूप है। जो स्वभाव से ऐश्वर्य को प्राप्त होता तथा स्वभाव से भय को अनैश्वर्य को प्राप्त होता है और पूर्व संस्कार के ही अनुसार शान्ति सद्भाव को तथा असद्भाव को प्राप्त होता है। इन्द्रियों के कर्म बन्धन से इन्द्रियों का दास बन कर यह ब्रह्मको ढूँढ़ने के विषय में अत्यन्त मूढ़ बन जाता है और उन्हीं कर्मों के द्वाराकर्म सम्भव मृत्यु को प्राप्त कर लेता है। जब तक तत्त्व से यह जीव ब्रह्म के विषय को नहीं प्राप्त कर लेता है तब तक इसको कर्म सम्भव संसार बार-बार प्राप्त होता रहता है। जब यह योग द्वारा इन्द्रिय के विषयों से रहित हो जाता है तब योग वेत्ता ही ब्रह्म पद को प्राप्त हो ब्रह्मानंद में स्थित रहता है। वैकल्पिक आनन्द वाले लोकों को प्रतिषिद्ध कर

ब्रह्मवेत्ता हो जाता है, वह सांसारिक प्रेम के वशीभूत नहीं होता है न किसी विषय में अपनी आसक्ति करता है। वह उत्कृष्ट सिद्धि को प्राप्त कर सर्वज्ञ हो जाता है तथा गर्भ में आना और गर्भ से जाना एवं कर्म सम्भव मरण को भूत (दृष्ट) दैव बल से जान जाता है।।३१-४०।।

वह अपनी आत्मा की गतियों मुक्ति के उपायों का तथा विषय गोचर भूत, भविष्य-वर्तमान को जानने लगता है, पूर्व कर्म से निवृत्त होने के कारण ब्रह्म के पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है। वह चित्र ग्रन्थि अर्थात् चित्त वृत्ति को रोकता हुआ पूर्व संस्कार से उत्पन्न कामादिक यातनाओं सुख-दुःखादि साक्षात्कारों को बाँध लेता है जो कामादिक यातनायें अनेक शाखा में उत्पन्न हो प्रबल लोभ के द्वारा मनुष्य का छेदन करती हुई वायु से क्षुब्ध हुए समुद्र के समान उसे दुःखी करती रहती हैं। वासनाओं का निरोध करने से पर से अर्थात् कामादिक से मलिन हृदय वाली बुद्धि पक्कर विशुद्ध हो जाती है इस प्रकार देह बन्धन से विशेष छुटकारा पा जाने के कारण ब्रह्म के समान उसकी आत्मा हो जाती है। वह अपनी ब्रह्म विद्या के द्वारा परम दिव्य लोक की सृष्टि कर सकता है और तेजोमूर्ति ब्रह्मा के समान छिद्र रहित इस लोक की भी रचना कर सकता है। ब्रह्मज्ञान से युक्त चित्त वाला अपने ज्ञान से गुरू की भाँति अर्थात् कारागार-बन्धन कराने वाले कर्मों से तिर्यग् योनि पक्षी आदि की योनि में गये हुए उन जीवों को भी छुड़ा सकता है। योग नामक कर्म, अक्षर (मोक्ष) तथा क्षर (भोग) दोनों से व्याप्त होकर उपस्थित है। कर्म से उपलक्षित क्षर (भोग) ब्रह्म के ध्रुव होने से ब्रह्म में नहीं है।।४१-४६।।



अथ सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

वैशम्पायन जी बोले- विशेष रूप से बढ़ते हुए सूर्य ने जो पृथ्वी में छिद्र कर दिया था, उसी में मैनाक पर्वत स्थित हुआ वह स्वभाव से अचल बनाया गया था। पर्वों के होने से पर्वत नाम पड़ा और अचल होकर अचलत्व को प्राप्त

हुआ वह स्वभाव से ही मेरु है। उस नग के विस्तृत पृष्ठ पर ज्योति से उत्पन्न महान् समृद्धिमान् व्यक्त पुरुष निवास करते हैं। उसी परमात्मा ने उसे स्वभाव से रचा था, जो ब्रह्ममय तेज वेद पुरुष-सूत्र के बीच में निहित कहा गया है, उसी का ज्योतिमय दीप्त रूप पुरुष रूप में है। उसी के मुख के तेज से चमकते हुए तथा चार मुखों वाले ब्रह्मा चार उत्तम ब्राह्मणों के साथ निकले हैं। उसके चारों मुखों से वेद प्रकट हुए हैं जिनको कि ब्राह्मण श्रेष्ठ ब्रह्मा (चारों ब्राह्मणों) ने धारण किये इसी से वे महान् कहे गये और पुनः अतिशयेन पुज्यमान् हुए। जो पहले पृथ्वी देवी को जल से निकाला था वह ब्रह्म के स्थान मेरु की पीठ पर जाकर ब्राह्मण अर्थात् चतुर्मुखता को प्राप्त हो गया, पृथ्वी का उद्धर्त्ता पहले जो अदृश्य था वह दर्शनीय हो गया। उसकी पद शक्ति में स्थित मेरु के शिखर पर ब्रह्मोक बना जो कि एक लक्ष चार सौ कोस ऊँचा है। तथा इससे चारगुना उसका विस्तार है अथवा आप ऐसा समझें कि दिव्य तेज वाले कोई भी प्राणी उस विस्तार को बहुत हजार वर्षों तक भी माप कर अच्छी तरह नहीं कह सकता। हे राजेन्द्र! जिस पर्वत के ऊपर ब्रह्मलोक है वह चारों तरफ पार्श्व विस्तारों वाली शिलाओं से घिरा हुआ है अर्थात् चारों ओर की सीमायें तत्तुल्य विस्तृत सीमाओं से ढँकी हैं, जिनकी चौड़ाई सौ योजनों की है।।१-१०।।

करोड़ों-करोड़ों सौ से गुणा करने पर ब्रह्मवादियों ने उसकी सीमा-माप-संख्या को माया की भाँति अनन्त बतलाया है, योग से युक्त तथा नित्य ब्रह्म परायण सिद्ध, मरुत गणों के साथ देवेन्द्र, रुद्र-गण, वसु-गण और अश्विनी कुमारों के साथ आदित्य गण और विवस्वन तथा वरुण भगवान् विष्णु के साथ समूह बनाकर पृथ्वी के राजाओं तथा पृथ्वी की रक्षा किया करते हैं। भगवान् विष्णु किस प्रकार की शरीर से रक्षा करते हैं, इसके उत्तर में बता रहे हैं कि हे भारत! ब्रह्म से उत्पन्न ब्राह्मण शरीर से रक्षा करते हैं जो विष्णुमय तेज है वह सर्वत्र समान भाव से व्याप्त है। वह ब्रह्म कैसा है इसके उत्तर में कहते हैं कि- वेद के पारवादी ब्राह्मणों ने जैसा कहा है और सत्यव्रत में रत रहने वाले तथा बहुत से नियमों को करने वाले एवं उनकी दासता को प्राप्त करने वाले ब्राह्मणों ने जैसा कहा है वैसा ही ब्रह्म है। इस प्रकार ये तीनों

लोक ब्रह्मा के दिन में स्थित हो अनुभूत होते हैं, ब्रह्मा के दिन में ब्रह्म सर्वत्र छिपा रहता है और प्राण में प्रतिष्ठित हो स्पष्ट दिखाई देता है। ब्रह्म (ईश्वर) के निःश्वास भूत वेद से प्रेरित जो कर्म नियत है, जिसको छल रहित चित्त वाले ब्रह्मवादी शुद्ध भाव से करते रहते हैं। वैसे ही पुरुषों द्वारा किये कर्म को वेद पारंगत ब्राह्मणों ने हितकर कहा है, जो पद दिष्टत्व को प्राप्त कराता है, अर्थात् कर्म से उत्पन्न सुकृत के फल को प्राप्त करता है, वह ब्रह्म का लेश मात्र कृपा भाव है, ऐसा श्रुतियों ने कहा है। जिसका पाद विश्वभूत है वह भूतात्मा ब्रह्म नित्य सिद्ध आत्मा है न कि कर्म से प्राप्य है। ब्राह्मणों के भावों के बहुत्व से ब्राह्मण लोग यज्ञों में ब्रह्म को विश्व शब्द से प्रयोग में लाते हैं, इसलिये सत्यव्रत धारण किये ब्राह्मणों के द्वारा भूतात्मा ब्रह्म की आराधना होनी चाहिए। उसी भगवान् ने स्थूल सूक्ष्म इन दोनों बुद्धिमात्र से कल्पित रूप मानता हुआ पहले द्वन्द्व स्त्री पुरुषात्मक जगत् की रचना की।।११-२०।।

वही विश्वरूप सनातन भगवान् विपुल भोगों का विधान कर देवी के साथ ब्रह्मा हो कल्पादिक अनुगन्ताओं के साथ विचरण करते हैं। नित्य अकिंचन पथ की इच्छा वाले तथा निर्वाण पद को जानने वाले ब्रह्मवेत्ताओं में वह भगवान् ब्रह्मा श्रेष्ठ हैं।.सोम से अर्थात् उमा (ब्रह्म विद्या) के सहित जो परमेश्वर हैं, उनसे सोम औषधीश चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है, किस प्रकार के सोम से उत्पन्न हुआ इसके उत्तर में कहते हैं कि स्वर्ग से गिरने वाली जो जलधारा वही है विग्रह (मूर्ति) जिसका उस सोम से; जिससे कि अभिषिक्त होकर महेश्वर भूतों के अधिपति बने। वह जलधारा स्वभाव से ही भूतेश के पद पर महादेवजी का अभिषेक कर्म करके नाद करने लगी इसी से वह नदी के नाम से पुकारी जाती है। वह जलधारा ब्रह्मलोक को महिमाशाली बनाकर तथा मार्ग के अवरोधक पर्वतों का अभिभव छेदन कर हजारों धाराओं में चलकर आकाश में आई और आकाश से एकधारा से पृथ्वी पर गमन की, इससे इसको गंगा कहते हैं फिर 'सात' धारों में पसर कर समुद्र में मिल गई यह सात धारा समुद्र के संगम पर देखने को मिलेगी। हे राजेन्द्र! हजारों नामों से जाह्नवी आदि तथा अनेक भावों से तत्तवीर्यादि प्रसंगों से क्षर सम्भव अविद्या

माया से उत्पन्न इस लोक तथा परलोक को बार-बार प्रभावित करती बढ़ाती रहती हैं। लोक के बढ़ने से सभी प्राणी बढ़ते हैं और महाभूतों के पृथ्वी, जल तथा तेजादिको के द्वारा उत्पन्न फलस्वरूप से ही- धान्यादिक बढ़ते रहते हैं तथा मनीषियों के सभी क्रियारम्भ होते रहते हैं। चार वदन वाले ब्रह्मा के मुख कमल से वेद निकले जो अक्षर मयी सिद्धि होकर उपदेश देने लगे। उसी वेद के ज्ञानमय सनातन चार पुण्य चरण हैं जिसके स्वामी यहाँ पितामह ब्रह्मा हुए। धर्म के चार पाद हैं, जिससे धर्म जगत् को धारण करता है ब्रह्मचर्य से व्यक्त रुपेण अर्थात् स्वाध्याय रूपेण १ गृहस्थाश्रम के द्वारा पवित्र गृह में स्थित होकर, २ गुरु भाव से वाक्य के द्वारा तप तथा वैराग्य के द्वारा, ३ अर्थात् संन्यास के द्वारा; यही चारों धर्म के पदा हैं जो स्वर्ग प्राप्ति के लिये समाज में उपस्थित किये गये हैं।।२१-३०।।

न्याय से उत्पन्न जो गुह्य धर्म योग है उससे ब्रह्माण्डगोल में सोम चन्द्राधिष्ठेय मन बढ़ता है, ब्रह्म वेद से ही उत्पन्न ब्रह्माचरण ब्रह्मचर्या से शाश्वत निरन्तर रहने वाले वेद निवृत्त हो जाते हैं वर्तन्ति गत्यर्थेषूपपद्यते। आदिवाक्य से अर्थात् गुह्य धर्म से युक्त गृहस्थों को देख कर पितर ऋषि भी तृप्त होते हैं। मेरु के उत्तम शिखर ब्रह्म लोक को प्राप्त करना चाहिये ऐसा अच्छी तरह समझ कर पर्वत के ऊपर अपने वृषणों को पैरों से दबाकर सिद्धासन लगाकर उन ब्रह्मचर्यादि धर्मों से युक्त हो ऋषि गण उसके विषय में विचार करते हैं। ग्रीवा का निग्रह कर तथा पीठ को वक्ष की भाँति थोड़ी ऊँची कर प्रसन्न होते हुए की भाँति हो नाभि देश में हाथों को रख तथा सभी ओर से अङ्गों को संक्षिप्त करते हुए। मस्तक में ब्रह्म का मनसे ध्यानकर योगेश्वर के योग से पितामह ब्रह्मा ने विष्णु को अपनी मानसिक शक्ति से रचा। विषय से व्यावृत्त इन्द्रियों वाले विष्णु एक बिम्ब से दूसरे बिम्ब की भाँति आविर्भूत हो गये तेज की मूर्ति को धारण करने वाले देव विष्णु आकाश में उदित चन्द्रमा की भाँति ज्ञात होने लगे। अतुलनीय प्रभा से युक्त प्रभु ब्रह्म योग के द्वारा आकाश के मध्य दूसरे सूर्य की भाँति चमक रहे थे। ललाट के मध्य अर्थात् भौंह और नासिका की सन्धि भाग में स्थित रहते हुए नियम और नियामक द्विधाभूत

शाश्वत एवं प्रत्यक्ष ब्रह्मा को मूढ़ जन नहीं प्राप्त कर सकते। सूर्य तथा चन्द्रमा के बिम्ब से ज्योतिमिय नेत्रों में वह सम्बन्धित रहता है, उसे अध्यात्म में रत योगी लोग पहले बुद्धि के द्वारा रखते हैं।।३१-४०।।

और सत्यव्रत में परायण वेद के विद्वान् ब्राह्मण उसे देखते हैं, दूसरे व्यामोहित चित्त वाले कदापि नहीं देख सकते। क्योंकि वे अध्यात्म को ही नहीं जानते। वे दूसरे कौन हैं इसी को कह रहे हैं कि हे नृप! जो योगी इस पृथ्वी पर भूतेश=प्राणियों के ऊपर निग्रह तथा अनुग्रह में समर्थ होकर ऐश्वर्य के लिये व्यामोहित चित्त हो गये हैं और सभी के प्राण भक्षक हिंसायोनि से आयोगात्मा बन गये हैं अर्थात् जो स्वरूपानन्द से च्युत हो गये हैं। हे भारत! वे अन्यकुत्सित कर्मों के द्वारा सभी प्राणियों के वध की इच्छा वाले मनुष्यों को अपने भोग मात्र के लिये हिंसा-योग में लगाकर स्वयं मोह में पड़ते हैं। योग में विघ्न न पड़े इसलिये मन को सभी तरफ से खींच के एकाग्र कर मोक्ष प्राप्ति के लिये ब्रह्म में लगा दे और चन्द्रमण्डल रूप मनके संस्थान को छोड़ कर महत् चान्द्र ज्योति हृदयायतन में प्रवेश कर गायत्री के द्वारा नयनवत् प्रकाश चैतन्य ज्योति मध्य में स्थित हो जाना चाहिये, जिस चैतन्य अव्यक्त की पुरुषात्मक उत्पत्ति चार प्रकारों से हैं अर्थात् अकार, उकार, मकार तथा चौथा अर्ध मात्रा स्वरूप से है। वह चतुर्धाभूत पुरुष ब्रह्ममय तेज से युक्त शाश्वत, ध्रुव तथा अविनाशी है वह इन्दियो के गुणों से युक्त नहीं है वरन् तेज के गुणो से युक्त है। वह चन्द्रमा की कीरणों के समान आह्लाद कारक है तथा वर्ण में स्थित होकर शोभित होने वाला है उस देवता ने नेत्रों से यजु वेद के साथ ऋग वेद को उत्पन्न किया है। तथा जिह्वा के अग्रभाग से साम वेद को एवं अपने मस्तक से अथर्व वेद को उत्पन्न किया है वे वेद सृष्टि के आदि में उत्पन्न होते ही तत्त्व से अपने क्षेत्र प्रकाश्य उपाधि को प्राप्त कर लेते हैं। इसी कारण से वेदत्व को प्राप्त होते हैं जिससे ये वेद की पदवी प्राप्त करते हैं उसी सनातन ब्रह्म का पहले अपने शब्दावलियों से निर्माण करते हैं। वे अपने-अपने मनोभावों से (गुण विशेष से) दिव्य रूप वाले पुरुष का निर्माण करते हैं अथर्व वेद का जो योग है वह यज्ञ पुरुष का शिर कहा गया है।।४१-५०।।

ग्रीवा और बाहु के बीच का भाग ऋग् वेद कहलाता है, हृदय और पार्श्व भाग सामवेद है तथा जङ्घा और चरणों के साथ वस्ति, शीर्ष एवं कटि प्रदेश यजुर्वेद है इस प्रकार वेद रचित सर्वांग है वह दिव्य रूप वाला पुरुष अमर-पद से उत्पन्न हुआ है। हे तात! वह वेदमय यज्ञ-पुरुष दोनों लोकों के लिये सुखावह तथा हिंसा से रहित सनातन पुरुष है। सभी प्राणियों के प्रभव स्थान सनातन पुरुष को जानता है वही वेद का ज्ञाता है, ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित रहकर योगारम्भ कर्म द्वारा वह साध्य है न कि शुष्क विचारों से। सम्पूर्ण कर्मो से निर्मुक्त वेद पारंगत मुनिगण ऐसा करने वालों को सिद्ध कहते हैं लोक में यही सिद्धि हैं इसमें संशय नहीं है। वेद के उपनिषद द्वारा जानकर ब्रह्म पद प्राप्ति विषयक नियम में अर्थात् मनोनिग्रह में श्रान्त वेदपारंगत ब्राह्मण वैष्णव-यज्ञ यही है ऐसा कहते हैं। जनमेजय जी बोले कि समाधि में प्रलीन हुए कामना द्वारा मनोग्राह्य चित्त की पुनः उपलब्धि कैसे होती है? हे मुने! मैं उसका कारण सुनना चाहता हूँ जैसा आप को मान्य हो वह कहिये। वैशम्पायन जी बोले हे भारत! इसका कोई बाह्य कारण नहीं होता हे नृप! शरीर के द्वारा किया गया कर्म मन में संस्कार रूप से स्थित रहता है जो अन्तर्गत कारण है वही चित्त का उद्बोधक है। मर्त्य लोक के प्रशंसित व्रती ब्राह्मण जिस चैतन्य आत्मा के द्वारा जानने योग्य सब कुछ जानते हैं वह आत्मा न जानने योग्य होता हुआ भी शास्त्र पारंगतों के उपदेश से लक्षण द्वारा जानने योग्य हो जाता है परन्तु लौकिक कर्म के द्वारा नहीं जाना जा सकता। हे महीपते! वेदाचार्य ब्राह्मण को चाहिये कि वह विनीत हो विद्या के मद से हीन हो ब्रह्म निषेवी बन यज्ञादि करता हुआ शास्त्राचार्यों से आत्म तत्त्व को जान कर मोक्ष के हेतु सदा प्रयत्न शील होवे।।५१-६०।।

वह ब्राह्मण ब्रह्म में कर्मों को अर्पित कर नियत तथा सदा पवित्र होकर हाथ जोड़ गुरु के समीप जाय और वह समाहितमति हो मुनि की भाँति ब्रह्म भाव से विनीत तथा तत्त्वज्ञ होकर सायं तथा प्रातः काल मोक्ष के कर्मों को करे। वह ब्राह्मण मनन के द्वारा उत्तम वैष्णव पद को प्राप्त करे और एकाग्र बुद्धि हो ब्रह्म का ध्यान करता हुआ प्रसन्न रहे। पुनः संसार में जन्म न हो इस

तत्त्वभाव को जानने वाला वह सांसारिक बन्धन से ममता रहित हो विकार रहित चित्त से पर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। जो सनातन ब्रह्म है उसी को अक्षर इस नाम से कहा है उसी को हमने भी कर्म-योग तथा ज्ञान-योग से दर्शाया है। उस वैष्णव पद के संचय में अर्थात् उस अक्षर ब्रह्म के निश्चय में विनीत ब्राह्मणों को तथा काम योग की निन्दा करने वाले सम्पूर्ण द्रव्य के त्यागियों को ज्ञान होता है। हे राजन्! कर्म में अर्थात् सभी कर्मों के करने पर मनसे फल की इच्छा न करने से पुनर्भव राहित्य मोक्ष प्राप्ति का ज्ञान होता है। ये सम्पूर्ण लोक कार्य-योग में ही प्रतिष्ठित हैं। कर्म फल की इच्छा से प्राणी बँध जाता है तथा कर्म फल की इच्छा न करने से मुक्त हो जाता है हे जनाधिप! फल के आदान के प्रसङ्ग से तथा पूर्व जन्म के संस्कार से बन्धन की प्राप्ति होती है यही ब्राह्मणों के द्वारा सुना जाता है। और फल की इच्छा न करने से इन्द्रिय बन्धन से मुक्त होने पर परम पद प्राप्त हो जाता है वह पुनः मनुष्य योनि में नहीं आता है।।६१-६९।।



अथ अष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

जनमेजय जी बोले- उपसर्ग, योग तथा जो ध्यान करने योग्य पद है उससे पुनः मनुष्य-सम्बन्ध शरीर में कैसे नहीं आना होता है इसे विस्तार से कहिये। वैशम्पायन जी बोले जैसे तुम ब्रह्मादि के अर्थात् योगियों के अनेक प्रकार के सभी योग-उपसर्गादिकों को पूछ रहे हो वैसे बुद्धि युक्त मन से सुनो। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों में निवास करने वाले पाँचों प्रसिद्ध गुणों का त्याग कर योग युक्त मन से ब्रह्मदर्शी योगी जब ब्रह्म को देखता हुआ तथा ब्रह्म की चिन्तना करता हुआ सनातन ब्रह्म-यज्ञ को करने लगता है तो उसके ऐसा करने पर अनैश्वर्य से अर्थात् पर वैराग्य निषेधक रूप वाले निरोधक उपसर्ग=प्रतिबन्धक खड़े हो जाते हैं। हे भारत! तब पंचेन्द्रिय समूह के विषय को तथा नव द्वारों के विषय को एवं काम, क्रोध तथा लोभ के विषय को अपनी ज्ञान बुद्धि से बाँध कर। मूहिर्न भौंह और नासिका के मध्य में ब्रह्म का नेत्र के तेज से ध्यान

करने लगता है तो नील तथा लाल वर्ण की आभा से युक्त तथा पीली एवं श्वेत धातुओं के वर्ण के समान युक्त महान् धूम उड़ता हुआ दिखाई देता है। कभी मंजीठ के रंग के समान, कबूतर के समान, शुद्ध वैदूर्य मणि के समान तथा कमलदल वर्ण के समान, स्फटिक मणि के समान, गजराज के समान, इन्द्रगोपक के वर्ण के समान, चन्द्रमा की किरणो तथा जल की प्रभा के समान तथा इन्द्र-धनुष के समान बहुत वर्ण वाले घूमों का समूह वर्षा कालीन मेघों के समान इधर से उधर उड़ता दिखाई देता है। वे पंखों वाले पर्वतों के समान आकाश में घिर जाते हैं फिर उन धूम वर्णों का समूह जल का धारण करने वाला मेघ होकर जल राशि की वर्षा कर वसुधा तल में शरीर के अन्दर प्रवेश कर जाता है यही सब योग सिद्धि के लक्षण हैं।।१-१०।।

इसके बाद सैकड़ों आवरणों से आवृत तथा परम योग से युक्त समर्थ महान् मानसिक अग्नि भौंह तथा नासिका के मध्य में जलने लगता है। उन लपटों से सैकड़ो-हजारों अग्नि के कण युगान्त कालीन अग्नि की भाँति जलते हुए निकलने लगते हैं। मेघ की जितनी वर्षा की धारायें निकलती हैं उतनी ही अग्नि की लपटें भी निकलती हैं फिर वे अग्नि की लपटें वर्षा की धाराओं के साथ मिलकर विशाल वसुधातल अर्थात् शरीर के अन्दर विलीन हो जाती हैं। इसके बाद जल तथा अग्नि के श्वेत एवं लोहित वर्ण से युक्त होते हुए योगी के मूर्ध्नि में महान् वायु झकोरने लगता है जो दिव्य सिद्ध गुणों से उत्पन्न होने के कारण स्थूल नहीं बल्कि सूक्ष्म होता है और प्राण सूत्रात्मा का विवर्धन प्रकाशक होता है। वही वायु अग्नि के साथ समूहीभूत धातुओं से संगत हो प्राण गोचर अर्थात् प्राण शब्द से कहने योग्य सूत्रात्मा होता है, वह मन का भी जनक होने से वेगवान्, स्थूलाकाश का जनक होने से भयंकर निघोर्ष करने वाला तथा ब्रह्माण्ड भेदन का सामर्थ्य रखने से बलवान कहा जाता है। ब्रह्म की प्रेरणश से अग्नि, वायु, जल, भूमि तथा अन्य धातुयें अलग-अलग सैकड़ों-हजारों मूर्तियाँ धारण कर हे नृप! वे भूतिभूत सभी धातुयें ब्रह्म की प्रेरणा से समूह में मिल कर हे महीपते! बीजभूत हो समावायत्व को (एक कार्य कारणत्व) प्राप्त हो जाती है। जो

ब्रह्म नेत्रों के मध्य में धारण का विषय है वह सूक्ष्म और विराट् दोनों है, पुरुषोत्तम ने स्वयं सूक्ष्म तथा विराट् दोनों के तुल्य ब्रह्म योगियों की रचना की है। वही भगवान् विष्णु व्यत्त अव्यक्त तथा सनातन एवं सम्पूर्ण विद्याओं के आधार और प्रलय काल आने पर प्रलय करने वाले हैं। उन योगियों के भ्रू-घ्राण के मध्य में धातुओं से नद्ध (सूत्रात्मा) स्थित पुरुष में ईश्वर की प्रेरणा से सुखः दुःख के ज्ञाता तथा अन्तर (इतर सुखादि के भोक्ता) सभी पुरुष प्रवेश करते हैं यह सभी जीवों की समष्टि है।।११-२०।।

ब्रह्म संमित अर्थात् ईश्वर को समता की प्राप्त पार्थिव मूर्तियाँ धरणी का भेदन कर अर्थात् स्थूल शरीर को त्याग कर सूक्ष्म रूप से दशों दिशाओं में प्राप्त होकर चेष्टा (सभी बातों को जानना) प्रारम्भ कर देती हैं, इसीलिये इस अवस्था को पाकर योगी सर्वत्मा हो सभी तरह की बातों का जानकार हो जाता है। ब्रह्म के द्वारा निर्मित ये सभी पार्थिव ऋषि प्रलय को प्राप्त होकर (पार्थिव घट की भाँति) विनष्ट हो पृथ्वी में मिल जाते हैं। कर्म के क्षय हो जाने से वे कर्म बन्धन वाले धातुओं से मुक्त हो जाते हैं तथा कर्मक्षय के होने पर विमुक्त हुए वे इन्द्रियों के बन्धन से भी छूट जाते हैं (और कर्मक्षय नहीं होने पर बार-बार जन्म लेना पड़ता है)। कर्म से विमुक्त ईश्वरीय प्रकृति को जाते हैं और जो अज्ञता वश कर्म को जानने वाले हैं वे क्षर (कर्म) के कारण धूमक्षय (धूमादि मार्ग से गम्य स्थान पुनरावृत्ति फल रूप पितृलोक को) जाते हैं यदि वे अग्नि गर्भ (मुख्य रूप से अग्नि होत्र करने वाले) तथा तपोमय हैं अन्यथा नहीं। जिस कर्म से तन्तु की भाँति आच्छन्न भावाभाव (सदसद् रूप संसार) पुनः प्राप्त होता है (घूमादि मार्ग से पितृलोक जाने पर जब वह कर्म क्षीण हो जाता है) तब वे पहले के तपस्वी आकाशादि क्रम से धूम, धूम से मेघ, मेघ से निर्मल जल बन कर पृथ्वी तल पर आ जाते हैं। और जल के संयोग से पृथ्वी पर ब्रह्मादि फल होते हं और फल से रस (शुक्र) बनता है। इससे शरीर धारियों की प्राण सहित उत्पत्ति होती है। जो सनातन ब्रह्म है और तन्मय रस उत्पन्न होता है इसलिये तपस्या करने में थके हुये सत्य व्रत परायण ब्राह्मण लोग बहुत से कारणान्तरों से ब्रह्म

को ही इसमें प्रधान कारण मानते हैं। हे भारत! वही ब्रह्म अव्यक्त होकर भी अपने स्वभाव से व्यक्तित्व को प्राप्त होकर विद्या (माया) के साथ सभी प्राणियों के अन्तः करण में स्थित हो विचरण करता रहता है। हे राजेन्द्र! कर्म तथा कर्ता दोनों अन्यान्य विषय में स्थित रहने तथा अनेक प्रकार के होने से साधारण मनुष्यों को नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ते, तपस्या के द्वारा पापों को भस्म करने वाले ब्रह्मवादी एवं ज्ञानियों के द्वारा ज्ञान चक्षुओं से देखे जाते हैं वे ब्रह्मज्ञानी भ्रू के मध्य में मेघ से निकले सूर्य की भाँति किरणों से व्याप्त ब्रह्म को नेत्रों से उपलब्ध करते हैं।।२१-३०।।

हे कुरु-कुलोत्पन्न! निर्द्वन्द्व तथा परिग्रह (बन्धन) से रहित योगी लोक में पक्षी की भाँति विचरण करता हुआ योग धर्म के द्वारा शीघ्र ही फलस्वरूप ब्रह्म को पा जाता है। ब्रह्म वेत्ता ही ब्रह्मा बनकर सृष्टि काल में (प्राणियों) की उत्पत्ति, ऐश्वर्य तथा प्रलय काल में मरण सैकड़ों प्रकार से करता है। बारह हजार युगों के समान हजार युग का समूह ब्रह्म युग कहलाता है यह युगों में प्रथम युग होता है, ऐसे हजार युगों के अन्त में प्रलय कारक संहार होता है इसमें सभी लोक सूक्ष्म विकार रहित तथा अचेतन हो जाते हैं। और सत्त्वादि गुणों से निर्मित यह सम्पूर्ण जगत् को प्राप्त होने पर सूक्ष्म सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है।।३१-३६।।



अथ ऊनविंशोऽध्यायः।।१९।।

जनमेजयजी बोले- हे ब्रह्मन्! हे महामुने! मैं ब्रह्म प्राप्त अर्थात् सगुण ब्रह्म की उपासना करने वाले महापुरुषों के द्वार पर और त्रेता में उत्पन्न रज-तम से पराभूत प्राग्वंश को विस्तार से सुनना चाहता हूँ। वैशम्पायन जी बोले बुद्धि के द्वारा सावधानता को प्राप्त तथा दिव्यज्ञान-साधनशील मनसे वह सब कुछ विस्तार से सुनो, जो कि तुमने पूछा है। योगात्मा भगवान् ऐश्वर्य को प्राप्त हो ब्रह्मा रूप से अपना सम्भव (आविर्भाव) अर्थात् अपने को प्रकटकर पश्चात्

प्राणियों को अधिक संख्या में रचना करते हैं। हे भारत! वे ब्रह्म अचल भाव से ब्रह्मासन पर ब्रह्मा रूप में स्थित हो रज से सहसा विक्षिप्त हो प्राणियों के बहुलत्व को करते हैं। वे ब्रह्मा मोक्ष के प्रतिबन्धक विषय में सृष्टि द्वारा ज्ञानमय मनोरथ करने पर रक्त वर्ण के हो जाते हैं जिससे हजारों मनोरथ उपन्न हो विलीन हो जाते हैं। वे सदा योग के द्वारा वेदात्मक ब्रह्म यज्ञ किया करते हैं जिससे ब्रह्मा का विशाल ज्ञान-ऐश्वर्य बढ़ता है। इसके बाद ब्रह्मभूत ब्रह्मा के द्वारा प्राणियों के हिते की इच्छा से प्रथम ऐश्वर्य उत्पन्न होता है। उस समय ब्रह्मभूत योग करने वाले ब्रह्म-योगी के हृदय में निविकार कर्म के द्वारा आकाश ऐश्वर्य उपस्थित होता है। फिर अन्तरिक्ष अविनाशी निर्मल ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। सभी प्राणियों, मनुष्यों, ब्रह्मवादियों तथा ऐश्वर्य प्राप्त योगियों का आत्मा का संहार अर्थात् लयस्थान ध्रुव (कूटस्थ) को वेद के जानकार वेद रूपी नेत्रों से जानते हैं। ब्रह्मवादी योगी से आकाश भूत ऐश्वर्य का संयोग हो जाता है तब वह आने वाले प्राप्त बहुत तैजसादि विकारों द्वारा वायुभूत प्रवर्तमान ऐश्वर्य को उत्पन्न करता है अर्थात् अपने आत्मा का वाय्वादि रूप करने लगता है।।१-१०।।

तब इन प्राप्त विकारों के निरोध के द्वारा वह ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) ध्रुव ऐश्वर्य (पूर्वोक्त निर्मल ब्रह्म को) प्राप्त हो सिद्ध हो जाता है। और वह अपने शरीर से निकल निरालम्ब होकर आकाश मार्ग से अदृश्य होने लगता है गमन करने तथा मानसिक क्रिया द्वारा निरालम्बों (व्याघ्रादिकों) के शरीर के धारण करने लगता है। ऐश्वर्य भूत भूतात्मा योगी आकाश में विचरण करता हुआ उस इन्द्रके समान नेत्रोंवाले लोगों से भी नहीं दिखाई पड़ता है। ऐसे योगी को ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ साधु लोग देखते हैं कि जो मन से ओंकार पद का अध्ययन करते हैं तथा सभी कर्मों से पृथक् हैं। मनीषी ब्रह्मवादी ब्राह्मणों के ॐ यही परम ब्रह्म है जो चेतना के साथ सभी प्राणियों के अन्तः करण में विचरते रहते हैं; ऐसा समझो। ॐ यह शब्द महानाद (सभा वर्णों का प्रकाशक) प्राचीन (नित्य) तथा ब्रह्म से उत्पन्न है वायु के द्वारा यह अक्षर (वर्ण) को प्राप्त होता है ऐसा ब्राह्मण लोग कहते हैं। यह रूप रहित ॐ

धातुओं के साथ संगत हो रूप से युक्त हो जाता है तथा प्राणियों के अन्तः करण में विचरता है कामकार इच्छा को प्रकट करने वाला स्वतन्त्र एवं सबको वश में करने वाला। ब्रह्म लोक की आकांक्षा करने वाला तदन्वय (ब्रह्म से प्रसूत) पवित्र तथा उदार प्रकृति मनीषी ब्राह्मण मन से पूर्ण करते हुए के समान पहल [illegible] ॐ का अध्ययन कर वेदात्मक यज्ञ की चिन्तना करते हुए यज्ञ (ब्रह्म) के साथ एकता को प्राप्त कर उत्तम वैष्णव पद को पाते हैं। हे भारत! ये ब्रह्मवादी जन्म-ग्रहण के कारण भूत संसार की इच्छा नहीं करते बल्कि पद (ज्ञान) के लिये ही सब क्रिया करते हैं।।११-२०।।

वे द्विज (विश्व, तैजस तथा प्राज्ञ) तीन प्रकार के माल्य एवं प्रत्येक प्रकार के भावों के उपहारों द्वारा सत्यपराक्रम से युक्त परमात्मा विष्णु को पूजते हैं। हे नृप! ब्रह्म पूर्व अर्थात् वेद को ही मुख्य प्रमाण मानने वाले ब्राह्मण भजन (योग) तथा विक्रय (योग का ऐश्वर्य) को किया है, वेदोक्त वचनों के अनुसार ब्रह्मा (ब्रह्म ज्ञानी) भी वैष्णव तेज अर्थात् ब्रह्म ही है। ब्रह्म वेत्ता, ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मवादी तथा पवित्र ब्राह्मणों के द्वारा धातुओं से मुक्त होते समय कर्मनिर्मुक्त महात्मा विष्णु देखे जाते हैं वही परम ब्रह्म तथा परम अद्भुत वैष्णव तेज हैं। वह रसात्मक ऐश्वर्य विकारों के नष्ट होने पर दिखाई पड़ता है, वे भयंकर रूप वाले विकार महात्माओं को पहले बड़ा व्यथित करते हैं। (व्यथा का प्रकार बतलाते हैं कि) वे विकार जल से अत्यन्त ढककर क्षुभित करते हुए योगी को चेतना रहित कर देते हैं फिर विकार से वह ठंडी तथा गर्म लहरों से ढक जाता है। महा नदियों के जल में वह डूबकर जल के द्वारा कष्ट पाने लगता है फिर- महार्णव में जानेपर वह (वडवानल) से जलने लगता है, शान्ति नहीं पाता। वह जल में कष्ट पाता हुआ योगी फिर ठंडे जल में बलपूर्वक पटक दिया जाता है तथा आसन और आच्छादन से अलग होता हुआ मूर्छित हो जाता है। फिर वह मेघ के नीचे जाता हुआ बहुत जलधारा वाले शुक्ल वर्ण के मेघ द्वारा सिर में जल से चारों और से भिगोया जाता है। ऊपर ज्योति को देखता हुआ वह बिजली के समान चमकने वाले श्वेत तथा पीले जलपूर्ण गम्भीर मेघों से रोक लिया जाता है।।२१-३०।।

सभी तरफ से इन आच्छादित विकारों के विरुद्ध बर्ताव कर लेने पर ध्रुव ऐश्वर्य को पाकर ब्राह्मण सिद्ध हो जाता है। वह ऐश्वर्य रसात्मक हो जिह्वा के अग्रभाग से निकल कर मेघत्व को प्राप्त हो अनेकों प्रकार का हो जाता है (अर्थात् जिह्वा के द्वारा साध्य रसास्वात्मक पदार्थों की रचना करने की भी उसे सिद्धि प्राप्त हो जाती है)। योग प्राप्त कर लेने के कारण योग से संसिद्ध वह प्रभु (सब कुछ करने में समर्थ योगी) सभी प्राणियों की पुष्टि के लिये विविध रसों की (भोगों) की रचना करता है। (जल के ऐश्वर्य वाले विघ्नों को कह कर अब तेज के ऐश्वर्य से प्रयुक्त विघ्नों को कहते हैं कि) ब्रह्म (ब्रह्म को जानने वाले योगी को) कारण अर्थात् मोक्ष साधन रूप योग में उसको सुस्थिर आत्मा के समक्ष विघ्न उत्पन्न करने वाले तेज का रूप धारण करने वाले ऐश्वर्य विकारों के साथ बढ़ने लगते हैं। वे उग्ररूपों, विकृत रूपों, भयंकर रूपों एवं सुगम्भीर रूपों वाले तथा पीले नेत्रों वाले मनुष्य के आकार से हाथ में दण्ड लेकर योगी को मारने लगते हैं और बार-बार जँभाई लेते हुए इस योगी के शरीर को विन्दन्ति (विदि अवयवे) अर्थात् अगशः भेदते हैं और नेत्रों को निकालते हुए उसके भयंकर जिह्वाग्र को खींचते हैं। फिर वे बहुत रूपों में परिणित हो नृत्य करते हुए विशेष तृप्त करने के लिये गाने लगते हैं। इसके बाद वे सभी स्त्री होकर उसके कण्ठ मे लिपट कर लटकने लगते हैं, वे बहुत-बहुत रूपों से विघ्नों द्वारा योग भंग करने के लिये प्रलोभित करते हैं और वे मधुर नामों से बोलने लगतें हैं तथा भयरहित हो प्रसन्नता की इच्छा से एक ही बारसभी योगी के चरणों में मस्तक रख कर गिर जाते हैं योग के बीच विघ्न उपस्थित करते हुए बहुत प्रकार की बातें करते तथा नाचते हैं ऐसा करके वे योगी पर विजय भी पा लेते हैं।।३१-४०।।

इन उपस्थित विकारों का विरोध कर ब्रह्म वेत्ता योगी ध्रुव ब्रह्मवेत्ता ऐश्वर्य को पाकर सिद्ध हो जाते हैं। अग्नि तथा सूर्य की किरणो के समान तेज के रूप वाले ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाली लपटें तेज रूपी होकर भी जल बिन्दु हो जाती हैं। सत्त्वादि गुणों से संवृत (सम्यक प्रकार से अच्छादित) योगी सूर्य और चन्द्रमा की गति को प्राप्त कर निरन्तर आकाश में विचरण करता हुआ

नक्षत्र तथा तारा गणों से सम्यक् घिरा रहता है। इस योगी की चन्द्र-सूर्यात्मक दिव्य तथा उत्तम ज्योति मेघ मण्डल के साथ निश्चित काल प्रर्वतक श्रेष्ठ चक्र की भाँति लोक में चमकती रहती है। अर्ध मास, पूर्णमास, ऋतु, सम्वत्सर, क्षण, लव, मुहूर्त, कला, काष्ठा अहो-रात्र-प्रमाण, निमेष तथा उन्मेष, ताराओं की एवं विशेष करके ग्रहों की गतियों का रूप योगी ही बन जाता है। योग से युक्त योगी जब विकार (रज तथा तमोमय) ग्रह जन्य पार्थिव को स्वीकार कर लेते हैं तो उससे अभिग्रस्त हो अचल आसन से संसार में गिर पड़ते हैं। तब वे शीघ्र ही काँपते हुए निन्दित हो जाते हैं और योग में लोभ रहित होने से उनका ऐश्वर्य टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, वसुधा तलपर वे बार-बार वाक्य बाणों से छिदते हुए दुःखी होते हैं। जब योगी प्राणियों के बहुत रूपों द्वारा तथा अन्य भूतल वासियों के द्वारा उपस्थित किये गये विषयों में जुट जाता है तो वह शीघ्र संक्षेप से संसार में अवरुद्ध कर लिया जाता है। इसके बाद सभी तरफ पार्थिव ऐश्वर्यों का सेवन करता हुआ वह बहुधा मूर्तिमान् धातुओं के द्वारा मार डाल जाता है।।४१-५०।।

वह शक्ति, तोमर, निस्त्रिंश (खड्ग) गदा, तलवार तथा हजारों क्षुरा की धारों आदि से वह काट कर गिराया जाता है। फिर तीक्ष्ण मर्मभेदी बाणों के नोकिले भागों से वह वेधित होता है इन पार्थिव का निरोध कर सभी तरफ से निवृत्त हो जाने पर ध्रुव ऐश्वर्य को पाकर ब्रह्मवेत्ता सिद्ध हो जाता है इसके बाद विकार से निर्मुक्त हुए योगी के सामने पार्थिव ऐश्वर्य प्रकट होते हैं। विकारों के प्रलय हो जाने पर जब योगी समाधि में प्रविष्ट होता है तो वह दिव्य गन्धों को सम्यक् प्रकार से सूँघकर दिव्य अर्थ वाले वेदान्तों को सुनाता है। वह दिव्य मुक्त रूप वाले पुरुषों के साथ जब तक कि शरीर-पात नहीं होता तब तक ऐसे कष्टों से व्यथित होता है, शरीर-पात के बाद कैवल्य प्राप्त करने पर नहीं भेदा जाता है फिर तो वह पुण्यशीलों के अन्तः करण में भी प्रवेश कर जाता है और प्रधानात्मा अक्षर (ब्रह्म) की भाँति सभी का अन्तः करण रूप हो जाता है।।५१-५५।।

❖✳❖

अथ विंशोऽध्यायः।।२०।।

वैशम्पायन जी बोले- निर्मुक्त अन्तर्रात्मा से पितामह ब्रह्मा ने पहले ब्रह्म कर्म समारम्भ किया फिर इसके पश्चात् मन से दूसरी धारणा किया। ब्रह्मा मन से सभी अंगो को धारण कर हँसते हुए ब्रह्म-योग के द्वारा मन से प्रजाओं की सृष्टि आरम्भ की। प्रभु ब्रह्मा ने अपने नेत्रों से रूप सम्पन्न अप्सराओं की सृष्टि की तथा नासिका के अग्रभाग से चित्र-विचित्र वस्त्रों से सुसज्जित गन्धर्वों को उत्पन्न किया। वे तुम्बुरु आदि प्रमुख गन्धर्व सब सैकड़ों हजारों की संख्या में उत्पन्न हुए वे नाचने गाने में कुशल थे। योग के ज्ञाता भगवान् ब्रह्मा ने सुन्दर नेत्रों तथा केशान्तों वाली, सुन्दर भौंह एवं मनोहर मुख वाली, सौ दल वाले सुन्दर कमल से शोभित, स्वच्छ (नेत्रों के समान दिव्य) तथा सेवन करने योग्य पवित्र ब्राह्मी गिरा अर्थात् वेद वाणी को मूर्तिमता लक्ष्मी की भाँति मन से रचा। हे राजन्! सभी प्राणधारियों में श्रेष्ठ भूतात्मा ब्रह्मा ने चित्त से सम्यक् प्रकार उच्चारण कर वेद की ऋचाओं की रचना की। चक्षु से रूप वाली अप्सराओं को रचा तथा नासिका के अग्र से सुन्दर वस्त्र वाले और सुन्दर गीत वाले गन्धर्वों को रचा। गन्धर्वों के लिये सम्पूर्ण गन्धर्व शास्त्र की रचना की और अन्य ब्राह्मणों को गाने के लिये ब्रह्म को कहने वाले सामवेद की रचना की। गति वाले तथा स्थिर रहने वाले प्राणियों की रचना उन्होंने अपने दोनों पैरों से की तथा सृष्टि को विस्तृत करने के लिये नर, किन्नर, यक्ष, पिशाच, सर्प, राक्षस, गज, सिंह, व्याघ्र, मृग तथा हजारों तृण (घास) की जातियों तथा बहुत प्रकार के चौपायों को रचा।।१-१०।।

जो कर्म के द्वारा प्राप्त कारणों से हाथ में लेकर खाते हैं उन्हें तथा हाथों के लिये कर्म एवं मन द्वारा मन्तव्य की रचना की। प्राणियों के सुख की इच्छा से वायु के द्वारा विसर्ग (आनन्द) को रचा (इस प्रकार राजसी सृष्टि करते हुए जीवों की कैसे मुक्ति होगी, इसी का उपाय कह रहे हैं) जब जीव पाँचों इन्द्रियों की समाधि से अर्थात् निरोध वृत्ति कर लेने से आशक्ति से रहित हो जायेगा। उस समय वह आनन्द स्वरूप परमात्मा का उपलक्ष्य कर उनके

समीप स्थित हो जायेगा। ब्रह्मा ने हृदय से गौओं की तथा बाहुओं से पक्षियों की रचना की और भी अनेकानेक जीवों को अलग-अलग रचना उन्हीं के वेषों को धारण कर किया। इसके पश्चात् षट् कर्मों से युक्त ब्राह्मण वंश को विस्तृत करने वाले तेज से चमकते हुए दिव्य अङ्गिरा ऋषि को भौंह के बीच से उत्पन्न किया फिर महायोगी पितामह ने मस्तक से विग्रह (कलह) प्रिय नारद तथा सनत्कुमारको उत्पन्न किया। निरन्तर रात्री के स्वामी होने वाले, ब्राह्मणों के राजा चन्द्रमा को ब्रह्मा ने युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया। तब वे निशाकर महान् तब से युक्त हो ग्रहों के साथ अपनी भा से जगत् को प्रकाशित करते हुए आकाश के मध्य विचरने लगे। भगवान् ब्रह्मा ने सिद्धि को प्राप्त हो शरीर के योग से तथा मन से स्थावर एवं जंगम सभी प्राणियों की रचना की।।११-२०।।

सभी प्राणियों के पितामह ब्रह्मा ने सैकड़ों प्रकार से पृथक्-पृथक् प्राणियों के स्थानों और योगों का निर्माण किया। यही सब ब्रह्ममय यज्ञ योग तथा सांख्य है, तत्त्वतः विज्ञान, स्वभाव, क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ भी है। एकत्त्व, पृथत्त्व, उत्पत्ति, मरण, काल, कालक्षय तथा ज्ञेय एवं विज्ञान है।।२१-२३।।



अथ एकविंशोऽध्याय।।२१।।

जनमेजय जी बोले- हे ब्रहान्! युगों में प्रथम होने वाले ब्रह्म युग को सुन लिया अब हे प्रभो! मै उपायज्ञों के द्वारा कहे गये बहुत नियमों वालें तथा यज्ञों से शोभित संक्षिप्त एवं विस्तृत क्षेत्र-युग को सुनने की इच्छा करता हूँ। वैशम्पायन जी बोले- दान तथा धर्मों से और विविध प्रकार की प्रजाओं से उपशोभित एवं यज्ञ-कर्मों द्वारा पूजित इस क्षत्र-युग को मैं तुमसे कह रहा हूँ। शरीर त्याग के बाद अंगुष्ठ मात्र के रूप वाले वे ज्ञान सिद्ध ब्राह्मण मुनि निष्काम कर्म के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने की विधि से सूर्य-रश्मियों के सहारे सूर्य मण्डल का भेदन कर ब्रह्मलोक चले जाने के बाद भी हे महीपते! यज्ञादि

में प्रवृत्त होने पर और शमादि में अप्रवृत्त होने पर वे नित्य ब्रह्म-परायण ब्रह्मण-मुनि, ब्रह्म का संगम करके पुनः वापिस आ जाते हैं। श्री अर्थात् श्रुतियों से आवृत्त अतः पावन एवं ब्रह्मचर्य का आचरण किये ब्रह्मज्ञान से जगे हुए ब्रह्म लोक में स्थित ब्रहमण सहस्त्र युग के अन्त में प्रभाव के प्रलय होने पर अर्थात् ब्रह्मा की आयु पूर्ण हो जाने पर समाहित चित्त तथा ज्ञान सिद्ध एवं धन सम्पन्न ब्राह्मण होकर उत्पन्न होते हैं। उन ब्राह्मणों में जो इन्द्रियातीत योगात्मा तथा विष्णु के समान हैं वे ब्रह्मा से उत्पन्न दक्ष प्रजापति होकर बहुत सी प्रजाओं की सृष्टि करते हैं। दक्ष रूपधारी इस विष्णु के समान ब्राह्मण ने ही अक्षर से सौम्य ब्राह्मण, क्षर से क्षत्रिय बान्धव, विकार से वैश्य तथा धूम विकार से शूद्रों की रचना की है उसके विचार से श्वेत, लाल, पीले तथा नीले चार प्रकार से ब्राह्मणादि वर्णों का विभाजन किया जैसे जैसे निष्काम कर्म वाले श्वेत, निष्काम तथा सकाम दोनों कर्म वाले लाल, केवल सकाम वाले पीले तथा तमोमय नीले।।१-१०।।

हे महीपते! इसके बाद प्रजा चार प्रकार के वर्णों में, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के रूप में विभक्त हो गई। वे प्रजायें एक तरह के चिह्न से, पृथक्-पृथक् धर्म से, दो पैरों वाली यातना (कर्मफल भोग) से युक्त सभी कर्मों में गति का ज्ञान रखने वाली परम अद्भुत हुई। हे महीपते! तीन वर्णों की क्रियायें वेद प्रोक्त कही गई है। उससे ब्राह्मण योग अर्थात् ब्रह्म है ऐसा मानने से विष्णु में भक्ति उत्तपन्न होती और उस वैष्णव कर्म से भगवान् की कृपा का लाभ होता है। महायोगी विष्णु स्वरूपीब्रह्मप्राप्त ब्राह्मण ही ज्ञान-तेज के द्वारा उत्पन्न योग से कर्मान्तर में पहुँचा हुआ प्राचेतस (दक्ष) प्रजापति हो जाता है। (तीन वर्णों के बाद शूद्र की उत्पत्ति) निर्माण कार्य (शिल्प अथवा सेवा कर्म) के लिये हुई है, अतः शूद्र वैदिक कर्म से रहित हैं इसलिये वे उपनयन संस्कार के योग्य नहीं है क्यों कि इनमें ब्रह्म तेज नहीं रहता है। जैसे अरणी के मन्थन करने पर अग्नि निकलता है और उस अग्नि से धूम का समूह प्रकट होता है और वह उड़ता भी रहता है पर उस धूम का प्रयोग याज्ञिक कर्म में नहीं होता वैसे ही जन्म से पूर्ण रूपेण तमोमय होने से पृथ्वी पर विचरते हुए शूद्र

असंस्कृत होने से वैदिक धर्म-कर्म के लिये उपयुक्त नहीं होता। इसके बाद दक्ष के ब्रह्म वेद के योनि (स्थान) भूत ब्राह्मण उत्पन्न हुए जो बलवान्, महा उत्साही, महावीर्य, शान्त तथा महा पराक्रमो थे। पिता दक्ष ने दक्षिणा (समर्थ) यज्ञ कर्म करने वाले उन महात्मा पुत्रों से कहा कि हे पुत्रों! मैं आप लोगों से आपको धातृ (जन्मदातृ) के अन्त अर्थात् सिद्धान्त को सुनना चाहता हूँ क्योंकि मैं बलवान् सुनने में समर्थ हूँ। इसको सुनने के बाद हे तत्त्वज्ञों! मैं प्रजाओं में अधिक बल का विधान करूँगा क्षेत्र की विपुलता से प्रजाएँ भी विपुल होंगी।।११-२०।।

विपुला (माया) का सार जानने की इच्छा वाले प्रजापति के पुत्रों को धातृ देवी ने नेत्र ज्ञान के प्रमाण से अपना रूप नहीं दिखाया। आत्म-भाव के निवृत्त हो जाने पर तथा कृतयुग में विशुद्ध सत्त्व मय भाव में स्थित हो जाने पर सभी प्राणीयों को जन्माने वाली धातृ ने मात्रा (चेतन) से प्राप्त हो अण्डज और उद्भित तथा स्वदेजों की जननी बनी और कर्मफल प्राप्त करने वाले जन्तुओं की सूक्ष्मता तथा विस्तृतता की भी कारण बनी।।२१-२३।।



अथ द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

जनमेजय जी बोले- हे ब्राह्मणोत्तम! मैं अब त्रेता में साधु पुरुषों के सभी आचरण को सुनना चाहता हूँ कि जिसके आचरण से सभी सांख्य योगादि विद्याओं से परे अविनाशी ब्रह्म को देखूँ। वैशम्पायन जी बोले! खिन्न होकर पुरुषोत्तम योगेश्वर दक्ष ने पर्वत के शिखर पर स्त्री भाव का अवलम्बन कर योग से अपनी आत्मा को पती तथा पत्नी दो भागों में विभक्त कर दिया। पत्नी सुन्दर जानुओं वाली तथा पुष्ट जघनस्थलवाली सुभ्रु एवं कमल के समान मुख वाली थी उसके नेत्र लाल थे वह देखने में बड़ी प्रिय और सभी प्राणियों के मन को हरण करने वाली थी। प्रचेता पुत्र दक्ष ने उस पत्नी में आधे शरीर के पति संयोग से कमल के समान मुख वाली कन्याओं को उत्पन्न किया।

इसके बाद स्त्री का रूप त्यागकर पुनः पुरुष रूप से दक्ष सभी प्राणियों के देखने में ऋषि सुन्दर से सुन्दर बन गये। हे भरत! उन कन्याओं को प्रचेता-पुत्र प्रभु दक्ष ने ब्रह्मदेव अर्थात् ब्राह्मणों को दान देने योग्य संस्कृत कर ब्रह्म प्राप्त (ब्राह्म विवाह) की रीति से दे दिया। दस कन्यायें धर्म को, तेरह कन्यायें कश्यप को तथा सत्ताइस कन्यायें चन्द्रमा को पत्नी बनाने के लिया दान कर दिया। दक्ष उन कन्याओं को देकर ब्रह्मक्षेत्र में (प्रयाग) में जा धन को एकत्र कर मुनि के रूप में हो ब्रह्मदेवताओं के द्वारा आधारित पुण्यकर्म करने लगे। हे नृप! फिर वे तप करते हुए मृगों के साथ वसुधा पर विचरने लगे। साक, मूल तथा फलों को खाने से और निरन्तर तप करने से वृद्ध की तरह ज्ञात होने लगे। उनके अहिंसावाद से मृग प्रसन्न होते थे तथा उनके तप के फल अहिंसा से ही वैर त्याग होता है, ऐसा देखकर तपस्या से जले हुए पाप वाले पुण्य कर्मा एवं व्रत से त्याग होता है, ऐसा देखकर तपस्या से जले हुए पाप वाले पुण्य कर्मा एवं व्रत दीक्षित ब्राह्मण होते थे।।१-१०।।

संग्राम काल में अर्थात् योग द्वारा चित्त को जीतने के समय में शरीर-इन्द्रियादि के नियन्ता कालज्ञ मुनि कर्म यज्ञ के द्वारा उत्पन्न की गई स्वर्ग तथा नरकादि रूप सिद्धि के लक्षणों को देख लेते हैं। दान, मान और उद्वेग रहित एवं सात्त्विक भोजन करने वाले सपत्नीक तथा सुपुत्र वाले होकर भी उनका त्याग कर दक्ष की भाँति तप करते हुए मृगों के साथ वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाते हैं। स्तोत्र (वेदाध्यन) के द्वारा सम्यक् सिद्ध ब्राह्मण ब्रह्म की उपासना का स्थान होने से उनके शरीर को ब्रह्मक्षेत्र कहते हैं, ज्ञान प्रकाशक वेद में भी यह बात कही गई है। और जितेन्द्रिय तथा क्रोध को जीतने वाले कर्म से निर्मुक्त संन्यासी तथा अकिंचन पद (ब्रह्म) की इच्छा करने वाले वसुधा पर विचरते हुए ब्राह्मण भी यही बात कहते हैं (इस प्रकार सपत्नीक को भी वन गमन के योग से सिद्धि होती है यह कहा)। ब्रह्म (वेद) का आचरण करने वाली जो मानसी प्रजा पहले उत्पन्न हुई थी वही प्रभाव के दूरतिक्रम होने से व्यक्तित्व को प्राप्त हुई। हे महीपते! स्वभाव का उलंघन कठिन होने से अव्यक्त से व्यक्त को प्राप्त होती है इसकी यह व्यक्ताव्यक्त गति काल के ही योग से होती है। हे

भारत! स्थावर, जंगम, सूक्ष्म तथा स्थूल प्रजायें काल के ही योग से होती अथवा नहीं होती है। काल के धर्म से ये सभी प्रजायें दक्ष की कन्याओं में अविनाशी कश्यप जी के संयोग से हुई हैं। आदित्य गण, वसुगण, विश्वेदव तथा मरुत् गण, नाग एवं अनेक शिरवाले साध्य-पन्नग, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष सुपर्ण तथा और गरुत्मान् यक्ष सुन्दर वस्त्रधारी किन्नर, गायें, पशु-गणों के साथ मनुष्य हे वसुधाधिप! चर-अचर, पृथ्वी को धारण करनेवाले पर्वत, गज, सिंह, व्याघ्र, अश्व, पक्षी, खड्गरूपी सिंगों को धारण करने वाले वृषभ तथा मृग और चार प्रकार के दाँतों वाले हाथी एवं कमल के समान शुभ वर्ण वाले सम्पूर्ण लक्षणों से सम्पन्न इच्छानुसार रूप धारण करने वाले प्राणी (मनुष्य-गण) कश्यप से दक्ष पुत्रियों में उत्पन्न हुए।।११-२०।।

अपने पूर्वकल्प के रूप, गोत्र, शील तथा पराक्रम के अनुसार इस सनातन धर्म प्रसवभूमि भारत वर्ष में मुनि लोग भी उत्पन्न हुए। मन से कल्पित लोक अर्थात् दिशायें पहले की भाँति प्रकट हुई जहाँ पर धार्मिक क्षेत्र तथा वेद गोचर सभी देवता उत्पन्न हुए तथा स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित हुए। हे मनुजाधिप! जो अन्य तप-सिद्धि तथा गृहस्थ ब्रह्मचर्य से संसिद्ध हो गुरु की सेवा में लगे हुए हैं और हे महीपते! जो सिद्धि के लिए योग गति को प्राप्त हुए हैं तथा जो ब्राह्मण अधिक क्लेश वाले कर्मों से उत्पादित वृत्ति का लाभ करते हैं जो, शिलोच्छ वृत्ति वाले प्रसिद्ध सपत्नीक तथा दृढ़ व्रत वाले हैं ये सभी व्रत का आचरण करने वाले स्वर्ग में सुख भोगने वाले होते हैं।।२१-२८।।



अथ त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

जो तिसरे अध्याय में प्राणरोधक तथा हविर्यज्ञात्मक दो प्रकार के व्रत कह आये हैं उनमें से पहले वाले को भी यज्ञ के रूप में कहने के लिये) वैशम्यायन जी बोले– मेरु पर्वत की पृष्ठ भूमि पर जटा तथा मृग चर्म धारण किये त्यक्त क्रोध जितेन्द्रिय ब्राह्मण एकाग्र चित्त से पितामह ब्रह्मा को आचार्य मानकर बैठे थे। वह पर्वत सभी पर्वतों में संसिद्ध अविनाशी था और बहुत

प्रकार के वृक्षों से ढका था उसकी शिलायें मैन शौलादि धातुओं से रञ्जित थीं तथा उसकी पृष्ठ भूमि समतल एवं तृण और कंटकों से रहित थी और वह ब्रह्म को बतलाने वाले तीनों वेदों के पाँचों स्वरों से विराजित थी तब ऐसे पर्वत के ऊपर नित्य मन्त्र यज्ञ में तल्लीन तथा हितकर व्रत में तत्पर सुसमाहित मन वाले सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण एक ही अग्नि का अवलम्बन कर मन्त्र के अनुसार विभाग किये। वेद के पारगामी मुनियों ने अग्नि को तीन प्रकार से प्रणीत किया इसलिये वे तत्त्व को प्राप्त हुए क्योंकि एक अग्नि को तीन प्रकार से विभाजित किया था। हे मन्त्र को जानने वाले जनमेजय! स्वधाकार के द्वारा हवि से एक ही अग्नि वृद्धि को प्राप्त होता है। (पूरक, कुम्भक तथा रेचक) तीन प्रकार के निर्मित अग्नियों के अभ्यास से ही सभी कार्यों में सम्यक् दक्षता को प्राप्त कर प्राणियों से सत्कृत सभी प्राणियों के पितामह स्वयं भगवान् ब्रह्मा ब्राह्मणों के निर्माता बने। जो पूरक अग्नि को धारण करते समय दण्डी (दण्डाकार) कुम्भक के समय चर्मी (चर्मधारी के समान) तथा रेचक के समय शराकारवत् होने से शरीर के रूप में प्राप्त होते हैं तथा जो संसार वृक्ष को काटने के लिये खड्गी (तीक्ष्ण तलवार धारण करने वाले) तथा प्रलय के समय शिखी सांवर्त्तक अग्नि बन जाते हैं वे सन्तापों को त्यागने से स्वभावतः फूले हुए कमल के समान मुख वाले, जितक्रोध तथा जितेन्द्रिय हो गये। जब ब्रह्मा पुष्कर में (आत्म तीर्थ में) बुद्धि के साथ संगत हो उनका भजन करते हैं तो इन्द्र द्वारा कहे गये सामवेद के मन्त्रों का ब्रह्मवादी ब्राह्मण गान करते हैं। ब्रह्मा (सुत्रात्मा) के स्थान भूत बाह्य यज्ञ में वेद प्रोक्त परम हवि, घृत, क्षीर, भव, वृद्धि ये सब रखा गया है।।१-१०।।

शमी के गर्भ से निकली आग्नेयी अरणी का मन्थन कर ब्रह्मा ने पहले-पहले उसमें अन्य अग्नि को प्रकट किया। जैसे बाह्य यज्ञ कर्म में मन्थन कर अग्नि को प्रकट किया जाता है वैसे ही मानसिक यज्ञ में भी अविधा रूपी अरणी का मन्थन कर उसमें छिपे हुये ईश्वर रूपी अग्नि को प्रकट किया है परन्तु जैसे अल्प अर्थात् ब्राह्य द्रव्यों का यज्ञ कर्म में विधान हैं वैसा घृतादि का विधान मानसिक यज्ञ में नहीं है हवन किये घृतादि द्रव्य से जो स्वर्गादि रूप

बल (फल) प्राप्त होता है वह विभागशः ऊँच-नीच स्थान परक बड़े तथा छोटे कर्मों के अनुसार होता है। और वितत अध्वर अर्थात् योग यज्ञ में जो हवियाँ विहित हैं और उनके द्वारा जो फल होता है उस अणिमादि ऐश्वर्य का प्रयोग ब्रह्मवादी प्रयोगज्ञ मुनियों ने किया है सो स्पष्ट है। परम ब्रह्म रूप सम्पत्ति से मुक्त होकर छः महीने तक ब्रह्म सम्बन्धी योग-यज्ञ करने पर बृहस्पति ने चारों वेदों से सम्वाद करने लगे अर्थात् उन्हें प्राप्त कर लिया था। शिक्षा के अक्षरों से युक्त तथा सभी तरफ से मधुर एवं सानु (शिखर अर्थात् उपनिषद) और स्वरित (स्वर्गगति साधन कर्म, इन दोनों से) रमा अर्थात् रमणीय सरस्वती (वेद) को पाकर बृहस्पति सभी शिष्यों को पढ़ाने लगे। हे भारत! उसी वेद प्रोक्त ब्राह्मण शब्द से ये याज्ञिक प्रसिद्ध यज्ञ दूसरे ब्रह्मलोक के समान अर्थात् आध्यात्मिक योग यज्ञ शोभनीय ज्ञात होता है। अनामय अर्थात् अप्रमाण की शंका से रहित वेदों के शब्दों द्वारा ब्रह्मा के मुख से कथित यज्ञ के प्रमाण की शंका से रहित वेदों के शब्दों के अनुसार सादर यजमान के द्वारा प्रयोग करने पर वह बात में बात कहने की तरह बढ़ने लगता है। पश्चात् वह कर्म यज्ञों समिधाओं सोमकलशों (सोम की धारण करने वाली चमसों) पात्रों (स्रुवादिकों), बहीः खलों, यव-व्रीहि तथा घृताहुतियों एवं जल से पूर्ण कलशों औंर प्राप्त वसुओं (स्वर्णादिकों), ईश्वर परक कर्मों (हवनादिकों), दूध देने वाली गौवों तथा कमल शब्दों के प्रयोग के सम्पन्न होने लगा। हे भारत! बाह्य यज्ञ ब्रह्म (वेदों) के घोषों से तथा वय (दक्षिणा) से और तप से वृद्ध होता अर्थात् बढ़ता है (अधिक फल दाता होता है) और ब्रह्मज्ञानमय यज्ञ (योगयज्ञ) अध्यात्म विद्या के द्वारा संगत होकर वृद्धि को प्राप्त होता है।।११-२०।।

हे! नृप क्रिया मूर्ति अर्थात् यज्ञात्मा ब्रह्मा मरुत् गणों के साथ मन-कल्पित समिधाओं से तथा जो -जो अन्य पदार्थ ब्रह्मा से स्वयं उत्पन्न हुए घृतादि से योग-यज्ञादि में हवन करते हैं। तेज की मूर्ति धारण करने वाले रूपों (द्रव्यों) से युक्त वेद विधि से किया हुआ ब्रह्मा का यजन सम्पूर्ण प्राणियों को धारण करनेवाले कर्मों का स्पर्श नहीं करता, अतः ऐसा यज्ञ सब यज्ञों से श्रेष्ठ है। फिर शमी के गर्भ में उत्पन्न जो पीपल वृक्ष है उससे निकली आग्नेय अरणी

का मन्थन कर ब्राह्य यज्ञाग्नि में अग्निहोत्र नामक यज्ञ द्वारा वे समर्थ ब्रह्मा पूर्ण रूप से यजन करने लगे। चमस तथा अध्वर्यु आदि सहायकों के अनुसार यज्ञ कर्म में क्रियायें होने लगीं तथा वे मधुर वाणी बोलने लगे इस प्रकार वह यज्ञ-सभा सदस्यों के द्वारा प्रकट रूप से शोभने लगी। हे राजन्! वे तथा वेदांग के पारंगत एवं तपसे युक्त महर्षियों द्वारा कर्मों से वह महायज्ञ सूर्य तथा चन्द्रमा की भाँति शोभने लगा। वेद के महान् घोष से वह यज्ञ मण्डप दूसरे ब्रह्म लोक भाँति ज्ञात हो रहा था और ब्राह्मणों तथा महर्षियों के उपस्थित होने से मानों वह प्रतीत हो रहा था कि सभी देवता भूमि पर उतर आये हैं। वेद-वेदांगवेत्ता, ब्रह्मवादी एवं तप से थके विनीत महर्षियों के गमनागमन से वह यज्ञ-स्थल मनुष्य लोक में स्वर्ग की भाँति शोभित हो रहा था। ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ में हवन से जलती तीनों अग्नियों से वह ब्रह्मा का महान् यज्ञ ब्रह्मलोक की भाँति शोभ रहा था। उस विस्तृत यज्ञ में इन्द-प्रोक्त सामवेद के मन्त्रों का ब्रह्मवादी लोग गान कर रहे थे तथा ययुर्वेद के प्रयुक्त वचनों का पाठ कर रहे थे। वहाँ तप के प्रभाव से शान्त ब्रह्म में तत्पर सत्य व्रत में सावधान रहने वाले मन से मनन करने वाले सभी मुनि आये थे।।२१-३०।।

हे राजन्! सभी धर्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा से उत्पन्न प्राचीन बृहस्पति मूर्ति भेद से होता और ब्रह्मा दोनों बने थे। हे नृप! यज्ञ के अन्त में यजमान ब्रह्मा विष्णु का पूजन कर अदिति की तपस्या से ढके हुए गर्भ में अर्थात् विष्णु में प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार विष्णु के परम पद को प्राप्त कर अज ब्रह्मा निर्द्वन्द्व तथा भार रहित हो गये, कि जिस विष्णु से ऐसे हजारों ब्रह्मादि उत्पन्न होते हैं और आगे भी होंगे। विष्णु-पद अवन्ध्य, (सर्वकर्म-फलगर्भित) अप्रमेय, तथा कर्मों से व्यतिरिक्त है, जिस विष्णु की आत्मा से परिग्रह (बन्धन) रहित मुनि-गण होते हैं। हे महीपते! दोष के उत्पन्न होने से विषय बाधक बन जाते हैं। हे महीपते! सभी प्रकार से बाँध लेने वाले रूपादिक विषय रागादि (प्रेमादि) दोष उत्पन्न हो जाते हैं, वे सभी दोष पूर्व संस्कार के बल से मन को एकबा एक आच्छादित कर लेते हैं। देह धारियों का रूपादि दर्शन अपरिहार्य है, अतः वह शरीरधारी बन्धन से रहित कैसे हो सकता है इसी शंका का समाधान कर रहे

हैं कि मैं और मेरा इस अविद्या से ही बन्धन होता है, केवल दर्शन मात्र से नहीं बन्धन हो जाता। मुनि-गण (अहं-मम से रहित हो) इन्द्रिय समूह के विषयों में विचरते हुए भी बन्धन से रहित हैं क्योंकि वे अविद्या के लक्षण से युक्त शुभ धर्म को भी बन्धन ही समझते हैं। हे नृप! यदि मुनि शब्द के तत्त्वार्थ से अर्थात् तत्त्वमसि वाक्य के उपदेश से ब्रह्मवादी मन को पकड़ना चाहते हैं तो वह मन विद्यालक्षण के संयोग से विषयों द्वारा घेरा नहीं जाता है। हे कुरु श्रेष्ठ! वेद विद्या के व्रत में कथित नियमों का पालन रूप कर्म सज्जन लोकों (पुरुषों) का स्वर्ग लोक कहा जाता है। हे भारत! जहाँ कि हव्य से पुष्ट देवता क्षय को नहीं प्राप्त होते हैं और हे वसुधाधिप! अपने कर्मो उदित होने से प्राप्त स्वर्ग में स्वर्गीय योगों से यजमान ज्वर (विषाद) रहित हो अपनी पत्नी के साथ हर्षित होता है। सभी प्राणियों पर दया करने के लिये निर्मल अन्तरात्मा से समर्थ ब्रह्मा ने यज्ञ के अन्त में शैलेन्द्र को ब्राह्मणों के लिये दे दिया।।३१-४०।।

उस शैल को पाकर परस्पर विवाद करने वाले ब्राह्मण उसे विभाजित करने को उद्यत हो गये पर सभी उद्यमों के द्वारा भी उसके अंगों का विभाजन न कर सके। इसके बाद वे ब्राह्मण-गण वसुधातल पर बैठ गये हे नृप! श्रम से अभिहत हो वे खिन्न बदन हो गये। सुन्दर स्थल वाला वह प्रधान पर्वत शिर से नम्र हो मधुर वाणी द्वारा उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों से बोला। आप लोग परस्पर विरोधी बन सुसंग से रहित हो इसका विभाजन दिव्य सैकड़ों वर्षों मे भी बल पूर्वक नही कर सकते जब आप सभी विरोध से रहित हो एक होकर निर्वृत्त (शान्त) हो जायेंगे तो एक ही बार में विभाजन कर लेंगे। हे ब्रह्मसत्तमो! राग और द्वेष से बल खाण्डित हो जाता है और राग द्वेष से रहित होने पर निरन्तर ब्रह्म में आस्था बढ़ती है। मैं गुहा में सोंने वाले स्वर्ग-भिन्न संस्कारों के द्वारा जब इस शैल (पाषाण समूह) का भेदन कर आपके भेदन में नियुक्त करूँगा तभी आप लोग पूर्वोक्त ढंग से भेदन करियेगा मैं सैकड़ों शिलाओं से, बहती हुई धातुओं से, शिखरों के अनुपात (क्रम) से, विशीर्ण हुए पार्श्व विवरों से, नागों से और पृथ्वी पर फैलने से तथा बहुत प्रकार के सुवर्ण खण्डों से उद्यमान हो (प्रेरित हो) भेदन करूँगा। शैलेन्द्र के इस सुभाषित बचन को ग्रहण कर

सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण मौन हो गये।।४१-४९।।



अथ चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।

वैशम्पायन जी बोले- हे भारत! उसी समय से गृहधर्म में रहने वाले तपोधन ब्राह्मणों के द्वारा बलिदान तथा होम कर्म बढ़ने लगा। हे भारत! उसी समय से देवता, विष्णु तथा पूजनीय गुरु आदि पृथ्वी पर ब्रह्मवादियों द्वारा पूजे जाने लगे। हे राजन्! उसी समय से उन ब्रह्मवादियों का निवास वहीं ब्रह्म सदन में होने लगा जो पर्वत के ऊपर तृण तथा कनकों से रहित घृत एवं समिधा से युक्त पुण्य देश है। जहाँ तप की इच्छा वाले महाभाग्यशाली लोग ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित रहकर भगवत् क्रिया को सुलभता से होती देखकर निवास करते हैं। दानप्राप्त (शुद्धिप्राप्त) चित्त से गृहस्थ धर्म में निरत मनुष्य लोग तथा यहाँ धर्म (उपकार) की आकांक्षा करने वाले संन्यासी लोग भी जहाँ वास करना चाहते हैं। वानप्रस्थ तथा कर्म-फलों के द्वारा ईश्वर में रत समाहित चित्त वाले क्रोध को जीतनेवाले अग्निहोत्र व्रत में निपुण ब्राह्मण श्रेष्ठ जहाँ वास करना चाहते हैं। दैव युक्त (विना माँगे जो मिल जाय उसी पर जीवन निर्वाह करने वाले) और कर्म युक्त (भीक्षा कर्म से) निर्वाह करने वाले वल्कल वस्त्रधारी नियम में तत्पर इन्द्रियों को संयमित रखने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण भी जहाँ निवास करना चाहते हैं। कठिन व्रत में स्थित रहकर ब्रह्मचर्य का आचरण करते हुए ब्रह्मचारी लोग तथा हे राजन्! इस प्रकार क्रमशः सभी जहाँ रहना चाहते हैं। हे राजन्! पहले के ब्रह्मवादी मुनियों के द्वारा जो आचरित पुण्यमय सनातन वेद-संस्कार है उसे प्राप्त करने वाले महाज्ञानी लोग भी जहाँ रहना चाहते हैं ऐसा वह ब्रह्मसदन है। जो वेद का विद्वान् नहीं है वह गृह धर्म का त्याग न करे, न त्याग के मार्ग में आवे न कठिन व्रतों का आचरण करे, न वह सब कुछ के त्याग से संन्यासी ही बने अर्थात् वेदों का अध्ययन कर और पुत्रों को उत्पन्न कर एवं शक्ति के अनुसार यजन-पूजन करे तब मोक्ष की इच्छा से संन्यास ग्रहण करे।।१-१०।।

हे भारत! जब तक साम, यजुः, अथर्वण तथा ऋग् वेद की ऋचाओं का संचय अर्थात् प्रयत्न से अध्ययन के पहले गृह का त्याग कर दुःस्थान अर्थात् संन्यास को न जाय। जो मनुष्य पुत्र वाले नहीं हैं अर्थात् जिन्होंने गार्हस्थ्य में प्रवेश नहीं किया है वे वेदान्त का श्रवण कर संन्यास के फल (ज्ञान) को प्राप्त करेंगे, जो ब्राह्मण तप से थके हुए हैं वे गुरु की सेवा से ज्ञान प्राप्त करेंगे। हे विशाम्पते! जिस ब्राह्मण ने वेद को न सुना न ग्रहण किया ऐसे ब्राह्मण से धार्मिक राजा शूद्र की भाँति इच्छानुसार कार्यों को करावे। अथवा (पक्षान्तर में) जो जन्मना ब्राह्मण होकर वेद का आदर नहीं करता (वेदाध्ययन नहीं करता) उसमें ब्राह्मणत्व नहीं रहता है, इसलिये ब्रह्मचारी और गृहस्थ दोनों को वेदाध्ययन अथवा श्रवण में पहले ही से सावधान मन रहना चाहिये। प्राणियों में श्रेष्ठता सम्पन्न ब्राह्मण अपनी आत्मा से विद्या-ऐश्वर्य की इच्छा करता हुआ सभी इन्द्रिय कर्मों का आरम्भ वेदों के अनुसार करे।।११-१५।।



अथ पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

वैशम्पायन जी बोले कि वे ब्रह्मसदन में रहने वाले जो (वाक्) अर्थात् वेद प्रधान जिनमें आग (विधि का अपराध) नहीं है ऐसे ब्राह्मण चन्द्र-आदित्य (दर्श-पौर्णमास यज्ञ) को आगे कर ब्रह्म सम्भव (अपने से आये हुए) धन से ब्रह्मभाव वाले ऋषि तथा देवताओं का पूजन करने लगे। हे नृप! वे नारद आदि देवर्षि, गन्धर्व ऋषि ब्रह्म के पूजन क्रम से पितामह ब्रह्मा का भी यज्ञ में निरन्तर पूजन करते हैं। हे भारत! पंचेन्द्रियों को निश्चल तथा एकाग्र करने वाले तथा सम्पूर्ण प्राणियों का हित तथा प्रिय करने वाले ब्राह्मणों-द्वारा मधुर भाषण वाला वाणी से स्तूयमान होकर भगवान् ब्रह्मा ने कहा कि धन्य भाग्य जो इस प्रकार आप लोगों की यज्ञ में प्रवृत्ति हुई। इस प्रकार कहकर भगवान् ब्रह्मा कश्यप जी से बोले कि आप भी अपने पुत्रों के साथ वसुधातल में यज्ञ करिये। हे समर्थ! अपने स्वाभाविक सत्, रज, तमादि गुणों को प्राप्त अपने गुणों के

अनुसार सम्पूर्ण सामग्रियों और श्रेष्ठ दक्षिणाओं से युक्त श्रेष्ठ यज्ञों द्वारा यज्ञादि गण तथा सभी देवता विष्णु का यजन करें। तब ब्रह्मा जी द्वारा कश्यप जी के प्रति कही बात को सुन कर देवता और असुर आपस में कहने लगे कि हम लोग पहले यज्ञ करेंगे- हम लोग पहले यज्ञ करेंगे ऐसा कहते हुए बल से दर्पित देवता असुर दोनों ही अस्त्र-शस्त्र लेकर खड़ा हो गये। दिति-पुत्र एवं अदिति-पुत्र दोनों ही परस्पर विशाल-विशाल भुजाओं को पकड़ कर युद्ध के लिये उद्यत हों गये। तपस्या द्वारा भस्म पाप वाले ऋषियों तथा वेद-वेदाङ्ग पारगामी विप्रों एवं अन्य अनेक विप्रों द्वारा निवारण करने पर भी वे गोकुल में वृषभों (साँड़ों) की भाँति युद्ध करने लगे; प्रकृष्ट युद्ध वाले वे सभी प्राण (सूत्रात्मा ईश्वर) को यज्ञ द्वारा वश में करने की इच्छा से युद्ध में संलग्न हो गये।।१-१०।।

सभी प्राणियों के देखते-देखते वे मृत्यु के मुख में जाने लगे तदनन्तर महान् शब्द से परम गर्जना कर वे महाबली क्रुद्ध हो पक्ष सहित पर्वतों की भाति बाहुओं के युद्ध से आकाश को सूँघने लगे, पैरों से आक्रान्त पृथ्वी उनके युद्ध की तेजी से वैसे ही डगमगाने लगी कि जैसे महाजल में पुरुषों के पैरों से आक्रान्त नौका डगमगाती है, गर्जते हुए गजों की भाँति पर्वत फटने लगे। उस समय वायु से झकोरी गई नदियाँ क्षुभित हो गईं हे भारत! इसके बाद विष्णु और मधुदानव के साथ सभी प्राणियों को भय उत्पन्न करने वाला युगान्तकारी घोर युद्ध होने लगा विष्णु ने उसके सम्पूर्ण बल तथा पौरुष को मथ डाला। जिस प्रकार जलती हुई आग जल से शान्त हो जाती है वैसे ही उन उपकारी विष्णु ने उसे शान्त कर दिया।।११-१६।।



अथ षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

वैशम्पायन जी बोले- भयंकर पराक्रमी तथा बलवान् मधु दैत्य ने पाशों से इन्द्र को पर्वत के अन्दर बाँध रखा था। हे भारत! प्रह्लाद के वचन से लक्षणज्ञ मधु ने भविष्य में इन्द्र के ऐश्वर्य की आकांक्षा से सहसा बुद्धि नष्ट

हो जाने के कारण उस इन्द्र को काँटेदार, मजबूत लोहे के अभेद्य जंजीर के पाश से बाँध लिया था। सभी दैत्यगणों के बीच युद्ध-कुशल तथा अग्रगामी काल के वश में आया हुआ मधु विष्णु का ही भयंकर शब्द करके आह्वान करने लगा। कश्यप-पुत्र दानव मधु के वश में होकर दो भागों में बड़ी-बड़ी गदायें लेकर युद्ध के लिये दौड़ने लगे। गाने और बजाने में कुशल गन्धर्व तथा किन्नर चारों ओर गाने-बजाने और हँसने लगे। रागों के जानकार गन्धर्व-किन्नर स्वभाव से ही मधुर बजने वाली बीण को सुन्दर राग से बजाकर युद्ध करते हुए मधु के मन को बहलाने लगे। सत्यवादी गन्धर्व यह सब गान-वाद्य पद्मयोनि मधु के कथनानुसार मधु के बल को बढ़ाने के लिये कर रहे थे। वहाँ होने वाले गन्धर्व गान के उस मधुर शब्द में प्राणद मधु का मन आसक्त हो गया, दानव और असुर भी प्रत्यक्ष मोह को प्राप्त होने लगे। इस प्रकार मधु के मन को विषयों में लगाकर योग नेत्र से देखते हुए विष्णु मन्दराचल पर वैसे ही छिप जाने का विचार करने लगे कि, जैसे काष्ठों में अग्निगूढ़ रूप से छिपा रहता है।।१-१०।।

कुछ उद्विग्न मन वाले तथा कुछ पीड़ित मनवाले ऋषि पितामह को आगे कर क्षण भर में अन्तर्हित हो गये। इसके बाद मधु के समान लाल नेत्र वाला दानव मधु क्रुब्ध हो अपनी भुजा से विष्णु को गर्दन पर मारा परन्तु वे एक पग भी पीछे न हटे बल्कि आगे बढ़कर विष्णु ने अपने मुष्टिक से दैत्य की छाती पर मारा वह शीघ्र ही रुधिर उगलता हुआ जानुओं के बल पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब अत्यन्त पराक्रमी युद्ध-विशारद विष्णु ने अभी इससे बाहु युद्ध करना बाकी है ऐसा सोच कर उस गिरे हुए दैत्य को नहीं मारा। रोष से व्याकुल मधु अपने नेत्रों से विष्णु को भस्म करता हुआ सा इन्द्रधनु की भाँति महीतल से उठ खड़ा हुआ। तत्पश्चात् वे दोनों ही कठोर वचनों से गर्जने लगे और वध की इच्छा से परस्पर बाहु युद्ध करने लगे। वे दोनों ही बाहु बली तथा युद्ध विशारद और दोनों ही तप से पूर्ण एवं सत्य पराक्रमी थे। वे दृढ़ प्रहार करने वाले आपस में एक दूसरे को खिंचने लगे वे शैलेन्द्र के समान पाषाण की भाँति कठोर भुजाओं से युद्ध करते हुए आपस में खींचा-खींची कर

वसुधा तल पर झुकते हुए हाथियों की भाँति दन्त रूप नखाग्रों से युद्ध करते हुए बिचरने लगे। उनके घावों के मुखों से बहुत सा रुधिर वैसे ही चू रहा था जैसे ग्रीष्म काल के अन्त होने पर पर्वतों से, धातु से पिघला हुआ सुवर्ण चूता है।।१९-२०।।

चूते हुए रुधिरों से लथ-पथ एक ही समान रँगे हुए अपने पदाग्रों को उठा-उठा कर पृथ्वी को विदिर्ण करने लगे। वे दोनों वीर परस्पर अनेक प्रकार से आघात कर मांसाहारी पक्षी के समान पंख रूप बाहुओं से युद्ध कर रहे थे। पुष्कर में विष्णु के सत्य पराक्रम के विषय में सिद्धों के मुख से उच्चारित विष्णु के नाम से संयुक्त परम सुन्दर वर्णवालीमय विष्णु के स्तोत्रों को अन्तरीक्ष से सभी प्राणी सुनने लगे कि। शरीर धातु से और चेतन शक्ति से संयुत्त वह जीव ब्रह्म की भाँति तेजोभूत सनातन तथा इन्द्रियों से युक्त है, प्रलय के उपस्थित होने पर सूक्ष्म रूप कारण में देह को धारण करने वाले भूत (जीव) निश्चित रूप से स्थित रहते हैं। फिर सृष्टिकाल में वे सूक्ष्म कारण से बहुत रूपों अनेकों प्रकार से पुनः उत्पन्न होते हैं और वे प्राणियों के रूपों को प्राप्त कर तीनों लोकों में कामनाओं का आदान-प्रदान करते हुए विचरते हैं। वह सुन्दर रूप वाला तथा सबको वश में करने वाला उन बहुत रूप वाले लोकों में व्याप्त हो एवं अनेक कारणों से मानसिक शरीर धारण कर प्रगति का संचार करता है। वह योगात्मा है नागात्मा (शेषनाग) होकर पृथ्वी को धारण करता है ब्रह्मभूत होकर स्वर्गलोक को धारण करता है ब्रह्म (वेद) से भूत (चार प्रकार) और पर (पाँच) अर्थात् वह सूक्ष्म रूप से पाँच प्रकार की भूतों की आत्मा को धारण करने वाला ईश्वर है। वे ब्राह्मणों का वेदत्व से, क्षत्रियों को युद्ध से, वैश्यों को व्यापार कर्म से तथा शूद्रों को सेवा के कार्य से पालते हैं। दुग्ध दान से गौवों को, यज्ञों में प्रोक्षण से अश्वों को, पितरों को उष्ण कव्य से तथा देवताओं को हवि के भाग से पालते हैं।।२१-३०।।

चार अतिरिक्त अङ्गों से अर्थात् दर्श, पूर्णमास, पितृयज्ञ तथा साधारण यज्ञों से तथा तीन धातुओं (मन, वाक् तथा प्राणों) से कुल मिलकर सात पदार्थों से पितरों के साथ वे ईश्वर तीनों लोकों का निरंतर परिरक्षण करते रहते

हैं। वे सातों चन्द्र तथा सूर्यात्मक होते हुए नित्य ईश्वर के रूप में निहित हैं यथा योग्य वे प्रकाश रूप मार्ग और अप्रकाश (घूमादि) मार्ग वाले हैं ईश्वर ने अपने स्वकीय तेज को निगूढ़ अर्थात् व्याप्त कर रखा है। उनमें तीन (मन, वाक् तथा प्राण) रूपी पितर सूर्य को नित्य बढ़ाते हैं और चार दर्श पूर्णमास तथा पितृयज्ञ तथा साधारण यज्ञ रूपों पितरों से अपने मंडल में चन्द्रमा बढ़ता है। पूर्वोक्त तीन पितर फल-योग के अन्त में पिण्डों को (स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों को) भक्षण (संहार) करते हैं और अन्य जो चार कहे गये हैं वे पितृगण सिद्ध होकर पञ्चभौतिक शरीर को धारण करते है। हे विभो! आकाशादि पाँच धर्मों से लोकर पंचभौतिक शरीर तक को आप ही धारण करने वाले सनातनमय दिक्, शाश्वत तथा वेद के उत्पत्ति स्थान हैं। इसलिये आप के उस तेज को अग्नि तथा वायु सर्वत्र धारण करते हैं, वैसे ही कर्म से आग्न्यात्मक तेज से संसार का अदन-भक्षण करने से आदित्य सिद्ध होते हैं। जो परम सिद्धि को प्राप्त होकर आप प्रलय काल के उपस्थित होने पर सम्पूर्ण जगत् को अपनी कीरणों द्वारा प्रदहन करते हुए भक्षण कर जाते हैं। आप गूढ़ात्मा सूर्य, चन्द्रमा तथा वसुओं से उत्पन्न ऋषियों के साथ पूर्णिमा और अमावस्या में मनुष्य लोक में विचरण करते हैं। यज्ञ कर्त्ताओं की पुष्टि को बढ़ाने वाले आप फल की इच्छा से कर्म करते हुए मनुष्यों के हेतु भूत स्वर्ग साधनादि कर्मों में विकार न उत्तपन्न हो और काल लोप से कर्म (धर्म) का नाश न हो इसलिये आप विचरते हैं। हर एक पक्ष में चन्द्रमा रूप किरणों द्वारा वनस्पति, औषधियों की उत्पत्ति के लिये पृथ्वी को एक बार स्पर्श करते हैं, यह एक प्रकार से आपकी ही उत्पत्ति है।।३१-४०।।

हे भूतेश! इस प्रकार वसुधा तल पर प्राणियों के भावी पुष्टि के लिये जो कुछ भी वसु (धन भूत पदार्थ) है वह सभी हे विभो! आप मय है। वसुधा तल में निरन्तर रहने वाले अनेक प्रकार के धर्म हैं तथा मनुष्यों सहित देव-यज्ञ, मन्त्र-वाक्य और आत्मयज्ञ हैं वह सभी आप ही हैं। स्वर्ग का निर्मल मार्ग दो प्रकार का है एक सूर्य-मार्ग दूसरा चन्द्र-मार्ग है जिसमें देव-यान (मार्ग) सूर्य हैं और पितृ-यान (मार्ग) चन्द्रमा हैं। आप ही सभी इन्द्रिय गणों को शरीर में

एकत्र कर अगोचर हो आप ही से वसुधा युक्त हो अर्थात् पार्थिव मूर्ति से युक्त हो विश्व (सांसारिक विषयों) का नियम से सेवन करते हैं। आप ही एक सभा के उत्पत्ति स्थान पुण्य पुरुष विराट अविनाशी उपमा रहित लीला करने वाले तथा सबको वश में रखने वाले हैं! तेज के भीतर से रूपात्मा बनकर उत्पन्न होते हैं इसलिये कभी-कभी इन आँखों से देखे भी जाते हैं) और वायु बनकर आकाश में पर्यटन करने से खेचर होते हुए अदृश्य हैं आप सात प्रकार (महत्-अहंकार पंचतन्मात्रा) के रूप संस्थानों के द्वारा इस संसार को आच्छादित कर स्थित हैं। शमादि साधन काल में जीव रूप में, निर्वाण काल में शुद्ध ब्रह्म रूप से, निर्माण काल में धाता रूप से, संहार दैनंदित प्रलय (ब्रह्म-प्रलय) में रुद्र रूप से, धारण काल में विष्णु रूप से आप ही हैं और दिशाएँ अर्थात् वर्णाश्रम मर्यादायें भी आप ही हैं। आप चक्षु में अर्थात् इन्द्रियों के धारण में प्रवर्तक रूप से है। इस प्रकार के कर्म के द्वारा सत्य को प्राप्त शत्रु-मित्र पर समप्रेम रखने वाले जितेन्द्रिय तथा विगत पाप वाले मुनि-गणों से सेव्यमान होने पर तथा स्तूयमान विबुधों, सिद्धों तथा मुनिवरों से स्तुति किये जाने पर हरि ने अश्व शिर वाले बड़े भारी शरीर का स्मरण किया। उन्होंने सर्वदेवमय तथा वेदमय शरीर को धारण कर दिखाया जिनके शिर के मध्य महादेव तथा हृदय में ब्रह्मा स्थित थे।।४१-५०।।

उनके केश सूर्य के किरणों के समान थे, नेत्र चन्द्रमा और सूर्य थे, जाँघो में वसु-गण तथा साध्य-गण और सन्धियों देवता स्थित थे और उनकी जिह्वा में अग्नि एवं सत्य सरस्वती देवी थीं, मरुद्-गण और वरुण उनके जानु भाग में स्थित थे। असुरों की दृष्टि में ऐसा महान् अद्भुत रूप धारण कर क्रोध से लाल-लाल नेत्र वाले विष्णु असुर मधु को व्यथित करने लगे। उस समय मधु दानव के मेद रूपी जल से पृथ्वी भर गयी और वह उरोज के भार से प्रकृष्ट मद वाली स्त्री के समान सफेद वस्त्र वाली दिखाई देने लगी। हे नरोत्तम! सहस्त्रों असुरों के द्वारा पृथ्वी ने धरणी के अर्थ में संप्रतिष्ठित मेदिनी इस नाम शब्द का लाभ किया।।५१-५५।।

❖✳❖

अथ सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

वैशम्पायन जी बोले कि मधु का निपतन (मरण) देखकर सभी प्राणी पृथ्वी तथा आकाश में सर्वत्र प्रसन्न होकर नाचने लगे। उस समय सभी का पुष्कर में प्रवेशाधिकार हो गया। पर्वतों में मुख्य सुन्दर पार्श्व स्थल वाला मेरु पर्वत उस समय सुवर्णमय शिखरों से तथा रंग-बिरंगे धातुओं से विष्णु की प्रशस्ति लिखता हुआ सा शोभने लगा। धातुओं द्वारा समान भाव से सर्वत्र रंगे हुए पर्वत भी अपने ऊँचे-ऊँचे शिखरों से बिजली युक्त मेघों की भाँति शोभने लगे। पर्वतों के पक्ष के वायु से उठी हुई धूलि अञ्जन के समान काले पत्थरों के चूर्णों के साथ और बालुओं के साथ पर्वत शिखरों को आच्छादित करती हुई महामेघ के समान शोभित होने लगी। मेधाछन्न शिखर वाले तथा पक्षों के द्वारा तितर-बितर हुए वृक्षों वाले और सुवर्ण की खानों की अधिकता वाले पर्वत आकाश में ठहरने के समान दिखाई देने लगे। सुवर्ण की धातु से चारों ओर रँगे हुए शिखर सहित पक्षों वाले कुछ नग वायुवेग से उड़ते हुए पक्षियों को भयभीत करने लगे। स्फटिक मणियों से जटित सुवर्णमय पर्वत बहुत से सूर्यकान्त तथा चन्द्रकान्त मणियों से युक्त निर्मल प्रतीत हो रहे थे। श्वेत धातुओं से अभिव्याप्त महान् पर्वत हिमवान् शोभा पा रहा था सूर्य की किरणों के प्रकाश में उसके सुवर्णमय शिखराग्रों से एक विचित्र चमक निकल रही थी। पक्षों के बीच से विनिः सृत मणियों के प्रकाश से तथा ताम्र रंग के पुष्पों से और अपने तेज से चमकते हुए शिखरों से और अभितः स्फटिक मणियों से जटिल होने से वज्र गर्भ (हीरा की खान वाला) उग्र शिखर मन्दराचल अवलम्ब से रहित हो स्वर्ग के समान शोभ रहा था।।१-१०।।

शिलाओं और धातुओं से विभूषित हजारों शिखरों वाला कैलास पर्वत लता रूपी तोरणों से, पक्षियों के घोषलों से, फूले हुए वृक्षों से, बजाते हुए गन्धर्वों और गाते हुए किन्नरों से तथा देव कन्याओं के अंग के रंगों से क्रीडा पर्वत की भाँति शोभा पा रहा था। मधुर वाद्य और गीतों से, अभिनय, नृत्यों से और अंगहार सहित श्रृंगारों से कैलास पर्वत मदन की भाँति आचरण

कर रहा था। सूर्य से प्रकाशमान नील अञ्जन के ढेर के समान शिखरों से विन्ध्य पर्वत जल वर्षने वाले नीले और काले मेघों के समान पृथक्-पृथक् ज्ञात हो रहा था। ये पर्वत उत्तम शिखरों से मेरु पर्वत के समान विशाल पृष्ठ पर प्राणियों की पुष्टि के लिये विमल जल के झरने निकालने लगे। उनके शिखर बहुत प्रकार की शिलाओं और बहुत रूप वाली धातुओं से युक्त थे उनके गुहा द्वारों से बहता हुआ जल स्फटिक मणि के समान श्वेत प्रभा वाला था। वर्षा काल में वायु द्वारा गम्भीर बनाये गये बिजली सहित मेघों के समान पर्वतस्थ वृक्ष गण चित्र-विचित्र पुष्पों से विभूषित हो शोभ रहे थे। चित्र-विचित्र पक्षियों से व्याप्त वृक्षाश्रित लतायें सुवर्ण के बने अनेक प्रकार के भूषणों से विभूषित हाथियों की भाँति शोभा पा रही थीं। पुष्प के सहित लटकती हुई लतायें वायु के बेग से नृत्य कर रही थीं, बसन्त के दिन में पवन के महान् बेग से झकोरी गयी लतायें जलाशय के किनारे से टक्कर खाकर जल वर्षा की भाँति पुष्प समूह की वर्षा कर रही थीं। शाखा और स्कन्धों को प्रकट करने वाले बलवान् और बड़े-बड़े वृक्षों से वसुधा अनेक प्रकार के वर्णों को धारण कर रही थी, मधु के प्रेमी मधुकर और मधु के मद से मत्त पक्षी-गण मानों बसन्त ऋतु के आगमन की घोषणा करते हुए गीतें गा रहे थे।।११-२०।।

मधु दानव को मारने वाले विष्णु ने एक मधुवाहिनी नामक नदी की रचना की जो कई प्रकार के स्रोतों के भेद से युक्त थी, जिसके किनारे पर सुन्दर तीर्थ थे और जिसमें बहुत-सा जलभरा था। जिसमें अंगार के समान लाल बालू थे और जो मधु नामक तीर्थ से युक्त मनोरम थी और जो विमल जल-राशि से पूर्ण हो पुष्प-समूह को बहा रही थीं। ब्रह्म-तन्त्र की सेवा करने वाले ऋषियों से अनुचरित वह नदी ब्रह्मा के कहने से पुष्कर में प्रवेश कर गई। तत्पश्चात् यज्ञ प्रारम्भ होने पर ब्रह्मा के वाक्य से प्रेरित हो सब का पोषण करने वाली नदी कपिला गौ का रूप धारण कर मीठा दूध देने लगी। शिर पृथ्वीभूत हो सम्यक् सभी पदार्थों को धारण करने के लिये मही को प्राप्त हो गया; जिस शुद्ध शाश्वत और परम अद्भुत लोक को योगी लोग सेते हैं। वह लोक सरस्वती

के तट पर ब्रह्म क्षेत्र के तम को नाश करने वाला उत्पन्न हुआ उसी मार्ग से मरु तीर्थ का अति क्रमण कर पुष्कर में जाया जाता है। संसार के धर्म का ज्ञान रखने वाली सुन्दर रूप वाली अजा (माया) तपयुक्त चित्र से सुवर्ण के समान चमकने वाले ब्रह्म के रूप से ढकी हुई है। उस माया के गन्धकृत (सांसारिक) जाल से उन्मुक्त होना महान् पर्वत का भेदन करना है। क्योंकि उसके अहंकार रूप पर्वत के गम्भीर द्वार हैं, वह गुणों के द्वारा जीवित है वह सुचित्रित सुवर्णो से शोभित है, अहंकार उत्थान में कारण जो मूल-ज्ञान पुष्कर रूप है वह जगत् शिल्पी ईश्वर से व्याप्त है। हे विपुलदक्षिण! जैसे मेरु का रूप पाँच प्रकार की धातुओं से ढका है वैसे चेतना से ढका अहंकार अद्भुत रूप से दिखाई देने वाला है।।२१-३०।।

धर्मचारी शरीर का मैं ही अपने मन से रचना करता हूँ, मैं ही लोक में बहुत प्रकार के रूपों को रचता हूँ तथा पार्थिवी चेतना का भी निर्माण करता हूँ। मैं पाँच प्रकार की धातु लक्षण अर्थात् पृथिव्यादि इन्द्रियों से तीनों लोकों को रचता हूँ और जानता भी हूँ; छठवें धर्म का आचरण करने वाली मानसिक वृत्ति की भी रचना करता हूँ। जो समृद्धि शाली योगी पुरुष ऋद्धियों के संगों में (योगों में) भाव और मोह से देखते हैं वे सम्पूर्ण सङ्गों से विमुक्त होकर भी परिग्रहों को (बन्धनों को) धारण करते हैं। पाँच प्रकार की धातुमय शरीर से निबद्ध होने से नाना प्रकार के फलों की प्रेरणा वाले कोई मनुष्य इच्छानुकूल मन से रूप धारण करने वाले मुझको नहीं प्राप्त कर सकते हैं। इच्छानुकूल अवतारों को धारण करने वाले विष्णु का जो ध्यान करते हैं वे तप के द्वारा अपने पापों को भस्म कर मुझ अव्यक्त को देखते हैं। और जो मनुष्य धर्म के मार्ग में स्थित हो मुझ पर निर्भर रहते हैं वे गत पाप वाले एवं स्वर्ग पर विजय करने वाले सन्त भी मुझको देखते हैं। मेरु के पृष्ठ पर अर्थात् भ्रू के मध्य भाग में जो ऊँचा पर्वत (ध्यान का स्थान) है उस पर योग द्वारा आरूढ़ होकर जो अविद्या के साथ युद्ध करते हैं वे मनोवेग के समान पुरुष प्राण त्याग के बाद अर्थात् इन्द्रियों के सुख-त्याग के बाद (मुझे देख सकते हैं) अथवा सुनिर्मल हो नन्दन वन तथा महान् काम्यक वन को प्राप्त कर अप्सराओं के साथ विहार

कर सकते हैं (पर वह सब पतन-मार्ग होने से त्याज्य है)। मेरे भक्त इस ब्रह्म विद्या, को प्राप्त कर बहुत प्रकार के किये व्रतों के द्वारा इस पुष्कर (भ्रूमध्य) में मेरा ध्यान करते हुए शरीर का त्याग करेंगे।।३१-४०।।

इस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर वे योगी पुरुष सुखपुर्वक इस लोक अथवा पर लोक में गमनागमन कर सकते हैं अथवा विविध इच्छाओं के अनुसार विषयों का सेवन कर सकते हैं। जब समाहित चित्त वाले योगी तप से सिद्ध हुए प्रभाव दिखाने लगते हैं तब तीनों लोकों में विख्यात गौरी अर्थात् परा ब्रह्म-विद्या भी विद्यामाया के साथ सिद्ध हो जाती है। तब छै प्रकार की ज्ञान-सन्धियों (ज्ञान से योगैश्वर्य संग्रह) के साथ-साथ वे योगी पुरुष आरम्भ रहित हो धातु के बन्धनों से निर्मुक्त हो सकते हैं। दान करने से बन्धन मुक्त हुआ जाता है; यह लौकिक दृष्टान्त से समझाते हैं जैसे कोई अपराधी राजा को जुर्माना का हजार गुना देकर दान के फल से अपराध मुक्त हो प्रीति-भाजन बन जाता है। वैसे ही काम रहित शुद्ध मन से ब्राह्मणों को दान कर्म से सन्तुष्ट कर बन्धन से मुक्त हो विष्णु का प्रिय पात्र बन जाता है। इस प्रकार असंकुचित मन से दान के अत्यन्त अधिक (आत्यन्तिक दुःख तथा परमेश्वर-प्रीति रूप) फल को सर्वत्र इस लोक अथवा ब्रह्म लोक में धर्मज्ञ पुरुष अपने सम्पूर्ण कुल के साथ प्राप्त करता है। जिन यजमान तथा ऋत्विगादिकों का ब्राह्मणों से घिरे यज्ञ में यज्ञांग देवताओं का सान्निध्य (चित्रैकाग्र्य) प्राप्त होता है वे यजमान आदि बार-बार अपने को अभिषिक्त कराकर यज्ञान्त स्नान से शुद्ध हो पूर्वोक्त फल को पाते हैं। हे राजन्! जैसे तुम दान-यज्ञादि सम्पत्ति को समझते हो वैसे प्राणियों पर अनुग्रह के लिये मन से धर्म का आचरण करने वाली उस गौरी (ब्रह्म-विद्या रूप सम्पत्ति) को जो तपोधनों के आगे स्थित रहती है नहीं समझना चाहिये (क्योंकि दान-यज्ञादि परिमित सम्पत्ति और ब्रह्म-विद्या अपरिमित सम्पत्ति है)। (तब दान यज्ञादि क्यों किया जाय ऐसा नहीं कह सकते) यह बात सत्य है कि यह आत्म-ज्ञान ब्रह्म-विद्या से उपलब्ध होते हैं, परन्तु वह ब्रह्म-विद्या दान यज्ञादि से भी अविद्या युक्त पुरुष में चित्त शुद्धि द्वारा उत्पन्न होकर ही रहती है, क्योंकि धर्म-चारियें से आचरित धर्म निष्फल होता,

अतः ब्रह्म-विद्या के हेतु दान-यज्ञादि धर्म का अनुष्ठान करना ही चाहिये।



अथ अष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

वैशम्पायन जी बोले कि उत्तर दिशा (पराकाष्ठा) को पहुँचने की इच्छा वाले सत्यसाधन परमधर्मात्मा कमलेक्षण विष्णु धातुओं के ढेर वाले पुण्य पर्वत के भ्रू सन्धि में ध्यान लगा पुष्कर क्षेत्र में एक पैर से दस हजार वर्ष तक खड़े तप करते रहे। लोक के उत्थान (मोक्ष) की शिक्षा के लिये ब्रह्मा के उत्पत्ति-स्थान विष्णु आत्मा को आत्मा में रख कर उग्र कर्म से तप करते हैं। तपोधन भासुर (चन्द्रमा) अपने गात्राङ्गों को भस्म से ढककर और स्वयं आत्मा को सावधान कर नव हजार वर्ष तक तप किया था। वे ब्राह्मण श्रेष्ठ योगात्मा चन्द्रमा उस तप के तेज से नक्षत्रों को पराजित कर जगत् को प्रकाशित करते हुए आकाश के बीच स्थित हैं। योग-युक्त परम धर्मात्मा चन्द्रमा विषयों का त्याग कर मन से ब्रह्म को धारण करते हुए ब्राह्मी सिद्धि को प्राप्त हो गये। वे चन्द्रमा ज्योति विष्णु (प्रकाशन) कर्म करते हुए तथा बहुत रूप वाली औषधियों में रस रूपी सम्पदा प्रदान करते हुए पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश में सम्यक् दिखाई देते रहते हैं। ब्रह्म से उत्पन्न महायोगी महादेव श्रुतिगूढ़ात्मा महेश्वर ने वृषभ के रूप से वायु भक्षण करते हुए दाहिने पैर को उठाकर नियम से नव हजार एक सौ वर्ष तक तप किया था। उन गोपति के समीप घनीभूत वायु घूमने लगा उस फेनीभूत वायु को गोपति ने अपने मुख से उद्गारों द्वारा निकाला था।।१-१०।।

प्राण से परम आत्मा वाला निर्यासभूत (वृक्ष-मद के समान) निकला हुआ वायु पृथ्वी पर गिर पड़ा वह न तो भीगा था न पार्थिव पदार्थ के समान सूखा ही था। वह चर्म कोश के समान फेन जल से अपने को भर कर वसुधा तल के आस पास अन्तरिक्ष में घूमने लगा, जो गीला अथवा सूखा नहीं था वह फेन वायु के झोंके में आ गया। तब वायु ने तत्काल ही जल सहित फैन

को अवलम्ब रहित आकाश में उड़ा दिया तत्पश्चात् वह निरालम्ब मेघों का रूप धारण कर लिया। वे मेघ जो कि अपने से ही मेघ की आत्मा (रूप) को प्राप्त हुए थे; पृथ्वी पर जल बरसने लगे, जो कि न गीले थे न सूखे थे वे नील तथा लाल मेघ के नाम से कहलाने लगे। सर्वत्र गमन करने वाल तथा सभी को वश में रखने वाल वायु-ब्राह्मण शरीर धारण कर एक हजार वर्ष तक बड़ा भारी तप किया था। अग्नि ने भी बहुत सी जटाओं को धारण कर तथा वल्कल वस्त्र पहन कर निराहार हो मौन रह कर पुष्कर में चार हजार वर्ष तक प्रयत्न से तप किया था उस अग्नि के तेज से महान् अग्नि उत्पन्न हुआ इस समय वह अपने कार्य में प्रवृत्त है। एक तो वह महान् अग्नि गार्हपत्यादि अग्नि बन गया कि जिसके द्वारा कर्म करने से स्वर्ग का प्रकाश होता है अर्थात् स्वर्ग प्राप्त होता है दूसरे वह तम को दूर करने वाला स्वर्गवासी अर्थात् आकाश वासी सूर्यादि बना तीसरे वही प्राणियों को प्रकाश देने वाला अग्नि स्वर्ग में ब्रह्माग्नि अर्थात् ब्राह्मण रूप अग्नि कहलाया। हे राजेन्द्र! उस अग्नि का तम (धूम) इस भूतल पर वर्णाश्रमाभिमानी मनुष्यों में प्रतिष्ठित हुआ; सूर्य अग्न्यादि तेज का समूह है और इससे पहले के गार्हपत्यादि अग्नियों से श्रेष्ठ होता है। क्योंकि इनकी आराधना करने वाले फिर लौट कर नहीं आते हैं। हे राजन्! ब्राह्मण के अन्दर योग का बल उत्पन्न हो जाने पर सूर्य अपने तेज को सदा के लिये उसके अन्दर आक्षिप्त कर देते हैं न कि योग से हीन ब्राह्मणों में अथवा मनुष्यों में वा सभी प्राणियों में सदा के लिये तेज प्रदान करते हैं।।११-२०।।

सूर्य अपने उपासक योगियों के अन्दर विद्यमान पूर्वोक्त तम को नष्ट कर देते हैं और रात्रि में मरने पर उसकी आराधित घूमादि गति को भी नष्ट कर सोरी गति प्रदान करते हैं यदि कोई रात्रि में अर्थात् घूमादि मार्ग मे वर्त्तमान है और दिन में मर गया तो उसे सौरीगति का मार्ग नहीं प्राप्त होता है उसे घूमादि गति ही प्राप्त होती है। अतः सूर्य केवल एक प्रकार से उपासकों को पहुँचाने वाले हैं। (पुष्यमित्र नामक यक्ष ही आगे चल कर कुबेर बनता है यह बतला रहे हैं) भावी कुबेर पहले महातेजस्वी सर्वत्र गमन करने वाले तथा अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाले पुष्यमित्र नामक यक्ष होकर उत्पन्न होते

हैं और वे धर्मात्मा समाहित चित्त होकर पुष्कर में तप करते हैं। महेन्द्र पर्वत से जितनी धारायें निकल कर पृथ्वी पर जाती हैं उतने स्वरूप धारण कर वे तपस्या के सम्पूर्ण वर्षों तक स्थित रहते हैं। वे जानुओं द्वारा पृथ्वी पर गिर कर आकाश में ज्योति जो सूर्य मण्डल है उसके दर्पणोदर स्वरूप मध्य में निमेष रहित हो हजार वर्षों तक सम्पूर्ण जगत् को देखते हैं। दर्पण के तुल्य मध्य भाग वाले गोलाकार सूर्य में नेत्र ज्योतियों के पहुँचने के बाद सूर्य की प्रभा से मिश्रित नेत्र ज्योतियाँ सैकड़ों हजारों की संख्या में सूर्य मण्डल से निकलती हैं। नेत्र ज्योतियों के साथ सैकड़ों-हजारों सूर्य रश्मियों की प्रभा विद्वान् ऋत्विगों के द्वारा यज्ञ में प्रज्वलित अग्नि के समान भुवन को व्याप्त कर प्रकाश करती हुई शोभा पाती हैं। वह पुष्पमित्र (भावी कुबेर) कर्म के अन्त में (देहारम्भक कर्म के क्षय होने पर) अथवा बहुरूपी जगत् के युगों के अन्त में अर्थात् प्रलय काल में चिनगारियाँ छिटकते हुए नेत्र ज्योतियों के द्वारा सूर्य को प्राप्त करता है। जो नेत्र ज्योति के द्वारा सूर्य की रश्मियों में प्रविष्ट होकर संपूर्ण एक हजार वर्ष तक सुदारुण तप किया था वह पुनः बहुताप से युक्त होकर वसुधा तल पर बैठ गया। फिर मेरु के शिखर पर पहुँच इन्द्रियों का निग्रह कर काम योग से काम का त्याग करता है जो अप्सराओं के साथ (ललाम-रश्मि) अर्थात् रमण किया था। जो तप की कामना वाला यक्ष था वही नरवाहन कुबेर हुआ, तेज (तप) अर्थात् तपस्वी के अन्तःकरण में तप के अध्यक्ष विष्णु प्रवेश कर जाते हैं अतः विष्णु के अंश ही कुबेर हैं। हे राजेन्द्र! तीनों लोकों में सनातन विष्णु को छोड़कर ऐसा कोई दूसरा पुरुष नहीं है कि जो इस प्रकार का दारुण तप कर सके।।२१-३०।।

बहुत फण वाले नागेन्द्र वासुकि ने भी मौन धारण कर मनसे मन को सम्यक् प्रकार से ब्रह्म में लगा कर पहले तप किया था। ब्रह्मा से उत्पन्न सत्य को धारण करने वाले धर्मात्मा शेषनाग ने वृक्ष पर चढ़ कर नीचे की ओर शिर कर लटकते हुए तप किया था। वे तपोधन निराहार व्रत कर अपनी लपलपाती तीनों जिह्वाओं से अपने शरीर के विष को उगलते हुए सम्पूर्ण एक हजार वर्ष तक तप किये थे। हे नृप! वहाँ कालकूट नाम का महान् विष हो गया कि

जिससे अभिग्रस्त हो जाने पर लोक को सुख नहीं प्राप्त होता है। हे महीपते! वह तीक्ष्ण विष सर्पों में सर्वत्र फैल गया विषैले जंगम तथा स्थावरों में भी वह सभी जगह व्याप्त हो गया। हे भारत! हिंसा से युक्त परस्पर क्रोध बढ़ाने वाले विष से किया गया तप तामस तप हो जाता है क्योंकि उस तीखे विष से वह स्वयं अपनी आत्मा के अङ्गों को नाश कर देता है। हे राजन्! विष के फैल जाने पर महाभाग ब्रह्मा ने प्राणियों की हित-कामना से ब्रह्माक्षर नाम वाले अहिंसक मंत्र की रचना की। (उस मंत्र को दो श्लोकां में कहते हैं) गरुड़ अपने फैले हुए पक्षों और नखाग्रों से तथा लटकने वाली अपनी शिखा के अग्र भाग से सम्पूर्ण एक हजार वर्ष तक मेरे जीवनभूत जल और पृथ्वी की रक्षा) करें। जो गरुड़ विस्तृत तथा फैले हुए पक्षों के भार से वसुधा तल में शोभित हुए थे और पृथ्वी भी उनके बहुत विचित्र पक्षों से शोभित हुई थी। हे मनुष्येन्द्र! भारत! ब्रह्म ने ऐसे अहिंसात्मक मंत्र छन्द की रचना की कि जिस मंत्र छन्द से इस लोक में और देवलोक में सभी प्राणी जीवित रहें कि उनका पृथ्वी रूपी शरीर में संचरण करने वाली इन्द्रियों से नक्षत्र व्याप्त आकाश की भाँति जगमगाती रहे।।३१-४०।।

जो धर्मात्मा पुष्कर के जल में मत्स्य के समान संसार नदी में जाग्रत और स्वप्न रूप दोनों किनारों पर अपने मस्तक को उठाकर तप करता है वह हिम के सम्पात होने पर हिमवान् हो जाता है। और वह धर्मात्मा उन्नत शरीर वाली पृथ्वी को धारण करने के लिये अपनी दाहिनी भुजा को उठा कर तप करता है । हे सुव्रत! वह वायु भक्षण करता हुआ समाहित चित्त हो सम्यक् प्रकार से योग का आश्रय लेकर एक हजार एक सौ वर्ष तक तप करता है। हे भारत! ब्रह्म (प्रणव ॐ) के संयोग-संग से और समाधियोग से हे राजन्! जो इस पृथ्वी को ब्रह्मयोनि के कारण अर्थात् ब्रह्मोपलब्धि स्थान होने के कारण धारण करता है और जो आदि-अन्त के राहित्य युक्त था नित्यत्व से युक्त एवं विषयेच्छा से युक्त है वह अगाधात्मा आकृति रहित परमात्मा विष्णु हैं उन्होंने ही पृथ्वी को धारण कर रखा है। वे दिन में अर्थात् विद्या में बैठे रहते हैं (ब्रह्म विद्या से लभ्य हैं) वे सत्यसन्ध धर्मात्मा रात्रि अर्थात् अविद्या में भी

धर्म कराने के लिये स्थिर रहते हैं (ऐसा क्यों?) तो लीला के वश में होने से ऐसा करना ही पड़ता है। जो उनका पृथ्वी के समान क्षमाशील धर्म रूप हाथ पृथ्वी में उठा हुआ है वह रात्रि में (अविद्या में) तपन (सूर्य) के समान गोलाकार बड़े भारी हृदयाकाश में धर्म प्रकाशक होता है। हे राजन्! वह धर्म प्रकाश चन्द्रमा अर्थात् मन सम्बन्धी विषयों का शमन कर उन्हें रोक देता है और ग्रहों एवं विशेष कर ताराओं अर्थात् मानसिक एवं छुद्र इन्द्रियादि नेत्रादिकों की गतियों को भी रोक देता है। इस पृथ्वी पर दक्षिण हाथ रूपी धर्म योग और चित्त की शुद्धि देकर योगियों के लिये ज्ञानोत्पत्ति में समर्थ मन वाले महामन्त्रों को उत्पन्न करता है, क्रमशः सोम मण्डल से उस अविद्या का नाश करता हुआ वह ऐसा करता है। वह छाया (रात्रि रूपी अविद्या) अलिङ्ग है अर्थात् तत्व और वेद के प्रमाणों से शून्या है वह पार्थिव शरीर को प्राप्त कर प्रसन्न करने वाले विषयों में जाने के लिये मन को एकाग्र करने से शशिभूता (मन की भाँति) हो शशि मण्डल (मन मण्ड) में प्रवेश कर जाती है और अन्त में मन के साथ एक होकर इस भूतलाकाश में व्यवहारों से देखी जाती है इसलिये अद्भुत (अनिर्वाच्य) पार्थिव चिह्न वाली होने से वह असत्या अर्थात् मिथ्या है।।४१-५०।।

वह अविद्या पार्थिव चन्द्र भवन को पाकर पृथ्वी रूप से तलों सहित पैरों को तीर्थादिकों में धोकर और सम्पूर्ण अंगों को संक्षिप्त कर निश्चय रूप से तप करती है तब इस प्रकार तपस्या में स्थित पृथ्वी सूर्य की कीरणों द्वारा पीयमान जल को अपने महीतल पर धारण करती है और उस समय जल-वस्त्रा पृथ्वी वैसी ही दिखाई पड़ती है कि जैसे प्रलय काल में विष्णु के तेज से जल रूप वस्त्र को धारण कर दिखाई पड़ती है। यह शुभ पृथ्वी सूर्य की कीरणों से मिश्रित होकर सुवर्णमय धातुओं से घिरी स्फटिक मणि के समान महानदी होकर शोभा पाने लगती है। किरणों के तेजों को चारों ओर फैलाने वाले सूर्य के द्वारा वह जलाम्बरा पृथ्वी ग्रस्त कर ली जाती है तब सूर्य मंडल में चली जाने के बाद वह पृथ्वी देवी आँखों से नहीं दिखाई पड़ती है। इसके बाद योग द्वारा सूर्य की कीरणों से निकल कर महान् जल राशियों से घिरी

आकाश गंगा बनकर बेग से बहने लगती है। वह शीतल छाया वाले वृक्षों से और सुगन्धित लताओं से तथा विविध प्रकार के कमल के वन खण्डों से एवं दिव्य सुगन्धियों से शोभा पाने लगती है। वह सुवर्ण आभूषण से सुसज्जित जघन स्थल वाली, स्फटिक मणी (नगीनों) से जटित करधनी वाली, कमल के परागों के समान श्वेत तथा पीली, उत्पन्न चक्रवाकों वाली, कालिमा भरे केश पाशों वाली पुष्प संचय (माल्य) से व्याप्त टेढ़ी चाल से चलती हुई भूषणों से विभूषित प्रकृष्ट मद वाली स्त्री के समान शोभने लगती है। यह वही पृथ्वी है जो लोकों को धारण करने में रत थी तथा जो चन्द्र रूप से निष्पन्ना हुई थी अब सुन्दर तप करने से पुष्कर अर्थात् परमात्मा से एकीभूत हो गंगात्व रूप फल का लाभ किया अर्थात् गंगा बन गई। वही लोकों को धारण करने वाली पृथ्वी गंगात्व को प्राप्त कर फिर सरस्वती होकर स्पष्ट स्वरों से ब्रह्मवादिनी हो ब्रह्म का अध्ययन करती है अर्थात् ओं-ओं कहती हुई ब्रह्म को प्राप्त करती है (वह कैसी सरस्वती है) तो पृष्ठ से अर्थात् सभी इन्द्रिय रूपी देवताओं से निकल कर शैलेन्द्र मन्दराचल पर अर्थात् सभी इन्द्रिय रूपी देवताओं से निकल कर शैलेन्द्र मन्दराचल पर अर्थात् भ्रू के मध्य भाग पर मन्द गति से बहती है ब्रह्म का ध्यान करती है।।५१-६०।।

वह उस समय चारों पादों से युक्त ऋचामय चारों वेदों को स्पष्ट स्वर से पढ़ती है कि जो यजु और सामों एवं शिक्षा से गुथे हैं। उस ब्रह्माख्य निःस्वन शब्द को तपस्या से जलाये हुये पाप वाले अग्नि के समान तेजस्वी परोकार में समर्थ तथा सभी तरफ से ब्रह्म में चित्त को लगाने वाले ऋषि लोक सुपार्श्व गिरी के चरण में सुनते हैं सभी प्राणी नियमों के द्वारा उसे नहीं सुन सकते हैं क्योंकि मंदराचल के अग्रभाग पर विचरण करता हुआ वह शब्द जगत् के लिये कठिन है तथा इन्द्रियातीत है। वह सत्यवादिनी (ब्रह्मवादिनी) देवी विराम प्राप्त होने पर मौन हो जाती है वह नियम से बचन बोलती है। उसके समाधिस्थ हो जाने पर सभी और सभी प्राणी मौन हो जाते हैं वे बल पूर्वक भी कुछ कहने में समर्थ नहीं होते हैं। जब मन से सभी प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिये तीर से युक्त सरस्वती ब्रह्माख्य महाशब्द को बोलती है तब सरस्वती से समायुक्त

हो सभी प्राणी उससे शिक्षा ग्रहण करते हैं और शिक्षा के प्रभाव से वे सभी उसके तट पर साम का गान गाते हैं। बारहो आदित्य, आठो वसु, ग्यारहो रुद्र तथा उन्चासो मरुत कुमारों के साथ वल्कल वस्त्र, जटा, मुञ्ज तथा मेखला धारण कर साम गान करते हैं। शिक्षा ग्रहण कर गन्धर्व किन्नर तथा नाग वरुण के साथ (मुनियों) सहित पुष्कर में तप करते हैं। पुष्कर में प्रयत्न से उग्र तप के द्वारा कीड़े तथा पतंगों के साथ सभी सर्प अपने शरीर को सुखाते हैं।।६१-७०।।

उस समय विष्णु विष्णुत्व को अर्थात् व्यापकत्व को प्राप्त होकर देहान्तर की रचना करते हैं और वे महायोगी सभी सहचारी प्राणियों की रक्षा करते हैं। धूम रहित अग्नि के समान देदीप्यमान् विष्णु अपने को दो भागों में (नर-नारायण रूप में) विभक्त कर पुष्कर में रमते हैं। मन से उत्पन्न हुई वह अग्नि पृथ्वी को तपाता हुआ उस पुरुष के साथ दशयोजन ब्रह्माण्ड मण्डल तक दौड़ता है। पीछे की ओर लम्बायमान जलता हुआ लपटों से वह अग्नि शोभा पाता है और पार्थिव ऐश्वर्यों को नष्ट करने वाले लपटों से प्रकाशित रहता है। विषयों में रत पुरुष उस विष्णु रूपी अग्नि के स्फूलिंगों (कणों) अर्थात् ब्रह्म आदि रूपों को लाँघने में वैसे ही समर्थ नहीं हैं कि जैसे वसुधा की मर्यादा को नापने वाले सूर्य का लाँघने में समर्थ नहीं है। धूम रहित पावक के समान वह अग्नि विपुल प्रकाश कर अपनी किरणों का द्रव्य देवतादि के रूप विभाजन कर जब स्थित हो जाता है तब अग्नि के समान तेजस्वी ऋषियों द्वारा यज्ञ में वह सोम क्रियाओं से अनेक प्रकार का कर दिया जाता है। धूमागत (निर्धूम) वह अग्नि वहाँ यज्ञ में नियम की समाप्ति तक प्रकाशित रहता है कि जब विष्णु क्रम (फल) को नहीं प्राप्त हो जाते, इस प्रकार रक्षा करके स्थित (व्याप्त) हुए विष्णु के समान (नामानुसार) पराक्रम करके सैकड़ों शरीर धारण कर बलाहक नाग अर्थात् मेघों के भेत्ता ऐरावत वृष्टि के अधिष्ठाता देवता हो जाते हैं (अतः वृष्टि रूप यही विष्णु हैं)। जो विष्णु रूपी संसृष्टि महाबुद्धिमान् जठराग्नि हैं, जो सभी प्राणियों की हित-कामना से अपने तेज के द्वारा सभी देहधारियों में प्रवृत्त होकर अन्नादिकों को पचाते हुए स्थित् रहते हैं उस

जठराग्नि को प्राणियों के प्राण की वृद्धि के लिये बलाहक नाग सुखप्रद शीतल जल से सींचते हैं।।७१-८०।।

इसके बाद मन से आत्मा को सींचकर सिद्धगणों से सेवित हो वह महान् वैराग्य रूप बल वाला महायोगी पुष्कर में तप करता है। पैर आदि शरीर को संकुचित कर मन को मूर्धा सहस्रार में लगाकर अलग स्थान को प्राप्त कर मौन हो जाता है। यह तप उपधान से कल्पित नहीं हैं बल्कि निरुपाधि स्वभाव सिद्ध है यह सभी धर्मों का धर्म है तथा सभी प्राणियों के लिये इस लोक और परलोक में हितकर है। इस योग में जो बाधक उपस्थित होते हैं उन्हें दूर करना चाहिये। कौन बाधक हैं? जो कामादिक, दैत्य योगारम्भ से पहले आहत कर दिये गये थे जीत लिये गये थे वे माया द्वारा प्राप्त बहुत प्रकार के शरीर रूपी नगरों में छिपे हुए अपने आयुधों को लेकर समाधि काल में समाधि भंग करने को उद्यत हो जाते हैं। हे परन्तप! वे अग्नि के समान तेजस्वी विशालकाय तथा महाबली कामादिक दैत्य पर्वताग्रों से (दिव्य स्त्रियादिकों के उन्नत शरीरों से) अर्थात् उनका प्रदर्शन कराकर जलते हुए (ज्ञान को प्रकाशित करते हुए) अग्नि को (योगी को) मारने लगते हैं अर्थात् संसार में खींचने लगते हैं। बल से दर्पित वे मेघ बनकर योगी रूपी अग्नि को तेज रहित करने के लिये माया रूपी जल की भी वर्षा करने लगते है तब उसी समय संघात होने पर योगी का महान् योग बल छिन्न-भिन्न हो जाता है। जो माया से विचलित न होने वाले योगी होते हैं वे सैकड़ो-हजारों वनितादि रूप पर्वतों को वैसे ही अपनी योगाग्नि के तेज से भस्म कर देते हैं कि जैसे प्रलय काल में समर्थ सूर्य अपने तेज से प्रजाओं को भस्म कर देते हैं। जब ब्रह्म की ओर उद्यत मुख वाले अग्नि (योगी) को मायाओं के द्वारा जीतने में समर्थ नहीं होते तो वह योगी सूर्योदय कालिक सूर्य के समान आकाश में चमकने लगता है। तब सभी कामादिक दैत्य अपने उद्यमों के निष्फल हो जाने पर भग्न पराक्रम हो गन्धमादन पर्वत को प्राप्त हो पर्वत के शिखर पर बैठे जाते हैं। और वह अग्नि वैष्णव लोक के विद्युत के साथ संगत होकर अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले दैत्यों को भस्म करता हुआ आकाश में विचरने लगता है। इस प्रकार योगी

के उपसर्गों (बाधकों को जीत कर स्वस्थ चित्त हुआ योगी भी) वर्षाधिष्ठात्री देवता बलाहक नाग हो मेघों के समूह में प्रविष्ट होकर भूमि पर जल वर्षाने लगता है वह वृष्टि वाले मेघ के समान हो जाता है। ब्राह्मणों के मुख से निकले हुए मन्त्रों के द्वारा प्रेरित होकर वह नाग (वर्षा का देवता) प्रजाओं को विप्रों से उत्पन्न हुआ जानकर जलराशि की वर्षा करने लगता है।।८१-९२।।



अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।।२९।।

जनमेजयजी बोले- तप से संयुक्त देवताओं ने इसके बाद क्या किया? लोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है कि तप से न प्राप्त किया जा सके। वैशम्पायनजी बोले- विष्णुमय जगत् को देखने वाले सभी देवतागण यज्ञ की दीक्षा प्राप्त कर अरणी से अग्नि निकाल कर उसे यथा विधि स्थापित कर वैदिक मन्त्रों से प्रेरित हो मन्त्र की विधि से ब्रह्मार्पण हवन करने लगे। जैसी शास्त्र की विधि है उसके अनुसार मन्त्र से पवित्र हवि के द्वारा ब्रह्म तेज से वह अग्नि वहाँ अग्नि कुण्ड में बढ़ने लगा इसके पश्चात् बहुत तेजों से युक्त वे प्रभु पुरुष के आकार में प्रकट हो गये वे ब्रह्मदण्ड के नाम से विख्यात पुरुष अपने शरीर से जलते हुए प्रतीत हो रहे थे वे दिव्य रूप वाले नाना प्रकार के आयुधों को धारण किये थे (सोलह प्रकार के आयुधों को धारण करने वाले सोलह भुजाओं से युक्त वे नारायण थे) तलवार, ढाल तथा धनुष धारण किये थे। गदा, लाङ्गल, चक्र, बाण, कवच, परश्वध, शूल, वज्र, खड्ग, शक्ति तथा श्रेष्ठ कार्मुक नाम वाले धनुष को धारण किये थे तथा वे अग्नि रूपी विष्णु चक्र तथा खड्ग एवं मुसल और हल को धारण किये थे। इन आयुधों में से नर ने हल और मुसल को अपने लिये ले लिया। और तपोयोग से इन्द्र ने सैकड़ों पर्वों वाले वज्र को ले लिया, रुद्र ने इस पृथ्वी पर अपने मन से शूल और पिनाक नाम वाले धनुष को धारण किया। मृत्यु ने दण्ड को, वरुण ने पाश को तथा काल ने शक्ति को ग्रहण किया त्वष्टा ने फरसे को और कुबेर

ने परश्वध को धारण किया। इसके पश्चात् विश्वकर्मा तथा उनके भेद मूर्ति त्वष्टा ने सैकड़ों और हजारों आयुधों को बनाया इस प्रकार उन दोनों ने बहुत आयुधों का निर्माण किया।।१-१०।।

परमात्मा श्री कृष्ण ने इन्द्र, प्रतापी सूर्य तथा महात्मा रुद्र के लिये एक-एक अग्नि रथ प्रदान किया। त्वष्टा ने छन्दों के द्वारा सेना का निर्माण किया और विश्वकर्मा ने बहुत प्रकार के क्रमों (पेच-पूर्जो) के द्वारा विमानों का निर्माण किया। सत्य पराक्रमी विष्णु ने अविनाशी पुष्कर से अपने शरीरांश को निकाल कर पृतना (सेना) के लिए दण्ड का निर्माण किया। सूर्य तथा नक्षत्रों की स्थिति के लिये आकाश की रचना की और शत्रुओं को रण में भेदन किया वे विष्णु वैसे ही पूज्य हुए कि जैसे स्वर्ग में इन्द्र पूज्य हैं। इसके बाद ब्रह्मा रूपी विष्णु ने इन्द्र द्वारा असुरों पर निपातित निर्विकार दण्ड को समुचित रूप से ग्रहण कर लिया और योग विधि से वे प्रभु अर्न्तधान हो गये। देवताओं ने भयंकर तेज से युक्त ऐन्द्र, आग्नेय, वायव्य तथा रौद्र नामक चार प्रकार के अस्त्र समूह को अपने प्रभाव (शक्ति) के अनुसार विधि से धारण कर लिया। उधर दिति के पुत्र दैत्य भी कामादिक विकारों से संयुक्त होते हुये तपस्या शिक्षा तथा अपने-अपने आयुधों तथा अस्त्रों से युक्त हो महाबली हो गये। वे सभी दैत्य चतुरङ्गिणी सेना से सुसज्जित हो उस समय रण में अधृष्य (अजेय) प्रतीत होने लगे। वे दैत्य अपने गुहा अर्थात् गुह्य रूपों का परित्याग कर मय बर्तन भड़वे तथा भोग्य वस्तुओं से भरे रथों के मध्य बैठे हुए मन्दराचल के आस-पास पृथ्वी तल पर विचरने लगे। तब प्रभु विष्णु भी तमोगुण के कार्य को फैलाने वाली सम्पूर्ण चतुराङ्गिणी सेना का संहार कर वसुधातल में महायोगों को करने लगे। इसके बाद फिर शिथिलीभूत शेष दैत्य धर्माञ्चल में निवास करने वाले ब्राह्मण और सभी देवतागणों के साथ अन्य भाँति से तप में स्थित हुए इसलिये सात्त्विक धर्म का ही आदर करना चाहिए।।११-२१।।

❖✲❖

अथ त्रिंशोऽध्यायः ।। ३० ।।

जनमेजयजी ने कहा कि हे ब्रह्मन् ! महाप्रलय उपस्थित होने पर जब कि यह जगत् मर्यादा से रहित हो जाता है तो विनाश के पहले प्राणियों की क्या दशा रहती है? वैशम्पायन जी बोले त्रेता युग में पहले प्रजा के पालन में धर्म परायण वेनु पुत्र पृथु को राज-कार्य करने के लिये राज्य पर, ऋषियों के साथ प्रजापति ने अभिषिक्त किया। तब त्रेता युग के सम्यक् प्रवृत्त हो जाने पर यह हम लोगों का परम श्रेष्ठ राजा है जो कि प्रजा के प्रेम से राज्य सिंहासन पर बैठाया गया है इस प्रकार सभी लोग आपस में कहने लगे। यह हम लोगों की वृत्ति (जीविका) देने वाला तथा ब्राह्मणों का आदर करने वाला है और ईश्वर की कृपा से सत्य प्राप्त कर्म से सभी प्राणियों के सुख-साधन का निर्माण करने वाला है। इसी समय तप के बहुत से नियमों से थके हुए देवता गन्ध मादन पर्वत के शिखर पर बैठे थे। तब वसन्त ऋतु का समय प्राप्त होने पर पुष्पों के गन्ध को प्राप्त कर सभी देवता-दानव प्रसन्न हो उस गन्ध से दर्पित हो गये। और कहने लगे कि वायु के द्वारा उड़कर आया हुआ पुष्प का जो गन्ध है उसका प्रभाव देखो कि कितना मनोग्राही है इससे पार्थिव गन्ध ही उत्तम तथा सब सुखों का मूल है। दैत्य उस गन्ध से किंचित् विस्मय को प्राप्त हुए वे प्रसन्न मन होकर परम सुख को प्राप्त हो गये। उस गन्ध से दर्पित सभा एक साथ कहने लगे कि अहो जब पुष्प-समूह का सुगन्ध इतना आनन्द दायक है तो उसका फल कितना आनन्द दायक होगा। अनुमान से विविध प्रकार के कर्म फल को जानना चाहिये और बुद्धि के बल से प्राणियों के शुभ तथा अशुभ को जानना चाहिये।।१-१०।।

इसलिए हमलोग क्षीर सागर के मध्य औषधियों को डालकर बली तथा इच्छानुसार रूपधारण करने वाले विशाल मन्दराचल से मथें। जब हम लोग औषधियों के साथ समुद्र को मथेंगे तो उसमें से सोमज जल अर्थात् अमृत निकलेगा तब उसको पीकर इच्छानुसार रूप वाले हम सभी एक साथ प्रस्थान करेंगे। हम लोगों के अगुआ महाबली विष्णु ही होंगे फिर हम लोग शत्रुओं

(देवताओं) के साथ पृथ्वी और स्वर्ग पर राज्य भोगेंगे। हम मूल, पत्र, शाखा तथा पुष्प एवं फल के साथ युक्त हो सभी ग्रहों को पकड़ लेंगे वसुधा तल पर अमृत को प्राप्त करेंगे। मन्दराचल को उखाड़ने के विषय में इस प्रकार बातें कह कर दैत्य गन्ध मादन पर्वत के शिखरों को छोड़ पर्वत की तराई से निकल कर मन्दराचल को उखाड़ने के लिये मेदिनी को कँपाते हुए दौड़ पड़े निश्चय रूप से वे महापराक्रमी अपनी विशाल बाहुओं से पर्वत को उखाड़ने लगे। परन्तु वे दनु के वंशज शैलेन्द्र मन्दराचल को उखाड़ने में समर्थ न हो सके और झल्ला कर घुटनों के बल विशाल पर्वत के मध्य भाग में गिर पड़े। तप से भस्म किये पाप वाले वे दैत्य आत्मा से आत्मा का समाधान कर काम रूप वाले शिरों से नमस्कार कर पितामह ब्रह्मा की शरण में चले गये। सर्वत्र गमन करने वाले तथा सबको वश में रखने वाले ब्रह्मा दैत्यों के मन की बात जानकर बहुत प्रकार के वाक्यों से प्रणव (ॐ) रूप सरस्वती का उपदेश देने लगे। सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करने की बुद्धि रखने वाले ब्रह्मा लोकों की हित कामना से निर्गुण सम्पदा से युक्त शरीर रहित शरीर में स्थित (ॐ) रूप सरस्वती का उपदेश दिये।।११-२०।।

(ब्रह्मा ने कहा कि) तुम लोग आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण, देवता, यक्ष तथा गाने वाले गन्धर्वों के साथ जाकर अमृत के लिए धातुओं से समान रंगे महातेजस्वी मन्दराचल को उखाड़ने में समर्थ हो सकते हो। देवता तथा असुर-गण सभी एक साथ हो महागिरि को उखाड़कर हिमवान् के रस से भरी अर्थात् जीवनोपयोगी सार से भरी लताओं को हाथ पर देखें। सभी के सामने इस प्रकार ब्रह्मा के सामने इस प्रकार ब्रह्मा के वचन को सुनकर बाहुबली दैत्य मन तथा वाणी से इस कार्य को करने के लिये उद्यत हो गये। जहाँ पुष्कर का विन्यास किया गया था वहाँ लवण समुद्र के जल में देवताओं के साथ सभी दैत्य प्रायः क्रीड़ा करनं लगे। फिर देवता तथा असुर-गण सभी एक साथ हो लवण समुद्र के जल में मन्दराचल की मथानी तथा वासुकि को रस्सी बना कर एक हजार वर्ष तक औषधियों के साथ जल का मन्थन किया था तब क्षीरभूत जल से मन्थन योग द्वारा अमृत निकाला। जिसको कि पहले लोभ

और क्रोध से व्याप्त असुरों ने चुरा लिया, समुद्र से धनवन्तरी, मदिरा, लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि तथा चारो ओर विमल प्रकाश फैलाने वाले चन्द्रमा और उच्चैःश्रवा रम्य घोड़ा निकला इसके बाद अमृत निकला। तो उस अमृत को लेने के लिये देवता उद्यत हो राहु को निर्देश करते हुए कहने लगे कि जब इस अमृत को दैत्य तथा दानव कोई नहीं पी रहा है तो राहु क्यों पी रहा है। (इस बात को सुनकर) विष्णु ने चक्र से राहु का शिर काट डाला अब वह निर्मुक्त (नित्य) पितृ-गण तथा सनातन मुनियों आदि से संवित हो रहा है। इसके बाद वेद के ज्ञाता ब्रह्मा के वचनों से प्रेरित हो पृथ्वी इन्द्र के हाथ से अमृत को अपने अंक में लेकर चली गयी।।२१-३२।।



अथैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः।।३१।।

जनमेजय जी बोले कि विष्णु के अत्यन्त पराक्रम करने पर जब दैत्य समूह निहत हो गया तब वे दैत्य तथा दानव पुनः अपने पराक्रम के बल से क्या चाहते थे? वैशम्पायन जी बोले- महाबली दानव पराक्रम कर राज्य की इच्छा करते थे और सत्य पराक्रम वाले देवता शान्ति के साथ तप की इच्छा करते थे। जनमेजय जी बोले- हिरण्यकशिपु दीर्घ काल के बीतने पर ब्रह्मा के क्षेत्र मे कैसे यज्ञ किया। वैशम्पायन जी बोले कि महाफल की इच्छा से हिरण्यकशिपु वसुधा में राजसूय यज्ञ के द्वारा यजन करने लगा था। गंगा और यमुना के मध्य भाग में हिरण्यकशिपु के यजमान बनने पर हे भारत! वेद के विद्वान ब्राह्मण, यति तथा योगधर्म से पूर्ण अन्य सिद्धगण भी पधारे थे। धन्य तथा धर्म से शोभित बालखिल्य मुनि लोग और नित्य धर्मपरायण प्रमुख-प्रमुख बहुत से ब्राह्मण भी पधारे थे। हजारों विप्र-पूज्य ऋषिगण भी जगह-जगह से आये थे, वहाँ दैत्य गणों के मध्य अपने पुत्र के साथ शुक्र जी यज्ञ करा रहे थे। उस यज्ञ में हिरण्यकशिपु ने कहा था कि यह यज्ञकर्ता इच्छानुसार वर दे रहा है लेने वाले उसे ग्रहण करें।।१-१०।।

तब वामन रूप से विष्णु ने हिरण्यकशिपु से तीन पग भूमि की भिक्षा ग्रहण कर ली। इसके बाद सत्यपराक्रमी विष्णु ने दिव्य शरीर धारण कर मुनियों से व्याप्त तीनों लोकों को नाप लिया। तब सैन्य गणों के साथ आयुधों को लिये हुए हर लिये गये राज्य वाले दैत्य गण पाताल को चले गये। इसके बाद इन्द्र और विष्णु के साथ वे देवता गण शीघ्र ही उठ खड़े हुए और प्रसन्नतापूर्वक तीनों लोकों पर इन्द्र का अभिषेक कर दिया। उस इन्द्र ने शीघ्र ही स्वधा रूप अमृत से पितरों का तर्पण किया, ब्रह्मा ने उस दिव्य अमृत को महेन्द्र के लिये दिया तब इन्द्र ने द्वेषियों के रोंगटे खड़े कर देने वाले शंख को बजाया। उस शंख के शब्द को सुनकर तीनों लोक इन्द्र जैसे स्वामी को पाकर परम शान्ति को प्राप्त हुए। अग्नि से उत्पन्न अतः अग्नि के समान चमकते हुए सभी आयुधों से संयुक्त हो मन्दराचल प्रदेशों में सभी देवता परम सुख को प्राप्त हुए।।११-१९।।



अथ द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः।।३२।।

वैशम्पायनजी बोले कि- धर्मोदय राज्य के स्थापित हो जाने पर देवताओं और मनुष्यों का सहवास एक साथ हो गया। यज्ञ कर्म में स्वयं देवता उपस्थित होकर अपना-अपना भाग ग्रहण करने लगे। इसके बाद बृहस्पति दक्ष को दीक्षित कर यज्ञ कराने लगे। उस मातामह के यज्ञ में (दक्ष की पुत्रियों से ही सभी उत्पन्न हुए हैं, इसलिये दक्ष को पितामह कहा गया है) अपने भाग के लिये नन्दी के साथ शंकर जी उस द्रोह करने वाले अविदितात्मा दक्ष का शामित्र अर्थात् हिंसन कर दिया। शंकर जी कार्य कारण से एक से दो हो गये थे, रुद्र के ही दूसरे रूप नन्दी हैं उनकी इच्छा से ही परम धर्मात्मा नन्दी पुरुष के आकार में उत्पन्न हो गये थे। हे राजेन्द्र! उन्हीं परमात्मा रुद्र ने योग के सत्य वचनों के द्वारा जो सनातन ब्रह्म है उसे प्रकाशित किया है। नन्दी तथा पिनाकपाणि शंकर दक्ष के उत्तम यज्ञ को नष्ट करने के लिये युगान्तकारी कालाग्नि की भाँति उद्यत हो गये थे।।१-१०।।

प्रमथगण यज्ञ के यूपों को उखाड़ कर वल्कल और मृगचर्म धारण करने वाले मुनि गणों को त्रास देते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे। और अन्य ताँबे के समान लाल नेत्र वाले निशाचर हवियों को जीभों से चाटने लगे तथा कुछ निशाचरगण हाथी के सुण्ड जैसे दाढ़ों वाले पशुओं को खाने लगे। कुछ रुद्र-गण यज्ञ के स्तम्भों को उखाड़ कर फेकने लगे और पशुओं को मारने लगे, कुछ यज्ञाग्नि को बुझाने के लिये अग्नि के मध्य जल को छोड़ने लगे। कितने यज्ञीय पात्रों को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे कुछ अरणी को घसीटने लगे। कुछ हवन के लिये बनी खीर को खाने लगे।।११-२०।।

इस प्रकार दिन और रात्रि में अनवरत नष्ट होता हुआ महायज्ञ मूर्ति धारण कर क्षुभित हुए समुद्र के समान महानादों को करने लगा। तब महादेव जी ने जानुओं के बल से धनुष को नवा प्रत्यंचा चढ़ा बाण से संयुक्त किया फिर उस महायज्ञ को मारा। तब उस बाण से विद्ध वह महायज्ञ आकाश में उड गया और मृग का रूप धारण कर चिल्लाता हुआ ब्रह्मा की शरण में जा कहने लगा कि- मैं शंकर के बाण से आहत पृथ्वी पर कहीं पीड़ा को प्रशमन करने वाला त्राण नहीं पा रहा हूँ बाण के शरीर में प्रविष्ट हो जाने से मैं शरणार्थी बन कर आपकी शरण में आया हूँ। ब्रह्मा ने उस मृग से अनुनय पूर्वक शुभ वचन कहा कि हे मृग! तुम इसी रूप से महामृग बन कर अब आकाश में रहोगे। अक्षय तथा चन्द्रमा से संयुक्त हो ताराओं के साथ संगत हो जाओगे। तुम ज्योति वालों में ज्योति युक्त होओगे तथा ध्रुव के भी महाध्रुव होओगे तुम्हारे घाव से जो यह निकला हुआ दिव्य रुधिर है वह आकाश में इन्द्र-धनुष होगा।।२१-३०।।

हे राजन्! वह बड़ा अद्भुत अनेक रंगों का होगा। इधर शंकर जी प्रलय काल में जलते हुए ब्रह्मदण्ड के समान जगत् को नष्ट करने के लिये उद्यत हो गये। इस दशा को देख कर महाबाहु विष्णु सींग के अग्रभाग से बने हुए शार्ङ्ग धनुष को ग्रहण कर दूसरे हाथ से सुदर्शन चक्र को उठा लिये। फिर तीसरे हाथ से घण्टा सहित गदा तथा चौथे हाथ से खड्ग को उठा कर युद्ध के लिये

उठे हुए हाथ वाले रुद्र से युद्ध करने के लिये उनके आगे खड़े हो गये। आदित्यगण तथा वसु-गण अपने दिव्य आयुधों के साथ विष्णु के चारों ओर खड़े हो गये।।३१-४०।।

मरुत-गण तता विश्वेदेव, गन्धर्व, किन्नर, नाग तथा सर्पो सहित यक्षगण रुद्र के समीप खड़े हो गये। और दोनों पक्षों का हित चाहने वाले ऋषि-गण हित की कामना से शान्ति-जप करने लगे। रुद्र ने विष्णु को हृदय में तथा सभी अङ्गों के जोड़ों में नुकीले बाणों से मारा। फिर भी ब्रह्मा के उत्पत्ति स्थान विष्णु सर्वात्मा होने से कम्पायमान नहीं हुए और न सभी षडिन्द्रयों से नित्य घिरे हुए विष्णु मन में रोष ही लाये। विष्णु ने भी धनुष को चढ़ा उस पर ब्रह्मदण्ड के समान बाण रख शंकर जी की हँसुली देश में शीघ्र ही मार दिया। उस बाण से विद्ध महादेव जी विचलित नहीं हुए। इसके बाद एकबाएक उछल कर विष्णु रुद्र के कण्ठ देश को पकड़ लिये जिससे कि भगवान् शंकर नीलकण्ड हो गये। और कहने लगे कि आप अनादि निधन देव हैं, इसलिये आप कर्मों मे अचल तथा सभी प्राणियों एवं सभी वेदों का आचार्य होने से मुझको क्षमा करें। हे भारत! शंकर जी कहने लगे कि आप कर्मों के कर्त्ता तथा विकर्त्ता भी हैं प्राणियों के अशेष हो जाने पर आप ही शेष रह जाते हैं।।४१-५०।।

उस समय अन्तरिक्ष से सिद्धों के मुख से निकली हुई शुभ वाणी सुनाई दे रही थी कि हे सनातन! आपके लिये नमस्कार है। इसी बीच रुद्र से उत्पन्न नन्दी क्रोध से पागल हो पिनाक को उठा कर विष्णु के शिर में मार दिये। इस प्रकार प्रहार करते नन्दी को देख कर सुरोत्तम विष्णु हँस दिये और सभी प्राणियों के प्रति भगवान् हरि ने नन्दी का स्तम्भन कर दिया। और स्वयं अपने तेज से ब्रह्म के समान जलते हुए विष्णु क्षमा से युक्त हो अचल रहे। तथा शान्तात्मा बने रहे सुरोत्तम विष्णु ने प्रसन्न हो बुद्धिमान् रुद्र के लिये भाग की कल्पना की। हे राजेन्द्र! विष्णु ने पुनः उस यज्ञ को श्रद्धा से करवाया प्रजापति दक्ष ने यज्ञ का फल प्राप्त किया था। यही महात्मा विष्णु का पुष्कर नामक

प्रादुर्भाव है। द्वैपायन व्यास जी द्वारा पुराण में पुष्कर सम्बन्धी आख्यान जो कहा गया वह यथावत् महर्षियों द्वारा संस्कृत आख्यान क्रमशः मैंने आप से कहा। जो पौष्कर सम्बन्धी पुराण को सुनता है वह सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण कर शोक रहित हो स्वर्ग के फलों को भोगता है।।५१-६३।।



अथ त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।।३३।।

जनमेजयजी बोले कि- हे विप्र! वराहावतार धारण कर उन्होंने पहले क्या किया था। आप मेरे संशय को दूर कीजिये। वैशम्पायनजी बोले मैं तुमसे कृष्ण द्वैपायन व्यास के द्वारा कहे गये ब्रह्मसम्मति पुराण को कहूँगा जिसके अन्दर अद्भुतकर्मा महावराह के चरित्र का वर्णन है। नाना प्रकार की श्रुतियों से युक्त वेदों से सम्मत परम पुण्य यह पुराण सुनें एक हजार युग के बीतने पर जब ब्रह्मा का दिन समाप्त होने लगता है तब सभी प्राणियों के नाश का समय आ जाता है और तरह-तरह के उत्पात होने लगते हैं। उस समय हिरण्यरेता अग्नि, वायु तथा सूर्य रूपी तीन शिखाओं को धारण कर विविध प्रकार के लोकों का तथा प्राणियों का संशोषण करने लगते हैं। तब उनके तेज से जाज्वल्यमान होते हुए वे लोक तथा शरीरधारी जीव दग्धांग हो काले हो जाते हैं। अंगों के सहित उपनिषद्, वेद और इतिहास आदि और सभी विद्याओं के आश्रित रहने वाले धर्म तथा तैंतीस करोड़ सभी देवता स्वेच्छा से चारों ओर मुख वाले ब्रह्मा को आगे कर उस दिन की समाप्ति में प्रभु हरि के अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं। जैसे सूर्य का निरन्तर उदय और अस्त दोनों हुआ करता है वैसे ही हरि में प्रविष्ट हुए उन प्राणियों का निधन और उत्पत्ति हुआ करती है।।११-२०।।

हजार युगों के पूर्ण हो जाने पर अन्त में निःशेष कल्प कहलाता है, उसमें जीव का किया हुआ सब कुछ कर्म-धर्म क्रिया रहित होकर रहता है। जगत् के गुरु भगवान् अकेले ही देवता-असुर तथा पन्नगों सहित सभी लोकों

को अपने गर्भ में हरण कर शयन करते हैं। कल्प के अन्त में सबका नाश कर सृष्टि करने वाले अव्यक्त तथा शाश्वत देव जो विष्णु हैं उन्हीं का यह सम्पूर्ण जगत् है। लोक में सूर्य की किरणों के नष्ट हो जाने पर, चन्द्रमा की प्रभा के नष्ट हो जाने पर, प्राणी, अग्नि और पवन के नहीं रहने पर तथा यज्ञ और हवन क्रिया के क्षीण हो जाने पर। पक्षि-गणों के समूह के नहीं रहने पर, सभी प्राणियों की गति से मार्गों के शून्य हो जाने पर तथा अमर्यादा के व्याप्त हो जाने पर और सभी स्थानों पर अन्धकार के घिर जाने पर, सभी लोकों के अदृश्य हो जाने पर, सभी कर्मों का अभाव हो जाने पर और सभी प्रकार के सन्तापों के शान्त हो जाने पर तथा बैर और बन्धन के नष्ट हो जाने पर जब सम्पूर्ण नारायणात्मक लोक अपने स्वभाव संस्थान को चला जाता है तब परमेष्ठो हृषीकेश शयन के लिये विचार करते हैं। उस समय उनकी आँखें लाल हुई रहती हैं, वे पीले वस्त्र धारण किये रहते हैं और मेघ के समान कृष्ण वर्ण के रहते हैं और हजारों शिखाओं से बँधे हुए भार को शिर पर वहन करते हैं। और वे महाबाहु लाल चन्दन से विभूषित पुण्यमय श्रीवत्स चिह्न को वक्षस्थल में धारण किये हुए बिजली सहित मेघ की भाँति शोभा पाते हैं। उनके गले में हजार कमलों की माला शोभती रहती है, उनकी पत्नी लक्ष्मी जी स्वयं उनकी सेवा के लिये उपस्थित रहती हैं।।२१-३०।।

इसके बाद सर्वलोक पितामह धर्मात्मा अमित पराक्रमी कुछ श्रमित से हो निद्रा के योग को प्राप्त हो शयन करते हैं। इसके पश्चात् हजार वर्ष पूर्ण हो जाने पर देवताओं के स्वामी वे पुरुषोत्तम स्वयं ही व्यापक होकर जागृत हो जाते हैं। इसके बाद लोककर्त्ता पुनः लोक की सृष्टि का विचार करते हैं तथा पारमेष्ठ्य कर्म से पितर, देवता और असुरों को रचने की चिन्तना करते हैं। इस प्रकार सृष्टि कार्य का चिन्तन करते हुए तथा देवताओं के विषय में सोचते हुए वे वाक्यपति सम्पूर्ण लोकों की उत्पत्ति का विधान करते हैं। वे विष्णु कर्त्ता, विकर्त्ता तथा संहर्त्ता हैं। सभी देवता नारायण परक हैं, सभी क्रियायें नारायण परक हैं, यज्ञ, श्रुति, मोक्ष, गति, धर्म और क्रतु सभी नारायण परक हैं। ज्ञान, तप, सत्य और मोक्ष ये सभी नारायण परक हैं , नारायण से परे

कोई देवता हुआ और न होगा। वे ही विष्णु, स्वयम्भू, ब्रह्मा, भुवनाधिप हैं वे ही वायु और सनातन यज्ञ हैं ऐसा समझना चाहिये। सत्-असत् सब उन्हीं को जानना चाहिये, प्रजाओं को उत्पन्न करने वाले और यज्ञ वे ही हैं जो देवताओं के द्वारा जानने योग्य हैं वह सब जानते हैं।।३१-४०।।

जो भगवान् वेद्य विषय हैं उन्हें देवता नहीं जानते; देवताओं सहित प्रजाओं के पति तथा सप्तर्षि भी इनके अन्त को जानने में समर्थ नहीं हैं, इसीलिये श्रुति इनको अनन्त कहा करती है, जो इनका परम श्रेष्ठ रूप है उसे अवतार होने पर देवता देखते हैं। जो अवतारों में रूप प्रकट होता है उसकी देवता पूजा करते हैं और जिस रूप को उन्होंने नहीं दिखाया उसे कौन ढूँढ़ सकता है। वे सभी प्राणियों के मुखिया हैं, अग्नि और मरुत की गति हैं; तेज, तप और मोक्ष के धाम है। चारों आश्रमों और चारों वर्णों में चातुर्होत्र के फल को भक्षण करने वाले हैं। वे महायोगी विष्णु जगत् का संहार कर एक हजार वर्ष तक गर्भ में स्थित रहने वाले अण्डे को छोड़ते हैं। जो देवता, असुर, ब्राह्मण, सर्प, अप्सरागणों से तथा महौषधि पर्वत, यक्ष तथा गुह्यकों से युक्त रहता है, इसके बाद प्रभु प्रजापति अपनी आत्मा से ब्राह्मणों और राक्षसादिकों से व्याप्त इस जगत् की रचना करते हैं।।४१-४७।।



अथ चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।।३४।।

वैशम्पायन जी बोले कि- यह जगत् का अण्ड पहले सुवर्णमय तथा प्रजापति की मूर्तिमय था अर्थात् सम्पूर्ण जीवों के रूप से भरा था ऐसी वेद की श्रुति है। तदनन्तर हजार वर्ष बीतने पर विभु ने लोकों की उत्पत्ति के लिये उस अण्डे के ऊपर छिद्र कर दिया पुनः उसके नीचे भी छिद्र कर दिया। लोक की योनि अण्ड के निर्माणकर्ता प्रभु ने उसका आठ प्रकार से भेदन किया फिर सभी के भाग को जानने वाले विष्णु ने जगत् का विभाग किया। जो ऊपर में छिद्र था वही आकाश हुआ जो पुण्यात्माओं की परागति है, विश्व के योग

से जो नीचे छिद्र किया था वही रसातल हो गया। जो पहले लोक-सृष्टि की इच्छा से अण्ड का निर्माण किया था और फिर जो उसमें आठ छिद्र किये थे वे ही चार दिशायें और दिशाओं के चार कोण हुए यह दो प्रकार की कल्पना अपने मन से ही उन्होंने की थी और जो अण्ड के रंग-बिरंग के टुकड़े थे वे नाना प्रकार के वर्णों को धारण करने वाले चित्र-विचित्र मेघ बन गये इसके आलावे अण्ड के मध्य में जो द्रव पदार्थ इकट्ठा था, वह सभी पृथ्वी तल पर सुवर्ण रूप हो गया उस अण्ड के द्रव पदार्थ से पृथ्वी वैसे ही चारों तरफ़ से आच्छादित हो गई कि जैसे प्रलय काल में सागरों से सम्पूर्ण पृथ्वी ढक जाती है। देव लोक की रचना की इच्छा से जिस अण्ड को पहले बनाया था उसमें से जो द्रव पदार्थ निकल कर इकट्ठा हुआ वह द्रव सलिल काञ्चन गिरि हो गया।।१-१०।।

उस द्रव सलिल से सभी दिशायें तथा उपदिशायें, अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग एवं और भी जो कुछ था वह सभी गोला हो गया। जहाँ-जहाँ वह जल इकट्ठा होता गया वहाँ-वहाँ पर्वत बनता गया तब सम्पूर्ण पर्वतों से पृथ्वी अर्थात् ऊँची-नीची हो गई। बहुत योजन विस्तारवाले पर्वत जाल-समूहों के भार से पृथ्वी देवी बार-बार पीड़ित होने लगी। औंर पृथ्वी तल पर दिव्य नारायणात्मक सुवर्णमय तथा तेज से विमल रूप वाले उपरोक्त जल अधिक मात्रा में फैल गया। तब भगवान् के उस तेज से पीड़ा पाती हुई पृथ्वी यह सब धारण करने में असमर्थ हो नीचे धँसने लगी। पृथ्वी को नीचे प्रवेश करती देखकर मधुसूदन श्रीभगवान् बोले कि मेरे तेज को प्राप्त कर यह पृथ्वी रसातल में प्रवेश कर रही है जैसे दुर्बल गौ पङ्क में प्रविष्ट हो जाय। धरणी बोली कि मैं आपके धारण किये हुए पदार्थ को ही धारण करती हूँ, आप जिसे धारण नहीं करते उसे मैं भी धारण नहीं करती हूँ। जब-जब मैं दुरात्मा दानवों तथा राक्षसों से पीड़ित होती हूँ तब-तब आप सनातन पुरुष की ही शरण में जाती हूँ।।११-२०।।

श्रीभगवान् बोले- हे कल्याणि! तुम शान्ति को प्राप्त होओ मैं तुम्हें

इच्छित तथा उचित स्थान पर लाऊँगा। महात्मा विष्णु अपने दिव्य रूप का चिन्तन करने लगे और सोचने लगे कि किस रूप को धारण कर मैं पृथ्वी को ऊपर लाऊँ। जिस रूप से मैं जल में निमग्न पृथ्वी का उद्धार करूँ ऐसी चिन्ता कर उस रूप को धारण करने का विचार निश्चित किया। जलक्रीडा में स्वाभाविक रुचि होने से उन्होंने वराह रूप को धारण किया था, वह रूप दश योजन लम्बा तथा सौ योजन ऊँचा, मेघ के समान श्याम, मेघ के गर्जन के समान घुरघुराने वाले, महापर्वताकार शरीर वाला, चमकीले श्वेत दाँत आगे निकले हुए, गोलाकार स्कन्ध वाले थे वे पृथ्वी का उद्धार करने के लिये रसातल में प्रविष्ट हो गये, चारों वेद उनके मानों पैर थे, यज्ञस्तम्भ उनका दाढ़, यज्ञ उनके दाँत और चिति उनका मुख था।।२१-३०।।

अग्नि जिह्वा, कुश रोम, ब्रह्म (प्रणव ॐ) शिर और दिन रात्रि के देवता सूर्य और चन्द्रमा उनके नेत्र तथा वेदाङ्ग उनके कर्ण के कुण्डल थे वे उस समय महातपस्वी ज्ञात हो रहे थे। घृत रूप नासिका वाले, स्रुवारूप मुख वाले वराह भगवान् सामवेद का महान् घोष कर रहे थे वे सत्य और धर्ममय श्रीमान् वराह जी क्रम और विक्रम से सत्कारित हो रहे थे, क्रियामय यज्ञ उनकी महती नासिका, पशु घुटने और मुख आकृति, उद्गाता अँतड़ियाँ तथा बीज और औषधियों का महत्वपूर्ण फल लिङ्ग था। वायु अन्तरात्मा, मन्त्र को स्पर्श करने वाला उनका विक्रम, सोमलता का रस उनका रुधिर, यज्ञ की वेदी कन्धा, हवि गन्ध तथा हव्य एवं काव्य रूपी उनका अति वेगशाली गमन था। दक्षिणा उनका हृदय था वे महायज्ञमय महान् योगी ज्ञात हो रहे थे। वेदोपकरण उनके ओष्ठ का रक्त-तल था, प्रावर्ग्य उनकी गोलाकार नाभि थी, नाना प्रकार के छन्दों की जो गति है वही मार्ग था और गुह्य जो उपनिषद् है उनका असन था।।३१-४०।।

उनकी छाया पत्नी के समान सहायक थी वे जगद्गुरु मणि के पर्वत-शिखर की भाँति ऊँचे वराह होकर एक-बा-एक जल में प्रविष्ट हुए थे। जल राशियों से ढकी हुई पृथ्वी जो रसातल में डूब गई थी जो पाताल के बिचले

भाग का आश्रय कर रही थी उस पृथ्वी के समीप प्रजापति वराह भगवान् पहुँच गये। लोक के हितार्थ प्रभु वराह अपने उग्र दाढ़ से पृथ्वी को ऊपर उठाये इसके पश्चात् पृथ्वीधर ने पृथ्वी को उसके निश्चित स्थान पर लाकर स्थापित कर दिया। धराधर ने इस प्रकार सहसा पहले पृथ्वी को धारण कर फिर रख दिया तब उनके ऐसे उद्धारपूर्वक धारण से पृथ्वी सुख को प्राप्त हो गई। और उसने कल्याण करने वाले उन शम्भु देव के लिये नमस्कार किया, इस प्रकार यज्ञ-वराह बन कर प्राणियों के हित की इच्छा वाले विष्णु ने सभी लोकों के हितार्थ एक केवल दाढ़ से ही अत्यन्त भार वाली पृथ्वी का उद्धार किया था।।४१-४८।।



अथ पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः।।३५।।

वैशम्पायन जी बोले- इसके बाद पृथ्वी और समुद्र का चार-चार भाग करके पृथ्वी के मध्य भाग में सुवर्णमय मेरु पर्वत का निर्माण किया। पृथ्वी का विभाग कर देवता तथा असुरों की उत्पत्ति के लिये बुद्धि निश्चित किया, लाल-लाल आँखों वाले वे लोकनाथ लोक के हित के लिये सभी दिशाओं में विविध प्रकार के नाम वाले पर्वतों तथा जल से गम्भीर पुण्य नदियों का निर्माण किये।।१-५०।।



अथ षड्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।।३६।।

वैशम्पायन जी बोले कि- जब उन पूर्वज देव ने जगत् की सृष्टि का विचार किया तो ऐसा विचार करते ही उनके मुख से एक पुरुष निकला। तब वह पुरुष इन देव से ''मैं क्या करूँ'' ऐसा कह कर खड़ा हो गया तब जगत्पति मुस्कुरा कर उसके प्रति बोले कि अपनी आत्मा को विभक्त करो ऐसा कह कर वे ईश्वर अन्तर्धान हो गये हे भारत! उन देव के अन्तर्हित शरीर की

गति बुझे दीपक के समान हो गई इसके बाद विभाजन के लिए वह समर्थ पुरुष चिन्ता करने लगा। पहले पहल ब्रह्मा उत्पन्न हुए ऐसा वेदों में सुना है। जब वे उत्पन्न हुए तब से लेकर आज तक यज्ञ में अनेक भाग का विधान है; प्रजापति अपने मन में कहने लगे कि मैं अपनी आत्मा का कैसे विभाग करूँ यह मुझे महान् संशय है, इस प्रकार चिन्ता करते हुए ब्रह्मा के मुख से ॐ ऐसा स्वर निकला। हृदय से वषट्कार निकला फिर भूमि तथा अन्तरिक्षादिकों की महास्मृतिमय पुण्य व्याहृतियाँ स्वरालिका भूर्भुवः आदि निकलीं इसके बाद छन्दों में श्रेष्ठ चौबिस अक्षर वाली देवी उत्पन्न हुई उसी के पदों का स्मरण कर समर्थ ब्रह्मा सावित्री का निर्माण किये।।१-१०।।

भगवान् ब्रह्मा ने उसी ब्रह्म कर्म से युक्त हो ऋक्, साम, यजु तथा अथर्व सम्पूर्ण वेदों की रचना की। इसके बाद उन्हीं ब्रह्मा के मन से सन, सनक तथा भगवान् सनातन एवं वरदाता सनन्दन, सन्तकुमार और सनातन विभु उत्पन्न हुए ये छै महर्षि-सबसे पहले ब्रह्मा के मानस पुत्र हुए। ब्रह्मा की तथा इन छै महर्षियों की एवं कपिल की योग तन्त्रों में संन्यासी तथा ब्राह्मण स्तुति किया करते हैं। इसके बाद ब्रह्मा ने मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, अङ्गिरा तथा प्रजापति मनु की मानसिक रचना की। जो ये प्रजायें उत्पन्न होती हैं वे सहस्त्र युगों के अन्त में कल्प के निःशेष होने पर नाश को प्राप्त हो जाती हैं। फिर हजार युगों के बाद इनकी उत्पत्ति की जाति है, किन्तु कर्म विशेष से युग-पर्यय अर्थात् हजार युगों के बीतने पर तथा आन्तरिक प्रलय की समाप्ति होने पर प्रत्येक युग में नाम और जन्मों से विशेषता होती है। ब्रह्मा के दाहिने अङ्गूठे से भगवान् दक्ष की उत्पत्ति हुई और उनकी भार्या बायें अङ्गूठे से उत्पन्न हुई।।११-२०।।

दक्ष जी से उस भार्या में जो कन्यायें उत्पन्न हुईं वे विख्यात लोक की मातायें हुईं। हे मनुजाधिप! जिनकी प्रजाओं से तीनों लोक व्याप्त है। अन्तरात्मा तथा मन से संसार की गति के जानकार दक्ष ने प्रजा की सृष्टि का विचार कर अदिति, दिति, कला, अनासु, सिंहिका, मुनि, प्राधा, क्रोधा, सुरभि, विनता,

सुरसा, दनु तथा कद्रु नाम की तेरह कन्याओं को कश्यप के लिये दे दीं। हे भारत! अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्या, मुहूर्ता, साध्या तथा विश्वा, नाम की दस कन्यायें ब्रह्मा के मानसिक पुत्र मनु को देदीं। इसके बाद सर्वाङ्ग सुन्दरी, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, बुद्धि, मेधा, क्षमा, मति, लज्जा तथा वसु नाम की दस कन्यायें धर्म को देदीं। इसके बाद अत्रि के जलात्मक पुत्र जो चन्द्रमा हुए थे। उनके लिये सत्ताइस नक्षत्र नाम वाली रोहिणी प्रमुख कन्यायें देदीं इन कन्याओं के पुत्र-पौत्रों को मुझसे सुनो। कश्यप, मनु, धर्म तथा चन्द्रमा की सन्तानों को क्रमशः सुनो अर्यमा, वरुण, मित्र, पूषा, धाता, पुरन्दर, त्वष्टा, भग, अंश, सविता तथा पर्जन्य नाम से विख्यात लोकों के कल्याण करने वाले ये देवता कश्यप से अदिति में उत्पन्न हुए।।२१-३०।।

कश्यप से दिति ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया था ऐसा हमने सुना है सो वे दोनों हरिण्यकशिपु तथा बलवान् हिरण्ययाक्ष अति ही पराक्रमी तथा तपस्या में कश्यप के समान थे। हिरण्यकशिपु के पाँच पुत्र सुन्दर तथा बलवान् हुए उनके नाम प्रह्लाद, संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद तथा पाँचवें पराक्रमी अनुह्लाद थे इनमें सबसे बड़े प्रह्लाद और सबसे छोटे अनुह्लाद थे। प्रह्लाद के तीन सुन्दर महाबली तथा पराक्रमी पुत्र हुए वे विरोचन, जम्भ तथा सुजम्भ नाम से विख्यात हैं। विरोचन के पुत्र बलि हुए और बलि को एक बाण नाम का पुत्र हुआ और बाण को शत्रु के पुर पर विजय करने वाला इन्द्रदमन नाम का पुत्र हुआ। दनु के बहुत पुत्र हुए जो दानव कहलाते हैं इनकी गणना दानव वंश में है ये महासुरों के नाम से भी विख्यात हैं उन दानवों में सबसे प्रथम उत्पन्न विप्रचित्ति राजा हुआ था। क्रोधा ने भयंकर रूप वाले और क्रूर कर्म करने वाले क्रोधवश नामक गण को उत्पन्न किया जिनके अनन्त पुत्र और पौत्र हुए। सिंहिका ने ग्रह चन्द्रमा तथा सूर्य को मर्दन करने वाले राहु को उत्पन्न किया जो चन्द्रमा का ग्रसन करने वाला तथा सूर्य का विनाश करने वाला था। काला ने काल के समान परम दारुण गण को उत्पन्न किया जो सूर्य के समान चमकने वाला नेत्रों से युक्त नीले मेघ के समान काले रंग का था।।३१-४०।।

हजारों फण वाले शेषनाग तथा वासुकि एवं तक्षक कद्रु के बहुत पुत्रों में प्रधानता को प्राप्त हुए। वे धर्मात्मा, वेद को जानने वाले, सदा प्राणियों के हित में रत रहने वाले, लोकतन्त्र को धारण करने वाले, वरदाता तथा इच्छानुसार रूप धारण करने वाले थे। तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, महाबली गरुड़, अरुणि तथा आरुणि ये विनता के पुत्र कहे गये हैं देवर्षिपूजिता सौभाग्यशालिनी प्राधा ने विविध प्रकार के पुण्य करने वाली तथा पुण्य के लक्षणों से युक्त अनवद्या, अनूका, अनूना, अरुणप्रिया, अनुगा, सुभगा, भासी तथा स्त्री इन आठ अप्सराओं को उत्पन्न किया। अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका, तिलोत्तमा, सुरूपा, लक्षणा, क्षेमा, रम्भा, मनोरमा, असिता, सुबाहु, सुवृत्ता, सुमुखी, सुप्रिया, सुगन्धा, सुरसा, प्रमाथिनी, काश्या तथा शारद्वती ये सब अप्सरायें मुनि की कन्यायें हैं। विश्वावसु, भरणी तथा विख्यात गन्धर्व, मेनका, सहजन्या, पणिका, पुञ्जिकस्थला, घृतस्थला, घृताची, विश्वाची तथा उर्वशी एवं अनुम्लोचा और प्रम्लोचा ये दस अप्सरायें तथा मनोवती तथा अन्य वेद में विख्यात अप्सरायें और भुवन की प्रिय अप्सरायें प्रजापति के संकल्प मात्र से उत्पन्न हुई हैं, अमृत, ब्राह्मण, गौ तथा रुद्रगण ये चार सुरभि से उत्पन्न हैं इसका पुराण में महत्वपूर्ण निश्चय किया गया है। ये सभी कश्यपजी के वंश हैं अब मुझसे मनु के वंश को सुनो।।४१-५०।।

हे अनघ! यह सब मैं संक्षेप से ही कहूँगा विश्वा से विश्वेदेवगण तथा साध्या से साध्यगण उत्पन्न हुए। मरुत्वती से मरुत्वान्गण, वसु से वसुगण उत्पन्न हुए भानु से भानुगण और मुहूर्ता से मुहूर्तगण उत्पन्न हुए। लम्बा ने घोष को तथा नागवीथी ने नामिना को उत्पन्न किया, पृथ्वी में जो विषम जीव है वे सभी मरुत्वती से उत्पन्न हुए। हे कौरववंशीय! संकल्पा से संकल्प उत्पन्न हुआ धर्म के लक्ष्मी नामक स्त्री से जगत् के स्वामी काम उत्पन्न हुए। रति नाम वाली स्त्री में यशोहर्ष तथा काम नाम के दो पुत्र हुए थे ऐसा कहा जाता है, चन्द्रमा के रोहिणी से वर्चा नामक महाप्रभाशाली पुत्र हुआ। जिससे उदय होते हुए भगवान् चन्द्रमा तेजस्वी हो जाते हैं, चन्द्रमा के एक पुत्र पुरूरवा नाम करके हुआ था कि जिसका संयोग उर्वशी से हुआ। इस प्रकार हजारों पुत्र और

कन्यायें स्त्रियों तथा पुरुषों के संयोग हुईं, ये दक्ष की कन्यायें जगत् की मूल-भूत उत्पन्न हुईं कि जहाँ सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हो सका। योगवेत्ता प्रजापति भगवान् ब्रह्मा शरीरधारियों के गुणों को देख कर आधिपत्य युक्त पदों पर नियुक्त करते हैं। भुवन की सृष्टि करने वाले वे प्रमुख प्रजापति दशों दिशायें, पृथ्वी, ऋषियों, समुद्रों, नागों, वृक्षों, औषधियों, सर्पों, नदियों, देवताओं, असुरों को तथा आकाश, स्वर्ग और यज्ञ तथा यज्ञ की क्रियाओं एवं पर्वतों की भी रचना किये।।५१-६०।।



अथ सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः।।३७।।

वैशम्पायनजी बोले- हे भारत! ब्रह्मा ने तीनों लोकों तथा बारह आदित्यों का सूर्य के समान तेजस्वी इन्द्र को राजा बना दिया। वे वज्र तथा कवच को धारण करने वाले इन्द्र अदिति से उत्पन्न हुए थे उन्हें स्मृति की सहायता प्राप्त थी वे तेजस्वी थे और उनकी स्तुति अध्वर्यु लोग करते हैं। उन इन्द्र भगवान् के उत्पन्न होते ही ब्राह्मणों ने उन्हें कुशों द्वारा धारण किया था, इसलिये वे देवेश कौशिकत्व को प्राप्त हो गये। सहस्त्र नेत्र वाले इन्द्र का तीनों लोकों के राज्य पर अभिषेक करके ब्रह्मा ने क्रम से राज्य को बाँटना प्रारम्भ किया। यज्ञों, तपों तथा ग्रह-नक्षत्रों और ब्राह्मणों एवं औषधियों के राज्य पर चन्द्रमा का अभिषेक किया। दक्ष को प्रजापतियों का राजा बनाया, वरुण को जल का स्वामी बनाया, पितरों का स्वामी सभी का निधन करने वाले काल वैश्वानर प्रभु को बनाया। सभी गन्धों का और सभी प्राणियों का तथा शब्द एवं आकाश वाले जीवों का वायु को स्वामी बनाया। सभी भूत एवं पिशाचों का, मृत्युओं का, गौवों का, उत्पात, ग्रह, रोग तथा व्याधिओं का और सभी व्रतों का राजा महादेव जी को किया, यक्षों, राक्षसों, गुह्यकों तथा धन और सभी रत्नों का स्वामी वैश्रवण प्रभु कुबेर को बनाया और सभी दाँत वाले जीवों का राजा शेषनाग को तथा नागों का राजा वासुकि को बनाया।।१-१०।।

सभी सर्पों का राजा तक्षक को बनाया, सागरों, नदियों तथा मेघों के वर्षण का एवं आदित्यों का राजा अवरज पर्जन्य को बनाया। गन्धर्वों का राजा चित्ररथ नामक गन्धर्व को बनाया और सभी अप्सरागणों का राजा प्रभु कामदेव को बनाया। चौपायों और सभी वाहनों का राजा महेश्वर की ध्वजा में रहने वाले श्रीमान् वृषभ को बनाया। दैत्यों का राजा महातेजस्वी हिरण्याक्ष को बनाया और हिरण्यकशिपु को युवराज पद पर अभिषिक्त किया। कालकेयगणों का राजा महाकाल प्रभु को किया त्वष्टा की भार्या अनायुषा के पुत्रो का राजा वृत्रासुर को बनाया। सिंहिका का पुत्र राहु नाम का महासुर हुआ था उसको अनेक अशुभ उत्पातों का स्वामी बनाया। हे भारत! सभी ऋतुओं, युगों, पक्षों, मासों, तिथियों और पर्वों, कला, काष्ठा, मुहूर्तों और अयन की गति तथा योग एवं गणित का राजा सम्वत्सर को बनाया। पक्षियों का और सभी दूर तक देखने वाले जीवों का स्वामी सुपर्ण को बनाया और सभी सर्पों का अधिपति गरुड़ को किया। गरुड़ के भ्राता अढ़उल के पुष्प ढेर के समान प्रभा वाले अरुण को योगों और साध्यों का राजा बनाया।।११-२०।।

प्रजापति कश्यप के पुत्र विरथ को इन्द्र ने पूर्व दिशा का राजा बनाया। विभु आदित्य के पुत्र महायशस्वी यम को दक्षिण दिशा का राजा इन्द्र ने ही बनाया। कश्यप के औरस पुत्र जो जल के अन्तर्गत जलों के विख्यात राजा वरुण थे उन्हें पश्चिम दिशा का राजा बनाया। पुलस्त्य पुत्र जो इन्द्र के समान तेजस्वी एक आँख वाला पिंगल नाम का था उस समर्थ को उत्तर दिशा का राजा बनाया। भू-लोक का कल्याण करने वाले स्वयम्भू ब्रह्मा इस प्रकार राज्यों का विभाजन कर स्वर्ग में दिव्य लोकों को अलग-अलग लोगों को देने लगे। किसी को सूर्य के समान प्रकाश करने वाले लोक, किसी को अग्नि के समान तेजस्वी लोक, किसी को बिजली के समान चमकने वाले सुन्दर लोक तथा किसी को चन्द्रमा के समान निर्मल लोकों को देने लगे। ये लोक सैकड़ों योजन लम्बे-चौड़े और नाना प्रकार के वर्णों के एवं इच्छानुसार आकाश में भ्रमण करने वाले हैं, वे लोक पुण्यात्माओं के हैं, पापात्माओं और दुराचारियों के लिए दुर्लभ हैं। जिनकी झलक सुन्दर

तारा गणों कि भाँति है ये लोक सुकुत कार्य करने वालों के हैं, जो पुण्य कार्य करने वालें हैं वे ही वहाँ गये हैं। जो पुण्यमय यज्ञों के द्वारा यजन करते हैं और जो श्रेष्ठ दक्षिणाओं से यज्ञ को समाप्त करते हैं, जो केवल अपनी ही स्त्री में रत रहते हैं, जो शान्त सरल स्वभाव के हैं, जो सत्यवादी हैं। जो दीनों पर अनुगृह करने वाले हैं, जो ब्राह्मणों के भक्त हैं, जो लोभ से वर्जित हैं, जिन्होंने रजोगुण का अच्छी तरह परित्याग कर दिया है ऐसे तपस्या से निर्मल सन्त लोग वहाँ जाते हैं।।२१-३०।।

इस प्रकार अपने पुत्रों को लोकों के पालन में नियुक्त कर लोक-पितामह ब्रह्मा स्वयं पुष्कर नामक ब्रह्मसदन में चले गये। तब इन्द्र के द्वारा अभिरक्षित सभी देवता ब्रह्म के दिये लोकों के पालन में रत रह कर अपने-अपने लोकों में आनन्द लेने लगे। ब्रह्मा ने इन्द्र एवं प्रमुख देवताओं को लोकों के प्रतिपालन में जब नियुक्त कर दिया तब वे यश तथा शुभ स्वर्ग सुख को प्राप्त हो प्रसन्न हो गये और वे यज्ञ-भाग का भक्षण करने लगे।।३१-३३।।



अथ अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः।।३८।।

वैशम्पायन जी बोले– उस ईश्वर की माया से एक समय वे पक्षधारी पर्वत पृथ्वी को त्याग कर चले गये। उस समय वे पश्चिम दिशा में हिरण्याक्ष से पालित असुरों के वास स्थान पर जाकर वैसे ही स्थित हो गये कि जैसे तालाब में गज स्नान करने को उपस्थित होते हैं। वहाँ उन पर्वतों ने उनसे देवताओं के आधिपत्य राज्य का वर्णन किया तब इस बात को सुनकर सभी असुर अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिये उद्योग करने लगे पृथ्वी को हरण करने में रत वे असुर बड़ी भारी क्रूर बुद्धि को धारण कर लिये और वे घोर पराक्रमी सभी प्रकार के आयुधों को ग्रहण कर धनुष, प्रास, पाश, शक्ति, मुसल तथा गदाओं को धारण करने लगे। कुछ कवचों को धारण कर सुसज्जित होने लगे अन्य मत्त हाथियों पर चढ़ गये, कुछ घोड़ों को रथों में

जोतने लगे और अपर महासुर घोड़ों पर सवार होने लगे। कुछ ऊँटों पर कुछ खच्चरों पर कुछ भैसों पर और गदहों पर चढ़ गये कुछ अपने बाहुबल का आश्रय कर पैदल ही चल पड़े। युद्ध की इच्छा से हिरण्याक्ष को घेर कर प्रसन्नता से इधर-उधर विचरने लगे इसके बाद दैत्यों के उद्योग को जानकर देवता-गण भी इन्द्र को आगे कर युद्ध के लिये चतुरङ्गिणी सेना से युक्त हो।।१-१०।।

ऐरावत पर चढ़े इन्द्र के पीछे चलने लगे। इसके बाद हिरण्याक्ष देवराज इन्द्र पर चढ़ दौड़ा और घनघोर बाणों की वर्षा करने लगा। और बाकी बली दैत्य विविध प्रकार के आयुधों से इन्द्र सहित सभी देवता-गणों को आहत करने लगे। प्रलयकालीन मृत्यु के समान भयंकर हिरण्याक्ष को अपने सामने स्थित देख कर इन्द्र सहित सभी देवता भयभीत होने लगे। देवताओं की सेना ने परस्पर बाणों की वर्षा से युद्ध-स्थल को दुर्दिन की भाँति अन्धकारावृत्त कर दिया तब दिति-पुत्र बलवान् हिरण्याक्ष धनुषों एवं परिघों से उठे हुए पर्वतों के समान संग्रामाकाश को घेर लिया।।११-३०।।

बहुत से खड्गादि शस्त्रों से छिन्न-भिन्न शिर और हृदय वाले देवता हरिण्याक्ष से व्यथित होने के कारण युद्ध में न चल सके। संग्राम में सभी देवता हिरण्याक्ष से अत्यन्त भयभीत हो प्रयत्नशील होने पर भी कुछ न कर सके इसलिये उदास हो गये। बुद्धिमान् हिरण्याक्ष द्वारा इन्द्र स्तम्भित कर दिये गये, वे संग्राम में भय से टस से मस न हो सके, ऐरावत पर बैठे ही रह गये। वह दानव सभी देवताओं को पराजित कर और देवेश को स्तम्भित कर सम्पूर्ण जगत् को अपने वश में समझने लगा। उस समय जल से भरे मेघ के समान गर्जते हुए उस असुरेन्द्र को देवताओं ने समर में स्थित देखा।।३१-३५।।



अथ एकोन चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।३९।।

वैशम्पायन जी बोले- देवताओं के पराजित हो जाने पर गदाधर

भगवान् हिरण्याक्ष के वध का विचार कर प्रकट होकर आ गये। और उत्तम शंख को बजाते हुए दैत्यों के जीवन को ठेस पहुँचाने लगे शंख के भयंकर शब्द को सुन कर सभी दानव क्षुभित हो गये। महासुर हिरण्याक्ष कहने लगा कि यह कौन है? इसके बाद वाराह रूप धारण करने वाले, हाथों में शंख-चक्र उठाये पुरुषोत्तम नारायण को उसने अपने सामने खड़ा हुआ देखा। इसके बाद हिरण्याक्ष आदि सभी असुर-गण घमंड में भर कर तीक्ष्ण आयुधों को उठा विष्णु के ऊपर टूट पड़े। इसके बाद दानव हिरण्याक्ष जलती हुई शक्ति को वराह भगवान् के वक्षस्थल पर चलाया। उस शक्ति के प्रभाव को देखकर ब्रह्मा विस्मय में पड़ गये, महाबली विष्णु ने उस शक्ति को अपने समीप आयी देखकर हुङ्कार मात्र से ही डाँट कर भूतल पर गिरा दिया तब उस शक्ति के नष्ट हो जाने पर ब्रह्मा साधु-साधु कहने लगे। उस समय वराह मगवान् ने सूर्य के समान प्रभा वाले चक्र को उठाया।।१-२०।।

और उसे दानवेन्द्र के शिर पर चला दिया, तब समर में स्थित उस हिरण्याक्ष का शिर कट कर भूमि पर गिर पड़ा। हिरण्याक्ष के मारे जाने पर जो वहाँ शेष दानव थे वे सभी वराह के भय से दशों दिशाओं में भाग गये। भगवान् विष्णु हाथ में चक्र लिये हुए युद्ध में दण्ड धारण करने वाले प्रलयकाल में खड़े काल की भाँति शोभित हो रहे थे।।२१-२३।।



अथ चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४०।।

वैशम्पायन जी बोले- पुरुषोत्तम ने वहाँ रण में सभी असुरों को भगा कर बँधे हुए इन्द्रादि देवताओं को छुड़ा दिया। सभी देवता प्रसन्न हो गये। देवताओं ने कहा कि आपके बाहुबल से आज मौत के मुँह से निकल कर हम लोग जीवित हुए हैं। हे भगवन्! हम लोग आपके चरणों की शुश्रूषा करना चाहते हैं। वैशम्पायन जी बोले- उन देवताओं के इस वचन को सुनकर भगवान् प्रसन्न हो देवताओं से कहने लगे। श्रीभगवान् बोले कि मैंने जिनके

लिये जो लोक बनायें हैं वे उन लोकों का यज्ञ के द्वारा पालन करें और वेदाज्ञा का भी पालन करें। फिर भगवान् ने इन्द्र से कहा कि हे सुरश्रेष्ठ! मुनिगण तपस्या से तुम्हारे लोक स्वर्ग को सदा जाया करें और जो कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य यज्ञ करने वाले हैं वे भी स्वर्ग को जायँ। क्योंकि उन्हीं लोगों के लिये स्वर्गादि मनोहर लोक रचे गये हैं।।१-१०।।

सत्-धर्म करने वालों की विजय और पाप कर्म करने वालों की पराजय होती रहे, सभी आश्रमों में निवास करने वाले सन्त स्वर्ग विजेता बनते रहें। जो मनुष्य सत्य-शूर, रण-शूर, दान-शूर तथा जो सदा किसी की निन्दा नहीं करने वाले हैं वे मनुष्य स्वर्ग में भोगते रहें। श्रद्धारहित, कामी, धनोपार्जन में ही तत्पर, शठ, ब्राह्मणों को न मानने वाले तथा नास्तिक पुरुष नरक को जायँ। हे देवताओं! इतने मेरे कहे गये वचनों का पालन करो। इस प्रकार कहकर वराह देव अन्तर्धान हो गये तब सभी देवताओं को महान् विस्मय हुआ। वराह भगवान् के इस अत्यन्त अद्भुत चरित्र को देख देवता भगवान् वराह को नमस्कार कर स्वर्ग को चले गये। और अपने-अपने लोकों के राज्यों को प्राप्त क्र लिये। दानव-गणों से विमुक्त हुई पृथ्वी भी हल्की हो गई, इसके पश्चात् पृथ्वी की स्थिरता के लिये पर्वतों को दोषी जानकर। इन्द्र ने पर्वतों को उनके स्थानों पर खड़ा करके वज्र से सभी पर्वतों के पक्षों को काट दिया, एक ही मैनाक नामक पर्वत पक्ष सहित शेष रह गया। मनुष्यों को आयु, यश, कामना की सिद्धि तथा पृथ्वी की कामना से इस देवताओं के विजय को सुनना चाहिये। यह वराह चरित पुराण तथा वेद से सम्बद्ध है और तत्काल विजय प्रदान करने वाला है। हे कुरुवंशिन्! महा वराह भगवान् को नमस्कार करो।।११-२८।।



अथैकचत्वारिंशत्तमोऽध्याय:।।४१।।

वैशम्पायन जी बोले- हे राजन्! अब आप नृसिंह चरित को सुनें जिसमें सिंह होकर विष्णु ने हिरण्यकशिपु का वध किया था। हे राजन्! पहले सत्युग

में दैत्यों के आदि पुरुष हिरण्यकशिपु ने महान् तपस्या की। उसने साढ़े सोलह हजार वर्ष पर्यन्त जल में निवास कर मौन व्रत में स्थित हो तप किया। तपस्या से ब्रह्माजी प्रसन्न हो वहाँ आकर दैत्य से बोले- हे सुव्रत! मैं प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो और अपने अभीष्ट कामना को प्राप्त होओ।।१-१०।।

इसके बाद हरिण्यकशिपु ने ब्रह्मा से कहा कि मुझको कभी देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस, मनुष्य तथा पिशाच न मार सकें, ऋषि भी क्रुद्ध हो मुझको शाप न दे सकें। मेरा वध न शस्त्र से हो, न अस्त्र से हो, न पर्वत तथा वृक्ष से हो, न सूखे पदार्थ से, न भींगे पदार्थ से, न अन्य किसी आयुध से ही होवे। मेरा वध न स्वर्ग में हो, न पाताल में हो, न आकाश में हो, न पृथ्वी तल पर हो, न रात में हो, न दिन में हो तथा न किसी अन्य से होवे। जो मेरे भृत्य, सेना तथा वाहन सहित मुझको एक ही हाथ के प्रहार से नष्ट कर देने में समर्थ हो उसी से मेरी मृत्यु होवे। मैं सूर्य, चन्द्रमा, वायु तथा अग्नि हो जाऊँ, मैं ही जल, अन्तरिक्ष, नक्षत्र, दशों दिशायें, क्रोध, काम, वरुण, इन्द्र, यम तथा यक्ष और किंपुरुषों के राजा धनाध्यक्ष कुबेर बन जाऊँ और हे देवेश! महासमर के समय आप दिव्य अस्त्र मूर्ति धारण कर मेरे सम्मुख उपस्थित हुआ करें। पितामह बोले- हे तात! ये सभी दिव्य वर मैंने तुमको दिये पर इन सभी कामनाओं को तुम अल्प भाव से प्राप्त करोगे इसमें संशय नहीं है। वैशम्पायन जी बोले कि इस प्रकार कहकर भगवान् ब्रह्मा वैराज्य नामक ब्रह्म सदन को चले गये।।११-२०।।

इसके बाद वर प्रदान की बात सुनकर [illegible] सहित देवता ब्रह्मा के समीप आ उपस्थित हुए। देवता बोले हे भगवन्! इस वर से तो वह असुर हम लोगों को मारेगा, अतः आप हम लोगों पर प्रसन्न होइये और उसके वध का उपाय विचारिये। वैशम्पायन जी बोले- सभी प्राणियों के आदि कर्ता ब्रह्मा शीतल वचनों से आश्वासन दिये कि हे देवताओं! उसको तपस्या का फल तो अवश्य प्राप्त होगा, तप-फल के अन्त में भगवान् विष्णु उसका वध करेंगे। ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर सभी देवता प्रसन्न हो अपने-

अपने दिव्य स्थानों के प्रति गमन किये। वैशम्पायन जी बोले वर को प्राप्त कर वह प्रजाओं को कष्ट देने लगा और मुनियों तथा ब्राह्मणों को धमकाने लगा। तीनों भुवनों में रहने वाले सभी देवताओं को पराजित कर तीनो लोकों को अपने वश में लाकर वह महासुर दानव स्वर्ग में निवास करने लगा। जिस समय काल के धर्म से प्रेरित हो वर के मद से उन्मत्त हिरण्यकशिपु दैत्यों को यज्ञिय और देवताओं को अयज्ञिय करने लगा उस समय आदित्य, साध्य, विश्वेदेव, वसु, रुद्र तथा देवतागण, यक्ष एवं ब्राह्मण-महर्षि विष्णु की शरण में गये।।२१-३०।।

विष्णु से देवता बोले कि हे महाभाग! आप ही हम ब्रह्मा आदि देवों के परम धाता तथा परम गुरु और परम देव हैं। हे शत्रु पक्ष को भय देने वाले! आप दिति वंश के क्षय तथा अदिति वंश की रक्षा के लिये उद्यत होइये। और दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु को मारिये, विष्णु बोले हे देवताओ! आप लोग भय त्याग दें, मैं आप लोगों के लिये अभय प्रदान करता हूँ। हे देवताओं! आप लोग पुनः उसी प्रकार स्वर्ग को प्राप्त करेंगे इसमें विलम्ब नहीं है; वरदान से दर्पित तथा अमरेंन्द्रों से अवध्य दानवेन्द्र दैत्य को उसके गणों सहित मैं मार डालूँगा। वैशम्पायन जी बोले कि वे भगवान् इस प्रकार कहकर देवताओं को विदा कर तथा हिरण्यकशिपु के वध का संकल्प कर शीघ्र ही हिमालय पर्वत के ऊपर चले आये और विचारने लगे कि मैं किस रूप को धारण कर इस महासुर का वध करूँ।।३१-४०।।

इस प्रकार विचारने के बाद उन्होंने नृसिंह रूप को धारण कर अपने सहायक ओंकार को ग्रहण किया तब ओंकार की सहायता वाले विष्णु हिरण्यकशिपु के स्थान पर गये और हिरण्यकशिपु की शुभ्र सभा को उन्होंने देखा, वह इच्छानुसार आकाश में चलने वाली पाँच योजन की लम्बी शुभ्र सभा थी। उसको विश्वकर्मा ने बनाया था, वह फूलने-फलने वाली दिव्य रत्नमय वृक्षों से युक्त थी। वह सभा मानों स्वर्ग को पीठ पर स्थित होकर अपने प्रकाश के द्वारा सूर्य की निन्दा कर रही थी। लाल, पीले तथा अरुण रंग वाले

पक्षी वृक्षों के अग्र भाग पर बैठे प्रसन्न होकर परस्पर कलरव कर रहे थे।।४१-७६।।



अथ द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४२।।

वैशम्पायन जी बोले कि सभा के अन्दर चार सौ हाथ के दिव्य आसन पर हिरण्यकशिपु बैठा था। दिनकर की प्रभा के समान चमकते हजारों असुर गणों से सेवित दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु को नृसिंह भगवान् ने देखा।।१-२१।।



अथ त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४३।।

वैशम्पायन जी बोले- हे भारत! राख से आच्छादित अग्नि की भाँति नृसिंह शरीर वाले महाबाहु विष्णु को काल-चक्र के समान आया देखकर और उन नृसिंह की घुघुराली जटाओं को तथा हजारों चन्द्रमा के समान प्रकाश करने वाले रूप की उदारता को देखकर हिरण्यकशिपु सहित सभी दानव कहने लगे कि अहो! शंख, कुन्द तथा चन्द्रमा के समान यह रूप तो विचित्र ही दिखाई पड़ रहा है। हिरण्यकशिपु के पुत्र पराक्रमी प्रह्लाद जी अपने दिव्य चक्षुओं से नृसिंह के रूप में आये हुए भगवान् विष्णु को पहचान लिये। सुवर्ण पर्वत के समान अपूर्व नृसिंह तन धारण करने वाले विष्णु को देखकर सभी दानव हिरण्यकशिपु सहित विस्मित हो गये। तब प्रह्लाद जी बोले हे दैत्यों के आदि पुरुष! इस नृसिंह रूप को न कभी देखा गया है, न सुना ही गया है। यह कभी न प्रकट होने वाला दिव्य तथा अद्भुत रूप कैसे प्रकट हो गया, इस रूप को देखकर मेरा मन मुझे सन्देह में डाले दे रहा है कि कहीं यह घोर रूप दैत्यों का अन्त कर देने के लिये तो नहीं उपस्थित हुआ है। इनके शरीर में सभी देवता, सागर, नदियाँ, हिमावान् तथा पारियात्र पर्वत तथा अन्य सभी पर्वत, नक्षत्रों सहित चन्द्रमा, अश्विनीकुमार, कुबेर, वरुण, यम, शचीपति इन्द्र,

मरुत, देवगन्धर्व, तप रूप धन वाले मुनि, नाग, यक्ष, पिशाच तथा भयंकर पराक्रमी राक्षस स्थित दिखाई दे रहे है।।१-१०।।

ब्रह्मा और पशुपति महादेव जी इनके ललाट में शोभायमान हो रहे हैं तथा स्थावर जंगम सभी प्राणी ललाट में स्थित शोभा पा रहे हैं। हे राजन्! इनके अन्दर हम सभी दैत्य गणों से घिरे आप भी दिखाई दे रहे हैं और सैकड़ों विमानों से संकुल सभा भी दिखाई पड़ रही है। सम्पूर्ण त्रिभुवन और लोकों का निरन्तर रहने वाला धर्म वैसे ही इन नृसिंह भगवान् के अन्दर दिखाई दे रहा है कि जैसे चन्द्रमा के प्रकाश में यह विमल जगत् दिखाई पड़ता है। और इनके अन्दर प्रजापति महात्मा मनु, ग्रह, योग, पृथ्वी, आकाश, उत्पातकाल, धृति, स्मृति, रज, सत्, तप तथा दम दिखाई दे रहा है। महानुभाव सनत्कुमार, विश्वेदेव, सभी देवताओं की अप्सरायें, क्रोध, काम, हर्ष, दर्प, मोह तथा सभी पितर दिखाई दे रहे हैं। महामति वाले दैत्येश्वर के पुत्र प्रह्लाद जी विस्मय से ये सब बातें हिरण्यकशिपु को कहकर कुछ नीचे मुख कर उसके आगे भगवान् का ध्यान करने लगे।।११-१७।।



अथ चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४४।।

वैशम्पायन जी बोले- गणधिप हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद की बात सुन कर गणों सहित सभी दानवों से कहा कि यदि तुम लोगों को इससे अपने अनिष्ट की आशंका हो तो अपूर्व शरीर धारण करने वाले इस मृगेन्द्र को पकड़ लो और इस वनचारी को मार डालो। यह सुन कर प्रसन्न हो सभी दानव बलपूर्वक उस भयंकर पराक्रमी मृगेन्द्र को अस्त्र फेंकते हुए डराने लगे। तब तो वह महाबली सिंह दहाड़ मार कर रम्य सभा को तितर-बितर कर दिया और मौत के समान मुँह फाड़ कर खड़ा हो गया। सभा में भगदड़ मच जाने पर रोष से आकुल नेत्र हिरण्यकशिपु स्वयं सिंह के ऊपर अस्त्रों को छोड़ने लगा। सभी अस्त्रों में श्रेष्ठ दंड नामक महाभयंकर अस्त्र को छोड़ा

तथा अति उग्र कालचक्र एवं विष्णु चक्र को छोड़ा। इस प्रकार धर्म चक्र, अजित नामक महाचक्र, ऐन्द्र चक्र, घोर ऋषि चक्र, तीनों लोकों के अहित की घोषणा करने वाला ब्रह्म चक्र, विचित्र वज्र तथा शुष्क एवं आर्द्र नामक दो और वज्र छोड़ा। भयंकर उग्र शूल, कंकाल नाम का मुसल, ब्रह्मशिर नामक अस्त्र तथा ब्राह्म अस्त्र को छोड़ा। ऐषिक अस्त्र, ऐन्द्रास्त्र, आग्नेयास्त्र, शैशिरास्त्र, वायव्यास्त्र, मथनास्त्र, कापाल नाम का अस्त्र तथा किंकर नाम का अस्त्र छोड़ा।।१-१०।।

अप्रतिमा शक्ति, क्रौञ्चास्त्र, हयशिर अस्त्र तथा सौम्यास्त्र को छोड़ा। अनेकों पैशाच अस्त्र, अद्भुत सार्प्य अस्त्र, मोहन, सन्तापन तथा विलापन अस्त्र को छोड़ा। जृम्भण, प्रापण तथा दारुण त्वाष्ट्र नामक अस्त्र और अक्षोभ्य कालमुद्गर एवं महाबलिष्ठ क्षोभण नाम का अस्त्र छोड़ा। संवर्त्तन, मोहन, परम मायाधर तथा गान्धर्व नामक अस्त्र तथा खड्गों में रत्न के समान परम प्रिय नन्दक नाम के खड्ग को चलाया। प्रस्वापन, प्रमथन तथा अस्त्रों में उत्तम वारुणास्त्र और पाशुपतास्त्र को छोड़ा कि जिसकी गति अप्रतिहत थी। हिरण्यकशिपु इन अस्त्रों को नृसिंह भगवान् के ऊपर वैसे ही छोड़ा कि जैसे कोई प्रज्वलित अग्नि में आहुति छोड़ता है। असुराधिप हिरण्यकशिपु नृसिंह भगवान् को चमकते हुए अस्त्रों से वैसे ही आच्छादित कर दिया कि जैसे गर्मी के समय में सूर्य अपनी किरणों से हिमालय पर्वत को आच्छादित कर देता है। जैसे सागर मैनाक पर्वत को अपने में डुबा लेता है वैसे ही क्षण मात्र में ईर्ष्या की श्वास लेने वाले दैत्यों की सेना का सागर नृसिंह भगवान् को अपने अन्दर कर लिया। उस समय चारों ओर से हरि को घेर कर दैत्य प्रास, पाश, त्रिशूल, गदा, तलवार, मुसल, वज्र, अशनिकल्प, शिला, बड़े-बड़े वृक्ष, मुद्गर, कूटपाश, शूल, उलूखल, पर्वत, चमकती हुई शतघ्नी तथा दारुण दंडों से मारने लगे परन्तु बलवान् उन महात्मा नृसिंह को थोड़ी सी भी चोट न लगी।।११-२०।।

वे दैत्य हाथों में पाश लिये इन्द्र के वज्र के समान वेगशाली प्रतीत हो

रहे थे वे नृसिंह के चारों तरफ अपने बाहुओं से शस्त्रों को ताने हुए तीन फण वाले पन्नगेन्द्रों के समान खड़े थे। वे सुवर्ण की मालाओं से व्याप्त तथा भूषणों से भूषित अङ्गो वाले नाना प्रकार के बाजूबन्दों से आच्छादित बाहुओं वाले मोतियों की मालाओं से विभूषित दानव बड़े-बड़े पंखों वाले हंस की भाँति शोभा पा रहे थे। वायु के समान बल वाले उन दानवों के केयूर, माला तथा वलय से उत्कट प्रभा वाले अङ्ग प्रात:कालीन सूर्य की कीरणों के समान चारों ओर चमक रहे थे। जलते हुए अग्नि के समान फेंके गये महान् अस्त्रों के समूहों से ढँक कर वे नृसिंह भगवान् वैसे ही शोभित हो रहे थे कि जैसे निरन्तर वर्षा करने वाले मेघों से किये गये अन्धकार के बीच कन्दरा और वृक्षों वाला पर्वत शोभित होता है। दैत्यगणों के समूहों से महास्त्र जालों द्वारा मारे जाने पर भी संग्राम में प्रतापी नृसिंह भगवान् कम्पायमान नहीं हुए, वे स्वभावत: हिमालय पर्वत की भाँति स्थित रहे। जलते हुए अग्नि के समान नृसिंह के तेज से संतापित वे दिति-पुत्र भय से वैसे ही विचलित होने लगे कि जैसे पवन से उठाये गये समुद्र जल के हिलोरे विचलित होते हैं। क्रोध से प्रदीप्त अङ्गों वाले महासुर एक जगह खड़े होकर सैकड़ों धनुषों से प्रलय काल के समान बाण समूहों को नृसिंह पर वर्षा करने लगे।।२१-२८।।



अथ पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्याय:।।४५।।

वेशम्पायनजी बोले कि- विशाल शरीर वाले दानव संग्राम में अपनी बाण से उन अवध्य मृगेन्द्र के शरीर में व्यथा न पहुँचा सके। इसी प्रकार फिर सर्प के समान फुफुकार छोड़ने वाले क्रुब्द्ध दानव मृगेन्द्र की छाती में भयंकर बाणों को मारे पर दानवों द्वारा मृगेन्द्र को मारने के लिये छोड़े गये बाण आकाश में वैसे ही विलीन हो गये कि जैसे पर्वत पर टकरा कर जुगनू विलीन हो जाते हैं। अग्नि की लपटों की भाँति जलते उन सभी चक्रों को महात्मा नृसिंह ने निगल लिया।।१-१०।।

तब हिरण्यकशिपु दैत्य ने अग्नि के समान प्रभा वाली जलती हुई भयंकर वेगशालिनी शक्ति को छोड़ा। उस उत्तम शक्ति को अपनी ओर आती देख कर नृसिंह भगवान् ने भयंकर हुँकार से उसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया। मृगेन्द्र के द्वारा तोड़ी गई वह शक्ति महीतल पर वैसे ही शोभित हो रही थी कि जैसे चिनगारियों के सहित जलती हुई बड़ी भारी बिजली आकाश से गिर पड़ी हो। नृसिंह भगवान् के समीप में छोड़े गये बाणों की पङ्क्ति नीले कमल तथा पलाशों की माला के समान स्पष्ट दिखाई दे रही थी। इसके बाद हिरण्यकशिपु इच्छानुसार गर्ज कर तथा सुखपूर्वक पराक्रम कर उस दैत्य सेना को वैसे ही आकाश में उड़ाने लगा कि जैसे वायु हल्के तृणों को आकाश में उड़ा देता है। जब हिरण्यकशिपु के सैनिक आकाश में जाकर पर्वत के टुकड़ों के समान महाप्रभा वाले नगमात्र अर्थात् वृक्षप्रमाण शिलाखण्डों से भरी पत्थरों की वर्षा करने लगे। वह बड़ी भारी पत्थरों की वर्षा नृसिंह के शरीर पर हुई परन्तु उनकी शरीर से टकरा कर वह दशों दिशाओं में जुगुनू के समूहों की भाँति बिखर गई। जैसे मेघ जलधाराओं से पर्वतों को आच्छादित कर देते हैं वैसे ही अरिन्दम सिंह को दिति-पुत्रों ने पत्थरों के समूहों से ढक दिया था। जैसे भयंकर वेग वाला समुद्र बलश्रेष्ठ पर्वत को विचलित नहीं कर सकता है वैसे ही दैत्यों का समूह भी दृढ़ता से खड़े हुए उन नृसिंह देव को विचलित न कर सका।।११-२०।।

पत्थरों की वर्षा से जब नृसिंह का कुछ न बिगड़ा तब रथ को धूरा के समान मोटी धाराओं से युक्त जल की वर्षा चारों ओर से दैत्यों द्वारा आरम्भ हो गई। आकाश से गिरती हुई तीक्ष्ण वेग वाली हजारों धारायें आकाश, दिशाओं तथा कोणों को ढक दीं। धाराओं के सम्पात तथा वायु की ललकार से बढ़ी हुई वर्षा के कारण कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। आकाश और पृथ्वी तल पर सभी जगह धारा ही धारा दिखाई पड़ने लगी परन्तु वहाँ अनवरत पृथ्वी पर गिरती हुई जलधारा उन नृसिंह भगवान् का स्पर्श नहीं कर रही थी। वर्षा माया द्वारा मृगेन्द्र का रूप धारण कर युद्धस्थल में खड़े विष्णु भगवान् के बाहर वर्षा कर रही थी न कि उनके ऊपर। पत्थरों की वर्षा

विफल हो जाने पर तथा भयंकर वर्षा के जल को सोख लेने पर चारों तरफ से दानवों ने माया की अग्नि तथा वायु को रचा। तब ज्वालाओं की माला को धारण करने वाला महाभंयकर प्रज्वलित तेज वाला तीक्ष्ण वेग से चारों ओर अग्नि की वर्षा होने लगी। पर महात्मा दैत्येन्द्र द्वारा रचित महातेजस्वी पावक अमित तेजस्वी नृसिंह को दग्ध करने में समर्थ न हो सका। अमित तेजस्वी सहस्राक्ष इन्द्र ने मेघों द्वारा बड़ी भारी जल वर्षा कर पावक को शान्त कर दिया। उस अग्नि तथा वायु वाली माया के नष्ट हो जाने पर दानवों ने चारों ओर से युद्ध में भयंकर तथा गाढ़े अन्धकार को रच दिया। अन्धकार से लोक के ढक जाने पर हथियार लिये दैत्यों के बीच में नृसिंह भगवान् अपने तेज से सूर्य की भाँति प्रकाशित हो रहे थे। दानवों ने रण में स्थित नृसिंह के ललाट में तीन रेखाओं वाली भृकुटी को त्रिकूट पर्वत के ऊपर त्रिपथगामिनी गंगा जी के समान देखा।।२१-३२।।



अथ षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४६।।

वैशम्पायन जी बोले- सभी प्रकार के मायाओं के विफल हो जाने पर सभी दैत्य खिन्न होकर हिरण्यकशिपु की शरण में गये कि अब क्या किया जाय। तब तो दैत्यराज हिरण्यकशिपु क्रोध से जल उठा मानो वह अपने तेज से संसार को भस्म करता हुआ सा पृथ्वी को हिलाने लगा। फिर तो जल की खान सभी सागर क्षुभित हो गये और बन, उपवन के वृक्षों सहित सभी पर्वत हिलने लगे। उस दैत्येन्द्र के कुपित होने पर सम्पूर्ण जगत् अन्धकारमय हो गया, अन्धकार से ढंक जाने के कारण कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। आवह, प्रवह, विवह, परावह, संवह, महाबली उद्वह तथा श्रीमान् परिवह नामक भय को प्रकट करने वाले ये साथ वायु क्षुभित होकर आकाश में बहने लगे जो कि स्पर्श से ज्ञात होते थे। जो ग्रह सम्पूर्ण लोकों के विनाश के समय प्रकट होते हैं वे प्रलयकारी ग्रह आकाश में सुख से विचरने लगे। हे नृप! बिना योग से ही सभी तारों और नक्षत्रों के बीच ग्रह

संगत होने लगे अर्थात् चमकने लगे जिससे ग्रहों और नक्षत्रों सहित आकाश प्रज्वलित होने लगा। आकाश गत भगवान् दिवाकर में श्यामलता आने लगी तथा नभस्तल में विशाल राहु दिखाई देने लगा। सूर्य धूम के समान भयावनी काले रंग की प्रभा प्रकाशित करने लगे, आकाश स्थित भगवान् आदित्य अत्यन्त सन्तापित होने लगे।।१-१०।।

आकाश में उदित बारहो सूर्य धूम के समान भयंकर रूप में दिखाई देने लगे तथा गगन में स्थित चन्द्रमा के शिर पर सात ग्रह बैठ गये। चन्द्रमा के वाम भाग में शुक्र और दक्षिण भाग में बृहस्पति बैठ गये तथा लाल सूर्य के समान कान्ति वाले लोहिताङ्ग भौम शनि के ऊपरी भाग में दिखाई देने लगे। युगान्त की सूचना देने वाले भयंकर ग्रह एक साथ ही कनक शिखरों से युक्त मेरु पर्वत के ऊपरी चढ़ने लगे। नक्षत्रों से घिरा चन्द्रमा सात ग्रहों के साथ हो सम्पूर्ण जगत् के प्रलय की सूचना देने लगा, वह रोहिणी से प्यार करना छोड़ दिया। और चन्द्रमा राहु से ग्रसित हो उल्काओं से आहत होने लगा, देखने में भयंकर उल्कायें चन्द्र मंडल पर घूमने लगीं। देवताओं के देवता शोणित की वर्षा करने लगे तथा तड़तड़ाती हुई उल्कायें आकाश से पृथ्वी पर गिरने लगीं। वृक्ष अपने ऋतु काल का त्याग कर फूलने-फलने लगे और दैत्यों के नाश की सूचना देती हुई (केवल फूलने वाली) लतायें भी फल गईं। फूलों में भी फूल तथा फलों में भी फल लगने लगे और देवताओं की पाषाण निर्मित मूर्तियाँ मनुष्य की भाँति अपने नेत्रों को मूँदने-खोलने लगीं तथा हँसने, रोने एवं चिल्लाने लगीं और सभी देवताओं की प्रतिमायें जलती और धुआँ फेंकती हुई बड़े भारी युगक्षय की सूचना देने लगीं। उस सभा में नृसिंह भगवान् के पहुँचने के बाद जंगली पशु रुदन करने लगे तथा ग्रामीण पशु भी पक्षियों समेत भयदायक रूप में रुदन करने लगे।।११-२०।।

नदियों के जल मटमैले हो गये और वे उलट कर बहने लगीं और लोकों का मानो विनाशकाल उपस्थित होने के कारण दोपहर में भी सूर्य द्वारा लाल धूलों से व्याप्त दिशायें दिखाई नहीं पड़ रही थीं तथा पूज्य वनस्पतियों

की पूजा बन्द हो गई। वनस्पतियाँ वायु के प्रबल वेग से स्वयं टूट कर दूसरे को तोड़ने लगीं तथा सूर्य के दोपहर काल में पहुँचने के बाद भी परछाई नहीं बन पा रही थी अर्थात् सूर्य कान्तिरहित हो गया था, उस समय हिरण्यकशिपु के वासस्थान के ऊपर तथा बर्तनों के घर में मधुमक्खियों का छाता दिखाई देने लगा और आयुधागार के ऊपर धूम राशि दिखाई देने लगी। इन महान् उत्पातों को देखकर हिरण्यकशिपु अपने पुरोहित शुक्राचार्य से कहने लगा कि हे भगवन्! ये महान् उत्पात किस प्रयोजन से उपस्थित हो गये हैं; यह सुनने की मुझे बड़ी इच्छा हो रही है। शुक्राचार्य बोले हे महासुर! तुम समाहित हो मेरी बात को सुनो कि जिस प्रयोजन से यह महाभयानक उत्पात उपस्थित हुए हैं। हे महासुर! जिस राजा के राज्य में इस प्रकार के उत्पात दिखाई देते हैं उसके राज्य का अपहरण होता है अथवा वह राजा वध-बन्धन का पात्र हो जाता है। इसलिये जैसे सर्वनाश हो इस प्रकार की बुद्धि से विचार करो क्योंकि अविलम्ब कोई महान् भय उपस्थित होगा इसमें संशय नहीं है।।२१-३०।।

दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु से यह सब कह तथा कल्याण का आशीर्वाद दे शुक्राचार्य अपने निवासस्थान पर चले गये। शुक्राचार्य के चले जाने पर वह दैत्येन्द्र बहुत देर तक इन उत्पातों पर विचार किया ब्रह्मा के वचन का स्मरण करता हुआ वह दीनात्मा ऐसा सोचने लगा कि असुरों के विनाश तथा देवताओं की विजय के लिये ही ये विविध प्रकार की भयंकरता का प्रदर्शन करने वाले घोर-घोर उत्पात दिखाई दे रहे हैं, इसके आलावे असुरों के विनाश के लिये काल निर्मित और भी अनिष्ट प्रदर्शन करने वाले बहुत से घोर उत्पात दिखाई पड़ रहे हैं ऐसा विचारने के बाद हिरण्यकशिपु शीघ्र गदा लेकर। पृथ्वी को कँपाता हुआ दौड़ा और क्रोध से ओष्ठ को काटता हुआ दैत्य हिरण्यकशिपु जिस समय पृथ्वी का स्पर्श किया उस समय वह पहले उत्पन्न हुए वराह की भाँति प्रतीत होने लगा; महात्मा दैत्येन्द्र के द्वारा पृथ्वी का कम्पायमान होने पर पर्वतों से भयभीत हो विष की ज्वाला से भरे मुख वाले सर्प अग्नि उगलते हुए निकलने लगे। चार फण वाले तथा सात फण वाले सर्प, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनंजय, एलापत्र, कालिय, बलवान्

महापद्म तथा सुवर्ण के ताल की ध्वजा वाले हजार फणधारी समर्थशील शेषनाग जिनको अनन्त कहते हैं जो पृथ्वी को धारण करने वाले हैं तथा जिनका काँपना कठिन है वे प्रकम्पित हो गये और जल के अन्दर स्थित रह कर पृथ्वी को धारण करने वाले बली दिग्गज काँपने लगे।।३१-४०।।

उस समय क्रुद्ध दैत्य से पाताल-तल में विचरण करने वाले मणिधर शुभ नाग भी काँपने लगे चारों तरफ सभी काँपने लगे। सहसा सभी जल क्षुब्ध हो गये, नदी भागीरथी आदि नदियाँ कँपने लगी। और रत्नों वाला जम्बू द्वीप तथा सभी प्रकार के रत्नों से उपशोभित एवं सुवर्ण की खानों से मण्डित स्वर्णकूट नाम का पर्वत काँप गया। पर्वत और बनों से शोभित लोहित्य नामक महानद काँप गया तथा कौशिकारण्य नामक देश और चाँदी की खान वाला द्रविड़ देश काँप गया। मगध, अंग, वंग, सुह्म, मल्ल, विदेह, मालव तथा कौशल देश के बड़े-बड़े ग्रामों को और काशी को दैत्येन्द्र ने कँपा दिया। कैलास के शिखरों के समान ऊँचे कंगूरों वाले सुवर्णमय गरुड़ के भवन को हिला दिया कि जिसे स्वयं विश्वकर्मा ने बनाया था।।४१-५०।।

महिपुत्र, व्याघ्राक्ष, आकाशचारी, निशापुत्र तथा पाताल तल के वासी भी काँप गये। इसके आलावे मेघ के समान नाद करने वाले अंकुशधारी रौद्रगण जिनका कि भयंकर वेग है और जो ऊपर आकाश में भी गमन करते हैं वे सभी कम्पित हो गये।।५१-७६।।



अथ सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४७।।

वैशम्पायनजी बोले कि- वहाँ मृगेन्द्र के समीप देवता आकर लोक विनाश के भय से डरे हुए मन वाले कहने लगे कि- हे देव! इस लोकनाशी, दुष्ट एवं दुराचारी दिति के पुत्र दानव हिरण्यकशिपु को सभी महासुरों सहित मारिये। और देवताओं का कल्याण कीजिये। हमलोगों को दूसरा कोई शरण देने वाला हुआ न होगा। इन वचनों को सुन कर नृसिंह रूपधारी विष्णु ने बड़ा

भारी गम्भीर नाद किया। सिंहनाद के द्वारा असुरेन्द्रों के हृदय को विदीर्ण कर दिया। फिर तो दानव उनके ऊपर टूट पड़े तब तो ओंकार की सहायता से नृसिंह ने कूद कर अपने तीखे नखों द्वारा हिरण्यकशिपु को फाड़ कर मार डाला। फिर तो दिति-पुत्र के मरने से पृथ्वी, लोक, चन्द्रमा, आकाश, ग्रह, सूर्य तथा दिशायें, नदियाँ, पर्वत तथा महासागर प्रकाश को प्राप्त हो गये। इसके बाद देवता और तपोधन ऋषिगण प्रसन्न हो अनेक प्रकार के स्तोत्रों से उन आदि देव सनातन की स्तुति करने लगे। देवता बोले हे देव! जो आपने यह नृसिंह शरीर धारण किया है, इसी मूर्ति की बराबर वेदवेत्ता जन पूजा करेंगे हे विभो! सभी लोकों में और सभी प्राणियों में यह नृसिंह रूप पूजनीय होगा। मुनि लोग इस तुम्हारे नृसिंह चरित्र का सदा गान करेंगे हे विभो! तुम्हारे प्रसाद से हम देवताओं ने अपना स्थान अब प्राप्त कर लिया। देवतागणों के द्वारा ऐसा कहने पर नृसिंह भगवान् प्रसन्न मन हो गये इसके बाद ब्रह्मा प्रसन्न हो विष्णु की स्तुति करने लगे। ब्रह्मा बोले आप अक्षर, अव्यक्त, अचिन्त्य, गुह्य, उत्तम, कूटस्थ तथा जो कार्य किसी से न हो उसे करने वाले सनातन एवं अनामय हैं।।११-२०।।

सम्पूर्ण लोकों का विनाश कर यम का भी अन्त करने वाले हैं। परम और उस परम के भी परम के आप परमदेव हैं। वैशम्पायनजी बोले कि सर्वलोक पितामह ब्रह्मा नारायण देव की इस प्रकार स्तुति कर ब्रह्मलोक को चले गये। इसके बाद तूर्यों के बजने और अप्सराओं के नाचते रहने पर ईश्वर नृसिंह भगवान् क्षीर सागर के उत्तर तट की ओर चले गये। नृसिंह शरीर का त्याग कर पुराने चतुर्भुज रूप को धारण कर वे गरुड़ध्वज भगवान् आठ चक्कों वाले यान से अपने स्थान को चले गये। इसी प्रकार से देव विष्णु ने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु को मारा था।।२१-३८।।



अथाष्ट चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४८।।

वैशम्पायन जी बोले कि इसके बाद वामनावतार है कि जिसमें श्रेष्ठ

विष्णु ने वामन रूप धारण कर बलवान् बलि के यज्ञ में अपने पराक्रम से तीन पग में तीनों लोकों को हर लिया था। विष्णु ने पृथ्वी का हरण कर सुरेन्द्र को दे दिया। जनमेजय जी बोले हे ब्रह्मन्! इस विषय में मुझे महान् संशय और कौतूहल है कि देव नारायण कैसे वामनत्व को प्राप्त हो गये? वे देवताओं की माता अदिति के गर्भ में कैसे आ गये जो इन्द्र की भी रचना करने वाले हैं वे इन्द्र के छोटे भ्राता कैसे बन गये। और अदिति के गर्भ से वामन रूप में उत्पन्न हुए देवदेवेश फिर कैसे विष्णुत्व को प्राप्त हो गये? हे विप्र! उन महात्मा के इस वामानावतार को मुझसे कहिये। वैशम्पायन जी बोले हे राजन्! ब्रह्मा के द्वारा कही गयी इस दिव्य कथा को सुनिये। मरीचि के पुत्र कश्यप की अदिति तथा दिति दो प्रमुख पत्नियाँ थीं। हे जनमेजय! वे दोनों आपस मे बहनें थीं।।१-१०।।

महात्मा कश्यप द्वारा अदिति से देवताओं की उत्पत्ति हुई और दिति से बलवान् दैत्य उत्पन्न हुए। उनमें हिरण्यकशिपु का छोटा भाई हिरण्याक्ष था, कल्प भेद से हिरण्याक्ष को दूसरे पुराणों में ज्येष्ठ कहा गया है। हिरण्यकशिपु के घोर पराक्रमी पाँच पुत्र हुए जिनके नाम प्रह्लाद, अनुह्लाद, जम्भ, संह्लाद (पाँच को चार के अर्थ में समझें) हैं। प्रह्लाद के पुत्र विरोचन और विरोचन के पुत्र बलि हुए, इसी प्रकार इनके पुत्र-पौत्र बहुत से हुए। हे राजन्! नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु का वध देख कर दैत्यों ने देवताओं के वध के लिये बलि को इन्द्र बनाया। तथा हिरण्यकशिपु जैसे तेजस्वी और देवताओं का शत्रु समझ कर दैत्यों ने दैत्याधिपति के पद पर अभिषिक्त किया।।११-२०।।

जिस समय बलवानों में श्रेष्ठ बलि का दैत्यों द्वारा राज्याभिषेक हुआ उस समय ब्रह्मा ने भी सन्तुष्ट हो हिरण्यकशिपु के पद पर बलि का अभिषेक कर दिया। जब बलि सिंहासन पर बैठे तो सभी दानव उनकी जय-जयकार करने लगे। बलवानों में श्रेष्ठ बलि को अपना इन्द्र बना कर सभी दानव समझाने लगे हे दैत्येन्द्र! यह तो आपको विदित ही है कि जैसे स्थावर जंगम सहित ये तीनों लोक हिरण्यकशिपु के वश में थे। यह भी आप जानते ही है

कि आपके पितामह को मार कर तीनों लोक को हर लिया गया और उस त्रैलोक्य के राज्य पर इन्द्र का अभिषेक किया गया। हे नाथ! अब आपको हम लोगों के साथ उन पितामह हिरण्यकशिपु के इस दिव्य त्रैलोक्य राज्य को लौटा लेना चाहिये। हे प्रभो! आपका कल्याण हो आप अपने पितामह के राज्य को फिर अपने पास लाइये। हे राजन्! आप हजारों असुरगणों को साथ लेकर स्वर्ग में देवतागण महानुभावों को जीत लीजिये क्योंकि आप अमित बल तथा पराक्रम वाले हैं, अपने गुणों से आप अपने पितामह से भी आगे बढ़ रहे हैं।।२१-२९।।



अथैकोन पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।४९।।

वैशम्पायन जी बोले कि उन दैत्यों की बात सुन कर महाबुद्धिमान् एवं महाबली बलि ने प्रसन्न हो दैत्यगणों को आज्ञा दे दिया कि सभी तैयार हो जायँ मैं आज ही सम्पूर्ण त्रैलोक्य को जीतने चल रहा हूँ। विरोचन-पुत्र बलि की बात सुन कर सभी युद्धदुर्मद दानव युद्ध के लिये परम उद्योग करने लगे। महापद्म, निकुम्भ आदि बलवान् दैत्य दिव्य वस्त्रों को धारण किये, दिव्य मालायें पहने और दिव्य चन्दन का अनुलेपन किये तथा दिव्य कवचों द्वारा सुसज्जित हो दिव्य एवं ऊँची-ऊँची ध्वजाओं को लेकर चल पड़े। वे दैत्य दिव्य आयुधों को धारण किये मेघ के समान गर्जते हुए और रथों के बड़े भारी घोषों से वसुन्धरा को डगमगाते हुए चले। बलि का पुत्र सहस्रबाहु, महाबली बाणासुर करोड़ों रथ और अतिरथ वीरों के साथ सुसज्जित हो गया।।१-२०।।

सभी दैत्य माया को धारण करने वाले थे और सभी दिव्य अस्त्रों से युद्ध करने वाले थे तथा सभी बल के मद से मदमत्त एवं सभी पहले के वरदान पाये हुए थे। जलते हुए अग्नि की प्रभा के समान सुवर्ण जटित लाल-लाल नगों से सुवर्ण-पर्वत के शिखरों पर स्थित फूले हुए पलाश के वृक्षों के समान

शोभा पा रहे थे। बाणासुर वर्षाकाल के उठे हुए मेघ के समान प्रतीत हो रहा था। वह विचित्र घोड़ों और ध्वजाओं से युक्त रथ में बैठा था युद्धदुर्मद, भयानक तथा महापराक्रमी पाँच दानव मुँह फैलाये सावधानी से उसके रथ की रक्षा कर रहे थे। जिनके नाम सुबाहु, मेघनाद, बलवान् भीमगर्भ, कनकमूर्धा तथा वेगशाली केतुमान हैं।।२१-३०।।

दानवेन्द्र बलि गरुड़ के समान तथा नेमियों से मेघ के समान गम्भीर शब्द करने वाले रथ में बैठ कर देवता-गणों की सेना के वध के लिये चला। मणि एवं सुवर्ण की प्रभा से उज्वल सुन्दर चित्रों से शोभित अङ्ग वाले मय दानव के पीछे करोड़ों बलवान् महारथी चल रहे थे।।३१-४८।।



अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५०।।

वैशम्पायन जी बोले कि- मतवाले हाथी के समान पराक्रम वाले अपने बल से मुख्यता प्राप्त, दर्प में भरे प्रह्लाद जी सभी देव सेना को क्षुभित करने के समान युद्ध के लिये खड़े हो गये। वे अपने बल से समुद्र के तुल्य ज्ञात हो रहे थे तथा प्रदीप्त अग्नि के समान जलते हुए प्रतीत होते थे, वे तेज से सूर्य के समान और क्षमा से पृथ्वी के तुल्य ज्ञात हो रहे थे। ताल वृक्ष के समान लम्बी ध्वजा से युक्त चमकने वाले अति सुन्दर रथ से वे चल पड़े, चलते समय दानवों के सैकड़ों झुण्ड उनके पीछे चल रहे थे। सभी दानव सुवर्ण के कवचों को धारण किये रत्नों से विभूषित थे, उनके अंग रंग-बिरंगे आभरणों से दिव्य लग रहे थे, वे समर में पीछे मुड़ने वाले नहीं थे। सुवर्ण से सज्जित विचित्र अंगों वाले तथा वैदूर्य मणि से जटित बाजूबन्द वाले दिव्य रथों में बैठे वे दानव आकाश में स्थित महाग्रहों की भाँति शोभित हो रहे थे।।१-२०।।

आचार वाले, जितेन्द्रिय, धर्म में रत, सत्यवक्ता, निन्दारहित, अग्नि, जल, मेघ तथा वायु के समान प्रह्लाद सबके प्राण हरण करने वाले यमराज के समान रूप वाले ज्ञात हो रहे थे। रथ के झुण्डों के सेनापतियों का रक्षक

सर्व युद्धकुशल महामायावी शम्बर दिव्य रथ पर सवार हो गया। लाल-लाल आँखों वाला, चमकने वाले उत्तम कुण्डलों को धारण किये, दिव्य चन्दन लगाये तथा माला पहने महाबाहु शम्बर बरसने वाले मेघ के समान ज्ञात हो रहा था। बिजली की ज्योति के समान चमक मारने वाले सूर्य के समान तेजस्वी एवं मणि और रत्नों से जटित वैदूर्य मणि से शोभा पाने वाले मुकुट से तथा सुवर्ण के विशाल एवं सुन्दर कवच से वह दानव सन्ध्याकालीन मेघ से ढँके हुए अस्ताचल के समान प्रतीत हो रहा था। काल के समान बलवान् विचित्र युद्ध करने वाले तीस लाख दैत्यों का समूह शम्बर के पीछे चल रहा था। सुन्दर लगने वाले सफेद रंग के हजार घोड़ों से जुते क्रौञ्च ध्वजा से चमकते समर को शोभित करने वाले रथ के द्वारा वह चल रहा था। वैदूर्य मणि से जटित सुवर्ण की जालियों से शोभित तथा नाना प्रकार के पक्षियों के चित्रों से चित्रित बिजली के समान प्रभा वाले भयंकर शब्द करने वाले वेगशाली रथ पर चढ़कर वह दैत्य शोभा पा रहा था।।२१-२८।।



अथैक पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५१।।

वैशम्पायन जी बोले कि- हिरण्यकशिपु का पुत्र परम दुर्जय अनुह्लाद भी युद्ध की लालसा से महाबलवान् घोड़ों से जुते रथ के द्वारा समर में चल दिया। वह भयंकर एवं गम्भीर नाद से पर्वत और वन सहित वसुन्धरा को हिलाता हुआ चल रहा था। सुवर्ण की मालाओं से विभूषित करोड़ों रथों के ऊपर बैठा दैत्यों का समूह अनुह्लाद के पीछे गर्जता हुआ चल रहा था। दैत्यों का स्वामी उस समय विशाल पर्वत के समान उठे हुए, सुवर्ण की चित्रकारी से शोभित अंग वाले, उपमा रहित सुन्दर रूप वाले सत्त्व बल के अनुरूप रथ पर बैठा शोभा पा रहा था। अग्नि के समान तेजस्वी, सम्पूर्ण अस्त्रों को चलाने में कुशल एवं पवित्रात्मा बलवान् विरोचन भी विशाल रथ समूह के साथ सज गया। व्यूहों के विनियोग को जानने वाला ज्ञान-विज्ञान तत्त्ववेत्ता बलि का पिता विरोचन देवताओं के बीच देवश्रेष्ठ इन्द्र की भाँति शोभित हो रहा था।

विरोचन का छोटा भाई कुम्भज नाम का दानव देव-शत्रु दानवों से घिरा युद्ध के लिये चल पड़ा। दारुण स्वभाव-वाला असिलोमा नाम का दानव भी वहीं चल पड़ा, वह पर्वत और वृक्षों से युद्ध करने वाला घमंड से भरा हजारों दैत्यों समूहों से घिरा था।।१-२०।।

अनायुषा का पुत्र वृत्र नाम का महासुर भी लटके हुए पेट वाले, लपलपाती जीभ, हरी दाढ़ी, उर्ध्व रोम, महान् ठोडी, काला अङ्ग, लाल मुख, किरीट धारण किये युद्ध के लिये चल पड़ा। दिति के पुत्र असुरों की सेना का सेनापति एकचक्र नाम का दैत्य सम्पूर्ण लोहे के रथ पर चढ़ कर युद्ध के लिये चला, उसके पीछे विचित्र युद्ध करने वाले अस्सी हजार रथियों का झुण्ड चल रहा था। वे सभी वर को प्राप्त किये काल और यमराज के समान लाल-लाल आँखों वाले महाबली लोहे तथा सुवर्ण के कवचों से सुसज्जित थे, वे सभी कालान्तक के समान समर-दुर्जय एवं धीर दैत्य आकाश में स्थित नीले मेघ के समान प्रतीत हो रहे थे। बलि के पुत्र ने वृत्र के बलवान् भाई को यह आदेश दिया कि तुम देव-सेना के वध के लिये सजग हो जाओ। वह हेमताली बड़े-बड़े दाँतों वाला, माला पहने, सुन्दर कुंडलधारी, लाल मालायें और वस्त्र धारण किये रथ पर बैठा सन्ध्याकालीन सूर्य के समान शोभा पा रहा था।।३१-४०।।

सिंहिका का पुत्र राहु नाम का महासुर पर्वत के समान आकार वाले, सौ शिर तथा उदर वाला बड़ा ही विकट थां। वह पीली मालायें एवं पीले वस्त्रों को पहने स्वर्णाभूषणों से विभूषित चिकने वैदूर्य मणि के समान आभा वाला तथा कमल पत्र के समान नेत्रों वाला था। वह पराक्रमी राहु सर्वत्र सुवर्ण जटित एवं मणि जाल से शोभित सैकड़ों पताकाओं से व्याप्त परम वेगशाली घोड़ों से जुते दिव्य रथ पर चढ़ गया और उसने पृथ्वी-तल को कँपाते हुए महान् नाद किया। कश्यप जी का पुत्र श्रीमान् विप्रचित्ति हजारों यज्ञों का कर्ता तथा वेद का वेत्ता एवं तपस्या से युक्त था और उसको ब्रह्मा ने वरदान दिया था, उस महातेजस्वी के पास ईशित्व, महत्त्व तथा वशित्व आदि सिद्धियाँ थीं।।४१-५०।।

ऐश्वर्य गुण से सम्पन्न स्वयं ब्रह्मा के समान बलवान् वह महाबली दानव अपने पुत्र तथा पौत्रों के साथ युद्ध के लिये सज गया। महाग्रह के समान आकार वाले वे दैत्य शत्रुओं के रोमों को खड़े कर देने वाले थे। बलवान् भैंसों से जुते करोड़ों घण्टियों की घनघनाहट से युक्त उत्तम रथ पर केशी चल पड़ा। उसका रथ नील केसर के समान चमकने वाली बड़ी भारी ऊँट की ध्वजा से और अनेक प्रकार की रंगीन चित्र-विचित्र झण्डियों से विभूषित हो रहा था। देवताओं के प्रति प्रस्थान करते समय उस असुरेन्द्र केशी के पीछे बड़े चमकीले बावन हजार रथों का झुण्ड चल रहा था। श्रीमान् वृषपर्वा नाम का असुर भी दिव्य रथ पर चढ़ गया, वह रथ बहुत से भारों को सहन करने वाला कीमती और विशाल था, उसका कूबर मूँगा तथा सुवर्ण से चित्रित था, चाँदी और सोने के कुण्डलों (दोनों तरफ के मोड़ों) द्वारा सुन्दर ढङ्ग से अलंकृत रथ अपनी किरणों से नक्षत्र तथा बिजली के समान चमक रहा था।।५१-७०।।

इसके बाद महासुरों से घिरा महान् असुरेन्द्र बलि भी सोलह नल्वे वाले विशाल एवं बिजली के समान चमकते वैदूर्य मणि तथा सुवर्ण से अलंकृत रथ पर चढ़ गया। वर्षाकालीन मेघ के समान गर्जते हुए, हाथी के समान मुख तथा टेढ़ी-मेढ़ी आकृति वाले, सुवर्ण के आभूषणों से भूषित वक्षस्थल वाले हजारों दानवों से वह रथ युक्त था। वह विशाल दिव्य रथ हजारों माया को जानने वाले मय दानव द्वारा देव-रथ के समान चमकने वाला बनाया गया था, उसके ऊपर खेलते हुए ईहा मृगों के चित्र बने थे और उसके पीछे अनेकों दिव्य रथ चल रहे थे। घण्टियों के जाल से युक्त वह विमल रथ सुवर्ण के सैकड़ों कमलों से अलंकृत हो रहा था, बलि ने विजय के लिये सुवर्ण के विचित्र पुष्पों की एक विजय-माला पहन ली। प्रभा से युक्त उस विचित्र माला को धारण कर विशाल भुजाओं वाले बलि चमकने लगे, सम्पूर्ण समृद्धियों से बलि वैसे शोभने लगे कि जैसे आकाश में स्थित महती कीरणों से सूर्य शोभा पाता है। उस समय रणचण्डी ने मानों सम्पूर्ण असुरों की हार स्वरूप माला को पहना दिया था तब सम्पूर्ण शोभा से सेवित विरोचन के पुत्र बलि शरद्कालीन चन्द्रमा की भाँति चमकने लगे। मेरु पर्वत के पार्श्व भाग अथवा अग्नि के

प्रकाश अथवा सूर्य से संयुक्त मेघ जालों के समान प्रास, पाश, सुवर्ण से जटित कवच, खड्ग, परश्वध, धनुष, प्रभा से युक्त वज्रायुध, दिव्य गदा, वज्र मुख वाली शक्तियाँ, दिव्य खड्ग, चमकने वाले बाण तथा बाणों से भरे अनेक प्रकार के तकस उस दैत्यराज के रथ में रखे हुए वैसे ही चमक रहे थे कि जैसे प्रज्वलित हुई उल्का चमकती है। चँवर के स्वर्ण दण्ड को धारण किये सुन्दर दाँत वाले महासुर सुवर्ण और मोतियों की मालायें पहने तथा मणिजटित सुवर्ण से विचित्र शोभने वाले महासुर विनीत भाव से रथ को वेदी पर बैठे दानवाधिप बलि को चँवर डुला रहे थे और अयः शिरा, अश्वशिरा, दुराप, शिबि, मतङ्ग, विशिरा, शताक्ष, अय, निकुम्भ तथा क्रथन नाम के ये दस दानव बलि की अङ्ग-रक्षा कर रहे थे और दानवराज की अङ्ग-रक्षा करने वाले हजारों असुर उसके आगे-आगे चल रहे थे। वे शतघ्नी, चक्र, वज्र और शक्ति को हाथों में लिये वायु के समान वेग से चल रहे थे; दैत्येश्वर बलि के रथ-प्रस्थान के समय सुवर्णजटित सुन्दर शब्द करने वाले घण्टे, आडम्बर, गर्गर तथा महान् रव करने वाली दुन्दुभियाँ बजने लगी थीं और उसके रथ की स्वर्ण-वेदी पर सुवर्णमयी दिव्य तथा बड़ी भारी ध्वजा लहरा रही थी।।७१-८०।।

वीर बलि का सुवर्ण-जटित महाध्वज सूर्य के समान शोभा पा रहा था, उसके शिर पर लगा सोने का छत्र तथा उसके वक्षस्थल पर सुवर्ण की माला बड़ी ही शोभायमान हो रही थी। उसके चारों ओर असुरों की भीड़ लगी थी, दैत्यर्षिगण हाथ जोड़कर उसकी जय-जयकार कर रहे थे और शत्रु के वध में चित्त लगाये पुरोहित तथा अन्य वेदपाठी वृद्ध ब्राह्मण और महात्मा दैत्य जप, मन्त्र तथा औषधियों से स्वस्तिवाचन कर रहे थे। त्रैलोक्य को विशेष त्रास देने वाले दानवों से भरी सेनायें बलि के रथ के आगे जल रहीं थीं, धनुष को उठाई हुई सेनायें पवर्तों सहित वनों की भाँति प्रतीत हो रही थीं।।८१-९३।।



अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५२।।

वैशम्पायन जी बोले कि हे जनमेजय! आप दैत्य सेना का विस्तार सुन

चुके अब देव-सेना का विस्तार आदि से सुनें। सुराधिप इन्द्र इधर देवताओं को आज्ञा देने लगे; मरुत् आदित्य तथा महापराक्रमी विश्वेदेव के गणों को, आठो वसुओं को, सभी यक्ष, राक्षस तथा महासर्पों को, सभी विद्याधर एवं महाबली गन्धर्व-गणों को, महासागरों, पर्वतों एवं महापराक्रमी रुद्रों को, यम और वैश्रवण एवं जनाधिप वरुण को और जो सिद्ध, महात्मा, मनस्वी पितर, राजर्षि एवं सैंकड़ों योगसिद्ध थे उन्हें बलवान् इन्द्र आज्ञा देने लगे कि आप लोग अब दैत्यों के विनाश के लिये सुसज्जित हो जाइये। तब इन्द्र के वचन को सुनकर इन्द्र के समान विक्रमशाली सभी देवता युद्ध के लिये सज गये। सूर्य की किरणों के समान वर्ण वाली रथ की स्वर्णमय वेदी पर खड़ी की गई ध्वजाओं के साथ उग्र कान्ति वाली देवताओं की सेना सिंहनाद करती हुई युद्ध में चल पड़ी। उन असुराधिपों के वध के लिये जाती हुई विजयवाहिनी देव-सेना के बड़े भारी प्रभाव को मैंने कह दिया।।१-६३।।



अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५३।।

वैशम्पायन जी बोले कि- फिर तो असुरों और देवताओं का अद्भुत् संग्राम प्रारम्भ हो गया; देवता तथा दानवों से व्याप्त युद्धस्थल वैसा ही शोभित होने लगा कि जैसे प्रलयकाल में अपने किनारों को लाँघ कर महासागर आपस में मिलते हों। भूमि तथा सूर्य दिखाई नहीं दे रहे थे, धूम के साथ भयंकर आँधी चलने लगी, सभी दिशायें अन्धकार से एकदम ढक गईं। इनके आलावे दैव निर्मित और भी बहुत से महोत्पात अन्तरिक्ष में और भूमि पर चारों ओर दिखाई देने लगे। भयंकर देवता और दानवों के उस भयानक युद्ध को पूजनीय ब्रह्मा सभी देवताओं के साथ देखने लगे। कमलयोनि सनातन ब्रह्मा अङ्गों सहित चारों वेदों और सभी विद्याओं एवं सिद्धों-महर्षियों के साथ शोभित थे। वे नाना प्रकार की मणियों के खम्भों और हजारों चित्रों से चित्रित रथ पर चढ़े हुए दिखाई दे रहे थे, उनका रथ हजारों प्राणियों से युक्त उज्वल था और उनका श्रेष्ठ शरीर चमक रहा था। वह रथ सुतप्त सुवर्ण-चित्रों से

युक्त था, उसमें आनन्दकारी सैकड़ों भेरियाँ बज रही थीं, उसका अंग वैदूर्य के बने चन्द्रमा और सूर्य से विभूषित था और वह नक्षत्रों का प्रचण्ड किरणों के समान जगमगा रहा था। उनके पुत्र पुलह, पुलस्त्य, मरीचि तथा अङ्गिरा ऋग्वेद और सामदेव की ऋचाओं से सम्यक् स्तुति करते हुए उन वरदानी देव की विमान पर सेवा कर रहे थे। अग्नियाँ, यज्ञ-देवता तथा अंगों सहित वेद और अन्य प्राणी भी उन भुवनेश्वर लोकगुरु महानुभाव ब्रह्मा की सेवा कर रहे थे। इनके अलावे महर्षियों का समूह, पावकयोनि वैश्वानर तथा देवताओं के पुरोहित; देवता और दानवों के युद्ध को देखने की इच्छा से वहाँ गये थे। नर-नारायण तथा सूर्य के समान प्रभावशाली छवो योगेश्वर सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कपिल तथा जैगीषव्य विभूषणों से सर्वाङ्ग भूषित हो आकाश में छिपे हुए युद्ध देख रहे थे। चारों वेदों को धारण करने वाले पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर प्रभाशाली अपने चारों मुखों की प्रभा से ब्रह्मा ने दिशाओं को अन्धकार से रहित कर दिया। वे शरत्कालीन नवोदित चन्द्रमा के समान शोभित हो रहे थे।।१-४१।।



अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५४।।

वैशम्पायन जी बोले– हे राजन्! इस अविनाशी त्रैलोक्य को अपने नाद से कम्पित करने वाला दोनों सेनाओं का भयंकर संग्राम होने लगा। बालक दैत्येन्द्र दूसरे महासागर के समान अपने पराक्रम से सभी दिशाओं को दलित करता हुआ देवताओं पर टूट पड़ा। समुद्र के वेग के समान बढ़ते हुए देवताओं को वह दैत्य पर्वतों के समान रोकने लगा; वह अपने बल से देवताओं को वैसे ही गिराने लगा कि जैसे समुद्र अथवा वायु का वेग वृक्षों को गिरा देता है। वह बड़े-बड़े धनुषधारियों को पछाड़ता हुआ आपव तथा अनिल नामक दो वसुओं से जा भिड़ा तब परम तपस्वी अरिन्दम वसुओं ने बलाक के ऊपर मेघ के समान तेजी से बाण बरसाया। वह दैत्य अन्तरिक्ष में ही छोड़े गये बाणों को टुकड़े-टुकड़े करने लगा। ऐसे कर्म को देख ईर्ष्या करते हुए ध्रुव नामक वसु

ने उसका सामना किया फिर तो दोनों बाणवर्षा कर एक दूसरे को घायल करने लगे। देवताओं तथा दैत्यों के यश को बढ़ाने वाले दोनों श्रेष्ठ देशीय वीर आपस में नखों से लड़ते हुए सिंह के समान तथा बाहुओं से लड़ते हुए दन्तैले दो गजराजों के समान प्रतीत होने लगे। वे दोनों रथ, शक्ति तथा बाणों से एक दूसरे को कष्ट पहुँचाने लगे। वे बाणों से शरीराङ्गों को भेदने तथा फाड़कर घायल करने लगे। वे दोनों बलवान् रण में एक दूसरे को व्यथित करते हुए तथा स्तम्भित करते हुए लड़ने लगे, वे दायें और बायें भागों के अनुसार विविध प्रकार के पैतरों को काटने लगे। वे दोनों अभिमानी क्रोध के वशीभूत हो आपस में मुद्गरों से प्रहार करने लगे फिर तलवार से दिव्य ढालों और विशाल धनुषों को काट कर पर्वत के समान आकार वाले बाहु-युद्ध करने लगे, ऊँची छाती और लम्बी भुजाओं वाले दोनों ही सब प्रकार के युद्ध में कुशल थे। लोहे के परिघों के समान वे बाहुओं से लड़ने लगे, उनकी भुजाओं के आघात से निग्रह-प्रग्रह होने लगा, उन भुजाओं से अत्यन्त ही भयंकर वज्र और पर्वत के समान शब्द होने लगा वे दाँत के अग्रभाग से लड़ते हुए हाथियों और सींगों से लड़ते साँड़ों के समान प्रतीत होने लगे। वे क्षणमात्र अपनी भुजाओं को खींच लेते फिर लड़ते ऐसे वे युद्ध करते रहे, इसके बाद बलाक से पराजित हो ध्रुव नामक वसु उसके भय से रथ छोड़ रण से भाग गये।।१-८२।।



अथ पञ्च पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५५।।

वैशम्पायन जी बोले- इसके बाद वहाँ क्रुद्ध नमुचि और महात्मा धर नामक वसु का बड़ा भारी भयंकर युद्ध हुआ। वैशम्पायन जी बोले कि इसी बीच ब्राह्मणों के राजा महाबली चन्द्रमा क्रुद्ध होकर दानवों की सेना को शीतास्त्र से मारने लगे। कैलास पर्वत के समान आकार वाले कान्तिमान् चन्द्रमा अपने गणों सहित दण्डपाणि यमराज के समान दानवों का चुन-चुन कर वध करने लगे। वे समर्थ चन्द्रमा दैत्यों के बीच प्रलय के समय बली काल

के समान विचरण करते हुए रथ तथा घोड़ों के झुण्डों को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे।।१-५०।।

मारे ईर्ष्या के चन्द्रमा वायु वेग से प्रेरित दावाग्नि के समान रथ-जालों को तथा सभी दानवों को जलाने लगे। वे रथों से रथियों, हाथियों से हाथी पर चढ़ कर लड़ने वालों को तथा घोड़ों की पीठों से घोड़सवारों को एवं भूमि पर पैदल सेना को धायल करने लगे। महातेजस्वी चन्द्रमा अपने बल से शीतास्त्र द्वारा दानवों की महती सेना को वैसे मार कर गिराने लगे कि जैसे वायु अपने वेग से वृक्षों को गिरा देता है। चन्द्रमा का शीतास्त्र शत्रुओं के रुधिर से लिप्त होकर वैसा ही भयंकर लगने लगा कि जैसे दानव रूप पशुओं का वध करने वाले क्रुद्ध शंकर जी का पिनाक भयंकर लगता है। युगान्त के समय महाकाल की भाँति श्रीमान् चन्द्रमा दैत्यों के बीच विचरण करने लगे, बार-बार भागती हुई विशाल सेना को चारों तरफ से घेर कर मारने लगे। चन्द्रमा को मृत्यु के समान आता देख कर योधा विस्मय में पड़ जाते थे, तम को अपहरण करने वाले चन्द्रमा समर में जहाँ-जहाँ पर शिशिरास्त्र फेकते थे वहाँ-वहाँ दैत्य-सेनायें लोट-पोट हो जाती थीं। अपनी सेना के साथ चन्द्रमा ने दैत्य सेना को विदीर्ण कर दिया। दैत्य-सेना को ग्रसते हुए मुँह फैलाये यमराज के समान तथा भीमकर्मा दैत्य के समान अस्त्र लिये चन्द्रमा को आता देख कर चन्द्र तथा भास्कर नामक महाबली दैत्य ताड़ वृक्ष के बराबर धनुषों को खींचते हुए, बाण वर्षा करते हुए मेघ के समान वाण बूँदों से चन्द्रमा को आच्छादित कर दिये। देवताओं और असुरों के द्वारा खींचते हुए धनुषों का महान् टंकोर दिशाओं को प्रतिध्वनित करने लगा, चिघारते हुए विशाल हाथियों से और हिनहिनाते हुए घोड़ों से तथा भेरी एवं शंखों के निनाद से युद्धस्थल चारों तरफ से भयंकर बन गया।।५१-६०।।

जय की कामना करने वाले युद्धेच्छु यशस्वी योधा क्रुद्ध होकर आपस में गोष्ठ-गत साँड़ों के समान लड़ रहे थे, दोनों सेनाओं में तीक्ष्ण बाणों से काट कर गिराये जाने वाले शिरों की वर्षा आकाश में पत्थरों की वर्षा के समान

प्रतीत हो रही थी। रण के भूमि पर कुण्डलों को धारण किये तथा पगड़ी बाँधे शिर और स्वर्ण की मालायें गिरी हुई दिखाई दे रही थीं; मुहूर्त मात्र में बाणों द्वारा बेधित शरीरों से, धनुष के साथ कटी हुई भुजाओं से, हजारों लाखों भूषणों से और कटे हुए रुधिर लिप्त कवचों से ढके धड़ों से, जंघाओं से तथा चन्दन लगे एवं चन्द्रमा के समान चमकने वाले कुण्डलों से भूषित मुखों से, हाथी, घोड़े और मनुष्यों के शरीरों से रणभूमि चारों तरफ पट गई। धनुष रूपी महामेघ शस्त्र रूपी बिजली से चमक रहे थे, वाहनों का निर्घोष बादलों के समान घड़घड़ा रहा था। देवता तथा दानवों का वह संग्राम बड़ा ही कड़ुआ और भयंकर तथा समर में शोणित रूप जल से भरा एक महानद बह निकला।।६१-६९।।



अथ षट् पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५६।।

वैशम्पायन जी बोले- रोंगटों को खड़ा कर देने वाले महाभयंकर उस तुमुल संग्राम में देवता और दानव क्रुद्ध हो बाणों की वर्षा कर रहे थे। दानवोत्तम कुम्भज क्षुर, क्षुरप्र, भल्ल, पात एवं अंजलिक नाम वाले तीक्ष्ण बाणों से देवताओं के उत्तम अङ्गशिरों और भुजाओं को काटने लगा।।१-५२।।

पत्थरों की वर्षा के समान शिरों एवं अंकुश के साथ भुजाओं के गिरने से आकाश भर उठा। कन्धे के ऊपर से कटे हुए शिर वाले गजयोधी देवता माया रहित ताड़ वृक्ष के समान दिखाई देने लगे। अंश नामक आदित्य के महागज को अपने तरफ झपटते हुए देख क्रुद्ध कुम्भज ने एक ही ऐसे बाण से मारा कि वह पीछे लौट गया। इस प्रकार बलियों में श्रेष्ठ दानवोत्तम कुम्भज हाथियों को, सेना को विडार कर श्रेष्ठ देव सैनिकों को घायल करता हुआ विचरने लगा। कुम्भज द्वारा एक ही प्रकार से अभिहत पर्वत के समान गिराये गये महागजों को सभी देवता आश्चर्य की दृष्टि से देखने लगे। इन्द्र के वज्र से बिखरे हुए पर्वत के समान महागज कुम्भज के मार्गों में अपने अंगों को फैलाये

हुए गिर पड़े थे। सभी उसको साक्षात् यमराज के समान देखने लगे। जैसे सिंह को देख कर अन्य प्राणी भागते हैं वैसे ही उसे देख हाथी भागने लगते थे। वह हाथियों के रुधिर से लथ-पथ उस लौह-गदा को धारण किये मुँह फैलाये गर्जते हुए भयंकर रूप वाले काल के समान भयानक प्रतीत हो रहा था।।५१-६०।।

जिस प्रकार प्रजाओं के नाश के समय भगवान् रुद्र संहार क्रीड़ा करते हैं उसी प्रकार वह महासुर गदा से संहार-क्रीड़ा करता हुआ रथ के मध्य दिखाई पड़ रहा था। जैसे चरवाहे डण्डे से गौवों को हाँक कर गोष्ठ में ले जाते हैं वैसे ही वह मानों गदा रूपी दण्ड से महागजों को काल के वशीभूत कर रहा था सभी देवता अकाल के समय क्रुद्ध काल के समान दण्ड को उठाये भयंकर पराक्रम वाले कुम्भज दानव को देखने लगे; वहाँ मार डाले गये सवारों वाले घायल जो हाथी थे वे बाणों से अत्यन्त विक्षत हो गदा की चोट खाते हुए कुम्भज के गदा-वेग को न सहन कर सकने के कारण अपनी सेनाओं को ही घायल करते हुए भागने लगे; जैसे अन्धड़ मेघों को तितर-बितर कर देता है वैसे ही गदा से हाथियों को तितर-बितर करता सम्वर्तक काल के समान वह दैत्य समर में उपस्थित था।।६१-६५।।



अथ सप्त पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५७।।

वैशम्पायन जी बोले कि इसके पश्चात् देवराज इन्द्र की आज्ञा से देवताओं की सभी सेनायें भयंकर शब्द से नाद करती हुई दैत्यों पर चढ़ दौड़ीं। दृढ़धन्वा वृत्र के द्वारा भयभीत हो गदा, शक्ति, शूल, ऋष्टि, परिघ और अशनियों को त्याग कर उत्तर दिशा की ओर भाग आये। तब छाती को उभाड़ महाभुज वृत्रासुर हाथों में शूल, शक्ति तथा गदा धारण कर चराचर को त्रास देता हुआ रण में गर्जने लगा।।१-६०।।

वहाँ दोनों में एक महाबाहु प्रभु अश्विनी कुमार तलवार और त्रिशूल ले

अप्रतिम दैत्येन्द्र पर चढ़ दौड़े। मद बहते मतवाले गज के समान उन अश्विनी कुमार को आता देख कर वृत्र ने तीन तीखे बाणों से सुर श्रेष्ठ को पार्श्व भाग में मारा। वे महाधनुर्धर बाणों से अत्यन्त विद्ध हो गये उन बलवान् एवं अमित पराक्रमी गदा-युद्ध विशारद ने गदा को ग्रहण कर लिया। लेकिन बलवान् वृत्रासुर ने उनकी उस लौह-सारमयी दृढ़ गदा को पकड़ कर सहसा अश्विनी कुमारों को अपनी गदा से मारा। इसके बाद अश्विनी कुमार ने रोंगटे खड़े कर देने वाले चमकते हुए बड़े भारी दृढ़ शूल को सहसा दैत्य के ऊपर छोड़ा। तब गदा-युद्ध विशारद दैत्य अपनी गदा के अग्रभाग से शूल को तोड़ कर गरुड़ जैसे सर्प का सम्मान करे। वैसे ही अश्विनी कुमार का सम्मान कर अन्तरिक्ष में चला गया। फिर वह बली अन्तरिक्ष से उछल पर्वत के शिखर के समान महती गदा को उठाकर अश्विनी कुमार के ऊपर फेका। गदा से घायल अश्विनी कुमार अपने उत्तम शूल को छोड़ कर सहसा वहाँ चले गये कि जहाँ इन्द्र युद्ध कर रहे थे। भयंकर पराक्रमी अश्विनी कुमार को संग्राम में पराजित कर विजय शोभा से सम्पन्न हो वृत्रासुर युद्ध में व्यवस्थित हो गया।।६१-६९।।



अथाष्ट पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५८।।

वैशम्पायन जी बोले- वहीं महायुद्ध में देवश्रेष्ठ 'रणाजि' नामक साध्य, बुद्धिमान् एकचक्र दैत्य के साथ युद्ध करने लगे। उस तुमुल युद्ध में ऐसा हो गया कि दानव दानवों को तथा देवता देवताओं को ही मारने लगे; उस समय महासुर देवताओं को न मार कर अपने महासुरों को ही घायल करते हुए पृथ्वी को खूनों से तर कर दिये। फिर तो रुधिर के समूह से उमड़ी हुई धूल गीली होने लगी और युद्धभूमि सैकड़ों-हजारों मृत तथा घायल शरीरों से पट गई। इसके बाद शूल, शक्ति, खड्ग, परिघ, प्रास तथा तोमरों से देवता और दानव आपस में प्रहार करने लगे। उधर दानव परिघ के आकार वाली बाहुओं से परिघों द्वारा सभी रुद्र के पारिषदों को मार रहे थे और उधर रुद्र के पारिषद बड़े-बड़े वृक्षों और बड़ी-बड़ी पाषाण शिलाओं तथा सूर्य के समान

चमकने वाले शस्त्रों से आगे बढ़ कर दानवों को विदीर्ण कर रहे थे, इसी बीच दानवोत्तम केशि क्रुद्ध हो गया। संग्राम का प्रेमी वह घोर दानव देवताओं पर परम क्रुद्ध हो अपनी सेना को हर्षित करता हुआ वज्र नामक अस्त्र को उठा लिया। उस महात्मा ने वज्र नामक दिव्य अस्त्र से युद्ध में दुर्जय सभी पारिषदों को निहत करने लगा। वे रुद्र-पारिषद वज्रास्त्र से पीड़ित हो घूमकर कटे हुए पेड़ के समान छितरा कर वैसे ही गिर पड़े कि जैसे इन्द्र के वज्र से आहत होकर पर्वत गिर पड़े थे। हे राजन्! केशि के साथ रुद्र का इस प्रकार लोमहर्षण तुमुल एवं अद्भुत युद्ध हुआ था।।१-१०१।।



अथैकोन षष्टितमोऽध्यायः।।५९।।

वैशम्पायन जी बोले- दैत्येन्द्र वृषपर्वा विश्वेदेवों के अन्तर्गत देखने में अद्भुत लाल सूर्य के समान कान्ति वाले निष्कुम्भ से लड़ने लगा। वहाँ रक्त रूपी लाल जल से भरी नदी बह चली जिसमें बहते हुए अस्त्र फेन के समान, ध्वजायें भँवर के समान और कटे हुए बाहु महान् सर्प के समान प्रतीत हो रहे थे; उसमें गिरी हुई शूल तथा शक्तियाँ मछलियों की भाँति चमकती थीं, वह नदी धनुष रूपी ग्राहों से भरी थी, उसके किनारे रथ और बाण रूपी पत्थरों से बँध रहे थे, वह ध्वजा रूपी पेड़ की लताओं से घिरी और रण शब्द के साथ भयंकर विस्तार वाली नदी थी। दैत्य प्रह्लाद और काल ये दोनों बिजली के समान चमकते हुए बाजूबन्धों को अपने धनुषों में बाँध कर उन्हें इन्द्रधनुष के समान सुन्दर बनाकर दो मेघों के समान दोनों ओर से बाणों की धारा बरसाने लगे, वे दोनों रथ और हाथी पर चढ़े दो महामेघों के समान प्रतीत हो रहे थे। वे दोनों क्रोधित हो जल से भरे मेघों के समान गम्भीर लग रहे थे, उन दोनों ने दिव्य हारों तथा सुवर्ण के कवचों को पहना था। पैंतरे से खड़े हुए वे दोनों सूर्य और अग्नि के समान चमक रहे थे, वे महाबलियों के समान अपनी-अपनी सेना के आगे खड़े थे। वे दोनों इन्द्र के वज्र के समान घाती बाणों से परस्पर सेनाओं का दुरासद संहार करने लग गये, उन दोनों के युद्ध में घिर

कर योद्धागण 'अब जीवन नहीं बचेगा' ऐसा कह रहे थे; जिनके बन्धु मार डाले गये थे ऐसे सर्वाङ्ग बाणों से विधे प्रमुख योद्धागण रण में गिरकर वक्षस्थलों से रक्त बहाने लगे। रण में गिरे हुए, गिरते हुए तथा गिराये जाते हुए और मरे हुए योद्धाओं से समरभूमि पट गई। उन दोनों को घोर बाणों को ग्रहण करते तथा धनुष पर चढ़ाते हुए कोई ही प्रयत्नपूर्वक देख पाता था। उन दोनों युद्ध-कुशल महाबाहु महाबलियों के धनुष फुर्तीपन से एक साथ ही मण्डलाकार हो जाते थे। प्रबल वायु जिस प्रकार मेघमण्डल को तितर-बितर कर देता है वैसे ही प्रह्लाद के बाण समूहो से यमराज की सेना तितर-बितर हो गई। युद्धदुर्मद महासुर प्रह्लाद काल को टूटा घमण्ड वाला समझ कर और अपने से द्वेष करने वाले उस यमराज को समर में विमुख होने की तर्कना कर एवं उसे अपने वश में आया मान कर वहाँ दूसरी सेना का मर्दन करने लगे। हे राजन्! काल और प्रह्लाद का यह पहले जैसा युद्ध हुआ था वैसा न कभी हुआ था न होगा। इस प्रकार अद्भुत बल और विक्रम वाले प्रह्लाद को महा-रण करने में घाव तो लगे पर विजय हो गई और यमराज रण से भाग निकले।।१-१०३।।



अथ षष्टितमोऽध्यायः ।।६०।।

वैशम्पायन जी बोले कि- प्रह्लाद का छोटा भाई अनुह्लाद यक्षों की सेना को क्षुभित करता हुआ सेना सहित धनाध्यक्ष कुबेर से युद्ध करने लगा। असुरोत्तम प्रतापी अनुह्लाद ने क्रुद्ध हो बड़ी भारी सेना को साथ ले धनाध्यक्ष कुबेर को घायल कर दिया। हथियारों के टूट जाने से मेघ के समान गर्जने वाले तथा घमण्ड से उत्कट कितने ही दानव भुजाओं से ही प्रहार करने लगे। वे महाबली लम्बे-लम्बे काष्ठों से, शिलाओं से तथा बाहुओं से वेगपूर्वक आपस में मारा-मारी करने लगे। वे महाबली रणाङ्गण में मुष्टिकाओं, थप्पड़ों, नाखूनों और बड़ी-बड़ी शाखाओं वाले वृक्षों से युद्ध करने लगे। जैसे दावाग्नि फैल कर वनों को भस्म करता है वैसे ही अनुह्लाद घूम-घूम कर देवताओं की

बड़ी भारी सेना का मर्दन करने लगा। विकृत शक्ल-सूरत वाले बड़े-बड़े योद्धा खूनों से तर होकर भूमि पर गिर पड़े, वे लाल फूलों वाले वृक्षों से समान प्रतीत होने लगे। उत्तेजित अनुह्लाद समर में युद्ध करते हुए देवताओं के ऊपर विषैले सर्पों के समान बाणों को छोड़ने लगा। इसके बाद धनाधिप कुबेर के द्वारा बाणों से विद्ध होने पर क्रोधित अनुह्लाद के मुख से अंगारों से मिली हुई अग्नि ज्वालायें निकलने लगीं। इसके बाद दानवोत्तम ने हाथ में कालदण्ड लिये हुए यमराज के समान क्रुद्ध हो हजारों बाणों से धनेश को वेधा। बाणों से कुबेर के शरीर में चारों तरफ गहरा घाव हो गया और उससे निकला हुआ रुधिर वैसे ही बहने लगा कि जैसे पहाड़ से झरने बहते हैं। फिर तो पुनः सावधान हो क्रोध से लाल-लाल आँखों वाले भयंकर पराक्रमी कुबेर ने बड़ी भारी गदा उठाकर बलपूर्वक दैत्य के ऊपर चलाया। तब गदा के पहुँचने के पहले ही गर्जते हुए क्रुद्ध अनुह्लाद ने अपनी गदा से उस कुबेर की गदा को खण्डित कर दिया, तब पुनः दूसरी गदा को लेकर कुबेर दानव पर दौड़े तब उन्हें अपनी तरफ आता देखकर महाबली अनुह्लाद कैलास पर्वत के समान एक गिरि शिखर को उखाड़ कर यमराज के समान मुँह फैलाये हुए धनाधिप कुबेर पर चढ़ चला। तब क्रोध से त्रैलोक्य को ग्रसते हुए यमराज के समान उस सम्पूर्ण देवताओं से अजेय दानव को आता देखकर धनाध्यक्ष कुबेर भयभीत हो रण छोड़ वहाँ चले गये कि जहाँ सुराधिप इन्द्र थे। उसके महान् कर्म को देखकर वित्तपति भय से संत्रस्त हो इन्द्र के पास चले गये।।१-७४।।

अथैक षष्टितमोऽध्यायः।।६१।।

वैशम्पायन जी बोले- इसके बाद दैत्यों में प्रमुख विप्रचित्ति नाम का दैत्य क्रुद्ध हो सर्प के समान विषैले दीप्त बाणों से वरुण को मारने लग गया। वरुण के अनुचर बन्दूकों, गदाओं और मुसलों से दानवों को घायल करने लगे, तब महाबली और पराक्रमी दानवोत्तम दुर्मद विप्रचित्ति बड़ा क्रुद्ध हो गरुड़ास्त्र से सर्पों के शरीरों को निगलने लगा, सर्पों को भक्षण करने वाले गरुड़ के समान वह गरुड़ नामक महास्त्र सर्पों का सफाया करने लगा।।१-३०।।

वह वीर सुवर्ण से विभूषित सूर्य के समान तेजस्वी बाणों से दुजर्य नागों को समर में मथने लगा। जैसे गजराजों से पीड़ित होने पर छोटे गज गिर जाते हैं वैसे ही विप्रचित्ति के बाणों से पीड़ित हो घायल शरीर वाले वे सर्प समर में गिर पड़े। तब जलते हुए बाणों की वर्षा करने वाले विप्रचित्ति के ऊपर वरुण भगवान क्रुद्ध हो चढ़ दौड़े। इसके बाद हजारों दानव देह के छिन्न-भिन्न हो जाने से दुःखी और व्याकुल चित्त हो दशों दिशाओं में भागने लगे। पाशधारियों में श्रेष्ठ वरुण इन्द्र के लिये अपने जीवन का मोह त्याग कर समर में गर्जते हुए पराक्रम कर युद्ध करने लगे। यहाँ तक हो गया कि वरुण और मद से उत्कट सर्प समर में महासुर विप्रचित्ति को मुष्टिकाओं से मारने लगे। तत्पश्चात् महातेजस्वी बलोत्कट महासुर विप्रचित्ति अस्त्रों और शिलाओं से उनका वारण करने लगा। इसके बाद उसने अग्नि के समान ज्वलनकारी तथा शीघ्रगामी बाणों से वरुण के महावेगशाली घोड़ों का भेदन कर दिया। उस महाघोर कर्म से महात्मा विप्रचित्ति का तेज अग्नि में घी की आहुति डालने के समान बढ़ गया।।३१-४०।।

वह महाबली सूर्य के समान तेजस्वी तथा शीघ्रगामी बाणों से वरुण की महती सेना का मन्थन करने लगा। उसने वरुण की सेना को बाणों से घायल कर अस्त्र रहित कर दिया; शूल, शक्ति और ऋष्टियों से विदीर्ण तथा शरजाल से मूर्छित कर सेना को रुधिरों से लथ-पथ कर दिया। उसने झुके पर्वों वाले तथा अग्नि के समान बाणों से वरुण के महावेगवान् घोड़ों का भेदन कर दिया। तब जल के राजा वरुण विप्रचित्ति दैत्य से डर कर सेना सहित इन्द्र की शरण में चले गये।।४१-४४।।



अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः।।६२।।

वैशम्पायन जी बोले- देवताओं में श्रेष्ठ अग्नि देव ब्रह्मर्षियों से प्रार्थित हो देवताओं की पराजय को देखकर दैत्यों के वध के लिये विचार कर लिये।

जो स्वयं प्रभा वाले शाण्डिलि के पुत्र हव्यवाहन, हिरण्यरेता, पिङ्गाक्ष, देवहूत तथा हुताशन कहे जाते हैं। जो रोहित, लोहितग्रीव, हर्ता, दाता, हवि, कवि, पावक, विश्वभुक् देव तथा जो प्रभु सभी देवताओं के मुख कहे जाते हैं। जो सुब्रह्मात्मा वेद रूप सुन्दर तेज वाले, हजारों लपटों वाले, विभावसु, कृष्णवर्त्मा, चित्रभानु तथा देवताओं के भी राजा कहे जाते हैं। वे धूम की ध्वजा वाले धूम की शिखा धारण किये नीले वस्त्र पहने प्राणियों को धारण करने वाले सुरोत्तम अग्नि की भाँति लाल-लाल घोड़ों से जुते वायु के चक्कों वाले रथ पर सवार होकर युद्ध के लिये चल पडे.।।१-१०।।

वह व्यापक अग्नि प्रह्लाद आदि प्रमुख दैत्यों को समर में पराजित करता हुआ निन्दित करने लगा। कुछ दैत्य जलते हुए मुकुटों से, कुछ जलते हुए केशों से, कुछ जलते वस्त्रों से, कुछ जलते बाहु तथा मुखों से, कुछ जलते हुए जाँघों से तथा कुछ जलते हुए छत्र, ध्वजा एवं रथों से व्याकुल होने लगे, समर में सभी असुर प्रखर रूप से जलते हुए अग्नि के द्वारा घिर गये। समर में बड़े असुर सभी आयुधों का त्याग कर तथा ध्वजा सहित रथों का त्याग कर पावक से पराजित हो भागने लगे। वे दानव जलती हुई सेना के मुख में अग्नि को न देख सके, वे दिशा, खड्ग तथा मेघों को भी जलता देख रहे थे। सभी दानव त्रस्त चित्त हो ऐसा मानने लगे कि तोययोनि से प्रेरित हो ब्रह्मा ने निश्चित ही युगान्त की रचना कर दी है। उस समय मय और शम्बर ने जल की वर्षा करने वाले पार्जन्य तथा मरुती नामक माया की रचना की। इन दोनों मायाओं से चारों तरफ की अग्नि को वे सींचने लगे तब पर्वत के समान जलधारा से वह अग्नि रण में शान्त हो गया। तब दैत्यनाशक अग्नि के समर में शान्त हो जाने पर विशाल कीर्ति तथा महान् तेज वाले अग्नि से बृहस्पति ने कहा। गुरु बोले हे हिरण्यरेत! वायु तुम्हारी आत्मा तथा लतायें शरीर औरा जल तुम्हारी योनि है तथा जल की योनि तुम हो।।१-३०।।

हे महाभाग! तुम्हारी लपटें उपर-नीचे अगल-बगल सभी तरफ अपना प्रभाव उत्पन्न करती हैं। हे अग्ने! तुम सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हो और प्रलय काल

में तुम्हारे ही अन्दर सम्पूर्ण जगत् रहता है, भुवन में तुम प्राणियों को धारण करते हो तथा उनका पालन करते हो। हे अग्ने! तुम्हीं एक हव्य का वहन करने वाले तथा तुम्हीं परम (दिव्य) हवि हो, परम यज्ञ में सन्त लोग तुम्हारा ही यजन करते हैं। हे प्रभो! प्रलय काल में तुम प्राणियों के अन्न को खाते हो, तुम सब जगत् का भक्षण करने वाले तथा सम्पूर्ण जल को पीने वाले हो, तुम्हारे ही में विजय रहती है तथा तुम्हारे में ही लोक प्रतिष्ठित रहते हैं। हे हव्यवाह! प्रलय काल आने पर दीप्त होकर तुम्ही तीनों लोकों को भस्म कर देते हो। हे देव! तुम्हीं एक सूर्य बनकर रश्मिमण्डल में विद्यमान रहते हो, तुमसे बढ़कर कोई नहीं है। हे अग्ने! वृषाकपि, सिन्धु-पति, महान् यज्ञों में पहले तुम्हीं अपने भाग का हरण करने वाले हो, तुम विश्व की उत्पत्ति करने वाले ईश्वर तथा भगवान् की तुम्हीं प्रतिष्ठा करने वाले हो। हे जातवेद! अपनी किरणों से तुम्हीं जल की सृष्टि तथा औषधियों में रसों की सृष्टि करते हो, हे अनल! युगान्त काल में तुम्हीं विश्व को अपने में लीन कर सृष्टि काल में विश्व के स्रष्टा बन जाते हो, तुमने देवताओं के हित के लिये रण में दानवों का हनन किया है। हे महातेज! सैकड़ों यज्ञों में अर्चित जल तुम्हारी अपनी योनि है तो तुम उस अपनी योनि को पाकर हे पावक! क्यो दुःखी हो रहे हो? हे पिंगाक्ष! हे लोहितग्रीव! तुम इस समय दैत्यों से देवताओं की रक्षा करो।।३१-४०।।



अथ त्रिषष्टितमोऽध्याय:।।६३।।

वैशम्पायन जी बोले- बृहस्पति के कहे गये सत्य वचन को सुनकर महायज्ञ में हविष योग की भाँति रण में पुनः अग्नि प्रज्वलित हो उठे और प्रदीप्त अग्नि ने रण में दैत्यों की माया का विनाश कर दिया तब विनष्ट हुए माया वाले वे दानव बलि के समीप चले गये। अद्भुत् कर्म वाले अग्नि के द्वारा दैत्यों के पराजित हो जाने पर प्रह्लाद उत्तर रूप वचन दैत्यपति बलि से बोले। हे दानवश्रेष्ठ! आप स्वयं अग्नि, वायु, सूर्य, जल, चन्द्रमा, नक्षत्र, दिशा, आकाश तथा पृथ्वी रूप हैं। भूत, भविष्य तथा वर्तमान भी आप ही हैं क्योंकि

वर देने वाले भगवान् ब्रह्मा ने आपको ऐसा वर दिया है। हे दैत्यराज! इन्द्रत्व, अमरत्व, युद्ध में अपराजय, ईशित्व, वशित्व तथा अमित शुभ बल सभी प्राणियों का स्वामित्व और महासमर में शूरत्व ये सभी आप में सदा निवास करते हैं, आप महायोगेश्वर हैं। हे दैत्येन्द्र! अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियाँ तथा जो सात्त्विक गुण हैं उन्हें अनुचरों सहित सभी देवताओं को जीत कर तुम प्राप्त करोगे (ऐसा ब्रह्मा ने कहा था) सो हे राजन्! जैसा ब्रह्मा ने कहा है वह अन्यथा नहीं होगा, महात्मा प्रह्लाद की बात को सुन कर बलि परम प्रसन्न हो इन्द्र के रथ की ओर चल दिये। तब इन्द्र के समीप जाते हुए उत्तम शोभा वाले महान् असुरेन्द्र बलि के चारों ओर पुण्यमय ब्राह्मण तथा श्रेष्ठ पशु चलने लगे।।१-१०।।

राजा बलि के चलते समय महान् जटा के भार को धारण करने वाले तपस्वी तथा कवि-पण्डित लोग स्तुति करते हुए मांगलिक मंत्रों का उच्चारण करने लगे, रण के बीच स्थित दानव बलि चमकते हुए सुवर्ण के आभूषणों तथा अनेक दिव्य रत्नों से अलंकृत हो परम तेज से युक्त हो अग्नि-शिखा की तरह शोभित हो रहे थे। उस समय उत्तम सत्त्व वाले बलवान् बलि ने शत्रु की सेना से छिन्न-भिन्न हुई अपनी सेना को वायु के द्वारा आकाश में तितर-बितर होते हुए वर्षाकालीन मेघ मण्डल की भाँति देखा। पुनः अग्नि के द्वारा चारों तरफ से रण में घिरी हुई सेनाओं को पर्व-सन्धि के समय समुद्र के उठते हुए उग्रतर वेगों के समान देखा। फिर तो समर में महान् आत्मा वाले शत्रुओं पर शूल, शक्ति, ऋष्टि, गदा, खड्ग तथा बाणों को छोड़ता वह बलवान् बली सिंह, वृषभ, मस्त हाथी तथा वर्षाकालीन मेघ के समान नाद करने लगा। दिव्य अस्त्र के चमक तथा सुन्दर वेग रूपी भुजाओं को धारण करने वाले महाबली उग्र वायु एवं पुरुषार्थ और पराक्रम रूपी इन्धन से प्रजा को भस्म करने वाले कालाग्नि के समान सुघोर रूप धारण करने वाला बलि रण में शोभित हो रहा था।।११-१६।।

❖❋❖

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।।६४।।

वैशम्पायनजी बोले कि बलि ने इन्द्र को छोड़ सभी देवताओं को सौ-सौ बाणों से बेधा तथा उन्हें सेना सहित पराजित भी कर दिया। दैत्येन्द्र बलि के द्वारा वध का पात्र होती हुई देवताओं की विशाल सेना विमुख होने लगी तब बलि के द्वारा हारे हुए देवता महाबली इन्द्र से बोले। देवता बोले कि आप इन्द्र, लोकों को धारण करने वाले स्वामी तथा अविनाशी हैं जैसे तुम अतुल कर्म करने वाले हो वैसे ही महान् तेजस्वी भी हो। हे सुरेश्वर! हम लोगों के साथ हमारी सेना रण से यहाँ भाग खड़ी है महासुरों ने रथ, चक्के, ध्वजा तथा रथ के धूरों को छिन्न-भिन्न कर दिया है। सैकड़ों, हजारों रथ, हाथी, घोड़े, योधा तथा पैदल सैनिक गदा, मुशल तथा पट्टिशों के द्वारा विदीर्ण हो खण्ड-खण्ड हो गये हैं। दैत्येन्द्र बलि ने इस समय रण में महाभयंकर रूप धारण कर लिया है तो आप दैत्येन्द्रों से मारी जाती हुई सेना को देखकर उसकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं। हे देव श्रेष्ठ! आप शरणागतों की रक्षा करने योग्य हैं, अतः शरणागतों की रक्षा करें, उन देवताओं की बात सुन कर इन्द्र प्रलयकालीन संवर्त्तक अग्नि के समान क्रुद्ध हो लाल हो गये मानों सम्पूर्ण दानवों को भस्म करने के लिये उद्यत हो गये वे देव-स्वामी के समान चमकता किरीट धारण करने लगे। नाना प्रकार के रत्नों से जड़ित बाजूबन्द को धारण करने से वे वैदूर्य मणि के समान ज्ञात हो रहे थे उनके रोम मयूर के समान, आँखें लाल-लाल, सौ बाहुएँ तथा हजार नेत्र थे। महाबली इन्द्र अकेले ही अनेक ध्वजाओं को धारण किये थे शोभा सम्पन्न सौ शिरों को धारण करने वाले वे योगी प्रहार करने के लिये वज्र को ग्रहण किये थे।।१-१०।।

वे कवच पहने, धनुष लिये सैकड़ों सूर्य के समान प्रभाशाली ज्ञात हो रहे थे उनके पीछे देवता, गन्धर्व तथा यक्षों के हजारों समूह चल रहे थे। वे सामवेद का गान करने वाले तथा विजय मंत्र जपने वाले महर्षियों से स्तूयमान हो रहे थे, सभी प्राणियों से अजेय अदिति के प्यारे पुत्र पाकशासन महेन्द्र सैकड़ों पोरों वाले, महाभयंकर धड़ाका करने वाले, सभी तरफ मुख वाले,

सुन्दर तथा चमकते हुए एवं भयंकर हँसी से अट्टहास करने वाले वज्र को ग्रहण कर दैत्यों को जुझाने लगे फिर तो उस समय बलि और इन्द्र का संग्राम प्रारम्भ हो गया। अत्यन्त पराक्रमी तथा बलोन्मत्त देवता तथा दानवों दोनों के द्वारा थोड़े ही काल में महान् अद्भुत रोगटों को खड़ा कर देने वाला महाभयंकर युद्ध होने लगा। युद्ध कर्म करने से आपकी चारों तरफ विजय है ऐसी सम्मति वाले सैकड़ों स्तोत्रों से प्रह्लाद द्वारा प्रबोधित दैत्य-पति बलि जलती हुई अग्नि के समान भभकने लगा। उस समय सुरेन्द्र तथा बलि का लोमहर्षण संग्राम देख कर भागे हुए देवता तथा दानवों का फिर युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसके पश्चात् इन्द्र अपने शस्त्रों से महाबली बलि को बेधने लगे और महाबाहु बलि उन अस्त्रों को रण में सैकड़ों टुकड़े करने लगा। तब वहाँ पुनः क्रोध कर महाबली इन्द्र ने महान् दानव सैन्य का संहार किया और शत्रुओं को भस्म करने वाले आग्नेय अस्त्र को छोड़ा तब प्रलयाग्नि के समान आग्नेयास्त्र को आकाश में आता हुआ देख कर बुद्धिमान् बलि ने वारुणास्त्र के द्वारा उसे गिरा दिया फिर तो इन्द्र ने क्रुद्ध हो पर्वत के समान वज्र को उठा लिया।।११-२०।।

रण की प्रशंसा करने वाले इन्द्र रण में दैत्य-पति बलि को मार डालने की इच्छा करने लगे इसके बाद उच्चैश्रवा अश्ववाहक कौशिक देवेन्द्र को उस महान् संग्राम स्थल पर शुभ आकाशवाणी सुनाई दी कि हे देवताओं के आनन्द को बढ़ाने वाले! हे महाबाहो! तुम युद्ध से हट जाओ। हे सुरश्रेष्ठ पुरन्दर! तुम रण में बलि को नहीं जीत सकोगे क्योंकि यह दैत्य उत्तम तपस्या तथा वरदान से अधिक बली हो गया है। हे सुरेश्वर! हे वासव! ब्रह्मा को प्रसन्न करने से तथा सत्य और धर्म के आचरण से यह तुम्हारे द्वारा अथवा देवताओं के द्वारा नहीं जीता जा सकता है। जो इसको जीतने वाले भगवान् हैं उन्हीं को ध्यान से सुनो, वह ब्रह्मा का सब कुछ है तथा देवताओं की गति है। वह धर्म का परम रहस्य एवं पर की परा गति, पर से भी परतर, परावर गति श्रीमान् प्रभु हैं। वे हजारों शिर, हजारों नेत्र तथा हजारों पैर वाले तथा पीताम्बरधारी हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म को धारण करने वाले देवताओं के शत्रुओं को मारने वाले हैं। जो सबको जीतने वाले और स्वयं अजेय जय स्वरूप श्रीमान्

विष्णु हैं वही इसको जीतने वाले होंगे। इस प्रकार की दिव्य तथा मधुर आकाशवाणी को सुन कर सभी सुरोत्तमों के साथ इन्द्र रण से लौट कर चले गय, इन्द्र के चले जाने पर रण भूमि में दानवों का महान् सिंहनाद तथा किल-किल शब्द एवं करतल का तड़-तड़ शब्द होने लगा। शंखों के निनाद तथा योधाओं की गर्जना एवं बाजों के बजने से तुमुल निर्घोष होने लगा तथा सेना के साथ दैत्यराज बलि की सुहृद्गण स्तुति करने लगे बलि इन्द्र बन कर दैत्य हिरण्यकशिपु की भाँति शोभित हो गया।।२१-३२।।



अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः।।६५।।

वैशम्पायन जी बोले कि- देवताओं के निष्प्रयत्न हो जाने पर बलि, मय तथा शम्बर की विजय हो गई, तीनों लोकों का दैत्यों के द्वारा पालन होने लगा। धर्म-कर्म होने पर !दिशायें अमृतमय दिखाई देने लगीं, चन्द्रमा का उद्धार हो गया, दिवाकर अपने अयन में स्थित हो गये। प्रह्लाद, शम्बर, मय तथा अनुह्लाद के द्वारा सभी दिशाओं की तथा आकाश की रक्षा होने लगी। स्वर्ग के लिये दैत्य यज्ञ की शोभा दिखाने लगे लोक पहले की भाँति सत्पथ पर चलने लगा। सभी पापों का अभाव हो जाने पर पुण्य होने लगा दैत्यों के द्वारा सर्वत्र आश्रमों की रक्षा होने पर सिद्ध लोग तप करने लगे। अधर्म के पाद टूट जाने पर तथा धर्म के चारों पावों से स्थित होने पर और प्रजा पालन से युक्त राजाओं के सुशोभित होने पर एवं सभी आश्रमों में निवास करने वालों के अपने-अपने धर्म में आचरण करने पर सभी दैत्यों ने दैत्य-राज बलि का त्रैलोक्य के राज्य पद पर अभिषेक किया। इस प्रकार असुर गणों के प्रसन्नतापूर्वक जयनाद करने तथा आनन्दित होने पर श्री लक्ष्मी जी कमल के आसन पर बैठी हुई राजा बलि के समीप आईं। कमल को हाथ में लिये देवताओं को मोहने वाली वरदा लक्ष्मी जी बोली- हे बलवानों में श्रेष्ठ महातेजस्विन् महाराज बलि! तुम्हारा कल्याण हो, देवताओं को पराजित कर देने पर मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुई हूँ तथा जो तुमने पराक्रम कर संग्राम में

देवताओं को पराजित किया है इसी तुम्हारे परम प्रताप को देख कर मैं तुम्हारे पास स्वयं आई हूँ हे दानवश्रेष्ठ! हिरण्यकशिपु के कुल में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।।१-१०।।

हे राजन्! इस प्रतापी कुल में उत्पन्न होने से ही तुम असुरेन्द्र का ऐसा कर्म हुआ तुमने प्रपितामह दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु को विशेषित अर्थात् सम्मानित कर दिया। जिसने कि सम्पूर्ण त्रैलोक्य का निष्कण्टक राज्य भोगा था हे विभो! तुम्हारे में विशेषता यह है कि तुम्हारे राज्य में सभी प्रजा धर्म पथ पर स्थित है। हे अमित पराक्रमिन्! त्रैलोक्य के धर्म प्रधान होने से तुम इसका भोग करोगे इस प्रकार कह कर सभी प्राणियों के मन में अच्छी लगने वाली सौम्य तथा वरदान देने वाली लक्ष्मी जी दैत्येन्द्र बलि के अन्दर प्रविष्ट हो गईं शेष देवी-श्रेष्ठ जो ह्री, कीर्त्ति, द्युति, प्रभा, धृति, क्षमा, भूति, नीति, विद्या, दया, स्मृति, कृति, लज्जा तथा मेधा, लक्ष्मी, ईहा, गति, श्रुति, प्रीति, इला, कीर्त्ति, शान्ति, पुष्टि, क्रिया तथा नृत्यगीत में विशारद सभी दिव्य अप्सराओं ने चराचर त्रैलोक्य में सुन्दर जान कर दैत्य बलि को स्वामी के रूप से ग्रहण किया इस प्रकार ब्रह्मवादी बलि ने अमित ऐश्वर्य को प्राप्त किया।।१-१८।।



अथ षट् षष्टितमाऽध्यायः।।६६।।

जनमेजय जी बोले- हे मुने! दैत्यों के द्वारा पराजित हो देवताओं ने क्या किया? और हे द्विजोत्तम! पुनः कैसे स्वर्ग प्राप्त किया? वैशम्पायन जी बोले- श्रीमान् इन्द्र उस दिव्य आकाशवाणी को सुन कर देवताओं के साथ पूर्व दिशा में स्थित माता अदिति के उत्तम आश्रम की ओर प्रस्थान किये। अदिति के आश्रम पर पहुँच कर इन्द्र ने अदिति से उस आकाशवाणी को कहा जैसे कि युद्ध में पहले उन्होंने सुना था। तब अदिति बोलीं हे पुत्र! यदि ऐसा है कि तुम लोग सभी मरुद्गणों के साथ युद्ध में विरोचन पुत्र बलि को मारने के लिये समर्थ नहीं हो केवल एक उन सहस्त्र शिर विष्णु ही उस असुर को

मारने में समर्थ हैं और तुम सहस्त्रनेत्र वाले से नहीं मारा जायेगा तो हे शतक्रतो! महात्मा दैत्य बलि के पराजय के लिये तुम लोग चल कर सत्यवादी अपने पिता कश्यप से पूछो। ऐसा सुन कर देवता लोग अदिति के साथ कश्यप के समीप पहुँचे वहाँ तपोनिधि कश्यप मुनि को देखा। देव-दानवों के आद्य, गुरु देव दिव्य तथा त्रिषवण के जल से भींगे हुए अपने तेज से सूर्य के समान चमकते तथा अग्नि शिखा की भाँति लाल गौर वर्ण कश्यप जी को देखा। दण्ड को समीप में रख, तपसे युक्त, काला मृगचर्म ओढ़े, वल्कल वस्त्र को पहने तथा ब्रह्म तेज से प्रकाशित हुए कश्यप जी को देखा। मंत्र द्वारा घृताहुति दिये गये जलती अग्नि के समान, स्वाध्याय में तल्लीन, शान्त तथा शरीरधारी अग्नि के समान देखा।।१-१०।।

ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ देवता तथा दानवों के गुरु प्रभु समर्थ उन मरीचि के पुत्र दीप्त तेज वाले कश्यप जी को प्रखर तपते हुए आदित्य की भाँति देखा। जो सभी प्राणियों को उत्पन्न करने वाले प्रजाओं के उत्तम पति ब्रह्मा हैं वही आत्म भाव की विशेषता से (आत्मा वैजायते पुत्रः इस परम्परा से) तीसरे प्रजापति कश्यप रूप में हुए थे। इसके बाद अदिति के साथ वे वीर श्रेष्ठ देवता उनको प्रणाम कर हाथ जोड़ ब्रह्मा से मानस पुत्रों की भाँति कहा। इन्द्र ने संग्रामस्थल में सरस्वती के द्वारा कही गई जो आकाशवाणी सुनी गई थी कि दानव श्रेष्ठ बलि सभी देवताओं से अजेय है ये सब बातें कह दीं। तब उन पुत्रों की बात सुन कर लोककर्त्ता कश्यप जी उस समय ब्रह्मलोक जाने का निश्चय कर लिये। कश्यप जी ने कहा कि अब हम लोग वेद के घोष से निनादित ब्रह्मा के सदन को चलें हे अनघों! जैसा सुना है वैसा वहीं ब्रह्मा से कहना। वैशम्पायनजी बोले इसके बाद अदिति के साथ देवता कश्यप जी के पीछे देवर्षिगणों से सेवित ब्रह्मा के सदन को चल पड़े। वे देवता इच्छानुसार चलने वाले कीमती तथा सुन्दर दिव्य विमानों से मुहूर्त मात्र में ही देखने की इच्छा से महान् विस्तीर्ण ब्रह्मा की विशाल सभा में चले गये। भँवरों की गीत से गुञ्जारित तथा साम वेद के गायन से युक्त शत्रुओं का हनन करने वाली कल्याणकारिणी सभा को देख कर देवतागण आनन्द के मारे हर्षित हो

गये।।१९-२०।।

वहाँ पर देवसिंहों ने ऋचाओं को जानने में प्रमुख ब्राह्मणों एवं शिक्षा धर्मशास्त्र के विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा शब्द सिद्धि के लिये उच्चार्यमाण पदों एवं अक्षरों को सुना। वह सभा विस्तृत यज्ञादि कर्मों में तल्लीन यज्ञ तथा वेदांग के पद-क्रम, जटा घनादि वेत्ता विद्वानों एवं महर्षियों के वेद-घोष से गूँज रही थी, यज्ञ-स्तोत्रों के ज्ञाता तथा धर्म-शास्त्र के वेत्ता ब्राह्मणों से। शब्द निर्वाचन के तत्त्वज्ञों से, सम्पूर्ण विद्या में कुशल विद्वानों से, मीमांसा के हित वाक्य ज्ञाताओं से, सभी प्रकार के वाद-विवाद में कुशल तथा हृष्ट-पुष्ट स्वर एवं मधुर बोलने वाले द्विजेन्द्रों से गुञ्जारित ब्रह्मा का सदन विष्णु के सदन की भाँति श्रेष्ठ ज्ञात हो रहा था। वे देवता वहाँ जाकर वेद-ध्वनि सुनते हुए अपने को पवित्र शरीर वाले मानने लगे इसमें संशय नहीं है। वे एकाग्रचित्त वाले देवता मौन हो ब्रह्मा में मन लगाये विस्मय से प्रफुल्लित नेत्र परस्पर देखते हुए। कश्यप को आगे कर वे श्रेष्ठ देवता मन से ही लोक गुरु समर्थ ब्रह्मा को नमस्कार करने लगे। फिर सभी देवता ब्रह्मा के शुभ चरणों में शिर से प्रणाम किये पश्चात् परम उत्तम आसनों पर बैठ गये। कश्यप जी के साथ आये हुए उन देवताओं को देख कर देवताओं के ईश्वर महातेजस्वी प्रभु ब्रह्मा जी बोले।।२१-४७।।



अथ सप्त षष्टितमोऽध्यायः।।६७।।

ब्रह्मा जी बोले हे शान्त कश्यप! तथा महाबली देवताओं! आप लोग जिस बात के लिये यहाँ उपस्थित हुए हैं उन सभी बातों को बैं जानता हूँ। हे श्रेष्ठ देवताओं! जिस कार्य को आप लोगों ने चाहा है वह आप लोगों का कार्य सिद्ध हो जायेगा जो दानव मुख्य बलि का विजेता होगा वह केवल एक असुर समूहों को ही जीतने वाला नहीं है बल्कि वह विश्व का निर्माता त्रैलोक्य को भी जीतने वाला है तथा वह देवताओं में उत्तम देव है। तथा लोकों को धारण करने वाला विश्व की योनि एवं सनातन है उनको लोग मुझ हिरण्य गर्भ का

पिता कहते हैं। उन्हीं व्यापक देव के द्वारा असुर-मुख्य महात्मा बलि की आत्मा विश्व तथा जगत् के अन्दर अजेय बना दी गई है। उनके ही प्रसाद से मैं उस परम गति का बखान करता हूँ उस परम सिद्ध अमृत नामक स्थान को उत्तर दिशा में क्षीर समुद्र के उत्तर किनारे पर प्राप्त कर कठिन तप करें वहाँ उन सर्वाधिदेव का व्रत समाप्त होने पर विष्णु के द्वारा वाणी को सुनेंगे जो वाणी विस्पष्ट, मीठी, गम्भीर तथा ऊँचे स्वर वाली होगी। वे आप लोगों से कहेंगे कि हे सुरश्रेष्ठों! मैं वर देने के लिये खड़ा हूँ कहिये किसको क्या वर दूँ तब उन योगात्मा विष्णु के चरणों में प्रणाम कर कश्यप और अदिति वर की याचना करें कि संशय रहित आप ही हमारे पुत्र हों। इस प्रकार परम भक्ति से कहने पर वे कहेंगे कि ऐसा ही होगा, इसके बाद सभी देवता भी कहेंगे कि आप लोगों के भ्राता हों तब वे सर्वलोककर्त्ता श्रीमान् विष्णु तथास्तु कहेंगे। हे देव श्रेष्ठों! इस प्रकार उनसे वर प्राप्त कर कृतकृत्य हो आप सभी अपने-अपने स्थान को चले जाइयेगा। ऐसा ही करेंगे कह कर सभी देवता और ब्रह्मवादी ब्रह्मा ने जैसा कि बताया था उसके अनुसार उस तट पर वे शीघ्र ही पहुँच गये अमृत स्थान को प्राप्त कर नारायण देव की प्रसन्नता के लिये ब्रह्मचर्य, मौन तथा इन्द्रिय दमन एवं तप के आसन से सभी देवता कठिन तप करने लगे। महात्मा विष्णु की प्रसन्नता के लिये कश्यप जी वहाँ वेदोक्त स्तोत्र से स्तुति करने लगे।।११-२६।।



अथाष्ट षष्टितमोऽध्यायः।।६८।।

कश्यप जी बोले- हे देव देवेश! आपको नमस्कार है, हे एकशृङ्ग आपको नमस्कार है (इस स्तोत्र को मूल में देखें, इसी प्रकार सम्पूर्ण सम्बोधनों के आगे नमस्कार करना चाहिये) हे वराहावतार! हे वृषार्चिन्! (धर्ममयूख!) हे वृषसिन्धो! (धर्मसागर) हे वृषाकपे! सुरवृषभ! सुरनिर्मित! अनिर्मित! भद्रकपिल! विष्वक्सेन। ध्रुव! धर्म! धर्मराज! बैकुण्ठ! त्रैवर्त्त! आपको नमस्कार है। हे स्ववंश! आप विश्व का पालन करने वाले हैं; आप ही विश्व

का भरण करते हैं, वरदान की इच्छा वाले हम देवताओं की आप रक्षा करें।।१-२१३।।



अथैकोन सप्ततितमोऽध्यायः।।६९।।

वैशम्पायन जी बोले कि- ब्रह्म यज्ञ करने वाले द्विजेन्द्र कश्यप जी के द्वारा कहे गये इस परम स्तोत्र को सुनकर देवताओं के ऊपर मन से प्रसन्न हो नारायण बोले; वह शब्द आकाश से सुनाई तो पड़ रहा था परन्तु कहने वाला दिखाई नहीं दे रहा था। विष्णु ने कहा हे देवताओं! मैं आप लोगों पर प्रसन्न हूँ, आप लोगों का कल्याण हो। मैं आप लोगों को वर देना चाहता हूँ, अतः आप लोग मुझसे विनिश्चय किये वर को माँगें। कश्यप जी बोले- यदि आप हम देवताओं पर प्रसन्न हैं और यदि वर देना चाहते हैं तो अदिति के गर्भ से इन्द्र के छोटे भाई वामन देव के रूप में आविर्भूत होवें। वैशम्पायन जी बोले- वर की इच्छा वाली देवमाता अदिति ने भी पुत्र के लिये वर देने वाले भगवान् से इसी बात को कहा। अदिति बोलीं- सभी महात्मा देवताओं के कल्याण के लिये पुत्र की कामना वाली मैं भी आपसे यही याचना करती हूँ कि आप निश्चित पुत्र रूप से प्रकट हों। देवता बोले- आपके अदिति-पुत्र होने पर इन्द्र सहित सभी देवता कश्यप जी के पुत्र होवें। विष्णु देवताओं तथा कश्यप जी से कहे कि मैं ऐसा ही करूँगा कि जिससे आप लोग अपने अभीष्ट कामना को प्राप्त करें। वे सब क्षण मात्र भी मेरे सामने नहीं टिक सकेंगे। मैं सभी असुर गणों को तथा जो अन्य शत्रु होंगे उनको भी मार कर देवताओं को पुनः हव्यभोजी तथा पितरों को कव्यभोजी बना दूँगा। हे सुरोत्तमों! अब आप लोग अपने आये हुए मार्ग से अपने स्थान को लौट जाइये।।१-१०।।

अदिति तथा कश्यप का जैसा मनोरथ है उसे पूर्ण करूँगा। वैशम्पायन जी बोले- विष्णु के ऐसा कहने पर सभी देवता विष्णु को नमस्कार कर पूर्व दिशा को जहाँ कि कश्यप जी का विस्तृत एवं दिव्य आश्रम तथा वहाँ चले गये। देवमाता अदिति अति तेजस्वी भूतात्मा महात्मा विष्णु के गर्भ को दिव्य

एक हजार वर्ष का धारण किये थीं। एक हजार वर्ष पूर्ण होने पर उन्होंने वामन भगवान् को उत्पन्न किया। त्रैलोक्य को सुख देने वाले तथा दैत्यगणों को भय देने वाले एवं देवताओं के आनन्द को बढ़ाने वाले उन देवेश के वामन रूप से प्रकट हो जाने पर।।११-२१।।



अथ सप्ततितमोऽध्याय:।।७०।।

वैशम्पायन जी बाले कि– सप्त प्रजापति मरीचि आदि तथा सप्त महर्षि भारद्वाज आदि उन प्रकट हुए वामन भगवान् को नमस्कार किये। वहाँ भारद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि तथा वासिष्ठ जी उपस्थित थे और सूर्य के सम्यक् प्रनष्ट होने पर पुनः जिन्होंने सूर्य को उदित कराया था वे अर्थात् भास्करत्व-कर्त्ता अत्रि ऋषि भी आ गये थे। मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्य, पुलह, क्रतु दक्षप्रजापति भी उन्हें नमस्कार किये थे और जो सात पुत्र वसिष्ठ के वासिष्ठ के नाम से विख्यात थे जिनके नाम क्रमशः और्व, स्तम्ब, काश्यप, कपिवान्, अकपिवान्, दत्त तथा जो निश्च्यवन आदि हैं उन्होंने भगवान् वामन को नमस्कार किया। और सभी भूषणों से विभूषित अतः शरीर से चमकती हुई श्रेष्ठ अप्सरायें देवेश को देख उनके समीप नृत्य करने लगीं, तुम्बुरु नामक गन्धर्व गीत गाने लगा एवं नारद जी इसके आलावे हाहा, हूहू, महातेजस्वी हंस ये सभी देवताओं के गन्धर्व वामन भगवान् के समीप गाने लगे। समूह की समूह अन्य अप्सरायें और मेनका, सहजन्या, पर्गिका तथा पुञ्जिकस्थला ये अप्सरायें और अन्य भी हजारो-हजारों अप्सरायें प्रसन्न हो नृत्य करने लगीं।।१-२०।।

बारह आदित्यगण कश्यप के पुत्र कहे जाते हैं उन्होंने भी महात्मा सुरेश को नमस्कार किया। आठो वसु तथा महाबली मरुतगण, विश्वेदेवा तथा साध्यगण हाथ जोड़े खड़े थे और शेषनाग के महाभाग्यशाली छोटे भाई वासुकि आदि तथा कच्छप, अपहर्त्ता तथा महाबली तक्षक, तेज से युक्त

महाक्रोधी और महाबली किसी से पराजित न होने वाले ये महान् आत्मा वाले नाग उनकी स्तुति के लिये खड़े हो गये। विनता के पुत्र भी उपस्थित हो गये, श्रीमान् ब्रह्मा सभी देवर्षियों के साथ आकर स्वयं बोले। ब्रह्मा बोले- जिस विष्णु से यह सनातन तथा प्रभावशाली लोक उत्पन्न होता है वही लोकेश्वर यह श्रीमान् विष्णु हैं।।२१-३०।।

वे वामन दुर्दिन के नवीन मेघ की भाँति श्याम वर्ण के थे तथा आँखें लाल, आकृति बवना थी और वक्षस्थल पर रोवों से घिरे श्रीवत्स से वे शोभायमान लग रहे थे, उस समय प्रफुल्लित नेत्रों वाली सभी अप्सरायें उनका दर्शन कर रही थीं। उन महात्मा के प्रभा की उपमा आकाश में उदित हजारों सूर्य की एक साथ निकली प्रभा से हो सकती है। वे श्रीमान् देवर्षि के समान ज्ञात हो रहे थे तथा भूलोक एवं भुव लोक तथा प्राणियों का कल्याण करने वाले थे, उनके रोवें पवित्र, कन्धा विशाल तथा वे प्रभु सम्पूर्ण तेजोमय थे। योग के द्वारा बाल्यावस्था को प्राप्त महातेजस्वी विष्णु सब कुछ जानते हुए भी कहने लगे कि हे सुरश्रेष्ठों! मैं आप लोगों का कौन सा कार्य करूँ, क्या वर दूँ। जो सभी देवताओं का अभीप्सित व्रत रूप कार्य है उसे प्रसन्नता से युक्त हो आप लोग कहें। सभी देवता हाथ जोड़ विष्णु से बोले- तपस्या तथा इन्द्रिय दमन से बढ़ा हुआ सर्वज्ञ दैत्य-प्रमुख महात्मा बलि ने ब्रह्मा के वरदान से हम लोगों से सम्पूर्ण जगत् छीन लिया है, हे देवसत्तम! वह हम सभी से निश्चय ही अवध्य है।।३१-४०।।

हे सुव्रत! आप ही इसके ऊपर विजय कर सकते हैं दूसरा कोई नहीं, इसीलिये पितरों को उचित काव्य और देवताओं को उत्तम हवि दिलवाइये। इन्द्र को तीनों लोकों का राज्य पुनः दे दीजिये। इस समय वह दानव अश्वमेध यज्ञ कर रहा है, लोकों को लौटा लाने के लिये जो उचित उपाय हो उसे सोचिये। वामन रूपधारी विष्णु सभी देवताओं से बोले कि इस समय वेदपारंगत अङ्गिरा के पुत्र महर्षि बृहस्पति मुझे उसके यज्ञ में लिवा चलें। हे सुरोत्तमों! मैं उस यज्ञस्थल में पहुँच कर तीनों लोकों को हरण करने का जैसा

उचित उपाय होगा विचारूँगा। वैशम्पायन जी बोले इसके बाद महातेजस्वी बुद्धिमान बृहस्पति प्रभु वामन को दानवेन्द्र बलि के यज्ञस्थल में लिवा गये।।४१-५०।।

मुञ्ज-मेखला, यज्ञोपवीत, छत्र, दण्ड तथा धर्म की ध्वजा धारण किये धूम्र एवं लाल आँखों वाले बालक रूप वामन भगवान् ब्रह्मर्षिगणों से घिरे उस यज्ञस्थल में पहुँच कर अपने ही स्वयं उस यज्ञ की प्रशंसा करने लगे। ब्रह्मा आदि देवताओं से जो ध्यान किये जाते हैं वे लोकेश्वरों के भी ईश्वर श्रीमान् वामन जी वृद्ध न होते हुए भी वृद्ध की भाँति अचिन्त्यात्मा सुरसत्तम उस विरोचन-पुत्र दानवराज बलि के यज्ञ में पहुँचे।।५१-६०।।

संग्राम की सामग्रियों से आच्छादित दैत्यों से यज्ञस्थल का द्वार सुरक्षित था तथापि वे दानवों द्वारा रोके गये द्वार में सहसा प्रविष्ट हो गये। महाबली वामन भगवान् मन्त्र के प्रधान वेत्ता ऋषियों द्वारा चारों ओर से घिरे दैत्य तथा दानवों के राजेन्द्र बलि के समीप उपस्थित हो गये। वे सनातन यज्ञ-स्वरूप वामन विस्तृत प्रयोगों से यज्ञ का उचित वर्णन कर शुक्र आदि ऋतिवजों तथा यज्ञ कर्म के विद्वान् सभी ऋषियों को कर्म विधि की अशुद्धि में पकड़ लिये और सभी को निरुतर भी कर दिया। वे विभु चारों ओर ऋत्विजों की उपस्थिति में बलि के सामने शीघ्रतापूर्वक अन्यान्य हेतुओं द्वारा यज्ञ के आत्मतत्त्व कारण का वर्णन करने लगे। ऋषिगणों के समक्ष वे चित्रगु वामन पुनः वैदिक मन्त्रों के प्रमाण से यज्ञ का वर्णन करने लगे। तब महातेजस्वी बालक वामन द्वारा उपाध्याय सहित सभी उन वृद्ध-वृद्ध ऋषियों को निरुत्तर होते देखकर विरोचन-पुत्र बलि उन वामन भगवानको एक अद्भुत् पुरुष समझ गये और शिर झुका नमस्कार कर हाथ जोड़ विस्मित हो बोले। तुम कौन हो, कहाँ से आये हो, किसके कुल के हो और यहाँ आने का तुम्हारा क्या प्रयोजन है? हमने इस प्रकार के ब्राह्मण को पहले कभी नहीं देखा, सुना, न जानता हूँ। तुम ज्ञान-विज्ञान में निपुण तथा बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बालक ज्ञात हो रहे हो और शिष्टाचार के अनुसार तुम्हारा वचन है, देखने में तुम रूपवान्, सुन्दर तथा प्रियदर्शन हो।।६१-७०।।

जैसे कि तुम दिखाई पड़ रहे हो ऐसे पुत्र देवताओं, ऋषियों, नागों, यक्षों, असुरों, राक्षसों, पितरों, सिद्धों तथा गन्धर्वों मे नहीं हैं; अच्छा जो हो सो हो, तुम्हें नमस्कार है, अब बोलो तुम्हारा कौन सा कार्य करूँ। वैशम्पायन जी बोले- राजा बलि के द्वारा इस प्रकार कहने पर उपायों के तत्त्व को जानने वाले अचिन्त्यात्मा वामन भगवान् मन्द हँसीपूर्वक बोले।।७१-७३।।



अथैक सप्ततितमोऽध्यायः।।७१।।

वामन रूपधारी विष्णु जी बोले- अहो! पहले यज्ञ करने वाले पितामह ब्रह्मा तथा इन्द्र के यज्ञ से भी यह यज्ञ सुन्दर संस्कारों से युक्त तथा बहुत प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से भरा है। हे महाबली दानवेन्द्र! सुरेश इन्द्र, यम तथा वरुण के यज्ञ से भी तुमने इस यज्ञ को विशेषित कर दिया है। सम्पूर्ण पापों के विनाश के लिये स्वर्ग को दिखाने वाले यज्ञों में श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ के द्वारा यजन करते हुए तुम कल्याण के भागी हो गये हो। यज्ञों में श्रेष्ठ श्रीमान् यह अश्वमेध यज्ञ सम्पूर्ण कामनाओं से भरा तथा ब्रह्मवादियों के द्वारा सम्मत है, ऐसा सुना जाता है। यह परम पवित्र अश्वमेध यज्ञ सुवर्ण स्तम्भ से, महानुभावों से तथा लोहा के क्षुरे से युक्त एवं वायु के समान वेगशाली अश्व से युक्त है, यह स्वर्ग रूप नेत्र वाला विश्वयोनि यज्ञ सुवर्ण से भरा होने से गौरव को प्राप्त हो रहा है। अश्वमेध यज्ञ करके मनुष्य घोड़े पर चढ़ कर अपने दूषित कर्म से पार उतर जाते हैं, अश्वमेध के घोड़े को वेदवेत्ता द्विजेन्द्रों ने अग्नि का स्वरूप कहा है। जैसे सभी आश्रमों में गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है, जैसे मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं तथा जैसे असुरों में आप श्रेष्ठ हैं वैसे ही यज्ञों में अश्वमेध श्रेष्ठ है। वैशम्पायन जी बोले कि भगवान् वामन के द्वारा कहे गये इन वचनों को सुन कर दैत्यपति बलि परम प्रसन्नता से युक्त हो बोले। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तुम किसके पुत्र हो? क्या चाहते हो? माँगो मैं दूँगा, तुम्हारा कल्याण हो तुम मनचाहा वर माँगों और अपने कामना को प्राप्त करो। वामन जी बोले हे दानव! मैं राज्य, सवारी, रत्न तथा स्त्रियों की कामना नहीं करता यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो

और यदि तुम्हारी बुद्धि धर्म में है तो मेरे सम्मान में अग्निस्थापन कार्य के लिये मुझे तीन पग भूमि दान कर दो। यही मेरा सबसे श्रेष्ठ वर है; वामन के वचन को सुन कर दैत्यपति बलि कहने लगे।।१-१०।।

बलि बोले हे वक्ताओं में श्रेष्ठ विप्रेन्द्र! तीन पग से आपका क्या कार्य सिद्ध होगा आप सैकड़ों, हजारों, लाखों पग भूमि ले लो। राजा बलि की इस बात को सुन कर दैत्यगुरु शुक्र बोले हे महाबाहो! तुम इनको नहीं समझ रहे हो यह माया से छिपे हुए सर्वश्रेष्ठ भगवान् हरि हैं इनको तीन पग भूमि न दान करो। ये वामन रूप धारण कर इन्द्र का प्रिय तथा हित करने की इच्छा से तुमको छलने के लिये आये हैं, ये व्यापक और बहुत प्रकार के रूपों को धारण करने वाले हैं। शुक्र के ऐसा कहने पर देर तक विचार कर बलि हर्ष से प्रफुल्लित हो कहने लगे कि जब ऐसी बात है तो और अच्छा है भूमि दान देने के लिये आप इनसे बढ़ कर और किस दान-पात्र की इच्छा करते हैं। ऐसा कहते हुए विस्मित हो सुवर्ण निर्मित कमण्डल को हाथ में ग्रहण कर बलि कहने लगे हे विप्रेन्द्र! आप पूर्व मुख खड़े हो जायँ हे कमलेक्षण! मैं दान देने को उद्यत हूँ, कहिये कितनी भूमि दूँ हे विप्र! तीन पग भूमि की क्या गणना है दान का जल मेरे हाथ पर गिराइयें गुरु के कहने से मेरी बात मिथ्या नहीं होगी। शुक्र जी बोले हे दैत्य! ये दान देने योग्य नहीं हैं, ये कहाँ से आये हैं मैंने निश्चित रूप से जान लिया। बलि ने कहा! यह कौन हैं? शुक्र ने कहा अहो यह विष्णु हैं तुम प्रीति से ठग लिये गये हो बलि ने कहा हम नहीं ठगे गये। यदि सबका नाथ वह विष्णु यही हैं और स्वयं मेरे यज्ञ में उपस्थित हैं तो यह विष्णु जो-जो इच्छा करेंगे मैं इन देव-देव के लिये सब दूँगा। क्योंकि इन विष्णु से बढ़ कर दूसरा कौन दान-पत्र होगा? ऐसा कह कर बलि ने शीघ्र ही दान का जल गिरा दिया।।११-२०।।

व्यास जी बोले हे निष्पाप! दैत्येन्द्र! तीन ही पग मुझे पर्याप्त है जो कि मैंने पहले ही कह दिया उससे विपरीत मैं नहीं चाहता। वैशम्पायनजी बोले कि महापराक्रमी वामन के वचन को सुन कर विरोचन पुत्र दैत्येश अरिसूदन बलि

कृष्ण मृग चर्म ओढ़ कर और 'ऐसा ही हो' कह कर जल भरे कमण्डल को उठाया। तब वामन भगवान् ने असुरेन्द्र बलि का सर्वस्व अपहरण करने की इच्छा से दैत्यों के विनाशक हाथ को शीघ्र ही दान लेने के लिये पसार दिया। पश्चिम मुख किये दैत्येश ने प्रसन्न मन से दान की कामना से जल को ज्योंही वामन के हाथ में देना चाहा कि प्रह्लाद ने उसे मना कर दिया। आसुरी सम्पदा को हरण करने की इच्छा वाले उन महात्मा हरि के अभूतपूर्व अचिन्त्य रूप को देख कर आकार को समझने वाले प्रह्लाद बलि के आगे आकर खड़ा हो गये और प्रह्लाद बोले कि हे बलि! तुम वामन रूपधारी वटु के हाथ में दान का जल मत प्रदान करो वही यह हैं जिन्होंने पहले तुम्हारे प्रपितामह को मार डाला है यह महाबुद्धिमान् विष्णु तुम्हारी वञ्चना करने के लिये आये हैं। राजा बलि बोले हे असुर श्रेष्ठ! तब तो यज्ञ में दीक्षित मेरे द्वारा इन्हें दान देना ही चाहिये क्योंकि सभी पर अनुग्रह करने वाले जगत् के ऐसे स्वामी विष्णु को कि जो ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ पात्र हैं हम लोग कहाँ पावेंगे इन विष्णु देव के लिये तो अवश्य दान दूँगा।।२१-३०।।

विरोचन-पुत्र असुरगणों के मध्य ऐसा कह कर उन विष्णु देव के लिये तीन पग भूमि दान दे देना चाहा। प्रह्लाद फिर बोले हे दानवेश्वर! इस विप्र के लिये तुम दान न दो; मैं इन्हें विप्र का बालक नहीं मानता हूँ, ब्राह्मण ऐसा नहीं होता है। हे दैत्येन्द्र! मैंने इनके रूप से जान लिया कि यह नृसिंह हैं और वामन के रूप में पुनः आये हैं। अमित तेजस्वी प्रह्लाद के ऐसा कहने पर मानों प्रह्लाद की निन्दा करते हुए बलि बोले हे असुर! हमको दान दो ऐसा कह कर जो याचना करता है और जो दान देने की क्षमता वाला नहीं करता है इन दोनों ही मनुष्यों के अन्दर अलक्ष्मी का अंश प्रविष्ट हो जाता है। जो प्रतिज्ञा करके विप्र को दान नहीं देता है वह पापी नरक को जाता है अतः मैं अलक्ष्मी से भयभीत होकर भी इन्हें पृथ्वी दान करूँगा, अब इनसे बढ़ कर कौन ब्राह्मण दान लेने वाला मिलेगा। हे दानव! जिससे बढ़ कर कोई नहीं है ऐसे भगवान् विष्णु को मैं अवश्य वसुन्धरा दान करूँगा क्योंकि वामन रूप से याचना करते हुए इन ब्राह्मण श्रेष्ठ को देखकर मेरे हृदय में बड़ा भारी सन्तोष हो रहा है

इसलिये मैं इन्हें पृथ्वी दूँगा, मना करने पर मैं न मानूँगा। विप्ररूपधारी उत्तमोत्तम वामन भगवान् से बलि पुनः कहने लगे कि हे थोड़ा माँगने की बुद्धि वाले! इस बहुत थोडे. तीन पग पृथ्वी से तुम्हारा कौन सा कार्यसाधन होगा?।।३१-४०।।

हे विप्र! तुम हृदय खोलकर माँगो मैं तुम्हें सागरों से घिरी सम्पूर्ण पृथ्वी दान दूँगा। वामन जी बोले मैं सम्पूर्ण पृथ्वी नहीं चाहता, मैं तीन पग पृथ्वी से ही सन्तुष्ट हूँ, हे दानवश्रेष्ठ! यही मेरे लिये रुचिकर वर है। वैशम्पायन जी बोले कि दानव बलि ने 'यही हो' ऐसा कहकर अमित तेजस्वी विष्णु को तीन पग पृथ्वी देने के लिये जल उठा लिया। तब दान का जल हाथ में आते ही वामन बृहदाकार होकर उन विभु ने सर्वदेवमय अपना विशाल रूप प्रकट कर दिया। भूलोक पैर, नाक, शिर, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र, पैर की अँगुलियाँ पिशाच, हाथ की अँगुलियाँ गुह्यक, विश्वेदेव जानु, सुरोत्तम साध्यगण जंघायें और नखों में यक्ष तथा अप्सराओं का वास था। उनके सुन्दर और बड़े केश तड़ितवृष्टि और सूर्य की किरण थे, रोम-कूप तारागण तथा महर्षिगण रोम थे। दिशाओं के कोण उनकी बाहुएँ तथा दिशायें कर्ण छिद्र और दोनों अश्विनीकुमार दोनों कान एवं महाबली वायु नासिका के रूप में था। उनकी प्रसन्नता चन्द्रमा, धर्म उनका मन, सत्य उनकी वाणी और जिह्वा सरस्वती देवी थीं। उनकी ग्रीवा महादेवी अदिति और तालु दीप्तिमान् सूर्य थे, उनकी नाभि स्वर्ग का द्वार एवं भौहें मित्र और त्वष्टा थे। उनके अग्नि मुख तथा वृष्ण प्रजापति थे, हृदय भगवान् ब्रह्मा और उनका पुरुषत्व चारों ओर खड़े हुए मुनिगण थे।।४१-५०।।

उनकी पीठ में वसुगण तथा पैर की सन्धियों में मरुद्गण उपस्थित थे, सम्पूर्ण छन्द उनके दाँत और ग्रह-गण उनकी विमल प्रभा थे। उनके दोनों उरु रुद्र तथा महादेव थे, उनका धैर्य प्रलयकालीन महासागर था, उनके उदर में गन्धर्व तथा महाबली सर्प थे। लक्ष्मी, मेधा, धृति, कान्ति और सभी प्रकार की विद्यायें उनकी कमर थीं, उनका ललाट परमात्मा का परम श्रेष्ठ स्थान था।

उन महात्मा के तप को देवराज इन्द्र और उनके तेज को सम्पूर्ण नक्षत्र, तारा तथा ग्रह-गण कहा गया है। उनके स्तन तथा काखों में वेद और ओष्ठों में एक तरफ यज्ञ स्थित रहता है और दूसरी तरफ पशुबन्ध यज्ञ तथा ब्राह्मणों की चेष्टायें निवास करती हैं। उन विष्णु के उस दैवमय रूप को देखकर महान्-महान् असुर वैसे ही उनके ऊपर टूट पड़े कि जैसे फतिङ्गे अग्नि के ऊपर टूट पड़ते हैं।।५१-५६।।



अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः।।७२।।

वैशम्पायन जी बोले कि हे राजन्! उन सभी महात्मा दानवों के नाम, रूप, देश तथा प्रमुख-प्रमुख आयुधों का नाम (मूल ग्रन्थ में है) सुनो। तब सभी दैत्यों को उन प्रभु ने लातों और हाथों से पस्त कर और अपना विशाल शरीर धारण कर शीघ्र पृथ्वी को असुरों से हरण कर लिया; तीनों लोकों को नापते हुए उनका तेज सूर्य के तेज के समान ज्ञात हो रहा था। भूमि को नापते समय चन्द्रमा और सूर्य उनके स्तनों के बीच में आ गये और आकाश नापते समय चन्द्रमा-सूर्य उनके जाँघों के सामने आ गये। अमित पराक्रम वाले विष्णु के इस अलौकिक कार्य का वर्णन ब्राह्मण लोग करते हैं, लोक नमस्कृत हरि ने असुरश्रेष्ठों को मार कर तीनों लोकों को जीत लिया और स्वर्ग सहित पृथ्वी इन्द्र के लिये दे दिया; सुतल नाम का पाताल लोक इस पृथ्वी के नीचे है।।१-३०।।

उसी सुतल लोक का राज्य प्रभावशाली विष्णु ने बलि को दिया तब उस राज्य को पाकर बलि ने अपनी बुद्धि को उत्तम कर लिया। वह असुराधिप रसातल में वास करने लगा और वह महातेजस्वी वहाँ स्थित होकर भगवान् का परम ध्यान करने लगा। उस समय उस बुद्धिमान् ने लोक नमस्कृत विष्णु से कहा कि हे देव! अब मेरे द्वारा सभी उचित कर्त्तव्यों को बतलाइयें तब सुरोत्तम विष्णु ने दैत्याधिप से कहा। विष्णु बोले हे असुर! तुम्हारा कल्याण हो, तुम वर माँगो, हे महाभाग! मैं प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हें अभिप्सित वर दूँगा जिससे

कि तुम अपनी इच्छानुसार कामना को प्राप्त होओगे। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम शुक्र के वचन का त्याग न करना इससे तुम कल्याण को प्राप्त करोगे। देवाधिप इन्द्र के अनुज वरेण्य प्रभु ईश्वर विष्णु ने दैत्याधिप बलि से परम मधुर वाणी द्वारा कहा कि तुम्हारे द्वारा दिया गया दान का जल जो मैंने अपने हाथ में ग्रहण किया है इससे अब तुम्हें देवता तथा दैत्यों से कभी भी भय न होगा। हे महासुर! मेरे प्रसाद से दैत्यगणों के समान अपने अनुचरों सहित तुम सुतल नामक पाताल लोक में वास करो। मेरे कहने का स्मरण करते हुए तुम देव-देव अमित तेजस्वी इन्द्र के शासन का कभी उल्लंघन न करना।।३१-४०।।

हे महासुर! तुम सभी देवताओं की पूजा करना और सम्यक् प्रकार से दक्षिणा सहित विविध प्रकार के यज्ञों को करना, ऐसा करने से हे महाभाग! यथेप्सित दिव्य कामों तथा भोगों को प्राप्त करोगे। इस लोक तथा परलोक में अतुल विविध प्रकार के परिच्छदों को पाओगे। मेरे प्रसाद से तुमको सदा दैत्य आधिपत्य रहेगा, जब तुम मेरी कही मर्यादा का उल्लंघन करोगे तो तुमको महाबली नाग अपने पाशों से वध कर डालेंगे। हे असुर! महेन्द्रादि देवता तुम्हारे द्वारा नमस्कार करने योग्य हैं उनमें इन्द्र ज्येष्ठ भाई होने से तथा देवताओं में श्रेष्ठ होने से और भी पूजनीय हैं, तुम इस प्रकार मेरे शासन को ग्रहण करो। बलि बोले हे देव-देव! वहाँ पाताल में निवास करते हुए मेरे भाग को बतलाइये। हे अरिन्दम! मुझे भोजन करने के लिये मेरे आहार रूप अन्न को कहिये जिससे कि मेरी पूर्ण तृप्ति हो जाय। श्रीभगवान् बोले- हे दैत्य! अवैदिक रीति से किया हुआ श्राद्धान्न, व्रताचरण रहित अध्ययन-फल, दक्षिणारहित यज्ञ-फल, ऋत्विग् से रहित हवन, अश्रद्धा से दिया हुआ दान फल तथा अशुद्ध हवि रूप इन भागों को तुम्हारे लिये दे दिया। मैंने ऐसा पुण्य किया है, इस प्रकार सत्य के द्वारा पोषित किया गया पुण्य, हमारे भाग से द्वेष करने वालों का पुण्य तथा क्रय-विक्रय में आसक्त अग्निहोत्रियों का जो पुण्य है वह सब तुमको मिलेगा। हे दैत्येन्द्र! अश्रद्धा से देने वालों का अथवा यज्ञ करने वालों का जो दानादि का पुण्य है वह सब मेरे प्रसाद से तुम्हारा होगा। वैशम्पायन जी बोले कि महात्मा विष्णु के वचन को सुनकर असुरोत्तम

बलि 'ऐसा ही हो' अर्थात् मुझे सब स्वीकार है कहकर विष्णु की आज्ञा पालन करते हुए महानाद के साथ पाताल में प्रवेश कर गये; तब भगवान् ने त्रैलोक्य के भागों का विभाजन कर दिया।।४१-५०।।

ऐन्द्री नामक पूर्व दिशा को अमित तेजस्वी इन्द्र को, दक्षिण दिशा पितरों के महात्मा यमदेव को, पश्चिम दिशा महात्मा वरुण को तथा उत्तर दिशा यक्षाधिपति को दे दिया। नीचे की दिशा नागराज को और ऊपर की दिशा चन्द्रमा को दिया। बलवानों में श्रेष्ठ विष्णु ने इस प्रकार तीनों लोकों का विभाजन कर दिया। सम्पूर्ण प्राणियों के स्वामी वामन भगवान् इन्द्र को स्वर्ग में प्रतिष्ठित कर महर्षियों से पूज्यमान् हो बैकुण्ठ धाम को चले गये। उन अमित तेजस्वी दुर्धर्ष वामन के चले जाने पर इन्द्र को प्रमुख बना कर सभी देवता प्रसन्न हो गये। वैशम्पायन जी बोले कि श्रीकृष्ण के बैकुण्ठ चले जाने पर कम्बल तथा अश्वतर आदि सात शिरों वाले नाग विरोचन पुत्र बलि को नाग-पाश से बाँध कर पीड़ित करने लगे। नाग बन्धन से दुःखी दीनावस्था में पड़े वैरोचन बलि के समीप अपनी इच्छा से घूमते हुए देवर्षि नारद जी पहुँच गये। वे उसे दुःखावस्था में पड़े देख कर दयार्द्र हो दानव श्रेष्ठ बलि से कहने लगे कि मैं तुम्हारे मोक्ष का एक उपाय बता रहा हूँ। हे दैत्येन्द्र! तुम विशुद्ध अन्तरात्मा से देवाधिदेव अविनाशी वासुदेव के स्तोत्र का पाठ करो ऐसा करने से तन्मनस्क होकर शीघ्र ही बन्धन से छूट पाओगे।।५१-६०।।

फिर तो विरोचन पुत्र बलि मन को एकाग्र कर हाथ जोड़ पवित्र तथा सावधान हो नारद जी से मोक्ष-विंशक स्तोत्र का अध्ययन कर लिया। महासुर बलि नारद जी द्वारा बताये गये स्तोत्र का अध्ययन कर जिन विष्णु ने पृथ्वी का उद्धार किया था उनको जपने लगा। (मोक्ष, विंशक स्तोत्र मूल ग्रन्थ में देखें) अनन्तपति, अक्षय, महात्मा, जलेशय, देव, पद्मनाभ विष्णु के लिये नमस्कार है। हे भगवन्! सात सूर्य के समान तेजस्वी शरीर धारण कर तीनों लोकों को आपने नाप लिया है आप काल के भी काल हैं आप अपने कहे उस सत्य वचन से मुझे बन्धन से मुक्त कीजिये आदि। फिर तो गरुड़ आदि ने हरि को प्रसन्न किया और कहा कि हे हरे! आप बलि को बन्धन से मुक्त कीजिये।

इसके बाद भगवान् विष्णु ने नाग-हन्ता पक्षिराज गरुड़ को आदेश दिया कि बलि को बन्धन से मुक्त कर दो। अतुल विक्रम वाले गरुड़ अपने पंखों को झल कर पृथ्वी के नीचे वहाँ पहुँच गये कि जहाँ बलि बन्धन में पड़ा था। तब गरुड़ के आगमन को जान कर उनके भय से व्याकुल हो नाग बलि को छोड़ कर भागवतीपुरी को चले गये। विष्णु के प्रसाद से मुक्त नीचे मुख कर चिन्ता करते हुए बलि से सर्पों को खाने वाले गरूड बोले। गरुड़ ने कहा हे महाबाहो! दानवेन्द्र! विष्णु ने तुमको कहा है कि तुम बन्धन से मुक्त होकर पुत्र, जन एवं बान्धवों के साथ पाताल में निवास करो।।६१-९०।।

हे दानव! यहाँ से तुमको सीमा के बाद नहीं जाना चाहिये यदि इस बात का उल्लंघन करोगे तो तुम्हारे शिर के सैकड़ों टुकड़े हो जायेंगे। पक्षीन्द्र गरुड़ के वचन को सुन कर दानवेन्द्र बलि ने कहा कि मैं महात्मा विष्णु के कथनानुसार स्थित रहूँगा परन्तु वे भगवान् मेरे जीवन का भी उपाय कुछ कर देवें जिससे कि हे खगेश्वर! मैं यहाँ सुख से रह कर तृप्त होऊँ। बलि की बात सुन कर गरुड़ ने कहा महात्मा विष्णु ने तो तुम्हारे जीविका का उपाय पहले ही कर दिया है। जो यज्ञ पूजा विधि से विहीन होंगे, जो बिना ऋत्विक् के होंगे तथा जो यज्ञ प्रायश्चित के बिना होंगे उन सभी यज्ञों का भाग तुम्हारा होगा। उन यज्ञ भागों को देवता नहीं ग्रहण करेंगे, उससे तुम्हीं तृप्त होकर सुख से निवास करोगे। वैशम्पायन जी बोले हे महाबाहो! तीनों लोकों के कल्याण की भावना से कश्यप-पुत्र भगवान् विष्णु ने दानवेन्द्र बलि के लिये इस सन्देश को भेजा था। अनन्त का यह स्तोत्र सम्पूर्ण पापों को छुड़ा देने वाला है जो मनुष्य इसका भक्ति-पूर्वक पाठ करेंगे उनके पाप नष्ट हो जायेंगे। इसके पाठ से गो-हत्या करने वाला गो-हत्या से तथा ब्राह्मण की हत्या करने वाला ब्रह्म-हत्या से छूट जायेगा। पुत्र रहित पुरुष-पुत्र प्राप्त करेंगे और कन्यायें मनचाहा पति प्राप्त करेंगी। गर्भिणी गर्भ की पीड़ा से मुक्त हो सुख से पुत्र उत्पन्न करती है तथा मोक्ष की इच्छा वाले योगी एवं सांख्य के अनुसार चलने वाले कपिलानुयायी इस स्तोत्र के पाठ से पाप रहित हो श्वेत द्वीप को जाते हैं; अनन्त विष्णु का यह स्तोत्र सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाला कहा जाता है।।९१-१००।।

जो प्रातःकाल उठ कर पवित्र हो एकाग्र मन से इस स्तोत्र का पठ करता है वह मनुष्य सभी कामनाओं को पा जाता है इसमें संशय नहीं है। इसीलिये वेदवेत्ता ब्राह्मण महात्मा विष्णु के वामन-अवतार के वैष्णव यश को पढ़ते हैं। जो राजा प्रत्येक पर्वों में महात्मा विष्णु के इस वामनावतार को भक्ति से सुनता है वह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है तथा विपुल धन को एवं विमल यश को पाता है। इसको सुनने वाला सभी प्राणियों का वामन भगवान् के समान प्रिय बन जाता है और उसके पुत्र-पौत्र बढ़ते हैं तथा वह रोग रहित हो गुण की सम्पदाओं को पाता है। इसको पढ़ने वाले के ऊपर देव-देव जनार्दन प्रसन्न होते हैं और वह सम्पूर्ण कामनाओं को भी प्राप्त करता है ऐसा कृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने कहा है।।१०१-१०७।।



अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।।७३।।

जनमेजय जी बोले– देव-देव जनार्दन भगवान् विष्णु किस कार्य के लिये शंकर जी के आश्रम कैलास के शिखर पर गये थे और वहाँ नारद आदि तपोवृद्ध तत्त्वदर्शी मुनियों के साथ नील लोहित महा-देव शंकर जी का दर्शन किया था मैंने सुना है कि पहले केशव ने उत्तम तप करते हुए देव-देव शंकर जी का पूजन किया था। और वहाँ पर दोनों जगत् के नाथ पुरातन पुरुषों शंकर तथा हरि को इन्द्रादिक देवताओं ने देख कर आश्चर्य प्रकट किया था। इससे ज्ञात है कि दोनों महादेव एक ही हैं और वे जगत् की योनि एकात्मा दो भागों में विभक्त हो जगत् की सृष्टि तथा संहार करते हैं। वे परस्पर प्रेम भाव से जगत् के पालन में स्थित रहते हैं, उन दोनों महापुरुषों का वृत्तान्त कैलास पर्वत पर जैसा हुआ था सो और हे सत्तम! दोनों पुरुषोत्तमों को देख कर ऋषियों ने क्या सोचा था वह सब विस्तार से कहिये। वैशम्पायन जी बोले हे राजन्! जिस प्रकार श्रीकृष्ण जी कैलास पर्वत पर गये और जिस प्रकार वृषवाहन देवेश शंकर जी का दर्शन किया था जैसे तप किया एवं जैसे मुनि लोग वहाँ गये और जिस प्रकार उन दोनों देवेशों का सम्वाद हुआ हे नरोत्तम!

वह सब सावधान होकर सुनो।।१-१०।।

जैसा कि द्वैपायन भगवान् व्यास जी ने मुझसे कहा था उसके अनुसार मैं गरुड़वाहन केशव को नमस्कार कर कहता हूँ। हे सुव्रत! जैसी कि मुझ में शक्ति है जैसी बुद्धि है उसके अनुसार मैं कहता हूँ तुम ध्यान से सुनो, न सुनने की इच्छा वाले को, क्रूर को तथा अतपस्वी को और अपढ़ मनुष्यों को यह कथा नहीं सुनानी चाहिये, सदा पुण्यवान् पुरुषों को सुनानी चाहिये यह कथा स्वर्ग, यश, धन तथा बुद्धि को पवित्र करने वाली है। वेदार्थ के द्वारा निश्चित किया गया वह पुण्मय आख्यान पुण्यात्माओं के अध्ययन करने योग्य है, अनेक उपनिषदों से संयुक्त ऐसे आख्यान को पुण्य पुरुष कह-सुन कर सेवन करते हैं। कल्याणकारी दोनों देवों विष्णु तथा शंकर जी का जो वहाँ सम्वाद हुआ था उस महा अद्भुत पुण्यमय आख्यान का सेवन वेद में निरत तपोधन नारदादि मुनिगण करते हैं हे भूपाल! नरकासुर आदि असुर समूहों के मारे जाने पर तथा अधार्मिक राजाओं के मारे जाने पर कुछ शत्रु अवशेष रह गये थे उस समय विष्णु पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण रूप से पृथ्वी का शासन कर रहे थे। वे जगत् के नाथ ईश्वर वृष्णियों के साथ द्वारका में निवास कर रहे थे, वे हरि रुक्मिणी के साथ विवाह कर द्वारकापुरी में गृहस्थ जीवन बिता रहे थे। गृहस्थ जीवन में जैसा कि चाहिये उसके अनुसार प्रसन्न होकर एक बार वे रात्रि में प्रेमभरी उस रुक्मिणी के साथ शयन कर रहे थे। उस समय रुक्मिणी देवी ने कहा कि हे देवेश! मैं आपसे कुलनन्दन पुत्र की इच्छा करती हूँ जो कि बलवान्, रूपसम्पन्न तथा आप ही के समान तपोनिधि और पराक्रम वाला हो। यादवेश्वर रुक्मिणी से बोले हे भामिनि! मैं वैसा ही पुत्र दूँगा कि जैसा तुम चाहती हो। जो सज्जनों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले लोक हैं उन लोकों को पुत्र से ही जीता जाता है, 'पुन्' कहते हैं नरक को और नरक को पुण्यात्माओं ने दुःख समझा है। 'पुन्' नामक नरक से जो रक्षा करे उसे पुत्र कहते हैं। इसीलिये नरक से त्राण पाने के लिये मनुष्य पुत्र की इच्छा करता है, पुत्र इस लोक तथा परलोक दोनों ही में रक्षा करता है, हे प्रिये! पुत्रवान् पुरुषों को अनन्त शुभ लोकों की प्राप्ति होती है।।११-३०।।

पति ही पत्नी में अपने अंश द्वारा प्रवेश करता है और वह गर्भ के रूप में परिणित होकर उसे माता मानने लगता है, फिर वह गर्भ नव महीने में पूर्ण होकर दसवें महीने में उत्पन्न होता है। पुत्रवान् को देखकर इन्द्र भी भयभीत होते हैं अर्थात् पुत्रवान् पुरुष इन्द्र को भी जीत सकता है, पुत्रवान् के द्वारा कौन ऐसा है जो न जीता जा सके? पुत्ररहित पुरुष शुभ लोकों को नहीं पाता है परन्तु कुपुत्र होने से बाँझ रहना ही श्रेष्ठ है क्योंकि। कुपुत्र नरक में ले जाता है और सुपुत्र स्वर्ग में; इसलिये पुत्र की कामना से प्रयत्न करने वाला पण्डित पुरुष वेद पढ़ने वाले, विनीत, सन्मार्ग पर चलने वाले तथा दया में तत्पर पुत्र की इच्छा करे, विद्या से नम्रता उत्पन्न होती है इसलिये विद्यायुक्त, सुधार्मिक पुत्र की इच्छा करे। मैं तुम्हें विद्या वाले सुधार्मिक पुत्र को दूँगा, अब मैं पुत्र के लिये पर्वतों में उत्तम कैलास पर्वत पर जा रहा हूँ। मैं वहाँ नीललोहित महादेव शंकर जी की उपासना कर प्राणियों के हित में रत रहने वाले शंकर जी से पुत्र प्राप्त करूँगा इसके बाद तुम्हें दूँगा। मैं शंकर जी का दर्शन करने के लिये जा रहा हूँ, वे तपस्या से प्रसन्न होकर मुझे पुत्र प्रदान करेंगे। मैं बदरी वन की पुण्य भूमि में प्रवेश कर वहाँ महादेव जी का उपासना करूँगा। महान् प्रसिद्ध पुण्यात्माओं के भवन स्वरूप उस बदरी वन की देवी रूपा भूमि को मैं जाता हूँ, ऐसा कहकर देव-देव जनार्दन मौन हो गये।।३१-४५।।



अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः।।७४।।

वैशम्पायन जी बोले कि रात्रि बीत कर प्रभात होने पर जनार्दन कैलास जाने की तैयारी करने लगे, उन्होंने अग्नि में हवन तथा मंगलकारी कृत्यों को करके तथा ब्राह्मणों को श्रेष्ठ दक्षिणायें दे हवन कार्य को समाप्त किया और सभामण्डप में प्रवेश किये। वे वहाँ वीर उद्धव से तथा अन्य यादवों से बोले कि आप लोग मेरे वचनों को सुनें। इस समय भौमासुर का एक मित्र वीर राजा उत्पन्न हुआ है। वह मुझसे निरन्तर द्वेष कर रहा है, उसका नाम पौण्ड्रक है, इस समय बलवानों का नेता बन रहा है, वह द्रोणाचार्य का शिष्य है, बली

है, ब्रहास्त्र का ज्ञाता है तथा राजेन्द्र और पुण्यशाली है। वह शास्त्र नीतिमान् सभी दुष्टों का साक्षात् नेता मुझे नीचा दिखाने में प्रयत्नशील है, वह युद्ध से प्रेम रखने वाला परशुराम के समान दूसरा योद्धा है। वह सदा मेरा छिद्रान्वेषण कर रहा है, वह हम सबका शत्रु है, वह योद्धा यदि मौका पा जायेगा तो मेरे द्वारकापुरी को नष्ट कर डालेगा। हे श्रेष्ठ राजवंशियों! पुण्ड्रदेश का राजा बलवान् पुण्ड्रक थोड़े प्रयास से वश में आने योग्य नहीं है, इसलिये आप लोग धनुषों को धारण कर सावधान रहें। जिससे कि यादवों की द्वारकापुरी को वह राजा बाधा न पहुँचावे। हे यादवों! मैं किसी कारण से कैलास पर्वत को जाऊँगा। मैं भूतभावन शंकर जी का दर्शन करना चाहता हूँ, जबतक कि मेरा आगमन न हो तबतक आप लोग सावधान रहें।।१-२०।।

यदि वह इस बात को जान लेगा कि द्वारकापुरी मुझ श्रीकृष्ण से रहित है तो वह राजेन्द्र इस पुरी में आ जायेगा और युद्ध करने लगेगा। वह इस पुरी को यादवों से रहित कर सकता है ऐसा मेरा विश्वास है; इसलिये आप लोग अपने-अपने शस्त्रों को ग्रहण कर सजग रहें, पुरी के बड़े-बड़े फाटकों को बन्द कर यत्नपूर्वक पुरी की रक्षा करेंगे। बराबर आने-जाने के लिये एक ही महाद्वारा खोले रहेंगे, जो बाहर जाना चाहें वे राजा की मुद्रा रहित कोई न जा-आ सके, जबतक कि मेरा आगमन न हो जाय तबतक इसी प्रकार की व्यवस्था रहे। पुर के बाहर कोई क्रीड़ा न करे, न शिकार खेलने कोई जाय और अपने और पराये मनुष्यों को सदा आने-जाने में पहचान किया करेंगे। इसी प्रकार नियमतः पुर-रक्षण करते हुए आप लोगों को मेरे आगमन पर्यन्त रहना चाहिये। सभी यादवों से इस प्रकार कहकर पुनः सात्यकि से बोले।।२१-२७।।



अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः।।७५।।

श्रीभगवान् बोले- हे युद्ध करने वालों में श्रेष्ठ सात्यकि! मेरे वचन को सुनिये, आप खड्ग, गदा तथा धनुष-बाण ले कवच पहन कर सजग हो जायँ

और यत्न से बहुत राजाओं की आश्रयभूता द्वारकापुरी की रक्षा करें। हे यदु वृषभ! आप रात्रि में जागते रहियेगा शयन न कीजियेगा। हे शास्त्र तत्पर! हे वृष्णि रक्षक! आप शास्त्र के विद्वानों की टीका-टिप्पणी न कीजियेगा और न वादियों से विवाद कीजियेगा। आप योद्धा हैं, बली हैं, ज्ञानी हैं और धनुर्वेद नामक वेद के भी ज्ञात हैं हे वीर! आपको वैसा ही कार्य करना चाहिये कि जिससे यह द्वारकापुरी हास्य के योग्य न हो। सात्यकि बोले– हे जनार्दन! अपनी शक्ति के अनुसार मैं आपके वचनों का पालन करूँगा। हे माधव! जब तक कि आपका आगमन नहीं होगा तब तक मैं सावधानी से रहूँगा और बलराम के भृत्य की भाँति उनके कथनानुसार पुरी की रक्षा करता रहूँगा। हे गोविन्द! यदि मेरे ऊपर आपकी प्रसन्नता है तो रण में शत्रुओं को जीत लेना कोई दुःसाध्य बात नहीं है। यदि आपकी कृपा बनी रही तो मैं इन्द्र, यम, कुबेर और वरुण इन सभी को जीत लूँगा। नृपोत्तम पौण्ड्रक की क्या बात है। हे हरे! आप जाइये और अपना कार्य कीजिये मैं पुरी की रक्षा में निरन्तर सावधान हूँ इसके बाद श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा कि हे उद्धव! आप भी मेरे वचन को सुनें और करें आप प्रयत्नशील होकर नीति से द्वारकापुरी की रक्षा करियेगा।।१-१०।।

हे तात! आप बराबर सावधान होकर यहाँ ''हम लोगों की सहायता करते रहें'' इस बात को कहते हुए मुझे इस समय लज्जा उत्पन्न हो रही है। क्योंकि आप सभी विद्यापारंगतों के नेता हैं आप जैसे विद्वान् के सामने कौन बुद्धिमान् बोल सकता है। जो कार्य करना चाहिये अथवा जो नहीं करना चाहिये उन सभी बातों को आप जान रहे हैं इसलिये हे वृष्णियों के पालक! कुछ कहने से मैं विश्राम ले रहा हूँ। उद्धव बोले हे प्रभो! आप यह हमारे प्रति कैसा बर्ताव कर रहे हैं, ये आपकी बातें कैसी हो रही हैं। अहो! यह तो मेरे लिये प्रसन्नता की बात है कि आपकी प्रीति मेरे ऊपर ऐसी है। हे जगन्नाथ! मैं आपके प्रसाद के प्रताप को जानता हूँ, जिसके ऊपर आप प्रसन्न हो जाते हैं उसके लिये जगत् में क्या पदार्थ नहीं लभ्य है। प्रधान रूप से सम्पूर्ण जगत् के आप ही सृष्टि, पालन तथा संहारकर्त्ता हैं। आप ध्याता, ध्यान करने योग्य

हैं ऐसा ब्रह्मवादी लोग कहते हैं तथा देव शत्रुओं के जेता और स्वर्ग तथा स्वर्ग निवासियों के आप ही रक्षक हैं। वैशम्पायन जी बोले कि इस प्रकार की बातें कह कर नीतिमानों में श्रेष्ठ उद्धव जी चुप हो गये इसके बाद हे नृपोत्तम! वे भगवान् विष्णु इसी प्रकार यादवों की सभा में महाबाहु बलराम से भी कहे तथा राजा उग्रसेन और हार्दिक्य से भी कहे।।११-२०।।

तत्त्ववेत्ता श्रीकृष्ण पुनः बलराम से कहे कि आपको असावधानी नहीं करनी चाहिये आप बराबर सजग रहिये। हे महाबाहो! आपके सजग रहने पर जगत् को क्या पीड़ा हो सकती है। हे आर्य! आप बराबर गदा लिये रहें और क्रीड़ा का त्याग कर दें। हे समर्थ! आप बराबर द्वारकापुरी की यत्न से रक्षा करते रहें, ऐसा करें कि जिससे हमलोग उपहास को न प्राप्त हों, अतः आप गदा को ग्रहण करें। आप यत्न से सदा उत्साह कीजिये निरुत्साह मत होइये; श्रीकृष्ण से बलराम ने 'ऐसा ही करूँगा' कह दिया। तत्पश्चात् सभी वृष्णिवंशी अपने-अपने भवन को चले गये और जगन्नाथ कैलास पर्वत पर जाने की इच्छा करने लगे।।२१-३०।।



अथ षट् सप्ततितमोऽध्यायः।।७६।।

वैशम्पायन जी बोले कि- श्रीकृष्ण गरुड़ की चिन्तना करने लगे कि हे गरुड़! शीघ्र आ जाओ। तब वे महापराक्रमी गरुड़ केशव के आगे उपस्थित हो गये उस समय वे जानुओं के बल ऐसा कहते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े कि हे जगत्पते! आपके लिये नमस्कार है। हे देवदेवेश! तब श्रीकृष्ण गरुड़ की पीठ पर अपने हाथों से स्पर्श कर बोले तुम्हारा स्वागत है। मैं इस समय त्रिशूलधारी शंकर जी का दर्शन करना चाहता हूँ, इसलिये कैलास पर्वत को जाऊँगा। गरुड़ ने कहा अच्छा चलिये तब जनार्दन गरुड़ पर चढ़ कर समीप में उपस्थित यादवों से बोले कि आप लोग सतर्कता से रहिये। इसके बाद जगन्नाथ हरि पूर्वोत्तर दिशा की ओर चले, गरुड़ अपने पंखों के शब्द से तीनों लोकों को काँपने लगे।।१-१०।।

वे जनार्दन देव को ले जाते हुए अपने पैरों से सागर को और पंखों से पर्वतों को क्षुभित करने लगे। उस समय गन्धर्वों के साथ देवता आकाश में स्थित होते हुए अपनी इष्ट वाणियों से पुण्डरीकाक्ष की स्तुति करने लगे। स्तुति-वाक्यों को सुनते हुए जगन्नाथ श्रीकृष्ण देवगणों तथा वेदपारगामी मुनियों के वहाँ चले गये कि जहाँ पर पहले स्वयं विष्णु ने सुदारुण तप किया था। लोकों की हित कामना से लोकों की वृद्धि करने वाले प्रभावशाली विष्णु ने जहाँ पर दस हजार वर्ष तक तप किया था।।११-२०।।

जहाँ पर जगन्नाथ विष्णु ने सुदारुण तप कर नर-नारायण रूप में अपनी आत्मा को विभक्त कर दिया था। जिसके मध्य भाग में सरित-श्रेष्ठ गंगा वेग से बहती रहती हैं और जहाँ पर वेदार्थ के तत्त्व को जानने वाले वृत्रासुर को मार कर ब्रह्महत्या का विनाश करने के लिये इन्द्र ने दस हजार वर्ष तक जप किया था, जहाँ पर देव जनार्दन का ध्यान कर सिद्ध भी सम्यक् सिद्ध हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्र जी ने लोकों को रुलाने वाले रावण को रण में मार कर शास्त्र के इस आज्ञा का पालन करने की इच्छा करते हुए कि निर्गुण ब्राह्मण को भी मार कर ब्रह्महत्या का प्रायश्चित करने के लिए, घोर तप किया था। जहाँ पर पवित्रव्रती देवता और मुनिगण भी तपस्या कर सिद्धि को प्राप्त होते हैं, जहाँ जगत् के नाथ साक्षात् केशव निवास करते हैं। जहाँ पर मुनिगणों के साथ यज्ञ होते रहते हैं, जिस बदरिकाश्रम की तपोभूमि के स्मरण मात्र से मनुष्य स्वर्ग को चले जाते हैं। श्रेष्ठ मुनि जिस पुण्यमय स्वर्ग की सीढ़ी की इच्छा करते हैं, हे नरोत्तम! जहाँ जाकर शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। जो पुण्यशीलों तथा धर्मात्माओं का स्थान कहा जाता है, जहाँ विष्णु की आराधना कर देवता स्वर्ग प्राप्त कर लिये थे। इस क्षेत्र को मत्सर रहित ऋषियों ने सिद्ध क्षेत्र कहा है, उसी विशाल बदरी वन की तपोभूमि को देखने के लिये सकलेश्वर विष्णु गये। ईश्वर पुण्डरीकाक्ष हरि आश्रम के मध्य में जाकर गरुड़ से उतर कर दीपकों से प्रकाशित प्रदेश में देवताओं के साथ खड़े हो गये।।२१-३६।।



अथ सप्त सप्ततितमोऽध्यायः ।।७७।।

वैशम्पायन जी बोले- इसके बाद देव-देव श्रीकृष्ण को उपस्थित हुआ देखकर मुनिगण अग्निहोत्रों को समाप्त कर तथा श्रेष्ठ अतिथियों का पूजन कर [illegible] स्वागत के लिये चल पड़े। देव श्रीकृष्ण के देखते-देखते सभी तपस्वी हाथ जोड़ कर कहने लगे कि हे प्रभो! हम लोग क्या करें, हम लोगों का क्या कर्त्तव्य है; यदि हम लोगों में कोई दोष आ गया हो तो उसे आप कहें। देवताओं के साथ श्रीकृष्ण ने भी उन तपस्वियों की यथायोग्य स्वागत सामग्रियों को स्वीकार कर कहा कि हे मुनिवरों! आप लोगों ने सब कुछ कर लिया है, आप लोगों का उत्तम तप बढ़ता रहे! इस प्रकार कहते हुए पुराणात्मा देव जनार्दन उन गरुड़ के साथ प्रसन्न हो रात्रिकाल में आसन पर आसीन हो गये। इसके बाद भावितात्मा ने मुनियों का कुशल पूछा फिर अग्निहोत्र के विषय में, तपस्या के विषय में तथा सेवकों के विषय में सभी ओर कुशल समाचार पूछा। इस प्रकार उनके रहन-सहन आदि के बारे में जगन्नाथ ईश्वर ने पूछा तब श्रीकृष्ण के आगे वे तपस्वी बोले कि- सर्वत्र सब प्रकार का कुशल है। तत्पश्चात् सभी देवताओं तथा विष्णु श्रीकृष्ण का यत्नपूर्वक तपस्वियों ने नीवार, फल तथा मूलों से आतिथ्य सत्कार किया; उनके आतिथ्य सत्कार को स्वीकार कर हरि प्रसन्न हो गये।।१-२०।।



अथाष्ट सप्ततितमोऽध्यायः ।।७८।।

वैशम्पायन जी बोले- इसके बाद दुर्विज्ञेय गति वाले प्रभु भगवान् विष्णु यादवेश्वर ने जहाँ पर अपनी आत्मा से पहले तप किया था। गंगा जी के उत्तरी तट पर उस स्थान को देखने के लिये गये, साक्षात् हरि स्वयं ही तपोवन में प्रवेश किये। श्रीकृष्ण उस मनोरम आश्रम में बैठ गये। कमलनेत्र जगन्नाथ अपने मन को समाधि में लगा दिये, वे देवेश्वर का ध्यान कर स्थित हो गये। निवात दीपक की भाँति देव-गुरु हरि के समाधि में एकचित्त हो

जाने पर वहाँ चारों ओर से महाभयंकर शब्द होने लगा। हे राजन्! चिग्घाड़ते हुए हाथियों का शब्द तथा महावात से क्षुभित हुए समुद्र की भाँति जगह-जगह से तीनों लोकों को विशेष त्रास देने वाले शब्द उस रात्रि में होने लगा, उस प्रकार के शब्द को सुनकर भी विष्णुदेव विचलित न होकर वहाँ बैठे ही रहे।।१-१०।।

सोचने लगे कि इस प्रकार की मेरी स्तुति से युक्त किसका शब्द हो रहा है, इसके पश्चात् हे राजन्! बहुत से मृग दौड़ते हुए वहाँ चले आये कि जहाँ केशव बैठे थे और उनका पीछा करने वाले शिकारी भी वहाँ आये। वे मृग श्रीकृष्ण को घेर कर खड़े हो गये, मैं ऐसा सुनता हूँ कि विकृत आकार वाली काली तथा भय से रोंगटे खड़ी कर देने वाली पुत्रवती पिशाचिनियाँ भी जहाँ केशव थे वहाँ आ गईं और हे राजेन्द्र! वहाँ इधर-उधर कुत्तों का भी समूह विचरण करने लगा। तब भगवान् विष्णु इन सबों से अपने को घिरा देख कर परम विस्मय को प्राप्त होकर बैठे-बैठे यह सब देखते रहे। यह किसका शब्द है, किसके आदमी ये आये हैं और कौन मेरी स्तुति कर रहा है जिससे मैं प्रसन्न होऊँगा। मेरे प्रसन्न होने पर किसकी सुदुर्लभ मुक्ति होगी, इस प्रकार सोच कर भगवान् हरि बैठे रहे।।२१-२६।।



अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः।।७९।।

वैशम्पायन जी बोले कि इसके पश्चात् महाभयंकर लम्बे आकृति के दो पिशाच ऐसे प्रकट हुए कि जिनके मुख टेढ़े-मेढ़े, रोवें पीले रंग के, जिह्वायें लम्बी, हनु भाग विशाल, बाल लम्बे-लम्बे, आँखें डरावनी थीं, वे 'हा, हा, हा' ऐसा शब्द करते हुए मांस के लोथड़ों का भक्षण कर बहुत सा रुधिर पी रहे थे। वे अपने सभी अङ्गों में अँतड़ियाँ लपेटे ते, उनके उदर लम्बे और पीठ में सटे थे, वे लम्बे और बड़े नुकीले त्रिशूल को लिये मुण्डों की माला पहने हुए थे। हे नृप! वे जगह-जगह पर बाहुओं से मुर्दों के समूह को खींचते हुए

अपनी पिशाच जाति के समान हँसी से हँस रहे थे। वे बहुत प्रकार की पैशाची बोलियाँ बोलते हुए अपनी छाती और पैरों से धक्का देकर वृक्षों को कँपा रहे थे। वे जीभ से अपने ओष्ठों को चाट रहे थे और दाँतों को कटकटा रहे थे, वे बार-बार कब विष्णु दिखाई पड़ेंगे, इस समय वे कहाँ बैठे हैं, ऐसा कह रहे थे। इस दुःख के मूल संसार की औषधि सर्वथा शंख, चक्र तथा गदा को धारण करने वाले हरि ही हैं। ब्रह्मवेत्ताओं की आत्मा पुराण पुरुष आदिदेव सबकी गति हैं, अतः उन हरि का हम लोग कब दर्शन करेंगे, इस प्रकार परस्पर भाषण करते हुए वे दोनों पिशाच हरि श्रीकृष्ण के सामने आकर उपस्थित हो गये।।१-२९।।



अथाशीतितमोऽध्यायः।।८०।।

वैशम्पायन जी बोले- भगवान् विष्णु हरि ने महाघोर तथा मांस भक्षक दो पिशाचों को मशाल धारण किये हुए देखा और दोनों पिशाचों ने भी देवकी-पुत्र को देखा, तब सुख से आसन पर बैठ लोकेशों के ईश विष्णु को देखकर केशव ने निकट जाकर उन्हें विष्णु न समझ कर केशव से कहने लगे कि। आप कौन हैं, किसके मनुष्य हैं, कहाँ से आये हैं? आप किस कार्य के लिये मृगाओं से आकुल इस घोर जंगल में आये हैं? इस प्रकार दोनों पिशाचों द्वारा पूछे जाने पर श्रेष्ठ पराक्रमी विष्णु बोले कि मैं क्षत्रिय हूँ, प्रकृतिस्थ मनुष्य मुझको यदुवंश में उत्पन्न तथा क्षात्रधर्म का पालन करने वाले कहते हैं। मैं लोकों का पालन करने वाला और दुष्टों को सर्वथा दण्ड देने वाला हूँ, मैं उमापति महादेव का दर्शन करने के लिये कैलास जाना चाहता हूँ। यही मेरा परिचय है, अब तुम दोनों बताओ कि कौन हो? तुम दोनों इस ब्राह्मणों के आश्रम में किसलिये आये हो?।।१-१०।।

यह शिकार करने की वनस्थली नहीं है, इसलिये यहाँ मृगों को नहीं मारना चाहिये। मैं इस देश का रक्षक हूँ इसमें संशय नहीं है, जो इन बातों

का उल्लंघन करेगा उसे मैं यत्नपूर्वक दण्ड दूँगा। तुम दोनों कौन हो और यह बड़ी भारी सेना किसकी है? इसके आगे मत जाना वहाँ ऋषि लोग रहते हैं। इसी प्रकार पूछे गये तथा निषेध किये गये पिशाचों ने अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया। उन दोनों में एक महाभयंकर तथा लम्बी बाहों वाला पिशाच था वह अपने हृदय की बातों को वहाँ कहना प्रारम्भ किया।।११-२०।।

पिशाच बोला कि मैं जगत् के नाथ हरि श्रीकृष्ण जगत्पति आदिदेव अज वरेण्य पाप रहित तथा पवित्रात्मा विष्णु को नमस्कार कर सम्पूर्ण वृत्तान्त जैसा है वैसा कह रहा हूँ यदि आप सुनना चाहते हैं तो सावधान चित्त हो जायँ और सुनें। मैं घण्टाकर्ण नाम का पिशाच हूँ, मैं मांस खाने वाला विकृत और घोर साक्षात् मृत्यु के समान हूँ। मैं साक्षात् रुद्र के मित्र कुबेर का अनुचर हूँ और यह मेरा छोटा भाई है, मैं यमराज का भी यमराज हूँ, मैं विष्णु की पूजा के लिये यह शिकार कर रहा हूँ मेरी ही यह सेना है और मेरे ही श्वान-गण हैं। मैं प्राणियों से सेवित महापर्वत कैलास से आया हूँ पाप कर्म करने से मैं पिशाच के वेष में हो गया हूँ। मैं कानों में घन्टा बाँध कर निरन्तर विष्णु का नाम मेरे कानों में न प्रवेश कर जाय। मैं कैलास पर्वत पर जाकर उन वृषभध्वज महादेव की आराधना कर शिव की निरन्तर स्तुति करने लगा। इसके बाद शंकर जी प्रसन्न हो हमसे बोले कि वर माँगो तब मैंने वहाँ महादेव के निकट अपनी मुक्ति के लिये प्रार्थन की। तब मुक्ति के लिये प्रार्थना करते हुए मुझसे त्रिलोचन ने कहा कि सभी को मुक्ति देने वाले तो एक विष्णु ही हैं इसमें संशय नहीं है।।२१-३०।।

इसलिये बदरी बन जाकर वहाँ जनार्दन की आराधना कर नारायणाश्रम में गोविन्द से मुक्ति प्राप्त करो। देव-देव त्रिशूलधारी के द्वारा ऐसा कहने पर मैंने इस बात को जाना और गरुड़ध्वज गोविन्द को ही परमदेव मान कर उनसे मुक्ति की प्रार्थना करने के लिये मैं इस देश में आया हूँ यदि आपको कौतूहल है तो मेरे दूसरे कार्य को भी सुनिये। पश्चिम सागर के तट पर द्वारका नाम की एक पुरी है जिसमें कि यादव और वृष्णिवंशी निवास करते हैं जो सागर की

लहरों से व्याप्त है। पुरुषोत्तम हरि विष्णु उस पुरी में निवास करते हैं, लोक के हित के लिये द्वारका में मनुष्य रूप धारण कर निवास करने वाले श्रीकृष्ण को देखने के लिये इस समय हम लोग अनुचरों के साथ निकले हैं आज ही हम लोग सर्वश्वेर साक्षात् विष्णु को देखना चाहते हैं। जगत् की योनि जनार्दन देव हरि को देखने के लिये इस समय हम लोग उद्यत हैं तथा अविनाशी विष्णु को देखेंगे। वेदान्त द्वारा संस्थापित सत्त्व वाले उन ईश्वर को देखने के लिये हम लोग उद्यत हैं। हे मनुष्य! हम लोगों का यही विष्णु-दर्शन रूपी नियम है अब हम लोग दूसरी ओर जा रहे हैं तुम भी इच्छानुसार जहाँ जाना हो जाओ। अब और कुछ विचार न करना चाहिये, रात्रि आधी हो गई, ऐसा कह कर वह विकृत मुख वाला कुशल पिशाच उसी जगह समीप में इच्छानुसार बहुत सा मांस भक्षण कर बहुत रक्त पान किया।।४१-५०।।

इसके बाद जल का सम्यक् स्पर्श कर (जीव-वध) के साधन को वहीं पास में रख बड़े भारी महा भयंकर अस्त्र-पाश को भी रख कर तथा कुत्तों के गणों को बड़े प्रयत्न से हटाकर कुश का आसन बिछा जल से आचमन कर। कुत्तों का पालन करने वाला वह भयंकर पिशाच कुशासन पर सुख से बैठ समाधि लगाने का प्रयत्न करने लगा, एकचित्त हो भक्त वत्सल केशव को नमस्कार कर (नमो भगवते वासुदेवाय) मंत्र पढ़ने लगा। उन चक्र धारण करने वाले बुद्धिमान् वासुदेव तुम्हें नमस्कार है। प्रभावशाली विष्णु नारायण के लिये नमस्कार है। हे केशव! तुम्हारे कीर्तन से मेरा मन शुद्ध हो जाय।।५१-६०।।

हे गोपते! तुम्हारे स्मरण से इस प्रकार का भयंकर तथा घृणित पिशाच का मरो जन्म न हो। मैं देवदूत हो जाऊँ। हे विभो! मेरी यही प्रार्थना है कि तुम्हारे चक्र के प्रहार से यह मेरा पैशाचिक शरीर नष्ट हो जाय और फिर मेरा संसार में जन्म न हो। आप याचना करने वालों के लिये कल्पवृक्ष के समान हैं और सदा सभी कामनाओं के दाता हैं, यदि मेरा पुनः जन्म हो तो जहाँ-जहाँ मेरा जन्म हो वहाँ-वहाँ आप मेरे हृदय में विराजमान रहें। हे देवेश! यह मेरी

श्रेष्ठ प्रार्थना इसी प्रकार बनी रहे, सदा मेरी इच्छा ऐसी हो कि मैं 'तुम्हारे लिये नमस्कार है, तुम्हारे लिये नमस्कार है' ऐसा कहा करूँ। ऐसा कहता हुआ वह आदि पुरुष मुकुन्द का ध्यान करने लगा। जैसे वायु रहित स्थान पर दीपक निश्चल रहता है वैसे ही निश्चल हो वह नासिका के अग्र भाग को देख सनातन ब्रह्म ॐ का पाठ करने लगा। वह प्रणव ॐ को वाचक मानकर ब्रह्म को वाच्य निश्चित कर लिया और अपने चित्त को एकाग्र कर विष्णु में समर्पित कर दिया। विकल्प से रहित चित्त को उसने हृदय के मध्य में निवेशित कर लिया और वह महान् मांसभक्षी हृदय में कमल के शुभ दलों पर जगत्पति को बिठा महायोगी बन गया, सुख से बैठा सनातन विष्णु को स्मरण करता हुआ त्रिधाम ॐ का जप करने लगा।।६१-८८।।



अथैकाशीतितमोऽध्यायः।।८१।।

यह बहुत से मृगों को मारकर मांस के लोथड़ों का भक्षण करता, रुधिर पीता तथा अधिक समय तक मृगों को बाधा पहुँचाता हुआ भी मुझको स्मरण किया करता है। मृगादिकों को मारने में, भोजन करने में, जागने में तथा सोने में इस प्रकार हर कार्यों में हम्हीं को कर्ता मानता है। इसके पुण्य कर्म से अब घोर कर्म का नाश हो गया ऐसा निश्चित कर जगत् के नाथ हरि प्रसन्न हो गये। इसके बाद जगत्पति ने उस अनन्य भक्त पिशाच के शुद्ध अन्तःकरण में अपने स्वरूप को दिखाया। हरि के स्वरूप को देखने के बाद पिशाच क्रमशः धीरे-धीरे श्वासों को छोड़कर तथा दशों दिशाओं को देखकर एवं शरीर को सुगम कर सुख से बैठ गया।।१-२१।।



अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः।।८२।।

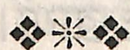
वैशम्पायन जी बोले कि मांसभक्षक पिशाच ने समाधि में जिस प्रकार से जगत् गुरु हरि को देखा था उसी प्रकार बाहर भूमि पर भी देखा। इसके

बाद कहने लगा कि हे विष्णो! आप अपनी इच्छानुसार आज कहिये कि मैं क्या करूँ? वैशम्पायन जी बोले कि मांसभक्षी पिशाच ऐसा कहकर बड़ा भारी नाद किया। उस समय वह बार-बार विकृत स्वर से हँसने और नाचने लगा। हे नृप! वह हे हरे! हे श्रीकृष्ण! हे यादवेश्वर! हे केशव! ऐसा कहता हुआ हरि के सामने अनेकों प्रकार से नृत्य करने लगा।।१-४३।।



अथ त्र्यशीतितमोऽध्याय:।।८३।।

मेरे नाम कीर्तन से तुम्हारा अन्तः करण शुद्ध हो गया है; मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, ऐसे कहकर भगवान् हरि विष्णु ने पिशाच के अङ्ग का कोमल हाथ से स्पर्श किया इससे देव हरि ने उसे पाप से छुड़ा दिया। इसके बाद उस पिशाच का रूप कामदेव के समान सुन्दर हो गया। इसके बाद उस पिशाच रूपी घण्टाकर्ण को भगवान् श्रीकृष्ण ने उठाकर प्यार किया और उसने जगन्नाथ की स्तुति की तब उस ब्राह्मण को सन्तुष्ट कर स्वर्ग भेज गोविन्द उस स्थान से चलकर वहाँ जा पहुँचे कि जहाँ मुनि और सिद्धगण अग्निहोत्र कर रहे थे। केशव की आज्ञा से वह स्वर्गीय घण्टाकर्ण स्वर्ग को चला गया, इससे हे राजन्! यदि आप मन की शुद्धि चाहते हैं तो श्रीकृष्ण नाम का स्मरण कीजिये, जगत्पति हरि का स्मरण करते रहने से मन शुद्ध होगा।।१-३२।।



अथ चतुरशीतितमोऽध्याय:।।८४।।

वैशम्पायन जी बोले कि घण्टाकर्ण के स्वर्ग जाने का वृत्तान्त सुन कर सभी मुनिगण परम विस्मय को प्राप्त हो गये। तब विष्णु गरुड़ पर चढ़ वहाँ गये कि जहाँ कुबेर शंकर जी की सदा उपासना करते हैं, जहाँ वह मानस नाम का सरोवर है, जहाँ भृङ्गी और रिटि गण कल्याण करने वाले महादेव शंकर जी की उपासना करते हैं। जहाँ विश्वेश्वर शम्भु ने ब्रह्मा का शिर काटा था।

जहाँ पर पहले ऋषियों के प्रार्थना करने पर हिमालय ने अपनी पुत्री पार्वती को जगत् के रचयिता कल्याणकारी शंकर जी के लिये दी थी; जहॉ पर हरि ने बहुत दिनों तक सौ दल वाले कमलों से जगत्पति शंकर जी की उपासना की थी, एक दिन एक कमल कम हो जाने पर अपने कमल स्वरूप नेत्र को चढ़ा दिये थे, ऐसे उपासना कर सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था। जिस कैलास पर्वत को रावण अपनी सभी भुजाओं से उठा कर विश्राम लिया था उसी कैलास नामक महाशैल पर चढ़ कर देवकीनन्दन हरि मानसरोवर के उत्तर तट पर चले गये। सर्वेश्वर शिव स्वरूप विष्णु हरि तपस्या करने के लिये मनुष्य रूप धारण कर लंगोटी लगा जटा बढ़ा लिये। इसके बाद वेदसम्मति गरुड़ वाहन से उतर कर तपस्या में चित्त दे शुद्ध भूमि पर बैठ गये। जगत्पति हरि बारह वर्षतक तप करने के लिये मन में निश्चय किये। वे फाल्गुन के महीने से तप प्रारम्भ किये। बारह वर्ष पूर्ण होने में एक महीना बाकी था तब जनार्दन साक्षात् सवेश्वर हरि विष्णु आरण्यक के मन्त्रों का पाठ करते हुए अग्नि में पूर्णाहुति कर प्रणव का जप करते हुए वहाँ ध्यान में तत्पर हो गये।।१-२८।।



अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः।।८५।।

लोकहितैषी प्रभु हरि का जब सम्पूर्ण व्रत समाप्त हो गया तो महादेव, महायोगी, गिरीश, नीललोहित, आदि कर्त्ता, महाभर्त्ता, शूलपाणि, उमापति, भूत-गणों के साथ विश्वेश्वर विष्णु को देखने के लिये चल पड़े।।१-२२।।



अथ षडशीतितमोऽध्यायः।।८६।।

वैशम्पायन जी बोले कि- उन शिव जी के आगे हजारों भूतों के समूह पहुँच गये; दीर्घ मुख एवं नेत्रों वाले भूत शंकर जी के साथ चले। एक तरफ कितने श्रेष्ठ मुनिगण परमेश्वर का ध्यान करते तथा विविध अङ्गों सहित वेद

वाक्यों को पढ़ते हुए, कितने हाथ में कुण्डिका लिये, कितने कुशाओं को लिये हुए चल रहे थे। एक तरफ मुनिगण और दूसरी तरफ शिव के अपर गण तथा एक ओर अपनी प्रियाओं के साथ सिद्ध और गन्धर्व चल रहे थे। एक तरफ विद्याधर शंकर शिव की स्तुति करते हुए चल रहे थे। चन्द्रशेखर लोककल्याणकारिणी गंगा एवं उमा देवी के साथ मांसभक्षी पिशाचों से घिरे हुए हरि को देखने के लिये आये।।१-१८।।



अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः।।८७।।

वैशम्पायन जी बोले- इस प्रकार विविध भूतों-पिशाचों एवं नागों के साथ वृषवाहन रुद्र भगवान् शंकर ने आकर उत्तम तप करते हुए देवेश विष्णु का दर्शन किया, वे जगत्पति उस समय अनेक प्रकार के यज्ञीय द्रव्यों से अग्नि में हवन कर रहे थे। उमापति आत्मा से प्रसन्न हो जय शब्द का उच्चारण किये, इसके बाद भूत, पिशाच, राक्षस, गुह्यक, मुनि तथा विप्रगण जयकार किये। इस प्रकार सभी मुनि और देवतागण जय-जयकार कर हरि को प्रणाम किये, इसके बाद भगवान् विष्णु उठे और महादेव जी को स्थित देखकर शंकर जी की प्रसन्न मन से स्तुति करने लगे। हे सर्वात्मन्! हे भूतेश! हे हर! आप मेरी निरन्तर रक्षा करें। हे देव! हे जगन्नाथ! हे हर! आप अपनी सर्वात्मा से लोकों की रक्षा करें; हे देव! हे हर! हे भक्तप्रिय! आप सदा भक्तों की रक्षा करें।।१-३८।।



अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः।।८८।।

वैशम्पायन जी बोले- इसके बाद त्रिशूलधारी अपने हाथ से चक्रधर विष्णु का हाथ स्पर्श कर सभी देवताओं और भावितात्मा मुनियों के सुनते-सुनते गरुड़ध्वज केशव से बोले हे जनार्दन! यह आपकी तपश्चर्या और प्रार्थना

किस अर्थ की सिद्धि के लिये है? यदि आपकी तपस्या पुत्र के लिये है तो हे जगत्पते! मैं पहले ही आपको पुत्र दे चुका हूँ, इस विषय में जो कारण है उसे सुनें। पहले सत्ययुग में एक बार मैं किसी कारणवश तप करने के लिये प्रवृत्त हुआ उस समय पार्वत मेरी सेवा में उपस्थित थीं। दैत्यों से भयभीत होकर इन्द्र ने मेरे पास कामदेव को भेज दिया तब कामदेव वसन्त ऋतु के साथ मेरे पास आया। हे हरे! उसने चलाये गये अपने बाण को मुझको लक्ष्य बना लिया; यह उमा पुष्पादिकों को देकर वहाँ मेरी सेवा कर रही थीं। तब इस प्रकार बाण चलाते हुए कामदेव को देखकर मैं क्रुद्ध हो गया। हे देवेश! क्रुद्ध होते ही मेरे तीसरे नेत्र से अग्नि निकल पड़ी और वह अग्नि कामदेव को भस्म कर दिया, तब मैंने इस बात को ध्यान से सोचा तो यह सब इन्द्र की कार्यवाही ज्ञात हुई।।१-१०।।

तभी से कामदेव के प्रति मेरी दया रहती है और ब्रह्मा ने भी उसके ऊपर दया करने को अर्थात् जीवित करने को मुझसे कहा था। तब मैंने आपके यहाँ पुत्र रूप से जन्म लेने का वरदान दे दिया, वही कामदेव प्रद्युम्न नाम से विख्यात आपका ज्येष्ठ पुत्र होगा। हे केशव! आपको सर्वात्मा रूप से नमस्कार है। हे सर्वात्मन्! आपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे हरे! आपको सदा नमस्कार है। हे ईश्वर! आप पुष्करनाभ को नमस्कार है। मैं आपकी वन्दना करता हूँ।।११-६७।।



अथैकोन नवतितमोऽध्यायः।।८९।।

वैशम्पायन जी बोले कि- देवदेवेश श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहकर मुनियों से पुनः शिवजी बोले- हे ब्राह्मणों! जो भक्त यहाँ श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिये आये हैं वे यह जान लें कि इन श्रीकृष्ण से परे और कोई वस्तु नहीं है, यही परम वस्तु हैं, आप लोग इन्हीं को परम तप समझें। हे विप्रेन्द्रो! चाहे जैसे आप लोगों की सम्पूर्ण बुद्धि शुद्ध हो वैसा ही उपाय करें जिससे कि

देव विष्णु प्रसन्न हो जायँ। वैशम्पायन जी बोले– हे राजन्! शंकर जी द्वारा ऐसे कहने पर पुण्यशील सभी मुनिगण यथातथ्य ग्रहण कर लिये और अपने सन्देह को दूर किये। ब्राह्मण लोग हाथ जोड़कर शंकर जी से बोले कि ऐसा ही होगा। आपके कहने का सभी अर्थ हम लोगों ने ग्रहण कर लिया और संशय भी दूर हो गया। हम लोग इसी के लिये आपके धाम में आये थे, आप दोनों देवों के सत्संग से सभी महान् मोह यहाँ नष्ट हो गये। हे देवेश! जैसा आप कह रहे हैं वैसा हम लोगों के कल्याण के लिये पमर उपयोगी है; आप भगवान् रुद्र ने जैसा कहा है वैसा ही हम लोग हरि की प्राप्ति में निरन्तर प्रयत्न करते रहेंगे, ऐसा कहकर प्रसन्न हो सभी मुनियों ने केशव भगवान् को प्रणाम किया।।१-२०।।



अथ नवतितमोऽध्यायः ।।९०।।

वैशम्पायन जी बोले– इसके बाद वे भगवान् रुद्र सभी को विस्मित करते हुए से स्तोत्र के द्वारा विश्वेश्वर विष्णु की स्तुति करने का उपक्रम करने लगे; वे उस समय मुनियों के सुनते हुए अर्थ से भरी वाणियों से स्तुति करने लगे। महेश्वर बोले हे अच्युत! आप भगवान् को नमस्कार है, बुद्धिमान् वासुदेव को नमस्कार है कि जिसके प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है। ऐसा कहकर भूतभावन भगवान् रुद्र शंकर साक्षात् उमा के साथ गणों सहित अन्तर्धान हो गये। इसके बाद भगवान् विष्णु शंख, चक्र, गदा, खड्ग, शार्ङ्ग धनुष, तर्कश तथा कवच को धारण कर पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ पर सवार होकर जैसे जगन्नाथ आये थे वैसे ही बदरिकाश्रम को चले गये, पुण्डरीकाक्ष मुनियों से नित्य सेवित बदरिकाश्रम में सायंकाल पहुँच गये। वहाँ जाकर ईश्वर हरि यथायोग्य सबको दण्ड-प्रणाम किया-कराया और मुनियों द्वारा पूजित हो सुखासन पर बैठ गये।।१-३८।।



अथैक नवतितमोऽध्यायः ।।९१।।

वैशम्पायन जी बोले- हे राजन्! उसी समय में पौण्ड्रक नाम का राजा हुआ था जो अच्छे असुर राजाओं में अच्छा बलवान् सत्त्व सम्पन्न और बड़ा पराक्रमी योद्धा था, वह राजा वृष्णिवंशियों का शत्रु था और बल के घमण्ड से श्रीकृष्ण जी से द्वेष करने लगा था; वह सभी राजाओं को बुला कर राज-सभा में कहने लगा कि- मैंने सम्पूर्ण पृथ्वी और सभी बलवान् राजाओं को जीत लिया है, पर श्रीकृष्ण का आश्रय लेकर वृष्णिवंशी बलोन्मत्त हो गर्व में छा गये हैं। वे सब श्रीकृष्ण के आश्रय से मुझे कर नहीं दे रहे हैं और श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र के बल से मेरा अपमान कर रहा है। मैं अपने मित्र महात्मा नरकासुर की सहायता से बलपूर्वक इस गोप कृष्ण को मार डालना चाहता हूँ, यदि आप लोग मुझे वासुदेव न कहेंगे तो आप लोग सौ भार सुवर्ण मुद्रा तथा बहुत से धान्य के दण्डभागी बनेंगे। हे राजन्! मन से दुःसह वचन जिस समय वह राजेन्द्र पौण्ड्रक कह रहा था उस समय कुछ बलवान् राजे लज्जा से युक्त हो गये क्योंकि वे राजे सदा से उसके बल और पराक्रम के राज को जानते थे। हे राजन्! अन्य राजे 'आप ऐसा ही करें' कह कर श्रीकृष्ण की निन्दा करने लगे और बल मद के घमण्ड में भरे अन्य राजे रण में केशव को हम लोग जीत लेंगे ऐसा कहने लगे।।१-१८।।



अथ द्विनवतितमोऽध्यायः ।।९२।।

वैशम्पायन जी बोले- उधर सर्वलोकज्ञ मुनिश्रेष्ठ नारद जी कैलास के शिखर से पौण्ड्रक के नगर को चले गये। महामुनि राजा पौण्ड्रक से अर्घादि शिष्टाचार पाकर शुभ्र आसन पर बैठे। राजा ने मुनिसत्तम से कुशल समाचार पूछा इसके बाद बल से गर्वित पौण्ड्रक नारद से कहने लगा कि आप सर्वत्र चतुर कहे जाते हैं और सभी कार्यों में पण्डित हैं तथा सभी जगह निर्वाध गति से जाने वाले हैं आप ही बतावें कि आप जहाँ-जहाँ गये वहाँ-वहाँ लोक में

तप-सिद्ध लोक प्रसिद्ध बलवान् पौण्ड्रक ही वासुदेव के नाम से पुकारा जाता है कि नहीं? शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष, खड्ग, तूणीर तथा कवच को धारण करने वाला पौण्ड्रक ही सबको जीतने वाला है और सर्वदा सभी राजाओं के लिये राजसिंहासनों को देने वाला है। वही सबका शासक और राज्य को भोगने वाला सभी से बली है, शत्रु की सेनाओं से अजेय और अपने जनों का रक्षक है। आज कल जो गोप वासुदेव नाम से कहा जाता है उसके अन्दर इस मेरे नाम धारण करने योग्य बल-पराक्रम नहीं है।।१-१०।।

वह गोप लड़कपन के कारण जो मेरा नाम धारण कर रहा है वह व्यर्थ है, हे विप्रेन्द्र! इसका आप निश्चय कर दें जिससे कि मैं ही केवल एक वासुदेव हो जाऊँ। मैं वासुदेव इस जगत् में सभी बलियों को जीत कर तथा वृष्णियों को परास्त कर श्रीकृष्ण को मार डालूँगा और उसकी पुरी को लुटवा लूँगा। हे महामते! विष्णु के वास स्थान वाली द्वारका पर मैं चढ़ाई करूँगा, ये सभी बली राजे मेरे साथ हैं। इसकी सूचना मेरे पुर में सभी जगह दे दीजिये और हे विप्र नारद! इस समय इन्द्र को भी सूचना दे दीजिये हे तपोधन! आपको नमस्कार है। हे विभो! आप से मेरी यही प्रार्थना है। नारद जी बोले– हे नृप! जब तक ब्रह्माण्ड की स्थिति है तब तक मैं सभी जगह सदा जा सकता हूँ और सभी कार्यों में किसी न किसी प्रकार जाने में परम चतुर हूँ। किन्तु हे राजन्! चक्रपाणि देवेश जनार्दन के पृथ्वी पर वास करते हुए उनसे जैसा तुम कहते हो वैसा कुछ भी नहीं कहना चाहता। सर्वत्र व्यापक विष्णु देव के सम्बन्ध में ऐसा कोई कुछ भी नहीं कह सकता है क्योंकि उन्होंने बान्धवों के साथ प्रायः सभी दुष्टों को मार डाला है हरि के रहते वासुदेव यह नाम कौन धारण कर सकता है। श्रीकृष्ण के पृथ्वी पर शासन करते रहने पर इस प्रकार कौन कह सकता है ऐसा तो अज्ञान के वश हो महामूर्ख ही कह सकते हैं। सर्वत्र व्यापी विष्णु हरि ही तुम्हारे गर्व को दूर करेंगे क्योंकि यह तुम्हारे अत्यन्त विनाश का समय समीप आ गया है।।११-२३।।



अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः ।।९३।।

वैशम्पायन जी बोले– हे महाराज! नारद जी की बातों को सुनने के बाद मदमत्त पौण्ड्रक क्रुद्ध हो गया और राजाओं की सभा में उन विप्रश्रेष्ठ नारद जी से बोला। हे विप्रर्षे! आप यह क्या कह रहे हैं? मैं राजा हूँ ब्राह्मणों के साथ विशेष बात करने में मैं डरता हूँ क्योंकि ब्राह्मण लोग सदा शाप देने वाले होते हैं, अतः हे मुने! आप इच्छानुसार जाइये अथवा रहिये। हे महाबुद्धे! आज मैं आपसे भयभीत हो गया, इसलिये आपकी इच्छा हो तो जाइये, इस प्रकार घमण्ड से राजा पौण्ड्रक द्वारा कहे जाने पर वे नारद जी मौन हो आकाश मार्ग से वहाँ चले गये कि जहाँ बदरिकाश्रम में केशव थे, वे विष्णु के पास जाकर सभी बातें विष्णु के आगे कह दिये। वह सुन कर भगवान् विष्णु ने कहा कि उसे मनमाना बकने दीजिये। हे द्विजश्रेष्ठ! कल प्रातः काल होने पर मैं उसके घमण्ड को दूर करूँगा। उस बदरिकाश्रम में ऐसा कह कर केशव विश्राम लिये उधर ईश्वर नकली वासुदेव उस पौण्ड्रक ने सचमुच संग्राम करने की इच्छा से आधी रात के समय द्वारका नगरी पर धावा बोल दिया, रात्रि के समय कठिन अन्धकार में पैदलिये सिपाही हाथों में मसाल लेकर चल रहे थे।।१-१०।।

महाबली श्रेष्ठ राजे विविध प्रकार के शस्त्र-समूहों को लेकर बलवान् पुरुषों से भरी महाभयंकर द्वारकापुरी को दौड़ते हुए चले जा रहे थे। हे राजन्! मसाल के साथ पराक्रमी बलवान् राजा पौण्ड्रक भी बड़े भारी रथ पर चढ़ कर द्वारका को चल दिया। महातेजस्वी मूर्ख पौण्ड्रक जगन्नाथ श्रीकृष्ण तथा वृष्णियों को चारों तरफ से घेर कर मार डालना चाहता था वह प्रधान-प्रधान सेनापतियों को खींचता हुआ द्वारकापुरी के फाटक पर पहुँचकर प्रयत्न पूर्वक वहीं सेना को खड़ी कर सभी राजाओं को आज्ञा दिया कि– मेरे नाम से जय-जयकार करो इसके बाद रणभेरियाँ बजाओ और यहाँ डट कर युद्ध करो।।११-२५।।



अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः।।९४।।

वैशम्पायन जी बोले कि पौण्ड्रक की महाशस्त्रों से सजी सेना को देखकर शस्त्रधारी सभी यादव तैयार हो हाथों में मसाल ले-लेकर युद्ध की लालसा से बड़ी भारी आँधी के समान प्रलयकारी युद्ध करने को निकलने लगे। 'पौण्ड्रक कहाँ है- पौण्ड्रक कहाँ है' ऐसा कहते हुए सभी यादव निकल पड़े। मसाल के जलने से वहाँ का स्थान अन्धकार से रहित हो गया। जब चारों तरफ से अन्धकार हट गया तब वृष्णियों और शत्रुओं के साथ घोर युद्ध होने लगा। इसके बाद वीरों का रोमहर्षण नाद होने लगा और घोड़े घोड़ों से, हाथी हाथियों से, गजयूथप गजयूथपों से, रथ रथों से, सवार सवारों से, तलवार वाले खड्गधारियों से और गदाधारी गदाधारियों के साथ भिड़ गये।।१-१०।।

गदायें गदाओं पर बजने लगीं तथा परिघों से परिघों को और त्रिशूलों से त्रिशूलधारियों को मारने लगे। हे महाराज! इस प्रकार उन राजाओं और यादवों के उत्तम रण करते-करते वह संग्राम बड़ा भारी रूप धारण कर लिया और बड़ा ही होहल्ला मच गया। इसी बीच निषादों का पालन करने वाला शूद्र एकलव्य काल का अन्त करने वाले यमराज के समान महान् घोर धनुष ग्रहण कर अनेकों हजारों बाणों से यादवों का दमन करने लगा, वह मर्मभेदी तथा परम तीक्ष्ण सौ-सौ बाणों को एक-एक साथ छोड़कर वृष्णियों की सभी सेना को सभी तरफ से घायल करने लगा; हाथ में शस्त्र लेकर युद्ध करते हुए बड़े-बड़े बलवान् क्षत्रियों को विचलित करने लगा।। निशठ नामक यादव को झुके पर्वों वाले पच्चीस बाणों से, सारण को दस बाणों से और हार्दिक्य को पाँच बाणों से मारा। उग्रसेन को नब्बे बाणों से, वसुदेव को सात बाणों से, उद्धव को दस बाणों से तथा अक्रूर को पाँच बाणों से वेधा।।११-३०।।

इसी प्रकार एक-एक करके सभी यादवों को तीक्ष्ण बाणों से वेधा; वह बलवान् यादवी सेना को तितर-बितर कर और अपना नाम सुनाकर। श्रेष्ठ यादवों से कहने लगा कि मैं ही बलवान् एकलव्य हूँ; इस समय महाबली वीर

सात्यकि कहाँ भागे जाते हैं। हल को धारण करने वाले मदमत्त गदाधर साक्षात् बल के रूप बलराम यहाँ से कहाँ भागे जाते हैं। इस प्रकार सिंहनाद से यदुसिंहों को विस्मित करते हुए एकलव्य ने यह सब बातें कहीं।।३१-३३।।



अथ पञ्चनवतितमोऽध्याय:।।९५।।

वैशम्पायन जी बोले- हे महाराज! युद्ध में सभी तरफ से आहत हे डर जाने पर यादवों की सेना और वृष्णिवंशी वीर जब लौट गये और मसालें बुझ गईं, चारों ओर सन्नाटा छा गया तब महाबली पौण्ड्रक अपने मन में "मैंने वृष्णियों की उत्तम सेना को जीत लिया" ऐसा समझ कर अपने सैनिकों और राजाओं से कहने लगा कि हे राजेन्द्रों! तुम लोग अब इस पुरी पर शीघ्र ही चढ़ जाओ और टंक, कुन्त, कुठार, कुन्तल और पाषाणों से और कर्षणास्त्र एवं मकान तोड़ने वाले सुन्दर यन्त्रों से इस पुरी को चारों तरफ से गिरा दो। हे भूभिपालों! जल्दी जाओ और। चारों तरफ से चाहारदिवारियों को और महलों को गिरा दो तथा कन्याओं और दासियों को पकड़ लो। कीमती चीजों को और धन के भण्डारों को लूट लो, ऐसी बातों को सुन सभी महात्मा राजे 'ऐसा ही होगा' कह कर चल पड़े। वे पौंड्रक की आज्ञा से कुठारों आदि के द्वारा चाहारदिवारियों और [illegible]य से भरे महलों को सभी तरफ से तोड़ने लगे। जब महाबली राजे दीवारों को मकान तोड़ने वाले हथियारों से गिराने लगे तब वहाँ चारों ओर से बड़ा भारी शब्द होने लगा। हे महाराज! पुर के द्वार पर जो चाहारदीवारियाँ घिरी थीं सो टूट गईं उसके महाघोर शब्द को सुन कर सात्यकि क्रोध से मूर्छित हो गये। यादवेश्वर केशव इस पुरी का सम्पूर्ण भार मेरे ऊपर सौंप कर कैलास के शिखर पर अविनाशी शंकर जी का दर्शन करने के लिये चले गये हैं, इसलिये इस द्वारकापुरी की हमको अवश्य रक्षा करनी चाहिये ऐसा मन से सोच कर वे शीघ्र ही धनुष को उठा कर महात्मा दारुक के बड़े भारी रथ पर सवार हो गये, वह रथ दारुक के पुत्र द्वारा सुधारा गया था और उसके दारुक स्वयं सारथी थे।।१-१०।।

वे बड़े भारी धनुष और विषैले सर्पों के समान बाणों को ले शस्त्र सम्पातों को विफल कर देनें वाले कठिन कवच को धारण कर लिये। वे शिनि-पुत्र बाजूबन्द और कुण्डल पहने धनुष-बाण, तर्कश तथा गदा-तलवार से सुसज्जित हो केशव के वचन का स्मरण करते हुए युद्ध के लिये चल पड़े। पुर के द्वार पर जहाँ मसाल से उजेला था वहाँ यादवोत्तम सात्यकि जा पहुँचे उसी प्रकार महापराक्रमी बलदेव जी भी गदा और धनुष-बाण आदि से सुसज्जित हो चमकीले रथ पर चढ़ कर सिंहनाद करते और भयंकर ललकार देते हुए रण की इच्छा से वहाँ जा पहुँचे। नीतिमानों में श्रेष्ठ बलवान् उद्धव भी महा घोर शब्द करने वाले मदमत्त हाथी पर चढ़ कर संग्राम में जा पहुँचे। वे महाबली उद्धव श्रीकृष्ण के परम प्रीति और नीति का विचार करते हुए चले गये, इसके बाद युद्ध की लालसा वाले अन्य सभी हार्दिक्य आदि वृष्णिवंशी रथ, हाथी और घोड़ों पर सवार होकर चल पड़े, इन ऐश्वर्यशाली वीरों के आगे-आगे मसालची मसालें लेकर चल रहे थे। युद्ध की लालसा से महाबली वृष्णिवंशी केशव के वचन का स्मरण तथा सिंहनाद करते हुए पुरी के पूर्वी द्वार पर पहुँच कर यथायोग्य स्थानों पर खड़े हो गये, जब मसालों से प्रकाशित युद्ध मार्ग पर महाभयंकर यादवी सेना खड़ी हो गई तब।।११-२०।।

हे विभो! धनुष-बाण, तूणीर और गदा को धारण करने वाले शिनि के समान प्रतापी वीर सात्यकि वायव्यास्त्र नामक बड़े भारी बाण को धनुष पर चढ़ाया और धनुषश्रेष्ठ उत्तम धनुष को कानों के समीप तक पूर्णरूपेण खींच कर शत्रु की सेनाओं पर छोड़ा। वहाँ जो राजे खड़े थे वे वायव्यास्त्र के तेज से परास्त होकर जहाँ पौण्ड्रक था वहाँ जाकर खड़े हो गये, फिर वायु के प्रबल झोंके से धक्का खाकर सभी राजे वहाँ से भाग कर खड़े हो गये कि जहाँ पहले खड़े हुए थे। शिनि-पुत्र सात्यकि शीघ्र विषैले सर्प के समान तीक्ष्ण बाण को लेकर वहाँ खड़े होकर बोले कि। धनुष-बाण को धारण करने वाले महाबली एवं महाबुद्धिमान् राजाओं में श्रेष्ठ पौण्ड्रक इस समय कहाँ है? वह क्या कर रहा है। यदि मैं देख लूँगा तो उस दुरात्मा नृपाधम को मार डालूँगा, मैं केशव का सेवक हूँ, पौण्ड्रक को मार डालने की इच्छा से खड़ा हूँ। सभी

क्षत्रियों के देखते-देखते उस दुरात्मा का शिर काट कर गीधों और कुत्तों के लिये बलि दे दूँगा। रात्रि के समय महात्मा यादवों के सोते रहने पर चोर के समान कौन ऐसा राजा कार्य कर सकता है?।।२१-३०।।

यह सर्वथा चोर राजा है बल से युक्त राजा नहीं है यदि इस नृपाधम के पास शक्ति होती तो यह चोरी से रात को नहीं आता। अहो! चौर कर्म करते हुए इस बली राजा के आगमन को मैं इस समय नहीं सहन कर सकता। ऐसा कह कर महाबली वीर सात्यकि बड़े जोर से हँसे और सुदृढ़ धनुष चढ़ा कर उस पर बाण का संधान किये। बुद्धिमान् सात्यकि के वचन को सुन कर वीर पौण्ड्रक कहने लगा कि- कृष्ण कहाँ है, वह गोपाल कहाँ है। मेरे वासुदेव इस नाम को ग्रहण कर स्त्रियों और पशुओं का हनन करने वाला कृष्ण इस समय कहाँ है? अपने को सबका स्वामी कहलाने वाला कहाँ है। वह महाबली मेरे मित्र महात्मा नरकासुर का हन्ता है। हे तात! उस दुरात्मा के इस युद्ध मे मारे जाने पर ही मुझे शान्ति प्राप्त होगी। हे वीर! तुम इच्छानुसार जाओ क्योंकि आप युद्ध करने में समर्थ नहीं हो अथवा कुछ देर ठहरो तो मेरे बल को देख पाओगे। मैं दुरासद घोर बाणों से तेरे शिर को काट कर गिरा दूँगा। हे वीर! तुम्हारे मारे जाने पर भूमि तेरे रुधिर को पीयेगी और वह गोप कृष्ण भी इस बात को सुन लेगा कि सात्यकि मार डाला गया। हे यदूत्तम! उस गोप को जो सर्वदा महान् गर्व में रहता है वह तुम्हारे मारे जाने पर शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा। हे महामते! यह हमने पहले ही सुन लिया था- तुम्हारे ऊपर पुर की रक्षा का भार सौंप कर वह ग्वाला कैलास पर्वत पर चला गया है। हे सात्यके! यदि तुम युद्ध करने में समर्थ हो तो तीखे बाणों को ग्रहण करो, ऐसा कह कर राजा पौण्ड्रक बाण ले युद्ध के लिये तैयार हो गया।।३१-४१।।



अथ षड़नवतितमोऽध्यायः।।९६।।

वैशम्पायन जी बोले- हे महाराज! पौण्ड्रक की बात सुन कर

वृष्णिश्रेष्ठ सात्यकि क्रुद्ध हो बोले। हे नृपाधम! जो तुम इस प्रकार कटु वचन वासुदेव को कह रहे हो, तुम्हारी जिह्वा के सौ टुकड़े हो जायेंगे। ऐसा कह कर महाबली सात्यकि ने बाण को लेकर धनुष पर चढ़ा दिया और उसे कान तक पूर्ण रूप से खींच कर तीक्ष्ण बाण को चलाया फिर तो उस यादव के द्वारा प्रतापी वासुदेव घायल हो गया।।१-१०।।

हे नृपोत्तम! वह अपने नेत्र और मुख आदि अङ्गों से गर्म-गर्म रुधिर बहाने लगा इसके बाद प्रतापी राजा नकली वासुदेव क्रुद्ध हो गया और बाण को उठा सात्यकि को वेधा तब सत्यप्रतिज्ञ सात्यकि उस बाण से घायल हो गये। उस बाण के ललाट में लग जाने से वृष्णिवंशियों में अग्रगण्य सात्यकि यद्यपि सुदृढ़ वीर थे तथापि वे निश्चेष्ट हो रथ के पिछले भाग में बैठ गये। फिर पौण्ड्रक के सिंहनाद से सात्यकि चैतन्य हो गये। वे महाबली बाण को ग्रहण कर लिये और उस बाण से उसके छाती में वेधा। हे राजन्! उस बाण के लगने से नकली वासुदेव रण में कम्पित हो छाती से गरम रुधिर की धारा बहाने लगा। पौण्ड्रक के देखते-देखते सारथी को भी घायल कर दिया। उस समय उन्होंने सारथी के धड़ से शिर को उतार दिया और वह रथ के नीचे गिर पड़ा। फिर रथ के ग्रन्थियों को काट दिया और घोड़े भी प्राण रहित हो गये। हे राजन्! वेगशाली दस बाणों से उसके नकली सुदर्शन चक्र को तिल के समान टुकड़े कर वासुदेव के प्रति महाबली सात्यकि बड़े जोर से हँसे। इसके बाद सभी क्षत्रियों के प्रत्यक्ष देखते-देखते वृष्णिनन्दन महाबली सात्यकि ने बड़ी भारी गर्जना कर शीघ्र ही सत्तर बाणों से नकली वासुदेव को घायल किया वे पतंगों के समान उड़ते हुए बाण उसके सभी अङ्गों शिर, बगल तथा पीठ एवं अगले भाग वक्षस्थल आदि पर गिरे मानों वह धैर्य की राशि वासुदेव बाणों का प्यासा होकर केवल बाणों को अपने अन्दर घुसा लिया अर्थात् कुछ वश न चला। सत्यसंगर वीर सात्यकि ने उस धनुष को छोड़ दूसरे धनुष को लेकर वृष्णियों के नेता वीर सात्यकि वासुदेव को घायल करने लगे।।२१-३८।।



अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः ।।९७।।

वैशम्पायन जी बोले- हे नृप! फिर दोनों लड़ने लगे और देखने वाले कहने लगे कि आज तो यही निश्चय ज्ञात हो रहा है कि ये लड़ते-लड़ते मर कर स्वर्ग चले जायेगे अन्यथा युद्ध से नहीं हटेंगे। ये दोनों ही महाबली लोक में साधारण पुरुषों से श्रेष्ठ हैं अहो! इन दोनों बलशालियों के बल और धैर्य को धन्यवाद है। इस प्रकार का युद्ध देवताओं और असुरों में भी न कभी देखा गया न सुना गया। मेघ मण्डल से छाई हुई अर्ध रात्रि के समय उस सुदारुण युद्ध को देख कर दोनों सेनाओं के सैनिक इस प्रकार की बातें कह रहे थे। वे दोनों एकाएक बाहुओं के सहारे गिर पड़े उस समय सात्यकि दस मुक्का पौण्ड्रक को मारे और महाबली पौण्ड्रक ने पाँच मुक्का सात्यकि को जमा दिया फिर सभी को विस्मित करने वाली ऐसी चपतबाजी प्रारम्भ हुई कि उसकी चट-चटाहट सर्वत्र सुनाई देने लगी जिससे महान् ब्रह्माण्ड क्षुभित हो गया।।१-२६।।



अथाष्टनवतितमोऽध्यायः ।।९८।।

वैशम्पायन जी बोले- इसी बीच निषादों का रक्षक एकलव्य क्रुद्ध हो शीघ्र ही धनुष लेकर तेजी से बलराम जी पर दौड़ा। तब जगत्-पति बलराम जी ने सभी क्षत्रियों के देखते-देखते दस बाणों से उसे वेध कर अन्य दस बाणों से उसके धनुष को आधे पर से काट दिया और दस बाणों से सारथी को मार कर तीस बाणों से रथ को तोड़ दिया तथा भल्ल नामक बाण से निषाद की ध्वजा को काट दिया। इसके बाद बली निषाद ने दस ताल वृक्ष के बराबर दृढ़ प्रत्यञ्चा से युक्त बड़े भारी दूसरे धनुष को उठा लिया। और सैनिक जनों के बीच से शीघ्र ही बाण से बलराम जी को मारा तब माधव के बड़े भाई स्वयं माधव के समान महाबली बलदेव जी सर्प के समान फुफुकार छोड़ते हुए सर्प के समान दस बाणों से उसके दिव्य धनुष को मुठिया के पास से काट गिराये।

तब निषादों का राजा एकलव्य भयंकर रूप वाले निशित खड्ग को लेकर बलराम जी के ऊपर चलाया इसी बीच चतुर वृष्णिवंशी वीर यदुनन्दन प्रतापी बलराम जी ने बाणों से उसे तिल के समान टुकड़े-टुकड़े कर दिया। क्षण मात्र में ही उन सभी महाबली निषादों का संहार कर महाबली बलराम वहाँ सिंह के समान गर्जते हुए खड़े हो गये। इसके बाद उस रात्रि में महाघोर मांसभक्षी पिशाच मांस के लोथड़ों को खींच-खींच कर खाने लगे और बहुत से शवों को फाड़-फाड़ कर नसों से रुधिर को पीने लगे।।१-२५।।



अथैकोनशततमोऽध्यायः।।९९।।

उषः काल के हो जाने पर रात्रि समाप्त हो गई। भगवान् सूर्य के उदित हो जाने पर चन्द्रमा की चाँदनी नष्ट हो गई। हे राजन्! भास्कर के पूर्ण रूप से उदय होने पर उन चारों बाहुबल शालियों एकलव्य और बलराम तथा पौण्ड्रक और सात्यकि का युद्ध देवासुर-संग्राम की भाँति और भी जमकर होने लगा।।१-१५।।



अथ शततमोऽध्यायः।।१००।।

वैशम्पायन जी बोले कि उसी दिन विमल प्रातः होने पर देवकीसुत बदरिकाश्रम से द्वारका को जाने की इच्छा कर लिये। श्रीकृष्ण सभी मुनियों को नमस्कार कर गरुड़ पर महा वेग से द्वारका को चल पड़े। द्वारकापुरी जाते समय उन्होंने रास्ते में ही युद्ध करते हुए उन वीरों के महान् शब्दों को सुना। तब जगत् के नाथ सोचने लगे कि अरे! यह कैसा शब्द सुनाई दे रहा है? यह तो आर्य बलराम तथा सात्यकि के साथ संग्राम का घोर शब्द ज्ञात हो रहा है। यह तो स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि पौण्ड्रक द्वारका नगरी पर चढ़ आया है और उसी दुरात्मा पौण्ड्रक के साथ यह युद्ध छिड़ा हुआ है। इस प्रकार चिन्तना कर हरि ने महा शब्द करने वाले साक्षात् पाञ्चजन्य शंख को बजाया। भगवान्

श्रीकृष्ण आ रहे हैं, क्योंकि यह शब्द पाञ्चजन्य शंख का है ऐसा सभी वृष्णि और यादवों ने समझ लिया। फिर तो वृष्णिवंशी और यादव वीर निर्भय हो गये, उसी क्षण उन लोगों ने उड़ने वालों में श्रेष्ठ गरुड़ को देखा।।१-१०।।

श्रीकृष्ण ने गरुड़ से कहा कि तुम उत्तम स्वर्ग को चले जाओ, इस प्रकार यदुनन्दन ने गरुड़ को विदा कर दारुक को आज्ञा दिया कि हे समर्थ सारथे! मेरे रथ को शीघ्र लाओ तब दारुक 'अभी रथ लाता हूँ' ऐसा कह कर शीघ्र ही रथ को ले आया। विष्णु शीघ्र रथ पर चढ़ कर जहाँ युद्ध हो रहा था वहाँ चल दिये और पाञ्चजन्य नामक महाशंख को बजाया। पौण्ड्रक वासुदेव श्रीकृष्ण को रण के लिये उत्सुक देख सात्यकि को पीछे कर वासुदेव की ओर चल पड़ा। पौण्ड्रक बाण ले जगत्पति के सामने खड़ा हो गया। हरि श्रीकृष्ण हँस कर राजा पौण्ड्रक से बोले हे नृप! तुम अपनी इच्छा से जो कुछ कहना हो कहते रहो। हे नृपाधम! शत्रुओं को जीत कर अपने सभी वीरता के कार्य को कहना शोभा देता है? जब मैं शस्त्र लेकर यहाँ खड़ा हूँ तो मुझे बिना जीते क्यों ऐसा कह रहे हो। हे राजेन्द्र पौण्ड्रक! यदि तुम शक्तिशाली हो तो मुझको मार कर सब कुछ कहो। मैं चक्र, धनुष, गदा तथा खड्ग लेकर रथ पर स्थित हूँ। हे मानद! तुम भी रथ पर चढ़ कर युद्ध के लिये सजग हो जाओ ऐसा कह कर भगवान् विष्णु सिंहनाद करने लगे।।११-४४।।



अथैकाधिकशततमोऽध्यायः।।१०१।।

वैशम्पायन जी बोले- इसके बाद वासुदेव ने बाण उठा कर सहसा उस तीक्ष्ण बाण से पौण्ड्रक को मारा। पौण्ड्रक वासुदेव ने शीघ्रगामी दस बाणों से शीघ्र ही वृष्णिनन्दन वार्ष्णेय वासुदेव को मारा और पचीस बाणों से दारुक को तथा दस बाणों से घोड़ों को मारा फिर पौण्ड्रक ने यादव वासुदेव को सत्तर बाणों से मारा। इसके बाद केशि को मारने वाले केशव अट्टहास की हँसी से हँस कर कहने लगे कि 'देख लिया' ऐसा कह मन से सन्तुष्ट होकर शार्ङ्ग धनुष

पर चोखा बाण चढ़ा कर उसकी ध्वजा को काट गिराये और उसके सारथी का शिर-धड़ से अलग कर उत्तम चार बाणों से चारों घोड़ों को मार डाला इसके बाद रथ को तोड़ कर पार्ष्णि को नष्ट कर डाला इसके बाद चक्के को तिल के समान टुकड़े-टुकड़े कर कुछ हँसते हुए से खड़े हो गये। तब पौण्ड्रक वासुदेव शीघ्र रथ से कूद कर निशित खड्ग को ले केशव पर वार किया, केशव ने उस खड्ग के सैकड़ों टुकड़े कर चुप-चाप खड़े रहे। इसके बाद अपने को प्रतापी तथा वासुदेव बनने वाला पौण्ड्रक काल के समान महा घोर परिघ को वासुदेव के लिये उठा लिया और सभी क्षत्रियों को देखते-देखते वृष्णिवीर श्रीकृष्ण पर प्रहार किया।।१-१०।।

जगत् के नाथ यदुनन्दन ने उसके दो टुकड़े कर दिये इसके बाद हे महाराज! पौण्ड्रक ने तीस भार के वजन वाले महा घोर हजार आरे वाले, महा प्रभाशाली चक्र को "जिसका कि मुख लोहे का बना था और जो शत्रु को मार डालने वाला था" उठाकर केशव से कहने लगा कि तुम्हारे चक्र को नष्ट कर देने वाले इस तीक्ष्ण घोर चक्र को देखो, हे घमंड करने वालों में प्रमुख घमंडी गोविन्द! सभी क्षत्रियों को देखते-देखते मैं इसी चक्र में तुम्हारे घमंड़ को दूर करूँगा। मैंने तुम्हारे ही लिये अन्यों से दुरासद इस घोर चक्र को निर्मित किया है, हे हरे! यदि तुम समर्थ हो तो महाशक्तिशाली इस चक्र को विदीर्ण कर दो, इस प्रकार कहकर महबली पौण्ड्रक ने उस चक्र को सैकड़ों बार घुमा कर श्रीकृष्ण के ऊपर फेंका फिर तो केशव ने रथ के कूद कर चक्र को विफल कर दिया; उधर महाबली पौण्ड्रक चक्र को छोड़कर महाघोर सिंहनाद करने लगा। इस प्रकार का तमाशा देखकर भगवान् देवकीसुत विस्मित हो गये अहो! इस पौंड्रक का वीर्य और धैर्य असह्य है ऐसा मान कर जगन्नाथ उत्तम रथ से उठ खड़े हुए। तब पौंड्रक ने एक शिला उठा कर केशव पर चलाया, यदुकुल का भार वहन करने वाले श्रीकृष्ण उस शिला को पकड़ कर उसी पर फेंक दिये। इसी प्रकार पौंड्रक के साथ भगवान् हरि अधिक समय तक खेला करने के बाद रक्त का भोजन करने वाले सुदर्शन चक्र को उठा लिये।।११-२०।।

वह चक्र दैत्यों के मांस से लिप्त तथा निशचरियों के गर्भ को गिरा देने वाला था, वह सुवर्ण से बना चक्र दैत्य और दानवों का विनाश करने वाला था। उसमें हजारों आरे बने थे, उसमें सैकड़ों धारें थीं, वह अद्भुत चक्र दैत्यों के लिये बड़ा ही भयंकर था, वह मानो ऐश्वर्य का परम कवच एवं देवता-गणों से पूजित था। शार्ङ्ग धनुषधारी विष्णु श्रीकृष्ण हरि गोविन्द ने उस चक्र से नृपसत्तम पौंड्रक को मारा। कच्चे मांस को खाने वाला चक्र उस पौंड्रक की देह को विदीर्ण कर पुनः सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के हाथ में आ गया। इसके बाद वह राजा पौंड्रक प्राणरहित हो भूमि पर गिर पड़ा; दुर्विज्ञेय गति वाले प्रभु भगवान् विष्णु हरि पौंड्रक का वध कर यादवों से पूजित हो सुधर्मा नामक अपनी सभा में चले गये।।२१-२५।।



अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः।।१०२।।

वैशम्पायन जी बोले- देवकीसुत भगवान् केशव यथायोग्य सभी वृष्णिवंशियों का अभिवादन कर समय के अनुसार वचन बोले कि मैंने कैलास शिखर को देखा वहाँ मैंने शिव की आराधना की तब नील-लोहित शंकर जी मुझे दर्शन दिये और प्रसन्न होकर मुझ यदुश्रेष्ठ के लिये वर भी प्रदान किये। वैशम्पायन जी बोले कि इसके बाद सभी वृष्णिवंशी देव-देव शंकर जी की प्रशंसा करने लगे। केशव के आश्रम में रहने वाले वृष्णि और यादव सभी सर्वदा कृतकृत्य हो अपने-अपने घरों को चले गये तब जगन्नाथ ईश्वर हरि भी अन्तःपुर में प्रवेश कर रुक्मिणी और सत्यभामा से जैसा कुछ वृत्तान्त था कह सुनाया। वे दोनों प्रसन्न हो प्रीतियुक्त केशव के साथ लिपट गईं। हे राजन्! यह केशव की सब लीलायें मैंने आपको सुना दीं। हे प्रभो! उन देवेश के शासन काल में राज्य निष्कण्ट हो गया था और ब्राह्मणादि सभी प्रजायें बड़े सुख से जीवनयापन करती थीं।।१-२४।।



अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।। १०३ ।।

राजा जनमेजय बोले कि हे तपोधन! शंख, चक्र तथा गदा को धारण करने वाले श्रीकृष्ण का चरित्र मैं पुनः विस्तार से सुनना चाहता हूँ। आपके मुख से केशव की कथा सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। जगत् के कारण हंस और डिम्भक की सभी प्राणियों को आश्चर्य में डाल देने वाली समिति अर्थात् सम्यक् प्रकारेण विनाश कैसे हुआ था? और महात्मा विचक्र नामक दानव के साथ उनका युद्ध कैसे हुआ था? मैंने तो सुना था कि उन दोनों की विचक्र के साथ मित्रता थी। ऐसा वे दोनों राजा ब्रह्मदत्त के पुत्र वीर्य-बल से सम्पन्न तथा भृगु-पुत्र परशुराम के शिष्य थे और सभी अस्त्रों में कुशल वीर एवं शिव से वर पाये हुए थे। हे विप्र! आपने पहले यह कहा था कि हंस और डिम्भक इन दोनों राजाओं का जगत्पति केशव के साथ युद्ध हुआ था सो कैसे? ये दोनों पुत्र किसके प्रसाद से उत्पन्न हुए थे कि जिससे महान् विग्रह हुआ। हे महाराज! महात्मा विचक्र दानव के पास तीक्ष्ण शूलधारी एवं वेगशाली अट्ठासी हजार दानवों की सेना थी। सुनता हूँ कि वह यादवों से युद्ध करने की इच्छा से यादवों के दोष को ढूँढ रहा था और वह दुर्धर देवासुर-संग्राम में देवताओं को जीतता था, उसके वध के लिये केशव भी सदा प्रयत्न करते थे।।१-१०।।



अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।। १०४ ।।

वैशम्पायन जी बोले- हे राजेन्द्र! शाल्व देश में एक ब्रह्मदत्त नामक राजा था, वह पवित्रात्मा और सभी प्राणियों पर दया करने वाला था। उसे गुणों से युक्त दो रानियाँ थीं। हे राजन्! सब कुछ होते हुए वे रानियाँ सन्तानरहित थीं। जैसे स्वर्ग में शची से इन्द्र प्रसन्न रहते हैं वैसे ही वह राजा उन रानियों से प्रसन्न रहा करता था। उस राजा का एक मित्र मित्रसह नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण था, वह महायोगी और वेद-वेदान्त में रत रहने वाला था, पर

वह विप्रेन्द्र भी राजा की ही तरह सन्तानरहित था। वह अनन्य बुद्धि राजा ने उन रानियों के साथ पुत्र के लिये त्रिशूलधारी शंकर जी की दस वर्ष तक पूजा की। और वह ब्राह्मण वैष्णव-योग को करने लगा। हे राजेन्द्र! उस राजा से पूजित हो शंकर जी स्वप्न में दर्शन दिये और राजा से बोले कि हे सुव्रत! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, तुम वर माँगो। तब राजा मुस्कुराता हुआ जगन्नाथ शिव जी से यह कहा कि मुझे दो पुत्र हों, वृषभध्वज शम्भु 'ऐसा ही होगा' कहकर अन्तर्धान हो गये, इसके बाद राजा जग गया, इधर विद्वान् मित्रसह ने भक्तिपूर्वक पाँच वर्ष-पर्यन्त जगत् के नाथ अविनाशी केशव की इसी प्रकार पूजा की तब विप्र के द्वारा पूजित हो देव-देव जनार्दन हरि ने अपने ही समान उसे एक पुत्र दे दिया, शंकर जी के तेज से उन रानियों ने गर्भ धारण कर लिया। और हे महाराज! विप्र की पत्नी ने वैष्णव तेज को धारण किया, इसके बाद राजा की उन पटरानियों ने शंकर जी से निर्मित महाबलवान् दो पुत्रों को उत्पन्न किया। हे राजन्! विनीतात्मा उस ब्रह्माण ने भी एक पुत्रलाभ किया जो कि साक्षात् जगन्नाथ हरि के ही समान था। दोनों राजकुमार और ब्राह्मण-पुत्र तीनों ही समवयस्क थे, वे तीनों सभी वेदों को पढ़कर तथा आन्विक्षिकी को सुनकर धनुर्वेद तथा शस्त्रों को चलाने में निपुण हो गये, राजा का ज्येष्ठ पुत्र हंस था और डिम्भक छोटा था। हे राजन्! ब्राह्मण-पुत्र जनार्दन नाम से पुकारा जाने लगा, इन तीनों कुमारों की आपस में मित्रता हो गई।।१-१९।।



अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः।।१०५।।

वैशम्पायन जी बोले- हे नृपोत्तम! शंकर जी की आत्मा के अंश-स्वरूप महाबुद्धिमान् हंस और डिम्भक ने तप करने का विचार किया। वे सहसा हिमालय के समीप जाकर नीलकण्ठ उमापति शर्व शंकर जी को प्रसन्न करने के उद्देश्य से तप करने लगे। हे राजन्! हम दोनों बल और अस्त्र विद्या में सबसे श्रेष्ठ हो जायँ ऐसा मन में सोचकर वे दोनों प्रयत्नपूर्वक एकाग्र चित्त हो वायु और जल का आहार करते हुए तप करने लगे। उन्होंने अपने पौरुष

से पाँच हजार वर्ष तक तप किया, इसके बाद उनके संयमन से शंकर जी उन दोनों पर प्रसन्न हो गये और अपना दर्शन दिया तब अपने आगे चन्द्रशेखर शर्व को खड़ा देखकर दोनों ने झट नमस्कार किया।।१-१०।।

इसके बाद भगवन् श्री शंकर जी बोले कि तुम दोनों का कल्याण हो, तुम वर माँगो तब उन दोनों ने कहा कि हे भगवान्! यदि आप प्रसन्न हैं तो देवता तथा असुरों के प्रधान सेनापतियों एवं यक्ष, गन्धर्व और दानवों से हम दोनों अजेय हो जायँ, हे सर्वात्मन्! यह हम लोगों का प्रथम वर है। और हे विरूपाक्ष! दूसरा वर यह है कि हम लोगों के पास रौद्रास्त्रों का संग्रह हो जाय, हम दोनों के पास माहेश्वर तथा रौद्र एवं ब्रह्म शिर नामक महास्त्र हो जायँ। हम दोनों का दिव्य तथा अभेद्य कवच एवं धनुष हो, ऐसा ही मेरा फरसा भी रहे हे शर्व महादेव! युद्ध में जाते समय रक्षा के लिये दो भूत सहायता के लिये रहें, देवेश भृङ्गिरिटि हर ने ऐसा ही होगा कह दिया। इसके बाद सभी प्राणियों के हित में रत रहने वाले कुण्डोदर और विरूपाक्ष नामक गण से कहे कि तुम दोनों भूतेश बराबर इनकी रण में सहायता करो। इन बलशालियों के साथ घोर संग्राम में जाया करो, ऐसा कह कर भगवान् शर्व वहीं अन्तर्धान हो गये। हे राजन्! दीर्घकाल के बाद धर्मात्मा महाबुद्धि जनार्दन भी गुरु की सेवा युक्ति से सभी विद्याओं में पारंगत हो गया। वह भी इन्द्रियों को जीत ब्रह्मतत्त्व में परायण हो पीले रेशमी वस्त्र धारण करने वाले हृषीकेश विष्णु की नित्य उपासना करने लगा। इसके बाद हंस और डिम्भक शादीशुदा हो गये और धर्मात्मा जनार्दन का भी विवाह हो गया। सभी यज्ञ में निरत हो नित्य पंच महायज्ञ बलि वैश्वदेव करते हुए अपनी स्त्रियों में रत रहने लगे और गुरुओं की सेवा करने लगे हे राजन्! वे धर्म करना ही परम श्रेष्ठ कार्य है ऐसा मानने लगे।।११-२७।।



अथ षडधिकशततमोऽध्यायः।।१०६।।

वैशम्पायन जी बोले- इसके बाद एक बार वे दोनों जनार्दन को साथ

ले रथ, घोड़ों और हाथियों सहित शिकार खेलने के लिये चल पड़े। वे वन में जाकर तीक्ष्ण बाणों से सिंह, व्याघ्र तथा शूकरों को चारों ओर मारने लगे। वे कुत्तों की सहायता से सर्पों और अन्य मृगों तथा हिंसक जीवों का भी शिकार करने लगे। इसके बाद वे पुष्कर नामक तालाब की ओर चल पड़े। मुनि और सिद्धों से निसेवित उस तालाब के पास पहुँच कर थके होने से सजल प्रदेश के सुन्दर वायु सेवन के लिये वहाँ सुख से बैठ गये। इसके बाद श्रम से पीड़ित सभी लोग तालाब में स्नान कर भूख से दुःखी की भाँति कमलों के कमलगट्टों और उसकी जड़ों का भक्षण करने लगे। जनार्दन के साथ हंस और डिम्भक तालाब के किनारे कुछ देर बैठ थकावट को दूर करते रहे। जनार्दन के साथ हंस और डिम्भक वीर महा धनुष और कुछ बाणों को लेकर हे महाराज! पैदल ही कश्यप मुनि के आश्रम पर चले गये; वहाँ जप और होम में परायण मुनियों के साथ कश्यप जी वैष्णव नामक यज्ञ कर रहे थे।।११-१७।।



अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः।।१०७।।

इसके बाद वे दोनों पुष्कर के उत्तर तट पर जाने का मन में निश्चय किये कि जहाँ पर दुर्वासा ऋषि रहते थे। उन दोनों हंस और डिम्भक महात्माओं ने वहाँ जाकर परम पद की चिन्तना करते हुए महाबुद्धिमान् दुर्वासा को देखा। हे महीपते! यदि वे दुर्वासा क्रुद्ध हो जायँ तो इन लोकों को भस्म करने के लिये समर्थ हो सकते हैं। क्रुद्ध होने पर जिनको देवता भी देखने में समर्थ नहीं हैं जो रोष की मानों मूर्ति तथा विश्वरूप को धारण करने वाले रुद्रात्मा हैं वे उस समय लाल कौपीन वस्त्र धारण किये परम हंस रूप से विराजमान थे, उन्हें देख कर उन दोनों की ऐसी बुद्धि हुई कि।।१-२०।।

यह काषाय वस्त्रधारी, वर्ण वेत्ताओं में श्रेष्ठ कौन महापुरुष है, गृहस्थाश्रम को छोड़ कर यह कौन सा आश्रम है। गृहस्थ ही धर्मात्मा होने से तथा गृहस्थ ही धर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं, गृहस्थाश्रम धर्म का स्वरूप तथा गृहस्थ

ही वर्ण स्वरूप है। गृहस्थाश्रम प्राणियों का जीवन तथा सदा माता की भाँति सभी का पोषण करने वाला है, जो गृहस्थाश्रम को छोड़कर अन्य रूप से रहता है वह महामूर्ख जैसे है। यह पागल है, यह विरूप है अथवा मूर्ख है जो सदा ध्यान करता हुआ लोकों को ठग रहा है। ये मूर्ख कौन हैं जो किसी का ध्यान कर रहे हैं, दूसरे आश्रम की कल्पना करने वाले इन सभी दुरारोह मन्द बुद्धि तथा व्यर्थ के विज्ञान में तत्पर रहने वाले उत्तम कुल के ब्राह्मणों को हम लोग बलपूर्वक गृहस्थाश्रम में स्थापित कर देंगे। आसत् रूप ग्राह से ग्रसित इन अज्ञानी दुर्मतियों को हम लोग शुद्ध करेंगे इनका शासन करने वाला कौन मूर्ख है? यह अच्छा नहीं है अब यहाँ हम लोग शासन करेंगे। हम दोनों धर्म के मार्ग में इन लोगों को स्थापित कर प्रसन्नतापूर्वक चले जायेंगे। हे राजन्! जनार्दन ब्राह्मण के सहित वे दोनों वीर ऐसा सोच कर मोह के वशीभूत हो अथवा भाग्य के नष्ट होने से उस दुर्वासा के समीप जाकर दोनों क्रुद्ध हो अतीन्द्रिय दुर्वासा तथा अन्य धर्म में तत्पर यतियों से बोले।।२१-३०।।



अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः।।१०८।।

हंस और डिम्भक बोले कि– हे लेश मात्र ज्ञान से भी विहीन आत्मा वाले हे ब्राह्मण! तुम्हारा यह कौन व्यवसाय है? हे विप्र! यह कौन आश्रम है? जिसका आपने आश्रय लिया है। गृहस्थाश्रम का परित्याग कर तुमने किस पद की साधना कर ली है? यह तो स्पष्ट रूप से दम्भ ही ज्ञात हो रहा है इसमें शंका करने का कोई कारण नहीं है। हे मूढ़! तुम विरक्त बन कर इन लोको का भी सदा नाश करोगे, यहाँ रहने वाले यतियों के तुम विशिष्ट नेता हो इन सभी को नरक में गिरा दोगे। हे मूर्ख! तुम स्वयं नष्ट होकर दूसरों को भी प्रयत्न पूर्वक नष्ट कर डालोगे। अहो ब्राह्मण! तुम मन्द बुद्धि वाले पर कोई शासन क्यों नहीं करता है? जो तुम अब तक दण्ड से वंचित हो। इससे यह ज्ञात होता है कि तुम्हारा विनेता अर्थात् शिक्षक पाप ही बन गया है इसमें संशय नहीं है। अतः हे विप्र! तुम इस आश्रम को छोड़ कर ग्रहस्थाश्रम को धारण

कर लो और आत्मा को वश में कर लो। हे विप्र! प्रयत्न पूर्वक तुम पञ्च यज्ञों को किया करो इसके बाद परम श्रेष्ठ स्वर्ग में जाकर सुख करो, स्वर्ग में ही बड़ा भारी सुख है। हे विप्र! यदि तुम्हारी जीने की इच्छा है तो यही कल्याण कारक मार्ग है, ऐसा उन दोनों का कहना सुन कर ब्राह्मण जनार्दन यति दूर्वासा को देख तथा प्रणाम कर नम्रता पूर्वक बोला कि हे मन्द तेज वालों दोनों राजाओं! इस प्रकार का वचन मत बोलो। तुम दोनों को इस प्रकार का वचन नहीं सुनाना चाहिये क्योंकि ऐसा वचन इस लोक और परलोक दोनों के लिये भयकारक है; यदि बान्धवों सहित जीने की इच्छा वाला हो तो कौन ऐसा वचन कह सकता है? इससे ज्ञात होता है कि सचमुच ही तुम दोनों मन्द बुद्धियों का यह काल ही आ गया है ब्रह्मदण्ड से आहत तुम दोनों के आयु का शेष भाग समाप्त हो गया है।।१-१०।।

ज्ञान से प्रकाशित चित्त वाले ये यति-गण शुद्ध हैं; ज्ञान की अग्नि से जले कर्म वाले ये यति प्राणों को अपने प्राणों में हवन करते हैं। तुम लोगों को छोड़ कौन इस प्रकार का वचन बोल सकता है! अब मैंने अच्छी तरह समझ लिया कि तुम लोगों का जीवन समाप्तप्राय हो गया है। तुम्हारे देखते-सुनते यहाँ ही मैं अपने प्राणों का त्याग कर दूँगा; ऐसा कह कर जनार्दन नामक ब्राह्मण विलाप करने लगा कि फिर ऐसा न कहना।।११-१९।।



अथ नवाधिकशततमोऽध्याय:।।१०९।।

वैशम्पायन जी बोले- हे राजन्! फिर तो दुर्वासा जी क्रुद्ध हो गये और कहने लगे शंख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले जो यादवेश्वर जगन्नाथ देव केशव हैं वही तुम दोनों के गर्व को दूर करेंगे, इस लोक में जगत्पति यदुश्रेष्ठ के रक्षा करते रहने पर मैं क्या तुम को नष्ट करूँ मेरे विचार से तुम दोनों का जीवन अभी सजीव रहेगा। ऐसे लोकविरुद्ध कर्म से तुम दोनों का बन्धु जो जरासन्ध है वह अब तुम्हें बन्धु कहने की इच्छा नहीं करेगा क्योंकि वह सदा

धर्म मार्ग पर चलने की इच्छा करता है, इस लिये वह फिर तुम्हारा बन्धु नहीं होगा अर्थात् तुम्हारा साथ नहीं देगा। मगध देश के राजा जरासन्ध के साथ तुम दोनों का विरोध हो जायेगा। दुर्वासा में तुम्हारी भक्ति बनी रहे। आप सदा साधु हों। तुम्हारा आज, कल अथवा परसों शंख, चक्र-गदाधारी श्रीकृष्ण से मिलन होगा। इस लोक अथवा परलोक दोनों में साधु का विनाश नहीं है, तुम जाओ अपने पिता से सम्पूर्ण वृत्तान्त कह देना जैसा कि यहाँ हुआ है।।१-२०।।



अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः।।११०।।

वैशम्पायन जी बोले कि इसके बाद काल की प्रेरणा से हंस और डिम्भक ने क्रोध कर शिकहर, कमण्डलु, द्विदल (गौ के कान के आकार का भोजन पात्र) और काष्ठ के दण्ड तथा सभी यज्ञीय मात्र विशेषों को तोड़-फोड़कर हे महाराज! उस स्थान पर व्याधों के द्वारा मांस के टुकड़ों को रिंधवाया इसके बाद उन सबों के चले जाने के बाद यति श्रेष्ठ दुर्वासा वहाँ से भाग कर केशव का दर्शन करने के लिये चल पड़े। वे पाँच हजार यति ईश्वर की आत्मा से उत्पन्न तपो निधि महामुनि दुर्वासा जी को आगे कर चल दिये। वे सभी यतीश्वर द्वारका की बावली में उतर स्नान-ध्यान कर बड़े यत्न से कण्टकों को दूर करने वाले एक श्रीकृष्ण रूप को धारण कर सुधर्मा सभा में बैठे हुए विष्णु का दर्शन करने को उद्यत हो गये।।१-१७।।



अथ एकादशाधिकशततमोऽध्यायः।।१११।।

वैशम्पायन जी बोले- हे राजन्! वहाँ उद्धव आदि प्रमुख यादव वसुदेव को आगे कर उन श्रीकृष्ण के समीप में ही बैठे हुए थे। इसी बीच तापस-गण उस सभा में प्रवेश करने लगे तब द्वारपाल ने पहले ही द्वार पर रोक दिया, वे तापस द्वार पर खड़े हो गये फिर यादवेश्वर की आज्ञा मिलने पर सभा में प्रवेश

किये। यह क्रुद्ध दुर्वासा इस समय क्या करेंगे और इनसे हम लोगों के स्वामी श्रीकृष्ण क्या कहेंगे ऐसा सोच कर सभी यादव हाथ जोड़ कर खड़े हो गये और यह आसन है बस इतना ही वृष्णिवंशी कहे इसके बाद हृषीकेश श्रीकृष्ण स्वयं कुछ झटके से उठ कर उनके आगे चले गये और प्रसन्नता से कहने लगे कि हे विप्र! यह आसन है विराजिये मैं आपकी सेवा में आज बड़े भाग्य से खड़ा हूँ क्या सेवा करूँ! इसके बाद यति का रूप धारण करने वाले दुर्वासा जी कुछ खिन्नतापूर्वक आसन पर बैठ गये उनके आसन पर बैठ जाने पर मत्सर रहित यति गण भी यथायोग्य आसनों पर सुख से बैठ गये तत्पश्चात् किरीटधारी श्रीकृष्ण ने अर्घ आदि शिष्टाचारों से स्वागत किया। इसके बाद हृषीकेश समर्थ यति दुर्वासा से बोले हे विप्रेन्द्र! कहिये किस लिये आप लोगों का इस स्थान पर आगमन हुआ है, वे जलन की हँसी से हँसते हुए बोले।।१-३०।।

क्रोध से मूर्छित दुर्वासा विष्णु से कहने कि- हे यादवेश्वर! हम नहीं जानते कि ऐसा आप हम लोगों से किस कारण से कह रहे हैं जो शंकर जी से वर पाकर गर्व में छा गये हैं वे दोनों हम लोगों को कष्ट दे रहे हैं। हे केशव! वे दोनों कह रहे हैं कि गार्हस्थ्य धर्म ही सदा कल्याणकर है, अतः तुम सभी गार्हस्थ्य धर्म को ग्रहण कर लो। दोनों बहुत प्रकार कटु वचन कहते हुए मेरे आश्रम में यतियों को कष्ट देने के लिये दौड़-दौड़ा मचा दिये वे बहुत सी अनुचित बातों को बोलते हुए हर तरह से हम लोगों को धमकाने लगे। हे देव! उन दोनों द्वारा और दूसरा किया हुआ असहनीय पाप कहता हूँ। दे देव! देखिये यह हजारों टुकड़े किये इस शिकहर को, काष्ठ के पात्र को, द्विदल को तथा बहुत से वेणु-दण्डों को, इसके आलावे उन दोनों के और अन्य साहसिक कर्म को देखिये कि बहुधा कौपीनों को चिथड़े-चिथड़े कर दिये हैं जो हम लोगों का बड़ा भारी धन कहलाता है हे जगत् के स्वामिन्! कमण्डल को ऐसा कर दिये हैं कि अब केवल नीचे का कपाल मात्र ही शेष रह गया बाकी डोंटी और हाथ में पकड़ने वाले ऊपरी भाग को छिन्न-भिन्न कर दिये हैं।।३१-६०।।

क्षात्र व्रत में स्थित होकर यदि आप स्वयं नहीं रक्षा करते हैं तो यह एक

विचित्र से भी विचित्र बात है क्योंकि हे देव! अहर्निशि सदा आप ही रक्षा करने वाले हैं। हे विभो! हम लोग वस्तुतः मन्दात्मा तथा मन्द भाग्य वाले क्या करें। हे जगत्पते! आज हम लोग किसकी शरण जायँ यह आप ही कहें। यदि वे दोनों हंस और डिम्भक जीवित रह गये तो ये तीनों लोक नष्ट हो जायेंगे और न ब्राह्मण रह जायेंगे, न क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र ही रह जायेंगे। हे मानव धर्म की रक्षा करने वाले विष्णो! वे दोनों अत्यन्त बली मदमत्त तथा कठोर दण्ड देने वाले हैं उनके सामने इन्द्र के सहित सभी देवता भी टिकने में समर्थ नहीं हैं। हे हरे! उन जोड़ रहित योद्धाओं के सामने आप ही सर्वथा टिक सकते हैं। इसलिये हे प्रभो! आप ही उन दोनों वीरों को मारिये और इन लोकों की रक्षा करिये नहीं तो 'आप लोकों की रक्षा करते हैं' ऐसा कहना झूठा हो जायेगा। इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ? आप तीनों लोकों की रक्षा कीजिये- रक्षा कीजिये, ऐसा कह कर क्रोध से व्याकुल दुर्वासा जी चुप हो गये।।६१-७०।।



अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः।।११२।।

वैशम्पायन जी बोले कि- यादवेश्वर केशव यति दुर्वासा के वचन को सुन कर धीरे से श्वास लेकर दुर्वासा को देख कर बोले। आप मुझे क्षमा करें मेरा ही सभी दोष है अब आप मेरी बात को सुनें और सुन कर शान्ति प्राप्त करें। हे विप्र! मैं हंस और डिम्भक दोनों को रण में परास्त करूँगा, चाहे उनको शंकर जी ने वर दिया हो अथवा इन्द्र और कुबेर ने वर दिया हो, चाहे यम अथवा वरुण अथवा ब्रह्मा भी क्यों न वर दिये हों। मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मैं सबल दोनों भाइयों का वध कर लोगों को सुख प्रदान करूँगा। वे अत्यन्त बली और मदमत्त हैं गिरीश के वर से और भी घमण्ड से भर गये हैं, वे दोनों जरासन्ध के हितैषी है, इसलिये थोड़े प्रायस से वे साध्य नहीं हैं। राजा जरासन्ध उनके लिये प्राण तक दे देगा, ऐसा कहने के बाद वे दुर्वासा प्रसन्न हो यादवेश्वर से बोले कि हे श्रीकृष्ण! लोकों के कल्याण करने वाले

आपका कल्याण हो। अज्ञान से अथवा ज्ञान से जो कुछ मैंने कहा है उसे क्षमा करें। हे जगन्नाथ! आपमें और हममें कोई अन्तर नहीं है, इसलिये हे भगवन्! आप मुझे क्षमा करें क्योंकि साधु क्षमा के सागर होते हैं। श्रीकृष्ण जी बोले जो ये ब्राह्मण यति हैं ये सभी आज मेरे द्वारा पूजनीय हैं।।१-२०।।

इन सभी यतियों, ब्राह्मणों और भिक्षुकों को मेरे घर भोजन करना चाहिये; ऐसा कहने पर सभी ब्राह्मण यतियों ने 'ऐसा ही होगा' वचन देकर हरि के घर भोजन करने की इच्छा करने लगे। इसके बाद यति श्रेष्ठों से पूजित हो हरि ईश्वर विष्णु अपने भवन में जाकर विधिपूर्वक चार प्रकार का भोजन बनवा कर सभी यतियों को भोजन कराया। हे जनमेजय! इसके पश्चात् देवेश ने थान से रेशमी वस्त्रों को फाड़-फाड़ कर सभी के लिये दिया तब वे सभी यथायोग्य पहले की भाँति प्रसन्न हो चले गये।।२१-२४।।



अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११३।।

वैशम्पायन जी बोले कि- दुर्वासा जी नारद के साथ वहाँ ही ब्रह्मतत्त्व का चिन्तन करते सुखपूर्वक निवास करने लगे। गोविन्द भगवान् ने भी उन दोनों देवर्षि तथा महर्षि को रहने के लिये कहा था; उसी समय में हंस और डिम्भक अपने पिता बलशाली राजा ब्रह्मदत्त से सभा में यह कहने लगे कि- हे पिता! आप इसी महीने में सुन्दर प्रयत्न से राजसूय नामक महायज्ञ को करें। हम दोनों भाई यज्ञ की सिद्धि के लिये प्रयत्न करेंगे। हे महाराज! आपकी कृपा से आज ही दिशाओं को जीतने में तत्पर हों जायेंगे। हाथी, घोड़े और रथों एवं सैनिकों के साथ हम दोनों यज्ञ के प्रयत्न में लग जायेंगे। हे नृपोत्तम! यज की सिद्धि के लिये आप सभी सामानों को मँगवाइये, तब ब्रह्मदत्त ने कह दिया कि हे महाबाहो! ऐसा ही होगा। इसके बाद हंस ने जनार्दन से कहा हे विप्र! मेरे कहने से शीघ्रतापूर्वक यदुश्रेष्ठ के पास जाओ और यज्ञ के लिये कर के रूप में सभी पदार्थों को माँगो। धर्मात्मा जनार्दन तो जगत् की योनि शंख, चक्र

तथा गदा को धारण करने वाले देव श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिये रोज सपराई किया करता था, आज चलूँगा, कल चलूँगा, परसों चलूँगा इस प्रकार का विचार किया करता था जब उसको हंस के कहने से ऐसा मौका मिल गया तो वह धर्मात्मा द्विज अकेला ही घोड़े पर चढ़ कर प्रातः काल श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिये मन से हरि हृषीकेश का स्मरण करता शीघ्रता से द्वारकापुरी को चल दिया।।१-२८।।



अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः।।११४।।

हे राजन्! जैसे गर्मी के समय में धूप से पीड़ित बटोही प्यास के कारण जल को देख कर दौड़ता है उसी प्रकार विप्र जनार्दन हरि का दर्शन करने के लिये दौड़ने लगा, मुमुक्षुओं द्वारा ध्यान करने योग्य, अप्रमेय, अनादि, अनन्त, स्थूल, सुसूक्ष्म से भी सुसूक्ष्म, एक, अनेक, सबसे आदि में उत्पन्न होने वाले, तीनों लोकों की रचना करने वाले तथा देवताओं द्वारा वन्दनीय अच्युत नाम की ज्योति मेरी आँखों में तथा मेरे हृदय में निरन्तर वास करे। विप्रेन्द्र जनार्दन इस प्रकार सोचता-विचारता अपनी आत्मा को कृतार्थ मान कर उत्तम घोड़े को हाँकता हुआ द्वारकापुरी को गया।।१-४२।।



अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११५।।

वैशम्पायन जी बोले कि वह धर्मात्मा श्रेष्ठ ब्राह्मण जर्नादन अपनी सब बातें द्वारपाल से कह दिया तब द्वारपाल द्वारा आज्ञा पाने पर सुधर्मा सभा में प्रवेश कर सभा में बलराम के साथ सिंहासन पर बैठे हुए देवदेवेश को देखा। मैं जनार्दन नाम से प्रसिद्ध हूँ ऐसा कह कर उसने हरि के चरणों को नमस्कार किया इसके पश्चात् ब्राह्मण ने बलराम जी को शिर से वन्दन किया। हे देवदेवेश! मैं हंस और डिम्भक का दूत हूँ, ऐसा कहते ही विप्रेन्द्र से उस माधव

ने कहा कि हे विप्र! पहले तुम इस आसन पर बैठ जाओ उसके बाद जो कहना हो कहो। तब तथास्तु ऐसा कह कर वह विप्र बड़े आसन पर बैठ गया। हे राजेन्द्र! मधुर वचनों से स्वागत कर हरि विप्रेन्द्र से ब्रह्मदत्त, हंस तथा डिम्भक का कुशल पूछने लगे। हे द्विज! मैं यहाँ से ही बैठे-बैठे उन दोनों के पराक्रम और कर्त्तव्य कार्य को सुन चुका हूँ हे विप्र जनार्दन! तुम्हारे पिता का तो कुशल है न।।१-१०।।

जनार्दन विप्र बोला हे केशव! ब्रह्मदत्त का कुशल है और मेरे पिता का भी कुशल है और हे जगन्नाथ! हंस और डिम्भक का भी कुशल है। श्रीभगवान् बोले हे द्विजोत्तम! हंस और डिम्भक इन दोनों राजाओं ने क्या कहा है? वह सम्पूर्ण बातें हमसे कहो इसमें किसी बात की शंका मत करो। हे द्विजोत्तम! उन्होंने वाच्य, अवाच्य तथा कर्त्तव्य अकर्त्तव्य जो कुछ कहने को कहे हो वह मुझसे कहो क्योंकि मैं सुनकर उसका युक्ति-युक्त विधान बानऊँगा। हे विप्र! तुम सर्वथा दूत बनकर आये हो, इसलिये तुम्हें यह वाच्य है और यह अवाच्य है ऐसा नहीं सोचना चाहिये, दूत का रूप धारण करने के कारण जिस भी कर्म-कार्य का उन्होंने निर्देश किया हो उसे तुम्हें कहना चाहिये। यह बात कहने योग्य है और यह नहीं कहने योग्य है ऐसी शंका तुम्हें न करनी चाहिये, इसलिये हे जनार्दन! उन दोनों ने जैसा कहा हो वैसा ही यहाँ कहो। केशव के इस प्रकार कहने पर विप्र जनार्दन कहने लगा कि हे भगवन्! आप क्यों अनजान की भाँति यह सब बातें कह रहे हैं, आप तो सभी बातों को प्रत्यक्ष रूप से देखने वाले हैं। हे देवेश! यद्यपि आप सर्ववेत्ता हैं तथापि आपने मुझको प्रेरित किया है अतः सुनिये हे माधव! आपने बारम्बार कहने के लिये कहा है, इसलिये मैं कहूँगा। राजा ब्रह्मदत्त राजसूय यज्ञ करेगा, उसी यज्ञ के हेतु हंस और डिम्भक ने मुझे प्रमुख यादवों से कर लेने के लिये और आपको निमन्त्रण देने के लिये भेजा है हे केशव! आपको उसके यज्ञ के लिये बहुत नमक देना चाहिये। इसी कार्य के लिये उन दोनों ने मुझे भेजा है; अतः उनकी आज्ञा से आप कर देवें हे जगत्पते! उनके द्वारा कही गई दूसरी बात को आप सुनें। हे वाग्विभो! केशव! आप शीघ्र ही बहुत सा नमक लेकर जल्द

आइये यही बात उन राजाओं ने कही है। हे राजन्! उन राजाओं के दूत विप्रेन्द्र जनार्दन के ऐसा कहने पर वहाँ श्रीकृष्ण बहुत देर तक हँस कर दूत से बोले। हे द्विजोत्तम! मेरी बात को सुनो तुमने मेरे लिये युक्त ही कहा है, मैं उन दोनों के लिये कर दूँगा क्योंकि वे मेरे राजा हैं और में उन दोनों का कर देने वाला प्रजा आसामी हूँ।।११-३०।।

हे विप्र! यह उन दोनों की ढिठाई है जो मुझसे कर लेना चाहते हैं अहो! यह उन क्षत्रिय पुत्रों की धृष्टता है- उदण्डता है। इससे पहले मुझसे कोई कर माँगा हो ऐसा हमने नहीं सुना है; इस प्रकार दूत से कहने के बाद केशव यादवों से कहने लगे। हे यदुश्रेष्ठों! यह हँसने योग्य बात है कि, जो मुझसे कर माँगा जा रहा है; अब यह राजा ब्रह्मदत्त राजसूय यज्ञ को करेगा और हंस तथा डिम्भक यज्ञ को करायेंगे और यदुश्रेष्ठ मैं उस दुरात्मा के नमक का ढोने वाला मजदूर बनूँगा। क्योंकि मैं वासुदेव उन सबों से पराजित हो गया हूँ इसलिये कर-दाता बन गया हूँ हे यदुश्रेष्ठों! हे यादवों! इस हँसी की बात को सुनें और बार-बार हँसे। इस प्रकार देवेश श्रीकृष्ण के कहने पर बलराम आदि सभी यादव हँसने के लिये उद्यत हो गये और 'श्रीकृष्ण कर देने वाले हैं' ऐसा परस्पर कहते हुए ताली बजा-बजा कर खूब हँसने लगे। हे नृपश्रेष्ठ! ताली के शब्द से और हँसी के शब्द से मानों सभा का आकाश भर गया अर्थात् वह सभा गूँज गई वह ब्राह्मण भी अपने हितैषी श्रीकृष्ण को आनन्दित करता हुआ कहने लगा कि, अहो! यह अत्यन्त कष्ट की बात है कि जो मैंने दूत का कार्य किया वह इस लज्जा से चुप हो नीचे को मुख कर लिया।।३१-३९।।



अथ षोडशाधिक शततमोऽध्यायः।।११६।।

वैशम्पायन जी बोले कि- उन यादवों के इस प्रकार हँसी करते समय केशि-हन्ता केशव ने दूत से कहा कि हे द्विज! अब मेरे कहने से शीघ्र ही जाओ और हंस तथा डिम्भक से कहो कि शार्ङ्ग धनुष से छूटे हुए पत्थर पर तेज किये

गये तीक्ष्ण बाणों के द्वारा मैं कर दूँगा। अथवा शान पर चढ़ाई हुई तलवार से उन महात्माओं को कर दूँगा अथवा चक्र उनके शिर का छेदन कर बलिदान रूप कर को देगा। जिन रुद्र ने तुम दोनों को ढीठ, उदण्ड बनने में कारण रूप वर को दिया है यदि वे भी तुम दोनों की रक्षा करेंगे तो भी मैं उन रुद्र को जीत कर तुम दोनों को मार डालूँगा। ऐसा कोई देश उन्हें निश्चित करना चाहिये कि जहाँ पर हम लोगों से मुठभेड़ हो जहाँ पर वे संग्राम करने का निश्चय करेंगे वहाँ ही मैं अपनी सेना और वाहन के साथ चला जाऊँगा। हे विप्र! तुम उनसे कहना कि– आप दोनों राजे निर्भय हो सेना सहित पुष्कर, प्रयाग अथवा मथुरा में ही चले जाओ वहाँ पर मैं भी सेना सहित चला जाऊँगा अब इसमें कुछ सोच-विचार की बात नहीं रह गई है। हे विप्र! यदि तुम मित्र भाव से ऐसा न कह सको तो मुझसे साफ कहो। क्योंकि जिस बात को तुम नहीं कह सकोगे उसे सात्यकि तुम्हारे साथ जाकर कहेंगे हे द्विज! तुम्हें केवल साक्षी मात्र रहना है। हे विप्रेन्द्र! यह मैं जानता हूँ कि तुम्हारे अन्दर मेरा स्नेह सदा रहता है, इसलिये तुम इस दुःख से व्याप्त संसार में विजयी होकर रहोगे। हे जनार्दन! तुम सदा नित्यप्रति मेरी कथा में परम प्रीति वाले होओ।।१-९।।



अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११७।।

वैशम्पायन जी बोले कि श्रीकृष्ण जी ब्राह्मण जनार्दन से ऐसा कह कर पुनः सात्यकि से बोले कि हे शैनेय! तुम विप्र के साथ जाकर हंस और डिम्भक से मेरे कथनानुसार सन्देश कहो। यादवेश्वर जनार्दन ने उस जनार्दन दूत को शीघ्रता से विदा कर कहने लगे कि अहो! इसकी धृष्टता तो देखो। तब दूत माधव को नमस्कार कर शैनेय के साथ शाल्व नगर को चल दिया। इसके बाद श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता धर्मात्मा ब्राह्मण शाल्व नगर में प्रवेश कर विशाल आसन पर बैठ पुनः सात्यकि को आसन देकर बैठाया, जिस समय शैनेय के साथ ब्राह्मण सुख से बैठा उसी समय हंस और डिम्भक को बुलवा कर उन्हें उन सात्यकि को दिखलाया। और कहा कि सात्यकि दूत बन कर आये हैं यह हरि

की दाहिनी बाँह हैं तब उस ब्राह्मण की इस बात को सुन कर हंस बोला कि इनका समागम पहले कानों से सुन कर मैं दर्शन की अभिलाषा करता था सो आज आँखों से भी इन्हें देख लिया ये धीर-वीर धनुर्वेद, वेद, शास्त्र तथा शस्त्र में भी निपुण हैं ऐसा मैं सुनता हूँ, अब ये दृष्टिगोचर होकर हम दोनों को प्रसन्न कर रहे हैं। वासुदेव और बलभद्र की तो कुशल है? और उग्रसेन आदि सभी सात्वत तो कुशल से हैं? मुस्कुराते हुए सात्यकि ने कहा कि हाँ सभी कुशल पूर्वक हैं, इसके बाद वाक्य-विशारद हंस ने जनार्दन से कहा कि तुमने चक्रधारी श्रीकृष्ण को देखा? हम लोगों का इच्छित कार्य सिद्ध हुआ? ये सभी बातें कहो व्यर्थ में समय न बिताओ।।१-१४।।



अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः।।११८।।

वैशम्पायन जी बोले- हंस के इस प्रकार पूछने पर नारायण की सदा स्तुति करने वाला धर्मात्मा वीर जानर्दन हँसता हुआ बोला। हाथों में शंख तथा श्रेष्ठ चक्र को धारण करने वाले जनार्दन को मैंने देखा। हे नृपोत्तम! आपको अब इस कार्य को बन्द कर देना चाहिये। हे हंस श्रीकृष्ण से कर लेना चाहिये यह कथा अर्थात् बात निवृत्त हो गई अर्थात् समाप्त हो गई। कर लेना तो दूर रहा वे तुम्हारे दण्ड का उपाय सोच रहे थे, इस दण्ड के विषय की सम्पूर्ण बातें तुमसे सात्यकि कहेंगे। इन सब बातों को सुन कर हंस ने कहा- हे ब्राह्मण! तुम अपने यथेप्सित देश को चले जाओ अर्थात् मेरे राज्य को छोड़ दो तुम अपनी इच्छा के अनुसार भूमि पर चले जाओ तुम्हारे लिये मेरे राज्य को छोड़ कर सम्पूर्ण पृथ्वी खाली है। अब मैं ग्वाले के पुत्र को जीत कर और बहुत से यादवों को मार कर राजसूय यज्ञ को अवश्य कराऊँगा, इस प्रकार ब्राह्मण से कहकर हंस पुनः सात्यकि से कहने लगा कि हे यादव पुत्र! तुम यहाँ किसलिये आये हो? नन्द के पुत्र ने क्या कहा है? और उसने मेरे कर के बारे में क्या आदेश दिया है।।१-३०।।

सात्यकि बोले- हे हंस! शंख, चक्र तथा गदाधारी के यह सत्य वचन

हैं कि पत्थर पर तेज किये गये शार्ङ्ग धनुष से छुटे हुए तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से तुम्हारे सम्पूर्ण कर को दूँगा अथवा हे हंस! तीक्ष्ण तलवार से तुम्हारे शिर को काटूँगा यही तुम्हारे कर-दान के संग्रह का रूप होगा। हे मन्दात्मन्! यह तुम्हारी धृष्टता अर्थात् ढिठाई है इससे अधिक क्या कहें। हे नृपाधम! देवदेव जगन्नाथ से जो कर की इच्छा करे उसकी जीभ को काट देना यही उसका कर है। हे नराधम! उन श्रीकृष्ण के शार्ङ्ग धनुष तथा शंख के शब्द को सुन कर रण में कौन शत्रु जीवित रहने की इच्छा कर सकता है और शंकर जी के वार-दान के घमण्ड से कौन इस प्रकार उनसे कह सकता है यदि इच्छा कर लेन्रे ही पर है तो तुम आज इसी बात पर टिके रहो। बलभद्र आदि हम सभी उनके सहायक हैं। जिन शंकर जी ने वाणी से वर दिया था वे वर देकर बैठे हैं और बैठे रहेंगे तुम दोनों मार डाले जाओगे। जगत्पति ने कहा है कि हम लोगों का उन दोनों से कहाँ संग्राम होगा वे ही बतावें जहाँ लड़ना हो वहाँ सेनाओं का जमावड़ा करते ही मुझे सूचना दें। हे मूढ़! यदि तुम ऐसी इच्छा करते हो तो इस भूतल पर हँसी को प्राप्त होगे, इस प्रकार कहकर वीर सात्यकि हँसते हुए पृथ्वी पर खड़े हो गये।।३१-४८।।



अथ एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।११९।।

वैशम्पायन जी बोले- इसके बाद हे महाराज! हंस और डिम्भक क्रोधित हो गये, रोष से उनके नेत्र व्याकुल हो गये वे सभी दिशाओं को मानो भस्म करते हुए से सभी राजाओं की तरफ देख कर हाथ से हाथ मलते हुए तथा श्रीकृष्ण की बातों का स्मरण करते हुए कहने लगे कि- नन्द का पुत्र कहाँ हैं और बल से उत्कृष्ट बलराम कहाँ है? आक्षेप युक्त इस प्रकार कहते हुए सत्य संगर सात्यकि से बोले कि अरे यादव के बालक! हम लोगों के सामने तू यह क्या कह रहा है? तुम यहाँ से निकल जाओ, तुम इस समय दूत हो; नहीं तो मैं कठोर वचन बोलने वाले तुमको मार डालता। हम दोनों राजे इस सम्पूर्ण जगत् का शासन करने के लिये उद्यत हैं, इस मर्त्यलोक में कौन

ऐसा मनुष्य है जो कर दिये बिना जीवित रह सकता है। सभी गोपालों को मार कर और बहुत से यादवों को बन्दी बना कर मैं कर लूँगा। हे नराधम! अब तू चला जा। तुम दूत बन कर अवध्य हो गये हो इसलिये बहुत सी उटपटाङ्ग बातें बोल रहे हो। तुम्हें मरण से भय नहीं है, अतः चले जाओ। हे नृप! इसके बाद हंस कहने लगा कि कल अथवा परसों हम लोगों का पुष्कर क्षेत्र में संग्राम होगा तब मैं केशव और बलराम का पराक्रम देखूँगा तथा जिन राजाओं का तुमने नाम लिया है उनका भी जो बल है उसको भी संग्राम में देखूँगा। सात्यकि बोले- हे नृप हंस! मैं कल अथवा परसों तुम दोनों को मारने आऊँगा। यदि मै दूत नहीं होता तो आज ही तुम दोनों का वध कर डालता। अब तीनों लोकों के गुरु श्रीकृष्ण तीक्ष्ण बाण से तुम दोनों के घमण्ड को दूर करेंगे, ऐसा कह कर सात्यकि रथ पर सवार हो चल दिये।।१-२१।।



अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२०।।

वैशम्पायन जी बोले कि- श्रेष्ठ शिनिवंशी सात्यकि विष्णु के पुर द्वारका में प्रवेश कर दोनों के वृत्तान्त को जैसा हुआ था कहा। वह सब सुनने के बाद विमल प्रभात होने पर केशव ने सेनापतियों को आज्ञा दिया फिर तो रथ, हाथी और घोड़े वाले अनेक भेरी और धौसों वाली सम्पूर्ण सेना के उत्तम वीर पुरुष कवचादि को पहन सुदृढ़ धनुष ले रथ पर चढ़ सेना के आगे चल पड़े। हे राजन्! महाबली सात्यकि भी धनुष बाण ले सेना के आगे चल पड़े। वे क्रोध से समायुक्त हो शोभा पा रहे थे। अन्य उत्तम शूर-वीर यादव भी महान्-महान् आयुधों को लिये सिंहनाद करते हुए संग्राम करने को चल पड़े। हरि भी धनुष-बाण लेकर सारथी दारुक के द्वारा सजाये गये शार्ङ्ग धनुष के भार को सहन करने वाले भयंकर रथ पर चढ़ कर निकल पड़े। हे राजेन्द्र! उस पुष्कर के तालाब पर उधर के श्रेष्ठ राजे हंस और डिम्भक की प्रतीक्षा में युद्ध के लिये डेरा डाले पड़े हुए थे। इधर से सब यादव भी वहाँ पहुँच कर अपनी-अपनी सुख-सुविधा देख साधुओं की कुटी और मठों पर ठहर गये।

हंस और डिम्भक के आगमन की लिप्सा से भगवान् यथासुख तालाब के तीर पर चारों ओर से ब्राह्मणों की वेद ध्वनि को सुनते हुए बैठ गये।।१-१९।।



अथ एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२१।।

वैशम्पायन जी बोले- उधर से हंस और डिम्भक भी पुष्कर के प्रति प्रस्थान कर दिये। डिम्भक की सहायता के लिये विचक्र नामक दानव एवं दानव की सहायता के लिये राक्षसों के राजा हिडिम्ब चल दिये। जरासन्ध उनकी सहायता के लिये इसलिये नहीं गया कि इसमें पाप होगा। दैत्य और राक्षसों से भरी सेना जब पुष्कर में पहुँच गई तब सेना में अनेकों भेरी, झाँझ और डमरू बजने लगे। अन्यान्य पणव के शब्दों से मिले राक्षसों के नाद से नादित सेना ने पुष्कर के तालाब के तीर पर जाकर युद्ध के लिये उपस्थित केशव को देखा।।१-२७।।



अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२२।।

वैशम्पायन जी बोले- हे राजन्! दोनों सेनायें ध्वज के सहित सज-धज कर उत्साहपूर्वक आपस में विषम युद्ध करने लगीं। दोनों सेनायें बड़े-बड़े परिघों से, गदा तथा शक्तियों से व्याप्त थीं, दोनों ही भेरी और झाँझ के शब्दों से परिपूर्ण थीं तथा दोनों ही पृथ्वी तथा आकाशव्यापी डिमडिम के शब्दों से भर रहा था, दोनों ओर के योद्धा बड़े-बड़े अस्त्रों शूलों, तलवारों तथा धनुषों को धारण किये हुए थे, धनुषों से छोड़े गये बाण शरीर धारियों का भेदन कर उनकी धज्जियाँ उड़ाने लगे। हे महाराज! जैसे कि पहले देवताओं और असुरों का युद्ध हुआ था वैसे ही पुष्कर तीर्थ में बड़ा ही अद्भुत महायुद्ध होने लगा।।१-२५।।



अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२३।।

श्रीकृष्ण विचक्र को लड़ाने लगे, बलभद्र हंस से और सात्यकि डिम्भक से तथा वसुदेव और उग्रसेन मनुष्यभक्षी हिडिम्ब से भिड़ गये। हे राजेन्द्र! शेष योद्धा अन्य वीरों के साथ उत्साहपूर्वक युद्ध करने लगे, वासुदेव ने तीक्ष्ण धार वाले बाणों से रण में विस्मय प्रकट करते हुए दैत्य की छाती पर तिहत्तर बार मारा, इसके बाद दानव विचक्र ने भी धनुष को कर्णपर्यन्त खींचकर एक तीक्ष्ण बाण से इन्द्र के देखते-देखते श्रीकृष्ण की छाती में मारा। उस बाण से विद्ध हो देवदेवेश जनार्दन रुधिर का वमन वैसे ही करने लगे कि जैसे आदि काल में प्रजा ने शोणित वमन किया था। इसके बाद हृषीकेश क्रुद्ध हो क्षुरप्र नामक बाण से उसकी ध्वजा को काट गिराये और चार बाणों से चारों घोड़ों को एवं तीन बाणों से उसके सारथी को मार डाले। तत्पश्चात् जैसे तारकामय संग्राम में शंख को बजाया था वैसे ही हरि ने शंख को रण में बजाया तब तो क्रोध से मूर्छित हो विचक्र सहसा रथ से कूदकर नीचे आ गया। पराक्रमशालिनी महाघोर एवं दुःसह गदा को ग्रहण कर दैत्येन्द्र ने उसी से केशव के किरीट पर मारा फिर ललाट पर मार कर सिंहनाद के समान गर्जने लगा, इसके बाद वह दनुज बड़ी भारी शिला को उठा दस बार घुमाकर केशव की छाती पर चलाया, केशव ने उस आती हुई शिला को देखकर हाथ से पकड़ कर उसी से दैत्य को मारा, वह दैत्य घायल हो भूमि पर गिर पड़ा, वह मरणोन्मुख की भाँति धीरे-धीरे श्वास लेता हुआ गिर पड़ा।१-१०।।

दैत्य चेतना को पाकर क्रोध से दूना भभकता हुआ भयंकर परिघ को लेकर जनार्दन से कहने लगा कि हे गोविन्द! इसी से तुम्हारे उत्पन्न हुए घमण्ड को नष्ट करूँगा; देवासुर संग्राम में तुमने हमारे पराक्रम को देखा है। हे जनार्दन! वे ही मेरी ये बाहुयें हैं, हे वीर! तू मेरे बल को जानकर भी मुझसे युद्ध कर रहे हो। हे महाबाहो! मेरे हाथ से निकले हुए परिघ का वारण करो तो जानें। ऐसा कह कर सबके देखते-देखते दैत्य ने चक्रधारी लोकेश श्रीकृष्ण पर परिघ को फेका। श्रीकृष्ण ने उस परिघ को हाथ से पकड़ कर "तुम अब

मार डाले गये'' ऐसा कहते हुए तेज खड्ग से परिघ के तिल के समान टुकड़े कर डाले। इसके बाद दैत्य सैकड़ों बड़ी-बड़ी शाखाओं वाले वृक्ष को उखाड़ कर उसी से श्रीकृष्ण को मारने लगा। श्रीकृष्ण ने खड्ग से उसके भी तिल के समान टुकड़े कर डाले, ऐसे अधिक समय तक माधव विष्णु दैत्य के साथ खेल करने के बाद तीक्ष्ण बाण को लेकर दैत्य को मार डालने की इच्छा करने लगे। हरि ने उस बाण को आग्नेयास्त्र से अभिमंत्रित कर दैत्य पर छोड़ा। सबके देखते-देखते वह बाण दैत्य को भस्म कर पहले की भाँति पुनः भगवान् के हाथ में चला आया। इसके बाद मरने से बचे हुए दैत्य समुद्र की तरफ भाग गये, समुद्र को जाने वाले दैत्य आज तक नहीं लौटे।।११-२२।।



अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२४।।

वैशम्पायन जी बोले- बलधारियों में श्रेष्ठ धर्मात्मा बलदेव जी शीघ्र ही धनुष लेकर दस बाणों से हंस को मारा, इसके उत्तर में हंस ने पाँच बाणों से वेधा परन्तु इसी बीच हलधर ने उन बाणों को काट कर फिर दस बाणों से हंस को वेधा। फिर बलपूर्वक एक बाण से हंस को ललाट में मारा, उस प्रबल बाण के लगते ही हंस की चेतनाशक्ति समाप्त हो गई तब वह रथ के विश्रामस्थल में अधिक समय बैठकर तूण से बाण को निकाल लिया। हंस चेतनाशक्ति को प्राप्त कर उस बाण से यदूत्तम बलराम को वेध देवताओं को विस्मित करता हुआ रण में सिंहनाद करने लगा। दस बाण से विद्ध हो मधुवंशी बलराम क्रुद्ध हो गये, वे रणाङ्गण में अत्यन्त गर्म रक्त को वमन करते तथा श्वास लेते हुए बैठ गये। रुधिर से लथ-पथ शरीर बलराम जी रोली के रंग से भींगे हुए-से शोभित हो रहे थे, इसके बाद नील वस्त्रधारी मधुवंशी हलधर हंस की भाँति चाल वाले वीर हंस को सैकड़ों-हजारों बाणों से व्यथित करने लगे, हे राजन्! बलराम द्वारा छोड़े गये वे तीक्ष्ण और भयंकर बाण घोड़ों के ऊपर तथा रथ, ध्वजा, धनुष, चक्र एवं बाण सर्वत्र गिरने लगे और हंस को पीड़ा देने लगे। हे महाराज! इसके बाद बल के मद से मत्त समय को

पहचानने वाला हंस क्रुद्ध हो एक बाण से बलराम को वेध कर ध्वजा को काट गिराया। और चार बाणों से घोड़ों को मार कर सारथी को प्रेताधिप यमराज के हवाले कर दिया तब तो हलधर गदा को ग्रहण कर महारण में उसके ऊपर टूटे पड़े, महाबाहु हलधर शेषनाग की भाँति फुफुकार छोड़ते हुए गदा से रथ, ध्वजा, चक्र, घोड़ों और सारथी (हंस को छोड़) सभी को तिल के समान टुकड़े-टुकड़े कर दिये और बार-बार गर्जने लगे।।१-१०।।

इसके बाद बली बलराम गदा से हंस के ऊपर प्रहार किये तब वह हंस भी गदा लेकर रथ से कूद पड़ा। फिर तो वे दोनों विख्यात तेजस्वी महाबाहु महारथी हंस और हलधर महारण में गदा-युद्ध करने लगे। परस्पर वध की इच्छा वाले दोनों पराक्रमी महायुद्ध में दो हंसों के समान उछल-उछल कर अत्यन्त अद्भुत युद्ध करते हुए खूने-खून हो गये। जैसे पहले देवासुर-संग्राम में इन्द्र और वृत्रासुर आकाश में लड़ते हुए रुधिर से सन गये थे वैसे ही वे दोनों सर्वाङ्ग रुधिर से लाल हो गये। वे दोनों बलपूर्वक परस्पर एक-दूसरे को खिन्न करने लगे, इसके बाद बलभद्र दाहिने पैंतरे पर चले गये क्योंकि राजेन्द्र हंस ने स्वयं बायाँ पैंतरा ग्रहण कर लिया था, हाथी के समान पराक्रम वाले दोनों गदाओं से एक-दूसरे को घायल करने लगे। वे दोनों महाबाहु एक-दूसरे पर मरण के प्रहार करने लगे, प्राणों को अन्त कर देने के लिये जैसा भी प्रयास साध्य था करने लगे, दोनों का वह बड़ा भारी युद्ध देवासुर-संग्राम की भाँति होने लगा। उन दोनों के महा समर को देखकर देवता और मुनि विस्मय में पड़ गये। देवता, गन्धर्व तथा किन्नर विस्मय के वशीभूत हो ऐसा कहने लगे कि अहो! इस प्रकार का युद्ध आज तक न देखा गया, न सुना गया। दोनों परस्पर शाबसी देकर उत्तम युद्ध कर रहे थे, इसके बाद उस महायुद्धस्थल में दक्षिण को उत्तम समझने वाला हंस दाहिने पैंतरे पर हो गया और बलवान् बलराम प्रयोजन को अत्यन्त सिद्ध करने वाले बायें पैंतरे पर हो गये, देवताओं के समक्ष रणवेत्ताओं में श्रेष्ठ हंस और बलराम रण में अपने घुटनों को मोड़-मोड़ कर गदा से लड़ने लगे।।११-२२।।



अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२५।।

वैशम्पायन जी बोले- इधर डिम्भक और सात्यकि एक दूसरे के वध के लिये युद्ध करने लगे; वे दोनों ही बली और क्षत्रियों में विख्यात वीर थे। दोनों ने महा युद्ध में परिश्रम किया था और सदा वृद्धों की सेवा करने वाले थे, वीर सात्यकि ने वेद पारगामी डिम्भक को तीखे दस बाणों से मुँह पर और छाती पर मारा तब उस सात्यकि द्वारा घायल हो क्षत्रिय श्रेष्ठ डिम्भक गर्वित हो समर में पाँच हजार बाणों से सात्यकि को वेधना प्रारम्भ किया पर वृष्णि वीर सात्यकि उन बाणों को विफल करते हुए ललकार कर सात बाणों से डिम्भक को वेध दिये। तब सात बाणों से विद्ध हो नृप श्रेष्ठ डिम्भक फिर सैकड़ों-हजारों बाणों से सात्यकि को वेधा। इसके बाद पराक्रमी यादव सात्यकि ने अर्धचन्द्र नामक तीक्ष्ण बाण से उस डिम्भक के उस वरदानी धनुष को काट दिया। तब विक्रमी वीर डिम्भक ने दूसरे धनुष को ले तेल से धुले क्षुरप्र नामक बाण से सात्यकि को वेधा। हे राजन्! उस बाण से घायल हो सात्यकि रुधिर का वमन करने लगे, वे उस समय बसन्त ऋतु में फूले हुए पलाश वृक्ष की भाँति सुशोभित होने लगे। फिर सात्यकि ने उस धनुष को भी काट गिराया कि जिसको डिम्भक ने उठाया था। इसके बाद डिम्भक ने तीसरे धनुष को उठा कर सभी क्षत्रियों के देखते-देखते यादवेश्वर सात्यकि को तीक्ष्ण बाणों से वेधने लगा तब पुनः दुरात्मा डिम्भक के उस धनुष को सात्यकि ने तीक्ष्ण पुंख वाले बाण से काट दिया। इसके बाद नृपोत्तम डिम्भक ने फिर चौथे धनुष को उठा लिया।।१-१०।।

हे राजेन्द्र! उस धनुष द्वारा फिर सात्यकि को वेधा इसी प्रकार उसने कुल एक सौ दस धनुष उठाये पर क्षत्रियों के देखते-देखते सभी को काट कर शिनिपुत्र सात्यकि गर्जने लगे, इसके बाद डिम्भक और सात्यकि दोनों ही धनुषों का परित्याग कर अत्यन्त तीक्ष्ण खड्गों को ग्रहण कर युद्ध के लिये उद्यत हो गये। डिम्भक और सात्यकि ये दोनों ही खड्ग वेत्ताओं में श्रेष्ठ थे। हे नृपसत्तम! दुःशासन का पुत्र, महाभाग सोमदत्त का पुत्र, अभिमन्यु, विक्रान्त

तथा नकुल ये खड्गधारियों में युद्ध करने में उत्तम कहे गये हैं। इन छवों में भी ये दोनों श्रेष्ठ थे। युद्ध की लालसा वाले वे दोनों तलवार से युद्ध करने लगे और वे खड्ग योधा भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, प्रविद्ध, बाहुनि, सृत, आकर, विकर, भिन्न, निर्मर्याद, अमानुष, संकोचित, कुलचित, सव्यजानु, विजानु, आहिक, चित्रक, क्षिप्र, कुसुम्ब, लम्बन, घृत, सर्पबाहु, विनिर्बाहु, सव्येतर, अथोत्तर, त्रिबाहु, तुङ्गबाहु, सव्योन्मत, उदासि, पृष्ठतः (पीछे की ओर हटने वाला) और प्रथित (विख्यात) एवं यौधिक तथा प्रथित इन बत्तीस पैंतरों को दिखाये (जैसा कि खड्ग शास्त्र में उल्लेख है) वे बारम्बार एक दूसरे पर प्रहार करते हुए श्रम को नहीं प्राप्त हो रहे थे।।११-२०।।

हे महाराज! उन दोनों पर परम सन्तुष्ट हो क्षत्रिय प्रशंसा करने लगे कि अहो! इन दोनों बाहुशालियों के वीर्य और धैर्य को धन्यवाद है। ये ही रण में लड़ने लायक हैं। ये दोनों ही खड्ग विद्या और धनुर्विद्या में पारंगत हैं, इसमें एक तो गिरीश शंकर जी का और दूसरा बुद्धिमान् द्रोणाचार्य का शिष्य है। हे महाराज! अजुर्न, सात्यकि और जगत्पति वासुदेव ये तीनों संग्राम करने में विख्यात कहे गये हैं। और डिम्भक, शक्तिभृत (कार्तिकेय) तथा शर्व (शंकर जी) ये तीनों वीर्य और बल में सर्व प्रसिद्ध कहे गये हैं। देवता, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष तथा महासर्प युद्ध देखने की लालसा में आकाश में स्थित होकर आपस में बातें कर रहे थे।।२१-२७।।



अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२६।।

वैशम्पायन जी बोले कि- वसुदेव और उग्रसेन वृद्ध होने के कारण युद्ध से निवृत्त हो गये थे उनके सभी अंग सिकुड़ गये थे और शिर के बाल पक गये थे। फिर भी ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न तथा राजनीति में विशारद वे दोनों महा समर में दुरात्मा राक्षस हिडिम्ब से लड़ने लगे। वे दोनों वृद्ध पुरुषभक्षी राक्षसेन्द्र दुरात्मा हिडिम्ब को रण में अनेकों बाणों से घायल करने

लगे। हे राजन्! वसुदेव और उग्रसेन विकराल दशा को देख कर डर गये। शस्त्र रहित वे वृष्णि श्रेष्ठ सभी तरफ से निराश हो दिशाओं में भागने लगे इसी बीच प्रतापी बलराम ने उन्हें भागते देख कर युद्ध करते हुए हंस को श्रीकृष्ण के हवाले कर वहाँ से निकल कर उस दुरात्मा राक्षस का आगा रोक कर कहने लगे कि- हे राक्षस! तुम ऐसा साहस न करो इन दोनों श्रेष्ठ राजाओं को छोड़ दो। हे राक्षस! मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ तुम मुझ शत्रुघाती से युद्ध करो। तब यमराज के समान मुख फाड़े हुए दुष्टात्मा हिडिम्ब की बड़ी भयानक मुष्टिका के लगने से अनिन्दित बलराम जी क्रुद्ध हो गये और उसी प्रकार मुष्टिका से प्रतिउत्तर में राक्षसेश को मारा। तब नर-वीर और राक्षस-वीर इन दोनों ही का परस्पर मुष्टिका युद्ध प्रारम्भ हो गया। जिस समय वे दोनों नर-सिंह और राक्षस-सिंह युद्ध-स्थल में युद्ध करने लगे उस समय उनका चट-चटा शब्द बड़ा ही भयानक उत्पन्न होने लगा। इसके बाद राक्षसराज ने राम के वक्षस्थल देश में इन्द्र के वज्र के समान मुष्टिका से मारा तब साक्षात् बली बलराम भी प्रयत्नपूर्वक मुष्टिका बाँध कर अमरद्वेषी हिडिम्ब की छाती में मारे और दोनों थप्पड़ों से उसके मुख पर मार-मार कर राक्षस को घायल कर दिया। थप्पड़ों के आघात से आहत हो राक्षसेश्वर हिडिम्ब घुटनों के बल भूमि पर गिर पड़ा और प्राण को छोड़ दिया।।१-४०।।

इसके बाद राम अपने बाहुओं से पकड़ कर राक्षस को उठा पद-पद पर घुमा कर बहुत देर तक अपने बल को दिखाते हुए उसकी छीछा-लेदर किये इसके बाद सभी के देखते-देखते राक्षसेन्द्र को उठाकर हलायुध ने ढाई कोस की दूरी पर फेंक दिया, इस प्रकार वह राक्षसश्रेष्ठ प्राण-रहित हो इस संसार से कूच कर गया। उस महारण में जो राक्षस मरने से बच गये थे वे बलराम से भयभीत हो इधर-उधर दिशाओं मे भाग निकले। इसके बाद अंशुमाली भगवान् दिनेश जो प्रजाओं के चक्षु कहलाते हैं वे सहस्त्रकिरण सूर्य अपने प्रकाश का हरण कर अस्ताचल को चये गये; तत्पश्चात् थोड़ा-थोड़ा अन्धकार का भी समावेश होने लगा। प्रजाओं के स्वामी जगद्गुरु विश्वमुख सूर्य के समुद्र जल में प्रविष्ट हो जाने पर हे नृपोत्तम! नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा का

उदय हो गया जिससे सन्ध्या का अन्धकार नष्ट हो गया। हे राजन्! उस समय श्रेष्ठ राजे ''प्रात:काल होने पर किन्नरों के गीत से नादित गोवर्द्धन पर्वत पर श्रेष्ठ रण होगा'' ऐसा कहते हुए वहाँ रणोत्सव में विश्राम की घोषणा कर दिये।।४१-४७।।



अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्याय:।।१२७।।

वैशम्पायन जी बोले- हे राजन्! रात्रि में ही हंस और डिम्भक ये दोनों सेनाओं सहित गोवर्धन नामक पर्वत पर चले गये। और केशिहन्ता केशव प्रात:काल विमल सूर्य के उदित हो जाने पर शीघ्रता से गोवर्धन पर्वत को गये। तत्पश्चात् शिनि-पुत्र सात्यकि बलराम और सारण आदि यादवों के साथ गन्धर्व और अप्सराओं से प्राय: नादित उस गोवर्धन पर्वत को चल दिये। हे राजन्! वह गोवर्धन पर्वत बहुधा गौवों और सेनाओं से नादित रहा करता था। हे नृपश्रेष्ठ! पर्वत की उत्तरी तराई मे यादवों के पहुँचते-पहुँचते यमुना नदी के समीप युद्ध छिड़ गया। वसुदेव ने सात बाणों से हंस और डिम्भक को मारा, सारण ने पच्चीस बाणों से और कङ्क ने दस बाणों से मारा। हंस और डिम्भक से यादवों के साथ चारों ओर से युद्ध होने लगा, इसी बीच उग्रसेन ने तिहत्तर झुके पर्वों वाले बाणों से मारा। हे राजन्! विराट ने तीस बाणों से मारा और सात्यकि ने भी सात बाणों से वेधा, विपृथु ने अस्सी तथा उद्धव ने दस बाणों से मारा। हे राजन्! प्रद्युम्न ने तीस और साम्ब ने सात बाणों से मारा तथा अनाधृष्टि ने एकसठ झुके पर्वों वाले बाणों से मारा। हे राजन्! वे सभी यादव कायरता रहित हो उन दोनों के साथ वासुदेव के देखते-देखते अत्यन्त अद्भुत घोर युद्ध करने लगे। हे महाराज! वे दोनों हंस और डिम्भक भी बलदर्पित सभी यादवों को और श्रीकृष्ण की तरफ के राजाओं को बाणों से प्रतिउत्तर में वेधने लगे, प्रत्येक को कोमल तथा तीक्ष्ण दस-दस बाणों से वेधा।।१-१०।।

वे दोनों तीक्ष्ण बाणों से यादवेश्वरों को अत्यन्त ही घायल कर दिये,

वे सभी यादव बहुत से रक्तों का वमन करते हुए चैत्र मास में फूले हुए पलाश के वृक्षों की भाँति लालो-लाल हो गये और यादव भयभीत हो भागने की इच्छा करने लगे। हे राजन्! इसी बीच वसुदेव के पुत्र वासुदेव और हलधर युद्ध में रत उन धनुषधारियों के सामने डट गये। और कार्तिकेय तथा इन्द्र की भाँति आकाश में अद्भुत युद्ध करने लगे; गन्धर्वों के साथ सिद्ध, यक्ष तथा महर्षिगण विमान में बैठकर देवासुर-संग्राम की भाँति उनके युद्ध को देखने लगे। इसके बाद हे राजन्! भूतेश्वर के रूप में शंकर जी के दो दूत प्रकट हो गये। शूलधारी ने युद्ध में हंस और डिम्भक की रक्षा के लिये भेजा था; उस समय हंस और वासुदेव ये दोनों समर्थशाली आपस में युद्ध करने लगे। बलराम और डिम्भक भी युद्ध की आकांक्षा से भिड़ गये, इसके पहले सभी महारथियों ने अस्त्र-शस्त्र तथा बल से शून्य हो अपने रथों पर बैठे-बैठे शंखों को बजाया था, कमलदललोचन हृषीकेश श्रीकृष्ण ने भी सभी को विस्मित करते हुए महाध्वनिकारी पाञ्चजन्य शंख को बजाया। वे दोनों दूत महाभयंकर भूतों के रूप में लम्बे पेट तथा शरीर वाले थे।।११-२०।।

हे महाराज! वे त्रिशूल लेकर केशव पर टूट पड़े और हे राजन्! वे त्रिशूल से यादवेश्वर को मारने लगे। देवता और गन्धर्वों के समीप उन शिव-दूतों से विष्णु अच्छी तरह घायल हो गये फिर तो वे कुछ मुस्कुराते हुए शीघ्र ही किंचित् उछलकर महारथी जनार्दन केशव ने रथ से दोनों दूतों को पकड़ कर खिलौने की भाँति सैकड़ों बार घुमा कर कैलास पर्वत पर फेंक दिया। हे महामते! वे कैलास के शिखर पर गिर कर श्रीकृष्ण के उस अद्भुत कर्म को देखकर परम विस्मय को प्राप्त हुए, इधर हंस उस कर्म को देख मारे क्रोध के लाल-लाल आँखे कर लिया। और देवताओं के देखते-देखते श्रीकृष्ण से बोला कि हे केशव! तुम किस लिये राजसूय यज्ञ में विघ्न डाल रहे हो। मेरे पिता राजा ब्रह्मदत्त उस राजसूय यज्ञ के कर्ता हैं, इसलिये अपने वित्त के अनुसार यदि मुझे कर दे दोगे तो अपने प्राणों की रक्षा कर पाओगे। अथवा हे नन्दनपुत्र! तुम क्षण मात्र ठहरे रहो मेरे अत्यन्त अधिक बल को समझ कर तब कर देना इसके बाद मेरे पूजनीय पिता यज्ञ करेंगे। जैसे देवताओं के

त्रिशूलधारी शंकर जी स्वामी हैं वैसे ही मैं राजाओं का सर्वथा ईश्वर हूँ, इस तुम्हारे अतुलनीय बल को मैं संग्राम में नष्ट कर डालूँगा।।२१-३०।।

हे राजन्! हंस ने ऐसा कहकर शाल के खम्भे के समान लम्बे बाण सहित धनुष को अपने बल भर खींच कर बाण से केशव के ललाट पर मारा और वह अपने को सुन्दर निशानेबाज हो गया, उस समय श्रीकृष्ण ने सात्यकि से कहा कि हे समर्थशालिन्! अब मेरे रथ को तुम हाँको। जब ईश्वर श्रीकृष्ण ने उस दारुक को पीछे की ओर करके सात्यकि को रथ हाँकने को कहा तब श्रीकृष्ण द्वारा आदेश पाकर शीघ्र ही सात्यकि रथ को हाँकते हुए बहुत से पैतरों को दिखाने लगे; हंस के बाण से अच्छी तरह घायल हुए अव्यय ईश्वर हरि एक बाण में आग्नेयशास्त्र को अभिमन्त्रित कर सात्यकि को आगे बढ़ने का आदेश देते हुए हंस से बोले कि हे पापात्मा राजेन्द्र! अब इसी से तुमको भस्म करूँगा यदि समर्थ हो तो इसका वारण करो, तुम्हारे व्यर्थ के बकवाद से कुछ अर्थ नहीं; बातें बस रहने दो, हे शठ! तू सदा क्षत्रिय हो अब युद्ध करो। यदि तू मुझसे कर चाहता है तो पराक्रम दिखा, हे हंस! पुष्कर क्षेत्र में संस्थित यतियों को तुमने कष्ट पहुँचाया है अतः तू नराधम है। हे नराधम! साक्षात् रूप से मेरे विराजमान रहने पर भी तू ब्राह्मणों को दण्ड देना चाहता है तो तू अब जीवित नहीं रह सकता, मेरे रहते-रहते ऐसा अनर्थ? मैं जगत् का नाथ धर्म-कण्टक स्वरूप क्षत्रियों का वध कर लोक में सज्जनों को सुखी करूँगा और ब्राह्मणों से द्वेष करने वालों को दण्ड देता रहूँगा हे नराधम! यद्यपि तू प्रमुख यतियों के शाप से पहले ही मर चुका है तथापि आज तुझको मृत्यु के लिये निवेदन कर ब्राह्मणों की रक्षा करूँगा, ऐसा कहते हुए केशव ने युद्धस्थल में उस अस्त्र को छोड़ दिया।।३१-४०।।

हंस ने उस अस्त्र का वारुणास्त्र से निषेध कर दिया तब गोविन्द ने हंस के ऊपर वायव्यास्त्र को छोड़ा। इस बार नृपोत्तम हंस ने माहेन्द्रास्त्र से उसको विफल कर दिया तब श्रीकृष्ण ने अत्यन्त उग्र महेश्वर नामक अस्त्र को छोड़ा, हंस ने तत्काल ही रौद्रास्त्र से उसका वारण कर दिया। इसके बाद केशव ने

क्रमशः गान्धर्व, राक्षस, पैशाच तथा याम्यास्त्र को छोड़ा तब माधव द्वारा छोड़े गये उन चारों अस्त्रों के वारण के लिये हंस ने भी शीघ्रता से ब्रह्मास्त्र, कौबेरास्त्र, आसुरास्त्र तथा याम्यास्त्र इन चार अस्त्रों को छोड़ा। इसके बाद देव-देव जनार्दन ने हंस को लक्ष्य कर जीवन को विनाश करने वाले ब्रह्मशिर नामक घोर अस्त्र को छोड़ा, उस अस्त्र ने हंस के ऊपर महाघोर प्रभाव डाल दिया, नृपोत्तम हंस उस महाभयंकर अस्त्र को देखकर भयभीत हो गया तत्पश्चात् हे राजेन्द्र! हंस ने एक वैसा ही अस्त्र चलाकर ब्रह्मशिर का भी वारण कर दिया। तब तो भूतभावन के भी भावन भूतात्मा देव-देव जनार्दन यमुना के जल से आचमन कर वैष्णवास्त्र को एक तीक्ष्ण बाण में अभिमन्त्रित कर धनुष पर चढ़ाया, जिस अस्त्र से देवताओं ने पहले असुरों को मार कर राज्य प्राप्त किया था उसी वैष्णवास्त्र को हरि ने उस राजा हंस के लिये चढ़ाया।।४१-४९।।



अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२८।।

वैशम्पायन जी बोले- हे महाराजा! महाभयंकर अस्त्र को देखकर राजा हंस के होश उड़ गये, वह रथ से कूदकर यमुना की तरफ भागा, जहाँ पर श्रीकृष्ण ने कालिय नाग का मर्दन किया था, जो ह्रद महाभयंकर तथा पाताल तक गहरा और अञ्जन के समान काला है, उसी ह्रद में वह हंस कूद पड़ा, हंस के उस कुण्ड में कूदते समय बड़ा ही भारी शब्द हुआ। जैसे इन्द्र द्वारा पक्ष काटे जाने के समय समुद्र में कूद जाने पर पर्वतों का शब्द हुआ था उसके पीछे श्रीकृष्ण भी रथ से कूदकर उसके ऊपर कुण्ड में जा पड़े। देव-देव जगन्नाथ महाबाहु केशव जगत् को विस्मित करते हुए उसे लातों से मारने लगे। हे नृपश्रेष्ठ! राजा हंस श्रीकृष्ण से लात खाकर मर गया कुछ लोग ऐसा कहते हैं। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि वह भागकर पातला में चला गया और वहाँ उसे सर्पों ने खा डाला ऐसा मैं सुनता हूँ, परन्तु हे राजेन्द्र! वह आज तक वहाँ से लौटा हुआ दिखाई नहीं पड़ा। जगन्नाथ पहले की भाँति अपने रथ पर

आकर बैठ गये, हे महाराज! हंस के मर जाने पर आपके पूर्व पितामह युधिष्ठिर जी ने राजसूय यज्ञ को किया, यदि हंस जीवित होता तो उस यज्ञ की कौन प्रशंसा करता? अर्थात् कोई नहीं।।१-१०।।

हे प्रभो! वह सभी अस्त्रों का ज्ञाता था, उसने रुद्र से वर भी प्राप्त किया था। हे महाराज! अब यह वार्ता केवल क्षण भर कहने मात्र को रह गई। देवलोक में गन्धर्वों के स्वामी दिन-रात इसको गीत के रूप में गाने लगे कि शत्रुहन्ता श्रीकृष्ण द्वारा हंस मार डाला गया-मार डाला गया। लोकों के नाथ प्रभावशाली श्रीकृष्ण रूपधारी विष्णु द्वारा यमुना के भयंकर ह्रद में हंस मार डाला गया ऐसा भी कहने लगे।।११-१३।।



अथ एकोनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः।।१२९।।

वैशम्पायन जी बोले- हे राजन्! बलशाली डिम्भक अपने भाई उग्र पराक्रमी हंस का मरना सुनकर बलदेव के साथ युद्ध करना छोड़ यमुना की तरफ चल दिया, उसके पीछे हलायुध बलराम बड़े वेग से दौड़ते हुए चले। हे महाराज! यमुना में जहाँ पर हंस का पतन हुआ था वही वह भी कूद पड़ा और कुण्ड की जलराशि को हींड़-हींड़ कर अपने भाई की लाश का पता लगाने लगा। क्रुद्ध हो वह डिम्भक जल को बहुत बार हिड़होर कर तथा सहसा जल को उछाल-उछाल कर और बार-बार जल में डूब-डूब कर अपने भाई को ढूँढ़ने लगा परन्तु हे राजन्! वह अपने बलशाली भ्राता को न देख सका, बलवान् महाबाहु राजा डिम्भक जल उछाल निराश हो वासुदेव को देखकर बोला अरे गोप-सुत! हंस कहाँ पर स्थित है ठीक बता, तब धर्मात्मा वासुदेव ने भी प्रसन्न हो कह दिया कि हे राजन्! यमुना से पूछो। ऐसा सुनकर भ्रातृवत्सल डिम्भक फिर यमुना में प्रवेश कर बहुत प्रकार से भाई को ढूँढ़ा, जब पता न लगा तब भ्रान्त मन हो राजा डिम्भक विलाप करने लगा कि हे राजेन्द्र! मुझ भ्राताहीन को छोड़कर तुम कहाँ चले गये। हे भ्रातः! मुझको

एकबारगी छोड़कर तुम कहाँ चले गये। भ्रातृवत्सल नृपश्रेष्ठ डिम्भक इस प्रकार विलाप कर यमुना के महाकुण्ड में प्राणत्याग करने का मन में विचार कर लिया; तब मरण का निश्चय कर वह सहसा कुण्ड के जल में गोता लगा-लगा कर हाथ से अपनी जिह्वा को खींच-खींच कर बार-बार विलाप करने लगा, इसके बाद स्वयं साहस कर अपनी जिह्वा को समूल उखाड़ जल के बीच राजा डिम्भक नरक की गति पाने के लिये मर गया। इस प्रकार बलशाली हंस तथा डिम्भक के मर जाने पर पुण्डरीकाक्ष प्राणियों को विस्मित करते हुए वहाँ से लौट आये इसके बाद हे महाराज! प्रतापी वासुदेव मारे प्रेम के प्रसन्न हो बलराम के साथ गोवर्धन पर्वत पर जहाँ कि पहले निवास किया था वहीं कुछ समय तक विश्राम कर निवास करते रहे।।१-१५।।



अथ त्रिंशाधिक शततमोऽध्यायः ।।१३०।।

वैशम्पायनजी बोले- हे महाराज! यशोदा और नन्द ने जब यह सुना कि बलराम के साथ वासुदेव गोवर्धन पर आये हैं तब कृष्ण-दर्शन की लालसा से मक्खन, दधि, खीर, मट्ठा तथा जंगली पुष्प और मोरपंख के बाजूबन्द लेकर गोपों और गोपिकाओं से चारों और घिरे सहसा प्रसन्न हो गोवर्धन पर्वत पर गये। वहाँ पर किसी वृक्ष के नीचे अपने बड़े भाई के साथ काले मृग के समान नेत्र वाले महाबाहु वासुदेव श्रीकृष्ण को बैठे हुए देखा। नन्द और यशोदा को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो दोनों महाबलियों ने प्रणाम किया और बहुत से पायस आदि दुग्ध के बने भोज्य पदार्थ को देखा इसके बाद बोले कि हे तात! हे मातः! व्रज और गोष्ठ में कुशल है? अपनी गायें कुशल से हैं? हे पितः! गायें दूध देती हैं? बछड़े और बछियाँ आनन्द से क्रीड़ा करती हैं। और सुन्दर शुभ दूध होता है? गायें सुन्दर और शोभनीया हैं? हे मातः! बछड़ों को चराने वाले बालक दूध पीते हैं। हे पित! गोष्ठ में बहुत सी रस्सियाँ और बहुत से खूँटे भी पहले की भाँति हैं? और वृन्दावन में बहुत प्रकार की घासें सदा रहती हैं। हे पितः! आपके छकड़े अच्छी हालत मेंअक्षय

रूप में हैं? और घी दूध अथवा वन-पुष्पों की सुगन्ध रहा करती है? और बालकों को उत्पन्न कर गोपिकायें पुत्रवती हो गई हैं? इसी प्रकार की बातें करते हुए पिता से केशवय ने कहा कि अच्छा अब आप जायँ फिर माता यशोदा से भी बोले कि हे मातः! अब घर चली जाओ। हे मातः! जो तुम्हारा कीर्तन करेगा वह स्वर्ग को प्राप्त करेगा और जो कोई तुमको नमस्कार करेगा वह सदा मेरा अतिशयेन प्रिय होगा, वह सदा मेरा भक्त होगा ऐसा कह हरि ने उन यशोदा से कहा कि अब जाओ, इस प्रकार सान्त्वना देकर सभी के सनातन पितर देव वासुदेव केशव दोनों की गोद से लिपट कर उन्हें घर भेज दिया तब यशोदा और नन्द गोप घर को चल दिये। इसके बाद श्रीकृष्ण यादव और वृष्णियों के साथ द्वारका पुरी को जाने की इच्छा करने लगे। जो पुरुष इसको सावधान चित्त हो नित्य पढ़ता अथवा सुनता है वह पुत्रवान् और धनवान् होकर अन्त समय मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।।१-२०।।



अथैक त्रिंशाधिक शततमोऽध्यायः।।१३१।।

वे विष्णु हरि मागधों द्वारा प्रशंसित होते हुए वृष्णियों के साथ द्वारका में रहने लगे। वैशम्पायन जी कहते हैं कि हे जनमेजय! मैंने देव-देव श्रीकृष्ण की ये लीलायें तुम्हारे पूछने पर कह दीं। हे राजन्! दूसरा तुम क्या सुनने की इच्छा करते हो।।१-१२।।



अथ द्वात्रिंशाधिक शततमोऽध्यायः।।१३२।।

जनमेजय जी बोले हे भगवन्! किस प्रकार पण्डितों के द्वारा महाभारत को सुनना चाहिये? और सुनने से क्या फल होता है? और पर्वों की समाप्ति पर किन-किन देवताओं की पूजा करनी चाहिये। हे भगवन्! प्रत्येक पर्व की समाप्ति पर क्या देना चाहिये और किस प्रकार से कथा वाचक की पूजा

करनी चाहिये सो मुझसे कहिये। वैशम्पायन की बोले हे राजन्! महाभारत के सुनने की विधि तथा इसका फल जो प्राप्त होता है उसे सुनो, जो कि तुम मुझसे पूछ रहे हो। हे महीपाल! स्वर्ग में रहने वाले देवता-गण क्रीडा करने के लिये इस पृथ्वी पर आये थे और महाभारत रूप इस क्रीडा कार्य को करके फिर स्वर्ग को चले गये। हे तात! जैसे ऋषियों और देवताओं की उत्पत्ति इस वसुधा-तल पर हुई थी उसे तुमसे कहता हूँ सावधान चित्त हो सुनो। यहाँ रुद्र-गण, साध्य और निरन्तर रहने वाले विश्वदेव, आदित्य, दोनों अश्विनीकुमार, लोकपाल, महर्षि, गुह्यक, गन्धर्वों सहित नाग, विद्याधर, सिद्ध-गण, धर्म, स्वयम्भू, श्रेष्ठ मुनि कात्यायन, पर्वत, सागर, नदियाँ और अप्सराओं का समूह, ग्रह, संवत्सर, अयन ऋतु तथा इसके आलावे जो भी स्थावर-जंगम एवं देवता-दानव हैं वे सभी हे श्रेष्ठ भरतवंशिन्! इस महाभारत में एकत्रित हुए दिखाई देते हैं। उनके यश का तथा नाम एवं कर्मों का कीर्तन गान करने से घोर पातक करके भी मनुष्य शीघ्र छुटकारा पा जाता है।।१-१०।।

पवित्र हो आत्मा को वासुदेव के लिये समर्पित कर जैसा है वैसा क्रमशः इस इतिहास को सुन कर मनुष्य इस मोह के संसार से पार जाकर आनन्द करता है। हे भारत! महाभारत को सुन कर तुम महाभारत में मरे हुए भीष्मपितामह आदि के श्राद्धों को सुनो अर्थात् करो। नारायण को नमस्कार कर नर और नरोत्तम को नमस्कार करे फिर सरस्वती देवी को नमस्कार करे इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण की जय बोले। हरिवंशान्त प्रथम पर्व को सुनकर कामना के अनुसार ब्राह्मणों को तृप्त करे तो मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ का फल पाता है।।११-२०।।

वह अप्सरा गणों से भरे विमान को पाता है और वह देवताओं के साथ समाहितचित्त हो स्वर्ग को जाता है। दूसरे पर्व को सुनकर अतिरात्र व्रत के फल को पाता है और सभी रत्नों से जटित दिव्य विमान के ऊपर चढ़ता है। वह दिव्य मालायें तथा दिव्य वस्त्रों को धारण करता है और दिव्य गन्धों से सुवासित होता है; वह दिव्य बाजूबन्द को पहन कर नित्य स्वर्ग लोक में

आनन्द करता है। तीसरे पर्व को सुनकर मनुष्य द्वादशाह के फल को पाता है, वह देवताओं के समान स्वर्ग में दस हजार वर्ष तक वास करता है। चौथे पर्व को सुनकर वाजपेय यज्ञ का फल पाता है तथा पाँचवाँ पर्व सुनकर उससे दूना फल पाता है और वह उदित हुए सूर्य के समान चमकते हुए निर्मल विमान के ऊपर देवताओं के साथ चढ़कर स्वर्ग को जाता है और दस हजार वर्ष तक स्वर्ग में स्थित इन्द्र के भवन में आनन्द करता है।।२१-३०।।

छठवें पर्व के सुनने पर इससे दूना फल और सातवें पर्व को सुनने से तीन गुना फल पाता है और वह कैलास के शिखर के आकार वाले जिसमें वैदूर्य मणि की वेदिका बनी है और जिसमें बहुधा मणियाँ और मूँगे विभूषित हैं जो सभी तरफ से सजा है जिसमें अप्सराओं का समूह बैठा है ऐसे इच्छानुसार गमन करने वाले विमान पर बैठकर दूसरे सूर्य के समान सभी लोकों में विचरता है। आठवें पर्व के सुनने से मनुष्य राजसूय यज्ञ के समान फल पाता है और वह मन के सदृश वेग से चलने वाले चन्द्रमा की किरणों के समान घोड़ों से जुते उदय हुए चन्द्रमा के समान विमान पर चढ़ता है तथा चन्द्रमा की कान्ति से भी बढ़कर शोभायमान मुख वाली श्रेष्ठ स्त्रियों के करधनी और नूपुरों की झनकारों से परम सुन्दर स्त्रियों की गोद में सोया हुआ जगाया जाता है। हे भारत! नवें पर्व को सुनने से यज्ञ-राज अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है। और वह परम शोभा से सुशोभित हुआ सुवर्ण के स्तम्भ लगे, वैदूर्य मणि की वेदिका बने तथा सभी तरफ सुवर्णमय दिव्य झरोखे लगे स्वर्ग में विचरने वाले अप्सरा गणों एवं गन्धर्वों से सेवित विमान पर बैठकर तथा दिव्य मालाओं और वस्त्रों को धारण कर दिव्य चन्दन से विभूषित हो देवताओं के साथ स्वर्ग में दूसरे इन्द्र के समान आनन्द करता है।।३१-४०।।

दसवें पारण को प्राप्त कर अर्थात् दसवें पर्व को सुनकर और ब्राह्मणों का अभिवन्दन कर मनुष्य घुघुरुओं की जाल से घनघनाहट वाले, पताकाओं तथा ध्वजा से सुशोभित, रत्नों की वेदिका के समान वेदी वाले, वैदूर्य मणि के तोरणों से आच्छादित, चारों तरफ सुवर्ण की जालियों से शोभित, मूँगों से

जटित छज्जा तथा प्रमुख द्वार वाले, गन्धर्व तथा गान विद्या में कुशल अप्सराओं से निषेवित, पुण्यात्माओं के वास करने योग्य विमान पर सुख से बैठता है। वह सुवर्ण के भूषणों से भूषित हो सूर्य के समान चमकीले मुकुट से सुशोभित होता है, अङ्गों में दिव्य चन्दन का लेपन कर दिव्य मालाओं से विभूषित हो देवताओं के प्रसाद से परम शोभा से युक्त हो तथा दिव्य भोगों से समन्वित हो दिव्य लोकों में विचरता है। इसके बाद वह.अनेकों वर्ष समूहों तक स्वर्ग लोक में आनन्द करता है; फिर गन्धर्वो के साथ इक्कीस हजार वर्ष पर्यन्त इन्द्र के नगर में इन्द्र के साथ आनन्द मनाता है और दिव्य यानों और विमानों पर दिव्य नारी गणों के साथ बैठकर अनेकानेक लोकों में देवताओं की भाँति निवास करता है; इसके बाद सूर्य के भवन में फिर चन्द्रमा के भवन में निवास करता है। हे राजन्! इसी प्रकार इसका फल होता है इसमें किसी विचार की आवश्यकता नहीं है। श्रद्धालु द्वारा सुनने से इसी प्रकार का फल होगा यह मेरे गुरु जी ने कहा है, कथावाचक को उसकी इच्छानुसार वह जो चाहे उसे देना चाहिये।।४१-५०।।

जो विशेष रूप से उसे हाथी, घोड़ा, रथ, विमान आदि वाहन तथा कटक, कुण्डल और यज्ञोपीवत तथा चित्र-विचित्र वस्त्र (धोती, दुपट्टा; शाल-दुशाले आदि) देता है तथा गन्ध आदि देता है और देवता की भाँति उसका पूजन करता है वह विष्णुलोक को प्राप्त करता है। हे राजन्! इसके बाद मैं महाभारत को वाचने वाले ब्राह्मणों की पर्वो-पर्वो की समाप्ति पर जो देने योग्य वस्तुयें हैं उन्हें कहता हूँ। हे राजन्! इसके बाद में महाभारत को वाचने वाले ब्राह्मणों की पर्वो-पर्वो की समाप्ति पर जो देने योग्य वस्तुयें हैं उन्हें कहता हूँ। हे भरतर्षभ! क्षत्रियों का यह कर्तव्य है कि कथावाचक की जाति, देश, सत्य, माहात्म्य तथा धर्म में कितनी प्रवृत्ति है यह सब बातें अच्छी तरह जानकर तब पहले ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराना चाहिये इसके बाद कथा का कार्य प्रारम्भ कराना चाहिये और पर्व कीर समाप्ति पर ब्राह्मणों को भोजन से तृप्त करना चाहिये। हे राजन्! आदि पर्व की समाप्ति पर पहले वस्त्र और गन्ध आदि से कथावाचक का सत्कार कर विधिवत् मधुर रसभरे मिठाई और खीर

से युक्त भोजन कराना चाहिये। इसके बाद आस्तिक पर्व की समाप्ति पर अधिकतर मधु और घी से युक्त मूल-फल तथा खीर का भोजन कराना चाहिये और हे राजन्! गुड़ और चावल दो देना चाहिये। हे राजेन्द्र! सभा पर्व की समाप्ति पर मालपूआ और सछिद्र पकान्न तथा लड्डुओं से युक्त हविष्यान्न (खीर) का भोजन कराना चाहिये। अरण्यक अर्थात् वन पर्व की समाप्ति पर मूल और फलों से श्रेष्ठ ब्राह्मणों को तृप्त कराना चाहिये और वन पर्व को समाप्त कर जल से पूर्ण घटों का दान करना चाहिये। आत्मा को तृप्त करने वाले वन के प्रमुख-प्रमुख मूल और फलों को तथा सभी को अच्छा लगने वाले गुणों से युक्त अन्न को ब्राह्मण के लिये देना चाहिये।।५१-६०।।

विराट पर्व की समाप्ति पर अनेक प्रकार के वस्त्रों को देना चाहिये, हे भरतकुल श्रेष्ठ! उद्योग पर्व की समाप्ति पर गन्ध और मालाओं से अलंकृत कर ब्राह्मणों को सम्पूर्ण कामों तथा गुणों से युक्त षट्रस भोजन कराना चाहिये। हे राजेन्द्र! भीष्म पर्व की समाप्ति पर उत्तम यान (सवारी रथादि) प्रदान कर सभी गुणों से युक्त शुद्ध पक्वान्न ब्राह्मणों को खिलाना चाहिये। हे राजेन्द्र! द्रोण पर्व की समाप्ति पर परम प्रशंसनीय दुग्ध तथा घृतादि से बने भोजन को कराना चाहिये और धनुष-बाण तथा श्रेष्ठ तलवार देनी चाहिये। कर्ण पर्व की समाप्ति पर सबको प्रिय लगने वाला शुद्ध भोजन ब्राह्मणों को एकाग्र मन से परोसना चाहिये। हे राजेन्द्र! शल्य पर्व की समाप्ति पर लड्डुओं से, गुड़ के साथ पके चावलों से तथा मालपुओं से ब्राह्मणों को तृप्त करना चाहिये और सभी प्रकार के अन्नों का दान करना चाहिये। गदा पर्व की समाप्ति पर मूँग से मिश्रित अन्न प्रदान करे, स्त्री पर्व की समाप्ति पर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को रत्नों द्वारा प्रसन्न करे। ऐषिक पर्व की समाप्ति पर पहले घी और चावल देवे फिर अच्छे प्रकार से पके हुए सर्वगुणयुक्त अन्न का भोजन करावे। शान्ति पर्व की समाप्ति पर खीर आदि का ब्राह्मणों को भोजन करावे और आश्वमेधिक पर्व की समाप्ति पर सभी को प्रिय लगने वाला भोजन करावे। आश्रम-निवासिक पर्व की समाप्ति पर ब्राह्मणों को हविष्यान्न का भोजन करावे, मौसल पर्व की समाप्ति पर चन्दन का अनुलेपन कर माला और गन्ध

से पूजन कर ब्राह्मणों को सभी गुणों से युक्त षट्रस भोजन करावे। महाप्रस्थानिक पर्व की समाप्ति पर भी पूर्ववत् सबको प्रिय लगने वाला भोजन करावे और स्वर्गारोहण पर्व की समाप्ति पर हविष्यान्न का भोजन करावे।।६१-७०।।

हरिवंश की समाप्ति पर एक हजार ब्राह्मणों को भोजन करावे और दक्षिणा में एक गौ तथा एक निष्क (सुवर्ण मुद्रा) प्रत्येक ब्राह्मण के लिये देवे। हे पार्थिव! दरिद्र को भी इसका आधा देना चाहिये, कुशल पुरुष प्रत्येक पर्व की समाप्ति पर कथावाचक के लिये सुवर्ण मुद्रा से युक्त पुस्तक देवे तथा हरिवंश पर्व की समाप्ति पर खीर का भोजन करावे। हे राज-पुत्र! एक श्लोक अथवा श्लोक का पद अथवा उसका एक हजार अक्षर जो एकचित्त होकर सुनता है वह विष्णु का प्रियपात्र हो जाता है। कथा की समाप्ति पर सपत्नीक व्यास की यथाविधि पूजा करे और पहले पूजित लक्ष्मी-नारायण देव की फिर पूजा करे। यदि महाभारत न सुन सके तो केवल हरिवंश ही सुन ले, इसलिये व्यास जी ने इस असार संसार में वाञ्छित का कारण अर्थात् इष्ट पदार्थप्रद हरिवंश की रचना की है, यह द्वैपायन व्यास जी ने ही कहा है कि हरिवंश की कथा सुननी चाहिये। जो फल हजारों अश्वमेध यज्ञ करने से होता है, जो फल सैकड़ों वाजपेय यज्ञ करने से होता है वही फल मनुष्य हरिवंश के नियमपूर्वक समापन से पाता है। हे विष्णो! मैं अजर, अमर, एक, ध्यान करने योग्य, आदि-अन्त से रहित, सगुण, निर्गुण, स्थूल तथा अत्यन्त सूक्ष्म, निरुपम, अनुमेय, योगियों के ज्ञान से गम्य, त्रिभुवन के गुरु तथा स्वामी आपकी शरण लेता हूँ। इस हरिवंश के पूर्ण रूप से सुनने से सभी दुर्गम कष्ट से पार हो जायँ, सभी कल्याण को देखें तथा सभी वाञ्छित मनोरथ से पूर्ण हो जायँ।।७१-१०१।।



अथ त्रयस्त्रिंशाधिक शततमोऽध्यायः ।।१३३।।

जनमेजय जी बोले- हे ब्रह्मन्! आकाश में विचरने वाले त्रिपुर नामक राक्षसों का त्रिनयन शंकर जी के द्वारा किस प्रकार वध हुआ था मैं तत्त्वतः

सुनना चाहता हूँ। वैशम्पायन जी बोले कि हे राजन्! जो तुम सभी प्राणियों से विरोध करने वाले बाहुबली त्रिपुर दैत्यों के वध को पूछते हो तो सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तार से सुनो। हे राजन्! प्राचीन समय में शंकर जी तीन शूलों से सम्पूर्ण प्राणियों के वध की इच्छा वाले त्रिपुर नामक असुरेन्द्रों का वध किये थे। हे पुरुषव्याघ्र! यह त्रिपुर बड़े धनुष-खण्डों से रचित आकाश के बीच उठे हुए मेघ-समूह की भाँति शोभा पा रहा था। शोभायमान लगने वाली ऊँची-ऊँची स्वर्णमयी चाहारदीवारियों से और चमकने वाली मणियों तथा सम्पूर्ण रत्नजटित तोरणों से जाज्वल्यमान होता परम शोभित हो आकाश के मध्य में गन्धर्वों के नगर में समान कला-कारीगरी से बनाया हुआ श्रेष्ठ त्रिपुर चमक रहा था। मन के समान इच्छानुसार चलने वाले बल दर्पित घोड़े श्रेष्ठ प्रभाशाली नगर का वहन कर रहे थे। वे प्राण की सम्पूर्ण शक्ति से पराक्रम कर हिनहिनाते हुए दौड़ रहे थे, वे श्याम कमल दल के समान अपने खुरों से मानों आकाश को बुलाते हुए-से चल रहे थे। वायु वेग के समान चलने वाले घोड़ों से आकाश ग्रसते हुए उस नगर के असुरों को आत्मवेत्ता गण ही अपने नेत्रों से अच्छी तरह देख सकते थे। बहुत प्रकार के गाने और बजाने से युक्त गन्धर्व नगर के समान त्रिपुर नगर को तपस्या से पापों को भस्म करने वाले अग्नि के समान तेजस्वी ऋषिगण ही देख पाते थे।।१-१०।।

वह नगर चित्र-विचित्र आयुधों से व्याप्त तथा तपाये गये सुवर्ण के ऊँचे-ऊँचे सम्यक् अलंकृत इन्द्र के समान अनेक भवनों से द्युतिमान् शोभा पा रहा था; वह दैत्य नगर कैलास के शिखरों के समान महलों के अनेक ऊँचे कलशों से आकाश के बीच बहुत से सूर्यों के समान शोभित हो रहा था। वह ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं से युक्त तथा अधिक मात्रा में तप्त सुवर्ण के बने महलों से व्याप्त वह नगर अपनी महाप्रभा से वैसे ही शोभित हो रहा था कि जैसे जलती हुई अग्नि अपने तेज से चमकती है। ठोंके गये उत्कृष्ट बाहुबल से युक्त एवं सिंहनाद से निनादित श्रेष्ठ असुरों से व्याप्त वह नगर चक्ररथ वन के समान शोभित हो रहा था, हे राजन्! उठी हुई पताकाओं में लटकती हुई तलवारों वाला वह त्रिपुर आकाश में बिजली के भाँति चमचमा रहा था। हे

भारत! सूर्यनाभ तथा चन्द्रनाभ नामक दैत्य बल से दर्पित महापराक्रमी अन्य दानव जैसे ममृदु और बभज्जु आदि ब्रह्मा की माया से मोहित हो देवताओं के जाने के मार्ग को तथा पितरों के आने के मार्ग को विनष्ट करने लगे। हे नरशार्दूल! धनुष-बाण को ग्रहण कर प्रमुख-प्रमुख असुर तथा दानव जब देव-यान तथा बल से युक्त पितृ और वह्नि के महापथ को रोक दिये अर्थात् बलि भाग राक्षस लेने लगे तब हे श्रेष्ठ भरतवंशिन्! इस प्रकार बलि भाग हव्यादि-कव्यादि का अपहरण हो जाने से देवताओं के मुखों पर उदासी छा गई और उनके हृदय की गति टूटती सी प्रतीत होने लगी तब सभी देवता दीन होकर ब्रह्मा की शरण में गये।।११-२०।।

वहाँ जा खड़े होकर दुःखी स्वर से गिड़गिड़ाते हुए कहने लगे कि हे भाग देनेवाले! शत्रुओं द्वारा भाग अपहरण कर लिये जाने से हम लोग मारे जा रहे हैं, इसलिये हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! आप उनके वध का उपाय बतलाइये कि जिसको जानकर समर में बाहुबली शत्रुओं का हम लोग वध करें। तब वर देने वाले ब्रह्मा देवताओं को सान्त्वना देकर बोले कि हे सम्पूर्ण देवताओं! शत्रुओं के परम पराजय का उपाय सुनो। एक शंकर जी को छोड़कर अन्य किसी के द्वारा सभी दानव अवध्य हैं, इस बात को मन से और वाणी से ग्रहण कर हे भारत! रुद्रों सहित सभी देवता भूमि पर चले आये, वे विन्ध्य पर्वत और मेरु पर्वत के मध्य पृथ्वी तल पर उग्र तप के द्वारा योग-यज्ञ करते हुए सभी मुनि वृत्ति को धारण कर लिये और वे ब्रह्म संहिता का जप करते हुए कश्यप गोत्री हर को प्राप्त कर लिये। जिनकी दूसरों की स्त्रियों के लिये नपुंसकता हो गई है ऐसे देवता गरम कुश की चटाइयों को बिछाकर सोते थे और ताँबे तथा लोहे के आभूषणों को धारण करते थे। हे कुरुश्रेष्ठ! अपने आप मरे हुए कृष्ण मृग के कोमल शुभ चर्मों को वे पहनते थे। वनचारी मृगों अथवा व्याघ्रादिकों के शरीर से छोड़े गये चमड़ों को ग्रहण किये हुए हर की माया से आच्छादित हो आकाश में चढ़कर शंकर के भवन में प्रविष्ट हो गये, वे व्याघ्र चर्म पर निवास करने वाले सभी देवता दीन हो जगत्पति महादेव जी को प्रणाम कर स्पष्ट रूप से हर से कहने लगे कि हे भगवन्! जैसे अज्ञानता से राख द्वारा ढकी

हुई अग्नि में हवन करना निष्फल होता है वैसे ही आपके विमुख हो जाने से हम लोगों के विषय में वरदान निष्फल प्रतीत हो रहा है अतः हे भगवन्! देश काल का विचार कर ब्रह्मा के वचन को पूर्ण कीजिये।।२१-३०।।

देवदेव ब्रह्मा जी ने जा बात हम आकाशचारी देवताओं के समीप कही है उसका करने के लिये उद्यत होइये। इस प्रकार देवताओं के वचनों से तथा भविष्य के प्रयोजनों के बल से प्रेरित हो इन्द्र सहित सभी देवताओं के साथ महादेव जी त्रिपुर के वध के लिये तैयार हो गये, सभी देवता फौजी बाने से तैयार हो आदित्य पथ को घेर कर खड़े हो गये। सभी देवता सुवर्ण तथा अग्नि के समान चमकने लगे। शंकर जी के सहित ग्यारहो रुद्र अपने तेज से मानो राक्षसों को भस्म करते हुए-से खड़े हो गये। वे सभी पर्वत के समान ऊँचे सभी युद्धकुशल तथा युद्ध के लिये सजे हुए थे, विश्वे अर्थात् सभी विश्वेन अर्थात् तप एवं योग के द्वारा बली और इच्छानुसार रूप धारण करने वाले थे। दानवों का अन्त कर देने की इच्छा वाले सभी देवता उद्यत हो गये, इनके साथ धनाध्यक्ष कुबेर भी मिल गये। इन सभी को साथ लेकर त्रिनयन शंकर जी धनुष-बाण ग्रहण कर त्रिपुर के साथ युद्ध करने लगे, फिर तो पुर की अट्टालिकाओं से बाणों द्वारा छिदे शरीर वाले दानव बेहोश होकर मुर्दों के समान टूटे हुए पर्वतों की भाँति गिरने लगे, कितने अत्यन्त घायल होकर, कितने कुछ कम घायल होकर दैत्यों का समूह रण के मध्य वज्र से आहत पर्वतों की भाँति गिरने लगा, देवताओं की तलवारों, चक्रों और परश्वधों तथा बाणों से छिन्न-भिन्न मर्मस्थल वाले दैत्येन्द्र कटे हुए पंख वाले पर्वतों की भाँति अस्त्रों-शस्त्रों के सहित युद्धभूमि पर देखते-देखते गिर गये।।३१-४०।।

वहाँ देवताओं के जलते हुए तेज से दानव अपनी चेतना शक्ति का परित्याग करने लगे अर्थात् बेहोश होने लगे। इस प्रकार आपस में अर्थात् देवता और दानवों में संग्राम होने पर दानव क्षय कर्म से क्षीण होने लगे। जब सूर्य अस्ताचल को चले गये तब रात्रि का प्रारम्भ हो जाने पर दानवों की प्रबलता बढ़ गई। देवतागणों को चर्म चक्षुओं तथा दिव्य नेत्रों से कुछ भी नहीं

दिखाई देने लगा। वे देवता दानवों की मार से छिन्न-भिन्न तथा घायल मुख वाले हो वसुधा तल पर गिरने लगे। दानव रात्रि काल होने से तीक्ष्ण बाणों द्वारा देवताओं पर विजय प्राप्त करने लगे और वे विपुल नादों से मेघों की भाँति महती गर्जना करने लगे। विजय के प्राप्त होने से असुरगण आपस में कहने लगे कि संग्राम में जय की आकांक्षा वाले सभी देवताओं को हम बलवानों ने प्रास, तलवार तथा तोमरों से त्रस्त कर दिया, शुक्र के हव्य से बोधित हम लोग विजय प्राप्त कर शोभित हो रहे हैं। वैशम्पायन जी कहते हैं कि हे राजन्! आयुधों के साथ श्रेष्ठ दैत्य समर में बलवान् प्रतीत होने लगे, उस समय सभी देवताओं के साथ शंकर जी रथ पर बैठकर घमण्डी दैत्यों पर गर्जने लगे और उनको अपने तेज से वैसे ही भस्म करने लगे कि जैसे प्रलय काल के उपस्थित होने पर प्राणियों के माननीय सूर्य सभी प्राणियों को भस्म करते हैं। वह शंकर जी का रथ मन के समान चलने वाले शीघ्रगामी घोड़ों से खींचा जाता हुआ आकाश के मध्य बिजली-युक्त मेघ के समान चमक रहा था। हे भारतवंशी राजन्! ध्वजा के अग्रभाग पर गर्जते हुए वृषभ से वह रथ इन्द्र धनुष से शोभित मेघ के समान शोभा पा रहा था, इसके बाद सिद्धगण आकाश में जाकर वृषभध्वज की स्तुति करने लगे।।४१-५०।।

सत्य व्रत के पालन में तत्पर तप से शान्त तथा पूर्व के पवित्र कर्मा से पवित्र ऋषिगण तथा अमृतपान करने वाला देवताओं का समूह, गन्धर्व तथा अप्सरायें भी गीत के स्वर से त्रिनयन शंकर की स्तुति करने लगीं। हे राजन्! इसके पश्चात् प्रसन्नवदन सौम्य दैत्य तथा दानव पितृ-यान स्थान से अन्यत्र अटारियों के समूहों से युक्त तथा सैकड़ों शतघ्नियों से व्याप्त सभी प्राणियों के लिये भयावह उस दैत्यनगर के समीप बाणों की वर्षा करने लगे। हे भारत! बीच-बीच में देवताओं के शत्रु युद्ध-शास्त्र के ज्ञाता दानव शतघ्नी, भाले तथा शूलों से सभी तरफ महान् कर्म करने लगे, वे गदाओं से गदाओं को तोड़ने लगे और भालों से भालों को, अस्त्रों से अस्त्रों को और मायाओं से मायाओं को नष्ट करने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य दानव हजारों बाण, शक्ति, फरसा तथा भयंकर अशनियों को उठा-उठाकर छोड़ने लगे और माया के द्वारा

निर्मित तलवारों से देवताओं पर प्रहार करने लगे जो कि मृत्यु के विषय में गोचर हो रही थीं। इस प्रकार बाणों की वर्षा से आहत होते हुए देवतागण खड़े रहे और गन्धर्व नगर के समान आकार वाला वह शंकर सहित शंकर जी का रथ भी असुरगणों द्वारा प्रास, तलवार तथा तोमरों से हन्यमान होता हुआ कष्ट में पड़ गया। दैत्यों के उन गम्भीर-गम्भीर भार सहन करने वाले बहुत से विचित्र शस्त्रों द्वारा की गई वर्षा के मध्य शचीपति इन्द्र भी ज्यो के त्यों खड़े रहे।।५१-६०।।

हे महीपते! इसी बीच श्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र ऋषियों के दिव्य शब्द सुनाई देने लगे कि– अरे! शंकर जी के रहते-रहते शंकर जी का रथ भूमि पर गिर पड़ा, सभी लोगों के देखते-देखते वह अजय रथ जय को प्राप्त हो गया। हे राजन्! रथों में उत्तम उस शंकर जी के रथ के गिर जाने पर सभी प्राणी भूतल पर गिरने लगे। पर्वतों के शिखर काँपने लगे, बड़े-बड़े वृक्ष उखड़ गये, समुद्र क्षुब्ध हो उठे, दशो दिशायें भयानक लगने लगीं। वहाँ वृद्ध ब्राह्मण उत्तम जप करने लगे, विजय की इच्छा वालों का जो ब्रह्ममय तेज है उसका ध्यान करने लगे। सभी प्राणियों को इस लोक तथा परलोक में शान्ति पाने के लिये आत्मा में आत्मा द्वारा समाधि लगाकर योग के प्राप्त कारण से योग करने लगे। हे भारत! रथ कहते हैं लिंग शरीर को और इसका तरण होता है जिससे वह ॐ कहलाता है, उसी शान्त ब्रह्मभूत ॐ स्वरूप तेज का ध्यान करने लगे जो तेज सहस्राक्ष विष्णु तथा महात्मा शंकर के प्रताप से प्रकाशित होता रहता है। वही ॐ अपने इच्छानुसार रूप धारण करने वाले सभी बलवान् देवताओं का तथा निर्जन वन में बसने वाले तपोधन ऋषियों का ध्यान वस्तु है। इस स्थिति में जब महायोगी विष्णु ने तत्त्वतः देखा कि इन्द्र आदि ये सब कुछ नहीं कर सकते तब वे वृषभ का रूप धारण कर शंकर जी के उत्तम रथ को ऊपर उठाने लगे।।६१-७०।।

देवता गणों से संयुक्त रथ को सभी प्रकार के बल और पुरुषार्थों से युक्त महाबली बलवान् विष्णु सींगों से उठाकर मथित होते हुए समुद्र की

भाँति अपने योग बल से गर्जने लगे। तृतीय वायुविषय का अतिक्रमण कर वह सींग से युक्त बलवान् वृषभ पर्व में समुद्र की भाँति गर्जने लगा। तब वृषभ के नाद से युद्धदुर्मद दैत्य विशेष भयभीत हो गये और वे सुमहाबली फिर कवचों को धारण कर युद्ध करने लगे। बल, पौरुष तथा समर्थ से युक्त वे सभी बाहुबली धनुषों को ग्रहण कर देवताओं की सेना का मर्दन करने लगे। फिर तो अविनाशी शंकर जी ने अग्निमय सुन्दर पुंखों वाले तीक्ष्ण बाण को धनुष पर रखकर उसे ब्रह्मास्त्र के मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उस ब्रह्मदण्ड रूप बाण को दैत्यों के नगर त्रिपुर पर छोड़ा; उन प्रभु ने उस बाण को तीन प्रकार की (अ, उ, म्) शक्तियों से तीन प्रकार का बना दिया था। हे भारत! इस कार्य को उनने सत्य, ब्रह्मयोग तथा उग्र तप से संयुक्त मन से किया था। सुवर्ण के समान चमकने वाले सुवर्ण के समान निर्मल तथा सभी दैत्यों के प्राण को हरण करने वाले तीनों बाणों को त्रिपुर के ऊपर छोड़ा। विषधर सर्पों के समान भयंकर श्रेष्ठ बाणों को छोड़कर शंकर जी बाणों का पराक्रम देखने लगे। तेजस्वी तथा वेगशाली उन तीनों बाणों ने उस त्रिपुर को विदीर्ण कर डाला। हे भरतवंशी राजन्! बाणों के आघात से छिन्न-भिन्न हो कलशों के सहित वह त्रिपुर नगर विन्ध्याचल की भाँति टूट-टूट कर गिरने लगा। हे वसुधाधिप! अग्नि से जलते हुए वे अग्नि से भरे तीनों पुर पृथ्वी पर गिर पड़े।।७१-८०।।

हे नृप! शंकर जी द्वारा ब्रह्मास्त्र से जलाये गये वैदूर्य मणि के समान वर्ण वाले तीनों पुर पर्वत के शिखरों की भाँति गिर पड़े। त्रिपुर के दानवों के हत हो जाने पर तथा त्रिपुर नगर के गिर जाने पर देवतागण हर्ष से कहने लगे कि हे पुरुषोत्तम! आपने बहुत बढ़े हुए शत्रुओं को मार डाला। तत्पश्चात् ब्रह्मा के समान ऋषिगण, शंकर जी तथा ब्रह्मा जी के साथ बल तथा पौरुष से भरे हुए सभी देवता विष्णु की स्तुति करने लगे कि योग बल से आप महायोगी हैं तब वे विष्णु हँसने लगे।।८१-८३।।

❖✲❖

अथ चतुस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः।।१३४।।

वैशम्पायन जी बोले– हे राजन्! अब हरिवंश में कही गई कथाओं का क्रमशः वर्णन करता हूँ, इसमें पहला आदि सर्ग है, इसके बाद भूत सर्ग है। तत्पश्चात् बेनु के पुत्र राजा पृथु का आख्यान है। इसके बाद मनुओं का कीर्तन है तथा वैवस्वत मनु के कुल की उत्पत्ति एवं धुन्धुमार की कथा है। फिर गालव की उत्पत्ति तथा इक्ष्वाकु वंश का वर्णन है। इसके बाद पितृ-कल्प तथा चन्द्रमा और बुध की उत्पत्ति है। इसके बाद अमावसु के वंश का कीर्तिवर्द्धक वर्णन है, फिर स्वर्ग से इन्द्र का भ्रष्ट होना तथा पुनः स्वर्ग में प्रतिष्ठित होना लिखा है, फिर क्षत्रवृद्ध के पुत्रों की उत्पत्ति है। इसके बाद राजा दिवोदास तथा क्षत्रिय त्रिशंकु की प्रतिष्ठा है, तत्पश्चात् राजा ययाति का चरित और पुरु वंश का वर्णन है। इसके बाद श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य तथा श्यामन्तक मणि की कथा है, इसके बाद संक्षेप में विष्णु के अवतारों का वर्णन है। तत्पश्चात् तारकामय संग्राम तथा ब्रह्मलोक का वर्णन है, पश्चात् योगनिद्रा की प्रबलता तथा विष्णु और ब्रह्मा की बातों का वर्णन है। इसके बाद पृथ्वी के वाक्य और देवताओं के अंशावतारों का वर्णन है, पश्चात् नारद के वाक्य एवं स्वप्न-गर्भ के विधि का वर्णन है। इसके बाद 'आर्यास्त्व' और श्रीकृष्णावतार का विस्तार से वर्णन है, विष्णु श्रीकृष्ण का गोव्रज में गमन तथा शकटासुर का वध है। फिर पूतना-वध, यमलार्जुन नामक वृक्षों का टूटना तथा वृकासुर संदर्शन एवं वृन्दावन जाकर बसने का वर्णन है।।१-१०।।

तत्पश्चात् वर्षा ऋतु का वर्णन तथा यमुना के कुण्ड को देखना और कालिय नाग का दमन एवं धेनुकासुर का भञ्जन है। तत्पश्चात् प्रलम्बासुर-वध और शरद् ऋतु का वर्णन है, फिर गोवर्द्धन पूजा में प्रवृत्ति तथा गोवर्द्धन पहाड़ को विधिपूर्वक उठाना कहा गया है। इसके बाद इन्द्र द्वारा गोविन्द का अभिषेक तथा गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की खेलों का वर्णन है, फिर रिष्टासुर का निधन और अक्रूर को वृन्दावन भेजना है। इसके बाद अन्धक के वाक्य, केशि-वध, अक्रूर का आगमन तथा नाग लोक का दर्शन करना वर्णन है।

तत्पश्चात् धनुष के तोड़ने की कथा है, इसके बाद कंस के वाक्य वर्णन है, पश्चात् कुवलयापीड-वध तथा चाणूर-वध है। इसके बाद कंस का वध तथा कंस की स्त्रियों का विलाप है, फिर उग्रसेन का राज्याभिषेक तथा यादवों को आश्वासन है। इसके बाद राम-कृष्ण का विद्या पढ़ने गुरुकुल जाना और वहाँ से आना तथा जरासन्ध द्वारा मथुरा का घेरा जाना और जरासन्ध का वापस लौटना कहा है। फिर विकद्रु के वाक्य तथा परशुराम का दर्शन एवं उनसे श्रीकृष्ण की वार्ता होना कहा है, पश्चात् गोमन्त पर्वत पर चढ़ना तथा जरासन्ध की कार्यवाहियों का वर्णन है। फिर गोमन्त पर्वत का दाह तथा करवीरपुर में जाना और वहाँ राजा श्रृगाल का वध कर फिर मथुरा में आना कहा है। इसके बाद यमुना का आकर्षण तथा मथुरा का त्याग तथा उपाय के द्वारा कालयवन का वध वर्णित है।।११-२०।।

तत्पश्चात् द्वारकापुरी निर्माण तथा रुक्मिणी-हरण की कथा है, पश्चात् रुक्मिणी के साथ विवाह तथा रुक्मी के वध का वर्णन है। इसके बाद बलदेव के प्रतिदिन के पुण्य कार्य तथा बलदेव के माहात्म्य का वर्णन और नरकासुर-वध तथा पारिजात के हरण की कथा है। फिर द्वारका का विशेष रूप से पुनर्निर्माण तथा द्वारका में जाना और सभा में प्रवेश करने का वर्णन है। तत्पश्चात् नारद के वचनों का वर्णन तथा वृष्णिवंश का कीर्तन है, फिर षट्पुर के वध का आख्यान तथा मेध्यक निबर्हण है। इसके बाद श्रीकृष्ण की समुद्र यात्रा तथा जलक्रीड़ा का कुतूहल कहा है, पश्चात् भीमवंशी वीरों का मधुपान में प्रवृत्ति कहा है। इसके बाद छालिक्य गन्धर्व का आख्यान तथा भानु की पुत्री भानुमती का हरि द्वारा हरण करने की कथा है। इसके बाद शम्बर-वध और धन्योपाख्यान, वासुदेव-माहात्म्य तथा विस्तार से बाणासुर-संग्राम का वर्णन है। भविष्य की बातें तथा पुष्कर का विस्तार से वर्णन है, फिर वराह, नृसिंह तथा वामन अवतार का विस्तृत वर्णन है। इसके बाद श्रीकृष्ण की कैलास यात्रा तथा पौण्ड्रक-वध है, तत्पश्चात् हंस और डिम्भक के वध को कहा गया है। इसके बाद हे नृपशार्दूल! सर्वपाप प्रणाशक त्रिपुर-संहार का वृत्तान्त कहा है। हे कुरुकुल को वहन करने वाले! प्रातः और सायंकाल जो

इन वृत्तान्तों को सुनता है वह अपने कामनाओं को प्राप्त कर विष्णुलोक को जाता है।।२१-३१।।



अथ पञ्चत्रिंशाधिक शततमोऽध्यायः।।१३५।।

जनमेजय जी बोले- हे मुनिश्रेष्ठ! हरिवंश के सुनने पर क्या दक्षिणा देनी चाहिये तथा इसका क्या फल होता है? यह मेरे आगे कहिये। वैशम्पायन जी बोले हे भारतोत्तम! हरिवंश पुराण के सुनने से कामिक, वाचिक तथा मन से उपार्जित सम्पूर्ण पाप वैसे नष्ट हो जाते हैं कि जैसे सूर्योदय के होने पर हिम अर्थात् पाले का नाश हो जाता है, अट्ठारहों पुराणों के सुनने का जो फल होता है वह फल वैष्णव इस हरिवंश के सुनने से पाता है इसमें संशय नहीं है, जो इस हरिवंश के श्रद्धा से एक श्लोक अथवा आधे श्लोक या श्लोक के एक पाद का श्रवण करता है वह वैष्णव पद को पाता है, इस कलि में जम्बू द्वीप का आश्रय कर रहने वाले श्रोता दुर्लभ होंगे, हे राजन्! इस बात को मैं सत्य कहता हूँ। पुत्र की इच्छा वाली स्त्रियों को इस वैष्णव यश को सुनना चाहिये। यथोक्त फल की इच्छा वाले मनुष्य को वाचक के लिये तीन निष्क सुवर्ण दक्षिणा देनी चाहिये, न हो सके तो अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण देवे। अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाला मनुष्य सुवर्ण की सींगों वाली नये वस्त्र को ओढ़ाकर बछड़ा सहित कपिला गौ वाचक के लिये देवे। हे भरत कुलश्रेष्ठ! विशेष रूप से हाथों और कानों का आभूषण (अँगूठी तथा कुण्डल आदि) कथावाचक को देवे। हे नराधिप! ब्राह्मण को समादर के साथ भूमि का दान दे क्योंकि भूमिदान के समान न कोई दान हुआ न होगा।।१-१०।।

हरिवंश को जो पुरुष सुनता अथवा सुनाता है वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर वैष्णव पद को पाता है। हे भरतर्षभ! वह अपने ग्यारह पीढ़ी के पूर्वजों का उद्धार करता है तथा स्त्री-पुत्र के सहित अपना भी उद्धार करता है। हे नराधिप! श्रोता को दशमांश हवन करना चाहिये, हे नरश्रेष्ठ! मैंने आपके आगे सभी बातों को कह दिया। जिस हरिवंश के स्मरण मात्र से मनुष्य सभी पापों

से छूट जाता है और पुत्ररहित पुत्र तथा धन पाता है उसे अवश्य सुनना चाहिये। नरमेध तथा अश्वमेध यज्ञ से मनुष्य जो फल पाता है वही फल निश्चित रूप से इस हरि के पुराण (हरिवंश) के सुनने से पाता है। ब्रह्म-हत्या, भ्रूण-हत्या, गो-हत्या, मदिरा-पान तथा गुरु-शय्या पर गमन करने वाला एक बार इस हरिवंश पुराण को सुनने से पवित्र हो जाता है अन्यथा नहीं। हे राजन्! मैंने आपसे श्रीकृष्ण के महान् अपार तथा अद्भुत् माहात्म्य को कहा इसको पढ़ने अथवा सुनने से मनुष्य लोकों में महान् सुदुर्लभ फल को भी शीघ्र प्राप्त कर लेता है।।११-१७।।



।। इति ।।

हरिवंशे तृतीयो भविष्यपर्वः समाप्तः।।३।।

समाप्तोऽयं हरिवंश महा पुराणः

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

शंखूधारा मानिकपुर

म०न० एन १५/५४ ए

वाराणसी निवासी,

पं. रामविहारी मिश्र व्याकरण शास्त्री द्वारा लिखित

हरिवंश पुराण की भाषा टीका समाप्त।

।। इति शुभमस्तु ।।



श्री गणपति जी की आरती



।। श्री गणेशाय नमः ।।

गणपति की सेवा मंगल मेवा सेवा से सब विघ्न टरें।
तीन लोक तेतीस देवता द्वार खड़े सब अरज करें।।

ऋद्धि सिद्धि दक्षिण बाम विराजे।
अरु आनन्द से चमर करें।।
धूप दीप और लिए आरती।
भक्त खड़े जयकार करें।।१।।
गुड़ के मोदक भोग लगत हैं।
मूषक वाहन चढ़या करें।।२।।
सौम्यरूप सेवा गणपति की।
विघ्न भाग जा दूर परें।।३।।
भादों मास और शुक्ल चतुर्थी।
दिन दोपहरा पूर परें।।
लियो जन्म गणपति प्रभु जी ने।
दुर्गा मन आनन्द करें।।४।।
श्री शंकर को आनन्द उपज्यो।
नाम सुने सब विघ्न टरें।।५।।
आन विधाता बैठे आसन।
इन्द्र अप्सरा नृत्य करें।।
देखत वेद ब्रह्माजी जाको।
विघ्न विनाशन नाम धरें।।६।।

एक दन्त गंजबदन विनायक।
त्रिनयन रूप अनूप धरें।।
पग थम्बा सा उदर पुष्ट है।
देख चन्द्रमा हास्य करें।।७।।
दे शाप श्री चन्द्रदेव को।
कलाहीन तत्काल करें।।
चौदह लोक में फिरें गणपति।
तीन भुवन में राज करें।।८।।
उठि प्रभात जब आरती गावें।
जाके सिर यश छत्र फिरें।।९।।
गणपति की पूजा पहले करनी।
काम सभी निर्विघ्न सरें।।
श्री 'प्रताप' गणपति जी की।
कर जोड़ कर अस्तुति करें।।१०।।



श्री कृष्णचंन्द्र जी की आरती

अरती युगल किशोर की कीजै।
तन मन धन न्यौछावर कीजै। टेक
रवि शशि कोटि बदन की शोभा।
ताहि निरख मेरा मन लोभा।।आ. १।।
गौर श्याम मुख निरखत रीझे।
हरि स्वरूप नयन भर पीजे।।आ. २।।
कञ्चन थार कपूर की बाती।
हरि आए निर्मल भई छाती।।आ. ३।।

फूलन की सेज फूलन गल माला।
रत्न सिंहासन बैठे नन्दलाला।।आ.४।।
मोर मुकुट कर मुरली सोहै।
नटवर वेष देख मन मोहै।।आ.५।।
ओढ़े नील पीत पट सारी।
कुञ्ज बिहारी गिरवर धारी।।आ.६।।
श्री पुरुषोत्तम गिरवर धारी।
आरती करत सकल नर नारी।।आ.७।।
नन्दनन्दन वृषभानु किशोरी।
परमानन्द प्रभु अविचल जोरी।।आ.८।।



❖❋❖



बालकृष्ण

आरती करत यशोदा प्रमुदित, फूली अंग न मात।
बल बल कहि दुलरावत, आनन्द मगन भई पुलकात।।
सुवरन थार रत्न दीपावलि, चित्रित घृत भीनी बाति।
कल सिंदूर दूब दधि अच्छत, तिलक करत बहु भांति।।
अन्न चतुर्विध विविध भोग, दुंदुभि बाजत बहुत जात।
नाचत गोल कुंकुमां छिरकत, देत अखिल नगदात।।
बरसत कुसुम निकर सुर नर मुनि, ब्रजजुवती मुसकात।
कृष्णदास प्रभु गिरधर को, (श्री) मुख निरख लजत ससि कांत।।

❖❋❖

प्रकाशक—



सावित्री ठाकुर प्रकाशन



रथयात्रा, वाराणसी।